श्रीदेवीपुराणम्

हिन्दी टीका सहित

हिन्दीटीकाकार

एस. एन. खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
556

श्रीदेवीपुराणम्

भाषाटीकासमन्वितम्

भाषाटीकाकार:
श्री एस. एन खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

देवीपुराण

ISBN : 978-93-82443-43-8

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 2013
₹ 800

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ वड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

प्राक्कथन

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्च की अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती ही सम्पूर्ण विश्व को सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्वप्रपञ्च उन्हीं से उत्पन्न होता है और अन्त में उन्हीं में लीन हो जाता है। जिस प्रकार दर्पण में आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि प्रपञ्च प्रतीत तो होते हैं; किन्तु यदि दर्पण को स्पर्श कर देखा जाय तो वहाँ वास्तव में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, उसी प्रकार सच्चिदानन्दरूप महाचिति भगवती में भी सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पण के अनुपलब्ध रहने पर प्रतिबिम्ब का भान नहीं होता; अपितु दर्पण के उपलम्भ में ही प्रतिबिम्ब का उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड नित्य निर्विकार महाचिति में ही—उसके अस्तित्व में ही प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होने पर भास्य के उपलम्भ की कथमपि आशा नहीं की जा सकती।

सामान्यतया यह सर्वमान्य है कि प्रमाणाधीन ही किसी भी प्रमेय की स्थिति होती है; अतः सम्पूर्ण प्रमेय में प्रमाण कवलित ही उपलब्ध होता है। प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय—ये अन्योन्य (परस्पर) की अपेक्षा रखते हैं। प्रमाण का विषय होने पर ही कोई वस्तु प्रमेय हो सकती है। प्रमेय को विषय करने वाली अन्तःकरण की वृत्ति ही प्रमाण पदवाच्य हो सकती है एवं प्रमेयविषयक प्रमाण का आश्रयभूत अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाता कहलाता है; फिर भी इन सबकी उत्पत्ति, स्थिति और गति का भासक नित्य बोध आत्मा ही है और वही 'साक्षी' तथा 'ब्रह्म' पदवाच्य भी है।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसक में से कुछ भी नहीं है तथापि वह चिति, भगवती आदि स्त्रीवाचक शब्दों से; आत्मा, पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दों से और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक शब्दों से भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक—इन सबसे पृथक् होने पर भी तत्तत् शरीर के सम्बन्ध से या वस्तु के सम्बन्ध से वही अचिन्त्य, अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूप महाचिति भगवती आत्मा, पुरुष, ब्रह्म आदि शब्दों से व्यवहृत होती हैं। मायाशक्ति का आश्रयण कर वे ही त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेश्वरी, विष्णु, शिव, कृष्ण, राम, गणपति, सूर्य आदि रूपों में व्यक्त होती हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप त्रिपुर (तीन देहों) के भीतर रहने वाली सर्वसाक्षिणी चिति ही 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाती हैं। उसी माया-विशिष्ट तत्त्व के जिस प्रकार राम-कृष्ण आदि अन्यान्य अवतार होते हैं, वैसे ही महालक्ष्मी, महासरस्वती, महागौरी आदि अवतार भी होते हैं। यद्यपि श्रीभगवती नित्य हैं तथापि देवताओं के कार्य के लिये वे समय-समय पर अनेक रूपों में प्रकट होती हैं। जगन्मूर्ति भगवती यद्यपि सर्वथा नित्य हैं और उन्हीं से चराचर प्रपञ्च व्याप्त है तथापि उनकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से होती है। देवताओं के कार्य के लिये वे जब प्रकट होती हैं, उस समय नित्य होने पर भी 'देवी उत्पन्न हुईं, प्रकट हो गयीं' इस प्रकार कही जाती हैं। दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय (६४-६६) में कहा भी गया है—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

कतिपय लोगों का कहना है कि शास्त्रों में मायारूपा भगवती की ही उपासना कही गयी है और वह माया वेदान्तसिद्धान्त के अनुसार मिथ्या है; अतः मुक्ति में उसकी अनुगति नहीं हो सकती। इसलिये भगवती की उपासना अश्रद्धेय है। 'नृसिंहतापनी' में स्पष्ट उल्लेख है कि नारसिंही माया ही समस्त प्रपञ्च की सृष्टि करती है, वही सबकी रक्षा

एवं सबका संहार करती है, उसी मायाशक्ति को जानना चाहिये। जो उसे जानता है, वह मृत्यु को जीत लेता है, पाप्मा को तर जाता है तथा अमृतत्व एवं महती श्री को प्राप्त करता है—

माया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं सृजति, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति। तस्मान्मायामेतां शक्तिं विद्यात्। य एतां मायां शक्तिं वेद, स मृत्युं जयति, स पाप्मानं तरति, सोऽमृतत्वं गच्छति, महतीं श्रियमश्नुते।

श्रीदुर्गासप्तशती के ग्यारहवें अध्याय (श्लोक-५) में देवता भी कहते हैं कि आप ही वैष्णवी शक्ति, अनन्तवीर्या एवं विश्व की बीजभूता माया हैं—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया।

इन समस्त वचनों से स्पष्ट है कि भगवती मायारूपा ही हैं। देवीभागवत आदि के अनुरूप माया स्वयं जड है। इसी माया की उपासना का यत्र-तत्र स्थानों में विधान है, जो अश्रद्धेय ही है; किन्तु इस प्रकार का कथन उचित नहीं है; क्योंकि इनका भाव दूसरा है और श्रीदेव्यथर्वशीर्ष के निम्न प्रमाणों से यह सिद्ध है कि देवी साक्षात् ब्रह्मरूपिणी ही हैं—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थु: कासि त्वं महादेवीति? साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्त: प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। (अर्थात् देवताओं ने देवी का उपस्थान (उनके निकट पहुँच) कर उनसे प्रश्न किया—आप कौन हैं? तब देवी ने कहा—मैं ब्रह्म हूँ, मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न होता है।)

इसी प्रकार 'अथ ह्येषां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति, भुवनाधीश्वरी तुर्यातीता' (भुवनेश्वर्युपनिषद्), 'स्वात्मैव ललिता' (भावनोपनिषद्) आदि वैदिक वचनों से भी यह स्पष्ट है कि तुर्यातीत ब्रह्मस्वरूपा ही भगवती हैं। 'त्रिपुरातापनी, सुन्दरीतापनी' आदि उपनिषदों में 'परोरजसे' आदि गायत्री के चतुर्थ चरण से प्रतिपाद्य ब्रह्म के वाचक रूप से 'ह्रीं' बीज को बतलाया है। 'काली, तारा' आदि उपनिषदों में भी ब्रह्मरूपिणी भगवती की ही उपासना प्रतिपादित है। पुराणों, संहिताओं में भी इस यम्बन्ध में अनेकश: साक्ष्य द्रष्टव्य हैं। 'सूतसंहिता' में भी कहा गया है—

अत: संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्। आराधयेत्परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्।।

अर्थात् संसार-निवृत्ति के लिये प्रपञ्चस्फुरणशून्य, सर्वसाक्षिणी, आत्मरूपिणी पराशक्ति की ही आराधना करनी चाहिये। स्कन्दपुराण में भी कहा गया है—

परा तु सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका। सर्वाधिष्ठानरूपा स्याज्जगद्भ्रान्तिश्चिदात्मनि।।

अर्थात् 'सच्चिदानन्दरूपिणी परा जगदम्बिका ही विश्व की अधिष्ठानभूता हैं एवं उन्हीं चिदात्मस्वरूपा भगवती में ही जगत् की भ्रान्ति होती है। कूर्मपुराण भी इसे इस प्रकार कहता है—

सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभि:। एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।
योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्या: परं पदम्। परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।।
अनन्तं प्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम्। शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं दैन्यवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम्।।

उपर्युक्त सभी वचनों से निर्विकार, अनन्त, अच्युत, निरञ्जन, निर्गुण ब्रह्म को ही भगवती का वास्तविक स्वरूप बतलाया गया है। देवीभागवत में भी कहा गया है कि निर्गुणा और सगुणा दो प्रकार की भगवती हैं। रागिजनों के लिये सगुणा सेव्या हैं और विरागियों के लिये निर्गुणा—

निर्गुणा सगुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभि:। सगुणा रागिभि: सेव्या निर्गुणा तु विरागिभि:।।

'ब्रह्माण्डपुराण' के ललितोपाख्यान में कहा है कि चिदेकरसरूपिणी चिति ही तत्पद की लक्ष्यार्थरूप हैं—

चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मस्वरूपता के बोधक इन वचनों से भगवती के मायात्वबोधक पूर्ववचनों का विरोध होगा; किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि वेदान्त में माया को 'मिथ्या' कहा गया है। मिथ्या पदार्थ अधिष्ठान (अपने आश्रय) में कल्पित होता है। अधिष्ठान की सत्ता से अतिरिक्त कल्पित की अपनी कोई सत्ता नहीं होती। माया में अधिष्ठान की सत्ता का ही प्रवेश रहता है; अत: मायास्वरूप की उपासना से भी सत्तास्वरूप ब्रह्म की ही उपासना होती है। इस आशय से मायास्वरूप के बोधक वचनों का कोई विरोध नहीं होगा।

जिस प्रकार ब्रह्म की उपासना में भी केवल ब्रह्म की ही उपासना नहीं होती, अपितु शक्ति-विशिष्ट ब्रह्म की ही उपासना होती है; क्योंकि ब्रह्म से पृथक् होकर शक्ति रह ही नहीं सकती और केवल ब्रह्म की उपासना हो नहीं सकती, उसी प्रकार केवल माया की उपासना भी सम्भव नहीं है। केवल माया की तो स्थिति ही नहीं बनती, फिर उपासना तो दूर की बात है। अधिष्ठानभूत ब्रह्म से युक्त होकर ही माया रहती है, अत: भगवती की मायारूपता का वर्णन करने पर भी फलत: ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है—

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधिति:। चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं शिवस्य सहजा ध्रुवा।।

अर्थात् जैसे अग्नि में उष्णता रहती है, सूर्य में किरणें रहती हैं और चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती है, वैसे ही शिव में उसकी सहज शक्ति रहती है। इस तरह विश्वस्वरूपभूता शक्ति के रूप में भगवती का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे अग्नि में होम करने पर भी अग्निशक्ति में ही होम समझा जाता है, वैसे ही अग्निशक्ति में होम करने पर अग्नि में ही होम समझा जाता है। इसी प्रकार माया को भगवती कहने पर भी ब्रह्म को ही भगवती समझा जा सकता है। अत: भगवती की उपासना को ललितात्रिशतीभाष्य आदि के अनुसार सर्वत्र ब्रह्म की ही उपासना समझनी चाहिये।

जो वाक्य माया को मिथ्या प्रतिपादित करते हैं, उनमें तो केवल माया का ही ग्रहण होता है; क्योंकि ब्रह्म का मिथ्यात्व ही नहीं है। वह तो त्रिकालाबाध्य, सत्स्वरूप अधिष्ठान है। फिर उपास्य माया पदार्थान्तर्गत ब्रह्मांश मोक्षदशा में भी अनुस्यूत रहेगा, अत: मुक्ति में उपास्य स्वरूप का त्याग भी नहीं होगा। 'अन्तर्यामिब्राह्मण' में पृथ्वी से लेकर मायापर्यन्त सभी पदार्थों में चेतन-सम्बन्ध से देवतात्व बतलाया गया है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति के अनुसार भी सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा कहा गया है। 'सूतसंहिता' में भी कहा गया है—

चिन्मात्राश्रयमायाया: शक्त्याकारो द्विजोत्तमा:। अनुप्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयम्प्रभा।।
सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी। सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवङ्करी।।

चिन्मात्र परब्रह्म के आश्रित रहने वाली माया के शक्त्याकार में अनुप्रविष्ट स्वयम्प्रभा, निर्विकल्पा, सदाकारा, सदानन्दा संविद् ही शिवाभिन्न शिवस्वरूपा परमा देवी हैं अथवा भगवती-स्वरूप के प्रतिपादक वाक्यों में जो माया, शक्ति, कला आदि शब्द हैं, वे सब लक्षणा से मायाविशिष्ट, कलाविशिष्ट ब्रह्म के ही बोधक हैं—ऐसा जानना चाहिये। फलत: मायाविशिष्ट ब्रह्म ही 'भगवती' शब्द से वाच्य है। यही बात स्वयं सदाशिव ने भी कही है—

नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित्। मायाधिष्ठानचैतन्यमुपास्यत्वेन कीर्तितम्।।
मायाशक्त्यादिशब्दाश्च विशिष्टस्यैव लक्षका:। तस्मान्मायादिशब्दैस्तद् ब्रह्मैवोपास्यमुच्यते।।

वहाँ एक पक्ष में केवल चैतन्य ही माया आदि शब्दों से उपास्य कहा गया है एवं द्वितीय पक्ष में मायाविशिष्ट ब्रह्म को माया आदि शब्दों से कहा गया है। साकार देवताविग्रह सर्वत्र शक्तिविशिष्ट ब्रह्मरूप से ही उपास्य होता है एवं भगवतीविग्रह में भी भाषण, दर्शन, अनुकम्पा आदि व्यवहार देखा जाता है। फिर उसमें जडत्व की कल्पना किस तरह की जा सकती है?

विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिकों के स्वरूप में एक-एक गुण की प्रधानता है; जबकि माया

गुणत्रय का साम्यावस्थारूप है। वह केवल शुद्ध ब्रह्म के आश्रित है। मायाविशिष्ट तुरीय ब्रह्म ही भगवती की उपासना में ग्राह्य है, यही स्पष्ट करने के लिये कहीं-कहीं भगवती को माया, प्रकृति आदि शब्दों से भी बोधित किया गया है। मैत्रायणिश्रुति में स्पष्ट कहा गया है कि तीनों गुणों की साम्यावस्थारूपा प्रकृति परब्रह्म में रहती है और मूलप्रकृति से उपलक्षित ब्रह्म शुद्ध तुरीयस्वरूप ही है। अतएव 'त्वं वैष्णवी शक्तिः' इत्यादि स्थलों में तुरीय ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती का ही शक्तिरूप में विवेचना समझनी चाहिये। इस प्रकार माया पर मुक्ति के अनन्वयी होने या अश्रद्धेय होने का दोष कथमपि चरितार्थ नहीं होता।

स्पष्ट है कि एक-एक गुण की अपेक्षा गुणत्रय की साम्यावस्था उत्कृष्ट और तद्रूपा माया या प्रकृति ही जिसका स्वरूप है, उस भगवती की उपासना भी परमोत्कृष्ट है। अत एव कामार्थी, मोक्षार्थी सभी के लिये भगवती की उपासना परम आवश्यक है। वही ब्रह्मविद्या है, वही जगज्जननी है और उसी से सारा विश्व व्याप्त है। इसीलिये वैकृतिकरहस्य (३८) में कहा भी गया है कि जो उसकी पूजा नहीं करता, उसके पुण्य को माता भस्म कर देती हैं—

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी।।

'देवीभागवत' के प्रथम मन्त्र में ही भगवती के सगुण और निर्गुण—दोनों रूपों का संकेत मिलता है—'सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या न प्रचोदयात्।' वह भगवती सर्वचैतन्यरूपा अर्थात् सर्वात्मस्वरूपा है, सबका प्रत्यक्-चैतन्य आत्मस्वरूप ब्रह्म वही है। वह स्वतः सर्वोपाधिनिरपेक्ष तथा अखण्ड बोधरूप आत्मा है। ब्रह्मविषयक शुद्ध सत्त्वान्तर्मुख वृत्ति पर प्रतिबिम्बित होकर यही अनादि ब्रह्मविद्या है। एक ही शक्ति अन्तर्मुख होकर विद्यातत्त्वरूपिणी होती है, तदुपाधिक आत्मा 'तुरीय' कहलाता है। बहिर्मुख होकर 'अविद्या' कहलाती है, तदुपाधिक आत्मा 'प्राज्ञ' है। मायाशबल ब्रह्म ही ध्यान का विषय है, वही बुद्धिप्रेरक है। अतः वेदान्त की दृष्टि से शक्तिरूपा भगवती सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त स्वप्रकाश चिति ही हैं और वे ही परब्रह्म, आत्मा आदि शब्दों से लक्षित होती हैं।

शाक्ताद्वैत या तान्त्रिक दृष्टि में भवगती—तन्त्रों के अनुसार 'प्रकाश' ही शिव और 'विमर्श' ही शक्ति है। संहार में शिव का प्राधान्य रहता है तो सृष्टि में शक्ति का। प्रमा में इदमंश ग्राह्य और अहमंश ग्राहक माना जाता है। भीतर वर्तमान पदार्थों का ही बाह्यरूप में अवभास होता है—

वर्तमानावभासानां भावानामवभासनम्। अन्तःस्थितवतामेव घटते बहिरात्मना।।

प्रकृति में सूक्ष्म रूप से सभी वस्तुयें स्थित हैं। परम शिव और शक्ति दोनों ही श्लिष्ट होकर रहते हैं। निःस्पन्द परम शिवतत्त्व और निषेधात्मक तत्त्व ही शक्तितत्त्व है। 'आसीज्ज्ञानमथा ह्यर्थ एकमेवाविकल्पतः' अर्थात् जब ज्ञान और अर्थ दोनों ही अविकल्पित होकर एक में रहते हैं तब साम्यावस्था समझी जाती है। भगवती के विषय में तन्त्रदृष्टि का यह सूत्ररूप परिचय है।

शाक्ताद्वैत की दृष्टि यह है कि अनन्त विश्व का अधिष्ठानभूत शुद्ध बोधस्वरूप प्रकाश ही शिवतत्त्व समझा जाता है। उस प्रकाश में जो विमर्श है, वही शक्ति है। प्रकाश के साथ विचारात्मक शक्ति का अस्तित्व अनिवार्य है। विना प्रकाश के विमर्श नहीं रहता एवं विना विमर्श के प्रकाश भी नहीं रहता। यद्यपि वेदान्तियों की दृष्टि में विना विमर्श के भी अनन्त, निर्विकल्प प्रकाश रहता है तथापि शाक्ताद्वैतियों की दृष्टि से विमर्श हर समय रहता है। यहाँ तक कि महावाक्यजन्य परब्रह्माकार वृत्ति के उत्पन्न हो जाने पर भी, आवरक अज्ञान के समाप्त हो जाने पर भी स्वयं वृत्तिरूप विमर्श बना ही रहता है। वेदान्ती इस वृत्ति को स्व-पर-विनाशक मानते हैं; किन्तु शक्ताद्वैती कहते हैं कि अपने-आप में ही नाश्य-नाशकभाव सम्भव नहीं है। यदि उस वृत्ति के नाश के लिये दूसरी वृत्ति की उत्पत्ति स्वीकार करेंगे तो उसके भी नाश के लिये वृत्त्यन्तर की कल्पना करनी पड़ेगी और इस प्रकार अनवस्था दोष हो जायेगा। अविद्या स्वयं नष्ट होनेवाली है;

अत: उससे भी उस वृत्तिरूपा विद्या का नाश होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। विरोध न होने के कारण विद्या-अविद्या का सुन्दोपसुन्दन्याय से भी परस्पर नाश्य-नाशकभाव स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जो यह कहा जाता है कि जैसे कनकरज जल के भीतर की मिट्टी को नष्ट करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है, वैसे ही विद्यारूपा वृत्ति स्वातिरिक्त अविद्या एवं तत्कार्यस्वरूप जगत् को नष्ट करके स्वयं भी नष्ट हो जाती है; किन्तु दृष्टान्त में कनकरज का नाश नहीं होता; अपितु इतर रजों को साथ लेकर कनकरज जल के नीचे अवस्थित हो जाता है। अत: यहाँ भी उक्त दृष्टान्त से वृत्ति का नाश स्वीकार नहीं किया जा सकता। यही स्थिति 'विषं विषान्तरं जरयति, स्वयमेव जीर्यति, पय: पयोऽन्तरं जरयति, स्वयमेव च जीर्यति' इत्यादि युक्तियों की भी है अर्थात् वहाँ भी विष या पय नष्ट नहीं होता; प्रत्युत दूसरे पय या विष की अजीर्णता को समाप्त कर स्वयं भी पच जाता है। अतएव इन दृष्टान्तों से भी वृत्ति का नाश नहीं कहा जा सकता; इसलिये वृत्तिरूप विद्या से संश्लिष्ट होकर ही अनन्त प्रकाशस्वरूप शिव सदैव विराजमान रहता है।

इसी प्रकार यह विचार भी प्रस्फुटित होता है कि अविद्या-निवृत्ति क्या है? कोई वस्तु कहीं से निवृत्त होने पर भी कहीं-न-कहीं रहती ही है। यदि 'ध्वंसरूपा निवृत्ति' स्वीकार की जाय तो अपने कारण में उसकी स्थिति स्वीकार करनी पड़ेगी; क्योंकि घटादि का ध्वंस होने पर भी अपने कारण कपाल, चूर्ण आदि कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में उसकी स्थिति स्वीकार करनी ही पड़ती है। यही स्थिति लयरूपा निवृत्ति की भी है। यदि निवृत्ति को सर्वथा नि:स्वरूप कहें तो उसके लिये प्रयत्न नहीं हो सकता। सही कहें तब तो उसी रूप में शक्ति की स्थिति रह सकती है। अनिर्वाच्य कहें तो उसकी भी ज्ञानविवर्त्यता स्वीकार करनी पड़ेगी। अतएव कतिपय आचार्यों ने पञ्चप्रकारा अविद्या-निवृत्ति स्वीकार की है तथा उस रूप में भी विमर्शरूपा शक्ति का अस्तित्व रहता ही है। हाँ, उस समय अन्तर्मुख होकर शिवस्वरूप से ही शक्ति स्थित रहती है। शक्तिदर्शन में कहा भी गया है—

मुक्तावन्तर्मुखैव त्वं भुवनेश्वरि तिष्ठसि।

इसीलिये शक्ति को नित्य कहा गया है—'नित्यैव सा जगन्मूर्तिर्यया सर्वमिदं ततम्। नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपा भवति विद्यते' (बृहदा० उप०-४)। इस वचन से वृत्तिरूप दृष्टि को नित्य समझा जाता है; जबकि वेदान्ती द्रष्टा की स्वरूपभूता दृष्टि को नित्य कहते हैं।

शिव-परात्पर—विमर्श, प्रकाश एवं शक्ति के शिव में प्रवेश से बिन्दु, स्त्रीतत्त्व एवं नाद की उत्पत्ति हुई। जब दुग्ध-जल की तरह वे दोनों एक हो गये तब संयुक्त बिन्दु हुआ और वही 'अर्धनारीश्वर' हुआ। इनकी परस्पर आसक्ति ही 'काम' है। श्वेत बिन्दु पुंस्त्व का तो रक्त बिन्दु स्त्रीत्व का परिचायक है। तीनों जब मिलते हैं तब कामकला की उत्पत्ति होती है। मूल बिन्दु, नाद और श्वेत तथा रक्त बिन्दु—इन चारो के मिलने से सृष्टि होती है। किसी के मत में नाद के साथ अर्धकला भी हुई। कामकलादेवी का संयुक्त बिन्दु वदन है, अग्नि और चन्द्र वक्ष:स्थल हैं एवं अर्धकला जननेन्द्रिय है। 'अ' शिव का प्रतीक है तो 'इ' शक्ति का। यह त्रिपुरसुन्दरी 'अहं' से व्याप्त है। सम्पूर्ण सृष्टि व्यक्तित्व और अहं से पूर्ण है। सहस्रार के चन्द्रगर्भ से स्रवित आसव का पान कर, ज्ञानरूपी कृपाण से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आसुर पशुओं का हनन कर, वञ्चना, पिशुनता, ईर्ष्यारूप मछलियों को पकाकर, आशा, कामना, निन्दारूप मुद्रा को धारण कर, मेरुदण्डाश्रिता रमणियों में रमण कर सामरस्य की प्राप्ति होती है। पञ्च मकार का भी यही रहस्य है। शिव-शक्ति का संयोग ही 'नाद' है। शिवसंश्लिष्ट शक्ति विश्व का बीज है। अहं-प्रकाश में शिव निश्चेष्ट रहता है तो शक्ति सक्रिय रहती है। यही काली की विपरीत रति है। विमर्शरूपा शक्ति जब शिव में लीन होती है तब 'उन्मना अवस्था' होती है एवं उसके विकसित होने पर 'समान अवस्था' होती है—

सच्चिदानन्दविभवात् सङ्कल्पात् परमेश्वरात्। आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भव:।।

विभव सच्चिदानन्द के सङ्कल्प से शक्ति, उससे नाद और नाद से बिन्दु का प्राकट्य होता है। नाद में जो क्रियाशक्ति है, वही बिन्दु की 'अहं निमेषा' है। सृष्टि की अन्तिम अवस्था है—'इदम्'। 'अहम्' महाप्रलय की पूर्वावस्था है और शक्ति की उच्छूनावस्था घनीभाव है। ज्ञानप्रधाना शक्ति क्रियारूपेण रज:प्रधाना और बिन्दुतत्त्व से तम:प्रधाना रहती है। व्यवहार में शक्तिमान की अपेक्षा शक्ति का आदर अधिक है। बुद्धि के विना बुद्धिमान का, बल के विना बलवान का, शिल्पशक्ति के विना शिल्पी का किञ्चिदपि मूल्य नहीं रहता। मिठास के विना मिश्री का, सौगन्ध्य के विना पुष्पों का, सौन्दर्य के विना सुन्दरी का, लज्जा के विना कुलाङ्गना का किञ्चिदपि महत्त्व नहीं रह जाता। शाक्ताद्वैत की दृष्टि से शक्ति शिवस्वरूप ही है। सच्चिदानन्द में चिद्भाव विमर्श है एवं सत् का भाव शिव है। कहा भी गया है—

रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जना: किल। शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्।।

अर्थात् कोई भी प्राणी रुद्रहीन, विष्णुहीन होने से शोचनीय नहीं होता, अपितु शक्तिहीन होने पर ही शोचनीय होता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य' अर्थात् बलहीन प्राणी को अपनी आत्मा भी उपलब्ध नहीं हो सकती। सौन्दर्यलहरी (९७) में कहा भी गया है—

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो हरे: पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनि:सीममहिमा महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि।।

इस प्रकार परब्रह्म महिषीरूपा भगवती को आचार्यों ने तुरीया चिच्छक्तिरूपा ही स्वीकार किया है।

शङ्कर: पुरुषा: सर्वे स्त्रिय: सर्वा महेश्वरी। विषयी भगवानीशो विषय: परमेश्वरी।।
मान: स एव विश्वात्मा मन्तव्या तु महेश्वरी। आकाश: शङ्करो देव: पृथिवी शङ्करप्रिया।।

समुद्र-वेला, वृक्ष-लता, शब्द-अर्थ, पदार्थ-शक्ति, पुं-स्त्री, यज्ञ-इज्या, क्रिया-फलभुक्, गुण-व्यक्ति, व्यञ्जकता-रूप, बोध-बुद्धि, धर्म-सत्क्रिया, सन्तोष-तुष्टि, इच्छा-काम, यज्ञ-दक्षिणा, आज्याहुति-पुरोडाश, काष्ठा-निमेष, मुहूर्त-कला, ज्योत्स्ना-प्रदीप, रात्रि-दिन, ध्वज-पताका, तृणा-लोभ, रति-राग—इन भेदों से उसी तत्त्व का अनेकधा प्राकट्य होता है।

'शक्ति' शब्द से बहुत से लोग केवल माया-अविद्या आदि बहिरङ्ग शक्तियों को ही अधिगत करते हैं, किन्तु भगवान् की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति, जीवभूता पराप्रकृति आदि भी 'शक्ति' शब्द से ही व्यवहृत होती हैं। जैसे सिता, द्राक्षा, मधु आदि में मधुरिमा उनका परम अन्तरङ्ग स्वरूप ही है, वैसे ही परमानन्द-रसामृतसार-समुद्र भगवान् की परमान्तरङ्गस्वरूपभूता शक्ति ही भगवती हैं। विष्णुपुराण (६.७.६१) का यह वचन द्रष्टव्य है—

विष्णुशक्ति: परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा। अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते।।

यहाँ विष्णु और क्षेत्रज्ञ को भी शक्ति ही कहा गया है। इस प्रकार यद्यपि शक्तियाँ अनेक हैं तथापि आनन्दाश्रित आह्लादिनी, चेतनांशाश्रित संवित्, सदंशाश्रित सन्धिनी शक्ति होती है। क्षेत्रज्ञ तटस्था शक्ति है और माया बहिरङ्गा शक्ति मानी जाती है। तत्त्ववित् लोग कहते हैं कि जैसे पुष्प का सौगन्ध्य सम्यक् रूप से तभी अनुभूत हो सकता है, जब पुष्प को घ्राणेन्द्रिय हो। अन्य लोगों को तो व्यवधान के साथ किञ्चिन्मात्र ही गन्ध का अनुभव होता है। उसी तरह भगवती के सुन्दर रूप का सम्यक् अनुभव परम शिव को ही प्राप्त होता है; वह अन्य की दृष्टि का विषय ही नहीं हो सकता। आनन्दलहरी में कहा भी गया है—

घृतद्राक्षाक्षीरं मधुमधुरिमा कैरपि परैर्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषय:।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषय: कथङ्कारं ब्रूम: सकलनिगमागोचरगुणे।।

अर्थात् वस्तुत: निर्गुणा, सत्या-सनातनी, सर्वस्वरूपा भगवती ही भक्तानुग्रहार्थ सगुण होकर प्रकट होती हैं। वैसे तो

भगवती के अनन्त स्वरूप हैं; फिर भी विशेषत: शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदा—ये नौ स्वरूप प्रधान हैं।

कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुता निर्गुणा स्वयम्। परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा। सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला।।

इस प्रकार वे सर्वेश्वरी ही चराचर में सभी स्वरूपों में व्याप्त हैं।

गायत्री-तत्त्व—किसी गायत्रीनिष्ठ सज्जन को जिज्ञासा होती है कि गायत्री मन्त्र का वास्तविक अर्थ क्या है? गायत्री मन्त्र के द्वारा किस स्वरूप से किस देवता का ध्यान किया जाता है? कोई गोरूपा गायत्री का, तो कोई आदित्यमण्डलस्था श्वेतपद्मस्थिता देवी का ध्यान करना बतलाते हैं; कहीं पञ्चमुखी गायत्री का ध्यान बतलाया गया है तो कोई राधा-कृष्ण का ध्यान समुचित मानते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि में भ्रम होता है कि गायत्री मन्त्र का मुख्य अर्थ और ध्येय क्या है?

इस सम्बन्ध में यद्यपि शास्त्रों में बहुत कुछ विवेचन किया गया है तथापि बृहदारण्यक उपनिषद् (५।१४) में 'भूमिरन्तरिक्षं द्यौ:' इन आठ अक्षरों को गायत्री का प्रथम पाद, 'ऋचो यजूँषि सामानि' इन आठ अक्षरों को गायत्री का द्वितीय पाद एवं 'प्राणोऽपानो व्यान:' इन आठ अक्षरों को गायत्री का तृतीय पाद स्वीकार किया गया है। इस तरह लोकात्मा, वेदात्मा एवं प्राणात्मा—ये तीनों ही गायत्री के तीन पाद कहे गये हैं। परब्रह्म परमात्मा गायत्री का चतुर्थ पाद है।

'भूमिरन्तरिक्षम्' इन श्रुतियों पर व्याख्या करते हुये आचार्य शंकर कहते हैं कि सम्पूर्ण छन्दों में गायत्री छन्द प्रधान है; क्योंकि वही छन्दों के प्रयोक्ता गयाख्य प्राणों का रक्षक है। सम्पूर्ण छन्दों का आत्मा प्राण है एवं प्राण का आत्मा गायत्री है। क्षत से रक्षक होने के कारण प्राण क्षत्र है, प्राणों का रक्षण करने वाली गायत्री है। द्विजोत्तम-जन्म का हेतु भी गायत्री ही है। गायत्री के तीनों पादों की उपासना करने वालों को लोकात्मा, वेदात्मा और प्राणात्मा के सम्पूर्ण विषय उपनत होते हैं। गायत्री का चतुर्थ पाद ही 'तुरीय' शब्द से कहा जाता है। जो परोरजोजात सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करता है, वह सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष है। जैसे वह पुरुष सर्वलोकाधिपत्य की श्री एवं यश से तप्त होता है, वैसे ही तुरीय पाद का ज्ञाता श्री और यश से दीप्त होता है।

गायत्री सम्पूर्ण वेदों की जननी है। जो गायत्री का अभिप्राय है, वही सम्पूर्ण वेदों का भी अर्थ है। विश्व-तैजस-प्राज्ञ, विराट्-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत, व्यष्टि-समष्टि जगत् तथा उसकी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थायें प्रणव—अ, उ, म्—इन तीनों मात्राओं के अर्थ हैं। सर्वपालक परब्रह्म का वाच्यार्थ सर्वाधिष्ठान, सर्वप्रकाशक, सगुण, सर्वशक्ति, सर्वरहित ब्रह्म प्रणव का लक्ष्यार्थ है। उत्पादक, पालक, संहारक त्रिविध लोकात्मा भगवान् तीनों व्याहृतियों के अर्थ हैं। जगदुत्पत्ति-स्थिति-संहार-कारण परब्रह्म ही 'सवितृ' शब्द का अर्थ है, तथापि गायत्री द्वारा विश्वोत्पादक, स्वप्रकाश परमात्मा के उस रमणीय चिन्मय तेज का ध्यान किया जाता है, जो समस्त बुद्धियों का प्रेरक एवं साक्षी है।

विश्वोत्पादक परमात्मा के वरेण्य गर्भ को बुद्धिप्रेरक एवं बुद्धिसाक्षी करने से जीवात्मा और परमात्मा का अभेद परिलक्षित होता है; अत: साधनचतुष्टय-सम्पन्न उत्तमाधिकारी के लिये प्रत्यक्चैतन्याभिन्न, निर्गुण, निराकार, निर्विकार परब्रह्म का ही चिन्तन गायत्री मन्त्र के द्वारा किया जाता है। अनन्त कल्याणगुणगण-सम्पन्न, सगुण, निराकार परमेश्वर की उपासना गायत्री के द्वारा की जा सकती है। प्राणिप्रसवार्थक 'षूङ्०' धातु से 'सवितृ' शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ उत्पत्ति को उपलक्षण मान कर उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण परब्रह्म ही 'सवितृ' शब्द का अर्थ है। इस दृष्टि से उत्पादक, पालक, संहारक विष्णु, रुद्र तथा उनकी स्वरूपभूत तीनों शक्तियों का ध्यान किया जाता है।

त्रैलोक्य, त्रैविद्य तथा प्राण जिस गायत्री के स्वरूप हैं, वह त्रिपदा गायत्री परोरजा आदित्य में प्रतिष्ठित है; क्योंकि आदित्य ही मूर्त-अमूर्त दोनों का ही रस है। इसके विना सब शुष्क हो जाते हैं; अत: त्रिपदा गायत्री आदित्य में प्रतिष्ठित है। आदित्य चक्षुस्वरूप सत्ता में प्रतिष्ठित है। वह सत्ता बल अर्थात् प्राण में प्रतिष्ठित है; अत: सर्वाश्रयभूत प्राण ही परमोत्कृष्ट है। गायत्री अध्यात्म प्राण में प्रतिष्ठित है। जिस प्राण में सम्पूर्ण देव, वेद, कर्मफल एक हो जाते हैं, वही प्राणस्वरूपा गायत्री सबकी आत्मा है। शब्दकारी वागादि प्राण 'गय' हैं और उनका त्राण करने वाली गायत्री है। आचार्य आठ वर्ष के बालक को उपनीत करके जब गायत्री प्रदान करता है तब जगदात्मा प्राण ही उसके लिये समर्पित करता है। जिस माणवक को आचार्य गायत्री का उपदेश करता है, तो वह उसके प्राणों का त्राण करता है एवं नरकादि पतन से उसे बचा लेता है।

गायत्री के प्रथम पाद को जानने वाला यति यदि धनपूर्ण तीनों लोकों का दान ले तो भी उसे कोई दोष नहीं लगता; जो द्वितीय पाद को जानता है, वह जितने में त्रयी विद्यारूप सूर्य तपता है, उन सब लोकों को प्राप्त कर सकता है एवं तीसरे पाद को जानने वाला सम्पूर्ण प्राणिवर्ग को प्राप्त कर सकता है। सारांश यह है कि यदि पादत्रय के समान भी कोई दाता-प्रतिग्रहीता हो तब भी गायत्रीविद् को प्रतिग्रह दोष नहीं लगता; फिर चतुर्थ पाद के वेदिता के लिये तो ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो उसके ज्ञान का फल कहा जा सके। वस्तुत: त्रिपाद-विज्ञान का भी प्रतिग्रह से अधिक ही फल होता है; क्योंकि इतना प्रतिग्रह कौन ले सकता है? गायत्री के उपस्थान-मन्त्र में कहा गया है कि 'हे गायत्रि! आप त्रैलोक्यरूप पाद से एकपदी हो, त्रयीविद्यारूप पाद से द्विपदी हो, प्राणादि तृतीय पाद से त्रिपदी हो एवं चतुर्थ तुरीय पाद से चतुष्पदी हो।'

इस प्रकार चार पाद से मन्त्रों द्वारा आपकी उपासना होती है। इसके बाद अपने निरुपाधिक आत्मास्वरूप से अपद हो, 'नेति-नेति' इत्यादि निषेधों से वह सर्वनिषेधों का अवधिरूप से बोधित सम्पूर्ण व्यवहारों का अगोचर है; अत: प्रत्यक्ष परोरजा आपके तृतीय पाद को हम प्रणाम करते हैं। आपकी प्राप्ति में विघ्नकारी पापी, आपकी प्राप्ति में विघ्नसम्पादक लक्षण अपने अभीष्ट को प्राप्त न करें—इस अभिप्राय से अथवा जिससे दोष हो, उसके प्रति भी अमुक व्यक्ति अमुक अभिप्रेत फल को प्राप्त न करे, मैं अमुक फल प्राप्त करूँ, ऐसी भावना से वह मिल जाता है। गायत्री का अग्नि ही मुख है। उसके अग्निमुख को न जानने के कारण एक गायत्रीविद् हाथी बनकर राजा जनक का वाहन बना था। जैसे अग्नि में अधिक से अधिक ईन्धन समाप्त हो जाता है, वैसे ही अग्निमुखी गायत्री के ज्ञान से समस्त पाप भी समाप्त हो जाते हैं।

'छान्दोग्योपनिषद्' में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण चराचर भूतप्रपञ्च गायत्री ही है। किस तरह सब कुछ गायत्री है—इस पर कहा गया है कि वाक् ही गायत्री है एवं वाक् ही समस्त भूतों का गान एवं रक्षण करती है। 'गो, अश्व, महिष, मा भैषी:' इत्यादि वचनों से वाक् द्वारा ही भय की निवृत्ति होती है। गायत्री को पृथ्वीरूप मान कर उसमें ही सम्पूर्ण भूतों की स्थिति मानी गयी है; क्योंकि स्थावर-जङ्गम सभी प्राणिवर्ग पृथ्वी में ही रहते हैं, कोई भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। पृथ्वी को शरीररूप मान कर उसमें सम्पूर्ण प्राणों की स्थिति मानी गयी है। शरीर को हृदयरूप मान कर उसमें सम्पूर्ण प्राणों की प्रतिष्ठा कही गयी है। इस तरह चतुष्पाद षडक्षरपाद गायत्री वाक्, भूत, पृथ्वी, शरीर, हृदय, प्राणरूपा षड्विधा गायत्री का वर्णन है। पुनश्च सम्पूर्ण विश्व को एक पादमात्र कहकर अन्त में त्रिपाद ब्रह्म को उससे पृथक् भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त पूर्वकथनानुसार गायत्री मन्त्र के द्वारा सगुण-निर्गुण किसी भी ब्रह्मस्वरूप की उपासना की जा सकती है।

सुतरां उत्पत्तिशक्ति ब्रह्माणी, पालिनीशक्ति नारायणी, संहारिणीशक्ति रुद्राणी का ध्यान गायत्री मन्त्र के द्वारा हो सकता है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश आदि जिन-जिन में विश्वकारणता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता प्रमाणसिद्ध है, वे सभी परमेश्वर हैं, सभी गायत्री मन्त्र के अर्थ हैं। इस दृष्टि से अपने इष्टदेवता का ध्यान भी गायत्री मन्त्र द्वारा सर्वथा

उपयुक्त है। 'सविता' शब्द सूर्य के सम्बन्ध में विशेष प्रसिद्ध है; अतः उसी की सारशक्ति सावित्री को आदित्यमण्डलस्था भी कहा गया है। महर्षि कण्व ने अमृतमय दुग्ध से मही को पूर्ण करती हुई गोरूप से गायत्री का अनुभव किया था—

तां सवितुर्वरिण्यस्य चित्रामहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्। यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनां सहस्रधारो पयस्त महीं गाम्।।

विश्वमाता, सुमतिरूपा, वरेण्य सविता की गर्भस्वरूपा गायत्री का मैं वरण करता हूँ, जिसको कण्व ने हजारों पयोधारा से महीमण्डल को पूर्ण करते हुये देखा। चन्द्रकला-निबद्ध रत्नों के मुकुटों को धारण किये, वरद एवं अभयमुद्रायें, अङ्कुश, चाबुक, उज्ज्वल कपाल, पाश, शङ्ख, चक्र अरविन्द-युगल दोनों ही ओर के हाथों में लिये हुये भगवती का ध्यान करना चाहिये। पञ्चतत्त्वों एवं पञ्च देवताओं की सारभूत महाशक्ति एकत्रित मुक्ता, प्रवाल, हेम, नील, धवल—पञ्चमुखी भगवती के रूप में प्रकट है। 'शारदातिलक' (२१.१५) में उनका ध्यान इस प्रकार निर्दिष्ट है—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।

इस स्वरूप के ध्यान में सगुण-निर्गुण दोनों ही ब्रह्मरूप आ जाते हैं। दिव्य कमल पर विराजमान, मनोहर भूषण अलंकारों से विभूषित, सुसज्जित उपर्युक्त स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। गायत्री मन्त्र का जप चाहे किसी भी स्थान, समय एवं स्थिति में नहीं किया जा सकता। इसके लिये पवित्र नदीतट आदि देश, सन्ध्यादि काल तथा पात्र की अपेक्षा होती है, तभी वह त्राण कर सकती है।

दस महाविद्यायें और उनकी उपासना

विद्यास्वरूपा महाशक्ति—महाशक्ति विद्या और अविद्या दोनों ही रूपों में विद्यमान हैं। अविद्यारूप में वे प्राणियों के मोह की कारण हैं तो विद्यारूप में मुक्ति की। शास्त्र और पुराण उन्हें विद्या के रूप में और परमपुरुष को विद्यापति के रूप में स्वीकार करते हैं। वेद तथा अन्यान्य शास्त्रों के रूप में विद्या का प्रकट रूप और आगमादि के रूप में विद्वानों एवं साधकों द्वारा गुप्त रूप संकेतित है। वैष्णवी और शाम्भवी-भेद से दोनों की ही शरणागति परम लाभ में हेतु है। आगम-शास्त्रों में यद्यपि गुह्य, गुरुमुखगम्य अनेक विद्याओं के रूप, स्तव और मन्त्रादिकों का विधान है तथापि उनमें दस महा-विद्याओं की प्रधानता तो स्पष्टतः प्रतिपादित है, जो जगन्माता भगवती से अभिन्न है। वरिवस्यारहस्य में कहा भी गया है—

साक्षाद् विद्यैव सा न ततो भिन्ना जगन्माता। अस्याः स्वाभिन्नत्वं श्रीविद्याया रहस्यार्थः।।

महाविद्याओं का प्रादुर्भाव—दस महाविद्याओं का सम्बन्ध परम्परातः सती, शिवा और पार्वती से है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, शक्ति, चामुण्डा, विष्णुप्रिया आदि नामों से पूजित और अर्चित होती हैं। देवीपुराण (महाभागवत) में कथा आती है कि दक्षप्रजापति ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया; फिर भी सती ने शिव से उस यज्ञ में जाने की अनुमति माँगी। इसपर शिव ने अनुचित बताकर उन्हें जाने से रोका; परन्तु सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। उन्होंने कहा—मैं प्रजापति के यज्ञ में अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेव के लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञ को ही नष्ट कर दूँगी। यह कहते हुये सती के नेत्र लाल हो गये और वे शिव को उग्र दृष्टि से देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, शरीर का वर्ण कृष्ण हो गया तथा क्रोधाग्नि से दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामाया का विग्रह प्रचण्ड तेज से तमतमा रहा था। शरीर वृद्धावस्था को सम्प्राप्त-सा, केशराशि बिखरी हुई, चार भुजाओं से सुशोभित वे महादेवी पराक्रम की वर्षा करती-सी प्रतीत हो रही थीं। कालाग्नि के समान महाभयानक रूप में देवी मुण्डमाला धारण की हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी। शीश पर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा था। वे बार-बार विकट हुंकार कर रही थीं। देवी का यह स्वरूप साक्षात् महादेव के लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्न के सूर्यों के समान तेजःसम्पन्न था और

वे बार-बार अट्टहास कर रही थीं। देवी के इस विकराल महाभयानक रूप को देखकर शिव भाग चले। उन भागते हुये रुद्र को दसों दिशाओं में रोकने के लिये देवी ने अपनी अङ्गभूता दस देवियों को प्रकट किया। देवी की ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्यायें कहलाती हैं, जिनके नाम हैं—काली, तारा, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, कमला, त्रिपुरभैरवी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरसन्दरी और मातङ्गी।

शिव ने सती से इन महाविद्याओं का जब परिचय पूछा तब सती ने स्वयं इनकी व्याख्या करके उन्हें इस प्रकार बतलाया—

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना। श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता।।
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी। सव्येतरेयं या देवी विशीर्णातिभयप्रदा।।
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते। वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी।।
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी। वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी।।
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी। नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी।।
वायौ या ते महाविद्या सेयं मतङ्गकन्यका। ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी।।
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु। एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु।।

अर्थात् हे शम्भो! आपके सम्मुख जो यह कृष्णवर्णा एवं भयंकर नेत्रों वाली देवी स्थित हैं, वे 'काली' हैं। जो श्याम वर्ण वाली देवी स्वयं ऊर्ध्वभाग में स्थित हैं, ये महाकालस्वरूपिणी महाविद्या 'तारा' हैं। हे महामते! आपकी बाँयीं ओर जो ये अत्यन्त भयदायिनी मस्तकरहित देवी हैं, ये महाविद्या 'छिन्नमस्ता' हैं। हे शम्भो! आपके वाम भाग में जो देवी हैं, वे 'भुवनेश्वरी' हैं एवं आपके पृष्ठभाग में जो देवी हैं, वे शत्रुसंहारिणी 'बगला' हैं। आपके अग्निकोण में जो ये विधवा का रूप धारण करने वाली देवी हैं, वे महेश्वरी महाविद्या 'धूमावती' हैं। आपके नैर्ऋत्यकोण में जो देवी हैं, वे 'त्रिपुरसुन्दरी' हैं। आपके वायव्य कोण में जो देवी हैं, ये मतङ्गकन्या महाविद्या 'मातङ्गी' हैं। आपके ईशान कोण में महेश्वरी महाविद्या 'षोडशी' देवी हैं। हे शम्भो! मैं भयंकर रूप वाली 'भैरवी' हूँ। आप भय मत करें। ये सभी मूर्तियाँ बहुत-सी मूर्तियों में प्रकृष्ट हैं।

महाभागवत के इस आख्यान से प्रतीत होता है कि महाकाली ही मूलरूपा मुख्य हैं और उन्हीं के उग्र और सौम्य दो रूपों में अनेक रूप धारण करने वाली ये दस महाविद्यायें हैं। दूसरे शब्दों में महाकाली के दशधा प्रधान रूपों को ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्याधिपति शिव की शक्तियाँ ये दस महाविद्यायें लोक और शास्त्र में अनेक रूपों में पूजित हुईं; पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। ये ही महाविद्यायें साधकों की परम धन हैं, जो सिद्ध होकर अनन्त सिद्धियों और अनन्त का साक्षात्कार कराने में समर्थ हैं।

महाविद्याओं के क्रमभेद तो प्राप्त होते हैं, पर काली की प्राथमिकता सर्वत्र देखी जाती है। यों भी दार्शनिक दृष्टि से कालतत्त्व की प्रधानता सर्वोपरि है। इसलिये मूलतः महाकाली या काली अनेक रूपों में विद्याओं की आदि हैं और उनकी विद्यामय विभूतियाँ महाविद्यायें हैं। ऐसा लगता है कि महाकाल की प्रियतमा काली अपने दक्षिण और वाम रूपों में दस महाविद्याओं के रूप में विख्यात हुईं और उनके विकराल तथा सौम्य रूप ही विभिन्न नामरूपों के साथ दस महाविद्याओं के रूप में अनादि काल से अर्चित हो रहे हैं। ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओं के भेद से अनेक होते हुये भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारिभेद से इनके अलग-अलग रूप और उपासनास्वरूप प्रचलित हैं।

प्रकाश और विमर्श, शिवशक्त्यात्मक तत्त्व का अखिल विस्तार और लय सब कुछ शक्ति का ही लीला-विलास है। सृष्टि में शक्ति और संहार में शिव की प्रधानता दृष्ट है। जैसे अमा और पूर्णिमा दोनों दो भासित तो होती हैं, पर दोनों

की तत्त्वत: एकात्मता और दोनों एक-दूसरे के कारण-परिणामी हैं, वैसे ही दस महाविद्याओं के रौद्र और सौम्य रूपों को भी समझना चाहिये। काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवती के प्रकट में कठोर, किन्तु अप्रकट में करुणरूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओं के सौम्य रूप हैं। रौद्र के सम्यक् साक्षात्कार के विना माधुर्य को नहीं जाना जा सकता और माधुर्य के अभाव में रुद्र की सम्यक् परिकल्पना नहीं की जा सकती।

स्वरूप-कथन—यद्यपि दस महाविद्याओं का स्वरूप अचिन्त्य है तथापि शाखाचन्द्र न्याय से उपासक, स्मृतियाँ और पराम्बा के चरणानुगामी इस विषय में कुछ निर्वचन अवश्य कर लेते हैं। इस दृष्टि से कालीतत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्रह्म की पर्याय इस महाशक्ति को तान्त्रिक ग्रन्थों में विशेष प्रधानता दी गयी है। वास्तव में इन्हीं के दो रूपों का विस्तार ही दस महाविद्याओं के स्वरूप हैं। महानिर्गुण की अधिष्ठात्री शक्ति होने के कारण ही इनकी उपमा अन्धकार से दी जाती है। महासगुण होकर वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं तो महानिर्गुण होकर 'काली'। तत्त्वत: सब एक हैं, भेद केवल प्रतीतिमात्र का है। 'कादि' और 'हादि' विद्याओं के रूप में भी एक ही श्रीविद्या क्रमश: काली से प्रारम्भ होकर उपास्या होती हैं। एक को 'संहारक्रम' तो दूसरे को 'सृष्टिक्रम' नाम दिया जाता है। देवीभागवत आदि शक्तिग्रन्थों में महालक्ष्मी या शक्तिबीज को मुख्य प्राधानिक बताने का रहस्य यह है कि इसमें हादि विद्या की क्रमयोजना स्वीकार की गयी है और तन्त्रों, विशेषकर अत्यन्त गोपनीय तन्त्रों में काली को प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृष्टि से यहाँ भी भेदबुद्धि की सम्भावना नहीं है। 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा' का तर्क दोनों से अभिन्न सिद्ध करता है।

बृहन्नीलतन्त्र में कहा गया है कि रक्त और कृष्ण भेद से काली ही दो रूपों में अधिष्ठित हैं। इनमें कृष्णा का नाम यदि 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णा का नाम 'सुन्दरी' है—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णारक्ताप्रभेदत:। कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता।।

उपासना के भेद से दोनों में द्वैत है, पर तत्त्वदृष्टि से अद्वैत है। वास्तव में काली और भुवनेश्वरी दोनों मूलप्रकृति के अव्यक्त और व्यक्त रूप हैं। काली से कमला तक की यात्रा दस सोपानों में अथवा दस स्तरों में पूर्ण होती है। दस महाविद्याओं का स्वरूप इसी रहस्य का परिणाम है।

दस महाविद्याओं की उपासना में सृष्टिक्रम की उपासना लोकग्राह्य है। इसमें भुवनेश्वरी को प्रधान माना गया है। यही समस्त विकृतियों की प्रधान प्रकृति है। देवीभागवत के अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्च के पाये हैं। इस श्रीमञ्च पर भुवनेश्वरी भुवनेश्वर के साथ विद्यमान हैं। सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधना में लगे हुये हैं। विद्वानों का कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलास के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि पञ्च आख्याओं को प्राप्त होकर अपनी शक्तियों के सान्निध्य से सृष्टि, स्थिति, लय, संग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्च कृत्यों को सम्पादित करते हैं। यह निर्विशेष तत्त्व 'परमपुरुष' पदवाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति ही है—भुवनेश्वरी।

महाविद्याओं के प्रादुर्भाव की अन्यान्य कथायें

काली—दस महाविद्याओं में काली प्रथम हैं। कालिकापुराण में कथा आती है कि एक बार देवताओं ने हिमालय पर जाकर महामाया का स्तवन किया। इस स्थान पर मतङ्ग मुनि का आश्रम था। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने देवताओं को दर्शन दिया और पूछा कि 'तुमलोग किसकी स्तुति कर रहे हो?' तत्काल उनके श्रीविग्रह से काले पहाड़ के समान वर्ण वाली दिव्य महातेजस्विनी ने प्रकट होकर स्वयं ही देवताओं की ओर से उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़े काजल के समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसी से मिलती-जुलती कथा श्रीदुर्गासप्तशती में भी है। शुम्भ-निशुम्भ के उपद्रव से व्यथित देवताओं ने हिमालय पर देवीसूक्त से देवी को बार-बार जब प्रणाम निवेदित किया तब गौरी-देह से कौशिकी का प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वती का स्वरूप कृष्ण हो गया और इस प्रकार वे ही 'काली' नाम से विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती। कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।

वास्तव में काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तर से तारा नाम का रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देने वाली—तारने वाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियों से रक्षण की कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे उग्रतारिणी या 'उग्रतारा' हैं।

नारदपाञ्चरात्र के अनुसार एक बार काली के मन में आया कि वे पुन: गौरी हो जायँ। यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारद जी प्रकट हो गये। शिवजी ने नारद जी से जब उनका पता पूछा तो नारद जी ने उनसे सुमेरु के उत्तर में देवी के प्रत्यक्ष उपस्थित होने की बात कही। शिव की प्रेरणा पर नारद जी वहाँ गये और उन्होंने उनसे शिव जी से विवाह का प्रस्ताव रखा। यह सुनकर देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देह से एक अन्य विग्रह षोडशी सुन्दरी का प्राकट्य हुआ और उससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवी का प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराण में देवी के लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। ब्रह्मा की स्तुति में 'महाविद्या' तथा देवताओं की स्तुति में 'लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये' सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकायें आधारपीठ हैं और इनके भीतर स्थित शक्तियों का साक्षात्कार ही शक्ति-उपासना है। शक्ति से शक्तिमान का अभेद-दर्शन, जीवभाव का लोप और शिवभाव का उदय किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध ही शक्ति-उपासना की चरम उपलब्धि है।

तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं, फिर भी बृहन्नीलतन्त्रादि ग्रन्थों में उनके विशेष रूप की चर्चा की गई है। हयग्रीव का वध करने के लिये देवी को नील विग्रह प्राप्त हुआ। शवरूप शिव पर प्रत्यालीढ मुद्रा में भगवती आरूढ हैं और उनकी नीले रंग की आकृति, नीलकमलों की भाँति तीन नेत्र तथा हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्म से विभूषिता उन देवी के कण्ठ में मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तों पर कृपा करने के लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इसी कारण वे महाकरुणामयी हैं।

छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता' के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजया के साथ मन्दाकिनी में स्नान करने के लिये गयीं। वहाँ स्नान करने पर क्षुधाग्नि से पीड़ित होकर वे कृष्ण वर्ण वाली हो गयीं। उस समय उनकी सहचारियों ने उनसे कुछ भोजन करने के लिये माँगा और देवी ने उनसे कुछ प्रतीक्षा करने के लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करने के उपरान्त उन देवियों ने विनम्र स्वर में कहा कि 'माँ तो शिशुओं को भूख लगने पर तुरन्त भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयी ने अपने कराग्र से अपना सिर काट दिया। वह कटा हुआ सिर देवी के बाँयें हाथ में आ गिरा और कबन्ध से तीन धारायें निकल पड़ीं। वे दो धाराओं को अपनी दोनों सहेलियों की ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसका पान करती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपर की ओर प्रवाहित हो रही थी, उसका वे स्वयं पान करने लगीं। तभी से ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

बगला—बगला की उत्पत्ति के विषय में कथा आती है कि सत्ययुग में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट करने वाला एक तूफान आया। प्राणियों के जीवन पर संकट आया देखकर महाविष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप जाकर भगवती को प्रसन्न करने के लिये तप करने लगे। फलत: श्रीविद्या ने उस सरोवर से निकल कर पीताम्बरा के रूप में उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुये जलवेग तथा विध्वंसकारी उत्पात का स्तम्भन किया। वास्तव में दुष्ट वही है, जो जगत् के या धर्म के छन्द का अतिक्रमण करता है। बगला उसका किंवा नियन्त्रण करने वाली महाशक्ति हैं। वे

परमेश्वर की सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गति को अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होने का यही रहस्य है। 'ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ' आदि वाक्यों में बगलाशक्ति ही पर्यायरूप में संकेतित हैं। वे समस्त सिद्धियों को देने में समर्थ हैं और उपासकों के लिये वाञ्छाकल्पतरु हैं।

धूमावती—धूमावती देवी के विषय में कथा आती है कि एक बार पार्वती ने महादेव जी से अपनी क्षुधा का निवारण करने का निवेदन किया; लेकिन महादेव जी चुप रहे। कई बाद निवेदन करने पर भी जब देवाधिदेव ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेव जी को ही निगल लिया। तदनन्तर जब उनके शरीर से धूमराशि निकली तब शिवजी ने शिवा से कहा कि आपकी मनोहर मूर्ति बगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायेगी। यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्यास से व्याकुल स्त्रीविग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं। अभिचारकर्मों में इनकी उपासना का विधान है।

त्रिपुरसुन्दरी—महाशक्ति 'त्रिपुरा' त्रिपुर महादेव की स्वरूपा शक्ति हैं। कालिकापुराण के अनुसार शिव जी की भार्या त्रिपुरा श्रीचक्र की परम नायिका हैं। परमशिव इन्हीं के सहयोग से सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल रूपों में भासित होते हैं। त्रिपुरभैरवी महात्रिपुरसुन्दरी की रथवाहिनी हैं—ऐसा भी उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार अन्य देवियों के विषय में भी पुराणों में यथास्थान कथा प्राप्त होती है।

वास्तव में काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगलामुखी, मातङ्गी, धूमावती—ये रूप और विग्रह में कठोर तथा भुवनेश्वरी, षोडशी, कमला और भैरवी अपेक्षाकृत माधुर्यमयी रूपों की अधिष्ठात्री विधायें हैं। करुणा और भक्तानुग्रहाकाङ्क्षा तो सबमें समान है। दुष्टों के दलन-हेतु एक ही महाशक्ति कभी रौद्र तो कभी सौम्य रूपों में विराजित होकर नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। इच्छा से अधिक वितरण करने में समर्थ इन महाविद्याओं का स्वरूप यद्यपि अचिन्त्य और शब्दातीत है; परन्तु भक्तों और साधकों के लिये इनकी कृपा का कोष नित्य-निरन्तर खुला रहता है। इन महाविद्याओं की उपासना का पृथक्-पृथक् वर्णन निम्नवत् प्राप्त होता है।

महाविद्याओं की उपासना

१. काली की उपासना—तान्त्रिक विद्या-साधना में काली को विशेष प्रधानता प्राप्त है। भव-बन्धन-मोचन में काली की उपासना सर्वोत्कृष्ट कही जा सकती है। शक्ति-साधना के दो पीठों में काली की उपासना श्यामा पीठ पर करने योग्य है। भक्तिमार्ग में तो सर्वथा किसी भी रूप में किसी भी तरह उन महामाया की उपासना फलप्रदा है, पर साधना या सिद्धि के लिये इनकी उपासना वीरभाव से की जाती है। वीर साधक दुर्लभ होता है। जिनके मन से अहंता, माया, ममता और भेदबुद्धि का नाश नहीं हुआ हो, वे इनकी उपासना करने में पूर्ण सफल नहीं हो सकते। साधना के द्वारा जब पूर्ण शिशुत्व का उदय हो जाता है तब भगवती का श्रीविग्रह साधक के सामने प्रकट हो जाता है और उस समय उनकी छवि अवर्णनीय होती है। कज्जल के पहाड़ के समान, दिग्वसना, मुक्तकुन्तला, शव पर आरूढ़, मुण्डमालाधारिणी भगवती का प्रत्यक्ष दर्शन साधक को कृतार्थ कर देता है और साधक के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता। महाकाली की उपासना की पद्धतियाँ, तत्सम्बन्धी मन्त्र और यन्त्र, साधना-विधान, अधिकारीभेद और अन्य उपचारसम्बन्धी सामग्री महाकालसंहिता, कालीकुल-क्रमार्चन, व्योमकेशसंहिता, कालीतन्त्र, कालिकार्णव, विश्वसारतन्त्र, कालीयामल, कामेश्वरीतन्त्र, शक्तिसंगम, शाक्तप्रमोद, दक्षिणकालीकल्प, श्यामारहस्य जैसे ग्रन्थों में प्राप्त है। गुरुकृपा और जगदम्बा की कृपा अथवा पूर्वजन्मकृत साधनाओं के फलस्वरूप काली की उपासना में सफलता प्राप्त होती है।

काली की साधना यद्यपि दीक्षागम्य है तथापि अनन्य शरणागति के द्वारा उनकी कृपा किसी को भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, यन्त्र अथवा गुरु द्वारा उपदिष्ट किसी आधार पर भक्तिभाव से मन्त्रजप, पूजा, होम और पुरश्चरण करने से काली प्रसन्न हो जाती हैं। काली की प्रसन्नता ही सम्पूर्ण अभीष्टों की प्राप्ति है। शाक्तप्रमोद में इनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम्। चतुर्भुजां खड्गमुण्डवराभयकरां शिवाम्।।
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्। एवं सञ्चिन्तयेत्कालीं श्मशानालयवासिनीम्।।

काली की उपासना में भी सम्प्रदायगत भेद हैं। प्राय: दो रूपों में इनकी उपासना का प्रचलन है। श्मशानकाली की उपासना दीक्षागम्य है और इनकी साधना प्राय: किसी अनुभवी से पूछकर ही करनी चाहिये। काली के अनेक नाम— दक्षिणकाली, भद्रकाली, कामकलाकाली, श्मशानकाली, गुह्यकाली आदि तन्त्रों में वर्णित हैं; पर इनमें सम्प्रदायगत भेद के रहते हुये भी तत्त्वत: एकता है। काली की उपासना का रहस्य भी विरल है और यह साधना भी प्राय: दुर्लभ साधना है।

२. तारा की उपासना—शत्रुनाश, वाक् शक्ति की प्राप्ति तथा भोग-मोक्ष की प्राप्ति के लिये तारा अथवा उग्रतारा की साधना की जाती है। कुछ विद्वानों ने तारा और काली में एकता भी प्रमाणित की है। रात्रिदेवीस्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओं में अद्भुत प्रभाव और सिद्धि की अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं। इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

प्रत्यालीढपदर्पिताङ्घ्रिशवहृद्धोराट्टहासापरा खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजाहुङ्कारबीजोद्भवा।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता जाड्यं न्यस्य कपालकर्तृजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्।।

३. छिन्नमस्ता की उपासना—भगवती छिन्नमस्ता का स्वरूप अत्यन्त गोपनीय और साधकों का प्रिय है। इसे अधिकारी ही प्राप्त कर सकता है। ऐसा विधान है कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ सन्ध्याकाल में छिन्नमस्ता के मन्त्रसाधना से साधक को सरस्वती सिद्ध हो जाती हैं। शत्रुविजय, समूहस्तम्भन, राज्यप्राप्ति और दुर्लभ मोक्षप्राप्ति के निमित्त छिन्नमस्ता की उपासना अमोघ है। छिन्नमस्ता का आध्यात्मिक स्वरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो सभी शक्तियाँ विशिष्ट आध्यात्मिक तत्त्वचिन्तनों की संकेत हैं, पर छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोध की प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञशीर्ष की प्रतीक ये देवी श्वेत कमलपीठ पर खड़ी हैं। इनकी नाभि में योनिचक्र है। दिशायें ही इनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणों की देवियाँ इनकी सहचारियाँ हैं। ये अपना शीश स्वयं काट कर भी जीवित हैं, जिससे इनमें अपने में पूर्ण अन्तर्मुखी साधना का संकेत मिलता है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिर: कर्त्रिकां दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां रत्यासक्तमनोभवोपरिदृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम्।।

४. षोडशी की उपासना—षोडशी माहेश्वरी शक्ति की सबसे मनोहर श्रीविग्रह वाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। सोलह अक्षरों के मन्त्र वाली उन देवी की अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल की आभा की भाँति है। उनकी चार भुजायें एव तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रा में लेटे हुये सदाशिव पर स्थित कमल के आसन पर विराजिता षोडशी देवी के चारो हाथों में पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देने के लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवती का श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दया से आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता। वस्तुत: उनकी महिमा अवर्णनीय है। संसार के समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तों को वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुत: उनकी कृपा का एक कण भी अभीष्ट से अधिक प्रदान करने में समर्थ है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्। पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे।।

५. भुवनेश्वरी की उपासना—देवीभागवत में वर्णित मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी ह्रल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र की स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रम में महालक्ष्मीस्वरूपा आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिव के समस्त लीला-विलास की सहचरी और निखिल प्रपञ्चों की आदि कारण, सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकार से पोषण प्रदान करने वाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरी का स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तों को अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्रों में इनकी अपार महिमा बतलायी गयी है।

देवी का स्वरूप 'ह्रीं' बीजमन्त्र में सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवत में देवी का 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रों में कहा गया है कि इस बीजमन्त्र के जप का पुरश्चरण करने वाला और यथाविधि होम, ब्राह्मणभोजन कराने वाला भक्तिमान साधक साक्षात् प्रभु के समान हो जाता है। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्। स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्।।

६. त्रिपुरभैरवी की उपासना—इन्द्रियों पर विजय और सर्वत: उत्कर्ष की प्राप्ति-हेतु त्रिपुरभैरवी की उपासना का विधान शास्त्रों में कहा गया है। त्रिपुरभैरवी की महिमा का वर्णन करते हुये शास्त्र कहते हैं—

वारमेकं पठन्मर्त्यो मुच्यते सर्वसङ्कटात्। किमन्यद्बहुना देवि सर्वाभीष्टफलं लभेत्।।

इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्।।

७. धूमावती की उपासना—पुत्रलाभ, धनरक्षा और शत्रुविजय के लिये धूमावती की साधना-उपासना का शास्त्रों में विधान है। विरूपा और भयानक आकृति वाली होती हुई भी धूमावती शक्ति अपने भक्तों के कल्याण-हेतु सदा तत्पर रहती हैं। इनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा। विमुक्तकुन्तला रुद्रा विधवा विरलद्विजा।।
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा। शूर्पहस्तातिरूक्षा च धूतहस्ता वरानना।।
प्रवृद्धघोषणा सा तु भृकुटिकुटिलेक्षणा। क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा।।

८. बगलामुखी की उपासना—पीताम्बरा विद्या के नाम से विख्यात बगलामुखी की साधना प्राय: शत्रुभय से मुक्त होने और वाक्सिद्धि के लिये की जाती है। बगला का प्रयोग सावधानी की अपेक्षा रखता है। स्तम्भनशक्ति के रूप में इनका विनियोग शास्त्रों में वर्णित है। बगलास्तोत्र, बगलाहृदय, मन्त्र, यन्त्र आदि अनेक रूपों में इन महादेवी की साधना लोकविश्रुत है। बगला की उपासना में पीत वस्त्र, हरिद्रामाला, पीत आसन और पीत पुष्पों का विधान है। इनका ध्यान निम्नवत् किया जाता है—

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्। गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि।।

९. मातङ्गी की उपासना—मातङ्गी मतङ्ग मुनि की कन्या कही गयी हैं। वस्तुत: वाणीविलास की सिद्धि प्रदान करने में इनका कोई विकल्प नहीं है। चाण्डालरूप को प्राप्त शिव की प्रिया होने के कारण इन्हें ही 'चाण्डाली' या 'उच्छिष्टचाण्डाली' भी कहा गया है। गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने, पुरुषार्थसिद्धि और वाग्विलास में पारङ्गत होने के लिये मातङ्गी-साधना श्रेयस्करी होती है। इनका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

माणिक्यवीणामुपलालयन्तीं मदालसां मञ्जुलवाग्विलासाम्। महेन्द्रनीलद्युतिकोमलाङ्गीं मतङ्गकन्यां मनसा स्मरामि।।

१०. कमला की उपासना—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णु की लीला-विलाससहचरी कमला की उपासना वास्तव में जगदाधार शक्ति की उपासना है। इनकी कृपा के अभाव में जीव में सम्पत् शक्ति का अभाव हो जाता है। मानव, दानव और दैव—सभी इनकी कृपा के विना पंगु होते हैं। विश्वम्भर की इन आदिशक्ति की उपासना आगम-निगम दोनों में समान रूप से प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याओं में एक हैं। जो क्रमपरम्परा मिलती है, उसमें इनका स्थान दसवाँ है अर्थात् इनमें—इनकी महिमा में प्रवेश कर जीव पूर्ण और कृतार्थ हो जाता है। सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध और गन्धर्व इनकी कृपा के प्रसाद के लिये लालायित रहते हैं। ये परमवैष्णवी, सात्त्विक और शुद्धाचारा, विचार-धर्मचेतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमल पर विराजमान है। इनका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिगजैर्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्।।

महाविद्याओं का स्वरूप वास्तव में एक ही आद्या शक्ति के विभिन्न स्वरूपों का विस्तार है। भगवती अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य और माधुर्य में विद्या और अविद्या दोनों हैं—'विद्याहमविद्याहम्' (श्रीदेव्यथर्वशीर्ष); परन्तु विद्याओं के रूप में उनकी उपासना का तात्पर्य शुद्ध विद्या की उपासना से है। विद्या मुक्ति की हेतु होती है। अतः पारमार्थिक स्तर पर विद्याओं की उपासना का आशय अन्ततः मोक्ष की ही साधना है। इससे विजय, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती है। सन्दर्भ में आये शत्रुनाश आदि का तात्पर्य आध्यात्मिक स्तर पर काम, क्रोधादिक शत्रुओं से है और आत्मोत्कर्ष चाहने वाले को यही अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

दस महाविद्याओं का अङ्कगणित वेद-शास्त्रों की संख्या दस के अङ्क की प्रधानता की ही ओर संकेत करता है। यजुर्वेद (१६.६४-६६) में 'तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः' आदि प्रयोग मिलते हैं। यों भी अङ्क नव हैं, दसवाँ तो पूर्णता अर्थात् सबके बाद शून्य का पर्याय है। शून्य का एक होना पुनः उसका शून्य हो जाना पूर्ण से पूर्ण और पुनः पूर्ण होने की आध्यात्मिक यात्रा है। इस विषय में गुरु की कृपा ही रहस्य को स्पष्ट कर सकती है।

शक्तिपीठों का प्रादुर्भाव एवं उनका परिचय

भूतभावन भवानीपति भगवान् शंकर जिस प्रकार प्राणियों के कल्याणार्थ विभिन्न तीर्थों में पाषाणलिङ्गरूप में आविर्भूत हुये हैं, उसी प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्च की अधिष्ठानभूता, सच्चिदानन्दरूपा, करुणामयी भगवती भी लीलापूर्वक विभिन्न तीर्थों में भक्तों पर कृपा करने हेतु पाषाणरूप से शक्तिपीठों के रूप में विराजमान हैं। ये शक्तिपीठ साधकों को सिद्धि और कल्याण प्रदान करने वाले हैं। इनके प्रादुर्भाव की कथा पुण्यप्रद तथा अत्यन्त रोचक है—

पितामह ब्रह्मा ने मानवीय सृष्टि का विस्तार करने के लिये अपने दक्षिण भाग से स्वायम्भुव मनु तथा वाम भाग से शतरूपा को उत्पन्न किया। मनु-शतरूपा से दो पुत्रों और तीन कन्याओं की उत्पत्ति हुई, जिनमें सबसे छोटी प्रसूति का विवाह मनु ने प्रजापति दक्ष से किया, जो लोकपितामह ब्रह्मा के मानस पुत्र थे।

ब्रह्मा की प्रेरणा से प्रजापति दक्ष ने दिव्य सहस्र वर्षों तक तपस्या करके आद्या शक्ति जगज्जननी जगदम्बिका भगवती शिवा को प्रसन्न किया और उनसे अपने यहाँ पुत्रीरूप में जन्म लेने का वरदान माँगा। भगवती शिवा ने कहा—प्रजापति दक्ष! पूर्वकाल में भगवान् सदाशिव ने मुझसे पत्नी के रूप में प्राप्त होने की प्रार्थना की थी; अतः मैं तुम्हारी पुत्री के रूप में अवतीर्ण होकर भगवान् शिव की भार्या बनूँगी; परन्तु इस महान् तपस्या का पुण्य क्षीण होने पर जब आपके द्वारा मेरा और भगवान् सदाशिव का निरादर होगा तो मैं आपके सहित सम्पूर्ण जगत् को विमोहित कर अपने धाम को प्रस्थान कर जाऊँगी।

कुछ समय पश्चात् प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती पूर्णा ने दक्षपत्नी प्रसूति के गर्भ से जन्म लिया। वे करोडों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान आभा वाली और अष्टभुजा से सुशोभित थीं। वे कन्यारूप से बाललीला कर माता प्रसूति और पिता दक्ष के मन को आनन्दित करने तथा उनकी तपस्या के पुण्य का फल उन्हें प्रदान करने लगीं। दक्ष ने कन्या का नाम 'सती' रखा।

सती वर्षा ऋतु की मन्दाकिनी की भाँति बढ़ने लगीं। शरत्कालीन चन्द्रज्योत्स्ना के समान उनका रूप देखकर दक्ष के मन में उनका विवाह करने का विचार आया। शुभ समय देख कर उन्होंने स्वयंवर का आयोजन किया, जिसमें भगवान् सदाशिव के अतिरिक्त सभी देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि तथा मुनि उपस्थित थे। दक्ष मोहवश शिव के परमतत्त्व को

न जानकर उन्हें श्मशानवासी भिक्षुक मानते हुये उनके प्रति निरादर का भाव रखते थे। इसके अतिरिक्त जब ब्रह्मा ने रुद्रगणों की सृष्टि की थी तो वे अत्यन्त उग्र रुद्रगण सृष्टि का ही विनाश करने पर उद्यत हो गये थे। यह देखकर ब्रह्मा की आज्ञा से दक्ष ने उन सबको अपने अधीन किया था। अत: अज्ञानवश वे भगवान् सदाशिव को भी अपने अधीन ही समझते थे। इस कारण वे भगवान् सदाशिव को अपना जामाता नहीं बनाना चाहते थे।

सती ने शिवविहिन स्वयंवरसभा को देखकर 'शिवाय नम:' कहकर वरमाला भूमि को समर्पित कर दी। उनके ऐसा करते ही दिव्य रूपधारी त्रिनेत्र वृषभध्वज भगवान् सदाशिव अन्तरिक्ष में प्रकट हो गये और वरमाला उनके गले में सुशोभित होने लगी और समस्त देवताओं, ऋषियों और मुनियों के देखते-देखते ही वे अन्तर्धान हो गये। यह देखकर वहाँ विराजमान ब्रह्मा ने प्रजापति दक्ष से कहा कि आपकी पुत्री ने देवाधिदेव भगवान् शंकर का वरण किया है; अत: उन महेश्वर को बुलाकर वैवाहिक विधि-विधान से उन्हें अपनी पुत्री दे दीजिये। ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर दक्ष ने भगवान् शंकर को बुलाकर उन्हें सती को सौंप दिया और भगवान् शिव भी सती का पाणिग्रहण कर उन्हें लेकर कैलास चले गये।

इधर सती के चले जाने के बाद दक्ष का दिव्य ज्ञान लुप्त हो गया। वे शिव और सती से द्वेषवश विषाद करने लगे। यद्यपि आद्या शक्ति भगवती ने वरदान देते समय ही उनसे यह कहा था कि वे शम्भुपत्नी बनेंगी; पर भावीवश दक्ष को यह ज्ञान ही न रहा कि भगवान् शिव पूर्णब्रह्म परमात्मा और सती आद्या शक्ति जगज्जननी हैं। वे सदाशिव की अर्द्धाङ्गिनी हैं और भगवान् सदाशिव भी उनके अर्द्धाङ्ग हैं। इसीलिये महर्षि दधीचि और देवर्षि नारद के समझाने पर भी उन्हें ज्ञान नहीं हुआ और वे शिवनिन्दा में रत रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने शिव से द्वेषवश एक महान् यज्ञ का आयोजन भी किया, जिसमें सभी देवताओं को तो आमन्त्रित किया; परन्तु न तो सती को बुलाया और न ही शिव को।

देवर्षि नारद शिवविहीन यज्ञ का आयोजन देखकर दक्ष के भवन से उठकर भगवान् शंकर एवं माता सती के पास कैलास चले आये और उनसे दक्षयज्ञ की बात बतायी। भगवान् शंकर ने निर्विकार भाव से कहा कि जब दक्ष ने हमलोगों को बुलाया ही नहीं है तो हमारे वहाँ जाने का क्या उद्देश्य है? उस प्रजापति दक्ष की जैसी इच्छा हो, वैसा वह करे। इस पर नारद ने सती से कहा—सुरेश्वरि! भगवान् शंकर तो परम योगी हैं, उनके लिये मान क्या और अपमान क्या? परन्तु उस अहंकारी दक्षप्रजापति को यदि आपने दण्ड नहीं दिया तो लोगों में भगवान् शिव के प्रति अनास्था का भाव उत्पन्न हो जायेगा। अत: आपका वहाँ जाना आवश्यक है। ऐसा कहकर नारद पुन: दक्षभवन के लिये चल पड़े।

नारद के प्रस्थान कर जाने के पश्चात् सती ने शिव से पिता के यज्ञ में जाने की अनुमति माँगी, इस पर शिव ने कहा कि दक्ष के यहाँ मेरी निन्दा ही होगी; अत: तुम्हारा मेरे निन्दक के यहाँ जाना उचित नहीं होगा। शिव द्वारा अनुमति न देते देखकर सती ने अपना विराट् रूप प्रकट किया और उस समय वे भगवती जगदम्बा दस महाविद्याओं से परिवृत थीं। उन्होंने सदाशिव से कहा कि मैं या तो आपको यज्ञ में भाग दिलाऊँगी; अन्यथा उस यज्ञ का ही नाश कर दूँगी। यह देख भगवान् शिव ने उन्हें जाने की अनुमति दे दी। तदनन्तर सती ने दस हजार सिंहों से युक्त स्वर्णमण्डित विशाल रथ पर आरूढ़ होकर नन्दी को उसका सारथि बनाकर दक्षभवन के लिये प्रस्थान किया।

दक्षभवन में पहुँचने पर माता प्रसूति ने तो सती का आदर-सत्कार किया; परन्तु अन्य बन्धु-बान्धवों और बहनों के भाव व्यंग्यात्मक ही रहे। इसके बाद वे देवी सती उस यज्ञमण्डप में पहुँचीं, जहाँ दक्ष देवताओं के साथ यज्ञ कर रहे थे। वहाँ शिव का भाग न देखकर सती ने क्रुद्ध होकर भयंकर महाकाली का रूप धारण कर लिया। वे श्यामवर्णा, मुक्तकेशी, दिगम्बरी और आग्नेय नेत्रों वाली हो गयीं। उन्हें इस प्रकार देखकर क्रुद्ध दक्ष ने कहा—सती! तुम मेरे यहाँ सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाली और दिव्य वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत रहती थी; परन्तु तुमने अपनी इच्छा से अयोग्य पति का वरण किया है; अत: काली और दिगम्बरी हो गयी हो।

दक्ष द्वारा शिव के प्रति ऐसे निन्दा, द्वेष और व्यंग्यपूर्ण वचनों को सुनकर क्रुद्ध होकर सती ने अपने ही समान रूप वाली छायासती को प्रादुर्भूत किया और उसे यज्ञकुण्ड में प्रवेश कर यज्ञ का नाश कर देने का आदेश देकर स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। वे देवी सती जो स्वयं आद्या शक्ति पूर्णा प्रकृति थीं, क्षणमात्र में ही करोड़ों दक्षों का संहार करने में सक्षम थीं; परन्तु पिता के गौरव की रक्षा के लिये उन्होंने उक्त आचरण किया।

शिवनिन्दा से क्रुद्ध छायासती ने दक्ष से कहा—महामूर्ख! तू शिव की निन्दा क्यों कर रहा है? शिवनिन्दक इस जिह्वा को काट डालो। दुर्बुद्धे! ऐसा प्रतीत होता हैं कि आज ही तुझे शिवनिन्दा का फल प्राप्त हो जायेगा और तेरा सिर धड़ से अलग हो जायेगा।

छायासती की इन बातों को सुनकर क्रोध से आँखें लाल कर दक्ष बोल उठे—कुपुत्री! तू मेरी आँखों से ओझल हो जा, प्रेतभूमि-निवासी शिव की पत्नी होकर तुम मेरे लिये मर गयी हो। तुझे देखने से क्रोधाग्नि में मेरा शरीर जल रहा हैं; अतः तू शीघ्र ही यहाँ से चली जा।

दक्ष के इस प्रकार के वचनों को सुनकर छायासती ने भयंकर स्वरूप धारण कर लिया; उस समय उनके तीनों नेत्र जाज्वल्यमान थे, नक्षत्रमण्डल तक ऊँचा मस्तक था और मुख अत्यन्त विशाल था। सिर से पैर तक विशाल केशराशि खुली हुई थी। वे मध्याह्न-कालीन हजारों सूर्यों की भाँति प्रकाशमान और प्रलयकारी मेघ के समान श्यामवर्ण थीं। क्रोधपूर्वक बार-बार अट्टहास करते हुये उन्होंने दक्ष से गम्भीर वाणी में कहा—मैं तुम्हारी आँखों से ही दूर नहीं जाऊँगी, बल्कि तुम्हारे द्वारा उत्पन्न इस शरीर से भी शीघ्र ही अवश्य बाहर चली जाऊँगी।

इस प्रकार कहकर वे देवी छायासती सभी देवताओं के देखते-देखते यज्ञाग्नि में प्रवेश कर गयीं। उनके ऐसा करते ही पृथ्वी काँपने लगी, भयंकर गर्जना के साथ वेगपूर्वक वायु बहने लगा, उल्कापात होने लगे और रक्त की भयंकर वर्षा होने लगी। फलतः यज्ञकुण्ड की अग्नि बुझ गयी और सभी देवता भय से पीले हो गये। सियार और कुत्ते हव्य का भक्षण करने लगे तथा यज्ञमण्डप श्मशान की भाँति हो गया; फिर भी दीर्घ श्वास लेते हुये दक्ष ने पुनः यज्ञ आरम्भ करा दिया। यह सब देखकर नारद शीघ्रतापूर्वक कैलास की ओर प्रस्थान कर गये।

नारद से यज्ञाग्नि में सती के भस्मीभूत हो जाने का समाचार पाकर भगवान् सदाशिव क्रोध और शोक से विह्वल हो उठे और उनके तीसरे नेत्र से करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्यों के समान प्रकाशमान वीरभद्र प्रकट हुये, जो कालान्तक यम के समान भयानक स्वरूप वाले थे। उन्हें भगवान् रुद्र ने दक्षयज्ञ का नाश करने और दक्ष का सिर काट लेने का आदेश दिया। उन भगवान् रुद्र के श्वास से हजारों रुद्रगणों की उत्पत्ति हो गयी। वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ में जाकर यज्ञ नष्ट कर दिया तथा दक्ष का सिर काट डाला। साथ ही अन्य देवगण जो भगवान् शम्भु की निन्दा सुन रहे थे, उन्हें भी दण्डित किया।

दक्षयज्ञ के रक्षक भगवान् विष्णु को भी वीरभद्र से पराजित होना पड़ा, उनकी कौमोदकी गदा वीरभद्र से टकराकर चूर-चूर हो गयी और सुदर्शन चक्र वीरभद्र के गले में माला की भाँति सुशोभित हो गया। खड्ग हाथ में लिये स्वयं भगवान् विष्णु भी स्तम्भित हो गये। अन्त में ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने बकरे का सिर लगाकर दक्ष को जीवित किया तथा समस्त देवताओं को स्वस्थ कर यज्ञ पूर्ण कराया।

इतना सब होने पर भी भगवान् शम्भु सती के शोक में प्राकृत पुरुष की भाँति विह्वल हो रहे थे। उनकी ऐसी दशा देखकर ब्रह्मा और विष्णु ने जगज्जननी जगदम्बा की स्तुति की। प्रसन्न हो भगवती ने अन्तरिक्ष में दर्शन देते हुये कहा—शम्भो! मैंने आपका परित्याग नहीं किया है। आप ही मुझ महाकाली के हृदयस्थान हैं। आपने पतिभाव से मेरा अनादर किया था, इसीलिये मैं कुछ समय तक पत्नीरूप में आपके साथ नहीं रह सकूँगी। महेश्वर! मेरा छायाशरीर दक्ष के यज्ञभवन

में पड़ा है, उसे आप सिर पर धारण करके सम्पूर्ण भूतल पर भ्रमण करें। मेरा वह शरीर अनेक खण्डों में विभक्त होकर पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ गिरेगा, उन-उन स्थानों पर पापों का नाश करने वाले महान् शक्तिपीठ उदित होंगे—

पूर्णा प्रकृति के इन वचनों को सुनकर भगवान् सदाशिव उन्मत्त होकर नाच उठे। उन्होंने यज्ञमण्डप में जाकर सती के छायाशरीर को देखा, जो देदीप्यमान था। उन्होंने उसे अपने सिर पर धारण कर लिया और उन्मत्त की भाँति धरणीतल पर विचरण करने लगे। वे सती के छायाशरीर को कभी सिर पर, कभी दाँयें हाथ में, कभी बाँयें हाथ में और कभी कन्धे पर रखते थे तथा कभी प्रेमपूर्वक वक्ष:स्थल पर धारण कर लेते थे। इसी प्रकार वे उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। उनके उस ताण्डवनृत्य से अकालप्रलय की स्थिति उत्पन्न हो गयी। पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग और कच्छप उनके चरणप्रहार से व्याकुल हो उठे। यह सब देखकर भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र से सती के छायाशरीर के टुकड़े करने आरम्भ कर दिये और नृत्य करते हुये शिव जब अपना पैर पटकते तो विष्णु चक्र चलाकर छायाशरीर के टुकड़े काटकर गिराते जा रहे थे। इस प्रकार छायासती के शरीर से कट-कटकर अङ्ग-प्रत्यङ्गों के धरातल पर गिरने से कुल इक्यावन शक्तिपीठ बन गये, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. सती की योनि का जिस स्थान पर पतन हुआ, वहाँ 'कामरूप' नामक पीठ बना, जो अकार का उत्पत्तिस्थान एवं श्रीविद्या से अधिष्ठित है। कौलशास्त्रानुसार यहाँ पर अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। लोभ से उत्पन्न इसके 'वंश' नामक दो उपपीठ हैं, जहाँ शाबरमन्त्रों की सिद्धि अधिगत होती है।

२. स्तनों के पतनस्थल पर कालिकापीठ बना, जहाँ से आकार उत्पन्न हुआ। यहाँ शरीरत्याग करने पर मुक्ति अधिगत होती है। सती के स्तनों से दो धारायें प्रवहमान हुईं, जो कि असी एवं वरणा नदी बनी। उस असी के तट पर 'दक्षिण सारनाथ' एवं वरणा के तट पर 'उत्तर सारनाथ' नामक दो उपपीठ हैं, जहाँ क्रमश: दक्षिण एवं उत्तरमार्ग के मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त की जाती है।

३. सती का गुह्यभाग जहाँ पर पतित हुआ, वहाँ पर नेपालपीठ बना, जहाँ से इकार की उत्पत्ति हुई। यह पीठ वाममार्ग का मूल स्थान है, जहाँ छप्पन लाख भैरव-भैरवी, दो हजार शक्तियाँ, तीन सौ पीठ एवं चौदह श्मशान सन्निहित हैं। वहाँ चार पीठ दक्षिणमार्ग के सिद्धिदायक हैं और उनमें से भी चार में वैदिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। नेपाल के पूर्व में सती के गुह्यभाग से मल का पतन हुआ; अत: वहाँ पर किरातों का निवास है और वहीं पर तीस हजार देवयोनियों का भी निवास है।

४. सती के वाम नेत्र का पतन रौद्र पर्वत पर होने से वह महत्पीठ बना और वहीं से ईकार की उत्पत्ति हुई। वामाचार से यहाँ मन्त्रसिद्धि होकर देवता का दर्शन प्राप्त होता है।

५. सती के वाम कर्ण का पतनस्थान काश्मीरपीठ बना, जो कि उकार का उत्पत्तिस्थान है। वहाँ सर्वविध मन्त्रों की सिद्धि अधिगत होती है। उस स्थान पर अनेक अद्भुत तीर्थ हैं; किन्तु कलियुग में वे सभी तीर्थ म्लेच्छों द्वारा आवृत कर दिये गये हैं।

६. सती के दक्षिण कर्ण के पतनस्थल पर कान्यकुब्ज पीठ बना, जहाँ से ऊकार की उत्पत्ति हुई। गंगा-यमुना के मध्य 'अन्तर्वेदी' नामक इस पवित्र स्थल पर ब्रह्मादि देवताओं ने अपने-अपने तीर्थों का निर्माण किया है, जहाँ वैदिक मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त होती है। साथ ही कर्ण के मल के पतनस्थान यमुनातट पर इन्द्रप्रस्थ-नामक उपपीठ बना, जिसके प्रभाववश विस्मृत वेद ब्रह्मा को पुन: अधिगत हो सके।

७. सती की नासिका का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान पूर्णगिरि पीठ कहलाया और वहीं से ऋकार की उत्पत्ति हुई। इस स्थान पर योगसिद्धि प्राप्त होती है एवं मन्त्राधिष्ठातृ देव यहाँ पर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

८. भगवती सती के वाम गण्डस्थल का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान अर्बुदाचल पीठ ॠकार का उत्पत्तिस्थल

है। 'अम्बिका' नाम की शक्ति से अधिष्ठित इस स्थान पर वाममार्ग की सिद्धि अधिगत होती है; लेकिन दक्षिणमार्ग की उपासना में यहाँ पर बहुविध विघ्न उपस्थित होते हैं।

९. सती का दक्षिण गण्डस्थल जिस स्थान पर पतित हुआ, उस आम्रातकेश्वर पीठ से ऌकार का प्रादुर्भाव हुआ; साथ ही वह स्थान धनदा आदि यक्षिणियों का निवासस्थल भी है।

१०. भगवती के नखों का पतनस्थल एकाम्रपीठ बना और वहीं से ॡकार की उत्पत्ति हुई। यह पीठ विद्याप्रदायक कहा गया है।

११. सती की त्रिवली का पतनस्थल त्रिस्रोतपीठ बना, जहाँ से एकार का उदय हुआ। साथ ही उसके पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में भगवती के तीन वस्त्रखण्ड पतित हुये, जिससे वे तीन उपपीठ बने। गृहस्थ द्विजों को पौष्टिक मन्त्रों की सिद्धि उस स्थान पर अधिगत होती है।

१२. सती की नाभि जिस स्थान पर पतित हुई, वह स्थान कामकोटिपीठ है और वहीं से ऐकार की उत्पत्ति हुई है। समस्त काममन्त्रों की सिद्धि वहाँ अधिगत होती है। उसकी चारो दिशाओं में चार उपपीठ हैं, जहाँ अप्सरायें निवास करती हैं।

१३. सती की अंगुलियों का पातस्थल ही हिमालय पर्वत का कैलासपीठ है, जहाँ से ओकार का प्राकट्य हुआ है; साथ ही वे अंगुलियाँ ही लिङ्गरूप में प्रतिष्ठित हुई हैं। उस स्थान पर मन्त्रों का करमाला द्वारा जप करने पर सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है।

१४. भगवती की दन्तपंक्तियों का पतनस्थल भृगुपीठ औकार का उत्पत्तिस्थल है, जहाँ वैदिक आदि मन्त्र सिद्धिप्रद होते हैं।

१५. सती के दक्षिण करतल का जहाँ पर पतन हुआ, वह स्थान केदारपीठ के नाम से अभिहित होता है और वहीं से अं की उत्पत्ति हुई है। उस केदारपीठ के दक्षिण में कंकण के पतनस्थान में अगस्त्याश्रम नामक सिद्ध उपपीठ है एवं उसके पश्चिम में मुद्रिका के पतनस्थान में इन्द्राक्षी नामक उपपीठ अवस्थित है; साथ ही उसके पश्चिम में वलय के पतनस्थान पर रेवतीतट पर राजराजेश्वरी उपपीठ अवस्थित है।

१६. सती के वाम गण्ड की निपातभूमि पर चन्द्रपुर पीठ बना, जहाँ से अः का प्राकट्य हुआ है। यहाँ समस्त मन्त्रों की सिद्धि अवाप्त होती है।

१७. सती के मस्तक का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान श्रीपीठ बना एवं वहीं से ककार का प्रादुर्भाव हुआ। इस स्थान पर कलियुग में पापात्माओं का प्रवेश अतीव दुर्लभ है। उसके पूर्वभाग में कर्णाभरण का पात होने से वह स्थान उपपीठ बना, जहाँ पर ब्रह्मविद्या की प्रकाशिका ब्राह्मी शक्ति का निवास है। उससे अग्निकोण में कर्णार्धाभरण के पात से दूसरा उपपीठ बना, जहाँ मुखशुद्धि करने वाली माहेश्वरी शक्ति विराजमान है। दक्षिण में पत्रवल्ली का पात होने से वह स्थान कौमारी शक्ति से समन्वित तीसरा उपपीठ बना। नैर्ऋत्य कोण में कण्ठमाल का पतन होने से ऐन्द्रजाल विद्या की सिद्धि प्रदान करने वाला वैष्णवी शक्ति से समन्वित चौथा उपपीठ बना। पश्चिम भाग में नासामौक्तिक का पात होने के कारण वह स्थान वाराही शक्ति से अधिष्ठित पाँचवाँ उपपीठ बना। वायुकोण में मस्तकाभरण के पातस्थल पर चामुण्डा शक्ति से समन्वित क्षुद्रदेवता-सिद्धिकर छठा उपपीठ निर्मित हुआ एवं ईशान कोण में केशाभरण का पात होने के फलस्वरूप महालक्ष्मी द्वारा अधिष्ठित सातवाँ उपपीठ निर्मित हुआ।

१८. उसके ऊपरी भाग में कञ्चुकी का पात होने से एक और पीठ निर्मित हुआ, जो ज्योतिर्मन्त्र का प्रकाशक होने के साथ-साथ ज्योतिष्मती द्वारा अधिष्ठित है। इसी स्थान पर खकार का प्राकट्य हुआ है। यह पीठ नर्मदा द्वारा अधिष्ठित है एवं तपस्या करने वाले महर्षियों को जीवन्मुक्ति प्रदान करने वाला है।

१९. सती के वक्ष:स्थल का जिस स्थान पर पात हुआ, वहाँ पर बने पीठ से गकार का प्रादुर्भाव हुआ। अग्नि ने उस स्थान पर तप करके देवत्व प्राप्त कर ज्वालामुखी-संज्ञक उपपीठ पर अधिष्ठान प्राप्त किया।

२०. देवी के वामस्कन्ध के पातस्थल पर मालवपीठ बना, जहाँ से घकार की उत्पत्ति हुई। उस स्थान पर तपस्या करके गन्धर्वों ने रागज्ञान के लिये सिद्धि प्राप्त की।

२१. देवी के दक्षिण कक्ष का जिस स्थान पर पात हुआ, उस स्थान पर कुलान्तक पीठ बना एवं वहीं से ङकार की उत्पत्ति हुई है। विद्वेषण, उच्चाटन, मारण के प्रयोग वहाँ पर सिद्ध होते हैं।

२२. जिस स्थान पर देवी के वाम कक्ष का पात हुआ, उस स्थान पर कोट्टकपीठ बना एवं वहीं से चकार का प्राकट्य हुआ। इस स्थान पर राक्षसों ने सिद्धि प्राप्त की है।

२३. देवी के जठरदेश का जिस स्थल पर पात हुआ, उस स्थान पर गोकर्णपीठ बना एवं वहीं से छकार का प्राकट्य हुआ।

२४. देवी की त्रिवलियों में से प्रथम वलि का जिस स्थान पर निपात हुआ, वह स्थान मातुरेश्वर पीठ बना एवं वहीं से जकार की उत्पत्ति हुई। इस स्थान पर शैव मन्त्र सिद्ध होते हैं।

२५. द्वितीय वलि का पातस्थल अट्टहासपीठ बना, जहाँ से झकार का प्रादुर्भाव हुआ एवं जहाँ पर गणेशमन्त्रों की सिद्धि अवाप्त होती है।

२६. तृतीय वलि का पातस्थल विरजपीठ के अभिधान से अभिहित हुआ, जहाँ से ञकार का प्राकट्य हुआ। यह पीठ विष्णुमन्त्रों के लिये विशेष सिद्धिप्रदायक है।

२७. देवी की वस्ति का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान राजगृह पीठ के नाम से ख्यात हुआ एवं उसी स्थान से टकार का प्रादुर्भाव हुआ। उसके नीचे क्षुद्रघण्टिका के पातस्थल पर घण्टिका नामक उपपीठ बना, जहाँ ऐन्द्रजालिक मन्त्र सिद्ध होते हैं। राजगृह में वेदार्थज्ञान की प्राप्ति होती है।

२८. सती के नितम्ब के पातस्थल पर महापथपीठ बना और उसी स्थान से ठकार का प्रादुर्भाव हुआ। जातिदुष्ट ब्राह्मणों ने वहाँ पर अपना शरीर अर्पित किया और दूसरे जन्म में कलियुग में शरीर-सौख्यदायक वेदमार्ग-प्रलुम्पक अघोरादि मार्ग का प्रचलन किया।

२९. देवी के जघन का जिस स्थल पर पात हुआ, उस कौलगिरिपीठ से डकार की उत्पत्ति हुई। उस स्थान पर वनदेवताओं के मन्त्र की शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

३०. सती के दक्षिण ऊरु के पातस्थल पर बने एलापुरपीठ से ढकार का प्राकट्य हुआ है।

३१. देवी के वाम ऊरु का पातस्थल महाकालेश्वर पीठ कहलाया और वहीं से णकार का प्रादुर्भाव हुआ। इस स्थान पर आयु की वृद्धि करने वाले मृत्युञ्जय आदि मन्त्र सिद्ध होते हैं।

३२. सती के दक्षिण जानु के पातस्थल पर जयन्तीपीठ बना और वहीं से तकार की उत्पत्ति हुई। उस स्थान पर धनुर्वेद की सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है।

३३. देवी का वाम जानु जिस स्थान पर पतित हुआ, वह स्थान उज्जयिनी पीठ कहलाया और वहीं से थकार का प्रादुर्भाव हुआ। उस स्थान पर कवचमन्त्रों की सिद्धि होकर रक्षण प्राप्त होता है, इसी कारण उसका अन्य अभिधान 'अवन्ती' भी है।

३४. सती के दक्षिण जंघा का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान योगिनीपीठ बना और उसी स्थान से दकार की उत्पत्ति हुई। उस स्थान पर कौलिक मन्त्रों की सिद्धि हस्तगत होती है।

३५. देवी के वाम जंघा का जिस स्थान पर पतन हुआ, वह स्थान क्षीरिकापीठ बना एवं वहीं से धकार की उद्भावना हुई। इस स्थान पर वैतालिक एवं शाबर मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त होती है।

३६. देवी सती के दक्षिण गुल्फ का जिस स्थान पर पात हुआ, वह स्थान हस्तिनापुर पीठ के नाम से ख्यात हुआ एवं उसी स्थान से नकार की उत्पत्ति हुई। वहीं पर नूपुर का भी पात होने के कारण नूपुरार्णव-संज्ञक उपपीठ बना, जहाँ सूर्यमन्त्र सिद्ध किये जाते हैं।

३७. सती के वाम गुल्फ का पातस्थल उड्डीशपीठ के अभिधान से अभिहित हुआ, जहाँ से पकार का प्रादुर्भाव हुआ। उड्डीशाख्य महातन्त्र की सिद्धि इस स्थान पर बवाप्त होती है; साथ ही उसी जगह जिस स्थान पर दूसरे नूपुर का पात हुआ, वह स्थान डामर उपपीठ के अभिधान से अभिहित हुआ।

३८. देवी के शरीररस का पातस्थल प्रयागपीठ कहलाया और वहीं से फकार का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ की मिट्टी श्वेत वर्ण वाली दिखाई देती है। वहीं पर अन्यान्य अस्थियों का पात होने के फलस्वरूप अनेक उपपीठों का भी प्रदुर्भाव हुआ। गंगा के पूर्व में बगला उपपीठ एवं उत्तर में चामुण्डा उपपीठ, गंगा-यमुना के मध्य में राजराजेश्वरी-संज्ञक उपपीठ एवं यमुना के दक्षिण तट पर भुवनेशी-संज्ञक उपपीठ बने। इसी कारण शास्त्रों में प्रयाग को 'तीर्थराज' एवं 'पीठराज' अभिधान से अभिहित किया गया है।

३९. देवी के दक्षिण पृष्णि के पातस्थल पर षष्ठीशपीठ बना एवं वहीं से बकार का प्राकट्य हुआ। यहाँ पर पादुकामन्त्र की सिद्धि हस्तगत होती है।

४०. देवी के वाम पृष्णि के पातस्थल पर मायापुर पीठ बना, जहाँ से भकार का प्रादुर्भाव हुआ। इस स्थान पर समस्त मायाओं की सिद्धि अवाप्त होती है।

४१. देवीशरीर के रक्त के पातस्थल पर मलयपीठ बना, जहाँ से मकार की उत्पत्ति हुई है। रक्ताम्बरादिक बौद्धों के मन्त्र इस स्थान पर सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

४२. पित्त का पातस्थल श्रीशैलपीठ बना, जहाँ से यकार का प्रादुर्भाव हुआ। इस स्थान पर वैष्णवमन्त्र विशेष रूप से सिद्ध होते हैं।

४३. मेद का पातस्थल हिमालय-स्थित मेरुपीठ बना, जहाँ से रकार की उद्भावना हुई है। यहाँ पर स्वर्णाकर्षण भैरव की सिद्धि प्राप्त होती है।

४४. जिह्वाग्र का जिस स्थल पर पात हुआ, वहाँ पर गिरिपीठ बना और वहीं से लकार की उत्पत्ति हुई। इस स्थान पर जप करने से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।

४५. मज्जा का जिस स्थल पर पात हुआ, वह स्थल माहेन्द्रपीठ बना और वही वकार का प्रादुर्भाव-स्थल भी है। यहाँ पर शाक्तमन्त्रों का जप करने पर अवश्य ही सिद्धि की प्राप्ति होती है।

४६. देवी के दक्षिण अंगुष्ठ का पातस्थल वामनपीठ के नाम से ख्यात हुआ एवं वहीं से शकार की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर समस्त मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त होती है।

४७. देवी के वाम अंगुष्ठ का पातस्थल हिरण्यपुर पीठ बना एवं वहीं से षकार की उत्पत्ति हुई। इस स्थान पर वाममार्ग से सिद्धिलाभ किया जाता है।

४८. देवी की रुचि (शोभा) के पातस्थान पर महालक्ष्मीपीठ बना और वहीं से सकार का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ समस्त सिद्धियाँ अधिगत होती हैं।

४९. देवी की धमनी का जिस स्थान पर पतन हुआ, वह स्थान अत्रिपीठ बना एवं उसी स्थान से हकार की उत्पत्ति हुई। वहाँ यावत् सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

५०. देवी की छाया के सम्पातस्थल पर छायापीठ बना एवं वहीं से ळकार की उद्भावना हुई।

५१. देवी के केशपाश जिस स्थान पर पतित हुये, उस स्थान पर क्षत्रपीठ का प्रादुर्भाव हुआ एवं वही स्थान क्षकार का उद्गमस्थान भी है। इस स्थान पर समस्त सिद्धियाँ शीघ्रतापूर्वक प्राप्त होती हैं।

वर्णमालायें—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः; क ख ग घ ङ; च छ ज झ ञ; ट ठ ड ढ ण; त थ द ध न; प फ ब भ म; य र ल व श ष स ह ळ क्ष—इसी को इक्यावन अक्षर की वर्णमाला के नाम से जाना जाता है। इसका अन्तिम अक्षर 'क्ष' अक्षमाला का सुमेरु होता है। इसी माला के आधार पर सती के भिन्न-भिन्न अंगों का पात हुआ है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि इतनी भूमि साक्षात् वर्णसमाम्नाय-स्वरूप ही है। भिन्न-भिन्न वर्णों की शक्तियाँ और देवता भिन्न-भिन्न हैं; इसीलिये उन-उन वर्णों, पीठों, शक्तियों और देवताओं का परस्पर सम्बन्ध है, जिसके ज्ञान और अनुष्ठान से साधक को अतिशीघ्र सिद्धि हस्तगत होती है।

प्रकृत ग्रन्थ देवीपुराण में यद्यपि शक्तिपीठों के उद्भव का वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता; फिर भी कतिपय शक्तिपीठों का वर्णन उपलब्ध होता है, जो इस प्रकार हैं—विन्ध्याचल, हेमकूट, महेन्द्र, हिमगिरि, सह्य पर्वत, श्रीगिरि, गंगा, नर्मदा, उज्जयिनी, निषध, द्रोणाचल, अर्बुद, मलय-विन्ध्य क्षेत्र, कुरूक्षेत्र, समुद्रतट, किष्किन्धा, कुशस्थली, जालन्धर, कोल पर्वत, गन्धमादन, विदेह, पुष्कर, नैमिष, काशिकाश्रम, वेदपर्वत, कामाख्या, सरस्वतीतट, पूर्वसिन्धु, लंका, कैलास, कण्वाश्रम, धर्मारण्य, कावेरीसंगम, कोटितीर्थ, शकद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, मुण्डिपीठ, विदिशा, वरेन्द्र, राधा, कौशल, भोटदेश (तिब्बत), हस्तिनापुर, काञ्ची, कोलु, चित्रगोप, नारकाल, नीचाख्य पर्वत, उड्रदेश, स्त्रीराज्य (आसाम), चम्पा, कान्यकुब्ज, उड्डीयान, मनाक्ष, सिंहल, जम्बुकनाथ, अयोध्या, महोदय, तीरभुक्ति, अंग, वंग, समतट, वर्धमान, नेपाल, काश्मीर, गंगासागर संगम, कापोततीर्थ, नन्दातीर्थ, नन्दापुरी, त्रिकूट, रामेश्वर, अमरेश्वर तीर्थ, हरिश्चन्द्र तीर्थ, यमुना, वेत्रवती, रेवती, सुनन्दातीर्थ, कन्यकापुर, गया, प्रयाग, केदार, दण्डकारण्य, अमरकण्टक, सोमेश्वर, नगर, पुर, खेट, गृह, भवन, मन्दिर, चतुष्पथ आदि।

देवीपुराण

प्रकृत देवीपुराण प्राचीन एवं प्रमुखतम शाक्त उपपुराणों में अन्यतम है। इसमें प्रमुख रूप से सिंहवाहिनी देवी के अवतार एवं उनकी लीलाओं का वर्णन किया गया है। इस उपपुराण के अध्ययन से हमें देवी के स्वरूप, योगविधान व साधना, देवी की प्रतिमा-लक्षण एवं शाक्त पूजाविधान के अनेकानेक विषयों पर बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। यह पुराण नगरनिर्माण एवं दुर्गस्थापत्य कला, औषधविज्ञान, तीर्थों, नगरों एवं देशों के बारे में बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध कराता है। शाक्त पूजा के सम्बन्ध में इस पुराण को प्रमुखतम स्थान दिया गया है। बंगाल और आसाम के प्राचीन एवं मध्ययुगीन शाक्तपूजा के सम्बन्ध में यह एक प्रामाणिक शास्त्र माना जाता है। प्रायः धर्मशास्त्र के सभी निबन्धकारों ने निबन्धरचना के क्रम में इस पुराण से प्रचुर सामग्री अवाप्त की है।

इस पुराण में देवी को एक ओर तो योगनिद्रा एवं आद्या परा शक्ति कहा गया है; लेकिन दूसरी ओर उसी को उमा के रूप में शिव की पत्नी एवं महाशक्तियों, मातृकाओं एवं अन्य स्त्रीदेवताओं, दाक्षायणी, काली, चण्डी आदि के रूप में वर्णित किया गया है। इन सभी का वर्णन देवी का ही विभिन्न स्वरूप मान कर किया गया है। इस पुराण में देवी के विभिन्न अवतारों, उसके मूल स्वरूप, शिव एवं शिवपरिवार के साथ सम्बन्ध, अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध, वैष्णव, शैव, ब्राह्म, गाणपत्य आदि अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के विषय में भी अमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। युद्धविद्या, दुर्गरक्षा

के उपाय, लेखनकला, लेखनसामग्री, लेखक के गुण एवं उसका पारिश्रमिक, विभिन्न वस्तुओं का दान, अनेक तत्कालीन लोकाचार एवं प्रयोग तथा भारत के तीर्थस्थल—इन सभी विषयों पर प्रभूत सामग्री प्रकृत उपपुराण में सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

देवीपुराण एक बहुत ही प्राचीन (लगभग पञ्चम शताब्दी ई०) उपपुराण है; विषयवस्तु एवं निबन्धकारों द्वारा प्रामाणिकता के कारण इसका महत्त्व यद्यपि और भी अधिक बढ़ गया है; परन्तु फिर भी अभी तक इसका कोई प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं होता।

तपोभूमि भारत में देवीपूजा का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। सिन्धु-सभ्यता के अवशेषों एवं वैदिक संहिताओं में भी इसके अनेकविध प्रमाण उपलब्ध होते हैं। परन्तु एक ब्रह्मस्वरूपा देवी का विकास, जिससे सभी देवियाँ प्रादुर्भूत होती हैं, परवर्ती काल की देन है। देवीसम्बन्धी पुराण और उपपुराण भी अतीव अर्वाचीन माने जाते हैं। प्राचीन महापुराणों में यद्यपि देवी के माहात्म्य, व्रत एवं उत्सव आदि के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है; परन्तु स्वतन्त्र रूप से ये कृतियाँ शाक्त मत का प्रतिपादन नहीं करतीं। परवर्ती काल में ही देवीपुराण, कालिकापुराण, महाभागवत एवं देवीभागवत आदि उपपुराण लिखे गये, जिनमें मुख्य रूप से देवी के स्वरूपों का वर्णन, महोत्सव, पीठ, व्रत आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में किसी एक देवी को मुख्य मानकर शेष रूपों का अवताररूप में वर्णन किया जाता है। ये पुराण शाक्तमत एवं उसके प्रचार-प्रसार का विस्तार से वर्णन करते हैं।

देवीपुराण का वर्ण्य विषय—वर्तमान देवीपुराण में कुल एक सौ अट्ठाईस अध्याय हैं; जबकि कई पाण्डुलिपियों में एक सौ अड़तीस अध्याय का वर्णन मिलता है; परन्तु विषयवस्तु एवं श्लोकसंख्या की दृष्टि से ये सभी पाण्डुलिपियाँ समान ही प्रतीत होती हैं। इस पुराण का प्रारम्भ बड़े ही विचित्र ढंग से होता है एवं विना किसी भूमिका के ही देवीनमस्कार के अनन्तर पुराण प्रारम्भ कर दिया गया है। ऐसी सूचना दी गई है कि महामुनि वशिष्ठ ऋषियों में पूछे जाने पर इस पुराण का प्रवचन करते हैं। महामुनि वशिष्ठ ने इस पुराण को चार भागों में विभाजित किया है—

१. प्रथम पाद—त्रैलोक्यविजय पाद में देवी का उद्भव एवं सृष्टि के विकास का वर्णन किया गया है।

२. द्वितीय पाद—त्रैलोक्याभ्युदय पाद में देवराज इन्द्र की कथा, दुन्दुभि का वध, घोरासुर का अभ्युदय एवं विन्ध्याचल में देवी का अवतरण और उसके विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है।

३. तृतीय पाद—इस पाद का अभिधान शुम्भ-निशुम्भमथन है अर्थात् दोनों असुर भाइयों का देवी द्वारा विनाश का वर्णन इस पाद में किया गया है।

४. चतुर्थ पाद—इस पाद का कोई अभिधान प्राप्त नहीं होता। इसमें अन्धकासुर के साथ युद्ध, देवासुर संग्राम और तारकासुर का कार्त्तिकेय के साथ युद्ध, उमा और काली की उद्भव कथा एवं मातृकाओं का वर्णन किया गया है। कुमार का जन्म, शंकर की आराधना, उमा द्वारा पति की प्राप्ति, ग्रहयाग आदि विषय भी इसी पाद में वर्णित हैं।

कतिपय विद्वानों के मत में वर्त्तमान देवीपुराण सम्पूर्ण नहीं है; यत: प्रतीत होता है कि प्रकृत पुराण में प्राय: द्वितीय पाद की विषयवस्तु ही वर्णित है। शेष तृतीय और चतुर्थ पाद की सामग्री कहीं और बिखरी पड़ी होगी या कभी इस पुराण का अंग रही होगी; परन्तु ऐसी धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती; यत: प्रकृत ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में ही ऋषियों ने कतिपय प्रश्न किये हैं, जिनमें उन्होंने देवीपुराण से सम्बद्ध विषयों पर प्रकाश डालने की प्रार्थना की है। इस क्रम में जिन विषयों का परिगणन किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

१. घोरादि दानवों की कथा एवं विनाश। देवी की महिमा।

२. इन्द्र के पराजित होने पर स्वर्ग पुनः प्राप्त करने का उपाय एवं सफलता।
३. देवी का विन्ध्य में अवतरण और उसके साठ रूपों का विवरण।
४. मातृकाओं की उत्पत्ति और रुरु दैत्य का वध।
५. अग्निस्थापना एवं अग्निभेद आदि।
६. वसुधारा हवन की विधि।
७. देवताओं की स्थापना, मन्दिरनिर्माण-विधि।
८. राम द्वारा महामायासुर का वध।
९. अनेक देवी-देवताओं के स्तोत्र।
१०. रथयात्रा महोत्सव का संयोजन एवं विधान।
११. खट्वासुर का वध।
१२. विघ्नासुर का वध और विनायक की उत्पत्ति।
१३. विभिन्न यागों द्वारा ग्रहशान्ति।
१४. पुष्पों से अभिषेक।
१५. दुर्गनिर्माण और रक्षा के उपाय।
१६. वर्णाश्रम धर्म एवं सदाचार-पालन।
१७. देवीपूजा एवं राजा हरिश्चन्द्र आदि भक्तों की रक्षा।
१८. आयुर्वेद का निर्देश।
१९. वैदिक यज्ञों का विधि-विधान और फल।
२०. पदमाला विद्या का माहात्म्य और विधान।
२१. कालसंख्या या कालविभाजन।
२२. ध्वजदान आदि उत्सवों का विधान।

इस विषयक्रम पर दृष्टिपात करने के अनन्तर देवीपुराण की वर्ण्य सामग्री पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि मुख्य रूप से इसी विषयवस्तु का वर्णन देवीपुराण में उपलब्ध होता है एवं इसके अतिरिक्त कई अन्य विषय भी आनुषंगिक रूप से वर्णित किये गये हैं।

प्रकृत देवीपुराण में देवी के अनेकानेक अभिधान उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं—देवी, उमा, दुर्गा, आद्या शक्ति, शिवा देवी, विन्ध्यवासिनी, चामुण्डा, शक्ति, परा शक्ति, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, शाकम्भरी, गौरी, कात्यायनी, कौशिकी, भद्रकाली, पार्वती, नारायणी, भीमा, धूम्रा, अम्बिका, योगनिद्रा, लक्ष्मी, चण्डी, दाक्षायणी, कैटभेश्वरी, कुमारी, कपालिनी, काली, महिषासुरमर्दिनी, चर्चिका, रौद्री, नन्दा, भवानी, तारा, एकानंशा, कालरात्रि, भैरवी, नवदुर्गा, मातृका, क्षेमङ्करी, मंगला, सर्वमंगला, ब्राह्मी, शाक्री, कौमारी, वैष्णवी, महालक्ष्मी, श्वेता, महाश्वेता, योगेश्वरी, मूलप्रकृति इत्यादि।

देवीपुराण का प्रकृत संस्करण

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इस उपपुराण में देवी की उपासना का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इस अतिशय महत्त्वपूर्ण उपपुराण में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, सामाजिक जीवन, राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ धार्मिक स्थिति का भी सजीव चित्रण प्राप्त होता है; फिर भी यह अतिशय अष्टप्रद है कि इस ग्रन्थ का कोई भी प्रामाणिक

एवं शुद्ध संस्करण अद्यावधि अप्राप्त है। इसका लोकभाषा में अनुवाद करने की तो सम्भवत: किसी विद्वान् ने आवश्यकता ही नहीं समझी। अस्तु; चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के स्वनामधन्य स्वत्त्वाधिकारी एवं संस्कृत साहित्य को अपने निरन्तर सत्प्रयास के द्वारा सर्वजन-सुलभ कराने में अग्रणी श्री नवनीत दास जी गुप्त के मनोयोग का ही परिणाम है कि हिन्दी भाषान्तर से समन्वित यह संस्करण मूर्त्त स्वरूप ग्रहण कर सका है। आशा एवं विश्वास है कि श्री गुप्त संस्कृत भाषा में निबद्ध अमूल्य भाण्डागार को एवमेव भाषाटीका से समन्वित कराते हुये सर्वजनसुलभ कराने के सत्प्रयास में रत रहेंगे।

एस० एन० खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणी

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रथमोऽध्यायः	**१**
वशिष्ठ द्वारा देवी-वर्णन, देवीपुराण-परिचय, देवी के साठ अवतार, पुराण के विभिन्न विषय, प्रथम पाद त्रैलोक्यविजय, द्वितीय पाद त्रैलोक्याभ्युदय, तृतीय पाद शुम्भ-निशुम्भमथन एवं चतुर्थ पाद देवासुर युद्ध।	
द्वितीयोऽध्यायः	**६**
कामिका विद्या की प्रशंसा व उपदेश, घोर द्वारा विष्णु की तपस्या एवं वरप्राप्ति, दिग्विजय के लिये प्रस्थान।	
तृतीयोऽध्यायः	**१३**
घोरासुर द्वारा पृथिवी-विजय, वज्रदण्ड द्वारा पाताल एवं नागलोक आदि पर विजय एवं शुक्राचार्य की शिष्यता-ग्रहण।	
चतुर्थोऽध्यायः	**१६**
शुक्राचार्य की असहमति व्यक्त करने पर भी काल एवं वज्रदण्ड द्वारा स्वर्ग पर आक्रमण, इन्द्र का विष्णु की शरण में गमन।	
पञ्चमोऽध्यायः	**२३**
बृहस्पति द्वारा धर्म-नीति का उपदेश, नारद का वज्रदण्ड के पास गमन, विष्णु एवं बृहस्पति का ब्रह्मलोक-गमन।	
षष्ठोऽध्यायः	**२५**
ब्रह्मा द्वारा विष्णु का स्तवन, दस अवतारों का वर्णन, विष्णु द्वारा चामुण्डा की स्तुति एवं चामुण्डा द्वारा सहायता का वचन।	
सप्तमोऽध्यायः	**२९**
ब्रह्मा और विष्णु का शिव की शरण में जाना एवं स्तुति, शिव द्वारा देवी का विन्ध्याचल में अवतार-वर्णन एवं देवीमहिमा का वर्णन।	
अष्टमोऽध्यायः	**३६**
नारद का कुशद्वीप-गमन एवं राजा वज्रदण्ड और उसकी रानियों को धर्मपथ से विमुख कराना, विन्ध्याचल में सुन्दर कन्या के विषय में वर्णन।	
नवमोऽध्यायः	**४१**
पदमालिनी मन्त्रविद्या का वर्णन, घोर का धर्मविमुख होना और उसकी रानी द्वारा उसे सद्बुद्धि प्रदान करना।	
दशमोऽध्यायः	**५०**
सनत्कुमारों द्वारा नारद को पदमाला विद्या का उपदेश, शैव योग का विशद वर्णन।	
एकादशोऽध्यायः	**६१**
शिव द्वारा ब्रह्मा को उपदेश, अपराजिता विद्या का माहात्म्य एवं प्रसार, विष्णु द्वारा इन्द्र को ध्वज-प्रदान।	
द्वादशोऽध्यायः	**६६**
इन्द्रध्वज बनाने की विधि एवं उसकी सामग्री का वर्णन, राजाओं द्वारा इन्द्रध्वज महोत्सव का मनाया जाना।	
त्रयोदशोऽध्यायः	**७१**
नारद द्वारा घोर और उसकी रानी को धर्म-विमुख बनाया जाना, रानी की दिगम्बर मत के प्रति अनुरक्ति, पर्वतकन्या का उपभोग करने के लिये घोर द्वारा सेनासहित प्रस्थान, विन्ध्य-वर्णन, घोर द्वारा देवी का दर्शन एवं दुःस्वप्न-दर्शन।	
चतुर्दशोऽध्यायः	**७८**
असुरों का जया देवी और विजया देवी से युद्ध, काल एवं भैरव आदि दैत्यों का वध।	
पञ्चदशोऽध्यायः	**८१**
इन्द्र द्वारा जया की स्तुति, जया का वज्रदण्ड के साथ युद्ध एवं उसका वध।	

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
षोडशोऽध्यायः — घोर द्वारा देवी के साथ युद्ध, नारद द्वारा देवी की स्तुति, देवी के चालीस विभिन्न नाम, देवी द्वारा अवतार लेने का वचन एवं घोरवध की प्रतिज्ञा।	८३
सप्तदशोऽध्यायः — शिव द्वारा देवी की स्तुति, सप्तमातृकाओं का वर्णन, देवी का पर्वतों पर निवास।	८६
अष्टादशोऽध्यायः — देवी द्वारा राक्षसों के साथ युद्ध एवं सुषेण का वध।	९२
एकोनविंशोऽध्यायः — जया, अजिता और अपराजिता देवियों द्वारा राक्षसों का वध।	९३
विंशोऽध्यायः — भाग्य की महिमा, घोर का महिष रूप-धारण तथा देवी द्वारा महिषासुर और उसके साथियों का वध।	९४
एकविंशोऽध्यायः — महिषवध के अनन्तर देवताओं द्वारा देवी का स्तवन, देवीपूजा का माहात्म्य, महाष्टमी एवं महानवमी का विस्तृत वर्णन।	९८
द्वाविंशोऽध्यायः — महानवमी के दिन देवी-पूजाविधान, होम, शिवपूजा, देवी-रथयात्रा महोत्सव।	९९
त्रयोविंशोऽध्यायः — आश्विन नवरात्रों में देवीपूजा फल-वर्णन, देवी के ध्वज पर पशु-पक्षियों का चित्रण।	१०१
चतुर्विंशोऽध्यायः — अनेक संक्रान्तियों का वर्णन तथा पूजा करने का फल; द्विजाति, चाण्डाल, और चोरों आदि द्वारा पूजन-विधान।	१०३
पञ्चविंशोऽध्यायः — वसुधारादान का फल और देवी-हवन।	१०६
षड्विंशोऽध्यायः — देवी का होमविधान, कुण्ड-निर्माण, नक्षत्रहवन, लोकपाल-हवन, मुद्रामन्त्र, हृदयमन्त्र आदि का वर्णन, अग्निप्रशंसा, ब्राह्मणभोजन और कन्यापूजन आदि।	१०७
सप्तविंशोऽध्यायः — अग्नि की लपटों द्वारा साधक का हिताहित विचार, विभिन्न अवसरों पर वसुधारा-दानविधि और फल।	१११
अष्टाविंशोऽध्यायः — मन्दिरों, पर्वतशिखरों आदि पर देवीपूजा का फल, देवी-माहात्म्य के पाठ का फल।	११४
एकोनत्रिंशोऽध्यायः — दृश्य जगत् की उत्पत्ति, देवताओं, मन्त्रों, तन्त्रों, मुद्रा आदि का परा शक्ति से प्रादुर्भाव।	११५
त्रिंशोऽध्यायः — देवी-प्रतिमा का निर्माण एवं उसकी विभिन्न प्रकार की सामग्री का वर्णन।	११६
एकत्रिंशोऽध्यायः — रथयात्रा-महोत्सव का विधान, महिलाओं द्वारा मंगलगान, महोत्सव के अवसर पर बन्दियों को क्षमादान।	११८
द्वात्रिंशोऽध्यायः — विभिन्न स्थानों एवं तिथियों में देवीपूजा का फल, देवी-पीठों का वर्णन, देवी प्रतिमालक्षण एवं निर्माणविधि, ब्राह्मणों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा, मातृमण्डल, भूततन्त्र, ग्रहविद्या एवं गरुडविद्या का वर्णन।	१२०
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः — शुक्र द्वारा शिव की स्तुति, शिव की पूजा का माहात्म्य, दुर्गाव्रत का वर्णन, देवी के विभिन्न नामों का स्मरण।	१२४
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः — देवीमन्दिर को सजाने की विधि एवं फल, देवीशास्त्र में पारंगत व्यक्तियों का समादर।	१३६
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः — ध्वजनिर्माण-विधि एवं देवीमन्दिर की सजावट, ध्वजदान महोत्सव का विधान।	१३७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
षट्त्रिंशोऽध्यायः — शिव द्वारा देवी का स्तवन।	१४०
सप्तत्रिंशोऽध्यायः — देवी के विभिन्न नामों का निर्वचन, प्राय पचास नामों का उल्लेख, देवी का एकत्व।	१४३
अष्टत्रिंशोऽध्यायः — देवी के विभिन्न स्वरूपों एवं देवीपीठों का वर्णन।	१५१
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः — देवी के विभिन्न पीठों का विशद वर्णन, मन्त्रविद्या का माहात्म्य, सुवल एवं दुन्दुभि का वध, देवी क्षेमंकरी का प्रादुर्भाव, मत्स्य-मांस-मदिरा आदि का क्षेमंकरी देवी के पूजन में उपयोग, सम्पत्ति-पत्नी एवं आत्मा का दान, चौंसठ विद्याओं की प्रशंसा।	१५२
चत्वारिंशोऽध्यायः — देवी द्वारा उग्रसेन राक्षस का वध।	१६६
एकचत्वारिंशोऽध्यायः — महाधर्मासुर का देवताओं के साथ युद्ध एवं देवी द्वारा उसका वध।	१६८
द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः — देवताओं द्वारा देवी की प्रशंसा, जालन्धर-मलय-सह्य-विन्ध्य-हिमालय-उड्रदेश-कामरूप-नरेन्द्र-कान्यकुब्ज आदि स्थानों का वर्णन।	१६९
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः — पुष्पक विद्या की प्रशंसा; अमयासुर की कथा, गजानन द्वारा अमयासुर का वध, युद्धविद्या एवं विभिन्न व्यूहों का विशद वर्णन।	१७०
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः — गजानन द्वारा मालव्य पर्वत पर प्रस्थान, परशुराम द्वारा अयोध्या में कालिका की स्थापना, महोदय क्षेत्र में नवदुर्गा पूजा का माहात्म्य, देवी के अनेक नामों का वर्णन।	१७६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः — नक्षत्रपूजा के लिये शुभ दिन एवं स्कन्द-सूर्य-विष्णु-विनायक और उमा आदि देवी-देवताओं की पूजा के लिये शुभ दिन का चयन, पूजा-विधान।	१७७
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः — देवी से संसार की उत्पत्ति, देवताओं का प्रादुर्भाव, नक्षत्रों का भारत के विभिन्न प्रदेशों पर प्रभाव।	१७९
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः — कालविभाजन, नक्षत्रों के नाम एवं उनकी स्थिति, सात लोकों के नाम और उनके अधिष्ठातृ देवता।	१८६
अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः — पूर्णिमा और अमावस्या का विचार, अमावस्या के दिन चन्द्रमा का वर्णन।	१८८
एकोनपञ्चाशोऽध्यायः — सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण का वर्णन।	१९०
पञ्चाशोऽध्यायः — देवी के सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक रूपों का विभाजन और वर्णन, देवी की प्रतिमाओं का वर्णन एवं मान, उनकी निर्माणविधि और पूजा, देवी के साठ स्वरूपों का वर्णन एवं अन्य देवताओं का वर्णन।	१९३
एकपञ्चाशोऽध्यायः — देवीशास्त्र-निष्णात व्यक्ति देवीपूजा कराने में समर्थ, देवीपूजक को शिव-सूर्य-ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं की पूजा करना आवश्यक, पूजापात्रों का चयन।	२१८
द्वापञ्चाशोऽध्यायः — आदित्ययाग का विधान।	२२०
त्रिपञ्चाशोऽध्यायः — ग्रहयाग का विधान एवं फल।	२२१
चतुःपञ्चाशोऽध्यायः — मातृयाग एवं ग्रहयाग का माहात्म्य और विधान।	२२२
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः — विभिन्न प्रकार के उत्पातों का वर्णन, मातृकापूजन,	२२४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

ग्रहपूजन, सूर्यपूजन, लक्षहोम, कोटिहोम एवं दान आदि द्वारा उत्पातों के दुष्प्रभाव का शमन।

षट्पञ्चाशोऽध्यायः **२२७**

हवन करने के विविध प्रकारों का वर्णन।

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः **२३१**

देवी के स्वरूप का वर्णन, अनेक देवताओं के साथ पूजा, शिव और देवी के ऐकात्म्य की स्थापना।

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः **२३३**

भाग्य नामक राजा द्वारा द्वादशी के दिन विष्णुपूजन और उमा-महेश्वरपूजन एवं इसके फलस्वरूप वैभव की प्राप्ति।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः **२३५**

विभिन्न मासों में देवीपूजा का फल, आश्विन नवरात्रों में देवी-रथयात्रा महोत्सव, दीप-दान आदि का वर्णन।

षष्टितमोऽध्यायः **२३८**

वृषोत्सर्ग एवं गो-विवाह का विधान और फल, जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करने का फल, उमा-शंकर, हरि-हर, अर्धनारीश्वर आदि का पूजन।

एकषष्टितमोऽध्यायः **२४०**

ब्रह्मा, शिव, देवी, अग्नि आदि के पूजन के लिये उपयुक्त तिथि-निर्वाचन, उमा-महेश्वर का दोलापूजन।

द्विषष्टितमोऽध्यायः **२४२**

नाना प्रकार के पुष्पों से शिवपूजन का फल।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः **२४३**

शिव के मान्य तीर्थों का वर्णन और शिव के अड़सठ नामों का वर्णन।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः **२४४**

गोरत्न व्रत का विधान, गाय एवं बैल को अलंकृत करके शिवभक्त को दान।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः **२४५**

शिव एवं उमा की शुक्ल तृतीया की पूजा, शिव-उमा का चित्रनिर्माण, गुग्गुलव्रत, राजा का पुष्यस्नान, स्वप्नों के शुभ एवं अशुभ फल, कमल में मण्डल-निर्माण, मण्डल में मूर्ति-प्रतिष्ठा, मद्य एवं मांस का पूजा में प्रयोग।

षट्षष्टितमोऽध्यायः **२५२**

पुष्यस्नान का माहात्म्य, कलश की उत्पत्ति का वर्णन, सात समुद्रों, द्वीपों, नक्षत्रों एवं ग्रहों का वर्णन, पवित्र तीर्थों का वर्णन।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः **२५५**

कलश मे शुभ पदार्थों को रखना, सिंहासन सजाना, राजा का ब्राह्मणों द्वारा अभिषेक, देवी-देवताओं की पूजा, ब्राह्मणों दीनों एवं कन्याओं को दान और बन्दियों को क्षमादान।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः **२६०**

विशिष्ट स्थानों पर स्नान का माहात्म्य, मन्त्रसिद्धि के उपयुक्त स्थान, मण्डल बनाने के लिये उपयुक्त स्थान।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः **२६२**

विनायक याग का विधान, गणयाग-सूर्यपूजा और अम्बिकापूजा का विधान।

सप्ततितमोऽध्यायः **२६३**

रक्षामन्त्र या विनायक कवच का वर्णन और उसको धारण करने का फल।

एकसप्ततितमोऽध्यायः **२६४**

रक्षामन्त्र की शक्ति, विभिन देवताओं के रक्षाबीज एवं उनकी पूजा, मधुसूदन के नाम में चतुर्व्यूह का वर्णन।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः **२६५**

दुर्गनिर्माण-विधि, भूमिनिर्वाचन तथा अनेक पारिभाषिक शब्द, दुर्ग में देवीपूजन, नगरनिर्माण-विधि, सिंहमार्ग, राजपथ, रथ्या आदि मार्गों की निर्माण-विधि।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः **२७७**

अधोदुर्ग, कृत्रिम दुर्ग की निर्माण-विधि, दुर्गों में विभिन्न प्रकार के लोगों का निवासस्थान, निर्माण के लिये शुभ मुहूर्त एवं शिव-दुर्गा-मातृकाओं और विनायक की पूजा।

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ग्रहणकाल में एवं पुण्य समय में पवित्र माने जाने वाले नदियों, स्थानों और जंगलों के नाम।	२८१
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः वसुधाराहोम, दान एवं पवित्र स्थानों, पर्वतों और नदियों के नामों का वर्णन।	२८४
षट्सप्ततितमोऽध्यायः कतिपय पवित्र स्थानों के नाम, कापोत तीर्थ का माहात्म्य, शिवलिंग, देवी, सूर्य आदि देवताओं को कुण्डस्नान कराने से फल-प्राप्ति, युद्ध में पतित होकर मृत कबूतर की कथा।	२८५
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः कापोत कुण्ड की प्रशंसा, तान्त्रिक मन्त्रों एवं मुद्राओं द्वारा देवी की पूजा, देवी-सम्बन्धी सोलह मुद्राओं का वर्णन।	२८९
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः कृष्णाष्टमी व्रत का विधान, रात्रिव्रत और शिव की पूजा।	२९२
एकोनाशीतितमोऽध्यायः देवी के बारह स्वरूपों की पूजा का विधान एवं फल; उमा-महेश्वरव्रत, विष्णु-शंकरव्रत, लक्ष्मी-पर्णाव्रत, ब्रह्मसावित्री व्रत एवं चन्द्ररोहिणी व्रत का विधान-वर्णन, देवीमन्दिर की सफाई करने का फल, रानी कुंकुमा की कथा एवं उसका पुनर्जन्म।	२९४
अशीतितमोऽध्यायः देवी की हर वस्तु में व्यापकता, देवीपूजा के लिये संन्यास की आवश्यकता नहीं एवं महामाया का प्रभाव।	२९९
एकाशीतितमोऽध्यायः कालाग्नि रुद्र का वर्णन, काली से एकात्मकता और उसके भुवन का वर्णन, युद्धों द्वारा सृष्टि का संहार।	३०१
द्व्यशीतितमोऽध्यायः विशिष्ट नरकों का वर्णन एवं पापों के कारण नरक की प्राप्ति, सात पातालों का वर्णन, ब्राह्मणपुत्र की कथा।	३०३
त्र्यशीतितमोऽध्यायः कार्तिकेय के मयूर से रुरु की उत्पत्ति, उसका देवताओं के साथ युद्ध एवं देवताओं द्वारा देवी का स्तवन।	३०९
चतुरशीतितमोऽध्यायः रुरु का वध करने की विधि का कथन, ब्रह्माणी की उत्पत्ति।	३१८
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ग्रहों की उत्पत्ति, शिव की स्तुति, विभिन्न मातृकाओं की उत्पत्ति।	३२१
षडशीतितमोऽध्यायः शिव की प्रशंसा, विष्णु द्वारा गीता का उपदेश।	३२६
सप्ताशीतितमोऽध्यायः देवताओं द्वारा देवी एवं मातृकाओं की स्तुति।	३२९
अष्टाशीतितमोऽध्यायः देवी द्वारा रुरु का वध, अन्त्यजों-पापियों एवं पाषण्डियों द्वारा देवी की प्रशंसा, शाक्तागम, शैवागम, गरुडतन्त्र, भूततन्त्र और काल का वर्णन। देवी संसार की प्रेरणास्रोत।	३३२
एकोननवतितमोऽध्यायः सर्वमंगला देवी का पूजन-विधान, कृष्णाष्टमी से शुक्ल नवमी तक देवी-पूजा, पशुबलि, रथयात्रा, कन्यापूजन और ब्राह्मणभोजन का विधान।	३३३
नवतितमोऽध्यायः देवीपूजा के विभिन्न स्थान, प्रतिमा एवं मन्दिर-निर्माण, मन्दिरों में सामग्री-दान, प्रतिमा-पूजन, वैदिक मन्त्रों द्वारा देवी-पूजन।	३३५
एकनवतितमोऽध्यायः शूद्रों एवं स्त्रियों द्वारा देवी की पूजा, पुस्तक-छत्र आदि का देवीभक्तों को दान।	३३७
द्विनवतितमोऽध्यायः देवी का विन्ध्याचल में निवास, नन्दा का अवतार, देवीपूजा का माहात्म्य, मन्त्र-द्रव्य-क्रिया और ध्यान की महिमा।	३४४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
त्रिनवतितमोऽध्यायः	३४६
शिव द्वारा नन्दातीर्थ की प्रशंसा, नन्दा-माहात्म्य, नन्दापुरी का वर्णन, पूजा के विभिन्न माध्यम, साधकों द्वारा अपनाये जाने वाले नियम, नन्दा के प्रिय स्थान, मन्त्रोद्धार का वर्णन एवं मुद्रावर्णन।	
चतुर्नवतितमोऽध्यायः	३६८
सुनन्दा देवी के स्थान का वर्णन, कङ्कणेश्वर-शूलभेद और वैश्रवणपुर आदि का वर्णन।	
पञ्चनवतितमोऽध्यायः	३७२
कन्यकापुर का वर्णन एवं माहात्म्य, नन्दा एवं शिव की एकरूपता।	
षण्णवतितमोऽध्यायः	३७६
वेदों का अध्ययन एवं उसके प्रकार और नियम आदि।	
सप्तनवतितमोऽध्यायः	३७९
यज्ञों में पशुबलि-विधान, लोगों द्वारा नियमों एवं अपवादों का पालन।	
अष्टनवतितमोऽध्यायः	३८१
देवी की एकात्मकता; नारायणी-तारा आदि नामों का वर्णन, पवित्रारोपण की विधि एवं आनन्दोत्सव।	
एकोनशततमोऽध्यायः	३८३
नन्दाव्रत का विधान एवं फल, देवी के बारह नामों का उल्लेख, सभी व्रतों में ब्राह्मणभोजन-दान और कन्यापूजन का आवश्यकत्व।	
शततमोऽध्यायः	३८७
विजया व्रत का विधान एवं देवी-प्रशंसा।	
एकाधिकशततमोऽध्यायः	३९०
नक्षत्रव्रत की विधि एवं फलप्राप्ति; देवी द्वारा वरदान-प्राप्ति।	
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः	३९२
भूमि-स्वर्ण-गाय एवं अन्नदान का फल, देवीतीर्थ-वर्णन, पदव्रत का विधान।	
त्र्यधिकशततमोऽध्यायः	३९४
गोदान की विधि, स्वर्णमयी गौ का दान, गौ में देवी की पूजा।	
चतुरधिकशततमोऽध्यायः	३९५
पृथक्-पृथक् मासों में अलग-अलग द्रव्यों का दान एवं फल, तिलधेनु-दान का माहात्म्य।	
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः	३९७
घृतमयी धेनु की दान-विधि एवं उसका फल।	
षडधिकशततमोऽध्यायः	३९८
जलधेनु की दानविधि एवं उसका फल।	
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः	३९९
देवी का वेदमाता के रूप में वर्णन, वेदों का विभाजन, ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की शाखाओं का वर्णन, उपवेदों का वर्णन।	
अष्टाधिकशततमोऽध्यायः	४०३
आयुर्वेद की प्रशंसा, रोग के कारणों का वर्णन।	
नवाधिकशततमोऽध्यायः	४०६
विभिन्न प्रकार के भोजनों का विवरण और उनका मानवशरीर पर प्रभाव।	
दशाधिकशततमोऽध्यायः	४०७
विभिन्न प्रकार के भोजनों के नामनिर्देश, कन्द-मूल-फल और मानवशरीर के लिये लाभप्रद एवं हानिप्रद ओषधियों के नाम। आयुर्वेद की प्रशंसा।	
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः	४१२
खट्वासुर की उत्पत्ति, उसकी तपस्या एवं देवताओं के साथ युद्ध।	
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः	४१४
विष्णु के द्वारा गजानन की उत्पत्ति, गजानन के शरीर में विभिन्न देवताओं का निवास।	
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः	४१५
विष्णु द्वारा गजानन की स्तुति, महेश द्वारा गजानन को देवताओं के कष्ट-निवारण हेतु भेजना।	

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः — ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा गणेश की पूजा, विभिन्न प्रकार के द्रव्यों का निवेदन, महेश द्वारा विनायक नामकरण तथा देवताओं का सेनापतित्व-प्रदान।	४१७
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः — विनायक का उदयाचल आगमन एवं विघ्नासुर का वध।	४१८
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः — ब्रह्मा से विघ्नासुर की उत्पत्ति, विष्णु द्वारा देवी-स्तुति, मातृपूजा द्वारा हरिश्चन्द्र की रक्षा।	४१९
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः — मातृपूजा का महत्त्व, सूर्य के कन्याराशि में स्थित होने पर विशेष महत्त्व।	४२८
अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः — देवी के नये मन्दिरों का निर्माण व पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार, प्रतिमासंस्कार एवं मन्दिरसंस्कार के मन्त्र, मदिरा-मांस आदि का समर्पण, जीर्णोद्धार का विशिष्ट फल।	४२९
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — खट्वासुर के वध के उपरान्त शिव द्वारा भयंकर भैरवरूप का ग्रहण, बाँयें हाथ में खट्वांग एवं दाँयें हाथ में कपाल तथा गले में मुण्डों की माला।	४३१
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — पदमाला के उच्चारण से शरीरशुद्धि, यम-नियम आदि का पालन और विभिन्न प्रायश्चित्त व्रतों का विधान।	४३६
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — पवित्र अग्नि की स्थापना, वामाचारी-दक्षिणाचारी और वेदान्तियों आदि का वर्णन, हवन-विधान और तीन प्रकार की अग्नियों का वर्णन।	४३८
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — आहवनीय अग्नि, गार्हपत्य अग्नि एवं दक्षिणाग्नि का वर्णन एवं इन सभी का उपयोग।	४४१
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — देवीपूजा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पुष्पों, सुगन्धियों एवं नैवेद्यों का वर्णन।	४४३
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — देवीपूजा एवं गुरुपूजा की विधि और महत्त्व, पूजा के लिये उपयुक्त स्थान, षडङ्ग न्यास एवं हवन आदि का विधान।	४४५
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — गुरु की शिव के साथ एकात्मकता एवं गुरु की पूजा का विधान।	४४६
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — अग्निसंस्कार की विधि, हवन-प्रक्रिया, विभिन्न मुद्राओं एवं मन्त्रों का वर्णन।	४४७
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — राजाओं द्वारा देवी-पूजा, राजाओं के आचरण का प्रजा पर प्रभाव, राजकुमारों को अच्छी शिक्षा, श्राद्धों का विधान, देवीस्तवराज का वर्णन, अनेक स्थानों एवं नामों का वर्णन।	४४९
अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः — देवीपुराण की पूजनविधि, देवीपुराण का वाचन, कथावाचक का सत्कार, इन सभी की फलश्रुति।	४६६

श्रीदेवीपुराणम्

भाषाटीकासमन्वितम्

॥ श्रीः ॥

श्री देवीपुराणम्

भाषाभाष्यसंवलितम्

प्रथमोऽध्यायः

ॐ नमश्चण्डिकायै

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी (दुर्गा), सरस्वती तथा वेदव्यास को नमस्कार करके पुराणादि का पाठ करना चाहिये।

वसिष्ठ उवाच

नमस्कृत्य शिवां देवीं सर्वभागवतां शुभाम्। पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा॥१॥

वशिष्ठ ने कहा—भगवान् शंकर की पत्नी शिवादेवी को नमस्कार करके ब्रह्मकथित पुराण को यथायथ कहूँगा।।१।।

ऋषय ऊचुः

भगवंस्त्वं समस्तस्य दृष्टादृष्टस्य तत्त्ववित्। पुराणार्थं वयं सर्वे आगता भुवि भाविताः॥२॥
कथ्यतां यत्र घोराद्या भूताः साम्प्रतदानवाः। भविष्याश्च विनाशिष्ये देवी देवनमस्कृता॥३॥
इन्द्रस्य च दिवः प्राप्तिर्हृतराज्यस्य दानवैः। यथा शक्रो जयं चक्रे देवदेवनमस्कृतः॥४॥
अवतारा मुनिश्रेष्ठ षष्ठिभेदगता यथा। पूजयेत् स पृथु राजा देवीं सर्वार्थसाधनीम्॥५॥
यथा मातृसमुत्पत्ती रुरोर्नाशो महात्मनः। चामुण्डा येन वा देवी येन वा सर्वमङ्गला॥६॥
निरुक्तानि च नामानि वह्नौ सन्तर्पणं यथा। वसुधाराविधिस्तात देवतास्थापनादिकम्॥७॥
यत्र मायो महामायो निहतो रामसायकैः। यत्र संस्थापिता देवी बहुधा वसुधातले॥८॥

ऋषिगण कहते हैं—हे भगवन्! पूजनीय वशिष्ठ देव! आप प्रत्यक्ष-परोक्ष सभी विषयों का तत्त्व जानने वाले हैं। हम सभी पुराण-श्रवण करने की अभिलाषा से आये हैं। देवगण-नमस्कृता देवी दुर्गा के हाथों से घोर प्रभृति भूत-भविष्यत् एवं वर्तमान में दानवों के विनाश का जो वृत्तान्त पुराणों में है, देवदेव इन्द्र के व्रताचरण का उपाख्यान, दानवों द्वारा अपहृत उनके स्वर्गराज्य की उनको पुनः प्राप्ति का वृत्तान्त, षष्टि प्रकार (छः प्रकार) के विष्णु अवतार की कथा, राजा द्वारा अनुष्ठित सर्वार्थसाधिका अम्बिका का पूजा-विवरण, ब्राह्मी प्रभृति अथवा गौरी प्रभृति मातृगण की उत्पत्तिवार्त्ता, महात्मा रुरु का विनाश-विवरण, चामुण्डा तथा सर्वमङ्गला के आविर्भाव-कारण का निर्देश, नामनिरुक्ति तथा अग्नि में होम की कथा जहाँ है; वसुधाराविधि, देवता-स्थापनादि विधि, महामाया-समुत्पन्न माय नामक असुर का राम के बाण से हनन, पृथिवीतल में नाना प्रकार से दुर्गा का स्थापन।।२-८।।

स्तोत्राणि च विचित्राणि शिवाद्यैः शुभहेतुभिः। कृतानि बहुभेदानि तथा माहात्म्यवर्णना॥९॥

शिवस्य च तथा स्तोत्रं यामलं विष्णुब्रह्मणोः। कृतं लोकोपकाराय शुक्रेण च महास्तवम् ॥१०॥
रथयात्रादयः पुण्याः कथा पापप्रणाशणीः। खट्वावधं महाघोरं सायकोत्पत्तिकीर्त्तनम् ॥११॥
कीर्त्तनं विघ्ननाशस्य यागादिभिः समर्च्चनम्। महाशान्तिविधानञ्च पुष्पाद्यैरभिषेचनम् ॥१२॥

मंगल-निधान, शंकर आदि देवगणकृत नानाविध विचित्र स्तव तथा देवी का माहात्म्य—इन सबका वर्णन जिसमें है, लोक के उपकारार्थ ब्रह्मा तथा विष्णु ने शिव के जिस यामल स्तव का स्तवन किया था, शुक्रकृत महास्तव, पापनाशक पवित्र रथयात्रादि कथा, महाघोर खट्वावध-वृत्तान्त, गणेशोत्पत्ति प्रकरण, यागादि से गणेशपूजा पद्धति-प्रसंग, महाशान्ति-विधान, पुष्पादि से अभिषेक करने की प्रणाली।।९-१२।।

वीक्ष्य शक्रस्य यच्चक्रे गुरुकामप्रसाधनम्। नानासदानि दुर्गाणि शिल्पानि विविधानि च ॥१३॥
यत्र सङ्कीर्त्तयेद् ब्रह्मा मन्वादीनां पपृच्छताम्। वर्णाश्रमस्थितिर्यत्र आचारस्य च कीर्त्तनम् ॥१४॥
कीर्त्तनं यत्र देवानां साङ्ख्यमाहात्म्यवर्णनम्। यत्र मृत्युग्रहादित्यग्रस्ता अवान्तरे नृपाः ॥१५॥

बृहस्पति ने इन्द्रार्थ जो अभीष्ट साधक कार्य किया था उसकी कथा, नाना प्रकार की सभा, दुर्ग तथा विचित्र शिल्प की कथा, मनु प्रभृति द्वारा जिज्ञासा करने पर ब्रह्मा ने उत्तर में जो-जो कहा था—वह सब कथा जिसमें है, वह कहिये। वर्णाश्रम धर्म, आचार पद्धति, देवगण निर्देश, सांख्यमाहात्म्य वर्णन, स्वायंभुव मन्वन्तर में कतिपय राजागण मृत्यु-ग्रहादि के ग्रास से जैसे उद्धार प्राप्त कर सके थे, वह प्रसंग कहिये।।१३-१५।।

अर्च्च्या सर्वेश्वरी पूर्वं शक्रादिभिर्यथा नुता। वृत्राघशमनी तात भूमिशुद्धिकरी परा ॥१६॥
हरिश्चन्द्रादयः स्वस्था भूता देवीप्रसादतः। माण्डव्यो मुनिशार्दूलो यत्र पूजयते शिवाम्।
यत्रायुर्वेदसंसिद्धिं धन्वन्तरिरवाप्तवान् ॥१७॥
प्रादुर्भावस्तथा विष्णोर्व्रताश्च नियमादयः। वेदव्रतानि यज्ञानां कथनं साधनं तथा ॥१८॥
ग्रहाणाञ्च गतिश्चोर्ध्वं चक्रचारानुकीर्तनम्। संस्थानं संस्थितिर्यत्र नागानां तलवासिनाम् ॥१९॥

वृत्रपापविनाशिनी पृथिवी-पावनी परम पूजनीया सर्वेश्वरी दुर्गा का इन्द्रादि देवगण ने पूर्व में जैसे स्तव किया था, वह जिसमें वर्णित है, वह कहिये। देवी की कृपा से हरिश्चन्द्रादि राजागण की मंगल-प्राप्ति, मुनिवर माण्डव्य की दुर्गा-पूजा, धन्वन्तरी का आयुर्वेद से सिद्धिलाभ, विष्णु का आविर्भाव, व्रतनियमादि, वेदव्रत, यज्ञ, यज्ञसाधन, उर्ध्वतत्त्व, ग्रहगण की गति तथा चक्रचार जिस पुराण में अंकित है, वह कहें। भूतलवासी नागगण की संस्थान संस्थिति भी कहें।।१६-१९।।

कालसङ्ख्याप्रमाणन्तु युगभेदप्रकीर्त्तनम्। लोकेषु शब्दसङ्ख्यानं शुभाशुभविवेचनम् ॥२०॥
पदमालाविधिः पुण्यः सम्बन्धो योगकीर्त्तनम्। प्रत्यक्षाणि च लक्ष्याणि योगिनां सुखसिद्धये ॥२१॥
ध्वजदानप्रसङ्गेन पुष्पाणि विविधानि च। दानभेदा महापुण्या विद्यादानं तथोत्तमम् ॥२२॥

कालसंख्या-परिमाण, युगभेद, जगत् में शुभाशुभसूचक शब्द का तत्त्वनिर्देश, पवित्र पदमाला, विद्या-सम्बन्धनिर्देश, योगप्रसंग, योगीगण की सुख-सिद्धिसूचक विविध प्रत्यक्ष की कथा जिसमें विवृत है; ध्वजदान प्रसंग, विविध पुष्पों की कथा, दानविशेष का उत्कृष्ट फलविशेष, दानभेद, उत्तम विद्यादान कहिये।।२०-२२।।

व्रतानि चोपवासाश्च यमाश्च नियमास्तथा। जलेन स्थापनं देव्याः प्रासादवलयादिषु ॥२३॥
ग्रहभेदगता पूजा शान्तोग्रविधिना यथा। साधते सर्वकार्याणि तथा नो वक्तुमर्हसि ॥२४॥
समस्तव्यस्तभेदेन क्रमाचारानुलोमतः। यथाबुद्धिस्तथा तत्त्वं युगकालानुरूपतः ॥२५॥
यथा प्रसीदते देवी आत्मभावानुरूपतः। कर्मयज्ञविधानेन तथा कथय सुव्रत ॥२६॥

एवं पृष्टस्तु तैः सर्वैर्वसिष्ठो मुनिसत्तमैः । यथान्यायविधानज्ञैः श्रूयतामिदमब्रवीत् ॥२७॥
आद्याध्यानेन संक्षेपात् पुराणं समुदाहृतम् । पादे त्रैलोक्यविजये सर्वकामप्रसाधनम् ॥२८॥

व्रत, उपवास, यम, नियम, प्रासाद-मण्डलादि में दुर्गा प्रवेश एवं स्थापना तथा शान्त एवं उग्रविधि के अनुसार विभिन्न देवीपूजा, देवीपूजा में सर्वकर्मसाधकता जिसमें है, वह पुराण शब्द तथा अर्थक्रम का उल्लंघन किये विना, काल तथा वृद्धि के अनुसार सामान्यतः एवं विशेषतः यथायथ हमसे कहिये। हे सुव्रत! आत्मभावानुसारी कर्मविधान से देवी जैसे प्रसन्न होती हैं, वह कहिये। विधिवेत्ता मुनिसत्तमगण द्वारा इस प्रकार न्यायानुसार महर्षि वशिष्ठ से जिज्ञासा की गई। यह पूछे जाने पर महर्षि वशिष्ठ ने कहा—ब्रह्मा ने संक्षेप में इस पुराण को कहा था। त्रैलोक्यविजय नामक इसका प्रथम पाद सर्व अभीष्टसिद्धि का हेतु है।।२३-२८।।

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां संविधास्यामि सर्वकामप्रसाधकम् । देव्याः सम्पूजनं यत्र महाभाग्यं पदे पदे ॥२९॥
चतुष्पादविभागेन यथायुगक्रमागता । देवी सर्वसुखावाप्तिं प्रयच्छति प्रपूजिता ॥३०॥
कथां पुण्यविवृद्ध्यर्थं पौराणीं मुनिसत्तमैः । भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदगस्त्यो वदिष्यति ॥३१॥
शिवाद् विष्ण्वादिभिः प्राप्ता ब्रह्मणो मातरिश्वना । तथा मन्वत्रिभृगुभिरस्माकमवतारिता ।
अगस्त्याच्चित्रं नृपगैर्लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥३२॥

पुनः महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे ऋषिगण! सुनिये। पद-पद पर सौभाग्य-सम्पादक सर्व अभीष्ट-साधक देवीपूजा-प्रसंग जिसमें है, वही पुराण कहता हूँ। युगक्रमानुसार इस ग्रन्थ के चार अंश में वर्णित देवी की पूजा करने पर वे सभी सुख प्रदान कर देती हैं। हे मुनिसत्तमगण! आप सवने जो यह पुण्य की वृद्धि करने वाली कथा को मुझसे पूछा है, भविष्य में महर्षि अगस्त्य इसे कहेंगे। शिव, विष्णु, ब्रह्मा तथा वायुप्रभृति देवगण से मनु-अत्रि तथा भृगुप्रभृति ऋषिगण ने इस पुराणकथा को प्राप्त किया था। मैंने उनसे ही प्राप्त किया है। भविष्य में अगस्त्य द्वारा कहे जाने पर यही पुराणवार्त्ता (भविष्य में) राजपरम्परा द्वारा जगत् में प्रसिद्ध होगी।।।२९-३२।।

ये च भक्त्या यथान्यायं क्रमाच्छ्रोष्यन्ति मानवाः । न तेषां दुष्कृतं कश्चिद् भविष्यति मनागपि ॥३३॥
समस्तं यदि चार्धं वा पादं पादार्धमेव वा । नियमादर्थसम्प्राप्तिस्तावद् भाव्यं सुखार्थिभिः ॥३४॥
अविच्छेदेन संसिद्धिं प्रयच्छति यथेप्सिताम् । विच्छेदाद् विफलं याति इहलोके सुखावहम् ॥३५॥

जो भक्त मानव यथाविधि यथाक्रमेण यह सम्पूर्ण पुराण, आधा पुराण अथवा एक पद अथवा आधा पद भी श्रवण करेंगे, उनमें अल्प मात्र भी पाप नहीं रहेगा। नियमानुसार इसे सुनने पर अर्थप्राप्ति होती है। अतएव सुखार्थी व्यक्ति को सम्पूर्ण श्रवणकाल में नियमावलाम्बी होकर रहना चाहिये। अविच्छेदन रूप में इसे सुनने पर इच्छानुरूप सिद्धि मिलती है। विच्छेद होने पर इहलोक में सुख देने वाला फल नष्ट हो जाता है।।३३-३५।।

उत्पत्तिकीर्तनं सृष्टेः प्रथमं समुदाहृतम् । विजये देवपादे तु ऋषीणां परिपृच्छताम् ॥३६॥
शक्राख्यानं महापुण्यं घोरोत्पत्तिविनाशनम् । दुन्दुभेर्निधनं यत्र घोरः संवर्धितो महान् ॥३७॥
तपस्तप्त्वा वरं लेभे विष्णुना प्रभविष्णुना । मन्त्राद्याः साधिता यत्र नृपा नागा रसातले ॥३८॥
यत्र नादं सुतस्तस्य शक्रात् प्राप्तो गतो दिवम् । विजित्य यत्र स मायां छद्मितो गुरुणा पुनः ॥३९॥

देवकथाबहुल विजयनामक प्रथम पाद में सृष्टि के आरम्भ की कथा, ऋषिगण की जिज्ञासा के अनुसार महापवित्र इन्द्र उपाख्यान, घोरासुर की उत्पत्ति तथा विनाश-प्रसंग, दुन्दुभि असुर का निधन वर्णित है। घोरासुर की महती वृद्धि, तपस्या

करके प्रभु विष्णु के साथ उसका वरलाभ, मन्त्रसाधनबल से पृथिवी के राजागण एवं पाताल के नागगण—सभी पर घोरासुर की वश्यता, यह सब इस पुराण में अंकित है। इन्द्र से ओंकार का उपदेश पाकर घोरासुर के पुत्र का स्वर्गलाभ, घोर द्वारा मायाजय, घोरासुर की बृहस्पति द्वारा छलना।।३६-३९।।

देवी यत्र गता विन्ध्यं ब्रह्मविष्णुसुपूजिता। पदमालां महाविद्यां नारदो जपते यथा ॥४०॥
घोरप्रलोभनार्थाय महिषाहवकाङ्क्षया। तथा खट्वादिमायानां वधो यत्र कृतः सुरैः ॥४१॥
देवं रुद्रं समाराध्य बहुभेदार्थता शिवा। त्रैलोक्याभ्युदयं नाम द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥४२॥
निशुम्भशुम्भमथनं तृतीयं पादमुत्तमम् ॥४३॥

ब्रह्मा-विष्णु पूजिता देवी दुर्गा का विन्ध्यपर्वत-गमन, भगवती के साथ महिषापरनामा घोरासुर की युद्धाकांक्षा करने पर उसे प्रलोभनार्थ नारद का पदमाला-विद्याजप। देवी द्वारा विविध मायावध, खट्वादि दानववध, नारदकृत देवीस्तव, रुद्रकृत देवीस्तव तथा सैन्यसहित घोरासुर अथवा महिषासुर-वध विवरण इस प्रथम पाद में है। द्वितीय पाद का नाम है—त्रैलोक्याभ्युदय पाद एवं उत्तम तृतीय पाद का नाम है—निशुम्भ-शुम्भमथन।।४०-४३।।

अन्धकस्य महायुद्धं देवदानवसङ्गरम्। देवदेवं हरं स्तुत्वा भृङ्गित्वमाप्नुयात् पुनः ॥४४॥
युद्धं देवासुरं नाम तारकस्य गुहस्य च। अवतारं कुमारस्य कामस्य तनुनाशनम् ॥४५॥
आराधनञ्च रुद्रस्य शक्रार्थं कृतवान् हरिः। अवतारं च देवस्य सैनापत्यं गुहस्य च ॥४६॥
उमा काली-समुत्पत्तिर्देवताराधनं यथा। कृत्वा देवी पतिं लेभे शङ्करं सर्वशङ्करम् ॥४७॥
उद्वाहं कल्पयेद्यत्र हिमवानचलोत्तमः। होता यत्र समुत्पत्तिर्बालखिल्यादयो महान् ॥४८॥

अन्धक असुर (यहाँ चतुर्थ पाद के परिष्कृत नामादि का उल्लेख नहीं पाया गया है। 'देवासुर' नाम चतुर्थ पाद का हो सकता है) के साथ महासमर, देव-दानव युद्ध, कुमार का अवतार, कामदेव का शरीरनाश, इन्द्र के लिये हरि द्वारा शिवाराधन, देवदेव महादेव का स्तव करके अन्धक असुर द्वारा भृङ्गित्व-प्राप्ति, कार्त्तिकेय तथा तारकासुर का 'देवासुर' नामक युद्ध, देवताओं के लिये कार्त्तिकेय का सेनापतित्व, उमा-काली की उत्पत्ति, आराधना द्वारा उनकी शंकररूप सर्वमंगलकारी पति की प्राप्ति, गिरिराज हिमालय की कन्या का विवाह, वालखिल्य आदि ऋषियों की उत्पत्ति।।४४-४८।।

ऋषयः सर्वदेवानामादित्यरथसानुगाः। गतयश्च यथा चित्राः कर्मणः सुविपाकजाः ॥४९॥
महाश्वेतासमुत्पत्ती रविरक्षानियोजिता। यत्र जम्भादयो देवा ग्रहरूपा व्यवस्थिताः ॥५०॥
हिताय पूजिता यत्र शिवदूतीतनूद्भता। ग्रहयागः कृतो यत्र ब्रह्मणामिततेजसा ॥५१॥
हिताय सर्वभूतानां मातरो लोकमातरः। स्थिता लोकविभेदेन बालानां हितकाम्यया ॥५२॥
एवं संक्षिप्य चोद्धृत्य पुराणं ब्रह्मभाषितम्। पवित्रं सर्वलोकानामुपकाराय कीर्त्तितम् ॥५३॥

आदित्य रथस्थित देवता तथा ऋषियों की कथा, कर्मविपाक-जनित नानाविध फल की कथा, महाश्वेता-समुत्पत्ति, रवि-रक्षार्थ नियोजित जम्भादि राक्षसगण की कथा, ग्रहरूपी देवगण की कथा, दुर्गा-तनुसम्भूत शिवदूती का हितकारी पूजन, सर्वभूत- हितकारी लोकमाता मातृगण के बालगण की हिताभिलाषा से स्थानभेद में अवस्थिति, यह सब जिसमें वर्णित है, उस ब्रह्मभाषित पवित्र पुराण का संक्षेप में उद्धार करके लोकोपकारार्थ कहा गया है।।४९-५३।।

एवञ्चानुक्रमाद्यस्तु समस्तं व्यस्तमेव वा। अर्धं पादार्धं पादं वा आद्याध्यायत्रयञ्च वा ॥५४॥
यथाविद्याविधानेन कीर्त्तयेच्छृणुयाच्च वा। वेदार्थतत्त्वसहितं सर्वकामप्रदायकम् ॥५५॥
शिवब्रह्महरेः कीर्तिकारकं शुभकारकम्। सर्वकामानवाप्नोति प्रेहितान् मनसा नरः ॥५६॥

सुखं कीर्तिं धनं पुत्रान् कल्प्यतां जनसंसदि। श्रवणादाप्नुयाच्चेदं पुराणं शिवभाषितम् ॥५७॥
पाठस्थानानि गोष्ठञ्च देवीदेवगृहाणि च। विचित्राणि च पुण्यानि सौधानि सुशुभानि च ॥५८॥
नदीतीरद्रुमोद्यानविविक्तजनसंसदि। कीर्तयेच्चोपलिप्तेषु धूपगन्धस्रगादिभिः ॥५९॥
एकचित्तसमाधानस्तद्गतेनान्तरात्मना। भावयंश्चाथ सद्भावं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥६०॥
शृणुयान्न शठो नीचः खलभावः सदा क्षमी। अभक्तो न च देवानां न द्वेषी न च मत्सरी ॥६१॥
देवीं देवाञ्छिवादीन् यः सूर्यब्रह्महरींस्तथा। गुरुविप्रहितो भक्तः स लभेत हितं फलम् ॥६२॥

वेदार्थतत्त्वपूर्ण सर्वकामप्रदायक ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की कीर्त्तिकथा से पूर्ण शुभकारक यह समस्त पुराण जो व्यक्ति अनुक्रम से यथाविधान पाठ करता है अथवा सुनता है, उसे मन में वांछित सर्वफल-लाभ हो जाता है। यह शिवस्थापित पुराण सुनने से जनसमाज में सुख, कीर्त्ति, धन, पुत्र तथा आरोग्य मिलता है। पीठस्थान, गोष्ठ, देवीगृह, देवगृह, विचित्र पवित्र शुभ सौध, नदीतीर, वृक्षशोभित उद्यान, पवित्र जनपूर्ण सभा—इन सभी स्थानों में धूपगन्धामोदित, माल्यालंकृत तथा उपलिप्त हो करके तद्गत एकाग्र तथा विशुद्ध चित्त से भगवच्चिन्ता करके पुराण-पाठ कर्त्तव्य है। शठ, नीच, खल स्वभाव, अक्षमी, देवदेवीगण के अभक्त, विद्वेष्टा तथा मत्सर व्यक्ति को पुराणश्रवण नहीं करना चाहिये। देवी, शिव, सूर्य, ब्रह्मा तथा हरिप्रभृति देवगण के प्रति भक्त, गुरु तथा ब्राह्मणों के हितकारी ही इस श्रवण-कीर्त्तन से हितकारी फल पाते हैं।।५४-६२।।

नृपवाहन उवाच

सर्वकामप्रदा देवी त्वया चेन्द्रात् पुरा यथा। श्रुता विद्या महाभाग तथा नो वक्तुमर्हसि ॥६३॥
अनुग्रहार्थं सर्वेषां खड्गमालाञ्जनादिकम्। या विद्या गुटिकाद्यानां बहुभेदा प्रकीर्त्तिता।
तां हिताय महाभाग क्रियाकर्मगतां वद ॥६४॥

नृपवाहन कहते हैं—हे महाभाग! आपने इन्द्र के पास से जैसे सर्वकामप्रद खड्ग-माला-अंजन तथा गुटिकादि के सम्बन्ध में बहुविध विद्या का श्रवण किया था, उसे मुझसे सर्वलोकानुग्रह के लिये कहिये। हे महाभाग! अनुष्ठान-पद्धति के साथ इस विद्या को लोक-हितार्थ मुझसे कहिये।।६३-६४।।

चित्राङ्गद उवाच

यदिच्छति भवान् श्रोतुं विद्यां विद्याविशारद। कृतविद्योऽसि त्वं वत्स अगस्त्यं परिपृच्छताम् ॥६५॥
स च जानाति धर्मात्मा सर्वविद्याविधीनिमान्। अवान्तरगतां भूतां वर्तमानां भवात्मिकाम् ॥६६॥
एवमुक्तः स गुरुणा सर्वविद्यार्थपारगः। गतो यत्राश्रमे श्रेष्ठेऽगस्त्यो ब्रह्मविशारदः ॥६७॥
अचिरं मतिमाधाय कृत्वा चार्थप्रसाधने। विद्यानां दिव्यसिद्धीनां नृपयानो महामतिः ॥६८॥
एकचित्तः शिवे भक्तः सर्वकामप्रसिद्धये। मुनिमाश्रममासाद्य ददृशे शुभवृद्धये ॥६९॥

इति श्रीदेवीपुराणेऽगस्त्याश्रमगमनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

चित्रांगद कहते हैं—विद्याविशारद! तुम कृतविद्य हो। अब यदि तुम उस विद्या को सुनना चाहते हो तब अगस्त्य ऋषि के पास जाकर पूछो। धर्मात्मा अगस्त्य इन सभी विद्याविधान से अवगत हैं। भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान, निखिल समय की तथा विस्तृत भेद से युक्त यह विद्या अगस्त्य जानते हैं। गुरु चित्रांगद के यह कहने पर एकाग्रचित्त शिवभक्त महामति नृपवाहन

इस अध्याय के श्लोक ६२ के पश्चात् अचानक 'नृपवाहन उवाच' बिना किसी पूर्वापर प्रसंग के आ गया है। प्रतीत होता है कि श्लोक ६२ के बाद का प्रसंग लुप्त है।

सर्वकामसिद्धि-हेतु दिव्यविद्या साधन-हेतु अनन्य मन से कृतनिश्चय होकर वहाँ गये, जहाँ श्रेष्ठ आश्रम में ब्रह्मविद्याविशारद अगस्त्य स्थित थे। वहाँ जाकर अपने कल्याण की वृद्धि के लिये उन अगस्त्य ऋषि का दर्शन किया।।६५-७०।।

प्रथम अध्याय समाप्त

●

द्वितीयोऽध्यायः

कामिकां साधयित्वा तु विद्यां सर्वार्थसाधनीम्। नृपवाहनो महात्मा अगस्त्यस्याश्रमं गतः ॥१॥
यत्र वेदध्वनेः शब्दः श्रूयते पुण्यकर्मणाम्। वेदाभ्यासरता यत्र ऋषयो धर्मचारिणः ॥२॥
विद्यावेदकवेत्तारो यत्र सिद्धा ह्यनेकशः। विमुक्ता दुस्त्यजैर्दोषैर्यत्र तिष्ठन्ति जन्तवः ॥३॥
यत्र रोगभयं नास्ति यत्र प्रीतिरनुत्तमा। यत्र मातङ्गसिंहानामेकत्रैवाभवद्गृहम् ॥४॥
अश्वाश्च महिषैर्यत्र क्रीडन्ते सहिताः सदा। विरुद्धान्यपि सत्त्वानि रमन्ते एकतः सदा ॥५॥
यं सम्प्राप्य गताः सर्वे पापिष्ठा अपि सत्क्रियाम्। ऋषयो ह्यपवर्गाय तपस्तेपुर्मुमुक्षवः ॥६॥

महात्मा नृपवाहन सर्वार्थ-सिद्धिदायिनी कामिका विद्या-साधन के लिये उपयुक्त होकर अगस्त्याश्रम में गये। पुण्यकर्मा द्विजगण की वेदध्वनि उस आश्रम में श्रुतिगोचर हो रही थी। वेदाभ्यासपरायण धर्मचारी अनेक ऋषि तथा वेदज्ञ विद्वान् आत्मवित् सिद्ध वहाँ विद्यमान थे। दुस्त्यज्य दोष, क्रोध, लोभ वहाँ के प्राणिगण में नहीं था। वहाँ हाथी तथा सिंह साथ-साथ रह रहे थे। घोड़े महिष के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वहाँ परस्परतः वैर रखने वाले प्राणिगण साथ-साथ रह रहे थे। पापीगण भी वहाँ आश्रम में जाकर सत्कार्य करते थे। मुमुक्षु ऋषिगण वहाँ मुक्ति के उद्देश्य से तपस्यारत थे।।१-६।।

सनकः सनत्कुमारश्च नारदात्रेयगौतमाः। पुलस्त्यः पुलहो भानुः शंखो जाबालिपाणिनी ॥७॥
भृग्वङ्गिरसवासिष्ठमाण्डव्या ऋषिसत्तमाः। शाण्डिल्यो महर्षिर्वह्निरन्येऽपि मुनिपुङ्गवाः ॥८॥
शौर्यधैर्यबलोपेता ज्ञाननिर्दग्धकिल्बिषाः। एकभक्ता ह्यभोक्तारो नक्तोपासनतत्पराः ॥९॥
एकान्तरोपवासाश्च त्रिरात्रपञ्चरात्र्यदाः। दशरात्रभुजश्चान्ये पक्षमासभुजोऽपरे ॥१०॥

सनक, सनत्कुमार, नारद, आत्रेय, गौतम, पुलस्त्य, भानु, शंख, जाबालि, विश्वामित्र, भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ, माण्डव्य, शाण्डिल्य, अग्नि महर्षिगण तथा अन्य मुनिपुंगव वहाँ पर स्थित थे। ये सभी सत्यवीर, योगी, ज्ञानाग्नि द्वारा पापरूपी तृण को दग्ध करके स्थित थे। अनेक ऋषि एकाहारी, अनाहारी, नक्तभोजी तथा एकान्तरोपवासी (एक दिन छोड़कर खाने वाले) थे। अनेक तीन रात्रि के अन्त में एक बार भोजन करने वाले, अनेक पाँच रात्रि के अन्त में भोजन करने वाले तथा अनेक दस रात्रि के पश्चात् (अन्त में) भोजन करने वाले थे। कुछ पक्ष के अन्त में एवं कुछ मासान्त में भोजन करते थे।।७-१०।।

क्षीरपाः फलमूलादः कन्दपत्राशनाः परे। संवत्सरान्तरैकादा धात्री विल्वादिभोजनाः ॥११॥
शाकयावकगोमूत्रगोमयाहारकाः परे। स्नानपूजाजपासक्ता होमसक्ता विमुक्तये ॥१२॥
ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्कन्द-उमा-दुर्गाप्रपूजने। निरता यत्र तिष्ठन्ति सर्वसिद्धिफलप्रदे ॥१३॥

कुछ क्षीर पीने वाले थे। अनेक फल-मूलमात्र भोजी तथा कुछ मूल-पत्रमात्र भोजी थे। अनेक एक वर्ष के अन्त में मात्र एक बार भोजन करते थे। अनेक हरीतकी, बिल्वप्रभृति फल का ही भोजन करते थे। अनेक शाक, गोमूत्र में पकाये यवमण्ड तथा गोमूत्र किंवा गोमय का आहार करते थे। वे स्नान, पूजा, जप में आसक्त, होमपरायण तथा मुक्ति के लिये सर्वसिद्धि-फलप्रद ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-कार्त्तिकेय-दुर्गा-काली की पूजा में तत्पर होकर वहाँ निवास करते थे।।११-१३।।

तत्राश्रमपदे रम्ये चागस्त्यस्तिष्ठते मुनिः। येन वाक्पाशबन्धेन विन्ध्याद्रिः सुनियामितः ॥१४॥
रविमार्गविघातार्थं यः संवर्धितुमुद्यतः। यस्योदये भवेत्तोयं शुद्धं स्वच्छं सुनिर्मलम् ॥१५॥
प्रदुष्टं विषभौजङ्गमेघनिःस्यन्ददूषितम्। तस्याश्रमं समासाद्य प्रणामं कृतवान् नृपः ॥१६॥

उस रमणीक आश्रममण्डल में महर्षि अगस्त्य आसीन थे। सूर्य का पथ अवरुद्ध करने के लिये उद्यत बढ़ रहे विन्ध्यपर्वत को वाक्पाश से बद्ध करके इन्हीं अगस्त्य ऋषि ने नियमित किया था। वर्षा, वृक्षादि, विष तथा सर्पविष से दूषित, मेघनिस्यन्द से दूषित कलुषीकृत नदी का जल इन अगस्त्य के उदय से ही स्वच्छ, शुद्ध तथा सर्वदोषरहित हो जाता है। उन अगस्त्य के आश्रम में जाकर राजा नृपवाहन ने उनको प्रणाम किया।।१४-१६।।

मुनीनां प्रतिपूजान्तु आसनार्घ्यफलाम्बुभिः। यथा ऋत्विग्गुरुश्चैव नृप आचार्यबान्धवाः ॥१७॥
तपस्वी पूजनोयास्तु ये चान्ये गृहमागताः। ततो नृपो मुदा युक्तः पृच्छते वेदजं विधिम् ॥१८॥

मुनिगण ने आसन, अर्घ्य, फल तथा जल द्वारा उनकी प्रतिपूजा की। नियम यह है कि कोई व्यक्ति राजा, आचार्य, बान्धव तथा तपस्वी के अपनी इच्छा से अपने यहाँ आने पर अपनी सम्पत्ति के अनुसार उनकी पूजा करे। तदनन्तर राजा नृपवाहन ने आनन्द से युक्त होकर पदमाला विद्याप्रभृति के सम्बन्ध में अगस्त्य से पूछा।।१७-१८।।

नृपवाहन उवाच

भगवन् कर्मणा केन विद्याधरपतिर्भवेत्। भूतवानचले तस्मिन्नेतदाख्याहि मे प्रभो ॥१९॥

नृपवाहन कहते हैं—हे प्रभो! भूतादि के उपसर्ग को जिससे दूर किया जा सके तथा आकर्षण, वशीकरण, मनमाना इच्छानुसार आवगमन तथा त्रिकालदर्शित्व-सिद्धि जिससे प्राप्त हो सके, वह विद्या कहिये।।१९।।

अगस्त्य उवाच

शिवेन या पुरा विद्या विष्णोर्दत्ताऽथ विष्णुना। पितामहस्य तेनापि शक्रस्य प्रतिपादिता ॥२०॥
यथा वत्स विधानेन सर्वकामार्थसाधिका। धर्मदा मोक्षदा देवी तथा मे गदतः शृणु ॥२१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—तुमने जिस विद्या की बात कही है, पूर्वकाल में शिव ने विष्णु को वह विद्या दी थी। विष्णु ने उसे ब्रह्मा को प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने विधिवत् इस सर्वकामार्थ-साधिका धर्मप्रदायिनी विद्या को इन्द्र को दिया। उस विद्या को अब तुम मुझसे सुनो।।२०-२१।।

कृत्वा क्रतुशतं विधिवद् दिवं प्राप्तो यदा हरिः। ब्रह्मा ऋषिवरैर्युक्तो गतास्तद्दर्शनाय वै ॥२२॥
शक्रेण च समायान्तं दृष्ट्वा देवं पितामहम्। त्यक्त्वा सिहासनं तूर्णं दण्डवत् पतितो भुवि ॥२३॥
चरणौ पूजयित्वा स तुतोष कमलासनम्। स्तोत्रेणानेन नृपते प्रजेशं विश्वभावनम् ॥२४॥

जब इन्द्र ने विधिपूर्वक १०० अश्वमेध यज्ञ करके स्वर्गराज्य प्राप्त किया था, तब ऋषियों के साथ ब्रह्मा उन्हें देखने गये। तब इन्द्र ने देवदेव पितामह को आते देखकर जल्दी से सिंहासन से उठकर भूमि पर दण्डवत होकर उन्हें प्रणाम किया। इन्द्र ने प्रजापति विश्वभावन ब्रह्मा का चरणयुगल पूजित करके इस स्तव द्वारा उनका सन्तोष-साधन किया।।२२-२४।।

इन्द्र उवाच

नमस्ते वेदगर्भाय उत्पत्तिस्थितिहेतवे। संहारहेतवे देव त्रिगुणाय त्रिमूर्त्तये ॥२५॥
निर्गुणाय गुणातीत शिवाय परमात्मने। अनादिरादिमध्यान्तविश्वमूर्त्ते भवाय च।
अद्य मे सफलं जन्म क्रतवः फलदा मम ॥२६॥

त्वद्दर्शनेन देवेश विपाप्माहमसंशयम्। सर्वकामप्रदं देव अमोघं तव दर्शनम्॥२७॥
तथापि हि सुरश्रेष्ठ तव पादेऽचला मतिः। च्यवनं न च स्वर्गान्मे तथा त्वं वरदो भव॥२८॥

इन्द्र कहते हैं—हे वेदगर्भ! हे उत्पत्ति-स्थिति-संहार करने वाले! आप त्रिगुणमय, त्रिमूर्त्तिधारी हैं। हे देव! आपको नमस्कार है। हे कार्यकारणरूपी! हे गुणातीत! आप हैं—परमात्मा शिवस्वरूप। हे विश्वमूर्त्ते! आप जगत् के आदि, मध्य, अन्तस्वरूप हैं। अथच स्वयं अनादि हैं। हे देव! आपको नमस्कार करता हूँ। हे देवेश! आज मेरा जन्म सफल हो गया, यज्ञ सफल हो गया। आपके दर्शनमात्र से मेरे सभी पाप निश्चय ही नाश को प्राप्त हो गये। हे देव! यद्यपि आपका साक्षात्कारलाभ अमोघ है, सर्वकामनापूरक है, तथापि उत्सुकता से प्रार्थना है कि हे सुरश्रेष्ठ! आपके चरणों में मेरी अचला भक्ति हो जाय और मैं कभी भी स्वर्ग से च्युत न हो सकूँ। यह वर दीजिये।।२५-२८।।

एवमुक्तस्तु इन्द्रेण ब्रह्मा विस्मयमागतः। अनेकानि सहस्राणि मम भक्तिरतानि च॥२९॥
वरदानप्रहृष्टानि बाधयन्ति दिवौकसः। तदा च मां कदा विन्ध्यादयमेव सुराधिपः॥३०॥
विघ्नते वरपुष्टाङ्गः किं वा भक्तिरतोऽथवा। द्विजवंशसमुत्पन्नः सुराणां पूजने रतः॥३१॥
धर्मात्मा वेदसद्भाव न तु विघ्नते क्वचित्। एवं मत्वा ततस्तस्य वरदानं हि चिन्तते॥३२॥
अस्माकं शिवविष्णोश्च शक्तिराद्या परापरम्। विश्वरूपा महादेवीं त्वं सजस्व सुखावहाम्॥३३॥

इन्द्र के इस कथन पर ब्रह्मा विस्मयापन्न होकर विचार करने लगे— मेरे भक्त जो वरदान से हृष्ट हैं, ऐसे हजारों हैं। देवगण की स्तुति हजारों करते हैं। लेकिन मेरा शरणापन्न कौन है? ये इन्द्र होकर भी शरणापन्न हैं। अथवा यह भी उचित है; क्योंकि भक्त होने पर भी वरप्राप्ति के पश्चात् अन्य विघ्न अवश्य करते हैं, किन्तु द्विजवंश में उत्पन्न, देवपूजारत, वेद का अर्थ के साथ भावना करने वाला धर्मात्मा व्यक्ति किसी को विघ्न नहीं करता। यह विवेचना करके ब्रह्मा इन्द्र को वर देने के लिये चिन्तन करने लगे। तदनन्तर ब्रह्मा कहते हैं—शिव तथा विष्णु की आदिभूता परापर मिश्ररूपा महादेवी शक्ति की तुम सुखार्थ पूजा करो।।२९-३३।।

इन्द्र उवाच

परा वा अपरा वाऽथ तथा चैव परापरा। केन विज्ञायते देवी किं वा सा च तथोत्तमा॥३४॥
त्वं परश्चापरो देव तथा चैव परापरः। पूज्यो ध्येयश्च वन्द्यश्च नान्यं वेद्मि द्विजोत्तम॥३५॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैं परा, अपरा अथवा परापरा इत्यादि कुछ नहीं जानता। आपके अतिरिक्त अन्य पूजनीय तथा ध्येय अन्य कोई है भी, यह मैं नहीं जानता।।३४-३५।।

ब्रह्मोवाच

सत्यमेतत् सुरश्रेष्ठ तथापि कथयामि ते। आसीद् घोरो महादैत्यः सर्वदेवविमर्दकः॥३६॥
विद्यावांस्तपवांश्चैव बलवान् बुद्धिशास्त्रवान्। महापदातिसम्पन्नः कोट्यायुतगजान्वितः॥३७॥
तस्याज्ञावर्त्तिनः सर्वे स च सर्वेषु भावितः। तेन आराधितः पूर्वं नृपो देवो जनार्दनः॥३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे सुरश्रेष्ठ! यह सत्य अवश्य है; किन्तु मैं वह तुमसे कहता हूँ। घोर नामक एक सर्वदेवविमर्दन दैत्य था। विद्या, तपस्या, बल-वीर्य तथा बुद्धि से यथेष्ट सम्पन्न था। घोर महापद पर अधीष्ठित, अतिसम्पन्न तथा अयुत कोटि हाथियों का अधिकारी था। सभी उस असुर के आज्ञापालक थे। सभी के हृदय में उसकी मूर्त्ति अंकित थी। हे राजन्! घोर दैत्य ने पूर्वकाल में देवदेव जनार्दन की आराधना की थी।।३६-३८।।

प्रभूतेनैव कालेन तुष्टस्तस्य खगासनः। प्रयच्छति वरं तुष्टः पृथिव्यामेकराड् भव ॥३९॥
न तं गृह्णाति दैत्येन्द्रो भूयो भूयोऽथ तोष्यति। परमष्टाङ्गदेवस्य भक्तिमेकान्तु याचते ॥४०॥
तथापि कृपयाविष्टः पीतवासाः सुराधिपः। प्रददौ तस्य दैत्यस्य यथेप्सितं वरं नृप ॥४१॥
अजेयो देवसंघस्य मम तुल्यपराक्रमः। स्वर्गभूसप्तपातालान् भुङ्क्ष त्वं तपसोत्कटः ॥४२॥
ततः प्रणम्य भक्त्याऽसौ लब्ध्वा च वरमुत्तमम्। स्तवेन स्तवीत विष्णुं कृतार्थो वरपालने ॥४३॥

इस आराधना से दीर्घकाल के उपरान्त गरुड़ासन विष्णु प्रसन्न हो गये। उन्होंने घोर को वर दिया—'हे दैत्यराज! तुम पृथिवी के अधीश्वर हो जाओ।' दैत्यराज ने वह वर ग्रहण नहीं किया। अथच उसकी भक्ति पुनः पुनः भगवान् में तुष्टि का उत्पादन करने लगी थी। उसका प्रार्थित वर था कि वह देवताओं के लिये अजेय एवं अवध्य हो जाय अर्थात् देवगण उसका वध न कर सकें, उसे पराजित न कर सकें। हे देवराज! क्रमशः भगवान् पीताम्बर ने दयापरवश होकर उस दैत्य को उसका इच्छित वर प्रदान किया। भगवान् ने कहा—तुम तपस्या-प्रबल हो। तुम अमरगण से अजेय होकर मेरे समान पराक्रमी होकर स्वर्ग, मर्त्य तथा सात पाताल का भोग करो। तदनन्तर उत्तम वर पाकर घोर दैत्य कृतार्थ होकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगा।।३९-४३।।

घोर उवाच

नमस्ते पीतवासाय अजिताय पराय च। शंख-चक्र-गदा-धारि-वनमाला-धराय च ॥४४॥
ईप्सितार्थप्रदानाय सर्वदेवनुताय च। वेदवेदाङ्गभावाय वेदगर्भाय वै नमः ॥४५॥
लक्ष्मीनिवास देवेश त्राहि मां भवसागरात्। अनेकानेकरूपाय बहुरूपरताय च ॥४६॥
विश्वरूपस्वरूपाय अहतायहताय च। तेजोधाम महातेजः सर्वदेवोत्तमाय च ॥४७॥
अव्यक्त-व्यक्त-सद्भाव-भावाभावरताय च। सर्वान् न वेद्मि देवेश गुणांस्ते मधुसूदन ॥४८॥
आर्त्तस्य मे सुदीनस्य दयां त्वं कुरु केशव। एवमुक्तो हरिस्तुष्टो भुङ्क्ष स्वर्गं यथेप्सया ॥४९॥
अचलस्त्वं शिवे देव्यामन्येषामजयः सदा। एवं दत्वा वरं तस्य विष्णुरन्तरधीयत ॥५०॥

घोर कहता है—आप पीताम्बर, अजित, सर्वश्रेष्ठ हैं। आप खड्ग, चक्र, गदाधारी तथा वनमाली हैं। आपको नमस्कार है। आप अभीष्ट देने वाले, सर्वदेववन्दित, वेद-वेदांग के प्रतिपाद्य, वेदगर्भ हैं। आपको नमस्कार है। हे श्रीनिवास! हे देवदेव! आप मेरा संसारसमुद्र से निस्तार करिये। आप अनेक-अनेक रूप वाले हैं। आप नाना पदार्थों में विद्यमान हैं। आप विश्वरूप, सुकृत तथा सत्यस्वरूप हैं। आप ही तेज के आधार, महातेजाः-सर्वदेवश्रेष्ठ, व्यक्त-अव्यक्त, भाव-अभाव हैं। सर्वत्र आप की ही सत्ता है। आपको नमस्कार है। हे देवराज मधुसूदन! मैं वास्तव में आपके गुणसमूह से अवगत हो सकने में समर्थ नहीं हूँ। हे केशव! मैं दीन-हीन कातर हूँ। अतएव मुझ पर दया करिये। घोर दैत्य के इस प्रकार से कहने पर भगवान् हरि ने सन्तुष्ट होकर कहा—तुम यथेच्छाक्रम से स्वर्ग का भोग करो। केवल भगवती शिवा के समक्ष तुम दुर्बल होगे (अन्यत्र सबल रहोगे)। अन्य सबके लिये अजेय रहोगे। विष्णु उसे यह वर देकर अन्तर्हित हो गये।।४४-५०।।

स चाप्यसुरशार्दूलो गतो द्वीपं कुशाह्वयम्। यत्र सा वर्तते तस्य नाम्ना चन्द्रवती प्रिया ॥५१॥
तमायान्तं तु सा श्रुत्वा लब्ध्वा लाभं महाधनम्। महोत्सवं तु ते चक्रुर्ह्यन्तःपुरनिवासिनः ॥५२॥
अकालकौमुदी चैव पुरद्वाराणि शोभिरे। विचित्रचित्रवस्त्रैश्च स्वनजैर्व्यजनैस्तथा ॥५३॥
रचिताश्चक्रदोलाश्च धारायन्त्रगृहाणि च। पुष्करिण्यः कृता हैमा राजतास्ताम्रजाः पराः ॥५४॥

(इस प्रकार से वर पाकर) दैत्यश्रेष्ठ कुशद्वीप को गया। वहाँ उसकी पत्नी चन्द्रावती रहती थी। चन्द्रावती ने उत्तम वर प्राप्त महाबली स्वामी के आगमन संवाद को सुनकर समस्त अन्तःपुरवासियों के साथ मिलकर महोत्सव प्रारम्भ किया। कौमुदी

के समान स्निग्ध उज्ज्वल आलोकमाला चारो ओर प्रदीपित की गयी। कौशेयप्रभृति चित्र-विचित्र वसन एवं आलोकमाला से पुरद्वार शोभित हो गया। नानाविध चक्र दोला तथा धारावस्त्र गृह स्थान-स्थान पर बनाये गये। स्वर्णमयी, रजतमयी तथा ताम्रमयी पुष्करिणी निर्मित की गयी।।५१-५४।।

कर्पूरोदकपूर्णास्ताः कुङ्कुमेन सुरञ्जिताः। क्रीडन्ते प्रमदास्तत्र प्रहृष्टा यौवनोत्कटाः ॥५५॥
विवर्धि शोभया चास्य तदीयं सुपुरोत्तमम्। तत्पुरं चन्द्रशोभं च विराजन्ति नराधिप ॥५६॥
एवंविधेऽव्रजद्राजा दानवेन्द्रः पुरन्दर। यथैव द्विजसंघाश्च वेदोद्गीरित आननाः ॥५७॥

उन सभी पुष्करिणीसमूह का जल कर्पूर से सुगन्धित तथा कुंकुम से रंजित था। पूर्वयौवना प्रमदागण सहर्ष वहाँ जलक्रीड़ा करने लगीं। हे सुराधिप! घोर दैत्य की सुन्दर नगरी की शोभा अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो गयी। वह नगरी चन्द्रमा के समान शोभायुक्त होकर दीप्तिमती हो गयी। हे पुरन्दर! दानाधिपति राजा घोर ने इस प्रकार की उत्सवमयी नगरी में प्रवेश किया। उस समय उसने देखा कि ब्राह्मणवृन्द वेदोच्चारण कर रहे थे।।५५-५७।।

स्त्रीजनं सुमनोहृष्टं दधिदूर्वाक्षतान्वितम्। शंखदर्पणहस्तञ्च वेण्वाद्यमशुभान्तकम् ॥५८॥
शीतलः सुमनोवायुर्मेघाः पूर्वदिशोऽनुगाः। पत्रिणः सुसुधारावाः सतेजाश्च सदा ग्रहाः ॥५९॥
फल-पुष्प-लता-वृक्ष-गतरेणु विमाननाः। तोयपूर्णापगाः सर्वाः कूपाः स्वादुजलोदकाः ॥६०॥

उसने देखा कि सुलक्षणा प्रसन्नचित्तयुक्ता निर्मला सधवा स्त्रीगण के हाथों में शंख, दर्पण, दधि, दूर्वा (शकुनार्थ) रखा गया था। कुसुम-गन्धयुक्त शीतल वायु बह रही थी। पूर्व दिशा में संचार करते मेघसमूह भी दृष्टिगोचर हो रहे थे। पक्षीगण मधुर ध्वनि करने लगे थे। तब ग्रहगण भी उत्तम स्थानों में थे। वृक्ष-लतादि फल-पुष्पभार से झुके जा रहे थे। दिशाओं में धूल का लेशमात्र भी परिलक्षित नहीं हो रहा था। घोरदैत्य ने देखा कि सभी नदियाँ जलपूर्ण थीं तथा जल भी सुस्वादु था।।५८-६०।।

दीर्घिकाः शतसंख्याताः स्वभावप्रकृतिस्थिताः। पथि पश्यन्ति तस्येष्टा जयशब्दं वदन्ति च ॥६१॥
लग्न-वृन्द-रवोद्घुष्टं पटु-भेरी-निनादितम्। शंख-वेणु-मृदङ्गैश्च पटहैश्च रवाकुलम् ॥६२॥
कंसकंसालवाद्यैश्च मुरजैः काहलैस्तथा। अनेकवाद्यविन्यासैः स्वर्भूपातालपूरकैः ॥६३॥
एवंविधपुरे राजा सुतिथिकरणान्विते। पूजयन् पौरसंघांश्च द्विजाँश्च विविधैर्धनैः ॥६४॥
बुद्धानुसम्मतो भूत्वा स विवेशात्ममन्दिरम्। तत्र बन्धुजनैः सर्वैराशिर्भिरभिनन्दितः ॥६५॥

दीर्घिकासमूह निर्मल, निथर, धीर एवं स्थिर था। पथ में दैत्यराज ने देखा कि मित्रगण जयध्वनि कर रहे हैं। वन्दी-प्रभृति आनन्दध्वनि कर रहे हैं। भेरी, शंख, मृदंग, पटह, कांस्य, काहल, मुरज-प्रभृति वाद्यध्वनि कर रहे हैं। अनेक वाद्यों के एक साथ बजने के कारण स्वर्ग-मर्त्य-पाताल भी वाद्य के शब्दों से गूंज उठा था। राजा घोर ने इस प्रकार के उत्सवपूर्ण नगरी में शुभ तिथि-शुभ करण में विविध धन द्वारा पौरवृन्द तथा द्विजगण का पूजन करके वृद्धों की अनुमति लेकर अपने घर में प्रवेश किया। तब सभी वृद्धगण ने आशीर्वाद देकर दैत्यराज का अभिनन्दन किया।।६१-६५।।

तेनापि तेषु सत्कारैर्यथावच्च क्रमागतैः। पूजिता गृहपालाश्च पुरपालास्तथैव च ॥६६॥
देवताराधने सक्तः स तथैव पुरःस्थितः। कृत्वा नारायणीमर्च्चां मणिमौक्तिकभूषिताम् ॥६७॥
विचित्रचित्रविन्यासामनौपम्यां मनोरमाम्। हास्यभावगतां शक्र स पूजयति दानवः ॥६८॥
दिनं विभज्य चाष्टांशं क्षपाञ्च घटिकादिभिः। अतन्द्रितमनाः शक्रधर्मादीनि न हापयेत् ॥६९॥
ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय अवश्यं विनिवर्त्तयेत्। हतो वै दन्तकाष्ठन्तु शुभं कण्टकवृक्षजम् ॥७०॥
आगमोद्दिष्टविधिना भुक्त्वाचम्य यथाविधि। घृते वा दर्पणे वापि मुखं पश्येद् ददौ च गाम् ॥७१॥

दानवराज घोर ने पूर्वप्रथाओं के अनुसार गृहपाल, द्वारपाल-प्रभृति को सम्मानित किया और इष्टदेवता की आराधना में तत्पर होकर राज्य में अधिष्ठित हो गया। हे इन्द्र! दानव ईशान कोण के एक मन्दिर में मणि-मुक्ताभूषित विचित्र आलेख्यवत् मनोरम अतुलनीय नारायण की मूर्त्ति स्थापित करके मणि-मुक्तादि से उसकी पूजा करने लगा। दैत्यराज घोर ने दिन को आठ भागों में विभक्त करके तथा रात्रि को भी घटिकादि द्वारा विभक्त करके इस विभाग के अनुरूप सतर्क होकर उद्यम के साथ अर्थ-धर्मादि का अनुष्ठान करना प्रारम्भ कर दिया। उसने इसमें मनोनिवेश किया। वह ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर आवश्यक कर्म (नित्यकर्म) का समापन करता था; तदनन्तर कण्टकी वृक्ष की शाखा से सम्भूत दन्तकाष्ठ द्वारा वानस्पत्य मन्त्र पढ़कर दन्तधावनोपरान्त आचमन करता था। तत्पश्चात् घृत अथवा दर्पण में मुख देखकर गोदान करता था।।६६-७१।।

ततः सभां समास्थाय पश्येत् कार्याणि कार्यिणाम्। सममित्रारिसद्भाव अद्वैधीकृतधर्मधीः।
यस्तु आयव्ययौ ज्ञात्वा धर्मकार्यञ्च साधुभिः। स्नात्वा देवान् पितॄंस्तर्प्य हुत्वा भुक्त्वा प्रक्रीड्य सः।
सभामण्डपमास्थाय पश्येत् स्वानि बलानि च ॥७३॥
सन्ध्यां प्राप्य तथा लोकान् विसृज्य मन्त्रिभिः सह। मन्त्रयित्वा यथान्यायं मित्रोदासीनशास्त्रवान् ॥७४॥
बुद्ध्वा मण्डलयोन्यादिमष्टधा दुर्गसञ्चयम्। कोषवृद्धिः प्रजारक्षा कण्टकानाञ्च शोधनम् ॥७५॥
प्रकृतीनां विभागञ्च तेषाञ्चैव विचेष्टितम्। मुक्तो अष्टादशैर्दोषैः कुर्याद्राज्यं महासुरः।
तस्य कालात् समुत्पन्नो वज्रदण्डो महासुरः ॥७६॥
ततः सर्वां यथान्यायं गर्भाधानादिकीं क्रियाम्। निर्वर्त्य योग्यतां प्राप्तः सोऽपि तातेन दृष्टवान् ॥७७॥

तत्पश्चात् सभा में आकर कार्यार्थीगण के कार्य को देखता था। कार्यदर्शन के समय (पक्षपातरहित होकर) शत्रु-मित्र सबके प्रति समभाव रखता था एवं द्वैध भावनारहित होकर निपुणता से निर्णय करता था। तदनन्तर आय-व्यय का हिसाब लेकर साधुगण को लेकर धर्मकार्य के अनुष्ठान सम्पन्न करके स्नान, देव-पितृतर्पण, होम, भोजन तथा क्रीड़ा यथाक्रमेण करता था। तदनन्तर सभा में पुनः आकर अपने सैन्यादि का पर्यवेक्षण करके सन्ध्या होने पर सबको विदा करके मन्त्रियों के साथ न्यायानुसार मन्त्रणा करता था। यह निर्णय करता था कि कौन शत्रु है, कौन मित्र है, कौन उदासीन है। इसके साथ ही मण्डल के राज (कार्य) से अवगत होता था। अष्टविध दुर्गसंचय, धनवृद्धि, प्रजारक्षा, क्षुद्र शत्रुओं का दूरीकरण, प्रकृतिविभाग, उनके कार्य के प्रति तीक्ष्ण दृष्टि—यह सब कार्य दानवराज उत्तम रूपेण करता था। महासुर घोर अट्ठारह दोषों से रहित होकर इस तरह राज्यपालन करने लगा। यथाकाल उसे व्रजदण्ड नामक महाबलशाली पुत्र की प्राप्ति हो गयी। यथाकाल उसका गर्भाधानादि सोलह संस्कार किया गया। तदनन्तर उसने योग्यता प्राप्त करके एक दिन अपने पिता से पूछा।।७२-७७।।

वज्रदण्ड उवाच

विज्ञापयाम्यहं तात नापराधो ममोपरि। कर्त्तव्यो मम वाक्येषु ग्राह्यमस्मत्सुभाषितम् ॥७८॥
नृपैर्दण्डबलोपेतैरन्यराज्यजिगीषुभिः। भवितव्यं दनुश्रेष्ठ न चैवं भवता यथा ॥७९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुतस्य कृतवेदिनः। प्रोवाच विहसन् घोरो वाक्येन सुमहास्वनः ॥८०॥

वज्रदण्ड कहता है—हे पिता! मैं एक निवेदन करता हूँ। आप मेरा अपराध क्षमा करें। यदि मेरी बात अच्छी लगे तब उसे ग्रहण करें। हे दैत्यराज! दण्डबलयुक्त राजा का अन्य राज्य के लिये अभिलाषी होना उचित है, आपकी तरह रहना उचित नहीं है। कार्यज्ञ पुत्र का यह वचन सुनकर घोर दैत्य उच्च स्वर से हंस कर उससे कहने लगा।।७८-८०।।

घोर उवाच

अच्युतस्य प्रसादेन मया राज्यं महामते। प्राप्तं घोरेण तपसा निर्जित्य देहजान् रिपून् ॥८१॥

अहमद्यापि तं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्। पूजयामि महाबाहो सर्वशत्रुनिवर्हणम् ॥८२॥
स मे ददाति सौख्यानि राज्यं पुत्रांस्त्वया समान्। पत्नीञ्च चन्द्रलेखां वै स पालयति मे विभुः ॥८३॥
न हि पृच्छाम्यहञ्चान्यं कुशद्विपस्य चोत्तमम्। एतद्राज्यञ्च स्वर्गञ्च यत्र पूज्यामि केशवम् ॥८४॥

घोर दैत्य कहता है—हे महामति! मैंने सभी शारीरिक शत्रुओं (मोह-क्रोध आदि) को पराजित करके नारायण की कृपा से यह राज्य प्राप्त किया है। हे महाबाहो! मैं अभी भी उन सर्वदेवनमस्कृत सर्वशत्रुनाशक देवदेव की पूजा करता हूँ। उन्होंने मुझे राज्य दिया है, तुम्हारे समान पुत्र दिया है, पत्नी चन्द्रलेखा को भी मैं उनके ही द्वारा प्रदत्त मानता हूँ। वे प्रभु ही मेरे पालक हैं। मैं अन्य राज्य पाना ही नहीं चाहता। विष्णुपूजन के प्रभाव से मेरा यह कुशद्वीप ही स्वर्गतुल्य है। यहाँ मैं विष्णुपूजन करता रहता हूँ।।८१-८४।।

एवं सम्बोधयन् पुत्रं राज्यकामं सुराधिप। अथामात्यो गतस्तस्य सुषेणो नाम दानवः ॥८५॥
सुतस्य चित्तसद्भावं कथयाम्यसुराधिपः। स तं प्राह यथामन्त्री सर्वविद्यार्थपारगः ॥८६॥

इस प्रकार से दैत्य घोर अपने राज्यकामी पुत्र को उसकी (इस महत्त्वाकांक्षा से) इच्छा से विरत करने लगे। तभी वहाँ राजमन्त्री सुषेण नामक दानव पहुँच गया। सर्वविद्या-विशारद मन्त्री दैत्यराज घोर से इस प्रकार कहने लगा।।८५-८६।।

सुषेण उवाच

स्वचक्रेणैव निर्जित्य सन्तुष्टः पृथिवीपतिः। समृद्धं धनराष्ट्रं तु क्षिप्रं नाशमुपैति हि ॥८७॥
तस्मान्नृपेण योग्येन सम्पत्तेर्नयवेदिना। परराष्ट्रसमाकाङ्क्षा कर्त्तव्या श्रियमिच्छता ॥८८॥

सुषेण कहता है—हे असुरराज! राजपुत्र की इच्छा अत्यन्त महान् है। मैं उसे निवेदित करता हूँ। अपने ही राज्यमात्र से सन्तुष्ट राजा अपने निष्कण्टक राज्य तथा धन से शीघ्र ही हाथ धो बैठता है। राजनीतिवेत्ता सम्पत्ति की अभिलाषा से युक्त राजा को परराज्य को जीतने की कामना भी रखनी चाहिये।।८७-८८।।

वल्कलादानमिच्छन्ति मुनयो वनमाश्रिताः। न हि सामग्र्यमुक्तास्तु नृपा ये वसुधाधिपाः ॥८९॥
पालयन्ति विना दण्डैर्महीं शम्भुबलादपि ॥९०॥
किन्तु सत्यव्रतो देवः केशवाराधने रतः। तस्य प्रसादसम्पन्नो लब्धादेशो रिपून् जहि ॥९१॥

हे राजन्! वनवासी मुनिगण भी अन्य वल्कल वस्त्र की इच्छा रखते हैं (अपने पहने वस्त्र से सन्तुष्ट नहीं होते), तब राजा क्यों उस वस्तु की इच्छा न रखे, जो उसके पास नहीं है? विना युद्ध किये राज्यपालन तथा ऐश्वरिक नियम से राज्यरक्षा होना एक ही बात है। लेकिन आपने व्रत धारण किया है। अतः विष्णु की आराधना करके उनका प्रसादरूप आदेश पाकर शत्रुजय करना आवश्यक है।।८९-९१।।

मन्त्रिवाक्यानलोत्थेन उद्योतितवसुं प्रति। मतिर्दानवनाथस्य व्रताराधनमाययौ ॥९२॥
पुष्यके द्वादशी पुण्या सर्वपापनिबर्हणा। कृत्वा या तेन सा शक्र घृतपात्रप्रदायिना ॥९३॥
तदा प्रत्यक्षतस्तस्य देवदेवो जनार्दनः। ददर्श स्वां तनुं शुभ्रां पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥९४॥
तं दृष्ट्वा स महाघोरः स्तवेन स्तवते हरिम् ॥९५॥

मन्त्री का अनलरूप वाक्य सुनकर दैत्यराज घोर ने उद्योदित होकर विष्णुव्रताचरण करने का निश्चय किया। हे इन्द्र! दैत्यराज घोर ने विष्णु को घृतपात्र प्रदान करके पौष शुक्ल द्वादशी के व्रत का पालन किया। यह सर्वपाप-विनाशक द्वादशी व्रताचरण था। तब असुरराज शुक्ल वर्ण, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज मूर्त्ति वाले देवदेव जनार्दन का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करने-मात्र से उनका स्तवन करने लगा।।९२-९५।।

घोर उवाच

नमस्ते पीतवासाय शंखचक्रधराय च। गदाशार्ङ्गासिधाराय सर्वदेवनुताय च ॥९६॥
वामनाय अघोराय त्रिविक्रमधराय च। मधुसूदन-दैत्यादि स्कन्दाय श्रीधराय च ॥९७॥
तव तेजःप्रसादेन सर्वान् शत्रून् यथा विभो। विजयामि यथा स्वर्गे तथा कुरु सुरेश्वर ॥९८॥

दैत्यराज घोर कहने लगा—आप पीताम्बर तथा शंख-चक्रधारी, गदा एवं शार्ङ्ग धनुषयुक्त, सर्वदेवस्तुत हैं। आपको नमस्कार है। हे वामन अमोघ त्रिविक्रम श्रीधर! आपको नमस्कार है। हे मधुसूदन! आप ही दैत्यारि तथा कार्त्तिकेय हैं। हे प्रभो! आपके तेजःप्रभाव से, जिससे कि मैं स्वर्ग के सभी शत्रुओं को जय कर सकूँ, हे सुरेश्वर! वह आप कीजिये।।९६-९८।।

तस्य कारुण्यतो ज्ञात्वा तमेवं प्रतिपादितम्। दुष्टानां दण्डनं धर्मः पूजितस्य च पूजनम् ॥९९॥
न्यायेन कोषसंवृद्धिर्मित्ररक्षा अरेर्वधः। एवं तस्य वरं दत्त्वा भूयोऽपि गतवान् हरिः ॥१००॥

भगवान् विष्णु ने घोर की इच्छा जानकर उस पर दया करके दुष्टों को दण्ड, धार्मिक की पूजा, न्यायपथ से धनवृद्धि, मित्र-रक्षा तथा शत्रुवध—इन सब वरों को पुनः प्रदान किया तथा अन्तर्हित हो गये।।९९-१००।।

सोऽपि लब्धवरोद्दामो महादर्पो बलान्वितः। सर्वमन्त्रिसमाजन्तु कृत्वा पत्नीमपृच्छत ॥१०१॥
पूर्वेणैव बहुक्षेपं दत्त्वा शत्रुं वशं नयेत्। अतिबलं नाम राजानं साधयामास दारुणः ॥१०२॥
सौबलन्तूग्रनामानमाग्नेयीं दक्षिणां दिशम्। नैर्ऋतीं पश्चिमां कालवारुण्याख्यं महाबलम्।
साधयामास बालस्तु वायव्यां दिशि संस्थिताम्। अनुह्लादमहाह्लादौ चोत्तरामीशदिग्गताम् ॥१०३॥
निर्जित्य सर्वनृपतींस्तथा द्वीपेषु चोद्यमम्।

इति श्रीदेवीपुराणे ब्रह्मेन्द्रोपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

महाबलयुक्त घोर ने पुनः सभी वरों को पाकर अत्यन्त दर्प के साथ सभी मन्त्रीगण से तथा अपनी पत्नी से कर्त्तव्य पूछा। हे शक्र! उनके परामर्शानुसार दुर्द्धर्ष घोर ने पूर्व की ओर यात्रा करके अतिबल राजा को जीतकर पूर्व दिशा पर अधिकार स्थापित किया। सौबल तथा उग्र को जीतकर अग्नि कोण तथा दक्षिण दिशा पर प्रभुत्व स्थापित किया। कालवरण को जीतकर नैर्ऋत्य कोण तथा पश्चिम दिशा को जीता। घोर के पुत्र ने वायुकोण-स्थित राजाओं को, अनुह्लाद-महाह्लाद प्रभृति को जीता तथा उत्तर दिशा पर एवं ईशान कोण पर प्रभुत्व स्थापित किया। इस प्रकार सर्वद्वीप-स्थित राजाओं को जीतकर घोर दैत्य अन्य स्थानों पर विजय पाने के उद्यम में लग गया।।१०१-१०४।।

द्वितीय अध्याय समाप्त

●

तृतीयोऽध्यायः

देवराज उवाच

भगवन् सर्वदेवेश सर्वशास्त्रार्थपारग। स्तवंस्तव कृतं देव वरार्थेन कथां प्रति ॥१॥
त्वञ्च सुरवराध्यक्षः कथां पूर्वां प्रकथ्यसे। अहं स्वर्गार्थिना ब्रह्मन् प्राप्तं यच्च जनार्दनात् ॥२॥
त्वमेव सर्वदेवानां वन्द्यः पूज्यः सुरोत्तमः। तथाहं शरणं भक्त्या तव स्रष्टुरुपागतः ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे सर्वशास्त्रपारग सर्वदेवेश ब्रह्मन्! मैंने वरलाभार्थ आपका स्तवन करने पर आपने मुझसे विष्णु से वर पाकर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा रखने वाले असुरराज घोर की जो पूर्वकथा कही थी, उसे (आगे का वृत्तान्त) मुझसे कहिये। मैं आपसे सुनना चाहता हूँ। हे सुरश्रेष्ठ! आप सभी देवताओं के वन्दनीय तथा सर्वदेव-प्रधान हैं। हे विधातः! मैं भक्ति के साथ आपके शरणापन्न हूँ।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

सत्येदं देवराजेन्द्र भक्त्याहं पूजितस्त्वया। तदर्थं कथयाम्येष शृणुष्व गदतो मम ॥४॥
कुशद्वीपं पुरा तेन स्वबलेनैव अर्जितम्। जम्बुं शाकं तथा क्रौञ्चं शाल्मलीमथ पुष्करम्।
सप्त द्वीपास्ततस्तेन देवराज वशीकृताः ॥५॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे देवराज इन्द्र! यह सत्य है कि तुम्हारे वरप्रार्थी होते समय मैंने यह कथा कहना प्रारम्भ किया था। अब उस कथा को कहता हूँ, श्रवण करो। घोर दैत्य ने तो कुशद्वीप को अपने बाहुबल से पहले ही जीत लिया था। इसके अनन्तर घोर दैत्य ने जम्बूद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाल्मलि द्वीप तथा पुष्कर द्वीप को वश में किया। हे देवराज! घोर ने इस प्रकार से सात द्वीपों को वशवर्त्ती कर लिया।।४-५।।

क्षारोदञ्चैव क्षीरोदं दधिसर्पिरिक्षुरसं तथा। मदिरोदञ्च स्वादूदं सप्तोदधिवसुन्धराम् ॥६॥
निर्जित्य वरदानेन स्वकीयाज्ञा तु लाञ्छिता ॥७॥

लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, क्षीरसमुद्र तथा स्वादुजल समुद्रयुक्त सप्तसागरा वसुमती को घोर दैत्य ने विष्णुदेव के वरदान द्वारा जय किया और सब स्थानों पर उसकी आज्ञा अंकित की गयी।।६-७।।

कृत्वा वशे भुवं शक्र ततः पातालविग्रहम्। प्रारब्धं ध्वजदण्डेन कालतन्त्राधिपेन च ॥८॥
आभाषन्ते गताः शक्र पातालं प्रथमं महत्। यत्र तिष्ठति नागेन्द्रो ह्यनन्तः कुलिकः स्वयम् ॥९॥
एलापत्रो महानागो दृष्टिविषो महाबलः। विकटः शूकरास्यश्च लोहिताक्षोऽथ राक्षसः ॥१०॥
नदनो नन्दनो भृङ्ग एते चैव महासुराः। तान् दृष्टवा मर्त्यजान् योधान् नागराक्षसदानवाः ॥११॥
संनह्य सुबलेनैव महासंग्राम चक्रिरे। तैर्वज्रदण्डसैन्यन्तु तथा कालस्य वाहिनी।
नागैर्दानवसंघैश्च पलाशैर्विनिपातिता ॥१२॥

हे इन्द्र! पृथिवी-जय करके घोरपुत्र वज्रदण्ड तथा काल दैत्य ने पाताल में जाकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। नागगण, राक्षस तथा असुरवृन्द मर्त्यभूमि से आये योद्धाओं को देखकर ससैन्य सज्जित होकर उनके साथ महासमर में प्रवृत्त हो गये। उन नाग-राक्षस तथा दानवों की सेना ने वज्रदण्ड तथा काल की सैन्यमण्डली को छिन्न-भिन्न कर दिया।।८-१२।।

एवं तां वाहिनीं भग्नां दृष्ट्वा कालो महाबलः। चकार गारुडीं मायां वज्रदण्डोऽथ भैरवीम् ॥१३॥
ते नागाः सहसा प्रेक्ष्य दानवा राक्षसास्तथा। भीताः कृतप्रणामाश्च शरणं वशतां गता ॥१४॥
जित्वा पातालराजेन्द्रानाभाषे भवनानि च। रसातलगतः शक्र कालो वज्राह्वयोऽसुरः ॥१५॥
हिलिहिलो भद्रनामा च घोररूपोऽथ दानवः। शंखपालो धृतराष्ट्रो विद्युन्माली महोरगः ॥१६॥
विद्युज्जिह्वो हिरण्याख्यः अन्धकारश्च राक्षसाः। नागराक्षसदैतेयास्तान् दृष्ट्वा क्षुभितो महान् ॥१७॥
अकृत्वा सङ्गरं तैस्तु भीतास्तेषां नतिं ययुः। ते वशे स्थापयित्वा तु पातालानागताः पुनः ॥१८॥

अपनी-अपनी सैन्यमण्डली को रण में भग्न होते देखकर महाबली काल ने गारुड़ी माया तथा वज्रदण्ड ने भैरवी माया का विस्तार किया। यह देखकर नाग, दानव तथा राक्षसगण भीत होकर उनके शरणागत तथा वश में हो गये। हे इन्द्र!

वज्रदण्ड तथा काल दैत्य पाताल के राजाओं को तथा उनकी वाहिनी को पराजित करके रसातल में गये। वहाँ हिलिहिल, भद्र तथा घोरदर्प प्रमुख दानव थे। शंखपाल, धार्तराष्ट्र तथा विद्युन्माली प्रमुख महासर्प थे। विद्युज्जिह्व, हिरण्याक्ष तथा अन्धकार प्रमुख राक्षस थे। इन लोगों ने पृथिवी के असुरगण को देखकर भय से युद्ध किये विना ही नत हो जाना उचित माना। काल के समान वज्रदण्ड वहाँ जयलक्ष्मी (जीत) की स्थापना करके पुनः पाताल के एक अंश में आया।।१३-१८।।

ताराक्षः शिशुपालश्च अभयो यत्र दानवाः। कम्बलस्तक्षकः पद्मो नागा यत्र महाबलाः।
यमदण्डोग्रदण्डश्च विशालाक्षः पलाशिनः ॥१९॥

एवंविधा महाघोरा दैत्यराक्षसपन्नगाः। तान् दृष्ट्वा सहसा योधावागतौ भूमिजौ तदा ॥२०॥

वहाँ ताराक्ष, शिशुपाल तथा अभय नामक असुर; तक्षक तथा पद्म नामक महाबली नाग; यमदण्ड, उग्रदण्ड तथा विशालाक्ष नामक राक्षस प्रधान थे। ये सभी पृथिवी से आये हुये वज्रदण्ड तथा काल को सहसा देखकर उनके साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिये।।१९-२०।।

असिपाशांकुशैर्दण्डैर्महासंग्रामञ्चक्रिरे। निर्जित्य नागरक्षेन्द्रदैतेयानान्तु वाहिनीम् ॥२१॥
प्रणिपातं गताः सर्वे कालवज्रस्य हेतवे। शर्करातालसंज्ञन्तु गतौ तु घोरजौ बलौ ॥२२॥
महिषो यमकालाख्यो दैत्यराजो महाबलः। उरगाः पद्मकर्कोटशंकुकर्णास्तथावशः ॥२३॥
महोदरा महाकाया महाभुजाः क्षपाचराः। शर्करे ते स्थिता जित्वा गतस्ताख्यं ततो गताः ॥२४॥

काल ने वज्र, असि, प्रास, अंकुश, दण्ड के प्रहार से इस नाग, राक्षस तथा दानवराज की सेना को पराजित किया और वे सभी वज्रदण्ड के समक्ष नत हो गये। तदनन्तर घोर दैत्य की दो भागों में विभक्त सेना पाताल के अन्य अंश शर्करातल में पहुँची। वहाँ दैत्यों के राजा महाबली महिष, यम तथा कालाक्ष, सर्पराज पद्म, कर्कोटक तथा शंकुकर्ण एवं राक्षसराज महोदर, महाकाय तथा महातेज पहले तो वश में नहीं आये, परन्तु पृथिवीवासी दैत्यसेना ने इनका भी जय किया। अब घोर दैत्य की सेना पतन्ती नामक पाताल नगरी में पहुची।।२१-२४।।

असुरा शुम्भताराक्ष दनुजा बलदर्पिताः। भोगाः कुलिकसौवर्णस्तथा चापि धनञ्जयः ॥२५॥
उग्ररूपोऽक्षिभद्रश्च विरूपाक्षो निशाचरः। जितास्ते दर्शनादेव गतास्ते च रसातलम् ॥२६॥
कालनेमिर्हिरण्याक्षो निशुम्भो यत्र तिष्ठति। पौण्डरीकश्च दुष्प्रेक्ष्यं श्वेतभद्रं तथोरगाः ॥२७॥
मेघनादी महानादी पिङ्गलाक्षस्तु खेचराः। एवं ते संस्थिता दृष्टा महाबलपराक्रमाः ॥२८॥
सहसा प्रेक्षितौ योधौ मत्तजौ बलदर्पितौ। मोहं गताः समस्तास्ते दैत्यरक्षोमहोरगाः ॥२९॥
तदाज्ञावर्तिनो भूत्वा शुश्रूषां कुर्वते सदा। तं जित्वा चैव पातालं गतावन्यं रसातलम् ॥३०॥

वहाँ शुम्भ, ताराक्ष प्रभृति बलदर्पित असुर; कुलिक, सौवर्ण तथा धनंजय प्रभृति सर्प; उग्ररूप, अक्षिभद्र तथा विरूप प्रमुख राक्षसगण को देखते-देखते वश में करके घोर दैत्य की सेना रसातल के उस अंश में पहुँची, जहाँ कालनेमि, हिरण्याक्ष तथा निशुंभादि प्रमुख दानव; पौण्डरीक, श्वेतभद्र तथा दुष्प्रेक्ष्य प्रभृति सर्प एवं मेघनादी, महानादी तथा पिंगलाक्षादि राक्षसगण स्थित थे। वे सभी महाबली पराक्रमी राक्षस-सर्प-दानवगण मर्त्यलोक से आये बलदर्पित दैत्यवीरद्वय वज्रदण्ड तथा काल को देखकर सहसा मुग्ध हो गये। तब उन सबने आज्ञावर्त्ती होकर इन वीरद्वय की शुश्रूषा किया। इनको जीतकर घोर दैत्य की सेना ने रसातल के अन्य अंश में गमन किया।।२५-३०।।

जरासिन्धुमहासिन्धुर्विरोचनमहासुराः। ऐरावाश्वतरः पिङ्ग उरगा राक्षसास्तथा ॥३१॥
माल्यमारीचकुम्भाख्या एवं यत्र महाबलाः। यत्र प्राप्य महाबाहू वज्रकालाख्यशासनौ।

घोरजौ बलसम्पन्नौ सर्वशास्त्रविशारदौ ॥३२॥
औशनोदिष्टविधिना जित्वा पातालजान् नृपान्। स्ववशे स्थापयित्वा तु आगतौ भूतलं पुनः ॥३३॥
जम्बूद्वीपे यथा स्थित्वा मध्यदेशे उडुम्बरे। पुरे यत्र महाबाहो भार्गवस्तिष्ठते सदा ॥३४॥

इति श्रीदेवीपुराणे ब्रह्मेन्द्रोपदेशे पातालादिजयो नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

वहाँ जरासिन्धु, महासिन्धु तथा विरोचननन्दन प्रमुख असुर थे। ऐराव, अश्वतर तथा पिंगप्रभृति सर्प थे। माल्य, मारीच एवं कुम्भप्रभृति राक्षस थे। ये सभी महाबली वहाँ स्थित थे। सर्वशास्त्रज्ञ, महाबली, महाबाहु वज्रदण्ड तथा काल ने वहाँ युद्ध करके उनको जीत लिया। गुरुकथित विधि के अनुसार पाताल के समस्त राजगण को जीतकर वज्रदण्ड तथा काल वहाँ गये, जहाँ महाबाहु शुक्र स्थित थे।।३१-३४।।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तथा तौ बलसम्पन्नौ वज्रकालौ महाबलौ। पृष्टवान् ग्रहराजेन्द्रं भार्गवं भृगुनन्दनम् ॥१॥
भगवन्नस्मत्तातेन प्रेषिता विनयं प्रति। दिशो गतास्तथा देशाः सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥२॥
निर्जिताः सप्तपाताला वशे कृत्वा च तत्प्रजाः। नृपानुशासने स्थाप्य तव पार्श्वमिहागताः ॥३॥
केनोपायेन इन्द्रादीन् जित्वा स्वर्गं जयामहे। एतदेव ममाचक्ष्व सर्वविद्याकृतश्रम ॥४॥

ब्रह्माजी कहते हैं—महाबली पराक्रमी सैन्य सम्पत्तियुक्त वज्रदण्ड तथा काल ने ग्रहश्रेष्ठ भृगुनन्दन शुक्र से पूछा—भगवन्! हमारे पिता ने हमें दिग्विजय के लिये भेजा है। हमने नाना दिशाओं में जाकर सप्तद्वीपा वसुन्धरा को जीता है। वहाँ की प्रजाओं को वश में करके वहाँ के राजागण को अपने अधीन करके उनको पुनः उनके ही सिंहासन पर स्थापित करके आपके पार्श्वस्थ इस स्थान पर हम आये हैं। हम किस उपाय से इन्द्रादि देवगण को जीतकर स्वर्ग पर अधिकार कर सकते हैं? हे सर्वविद्या पारदर्शिन्! वही कहिये।।१-४।।

शुक्र उवाच

जम्बूद्वीपं समस्तन्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा। पातालाः सुखसाध्यास्तु दिवं दुःखेन सिध्यति ॥५॥
यस्मिंस्तिष्ठति देवेशः सर्वदेवनुतो हरिः। विष्णुः सर्वात्मको देवो ब्रह्मा वेदविशारदः ॥६॥
बृहस्पतिर्महाप्राज्ञो अर्थशास्त्रकृतश्रमः। इन्द्रो महाबलश्चैव धनदो वह्निनिर्ऋतौ ॥७॥
मरुद्वायुर्यमो यत्र यत्र चन्द्रदिवाकरौ। विश्वेदेवा वसुरुद्रा ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥८॥

भगवान् शुक्र कहते हैं—समस्त जम्बूद्वीप, सप्तद्वीपा पृथिवी, पातालादि को अनायास जीता जा सकता है, लेकिन स्वर्ग को जीत सकना दुःसाध्य है; क्योंकि सर्वदेवपूजित देवदेव शिव, सर्वस्वरूप देवश्रेष्ठ विष्णु, वेदविशारद ब्रह्मा, अर्थशास्त्र के ज्ञाता महाप्राज्ञ बृहस्पति, महाबली इन्द्र, कुबेर, अग्नि, निर्ऋति, वायु, वरुण, चन्द्र, सूर्य, विश्वदेव, आठो वसु, एकादश रुद्र, ग्रह, नक्षत्र तथा तारामण्डल वहाँ स्थित हैं।।६-८।।

न जेतुं शक्यते कालं दिवं धर्मेण रक्षितम्। राजधर्मोपदेशेन भूपातालानि भुञ्जथ ॥९॥

अन्यथा धर्मतः प्राप्तं राज्यं नाशमुपैति हि। मार्जारमूषिकं यद्वद्युद्धं ध्वाङ्क्षोलूकं यथा ॥१०॥
महिषाश्वं यथा युद्धं यथा दन्तिमृगाधिपम्। एवं युष्मत्सुरैः सार्धं युद्धमेकाङ्गमुच्यते।
युद्धभोगं तथा कालं देशञ्चैव न जानता ॥११॥
अस्मद्रिपुबलाशक्तिं ये युध्यन्ति नराधिपाः। आत्मनाशं व्रजन्त्येते नृपा नयपराङ्मुखाः ॥१२॥

हे काल! धर्मरक्षित स्वर्ग को जय कर सकना सम्भव नहीं है। राजधर्म के उपदेशानुसार पृथिवी तथा पातल का भोग करो, नहीं तो धर्मतः प्राप्त राज्य का भी नाश हो जायेगा। जैसे बिल्ली-चूहा, कौआ-उलूक, घोड़ा-भैंसा, सिंह-हाथी महायुद्ध करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग का देवताओं से युद्ध भी इसी प्रकार का कहा गया है। अपनी तथा शत्रु की समृद्धि तथा बल, देश-काल, अपनी तथा शत्रु की सैन्यादि शक्ति को विना जाने जो राजागण युद्धरत होते हैं, वे नीतिविमुख राजागण नष्ट हो जाते हैं।।११-१२।।

नयो हि बलवान् युद्धे दैवसम्पत्समन्वितः। तथा पुरुषकारन्तु बुद्ध्वा युध्यन्ति ये नृपाः ॥१३॥
ते जयं शत्रुनाशन्तु लभन्ते अविचारणात्। पृथ्वी पुरवरैर्युक्ता सशैलवनकानना ॥१४॥
यावज्जीवं स्थिरा तेषां येषां नीति क्रमागता। धर्मेण प्राप्य राज्यं ते धर्मदेव जयो भवेत् ॥१५॥

युद्धकार्यार्थ नीति फलदायिनी होती है। दैवी सम्पत्तियुक्त पुरुषार्थ ही बलवान होता है। ऐसा जानकर जो युद्ध करता है, उसे जय मिलती है तथा वही शत्रुनाश कर सकने में समर्थ होता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह नगर-वन-कानन-पर्वतयुक्त धरती उनके पास ही जीवनपर्यन्त स्थिर रहती है, जो पुरुषार्थ के साथ नीतिपथ का त्याग नहीं करते। धर्मबल से ही राज्यप्राप्ति तथा धर्मबल से ही विजय होती है।।१३-१५।।

देवाश्च रुद्रब्रह्मेन्द्रकेशवा रविचन्द्रमाः। तेषां यो योधुमिच्छेत स कथं जायते सुखी ॥१६॥
न युद्धेन विना देवाः सिध्यन्ति हि क्वचिद् द्विषाः। युद्धे घातं भवेद्वत्स बन्धुवर्गपरिक्षयः ॥१७॥
क्षयं याति धनं युद्धे अश्वदन्तिमहाबलाः। समेऽपि पुनर्विषमे यत्र शङ्करकेशवौ ॥१८॥

किन्तु रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा सूर्यप्रभृति देवगण का जो वध करने की इच्छा वाले हैं, वे कैसे सुखी होंगे? हे वत्स! युद्ध के विना देवलोक में तुमलोगों का कार्य कभी भी सिद्ध नहीं होगा। युद्ध का फल प्राणीवध है। बन्धुवर्ग का विनाश भी युद्ध का फल है। धनक्षय, अश्व-हस्ति तथा प्रधान सैन्य सामन्त का क्षय भी युद्ध में होता है। सभी युद्धों में यही होता है, विशेषतः जहाँ हरि-हर विद्यमान हैं, वह तो विषम युद्ध है, उसके लिये क्या कहूँ? क्षुद्र ब्राह्मण की तो बात ही क्या? महात्मा शंकर एवं केशव जहाँ हैं, वहाँ तो विषम युद्ध है अर्थात् विजययोग्य युद्ध नहीं है।।१६-१८।।

काल उवाच

दृष्टीविषा महाघोरा अनन्ताद्या महोरगाः। निर्जिता असुरा रक्षाः पातालतलवासिनः ॥१९॥
न हि मे शक्यते जेतुं शङ्करेण महात्मना। किम्पुनर्देवराजेन ब्राह्मणेन वराकिणा ॥२०॥
वज्रदण्डसहायस्य मम खड्गकरस्य च। सङ्गरे को भवेच्छक्तः कालपाशेन कर्षितः ॥२१॥
ब्रह्मा वा यदि वा रुद्रः सर्वदेवनमस्कृतः। अस्माकं निर्जिता पृथ्वी तथा पातालगोचरा ॥२२॥
स्वामिनो दर्शनादेव दिवं प्राप्तं ततो यदा। जयस्तथा भवेत् कीर्तिः पराजयः परागतिः ॥२३॥

काल कहता है—जिनकी दृष्टि में विष है, ऐसे महाघोर अनन्त आदि विषधर, दैत्य तथा राक्षसों पर हमने विजय पायी है। वज्रदण्ड के हमारे सहायक रहते तथा मेरे हाथों में खड्ग रहते युद्ध में मेरा शत्रु कौन बचेगा? हमें तो महात्मा शंकर भी नहीं जीत सकते, तब देवराज तथा ब्राह्मणों की तो बात ही क्या है? यदि शत्रु ब्रह्मा ही हों अथवा सर्वदेव-नमस्कृत रुद्र

ही क्यों नहीं हों, वे सभी कालपाश से आकृष्ट होंगे ही। हमने पृथिवी को जय किया है। पातालस्थ सर्पादि को पराजित किया है। अब जब प्रभु का दर्शन करके स्वर्गजय करने हमलोग जा रहे हैं, तब निश्चय ही विजय तथा कीर्त्ति प्राप्त होगी एवं विपक्ष को पराजय मिलेगी।।१९-२३।।

प्रस्थिता ग्रहशार्दूल अनुज्ञां दातुमर्हसि। एवं शुक्रं समापृच्छ्य नभो मासे तु चोत्तरे ॥२४॥
दिशञ्चोत्तरऋक्षे च द्वितीयायां ततो गतौ। नन्दनं तौ वनं गत्वा सर्वसैन्येन तिष्ठतः ॥२५॥

हे ग्रहश्रेष्ठ! हम प्रस्थान कर रहे हैं। आप आज्ञा दीजिये। इस प्रकार से गुरु से कहकर श्रावण मास की द्वितीया तिथि को उत्तरा नक्षत्र में वे लोग उत्तर की ओर गये। काल तथा वज्रदण्ड इस प्रकार साथ ही साथ नन्दनकानन में पहुँचे।।२४-२५।।

यमान्तकः पूर्वदिशि मेरौ घोरस्तु चोत्तरे। पश्चिमे वज्रदण्डस्तु कालो दक्षिणतः स्वयम् ॥२६॥
एवं ते वेष्टयित्वा तु कोटिकोटिगुणेन तु। आरुरुहुः पुरीं याम्यां मेरोरूर्ध्वमधिष्ठिताम् ॥२७॥
अनेकपरिखोपेतां वैवस्वतीं महोज्ज्वलाम्। तत्र ते कृष्णघोरास्या दण्डपाणिमहाबलाः।
यमश्चारुह्य महिषं कालपाशकरोद्यतः ॥२८॥

सुमेरु पर्वत के पूर्वभाग में यमान्तक दैत्य ने, घोर दैत्य ने उत्तर में, वज्रदण्ड ने पश्चिम में तथा दक्षिण में स्वयं काल ने उस प्रदेश को घेर लिया। इस प्रकार करोड़ों सैनिकों द्वारा सुमेरु को घेर कर सुमेरु के ऊर्ध्वभाग में स्थित अनेक परिखा-समन्विता महोज्वला वैवस्वती पुरी के निकट पहुँचे। वहाँ कृष्णवर्ण कराल मुख वाली सैन्यमण्डली के साथ महाबली दण्डपाणि कल्प-पाश हस्तधारी महिषवाहन यमराज आये।।२६-२८।।

ततः सा दानवी सेना युद्ध्यमाना महाहवे। दारिता यमराजेन स्वबलेन महात्मना ॥२९॥
तां भग्नां सहसा दृष्ट्वा क्रोधेन तु सुदीपितः। उत्थन् हालाहलः शक्र महाबलपराक्रमः ॥३०॥
पर्शुना तु सतेजेन सूर्यायुतप्रभेण च। जिघांसन् यमजां सेनां पद्मिनीमिव दन्तिनः ॥३१॥
यमान्तकस्तथा चक्रे महामायात्मकं बली। महिषं यमभङ्गाय महिषस्य महाबलम् ॥३२॥
काले चैव कृतान्ते च दण्डिना विनिपातिते। एकधा दशधा चापि शतधा च सहस्रधा ॥३३॥
अयुतां लक्षकोटीनि मायावी वै विनिर्ममे। तैर्दृष्ट्वा धर्मराजस्तु चात्मानं शतधावृतम् ॥३४॥

तब वह दानवसेना इस महासमर में युद्ध करते हुये यमराज द्वारा छिन्न-भिन्न होने लगी। हे इन्द्र! प्रधान दानवगण इस युद्ध में अपनी वाहिनी को सहसा रण में भग्न होते देखकर अतीव क्रोध से उद्दीप्त हो उठे। तब अत्यन्त प्रबल हालाहल शब्द उठा। जैसे हाथी पद्मिनी का अपने दातों से दलन करते हैं, उसी प्रकार यमान्तक ने अयुत सूर्यों के समान प्रभावशाली यमसेना को नष्ट करने के लिये, यम के महिष को तथा यम को रण में भग्न करने के लिये उसने एक महाबली महिष की सृष्टि माया से किया। उसने ऐसी माया का प्रदर्शन किया, मानों वे काल कृतान्त दण्डपाणि यम हाथी द्वारा गिरा दिये गये हों और वीरों ने उनको एक, दस, सौ, हजार, अयुत, लाख तथा करोड़ों भाग में छिन्न-भिन्नकर दिया हो। धर्मराज यम ने मायावी गणों द्वारा अपने को सैकड़ों भाग में खण्डित देखा।।२९-३४।।

वाहनास्त्राणि सन्त्यज्य गतवान् पावकीं पुरीम्। दुर्निरीक्ष्यां रिपुघोरस्तस्य दृष्ट्वा तु वाहिनीम् ॥३५॥
अजारूढां समस्तास्ते वह्निना सह सङ्गरम्। तं वह्निं ज्वालालक्षेण कालानलमिवोत्थितम् ॥३६॥
ददाह सहसा शक्र वज्रदण्डस्य वाहिनीम्। पुरी तेजस्वती तस्य ताम्रप्राकारतोरणा ॥३७॥
स्रुवहस्तास्तथा विप्रा उत्थिता बहुलक्षधा। ध्यानेन तेऽदहन् सर्वां वाहिनीं विभुघोरजाम् ॥३८॥

यह देखकर उन्होंने अपना अस्त्र-शस्त्र त्याग दिया तथा अग्निलोक चले गये। दानवराज घोर ने देखा कि अग्निलोक में (अग्नि) कृशानु की सभी सैन्यमण्डली दुर्निरीक्ष्य तथा बकरे पर आरूढ़ है। उसी के अनन्तर अग्नि ने विषम समरानल प्रकट किया। हे इन्द्र! वह अग्नि प्रज्ज्वलित होकर लाखों शिखाओं से युक्त होकर घोरपुत्र वज्रदण्ड की सैन्यमण्डली को दग्ध करने लगी। अग्निनगरी अत्यन्त तेजस्वी थी। नगरी के प्राकार तथा तोरणादि ताम्र वर्ण अथवा ताम्रमय थे। वहाँ पर लाखों लाख स्रुवधारी ब्राह्मण उठ खड़े हुये। वे दैत्यराज घोर के सैन्यसमूह को अपने ध्यानप्रभाव से दग्ध करने लगे।।३५-३८।।

एवं दृष्ट्वा तथा कालो दण्डिना सर्वगेन च। मायामेघसमुत्थेन वारिणा तूपशामयेत्॥३९॥
चेतसामृतदावान्यैः सर्वान् क्रूरान् प्ररोहयेत्। एवं तच्छमितं तेजो वह्निक्रोधसमुद्भवम्॥४०॥
ववर्ष पङ्कशैवालकदलीन्दीवराणि च। एवं तत्पावको दृष्ट्वा स्वसैन्यं दण्डनिर्जितम्॥४१॥
त्यक्त्वा तेजोऽभिमानन्तु गत इन्द्रामरावतीम्। इन्द्रेण तौ समायातौ दृष्ट्वा यमहुताशनौ॥४२॥

काल दैत्य ने यह देखकर दण्डी तथा सर्वग नामक असुर के साथ मायामयी मेघसृष्टि करके उसके जल से इस अग्नि को बुझा दिया। मायामयी जलधारा से मानों उन क्रूर प्रकृतियुक्त राक्षसों को पुनर्जीवन मिल गया। अब कृशानु (अग्नि) के क्रोध से उत्पन्न अपरिमेय तेजोराशि केवल कीचड़, शैवाल, कदली तथा इन्दीवर-वर्षण का कारण ही रह गयी। इस मायामयी सृष्टि के कारण अग्नि दैत्यों को पराजित नहीं कर सकी। अब वैश्वानर अग्नि ने अपनी सेना को असुरों से पराजित होते देखकर अपने तेज का अभिमान त्याग दिया और इन्द्र की अमरावती पुरी की ओर चले गये। किम्बहुना इन्द्र ने यम को भी अग्नि के साथ आते देखा।।३९-४२।।

महाक्षोभं समास्थाय गजराजं रुरोह सः। उदयाचलसङ्काशं सिन्दूरारुणविग्रहम्॥४३॥
घण्टाकिङ्किणीशब्दाढ्यं चामरैरुपशोभितम्। चतुर्दन्तं महानागं सुरशत्रुभयावहम्॥४४॥
आरुरोह सुराध्यक्षो वज्रपाणिर्महाबलः। मातलिञ्च पुरस्कृत्य विश्वेदेवास्तथापरे॥४५॥

इन्द्र ने यम तथा अग्नि को वापस आते देखकर वास्तविकता को जाना तथा महाक्षोभयुक्त होकर ऐरावत महागज को बुलवाया, जो उदयाचल के समान विशाल तथा सिन्दूर जैसा अरुणविग्रह था। वह घण्टा-किंकिणि शब्द से शब्दित, चामरादि से शोभित, चार दाँतों से युक्त था। वज्रपाणि महाबली अमराधिपति इन्द्र ने मातलि को आगे करके उस गजराज पर आरोहण किया। यह महागज सुरशत्रुगण को भय देने वाला था।।४३-४५।।

वैष्णवा वारुणा सौम्या ऐन्द्राश्चान्द्रास्तथैव च। कुबेरो धनदश्चन्द्रो वायुर्वरुण एव च॥४६॥
श्रुत्वा देवेन्द्रसङ्ग्रामं सर्वे तत्र युयुत्सवः। आगताः क्षणमात्रेण स्वायुधोद्यतपाणयः॥४७॥
एवं ते त्रिदशाः शक्र सशक्राः सङ्गरोत्सुकाः। श्रुत्वा देवः स्वयं तत्र ह्यागतो गरुडध्वजः॥४८॥
इन्द्रस्तु परमं देवं शंखचक्रगदाधरम्। दृष्ट्वा पपात चरणे भक्त्या स्तोत्रेण पूजयेत्॥४९॥

युद्ध-संवाद जानकर विश्वेदेव, वरुण, चन्द्र, इन्द्र, विष्णु की दक्ष-दल सेना, स्वयं धनाध्यक्ष कुबेर, चन्द्र, वायु, वरुण प्रभृति इन्द्रदेव के पास युद्ध के लिये इच्छा लेकर अपने-अपने अस्त्र हाथों में लेकर क्षणमात्र में वहाँ उपस्थित हो गये। हे इन्द्र! इन्द्र की प्रमुखता (अध्यक्षता) में ये सब देवता युद्धार्थ उत्सुक हैं—यह जानकर स्वयं गरुड़ध्वज विष्णु भी वहाँ आ गये। इन्द्र ने जब परमदेवता शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हरि को देखा तब उनके चरणों में भक्ति के साथ गिरकर स्तव करने लगे।।४६-४९।।

इन्द्र उवाच

नमस्ते देवदेवेश सर्वदेवमय प्रभो। शंख चक्र गदा हस्त वनमाला विभूषण ॥५०॥
श्रीवत्साङ्क महाकाय कौस्तुभोरस्कमण्डित। देवारिनाश देवेश वेदगर्भ नमोस्तु ते ॥५१॥
देवमूर्तिरमूर्तिश्च वेदयज्ञफलप्रद। त्रिमूर्तिस्त्रिगतिर्देव भक्तानां भयनाशन ॥५२॥
सममित्रार्युदासीन रिपुणां कुलनाशन। त्राहि मां देवदेवेश पीतवासो जगत्पते ॥५३॥
दानवैर्बाधिता देवास्त्वामेव शरणं गताः। निर्जितो यमयज्ञेशो वह्निर्दीप्तिसमन्वितः ॥५४॥
एवं त्वं भगवन् प्राप्तः किं करोमि तदादिश। तथा श्रुत्वा वचो विष्णुः कृपया शक्रभाषितम् ॥५५॥

इन्द्र कहते हैं—हे सर्वदेवेश्वर! सर्वदेवमय प्रभो! हे शंख-चक्र-गदा-पद्म-वनमालाविभूषित! आपको नमस्कार है। हे श्रीवत्स-चिह्नित महाकाय! हे कौस्तुभशोभित वक्षःस्थल! हे दैत्यसूदन! हे वेदगर्भ! हे देवेश! आपको नमस्कार है। हे देव! वेद आपकी मूर्त्ति हैं। आप निराकार हैं। वेदोक्त यज्ञादि का फल आप ही प्रदान करते हैं। आप त्रिमूर्त्तिरूप हैं। हे भक्तभयनाशक! सात्त्विक-राजस-तामस गतित्रय भी आप ही की हैं। हे शत्रु-मित्र-उदासीन-समदर्शिन्! असुरकुलनाशक! हे देवदेवेश! हे पीताम्बर! हे जगदीश्वर! आप हमारी रक्षा करें। दानवताड़ित देवता आपके ही शरणापन्न हैं। दानवों ने युद्ध में यम तथा शक्तिमान अग्नि को पराजित कर दिया है। अब आपका आगमन हो गया है, आप ही आदेश कीजिये कि हम क्या करें। उनके इस वचन को सुनकर भगवान् विष्णु इन्द्र पर कृपा करके इस प्रकार कहने लगे।।५०-५५।।

प्रोवाच विहसन् देवो मा भैषीर्मम सन्निधौ। यद्यपि देवदेवेश उमादेहार्धहारिणः ॥५६॥
आगतस्तस्य देवेन्द्र तथापि अरिर्हन्यताम्। किन्तु कारणसद्भावं कथयामि शृणुष्व तत् ॥५७॥

भगवान् विष्णु सहास्य कहते हैं—मेरे पास तुम्हें कोई भय नहीं है; किन्तु हे महेन्द्र! यद्यपि अर्द्धदेह में उमा को धारण करने वाले देवदेवेश ईश्वर तुम्हारे पक्ष में आये हैं, तथापि इस युद्ध को त्याग देना ही उचित है। इस विषय में एक कारण-विशेष है, उस श्रवण करो।।५६-५७।।

विष्णुरुवाच

आसीद् दुन्दुभिनामाऽसावसुराणां प्रभूत्तमः। तेन जिताः सुरा सर्वे ब्रह्मवरप्रभावतः ॥५८॥
अजेयो ब्रह्मसूर्याणां यमस्यास्माकमेव च। तदा निर्जित्य देवांस्तु स्वर्गाच्च्यावयते किल ॥५९॥
तावत्तस्य महाबाहो ईशः शैलङ्गमोऽभवत्। तदा पश्यति देवेशीं शङ्करस्य तनुस्थिताम् ॥६०॥
तां दृष्ट्वा क्षोभमापन्नः कामविह्वलचेतनः। देवीं समुद्यतो वक्तुं देवेन च स ईक्षितः ॥६१॥
ततः स सहसा दग्धो नेत्रजेनानलेन तु। देवदेवस्य कोपेन दानवो भस्मतां गतः ॥६२॥
सायुधः सरथः क्रूरः सपदातिः सवाहनः।

भगवान् विष्णु कहने लगे—पूर्वकाल में दुन्दुभि नामक असुरगण का एक महाराजा था। ब्रह्मा के वरप्रभाव से वह सूर्य, अग्नि, यम तथा हम सबके लिये अजेय था। उसने सभी देवगण को पराजित किया था और उनको स्वर्ग से भ्रष्ट भी कर दिया था। हे महाबाहो! जब शिवजी पर्वतविहार कर रहे थे तब उस दैत्य के मन में महारूपवती उमा को देखकर विकार आ गया। विह्वलचित्त होकर जब वह देवी को ग्रहण करने के लिये उद्यत हुआ, तभी महादेव ने उसे क्रोधदृष्टि से देखा। तदनन्तर क्रूरप्रकृति दुन्दुभि दानव शिव भी क्रोधदृष्टि की अग्नि में अस्त्र-शस्त्र, रथ, पदाति सेना तथा वाहनों के साथ तत्काल ही भस्मीभूत हो गया।।५८-६२।।

सहसा भस्मीभूतं तं दृष्ट्वा देवस्त्रिलोचनः ॥६३॥

रक्तपीतासितश्यामा भस्माद्धूरितमेव च। गृहीत्वा सितभस्मेन देवीञ्चाप्यवधूनयत् ॥६४॥
तस्य हस्तकरास्फालाद् बन्धूननावसानतः। उद्भूता महति वर्तिः सर्ववर्णकभूषिता ॥६५॥
तां तपन्तीं समालोक्य उमां देवनमस्कृताम्। तस्मिन् समुद्भवा च्छाया सर्वलक्षणलक्षिता ॥६६॥
द्वितीयं देवभागन्तु याचमाना महाबला। तदा उमा ददौ शापं स्मृत्वा घोरं महासुरम् ॥६७॥

त्रिलोचन भगवान् शिव ने दुन्दुभि दानव को भस्मीभूत हो गया देखकर उसके देह की रक्त-पीत-सित तथा श्यामल भस्म में से जल्दी से श्वेत (सित) भस्म ग्रहण करके देवी को लगा दिया। भस्म मलना समाप्त होने पर उस भस्म को हथेली में रखकर मर्दित किया, जिससे एक बत्ती तैयार हो गई। वह नाना वर्ण से सुशोभित थी। उस बत्ती से सर्वलक्षणलक्षित एक (छाया) दानवमूर्त्ति का प्रादुर्भाव हो गया। वह मूर्त्ति शिव के वाम भाग की (उमा को पाने की) प्रार्थना करते-करते अग्रसर होने लगी। उमा ने यह देखकर उस घोर महासुर को स्मरण करके दारुण शाप प्रदान किया।।६३-६७।।

गच्छ पाप दुराचार भूतलं त्वं महाबल। तथारूपो भवेद्घोरो नीलमेघसमप्रभः ॥६८॥
महारूपो भयं दत्वा ससुरासुररक्षसाम्। देवेन तं तदा दृष्ट्वा किमेतद्भवतीकृतम् ॥६९॥

देवी कहती है—हे पापिष्ठ महाबल! पापिष्ठ दुराचारी! तू मृत्युलोक में पतित हो। तब वह नीलमेघ प्रभासम्पन्न घोर दैत्य उसी प्रकार पृथिवी पर उत्पन्न हो गया। उसे देखकर देव, दानव, राक्षस सभी भयग्रस्त हो गये। देवदेव ने यह देखकर उमा से कहा—यह तुमने क्या किया?।।६८-६९।।

स एव निर्जितः शत्रुरस्माकं वधमुद्यतः। न युक्तं शत्रुपक्षस्य वृद्धिं दातुं कदाचन ॥७०॥
यश्च कारणद्रव्याणां सविशेषं कृतं मुदा। मोचते कृपया मूढः स एव निधनं व्रजेत् ॥७१॥
निपात्य साखिलं सर्वं मूलं यस्य न खन्यते। स एव स्याद्वली भूयो बदरी इव शोभते ॥७२॥
तथा त्वमपि दुर्बुद्धेर्मयायं विनिपातितः। देवानां विघ्नकर्ता च ऋषिब्राह्मणत्रासकः ॥७३॥
न युक्तं द्विजदेवानां शत्रुवर्गस्य वर्धनम्। मन्दबुद्धे सदा बाले स्त्रीस्वभावेन वर्त्तसे ॥७४॥

इस शत्रु का तो ध्वंस कर देना था। वह पराजित शत्रु ही अब हमारे वध को उद्यत हो गया है। शत्रुपक्ष की वृद्धि होने देना उचित नहीं है। जो व्यक्ति कृपापरवश होकर शत्रु का विना अन्त किये छोड़ देता है, वह मूर्ख निश्चित ही निधन को प्राप्त होता है। जिसको समूल नष्ट नहीं किया जाता, वह शाद्वल भूमि में बदरी वृक्ष को ऊपर-ऊपर से काट देने पर भी उसकी जड़ को छोड़ देने जैसा कृत्य करता है; क्योंकि बची हुई जड़ से पुनः वह वृक्ष क्षुप्रबुद्ध होकर उग आता है। तुमने भी दुर्बुद्धि के कारण इस देवविघ्नकर्त्ता, ऋषि-ब्राह्मणों को त्रास देने वाले असुर को नाश करने का भार मेरे ऊपर रख दिया। देव-द्विजगण के शत्रु को बढ़ने देना उचित नहीं है। हे मन्द बुद्धि बालिके! तुममें पूर्णतः स्त्रीगण का स्वभाव विद्यमान है।।७०-७४।।

इत्युक्ता शम्भुना देवी क्रुद्धा तमवलोक्य सा। मद्भक्तिपरमो भूत्वा सर्वदेवान् जयिष्यति ॥७५॥
विष्णुभावः परो ह्येष अवध्योऽयं भविष्यति। कुशद्वीपपुरावासी चन्द्रशोभां भविष्यति ॥७६॥
सप्तद्वीपाः सपातालाः सप्तलोकाः सवासवाः। एतदाज्ञाकरो भूत्वा अजेयोऽयं भविष्यति ॥७७॥

भगवान् शिव की यह बात सुनकर भगवती अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं तथा उस असुर की ओर देखते-देखते कहने लगीं—यह असुर विष्णुभक्ति के बल से सभी देवगण को जय करेगा तथा अवध्य होगा। कुशद्वीपान्तर्गत चन्द्रशोभापुर में इसका निवास स्थान होगा। सप्तद्वीपा पृथिवी, सप्त पाताल एवं इन्द्रादि लोकपालगण के साथ सप्तलोक पर इसकी आज्ञा चलेगी। यह असुर अजेय होगा।।७५-७७।।

निशम्य वचनं देव्या उन्मार्गगतिभाषितम्। शशाप रोषमाविश्य त्वञ्च मर्त्यं गमिष्यसि।
तत्र चैष दुराचारः पतित्वं याचयिष्यति ॥७८॥

भगवान् शिव ने क्रोध के वशीभूत हो गई देवी के इस वाक्य को सुनकर, जो कि असुर को उन्नति देने वाला था, देवी को अभिशाप दिया कि तुम भी मर्त्यलोकवासिनी होगी। तब यह दुराचारी दैत्य तुम्हारा पति होने के लिये उद्यत होगा।।७८।।

तदा क्रोधानलाद्दीप्ता सा शपेतासुराधिपम्। नीलमेघनिभाकारं यममहिषमिवापरम्।
क्रीडमाना हनिष्यामि पञ्चाननव्यवस्थिता ॥७९॥

तब देवी ने क्रोध से प्रज्ज्वलित तथा आरक्तमुखी असुर को शाप दिया—ऐसा होने पर मैं सिंहारूढ़ा होकर क्रीड़ा करते-करते अन्य यमराज के समान इस नीलमेघ के समान दैत्य का क्रीड़ा से ही पञ्चाननव्यवस्थिता होकर विनाश करूँगी।।७९।।

उवाच कुपिता देवी देवोऽपि च तथैव ताम्। एवं पूर्वं सुराध्यक्ष शम्भुना वज्रनिर्मितः ॥८०॥
दुन्दुभेर्देहजो भूत्वा मम भक्तिपरायणः। चन्द्रशोभापुरावासी मदीयार्चासदोद्यतः ॥८१॥
तस्येदं शासनं प्राप्तं ब्राह्मणैरपि दुःसहम्। किम्पुनः सर्वयत्नेन सबलो यदि दानवः।
आगतो घोरनामाऽसौ रुद्रादीनपि संहरेत् ॥८२॥

तब देवी के अभिशाप को सुनकर शिव ने भी देवी को अभिशाप दे दिया। हे सुरेन्द्र! शिव द्वारा भस्म से निर्मित एवं दुन्दुभि देह से सम्भूत चन्द्रशोभापुरवासी यह असुर मेरा भक्त तथा प्रतिमूर्त्तिरूप है। उसका आदेश ब्राह्मणगण के लिये भी पालनीय है। अभी यह घोर दैत्य सैन्य सामन्तों के साथ सर्व प्रकार के यत्न से आया है। अभी तो यह रुद्रादि का भी संहार कर सकता है।।८०-८२।।

तच्छ्रुत्वा तु हरेर्वाक्यं किं करोमि प्रभो वद। त्वया दत्तं मम स्वर्गं यज्ञा सर्वाश्च रक्षिता ॥८३॥
इन्द्राणां त्वं प्रभुः स्वामी देवानां त्वञ्च पालकः। इत्युक्ते वदते विष्णुः शृणु शक्र समाहितः।
तत्रागतो महाबुद्धिर्वाचस्पतिबृहस्पतिः ॥८४॥

विष्णु का यह वचन सुनकर इन्द्र कहते हैं—प्रभो! मैं क्या करूँ? आपने ही मुझे स्वर्गराज्य दिया है। आप ही यज्ञरूप से हमारी रक्षा करते हैं। आप ही इन्द्रगण के प्रभु, देवगण के स्वामी तथा पालक हैं। इन्द्र की यह बात सुनकर विष्णु ने कहा—इन्द्र! एकाग्रचित्त से सुनो। इसी समय वहाँ वाचस्पति बृहस्पति आये।।८२-८४।।

बृहस्पतिरुवाच

यस्य शासनमात्रेण सर्वे देवाः सभास्कराः। शमिता वसुयुक्ताश्च वारिणा इव पावकः ॥८५॥
तस्य कः शक्यते युद्धे सबलस्य निपातितम्। ब्रह्मा वा यदि वा रुद्रः सामनयविवर्जितः ॥८६॥
अजेयः सर्वदेवानामेतद् दत्तं त्वया प्रभो। उमया तच्च पूर्वे च सर्वदेवारिकण्टकः ॥८७॥

बृहस्पति कहते हैं—जिसके शासनमात्र से सूर्य अथवा यमप्रभृति समुदय देवगण जैसे जल से अग्नि बुझ जाती है, उसी प्रकार सैन्यसमन्वित उस असुर को मारना किसके लिये साध्य है? हे प्रभो! भगवन्! आपने जब वर दे दिया है, तब कोई देवता यहाँ तक कि ब्रह्मा भी आपके भक्त दैत्य पर विजय नहीं पा सकते। पूर्व में दुर्गा ने भी यही वर उसे दिया था। वह समस्त देवताओं से अजेय हो जाय, यह वर आपने उसे दिया है।।८५-८७।।

सर्वास्त्रतत्त्ववेत्ता च सर्वधर्मपरायणः। तथा भक्तिपरा देव तथा भार्या पतिव्रता ॥८८॥
लोकपालः प्रजापालो धर्मवर्त्मन्यवस्थितः। तथा प्रभूतभूपालाः कोटिकोटिगुणाहताः ॥८९॥
दन्तिनां यस्य मत्तानामश्वानाञ्च चतुर्गुणाः। ऐरावतसमाः सर्वे सचला इव भूधराः ॥९०॥

वह दैत्य सर्वधर्म-परायण, सर्वास्त्र-विशारद, सर्वतत्त्ववेत्ता है। भक्तिपरायण है और उसकी पत्नी भी पतिव्रता है। हे प्रजापालक! वह धर्मपक्ष पर स्थित रहकर लोकों का पालन करता है। कोटि-कोटि बलविक्रमयुक्त राजागण को उसने नष्ट किया है। उसके उत्तम अलंकार से भूषित दृप्त अश्वसमूह तथा उससे भी चतुर्गुण ऐरावतस्वरूप सुशोभित मत्त हस्तिसमूह मानो जंगम पर्वतों के समान प्रतीत होते हैं।।४४-९०।।

नारायणास्त्रब्रह्मास्त्रशिवाश्चान्येऽथ वारुणाः। तस्य एवंविधः शत्रोर्विनाशः केन क्रियताम्।
देशकालक्रमज्ञापि एकाङ्गं प्रतिभाषते ॥९१॥
मुक्तस्त्रासकृतैर्दोषैः क्रोधजैश्च तथैव च। एकादीन् सप्त यो वेत्ति स गुणी गुणिनां वरः ॥९२॥
अश्वमहिषमार्जार-आखु काकोलुकं यथा। न युद्धं श्रेयसे देव उरगा नकुलैः सह ॥९३॥

इति श्रीदेवीपुराणे (ब्रह्मोपदेशे) बृहस्पतिवाक्यानि नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, शैवास्त्र, वारुणास्त्र-प्रभृति सभी अस्त्र-शस्त्र उसके पास हैं। ऐसे शत्रु का विनाश कौन कर सकता है? वह दैत्य देश-कालक्रम के अनुसार बातें कहता है। एक के साथ बात करते-करते बीच में बात को रोककर अन्य से बातें नहीं करने लगता। उसमें कामज-क्रोधज वासना नहीं है। गुणीगण में श्रेष्ठ वह असुर सप्त अंगों में से प्रत्येक का ज्ञाता है। भैंसे से घोड़े का, बिल्ली से चूहे का, काक के साथ उलूक का तथा नकुल के साथ सर्प का युद्ध श्रेयस्कर नहीं है। उसी तरह यह युद्ध भी देवताओं के लिये श्रेयस्कर नहीं है।।९१-९३।।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

●

पञ्चमोऽध्यायः

भगवानुवाच

सत्यमेव महाप्राज्ञ बृहस्पति वचस्पते। त्वमेव वेदितुं योग्यः सर्वन्यायविवेचकः ॥१॥
शम्भुगीता नया यस्य औशनाश्च तथा निजाः। मदीया ब्रह्मगीताश्च वेत्ति यः स वचस्पति ॥२॥
त्वया इन्द्रस्य नाथेन सचिवेन महात्मना। को न बाधयितुं शक्यः शूलपाणिरपीहया ॥३॥

भगवान् कहते हैं—हे महाप्राज्ञ बृहस्पति! तुमने सत्य कहा है। तुम सभी न्यायविषयों में विशारद हो, तुमने इस सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य जान लिया है। तुमको शिवगीता, ब्रह्मगीता, मेरी गीता, शुक्रगीता तथा नित्यगीता सम्पूर्णतः अवगत है। इसी कारण तुम वाचस्पति हो। हे महात्मन्! तुम इन्द्र के सचिव हो। तुम्हारे रहते इन्द्र किसको पराजित नहीं कर सकते। तुम्हारे रहते वे साक्षात् शूलपाणि को भी वश में कर सकते हैं।।१-३।।

सर्वगुणप्रधाना ये दुर्विज्ञेया महात्मभिः। योगिभिः षड्गुणा एव मन्त्रिभिः सन्धिवादिभिः ॥४॥
विभिन्नाः सन्धिसन्धाने समदोषाश्च बाधयः। सन्यत्ते समतेजस्तु सचिरं भिषजौ वरौ ॥५॥
त्वं त्रिकालनयं वेत्ता सर्वविद्याविशारदः। वदास्य यद्भवेद्युक्तं सुरराजस्य सत्तम ॥६॥

तुम राजनीति की सन्धिप्रभृति षड्गुण से युक्त सर्वप्रधान हो। जो योगीगण के लिये भी दुर्ज्ञेय है, वह मन्त्रिगण को जानना पड़ता है। सन्धिसन्धान की विभिन्न प्रणाली तथा समदोष-सम्पन्न व्याधियों के विषय में जो शास्त्र के अनुसार ठीक से जानता है, क्रमशः वही मन्त्री तथा वैद्यश्रेष्ठ होता है। हे सत्तम! तुम काल के अनुसार नीति से अवगत होने के कारण सर्वविद्याविशारद हो; अतः इन सुरराज के हितार्थ जो कर्त्तव्य हो, उसे कहो।।४-६।।

बृहस्पतिरुवाच

देवदेव सुराध्यक्ष शंखचक्रगदाधर। त्वदीया मे मतिर्भद्रा न निजासुरनाशन ॥७॥
मदानुभावो देवेश तव प्रत्यक्षतो वयम्। यद्वदामो महात्मानं धृष्टा कुलवधूरिव ॥८॥

बृहस्पति कहते हैं—हे सुराध्यक्ष, शंख-चक्र-गदाधारी महादेव! मेरे पास जो बुद्धि है, वह आप द्वारा ही प्रदत्त है। हे असुरों के नाशक! मेरी अपनी बुद्धि कुछ भी नहीं है। हे महात्मन्! मैं आपसे प्रत्यक्षत: जो कह रहा हूँ, वह सब उसी प्रकार है, जैसे एक धृष्ट रमणी कुलवधू से कुछ कहती हो (?)। यह सब आपके ही प्रभाव से कह रहा हूँ।।७-८।।

तव वाचो गुणाविष्टा निष्क्रामन्तिस्म मन्मुखात्। तथापि किञ्चिद्देवेशं हिताहितकरं प्रभो ॥९॥
तवाज्ञाकारिणो भूत्वा सुखमिच्छन्ति दिवौकसः। तिष्ठन्तु तस्य वाचायां यावद्देवं त्रिलोचनम् ॥१०॥
तोषयित्वा जयां देवीं विन्ध्याचलनिवासिनीम्। एवं ते मन्त्रयित्वा तु शक्रो विष्णुर्बृहस्पतिः।
नारदं प्रेषयामासुर्वज्रदण्डस्य शासने ॥११॥

आपके ही गुणप्रभाव से सभी वाक्य मेरे मुख से निर्गत होते हैं। हे प्रभो! तथापि आपके आदेशानुसार हित-अहितविषयक किंचित् उपदेश करता हूँ। यदि देवगण सुखाभिलाषी हों तब वे आपकी आज्ञानुसार तब तक (चुप) बैठ जायँ, जब तक आप त्रिलोचन देव तथा विन्ध्याचल निवासिनी देवी को सन्तुष्ट न कर लें। इन्द्र-विष्णु तथा बृहस्पति ने यह मन्त्र जा करके वज्रदण्डादि को उपदेश देने के लिये नारद को भेजा।।९-११।।

विष्णुरुवाच

त्वं देवर्षे विप्रेन्द्र ब्रह्मपुत्र महातपः। गत्वा वदस्व तं पापं घोरपुत्रं सुरारिणम् ॥१२॥
गतवान् विष्णोरादेशान्नारदो यत्र सोऽसुरः। तमायान्तमृषिं दृष्ट्वा कालो वज्रश्च पूज्य तौ ॥१३॥

(अब विष्णु ने यह बतलाया कि वे नारद से क्या कहेंगे) हे देवर्षे! हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हे ब्रह्मनन्दन! तुम महातपस्वी हो। पापिष्ठ दैत्य घोरपुत्र को यह सब कहना। तदनन्तर घोरपुत्र वज्रदण्ड आदि जहाँ स्थित थे, वहाँ विष्णु की आज्ञानुसार नारद गये। ऋषि को आया देखकर घोरपुत्र काल तथा वज्रदण्ड ने उनका सत्कार किया।।१२-१३।।

नारद उवाच

तव घोरसुतो वज्र सकालस्य महाबल। शासने संस्थिता देवा देवी कान्ततरा च ते ॥१४॥
किं पुनः शतयष्टा वा ब्रह्मणो विष्णुतत्परः। भुङ्क्ष स्वर्गं महीं यावद्देवदेवी तवान्तकौ ॥१५॥
षष्ट्यामिन्द्राग्निदेवस्य शासनं घोरजं दिवि। कृत्वा बृहस्पतिर्विष्णुर्जग्मुर्यत्र पितामहः ॥१६॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे हरिबृहस्पत्योर्ब्रह्मसदनप्राप्तिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

नारद कहते हैं—हे घोरपुत्र महाबली वज्र तथा काल! देवगण तुमलोगों के शासन में स्थित हैं, लेकिन स्वयं भगवती तुम्हारा विनाश करेंगी। जब देवता तुमलोगों के शासन में (अधीन) हैं तब विष्णुतत्पर शतयज्ञों का यजन करने वाले ब्राह्मण भी तुम्हारे अधीन हैं। अत: तब तक इस स्वर्ग का भोग करो, जब तक तुम लोगों के विनाशक उमा-महेश्वर इस पृथिवी पर नहीं आ जाते। सूर्य जब कृत्तिका नक्षत्र में थे, उस षष्ठी तिथि को घोर दैत्य का स्वर्ग पर अधिकार प्रतिष्ठित हो गया था। तदनन्तर विष्णु तथा बृहस्पति ब्रह्मा के पास गये।।१४-१६।।

पञ्चम अध्याय समाप्त

●

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नमस्ते विश्वरूपेश विश्वभाव नमोऽस्तु ते। सर्वदेवमय श्रीमन् वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥१॥
भूतभव्यभविष्याणां कारणाकारणौ नमः। अनादिरादि-मध्यान्त-परकारण-कारण।
भविष्यरूपसद्भावं मत्स्यरूपं नमोऽस्तु ते ॥२॥

ब्रह्माजी भगवान् विष्णु से कहते हैं—हे विश्वरूप, हे ईश्वर! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन! सर्वदेवमय! श्रीमन् वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे भूत-भविष्य-वर्त्तमान के कारण! हे कारणवर्जित! आपको नमस्कार है। अनादि, आदि, मध्य तथा अन्त में जो कारण हैं, आप तो उसके भी कारण हैं। हे भविष्यरूप! हे वर्त्तमानरूप! हे मत्स्यरूप! आपको नमस्कार है।।१-२।।

धात्री-धरण-कूर्मेश-वराह-नरसिंहराट्। सर्ववेदपते वेद्य वेदान्तान्त नमो नमः ॥३॥
वामनाय नमस्तुभ्यं रामराम नमो नमः। वासुदेव नमस्तुभ्यं कृष्णदेव नमो नमः ॥४॥

आप ही कूर्मरूप से धरती को धारण करते हैं। आप ही वराह तथा नृसिंहरूप हैं। हे सर्ववेदपते! हे विज्ञेय! वेदान्तप्रतिपाद्य! आपको नमस्कार है। हे परशुराम! आपको नमस्कार है। हे श्रीराम! आपको नमस्कार है। हे बलराम! आपको नमस्कार है। हे कृष्णरूपी देहधारी! आपको पुनः पुनः नमस्कार है।।३-४।।

शुद्धसद्भावभावाय शुद्धबुद्धतनूद्भव। रागद्वेषविनिर्मुक्तो रक्तवासो नमोऽस्तु ते ॥५॥
अश्वारूढ महाबाहो कलिधर्मप्रवर्तक। दिगम्बरधरो देव शूद्रधर्मप्रवर्तक ॥६॥
म्लेच्छवर्गकुलोच्छेद नमस्ते कल्किरूपिणे। युगान्त-युग-उत्पत्ति-युगधर्म-प्रवर्तक ॥७॥

हे रागद्वेष-विनिर्मुक्त! हे शुभसंस्कार! हे शुद्ध! हे रक्तवस्त्रधारी! हे बुद्धमूर्त्ति! आपको नमस्कार है। हे कलिधर्मप्रवर्त्तक! हे दिगम्बररूपी! हे शूद्रधर्मप्रवर्त्तक! हे महाबाहो! आप अश्वारूढ़ होकर म्लेच्छों को निर्मूल करते हैं। हे कपिनेत्र! आपको नमस्कार है। आप युगान्त काल में आविर्भूत होकर युगोत्पादन तथा युगधर्म-प्रवर्त्तन करते हैं।।५-७।।

नमस्ते देवदेवेश ईप्सितार्थप्रदायक। यदिच्छामि भवेत्त्वत्तो मम देव तथैव च ॥८॥
मम कार्येषु कार्याणामीप्सितानां सुरोत्तम। भविष्याणाञ्च वस्तूनां साहाय्यं कुरु केशव ॥९॥
ततस्तुष्टो मम विष्णुः पुरा आसीत्सुराधिप। वरदोऽभूद्यथाकामं साहाय्यमीप्सितेषु च ॥१०॥

हे देवदेवेश! हे ईप्सितार्थप्रदायक! आपको नमस्कार है। हे देव! मैं जिस भी कार्य को करने की इच्छा करता हूँ, वह आपकी कृपा से सम्पन्न हो जाता है। हे सुरश्रेष्ठ! इस प्रकार अभिलषित भविष्यत् कार्यों में आप सहायता करिये। हे इन्द्र! पूर्वकाल में विष्णु इस स्तव के पश्चात् मुझसे प्रसन्न हो गये थे और मेरी इच्छानुरूप मुझे वर भी प्रदान किया था। अभिलषित कार्य में सहायता करने के लिये भी प्रस्तुत हो गये थे।।८-१०।।

एवं यो वैष्णवं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय भावयेत्। मध्याह्ने सान्ध्यकाले च तस्येच्छा कामसिद्धिदा ॥११॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्। विद्यार्थी लभते विद्यां सुखार्थी सुखभाग्भवेत् ॥१२॥

इति श्री देवीपुराणे देव्यवतारे विष्णुस्तवः समाप्तः

जो व्यक्ति प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल में इस विष्णुस्तव का चिन्तन करता है, उसे अभीष्ट-सिद्धि इच्छामात्र से हो जाती है। इस भावना द्वारा पुत्रार्थी को पुत्रलाभ, धनार्थी को धनलाभ तथा विद्यार्थी को विद्यालाभ एवं सुखार्थी को सुखलाभ होता है।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

मया पूर्वं च त्वं देव उक्तमासीज्जनार्दन। असुराणां वरः श्रेष्ठो न देयो मधुसूदन ॥१३॥
लब्धवरा मदोद्रेकादसुराः सुरबाधकाः। भवन्ति देवदेवानां द्विजयज्ञविनाशकाः ॥१४॥
तथाप्येवं महाबाहो विनाशायासुरस्य च। चिन्त्यतां ब्रह्मन् गोविन्दो वाचस्पतिबृहस्पतिः ॥१५॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे जनार्दन मधुसूदन देव! मैंने पहले ही आपसे कहा था कि असुरों को श्रेष्ठ वर न प्रदान करना। असुरगण देवताओं के निकट वरलाभ से मत्त होकर देवगण को पीड़ा देते हैं। वे द्विजविनाश तथा यज्ञविनाश करते हैं। गोविन्द तथा बृहस्पति कहते हैं—तब हे महाबाहो! ब्रह्मन्! असुर-विनाशार्थ उपाय चिन्तनीय है।।१३-१५।।

ब्रह्मोवाच

त्वमेव सर्ववेत्तासि तथापि सुरसत्तम। कार्यागतन्तु वक्तव्यं नहि दोषस्त्रिविक्रमम् ॥१६॥
तद्भवेत्तत्पुरा कल्पे भौत्ये मन्वन्तरे हरे। देवदेवो महादेवो योऽसौ परमकारणः ॥१७॥
स्वर्गः सर्वव्यापी च अनादिनिधनः शिवः। तस्येच्छार्थं सुराध्यक्ष स्थितः पालयिता प्रभुः ॥१८॥
सुतः कालाग्निरुद्रस्य रुद्रपाषाणमूर्धनि। तस्मिन् हालाहलो नाम महाबलपराक्रमः ॥१९॥
उपनेतात्मजं घोरं द्वितीयमिव पावकम्।

ब्रह्माजी कहते हैं—हे सुरश्रेष्ठ! आप सब कुछ जानते हैं। कार्यतः उपस्थित समस्त विषय कहना है। हे त्रिविक्रम! इसमें दोष नहीं है। हे हरे! पूर्वकल्प में भौत्य मन्वन्तर में जो घटित हुआ था, उसे कहा जा रहा है। हे सुराध्यक्ष! जो परम कारण, अनादिनिधन, सर्वत्रग, सर्वव्यापी, देवदेव, महादेव शिव की इच्छा से हम दोनों प्रजापालन करते थे। कालाग्नि रुद्र वज्रमय पर्वत-शिखर पर उपस्थित थे। वहाँ हालाहल नामक कालाग्नि रुद्र का पुत्र हुआ। हालाहल महाबली, पराक्रमी तथा द्वितीय अग्नि के समान घोरतर था।।१६-१९।।

तं सम्प्रेक्ष्य तदा देव मुद्गरेण हतं त्वया ॥२०॥
प्रबुद्धोऽसौ तदा वह्निः शुद्धक्रोधेन दीपितः। तस्य निश्वासजा ज्वाला निर्गतास्तु दिशो दश ॥२१॥
तदा त्वं मोहसम्पन्नो मम शङ्का तदाभवत्। मया सञ्चिन्तितो रुद्रः खट्वाङ्गकरभास्करः ॥२२॥
स च कारणसद्भावो ध्यानसिद्धिवरप्रदः। प्रेषयामास चामुण्डां कालानलसमप्रभाम् ॥२३॥
रक्षणाय तवास्माकं हुताशनशमाय च।

हे देव! तब आपने उसे देखकर उस पर मुद्गर का आघात किया। इससे हालाहल अग्निरूपेण दशों दिशाओं की ओर प्रधावित हो गया। तब आपको मोह हो गया, इससे अत्यन्त आशंका हो गयी। मैंने तब स्तुति से खट्वांगधारी ज्योतिर्मय रुद्र को प्रसन्न किया। इसी कारण ध्याता तथा साधकों को वर देने वाले रुद्र ने आपकी तथा हमलोगों के रक्षार्थ एवं अग्नि को शान्त करने के लिये चामुण्डादेवी को भेजा। वे कालानल के समान प्रभा वाली थीं।।२०-२३।।

तस्याः प्रेक्षणमात्रेण सा च ज्वाला शमं गता ॥२४॥
तदासौ वदते देवं हालाहल हुताशनः। कथ्यतां कारणं विष्णो येनाहं ताडितस्त्वया ॥२५॥
त्वया च याचितो देव जगाम तं हुतावहम्। पूर्णः संवर्त्तते कालो मां ब्रह्मस्य च पावकः ॥२६॥

तेन बोधितवान् रुद्रो योऽसौ कालाग्निविश्रुतः । वदतो कारणं ब्रूहि येन त्वं मम क्षोभकः ॥२७॥
विष्णुत्वमागतो देव जगतो दहनाय च । उत्थितस्तावत् कालाग्निर्महाज्वालौघभास्वरः ॥२८॥
शमितस्तस्य देव्या यः प्रतापः पुनरेव सः । तदा त्वया महादेव ज्ञात्वा शक्तिं महाबलाम् ॥२९॥

उन्होंने क्षणमात्र में हमारा परित्राण करके वह्निशिखा में स्वयं को मिलित कर लिया। हे देव! तब हालाहल हुताशन ने कहा—हे विष्णु! मुझ पर आपने जो आघात किया है, उसका कारण कहिये। आपने उससे कुछ अनुनय (कारण) कहा। इस पर हालाहल अन्य कुछ न कहकर वहाँ से कालाग्नि जहाँ अवस्थित था, वहाँ चला गया। तदनन्तर इस विख्यात कालाग्नि रुद्र से पुत्र हालाहल ने सब कहा। उन्होंने आकर आपसे कहा—आप विष्णु होकर भी मेरे लिये क्षोभजनक क्यों हो गये। इसका कारण कहिये। यह कहकर कालाग्नि रुद्र महाज्वालामालायुक्त भास्वर मूर्त्ति से जगत् का दहन करने के लिये उद्यत हो गये। उनके इस प्रताप को देवी ने समाप्त कर दिया। तब हे परमदेव! आपने शक्ति को महाबली जाना।।२४-२९।।

जगदुत्पत्तिपालाय निधनाय वयं पुरा । तुतोष परया भक्त्या स्तवेनानेन माधवः ॥३०॥

हे माधव! उनको तब आपने जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय समर्था भी जाना। तब हमलोग अत्यन्त भक्ति के साथ परमा देवी को स्तव द्वारा सन्तुष्ट करने लगे।।३०।।

विष्णुपितामहावूचतुः

नमस्ते कालजालौघ-घोरदीप्ति-प्रशामति । नीलस्यन्द महाकाल नवमेघप्रभावति ॥३१॥
रक्तसिन्दूरकिञ्जल्कविद्रुमाकारभावति । पीत पद्मारुणा हेमसर्वाकारविभावति ॥३२॥
श्वेतशंखाब्धिक्षीराभ्रहिमकुन्दविभावति । सृष्टिसंहारकर्त्तारिरुद्रमूर्त्तिप्रभावति ॥३३॥
ब्रह्मविष्णुयमशक्रचन्द्रसूर्यविरोधकि । ईश रक्षोऽनिलतोयामनलात्मनमस्कृते ॥३४॥

ब्रह्मा तथा विष्णु कहते हैं—हे कालाग्नि रुद्र ज्वालामाला घोरतेजप्रशमनकारिणी! हे वर्षणोन्मुख नवनील जलधर प्रभायुता! आपको नमस्कार है। हे पीत, रक्त, सुवर्णादि नाना वर्णसमुज्ज्वला! हे शंख क्षीरसागर हिमकुन्द चन्द्रवत् शुक्लप्रभावती! हे ब्रह्मा-विष्णु-यम-इन्द्र-चन्द्र-सूर्य-प्रकाशकारिणी! हे ईशरक्षिणी! हे अनलानिले! वरुण आत्मनमस्कृते! आपको नमस्कार है।।३१-३४।।

एकधा बहुधा त्वञ्च दशधा शतधा शिवा । पुनरुक्तपदार्थार्थबहुकारणकारकि ॥३५॥
कालपाशो महामायो वधबन्धनमोचकि । सुरासुरनरसिद्धनानाभावप्रवर्तकि ॥३६॥

हे शिवे! आप एकधा, बहुधा, दशधा, शतधा पदार्थों के बाहुल्य का सम्पादन करती हैं। आप पदार्थसमूहों के कारण की कारणस्वरूप हैं। महामायामय कालपाशबन्धन तथा वध से मुक्ति देने वाली! सुर-असुर-नर-सिद्धादि नाना भावप्रवर्त्तना आप से ही होती है।।३५-३६।।

पशुमृगपक्षितिर्यक्तृणमानुषवर्त्तकि । ब्रह्मप्रजेशसोमश्च यक्षरक्षःपिशाचकि ॥३७॥
गन्धर्वभावभावेषु त्वञ्च देवि परापरे । लवस्यन्दत्रुटिनिमेषमुहूर्त्त अथ काष्ठसु ॥३८॥
कलायामर्धयामेषु सन्ध्यावासररात्रिषु । पक्ष-मास-ऋतु-द्वित्रि-अयनेषु समेषु च ॥३९॥

पशु, मृग, पक्षी, तिर्यक् जाति, तृण तथा मनुष्य आप द्वारा ही सृष्ट हैं। हे कार्यकारण रूप वाली देवि! ब्रह्मा, प्रजापति, शिव, अष्टवसु, इन्द्र, पिशाचगण, गन्धर्वादि सभी के भाव में आप ही अधिष्ठित हैं। हे देवि! आप लव, स्पन्द, त्रुटि, निमेष, मुहूर्त्त, काष्ठा, कला, याम, अर्द्धयाम, सन्ध्या, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा मन्वन्तर में अधिष्ठित हैं।।३७-३९।।

मानवान् देवशत्रूणां ब्रह्माद्यस्माकं जन्तुषु। कल्प कल्प महाकल्प-उत्पत्तिस्थितिहेतुषु ॥४०॥
दैवपुरुषसद्भाव मन्त्रशक्तिभवेषु च। विद्या-वदन-वेत्तारि वेद-वेदान्त-वादिषु ॥४१॥
मन्त्र-तन्त्र-ज्वर-घोर-कूष्माण्ड-भूत-जातिषु। शब्द-प्रमाण-सिद्धान्त-साङ्ख्य-योगागमेषु च ॥४२॥
ज्योतिर्वेद्यादिशास्त्रेषु कालगारुडादिषु। रस अन्य क्रियावादसरित्सागरमध्यसु ॥४३॥
सर्वगा सर्वकार्येषु सर्वभावप्रवर्तकि। न हि शक्या गुणा देवी तव वक्तुं समादिषु ॥४४॥
नित्यैव भाव्यते सर्वा कृतकृत्यस्य कीर्त्तना। स्तोता त्वञ्च स्तुतिस्त्वञ्च वेत्ता त्वं वेदनी च त्वम् ॥४५॥
कोऽयं स्तोता स्तवः कस्य क्रियते वाक्प्रलापनम्। एवम्भूतार्थभव्यैस्तु भविष्यैः पौरुषैस्तथा ॥४६॥
तुतोष परमा देवी वरदा च अभूदुभौ।

हे भद्रकाली महाशक्ति! आप मानव, दानव, किम्वहुना ब्रह्मादि से तृणपर्यन्त समस्त प्राणियों में कल्प-महाकल्प में उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण परमपुरुष में, दैवपुरुषाकार में, मन्त्रशक्ति, विद्या, ज्ञानदाता हैं। वेद-वेदान्तवादी जनगण के मन्त्र, तन्त्र में, घोरतर भूत जाति तथा कूष्माण्डादि में, वेदान्त, सांख्य, योग, आगम, ज्योतिःशास्त्र, वेदादि शास्त्र, गारुड़ादि शास्त्र तथा तत्तद् शास्त्रवादि जनगण में, रस-क्रिया, खनिकर्मादि ज्ञापक शास्त्रों में, नदी-समुद्र में, मधु मीठे द्रव्य में अधिष्ठित हैं। आप सर्वगा, सर्वकार्य में सर्वभावप्रवर्त्तिका हैं। हे देवि! आपके गुणों को कह सकने में हम समर्थ नहीं हैं। नित्य रूप में ही आपकी भावना की जा सकती है। आपके सम्बन्ध में सभी कृतकृत्य हो आपकी कीर्त्तना करते हैं। सभी कार्य आप द्वारा ही कृत हैं। आप स्वयं ही स्तोता, स्तुति, वेत्ता तथा वेदनी हैं। आपके अतिरिक्त स्तवकर्त्ता ही कौन है? किसका स्तव किया जाता है? यह स्तव वाक्प्रपंच ही है। ऐसी प्रभावशालिनी तथा पूर्ववर्णित (तथा पश्चात् वर्णित) पराक्रमसम्पन्ना शक्ति के सन्तुष्ट होने पर वे ब्रह्मा-विष्णु को वर देने के लिये उद्यत हो गयीं।।४०-४६।।

देव्युवाच

कृष्ण ब्रह्मन् वरं याच तुष्टाऽहमुभयोरपि ॥४७॥
तदा त्वहञ्च सञ्चिन्त्य सहाय भव सुव्रते। येषु येषु च कल्पेषु मन्वन्तरयुगेषु च ॥४८॥
तेषु तेषु पथा देवि यद्यस्मात् को भविष्यति। कर्तृत्वे स्थापने नाशे तत्तु निष्पद्यते यथा ॥४९॥

देवी कहती हैं—हे कृष्ण! हे ब्रह्मन्! तुमलोग वर माँगो। तब मैंने तथा आपने चिन्तन करके कहा—हे सुव्रते! आप हमारी सहायक हो जायँ। जिस कल्प, मन्वन्तर, युग में आपका प्रयोजन होगा, उस समय आप किसी भी रूप में आविर्भूत हो जायँ। आप भविष्य में भी हमारी सहायता करें, जिससे सृष्टि-स्थिति-संहार यथार्थतः निष्पन्न हो जायँ।।४७-४९।।

तत्तथेति च सा उक्त्वा परेवोपरता ह्यभूत्। कालेन स्तवमाकर्ण्य फलञ्च स्तवते कृतम् ॥५०॥
इदं यश्चर्च्चिकास्तोत्रं ब्रह्मविष्णुविनिर्मितम्।

इस पर देवी ने तथास्तु कहा तथा अन्तर्हित हो गयीं। यदि इस स्तव का यथाकाल कोई पाठ करेगा, वह श्रवणमात्र से फल प्राप्त करेगा।।५०।।

देवगन्धर्वयक्षो वा ऋषिर्विप्रोऽथ क्षत्रियः ॥५१॥
वैश्यः शूद्रोऽबला वाऽपि भक्तितः सम्पठिष्यति। शृणुयाच्चिन्तयेद्वाऽपि सर्वार्थान् प्रापयिष्यते ॥५२॥
न ग्रहा न च कूष्माण्डा न भूता न च राक्षसाः। पिशाचाः पूतनानन्दा नागाः सर्पाश्च गोनसाः ॥५३॥
बालजा भूतजा ये च ग्रहा दुष्टा महाबलाः। शमं यास्यन्ति रोगाश्च वातपित्तकफोद्भवाः ॥५४॥

देवता, गन्धर्व, यक्ष, ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्रीलोक इत्यादि जो भी ब्रह्मा-विष्णुकृत इस स्तुति का भक्तिभाव से पाठ करता है; उसके ग्रहपीड़ा, कूष्माण्ड, भूत, राक्षस तथा पिशाचों का उपद्रव, दुष्ट नागसर्पादिकृत अरिष्ट दूर हो जाता है। वात, पित्त, कफसम्मत पीड़ायें शान्त हो जाती हैं।।५१-५४।।

स्थावराः कृत्रिमा भौमा विषा दन्तनखोद्भवाः। औपसर्गिकरोगाश्च प्रणश्यन्त्यविचारणात् ॥५५॥
पातकाश्च शमं यान्ति ब्रह्मघातादयः कृताः। गुरुपितृसुहृद्बन्धुमाताबालाबलावधम् ॥५६॥
पातकं शमते भक्त्या श्रवणाल्लभते फलम्। दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च ॥५७॥
श्रवणात् फलमाप्नोति सर्वदानव्रतादिकम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो देव्यास्ते लीयते नरः ॥५८॥

इति श्रीदेवीपुराणे ब्रह्मविष्णुकृतः स्तवो नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

स्थावर, कृत्रिम तथा दन्त-नखादिसम्भूत घोरतर विषसमूह और औपसर्गिक समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। ब्रह्महत्या, गुरुवध, पितृवध, सुहृद्गण का वध, बन्धुवध, मातृवध तथा स्त्रीवध-सम्भूत पापराशियाँ दूर हो जाती हैं। इस स्तव का श्रवण करने से जो फल होता है, उसे सुनो। दस राजसूय यज्ञ, शत अग्निष्टोम यज्ञ तथा ऐसे ही समस्त दान-व्रतादिक का फल इस स्तव को सुनने से प्राप्त होता है। श्रोता व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर अन्त में देवी में विलीन हो जाता है।।५५-५८।।

षष्ठ अध्याय समाप्त

●

सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं पूर्वं त्वया देवी तोषिता सुरसत्तम। सा सर्वकार्याकार्येषु शङ्कराद्यदवाप्स्यसि ॥१॥
तत्र गत्वा महादेवं परापरतनूद्भवम्। तोषयामास गोविन्दो घोरदण्डवधक्षमम् ॥२॥
एवं पूर्वस्तदा विष्णु स च ब्रह्मा सुरोत्तमः। गतवान् यत्र देवोऽसौ योगिनां ध्यानगोचरः ॥३॥
तदा ह्यङ्घ्रियुगस्याधः पेततुर्द्विजमाधवौ। मूर्त्तिभूतं शिवं साक्षाच्छक्तिवामाङ्गभूषणम् ॥४॥
त्रिनेत्रं पश्यते विष्णुर्ब्रह्मा विष्णुं प्रपश्यति। एवं विचित्रतां तस्य मत्वा ध्यानेन शूलिनः ॥५॥
भूतभव्यभविष्यार्थैः प्रभूरेष पराक्रमैः। नाम सङ्कीर्त्तनाद्यैस्तु स्तवेनैनं तुतोष च ॥६॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे सुरसत्तम विष्णो! आपने पहले देवी को इस प्रकार सन्तुष्ट किया है। वे हमारी प्रत्येक कार्य में सहायक हैं। अथवा अब शिव जो आदेश करें, वही कर्त्तव्य है। तब गोविन्द ने घोर दैत्य तथा वज्रदण्ड दैत्य के वध की इच्छा करके कार्य-कारणरूपी महादेव की पूजा किया। तत्पश्चात् सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा तथा विष्णु योगीगण के ध्येय देवदेव महादेव जहाँ अवस्थित थे, वहाँ पर गये। वहाँ जाकर शिव के चरणों में नत हो गये। वहाँ उन्होंने (विष्णु ने) देखा कि शिव त्रिनेत्र हैं। वाम भाग में शक्ति स्थित हैं। ब्रह्मा देखते हैं कि वहाँ तो एक दूसरे ही विष्णु स्थित हैं। ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों ने ध्यान से यह जाना कि यह तो शिव की ही माया है। यह भी उनके लिये अज्ञात नहीं था कि भगवान् शिव भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान सभी विषयों में समर्थ हैं। तब ब्रह्मा एवं विष्णु उनको नामसंकीर्त्तन तथा स्तुति से प्रसन्न करने लगे।।१-६।।

जय सूक्ष्म परानन्त कारणत्रयहेतवे। ध्यानगम्य पराध्यक्ष साक्षिभूत गुणत्रये ॥७॥
जय विजितसद्भाव ह्यस्माकं सुरसत्तम। जय ह्याकाशवाय्वग्नितोयधात्री च मूर्त्तये ॥८॥

जय तन्मात्रकर्माख्यबुद्धीन्द्रियविघातवे। जय बुद्धिमनोगर्वप्रधानपुरुषात्मने ॥९॥
जय मालाकलारागकायविद्याविबोधन। जय नियामकशक्ति जय विद्ये समुद्भवे ॥१०॥

हे सूक्ष्म! हे परम अनन्त! आपकी जय हो। हे कारणत्रयहेतु! आपको नमस्कार है। आप ध्यानगम्य, परम परोक्ष, गुणत्रय साक्षीरूप हैं। हे सुरसत्तम! आपकी जय हो। आप हमारा साधु अभिप्राय जान सकते हैं। हे पृथिवी, जल, तेज, वायु, व्योमस्वरूप, पञ्चभूत मूर्त्ति! आपकी जय हो। हे पञ्चतन्मात्र-पञ्चकर्मेन्द्रिय-पञ्चज्ञानेन्द्रिय-विधान! आपकी जय हो। हे मन-बुद्धि-अहंकार-प्रकृति- पुरुषरूप! आपकी जय हो। आप मालाविद्या, कलाज्ञान, वाग्ज्ञान, वाग्विद्या, कायविद्या से विद्द्योतीत हैं। आपकी जय हो। हे नियामक शक्ति के स्वामी! हे सर्वविद्येश्वर शम्भु! आपकी जय हो।।७-१०।।

जय कालाग्निसादन्त व्याप्तिव्यापक शूलिने। जय घोर महाघोर कालदण्ड यमान्तक।
जय अन्ध पृथुस्कन्ध खट्वारुरुजिघांसक ॥११॥
जय काल महाकूट विषकण्ठस्थजीर्णवे। जय दानवविध्वंस गङ्गाजलजटाधर।
जय त्रिपुरदाहेश कामदाहेश शम्भवे ॥१२॥

हे घोर दैत्यनिसूदनक्षम! हे महाघोर कालवज्रदण्डविनाशसमर्थ! आपकी जय हो। हे अन्धकसूदन! हे पृथुस्कन्ध, खट्वा-रुरु दानवघाती! आपकी जय हो। आप महाकालकूट विष कण्ठ में धारण करके उसकी शक्ति को जीर्ण कर चुके हैं। आपकी जय हो। हे गंगाजलपूर्ण जटाधारी! आपकी जय हो। हे दानवविध्वंसकारी! हे त्रिपुरदाहक! हे कामदाहक शम्भो! आपकी जय हो।।११-१२।।

जय खट्वाङ्गमालाहिभूषणानां सदाप्रिय। जय दिग्वास भूतेश जय श्मशानवासिने ॥१३॥
जय सार्द्रगजचर्मप्रावृताय महात्मने। जय त्रिशूलहस्ताय कर्णापूरित इषवे।
जय वासुकिशंखाब्ज अनन्तकृतमेखल ॥१४॥

हे खट्वाङ्ग सर्पमाला-भूषणप्रिय! हे दिगम्बर भूतेश! श्मशानवासी! आपकी जय हो। हे सर्व! हे गजाजिन-परिधान! हे महात्मन्! आपकी जय हो। हे त्रिशूलपाणे! हे कर्णापूरित धुस्तूरभूषण! आपकी जय हो। आपकी मेखला अनन्त है। वासुकी नाग, पद्म एवं शंख से वह निर्मित है। आपकी जय हो।।१३-१४।।

जय गौरीस्तनस्पर्शरोमरोमाञ्चधूसर। जय गम्य महीकम्प देवदेव भवोद्भव ॥१५॥
जय डिण्डि महाकाल शम्भु शंकर ईश्वर। जय रुद्र हर घोर सत्यवास सदाशिव ॥१६॥
जय पुरुष वक्त्रेश परमेष्ठिभवाय च। जय पशुपते सर्वेश भीम उग्र नमो नमः ॥१७॥

हे गौरीस्तन के स्पर्श से पुलकित शरीरधारी! हे भस्मधूसर! हे देवदेव! हे महीकम्प! हे भवभावन! आपकी जय हो। हे डिण्डिम आदि वाद्य के प्रिय! हे शंकर! महाकाल! ईश्वर! आपकी जय हो। हे रुद्र! हे हर! हे अघोर! हे सत्यवान्! हे सदाशिव! आपकी जय हो। हे पुरुष! हे सद्य! हे ईशान! हे वक्त्रेश! आपकी जय हो। हे पशुपते! हे सर्व! हे भीम! हे उग्र! आपकी जय हो। हे भव! हे परमेष्ठिन्! आपकी जय हो। आपको बारम्बर नमस्कार है।।१५-१७।।

एवं स्तुतस्तदा देवो ब्रह्मा विष्णुश्च तुष्टवान्। वरं वर हरे ब्रह्मन् यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥१८॥
यथावृत्तकथां ज्ञाप्य घोरदण्डं निवर्हय। एवमुक्तस्तदा तेन ईशः सञ्चिन्त्य अब्रवीत् ॥१९॥

तब इस प्रकार से स्तुत होकर ब्रह्मा-विष्णु के प्रति देवाधिदेव सन्तुष्ट होकर कहने लगे—हे हर! हे ब्रह्मन्! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा है, उस वर को माँगो। तब उन लोगों ने समस्त वृत्तान्त कहकर निवेदन किया—हे शम्भो! घोर दैत्य

तथा उसके पुत्र वज्रदण्ड से जिस प्रकार से छुटकारा मिले, वह कहिये। जब इन लोगों ने यह कहा तब भगवान् शिव ने विचार करके इस प्रकार कहा।।१८-१९।।

या सा आद्या परा शक्तिर्योगनिद्रा महात्मनाम्। सा तु सिंहं समारुह्य विन्ध्ये क्रीडनतां ययौ ॥२०॥
तत्रस्था ह्यस्मदंशेन पराशक्तिबलेन च। ब्रह्मंस्त्वं किङ्करो भूत्वा विष्णुश्च नयरूपिणा ॥२१॥

जो साक्षात् परमा शक्ति एवं महात्मागण की योगनिद्रास्वरूपा हैं, वे सिंह पर आरूढ़ होकर विन्ध्यपर्वत पर क्रीड़ा करेंगी। उन परमा शक्ति के वहाँ स्थित होने पर बल नामक मेरा अंश, जयरूपी विष्णु तथा तुम (ब्रह्मा) वहाँ मेरे किंकररूप से स्थित रहना।।२०-२१।।

प्रतिहार्यो महातेजाश्चत्वारोऽन्या महाबलाः। ऋग्यजुःसामाथर्वाणां यद्धाम यत्परं बलम् ॥२२॥
ते च वेदास्तनुस्तेषां मूर्तिमन्तो भवन्ति च। सर्वा वीणाकरा देव्यः सर्वाः पाशाङ्कुशोद्यताः ॥२३॥
सितरक्तपीतकृष्णा बहुवक्त्रास्त्रिलोचनाः। दिव्यपट्टांशुकच्छन्ना दिव्याभरणभूषिताः ॥२४॥
कामरूपा महारूपा अणिमादिगुणैर्युताः। हार-नूपुर-निर्घोष-मणि-वैदूर्य-चर्च्चिताः ॥२५॥

वहाँ प्रबल तेजशाली ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद महातेजस्वी महाबली प्रतिहारीरूपेण रहेंगे। वेद विद्यामय हैं, तथापि इनका आकार है। सभी देवीगण के हाथ में वीणा, सभी पाश-अंकुशधारी हैं। उनमें से कोई शुक्लवर्ण, कोई रक्तवर्ण, कोई पीतवर्ण, कोई कृष्णवर्ण होगी तथा सभी त्रिनयना होंगी। वे दिव्य पट्टवस्त्रधारिणी, दिव्य अलंकार से भूषिता, सभी इच्छानुरूप रूपधारिणी तथा परम रूपवती एवं अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य से युक्त होंगी। वैदूर्यप्रभृति मणि, हार तथा नूपुर ध्वनि से उनकी शोभा होगी।।२२-२५।।

केशैर्मृग-मदा-मोद-घन-नील-समप्रभैः। वेणीबन्ध महाच्छद्म उरगैरिव पृष्ठगैः ॥२६॥
अर्धेन्दुरिव लालाटनिम्नोन्नतविराजितैः। निष्पावसदृशघ्राणा कर्णयुग्मे समांसले ॥२७॥
नीलोत्पल-दल-प्रख्यैर्हरिणीरिव लोचनैः। विद्रुमाकारशोभाढ्यैः पक्वविम्बोपमाधरैः ॥२८॥
कुन्द-कुड्मल-आभाष-दन्तपंक्तिः सुशोभना। हनु-गण्डस्थल-चिबुकानौपम्य-मनोरमाः ॥२९॥
कम्बुरेखसमग्रीवैः सर्वाः सर्वैस्तु मांसलैः। पीनोन्नत-कुचावृत्त-हारवलित-मध्यगैः ॥३०॥
मध्य-देश-तनु-क्षाम-त्रिवली-रोम-वर्जितैः। दक्षिणावर्त्त-गम्भीर-नाभि-मण्डल-मण्डितैः ॥३१॥

वे सभी कस्तूरीगन्ध से वासित भ्रमरवत् कृष्णा केशपाश से बंधी वेणीयुक्ता, जो महाछद्म सर्प के समान पृष्ठ तक विराजित थी। अर्द्धचंद्राकृति समतल ललाटफलक, तिलपुष्प के समान नासिका, सुन्दर मांसल कर्णद्वय, नीलकमलदलवत् हरिण के समान नेत्र, प्रवाल के समान शोभायुक्त पक्वबिम्बाकृति अधरोष्ठ, कुन्दकलिका के समान सुशोभन दन्तपंक्ति तथा उनका निरुपम हनु, गण्डस्थल तथा चिबुक द्वारा मनोहारिणी, कम्बुरेखासमन्वित मांसल ग्रीवा, हारावली-मण्डित उन्नत वृत्त पयोधरमण्डल से मण्डित है।।२६-३१।।

गुरुविस्तीर्णनितम्बमांसोपचितशोभितैः। अश्वत्थपत्रसाकारनिगूढमणिबन्धनैः ॥३२॥
कूर्मपृष्ठ इव श्रोणिगुह्यदेशैस्तु शोभनैः। निगूढगुल्फदेशैश्च समैः पादैः सुमांसलैः ॥३३॥
ऊरू करिराकाविलोमैर्विशिरैः शुभैः। जानुनी समसुश्लिष्टजंघैर्वृत्तैः सुशोभनैः ॥३४॥
अंगुलीनां क्रमान्यूना मध्यमादि यथास्थितः। विचित्रलाञ्छनैर्भद्रैः पानहस्तैश्च लाञ्छिताः ॥३५॥
मृणालकोमलैर्वृत्तैर्दोर्दण्डैः सुदृढैः समैः। ताः सर्वा मोहना देव्यो दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥३६॥

क्षीण मध्यदेश, लोमहीन त्रिवली, दक्षिणावर्त्त घूमी गम्भीर नाभिमण्डल, मांसल विस्तृत गुरुभारयुक्त नितम्ब, अश्वत्थ-पत्रावली की आकृतियुक्त निगूढ़ मणिबन्ध, कूर्णपृष्ठवत् श्रोणि तथा शोभन गुह्यप्रदेश, सभी लोमवर्जित शिराहीन हस्तिशुण्डाकृति सुन्दर ऊरु, समान तथा सटे हुये जानु, सुशोभन वृत्त जंघा, निगूढ़ गुल्फ, समतल मांसल पादपल्लव, सभी अंगुलियाँ यथायथ रूप से सटी तथा छोटे-बड़े क्रम से स्थित हैं। उनके करतल तथा चरण में शुभसूचक विचित्र चिह्न हैं एवं मृणालकोमल सम वर्त्तुल सुन्दर बाहु हैं। सभी देवीगण दर्शन तथा स्पर्शन से सभी को मुग्ध करने में सक्षम हैं।।३२-३६।।

कामार्त्ता विह्वला याभिः क्रियन्ते दानवा बुधाः। शान्तिदा वीतरागाणां ता देव्यो ऋषिमानवाः ॥३७॥
त्रातास्ताः सर्वदेवानामापत्सु सुमहत्सु च। चिन्तितार्थप्रदाः पुण्या ध्याता जप्ताथ पूजिताः ॥३८॥
कन्यारूपा महाभागा महदादिनमस्कृताः ॥३९॥

वे ज्ञानसम्पन्न दानवों को कामार्त्त तथा विह्वल कर सकने में समर्थ हैं। वे वीतराग ऋषि तथा मानवगण को मुक्तिदान में भी समर्थ हैं। वे सभी देवताओं का महान् विपदा से भी उद्धार कर सकती हैं। इन परमपवित्रा देवीगण का ध्यान-पूजन-जप करने से इष्टसिद्धि प्राप्त होती है। ये सभी महाभागागण देवी कन्यारूपा हैं तथा इनको विष्णुप्रभृति देवता नमस्कार करते रहते हैं।।३७-३९।।

तासामपि महादेवी या सा शक्तिरनौपमा। परापरविमिश्रा च सर्वदिगमृतात्मिका ॥४०॥
वस्तुमात्रास्थिता ब्रह्मन् विष्णवे प्रभविष्णवे। शान्तिरूपा सुरूपा या घोररूपा सुरारिहा ॥४१॥
एकानेकविभागेन कोटिभेदैर्व्यवस्थिता। सदास्माकं भवस्यैव स्वामिभूता महात्मिका ॥४२॥

इन सबमें महादेवी परमा शक्ति अनुपम तथा सबसे उत्तम हैं। वे परापरात्मिका, सर्वगता तथा अमृतमयी हैं। वे वस्तुमात्र में स्थित तथा ब्रह्मा-विष्णु की प्रभु हैं। वे शान्तरूपा, विरूपा, घोररूपा, असुरघातिनी हैं। ये वास्तव में अद्वितीया होकर भी कोटि-कोटि भेद में स्थित हैं। ये माहात्म्यसम्पन्ना महादेवी हमारी ही क्यों, समस्त संसार की महात्मिका स्वामिनी हैं।।४०-४२।।

तासां चतुर्णां देवीनां नायिका सुरनायिका। युग-मन्वन्तर-कल्प-उत्पत्ति-स्थिति-नाशिनी ॥४३॥
भेद-भेदान्तरज्ञानामृषीणां मनुदक्षयोः। भविष्यति समस्तानामीप्सितार्थफलप्रदा।
तस्यापि वाहनं ब्रह्मन् हरिनार्थं विनिर्मितम् ॥४४॥

वे महादेवी ही इन सब देवीगण की नायिका हैं। वे युग-मन्वन्तर, कल्पभेद तथा अभेदादि ज्ञानयुक्त ऋषिगण, मनु तथा दक्ष इत्यादि की यथानियम उत्पत्तिकर्त्री, स्थिति तथा विनाश करने वाली, सबको अभीष्ट फल देने वाली हैं। हे ब्रह्मन्! विष्णु ने अपना वाहन उनके लिये प्रस्तुत कर दिया है।।४३-४४।।

ब्रह्मोवाच

सर्वदेवा सगन्धर्वाः सर्वदेवास्तथा सह। सर्वदेवमयः कृत्वा वाहनो ह्यरिदर्पहा ॥४५॥
तथा त्वं केशवो देव वयं केशवमूलतः। विष्णुः स्थास्यति ग्रीवायां सर्वलोकाश्च तद्वपुः ॥४६॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे विष्णु! आपके साथ सभी देवगण तथा गन्धर्वगण देवीवाहन में आविर्भूत होंगे। वह वाहन सर्वदेवमय होने के कारण शत्रुगण के दर्पमोचन में सक्षम होगा। हे केशव! इस देवमय वाहन के मूल में तुम तथा विष्णु इसकी ग्रीवा में (अर्थात् केशव ही इनकी ग्रीवा में विष्णुरूप से) रहेंगे। इसके शरीर में सर्वलोक वर्त्तमान रहेगा।।४५-४६।।

शिरोमध्ये महादेवो द्वितीयः कालरूपिणः। ललाटाग्रे महादेवी नासावंशे सरस्वती ॥४७॥
षण्मुखो मणिबन्धेषु नागाश्च पार्श्वतः स्थिताः। कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करौ ॥४८॥
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः। हूङ्कारे चर्च्चिका देवी यमयक्षौ च गण्डयोः ॥४९॥

सन्ध्याद्वयं तथौष्ठाभ्यां ग्रीवायामिन्द्र आश्रितः । ग्रीवासन्धिषु ऋक्षाणि साध्याश्चोरसि संस्थिता ।
निर्घृणत्वे तमस्तस्य क्रौर्ये सर्वास्तु पूतनाः ॥५०॥

कालरूपी इस वाहन के मस्तक में अद्वितीय महादेव अधिष्ठित होंगे। ललाट के अग्र में उमादेवी, नासादण्ड में सरस्वती, मणिबन्ध में कार्त्तिकेय तथा पार्श्व में नागगण होंगे। कर्णद्वय में दोनों अश्विनीकुमार, चक्षुद्वय में चन्द्र-सूर्य, दन्तपंक्ति में वसुगण, जिह्वा में वरुण, हुङ्कार में चर्चिका देवी, गण्डद्वय में यम-कुबेर, ओष्ठाधर में सन्ध्याद्वय, ग्रीवा के एकदेश में इन्द्र, ग्रीवा- सन्धिस्थल में नक्षत्रवृन्द तथा वक्षःस्थल में साध्यगण रहेंगे। उसका मन पूर्णतः निर्दयी होगा। उसकी क्रूरता पूतना से भी अधिक होगी।।४७-५०।।

पालने मातरो देव्यः अपाने पितरः स्थिताः । श्रिया रूपे स्थिता तस्य बाले चादित्यरश्मयः ॥५१॥
वृषणे मेरुर्विन्यस्तः सागरा वसने स्थिताः । सरितस्तस्य स्वेदस्थाः स्थापिताः परमेश्वर ॥५२॥
यज्ञाः सदेवताः सर्वे चांगुले चाभवद्य सः । बलं वीर्यञ्च देवेश त्वदीयं यस्य सर्वतः ॥५३॥
खादकादीनि रक्षांसि न्यस्तव्यानि सुरेश्वर । सर्वेषां वाहनादेव ये च यस्य नियोजिताः ॥५४॥

उसके पालन का भार मातृदेवीगण ने लिया, पितृगण रक्षण में लग गये। उसके रूप में श्री एवं सूर्यरश्मि उसके रोमों में रहेगी। वृषण में सुमेरु, रसना में सागर, धर्म में सरितायें रहेंगी। हे परमेश्वर! इसके लांगूल में देवगणयुक्त सभी यज्ञ रहेंगे। देवताओं के जितने वाहन हैं, सबके बल-वीर्य को (उनके बल-वीर्य को) इस वाहन में नियोजित करो।।५१-५४।।

आत्मनः पररक्षासु पथि संग्रामसागरे । भूतराक्षसवेतालाद्यरीणां सङ्कटेषु च ॥५५॥

हे सुरेश्वर! जितने रक्षामन्त्र हैं, उनको भी इसी में सन्निवेशित करो। लेकिन हे केशव! ऐसा कौन रक्षामन्त्र है, जिसके द्वारा संग्राम सागर में शत्रुपक्ष से आत्मरक्षा हो सके; भूत-राक्षस-वेताल तथा शत्रुसंकट से रक्षा हो सके?।।५५।।

ग्रहदुष्टेषु सर्वेषु उपसर्गमयेषु च । सुरकिन्नरकन्यासु ह्यप्सरास्वबलासु च ॥५६॥
गर्भरक्षा मातृरक्षा पुत्रार्थे गुर्विणीषु च । एवं संपृष्टवान् देव द्रुहिणः केशवेन च ॥५७॥
विहस्य कथ्यते शक्र यथावदनुपूर्वशः । नमः पिङ्गलनेत्राय कोटराक्षाय भैरव ।५८॥
नमस्ते घोररूपाय सुरासुरभयङ्कर । नमः खट्वाङ्गहस्ताय रुरुचर्मार्द्रवाससे ॥५९॥

(जिसके द्वारा) ग्रहपीड़ा तथा औपसर्गिक भय से शान्ति हो, देवकन्या-किन्नरकन्या-अप्सरा तथा सामान्य स्त्रीगण की रक्षा, गर्भरक्षा तथा गर्भिणीगण की पुत्ररक्षारूपी महारक्षा हो सके? यदि है तो कृपया कहिये। हे इन्द्र! तब केशव हँसकर पूर्ण आनुपूर्वी क्रम से कहने लगे—हे पिंगलनयन कोटराक्ष भैरव! आपको नमस्कार है। हे सुरासुरभयंकर घोररूपिन्! आपको नमस्कार है। हे रक्तार्द्र-रुरु-चर्मपरिधान! हे खट्वाङ्गधारी! आपको नमस्कार है।।५६-५९।।

नमः कपालमालाय ब्रह्मकृष्णसभाजने । नमः करालमालाय नारायणतनूरुहे ॥६०॥
नमो मुद्गरहस्ताय खड्गपट्टिशधारिणे । नमः परशुहस्ताय पिनाकवरपाणिने ॥६१॥

हे ब्रह्मा के मस्तकरूपी पात्र को हाथ में धारण करने वाले! हे करालमालिन्! आपको नमस्कार है। हे कपालमालिन्! हे नारायणशरीराधिष्ठित! आपको नमस्कार है। हे मुद्गरहस्त। हे खड्ग-पट्टिशधारी! आपको नमस्कार है। हे पिनाकपाणे! हे परशु-हस्त! हे वरदान देने के लिये व्यग्र हाथों वाले! आपको नमस्कार है।।६०-६१।।

नमः शंखगदाहस्त क्रतुडमरूवादिने । नमः शैलमहावेश महावेगनिनादिते ॥६२॥
नमः शैलमहाघोर वज्रहस्ताय चक्रिणे । ऊर्ध्वकेश महावेष महामेघनिनादिने ॥६३॥
महाविद्युज्जिह्वाय महा-उल्कानिभाय च । सोमसूर्याग्निनेत्राय नानाक्रीडारताय च ॥६४॥

हे शंखगदाधारी! हे क्रतुध्वंसिन्! हे डमरुवादक! आपको नमस्कार है। हे गिरीश! हे पर्वतसदृश महाघोर! वज्रपाणे! चक्रिन्! हे ऊर्ध्वकेश महावेष! हे महामेघ के समान निनादकारी! हे महाविद्युज्जिह्व! हे महोल्कासन्निभ! सोम-सूर्य-अग्नि आपके नेत्रत्रय हैं तथा आप महाक्रीड़ाकारी हैं।।६२-६४।।

नानाभक्ष्यक्रियाभोज्य नानाहारप्रियाय च। मांसासवरसामेथ पूतनादिरताय च।
कृन्त कृन्त सुराध्यक्ष शत्रुवर्ग महाबल ।।६५।।
खाद खाद महाघोर खड्गखट्वाङ्गधारिणे। बन्ध बन्ध महापाश महाशत्रुप्रमर्दन ।।६६।।
हाहा हुङ्कारनादेन दैत्यान् हि विनिकृन्तय। महारूप महाकाय समदेवारिशङ्कर ।।६७।।

हे विविध भक्ष्यों का भोजन करने वाले! हे नाना आहारप्रिय! हे मांसासव-वसामेदादिप्रिय! हे महावली सुराध्यक्ष! शत्रुओं का छेदन करिये, छेदन करिये। हे खड्गखट्वाङ्गधारी! महाघोर! शत्रुवर्ग का भोजन कीजिये, भोजन कीजिये। हे महाशत्रुनिसूदन महापाश! शत्रुगण का बन्धन कीजिये, बन्धन करिये। हाहा शब्द से तथा हुङ्कार शब्द से दैत्यगण का विनाश कीजिये। हे महारूप, महाकाय! देवरिपुओं को शान्त कीजिये।।६५-६७।।

उग्रभैरव चामुण्ड डिण्डिमुण्डि जटाधर। छिन्द छिन्द महाचक्र इषुहस्ताय शङ्कर ।।६८।।
जम्भकाद्याथ चामुण्डा डाकिन्यो भूतमातरः। ये ये दानवपक्षस्य ते ते खाद मान्तक ।।६९।।
वज्रशक्तिमहादण्ड खड्गपाशांकुशोद्यतः। गदात्रिशूलहस्ताय सर्वां बाधां विनाशय ।।७०।।

हे उग्रभैरव चामुण्ड! हे डिण्डिमुण्डि! हे जटाधारी शंकर! महाचक्र से शत्रुओं का छेदन कीजिये, छेदन कीजिये। हे चक्रपाणे! हे शरधारिन्! आपको नमस्कार है। हे यमान्तक! चामुण्डा, डाकिनी, भूत, मातृग्रह तथा दानवपक्ष के जम्भकादि का आप भोजन करिये। हे वज्रशक्ति, महादण्ड, खड्ग, पाश, अंकुशधारी! हे गदा-त्रिशूलहस्त! आप हमारी सभी बाधा दूर करें।।६८-७०।।

ज्वरभूतग्रहोन्मादशष्कुलीनन्दरेवती। नागकिन्नरगन्धर्वसर्वरोगोद्भवा समा ।।७१।।
कालपीडा क्रियापीडा पापपीडाथ धातुजा। वातपित्तकफोद्भूतां शमयेद् भैरवः सदा ।।७२।।
विद्वेषोच्चाटनादीनि मारणस्तम्भकर्षणः। मन्त्रयन्त्रकृतां बाधां शमय सुरसत्तम ।।७३।।

ज्वर, भूतग्रह, उन्माद, शष्कुली, दुष्ट, नाग-किन्नर-गन्धर्व दृष्टि से उत्पन्न सर्वरोगों का विनाश करिये। हे भैरव! काल से जनित पीड़ा, कर्मजनित पीड़ा, पापपीड़ा तथा धातु की विषमता से जनित वात-पित्त-कफसम्भूत पीड़ा का नाश करिये। हे सुरसत्तम! विद्वेष, उच्चाटन, मारण, स्तम्भन, आकर्षणादि-जनित तथा मन्त्र-यन्त्रकृत पीड़ा का नाश करें।।७१-७३।।

अथर्वविहितां पीडां तथा शापादितापसैः। दुष्टवाक्यकृतां सर्वां नाशयेद् वृषवाहन ।।७४।।
खड्गकुन्तभुशुण्ड्यादि घाताश्चक्रासिजाश्च ये। वज्रमुष्टिकृता देव स्तम्भ स्तम्भ शुभाम्बर ।।७५।।

हे वृषवाहन! अथर्ववेदोक्त आभिचारिक क्रियाजनित पीड़ा का विनाश करिये। तपस्वी-प्रदत्त अभिशाप आदि-जनित पीड़ा, दुष्ट वाक्यजनित पीड़ा को विनष्ट करिये। हे देव! शुभाम्बर भास्वर खड्ग, कुन्त, भुशुण्डि, चक्र तथा छूरे के आघात, वज्राघात, मुष्टिकाघात-जनित पीड़ा दूर कीजिये। उनको स्तम्भित करिये, स्तम्भित करिये।।७४-७५।।

ईषुजोपलवाक्षोऽथ ये चान्ये वैरिणः कृताः। आहवेषु महाबाहो ते शमं यान्तु भैरवः ।।७६।।
दंष्ट्राविषं महाघोरं नखजं रुद्र नाशय। परसैन्यविघातन्तु कालवज्रकरानल ।।७७।।
कुर्व कुर्व महाक्रोध परस्य वधमाहवे। नक्रव्याघ्रवराहेषु सिंहखड्गभयेषु च ।।७८।।

त्राय मां देवदेवेश तस्करेषु पथेषु च। सरित् सागरनद्येषु दीर्घिकोपवनेषु च ॥७९॥
पर्वतेषु तडागेषु वनविन्ध्याटवीषु च। अग्रतो रक्षते शम्भुः शूलपाणिर्महाबलः ॥८०॥

हे महाबाहो भैरव! युद्ध में शत्रुगण बाण, प्रस्तर तथा वृक्षप्रभृति के आघात से जो पीड़ा उत्पादित करते हैं, उनको शान्त कीजिये। हे रुद्र! महादंष्ट्राविष को नखज विष से दूर करिये। हे सर्वसंहारक महाक्रोध पंचानन! आप युद्ध में शत्रुगण का वध तथा शत्रुसैन्यमण्डली में व्याघात कीजिये। हे देवदेवेश! नक्र, व्याघ्र, वराह, सिंह तथा गैंड़े (तरक्षु) आदि जन्तुओं का भय होने पर, चौरभय तथा कान्तारमध्य में यम से मेरी रक्षा कीजिये। पथ में, सरित्, सागर, नदी, दीर्घिका, उपवन, पर्वत, तडाग, वन, विन्ध्याटवी, समस्त स्थानों में महाबली शम्भु शूलपाणि होकर सम्मुख से मेरी रक्षा कीजिये।।७६-८०।।

पृष्ठतो बाणहस्तस्तु पिनाकी वृषकेतनः। पार्श्वतस्तु महारुद्रः खड्गखेटकधारिणः ॥८१॥
आकाशे च महादेवो घण्टाडमरूशब्दितः। पातालस्थः स्वयमीशो वासुकीकृतभूषणः ॥८२॥
सर्वतः शिवनामा च भयेभ्यः पातु शङ्करः।

पीछे की ओर वृषध्वज शर तथा पिनाक हाथों में लेकर रक्षा करें। शंख तथा खेटक लेकर रुद्र पार्श्व में रक्षा करें। महादेव घण्टा तथा डमरुध्वनि करके आकाश में रहकर रक्षा करें। वासुकीभूषण (भैरव) शिव स्वयं रक्षा करें। शिव नामधारी शंकर सर्वभय से त्राण करें।।८१-८२।।

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रश्नोक्तांल्लभते गुणान् ॥८३॥

य इदं पठते ब्रह्मन् ममापि तव सन्निधौ। विष्ण्वागारे त्वदीये वा तीर्थे गोष्ठे चतुष्पथे ॥८४॥
एकलिङ्गे तडागे वा पर्वते वा वनेऽपि वा। नदीसङ्गमपुण्ये वा गृहे वा हुतपावके।
न तस्य व्याधयः शोको न हानिर्न च शत्रवः ॥८५॥
न ज्वरातिभयोद्वेगा नापि मित्रेष्टनाशनम्। नाकाले मरणं तस्य न चापायोऽस्य सम्भवेत् ॥८६॥

महादेव का यह स्तव पाठ करने से आपके प्रश्नोक्त सभी कार्य सफल होंगे (ब्रह्मा-विष्णु ने जो प्रश्न रखा था, वे सभी कार्य सफल होंगे)। हे ब्रह्मन्! तुम्हारे अथवा मेरे पास, मेरे अथवा तुम्हारे तीर्थ में, गोष्ठ, चौराहे, एकलिंग के पास, एक वृक्ष के पास (जहाँ दूर-दूर तक में केवल एक ही वृक्ष हो), पर्वत, वन, नदीसंगम क्षेत्र, पवित्र गृह अथवा यज्ञीय अग्नि के पास जो यह स्तव पढ़ता है, उसके रोग, शोक, हानि, शत्रु-ज्वर-व्याधि-भय-मित्रनाश-अकालमृत्यु अथवा पाप आदि नहीं रह जाते।।८३-८६।।

मोचते सर्वपापानि श्रवणात् पठनादपि। धारणात् पत्रभूर्जेषु ताम्रपात्रेषु पूजयेत् ॥८७॥
यन्त्रपुस्तकमन्त्रेषु सर्वकामान् प्रयच्छति। ब्रह्महत्या सुरापानं हन्यात् पातकदुष्कृतम् ॥८८॥
सकृदुच्चारणाद् ब्रह्मन् सर्वकर्मफलं लभेत्। सर्वतीर्थतपोदानं सर्वव्रतप्रदायिका ॥८९॥
शङ्करेण कृता रक्षा सर्वकामार्थसाधिका। गृहेऽपि तिष्ठते यस्य स सुखं यश आप्नुयात् ॥९०॥

इति शङ्करगीतारक्षा समाप्ता

वह इसके श्रवण अथवा पाठ द्वारा सर्वपाप से मुक्त हो जाता है। भूर्जपत्र पर लिखकर धारण करने पर, पर्वों के समय यन्त्र में, पुस्तकादि में अथवा भोजपत्र पर लिखकर पूजन करने से सर्व काम-प्राप्ति होती है। ब्रह्महत्या, सुरापान आदि महापाप नष्ट होते हैं। हे ब्रह्मन्! यह स्तव एक बार उच्चारण करने से सारे फल मिलते हैं। इसके एक बार उच्चारणमात्र से सर्वयज्ञफल प्राप्त हो जाता है। भगवान् शंकरकृत इस रक्षास्तोत्र के पाठ द्वारा सर्वविध तीर्थ, तपस्या, दान तथा व्रत का फल मिलता है। यह रक्षास्तोत्र जिसके यहाँ लिखकर रखा रहता है, उसे सुख तथा यश मिलता है।।८७-९०।।

ब्रह्मोवाच

सिंहं निष्पादितं देव देव्याया विनिवेदय। तदङ्गतेजःसम्भूता जयाद्या याश्च मातरः ॥९१॥
ता देव्याज्ञाकरा भूत्वा मर्त्ये गत्वा रराम च। जम्बूद्वीपे महाद्वीपे सर्वभोगफलप्रदे ॥९२॥
विन्ध्ये पर्वतराजेन्द्रे नर्मदाजलफेनिते। निर्द्धूतपावकलिले ऋषिसिद्धनिषेविते ॥९३॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे देवराज! सिंह निष्पादित होने पर (देवी के वाहन सिंह का कर्त्तव्य निर्धारण करके) वह सिंहवाहन देवी को दिया गया। विष्णु-शिवप्रभृति के तेज से जयादि परिवार उत्पन्न होकर देवी के आज्ञा-पालनार्थ पृथिवी पर जाकर सर्वकाम प्रदायक महाद्वीप जम्बूद्वीप में विन्ध्य-पर्वत पर क्रीड़ारत हो गया। पर्वतराज विन्ध्य नर्मदा नदी के पवित्र जल से प्रक्षालित तथा निर्मल-निष्पाप ऋषिगण द्वारा सेवित है।।९१-९३।।

वधाय सुरशत्रूणां नराणाञ्च हिताय च। परित्राणाय भक्तानां सर्ववर्णाश्रमेषु च ॥९४॥
अन्त्यजानां महाभाग भक्तानां समदर्शनाः। पूजिताः संस्तुता देव्यः कर्मभावफलप्रदाः ॥९५॥
एवं ताः सम्मतीः कृत्वा नायिका मातरार्तिहाः। नियुक्ताः शम्भुना मर्त्ये विन्ध्ये शैलवरोत्तमे ॥९६॥
तदा ताः सर्वगा भूत्वा सप्तद्वीपाञ्च मेदिनीम्। व्यापयित्वा स्थितास्तस्मिन् विन्ध्ये भूधरसत्तमे ॥९७॥

इति श्रीदेवीपुराणे देवीविन्ध्यावतरणं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

असुरों का वध, मानवों का हित तथा निखिल वर्णाश्रमधर्म के परित्राणार्थ उनका यह आविर्भाव कहा गया है। हे महाभाग! वे देवीगण अन्त्यज, अभक्त तथा भक्त—सभी के प्रति समदृष्टियुक्त हैं। वे सभी देवीगण पूजित तथा स्तुत होने पर कर्मफल देती हैं। सभी देवीगण को समभावापन्न तथा भगवती की वशवर्त्तिनी करके शिव भगवान् ने पर्वतराज विन्ध्य की ओर उनको भेजा। वहाँ ये सभी समभावेन आविर्भूत हो गईं। वे सप्तद्वीपा पृथिवी में व्यापिनी होकर भी विन्ध्य पर्वतराज पर रहने लगीं।।९४-९७।।

सप्तम अध्याय समाप्त

●

अष्टमोऽध्यायः

वज्रदण्ड उवाच

अस्माकं मर्त्यपातालाः शक्राद्याश्च तथामराः। साधिताः कालदेवस्य प्रसादेन महाबलाः ॥१॥
दूता न्यवेदयन् गत्वा देवस्थानमनुत्तमम्। एवं श्रुत्वा तदालापं वज्रकालचिकीर्षितम् ॥२॥
बृहस्पतिना चाख्यातं ब्रह्मणो वासवस्य च ॥३॥

वज्रदण्ड कहता है—हमारे अधीन पृथिवी, पाताल, इन्द्रादि महाबली देवगण कालदेव के प्रभाव से हो गये हैं। सर्वोत्तम देवलोक में जाकर वज्रदण्ड के वाक्य को अनुचरों ने घोषित किया था। बृहस्पति ने यह सुनकर इन्द्र तथा ब्रह्मा से इस प्रकार कहा।।१-३।।

बृहस्पतिरुवाच

कालेन सह वज्रेण घोरः स्वर्गनिवासिनाम्। आनयनाय कृतो यत्नो भवतां तन्निवेदितम् ॥४॥

बृहस्पति ने कहा—घोर दैत्य काल तथा वज्र के साथ स्वर्ग में निवास करने के लिये यत्न कर रहा है; इससे आप सब अवश्य अवगत होंगे।।४।।

ब्रह्मोवाच

नारदं प्रेषय विष्णो असुरस्य विमोहनम्। करोति येन स गत्वा अधर्मेषु नियोजनम्॥५॥
वेदब्राह्मणदेवानां भक्तिं कृत्वा उपागतः। तस्य पत्नी ह्यधर्मेषु याति धर्मबहिष्कृता॥६॥
अधर्मनिरताः सर्वाः प्रजास्तस्य न शान्तिदाः। येन केनचिदुपायेन तेनेदं कुरु माधव॥७॥

ब्रह्मा विष्णु से कहते हैं—हे विष्णो! असुरों को मोहित करने के लिये नारद को भेजो। नारद वहाँ जाकर घोर आदि असुरों के देवता, ब्राह्मण, वेद के प्रति भक्ति का हरण करें, उनको अधर्म में नियोजित करें। नारद को यह कर्त्तव्य बतलाया गया कि वे जाकर यह करें, जिससे उनकी पत्नियाँ भी धर्मविरहित होकर अधर्मपथ पर चली जायँ। जब प्रजागण अधर्मरत हो जायेंगे, तो यह स्थिति घोर दैत्य के लिये शान्तिप्रद नहीं होगी। अतएव उनको भी अधार्मिक करना ही होगा। हे माधव! जिस किसी भी उपाय से नारद इस कार्य को सम्पन्न करें।।५-७।।

एवं पृष्टस्तदा विष्णुर्नारदं स समादिशत्। त्वं ब्रह्मज महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारदः॥८॥
कुशद्वीपं व्रज ब्रह्मंस्त्वमधर्मविघातकः। तथेति तैः समादिष्टो देवार्थे कृष्णविग्रहः॥९॥
आगमध्यानयोगेन स्वतन्त्र ऋषिपुङ्गवः। कुशद्वीपं क्षणात् प्राप्तो यत्र राजा महासुरः॥१०॥

विष्णु ने ब्रह्मा का यह वचन सुनकर नारद को आदेश दिया—हे महाप्राज्ञ ब्रह्मपुत्र! तुम सर्वशास्त्रज्ञ हो। हे ब्रह्मज्ञ! दानवगण को धर्मभ्रष्ट करने के लिये तुम कुशद्वीप जाओ। आगम ध्यानयोगपरायण स्वतन्त्र ऋषिवर नारद क्षणमात्र में कुशद्वीप पहुँच गये, जहाँ वह राजा महा असुर महापराक्रमी घोर विद्यमान था।।८-१०।।

द्वाःस्थेन तं समायान्तं दृष्ट्वा ब्रह्मसुतोत्तमम्। प्रविष्टो यत्र वै राजा घोरो घोरपराक्रमः॥११॥

द्वाःस्थ उवाच

राजराज महाबाहो द्वारे ब्रह्मसुतोत्तमः। नारदस्तिष्ठते देव स्थाप्यतां किं प्रवेश्यताम्॥१२॥

वहाँ द्वारपाल ने ब्रह्मपुत्र नारद को आया देखकर असुरराज घोर से कहा—हे महाराज! महाबाहो! ब्रह्मनन्दन नारद द्वार पर खड़े हैं। हे देव! उनको रुकने के लिये कहूँ अथवा यहाँ प्रवेश कराऊँ?।।११-१२।।

तच्छ्रुत्वा दनुराजेन्द्रो नारदं द्वारमागतम्। द्वास्थं समादिशत्तूर्णं कूपजो हृष्टमानसः॥१३॥
प्रवेशतो प्रतीहार द्विजरूपो जनार्दनः। लब्धादेशस्तदा द्वाःस्थो नारदमानयत्ततः॥१४॥
तत्रासौ विष्णुभक्तात्मा घोरो देवद्विजप्रियः। तं प्रेक्ष्य उत्थितो राजा भूम्यां जानुगतः शिरः॥१५॥
प्रणम्य भक्तिभावेन प्रपूर्यार्घोदकासनैः। सुखं संविश देवर्षे इत्युक्तो नारदोऽवदत्॥१६॥

दानवेन्द्र ने यह सुनकर कि द्वार पर नारद खड़े हैं, हर्षपूर्वक द्वारपाल से कहा—हे दौवारिक! उनको शीघ्र यहाँ ले आओ। वे ब्राह्मण नारायण की मूर्त्ति ही हैं। द्वारपाल यह आदेश पाकर नारद को उन विष्णुभक्त देव-द्विजप्रिय घोर दैत्य के पास ले आया। घोरराज उनको आया देखकर उठकर भूतल पर मस्तक रखकर तथा जंघाद्वय को भूमि से सटाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित किया। तदनन्तर उन्हें अर्घ्य, जल तथा आसन-पूजन प्रदानोपरान्त कहा—हे देवर्षि! सुखपूर्वक बैठिये।।१३-१६।।

अथ राजन् महाबाहो विषयान् मानयन् सुखम्। मानयस्व प्रियान् कामांस्त्रीणां क्रीडावती सदा॥१७॥
एतदेव फलं राजन् देवताराधनोद्भवम्। भूपतित्वं सदा भोग्याः स्त्रियो वा नवयौवनाः॥१८॥
आत्मानं परमं देवं तोषणीयं तदा बुधैः। श्रूयते च महाराज देवदेवस्त्रिलोचनः॥१९॥

ऋषिकन्याप्रक्रीडाय गतो दारुवनं किल। स च देवो महादेवः परतत्त्वार्थवेदकः ॥२०॥
सेवते विषयान् राजन् यथा सर्वेषु सः परः। तथा च भगवान् विष्णुः श्रियं वक्षःस्थले वरम् ॥२१॥

तदनन्तर देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाबाहो। महाराज! उठो। विषय को ही सुख मानो। अपर भोग एवं स्त्रीक्रीड़ारति को प्रिया मानो। हे राजन्! राजत्वलाभ तथा सतत् नवयुवती एवं विविध रमणीभोग करना—यही देवता की आराधना का फल है। हे राजन्! पण्डितगण इस प्रकार सतत् परमदेव आत्मा को सन्तुष्ट करते हैं। यह कहा गया है कि परतत्त्ववेत्ता देवदेव शंकर त्रिलोचन भी ऋषिकन्याओं के साथ क्रीड़ार्थ दारुवन में गये थे। ये परमदेव भी अन्य लोगों की तरह विषयभोग करते रहते हैं। भगवान् विष्णु ने तो भगवती लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल में ही रख लिया है।।१७-२१।।

चन्द्र इन्द्र सुरा ब्रह्मा सर्वे च सुखमर्थिनः। तदर्थं तप्यते धर्मफलोऽयं विषयो नृपः ॥२२॥
एवमुक्तस्ततः शक्र घोरः प्रत्यववोच तम्। नहि 'नारद' धर्मस्य 'विषयान्मोक्षणं' शुभम् ॥२३॥

चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा इत्यादि सभी देवता सुख चाहने वाले हैं। हे राजन्! इसीलिये विषयभोग ही तपस्या धर्म का परिणाम है। यह सुनकर राजा घोर नारद से कहने लगा—हे नारद! आपने जो यह सब कहा, वह धर्म की बात नहीं है। विषयों का त्याग ही शुभ होता है।।२२-२३।।

घोर उवाच

संयतास्ते शुभा ब्रह्मन् विसृष्टा नरकाय ते। इन्द्रियविजयी पुमान् विनयेनोपपद्यते ॥२४॥
विनीतः सेवते लोकं तदा सम्पदमाप्नुयात्। सम्पदा धर्मभोगा हि स्ववृत्तिपरिपालनम् ॥२५॥

(पुनः) घोर कहता है—हे ब्रह्मन्! जो संयमी है, वही उत्तम है। जो असंयत विषयलिप्त है, उसका परिणाम है—नरकगमन। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही विनयी कहलाता है। विनयी व्यक्ति लोकरंजनदक्ष होता है। जो लोकरंजन कर सकता है, उसे सम्पत्ति सुलभ है। सम्पत्ति का फल है—धर्मानुष्ठान, भोग तथा स्वचरित्र की रक्षा; स्ववृत्ति-परिपालन।।२४-२५।।

तच्च सम्पालनं ब्रह्मन् दृष्टादृष्टफलप्रदम्। व्याधिभेषजसेवायां क्षयं गच्छेदसंशयम् ॥२६॥
सेव्यमानेन्द्रिया ब्रह्मन् प्रवृद्धिमुपयान्ति हि। ज्वालामालाकुलं गेहं महापावकदीपितम् ॥२७॥

हे ब्रह्मन्! चरित्ररक्षा से ही इहलोक तथा परलोक में फल प्राप्त होता है। औषधि-सेवन से निश्चय ही रोग दूर होता है, यह निःसंशय है; लेकिन इन्द्रिय-सेवन से तो दोष बढ़ता रहता है। ज्वालाओं से घिरा महापावक से दग्ध दीपित गृह जल (धारा) छोड़ने से ही ठण्ढा होता है।।२६-२७।।

अनेनोपशमं याति विषयाणाञ्च दीपकम्। दाहज्वरमहातापो वह्निपित्तसमुद्भवम् ॥२८॥
हिमचन्दनसंयोगाच्छमेत्र विषयान्मुने। कदलीदलकह्लारमृणालकमलोत्पलैः ॥२९॥
हिमचन्दनकर्पूरैः कामाग्निर्ज्वलते तु तैः। ऋणं दानेन शमते दहनोभ्युदकेन च ॥३०॥
शत्रवो घातमाना हि क्षीयन्ते ह्यविचारणात्। एतेषां घातनं ब्रह्मंस्तन्निबोध सुखावहम् ॥३१॥

लेकिन विषयमुग्ध चित्त वाले मानवगण का वह्नि पित्तसम्भूत महातापसम्पन्न विषयरूपी ज्वर हिम तथा चन्दन से भी शान्त न होकर और भी वृद्धिङ्गत होता जाता है। हे मुनिवर! कदलीदल, कल्हार, मृणालकमल, उत्पल नामक पुष्पविशेष, हिम, चन्दन, कर्पूर द्वारा कामाग्नि और भी बढ़ती जाती है (शान्त नहीं होती)। चुकाने से ऋण समाप्त हो जाता है, जल द्वारा अग्नि को बुझाया जा सकता है, वध करते-करते शत्रु निर्मूल हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! इन सबको नष्ट करना आसान है (लेकिन कामाग्नि को नष्ट कर सकना अतीव दुष्कर है)।।२८-३१।।

शब्दस्पर्शरसरूपगन्धवागिन्द्रियास्तथा। पाणिपादपायूपस्थाः संयतास्तु सुखावहाः ॥३२॥
पतङ्गमृगमत्स्येभकीटाद्याश्च पतत्रिणः। एकैकविषयासक्ताः सर्वे मृत्युवशं गताः ॥३३॥

जिनकी शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध अर्थात् पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक्-पाणि-पाद-वायु तथा उपस्थ अर्थात् पञ्च कर्मेन्द्रिय संयत हैं, वही मंगलान्वित हैं। पतंग-मृग-मत्स्य-हाथी तथा कीटादि एवं पक्षी एक-एक विषय में आसक्त होकर मृत्युमुख में चले जाते हैं। रूपदर्शनात्मक वह्नि में पतंग, गानश्रवण से मृग इत्यादि व्याध द्वारा मारे जाते हैं।।३२-३३।।

यः पुनः संहतान् सेवेद्विषयान् विषयी नरः। स पतेन्महदैश्वर्याच्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥३४॥
स्त्रियः पानं दिवास्वप्नं तथा वादित्रनर्तनम्। द्यूताटनमृगा गेयं कामजां निन्दनं परे ॥३५॥

जो विषयी व्यक्ति इन विषयों में आसक्त होता है, वह जड़कटे वृक्ष की तरह ही महान् ऐश्वर्य से रहित हो जाता है। स्त्रीगण में आसक्ति, सुरापान, दिवानिद्रा, नृत्य-गीत-वाद्य-द्यूतक्रीड़ा, वृथा भ्रमण तथा मृगया को कामज व्यसन कहते हैं। ये निन्दनीय हैं।।३४-३५।।

दण्डैर्वाचा ईर्षासूयाक्रोधपैशुन्यसाहसम्। अर्थानां दूषणं व्याधि अष्टकोऽयं विनाशकृत् ॥३६॥
देवा विद्याधरा यक्षाः किन्नरोरगमानुषाः। पशवः पक्षिणः सर्वे विषये निधनं गताः ॥३७॥

कटु वाक्य, दण्ड-पारुष्य, ईर्ष्या, असूया, चुगलखोरी, (अति) साहस, अपकार तथा अर्थदूषण को क्रोधज व्यसन कहा गया हैं। यह मृत्यु का कारण है। ये आठों विनाश के कारण हैं। देवता, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, सर्प, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी विषयासक्ति के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।।३६-३७।।

एवं विवेकमासक्तं बुद्ध्वा घोरं नराधिप। धर्मव्याजं समास्थाय विषयैः सन्निवेश्यताम् ॥३८॥

नारद असुरराज को इस प्रकार से विवेकवान देखकर धर्मछल का अवलम्बन लेकर उसे विषयों के प्रति चेष्टावान करने के लिये कहने लगे।।३८।।

नारद उवाच

निर्जित्य शत्रुसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्। अनाथामुद्वहेत्कन्यां वंशजां न च दोषभाक् ॥३९॥
धर्मस्य साधनं राज्यं राज्यादैश्वर्यमुत्तमम्। भुञ्जयन् पुनरन्याश्च स्त्रियो रत्नविभूषिताः ॥४०॥
मद्यमैथुनमांसस्य न दोषः स्वप्रवृत्तितः। मित्रागमसुखालापाः स्त्रीणां सम्भोगहेतवः ॥४१॥
नित्यं चेष्टा मनोऽभीष्टाः कथा गेयाः सुखप्रदाः ॥४२॥
सौधपृष्ठमृदुन्नाथ रश्मयः सुखहेतवः। उष्णोदकसुखस्नानं पयःपानं वरस्त्रियः ॥४३॥
वाजीकरणयोगांश्च नन्दिकेश्वर उक्तवान्। भुक्त्वा नारीशतं पुंसः सौभाग्यं परमाप्नुयात् ॥४४॥

नारद कहते हैं—शत्रुसैन्यों को जीतकर धर्मतः राज्य का पालन करे, सत् कुल में उत्पन्न अनाथ कन्या से विवाह करे, इससे कोई दोष नहीं होता। राज्य ही धर्म का साधन तथा उत्तम ऐश्वर्य-प्राप्ति का हेतु है। उस राज्य तथा अपनी पत्नी के अतिरिक्त रत्नालंकार से आभूषित अन्य कन्या रमणी से भी सम्भोग किया जा सकता है। प्रवृत्ति हो तब मद्य-मैथुन-मांस से भी दोष नहीं होता। मित्रागम, सुख से आलाप, स्त्रीभोग, अभिलषित विचित्र गल्प, सुखद गीत, सौधपृष्ठ तथा कोमल शय्या—ये सभी सुखद उपकरण हैं। गरम जल से सुखप्रद स्नान, दुग्धपान, वाराङ्गना सम्भोगादि, वाजीकरण औषधि-सेवन की बातें नन्दिकेश्वर ने कही हैं। पुरुष एक सौ रमणियों के साथ सम्भोग करके सौभाग्य प्राप्त करता है।।३९-४४।।

सहस्रेण महाभोगी ह्ययुतेन धनेश्वरः। लक्षेण कामदेवत्वं कोटिना परमं पदम् ॥४५॥
एवं पूर्वोपदेशन्तु नन्दिना परिपृच्छतः। विष्णुतत्त्वं कामतत्त्वं शिवतत्त्वं तथापरम् ॥४६॥

इत्येवं कपिलः प्राह मुनीनां प्रवरो मुनिः। द्विरष्टवर्षां कन्याञ्च पीनोन्नतपयोधराम् ॥४७॥
यः सदा कामयते पुमानपरमत्वं स गच्छति ॥४८॥

सहस्र रमणी से सम्भोग करने वाला महाभोगी, अयुत रमणी से सम्भोग करने वाला धनेश्वर होता है। लक्ष रमणी-सम्भोग से कामदेवत्व की प्राप्ति होती है। कोटिकामिनी-सम्भोग परमपद प्राप्त कराता है। नन्दी द्वारा पूछे जाने पर मुनियों में श्रेष्ठ कपिल मुनि ने इस प्रकार से विषयतत्त्व, कामतत्त्व तथा शिवतत्त्व का वर्णन किया था। नित्य अट्ठारह वर्षीया, पीनोन्नत पयोधरा रमणी से जो सम्भोग करता है, उसे अमरत्व की प्राप्ति होती है।।४५-४८।।

स्थूलां शिथिलदुर्गन्धां केकरां वा कटां शठीम्। रोगिणीं व्याधितां मूकामयोग्यां मन्दगामिनीम् ॥४९॥
गत्वा पुमानवाप्नोति व्याधिं पुंस्त्वविनाशनम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्त्रियोऽन्वेष्या महामते ॥५०॥

स्थूल, शिथिल (कामक्रीड़ा में शिथिल), दुर्गन्धित, टेढ़ी, कटुभाषिणी, शठ, रोगिणी, दुश्चिकित्स्य व्याधिग्रस्त, मूक, अयोग्य अथवा नीचगामिनी रमणी से सम्भोग करने से रोग तथा पुरुषत्व की हानि होती है। हे महामते! इसलिये सर्वतोभावेन उत्तम स्त्री का अन्वेषण करना चाहिये।।४९-५०।।

तदायत्ता इमे प्राणाः शुक्रौजोबलमेव च। बलञ्च परमं शुक्रं तञ्च जीवं मतं बुधैः ॥५१॥

प्राण, वीर्य, ओज तथा बल सभी स्त्री से आयत्त होता है। वीर्य ही परम बल है तथा विद्वान् लोग उसे ही जीव कहते हैं।।५१।।

तच्च शुभाबलायोगाद् वर्धते असुराधिप। स हृष्टः स्फीतः पुरुषस्तस्मात् सर्वक्षयो भवेत् ॥५२॥
एवं धर्मार्थकामानां न हानिर्भवतेऽसुर। जम्बुद्वीपे महाबाहो विन्ध्ये भूधरपुत्रिका ॥५३॥

हे असुरराज! उत्तम रमणी के प्रति अनुराग से तथा उसी की सहायता से शुक्रवृद्धि होती है। वरवर्णिनी स्त्री की कृपा से ही पुरुष आनन्द से सराबोर तथा सर्वकार्यक्षम होता है। हे असुर! इस प्रकार से धर्म-अर्थ-काम में तनिक भी हानि नहीं होती। हे महावाहो! जम्बूद्वीपस्थ विन्ध्यपर्वत पर एक पर्वतपुत्री है।।५२-५३।।

द्विरष्टवर्षकन्या सा सर्वलक्षणसंयुता। योग्या राजंस्त्वदीयस्य विभवान्तःपुरस्य च ॥५४॥
तामानय यथाशक्त्या त्रैलोकस्य विभूतये। पातालं मूलभूतन्तु सारं पृथ्वी ससागरा ॥५५॥
शाखाशैलवनोपेता दिवं पुष्पं विनिर्दिशेत्। अप्सरस्तत्फलं विद्धि ताः कन्याः फलबीजगाः ॥५६॥
एवं स नारदादेशात् व्याजधर्मप्रवर्तितः। चकार सम्मतिं शक्र कन्यामुद्वहनोपरि ॥५७॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे घोरप्रलोभनं नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

उसका वयःक्रम अष्टादश वर्ष का है और वह सभी लक्षणों से सम्पन्न है। राजन्! वही कन्या तुम्हारे वैभव के अनुरूप तथा अन्तःपुर के लिये उपयुक्त है। त्रैलोक्य की विभूति-हेतु उसे येन-केन प्रकारेण ले आओ। पाताल जड़ है। गृह-पर्वत-वन से भरी, सागरों से युक्त पृथिवी वृक्ष है। स्वर्ग उसका पुष्प है तथा अप्सरागण इस वृक्ष के फलस्वरूप हैं। यह पर्वतकन्या तो अपनी संगिनी कन्याओं के साथ फल के मध्य की बीज-जैसी है। हे इन्द्र! घोर दैत्य नारद द्वारा दिये गये उपदेश के अनुसार राज्यधर्म में प्रवृत्त होकर उस कन्या से विवाहार्थ अत्यन्त प्रयत्नयुक्त हो गया।।५४-५७।।

अष्टम अध्याय समाप्त

●

नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नारदकथनाच्छक्र व्याजधर्मरतोऽसुरः। न स पूजयेद्विप्रान् न वेदान्न वाऽच्युतम् ॥१॥
न मन्त्रिद्वाःस्थवाक्यानि न च पत्नीसमं वसेत्। सर्वं धर्मपथं त्यक्त्वा बलवाहनसञ्चयम् ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—असुरराज घोर नारद के उपदेशानुरूप व्याजधर्म (विपरीत धर्म) में रत होकर विप्रपूजा से विमुख हो गया और उसने वेदों का सम्मान त्याग दिया। अब वह विष्णुपूजन से भी विरत हो गया। उसने मन्त्रियों की मन्त्रणा भी नहीं सुनी, पत्नी के साथ सहवास त्याग दिया। समस्त धर्मपथ, सैन्य, सामन्त, वाहन का भी त्याग कर दिया।।१-२।।

पानसङ्गमगेयादिमिच्छन् द्यूतनिषेवणम्। उत्कण्ठितमना जातः परपत्नीरतः सदा ॥३॥
स्वकान्तां विषवन्मेने न च धर्मं प्रतीक्षते। एक एव सुहृद्विप्रो नारदः ऋषिसत्तमः ॥४॥

वह द्यूतक्रीड़ा, सुरापान, स्त्रीसम्भोग तथा गीतादि के प्रति आसक्त हो गया एवं सर्वदा इनके लिये उत्कण्ठित रहने लगा। वह परस्त्री में आसक्त भी हो गया एवं अपनी पत्नी को विष के समान देखने लगा। धर्म के प्रति उसकी दृष्टि अब नहीं रह गयी। वह सोचता था कि ऋषिश्रेष्ठ नारद ही मेरे एकमात्र सुहृद हैं।।३-४।।

येन मे विषयासक्तिर्दत्ता कामसुखप्रदा। कतरेण विधानेन आनयामि मुदा त्वहम् ॥५॥
परपत्न्यः शुभा भद्राः पीनोन्नतपयोधराः। सत्यमेव हि धर्मस्य फलं राज्यं महोदयम् ॥६॥

वह चिन्तन करता था कि एकमात्र उनकी ही कृपा से मुझे इच्छानुरूप सुखमयी विषयासक्ति प्राप्त हो सकी है। अब मैं किस उपाय से पीनोन्नतस्तनी, रूपवती, मृदुभाषिणी, परपत्नीगण को नित्य ला सकूँगा? आज मेरा राज्य तथा धर्म सफल हो गया है। महान् सौभाग्योदय हो गया है।।५-६।।

तथा च पुरग्रामाणि गृहाः पत्न्यः सुशोभनाः। देवविद्याधरा यक्षा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥७॥
सदा काममुदासक्ताः स्त्रियः पानमनोऽनुगाः। तथा वयञ्च कुर्वामो यथा भूधरपुत्रिकाम् ॥८॥
नारदकथनात् सत्यं भुञ्जामि सुरदुर्लभाम्।

मेरा नगर-ग्राम-पुर सभी सफल है, क्योंकि सुन्दरी युवती बहुरमणीगण से मैंने सम्भोग किया है। देवता, विद्याधर, यक्ष ही नहीं; यहाँ तक कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर तक सभी कामासक्त चित्त से सर्वदा रमणी के प्रति आसक्त हैं; साथ ही पान आदि में परायण हैं। अब मैं नारद द्वारा बताई गई देवदुर्लभ पर्वतनन्दिनी से सम्भोग कर सकूँगा। इस विषय में निश्चय ही उपाय करूँगा।।७-८।।

ब्रह्मोवाच

विज्ञाय नारदाच्छक्र घोर तन्मतिवर्त्मगाम्। अमात्यसहितो वाग्मी चन्द्रबुद्धिरमन्त्रयत् ॥९॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे इन्द्र! रानी चन्द्रमती अपने प्रति घोर को नारद द्वारा उपदिष्ट धर्म में प्रवृत्त देखकर अमात्य के साथ मन्त्रणा करने लगी।।९।।

चन्द्रमतिरुवाच

यथा तात मम स्वामी चन्द्रशोभमहात्मनः। तथैव त्वं महामात्यो मम भर्त्तानुपालकः ॥१०॥
तव सर्वाणि शास्त्राणि विद्या-आन्विक्षिकादयः। वसन्ति उदरे यस्य स कथं मुच्यते पथः ॥११॥
अमात्यवशगं राज्यं वशो राजा सुमन्त्रिषु। तन्मते भुञ्जते पृथ्वीमन्यथा तु विपर्ययः ॥१२॥

चन्द्रमती कहती है—हे तात! मेरे स्वामी जिस प्रकार से चन्द्रशोभापुर के राजा हैं, तब आप भी उसी तरह उपयुक्त रूप से स्वामीरक्षा करने के लिये तत्पर महामन्त्री भी हैं। सभी शास्त्र, आन्वीक्षिकी प्रभृति विद्या आपके अन्तर में स्थित हैं, ऐसे आप मार्गभ्रष्ट कैसे हो सकते हैं? राज्य मन्त्री के वश में रहता है तथा राजा सुमन्त्री के वश में रहते हैं। पृथिवी का पालन मन्त्री के मतानुरूप करना चाहिये; नहीं तो विपरीत फल हो जाता है।।१०-१२।।

त्वया तात समस्तेयं पृथ्वीपातालदेवराट्। नाथेन भवता प्राप्ता स कथं न वशस्तव ॥१३॥
यदा हि व्यसनासक्तं नृपं बुद्धिविपर्यये। विज्ञाय स तदामात्यः प्राकृतं दर्शयेद्भयम् ॥१४॥

हे तात! जिन्होंने समस्त पृथिवी, पाताल तथा स्वर्ग को आपकी सहायता से प्राप्त किया है, वे असुरराज आज आपके वश में क्यों नहीं हैं? राजा को वासनासक्त तथा विपरीत बुद्धियुक्त देखकर अमात्य द्वारा उनको भय दिखलाना (कि यह सब नाशकारी है) उचित ही है।।१३-१४।।

तव भिन्नाः सुता भार्याः सामन्ताः प्रवरा नृपाः। मदीये त्वं मते वर्त्तन् स्वयं तत्र हि वेत्स्यसि ॥१५॥
त्वं पुनः सर्वभावेन तस्याज्ञामनुवर्त्तकः। न हि इष्टं सदामात्यं राज्ञो राज्यं कथं भवेत् ॥१६॥

आप द्वारा (उनसे) यह कहना उचित था कि हे राजन्! आपके पुत्र, पत्नी, सामन्त राजा, मित्र राजा सभी भेद से जर्जरित हो रहे हैं। आप मेरी बात मानिये, अन्यथा स्वयं राज्यरक्षण नही कर सकेंगे। लेकिन आप सभी भी सर्वतोभावेन उन (कुपथगामी) राजा की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। जहाँ सदैव अमात्य इष्ट बतलाना छोड़ देता है, उस राजा के राज्य का क्या होगा?।।१५-१६।।

यस्य समुत्सवा वैद्या अमात्या नृपवाक्करः। न हि राज्यं स्थिरं तस्य कपिमालेव मूर्द्धगा ॥१७॥
अमात्यप्रवरं राज्यं भूता द्वाःस्था अवेक्षकाः। महानसः स्त्रियः शय्यापानताम्बूलदायकाः ॥१८॥
एते हि यस्य सद्वृत्ताः स राजा सुखभुक् सदा। विभिन्नैर्भिद्यते तात सिकता इव सेतुषु ॥१९॥

जिस राजा के पाकशालाध्यक्ष, स्त्री, शय्याकारक, जलदाता तथा ताम्बूलदाता—ये सच्चरित्र होते हैं; वह राजा सदा सुखभोग करता है। जिसके वैद्य-अमात्य चापलूस तथा हाँ में हाँ मिलाने वाले होते हैं, वह राज्य उसी प्रकार से स्थिर नहीं रहता, जैसे वन्दर के शिर पर रखी माला। लेकिन हे तात! जिसके ये सभी व्यक्ति (अधिकारी-सेवक) इन्द्र द्वारा प्रयुक्त भेद डालने वाले उपाय से प्रभावित हो गये हों, वह राज्य भी वालुका-निर्मित सेतु के समान क्षणमात्र में विशीर्ण हो जाता है।।१७-१९।।

धर्माधर्मस्य संसिद्धिः स्वामिनः सुखमिच्छताम्। भृत्यानां भवत तात अन्यथा निरयास्तव ॥२०॥
ऋजुव्रणत्वक्सारमहावंशा यथा गृहम्। धारयन्ति सदा राज्यं मन्त्रिणो दण्डपालकाः ॥२१॥

हे तात! स्वामी का सुख चाहने वाले भृत्यवर्ग भी स्वामी द्वारा किये गये धर्माधर्म के अधिकारी होते हैं। यदि आप स्वामी के हित-सुख की इच्छा नहीं करते, तब आपको भी नरक प्राप्त होगा। जैसे व्रणरहित सीधे बांस गृह की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार से निर्दोष, सरल, सद्वंशोत्पन्न मन्त्रीगण ही दण्डपालक होकर राज्य की रक्षा करते हैं।।२०-२१।।

राज्ञाञ्च शब्दमात्रैव अभिमानं यथा मम। राज्यञ्चामात्यलेख्यानां भोग्यं तात न चान्यथा ॥२२॥
स्त्रीस्वरूपा यदा किञ्चिन्मया वाणी न संस्कृता। तथापि मम क्षन्तव्यं बालानां न हि रुष्टताम् ॥२३॥
एवं सबान्धवं मन्त्रं चन्द्रबुद्धिः प्रहृष्टवान्। प्रोवाच संस्तुतं वाक्यं देवी त्वं देवतास्वपि ॥२४॥

'मेरा राज्य' इसी शब्द से राजा का अभिमान रहता है। लेकिन यह बात अन्यथा नहीं है कि वस्तुतः राज्य मन्त्रिलेखा के ही अधीन रहता है। मैं स्त्री हूँ। यद्यपि मेरा यह सब कहना सुसंस्कृत (उचित) नहीं है, तथापि आप मुझे क्षमा करें। मूर्ख

के प्रति कोप करना उचित नहीं है। चन्द्रमती ने यह सब बातें मन्त्री से कहीं। तब मन्त्री प्रसन्न चित्त होकर रानी से संस्तुति के रूप में कहने लगे कि देवि! तुम देवताओं में भी मान्य हो।।२२-२४।।

सुषेण उवाच

त्वमेव सर्ववाक्यानां नयानामुपदेशिनी। तथापि किञ्चिद्वक्तव्यं न त्वेवं यच्च मन्यसे ॥२५॥
सर्वनीतिगतः पारो देवद्विजनदेज्यकः। शुद्धमतिश्च मतिमान् कथं स विपथे व्रजेत् ॥२६॥
अकस्मादद्य रात्रौ च नारदाद्वाक्यचोदितः। तस्य इच्छाकरो भूत्वा अस्माकञ्च न हीच्छति ॥२७॥

मन्त्री सुषेण कहते है—तुम्हारे सभी वाक्य सर्वलोक को नीति-प्रदर्शन में समर्थ हैं। तथापि मुझे भी कुछ कहना है; क्योंकि तुमने मुझे जैसा समझा, मैं वैसा नहीं हूँ। हमलोगों के राजा सर्वनीतिपरायण, देव-द्विजगण का सम्मान करने वाले, शुद्ध वुद्धि तथा विद्वान् हैं। उनके विपथ में जाने की सम्भावना कैसी? लेकिन हठात् गतरात्रि में नारद के वचन से चालित होकर उनकी इच्छा के अनुरूप कार्य कर रहे हैं। हम लोगों की बात सुनना ही नहीं चाहते।।२५-२७।।

यथामात्येन मत्तेन विभूतिर्विफला तव। येन वृद्धा स्त्रियः सेवी कृतो वैद्याः पुरोहिताः ॥२८॥
एवं तस्य मतिर्भूत्त्वा नारदपथगा शुभे। वयं त्वञ्च तथागच्छ प्रत्यक्षमनुशास्यताम् ॥२९॥
अवमन्य तथा द्वाःस्थं देवी मन्त्री गतौ हि तम्। संक्रुद्धलोचनोऽपश्यन्न च वाचाभ्यभाषत ॥३०॥

नारद ने राजा से कहा है कि तुम्हारे मन्त्री मत्त हैं, उन्होंने तुम्हारे ऐश्वर्य को फलहीन कर रखा है। उन लोगों ने तुमको वृद्धस्त्री (राजा की पत्नी) के प्रति आसक्त कर रखा है। वैद्यगण तथा पुरोहित की तो बात ही क्या? हे शुभे! नारद की बातों के प्रभाव से राजा की ऐसी बुद्धि हो गयी है। अतएव मैं भी जा रहा हूँ, साथ में तुम भी चलो और राजा को उपदेश दिया जाय। तब रानी तथा मन्त्री दोनों ही द्वारपाल के रोके जाने पर भी उसकी बातों को अमान्य करके अन्दर गये! उन्हें अपने क्रोधाक्त रक्त नयनों से देखकर भी असुरराज द्वारा उनसे कोई वार्त्ता न किये जाने पर रानी चन्द्रमती उससे कहने लगीं।।२८-३०।।

चन्द्रमतिरुवाच

यदापि भवतो नास्मान् वाचायामपि भाषते। तथापि किञ्चिद् वक्तव्यं न सपत्नीभयं मम ॥३१॥
न चाविज्ञातशीलासु स्त्रीषु भोग्यागमः क्वचित्। विषकन्याभयं घोरं पापजं श्रूयते परम् ॥३२॥

चन्द्रमती कहती है—यद्यपि हमें आया देखकर भी आपने कोई वाक्यालाप नहीं किया तथापि मुझे कुछ कहना है। मैं सपत्नी के भय से कुछ कह रही हूँ (अर्थात् आप सपत्नी लायेंगे—इस आशंका से कह रही हूँ)—ऐसा नहीं हैं। सपत्नी का कोई भय मुझे नहीं है। अविज्ञात स्वभावा रमणी के साथ आप कदापि रमण न करें। इसमें विषकन्याजनित भय है तथा घोर पाप सुना गया है।।३१-३२।।

तपस्विव्यङ्गकं नग्नचण्डभीरुचरानुगान्। यज्ञविप्रविदां राजा विश्वस्तः सीदतेऽचिरात् ॥३३॥
रजकी तान्त्रिकी चक्री वरुठी पुष्पग्रन्थिनी। कैवर्ती ईक्षणी वृद्धा न हि स्थाप्या गृहे चिरम् ॥३४॥

तपस्वी वेश वाले, नग्न क्षपणक, क्रोधी, भीरु, गुप्तचर (अन्य का चर), याज्ञिक, विप्र तथा ज्योतिषी पर जो राजा अधिक विश्वास करता है, शीघ्र ही उसे दुःख प्राप्त होता है। रजकी, तान्त्रिकी, चक्री, वरुटी, मालिनी, कैवर्त्ती तथा अपरिचित वृद्धा महिला को अधिक समय तक घर में नहीं टिकाना चाहिये।।३३-३४।।

सूतिका वधिरा यन्त्री कुलाली स्त्रीजने यथा। विनाशं कुरुतेऽवश्यं धर्मराजोऽपि तद्वशः ॥३५॥
पानं कन्यासनं शय्या वाहनन्तु विचारितम्। भुञ्जानो महदाप्नोति मृत्युकृच्छ्रं तथा गदम् ॥३६॥

सूतिका, बधिरा, गुण्डिका तथा कुलाली रमणी अपने वशवर्त्ती राजा का विनाश करती है। धर्मराज भी इनके साथ अधिक परिचय होने पर इनके वश में आ जाते हैं। पान, आसन, शय्या, रमणी, वाहन तथा अन्न का विचार किये बिना जो इनका व्यवहार करता है, वह व्याधि तथा मृत्यु से ग्रस्त हो जाता है।।३५-३६।।

न हि अनिच्छती बाला भुञ्जनीया कदाचन। न च तामुद्वहेन्नाथ शृणु पूर्वकथामिमाम् ॥३७॥
त्वञ्च वेत्सि यथान्यायं तथापि शृणु लोकतः ॥३८॥

हे नाथ! जो रमण न चाहे ऐसी रमणी के साथ कभी भी रमण नहीं करना चाहिये। ऐसी कन्या से विवाह भी नहीं करना चाहिये। इस विषय में पूर्वकालीन इतिहास को सुनिये। आप यह सब तत्त्व जानते हैं, तथापि इस समय उसे सुनकर विचार कीजिये।।३७-३८।।

क्रौञ्चद्वीपे पुरावृत्तं राजा नाम्ना सुमेधसः। तस्य पत्नीसहस्राणि अष्टावष्टाभवत् किल ॥३९॥
सर्वसम्पत्तिसम्पन्नः समस्तबलवाहनः। भुञ्जन् पृथ्वीमिमां नाथ ससमुद्रां सकाननाम् ॥४०॥

पूर्वकाल में क्रौंचद्वीप में सुमेधा नामक राजा राज्य करता था। उसकी १६००० पत्नियाँ थीं। उसके पास अतुल सम्पत्ति एवं समस्त सैन्य-सामन्तादि थे। हे नाथ! वह समुद्र तथा वनों के साथ समस्त पृथिवी पर निष्कण्टक राज्य करता था।।३९-४०।।

तावत्कालेन महता परिक्रामन् परं किल। द्वीपं शाकाह्वयं नाथ तस्मिन् क्रीडन् यथाविधि ॥४१॥
सोऽशृणोत् पुष्करे कन्यामृषे रूपसमन्विताम्। सर्वलक्षणसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥४२॥
तावत्स तत्रगो नाथ न पश्येदृषितापसाम्। सा कन्या भद्ररामा च तामुद्वाहसमुत्सुकः ॥४३॥

वह बहुत काल-पर्यन्त पर्यटन करते-करते शकद्वीप पहुँचा। वहाँ पर यथाविधान क्रीड़ा करने लगा। वहाँ उसने सुना कि पुष्कर द्वीप में एक ऋषिकन्या अत्यन्त रूपवती, सर्वलक्षणयुक्ता तथा सर्वाभरणभूषिता है। हे नाथ! राजा उन ऋषि के आश्रम में गया; लेकिन ऋषि, तपस्वी आदि नहीं मिल सके। वहाँ केवल उस ऋषिकन्या भद्ररामा को ही देखा और राजा उससे विवाहार्थ उत्सुक हो गया।।४१-४३।।

कामार्त्तो विह्वलीभूतो न विन्द्यादपरं क्वचित्। अनिच्छमानापि तथा गृहीता पाणिना करे ॥४४॥
सा कन्या भद्रनाम्नी च रुदन्तीं न मुमोच सः। तथा स तां भुञ्जयित्वा गतो द्वीपं नराधिपः।
शाकाह्वमागतस्तावत् पुष्करे मुनिसत्तमः ॥४५॥

वह इतना कामविह्वल हो गया कि उसे हित-अहित का कोई विचार ही नहीं रह गया। भद्ररामा की इच्छा न होने पर भी राजा ने रमण की इच्छा पूर्ण करने के लिये अपने हाथों से उसका हाथ पकड़ लिया। भद्ररामा के द्वारा रुदन करने पर भी उसे नहीं छोड़ा और अपनी इच्छा पूरी करके वह राजा शकद्वीप चला गया। इधर वे ऋषिश्रेष्ठ पुष्कर द्वीपस्थ अपने उस आश्रम में लौट आये।।४४-४५।।

तेन सा विमना दृष्टा रुदमाना तु कन्यका। पप्रच्छ सर्वमाख्यातं यथावृत्तं सुरेश्वर ॥४६॥
श्रुत्वा क्रोधसमाविष्टः शशाप तमृषिर्नृपम्। सुमेधसस्ततो यातो नरकं भूतलादभूत् ॥४७॥

यहाँ आकर देखा कि उनकी कन्या विमना है तथा रो रही है। हे अमरविजयिन्! तब उन्होंने कन्या से (इसका कारण) पूछा। कन्या से समस्त वृत्तान्त सुनकर ऋषि क्रोधाविष्ट हो गये। उन्होंने उस राजा को दारुण शाप दिया, जिसके फलस्वरूप वह राजा सुमेधा पृथिवी से नरक में चला गया।।४६-४७।।

एवं नाथ न सापत्न्यशङ्कया असुरेश्वर। वारयामि च त्वां स्वामिन् तव राज्यसुखार्थिनी ॥४८॥

हे नाथ! शाप की आशंका इस प्रकार से सर्वत्र ही रहती है। हे स्वामिन्! हे असुरेश्वर! आपके राज्य (के हितार्थ) तथा सुख के लिये मैं आपको इन सब कार्य से रोक रही हूँ।।४८।।

ब्रह्मोवाच

नारदेन वचः श्रुत्वा घोरबुद्धिविवर्धनम्। मोहना जप्यते विद्या पदमालेति भैरवा ॥४९॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—नारद ने रानी का यह वक्तव्य सुनकर यह सोचा कि इससे तो घोर दैत्य चैतन्य हो जायेगा (कुपथ छोड़ देगा)। अतएव वे घोर दैत्य के मोहनार्थ भैरव की पदमाला का जप करने लगे।।४९।।

शक्र उवाच

कथं सा भैरवा विद्या किंवीर्या किंपराक्रमा। जप्तव्या केन विधिना कथं प्राप्ता च शङ्करात्।
विद्या मोहनशीला या ससुरासुरमानवान् ॥५०॥

इन्द्र कहते हैं—यह भैरव विद्या किस प्रकार की है? यह कैसी विद्या है? इसका सामर्थ्य क्या है? किस विधान से इसका जप किया जाता है? शिव से इस सुर-असुर-नरगण को मोहित करने वाली विद्या किसने कैसे पायी?।।५०।।

ब्रह्मोवाच

आराध्य नन्दिना पूर्वं देवदेवं जगद्गुरुम्। योगाभ्यासेन महता तदा तस्य ददर्श ताम् ॥५१॥
दृष्ट्वा देवेश्वरं शम्भु पप्रच्छेमं वरं शृणु। तथा तेन समाचिन्त्य विघ्नपापप्रणाशनीम् ॥५२॥
पदमालां महाविद्यां सर्वदेवनमस्कृताम्। याचयामि सुरेशानमुमादेहार्धहारिणम् ॥५३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—नन्दी ने पूर्वकाल में जगद् गुरु देवाधिदेव की महायोगाभ्यास से आराधना की। इस पर देवदेव ने शिवमूर्त्ति में उनको दर्शन देकर कहा—वर-प्रार्थना करो। मैं वह दे रहा हूँ। नन्दिकेश्वर ने विचार करके शिव से पाप-विघ्न विनाशिनी, सर्वदेवनमस्कृता पदमाला महाविद्या की याचना की।।५१-५३।।

नन्दिकेश्वर उवाच

यदि मां वरदो देवस्तुष्टो वा त्रिदशेश्वरः। तदा लोकहितार्थाय पदमालां प्रयच्छ नः ॥५४॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—हे देवदेव! हे त्रिदशेश्वर! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देने के लिये प्रवृत्त हैं, तब कृपया मुझे लोकहितार्थ पदमाला विद्या ही प्रदान कीजिये।।५४।।

ईश्वर उवाच

शुक्रेण च तपस्तप्तं तेन विद्या पुरार्थिता। नहि दत्ता मया तस्य देवानां विघ्नकारकः ॥५५॥
त्वया हि याचिता वत्स मया भक्तं तथेति च। दातव्या शृणु तत्त्वेन भूत्वासनसमाधिगः ॥५६॥

ईश्वर कहते हैं—पूर्वकाल में इस विद्या को प्राप्त करने की प्रार्थना के साथ शुक्र ने तपस्या की थी। लेकिन मैंने यह विद्या उनको प्रदान नहीं की, क्योंकि शुक्र देवगण का विघ्न करते हैं। तुमने इसकी याचना की है। मैं तुमको वर-प्रदानार्थ पहले ही स्वीकृत रहा हूँ (अर्थात् प्रस्तुत रहा हूँ); अतः उसे देता हूँ। भूतल पर समासीन होकर (आसन पर बैठकर) एकाग्र होकर श्रवण करो।।५५-५६।।

मन्त्रः

ॐ नमो भगवति 'चामुण्डे श्मशानवासिनि तथा खट्वाङ्गकपालहस्ते महप्रेतसमारूढे महाविमानमालाकुले कालरात्रिबहुगणपरिवृते महासुखे बहुभुजे घण्टाडमरूकिङ्किनि अट्टाट्टहासे किलिकिलि हूं दंष्ट्रे घोरान्धकारिणि नानाशब्दबहुले गजचर्मप्रावृत्तशरीरे रुधिरमांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रे दंष्ट्राकराले भीमाट्टहासे स्फुरद् विद्युत् समप्रभे चलचल चकोरनेत्रे हिलिहिलिललनजिह्वे वी भ्रूकुटिमुखे हूङ्कारभयत्रासिनि कपालवेष्टितजटा मुकुटशशाङ्कधारिणी सर्वविघ्नविनाशिनि इदं कर्म साधय साधय शीघ्रं त्वर त्वर कर अंकुशेन शमय अनुप्रवेशय बन्ध बन्ध कम्पय कम्पय चल चल चालय चालय रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन कुह कुह छिन्द छिन्द मारय मारय वज्रशरीरमानय आनय त्रैलोक्यगतमपि दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वा आविशय आविशय क्रामय क्रामय नृत्य नृत्य बन्ध बन्ध कोटराक्षि ऊर्ध्वकेशि उलूकवदने करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि दह दह पच पच गृह्ण गृह्ण मण्डनमध्ये प्रवेशय प्रवेशय किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन ऋषिसत्येन। आविशय आविशय किलि किलि मिलि मिलि विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गमवेष्टितशरीरे, सर्वगृहावेशिनि प्रलम्बोष्ठि भग्ननासिके कपिलजटे ब्राह्मि भुञ्ज भुञ्ज ज्वल ज्वालामुखि, ज्वल ज्वल खल खल पातय पातय रक्तादि घूर्णापय घूर्णापय भूमिं पातय पातय, शिरो गृह्ण गृह्ण चक्षुर्निमीलय मीलय हृदयं भुञ्ज भुञ्ज हस्तपादौ गृह्ण गृह्ण मुद्राः स्फोटय स्फोटय हूं हूं फट् विदारय विदारय त्रिशूलेन भेदय भेदय वज्रेण हन हन दण्डेन ताडय ताडय चक्रेण छेदय छेदय शक्तिना भेदय भेदय दंष्ट्रया कीलय कीलय कर्तिकया पाटय पाटय अंकुशेन गृह्ण गृह्ण शिरोर्तिज्वरम् एकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्द-ग्रहान् मुञ्चापय मुञ्चापय तन तन उत्थापय उत्थापय भूमिं पातय पातय, गृह्ण गृह्ण ब्रह्माणि त्राहि माहेश्वरि एहि एहि कौमारि एहि एहि वैष्णवि एहि एहि वाराहि एहि एहि ऐन्द्रि एहि एहि चामुण्डे एहि एहि कपालिनि एहि एहि महाकालि एहि एहि रेवति एहि एहि महारेवति एहि एहि शुष्करेवति एहि एहि आकाशरेवति एहि एहि हिमवन्तचारिणि एहि एहि कैलाशचारिणि एहि एहि परमतन्त्रान् छिन्द छिन्द किलि किलि विच्चे अघोरे घोररूपिणि चामुण्डे रुद्रक्रोधाद्विनिःसृते असुरभयङ्करि आकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध कर्त्त कर्त्त शमय तिष्ठ तिष्ठ मङ्गलं प्रवेशय प्रवेशय गृह्ण गृह्ण मुखं बन्ध बन्ध चक्षुर्बन्ध बन्ध हृदयं बन्ध बन्ध हस्तपादौ बन्ध बन्ध दुष्टगृहान् सर्वान् बन्ध बन्ध सा दिशा बन्ध बन्ध विदिशा बन्ध बन्ध ऊर्ध्वं बन्ध बन्ध अधस्तात् बन्ध बन्ध भस्मना पानीयेन मृत्तिकया वा सर्वैर्वा आविशय आविशय घातय घातय चामुण्डे किलि किलि विच्चे हूं फट् ॥५७॥

एवं सा पदमालाख्या विद्या देवनमस्कृता। यस्यार्था उदरं जग्मुर्मदीयं भार्गवः पुरा ॥५८॥
स च वर्षशतं दिव्यं स्थित्वा शापेन शापितः। चकार च तदा देवो कारुण्याद् भवतोषिता ॥५९॥
तव लिङ्गाद्विनिष्क्रान्तः शुक्रो नाम्ना भविष्यति। सुतोऽयं तव देवेश सर्वविद्याधिपो वरः ॥६०॥
त्वयापि वत्स न देया अभक्ते नाजितेन्द्रिये। अष्टोत्तरं शतं कुर्यात् कर्मणा गणनायक ॥६१॥
एवं पूर्वं महाविद्यां शिवान्नन्दीशः प्राप्तवान्। समस्त पदउच्चारा अष्टोत्तरशतं विभो ॥६२॥

ऊपर मूलोक्त ही है देवों द्वारा नमस्कृत्य पदमाला विद्या। भार्गव इस विद्या को प्राप्त करने के लिये मेरे उदर में प्रवृष्ट हो गये थे। भार्गव ने शापग्रस्त होकर सौ दिव्य वर्षों तक वहाँ विचरण किया। तत्पश्चात् पार्वती ने उनके प्रति सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा—हे भव! यह आपके लिंगपथ से बाहर आकर शुक्र नाम से प्रसिद्ध हो। हे देवेश! शुक्र आपका पुत्र हो गया। सर्वविद्याओं में पारदर्शिता तथा श्रेष्ठत्व शुक्र को मिलेगा। हे वत्स! यह विद्या तुम अभक्त अथवा अजितेन्द्रिय को नहीं देना। हे गणश्रेष्ठ! इस पदमाला मन्त्र के सामर्थ्य से अष्टोत्तरशत कर्म कर सकोगे। ब्रह्मा कहते हैं—नन्दिकेश्वर ने इस प्रकार शिव से यह विद्या प्राप्त की है।।५८-६२।।

शक्र उवाच

कर्मणा कुरुते नाथ किं वा प्रत्येकशब्दिता। कानि कर्माणि देवेश पदानां ब्रूहि तत्त्वतः ॥६३॥

इन्द्र कहते हैं—प्रभो! अष्टोत्तरशत कर्मपटुता क्या समस्त मन्त्रजप का फल है अथवा हे नाथ! एक-एक पद मन्त्र के प्रभाव से ही उन समस्त कर्मों को करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है? हे देवेश! वे अष्टोत्तरशत कर्म क्या-क्या हैं? वह भी यथार्थतः मुझसे कहिये।।६३।।

ब्रह्मोवाच

एकैकस्य पदन्यासं पदानां साधनं तथा। उमया कथितं वत्स यथावदनुपूर्वशः ॥६४॥
तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन वासवः। सिद्धान्तवेदकर्माणामथर्वपददीपनीम्।
अनया तु समा विद्या न भूता न भविष्यति ॥६५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वासव! एक-एक पदमन्त्र न्यास तथा पदमन्त्र साधन की बात उमा ने कही थी। उस प्रणाली द्वारा उन्होंने जो-जो कहा था, मैं उसे उसी प्रकार से कहता हूँ। वेदकर्म-सिद्धान्त-प्रतिपादिनी अथर्ववेदोक्त इस विद्या के समान विद्या न तो पहले हुई है और न ही भविष्य में होगी।।६४-६५।।

देव्युवाच

कैलाशपीठमध्यस्थं वीरेशं परमं प्रभुम्। उक्ता या च महाविद्या मूलमन्त्रे त्वया प्रभो ॥६६॥
कोटिग्रन्थात् समाहित्य सर्व-कर्म-प्रवर्तकी। एतस्य विजयं वक्ष्ये समासाद् विधिचोदितम् ॥६७॥
मन्त्रमालेति नाम्नेयं तथा मन्त्रपदानि च। पदे पदे विधिं चैव सिद्धिसाधनमेव च।
एतन्मे संशयं देव वक्तुमर्हसि शूलिने ॥६८॥

देवी कहती हैं—पूर्व में कैलास पर्वतस्थित वीरेश्वर परमप्रभु शिव से मैंने कहा था—हे प्रभो! कोटि-कोटि ग्रन्थों का सारोद्धार करके मूल तन्त्र में सर्वकर्म-प्रवर्तिनी जिस महाविद्या का वर्णन है, उसका नाम मन्त्रमाला अथवा मन्त्रपद है। उसे अतिसंक्षेप में आपने कहा था। कृपया उस मन्त्र की प्रणाली को कहिये। हे देव! सिद्ध तथा साधनप्रणाली के विषय में भी कहिये। इस सम्बन्ध में मुझे संशय है। हे शूलिन्! कृपया वर्णन करिये।।६६-६८।।

भैरव उवाच

साधु देवि महाप्राज्ञे अपूर्वं पृच्छते विधिम्। प्रवक्ष्यामि न सन्देहो येन सिध्यन्ति साधकाः ॥६९॥

भगवान् भैरव कहते हैं—हे महाप्राज्ञे देवि! तुमने उत्तम अपूर्व विधि के सम्बन्ध में पूछा है। जिससे तुम्हारा संशय निवृत्त हो जाय, तदनुसार कहता हूँ। इसी के अनुसार साधक सिद्धि प्राप्त करते हैं।।६९।।

मन्त्रः

ॐ नमो भगवति चामुण्डे नमः। आनयेति सर्वत्र वीरव्रतं लक्षं जपेत् सम्मतो भवति।

ॐ श्मशानवासिनि नमः—अनया श्मशानप्रवेशनम्।

ॐ खट्वाङ्गकपालहस्ते नमः—अनया मन्त्रावलम्बनम्।

ॐ महाप्रेतसमारूढे नमः—अनया सर्वशस्त्रस्तम्भनम्।

ॐ महाविमानमालाकुले नमः—वृष्टिवारणम्।

ॐ कालरात्र्यै नमः—अन्तर्धानकरणम्।

ॐ बहुगणपरिवृत्ते नमः—जलसाधनम्।

ॐ महासुखे बहुभुजे नमः—शस्त्रमोक्षणम्।

ॐ घण्टाडमरूकिङ्किनीनादशब्दबहुले नमः—अनया सर्वविघ्ननिवारणम् ॥७०॥

मारीप्रवेशनम्—ॐ अट्टहासे नमः।

खड्गस्तम्भनम्—ॐ स्फुरितविद्युत्प्रभे नमः।

परसैन्यस्तम्भनं—ॐ चल चल चकोरनेत्रे नमः।

कपालमथनं समस्तमर्त्याकर्षणम्—ॐ हिलि हिलि ललनजिह्वे नमः।

स्त्रियाकर्षणम्—ॐ भ्रीं भृकुटिमुखे नमः।

विसर्जनम्—ॐ हुङ्कारभयत्रासिनि नमः।

सर्वसत्त्ववशीकरणम्—ॐ कपालमालावेष्टितजटामुकुटशशाङ्कधारिणि नमः।

परमन्त्रच्छेदनम्—ॐ अट्टहासे किलि किलि नमः।

भैरवीकरणम्—ॐ विभो नमः।

स्वयं देव्या असाध्यं साधयति—ॐ विच्चे नमो नमः।

ग्रहग्रहशायनम्—ॐ हूं हूं नमः।

आवेशनम्—ॐ दंष्ट्राघोरान्धकारिणीं नमः।

भस्मना नृत्यापयति—ॐ सर्वविघ्नविनाशिनि नमः।

उपसर्गनिवारणम्—ॐ ऊर्ध्वकेशि नमः।

कापालिकसाधनम्—ॐ उलूकवदने करङ्किणि नमः।

रिपुक्षोभणम् वशीकरणञ्च डमरूकेण—ॐकरङ्कमालाधारिणि नमः।

उन्मत्तकहोमेन उन्मत्तीकरणम्—ॐ विकृतरूपिणि नमः।

सर्पैर्दंशापयति—ॐ कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे नमः।

नृत्यापयति—ॐ प्रलम्बोष्ठि नमः।

भञ्जयति—ॐ भग्ननासिके नमः।

मोचापयति—ॐ चिपिटामुखे नमः।

पुरदाहनम्—ॐकपिलजटे ज्वालामुखि नमः।

सर्वज्वरावेशकरणम्—ॐ रक्ताक्षि घूर्णापय नमः।

ततः कृष्णाम्बरधरः कृष्णमाल्यानुलेपनः वीरव्रतधारी श्मशानवासी भैक्ष्याहार एकैकस्य पदस्याष्टसहस्रं जपेत्। कृतपुरश्चरणे भवति तिलानां त्रिमधुराक्तानामष्टसहस्रं जुहुयात् सिध्यति। महामांसेन त्रिमधुनाक्तेन अत्यद्भुतानि कर्माणि करोति। अन्यकल्पोक्तानि च करोति। अथर्ववेदविहितानि करोति।

साक्षाद् भैरवैः देवैः सिद्धैस्तु परिपूज्यते ॥७१॥

(यहाँ मूल में ३२ मन्त्रों का उल्लेख है। यहाँ प्रत्येक मन्त्र का उल्लेख अनुवाद में न करके केवल संख्यानुसार अर्थात् पहला मन्त्र, दूसरा मन्त्र इस प्रकार से लिखा जा रहा है। तदनुसार पाठक मन्त्र को मूल में ही पढ़ें।)

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक प्रथम मन्त्र के लक्ष जप से लोकप्रियता तथा सम्मान।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक द्वितीय मन्त्र के लक्ष जप से श्मशान-प्रवेशक्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक तृतीय मन्त्र के लक्ष जप से परकीयमन्त्रणाभेद-क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक चतुर्थ मन्त्र के लक्ष जप से सर्वशस्त्रस्तम्भन-क्षमता।

वीरव्रतावलम्वनपूर्वक पंचम मन्त्र के लक्ष जप से वृष्टि रोकने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक षष्ठ मन्त्र के लक्ष जप से अन्तर्हित होने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक सप्तम मन्त्र के लक्ष जप से जलसाधन की क्षमता।

वीरव्रतावलम्वनपूर्वक अष्टम मन्त्र के लक्ष जप से सर्वास्त्रमोचन में निपुणता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक नवम मन्त्र के लक्ष जप से सर्वविघ्ननिवारण-क्षमता।

वीरव्रतावलम्वनपूर्वक दशम मन्त्र के लक्ष जप से मारीप्रवेश-क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक एकादश मन्त्र के लक्ष जप से खड्गस्तम्भन-क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक द्वादश मन्त्र के लक्ष जप से परसैन्य-स्तम्भन की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक त्रयोदश मन्त्र के लक्ष जप से कपालमथन, मर्त्याकर्षण क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक चतुर्दश मन्त्र के लक्ष जप से स्त्रीगण का आकर्षण करने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक पंचदश मन्त्र के लक्ष जप से मारण क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक षोडश मन्त्र के लक्ष जप से सर्वप्राणी-वशीकरण की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक सप्तदश मन्त्र के लक्ष जप से परमन्त्रकर्त्तन की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक अष्टादश मन्त्र के लक्ष जप से भैरवीकरण शक्तिक्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक एकोनविंश मन्त्र के लक्ष जप से देवी के असाध्य-साधना की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक विंश मन्त्र के लक्ष जप से ग्रहाविष्ट करने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक एकविंश मन्त्र के लक्ष जप से भूतावेश की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक द्वाविंश मन्त्र के लक्ष जप से भस्म लगाकर नचाने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक त्रयोविंश मन्त्र के लक्ष जप से उपसर्ग दूर कर सकने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक चतुर्विंश मन्त्र के लक्ष जप से कापालिक साधन-क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक पञ्चविंश मन्त्र के लक्ष जप से रिपुक्षोभण एवं वशीकरण की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक षड्विंश मन्त्र के लक्ष जप से होम करते-करते उन्मत्त करने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक सप्तविंश मन्त्र के लक्ष जप से सर्पदंश कराने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक अष्टाविंश मन्त्र के लक्ष जप से नचा सकने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक एकोनत्रिंश मन्त्र के लक्ष जप से भोजन कराने की क्षमता।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक त्रिंश मन्त्र के लक्ष जप से मोहिनी विद्या।

वीरव्रतावलम्बनपूर्वक एकत्रिंश मन्त्र के लक्ष जप से नगरदाहन की शक्ति।

वीरव्रतावलम्वनपूर्वक द्वात्रिंश मन्त्र के लक्ष जप से सर्वविध ज्वरावेषकरण की सामर्थ्य प्राप्ति।

काले कपड़े पहनकर, कृष्ण माला तथा कृष्ण अनुलेपन से सज्जित होकर वीरव्रत के साथ भिक्षान्न भोजन करते श्मशान में प्रत्येक मन्त्र का ८००० बार जप करने को पुरश्चरण कहते हैं। तीनों मधुरयुक्त (त्रिमधुर) महामांस होम द्वारा होम करके अतीव अद्भुत कर्म की क्षमता आती है और वह अथर्ववेदोक्त विचित्र कर्म कर सकता है। उसमें अन्यकल्पोक्त कार्य करने की क्षमता आ जाती है। अथर्ववेद-विहित विचित्र कर्म करने की क्षमता आती है। साक्षात् भैरव के समान सिद्धगण तथा देवगण उसकी पूजा करते हैं।।७०-७१।।

एवं देवी महाविद्या चामुण्डा पदमालिनी। निबद्धा शतमष्टाग्रकर्मणां ह्युपपादिनी ॥७२॥
कुरुते कोटिधा कर्मयोगयुक्तस्य पार्वति। सकृदुच्चारणाद् विद्या ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥७३॥
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु सर्वव्रतफलानि च। जपेन श्रवणाद्वाथ सर्ववर्णेषु यच्छति ॥७४॥
सर्वोपसर्गशमनी सर्वव्याधिनिवारिणी। अभक्ताय न दातव्या यस्तु देवीं न पूज्यते ॥७५॥

इति श्रीदेवीपुराणे 'पदमालिनी-मन्त्रविद्या' नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

हे देवि! चामुण्डा पदमालिनी विद्या ऐसी ही है। अष्टोत्तरशत कर्म इस विद्या से सिद्ध होते हैं। हे पार्वति! विशेष भक्तियुक्त व्यक्ति के लिये कोटि प्रकार के कर्म की सिद्धि इस विद्या से होती है। यह महाविद्या एक बार भी उच्चरित होने पर ब्रह्महत्या को दूर कर देती है। इसके जप अथवा श्रवण द्वारा सर्ववर्ण के सर्वतीर्थ का स्नानफल तथा सर्वानुष्ठान-फल मिलता है। सब प्रकार के उपसर्ग, व्याधि इस महाविद्या के प्रभाव से शान्त हो जाते हैं। जो देवीपूजा नहीं करता, उस अभक्त को यह विद्या प्रदान नहीं करनी चाहिये।।७२-७५।।

नवम अध्याय समाप्त

●

दशमोऽध्यायः

योगप्रकरणम् (प्रथमः परिच्छेदः)

शक्र उवाच

नन्दिना पदमालाया देव्यास्तैर्भुवि विक्षिता। तस्याः साधनवीरोक्तं कथं तां नारदो लभेत् ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—नन्दी ने पदमाला विद्या को देवी से सुना। देवी ने शिव से इस महाविद्या-साधन-प्रणाली को सुना। नारद ने यह विद्या कहाँ से प्राप्त की थी?।।१।।

ब्रह्मोवाच

सनत्कुमारं वरदं तपसा धूतकल्मषम्। मम पुत्रं महाप्राज्ञं शिवभावेन भावितम्॥२॥
तेन आराध्य नन्दीशं शिवतुल्यं महाव्रतम्। परिपृच्छ्य यथान्यायं योगशास्त्रमनुत्तमम्॥३॥
शिवसिद्धान्तमार्गेण वेदशास्त्रागमेन च। यथा तु प्राप्यते योगस्तथा मे ब्रूहि तत्त्वतः॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—जिनकी पापराशि तप से दग्ध है, जो शिवभाव से भावित हैं, वरदाता महाप्राज्ञ सनत्कुमार के नाम से मेरा एक पुत्र है। उसने महाव्रतधारी शिवतुल्य नन्दीश्वर की आराधना करके यथानियम उनसे अत्युत्तम योगशास्त्र को पूछा। सनत्कुमार ने उनसे पूछा—शिव के सिद्धान्तपथ के अनुसार तथा श्रुति-तन्त्रादि के मतानुसार प्रवृत्त योग कैसे किया जाय? वह मुझसे तत्त्वतः कहिये।।२-४।।

स च योगं समासाद्य कृतबुद्धिर्महामुनिः। विद्याञ्च प्राप्तवांस्तस्य नन्दीशस्य प्रसादतः॥५॥
तथा तेनापि सा विद्या संयोगान्नारदाय च। आराध्यमानः कालेन दत्तवान् मुनिपुङ्गवः॥६॥
येन योगेनासौ योगी सविद्योऽप्यजरामरः। तपते ध्रुवमार्गस्थः शिवयोगप्रभावतः॥७॥

तदनन्तर उन परम बुद्धिसम्पन्न महर्षि ने नन्दीश्वर से योगशास्त्र प्राप्त करके उनकी कृपा से पदमाला विद्या को भी प्राप्त कर लिया। तदनन्तर सनत्कुमार ने मुनिवर नारद द्वारा आराधित होने पर उनको यह विद्या यथाकाल प्रदान किया। योगी नारद उस शिवयोग तथा इस विद्या के बल से अमर हो गये तथा ध्रुव पथ पर अवस्थित होकर तपस्यारत हो गये।।५-७।।

शक्र उवाच

येन योगेन सा विद्या व्रतहीनेऽपि सिध्यति। तच्च देव समाख्याहि येनैव सर्वतो भवेत्॥८॥
किं योगः केन वा देवः प्राप्यते सुरपूजित। एतदेव महाभाग्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥९॥

इन्द्र कहते हैं—हे भव! जिस योग के प्रभाव से यह विद्या व्रतहीन व्यक्ति को भी सिद्ध होती है तथा वह जिससे सर्वकार्य में योग्य होता है, उसे कहिये। हे देवगणपूज्य! कैसे योग से कैसा। व्यक्ति इसका अधिकारी होता है, उस महाभाग्यकारी इस कथा को सुनने की मेरी अभिलाषा है।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

सनत्कुमारं वरदं कोटिसूर्यसमप्रभम्। मेरुपृष्ठाश्रितं दृष्ट्वा सर्वभूतनमस्कृतम्॥१०॥
प्रणम्य शिरसा तस्मै योगाचार्याय नारदः। परिपृच्छति यत्नेन सुसूक्ष्मं योगमुत्तमम्॥११॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत। केनोपायेन तद्योगं प्राप्यते ऋषिसत्तम॥१२॥
तस्मै प्रोवाच भगवान् सर्वशास्त्रविशारदः। शृणु नारद वक्ष्यामि योगं संक्षेपतस्तव॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—सुमेरु पर्वत पर आसीन कोटि सूर्यसमप्रभ, सर्वभूतनमस्कृत्य-वरप्रद-योगाचार्य सनत्कुमार को देखकर नारद ने उनको प्रणाम करके अत्यन्त सूक्ष्म योग की जिज्ञासा करते हुये इस प्रकार कहा—हे भगवन्! सुव्रत ऋषिश्रेष्ठ! मैं यह जानने भी इच्छा करता हूँ कि किस उपाय से योगलाभ किया जा सकता है? कृपया कहिये। सर्वशास्त्रज्ञ सनत्कुमार नारद से कहने लगे—हे नारद! मैं तुमसे संक्षेप में योगप्रणाली कहता हूँ, सुनो।।१०-१३।।

पुष्पभूतेषु शास्त्रेषु मधुवत् सारमुद्धृतम्। योगधर्मं प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्वा महेश्वरम्॥१४॥
ज्ञानाद्भवति वैराग्यं वैराग्याद्धर्मसञ्चयः। धर्माच्च योगो भवति योगान्माहेश्वरा गुणाः॥१५॥

समस्त शास्त्र पुष्परूप हैं। योगधर्म उसका सार मधुरूप है। मैं महेश्वर को नमस्कार करके योगधर्म कहता हूँ। शास्त्रज्ञान का फल वैराग्य है। वैराग्य ही प्रकृत धर्म का मूल है। धर्म योग का कारण है और योग से ही शैवगुण प्राप्त होता है।।१४-१५।।

पूर्वं ज्ञानागमं कृत्वा विरक्तो धर्ममाचरेत्। अतिप्रसङ्गो ज्ञानेषु न कार्यः सिद्धिमिच्छता ॥१६॥
धर्मः प्रयत्नतः कार्यो योगिनान्तु विशेषतः। नास्ति धर्मादृते योग इति योगविदो विदुः ॥१७॥

पूर्व में ज्ञानोपार्जन करके वैराग्य के द्वारा धर्मोपार्जन करना चाहिये। सिद्धिप्रार्थी व्यक्ति को ज्ञानोपार्जन में अधिक आसक्ति नहीं करनी चाहिये। योगी व्यक्ति को धर्मोपार्जन के सम्बन्ध में विशेष यत्न करना चाहिये। धर्म के अभाव में योगसिद्धि नहीं होती, यह योगवेत्ता जानते है।।१६-१७।।

यथादेशं यथाकालं यथाद्रव्यं यथाक्रमम्। यथोपदिष्टः कर्त्तव्यो धर्मो धर्मफलार्थिभिः ॥१८॥
न सुखानि च धर्मश्च नाधर्मश्चासुखानि च। सुखार्थी वा त्यजेद्धर्मं धर्मार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥१९॥

धर्मफलार्थीगण को देश, काल, द्रव्य, क्रम तथा उपदेश के अनुसार धर्मसंचय करना चाहिये। सुख का नाम न तो धर्म है, न ही अधर्म। जो व्यक्ति सुखाभिलाषी है, वह धर्म का त्याग कर दे और जो धर्मार्थी है, उसे सुख का त्याग कर देना चाहिये।।१८-१९।।

वरं नोपार्जितो धर्मो न चैवापरिरक्षितः। तस्मात् कृस्नस्य धर्मस्य कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥२०॥
अन्यथा क्रियते धर्मो अन्यथा चोपदिश्यते। कर्त्तव्यश्चोपदेष्टव्यो धर्मो धर्मपरायणैः ॥२१॥

धर्मोपार्जन न होना ही अच्छा है, लेकिन अर्जन करके उसकी रक्षा न करना उचित नहीं है। अतएव अर्जित धर्म का रक्षण करना अतीव कर्त्तव्य है। अर्थात् विशेष धर्म न करे, विशेष पाप भी न करे—यह भले ही अच्छा है; परन्तु प्रभूत धर्मसंचय करके प्रभूत पापाचरण करना कुछ भी नहीं है। एक प्रकार से धर्म का अनुष्ठान करना; लेकिन उपदेश अन्य रूप से करना उचित नहीं है। जो (वास्तविक) धर्मपरायण होते हैं, वे धर्म का अनुष्ठान तथा उपदेश एक ही प्रकार से करते हैं।।२०-२१।।

सर्वधर्मान् परित्यज्य यतिधर्मं समाचरेत्। यतिधर्मपरिभ्रष्टो अधर्मफलमश्नुते ॥२२॥
यतिधर्मस्य सद्भावः श्रूयतां गुणदोषतः। अप्रमादात्परा सिद्धिः प्रमादान्नारकी ध्रुवम् ॥२३॥

सभी धर्मों का परित्याग करके यतिधर्म का अवलम्बन करना चाहिये; लेकिन यतिधर्म से भ्रष्ट होने पर अधर्म फलभोग करना पड़ता है। अब यतिधर्म के दोष-गुण को सुनो। अप्रमादी रहने पर यतिधर्म से परम सिद्धि मिलती है; लेकिन प्रमादी होने पर नरक अवश्य प्राप्त होता है; यही सिद्धान्त है।।२२-२३।।

पूर्वं धर्मं चरित्वा व्रतयमनियमैः शास्त्रदृष्टैरुपायैर्भूयो मानुष्यभावे हलशकटघटैः क्लेशयित्वा शरीरम्।
दृष्टान् भुञ्जीत भोगान् विशसनरचितान् प्रायशो धर्मलब्धान् पश्चाद्भित्रे तु देहे प्रविशति नरकं दुष्कृतञ्चोपभुङ्क्ते ॥२४॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे प्रथमः परिच्छेदः

पूर्व जन्म में यम-नियम-व्रतानुष्ठान प्रभृति शास्त्रदृष्ट उपाय से धर्माचरण करके स्वर्गलाभोपरान्त पुनः मनुष्य देह मिलने पर हल-चालकता, शकट-चालकता, कुम्भादि वहन करके शरीर को क्लेश देना पड़ता है। तदनन्तर हिंसानिष्पन्न अधर्म से प्राप्त ईप्सित भोग्य भोग करने के उपरान्त उस देह के नष्ट होने पर नरक में जाकर पापफल भोग करना पड़ेगा। (यह उसके लिये कहा गया है, जो पहले धर्माचरण करके पुनः प्रमादी हो गया हो)।।२४।।

प्रथम परिच्छेद समाप्त

●

योगः (द्वितीयः परिच्छेदः)

अविशेषा विशेषेभ्यः कारणत्वात्पराः स्मृताः। इन्द्रियेभ्यश्च तेभ्यश्च अहङ्कारो विशिष्यते ॥१॥
अहङ्कारात्परा बुद्धिः सर्वतश्चाग्रजो महान्। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परमः परः ॥२॥
सर्वकारणिभिर्गूढैर्यस्यान्तो नोपलभ्यते। तच्च विंशतितमं तत्त्वं पुरुषादीश्वरः परः ॥३॥
यः श्रेष्ठः सर्वभूतानां कारणानाञ्च कारणम्। तमीशानं शिवं ज्ञात्वा नरो निर्वाणमर्हति ॥४॥

पञ्चतन्मात्र पञ्चभूतों का कारण होने से श्रेष्ठ है। पञ्चतन्मात्र तथा एकादश इन्द्रियों से अहङ्कार प्रधान है। अहङ्कार से बुद्धि श्रेष्ठ है। यह बुद्धि अथवा महत्तत्त्व सभी जन्य पदार्थों के पहले उद्भूत है। प्रकृति बुद्धि से श्रेष्ठ है। पुरुष प्रकृति की अपेक्षा श्रेष्ठ है। ईश्वर पुरुष से भी प्रधान है। अन्तःसमाहित चित्त योगीगण से भी यह अनुपलभ्य है। ईश्वर ही २६वाँ तत्त्व है। जो सर्वभूतसमूह से श्रेष्ठ है, उनका सृष्टिकर्त्ता है, कारण समूह का कारण है, वह शिव ही ईश्वर है, जिसे जानकर निर्वाण प्राप्त होता है।।१-४।।

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेया विकाराश्चैव षोडश। कार्यञ्च कारणञ्चैव द्वारा द्वारित्वमेव च ॥५॥
विपर्ययो ह्यशक्तिश्च तुष्टिः सिद्धिरनुग्रहः। सुखं दुःखञ्च मोहश्च प्रमाणान्यतराणि च ॥६॥
दैवमष्टविधं ज्ञेयं तैर्यग्योन्यञ्च पञ्चधा। सर्वमेकञ्च मानुष्यमेतत् संसारमण्डलम् ॥७॥
तत्त्वसर्गं भावसर्गं भूतसर्गञ्च ये विदुः। ईश्वरं पुरुषञ्चैव विद्वान् स खलु उच्यते ॥८॥

प्रकृति आठ है (मूल प्रकृति + महत्तत्त्व + अहंकार + पञ्चतन्मात्र = ८), विकार पदार्थ १६ हैं (११ इन्द्रियाँ + ५ महाभूत = १६)। कार्य-कारण, द्वार-द्वारी विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि, सिद्धि, अनुग्रह सर्ग है। सुख, दुःख, मोह, प्रमाण, अष्ट प्रकार की देवयोनि, पाँच प्रकार की तिर्यक् योनि, एक प्रकार का मनुष्य—यह संसार मण्डल तत्त्वसर्ग है तथा भावसर्ग, भूतसर्ग, ईश्वर तथा पुरुष जिसे अवगत हैं, उसे विद्वान् कहते हैं।।५-८।।

तत्पक्षको यस्तु विविक्तबुद्धिर्जितेन्द्रियो नित्यमहिंसकश्च।
विज्ञाय सांख्यं परमञ्च योगं योगाभ्यासात् सर्वदुःखान्तमेति ॥९॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे द्वितीयः परिच्छेदः

संसार से विरक्त, जितेन्द्रिय, नित्य अहिंसक विद्वान् व्यक्ति परम सांख्ययोग को जानकर योगाभ्यास करके सर्वदुःखों के अवसान की स्थिति को प्राप्त करता है।।९।।

द्वितीय परिच्छेद समाप्त

●

योगः (तृतीयः परिच्छेदः)

ईश्वरः पुरुषो व्यक्तः येऽर्थाः प्रागपि सूचिताः। तेषां साधर्म्यवैधर्म्यमुपदेक्ष्यामि तत्त्वतः ॥१॥
सर्वे सूक्ष्माद्यनुत्पन्नाः सर्वे सर्वगताश्च ते। सर्वे नित्या ह्यकम्प्याश्च सर्वे संसर्गधर्मिणः ॥२॥

ईश्वर, पुरुष, प्रकृति—इन तीन पदार्थ का वर्णन पहले किया गया है। इनके साधर्म्य-वैधर्म्य का यथार्थतः उपदेश करूँगा। उक्त पदार्थत्रय सूक्ष्म, सर्वव्यापी, नित्य, निष्क्रिय तथा संसर्गधर्मी हैं।।१-२।।

अव्यूहिका अवष्टब्धाः सर्वे निरवयवाश्च ते। भूतप्रेतस्य लिङ्गाश्च प्रधानपुरुषेश्वराः ॥३॥
त्रिगुणं प्रसवं धर्मभङ्गं भोग्यमचेतनम्। अस्वतन्त्रमशुद्धञ्च प्रधानमिति चोच्यते ॥४॥
निर्गुणौ चेतनौ शुद्धावुभौ प्रसवधर्मिणौ। ज्ञानत्वमथ कर्तृत्वं भोक्तृत्वमुभयोरपि ॥५॥

ये समस्त विकार पदार्थ से पृथक्, अतीन्द्रिय, निरवयव तथा अनुमेय हैं। प्रकृति तथा विकार त्रिगुणात्मक, प्रसवधर्मी, भोग्य, अचेतन, अस्वतन्त्र तथा अशुद्ध हैं। पुरुष तथा ईश्वर निर्गुण, चेतन, शुद्ध तथा अप्रसवधर्मी है। ज्ञानत्व, कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व पुरुष तथा ईश्वर का औपचारिक साधर्म्य है।।३-५।।

अनेकगुणसम्पूर्णः प्रोच्यते गुणवृद्धिभिः। सापेक्षोऽदर्शकारी च असर्वज्ञो ह्यसर्वकृत् ॥६॥
एकः पतिः समः पूर्णो अप्राप्तो गुणवृद्धिभिः। निरपेक्षो दर्शकारी सर्वज्ञः सर्वकृच्छिवः ॥७॥
अस्वतन्त्रमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। यत् सांख्यानाञ्च बुध्यन्ते रुद्रमायाविमोहिता ॥८॥
अनन्तशक्तिर्भगवान् सर्वयोगेश्वरेश्वरः। पशूनामर्थसिद्ध्यर्थं सर्वार्थेषु प्रवर्तते ॥९॥

पुरुष गुण-दोषलिप्त, अनेक, अपूर्ण, सापेक्ष, असमीक्षाकारी, असर्वज्ञ तथा सर्वविषयकर्त्ता नहीं है। ईश्वर शिव एक, जगत्पति, पूर्ण, गुण-दोष से अलिप्त, निरपेक्ष, समीक्षाकारी, सर्वज्ञ तथा सर्वकर्त्ता है। यह चराचर निखिल जगत् पराधीन है। शिव की माया से मोहित व्यक्ति इसमें ईश्वर से अवगत होने में समर्थ नहीं होते। एकमात्र सांख्य-योग के प्रभाव से ही उनको जाना जाता है। सर्वयोगेश्वर की अनन्त शक्ति से सम्पन्न भगवान् प्रजावर्ग भी कार्यसिद्धि हेतु सर्वविषयों में प्रवर्त्तित होते हैं।।६-९।।

कारणात् सर्वभूतानां संसारपरिवर्तिनाम्। ईश्वरस्याप्रमेयस्य प्रवृत्तिमृषयो विदुः ॥१०॥
अग्रं दुष्टं तामसानां विधत्ते रजसा दुःखं राजसानां विधत्ते।
परमं सौख्यं सात्त्विकानां विधत्ते कर्मापेक्षा हीश्वरस्य प्रवृत्तिः ॥११॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे तृतीयः परिच्छेदः

संसारस्थ सर्वविध प्राणीगण के प्रति कृपावशात् अप्रमेय ईश्वर की कर्मप्रवृत्ति होती है, यह ऋषिगण जानते हैं। ईश्वर तमोगुण का अवलम्बन करने वाले लोगों के लिये अत्यन्त दुःख का विधान करते हैं। राजसिक व्यक्तिगण को रजोगुणमूलक दुःख का विधान करते हैं। वे सात्विक गण को परमसुख का अर्पण करते हैं। ईश्वर की प्रवृत्ति मनुष्य के कर्मानुरूप होती है।।१०-११।।

तृतीय परिच्छेद समाप्त

योगः (चतुर्थः परिच्छेदः)

यावच्छरीरं ध्रियते यावद्बुद्धिर्न हीयते। तावज् ज्ञानञ्च योगञ्च सेवेद्वैराग्यमेव च ॥१॥
इहैव परमं दुःखं परत्र परमं सुखम्। तस्माद् दुःखप्रहाणार्थं योगधर्मं समाचरेत् ॥२॥

जब तक शरीर रहे, जब तक बुद्धि विनष्ट न हो, तब तक ज्ञानयोग तथा वैराग्य का अभ्यास करना उचित है। इस कार्य से इहकाल में तो अत्यन्त दुःख होता है, लेकिन आगे परकाल में परम सुख प्राप्त होता है। अतएव पारलौकिक दुःखहानि के लिये योगधर्म वरणीय है।।१-२।।

धृतिमान् सर्वतत्त्वज्ञोऽप्रमादी नियमे स्थितः। परं वैराग्यमास्थाय ध्यानयोगपरायणः ॥३॥
जितेन्द्रियो जितप्राणो जितनिद्रो जिताशनः। जितश्रमो जितद्वन्द्व स्वल्पमात्रपरिग्रहः ॥४॥

अनिर्विण्णोऽप्रतिष्ठश्च निर्ममो निरहंकृतिः। निरामिषो निरपेक्षो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥५॥
अहिंसकः सत्यवादी शुचिः सन्तुष्ट एव च। अक्रोधनो धर्मचारी गुरुभक्तो ह्यकम्पनः ॥६॥
सन्दिग्धः सर्वभूतेषु सर्वलोकजुगुप्सितः। पुण्यान् देशांश्चरेन्नित्यं समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ॥७॥

योगावलम्बन का नियम यह है—धैर्ययुक्त होकर सर्वतत्त्व से अभिज्ञ हो जाय। अप्रमादी, नियमस्थ हो परवैराग्य का अवलम्बन करके ध्यानयोगपरायण, जितेन्द्रिय, प्राणायामसेवी, निद्राजयी, जिताहार (आहार पर विजय) तथा सुख-दुःखादि में परम सहिष्णु होकर रहे। द्वन्द्व पर विजयी रहे, अत्यन्त अल्प परिग्रह करे। आनन्द से द्वन्द्वसाहित्य हो जाय। अधिक समय एक स्थान पर न रहे। ममता से रहित, अहंकाररहित, निरामिषभोजी, निरपेक्ष, कलह आदि से रहित, परिजनों के संसर्ग से रहित होकर अहिंसक, सत्यवादी, पवित्र, सन्तोषी, अक्रोधी, धर्मचारी तथा गुरुभक्त होकर रहे। योगसाधनकाल में स्थिरता से रहे। नित्य पवित्र देश में विचरण करे तथा लोष्ट्र, पत्थर तथा सुवर्ण के प्रति समदर्शी होकर रहे।।३-७।।

सकृद्भैक्ष्यं दिवा सेवेद्रात्रौ च स्थण्डिले वसेत्। परिपूताभिरद्भिश्च नित्यं कुर्यात् प्रयोजनम् ॥८॥
सन्निधानं न कुर्वीत सर्वावस्थोऽपि भिक्षुकः। सन्निधानकृतैर्दोषैर्यतिः सञ्जायते कृमिः ॥९॥

दिन में मात्र एक बार भिक्षा करे। रात्रि में स्थण्डिल पर शयन करे। पवित्र जल से नित्य प्रयोजन सिद्ध करे। भिक्षुक (योगी) चाहे जिस स्थिति में हो, उसे लोगों का संग नहीं करना चाहिये। संगदोष के कारण यति का (मरणोपरान्त) कृमि योनि में जन्म होता है।।८-९।।

सर्वदुःखप्रतीकारं नैव कुर्यान्न कारयेत्। उपेक्षया वा क्षपयेदथ शीघ्रमुपक्रमेत् ॥१०॥
ग्रीष्महैमन्तिकान् मासानष्टौ भिक्षुर्विचक्रमेत्। दयार्थं सर्वभूतानमेकत्र वर्षणामुषेत् ॥११॥

ऐहिक किसी प्रकार के दुःख का प्रतिकार न करे, न तो कराये। उपेक्षा द्वारा दुःखकाल को पार करे। भिक्षु (योगी) हेमन्त, ग्रीष्म प्रभृति ऋतु में आठ मास भ्रमण करे (चार मास वर्षा काल में भ्रमण न करे)। सर्वभूत के प्रति सदय होकर वर्षादि चतुर्मास- पर्यन्त एक ही स्थान में रहे।।१०-११।।

अनिवृत्ते च न ऋतौ पुनस्तत्र प्रतिवसेत् उत्सृष्टतैलवसनो ह्युपपन्नभैक्ष्यो।
भैक्ष्यवृत्तिरव्यक्तलिंगी विचरेत् पृथिव्यां यत्रास्तमेति रविरावसथः पथः स तप्स्यति ॥१२॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे चतुर्थः परिच्छेदः

निर्दिष्ट समय का अन्त हो जाने पर वहाँ और नहीं रुकना चाहिये। तैल-वसन छोड़कर आचमन करके पृथिवी पर जहाँ सूर्यास्त होता है (पश्चिम में), वहाँ पर तथा जहाँ दिवा होती है, वहाँ पर भिक्षाचरण किया जा सकता है।।१२।।

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त

●

योगः (पञ्चमः परिच्छेदः)

शून्यागारे गवां गोष्ठे वृक्षमूले चतुष्पथे। नदीतीरे श्मशाने वा देवतायतनेषु च ॥१॥
अप्रच्छन्ने निवाते च निःशब्दे जनवर्जिते। असंसक्ते शुचौ देशे योगदोषविवर्जिते ॥२॥
स्नात्वा शुचिरुपस्पृश्य प्रणम्य शिरसा भवम्। योगाचार्यान्नमस्कृत्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥३॥

शून्य गृह, गोशाला, वृक्षमूल, चौराहा, नदीतट, श्मशान, देवालय अथवा निर्जन-नि:शब्द-निर्वात (वायु जहाँ अधिक न बहे), योगदोषरहित, गोपनीय, पवित्र स्थान पर योगतत्त्वज्ञ व्यक्ति स्नान-आचमनादि से पवित्र होकर शिव एवं योगाचार्य को प्रणाम करके योगावलम्बन करना चाहिये।।१-३।।

पद्मकं स्वस्तिकं वापि स्थालिकं जलिकं तथा। पीठार्धं चन्द्रदण्डञ्च सर्वतोभद्रमेव च ॥४॥
आसनं रुचिरं बद्ध्वा ऊर्ध्वकाय उदङ्मुख। नाभ्यां पद्माञ्जलिं कृत्वा निश्चलः सुसमाहितः ॥५॥

पद्मासन, स्वस्तिकासन, स्थलिक, जलिक, पीठार्द्ध, चन्द्रदण्ड एवं सर्वतोभद्र में से किसी पवित्र आसन का अवलम्बन लेकर ऊर्ध्वदेह तथा उत्तर की ओर मुँह करके योग करना चाहिये। नाभि के निकट पद्माञ्जलि बाँधकर स्थिर भाव से एकाग्र होकर योग करना चाहिये।।४-५।।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः सर्वेभ्यो विनिवर्त्तयेत्। सर्वसङ्गान् परित्यज्य आत्मन्यात्मानमाश्रयेत् ॥६॥
उत्तमान् मध्यमान् मन्दान् सगर्भांस्त्रिविधांस्तथा। प्राणायामान् शनैः कुर्यात् कुम्भरेचकपूरकान् ॥७॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्। प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनापीश्वरान् गुणान् ॥८॥

समस्त इन्द्रियों को निखिल भोग्य वस्तु की कामना से निवृत्त करके, समस्त आशंकाओं का त्याग कर आत्मा को आत्मा में समाहित—आश्रित करना चाहिये। उत्तम-मध्यम-मन्दरूप त्रिविध पूरक-कुम्भक-रेचक नामक सगर्भ (मन्त्रयुक्त) प्राणायाम को क्रमशः करना चाहिये। इसके प्रभाव से दोषों का नाश हो जाता है। प्राणायाम से दोष तथा धारणा से किल्विष (पाप) का नाश होता है। प्रत्याहार से विषयानुराग दूरीभूत होता है। ध्यान द्वारा ईश्वरीय गुणों के प्रति भी वितृष्णा होती है।।६-८।।

गायत्र्या योगसिध्यर्थं जपं कुर्यात् समाहितः। वाचिकं बाह्यजप्तं वा भक्त्या मानसमेव च ॥९॥
जप्यन्तु चिन्तयेन्नित्यं न च शून्यो भवेद्द्विजः। स्थित्वा कालान्तरं किञ्चिदोमित्येतदनुस्मरेत् ॥१०॥
ॐकारं प्रणवो ब्रह्म अक्षरं परमं पदम्। इत्येते ध्यायनोपाया ऋषिभिः परिकीर्तिताः ॥११॥
यमनियमरतानां बहुविघ्नभयेषु च लब्धधैर्याणाम्। भवति जयो विदुषां प्राणवायुधारणलब्धलक्षणानाम् ॥१२॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे पञ्चमः परिच्छेदः

योगसिद्धि के लिये योगी को एकाग्रता से भक्ति के साथ—वाचिक बाह्यिक तथा मानसिक गायत्री-जप करना चाहिये। जपकाल में गायत्री जप करते-करते एकाएक शून्यावस्था में नहीं जाना चाहिये। कुछ समय स्थिर रहकर प्रणव का स्मरण करना चाहिये। प्रणव साक्षात् ब्रह्मरूप है तथा अविनाशी परमपद है। यह ध्यानोपाय ऋषिगण ने कहा है। जो यम-नियमरत हैं, अनेक विघ्नमय स्थिति में भी जो धैर्य से च्युत नहीं होते, जो प्रणवरूप अस्त्र द्वारा लक्ष्यभेद में समर्थ हैं, उन विद्वानों को प्राणवायु- धारणा से प्राप्त जय का लाभ होता है।।९-१२।।

पञ्चम परिच्छेद समाप्त

●

योगः (षष्ठः परिच्छेदः)

यमानां नियमानाञ्च अवान्तरक्रियासु च। सर्वदिग्देशकालेषु योगाभ्यासो विशिष्यते ॥१॥
यदि स्यात्पातकं किञ्चिद्योगी कुर्यात्प्रमादतः। योगमेव निषेवेत नान्यं मन्त्रं कदाचन ॥२॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां योगमन्त्रं विशिष्यते। तस्माद्योगः सदा सेव्यः सर्वावस्थागतैरपि ॥३॥
यस्तु कायकृतान् भोगान् ध्यायमानन्तु सेवते। अल्पवीर्यं हि तद्योगं योगशास्त्रेषु गर्हितम् ॥४॥

सभी दिग्-देश-काल में यम-नियम तथा अन्य आभ्यन्तरीण क्रिया में सर्वापेक्षा योगाभ्यास प्रधान है। कोई भी अवस्था क्यों न हो, योगावलम्बन ही प्रधान है। जो व्यक्ति शारीरिक भोगों का चिन्तन करते हुये योगाभ्यास करता है, उसका योग स्वल्पवीर्य तथा योगशास्त्र में निन्दित माना गया है। यदि योगी कोई पातक प्रमादवश कर लेता है तो वह पातक योग से ही समाप्त होता है, उसके लिये कोई अन्य मन्त्र है ही नहीं। सभी मन्त्रों में योगमन्त्र प्रधान है; इसीलिये सभी स्थिति में योगाभ्यास ही सदैव सेव्य है।।१-४।।

यो ध्यात्वा युञ्जते ध्यानं यज्ज्ञेयं यत्प्रयोजनम्। सर्वाण्येतानि यो वेत्ति स योगी योक्तुमर्हति ॥५॥
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयः सूक्ष्मो महेश्वरः। यत्तत् परममैश्वर्यमेतद्ध्यानप्रयोजनम् ॥६॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरञ्च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥७॥

जिसे ध्याता-ध्यान एवं ध्येय का प्रयोजन ज्ञात है, वह योगी ही योगार्ह है। आत्मा ध्याता है, मन ध्यान (ध्यान का करण) है एवं सूक्ष्म परमेश्वर ही ध्येय हैं। ध्यान का प्रयोजन है—परमेश्वरत्व-प्राप्ति। शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म—इन दो को जानना चाहिये। जो शब्दब्रह्म मे कुशल है, उसे परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।।५-७।।

अन्तःशरीरप्रभवमुदानप्रेरितञ्च यत्। वागुच्चार्यं श्रोत्रवृत्ति शब्दब्रह्म तदुच्यते ॥८॥
शब्दब्रह्म परंब्रह्म तस्मिन् क्षीणे यदक्षरम्। सदा तं मनसा ध्यायेद्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥९॥
वक्तुकामो यदा वाच्यमर्थं सम्प्रतिपद्यते। बुद्ध्यहङ्कारसंयुक्तो तथा ध्यानं समाचरेत् ॥१०॥
उपलब्धिः स्मृतिर्ध्यानं सङ्कल्पः प्रणवं प्रति। कल्पना भावना चिन्ता ध्यानमित्यभिधीयते ॥११॥
पवनविरहितो यथा प्रदीपः स्थित इव लक्ष्यते निश्चलस्वभावः।
विषयविरहितं तथा हि चित्तं स्थितमिव लक्ष्यतेऽमितप्रवृत्तिः ॥१२॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे षष्ठः परिच्छेदः

जो शरीर में प्रादुर्भूत, उदानवायु से प्रेरित, वाक् इन्द्रिय से उच्चार्य तथा श्रोत्र (कर्ण) से ग्राह्य है, वही है—शब्दब्रह्म। आत्महित चाहने वाला व्यक्ति मन ही मन सर्वदा अक्षर ब्रह्मरूपी (परब्रह्मरूपी) शब्दब्रह्म का ध्यान करे। वह योगी जो कुछ कहने की इच्छा करता है अथवा कहता है, वह सब सिद्ध होता है। बुद्धि एवं अहङ्कार ध्यान के ही उपकरण हैं। प्रणव का अनुभव- स्मरण-ध्यान-संकल्प-कल्पना-भावना तथा चिन्ता ध्यान पद का अभिधेय है। निर्वात प्रदेशस्थ दीपशिखा जैसे स्थिर रहती है, उसी प्रकार से अस्थिर चित्त भी विषय (रूपी वायु) से मुक्त होकर स्थिरभावापन्न हो जाता है।।८-१२।।

षष्ठ परिच्छेद समाप्त

●

योगः (सप्तमः परिच्छेदः)

ध्यायमानस्तमोङ्कारं प्राणैर्यदि वियुज्यते। तस्य तत् परमैश्वर्यं भिन्ने देहे प्रवर्त्तते ॥१॥
ॐकाराद् भ्रश्यते चित्तं क्षिप्तं क्षिप्तं पुनः पुनः। शब्दादिभिरसम्पृक्तं भूयस्तस्मिन् नियोजयेत् ॥२॥

यदि ॐकार का ध्यान करते-करते प्राणत्याग हो जाय, तब उस व्यक्ति को परमेश्वरत्व मिलता है। लोगों का चित्त अतीव विक्षिप्त है; वह ॐकार से पुनः-पुनः भ्रष्ट होता है, किन्तु शब्दादि विषयों से उसको सम्बन्धरहित करके ध्याता पुनः ॐकार में प्रवृत्त हो जाता है।।१-२।।

अनिर्विण्णस्तु युञ्जानः श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः। कालेन तदवाप्नोति गुह्याद्गुह्यतरं पदम् ॥३॥
देव-मानुष-तिर्यक्षु जन्तुः कर्मवशानुगः। तावद् भ्रमति संसारे यावद्योगं न विन्दति ॥४॥
निवृत्तं सर्वसङ्गेषु बुद्ध्या चाधिष्ठितं मनः। चित्तमोङ्कारसंयुक्तं योगाय न निवर्त्तते ॥५॥

यदि बहुत श्रम करने से भी योगी को योग से वितृष्णा न हो जाय, तभी वह कालान्तर में गुह्य से भी गुह्यतर पद को प्राप्त कर लेता है। जब तक योगाभ्यास न किया जाय, तब तक प्राणी कर्मफल से देवयोनि, मनुष्ययोनि तथा तिर्यक् योनियों में संसार- यात्रा करता ही रहता है। जब बुद्धि में अधिष्ठित चित्त सभी प्रकार की भोग्यवस्तु से निवृत्त होकर ॐकार भावना में नियुक्त हो जाता है, तब वह योग से विमुख नहीं होता।।३-५।।

अनेन क्रमयोगेन यस्योङ्काराधिवासितम्। तस्योङ्कारं परित्यज्य चित्तं नान्यत्र गच्छति ॥६॥
एकमात्रं द्विमात्रं वा त्रिमात्रं कृत्स्नमेव च। ह्रस्वं दीर्घं प्लुतं शान्तं शान्तेन मनसोद्वहेत् ॥७॥

इसी प्रकार जिसका चित्त क्रमशः ॐकार से अधिवासित अथवा उसके द्वारा पूर्णतः अधिकृत हो जाता है, उसका चित्त पुनः ॐकार का त्याग करके अन्यत्र नहीं जाता। योगी को शान्त होकर दीर्घ-प्लुत तथा शान्त, एकमात्र, द्विमात्र, त्रिमात्र एवं समग्र प्रणवक्रम का अवलम्बन करना चाहिये।।६-७।।

तैलधारामिवाच्छिन्नां दीर्घघण्टानिनादवत्। ओङ्कारसन्ततिं कुर्याद् विशुद्धेनान्तरात्मना ॥८॥
विशुद्धमनसा युक्तः शान्तात्मा मोहवर्जितः। आसाद्य परमं योगमक्षयं लभते पदम् ॥९॥
ओङ्कारेण विशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति। परे ब्रह्मणि सन्धाय संसाराद्विप्रमुच्यते ॥१०॥
यो ज्ञात्वा बहुविधदोषदुष्टमेतत् संसारे सततमभिप्रवर्त्तमानम्।
योगाय प्रवर्त्तते योगमार्गवेत्तासौ भुङ्क्ते फलमतुलं शिवप्रसादात् ॥११॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे सप्तमः परिच्छेदः

योगी विशुद्ध चित्त से तैलधारा के समान अविच्छिन्न भाव से दीर्घ घण्टानिनाद के समान ॐकारधारा में तत्पर रहे। मोहरहित शान्तचित्त योगी विशुद्ध चित्त से परम योग का अवलम्बन करके अक्षय पदलाभ करता है। परब्रह्म पद प्राप्त होने पर संसार से विमुक्ति मिलती है। जो सतत् गमनशील इस संसार के बहुतर दोषों को देखते हुये उसकी विवेचना करके योग मार्ग को जानकर उसमें प्रवृत्त होता है, शिव की कृपा से उसे अतुल फल की प्राप्ति होती है।।८-११।।

सप्तम परिच्छेद समाप्त

●

योगः (अष्टमः परिच्छेदः)

एकाग्रप्रणिधानञ्च अप्रमादात् तथैव च। युञ्जानस्तु सदा योगं योगद्वारं प्रपश्यति ॥१॥
योगद्वारं परं गुह्यं सर्वतापप्रणाशनम्। पवित्रमतुलञ्चैव दुर्दृशमकृतात्मभिः ॥२॥
न तं पश्यन्ति विबुधा न तिर्यञ्चो न मानुषाः। कामभोगपरिव्यग्रा बहूपकृतकिल्विषाः ॥३॥

सर्वदा एकाग्र प्रणिधान तथा अप्रमाद द्वारा योगानुष्ठान करने से योग के द्वार (प्रवेशमार्ग) का दर्शन होता है। यह परमगुप्त, सर्वपापहारी, अनुपम एवं पवित्र है। जिसमें आत्मनिश्चय नहीं है, वह योगद्वार नहीं देख सकता। देवगण तथा तिर्यक् जाति इसे नहीं देख सकते। जो कामभोग में व्यग्र हैं तथा अनेक पापों को सञ्चित (अपने दुष्कर्म से) करते रहते हैं, उनमें योगद्वार-दर्शन का सामर्थ्य नहीं होता।।१-३।।

योगद्वारेण यतयो युक्तात्मानो दृढ़व्रताः। ओंङ्काररथमारुह्य गच्छन्ति परमां गतिम् ॥४॥
योगद्वारमतीतानां नान्यो लोको विधीयते। यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते प्रासादाच्छङ्करस्य च ॥५॥
यथा पथि हितं मार्गं गमनायोपपद्यते। तद् ब्रह्ममयं तत्त्वमैश्वर्ययोपपद्यते ॥६॥

दृढ़व्रती यतीगण युक्तात्मा होकर योगद्वार से ओंकाररूपी रथ पर आरोहण करके परमगति को प्राप्त करते हैं। शंकर की कृपा से योगद्वार में प्रवेश करके जो परमगति की ओर निष्क्रमण कर चुके हैं, उन्हें आवागमनरहित स्थान की प्राप्ति होती है। उन्हें अन्य स्थान (आवागमन वाला) नहीं मिलता। योगीगण का गमन उनके द्वारा इच्छित-अभिलषित पथ पर होता है। वे ब्रह्ममय समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।।४-६।।

तस्य ब्रह्ममयं तत्त्वं भित्त्वा मनसि वर्त्तते। अवशस्यापि सततं तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥७॥
येन येन हि भावेन मनः संयुज्यते नृणाम्। तेन तन्मयतां याति विश्वरूपो मणिर्यथा ॥८॥

जिनके मन में अति जटिल ब्रह्मरूप सूत्र जटिलतारहित होकर स्थित है, उनकी सिद्धि-प्राप्ति सन्निकट ही है। जो भी वस्तु पारसमणि से स्पर्शित हो जाती है, वही मणिवत् हो जाती है। इसी प्रकार मनुष्य का चित्त जिस भाव से आक्रान्त होता है, उसे उसी में तन्मयता मिलती है।।७-८।।

इष्टद्रव्यं यथा कश्चित् प्रणष्टमिव चिन्तयेत्। तद्वत् सुसूक्ष्मोङ्कारं प्रणष्टमपि चिन्तयेत् ॥९॥
गुरुवचननियुक्ताः ज्ञानविज्ञानतृप्ताः कलिकलुषवियुक्ताः सर्वधर्मानुरक्ताः।
विविधगुणमहान्तं शङ्करं वाऽनुरक्ताः प्रणवनियतचित्तास्ते कृतार्था द्विजेन्द्राः ॥१०॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रेऽष्टमः परिच्छेदः

जिस प्रकार से कोई व्यक्ति द्रव्य के सामने रहने पर भी चित्तविभ्रम के कारण उसे खो गया समझ लेता है और उसी प्रकार से चिन्तन करने लगता है, उसी प्रकार व्यक्ति (साधक) को इस अतीव सूक्ष्म प्रणव का चिन्तन खोये हुये धन के समान करना चाहिये। जो ब्राह्मण गुरु द्वारा उपदिष्ट ज्ञान-विज्ञान से तृप्त कलिकलुष-रहित सर्वधर्म में अनुरक्त (सर्वधर्म अर्थात् सार्वभौम धर्म में अनुरक्त) हो प्रणवपरायण होकर अनन्त गुणयुक्त शिव में अनुरक्त होते हैं, वे ही कृतार्थ होते हैं।।९-१०।।

अष्टम परिच्छेद समाप्त

●

योगः (नवमः परिच्छेदः)

चित्तोत्पत्तौ न चोत्पत्तिर्न च चित्तक्षये क्षयः। अनादिमध्यपर्यन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥१॥
भावोत्पत्तौ तयोः सङ्गमन्तःकरणपूर्वकम्। भावाभावौ तयोरेव नियोग उभयोरपि ॥२॥

अन्तःकरण की उत्पत्ति से आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती। ऐसे ही अन्तःकरण के विनाश से आत्मा का विनाश भी नहीं होता। आत्मा साक्षात् महेश्वर, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त तथा अवध्य है। ईश्वर तथा पुरुषनिमित्तक भावसृष्टि में प्रथमतः अन्तःकरण की सृष्टि होती है। भावसृष्टि हो अथवा अभावसृष्टि, दोनों में ईश्वर तथा पुरुष ही निमित्त होता है।।१-२।।

न दीर्घो न चासौ ह्रस्वो न प्लुतश्च महेश्वरः। ध्यानकाले निमित्तं हि सर्वथा ह्युपचर्यते।
शब्दतत्त्वे च भावे च संज्ञायामक्षरेषु च ॥३॥
पञ्चस्वर्थेषु सततमोङ्कारमिति निर्दिशेत्। तत्त्वचिन्ताभिसंबद्धं चिन्ता मनसि वर्तते ॥४॥

मनः क्षेत्रज्ञसंयुक्तं स्वशरीरे व्यवस्थितम्। शब्दस्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धस्तथैव च।
सम्प्राप्तो नोपलभ्येत एतद् युक्तस्य लक्षणम् ॥५॥
सुखदुःखञ्च मोक्षञ्च स्वशरीरेण विन्दति। शीतोष्णं नाभिजानाति एतद्युक्तस्य लक्षणम् ॥६॥

वास्तव में आत्मा न तो दीर्घ है, न ह्रस्व है, न ही प्लुत है। ध्यानार्थ ही उसकी कल्पना ॐकाररूपेण की गयी है। इस आत्मा को शब्दतत्त्व, भाव, संज्ञा तथा अक्षर में पञ्चाक्षरमय ॐकार कहा गया है। तत्त्व चिन्ता के साथ सम्मिलित है। चिन्ता मन का धर्म है। मन अपने-अपने शरीर में स्थित रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियगोचर होने पर भी जिसका ज्ञेय नहीं है, वही योगी है। योगी का लक्षण है—अपने शारीरिक सुख-दुःख, बन्ध-मुक्ति, शीत-उष्ण को न अनुभव करना (व्यथित न होना)।।३-६।।

शंखदुन्दुभिर्निर्घोषं विर्विधैर्गीतवादितैः। क्रियमानैर्न बुध्यते एतद्युक्तस्य लक्षणम् ॥७॥
योगकर्मणि युक्तस्य विशेषाद् विघ्नकारकाः। उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते ताञ्जित्वा प्राप्यते सुखम् ॥८॥
उपसर्गेऽपि सृष्टस्य नैव सिद्धिर्न साधनम्। तस्माद् विघ्नाः सदा हेयाः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥९॥

शङ्खध्वनि, दुन्दुभिघोष, गीतवाद्यादि ध्वनि होने पर भी बाह्य ज्ञान न होना योगी का लक्षण है। योगकर्म में तत्पर होने पर विघ्नकारक उपसर्ग प्रकट होने लगते हैं। उपसर्ग पर जय प्राप्त कर लेने से सुखलाभ होता है। जब तक उपसर्ग पराजित नहीं हो जाते, तब तक परम सिद्धि अथवा प्रकृत साधना सम्पन्न नहीं मानी जाती। अतः शास्त्रोक्त कर्म से उपसर्गरूप विघ्नों को दूर करना ही उचित है।।७-९।।

प्रतिमा श्रवणञ्चैव वेदनं स्पर्शनं तथा। भ्रमो मोहस्तथावर्त्त उपसर्गाः प्रकीर्तिताः ॥१०॥
व्यपगतकलुषाणां नित्यस्नानोदकानां शिवमतिपरमार्थो जप्यभैक्ष्येन्धनानाम्।
गुरुवचनरतानां नित्यधर्मोद्यतानां दर्शनमपि पुण्यं योगमार्गस्थितानाम् ॥११॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे नवमः परिच्छेदः

अलौकिक प्रतिमा, अपूर्व एवं त्रैकालिक शब्दश्रवण, अपूर्व ज्ञान, आश्चर्यजनक स्पर्श, भ्रम, मोह, विक्षेपप्रभृति उपसर्ग शास्त्रों में वर्णित हैं। कालकलुषरहित, नित्य स्नान करने वाला, गुरुवचनरत, सतत् धर्मशील, भिक्षाचरण से शरीरनिर्वाह करने वाला, जप-होमादि के अनुष्ठान में तत्पर, शिवपरायण, परमात्मनिष्ठ, योगपथ-स्थित व्यक्तिगण का दर्शन मिलना भी पुण्यकारी होता है।।१०-११।।

नवम परिच्छेद समाप्त

●

योगः (दशमः परिच्छेदः)

धारणां सम्प्रवक्ष्यामि कर्तव्या या प्रयत्नतः। मनसो हृद्यवस्थानं धारणेत्यभिधीयते ॥१॥
यथा चक्षुः प्रकाशेन दृष्टरूपाणि पश्यति। तद्वत् सूक्ष्मयोगेन युक्तस्तत्त्वानि पश्यति ॥२॥
निर्मलत्वाद्यथादर्शे प्रतिबिम्बानि पश्यति। तद्वद्विशुद्धे मनसि निष्कलं ब्रह्म पश्यति ॥३॥
यथा ज्ञानप्रकाशेन सुसूक्ष्मार्थान् प्रपश्यति। तद्वत् सुसूक्ष्ममोङ्कारं प्रणिधानेन पश्यति ॥४॥

अब धारणा का विषय कहता हूँ। यह योगीगण को यत्नपूर्वक करना चाहिये। सभी विषयों में लगे मन को इधर-उधर से समेट कर मन में ही (अपने-आपमें ही) लगाना धारणा है। जैसे आलोक में चक्षु सूक्ष्म वस्तु को भी देख सकते हैं, वैसे ही

प्रणिधान के द्वारा सूक्ष्म ॐकार का भी दर्शन मिल जाता है। वह युक्त तत्त्वों का साक्षात्कार कर लेता है। जैसे निर्मल दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब यथायथ परिलक्षित होता है, तदनुरूप ही विशुद्ध मानस में निष्कल ब्रह्म भी अनुभूत होता है।।१-४।।

निर्गुणं मनसा ग्राह्यमनौपम्यं महाद्युतिम्। प्रधानपुरुषेशानं सर्वभूतपतिं शिवम् ॥५॥
स्थितं स्थितेन मनसा शुद्धं शुद्धेन चेतसा। परापरस्वरूपेण यत्सूक्ष्ममुपनयेत् पुनः ॥६॥
तच्चित्तस्तन्मयो युक्तस्तन्निष्ठस्तत्परायणः। दोषैर्योगाग्निनिर्दग्धैः शिवं पश्यति शाश्वतम् ॥७॥

निर्गुण, मनोग्राह्य, अनुपम महाद्युति, ज्योतिर्मय, प्रकृति-पुरुष के भी ईश्वर, सर्वभूतेश्वर, सर्वव्याप्त, निर्मल सूक्ष्मतत्त्व शिव को स्थिर तथा विशुद्ध चित्त द्वारा कार्य-कारणरूपेण अवलोकन किया जाता है। शिवनिमग्न चित्त वाले, शिवमय, शिवनिष्ठ, शिवपरायण, शिवयोगी व्यक्ति योगानल से दोषों को जलाकर अनादि, सर्वगत, सर्वज्ञ, सर्वकारण, अक्षत ऐश्वर्य वाले, एकदेव शाश्वत, महेश्वर सनातन शिव का दर्शन पाने में समर्थ हो जाते हैं।।५-७।।

अनुत्पाद्यं सर्वगतं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। अक्षतैश्वर्यसम्पन्नं देवमेकं महेश्वरम् ॥८॥
यं दृष्ट्वा लभते सिद्धिं समानगुणलक्षणम्। यं दृष्ट्वा जन्ममोहाभ्यां नैव संयुज्यते पुनः ॥९॥
एष संक्षेपतो योगो व्याख्याने चास्य विस्तरः। महर्षीणामनुकम्पार्थमुद्धृतो मम सूनुना।
यत्प्राप्य नारदः सिद्धो विद्याविद्यार्थतत्त्वतः ॥१०॥
इदममृतपदं शिवप्रसादात् प्रवचनमुक्तवान् सनत्कुमारः।
अनधिगतमपि करोति सिद्धिं परमिह विन्दते स रुद्रतत्त्वम् ॥११॥

इति सनत्कुमारीये योगशास्त्रे दशमः परिच्छेदः। इत्याद्ये देवीपुराणे दशमोऽध्यायः

●

वे उनका दर्शन करके उनका सारूप्य तथा तुल्यताप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त करते हैं। उनका साक्षात् पाकर पुनर्जन्म नहीं होता तथा योगी मोह के वश में नहीं होता। यही संक्षिप्त योग है; परन्तु इसकी व्याख्या विस्तृत है। ऋषिगण के प्रति दयापरवश होकर मेरे पुत्र सनत्कुमार ने इसका उपदेश दिया था। नारद को इसी योगबल से सिद्धि की प्राप्ति हो सकी थी। शिव की कृपा से सनत्कुमार इस योग के उपदेश का वर्णन करते रहते हैं। इसे जानकर विना योगानुष्ठान के ही रुद्रलोक की प्राप्तिरूप सिद्धि मिलती है।।८-१२।।

दशम परिच्छेद तथा दशम अध्याय भी समाप्त

●

एकादशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्राप्तयोगो यदा शत्रुर्नारदो मुनिसत्तमः। तदासौ जपते विद्यां विधिना शिवभाषिताम् ॥१॥
एवं प्राप्ता पुरा वत्स सिद्धा विद्या च नारदे। तदा स साधयेच्छत्रुस्तस्या वरप्रसादतः ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! योगप्राप्त मुनिश्रेष्ठ नारद अब शिव द्वारा कही गयी पदमाला विद्या का जप करने लगे। हे वत्स! नारद इस प्रकार से विद्यालाभ द्वारा सिद्ध हो गये। हे इन्द्र! अब इस विद्या के असीम प्रभाव से वे इष्टसिद्धि करने में प्रवृत्त हो गये।।१-२।।

शक्र उवाच

एवं विद्या यदा सिद्धा कथं मर्त्येषु सा गता। एतदिच्छामि विज्ञातुं प्रसादादब्रवीहि नः ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—यदि यह विद्या ऐसी है, तब इसका पृथिवी पर प्रचार कैसे, किस प्रकार का है? यह मैं जानना चाहता हूँ। प्रसन्न होइये और इसका वर्णन करने की कृपा करिये।।३।।

ब्रह्मोवाच

पूर्वं मया महाप्राज्ञ सृष्ट्यर्थं परमेच्छया। विद्यानां याचितः शम्भुस्तथा चाप्यपराजितम्। भविष्याणाञ्च कार्याणां मन्वन्तरयुगादिषु ॥४॥

सा मया कर्त्तुकामेन दत्ता विद्या प्रजापतेः। तत अङ्गिरसे तेन अङ्गिराश्च बृहस्पते ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! पूर्वकाल में मैंने जगदीश्वर की इच्छानुसार सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होकर मन्वन्तर, युगादि में भविष्यत् कर्म करने हेतु शिव से अपराजिता विद्या-हेतु याचना किया था। उन्होंने मुझे उस विद्या को प्रदान किया। पश्चात् काल में मुझसे उस विद्या को अंगिरा ने एवं अंगिरा से बृहस्पति ने प्राप्त किया।।४-५।।

गुरुणा सवितुर्दत्ता तेन मृत्योः प्रकाशिता। मृत्युना चापि इन्द्रस्य वशिष्ठस्य ततो गता ॥६॥
वशिष्ठेनापि सा दत्ता तथा सारस्वते पुनः। सारस्वतास्त्रिधामाय त्रिधामा त्रिवृषाय च ॥७॥
त्रिवृषेण भरद्वाजे अन्तरीक्षस्य आगता। अन्तरीक्षेण बह्वृचे बह्वृचस्तारुणेश्च ददौ ॥८॥
तस्यारुणेन बलजे तेनापि च कृतञ्जये। कृतञ्जयेन ऋणजे भारद्वाजेन प्राप्तवान् ॥९॥
भारद्वाजेन सा दत्ता गौतमस्य महामुनेः। गौतमादुत्तमिं प्राप्ता उत्तमिश्च हर्यर्च्चने ॥१०॥
हर्यर्च्चने पुरोधा तु तेन वाजश्रवाय च। वाजश्रवास्तथा सोमे सोमाच्छुष्मादनोऽलभत् ॥११॥
शुष्मादनात् तृणविन्दुस्तृणविन्दोस्तरक्षुकः। तरक्षौ शक्तिना प्राप्ता शक्तेः पराशरेण तु ॥१२॥
पराशराज्जातुकर्णो जातुकर्णात्तथा पुनः। द्वैपायनेन सम्प्राप्ता एवं मर्त्ये समागता। विद्या लोकोपकाराय दृष्टादृष्टप्रसाधनी ॥१३॥

बृहस्पति ने इस विद्या को सूर्य को एवं सूर्य ने यम को प्रदान किया। भूतपूर्व इन्द्र ने इसे यम से प्राप्त किया। इन्द्र से यह विद्या वशिष्ठ को मिली थी। वशिष्ठ से सारस्वत ऋषि को, सारस्वत से त्रिधामा ऋषि को, त्रिधामा से त्रिवृष ऋषि को तथा त्रिवृष से भरद्वाज को इस विद्या का उपदेश मिला। अन्तरीक्ष ऋषि को यह विद्या भरद्वाज से मिली। अन्तरीक्ष से बह्वृच ऋषि को, बह्वृच से आरुणी को, आरुणी से बलज मुनि को, वलज से कृतञ्जय को, कृतञ्जय से भारद्वाज को (ऊपर भरद्वाज मुनि का नाम लिया गया है, जो इन भारद्वाज से अलग हैं) एवं भारद्वाज से महर्षि गौतम को यह विद्या मिली। उनसे यह विद्या उत्तमी को प्राप्त हुई।

उत्तमी को यह विद्या गौतम से विष्णु का अर्चन करके प्राप्त हो सकी थी। उत्तमी द्वारा यह विद्या वाजश्रवा को प्रदान की गयी। वाजश्रवा से सोम को, सोम से शुष्मादन को, शुष्मादन से तृणबिन्दु को, तृणबिन्दु से तरक्षु को यह विद्या मिली। वशिष्ठ-पुत्र शक्ति ने इसे तरक्षु से पाया। शक्ति से गर्भस्थ पराशर को, पराशर से जातुकर्ण को, जातुकर्ण से द्वैपायन को यह विद्या मिली थी। दृष्ट फलकारी, शुभादृष्ट-साधनी यह विद्या लोकोपकार हेतु पृथिवी पर प्रचारित हो गई।।६-१३।।

नारदेन तथा शक्र जप्ता विद्या महोदया। यया सम्मोहितो वत्स असुरः सह मन्त्रिणा। तथा मतिं समाधाय गिरिकन्यापतिं प्रति ॥१४॥

हे वत्स इन्द्र! नारद शिव के प्रति मन समाहित करके इस प्रकार से इस पदमाला विद्या का जप करने लगे, जिससे घोर दैत्य मन्त्री के साथ मोहित हो गया।।१४।।

शक्र उवाच

पदमाला महाविद्या सुरासुरविमोहिनी। एतत् कार्यकरी विद्या तथा चाप्यपराजिता ॥१५॥
सूचिता हि न सा उक्ता किं वीर्या कथमागता? ।

इन्द्र कहते हैं—यह पदमाला विद्या सुरासुर को मोहित करने वाली है तथा अपराजिता विद्या भी कार्यकरी है। अपराजिता विद्या का आपने उल्लेखमात्र किया है, उसका विस्तार से प्रकाश नहीं किया है। यह भी आपने नहीं बतलाया है कि अपराजिता विद्या से कौन कार्य सिद्ध होता है?।।१५।।

ब्रह्मोवाच

यथा देवास्तथा दैत्या उभावेतौ व्यवस्थितौ। अनादिदेवस्तु तथा यथा सृष्टिस्तथा क्षयः ॥१६॥
पूर्वमासीन्महाबाहो हुताग्निर्नाम दानवः। मम होमावसाने तु उत्पन्नः सुरमर्दकः ॥१७॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—जैसे देवता उसी प्रकार से दैत्य—दोनों वर्ण धारावाहिक रूप से चलते आ रहे हैं। सृष्टि तथा क्षय (नाश) दोनों ही व्यवस्थित है। पूर्वकाल में महाबली हुताग्नि नामक दानव था। मेरे होम करने के अनन्तर होमस्थान से वह सुरमर्दक उत्पन्न हो गया था।।१६-१७।।

माञ्चापश्यत्तथा सो वै लयः कर्तुं समुद्यतः। तपसा महता तेन तोषितोऽहं पुरन्दर ॥१८॥
वरं ब्रूहि मया सोऽक्तो याचितश्च तदा विभो। जयामि त्रिदशान् सर्वान् सविष्णून् सपुरन्दरान् ॥१९॥
तथेति स मया उक्तस्तथासौ पृथिवीतले। गतो द्वीपं महाबाहो शाकं सर्वमनोरमम् ॥२०॥

तब मुझे देखकर तपश्चर्यार्थ उद्यत हो गया। हे इन्द्र! महान् तपस्या द्वारा उसने मुझे प्रसन्न कर लिया। हे देवस्वामी इन्द्र! जब मैंने उसे वर माँगने हेतु कहा तब उस असुर ने मुझसे कहा—मैं इन्द्र-विष्णु तथा सभी देवताओं पर विजय प्राप्त कर सकूँ, यह वर दीजिये। हे महाबाहो इन्द्र! वह मुझसे वर प्राप्त करने के उपरान्त सर्वमनोरम शकद्वीप में चला गया।।१८-२०।।

स च तत्र समाः स्थित्वा दश पञ्च च वासव। उद्वाहिता तदा तेन कालपुत्रस्य पुत्रिका ॥२१॥
तस्य पुत्रो वज्रदण्डश्चण्डतुल्यपराक्रमः। तेन द्वीपाधिपाञ्जित्वा दिवमुत्सहते जये ॥२२॥
निर्जित्य सर्वदेवांस्तु तथा विष्णुमभिद्रवत्। तस्य केतो स्थितो ध्वाङ्क्षः सर्वकेतुभयङ्करः ॥२३॥

वहाँ पर हुताग्नि ने १५ वर्ष रहकर कालपुरुष की कन्या से विवाह किया। उसका वज्रदण्ड नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पराक्रम पितातुल्य ही था। तदनन्तर हुताग्नि दैत्य अपने पुत्र के साथ समग्र द्वीप के राजाओं को पराजित करके स्वर्गजय में प्रवृत्त हो गया। उस दैत्य द्वारा समस्त देवता पराजित कर दिये गये, यहाँ तक कि विष्णु भी पराजित हो गये। दैत्य विष्णु के पीछे दौड़ा। उस असुर का रथध्वज चिह्न सभी रथीगण के लिये भयप्रद था। विष्णु ने दैत्य पर विजय पाने के लिये सर्वोत्तम केतु की आकांक्षा किया।।२१-२३।।

तथा मया महादेवं तोषयित्वा त्रिलोचनम्। वराय वरयाञ्चक्रे विष्णोः केत्वर्थतस्तदा ॥२४॥
वरं ब्रूहि शिवस्तुष्टो यत्ते हृदि व्यवस्थितम्। मया स याचितो देहि केतुं दैत्यनिवारणम्।
विष्णोस्तु यत् सदा देव साहाय्यं विजयावहम् ॥२५॥

हे इन्द्र! तब मैंने विष्णु के लिये वर की कामना करके अपराजिता विद्या से त्रिशूलपाणि महादेव को प्रसन्न किया। शिव ने प्रसन्न होकर कहा—हे देव! तुम्हारे मन में जो कामना है, उसके लिये वर माँगो। मैंने उन देवदेव से यह प्रार्थना किया—भगवन्! सतत् विजय-सहायताकारी असुर-निवारण करने वाला रथकेतन विष्णु को अर्पण कीजिये, जिससे विष्णु सदा देवताओं की सहायता करके विजय प्राप्त कर सकें।।२४-२५।।

तेन किङ्किणिशोभाढ्यं घण्टाचामरमण्डितम्। विचित्रपीठकोपेतं शतसूर्यसमप्रभम् ॥२६॥
वृषाङ्कगरुडावस्थं शंखचक्रगदाधरम्। महच्चित्रं सुरोपेतं दुर्गमूर्ध्वं यमासनम् ॥२७॥

शिव ने किंकिणि-शोभित, घण्टा-चामरमण्डित, विचित्र पिटकान्वित, शत सूर्यसमप्रभ, विचित्र महत् रथकेतन को इच्छामात्र से निर्माण करके (उन्हें) अर्पित कर दिया। स्वयं महादेव वृषारूढ़ तथा गरुड़ारूढ़ शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु इस रथकेतन पर अधिष्ठित थे। रथकेतन के मस्तक पर दुर्गा विराजमान थीं।।२६-२७।।

इन्द्र-वह्नि-यमै रक्षोजलवातैर्धनाधिपैः। ईशान-सूर्य-कालाश्च राहुरार्किशशीन्दुजैः ॥२८॥
गुरुणा सर्वतोभद्रं कृत्वा दत्तन्तु शम्भुना। तं दृष्ट्वा स्तवते विष्णुः स्तवने वृषभध्वजम् ॥२९॥

रथकेतन के अवलम्ब थे यम। वह रथकेतन इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा अन्य देवताओं का अधिष्ठान हो गया सर्वतोभद्र में। विष्णु ने इस रथकेतन को देखकर स्तव करना प्रारम्भ कर दिया।।२८-२९।।

जय कृष्ण करालास्य कृष्णमेघसमप्रभ। कृष्णसार महाबाहो कृष्णसर्पविभूषण ॥३०॥
कृष्णशान्तिकरो देव कृष्णदंष्ट्राभयङ्करः। नीलस्यन्दपरिध्वान्ततमः षड्वारुणोपमः ॥३१॥
महाकपालमालाय ब्रह्मशिरोनिकृन्तन। सर्वग सर्वदेवेश सर्वावस्थादिगम्बर ॥३२॥
श्मशानभस्मभूयिष्ठ भस्मभूषणभूषित। कृष्णमेखलधाराय वासुकी-उपवीतिने ॥३३॥
सर्वजन्तुहितार्थाय वेदवेदाङ्गवादिने। यज्ञेश यज्ञहोता च यज्ञभावाय वै नमः ॥३४॥
ग्रहज्वरमहारूपशमनाय नमो नमः। सर्वात्मना महादेव त्वया वापि सुरेश्वर ॥३५॥
विघातः सुरशत्रूणां कर्तव्यो वृषभध्वज। स तथेति तदा तुष्टः केतुं तस्य समर्पयत् ॥३६॥

विष्णु कहते हैं—हे कृष्णमेघ के समान कृष्णवर्ण! हे करालवक्त्र! हे कृष्णसार! हे कृष्ण सूर्यविभूषित महाबाहो! हे कृष्ण के शान्तिकर्त्ता देवदेव! आप कृष्णवर्ण दाँतों द्वारा भयावह लगते हैं। हे महाकपालमालिन्! ब्रह्मशीर्षपातन! आपको नमस्कार है। हे सर्वग! सर्वदेवेश! सर्वावस्थ! हे दिगम्बर! हे श्मशानभस्मबहुल भस्मीभूषण से भूषित! हे कृष्णसर्पमय मेखलाधारिन्! हे वासुकी-यज्ञोपवीत! हे सर्वप्राणिहितकारिन्! हे वेदवेदाङ्गवासिन्! हे यज्ञेश! हे यज्ञ! हे अहोरात्र! हे यज्ञसम्भार! आपको नमस्कार है। हे ग्रहपीड़ाप्रशमनकारिन्! हे प्रलम्बज्वरशान्तिकर! आपको नमस्कार है। आपको बारम्बार नमस्कार है। हे देव! सर्वान्तःकरण से मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे देव! सुरेश्वर! वृषभध्वज! जिससे देवशत्रुगण का संहार हो, वह आप करिये। शिव ने सन्तुष्ट होकर 'यही हो' कहा तथा विष्णु को रथकेतन अर्पित किया।।३०-३६।।

तव विष्णो महाबाहो केतुं सम्पश्य वैरिणः। येऽसुरा ये च गन्धर्वा ये दैतेया महाबलाः ॥३७॥
ते ते नाशं समाजग्मुस्तव केतुप्रदर्शनात्।
तथेति विष्णुना उक्ता गृहीतं तच्च सादरम्। उच्छ्रयित्वा तु तं हन्याच्चण्डं तं हतवह्निजम् ॥३८॥

रथ अर्पित करके भगवान् शिव ने विष्णु से कहा—हे महाबाहो विष्णो! देव-दानव-गन्धर्व जो भी शत्रु हों, भले ही वे महाबलयुक्त हों, रथकेतु को देखने-मात्र से वे नष्ट हो जायेंगे। विष्णु ने कृतज्ञता प्रकट करके उस केतन को ग्रहण करके रथ के ऊपर फहराया। तदनन्तर युद्ध करके उन्होंने हुताग्नि के पुत्र वज्रदण्ड को हत कर दिया।।३७-३८।।

शक्रस्य तु पुनर्दत्ता सर्वशत्रुविनाशिनी। एवं ते कथितं वत्स यथावृत्तं सुरेश्वर ॥३९॥

इससे दैत्यपक्ष की पराजय हो गई। तदनन्तर वह रथकेतन विष्णु ने (तत्कालीन) इन्द्र को प्रदान किया, जो समत्र शत्रुओं का विनाशक था। हे वत्स सुरेश्वर! तुमसे यह पूर्व वृत्तान्त इस प्रकार से वर्णित किया।।३९।।

शक्र उवाच

केन सा विधिना लब्धा मम तुल्य परागतैः। विशेषतो विधिं तस्य पृच्छामि कथयस्व नः ॥४०॥

इन्द्र कहते हैं—मेरे पूर्ववर्त्ती इन्द्र ने किस विधि का अवलम्बन लेकर इस रथकेतु को पाया था, मैं उसकी विशेष विधि की जिज्ञासा करता हूँ।।४०।।

ब्रह्मोवाच

गङ्गायाः सिकतासंख्याः क्रियन्ते सुरसत्तमः। न भवेद् दैत्यवंशस्य देवराजजिगीषिणः ॥४१॥
विष्णुना घातिताः केचित् केचिद्देवेन शम्भुना। गुहेन निहताश्चान्ये मया केचिज्जिघांसिताः ॥४२॥
देवीभिर्बहवश्चान्ये तथापि न क्षयोऽभवत् ॥४३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे सुरसत्तम! गंगा की बालुका को तो गिना जा सकता है, लेकिन स्वर्ग की इच्छा रखने वाले दैत्यवंश की संख्या नहीं कही जा सकती। अनेक दैत्य विष्णु द्वारा हत किये गये हैं, देवदेव शिव ने भी अनेक का विनाश किया है, कार्त्तिकेय के हाथों से भी अनेक मारे गये हैं, मैंने भी अनेक का वध किया है, देवी ने भी बहुतों का विनाश किया है; तथापि इनका पूर्ण क्षय नहीं हो सका है।।४१-४३।।

सुबलो नाम दैत्येन्द्रो हंसकेतुर्महाबलः। मम वंशे समुत्पन्नो दण्डघातस्य वासव ॥४४॥
सुबलेन जिता देवाः भौत्ये मन्वन्तरे विभो। समागताः समस्तास्तु सह इन्द्रेण वासव ॥४५॥
यथा न शक्ताः समरे दैत्यान् योद्धुं पितामह। शत्रूणां परिभूतानां शरणं त्वां गता वयम् ॥४६॥

हे इन्द्र! हे वासव! मेरे वंश में उत्पन्न दण्डघात दैत्य का पुत्र महाबली हंसकेतन सुबल नामक दैत्यराज था। हे देवराज! पूर्वकाल में भौत्य मन्वन्तर में उसने देवगण को पराजित किया। हे वासव! उस समय के इन्द्रसहित सभी देवतागण मेरे पास आये तथा उन्होंने कहा—हे पितामह! हम दैत्यों के साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं रहे। हम शत्रुओं द्वारा पराजित होकर आपकी शरण में आये हैं।।४४-४६।।

यथाहं चिन्तयामास शक्रविष्णुदिवौकसाम्। केतुना शम्भुदत्तेन उदितेन असंशयम् ॥४७॥
ततो मयासुराः सेन्द्रा विष्णुमाराधयन् पुरा। स दास्यति महाकेतुं सर्वदैत्यविमोहनम् ॥४८॥

हे इन्द्र! तब मैंने चिन्तन करके निश्चय किया कि शिव द्वारा दिया गया तथा विष्णु द्वारा प्राप्त किया गया जो केतु (ध्वज) है, उसे फहराने पर निश्चय ही इनकी रक्षा होगी। हे इन्द्र! तदनन्तर मैंने देवगण से कहा—हे इन्द्रादि देवगण! विष्णु की आराधना करो। वे सर्वदैत्य-निसूदन महाकेतु प्रदान करेंगे। यह केतु सर्वदैत्यविमोहन है।।४७-४८।।

ते गता मम चादेशात् क्षीरोदे यत्र केशवः। परापरस्वरूपस्थमजमव्ययं शाश्वतम् ॥४९॥
श्रीवत्साङ्कमहाबाहुं कौस्तुभोरस्कभूषणम्। स्तुवन्त्येते समहेन्द्रा देवाः शत्रुभयार्दिताः ॥५०॥

देवगण मेरा आदेश प्राप्त करके केशव के स्थान क्षीरसागर के तट पर पहुँचे। तदनन्तर परापर स्वरूपस्थ, अज, अव्यय, शाश्वत, सनातन, श्रीवत्साङ्क, वक्षःस्थल में कौस्तुभयुक्त महाबाहु विष्णु का उन लोगों ने तत्क्षण स्तवन किया। शत्रु से भयार्त्त होकर यह स्तुति की गई।।४९-५०।।

तुतोष केशवस्तेषां वरं ब्रूहि पुरन्दरः। तदा तैर्याचितो देवः केतुं ददौ सुरारिहा ॥५१॥
तेन तद्भूषयित्वा तु दत्तं देव भयापहम्। श्वेतच्छत्र महातेजः स्रग्मालापिटकान्वितम् ॥५२॥
सूर्यायुतसमप्रख्यं किङ्किणीवरनादितम्। चामरव्यजनोपेतं शम्भुलक्षणलक्षितम् ॥५३॥
तद्दृष्ट्वा सौबलं सैन्यं मग्नं स च निपातितम्। तदा प्रभृति हे शक्र केतुस्तव क्रमागतः ॥५४॥
अन्येषाञ्चैव राज्ञाञ्च उच्छ्रयो विजयावहः। मया हरेण देवेन विष्णुना वासवेन च ॥५५॥
यद्दत्तं कश्चिदेवेदं नृपतिरुच्छ्रयिष्यति। स समस्ताधिपो भूमावजेयश्च भविष्यति ॥५६॥

विष्णु ने स्तवन से सन्तुष्ट होकर इन्द्र से कहा—हे पुरन्दर! वर माँगो। तब इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने दैत्यविनाशार्थ केतु माँगा। विष्णु ने बहुत-सी माला तथा चन्दन तिलक से भूषित करके उस देवभयविमोचनकारी महातेजःयुक्त केतु को देवताओं को प्रदान किया। केतु का उत्तोलन पृथिवी के राजाओं हेतु भी विस्मयकारी था। शिव-विष्णु-मैं-इन्द्र तथा हमलोगों से अधिष्ठित तथा प्रदत्त केतु का जिस राजा ने उत्तोलन किया, वह समस्त देश का अधिपति तथा विजयी हो गया।।५१-५६।।

अगस्त्य उवाच

एवं शक्रस्य शब्देन कथितं केतुमुच्छ्रयम्। मयापि तव विद्येश सर्वं तच्च प्रकाशितम् ॥५७॥

इत्याद्ये देवीपुराणे इन्द्रोच्छ्रयलब्धिर्नामैकादशोध्यायः

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—ब्रह्मा ने इन्द्र से इस प्रकार केतु उच्छ्रय का वर्णन किया। हे नृपवाहन! मैंने भी तुमसे यह सब प्रकाशित किया।।५७।।

एकादश अध्याय समाप्त

●

द्वादशोऽध्यायः

नृपवाहन उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि तस्य उत्थापनं यथा। क्रियते दिन ऋक्षे तु द्रव्यमन्त्रविधिं वद ॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—भगवन् अगस्त्य! केतु का उत्थापन कैसे करना होता है? उसका तिथि-नक्षत्र-उपकरण द्रव्य तथा मन्त्रविधि सुनने की अभिलाषा है। उसका वर्णन करिये।।१।।

अगस्त्य उवाच

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं बृहस्पतिसमीपतः। यथा तथा प्रवक्ष्यामि विधिं केतोः समुच्छ्रयः ॥२॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—ब्रह्मा द्वारा शक्र, बृहस्पति से कही गयी केतु-समुच्छ्रय विधि को द्रकहता हूँ।।२।।

बृहस्पति उवाच

शुभे ऋक्षेऽथ करणे मुहूर्त्ते शुभमंगले। दैवज्ञः सूत्रधारश्च वनं गच्छेत्सहायवान् ॥३॥

देवी प्रतिष्ठाविधिना यात्रा या वा प्रचोदिता। गत्वा वृक्षं शुभं नेष्टं धवमर्जुनं प्रियंगुकम् ॥४॥
उदुम्बराश्च कर्णाश्च पञ्चैते शोभना हरेः। ध्वजार्थं वर्जयेद्वत्स देवो उद्यानजान् द्रुमान् ॥५॥

बृहस्पति कहते हैं—शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ करण तथा शुभ मुहूर्त्त में दैवज्ञ तथा सूत्रधार के साथ राजा वन में जाय। देवी प्रतिष्ठानुरूप नियमानुसार यात्रिक कर्त्तव्य का समापन करके यात्रा करे। इन्द्रध्वज कार्य में (ऐसे केतु के उत्तोलन का नाम है—इन्द्रध्वजोच्छ्रय) धव, अर्जुन, प्रियक, उडुम्बर तथा अश्वकर्ण—ये पाँच वृक्ष प्रशस्त हैं। इस कार्य में उद्यान में उत्पन्न वृक्षों से निर्माण करना वर्जित है।।३-५।।

कन्या मध्या तु या षष्ठी करमानेन कल्पयेत्। एकादशकरा वत्स नव-पञ्च-करा-परा ॥६॥
अवनीष्ठां कृमिविद्धां तथा पक्षिनिषेविताम्। वल्मीक-पितृ-वनजां सशुष्क-कोटरां तथा ॥७॥
कुब्जां च घटसिक्तां च तथा स्त्रीनामगर्हिताम्। विद्युद्वज्राहतां चैव दग्धां च परिवर्जयेत् ॥८॥

२२ हस्तपरिमित केतु होना चाहिये। ९ शक्रकन्या होंगी।[१] कन्याओं में षष्ठी अथवा शक्रमातृका रहेंगी। षष्ठी का परिमाण ११ हस्त तथा शक्रकन्याओं का परिमाण ५ हस्त होगा। ध्वजदण्ड ही इन्द्र; अतः उसकी कन्या अथवा षष्ठी है। यह भी काष्ठमयी होगी। लतायुक्त, कृमि लगे, पक्षियों के घोंसले से युक्त अथवा पक्षिकोटरयुक्त, बाबी से आवृत्त, श्मशान में उगे, शुष्क कोटरान्तर, वक्र, घटजल सिंचाई से वर्द्धित, स्त्रीनाम्नी, विद्युत् गिरने से आहत, वज्राहत अथवा अग्निदग्ध वृक्ष की लकड़ी का इस कार्य में त्याग करना चाहिये।।६-८।।

अलाभे चन्दनमाम्रं कलं शाकमयं च वा। कर्त्तव्यं शक्रसिद्धार्थं न चायं वृक्षजं क्वचित् ॥९॥
शुभभूमिभवं ग्राह्यं शुभतोयं शुभावहम्। ततः सम्पूजयेद्वृक्षं प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥१०॥
नमो वृक्षपते वृक्ष त्वामाराधयति पार्थिवः। ध्वजार्थं तद्वतो नाथ अन्यथा तेऽत्र गम्यताम् ॥११॥

पूर्वोक्त पाँच प्रकार के वृक्ष न मिलने पर चन्दन, आम, शाल, शाक वृक्ष से इन्द्रकेतु बनाया जा सकता है। अन्य ध्वज का इन्द्रध्वज कदापि न बनाये। उत्तम पवित्र जलसमीपस्थ, उत्तम स्थान में उत्पन्न वृक्ष इन्द्रध्वज कार्य में ग्राह्य है। पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर वृक्षपूजा करे। हे वृक्षपते! आपको नमस्कार है। राजा इन्द्रध्वजार्थ आपका पूजन कर रहे हैं। अतः आप यह स्थान त्याग करके आगमन करिये।।९-११।।

रात्रौ देयो बलिस्तत्र युगवृक्षं तथैव च। वासवानां महावृक्ष कृत्वा चान्यत्र गम्यताम् ॥१२॥
ध्वजार्थे देवराजस्य न क्षान्तिस्तव अत्र च। पूजयित्वा ततो वृक्षं बलिं भूतेषु दापयेत् ॥१३॥

रात्रि में उस वृक्ष के निकट बलि प्रदान करनी चाहिये। उसका मन्त्र है—हे वृक्ष! इन्द्रोत्सव-सम्पादन करके अन्यत्र जाइये। देवराज के ध्वजार्थ आपका अनुच्छेदन करना होगा, अतएव आप राजा के प्रति क्रोधान्वित न हों। वृक्षपूजन करके भूतोद्देश्य से बलि देनी चाहिये।।१२-१३।।

प्रभाते छिन्दयेद् वृक्षं शुभस्वप्नादिदर्शनैः। शुक्लाम्बरधरं चैव समुद्रतरणं नदी ॥१४॥
वृक्षान्नग्नान् शुभ्रान् क्षीणानारोहयेद्देवतालयम्। देवं द्विजं तथा साधुं लिङ्ग ब्रह्म हरेरपि ॥१५॥

---

१. मतान्तर से ५ शक्रकन्या कही गयी हैं। यहाँ २२ हस्त का केतु कहते हैं; लेकिन अन्य शास्त्र में ३२ हस्त का कहते हैं। सर्वश्रेष्ठ होगा—द्वाचत्वारिंश हस्तपरिमित केतुदण्ड। यहाँ यद्यपि स्पष्ट नहीं कहा गया है, तथापि शक्रमातृका अथवा षष्ठी केतु से अर्द्धक होगी। यह अन्य शास्त्रों में कहा गया है। यहाँ ११ दण्ड परिमित षष्ठी माना गया है। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में २२ हस्त का केतुदण्ड माना गया है।

प्रतिमा पूजिता स्वप्ने क्षिप्रं सिद्धिः फलप्रदा। मत्स्य-मांस-दधि-लाभ-रुधिरं मृतरोदनम् ॥१६॥
अगम्य-गमनं दृष्ट्वा आशुसिद्धिः शुभप्रदा। द्रुमाद्रि-लंघनं धन्यं शत्रुनाशस्तथाशुभः ॥१७॥

शुभ स्वप्नादि का दर्शन करके प्रभात में वृक्ष का छेदन करे। स्वप्न में शुक्ल वस्त्र परिधान, समुद्रतरण, नदीतरण, नम्र शुभ क्षीरी वृक्ष आरोहण, देवालय प्रवेश, देवपूजा, विप्रपूजा, साधुपूजा, शिवलिंग पूजा तथा ब्रह्म विष्णु प्रतिमा पूजा करने से शीघ्र शुभ फल मिलता है। स्वप्न में मत्स्यलाभ, मांसलाभ, दधिलाभ, रुधिरदर्शन, रुदन अथवा अगम्यागमन को स्वयं करते देखने से शीघ्र इष्टसिद्धि होती है। स्वप्न में वृक्षारोहण, शत्रुनाश-दर्शन शुभ का सूचक है।।१४-१७।।

फल-पुष्प-सिता दूर्वा स्वप्ने लब्धा जयावहा। शंखं गावस्तथा दंतिलाभो राज्यप्रदायकाः ॥१८॥
गौः सवत्सा नवसूता दृष्टा पुत्रफलप्रदा। पङ्कमुत्तरणं रूपे व्याधि मोक्षकरं चिरात् ॥१९॥
एवं स्वप्नान् शुभान् दृष्ट्वा तथा छिन्देत पादपम्। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मधुर-क्षाक्षपर्शुना ॥२०॥

स्वप्न में फल, पुष्प, दूर्वा अथवा शर्करालाभ होने से जय प्राप्त होती है। स्वप्न में शंखलाभ, गोलाभ अथवा हस्तिलाभ राज्यप्राप्ति का सूचक है। नव प्रसूता सवत्सा गौ स्वप्न में देखने पर पुत्रजन्म होता है। स्वप्न में कूप से कीचड़ निकालना रोगमुक्ति का सूचक है। इसी प्रकार शुभ स्वप्नदर्शन के पश्चात् (जाग्रदवस्था में) वृक्षच्छेदन करने से अच्छा होता है। उत्तरमुख अथवा पूर्वमुख होकर मधुप्लावित हीरकजटित कुल्हाड़ी से वृक्ष का छेदन करना चाहिये।।१८-२०।।

पूर्वोत्तरेण पतनमशब्दः शुभदो व्रणः। अलग्नः पादपे चान्ये अन्यथा तु परित्यजेत् ॥२१॥
अष्टांगुलं त्यजेन्मूलेग्रेच्छं तु जले क्षिपेत्। तथा तमानयेद्वत्स शकटेन वृषेण वा ॥२२॥
प्रधानैर्बलसम्पन्नैर्नयेत्तत्पुरतः पुरम्।

काटे जा रहे वृक्ष का पूर्वोत्तर दिशा में गिरना उत्तम है। साथ ही यदि वृक्ष गिरने में शब्द न हो तथा पतित वृक्ष किसी प्रकार से स्फुटित अथवा विशीर्ण न हो तो वह शुभसूचक है। गिरते समय अन्य वृक्ष से संलग्न न हो तब उत्तम है। अन्यथा उस वृक्ष का परित्याग कर देना चाहिये। मूल का हिस्सा आठ अंगुल छोड़कर वृक्ष का छेदन करना चाहिये। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि अग्रभाग जल में गिरे। हे वत्स! शकट अथवा बलसम्पन्न तरुण वृषगण द्वारा नगर के सम्मुख भाग में उस छिन्न वृक्ष को लाना चाहिये।।२१-२२।।

नीयमाना यदा यष्टी समाना चतुरस्रका ॥२३॥
वृत्ता वा भंगमाधत्ते राज्ञः पुत्र पुरोहितान्। आवभंगे बलं भिन्द्यात् नेम्यो नाश क्षयं तथा ॥२४॥
अर्थस्य क्षयभंगेन शांतिं तत्र तु कारयेत्। इन्द्रज-छत्र-मन्त्रेण जातवेद समापि वा ॥२५॥
तदा नीत्वा शुभे लग्ने पुरस्तादुपवेशयेत्। द्वारशोभां पथरथ्यां गृहे हट्टे च कारयेत् ॥२६॥

इस वृक्ष का सम चतुरस्र अथवा वर्त्तुल वृक्षदण्ड लेकर जाते समय यदि वह भग्न हो, तब राजा के पुत्र-पुरोहित का विनाश हो जाता है। उसका यदि कोण भंग हो तब सैन्यक्षय होता है। शकट के अक्षभंग होने पर अर्थक्षय होता है। इस प्रकार स्थल में ऐन्द्र मन्त्र अथवा जातवेदस इत्यादि मन्त्रों से शान्ति करनी चाहिये। यथाविधान से ले जाकर शुभ लग्न में नगर के समक्ष उसका स्थापन करना चाहिये। द्वार, पथ, रथ्या, गृह एवं हाट में उसे नाना प्रकार से सजाना चाहिये।।२३-२६।।

पटुपटहनिनादांश्च वेश्यशंखं द्विजातयः। मंगलैर्वेदशब्दैश्च तान्नेयाद्यंत्र उच्छ्रयेत् ॥२७॥
तत्रस्थं चित्रकर्मारनिर्मितैस्तां तु वेष्टयेत्। वस्त्रैश्चांडजवोंडोत्थैः शुभ्रैः सूक्ष्मैर्यथाक्रमम् ॥२८॥

तदनन्तर पटहादि की वाद्य ध्वनि, वेश्यागण के संगीत, शंखध्वनि, ब्राह्मणों की वेदध्वनि—इन सबके कोलाहल के मध्य में उत्तोलन स्थान पर उस वृक्षदण्ड को ले जाना चाहिये। उसे वहाँ रखकर शिल्पीनिर्मित क्षौम, कौशेय शुभ श्वेत वस्त्र

को उस दण्ड में लगाना चाहिये (ध्वजा के रूप में वस्त्र लगाये)। माङ्गलिक वेदशब्दों से उसे वहाँ उच्छ्रयित करना चाहिये।।२७-२८।।

नन्दोपनंदसंज्ञाश्च कुमार्य्यः प्रथमांगगाः। देव्यो जयविजयाख्या षोडशांशव्यवस्थिताः ॥२९॥
अधिके शक्रजननी दत्ताश्च दैवतैर्ध्वजाः। ध्वजपरिमाणत्र्यंशः परिधेः प्रथमं पिटस् ॥३०॥
षोडशांशविहीनानि कुर्याच्छेषाणि बुद्धिमान्।

अंशकल्पना करके नन्दा-उपनन्दा नामक शक्रकुमारीगण प्रथमांश में रहेंगे। जया-विजयादि देवीगण षोड़शांश में तथा शक्रजयित्री अर्थजा देवी उससे भी अधिक अंश में रहेंगी। सभी देवता दण्डस्वरूप हैं। पहले वस्त्रध्वज की परिधि भी परिमाण के अनुकूल रखे। ज्ञानी राजा अन्य सभी वस्त्र को इस प्रकार से करे, जिससे ध्वजदण्ड के १६ भाग का १ भाग कम हो। नानाविध वसन तथा चिह्न देवगण द्वारा प्रदत्त होने के कारण तथा निर्दिष्ट होने के कारण स्वयं दातव्य है।।२९-३०।।

रसनां विचित्रवर्णां प्रथमां दद्यात्स्वयंभुवः ॥३१॥
सुरक्तां चतुरस्रां च विश्वकर्मा द्वितीयतः। अष्टां श्रीं तु स्वयं शक्रो नीलरक्तां प्रदापयेत् ॥३२॥
कृत्स्नं यमेन वृत्तं च वरुणेन षडश्रकम्। मञ्जिष्ठा जलदाकारं रथभेदी स्वनः शुभः ॥३३॥
नीलवर्णं च तद् युक्तं स्कन्दो बहुविचित्रितम्। वृत्तं तु दहनो दद्यात् सुवर्णञ्च तथाष्टमम् ॥३४॥
वैडूर्यं सतृणमिंद्रो ग्रैवेयं दापयेद्बुधः। चक्रांको कृतिं तु सूर्या विश्वेदेवाः प्रपूजिताः ॥३५॥
झषयोनिं वसं दद्युः पद्मनीलं नीलोत्पलम्। वरुणा शुक्रेण ततो विशालमूर्ध्वतो न्यस्तम् ॥३६॥
ग्रहैर्विचित्राणि बहुमातृभिः स्वानि रूपाणि। यत्नेनैव प्रदेयं तु केतोस्तु तस्य भूषणम् ॥३७॥

पहले विचित्र वर्ण श्वेतवस्त्र ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त होता है। उत्तम रक्तवर्ण चतुरस्र वस्त्र विश्वकर्मा-प्रदत्त होता है। नील रक्त वस्त्र स्वयं इन्द्र-प्रदत्त है। यम द्वारा दिया गया है—कृष्णवस्त्र। माञ्जिष्ठ तथा धूर्मवर्ण वर्त्तुलाकृति वस्त्र वरुण द्वारा दिया गया है। वासुदेव-प्रदत्त नीलवर्ण वस्त्र, बहुविचित्र वस्त्र जो कार्त्तिकेय द्वारा दिया गया है, अग्नि द्वारा प्रदत्त है—सुवर्ण वर्ण वर्त्तुल आकृतिवस्त्र। वैदूर्य के समान ग्रीवाभूषण इन्द्र-प्रदत्त है। उसमें सूर्य का चक्र चिह्न है। विश्वदेवों का पद्मचिह्न, नीलोत्पल छवियुक्त नील चिह्न ऋषियों द्वारा प्रदत्त है। गुरु तथा शुक्र ध्वज के शिखर प्रदेश में विशाल चिह्न प्रदान करते हैं। मातृगण अपना-अपना रूप उसमें चित्रित करती हैं। यद्यपि वे वसन-भूषण उस एक यजमान द्वारा प्रदत्त हैं, तथापि वह पूर्वोक्त वचन से विवेचनीय है।।३१-३७।।

तदेवं तं विजानीयात् मन्त्रादिभिः समुच्छ्रयेत्। प्रथमं प्रविशमानः भूमिं यस्तिष्ठति राष्ट्रम् ॥३८॥
बालानां तालशब्देन देशघातं समादिशेत्। नृपवधकरो बिशीर्णं सर्वशान्ता शुभावहा ॥३९॥

तदनन्तर यन्त्रादि द्वारा उस ध्वज को उत्तोलित करना चाहिये। यदि ध्वज उच्छ्रित करने मात्र से विना यत्न मृत्तिका में प्रविष्ट हो जाय, तब राष्ट्रभंग होता है। उस समय बालकों के ताली बजाने पर देशविघात होता है। यदि ध्वज टूट जाय तब राजा की मृत्यु होती है। अन्यथा शुभावह तथा सर्वतोभावेन प्रशस्त होता है।।३८-३९।।

चन्द्र-सूर्य-यम-शक्र-सोम-धनद-वारुणैः। वह्नीश-ऋषिमन्त्रैश्च होतव्यैः दधि चाक्षतैः ॥४०॥
शुक्र-स्कन्द-गुरु-रुद्र-अप्सरादि प्रपाठयेत्। हुत्वा तु विधिवद्वह्निं ज्वालां लक्षेत बुद्धिमान् ॥४१॥

शिव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, वायु, वरुण, अग्नि तथा ईशान, शुक्र, कार्त्तिकेय, गुरु, रुद्र आदि देवताओं का पूजन करके दधि तथा अक्षत से होम करना चाहिये। यदि वैदिक स्तोत्र न मिले तो उसकी जगह पौराणिक स्तोत्र को ही पढ़े। बुद्धिमान, सात्विक व्यक्ति होमाग्नि को उत्तमरूपेण प्रज्वलित करे।।४०-४१।।

सुतेजाः सुमनोदीप्तः संहतो रविसंप्रभः। रक्ताशोकसमाकारो रथभेरीस्वनः शुभः ॥४२॥
शंखदुंदुभिमेघानां नादाः शस्त्रास्तु पावके। ततः कदलीक्षुदण्डान् पताकाश्च समुच्छ्रयेत् ॥४३॥
अन्याश्च विविधाः शोभाः शक्रकेतुं समुच्छ्रयेत्। प्रौष्ठपदे तु अष्टम्यां शुक्लायां शोभने दिने ॥४४॥
आश्विने वाथ शुक्लायां श्रवणेनाथ उच्छ्रये। पौरजननग्नवृन्दैः पट्टभेरीनिनादितम् ॥४५॥

अग्नि उत्तम तेजयुक्त, सुदीप्त, एकीभूत, सुप्रभ, रक्ताशोकसमाकार, रथ तथा भेरी की तरह गम्भीर शब्द के साथ जलने वाली (जलते समय धू-धू जैसा शब्द करने वाली) हो। अग्नि का प्रज्वलन शब्द शंख-दुन्दुभि तथा मेघ के समान होना उत्तम है। तदनन्तर पताकायुक्त कदलीदण्डों को उच्छ्रित करे (खड़ा करके लगाये)। इन्द्रध्वज के उत्तोलन काल में उसे अन्य प्रकार की नानाविध शोभा से सम्पन्न करना चाहिये। भाद्रमासीय शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में उत्तम नक्षत्र काल में ध्वजदण्ड तथा काष्ठमयी कुमारी प्रभृति का प्रवेशन तथा श्रवण नक्षत्रयुक्त शुक्ल द्वादशी को उत्तोलन करना चाहिये। उस समय नगर के लोग तथा दैवज्ञ आदि को उपस्थित रहना चाहिये एवं पट्टह तथा भेरी आदि वाद्य बजते रहने चाहिये।।४२-४५।।

वितानध्वजशोभाढ्यं पताकाभिः समुज्ज्वलम्। विष्णवीश-शक्रमन्त्रेण सिंह रक्षाकृतेन च ॥४६॥
दृढं च मातृकरस्थं शुभतो रणमाकुलम्। अविलंवितमुत्थानं भग्नं पिटकं तथा ॥४७॥
न द्रुतं वा समुत्थाप्यं केतुं वासवजं विभो। उत्थितं रक्षयेत्प्राज्ञः काकोलूककपोतयोः ॥४८॥
नसदलीपनं दद्यादन्येषामपि पक्षिणाम्। यन्त्रोद्देशेन तं कुर्य्यान्मुखं केतोर्यथाविधि ॥४९॥

वितान, ध्वजादि से शोभित पताका प्रभृति उस स्थान को समुज्वल करना चाहिये। विष्णुमन्त्र, शिवमन्त्र तथा इन्द्र मन्त्र से ध्वजा फहरानी चाहिये। पहले से ही इस ध्वजा की सिंह के समान रक्षा करनी चाहिये। ध्वजा को (ध्वजादण्ड के निचले सिरे को) मजबूती के साथ मिट्टी में गाड़ना चाहिये। उसके साथ ध्वजदण्ड का बन्धन करना चाहिये (अर्थात् ध्वजदण्ड से अच्छी तरह संयुक्त करना चाहिये)। उस प्रांगण के चतुर्दिक (जहाँ ध्वजा को स्थपित किया गया है) उत्तम तोरण रहना चाहिये। न तो अत्यन्त धीरे, न तो अत्यन्त शीघ्रता से इस प्रकार से इस इन्द्रकेतु का उत्थापन करना चाहिये। उसे सीधा रखना चाहिये। यह देखते रहना चाहिये कि कहीं पीठ का भंग न हो जाय। बुद्धिमान राजा को यह सावधानी रखनी चाहिये कि उस उत्तोलित पताका पर काक-उलूक-कपोत अथवा अन्य पक्षी न बैठें। इसको झुकाने के लिये जिधर यन्त्र है, उसी ओर केतु को यथाविधान झुकाना चाहिये।।४६-४९।।

तथा सुसंस्थितं पूज्यं सुखयन्त्रस्वयंत्रितम्। रात्रौ जागरणं कुर्य्यादिन्द्रमन्त्रानुकीर्त्तनम् ॥५०॥
पुरोहितः सदैवज्ञः शुभशान्तिरतः सदा। छत्रपातो नृपं हन्यात्पताका महिषीवधम् ॥५१॥
पिटके युवराजस्य ससचिवमनुकम्पने। राष्ट्रं तोरणपातेन ध्वजेन अन्नक्षयो भवेत् ॥५२॥
पतिते शक्रदण्डे तु नृपमन्यं समादिशेत्। कृमिजालक उत्थाने शलभात्तस्कराद्भयम् ॥५३॥

पूर्वोक्त प्रकार से संस्थित उत्तम यन्त्र से सुयन्त्रित केतु का पूजन करने का विधान है। इन्द्रमन्त्र-जप तथा रात्रिजागरण कर्त्तव्य है। दैवज्ञ तथा पुरोहित सतत् शान्तिकार्य में नियुक्त रहें। ध्वज के ऊपर छत्र तथा पताका होनी चाहिये। छत्र पतित हो जाने पर राजा की मृत्यु, पताका के पतन से राजमहिषी की मृत्यु, पीठिका-भंग से युवराज का नाश, केतुदण्ड के विकम्पित होने पर मन्त्रीनाश, तोरण गिरने से राष्ट्रनाश, कदलीध्वजादि गिरने से अकाल एवं उक्त इन्द्रध्वज के गिर जाने से इस राजा का राजनाश तथा अन्य राजा का अधिकार होता है। इन्द्रध्वज के कृमिजालयुक्त होने पर शलभ तथा तस्करों का उपद्रव राज्य में होता है।।५०-५३।।

सुसमे संस्थिते शान्तिर्नृपस्य नगरस्य च। यावदुच्छ्रितं तिष्ठन्ति तावत्पौरा हृष्टाः सदा ॥५४॥
केतोर्निरतायजने भुञ्जीयाद्विप्रकन्याश्च। पूजा यादृशी उत्थाने कुर्यात्पाते तथैव च ॥५५॥
रात्रौ शुभकृत्पातनं दृष्टं काककापोतैः। याति नृपः सह राष्ट्रं केतुर्यश्चैव कारयेत् ॥५६॥

यदि यह इन्द्रध्वज सीधी तथा दृढ़ता से बिना किसी व्याघात के स्थित रहे, तब राजा तथा राज्य को शान्तिलाभ होता है। जब तक इन्द्रध्वज उच्छ्रित रहेगा, तब तक पुरवासीगण में सतत् हर्ष रहेगा तथा वे इन्द्रध्वज का पूजन करते रहें। विप्र-कन्याओं को भोजन कराया जाता रहे। जैसे ध्वजा के उत्थानकाल में पूजा की जाती है तदनुरूप ही उसके पातकाल में भी होमादि करना चाहिये। (सात दिनों पश्चात्) काक तथा कपोतादि से अलक्षित रूप में इन्द्रध्वज का पातन उत्तम है। जो राजा इस प्रकार से केतु का उच्छ्रय करते हैं, वे राष्ट्र के साथ विजयी होते हैं।।५४-५६।।

नगरे वा पुरे खेटे पौरा यद्येवं कुर्वते। पुरनगरस्य द्वारे वृषसिंहखगोत्थितम् ॥५७॥

नगर, उपनगर तथा प्रबल ग्राम में पुरवासीगण (राजा के प्रतिनिधि के रूप में) यदि यह कार्य करते हैं, तब उस नगर, उपनगरादि के द्वार पर वृषभ, सिंह अथवा शक्तिविशेष की प्रतिमूर्त्ति स्थापित करनी चाहिये।।५७।।

केतुं समस्तघोराणां नाशनं जयदं मतम्। एवं पूर्वं हरिः केतुं प्राप्तवान् वृषवाहनात् ॥५८॥
तथा ब्रह्मस्य तेनैव ब्रह्मणः शक्रमागतम्। तेन सोमस्य ततो दक्षे तङ्क्तुं समागतम् ॥५९॥
तदा प्रभृति कुर्वन्ति नृपा अद्यापि उच्छ्रयम्। एवं यः कारयेद्राजा केतुं विजयकारकम् ॥६०॥
तस्य पृथ्वी बलोपेता सद्वीपा वशगा भवेत् ॥६१॥

इत्याद्ये श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे ध्वजलक्षणं नाम द्वादशोऽध्यायः

यह केतु समस्त अमंगल-नाशक, उत्तम तथा जय देने वाला होता है। पूर्वकाल में ब्रह्मा की सहायता से विष्णु को यह केतु भगवान् शिव ने प्रदान किया था। ब्रह्मा की सहायता से विष्णु द्वारा यह इन्द्र को प्रदान किया गया। यह इन्द्र से चन्द्रमा को मिला। चन्द्र की कृपा से प्रजापति दक्ष को मिला। तब से आज तक राजा लोग इन्द्रध्वज को उत्थापित करते रहते हैं। जो राजा उक्त विधिक्रम से विजयकारी इन्द्रध्वज को उत्थापित करते हैं, उनके वश में द्वीप-काननादि से युक्त पृथिवी आ जाती है।।५८-६१।।

द्वादश अध्याय समाप्त

●

त्रयोदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातं केतुख्यापनमागतम्। भूयः किं पृच्छसे राजंस्तन्नो ब्रूहि वदामि ते ॥१॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—हे राजन्! प्रश्न के अनुसार केतु-उत्थापन की समस्त चर्चा तुमसे किया। अब तुम्हारी कौन-सी जिज्ञासा है, कहो। उसका उत्तर दूँगा।।१।।

नृपवाहन उवाच

कथितं विद्यामाहात्म्यं योगं नारदपृच्छितम्। केतोः समुच्छ्रयः पुण्यः सर्वकामसुखप्रदः ॥२॥
भूयस्तात पुनः पृच्छेत् कथं घोरो महाबलः। नारदेन सपत्नीकः सहमन्त्री विमोहितः ॥३॥

नृपवाहन कहते हैं—नारद द्वारा पूछे गये योगविद्या का माहात्म्य तथा सर्वकाम सुखप्रद, पुण्यप्रद केतु-उत्थापन आदि का प्रसंग आपने कहा है। हे तात! अब मेरी यह जिज्ञासा है कि पत्नी एवं मन्त्री के साथ महाबली घोर दैत्य को नारद ने कैसे मोहित किया?।।२-३।।

अगस्त्य उवाच

यथा स पृष्टवान्वत्स शक्रस्त्वसुरसत्तमः। एवं पितामहं पूर्वं विद्यायोगस्य कौतुकम् ॥४॥
देवं भूयोऽपि संपृष्टो घोरबुद्धिविघातनम्। कथं कुर्य्यान्महाबाहो नारदो मुनिसत्तमः ॥५॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे वत्स! पूर्व में सुरराज इन्द्र ने पितामह देव (ब्रह्मा) से विद्या तथा योग के रहस्य की जिस प्रकार से जिज्ञासा किया था, घोर दैत्य के विषय में उन्होंने ब्रह्मा से पुनः उसी प्रकार से प्रश्न पूछा—हे महाबाहो ब्रह्मन्! मुनिश्रेष्ठ नारद ने किस प्रकार से घोर दैत्य में मोह का उत्पादन किया?।।४-५।।

ब्रह्मोवाच

तस्य जपनशीलस्य प्रतापात् सुरसत्तमः। देवानां महती वृष्टिः सर्वा सुखप्रदा भवेत् ॥६॥
वनस्पतिः समस्ताश्च फलपुष्पैः सुशोभिताः। मोहिता घोरसेना तु सहमन्त्रिपुरोहिता ॥७॥
विधर्मपथगा सर्वा भर्त्तुरन्वेषणे रता। वञ्चने तस्य दारादेर्धनस्य विभवस्य च ॥८॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे सुरसत्तम! जपपरायण नारद के प्रताप से सर्वसुख-सम्पादिनी देवगण की शुभ दृष्टि उन पर निपतित हुई। वनस्पतिसमूह फल-पुष्प से सुशोभित हो गये। इधर घोर दैत्य अपनी सैन्यमण्डली, मन्त्री तथा पुरोहित के साथ मोहित हो गया। सभी विधर्म पथगामी हो गये। असुरगण दारा आदि के द्वारा घोर दैत्य की सम्पत्ति में वञ्चना करने लगे।।६-८।।

सन्मार्गं सत्पथं त्यक्त्वा तेन ते मोहितासुराः। विकर्मनिरता वत्स विधर्ममतिशीलिनः ॥९॥
ताञ्च शीलमतीं राज्ञीं दिगम्बरपरायणाम्। अनेकव्रतभूयिष्ठां हेतुवादमनोनुगाम् ॥१०॥
पाषण्डसर्वधर्मस्थां शिवविष्णुजुगुप्सिताम्। न चाग्निहरणे भक्तिर्नातिथौ गृहपूजने ॥११॥
न मातरो महाभागा न गावो न च ब्राह्मणाः। एवं सा नारदोच्छिष्टान् धर्मान् कुर्य्यात्सदा सती ॥१२॥
एवं विधर्ममाधाय तस्य घोरस्य वै सभाः। सुपथमुज्झयित्वा तु उन्मार्गेण प्रवर्त्तिरे ॥१३॥

हे वत्स! वे मोहित असुर सन्मार्ग तथा सत्पथ को छोड़कर विकर्म में रत हो गये। सभी तथा घोर दैत्य भी कुकर्मरत अधर्मी हो गये। उनकी शीलमती रानी चन्द्रमती भी दिगम्बर मतावलम्बी हो गई। उन्होंने अनेक व्रत तथा अनुष्ठान में मनोनिवेश किया। वे पाखण्डपूर्ण धर्म में आसक्त होकर हरि-हर की निन्दा करने लगीं। अब उनकी निष्ठा होम, अतिथिसेवा-गृहसंस्कार आदि में नहीं रही। उसके मन में महाभागा मातृगण, गौ, ब्राह्मण के प्रति मान ही नहीं रह गया। वह सती नारी नारद द्वारा प्रदर्शित (तथाकथित) धर्म का आचरण करने लगी। घोरासुर के समुदय गोष्ठी वर्ग अधर्म का आश्रय लेकर सत्पथ का त्याग करके विमार्ग को अपनाने लगे।।९-१३।।

घोर उवाच

ब्रह्मपुत्र महाबाहो शैलपुत्र्या नये मम। को योग्यो ह्यत्र योधानां द्रुतकार्यस्य ब्रूहि नः ॥१४॥

घोर कहता है—हे महाभाग ब्रह्मपुत्र नारद! कृपया यह कहिये कि मेरे योद्धाओं में से कौन इस योग्य है, जो उस पर्वतकन्या (भगवती) को वश में करने के लिये दूतकर्म कर सके, कृपया कहिये।।१४।।

नारद उवाच

यतः शशाङ्कसम्पूर्णा विलाञ्छन इवाननाः। तां दृष्ट्वा मुनयः क्षोभं किं पुनरसुराधिपाः ॥१५॥
तथा त्वं सर्वसैन्येन एको वा विगतायुधः। व्रजस्व यत्र ताः कन्याः शैलराजसुतोत्तमाः ॥१६॥

देव ऋषि नारद कहते हैं—हे महाभाग! उस गिरिकन्या के निष्कलंक तथा पूर्ण चन्द्र के समान शोभायमान मुखमण्डल का दर्शन करने से मुनियों का मन भी क्षुब्ध हो जाता है, असुराधिपों की तो बात ही क्या है? अतः इस सन्दर्भ में किसी पर भी विश्वास न करके तुम स्वयं दैत्यों को साथ लेकर अथवा एकाकी अस्त्ररहित होकर वहाँ जाओ। जहाँ वे पर्वतपुत्री उत्तम कन्यागण निवास करती हैं।।१५-१६।।

दक्षिणा सार्वदैवत्यै पौर्णमास्यां समाययौ। सवाहनबलामात्यः सपुरोहितः सायुधः ॥१७॥
सुषेण कुरु हुङ्कारं देवल-विभु-दारुणैः। बाण-केशव-चामुण्ड-अनुह्लादमहाबलैः ॥१८॥
सामन्तप्रवरैर्योधैर्मङ्गलै राशिभिस्तथा। मुहूर्ते अभिजिन्नाम्नि मध्याह्ने त्यजते पुरम् ॥१९॥

नारद के इन वाक्यों को सुनकर युद्धोपयोगी अस्त्रों का संग्रह करके अश्वादि वाहन, पदाति सैन्य, पुरोहित तथा अमात्यवर्ग से परिवेष्टित होकर पूर्णिमा तिथि के भरणी नक्षत्र में घोर दैत्य ने यात्रा किया। उसने अपने प्रधान योद्धा सुषेण को हुंकार के साथ आदेश दिया। घोर दैत्य ने अपने अधीन राजाओं में से श्रेष्ठ देवल, विभु, दारुण, बाण, केशव, चामुण्ड, अनुह्लाद, महाबल नामक योद्धवर्ग के साथ मध्याह्न के समय अभिजित मुहूर्त में महल से निकला।।१७-१९।।

तस्य निर्गच्छतो वेणात् श्वानो वास्थिमुखोऽभवत्। ध्वजे रुरोह कापोतः शिवा श्यामा च दक्षिणा ॥२०॥
पिङ्गला रुरुगोधा च शूकरी कबलास्तथा। गज-वानर-सेनाज-शिखिच्छिवा च वामतः ॥२१॥
पन्थानं भिन्दते सर्पः कुम्भोदकं व्यशीर्य्यत। रुराव वानरो ऋक्षो मार्ज्जारो ह्यतिभैरवम् ॥२२॥
तैल-तक्र-तृण-केशमुण्डाभ्यक्तादि दर्शनम्। वान्तोन्मत्त-जड़-मूक-क्षुत्क्षाम-नक्रजं वरम् ॥२३॥
तुष कार्पाशलवणं निन्दितानाञ्च दर्शनम्। रक्ताम्बरधरं मुण्डं पङ्कामिषं तथा वसाम् ॥२४॥

उसकी यात्रा के समय वक्ष्यमाण सभी अशुभ लक्षण उपस्थित होने लगे। ध्वजाग्र पर कपोत आकर बैठ गया। दाहिनी ओर काला शृगाल, बाँयीं ओर पिङ्गलवर्ण मृग तथा गोसर्प, शूकरी, कवला, मयूरी, गजों का झुण्ड, वानरों का झुण्ड परिलक्षित होने लगा। सामने सर्प पथ रोककर खड़े हो गये। जलपूर्ण घड़ा अकस्मात् टूट गया। वानर-भालू-बिड़ाल अति भीषण शब्द करने लगे। मार्ग में गिरा तैल, मट्ठा, तृण, केश तथा अस्थिसमूह भी देखा गया। किसी-किसी स्थान पर कोई वमन कर रहा था, तो कहीं उन्मत्त, जड़, मूक व्यक्ति विचरण करते जा रहे थे। कहीं-कहीं भूसा, कपास, लवण आदि कुत्सित वस्तु परिलक्षित हो रहे थे। कहीं-कहीं पर रक्ताम्बरधारी, कहीं मुण्डित मस्तक, कहीं सर्वाङ्ग कीचड़ में लिपटे लोग परिलक्षित हो रहे थे। मार्ग में कहीं-कहीं मांस तथा चर्बी पड़ी हुई थी।।२०-२४।।

ललाटं शक्रजं चापमुल्कापाता ध्वजाननाः। दिशां दाहो महीकम्प सरजः कलुषं नभः ॥२५॥
निस्तेजास्तपते भानुर्नद्यः प्रतिमुखावहन्। उष्णोदकं महाकूपं दारुणं दीर्घकासु च।
अकालविकृतिः पुष्पफलानामभवत् तदा ॥२६॥

आकाश में ललाटाकृति इन्द्रधनुष का प्रकाश तथा भीषण उल्कापात होने लगा। कहीं-कहीं दिग्दाह तथा भूमिकम्प भी होने लगा। उस काल में पृथिवी की धूलराशि से आकाश ने कलुषभाव धारण कर लिया था। सूर्य का तेज मन्दीभूत हो गया। सभी नदियों का स्रोत प्रतिकूल प्रवाहित होने लगा। गहरे कूपों का जल भी उष्ण हो गया, तब पुष्प तथा फलों का असमय में ही रूपान्तरण भी हो रहा था।।२५-२६।।

शीत उष्ण विपर्य्यासा मेघनादाश्च दारुणाः। आरण्यसत्त्वा ग्रामेषु ग्रामजारण्यवासिनः ॥२७॥
कृष्णसर्पसमूहाश्च शशश्चलपिपीलिकाः। ध्वांक्षाणां महती सेना मृगाणाञ्च तथैव च ॥२८॥
एते च पुर प्राकारे निपतन्ति वसन्ति च। दुर्गन्धः शर्करो वायुर्दीना योधा हतप्रभाः ॥२९॥

शीत द्रव्य ने उष्ण द्रव्य के तथा उष्ण द्रव्य ने शीत द्रव्य के गुण को अंगीकृत कर लिया। मेघों का अतीव घोर कठोर शब्द होने लगा। वनवासी प्राणी ग्राम में तथा ग्रामवासी प्राणी वन में आश्रय लेने लगे। शृगाल-सर्प-शशक-चींटी तथा काक-मृग नगर के भीतर आकर इतस्ततः विचरण करते जा रहे थे। इनकी महती संख्या नगर में विचरण कर रही थी। वायु में दुर्गन्ध तथा भारीपन प्रतीत होने लगा। योद्धागण दुर्बलता का अनुभव करके हतश्री होने लगे।।२७-२९।।

शकृन्मूत्राश्रुपातानि गजा अश्वा प्रचक्रिरे। ध्वजच्छत्रपताकानां स्फुटनं दण्डभेदनम् ॥३०॥

सभी हाथी तथा अश्वगण विष्ठा एवं मूत्रत्याग के साथ अश्रुपात करने लगे। ध्वजा, छत्र, पताका अपने आश्रय वाले दण्ड से टूटने—अलग होने लगे।।३०।।

कलङ्कमसिचक्रेषु नार्हताद् दुन्दुभे रवः। ज्यातलत्रुटनं चापे नाराचानाञ्च कुण्ठता ॥३१॥
गदानां मुद्गराणाञ्च शीर्णतादाय भिन्नता। शुष्कप्ररोहणञ्चार्कः सार्द्रपातस्तथैव च ॥३२॥
प्रतिमारुदत् प्रस्वेदं मृतकानाञ्च जल्पनम्। गवां रासभसारोहः स्त्रीणाञ्च बह्वपत्यता ॥३३॥

तलवार तथा चक्र पर कलंककालिमा समधिक दृष्टिगोचर हो रही थी। दुन्दुभियों पर आघात करने पर भी उनसे वैसी ध्वनि नहीं उठ रही थी। युद्ध के साधन (अस्त्र) मुद्गर-गदा आदि का आकार शीर्ण हो गया। वे अल्प आघात से ही भग्न होने लगे। शुष्क बीज से अंकुर निकल रहे थे तथा सूर्यग्रहण अकस्मात् होने लगा। ज्या खींचने से धनुष टूट रहे थे। नाराच कुण्ठित होने लगे। देवप्रतिमाओं के अंगों पर पसीना झलक रहा था। गौ के गर्भ से गर्दभ उत्पन्न हो रहे थे। हाल में मरे लोगों की बातचीत सुनाई पड़ रही थी। नारीगण एक ही साथ (एक की जगह) अनेक सन्तान उत्पन्न कर रही थीं।।३१-३३।।

स्त्री सुते अविद्दागादि अजमृत सुशोभनम्। बालानां घातनं युद्धो निस्त्रिंशः सकलाः प्रजा ॥३४॥
मक्षिकादंशमडुका बहुशो नाश दर्शनम्। निस्तेजा दहने वह्निः सधूमः स्फुटते मुहुः ॥३५॥

बकरी की जगह अन्य (मादा पशु) से बकरे उत्पन्न हो रहे थे। ऐसे ही भेड़ी के स्थान पर अन्य मादा पशु भेड़ को जन्म दे रही थीं। शिशुगण की मृत्यु से युद्धकार्य सम्पन्न होने लगा। उच्च, निम्न तथा साधारण प्रजा भी निस्त्रिंश हो रही थी। मक्खी का डंक तथा मेढ़क का आकार वर्द्धित होता जा रहा था। अग्नि निःस्तेज होती जा रही थी, दाहकार्य उचित रूप से सम्पन्न नहीं हो रहा था। वह धूआँ उगलते हुये बुझ जाती थी।।३४-३५।।

एवंविधास्तथोत्पाता दृष्टा घोरेण वासव। पप्रच्छ नारदं सोऽपि किमेतच्च कृतं द्विज ॥३६॥

हे देवराज! घोरासुर ने यात्राकाल में इन अशुभ उत्पातसमूह का अवलोकन करके नारद से पूछा—हे द्विजश्रेष्ठ! यह सब जो अस्वाभाविक देख रहा हूँ, इसका कारण क्या है।।३६।।

नारद उवाच

शैलराजः क्षितिधारीः वासवांशः शिवात्मकः। देवानां ता स्त्रियः कन्याः ह्रियतामसुराधिप ॥३७॥
साग्निदेवगणास्तत्र तेनेदमाकुलं जगत्। प्रयाहि मात्रं त्वं तिष्ठ कालो हि बहुदोषकृत् ॥३८॥

देवऋषि नारद कहते हैं—पृथिवी-स्थित गिरिराज विन्ध्य इन्द्र का अंश है। उसपर शिव निवास करते हैं। कतिपय देवताओं की लक्ष्मीरूपा कन्यागण वहाँ स्थित हैं। अग्निप्रभृति देवगण भी वहाँ हैं। तभी जगत् आकुलीकृत हो रहा है। वहाँ शीघ्र जाओ। यहाँ न रहो। कालविलम्ब में अनेक दोष है।।३६।।

तदा स नारदेनोक्तः प्रययौ शीघ्रगामिभिः। विन्ध्याचलस्य रसना नर्म्मदा यत्र निम्नगा ॥३९॥
यत्र सा वीचिकल्लोल-कलगीत-महोत्सुका। मत्तमातंगसंघृष्टतरु-पर्व्वत-संकुला ॥४०॥
यत्र कुररकारंडचक्रवाकोपशोभिता। यत्र बर्हिण पारीन्द्रकलहंसोपनादिता ॥४१॥
राजहंसमहावातकालकेलीवटिट्टिभैः। पारावातशुकसिद्धिसारिकैरुपपाटिभिः ॥४२॥
नक्रं मत्स्यमहाग्राहमकराकुलचोदका। भ्रमरीशविचर्म्मारकलसैरन्द्रिवल्लिका ॥४३॥
कालपट्टमहासेनपाठीनझषरोहिताः। गह्वराः सिंहतुण्डो राजीवाः जलजातयः ॥४४॥
तत्र गत्वा महाबाहो घोरसेनावतिष्ठत। यत्रासौ भूधरेन्द्राणां विन्ध्यो नाम महागिरिः ॥४५॥

तब नारद से यह संवाद सुनकर घोरासुर अत्यन्त शीघ्रगामी अनुचर के साथ विन्ध्याचल गया। जिस स्थान में नर्मदा नदी तरंगावली की कल-कल ध्वनि का गीत निनादित होकर सामान्य लोगों का कौतुकवर्द्धन करके विन्ध्यगिरि की काञ्ची के रूप में विराजित है, उस नर्मदा से सन्निहित पर्वतों की वृक्षावली में हस्तिगण अपने मस्तक घिसते रहते हैं, जहाँ कुरव, कारण्डव, चक्रवाक प्रभृति पक्षीगण विचरण करते हैं तथा मयूर, पारीन्द्र, कलहंस, महावात की कालकेली गूंजती है। जहाँ टिट्टिभ, पारावत, शुक, सिद्धि, सारिका तथा उपपाटि आदि पक्षीगण नित्य मधुर कूजन करते हैं तथा जिस नर्मदा के जल में कुम्भीर, महाग्राह, मकर, भ्रमरीश, विचर्मार, कलस, इन्द्रिवल्लिका, कालपट, महासेन आदि जलचर जन्तु तथा पाठीन रोहितादि मछलियाँ निवास करती हैं तथा जिसमें गर्गर, सिंहतुण्ड, राजीवादि जलजन्तु अधिक परिमाण में हैं। हे महाबाहो। घोर सेनासमूह ने विन्ध्याचल के उस प्रदेश में अवस्थान किया।।३९-४५।।

यत्र दारित-मातङ्ग-केशरी-नख-मुक्तिभिः। यत्र शूकरसंघस्य शूकराश्च भयप्रदाः ॥४६॥
खड्गि-द्वीपि-महागण्डैः रुरू-महिष-शल्यकैः। तरक्षु-ऋक्षशार्दूलैः शाखामृग-महामृगैः ॥४७॥
कृष्णसारैः सदाचारैश्चरद्भिः स्वेच्छयान्वितैः। मुनिदारकसंशक्तं सततं समिधानने ॥४८॥

अब पर्वतराज विन्ध्य के सम्बन्ध में वर्णन करता हूँ, सुनो। जहाँ सिंहों के नखाघात से विदारित हस्तिगण के गण्डस्थल से च्युत गजमुक्ता विराजित है, जहाँ शूकरश्रेणी के शूकर ही अभय प्रदान करते है अर्थात् प्राणियों में हिंसाभाव नहीं है तथा जहाँ हाथी, गैंड़े, महागण्डक, रुरु, महिष, शल्लक, तरक्षु, ऋक्ष, शार्दूल, वानर, शृगाल तथा कृष्णसारगण विश्वस्त तथा हिंसाशून्य हृदय से विचरण करते हैं; वहीं मुनिगण के बालक सर्वथा समिध आदि यज्ञोपकरण का संग्रह करने में व्यस्त रहते हैं।।४६-४८।।

पुष्पपत्रफलाहारा कन्दमूलफलाशनाः। वाद्यम्बुकणशाकान्नपक्वमांससमाशनाः ॥४९॥
वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञास्तत् क्रियाध्यानतत्पराः। योगाभ्यासरता नित्यं शिव-विष्णु-परायणाः ॥५०॥
अनेकशाखशाखान्ता निवसन्ति तपोऽर्थिनः। वेणुसम्भवसन्तानसम्भूता बर्ब्बरा वराः ॥५१॥
पुलिन्दाः शबरातङ्काः कपालिम्लेच्छजातयः। कन्दमूलफलाहाराः यत्र वल्कलधारिणः ॥५२॥
गुञ्जाभरणकुष्माङ्गा मालाहारावलम्बिनः। शतपत्र-कृता वोढा शुक-पिच्छविभूषणाः ॥५३॥

जहाँ वेद-वेदाङ्ग के स्वरूपविद् तथा तदनुसार कर्म का अनुष्ठान करने वाले चतुर्वेद की असंख्य शाखा के आलोचक हरि-हर के उपासक तपस्वीगण नित्य वास करके कभी पुष्प, पत्र, फल तो कभी कन्द-मूल-फलमात्र का भोजन करके नित्य योगाभ्यास करते हैं तथा जो विन्ध्याचल में रेणुजातीय असभ्य बर्बरगण एवं म्लेच्छजातीय पुलिन्द, शबर, तङ्क तथा कापालिकगण वल्कल पहनकर कन्द-मूल तथा फलमात्र का भोजन करके निवास करते हैं। वे अपनी कृष्णवर्ण देह को गुञ्जाफल तथा मालाहार से भूषित रखते हैं तो कभी पद्मपुष्प किंवा शुकपुच्छ से अलंकृत रहते हैं।।४९-५३।।

धातु-मण्डित-सर्वाङ्गा नित्यं मुदित-मानसाः । कान्ताङ्गक्रीडनासक्ताः करिकुम्भकरच्छिदः ॥५४॥
निस्त्रिंशप्रसाशतृष्टिदण्डमुद्गरधारिणः । वसन्ति यत्र मातङ्गाः संघशो दन्तधारिणः ॥५५॥
गृहेषु कृतसंस्काराः शाखिच्छायाकृतेषु च । अशोकचूतबकुलमाधवीधनवेणुषु ॥५६॥
अरिष्टविष्टकपीलुतमालार्ज्जुनपादपैः । प्रणष्टसूर्य्यसन्तापाः शालतालैः नभस्पृशैः ॥५७॥
इंगुदोदुम्बरखर्ज्जूरैः मातुलुङ्गैः सदाड़िमैः । फलैस्तृप्तिं प्रपद्यन्ते बाला मातङ्गजातयः ॥५८॥
पतङ्गकरसंघातछादिताश्च सुपूजिताः । वसन्ति यत्र नीरौघमुचः संवर्त्तकादयः ॥५९॥
अथ तस्मिन् महाशैले घोराणीकावतस्थिरे । हयेन रथपादातं बहुधा समावसत ॥६०॥

कभी वे अपनी देह धातु मण्डित करते (धातुराग से रंजित करते) हैं तथा हाथियों के मस्तक एवं शुण्ड का भेदन करके असीम आनन्द पाते हैं और प्रमदागण के (स्त्रीगण के) अंगों से क्रीड़ा करते हैं। तदनन्तर हाथियों का झुण्ड कीचड़ से सुसज्जित होकर अपने आश्रम में लगे अशोक, बकुल, आम, माधवी, धव, रेणु प्रभृति वृक्षों की छाया में आकर दाँतों पर दाँत रखकर स्थित रहते हैं। जहाँ हाथी के शावकगण भी गगनस्पर्शी अरिष्ट, विष्टक, पीलु, तमाल, अर्जुन, शाल तथा ताल की छाया में बैठकर सूर्य की धूप के सन्ताप को दूर करते हैं व इङ्गुद, उडुम्बर, खजूर, मातुलुङ्ग तथा अनार के मीठे फल का भक्षण करके असीम सन्तोष प्राप्त करते हैं। जहाँ सूर्य की किरणें सादर सेवित होती हैं तथा संवर्त्तक आदि मेघगण जल से परिपूर्ण होकर नित्य उमड़ते रहते हैं, ऐसे विन्ध्यगिरि पर गज, अश्व, रथ, पदातिरूप चतुरंग बल से बलवान होकर घोर की सेना नाना प्रकारेण अवस्थित हो गयी।।५४-६०।।

वाद्यचिह्नरवोद्घुष्टा नग्नवृन्दप्रपीडिभिः । अजायत महानादः सहसा गिरिपूरकः ॥६१॥
कन्दरेषु विचित्रेषु नादाः प्रतीमुखाहताः । मृगेन्द्रतोषजनकाः कपिसैन्यानुवर्तिनी ॥६२॥

तब उस सेना में वादकों द्वारा बजाये गये वाद्यों की ध्वनि से तथा उद्घोषित असंख्य जयध्वनि से वह पर्वत परिपूर्ण हो गया तथा यह सब ध्वनि वहाँ की विचित्र गुफाओं से टकराकर (प्रतिध्वनि में) सिंहों में सन्तोष तथा वानरों में भय उत्पन्न करने लगी। तब देवी ने असुरसैन्य की इस जयध्वनि को सुनकर सुराध्यक्ष इन्द्र की वासना पूर्ण करने के लिये देवसैन्य की अनुगामिनी होकर प्रसन्न चित्त से बाहर पदार्पण किया।।६१-६२।।

प्रनिर्गता प्रहृष्टात्मा वासवाय वरप्रदा । विचित्रदामशोभाढ्या बालाभरणभूषिता ॥६३॥
अक्रीडत सा बालाभिः कन्यकाभिः समागता । मार्कण्डऋषयावासं पापौघतमनाशनम् ॥६४॥

तब वे विचित्र माला तथा नाना आभूषणों से विभूषिता होकर वामिका रूप से बालिकाओं के साथ क्रीड़ा करने लगीं तथा मुनिगण की अभीष्टप्रदा भगवती खेलते-खेलते क्रमशः मार्कण्डेय ऋषि के परम पवित्र आश्रम में उपस्थित हो गयीं।।६३-६४।।

तत्र तामागतां दृष्ट्वा मुनीनां सर्वसिद्धिदाम् । घोराहरप्रवृत्त्यर्थं देव्या हेतोः समागता ॥६५॥
दानवापि तदा कृष्टाः कालपाशेन वासव । शैलेन्द्रं बोधयामासुः भास्वराद्या महाभटाः ॥६६॥
अजपादे तथा ऋक्षे दानवस्य वरुथिनी । स चाश्विनप्रथमाहे गिरीन्द्रमवरोहयेत् ॥६७॥
तदा दुर्म्मुखनामानं महाबल-पराक्रमम् । अग्रगः सर्वसैन्यस्य प्रददौ स तु दानवः ॥६८॥
तत्रैव विजया देवी क्रीडनाय समागता । स च तां प्रेक्ष्य दैत्येन्द्रः कामविह्वलचेतनः ॥६९॥

हे देवराज! देवी के साथ युद्ध में घोरासुर की बलवृद्धि हेतु समागत असुरपक्षीय लोग भास्वरप्रभृति प्रधान योद्धागण विविध अस्त्रों को धारण करके असंख्य हुङ्कार से विन्ध्याचल को प्रबोधित करने लगे तथा असुर सेनावालों ने आश्विन मास

के पहले दिन पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में दुर्मुख नामक प्रधान महाबली स्वपक्षीय महायोद्धा को अपना नायक बनाकर पर्वत पर भेजा। वहाँ पहले से ही विजया देवी अपनी समवयस्का कन्याओं के साथ क्रीडार्थ आई थीं। दैत्यनायक दुर्मुख उनको देखकर कामविह्वलचित्त हो गया।।६५-६९।।

करं प्रसारयेद् देव्या देवी तमवलोक्य च। गतासुश्च स दुष्टात्मा पपात धरणीतले ॥७०॥
संध्यायां विजया गत्वा कारणाय निवेदयेत्। आगतो दानवो देवि मया स धरणोत्सुकः ॥७१॥
यावत् क्रुद्ध्वा प्रपश्यामि तावत्स विगतासवः। तत् श्रुत्वा चिन्तयेद् देवी घोरो ह्यत्र समागतः ॥७२॥
घातनीयो मया दुष्टः पूर्वं शापेन शापितः। घोरोऽपि स्वप्नान् पश्येत् निशान्ते शृणु वासव ॥७३॥

दैत्यनायक ने उनको देखकर कामपरवश होकर (उनको पकड़ने हेतु) हाथ बढ़ाया। देवी ने उसका अविधि आचरण देखकर जैसे ही उसकी ओर देखा, तभी वह दैत्य दुर्मुख अपना पापी प्राण खोकर भूतल पर गिर पड़ा। तब विजया देवी मूल कारण सन्ध्यादेवी के पास जाकर यह घटना बतलाकर कहने लगीं—हे देवि! एक दानव कामवशीभूत होकर मुझ पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा। मैंने कुपित होकर उसे देखा, तभी वह मृत हो गया। भगवती सन्ध्यादेवी ने यह सुनकर विचार किया कि यहाँ घोरासुर आ गया है। यह दुष्ट पूर्वपापों के अनुसार मेरे द्वारा ही वध्य है। यह विचार करके भगवती इस विषय में उद्योगरत हो गयीं। वह दुष्ट मेरे ही शाप से शापित है, देवी ने यह भी चिन्तन किया। हे इन्द्र! उधर रात्रि के अन्त में घोर ने भी एक स्वप्न देखा, उसे सुनो।।७०-७३।।

अभ्यङ्गा कटुतैलेन रक्ताम्बरविभूषितः। कुरूंडकुसुमामोदपुष्पमालाभिमालितः ॥७४॥
उद्वाहकरणं प्रेक्ष्य पक्वमत्स्यामिषाणि च। नृत्यन्ते दानवाः सर्वे कृष्णवस्त्रविभूषणाः ॥७५॥

घोरासुर ने कटु तैल सर्वाङ्ग में मलकर लाल रंग के कपड़ों को पहनकर कुलत्थपुष्पों की दुर्गन्धित पुष्पमाला से भूषित होकर स्वयं को विवाहार्थ सज्जित किया। उसकी यह विवाहसज्जा देखकर पंक तथा कीचड़ आदि में मत्स्यगण नृत्य करने लगे। बहुसंख्यक दानव कृष्ण वस्त्र, कृष्ण लौह आभूषण, कृष्णवर्ण पुष्पमाला तथा कृष्णगन्ध से विभूषित होकर कृष्णवर्णी नारियों के साथ दैत्यों के बीच नृत्य करने लगे।।७४-७५।।

कृष्णायसाः सालङ्काराः कृष्णस्रग्गन्ध्यचर्च्चिताः। कृष्णाम्बरधरस्त्रीभिः सर्वदैत्यावगूहिताः ॥७६॥
ऊष्ट्रारुढ़ैस्तथा पुम्भिः पाशदण्डोद्यतैर्महान्। नीयते ह्यवशाः सर्वे तुषकेशास्थिसंकुलैः ॥७७॥
तमोऽन्धकारे कान्तारे पङ्ककूपगताः परे। शृगालैः श्वभिर्भक्ष्यन्ते ह्यपरे विगतासवः ॥७८॥
अपरे वायसैर्गृध्रैस्तरक्षैर्वानरैः परैः। एवंविधैर्महासत्त्वैः महासैन्यानुपाद्रुतान् ॥७९॥
दृष्ट्वा क्षुभितो घोरश्छर्दिं मूर्च्छादिविह्वलः। पपात शिखरारूढ़स्ततो भैरवरूपिणी ॥८०॥

तभी कुछ तुष, केश तथा अस्थियों के साथ अपने सभी अवयवों में पाश तथा दण्डधारी पुरुष ऊँटों पर बैठकर उपस्थित हो गये। वे उन नाचने वालों को अन्धेरे वन में तथा कुछ को कीचड़भरे कूप में फेंकने लगे। उनमें से किसी-किसी ने प्राण भी त्याग दिये तथा उनका शरीर शृङ्गाल-कुत्ते का खाद्य बन गया। किसी का भक्षण काक, तरक्षु, वानर प्रभृति करने लगे। घोरासुर अपनी सेना में इन सब प्राणियों के इस विशिष्ट उपद्रव को देख नितान्त क्षुब्ध हो गया तथा भयग्रस्त होकर मूत्र तथा पसीना त्याग करते-करते पर्वतशिखर पर गिर गया।।७६-८०।।

जवापुष्पकृता शोभा गर्दभारूढ़वाहना। अस्थिमालालसद्ग्रीवा महाशूकरानना ॥८१॥
निर्मांसा केकराक्षी क्रुद्धकेशा भयङ्करी। आगत्य सहसा नारी पाशांकुशकरोद्यता ॥८२॥

घूम्रायमाणा च तथा गृहीतोऽयं निरायुधः। याम्याय तथा नीतः अनन्तपथदेवलः।
एवं दृष्ट्वा तदा घोरः प्रबुद्धः शर्वरीक्षये ॥८३॥

इत्याद्ये श्रीदेवीपुराणे घोरवधे स्वप्नदर्शनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः

हे इन्द्र! तदनन्तर भैरवरूपिणी एक नारी जवाकुसुम से सजी, अस्थिमाला पहने गर्दभ पर सवार वहाँ उपस्थित हो गयीं। उसका मुख शूकर के समान विस्तृत था। नयनद्वय में मांस का लेश भी नहीं था। अतः उसमें नितान्त दारुणभाव टपक रहा था। केशसमूह खड़े थे, हाथ में पाश तथा अंकुश स्थित था। उन्होंने वहाँ आकर अस्त्ररहित घोरसुर को लिया और दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार से घोरासुर ने यह देखकर सभी बातों को प्रत्यक्ष करने के लिये व्यग्र हो उठा था।।८१-८३।।

त्रयोदश अध्याय समाप्त

●

चतुर्दशोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

एवंविधैस्तथा स्वप्नैः दृष्टे घोरेण पद्मज। प्रभाते किमभवत्तस्य शुभं वाप्यथवाशुभम् ॥१॥
किं वा सा वाहिनी तस्य तथा मन्त्रिपुरोहितौ। चकार तत्समाख्याहि कौतूहलपरा वयम् ॥२॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे पद्मलोचन! घोरासुर ने इस प्रकार से दुःस्वप्न देखकर कहा कि मन्त्रीगण को बुलाओ। प्रातःकाल शुभ हुआ अथवा अशुभ, वह कहिये तथा तब उसकी सेवा, पुरोहित एवं अमात्यगण ने क्या किया, यह मुझसे कहिये। इसे जानने का अत्यन्त कुतूहल है।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

शृणु वासव तत्त्वेन वदतो ह्यखिलं मम। उत्थाय स तदा वीरो देवमन्त्रमनुस्मरन् ॥३॥
तावन्नष्टाः स्मृतिस्तस्य महामोहविमोहितः। प्रतीक्ष्य वासरात्पञ्च तावत्कालः समागतः ॥४॥
तेन श्रुत्वा हतं वीरं दुर्मुखमरिसूदनम्। शैलराजेन्द्रकन्याया विना कोपान्निरायुधः ॥५॥
ततः स कालकालेन प्रेरितो वदतेऽसुरान् ॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवराज! मैं सभी का विस्तार से वर्णन करता हूँ, सुनो। वह घोर दैत्य प्रभात में उठा तथा देवता एवं देवियों के मन्त्रचिन्तन का प्रयास करने लगा, किन्तु उसकी स्मरणशक्ति महामोह से आच्छन्न होकर विलुप्त हो गई थी। ऐसे ही पाँच दिन व्यतीत होने पर उसके समक्ष उसके पक्ष का ही कालनामक दैत्य उपस्थित हुआ। दैत्यराज घोर ने (इस बीच) वीर शत्रुहन्ता दुर्मुख के निधन का भी समाचार प्राप्त कर लिया था, लेकिन इस पर भी घोर दैत्य शैलराज कन्या (विजया) के प्रति कोई क्रोध प्रकट किये विना अस्त्रपरिहारपूर्वक मानो मृत्यु से प्रेरित होकर असुरों से कहने लगा।।३-६।।

काल उवाच

तया निपातितो वीरो दुर्मुखो ह्यरिमर्दनः। तां कन्यां कुत्र पश्यामि तन्नो वदत सुव्रताः।
यदि पर्वतराजेन्द्रो रक्षते सह शम्भुना ॥७॥
तथापि प्रत्यनिघ्नामि यदि वा केशवो भवेत्। इत्युक्त्वा तदा कालः पूर्णकालो महाबलः ॥८॥

निवारितः सुषेणेन मन्त्रिणा न च संस्थितः। कालभैरवचामुंडापिङ्गलाक्षा महासुराः ॥९॥
आरूह्य पर्वतं वीरास्तर्जयंस्तां च कन्यकाम्। तान् दृष्ट्वा उष्ट्रारूढ़ान् केचित्स्यन्दनसंस्थिताः ॥१०॥

काल कहता है—हे सुव्रतगण! शत्रुहन्ता दुर्मुख का जिसने वध किया है, वह कहाँ मिलेगी, यह मुझे बतलाओ। यदि स्वयं पर्वतराज भी शम्भु के साथ मिलकर उसकी रक्षा कर रहे हैं अथवा स्वयं नारायण भी उसके रक्षक हैं तथापि आज उसका विनाश करूँगा। महाबली कालासुर ने यह कहकर वहाँ से प्रस्थान किया। आयु समाप्त होने के कारण उसने मन्त्री सुषेण के रोकने के प्रयास को भी अमान्य कर दिया। उसके पीछे कालभैरव, चामुण्ड, पिङ्गलाक्ष प्रभृति प्रधान वीर असुरगण भी पर्वतारोहण करते करते कन्याओं के प्रति क्रोधपूर्ण वाक्य कहने लगे। उधर जयादेवी ने कुछ असुरों को ऊँट पर तथा कुछ को रथारूढ देखा।।७-१०।।

जया च अश्वमारोहद् गजमिव महाबलम्। कृपाण पाणिनी तर्ज्य तदा कालं महाबलम् ॥११॥
मायारूपं सुरास्त्रज्ञं युद्धशास्त्रविशारदम्। मायोत्थं निर्म्ममे सिंहं गजराजभयङ्करम् ॥१२॥
महिषं च महाघोरं यमस्य इव वाहनम्। भैरवं तं समास्थाय विजयामभिमर्दयेत् ॥१३॥

युद्धशास्त्र में पारङ्गत तथा विशेष निपुण महाबली कालासुर को मायावी जानकर देवी ने अपने वाहन हाथी-अश्वादि को छोड़कर स्वयं तलवार धारण किया। तब अपनी माया के प्रभाव से युद्धविशारद काल ने हाथियों के लिये भी भयप्रद एक सिंह का तथा यम के दूसरे वाहन की तरह एक महिष का निर्माण किया। वह भैरव को उस विजय नामक सिंह पर बैठाकर शत्रु-विध्वंस कार्य में तत्पर हो गया।।११-१३।।

यमान्तकस्तथा रौद्रं विभुं प्रह्लाददुन्दुभिः। अजितां मृगमारूढ़ां मर्दयेत् सहसा तदा ॥१४॥
वामनैर्दुष्टलोभाक्षैर्हालाहलभयङ्करैः। दशधा वेष्टिता देवी या सा नाम्नापराजिता ॥१५॥
दशधा शतधा चैव तथायुताथलक्षधा। निगूढजंतवः शक्र देवाः पश्यन्ति शङ्किताः ॥१६॥

तब देवी अजिता स्वयं मृग पर आरूढ़ होकर यमान्तक, रौद्र, विभु, प्रह्लाद तथा दुन्दुभि आदि प्रधान अनुचरों के साथ सहसा शत्रुमर्दनार्थ तत्पर हो गयीं। तभी वे अपराजिता देवी वामन, दुष्ट लोभाक्ष, हालाहल, भयङ्कर आदि से दशो ओर से वेष्टित हो गयीं। हे देवराज! तभी चारो ओर से असंख्य जीव गोपनीयता से, यहाँ तक कि देवगण भी नितान्त शंकित होकर इस युद्ध का अवलोकन करने लगे।।१४-१६।।

ततः कर्णिक-नाराच-भुसुण्डिमुद्गरैस्तथा। ववर्ष दानवी सेना देवीनां सहसोपरि ॥१७॥
तदा जया तु संक्रुद्धा शरपातेन पीडिता। प्रासं प्रक्षेपयेत्काले तस्याः सिंहनिपातनम् ॥१८॥

तब दैत्यसेना की ओर से देवीगण पर कर्णिक, नाराच, भुसुण्डी, मुद्गर आदि अमोघ अस्त्र का वर्षण किया जाने लगा। यह अलक्षित भाव से किया जा रहा था, जिससे इस शरपात से देवीगण पीड़ित हो गईं। तब उन्होंने क्रोधित होकर काल दैत्य के वाहन सिंह को मारने के लिये प्रास अस्त्र का प्रयोग किया।।१७-१८।।

तं प्रासघाताहतछिन्नबन्धं निस्त्रिंशमादाय तदा तु कालः।
चर्म्मेण वामं भुज पूरयित्वा जयामुखोऽधावत क्रुद्धकोपात् ॥१९॥

इसके आघात से छिन्नबन्ध हो जाने पर काल नितान्त आहत होकर क्रोधान्ध होता हुआ वाम हस्त में चर्म तथा दाहिने हस्त में खड्ग लेकर महादेवी जया की ओर दौड़ पड़ा।।१९।।

दृष्ट्वा तु कालं सहसा पतन्तं कृपाणपाणिं सुविवृद्धमन्युम् ।
जया मुमोचोपरि तस्य शक्तिं कृपाणघातादपि तां जघान ॥२०॥
शक्तिं हतां पश्य तदा जया तु नाराचधाराजलवारिवाहैः ।
कालस्य सेनोपरि सा ववर्ष कालोऽपि भिन्नः शतवारणघातैः ॥२१॥
स देविघाताहत भूनिषण्णो लब्ध्वा तु चेष्टां सुविस्रब्धचेता ।
आदाय वज्राशनिवज्रकोपः खुरं प्रमुमोच सुतीक्ष्णधारम् ॥२२॥
तमापतन्तं तु देवी शरेभ्यश्चिच्छेद यान्यान्यपि तस्य मोच ।

उधर जयादेवी ने काल को कुपित होकर अपनी ओर धावमान देखकर उस पर शक्ति अस्त्र को छोड़ा; लेकिन काल ने उस शक्ति को खड्ग से व्यर्थ कर दिया। जयादेवी ने अपनी शक्ति को व्यर्थ जाते देखकर काल की सेना पर मेघवृष्टि के समान अस्त्रवृष्टि प्रारम्भ कर दिया। काल पर भी असंख्य शरों का प्रहार किया। इससे काल दैत्य कुछ क्षण भूमि पर अचेत होकर पतित हो गया था। कुछ क्षण पश्चात् चेतना लौटने पर काल दैत्य ने चित्त को स्थिर किया तथा देवी पर तीक्ष्ण धार वाले क्षुरास्त्र का प्रयोग किया। देवी ने इस अस्त्र को अपनी ओर आते देखकर उसका छेदन बाणों के प्रयोग से कर दिया। तदनन्तर देवी काल दैत्य पर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगीं तथा उसकी सेना पर भी बाणों का वर्षण कर रही थीं।।२०-२१।।

एकेन यानमपरेण अश्वानन्येन छत्रं सपताकदण्डम् ॥२३॥
चिच्छेद सा काल महाबलस्य देवीं शरैस्तस्य विवृद्धमन्युः ।
तथापि कालो गदतां मुमोच देवीमुखो धावति सम्प्रवृत्तः ॥२४॥
चक्रेण तं कालभटस्य तं तं देवी विमुक्तेन गता स्वभूमौ ।
कालं हतं भैरव सन्निरीक्ष्य निषण्णमृत्युः स विवृद्धमन्युः ॥२५॥

तदनन्तर देवी ने अतीव कुपित होकर एक बाण से उस महाबली काल का रथ, एक अन्य बाण से अश्व, एक और बाण से छत्र-दण्ड को गिरा दिया। कालासुर इस प्रकार से सहायतारहित होकर गदा लेकर देवी की ओर दौड़ा। देवी ने उसे अपनी ओर आते देखकर उस पर चक्र छोड़ा। उससे कालदैत्य पंचत्व (मृत्यु) प्राप्त करके भूतल पर पतित हो गया। उसे मरा देखकर भैरव दैत्य नितान्त विषण्ण हो गया तथा क्रोधित हो गया।।२३-२५।।

गदां समादाय जयां प्रवृत्तः खुरप्रघातादपि सो गतायुः ।
एवं स कालो हतभैरवश्च चामुण्डपिंगाक्षमहाबलश्च ॥२६॥
मायाविनो मत्तमतङ्गरूपा देव्या समासाद्य ज्वलन्तकोपाः ।
ते देवि वाणाशनि भिन्नरक्षा गतासवः प्रेतपथं प्रयाताः ॥२७॥

वह गदा लेकर देवी की ओर धावित हो गया। देवी के क्षुरास्त्र के प्रयोग से वह भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। काल तथा भैरव को गतप्राण देखकर इसी प्रकार से चामुण्ड, पिङ्गाख्य प्रभृति मायावी मत्तगज के समान महाबली दैत्य क्रोध में भरकर देवी के साथ युद्ध करने लगे। देवी के प्रहार से पहले तो उनकी रक्षासामग्री का नाश हो गया; तदनन्तर वे भी अपना प्राण खोकर यमलोक सिधार गये।।२६-२७।।

एवं हते कालबले अशेषे देवा मुमोचोपरि पुष्पवृष्टिम् ।
मेघाश्च शीतोज्ज्वलवारिविन्दून् वाता ववाहापि दिव्यगन्धाः ॥२८॥
नृत्यन्ति विद्याधर-सिद्ध-संघा महाप्सरा-किन्नर-चारणाश्च ॥२९॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे कालवधोनाम चतुर्दशोऽध्यायः

इस प्रकार से समस्त कालसैन्य के निहत हो जाने पर देवगण स्वर्ग से पुष्पवर्षा करने लगे। चारो ओर से मेघ भी शीतल जलविन्दु का वर्षण करने लगे। चतुर्दिक सुगन्धित वायु बहने लगी। अन्तरीक्षवासी भी नृत्य करने लगे।।२७-२९।।

चतुर्दश अध्याय समाप्त

●

पञ्चदशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हते काले कालबलप्रभावे सुहृष्टदेवाः सह वासवेन।
घोरस्य पत्नी विमना विषण्णा दृष्ट्वा तु शक्र स्तुवते तु देवीम् ॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—कालशक्ति के अनुसार कालासुर का वध होने पर इन्द्रादि देवता वास्तव में आनन्दित हो गये; लेकिन घोर दैत्य की पत्नी को विमना देखकर इन्द्र ने देवी की स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१।।

शक्र उवाच

जय जय सुराणां परित्राणभूते महाहरे सङ्गरसुप्रतापे।
समस्त भीतान् परिरक्षणाय त्वां देवीं मुक्त्वा अपरो न चास्ति॥२॥
महाबलं घोरबलं प्रधानं यमस्य वह्नेरपि सञ्चितारम्।
वयं सब्रह्मणः सवायुयक्षास्त्वया पुनर्देवि दिवं निविष्टाः ॥३॥
सर्वेऽपि भीता भवतीं प्रणम्य भयेभ्य मुञ्चन्त्यविचारणेन।
महार्णवे सिंह-गजाभिभूतास्त्वामाश्रिता वीतभया भवन्ति ॥४॥

इन्द्र कहते हैं—हे देवि! आप देवताओं की एकमात्र रक्षक हैं और इस भयंकर युद्ध में आपका ही प्रताप लक्षित होता है। आपके अतिरिक्त किसी का भी सामर्थ्य नहीं है, जो भयभीत व्यक्ति का त्राण कर सके। इसी कारण आप सतत् जययुक्ता हैं। हे देवि! ब्रह्मा-मुझ-वायु-यक्षप्रभृति को एवं समस्त देवताओं को आप ही स्वर्ग में निवास का अधिकार देती हैं। अभी भी अग्नि-यम-प्रभृति देवताओं को पराजित करने वाला इस प्रबल पराक्रमी घोर दैत्य की सेना को देखकर हम सभी अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं। अतः हम आपको प्रणाम करके प्रार्थना करते हैं कि आप हम सबको भय से मुक्त करिये। इस (संसाररूपी) महार्णव में सिंह गजादि हिंस्र प्राणियों से नितान्त आक्रान्त होकर भी जीवगण आपका आश्रय लेकर भयरहित हो जाते हैं।।२-४।।

ज्वालौघकालानलसम्प्रवृद्धं यं ब्रह्मविष्णोरपि मोहकर्त्ता।
तं प्रेक्ष्य देवी सहसा महान्तं समं गतं प्रावृषिणेव पांशु ॥५॥
यं दुन्दुभिः ब्रह्मजनार्दनैश्च न निर्ज्जितं भास्करवायुयक्षैः।
जले सरक्षैः सहसा विभेति तं देवी दृष्ट्वा भस्मीप्रयातम् ॥६॥

हे देवि! महाप्रलयकालीन महासंहाराग्नि की शिखा के समान वृद्धिङ्गत इस असुरसेना को देखकर ब्रह्मा-विष्णु-चन्द्र-यम भी जिसे पराजित नहीं कर सके तथा वायु-वरुण-सूर्य-यक्ष तथा (देवपक्षीय राक्षस) राक्षसगण जिसे देखकर भयभीत रहते थे, उस सेना को आपने अकेले दृष्टिमात्र से पृथिवी की धूल के समान कर दिया। आपने उस दैत्य दुष्ट बुद्धि दुर्मुख को दृष्टिमात्र से ही भस्मीभूत कर दिया।।५-६।।

त्वं भूमि वायु ख जल हुताशं दिशो दिवं सागर ऋक्षचक्रम्।
यां सर्वदेवाः सततं नमन्ति तां देवदेवीं शरणं व्रजामि ॥७॥
यां ध्यानयोगैरपि योगशक्त्या ध्यायन्ति नित्यं परतत्त्वदेवीम्।
वेदान्तवादी सततं च कृत्स्नां यां याजिनो नित्यमश्वेषु यज्वाः ॥८॥
यां सांख्ययोगैः सपतञ्जलाख्यैः सिद्धान्तमन्त्रैरपि मन्त्रवादी।
या डाकिनी भूतग्रहैः प्रशस्तान् सत्त्वान् समस्तानपि मोचयेति ॥९॥
न चादिरस्य न च मध्यमन्तं न रूपकान्तिर्न च स्तोत्रमन्यत्।
यां शङ्करः सर्वगतोऽपि स्तौति तां देवदेवीं शरणं प्रपद्ये ॥१०॥

हे देवि! आप ही भूमि-वायु-आकाश-जल-अग्नि-दशो दिशा-स्वर्ग-सागर-नक्षत्रमण्डल हैं। कुछ भी आपसे अलग नहीं है। सभी आप ही हैं। हे देवि! समस्त देवता जिसका प्रत्येक क्षण ध्यानयोग से चिन्तन करते हैं, वक्ता जिसे सर्वस्वरूपा मानते हैं, याज्ञिकगण जिन्हें नित्य योग के याजकरूप में स्वीकार करते हैं तथा जो प्रणत भक्तों की भूत-डाकिनी तथा ग्रहों से नितान्त आक्रान्त होने पर तथा प्रबल लोगों द्वारा विपदाग्रस्त करने पर रक्षा करती हैं, जिनका आदि मध्य-अन्त नहीं है, रूप-कान्ति नहीं है, जिनके समान, योग्य कोई स्तव ही नहीं है तथा सर्वव्यापी देवाधिदेव तक जिनकी स्तुति करते हैं, उन देवी की शरण हम देवगण लेते हैं।।७-१०।।

एवं तां तोषयाञ्चक्रे जयां कालनिवर्हणाम्। प्रददौ सा वरं तस्य देवराजस्य वासव ॥११॥
इदं घोरबलं हत्वा भूयोऽपि सुरसत्तमः। तव पुष्टिं करिष्यामि सर्वकालं पुरन्दर ॥१२॥
यो ह्येतद्विजयास्तोत्रं भक्तितः सम्पठिष्यति। प्रणष्टराज्यद्रव्याणि पुनरेव लभिष्यति ॥१३॥

हे इन्द्र! जब (तत्कालीन) देवराज इन्द्र ने इस स्तव से काल दैत्यनाशिनी भगवती का सन्तोष साधन किया, तब भगवती ने भी उन्हें यह वर प्रदान करते हुये कहा—हे सुरेश्वर! पुनः इस घोर दैत्य का विनाश करके तुम्हारा पुष्टिसाधन करूँगी, जिससे तुम्हारा इन्द्रत्व पद अधिक काल हेतु स्थायी हो जायेगा। जो व्यक्ति इस विजयास्तव का भक्ति के साथ पाठ करेगा, उसका विनष्ट द्रव्य, राज्य उसे पुनः मिल जायेगा।।११-१३।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा हतं तदा कालं सह भैरवं पिङ्गलम्। वज्रदण्डस्तदा क्रुद्धो देव्या योद्धुं व्यधावत ॥१४॥
पाशमुद्गरदण्डाब्ज-कुन्त-बाण-कृपाणभृत्। ववर्ष सहसा वज्रः प्रावृण्मेघ इवाम्बुभिः ॥१५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—तब वज्रदण्ड नामक दैत्य सेनानायक ने भैरव तथा पिंगल नामक प्रधान योद्धाद्वय के साथ कालासुर के निधन को सुनने पर अतिशय कुपित होकर पाश-मुद्गर-दण्ड-अज-कुन्त-बाण-कृपाण धारण करके उसी प्रकार असंख्य बाणवर्षा करने लगा, जिस प्रकार वर्षाकालीन मेघ जलवर्षण करते हैं।।१४-१५।।

न दिशो न तदाकाशं न च भूवायुगोचरम्। लक्ष्यते बाणधारौघैर्वज्रदण्डमहाध्वनैः ॥१६॥
देव्या धनुषि वज्रेण शराः पञ्चाशत् प्रेरिताः। तैर्विविध्य धनुर्देव्या कोपानलसुदीपिता ॥१७॥
विमोक्षे वारुणं शस्त्रं महामेघसमप्रभम्। तं नदन्तं महाघोरं विद्युत्पूर्वा दिशो दश ॥१८॥
ववर्ष प्लवते सर्वा दानवीं वाहिनीं तदा। तं दृष्ट्वा वज्रदण्डेदं महामायासमुद्भवम्।
वायुं मुमोच मेघानां तेन ते शमिता घनाः ॥१९॥

उसके द्वारा हुङ्कार के साथ की जा रही बाणों की वर्षा से दिशायें, अन्तरीक्ष, भूमि तथा वायु आच्छन्न हो गये तथा यह सब कुछ दिखना भी बन्द हो गया। वज्रदण्ड ने देवी के धनुष को लक्ष्य करके ५० बाणों को मारा, जिससे देवी का धनुष विद्ध हो गया। देवी ने कुपित होकर तब वारुणास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र विशाल मेघाकृति में परिणत हो गया। उसने दशो दिशाओं को आच्छन्न कर लिया तथा सर्वप्रथम बिजली चमकना, तदनन्तर भयंकर गर्जन के साथ ऐसी वृष्टि होने लगी, जिसमें सभी असुरसेना डूब गयी। वज्रदण्ड ने महामाया देवी द्वारा छोड़े गये वारुणास्त्र के प्रभाव को देखकर मेघमाला को हटाने की इच्छा से वायव्यास्त्र का प्रयोग करके उन मेघों को दूर कर दिया।।१६-१९।।

दृष्ट्वा घनान् वज्रानिलेन शान्तान् देवी तदा क्रोधविवृद्धमन्युः ।
मेघाद्रिमाला इव द्रोणतुल्यान् सभूधरान् सर्वदिशो विचिक्षिपे ॥२०॥
तं वायुशस्त्रं सहसा निरुध्य वज्राशनिर्बाणशिलाववर्षैः ।
हत्वा तदश्वान् यदरक्षरक्षं संसारथिं छत्रधरं च दण्डम् ॥२१॥
जिघांस वज्रं बल-वज्र-वीर्य्यं शरेण हेमदलपत्रितेन ।
हतन्तु वज्रं सहसा च दृष्ट्वा यमान्तको यत्र जया जयन्तम् ॥२२॥
मुमोच बाणान् सहसा सकोपाद् देव्याहतः सोऽपि परं प्रयाति यमान्तकः प्रेतपथं महान्तम् ॥२३॥

इति देव्यवतारे श्रीदेवीपुराणे वज्रवधोनाम पञ्चदशोऽध्यायः

वज्रदण्ड द्वारा वायव्यास्त्र से मेघवृन्द को प्रशमित होता देखकर देवी का क्रोध द्विगुणित हो गया। तब उन्होंने पर्वतास्त्र छोड़ा। इससे दशो दिशायें तथा वज्र द्वारा अस्त्र से छोड़ी गयी वायु भी रुक गयी। तदनन्तर पत्थर गिरने लगे। देवी ने सुवर्णपुच्छ बाणों से वज्रदैत्य के सारथी, ध्वजा, छत्र, दण्ड तथा वज्र के समान दुर्जेय आततायी वज्रासुर को निहत कर दिया। उसका अनुचर यमान्तक वज्रदैत्य को मरा देखकर क्रोधित हो गया। वह देवी जया तथा जयन्ती को लक्ष्य करके बाणवर्षा करने लगा तथा कुछ ही देर में वह असुर भी देवी के हाथों मारा जाकर यमालय के दुर्गम मार्ग पर चल पड़ा।।२०-२३।।

पञ्चदश अध्याय समाप्त

●

षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हते वज्रे महावीरे हते चापि यमान्तके । घोरसेनार्दिता भूता हतवीर्यपराक्रमा ॥१॥
तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् सुषेणः प्रत्यभाषत । मया त्वं देवदेवानां बुद्धिमद्भ्योधिको मतः ।
येन पूर्वं सुरः स्वामी अच्युतः परितोषितः ॥२॥
यः समः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । यस्य राज्यमदोत्सेकान्न विकारः प्रवर्द्धितः ॥३॥
यस्य मातृसमाः सर्वाः परदाराः स्नुषा इव । यस्य काञ्चनलोष्टानां विशेषो नोपलभ्यते ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—महावीर वज्रासुर तथा यमान्तक का वध हो जाने पर बाकी बची घोर दैत्य की सेना में अधिकांश भयविह्वल तथा उत्साहरहित हो गये। कुछ सेना देवी द्वारा निहत कर दी गयी। तब घोर के मन्त्री सुषेण ने उन सब वीरों को मरते देखकर घोर से कहा—हे महाराज! मैं आपको देवताओं की तुलना में अधिक बुद्धिमान मानता हूँ; क्योंकि आपने पूर्व में देवगण के प्रभु भगवान् नारायण को तप से प्रसन्न किया है; साथ ही आप ऐसे हैं जो चराचर में सभी प्राणियों के प्रति

समदर्शी हैं। साथ ही राजमद रहने पर भी आपमें कोई विकार नहीं रहता तथा आप ऐसे हैं जो पराई स्त्री को पुत्रवधू के समान मातृतुल्य मानते हैं, जिसे स्वर्ण तथा मिट्टी के ढेले में कोई अन्तर नहीं लगता।।१-४।।

यस्य शब्दादयो भावा न बाधन्ते मनागपि। यस्य कामजक्रोधादिर्न गणो विशते तनुम् ॥५॥
यस्य दुर्गाष्टकारम्भे नित्यञ्च करुणोदयम्। यस्य व्यूहक्रियां भावमण्डलं तत्त्ववेदिता ॥६॥
प्रत्यक्षं वर्त्तते नित्यं करस्थमपि धात्रिजम्। यस्य करि महागन्धा मदमत्ता न राष्ट्रजाः ॥७॥

आप ऐसे हैं, जिसे शब्द-स्पर्शादि इन्द्रिय भोग्य विषयसमूह भी कर्त्तव्य तथा कार्य के अनुसार प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। जिसके शरीर में काम-क्रोधादि शत्रु प्रवेश ही नहीं कर सकते, जिसे दुर्गाष्टक का सविशेष ज्ञान है, जो कार्यों में नित्य उद्यमी है, व्यूहरचना-मण्डलरचना इत्यादि तत्त्वसन्धान जिसके लिये करामलकवत् हैं तथा प्रत्यक्षगोचर हैं, जिसके राज्य में मदस्रावी हस्तिगण के अतिरिक्त कोई भी मद्यप नहीं है।।५-७।।

यस्य हारकदण्डानि छत्रेषु न जने क्वचित्। यस्य घाता अश्वोष्ट्रेषु न पुरे न च खेटके ॥८॥
यस्य भूताः प्रियाकोपे कार्म्मुकाणां न विग्रहे। यस्य चाध्वरयज्ञेषु चाश्रुपातो न शोकज. ॥९॥
यस्य शक्ति कृपाणेषु कलङ्को न च भीकृतः। यस्य स्वप्न प्रभा मिथ्या न च वक्तव्ययाजने ॥१०॥
यस्य वाले मुखाभङ्गी न च क्रोधाद्भयात्क्वचित्। एवंविधस्य ते देव सर्वशास्त्रविदस्य च ॥११॥
आपदो या विशन्तीगास्तन्महदद्भुतं रिपुः। यावद्यावत् समाधाय घोरो मन्त्री प्रचक्रमे ॥१२॥
तावन्नारद आयातो विष्णुब्रह्मेशप्रेषितः। यत्र सा परमा देवी त्रयाणामपि कारणा ॥१३॥

जिसके राज्य में सुवर्णमय दण्ड केवल छत्र में लगता है, लेकिन किसी व्यक्ति को अपराध का दण्ड नहीं मिलता (अर्थात् कोई अपराध ही नहीं करता) तथा जिसके अश्व तथा वाहन पर ही (उसे चलाने हेतु) आघात किया जाता है, अन्यथा किसी सामान्य दीन नगरवासी पर भी कोई आघात नहीं करता। जिसके यहाँ केवल प्रियतमाओं के प्रणयकोप के निवारणार्थ ही दूत रखे जाते हैं, वहाँ युद्धादि तो होता ही नहीं; अतः उसके हेतु दूत नहीं रखे जाते। जिसके राज्य में केवल यज्ञकार्य में यज्ञ की धूम्र नेत्रों में लगने से आँसू निकलते हैं, किसी शोक आदि से आँसू नहीं गिरते (अर्थात् शोक का अभाव है)। जिसके राज्य में केवल चन्द्रमा तथा खड्ग पर ही कलंक लक्षित होता है, किसी अकार्य अथवा भय का कलंक राज्य में है ही नहीं। जिसके राज्य में शिशुगण के मुख की ही भङ्गी लक्षित होती है, अन्य किसी के मुख पर क्रोध तथा भय की भङ्गी लक्षित ही नहीं होती। हे प्रभो! ऐसे अशेष गुणाकर तथा सर्वशास्त्रपारदर्शी आप पर जिस आपत्ति ने आक्रमण किया है, यह अतीव आश्चर्यकारी है। आपका शत्रु उत्पन्न हो जाना भी एक आश्चर्य ही है। जब मन्त्री राजा घोर को समझा रहा था तभी देवर्षि नारद विष्णु के आदेशानुसार देवी के पास गये, जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर—इन तीनों की कारण थीं।।८-१३।।

निष्कला शान्तिदानन्ता मुनीनां त्राणधर्मिणी। स्थिता सा वस्त्ररूपेण जयाद्यौ शम्भुराज्ञया ॥१४॥
ताञ्च कृत्स्नां तदा ध्यात्वा नारदस्तत्त्वविन्महान्। दुर्व्विज्ञेयां महादेवीं मन्त्रनामैस्तुतोष सः ॥१५॥

उन निष्कला शान्तिदायिनी मुनिगण का त्राण करने वाली पूर्णा भगवती उस समय महादेव की आज्ञा से निजांशसम्भूता (स्वयं से उत्पन्ना) जयादि सहचरीगण के साथ व्यक्त रूप से अवस्थान कर रही थीं। प्रधान तत्त्ववेत्ता नारद तब उन दुर्ज्ञेया भगवती का चिन्तन करते हुये नाना मन्त्रों का उच्चारण करते-करते स्तव करने लगे।।१४-१५।।

नारद उवाच

जय शम्भुनुते देवी जय रुद्रतनूद्भवे। जय केशव ब्रह्मेश उत्पत्तिस्थितिकारकि ॥१६॥
जय संहारकाराय रुद्रदेहभवाय च। जय परार्थभावेशि जय वागेशि मङ्गले ॥१७॥
जये सर्वमते माते जय नामवरप्रदे। सर्व्वगे सर्व्वनामेभ्यः प्रसीद मम शङ्करी ॥१८॥

नारद जी कहते हैं—हे देवि! शम्भु भी आपकी स्तुति करते हैं, आपकी जय हो। आप रुद्र के शरीर से उत्पन्न होकर भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की सृष्टि-स्थिति का विधान करती हैं, आपकी जय हो।

हे रुद्र देह से उत्पन्न! हे संहारकारिणी! आपकी जय हो। हे माते सर्वव्यापिनी! वरदायिनी! आपकी जय हो। आप सर्वग हैं। मैं जिन सभी नामों का जप करता हूँ, वे सभी नाम मुझ पर प्रसन्न हो जायँ।।१६-१८।।

नामान्युदीरयिष्यामि यानि ते प्रथितं त्रिषु। यैस्तु नामैः सदा लोके अत्रैवमनुगीयसे ॥१९॥
दुर्गा शाकम्भरी गौरी वरदा विन्ध्यवासिनी। कात्यायनी सुप्रसादा कौशिकी कैटभेश्वरी ॥२०॥
महादेवी महाभागा महाश्वेता महेश्वरी। त्रिदशा वन्दिनीशानी भवानी भूतभाविनी ॥२१॥
ज्येष्ठा षष्ठी तमोनिष्ठा ब्रह्मिष्ठा ब्रह्मवादिनी। अपर्णा चैकपापा च सुपर्णा चैकपाटला ॥२२॥
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशार्च्चिता। त्रिशूलिनी त्रिनयना त्रिपदा त्रिगुणात्मिका ॥२३॥
श्रद्धा स्वाहा स्वधा मेधा लक्ष्मी कान्ति क्षमावती। वृद्धि समृद्धिर्बुद्धिश्च शुद्धिसंशुद्धिरेव च ॥२४॥
सर्व्वज्ञा सर्व्वतोभद्रा सर्व्वतोक्षि शिरोमुखी। सर्व्वभूतादिमध्यान्ता सर्व्वलोकेश्वरेश्वरी ॥२५॥
मानवी यादवी देवी योगनिद्राथ वैष्णवी। अरूपा बहुरूपा च सुरूपा कामरूपिणी ॥२६॥
शैलराजसुता साध्वी स्कन्दमाताच्युतस्वसा। जया च विजया देवी अजिता अपराजिता ॥२७॥
श्रुतिः स्मृतिः धृतिः क्षान्तिः शक्तिः शान्तिरथोन्नतिः। प्रकृतिः विकृतिः कीर्तिः स्थितिः सन्ततिरेव च ॥२८॥
कालरात्रि महारात्री भद्रकाली कपालिनी। चामुण्डा चण्डिनी चण्डी चामुण्डविनाशिनी ॥२९॥
रुद्राणी पार्व्वतीन्द्राणी शंकरार्द्धशरीरिणी। दीक्षा दाक्षायणी चैव नारी नारायणी तथा ॥३०॥
निशुम्भ-शुम्भदमनी महिषासुरघातिनी। सहस्रनयना घोरा रेवती सिंहवाहिनी ॥३१॥
विश्वावती वीर्य्यवती वेदमाता सरस्वती। मायावती भोगवती सती सत्यवती तथा ॥३२॥
समस्तकार्यकरणी ईप्सितार्थप्रसाधकी। व्रजामि शरणं देवीं शरणागतवत्सलाम् ॥३३॥

हे देवि! जितने नाम संसार में विख्यात हैं तथा जिन सब नामों से लोग आपको पुकारते हैं, उन सबका इस समय कीर्त्तन करता हूँ। हे देवि! लोक में आप दुर्गा, शाकम्भरी, गौरी, विन्ध्यवासिनी, कात्यायनी, सुप्रसादा, कौशिकी, कैटभेश्वरी, महादेवी, महाभागा, महाश्वेता, महेश्वरी, त्रिदशा, वन्दिनी, ईशानी, भवानी, भूतभाविनी, ज्येष्ठा, षष्ठी, तमोनिष्ठा, ब्रह्मिष्ठा, ब्रह्मवादिनी, अपर्णा, कपाला, सुपर्णा, एकपाटला, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशार्चिता, त्रिशूलिनी, त्रिनयना, त्रिपदा, त्रिगुणात्मिका, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, मेधा, लक्ष्मी, कान्ति, क्षमावती, वृद्धि, समृद्धि, बुद्धि, शुद्धि, संशुद्धि, सर्वज्ञा, सर्वतोभद्रा, सर्वतोक्षि, शिरोमुखी, सर्वभूतादिमध्यान्ता, सर्वलोकेश्वरेश्वरी, मानवी, यादवी, योगनिद्रा, वैष्णवी, अरूपा, बहुरूपा, सुरूपा, कामरूपिणी, शैलराजसुता, साध्वी, स्कन्दमाता, अच्युतस्वसा, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, श्रुति, स्मृति, धृति, क्षान्ति, शक्ति, शान्ति, रथोन्नति, प्रकृति, विकृति, कीर्त्ति, स्थिति, सन्तति, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपालिनी, चामुण्डा, चण्डिनी, चण्डी, चामुण्डविनाशिनी, रुद्राणी, पार्वती, इन्द्राणी, शंकरार्द्धशरीरिणी, दीक्षा, दाक्षायणी, नारी, नारायणी, निशुम्भ-शुम्भदमनी, महिषासुरघातिनी, सहस्रनयना, घोरा, रेवती, सिंहवाहिनी, विश्वावती, वीर्यवती, वेदमाता, सरस्वती, मायावती, भोगवती, सती, सत्यवती, समस्तकार्यकरणी, ईप्सितार्थप्रदायिनी शरणागतवत्सला देवी की मैं शरण में हूँ।।१९-३३।।

भीमामुग्रां तथा धूम्रामम्बिकां त्र्यम्बकप्रियाम्। त्वं हि भावप्रपन्नानां हृदिस्था पापनाशिनी ॥३४॥
जयञ्च समरे नित्यं विद्यालाभञ्च दुर्लभम्। दीर्घमायुरयोत्साहं पार्थिवानाञ्च इच्छताम् ॥३५॥

हे देवि! जो आपकी भावना सर्वदा करते हैं, आप उनके हृदय में स्थित होकर पापराशि को दूर कर देती हैं तथा आपका चिन्तन करके युद्ध में जयलाभ, दीर्घ आयु मिलती है। उत्साहरहित व्यक्ति भी उत्साहित होता है तथा राजाओं की समस्त वासनायें पूर्ण हो जाती हैं।।३४-३५।।

पुत्राश्च गुणसम्पन्नाः परापर परागतिः। त्वया ह्येतानि प्रार्थ्यन्ते ममापि वरदा भव ॥३६॥
एवं स्तुता ततो देवी नारदेन महात्मना। ददर्श सहसा शक्र सिंहारूढां महाबलाम् ॥३७॥

हे देवि! पुत्रहीन आपकी कृपा से गुणवान पुत्रों का लाभ करते हैं। आप ही एकमात्र सर्व उत्कृष्ट विषयों में गति हैं। आपके पास से अप्राप्य कुछ भी नहीं है। अब मेरी अभीष्ट-सिद्धि कीजिये। हे इन्द्र! महाभाग नारद द्वारा भगवति का यह स्तव करने पर उन्होंने नारद को सहसा अपने स्वरूप का दर्शन कराया, वे महाबला देवी सिंह पर आरूढ थीं।।३६-३७।।

चर्म्मासि-धनु-नाराच-शूल-खट्वाङ्गधारिणीम्। वज्र-शक्ति-गदादण्ड-पशु-मुद्गर-विभ्रती ॥३८॥
पाशांकुश-ध्वज-वीणा-घण्टा-डमरू-धारिणी। चित्रदण्डा तथा मुण्ड कनकाभेदिनी तथा ॥३९॥
द्विपार्द्र चर्म्म सा रौद्र शैलकृतश्चारिणी। अक्षसूत्रकरा देवी वरदोद्यतपाणिनी ॥४०॥
भक्तानां भक्तिजननी पावनी जननी तथा। याच याचेति वाचन्ती वरं ब्रूहि मनोगतम् ॥४१॥

देवी ने चर्म, असि, धनु, नाराच, शूल, खट्वाङ्ग, वज्र, शक्ति, गजदन्त, परशु, मुद्गर, पाश, अंकुश, ध्वज, वीणा, घण्टा, चित्रदण्डा, मुण्ड, डमरु आदि धारण किया था। वे द्वीपि चर्म का परिधान पहनी हुई थीं। गले में अक्षमाला थी तथा वे वरदानोत्प्रदा थीं। ऐसी भक्तजननी, पावनी लोकमाता भगवती ने नारद को सम्बोधित करके कहा—हे ब्रह्मन्! अपनी इच्छा कहो, वर माँगो, मैं वर प्रदान करती हूँ।।३८-४१।।

ततः स प्रणतं उचे घोरं देवरिपुं वध। तथेति नारदमुक्त्वा तावद् घोरः समागतः ॥४२॥

इति श्रीदेव्यवतारे देवीपुराणे देव्या नारददर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः

तब नारद ने देवी के उस रूप को देखकर तथा उनके वाक्य को सुनकर प्रणाम करते हुये कहा—हे देवि! उपस्थित घोरासुर का संहार करिये। यही मेरे मन की कामना है। भगवती ने नारद के वाक्य का अनुमोदन किया। इसी समय वहाँ घोरासुर आ गया।।४२।।

षोडश अध्याय समाप्त

●

सप्तदशोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

नारदस्य वरं दत्ते घोरे तत्र समागते। किमकुर्व्वद् भगवती किं वा घोरो महाबलः ॥१॥
किञ्च लोकप्रमाणन्तु हतशेषस्य नो वद। एवं पृष्टस्तदा ब्रह्मा अशेषं वासवेन तु ॥२॥
विमृष्य कथ्यते सर्वं देव्या घोरं महारणम्। यदिदं पृच्छसे शक्र देव्या घोरस्य सङ्गरम् ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे प्रभो! आपने कहा कि भगवती द्वारा देवर्षि नारद को वर प्रदान करने पर वहाँ घोरासुर उपस्थित हो गया। कृपया कहिये कि तब भगवती ने तथा घोर दैत्य ने क्या किया? उसकी मरने से बची सेना कितनी थी। तब ब्रह्मा ने इन्द्र की इस जिज्ञासा करने पर विशेष प्रणिधान किया और देवी तथा घोरासुर के सम्बन्ध में तथा सैन्य की गतिविधि के सम्बन्ध में सब कहने लगे।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

तं ब्रवीमि यथावृत्तं प्रत्येकं न तु वाहिनी। वर्णितुं शक्यते शक्र समैर्ग्रन्थिभिः कोटिभिः ॥४॥
तथापि किञ्चित् संक्षेपात् कथयामि सुराधिपः। रथानां कोटयस्त्रिंशत् सप्तलक्षास्तथायुतम् ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे देवराज! तुमने देवी तथा घोर दैत्य के बीच के जिस युद्ध का वर्णन पूछा है, वह जैसे घटित हुआ था, सब कहता हूँ। हे वासव! इस युद्ध के सम्बन्ध में एवं सेना के विषय में शतकोटि ग्रन्थों में लिखकर भी वर्णित नहीं किया जा सकता, तथापि संक्षेप में कुछ कहता हूँ, सुनो।।४-५।।

कोटिशतानि पञ्चाशद् गजानां सप्ततिस्तथा। लक्षायुतसहस्राणि षष्टिः पञ्चाधिका विभो ॥६॥
कोटिलक्षाणि चाश्वानां पञ्चपञ्चाशद् वासव। लक्षा द्वात्रिंशत् पञ्चाशत् सहस्रपरिसंख्यया ॥७॥
लक्षा द्वासप्ततिः शक्र तथायुतत्रयं त्रयम्। हतशेषन्तु घोरस्य तिष्ठतेऽमरपुङ्गवः ॥८॥
घातितं द्विगुणमेतज्जयाविजयासङ्गरे ॥९॥

इस युद्ध में तीस करोड़ सात लाख एक अयुत रथ थे। पचास शतकोटि सप्तति लक्ष सहस्र अयुत पञ्चषष्टिसंख्यक गज-सेना थी। अन्य सेना की संख्या लक्ष कोटि, बत्तीस लाख पचास हजार परिसंख्या थी। साथ ही कोटि-कोटि सत्तर लाख नव अयुत पैदल सैनिक उपस्थित थे। घोरासुर की मरने से बची जिस सैन्य का यह परिमाण कहा गया है, हे सुरेश्वर! देवी जया-विजया ने इससे पहले इससे दूनी संख्या में घोरासुर की सेना का संहार समर में किया था।।६-९।।

यमान्तकस्तथा काल-दुर्मुख-वज्र-भैरवैः। स्वयन्ते घातितं देव्या महाकाल्या ह्यनेकशः ॥१०॥

यह पहले कहा जा चुका है कि यमान्तक-काल-दुर्मुख-वज्र-भैरव आदि कई प्रधान सेनापति तथा अनेक कोटि सैन्य भी देवी के हाथों मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं।।१०।।

शक्र उवाच

हतशेषबलो ब्रह्मन् घोरो घोर-पराक्रमः। भीतो वा प्राणरक्षार्थं किं वा युद्धमनोनुगः ॥११॥

इन्द्र कहते हैं—हे ब्रह्मन्! तब वह असीम पराक्रमी घोरासुर ने अपनी मरने से बची सेना को देखकर भयप्रयुक्त होकर प्राणरक्षार्थ व्यस्त हो गया; किंवा युद्धकार्यार्थ मनोनिवेश किया, कहिये।।११।।

ब्रह्मोवाच

हतशेषबलः शक्र घोरः क्रोधाग्निदीपितः। चकार मायया सेनां हताहतसहस्रथा ॥१२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वासव! तब उस घोर ने क्रोधानल से प्रज्ज्वलित होकर मरने से बची सेना की सहायतार्थ रखकर माया के प्रभाव से असंख्य सेना की सृष्टि किया।।१२।।

तां घोरमायामनुभूतभूतां सेना ययौ वासव सप्तलोकान्।
भूम्यन्तरीक्षान् सह सप्तद्वीपान् पाताललोकान्तरव्याप्तमार्गान् ॥१३॥
विष्णुं समस्तेशसुरेशवन्द्यं शक्रं महामत्तमतङ्गयानम्।
रक्षोऽनलं वायुं तथा कुबेरमीशञ्च रुद्रं जगदीशितारम् ॥१४॥
सोमं रविं दीप्तवतां वरिष्ठं रुद्रान् समस्तान् ह्यथ विश्वदेवान्।
ऋक्षान् ग्रहान् नागसुसिद्धसंघान् विद्याधरान् किन्नरभूतपितॄन् ॥१५॥
सर्वान् समस्तानपि पीडयित्वा देव्यस्तथा घातयितुं प्रवृत्तः।
तां घोरमायामतिमुग्धचेताः शम्भुस्तथा संस्मरते परां ताम् ॥१६॥

घोर की माया से उत्पन्न वह सेना भूरादि सप्तलोक, पृथिवी, अन्तरीक्ष तथा पाताल लोक में व्याप्त हो गई तथा सबके प्रभु सुरपति से भी पूजनीय भगवान् विष्णु को, ऐरावतवाहन इन्द्र, राक्षस, अग्नि, वायु तथा कुबेर आदि दिक्पालों को तथा जगदीश्वर महादेव को, चन्द्र को, तेजस्वीगण में प्रधान दिवाकर को, समस्त रुद्रगणों को, विश्वेदेव, ग्रह-नक्षत्र-नाग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, भूत तथा पितृगणों को पीड़ित करके देवीगणादि को भी मारने के लिये उद्योगी हो गयी। यह देखकर महादेव का चित्त भी घोर की माया से अत्यन्त मुग्ध हो गया और तब वे उन परमा प्रकृति का स्मरण करने लगे।।१३-१६।।

ईश्वर उवाच

जय-जय हरिहर कमलासनाभ्यर्च्चिते नमो देवी शिवे शम्भु वक्त्रोद्भवे।
चण्डरूपे सुवक्त्रे सुनेत्रे सुगात्रे सुवेशे सुबिम्बाधरोष्ठि महायोगिनि बर्हिणीव ॥१७॥
पिच्छध्वजे तुहिनकर-कुमुदकुन्देन्दु-सवर्णाभिरत्यन्ततीक्ष्णाभिर्दष्ट्राभिः संदृश्यते।
भैरवी भीषणी वीरभद्रे सुभद्रे श्मशानप्रिये पद्मपत्रेक्षणे घोररूपे ॥१८॥
जयन्ती जये मानसि मानवि मर्त्यमाते मृगेन्द्रध्वजे सर्व्वसिद्धिप्रदे।
जलनिधि वरदुन्दुभि मेघनिर्घोषहासस्वने ॥१९॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवि ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर आपका पूजन करते हैं। आप बारम्बार जययुक्त हो जायँ। हे शिवे! आप शिव के मुख से उत्पन्न हैं। हे चण्डरूपिणी चण्डिके! आपका मुख, नयन, गात्र तथा परिच्छद अतीव सुन्दर है। हे महायोगिनि! आपके दोनों ओष्ठ विम्बाफलवत् शोभित हो रहे हैं। हे देवि! हे भीषणि! हे वीरभद्रे! हे श्मशानवासिनि! आपका मुखमण्डल चन्द्रकिरण तथा कुमुद के समान शुभ्र अतितीक्ष्ण प्रचण्ड दन्तपंक्ति द्वारा सिंहमुख के समान प्रतीत हो रहा है। हे घोररूपे जयन्ति! आपके नयनयुगल पद्मपत्र के समान शोभित हैं। हे जय! हे मानसि! हे मानवि! आप निखिल मानवों की जननी हैं तथा पशुराज सिंह आपका वाहन है; अतः आप हैं—सिंहध्वज। हे माते! आप समस्त सिद्धि प्रदान करती हैं। आपका गम्भीर स्वरसमुद्र दुन्दुभि-मेघ के स्वर को भी मन्द कर देता है।।१७-१९।।

ब्राह्मि कौमारि माहेन्द्रि माहेश्वरि वैष्णवि वाराहि वायुरग्न्यात्मजे।
हेमकूटे महेन्द्रे हिमाद्रौ महीधारिणि विन्ध्यसह्यालये श्रीगिरौ संस्थिते ॥२०॥
ह्रस्वदीर्घैः कृशैः स्थूललम्बोदरैस्तालजंघैर्महाभैरवैः प्रमथलक्षणैर्वृते।
दिनकर-कोटिकल्पान्तरवह्निप्रभे हेमवर्णे सुवर्णे रतिप्रीतिदक्षे ॥२१॥
मति-शान्ति-लक्ष्मी-धृति-ऋद्धि-द्युति-सिद्धि-बुद्धि-कृति-तुष्टि-पुष्टि-स्थिति।
सृष्टिवृष्टिप्रिये वेदमाते कृतज्ञे कुमारि ध्रुवे शाश्वति तापसि सांख्ययोगोद्भवे ॥२२॥

हे माते! आप ही ब्राह्मी, गौरी, माहेन्द्री, वैष्णवी, वाराही, माहेश्वरी तथा वारुणी शक्ति हैं। आप अग्नि, वायु तथा जल से उत्पन्न हैं। हे देवि! आप ही पृथिवी की धारणकर्त्री हैं। आप हेमकूट, महेन्द्र, हिमालय, विन्ध्य, संह्य तथा श्रीगिरि—इन पर्वतों पर सदा अवस्थान करती रहती हैं। हे देवि! यह जो लाखों लाख महाभीषण प्रमथगण आपको घेरे रहते हैं, इनमें से किसी की देह छोटी, किसी की दीर्घ है तथा सभी का जंघा तालवृक्ष के समान उच्च है एवं सभी लम्बोदर हैं। हे माते! आपका तेज करोड़ों सूर्य की किरणावली के समान तथा प्रलयकालीन अग्नि के समान स्फुरित होता रहता है। हे देवि! आपका रूप सुवर्ण के समान भास्कर है। आपको देखकर रतिविषयों में गाढ़ आसक्ति का उदय हो जाता है (अर्थात् आपके प्रति प्रेम में गाढ़ता आ जाती है)। आप ही जीव भी एकमात्र गति, मति, शान्ति, लक्ष्मी, धृति, ऋद्धि, सम्पत्ति, प्रभा, सिद्धि, बुद्धि,

वृद्धि सभी आपही हैं। आप तो नित्य देव की भी माता हैं। अतः विधान एवं कार्य, यह सब आपको ही ज्ञात है। आप ही नित्य कुमारी नित्य तापसी हैं। आपसे ही सांख्य तथा योग उद्भूत हैं।।२०-२२।।

विषधरहल-मूसल-परशु-पाशासि-चक्राब्ज-खट्वाङ्ग-दण्डांकुशानेकशस्त्रोद्यते ।
शूलाक्षसूत्रधनुर्द्धारिणी दैत्यविद्रावणि हारिणी धारिणी बन्धनि मोक्षणि ॥२३॥
दुरितानि मारणि कीर्तिविस्तारिणी दीप्ति सञ्जीवनी भेदनी तापनि ।
शुष्कमूर्धे उमे चण्डिके भीमवक्त्राम्बुजे त्रिपुरदहने हरस्यार्द्धस्थिते ॥२४॥

आप सर्प, हल, मूषल, पशु, पाश, तलवार, चक्र, शंख, खट्वाङ्ग, दण्ड, अंकुश आदि विविध अस्त्र तथा शिवप्रदत्त त्रिशूल एवं अक्षमाला को असुरसंहारार्थ धारण करती हैं। हे उमे! हे चण्डिके! आप ही जीवों को बद्ध तथा मुक्त करके रहती हैं तथा लोगों की पापराशि को ध्वंस करके उनकी यशोराशि का विस्तार करती है। आप निष्प्रभ लोगों की प्रभा का विस्तार करती हैं तथा सन्ताप दूर करती हैं। हे देवि! आपका मुखपद्म अति भीषण मख धारण किये हुये है। हे देवि! त्रिपुरदहनकाल में आपने ही महादेव के अर्द्धाङ्ग में निवास किया था।।२३-२४।।

विद्युदुल्कामुखि कृष्णमूर्धे नवम्यष्टमी पञ्चमी पौर्णमासी चतुर्थी तथैकादशी कृष्णपक्षोत्सवे ।
इन्द्रनीलैर्महानीलमुक्ताफलैः पद्मरागैः स्फटिकैर्मणिमरकतैर्वज्रवैडूर्य्यचामीकरालंकृते ॥२५॥

आपकी मुखकान्ति विद्युत् तथा उल्का के समान दीप्तिमान है। हे कृष्णमूर्द्धे! नवमी, अष्टमी, पञ्चमी, पौर्णमासी, चतुर्थी तथा एकादशी को आपका उत्सव होता है।।२५।।

नूपुरैः कुण्डलैर्मुकुटकेयूरहारद्युतिविभूषिते हेमरत्नोज्ज्वले वल्कलनीलकौशेयपीताम्बरे ।
कनककलशतुल्येन पीनोन्नतेनातिरम्येण हेमांशुजालोग्रनिष्पीडितेन स्तनेनोरसा मध्ये ॥२६॥

आप इन्द्रनील, महानील, मुक्ताफल, पद्मराग, स्फटिक, मरकत, वज्र, वैदूर्यादि मणि तथा सुवर्णालङ्कार से अलंकृत हैं। नूपुर, कुण्डल, मुकुट, केयूर, हारप्रभृति अलंकार की शोभा से आप भूषित हैं। आप हेम तथा वज्रप्रभा से उज्वल हैं। वल्कल, नील-कौशेय, चीनाम्बर आदि आपका परिधान है। हे त्र्यम्बके! आपका वक्षःस्थल कनककलश के समान पीनोन्नत मनोहर स्तनद्वय से शोभित है। बोध होता है कि मानो वहाँ निष्पीड़ित स्वर्णकान्ति एकत्रित है।।२६।।

तन्वङ्गयष्टा नितम्बस्थले नाभिं संवर्द्धनेनाम्बिके त्र्यम्बके नृत्यमाना सदा शोभसे ।
वर-वृषभ-हंस-मातङ्ग-नील-गति-गामिनि-मेरुसञ्चारिणि सागरान् शोषणि पर्वतान् पूर्वान् ॥२७॥

नृत्यकाल में आपकी क्षीणमध्य अंगयष्टि, नितम्बस्थल तथा आवर्त्तद्वयरूप से नाभिस्थल अतीव मनोहर है। हे त्र्यम्बके! आप नृत्यरत रूप से सदा शोभित हैं। मत्त हाथी, वृषभ तथा हंस की तरह आप मन्दगति हैं। आप अनायास मेरुसंचालन, सागरशोषण तथा पर्वतों को चूर्ण करती हैं।।२७।।

कद्रु सावित्रीं गायत्रीं धात्रीं विधात्रीं दितीम्वीक्ष्य माया जितेन्द्रियस्य विद्रावणी ब्राह्मि वेताले ।
कङ्कालिका कपालिनि भद्रकालि महाकालि कालानले कलिकाले कले निष्कले ॥२८॥

आप कद्रु, सावित्री, ग़ायत्री, धात्री, विधात्री, दिति तथा तार्क्ष्य की माता हैं। जितेन्द्रिय व्यक्तिगण को आप विद्रावित कर देती हैं। आप ब्राह्मी, वेताली, कङ्काली, कपाली, भद्रकाली, महाकाली, कालानला काली तथा निष्कला हैं।।२८।।

जय जय मङ्गलोद्घुष्टरावे धारिणिभिर्महीं सिद्धसंघैः सुशब्दैः सहायैः सुसन्नद्धत्वङ्गैः ।
विमानैश्च दिव्यैर्गजेन्द्रैः सुनीलैस्तुरङ्गैः सुवेगैः सितैश्चातपत्रैश्च सञ्छादिते अम्बरे ॥२९॥

रक्तमौले गणैर्देववदैत्येन्द्रयक्षाप्सरैर्वन्दिभिः स्तूयसे लोलजिह्वैर्ललदुग्रकेशैः शरण्ये वरण्ये।
महारूक्षघण्टारवोद्गीतकर्णोत्सवे वेणु-वीणा-ध्वनि-स्तोत्र-वादित्र-गन्धर्व-नित्यप्रिये ॥३०॥

महासिद्धगण 'जय जय' इत्यादि सुमधुर शब्द करके आपको घेरे रहते हैं। सुसज्जित विमानसमूह, सुनील गजघटा, सुसज्जित तुरंग तथा श्वेत बादल श्वेत छत्रों से आप परिवेष्टित हैं। आप रक्तमाला से शोभिता एवं भूषित हैं। देव-दैत्य-यक्ष, अप्सरा, प्रमथादिगण, बन्दीगण आपका स्तवन करते हैं। आपका उग्र रूप, केश तथा लोल जिह्वा सदा चंचल है। आप शरण्य तथा वरेण्य हैं। महारूक्ष घण्टास्वर से निकला रव आपके कानों का उत्सव-सा करता रहता है। आप वेणु-वीणाशब्द, स्तवादि, वाद्य, गन्धर्वों के नृत्य को प्रिय समझती हैं (अर्थात् इनसे प्रसन्न होती हैं)।।२९-३०।।

कृतभुजगवरकुण्डलोद्धृष्टगण्डद्वये सर्व्वभूतालये सर्वभूतोत्तमे।
गौरि गान्धारि मातङ्गि धूमेश्वरि धर्म्मकेतू दक्षविध्वंसिनि महिषमृत्युप्रदे ॥३१॥

आपके गण्डद्वय पर कुण्डलित सर्प से (जीवितसर्प से) बना कुन्तल शोभित है। आप सर्वभूतसमूह में श्रेष्ठ हैं तथा सर्वभूत- समूह की आवासभूमि हैं। आप गौरी, गान्धारी, मातङ्गी, धूमेश्वरी, धर्मकेतु, दक्षयज्ञविनाशिनी, महिषासुर-मृत्युप्रदा हैं।।३१।।

शुम्भनिशुम्भनी मोहिनी दीपनि वर्षणि रेवति कालकर्णी सुकीर्णि जगत्सृष्टिसंसारकर्त्री।
योगेश्वरि सर्व्वलोकेश्वरि खेचरि गोचरि चण्डि मातङ्गि धूम्रे शशाङ्कानले गिरिवरतनये ॥३२॥

आप शुम्भ-निशुम्भमोहिनी, दीपनी, वर्द्धिनी, कारुकर्णी (सुन्दर कानों वाली), जगत् की सृष्टि-संहार करने वाली हैं। आप योगेश्वरी, सर्वलोकेश्वरी, खेचरी, गोचरी, चण्डी, मातङ्गी, धूम्रा हैं। हे शशाङ्कानले! आप गिरिवरतनया हैं।।३२।।

वरे मन्त्रमूर्ति महामूर्त्ये दिग्व्यापिनि सुप्रसन्ने प्रसन्नार्चिते सुव्रते।
गोतमि कौशकि पार्व्वति भूतवेतालि कात्यायनि ऋग्यजुःसामाथर्व्वप्रिये देवी नित्ये ॥३३॥
शुभे भीमनादे महावायुवेगे सरस्वत्यरुन्धत्यमोघे असंख्यातबाहूदरेऽनेकवक्त्रे।
विविधमृत्युमारीति शाकम्भरी शैलशृङ्गेषु तुङ्गेषु नित्यां वत कन्दरवासिनि भीमसङ्गे नित्यं त्वमेवोच्यसे ॥३४॥

आप श्रेष्ठा, मन्त्रमूर्त्ति, महामूर्त्ति, दिग्व्यापिनी, सुप्रसन्ना, प्रसन्नार्चिता, सुव्रता, गौतमी, कौशिकी, पार्वती, भूतवेताली, कात्यायनी हैं। ऋक्, यजुः, साम-अथर्व आपको प्रिय हैं। हे देवि! हे शुभे, नित्ये, भीमनादे! आपका वेग महावायुवत् है। हे अमोघे! आप सरस्वती, अरुन्धती हैं। आपकी बाहु, आपका मुख एवं उदर असंख्य हैं। आप शाकम्भरी हैं। उच्च शैलशृंग पर निवास करती हैं, कभी भयानक पर्वत कन्दरा में रहती हैं। लोक में आपका नाना प्रकार का नाम प्रचलित है।।३३-३४।।

कुवलयादलनीललोलालसैः लोचनैः स्नेहयुक्ते शताक्षेपवक्त्राम्बुजोद्भासिभिः कालनिर्णाशिनि।
कामसन्दीपनि साधकालोकानि स्वर्गपातालमोक्षप्रदे चक्रवर्तिप्रदे श्रीधरे पुत्रवत् पश्य माम् ॥३५॥

आपके स्नेहयुक्त लोचनत्रय कुवलय के समान नीलवर्ण-चञ्चल हैं। कभी अलस हैं तो कभी (क्रोधादि के कारण) रक्तपद्म के समान शोभित होते हैं। आप कालनाशिनी, कमनादात्री, साधकों के प्रति कृपादृष्टि रखने वाली, सर्वत्र मोक्षप्रदा (स्वर्ग-पातालादि सर्वत्र) हैं। हे चक्रवर्त्तिप्रदे! श्रीधरे! मुझ पर पुत्र के समान दृष्टि रखिये।।३५।।

दर्भरोमाग्निजिह्वे त्रिगुणे प्रमेये त्वमेवोदधिवीचि भानौ सुषुम्ना।
ईडा पिङ्गला सौमनाडी तु सौत्रामनीं किङ्किणी चण्डी निर्घोषजुष्टा ॥३६॥

त्वमेवोषधी कालनिर्णाशिनी जाह्नवी त्वं जटाभिर्मया धारिणी गम्भीरघोरस्वने ।
सर्वशस्त्रोद्यते सर्व्वदेवैर्वृते रक्ष रक्षस्व मां दिव्यमाल्याम्बरे दिव्यगन्धानुलिप्ते ॥३७॥

दर्भ (कुशा), व्योम, अग्नि आपकी जिह्वा हैं। आप त्रिगुणधारिणी, अप्रमेयस्वरूपा, समुद्र हैं। सूर्यकिरण आदि आपका ही स्वरूप है। आप सुषुम्ना, इड़ा, पिङ्गला प्रभृति नाड़ी हैं। आपकी मणि-किङ्किणि प्रचण्ड शब्द करने वाली है। आप ही कालरोग- नाशक महोदधि हैं। आपको ही मैं जाह्नवी रूप से जटा में धारण करता हूँ। आपका घनघन गम्भीर शब्द घनशब्द (बादल की गर्जना) के समान है। आप सर्वदेवगण द्वारा घिरी तथा सर्वशस्त्रों से सज्जित हैं। हमारी रक्षा कीजिये। आप दिव्यमाला तथा दिव्य वस्त्रधारिणी तथा दिव्य गन्धानुलेप करने वाली हैं।।३६-३७।।

धार्यताराहमृता सत्यवादित्यजाता जिता क्रोधनावमेव क्रोधनिष्ठा ।
विभूत्याहूती कालरात्री शची कामरूपी स्वधावेशिनी विघ्ननिर्णाशिनी ख्यातिर्नारायणी ॥३८॥
कृष्णपिङ्गप्रगल्भानिलभ्रामणी देवदैत्येन्द्ररक्षोरगैः किन्नरैः ।
यक्षगन्धर्वविद्याधरैर्वन्दिते मुनिवरैः संस्तुते भगवती तव कीर्तिना मुच्यते ॥३९॥

आप अमृतरूपा, सत्यवादिनी, अजाता, जितक्रोधा; अथच क्रोधनिष्ठा भी हैं। आप ही विभूति-आकृति, कालरात्रि, शची, कामरूपा, स्वधा, वेशिनी, विघ्ननाशिनी, ख्याति, नारायणी, कृष्णपिङ्गा, प्रगल्भा, अनिलभ्रामणी हैं। देव, दैत्येन्द्र, रक्ष, उरग, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर सभी आपका स्तव करते हैं; क्योंकि आपके स्तवादि-कीर्त्तन से मुक्ति मिलती है।।३८-३९।।

कालपाशैर्निबद्धं सुरेन्द्रैश्च नीतमृषीन्द्रैश्च शप्तं मृगेन्द्रैर्गृहीतं गजेन्द्रैर्विभिन्नं ग्रहेन्द्राभिभूतम् ।
खगेन्द्रैर्विलुप्तं भुजङ्गैश्च दष्टं जले वापि मग्नं स्थले वापि खिन्नं वने वापि मूढं रणे शरैर्भिन्नदेहम् ॥४०॥
परैः सम्मुखस्य विवादे निरस्तं महाग्राहग्रस्तं तथाराध्यमानन्तु मातेव संरक्षसे पुत्रवन्नित्यशः ।
विविधकलिकलुषपापाधिये मानवास्तेऽपि सञ्चिन्त्य देवीं त्वदीयं मुखं पूर्णचन्द्रप्रभम् ॥४१॥
सोमसूर्याग्निनेत्रप्रद्योतितकुण्डलैर्लोलसंघृष्टगंडद्वये तेऽपि पापान् प्रमुञ्चति ।
संसारघोरार्णवे मज्जमानांस्तथा शत्रुमध्यगतान् यानपात्रस्थितान् शृंखलैर्वेष्टितान् तस्करैरावृतान् ॥४२॥
त्रासि सर्व्वान् सदेवान् सरक्षान् सगन्धर्वनागान् सविद्याधरान् साश्विनान् ।
सग्रहान् सप्तपातालभूर्लोकदिव्यान्तरीक्षस्थितान् नात्र कुर्य्याद्विकल्पं महादेवी सञ्चिन्त्य त्वाम् ॥४३॥

यदि कोई कालपाशबद्ध, सुरेन्द्र द्वारा नीत (हरा) गया, ऋषियों से अभिशाप-प्राप्त, गजेन्द्र अथवा सिंह द्वारा पकड़ा गया है, यदि कोई सर्प से डसा, जलमग्न, अरण्य आदि में मूर्च्छित, संग्राम में पराजित अथवा बाणों से आहत है, किंवा यदि कोई विवाद में लगा, महाग्रहग्रस्त, किंवा किसी द्वारा वध करने के लिये पकड़ा गया है, तब आप उसकी अपने पुत्र के समान नित्य रक्षा करती हैं। जो मनुष्य विविध कलिकलुषजन्य महापापग्रस्त है, यदि वह भी आपके पूर्ण चन्द्रवत् मुखमण्डल का—चन्द्र-सूर्य-अग्नि जिसके शोभायुक्त नेत्र हैं, कानों में स्थित लटकते कुण्डल से जिसके गण्डद्वय रगड़ खा रहे हैं, अतः शोभित हैं— स्मरण करते हैं, तब वह घोर संसारसमुद्र में पाप से मुक्त हो जाते हैं। जलमग्न, शत्रुमध्यगत, पानासक्त (मदिरापायी), सिक्कड़ से बंधा, क्षुधा-पिपासा से त्रस्त, तस्करों से घिरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, नाग, विद्याधर ग्रहपीड़ित की आप रक्षा करती हैं। सप्तपाताल, पृथिवी-स्वर्ग-अन्तरीक्षप्रभृति सर्वत्र आप सबकी रक्षा करती हैं। हे महेशानि! आपकी महिमा का चिन्तन करने पर इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं रह जाता।।४०-४३।।

चण्डिके शिवपुरवरमार्गसोपानमेतन्महादण्डकं शिवकृतं घोरनिकृन्तं पापनिर्णाशनं सर्वकामप्रदम् ।
नामभिश्छान्दसैः साधकानां हितार्थाय संक्षेपतः कीर्तितं सारमुद्धृत्य दध्नाज्यमिव सर्वदा ॥४४॥

हे चण्डिके! महादेवकृत यह घोर निकृन्तन, शिवपुर के उत्तम मार्ग का सोपान, पापनाशक, सर्वकामप्रद स्तव है। (पढ़कर) इसका फल प्राप्त करना चाहिये। जैसे दधिमन्थन से साररूप घृत निकलता है, उसी प्रकार साधकों के हितार्थ साररूप छन्दोबद्ध-नामात्मक यह दण्डक कहा गया है।।४४।।

ये पठन्ति सदा भक्त्या तेषु वक्षाम्यहं शृणु। वाजपेयाश्वमेधाग्निष्टोमगोदानादिकं तथा ॥४५॥
ऋक् सोपानादिकं यज्ञपुण्यं लभ्यते तथा भूतले यानि तीर्थानि चान्यानि वा।
तेषु तीर्थेषु देवार्च्चन-स्नान-होमोपवास-स्तुति-दानं पुण्यं व्रतं सर्वमेतत् फलम् ॥४६॥
यः पठेत् दण्डकैर्दण्डकेनापि सिद्धो दिवि क्रीडते ब्रह्माविष्ण्विन्द्रलोकोत्तमैः।
दिव्ययानैर्महाकल्पकोटिसहस्राणि सिद्धैर्वृतः साधकः ॥४७॥

जो इसका भक्तिभाव से पाठ करते हैं, उनको जो पुण्यफल मिलता है, उसे अब श्रवण करो। वाजपेय, अश्वमेध, अग्निष्टोम, गोदान, ऋक्-सोपानादि से जो पुण्य मिलता है तथा भूतल में जितने तीर्थ हैं, उसमें देवार्चन, स्नान, होम, उपवास से जो फल मिलता है, इसके पाठ करने से वह सब फल मिलता है तथा इसका पाठ करके सिद्ध होकर स्वर्गलोक में स्थान भी मिलता है। लोकश्रेष्ठ ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र तथा नाना दिव्ययान विमान से परिवृत होकर वह व्यक्ति महाकल्पकोटि-पर्यन्त सहज सुखभोग करता है।।४५-४७।।

तरुविनिपातकाले व्रजत्यग्निकालाग्निरुद्रं शतं नारकं विंशतिश्चाष्टकोटिसमेतम्।
तथा भूर्भुवःस्वर्महर्जनस्तपः सत्यं लोकान्तिकं ब्रह्मणोऽण्डं विनिर्मद्य रुद्रान् ॥४८॥
द्विपञ्चाशत् संख्यास्तथा तोयतेजोनिलाकाशगुह्याष्टकम्।
अष्टषष्टिमतिक्रम्यत् प्राकृतं पौरुषं नियतिकालं समग्रं सविददेशः ॥४९॥
चक्रर्ति शक्तिकलां वापि सूक्ष्मां त्यजित्वा व्रजन्ते परं यत्र नित्यम्।
पदं सर्वभूतोत्तमं सर्वगं निष्फलं ध्यानहीनं विशन्ते सदा ॥५०॥

इति श्रीदेवीपुराणे घोरवधे शिवकृतो देवीस्तवो नाम सप्तदशोऽध्यायः

इस प्रकार से वह स्वर्गभोग के पश्चात् संहार आदि कालाग्नि रुद्र में प्रविष्ट हो जाता है। आठ कोटि एक सौ बीस कालाग्नि रुद्र का काल वहाँ व्यतीत करके भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, महर्लोक, तपलोक तथा सप्तलोकरूपी सप्त-लोकात्मक ब्रह्माण्ड का अतिक्रमण करके रुद्र के द्विपञ्चाशत् पद में स्थित हो जाता है। तत्पश्चात् जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन तथा जीवरूप आवरण, अड़सठ प्राकृत, जैव, नैयतिक तथा कालिक स्थानों का अतिक्रमण करके विश्वेश्वर-चक्रवर्त्तित्व प्रभृति अतिसूक्ष्म फलों का त्याग करके सर्वभूतपति, सर्वभूतोत्तम, सर्वप्रद, निष्कल, अचिन्त्य, नित्य परमभाव की प्राप्ति कर लेता है।।४८-५०।।

सप्तदश अध्याय समाप्त

●

अष्टादशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स्तुता ह्येवं पुरा देवी देवदेवेन शम्भुना। हिताय विष्णुशक्राणामन्येषामपि देवताम् ॥१॥
तन्माया तमसाच्छन्नमशेषं सचराचरम्। उद्योतितं क्षणेनैव भानुना तद्यथा दिवम् ॥२॥
प्रवृद्धिशक्तिसंरम्भाः सर्वे देवाः सवासवाः। ववर्षु पुष्पमालाभिर्भवान्याश्चरणाम्बुजे ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—देवदेव शम्भु, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य देवगण ने इस प्रकार देवी का स्तवन किया। जैसे सूर्य के उदित हो जाने पर आकाश प्रकाशित हो जाता है, उसी प्रकार इस स्तव से तमसाच्छन्न निखिल चराचर प्रकाशित हो गया। शक्तिसम्पन्न इन्द्रादि समस्त देवता प्रबुद्ध होकर भवानी के चरणकमल पर पुष्पमाला-वर्षण करने लगे।।१-३।।

अथ तं दनुपतिं घोरं प्रावृट्कालघनोपमम्। मर्दयन् विहसन् देवी सुतीक्ष्णैर्निशितैः शरैः ॥४॥
अर्दिता शरवर्षेण दानवस्य तु वाहिनी। देवीकरविमुक्तेन लाघवेन बलेन च ॥५॥
निश्चेष्टं दानवं सैन्यं तदा ह्यासीत्पुरन्दर। एवं कात्यायनीं बाणैर्निष्प्रभं घोरजं बलम् ॥६॥

हे इन्द्र! तदनन्तर देवी वर्षाकालीन जलधर के समान दैत्यपति घोर को तीखे बाणों द्वारा विद्ध करने लगीं। देवी बलपूर्वक तेजी के साथ बाणों की वर्षा करने लगीं, उससे दानवों की सेना अतिशय व्यथित हो उठी। दानवगण चेष्टारहित होने लगे, पता नहीं उनका बल-विक्रम कहाँ तिरोहित हो गया। क्रमशः घोर दैत्य भी सेना देवी कात्यायनी के शरों से आहत होकर निष्प्रभ हो गयी।।४-६।।

चक्राविद्धं न लक्ष्येत दानवैर्विगतौजसैः। सुषेणस्तु तदा क्रुद्धो मन्युमास्थाय वासव ॥७॥
मायागजसमूहन्तु चकार मदविह्वलम्। तान्नागान्मदगन्ध्यादैर्वलिवृन्दैर्निषेवितान् ॥८॥
चोदयामास दिव्याया जयायामसुरोत्तमः। जयापि दानवं वीक्ष्य सिंहमारोह भास्वरम् ॥९॥
गजान् विमर्द्दयेत् सर्वान् विशीर्णा इव दिग्गजाः। गजसैन्ये हते शक्र दानवः सुरदर्पहा ॥१०॥
आदाय तरसा खड्गं जयायाः सिंहघातकम्। अथ सिंहे हते देवी कौशिकोपरि संस्थिता ॥११॥
सुषेणस्य शिरश्छेदं रथाङ्गेन तु वासव ॥१२॥

इति श्रीदेवीपुराणे सुषेणवधो नामाष्टादशोऽध्यायः

हे वासव! तब सुषेण दैत्य क्रोधित हो गया। उसने माया के हाथियों का समूह उत्पन्न किया, जो मदमत्त थे। उसने इन मायागजों को देवी की ओर भेजा। तब देवी ने जया देवी को इसके प्रतीकारार्थ भेजा। देवी जया ने दानव सैन्य को देखकर सिंहारूढ़ होकर उस गजसेना का वध प्रारम्भ कर दिया। गजसैन्य का मर्दन करके उसे विशीर्ण भी कर दिया। देवताओं के दर्प का हरण करने वाले दानवों ने गजसेना का नाश देखकर खड्ग द्वारा जयादेवी के वाहन सिंह का वध कर दिया। सिंह को निहत देखकर देवी जया ने क्रोधाभिभूत होकर चक्र से सुषेण का शिर काट दिया।।१२।।

अष्टादश अध्याय समाप्त

●

एकोनविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हते तस्मिन् महादैत्ये दानवस्य वरूथिनी। नलिनी हिमपातेन शमितेव विभाव्यते ॥१॥
सुषेणे निहते शक्र दैतेयः सुरमर्दकः। सुषेणसदृशान् योधान् मायोत्थां चक्रिरे बहून् ॥२॥
अजाविवदनान् घोरान् सिंहशूकर-आननान्। गजाश्वरथमारूढान् चर्म्मखड्गकरोद्यतान् ॥३॥
ते सर्वे अजितां योद्धुं महाबलपराक्रमाः। मकरस्थां पाशहस्तां दण्डांकुशकरोद्यताम् ॥४॥
ते दृष्ट्वा अजितां सर्वे न विभ्यथु मनागपि। अथ तैः कलकलारावं कृत्वा देवी विचेष्टिताम् ॥५॥
दशधा शतधा शक्र तथा ह्ययुतकोटिधा। देव्या शरासनं चक्रं चिच्छेदुर्दनुसत्तमाः ॥६॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—महादैत्य सुषेण का वध देखकर दानवसैन्य वैसे ही श्रीहीन हो गया, जैसे शिशिर हिमपात से पद्मवन नष्ट हो जाता है। हे इन्द्र! सर्वमर्दक दैत्यपति ने सुषेण को निहत देखकर तत्क्षण माया द्वारा सुषेण के समान बहुतर सेना की सृष्टि कर दिया; उसमें कोई बकरे का मुख, कोई मेषमुख, कोई सिंहमुख, कोई शूकरसदृश मुख वाला था। महाबली पराक्रमी द्वारा मायागठित सेना में से किसी ने हाथी पर, किसी ने घोड़े पर तो किसी ने रथ पर आरोहण किया। सभी अजित योद्धा पाशधारी, खड्ग-चर्मधारी थे। वे देवी अजिता के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत हो गये। देवी ने हाथों में पाश, दण्ड, अंकुश लिया तथा मकर पर आरूढ़ हो गयीं। दैत्यों ने देवी को देखकर भय नहीं किया और कल-कल के घोर शब्द से उनकी चेष्टा निष्फल करने लगे। वे शतधा, सहस्रधा, कोटिधा होकर देवी का प्रतीकार करने लगे। उस मायासेना ने देवी के शरासन तथा चक्र को छिन्न-भिन्न कर दिया।।१-६।।

विमोच शरजालानि देवी सर्वे ह्युपद्रुता। सम्पीडितबलान् दृष्ट्वा तृतीयाञ्चापराजिताम् ॥७॥
शमितुं शरवर्षेण दानवानां भयङ्करीम्। घोरमायासमुत्थानां वाहिनी यमपन्थगा ॥८॥
प्रयाता दानवी शक्रगजाश्वभटपत्तिषु। नहि संख्या तदा ह्यासीद् द्विविधासु बलासु च ॥९॥

देवी ने दानवसैन्य के द्वारा उपद्रुत होकर भयंकर आकार धारण किया तथा शरवर्षा करने लगीं। उस शरवर्षा से पीड़ित होकर मायाजनित सेना यमपुरी को सिधारने लगी। हाथी, अश्वप्रभृति सभी विनष्ट होने लगे। उस समय दानवों की कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गयीं, इसकी गणना दुःसाध्य हो गयी थी।।७-९।।

हतसेनस्तदा घोरो बहुमायी पुरन्दरः। इन्द्रचन्द्रार्कविष्णूनां रूपाणि बहुधासृजत् ॥१०॥
चन्द्रं चक्रेण सम्पीड्य विष्णुमिन्द्रं तथैव च। देवीनां सम्मुखो देव्या द्वन्द्वयुद्धेन प्रेषयेत् ॥११॥
तां मायां घोरजां देव्या जयापाशेन पाशितः। निकृंत्याशिव पद्मानि गजैरिव महाह्रदे ॥१२॥

इति श्रीदेवीपुराणे मायासैन्यवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः

हे पुरन्दर! घोर दैत्य की सेना के इस प्रकार विनष्ट होने पर घोर ने पुनः अनेक माया को रचा। उसने मायाबल से इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, विष्णुप्रभृति रूप की अनेक सैन्यसृष्टि की। मायाचन्द्र द्वारा वास्तविक चन्द्र को, मायाविष्णु द्वारा वास्तविक विष्णु को, माया इन्द्र द्वारा वास्तविक इन्द्र को, मायादेवीरूप द्वारा वास्तविक देवी को हत करने के लिये भेजा।

जैसे बड़े सरोवर में उसके कमलों को गजसमूह पददलित कर देता है, उसी प्रकार देवी ने अपने पाश से इस समस्त घोरकृत माया का नाश कर दिया।।१०-१२।।

उनविंश अध्याय समाप्त

●

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यां यां चकार दैत्येन्द्रो मायां मायाविदां वरः। तां तां निकृन्तते देवी नयं देवो यथा गुणः ॥१॥
शक्तित्रयसमोपेतः पौरुषेण समन्वितः। बलवाहनयुक्तोऽपि दैवेनैकेन पीडितः ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—मायाविद् गण में श्रेष्ठ दैत्यपति ने जो सब माया प्रकाशित किया था, उन सबको देवी ने छिन्न-भिन्न कर दिया। नीति, षड्गुण, शक्तित्रय, पौरुष तथा बल-वाहनादि से सम्पन्न होने पर भी एकमात्र दैव यदि विपरीत हो, तब सब कुछ नष्ट हो ही जाता है।।१-२।।

शक्र उवाच

यदा हि बलवान् दैव एकः शत्रुबलं जयेत्। तदा गजाश्वयोधानां व्यर्थता ह्यनुमीयते ॥३॥
न धर्मो नापि चाधर्मो न मन्त्री न पुरोहितः। दैव एव हि कर्त्ता तु शुभाशुभफलप्रदः ॥४॥

इन्द्र कहते हैं—जब दैव बलवान हो, तब एकाकी भी शत्रुजय कर सकता है। हाथी-अश्व-आयुध आदि तब व्यर्थ ही होते हैं। धर्म-अधर्म-मन्त्री-पुरोहित—ये सब कुछ भी नहीं हैं। दैव ही शुभ-अशुभ को फलित करता है।।३-४।।

अश्वमेधादियज्ञा ये ब्रह्महत्यादिपातकाः। दैव एव हि कर्त्ता च न पुण्यं न च दोषभाक् ॥५॥
भिषक् संवत्सरामाद्यैर्न हि किञ्चित्प्रयोजनम्। कृषिकर्मानुवार्ता च दैवं सर्वं करोति हि ॥६॥

अश्वमेधादि यज्ञ में न तो पुण्य है, न ही ब्रह्महत्यादि पातक में पाप है। दैव ही (इन सबमें) पाप-पुण्य का कर्त्ता है। वैद्य, गणक, अमात्य आदि का कोई प्रयोजन नहीं है। क्या कृषिकर्म (गोरक्षा,कृषि, वाणिज्य), क्या वार्त्ता—सब दैव से ही सम्पन्न होता है।।५-६।।

यदेतत्कथनारम्भे देव्या आद्यवतारणम्। तत्करोति विधिर्ब्रह्मन् किमेतद्भवता कृतम् ॥७॥
अनेनैवानुमानेन शुश्रूषा विनयेन हि।

यह जो देवी अवतार लेती हैं, क्या यह अपना कर्म है? सब कुछ दैव के अधीन है। अब तो यही अनुमान होता है कि शुश्रूषा तथा विनयादि सभी व्यर्थ हैं।।७।।

अगस्त्य उवाच

एवं पूर्वं भवानासीत् चक्र ब्रह्मस्य दैविके ॥८॥
पौरुषस्यानुसन्धाय यतते कमलोद्भवः।

ब्रह्मोवाच

दैवो हि सर्वशक्तीनां बलानां परमं बलम् ॥९॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—हे इन्द्र! तुमसे पूर्ववाले इन्द्र ने ब्रह्मा जी से यही कहा था। ब्रह्मा ने इसके उत्तर में कहा था कि सभी शक्तियों में से दैव परम शक्ति अवश्य है; लेकिन दैव के लिये चिन्ता न करके पौरुष का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।।८-९।।

चिन्त्याः अन्यपदार्थाः स्युर्दैवं केनापि चिन्त्यताम्। दैवानुकूलता शक्र शक्तिपौरुषचेष्टितम् ॥१०॥
फलते सर्वलोकानां कृषेर्वृष्टिरिव द्वयम्। तथापि पौरुषं शक्र यतितव्यं जिगीषुणा ॥११॥

(आगे भगवान ब्रह्मा कहते हैं) सभी अन्य पदार्थों के सम्बन्ध में चिन्ता अवश्य करनी चाहिये; लेकिन दैव के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। पौरुष का प्रयत्न करने पर दैवानुकूलता स्वयमेव आ जाती है। कृषिकार्य पौरुष से होता है; लेकिन वृष्टि तो स्वयमेव होती है। वृष्टि न होने पर कृषि सम्पन्न नहीं होती, लेकिन वृष्टि होने पर भी कृषिहेतु पुरुषकार (प्रयत्न) तो करना ही होगा। अतः जिगीषु व्यक्ति को पुरुषकार का आश्रय लेना चाहिये।।१०-११।।

नहि शय्यागतां कान्तां दैवमेवावगूहते। तस्मात् पुरुषकारोऽपि सिध्यत्येव नियामितः ॥१२॥
तथापि शक्तियुक्तेन बलायतो समन्वितैः। परं पुरुषकारस्य यतितव्यं सदा विभो ॥१३॥

पास में कान्ता शय्या पर लेटी है, यह तो दैव का कार्य है, किन्तु उसका आलिङ्गन करने हेतु अपना प्रयत्न आवश्यक है। अत: देखा यह जाता है कि दैव के मिलित होने पर पुरुषकार सिद्ध हो जाता है। उसके साथ यदि शक्ति (कार्यशक्ति) सम्मिलित हो, तब शीघ्र फललाभ होता है। अत: पुरुषकार के प्रति सदा यत्न करना चाहिये।।१२-१३।।

देवदानवगन्धर्वा ऋषयो मानवाः सुराः। सर्वे दैववशाः शक्र दैवोऽपि हि शिवा मता ॥१४॥
स च दानवरूपेण देवरूपेण वासव। स्थित्युत्पत्तिविनाशाय ब्रह्म-विष्णु-शिवा तनुः ॥१५॥
नानारूपधरा भूत्वा सर्वं हंति करोति च। तेनेमां दानवीं मायां घोरो घोरां प्रचक्रमे ॥१६॥

हे इन्द्र! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, मानव, सुरगण, असुर आदि सभी दैव के वशीभूत हैं। शिवा भी दैव ही हैं। हे वासव! दैव ही दानवरूप है, दैव ही देवतारूप है। सृष्टि हेतु दैव ही ब्रह्मा है, स्थिति हेतु दैव ही विष्णु है एवं संहार हेतु दैव ही रुद्र है। दैव ही नाना रूप धारण करके उन-उन कार्यों को सम्पन्न कर देता है; इसी कारण से यह मायावी घोरासुर भी घोर माया प्रकाशित करने में समर्थ है।।१४-१६।।

एवं ब्रह्मा पुरा शक्र शक्रेण समभाषत। यावत्सा वाहिनी देव्या दानवेन विमर्दिता ॥१७॥

हे इन्द्र! पूर्वकाल में ब्रह्मा ने इन्द्र के साथ यही कथनोपकथन किया था। इधर दानव गण देवी की वाहिनी को विमर्दित करने लगे।।१७।।

तथास्तं प्रापिते सूर्ये सन्ध्यायां समुपस्थिता। अजिता सर्वदेवानामभयाय च प्रेषिता ॥१८॥

तदनन्तर सूर्यदेव के अस्ताचल-गमन करने पर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रप्रभृति को अभय देने के लिये भगवती ने देवी अजिता को देवगण के पास भेजा।।१८।।

ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राणां योगनिद्रा च सा स्मृता। सा रक्षा परमा भूता कालबन्धनकारिका ॥१९॥
तथागता महादेवी देवता रक्षणे निशि। कालोऽपि सार्द्धयामे तु यामिनि विगते विभो ॥२०॥
अनेकाकारिणो भूत्वा बहुमायो महाबलः। प्रावृट्काले समारम्भे कालनीलानिलप्रभुः ॥२१॥
रक्ताक्षो भैरवाकारः सुरासुरभयङ्करः। यमवाहनकोटीनां सहौवेको विनिर्मितः ॥२२॥

ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-इन्द्र इन्हें योगनिन्द्रा कहते हैं। ये परम रक्षारूप हैं तथा कालवञ्चनकारिणी हैं। वे देवताओं की रक्षा हेतु वहाँ आईं। महाबली काल दानव भी अर्द्धरात्रि गत होने पर नाना आकार धारण करके तथा मायासमूह का विस्तार करते हुये वहाँ आया। तदनन्तर उसने वर्षाकालीन मेघ के समान नीलप्रभ, भैरवाकार महिष मूर्त्ति धारण किया। उसकी आँखें रक्तवर्ण की थीं। वह सुर-असुर—सबके लिये भयानक था। उसने इसी प्रकार करोड़ों यमवाहन (महिषगण) का माया से निर्माण किया।।१९-२२।।

तस्य सञ्चरमानस्य कम्पते च वसुन्धरा। निम्नोन्नतानि कुरुते भयं जग्मुः सुरासुराः ॥२३॥

उसके चलने से उसके पदभार से धरती काँप जाती थी। उसके संचरण से कोई स्थान ऊँचा, कोई नीचा होने लगा। तब देव एवं असुर, दोनों के मन में भय का संचार होने लगा।।२३।।

घोरो महाघोरतनुं विधाय देव्या समं जग्मुर्महाहवाय।
संक्रुन्द्धकालानलदीप्ततेजां तां पश्यते सिंहवरे निविष्टाम् ॥२४॥
भयानि कुर्वन् दनुजाधिपस्य सुराधिपे चाभयरूपरूपाम्।
दैत्यान्तकीं सृष्टिकरीं सुराणामालोक्य देवीं सहसा तु घोरः ॥२५॥

पादान्तरन्ध्रेषु गिरीन् स कृत्वा चन्द्रार्कताराणि शिरे ध्वनित्वा।
सिंहेन योद्धुं सहसा प्रवृत्तः सिंहेऽपि तच्छाङ्घ्रिनखैर्विविध्य ॥२६॥

दैत्य घोर महाघोर शरीर धारण करके देवी के साथ महायुद्ध करने की इच्छा से उपस्थित हो गया। वह क्रोध से कालाग्नि के समान होकर देखता है कि देवी सिंह पर बैठकर असुरों में भय तथा सुरगणों को अभय प्रदान कर रही हैं। जब उसने देखा कि देवी दैत्यकुल के लिये साक्षात् अन्तकस्वरूप हैं तथा देवगण के लिये सृष्टिकारिणी हैं, तब वह क्रोध से भरकर अपने पैरों से पर्वतादि उखाड़ते हुये चन्द्र-सूर्य-ताराप्रभृति को लक्ष्य करके महाशब्द करते-करते देवी के सिंह से युद्ध करने लगा। सिंह भी उसे पादप्रहार तथा नखों से विद्ध करने लगा।।२४-२६।।

नखप्रहारैर्महिषस्य काये असृक् प्रवाहौघविनिर्गता ये।
दिवौकसैस्तैः सहसा प्रदिष्टां कुरुण्डमाला इव वध्यकाये ॥२७॥

सिंह के नखप्रहार से महिष के शरीर से सटकर जो रक्तप्रवाह बह रहा था, देवगण ने उसे वध्य शरीर (वधार्थ बलिदानार्थ पशु को माला पहनाया जाता है) पर लटकी माला समझा।।२७।।

तद् घोरशृङ्गाग्रप्रहारभिन्नो हरिर्ननाद सहसा च खिन्नः।
संकोपितं दैत्यनिपातघातैर्हरिः प्रजघ्ने नखदंष्ट्रघातैः ॥२८॥

देवी के सिंह ने शत्रुरूपी महिष की सींगों के आघात से अवसन्न होकर सहसा गम्भीर शब्द करना प्रारम्भ किया। पुनः पुनः महिष द्वारा किये जा रहे आघात से क्रुद्ध होकर उस पर सिंह दाँतों तथा नखों से आघात करने लगा।।२८।।

देव्याः शिरे मुद्गरपाशघातात् बहून् मुमोच शरदण्डघातान्।
तथापि नो बाधयितुं स शक्तः पञ्चाननः शृङ्गहतः पपात ॥२९॥

दैत्यराज घोर ने सिंह के साथ युद्ध करते-करते देवी के मस्तक पर मुद्गर, पाश तथा बाणों से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया; उसे सिंह कोई बाधा नहीं पहुँचा सका।।२९।।

तं घोरघाताहतसिंहराजं भूमौ गतं घोरभटैः प्रदृष्ट्वा।
ते दानवाः क्रोधवशं प्रपन्ना देवीतनावस्त्रवराणि चिक्षिपुः ॥३०॥

अन्त में शत्रु महिष की सींगों के प्रहार से वह सिंह गिर पड़ा। घोर द्वारा किये आघात से अवसन्न सिंहराज को भूमि पर पड़ा देखकर घोर सैन्य वाले असुर क्रोधित होकर देवी पर शस्त्र छोड़ने लगे।।३०।।

दृष्ट्वा तु देवीं तैः पीड़िताङ्गीं निवारयेतां विजया जया च।
निवारिते घोरबले समस्ते मायासमुत्थे तमपायरूपे ॥३१॥

उसके शराघात से देवी को आहत होता देखकर जया, विजया उनका निवारण करने लगीं। माया से उत्पन्न घोरसैन्य के निवारित होने पर घोर देवी की ओर दौड़ पड़ा।।३१।।

देवी कृपाणेन तमापतन्तं चिच्छेद ग्रीवां धरणीं निपात्य।
दृष्ट्वा सुरास्तं निहतं सुरारिं पुष्पाणि देवी चरणेषु चिक्षिपुः ॥३२॥
तस्य शिरश्छेदसमुद्भवन्तं रक्ताननं रक्तविलोचनान्तम्।
क्रुद्धाननं मुक्तकचं सुघोरं कृपाणपाणिं शतघोरकारम् ॥३३॥
देव्याननं तर्ज्जनगर्ज्जमानं शंकावहं निर्भयदेवतानाम्।

तं दृष्टमात्रं सहसा तु देवीं पाशेन संपाश्य मुमोच नैनम् ॥३४॥
शूलेन मूर्ध्नि सहसा विभिन्नं तं मुक्तवीरमपतद् गृहीतम् ।
ऋक्षाधिपे चास्तगतेऽसुरेशे दैत्याधिपाः प्रेतपथं प्रजग्मुः ॥३५॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे घोरवधो नाम विंशोऽध्यायः

देवी ने तत्क्षण उसको भूमि पर पटक कर तेज कृपाण से उसका मस्तक काट दिया। देवताओं ने उस दैत्य को मृतक देखकर देवी के चरणों में पुष्पवर्षा करना प्रारम्भ कर दिया। उसका शिर कटते ही सैकड़ों उसी की आकृति के दैत्य वहाँ से निकलने लगे। उनके मुख तथा नेत्र रक्तवर्ण थे, क्रोध से शरीर भी अरुणवर्ण था। उनके केश खुले थे, हाथों में तेज धार वाले कृपाण थे। वे दुष्ट देवी के मुख की ओर देखते हुये तर्जन-गर्जन करने लगे। यह देखकर देवगण भयभीत होने लगे। देवी ने इन सबको घोर के शरीर से निकला देखकर उन्हें पाश से बाँधा तथा शूल से उनके मस्तक को छेदकर धराशायी कर दिया। हे सुरेश! तारापति के अस्तगत होने पर दैत्यपति प्रेतपुर-गमन कर गया (मृत हो गया)।।३५।।

विंश अध्याय समाप्त

●

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हते घोरे महावीरे सुरासुरभयङ्करे । देवीमुपासका देवाः प्रभूता राक्षसास्तथा ॥१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—सुर तथा असुर, दोनों के लिये भयंकर घोर दैत्य को निहत देखकर देवता-राक्षस तथा सभी देवी उपासक देवतागण भी भक्ति के साथ देवी का स्तव करने लगे।।१।।

आगता घातितं दृष्ट्वा महिषं तं सुदुर्ज्जयम् । ब्रह्मविष्णुसुरेशाना इन्द्रचन्द्रयमानिलाः ॥२॥
आदित्या वसवः साध्या ग्रहा नागाश्च गुह्यकाः । समेताः सर्वदेवास्ते देवीं भक्त्या तुतोषिरे ॥३॥
वरञ्च सर्वलोकानां प्रददौ भयनाशिनी । बलिञ्च दद्युर्भूतानां महिषाजामिषेण च ॥४॥

उस दुर्जय महिषासुर को निहत देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, चन्द्र, वायु, यम, आदित्यगण, वसुगण, साध्य, ग्रह, नाग तथा गुह्यकगण ने सम्मिलित होकर भक्ति द्वारा देवी को प्रसन्न किया। उन भयनाशिनी शिवा ने समस्त लोकों को अभयदान दिया। भूतगण ने महिष-छाग आदि की बलि देवी को प्रदान किया।।२-४।।

पुरेषु शंखभेर्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः । हता दुन्दुभिनादाश्च पटुशब्दाः समर्दलाः ॥५॥
पताकाध्वजछत्रादिघण्टाचामरशोभितम् । तद्दिनं कारयाञ्चक्रुर्देवीभक्ताः सुरोत्तमाः ॥६॥

नगरी-नगरी में शत सहस्र शंख, भेरी, दुन्दुभि, पटु, मर्दल प्रभृति बजाये जाने लगे। देवी के सुरश्रेष्ठगणों तथा भक्तों ने अपने-अपने नगर को छत्र, ध्वज, पताका, घण्टा, चामर से शोभित किया तथा पताका आदि फहराया।।५-६।।

एवं तस्मिन् दिने वत्स भूतप्रेतसमाकुलम् । कृतवान् सर्वदेवैश्च पूजाश्च शाश्वतीर्महान् ॥७॥
जलदान्ते आश्विने मासि महिषाजिनिबर्हिणीम् । देवीं सम्पूजयित्वा तु अष्टमीष्वर्द्धरात्रिषु ॥८॥
ये घातयन्ति सदा भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः । बलिञ्च ये प्रयच्छन्ति सर्वभूतविनाशकम् ॥९॥
तेषान्तु तुष्यते देवी यावत् कल्पन्तु शाङ्करी । क्रीडते विविधैर्भोगैर्देवलोके सुदुर्लभे ॥१०॥

उसी दिन देवगण ने देवी के अनुचर भूत-प्रेतगण के साथ देवी की शाश्वती पूजा भी सम्पन्न किया। वर्षा के अन्त में आश्विन मास की अष्टमी तिथि की अर्द्धरात्रि को देवी की पूजा करके जो महिष तथा छाग की बली देते हैं, वे महाबली हो जाते हैं। जो यह सर्वोपद्रवनाशक बलि देते हैं, देवी उनको ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। उनके प्रति देवी एक दिव्य कल्प-पर्यन्त प्रसन्न रहती हैं। वे तबतक सुदुर्लभ देवलोक में विविध प्रकार के भोग करते हुये क्रीड़ा करते हैं।।७-१०।।

नाधयो व्याधयस्तेषां न च शत्रुभयं भवेत्। न च देवा ग्रहादित्या नासुरा न च पन्नगाः ॥११॥

उनको आधि-व्याधि, शत्रुभय आदि कुछ भी नहीं रह जाता। हे सुरश्रेष्ठ! देवी के चरणों में शरणागत व्यक्तिगण को देवता, ग्रह, दैत्य, असुर अथवा पन्नग कोई भी कष्ट नहीं दे सकते।।११।।

वाधयन्ति सुराध्यक्ष देवीपादौ समाश्रितान्। यावद् भूर्वाय्वाकाशं जल वह्निशशिग्रहाः ॥१२॥
तावच्च चण्डिका पूजा भविष्यती सदा भुवि। शरत् काले विशेषेण आश्विने ह्यष्टमीषु च ॥१३॥
महाशब्दो नवम्याञ्च लोके ख्यातिं गमिष्यति। एतत्ते देवराजेन्द्र स्वर्गवासफलप्रदम् ॥१४॥
परस्परविभागन्तु क्रियायोगेन कीर्तितम् ॥१५॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे नवमीक्रियासूचनं नामैकविंशोऽध्यायः

पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र तथा अन्य ग्रहगण जब तक विद्यमान हैं, तब तक पृथिवी पर चण्डिका-पूजा होती ही रहेगी। शरत् काल में (विशेष रूप से) आश्विन मास की गौरवशाली अष्टमी तथा नवमी को क्रमशः महाष्टमी तथा महानवमी कहा जाता है। हे देवराज! यह उपाख्यान स्वर्ग में निवासरूपी फलदायक है। इस प्रकार क्रियायोगानुसार परापर विभाग का वर्णन किया गया।

एकविंश अध्याय समाप्त

●

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

चन्द्रप्रभा गता यत्र आस्ते घोरः प्रतापवान्। कैलाशं परमं स्थानं नवमेघशशिप्रभा ॥१॥
एवं महाबलं शक्र पुरा देवारिकण्टकम्। हत्वा देवी वरं प्रादाद् विष्णवादीनां प्रतोषिता ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! घोररूपी प्रतापी महाबली देवताओं के कण्टकस्वरूप तथा देवशत्रुरूप का अन्त हो जाने पर कैलाशरूप परमस्थान में जहाँ नवमेघयुक्त शशिप्रभा थी, विष्णुप्रभृति देवगणों से सन्तुष्ट होकर देवी ने उनको वर प्रदान किया।।१-२।।

इन्द्र उवाच

आश्विने घातिते घोरे नवम्यां प्रतिवत्सरम्। श्रोतुमिच्छाम्यहं तात उपवासव्रतादिकम् ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे पितामह! आश्विन मास में घोर दैत्य के विनाश की नवमी तिथि आने पर कैसा व्रत तथा उपवास विहित है, उसे सुनने की इच्छा है।।३।।

ब्रह्मोवाच

शृणु शक्र प्रवक्ष्यामि यथा त्वं परिपृच्छसि। महासिद्धिप्रदं पुण्यं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥४॥

सर्वलोकोपकारार्थं विशेषादृषिवृत्तिषु । कर्त्तव्यं ब्रह्मणाद्यैश्च क्षत्रियैर्भूमिपालकैः ।
गोधनार्थं विशैर्वत्स शूद्रैः पुत्रसुखार्थिभिः ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! तुम्हारे प्रश्नानुसार मैं महासिद्धिदायक यह धन्य धर्मकार्य सबलोगों के उपकारार्थ, विशेष करके ऋषिवृत्ति-सम्पन्न ब्राह्मणों के उपकारार्थ कहता हूँ; सुनो। यह धर्म-कर्म ब्राह्मणादि सबके लिये करणीय है। लोकपालक क्षत्रियगण को भी इसका अनुष्ठान करना चाहिये। वैश्यगण को गोधनार्थ तथा शूद्रगण को पुत्र एवं सुखादि हेतु इसका अनुष्ठान करना चाहिये।।४-५।।

महाव्रतं महापुण्यं शङ्करादैरनुष्ठितम् । कर्त्तव्यं देवराजेन्द्र देवीभक्तिसमन्वितैः ॥६॥
कन्या संस्थे रवौ शक्र शुक्लादारभ्य नन्दिकाम् । अयाची त्वथ एकाशी नक्ताशी अथवा घृतम् ॥७॥
प्रातः स्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः । जपहोमसमायुक्तः कन्यकां भोजयेत् सदा ॥८॥

हे देवराज! स्त्रीगण को सौभाग्य के लिये शिव द्वारा अनुष्ठित इस महापुण्य महाव्रत का देवीभक्ति-परायण होकर अनुष्ठान करना चाहिये। हे इन्द्र! सूर्य के कन्या राशि में स्थित होने पर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके अयाचित आहारयुक्त होकर, एक समय मात्र भोजन करके, रात्रिभोजी होकर अथवा केवल घृतमात्र पीकर रहे। नित्य प्रातः स्नान करे। द्वन्द्वों पर विजय पाकर तीनों काल शिवपूजन करता रहे। जप-होम-कुमारीभोजनादि कर्त्तव्य करे।।६-८।।

अष्टम्यां नवगेहानि दारुजानि शुभानि च। एकं वा वित्ताभावेन कारयेत् सुरसत्तम ॥९॥
तस्मिन् देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा । मृद्वाक्षीं लक्षणोपेता खड्गे शूलेऽथ पूजयेत् ॥१०॥
सर्वोपहारसम्पन्नो वस्त्ररत्नफलादिभिः । कारयेद्रथदोलादिपूजाञ्च बलिवेदिकाम् ॥११॥
पुष्पादि द्रोणविल्वाम्रजातीपुन्नागचम्पकैः । विचित्रां रचयेत् पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१२॥

हे सुरसत्तम! अष्टमी को ९ लकड़ी के घर बनाये। यदि धनाभाव हो, तब एक ही गृह बनाये। उसमें सुवर्णमयी, रजतमयी, मृण्मयी अथवा लकड़ी की सुलक्षणयुक्त देवी की प्रतिमा रखनी चाहिये। अथवा वहाँ केवल (देवी के) त्रिशूल अथवा खड्ग की भी पूजा की जा सकती है। पूजा करके समस्त उपहार से सम्पन्न होने पर (सर्व उपहारयुक्त होकर) अर्थात् वस्त्र, रत्न, फलादि अर्पित करके रथयात्रा अथवा दोलापूजा इत्यादि (उत्सव) पूजन करना चाहिये। बलिवेदिका-मात्र की भी पूजा करनी होगी। द्रोण आदि पुष्प, बिल्व-आम्र-जातीपुष्प-पुन्नागपुष्प-चम्पकपुष्प से विचित्र पूजा करनी चाहिये तथा अष्टमी को उपवास करना चाहिये।।९-१२।।

दुर्गाग्रतो जपेन्मन्त्रमेकचित्तः सुभावितः । तदर्द्धयामिनी शेषे विजयार्थं नृपोत्तमैः ॥१३॥
सर्वाङ्गलक्षणोपेतं गन्धपुष्पस्रगर्च्चितम् । विधिवत् कालिकालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् ॥१४॥

दुर्गा के आगे एकाग्र होकर तथा तन्मय होकर देवी का मन्त्रजप करके अर्द्धरात्रि के अन्त में राजश्रेष्ठगण को विजयार्थ सुलक्षण पञ्चवर्षीय पशु की गन्ध-धूप-माला से अर्चना करके 'काली-काली' जप करते-करते खड्ग से उसका वध करना चाहिये।।१३-१४।।

तस्योत्थं रुधिरं मासं गृहित्वा पूतनादिषु । नैर्ऋताय प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम् ॥१५॥
तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं कृत्वा तु पिष्टजम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात् स्कन्दविशाखयोः ॥१६॥
ततो देवीं स्नपयेत् प्राज्ञः क्षीरसर्पिर्जलादिभिः । कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनैश्चापि धूपयेत् ॥१७॥

तदनन्तर उसके मांस तथा रक्त को महाकौशिक मन्त्र से अभिमंत्रित करके देवी के अनुचरों को प्रदान करना चाहिये। इसके आगे राजा को स्नान करने के पश्चात् तण्डुलपिष्ट द्वारा बने शत्रु को खड्ग से छिन्न करके उसे स्कन्ददेव तथा उनके

पुत्र विशाख को अर्पित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् प्राज्ञ पूजक को देवी को दुग्ध-घृत तथा जलादि से स्नान कराकर कुङ्कुम-कर्पूर तथा चन्दन से लिप्त करके धूप निवेदित करना चाहिये।।१५-१७।।

हेमादि पुष्परत्नानि वासांसि अहतानि च। निवेद्य च प्रभूतं तु देयं देव्याः सुभावितैः ॥१८॥

पुष्प, सुवर्णादि रत्न, अनाहत वस्त्र (जो सिला वस्त्र न हो) को तद्गत चित्त होकर मन्त्रपाठपूर्वक निवेदन करके भगवती को अर्पित करना चाहिये।।१८।।

देवीं भक्ताश्च पूज्येते कन्यकाः प्रमदादि च। द्विजा दीनानुपासनानन्नदानेन प्रीणयेत् ॥१९॥

देवी के भक्तगण, कुमारीगण, सधवागण का पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण तथा ऐसा दरिद्र जो पाखण्डी न हो, उन्हें अन्नदान करना कर्त्तव्य होता है।।१९।।

नन्दा भक्ता नरा ये तु महाव्रतधराश्च ये। पूजयेत्तान् विशेषेण यस्मात्तद्रूपचण्डिका ॥२०॥

जो प्रतिपद से कृतनियम (नियमानुवर्त्ती) हैं (अथवा दुर्गा के भक्त हैं), महाव्रतधारी हैं, उनकी पूजा उसी प्रकार से करनी चाहिये, जैसे चण्डिका की पूजा की जाती है।।२०।।

मातराणाञ्च देवीनां पूजा कार्या तदा निशि। ध्वजछत्रपताकादिमुच्छ्रयेच्चर्च्चिका गृहे ॥२१॥
रथयात्रा बलिक्षेपं पट्टवाद्यवराकुलम्। कारयेत्तुष्यते येन देवी वस्त्रनिपातनैः ॥२२॥

मातृगण तथा देवीगण की पूजा रात्रि में करनी चाहिये। देवी के गृह (मन्दिर अथवा कक्ष) पर ध्वजा, पताका फहरानी चाहिये तथा छत्र लगाना चाहिये। रथयात्रा-बलिक्षेपण-उत्तम वाद्य बजाना, स्तव करना तथा पशुबलिदान से देवी को सन्तुष्ट करना चाहिये।।२१-२२।।

अश्वमेधमवाप्नोति भक्तीनां सुरसत्तम। महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका ॥२३॥
सर्वेषु सर्ववर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता। कृत्वाप्नोति यशो राज्यं पुत्रायुर्धनसम्पदः ॥२४॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे नवमीकल्पो नाम द्वाविंशोऽध्यायः

हे सुरश्रेष्ठ! भक्तिपूर्वक पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। महानवमी को देवीपूजा से सभी वर्ण वाले अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं। तुम्हारी भक्ति के कारण मैंने यह सब तुमसे प्रकाशित किया। इस पूजा का अनुष्ठान करने से यश, राज्य, पुत्र, आयु, धन, सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।।२३-२४।।

द्वाविंश अध्याय समाप्त

●

त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

क्षीराशी नन्दिकारभ्य देव्या भक्तिरतो नृपः। शाक यावक एकाशी प्रातःस्नायी शिवारतः ॥१॥
पूजयेत्तिलहोमैस्तु दधिक्षीरघृतादिभिः। कार्य्यन्तु देवीमन्त्रेण शृणु पूजाफलं हरे ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे देवीभक्त मानव! प्रतिपद से आरम्भ करके (नवरात्र प्रतिपदा से) दुग्धपान करके अथवा शाक-भोजी, यावकभोजी, एक समय भोजन करने वाला, प्रातः स्नान करने वाला तथा भगवती परायण होकर रहे। घृत-दुग्ध-यव तथा तिलहोम द्वारा देवीमन्त्र का पाठ करते हुये भगवती की पूजा करे। हे इन्द्र! उसे महाफल मिलता है।।१-२।।

महापातकसंयुक्तो युक्तो वा सर्वपातकैः। मुच्यते नात्र सन्देहो यस्मात् सर्वगता शिवा ॥३॥

जो महापातकी अथवा समस्त प्रकार से पातकी होकर भी इसका अनुष्ठान करता है, उसे पापों से मुक्ति मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है। शिवादेवी सर्वगता हैं।।३।।

अन्यो वा भावनायुक्तो अनेन विधिना शिवाम्। स्वयं वा अन्यतो वापि पूजयेज्जापयेत वा ॥४॥
न तस्य भवति व्याधिर्न च शत्रुकृतं भयम्। नोत्पातग्रहदुःखं वा न च राष्ट्रं विनश्यति ॥५॥

यदि अन्य व्यक्ति भावना (भक्ति) से युक्त होकर इस विधान के अनुरूप स्वयं अथवा प्रतिनिधि के माध्यम से देवीपूजा करता या कराता है, उसे रोग का तथा शत्रु का भय नहीं रह जाता। उसको उत्पात, ग्रहजनित विपदा नहीं सताते तथा राष्ट्रनाश भी नहीं होता।।४-५।।

सदा सुभावसम्पन्ना ऋतवः शुभदा घनाः। निष्पत्तिः शस्यजातानां तस्करा न भवन्ति च ॥६॥
प्रभूतपयसो गावो ब्राह्मणाः स्वक्रियापराः। स्त्रियः पतिव्रताः सर्वा निवृत्तवैरिणो नृपाः ॥७॥

उसके लिये ऋतु तथा अयन शुभप्रद हो जाते हैं। उसे शस्यसम्पन्नता होती है। उसे तस्करों का उपद्रव नहीं सहना पड़ता। उसकी गौ प्रभूत दुग्ध देती हैं। ब्राह्मण निजकर्मतत्पर हो जाते हैं। स्त्रीगण पतिव्रता हो जाती हैं। राजागण वैरीरहित हो जाते हैं।।६-७।।

फलपुष्पवती देवी वनस्पतिः महामतिः। भवते नात्र सन्देहश्चर्च्चकाविधिपूजनात् ॥८॥

हे महामति! उसके लिये वनस्पति फलप्रसू तथा पुष्पवती हो जाती हैं। विधिपूर्वक अर्चना-पूजन से ऐसा होता है, इसमें किञ्चित् संदेह नहीं है।।८।।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥९॥
अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमन्तु कारयेत्।

जयन्ती-मंगला-काली-भद्रकाली-कपालिनि-दुर्गा-क्षमा-शिवा-धात्री-स्वाहा-स्वधा को नमस्कार है। इस मन्त्र से ही जप-होम करना चाहिये। इसे प्रातः स्मरण करके भगवती महिषासुरनाशिनी का पूजन करना चाहिये।।९।।

प्रातः संस्मरिता वत्स महिषघ्नी प्रपूजिता ॥१०॥
अघं नाशयते क्षिप्रं यथा सूर्य्योदये तमः ॥११॥

हे वत्स! प्रातःकाल महिषमर्दिनी देवी को भक्ति के साथ स्मरण करने से पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय से अन्धकार का नाश हो जाता है।।१०-११।।

सिंहारूढा ध्वजे यस्य नृपस्य रिपुहा उमा। द्वारस्था पूज्यते वत्स न तस्य रिपुजं भयम् ॥१२॥
कपिसंस्था महामाया सर्वशत्रुविनाशिनी। वृषे यथेप्सितं दद्यात्कलशे श्रेयमुत्तमम् ॥१३॥

जिस राजा के ध्वज पर सिंहवाहिनी की मूर्त्ति अंकित रहती है, उस राजा के शत्रु नष्ट हो जाते हैं। जिसके द्वार पर सिंहवाहिनी की प्रतिमा रहती है, उसे शत्रुभय नहीं रह जाता। वानर पर आरूढ़ा महामाया सर्वशत्रुनाशिनी हो जाती हैं। वृषारूढ़ा देवी मूर्त्ति अभीष्ट प्रदान करने वाली होती है। ध्वज में कलस अंकित रहने पर उत्तम श्रेय प्राप्त होता है।।१२-१३।।

हंसे विद्यार्थकामांस्तु बर्हिणे सुतमिष्टदा। गरुत्मगा महामाया सर्वरोगविनाशिनी ॥१४॥

हंस पर आरूढ़ा देवीमूर्त्ति विद्या-अर्थ-काम प्रदान करती है। मयूरवाहना देवी पुत्र देती हैं। गरुड़ारूढा महामाया सर्वरोगविनाशिनी होती हैं।।१४।।

महिषस्था महामारी शमते ध्वजसंस्थिता। करिस्था सर्वकार्य्येषु नृपैः कार्य्या त्रिशूलिनी ॥१५॥

ध्वजा में वृषभ पर बैठी देवी का अंकन करके ध्वज फहराने पर वे महामारी का शमन करती हैं। हाथी पर आरूढ़ा होकर (ध्वजांकित करने पर) सर्वकार्य साधन करती हैं। त्रिशूलिनी राजा का कार्य करती हैं।।१५।।

पद्मस्था चर्च्चिका रोप्या धर्मकामार्थमोक्षदा। प्रेतस्था सर्वभयदा नित्यं पशुनिपातनात् ॥१६॥
पूजिता देवराजेन्द्र नीलोत्पलकरा वरा। भवते सिद्धिकामस्य चित्ताग्रे संव्यवस्थिता ॥१७॥

ध्वज में अंकित कमल पर आसीन देवीमूर्त्ति आरोग्य, धर्म, काम, अर्थ तथा मुक्ति देती हैं। प्रेत पर आसीन देवीमूर्त्ति पशुबलि पाने पर नित्य सर्वविध भय का हरण कर लेती हैं। हे देवराज! सिद्धिकामी व्यक्ति को देवी की नीलोत्पलधारिणी प्रशस्त मूर्त्ति को ध्वजाग्र में अंकित करना चाहिये।।१६-१७।।

गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा वस्त्रहोमसुचर्च्चितम्। फलशालि यवशुचि वर्द्धमाना विभूषितम् ॥१८॥
शोभने उच्छ्रये लग्ने पताकां वा मनोरमाम्। चामरं कलशे शंखमातपत्रवितानकम् ॥१९॥
भवते सिद्धिकामस्य नृपस्य शुभदायकम्।

वस्त्र, स्वर्णभूषित, गन्ध-पुष्पार्चित, फलशाली, यव आदि से अलंकृता मनोरम पताका शोभन लग्न में फहरानी चाहिये। चामर-शंख-छत्र-चन्द्रातप—यह सब भी ध्वजा के साथी हैं। ऐसी देवी मूर्त्तिचिह्नयुक्त सज्जित मनोरम पताका को फहराना चाहिये। यह सिद्धिकामी राजा के लिये फलप्रद होता है।।१८-१९।।

ॐ नमो विश्वेश्वरि दुर्गे चामुण्डे चण्डहारिणी ॥२०॥
ध्वजं समुच्छ्रयिष्यामि वसोर्धारां सुखावहाम् ॥२१॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे चित्रणविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः

इस ध्वज-उत्थापन मन्त्र का अर्थ यह है—हे विश्वेश्वरि! चण्डहारिणि! चामुण्डे! दुर्गे! पृथ्वी पर सुखावह ध्वज का मैं उत्थापन करता हूँ।।२०।।

त्रयोविंश अध्याय समाप्त

●

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

समयेन ऋतुमासपक्षाहादिक्रमेण तु। सूक्ष्म-स्थूल-विभागेन देवी सर्वगता विभो ॥१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे विभो! सर्वगता देवी द्वारा स्थूल, सूक्ष्म विभागक्रमेण ऋतु-मास-पक्ष-दिन-प्रभृति की कल्पना की गई है।।१।।

द्वादशैव समाख्याता समा संक्रान्तिकल्पनाः। सप्तधा सा तु बोद्धव्या एकैकैव यथा शृणु ॥२॥
मन्दा मन्दाकिनी ध्वांक्षी घोरा चैव महोदरी। राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप ॥३॥

मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा। क्षिप्रे ध्वाङ्क्षी विजानीयादुग्रैर्घोरा प्रकीर्तिता ॥४॥
चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैर्ऋक्षैस्तु राक्षसी। मिश्रिता चैव निर्दिष्टा मिश्रिताक्षैस्तु संक्रमे ॥५॥

वर्ष में १२ संक्रान्ति हैं। ये मन्द, मन्दाकिनी, ध्वांक्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी, मिश्रिता—इन सात भेद के कारण सात प्रकार की हैं। ध्रुवगण द्वारा संक्रम में मन्द्य, मृदु द्वारा मन्दाकिनी, क्षिप्र द्वारा ध्वांक्षी, उग्र द्वारा घोरा, चर द्वारा महोदरी तथा क्रूरगण द्वारा राक्षसी तथा मिश्रित गण द्वारा मिश्रिता कही जाती है।।२-५।।

त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादशमेव च। क्रमेण घटिता ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥६॥

मन्दाप्रभृति संक्रान्ति में यथाक्रमेण—मन्दा में तीन, मन्दाकिनी में चार, ध्वांक्षी में पाँच, घोरा में सात, महोदरी में आठ राक्षसी में नौ तथा मिश्रिता में १२ घटिका मुख्य पुण्यकाल होता है।।६।।

अतीतानागतान् भोगान् आद्यः पञ्चदश स्मृताः। सान्निध्यं भवते तत्र ग्रहाणां संक्रमे रवौ ॥७॥

विष्णुदेवी संक्रान्ति में अतीत-अनागत पञ्चदश दण्डकाल में ग्रहगण सूर्य से सन्निहित रहते हैं।।७।।

व्यवहारो भवेल्लोके चन्द्रसूर्योपलक्षितः। कालोऽपि कलते सर्वं ब्रह्माद्यं सचराचरम् ॥८॥

चन्द्रसूर्योपलक्षित काल से ही व्यवहार सिद्ध होता है। काल ही सबकी कलना करता है। ब्रह्मा से लेकर सचराचर की कलना काल द्वारा होती है।।८।।

पुण्यपापविभागेन फलं देवी प्रयच्छति। एकधापि कृतं तस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥९॥

इस चराचर ब्रह्माण्ड में पुण्य-पाप विभागानुसार देवी शुभाशुभ फल देती हैं। इस चराचर ब्रह्माण्ड का संहार काल ही करता है।।९।।

धर्मो विवर्द्धते ह्यायू राज्यं पुत्रसुखानि च। अधर्मव्याधिशोकादिविषुवायनसन्निधौ ॥१०॥
विषुवेषु च यज्जप्तं दत्तं भवति चाक्षयम्। एवं विष्णुपदे चैव षडशीतिमुखेषु च ॥११॥
अयनेषु विकल्पो यस्तन्मे निगदतः शृणु। यावद्विंशकला भुंक्ते तत् पुण्यमुत्तरायणे ॥१२॥
निरंशे भास्करे दृष्टे दिनान्ते दक्षिणायने। अर्द्धरात्रे तु सम्पूर्णे दिवा पुण्यमनागतम् ॥१३॥
सम्पूर्णे चार्द्धरात्रे तु उदयास्तमनेऽपि च। मानार्द्धभास्करं पुण्यमपूर्णे शर्वरीदिने ॥१४॥
सम्पूर्ण उभयोर्ज्ञेयमविवेकेऽपरेहनि। षडशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद् वये ॥१५॥
भविष्यत्ययते पुण्यमतीते चोत्तरायणे। आदौ पुण्यं विजानीयाद्यदा भिन्नातिथिर्भवेत् ॥१६॥
अर्द्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेया चापरेऽहनि। मन्दा विप्रजने शस्ता मन्दाकिन्यस्तु राजनि ॥१७॥

संक्रान्ति काल में एकगुना पुण्य करने पर करोड़ों गुना फल मिलता है। इसमें धर्म से आयु-राज्य-पुत्र-सुख का वर्द्धन होता है। इसमें अधर्म करने से व्याधि शोक आदि का भोग करना पड़ता है। विषुवादि संक्रान्तिकाल में जो जप-दानादि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। इसी प्रकार विष्णुपदी षड्शीतिमुख तथा अयनादि में दानादि का फल भी अक्षय होता है। उत्तरायण संक्रान्ति में बीस दण्ड पुण्यकाल तथा दक्षिणायन संक्रान्ति में तीस दण्ड पुण्यकाल कहा गया है। द्वादश संक्रान्ति में दण्डन्यून अर्द्धरात्रि के अभ्यन्तर में संक्रमण होने पर पूर्वदिवार्द्ध पुण्यकाल होता है। अर्द्धरात्रि अर्थात् रात्रि के अष्टम मुहूर्त्त में संक्रमण होने पर दिन के शेषार्द्ध में तथा अगले दिन पूर्वार्द्ध-पर्यन्त पुण्यकाल होता है। लेकिन अर्द्धरात्रि के अनन्तर संक्रमण होने पर अगले दिन का पूर्वार्द्ध पुण्यकाल होगा। षड्शीति तथा विषुव संक्रान्ति में संक्रमण काल के पश्चात् पञ्चदश दण्ड पुण्यकाल होगा। दिवा में संक्रमण होने पर संक्रमण काल के पूर्व का तीस दण्ड तथा उत्तरायण संक्रान्ति में

भी यही तीस दण्ड पुण्यकाल माना गया है (अर्द्धरात्रि संक्रमण के विषय में पूर्व में बहुत कुछ कहा गया है)। यदि संक्रमण काल में तथा पूर्वदिवा एकतिथि है, तब पूर्व दिवा का शेषार्द्ध ही पुण्यकाल होगा[१]। तिथिभिन्न होने पर पूर्वदिवा का शेषार्द्ध तथा परदिवा का पूर्वार्द्ध ये दोनों ही पुण्यकाल होंगे। मन्दा ब्राह्मणों के लिये उत्तम है एवं मन्दाकिनी क्षत्रियों के लिये प्रशस्त है।।१०-१७।।

ध्वांक्षी वैश्येषु विज्ञेया घोरशूद्रे शुभावहा। महोदरी तु चौराणां शौण्डिकानां जयावहा ॥१८॥
चाण्डालपुक्वशानान्तु ये चान्ये क्रूरकर्मिणः। सर्वेषां कारुकाणाञ्च मिश्रिता धृतिवर्द्धिनी ॥१९॥

ध्वांक्षी संक्रान्ति वैश्यों के लिये तथा घोर संक्रान्ति शूद्रों के लिये शुभावहा होती है। महोदरी संक्रान्ति तस्कर तथा शौण्डिकों के लिये श्रेयस्करी होती है। चाण्डाल-फुक्कस तथा अन्य क्रूरकर्मा लोगों हेतु राक्षसी संक्रान्ति उत्तम है। कारीगरों के लिये मिश्रिता धृतिवर्द्धिनी होती है।।१८-१९।।

नृपान् पीडति पूर्वाह्णे मध्याह्ने च द्विजोत्तमान्। अपराह्णे तु सा वैश्याञ्छूद्रानस्तमने रवेः ॥२०॥
पिशाचांश्च प्रदोषे तु अर्द्धरात्रे तु राक्षसान्। अर्द्धरात्रे व्यतीते तु पीड्यन्ते नटनर्तकीः ॥२१॥
उषःकाले तु संक्रान्तौ हन्ति गोस्वामिनो जनान्। हन्ति प्रव्रजितान् सर्वान् सन्ध्याकाले न संशयः ॥२२॥
एतत् स्थूलविभागन्तु भक्तिकामस्य कीर्तितम्। परमार्थेन या संख्या कथयामि नृपोत्तम ॥२३॥

दिन के पूर्वार्द्ध की संक्रान्ति राजा को पीड़ा उत्पन्न करती है। मध्याह्न संक्रान्ति ब्राह्मण को, अपराह्न संक्रान्ति वैश्यों को, अस्तगमनकालीन संक्रान्ति शूद्रों को, प्रदोषकालीन संक्रान्ति पिशाचों को, अर्द्धरात्रिकालीन संक्रान्ति राक्षसों को, अर्द्धरात्रि व्यतीत होकर होने वाली संक्रान्ति नट-नर्त्तकों को, उषाकाल की संक्रान्ति गोस्वामीगण को एवं सन्ध्याकाल की संक्रान्ति प्रव्रजित लोगों को पीड़ा उत्पन्न करती है। भक्तिकामी लोगों के लिये यह स्थूल विभाग कहा गया। अब हे राजन्! पारमार्थिक संख्या कही जाती है, सुनो।।२०-२३।।

सुस्थे नरे सुखासीने यावत् स्पन्दति लोचनम्। तस्य त्रिंशत्तमं भागं तत्परं परिकीर्तितम् ॥२४॥
तत् पराच्छतभागं तु त्रुटिरित्यभिधीयते। त्रुट्याः सहस्रभागार्द्धं तत्कालं रविसंक्रमे ॥२५॥
तत्कालेषु द्रवीभूतं त्रैलोक्यं सचराचरम्। व्यतीपातेऽपि एवं स्याद्भवेत् पुण्यं समाधिकम् ॥२६॥

मनुष्यगण स्वस्थ शरीर से सुखासीन होकर जो निमेषक्षेप करते हैं, उसके तीसवें भाग को 'तत्पर' कहा जाता है। तत्पर के १००वें भाग को त्रुटि, त्रुटि के सहस्र भाग का जो आधा है, उसमें रविसंक्रम होता है। उस समय सचराचर त्रैलोक्य द्रवीभूत हो जाता है। यही व्यतीपात होता है। इसमें कर्म करने से समधिक पुण्य मिलता है।।२४-२६।।

तत्र ब्रह्मापि सन्दिग्धमुवाच सुरसत्तम। दानाध्ययनजापादिविशिष्टं घोरहोमतः ॥२७॥
वसोर्द्धारासु लभ्येत अन्यथा न कथञ्चन। देवीकालगता वत्स यथा सूक्ष्मं प्रकीर्तिता ॥२८॥
साधकी सर्वकामानां महाभयविनाशिनी। कथिता ते मता सा तु किं भूयः परिपृच्छसि ॥२९॥

इति श्रीदेवीपुराणे संक्रान्तिविधिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः

(व्यतीपात में) इस काल में ब्रह्मा भी संदिग्ध रहते हैं। इस काल में दान-अध्ययन-जप-होम-यज्ञ-वसुधारा आदि के अनुष्ठान से समधिक पुण्य मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! देवी कालरूपा हैं। इनका तत्त्व अतिसूक्ष्म है। महाभय-

---

१. तिथि चाहे भिन्न हो अथवा अभिन्न हो, दक्षिणायन में उस दिन के शेष यामद्वय तथा उत्तरायण में अगले दिन के आद्य यामद्वय पुण्यकाल माने जाते हैं।

विनाशिनी देवी सर्वकामना प्रदान करती हैं। मैंने तुम्हारे द्वारा पूछे गये विषयों का उत्तर दिया। अब तुम क्या जिज्ञासा करते हो?।।२७-२९।।

चतुर्विंश अध्याय समाप्त

पञ्चविंशोऽध्यायः

विद्याधर उवाच

यथा सा सर्वगा देवी सर्वेषाञ्च फलप्रदा। तथाहं श्रोतुमिच्छामि वसोर्द्धारां सुविस्तराम्।।१।।

विद्याधर कहते हैं—सर्वाधिष्ठात देवी जिस प्रकार के अनुष्ठान से समस्त प्रकार के फल प्रदान करती हैं, उस वसुधारा के विषय में सुनना चाहता हूँ।।१।।

अगस्त्य उवाच

ब्रह्मणा या समाख्याता देवराजस्य पृच्छतः। विधिश्च पापहा श्रोतुः शृणुष्वावहितो मम।।२।।
वसोर्द्धारा स्थिता देवी सर्वकामप्रदायिका। तथा ते कथयिष्यामि शृणु पुण्यविवृद्धये।।३।।
सर्वेषामेव देवानां कथिता देवी चोत्तमा। विशेषेण तु वह्निस्था आयुरारोग्यदा मता।।४।।
विजयं भूमिलाभन्तु प्रियत्वं सर्वमानवान्। विद्यासौभाग्यपुत्रादि कुण्डस्था संप्रयच्छति।।५।।

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—ब्रह्मा ने देवराज से इसे कहा था। मैं भी तुमसे कहता हूँ, श्रवण करो। जो इसे सुनता है, विधाता उसके पाप हर लेते हैं। वसुधारात्मिका देवी सर्वकामप्रदा हैं। उनके सम्बन्ध में कहता हूँ। तुम अपनी पुण्यवृद्धि हेतु इसे सुनो। कुण्डस्था देवी विजय, भूमिलाभ, सर्वलोकों में प्रियत्व, विद्या, सौभाग्य तथा पूजादि प्रदान करती हैं।।२-५।।

तस्मान् नृपेण भूत्यर्थे वसोर्द्धाराश्रिता शिवा। पूजनीया यथाशक्त्या चण्डी कामफलप्रदा।।६।।
रुद्रादित्या ग्रहा विष्णुर्वयं यक्षाः सकिन्नराः। हुताशनमुखाः सर्वे दृष्टादृष्टफलप्रदाः।।७।।
गोदानं भूदानञ्च रत्नं सर्पिस्तिलानि च। दानानि महतान्याहुस्तेषां धारा विशिष्यते।।८।।

रुद्र, आदित्य, ग्रहगण, विष्णु, यक्ष, किन्नर इनको मेरी प्रकृति हुताशन द्वारा देखती है तथा अदृष्ट फल देती है। गोदान-भूदान, रत्न-सर्पि-तिल प्रभृति समस्त महादान है, उसमें वसुधारा सर्वोत्तम है। अतः राजागण को यत्नतः इनकी पूजा करनी चाहिये। इससे ऐश्वर्य तथा कामनाओं की पूर्त्ति होती है।।६-८।।

विप्राणां कोटिकोटीनां भोजयित्वा तु यत्फलम्। तद्वत्तनिरतैः शान्तैरेकेनापि च तद्भवेत्।।९।।
व्यतीपाते न सन्देहः स च सूक्ष्मः प्रकीर्तितः। अयने विषुवच्चैव दिनच्छिद्रं तथैव च।।१०।।
दुष्प्रापं दानं होमानां धारायां लभते नृपः। तस्मान् नृपेण वृद्ध्यर्थं दृष्ट्वादृष्टजिगीषुणा।।११।।

करोड़ों ब्राह्मणभोजन का जो फल है, व्यतिपात के समय धारादान करने से वह इसी से मिल जाता है। अयन-विषुव तथा दिनछिद्रकाल में दान-होम तथा वसुधारा से दुष्प्राप्य फल मिलते हैं। अतएव दृष्ट-अदृष्ट-शत्रुजय के लिये नृपतिगण को सर्वकामप्रदा तथा जयदा वसुधारा का दान करना चाहिये।।९-११।।

वसोर्द्धारा प्रकर्त्तव्या सर्वकामं जयावहा। समं वा अथवार्द्धं वा ऋतुमासार्द्धवासरम्।।१२।।
कृत्वा विभवरूपेण शाश्वतं लभते फलम्। एकाहमपि यो देवीं कल्पयित्वा हुताशने।।१३।।

पातयेत् सर्पिषो धारां स लभेतेप्सितं फलम्। देवीमातृसमीपस्थं शिवविष्णुसमीपगम् ॥१४॥
भानोः प्रजापतेर्वापि वसोर्द्धारा गृहे भवेत्। चिरन्तनेषु सिद्धेषु स्वयं वा संस्कृतेषु च।
पर्वतेषु च दिव्येषु नदीनां सङ्गमेषु च ॥१५॥
गृहासु च विचित्रासु गृहगर्भेषु भूमिषु। दत्त्वा समीहितान् कामान् विधिना लभते नृपः ॥१६॥
अथ सामान्यतो गेहं समसूत्रं जनोन्मुखम्। वास्तुसंशुद्धिविन्यासमेकादशकरं परम् ॥१७॥
त्रीणि पञ्चाथ सप्ता वा दश वा नव कारयेत्। विंशैकं वा बहूनां वा त्रिंशदूर्ध्वं न कारयेत् ॥१८॥

वर्ष अथवा आधे वर्ष में, ऋतु अथवा मास में, अर्द्धमास किंवा दिवसक्रम में विभवानुरूप धारादान करने से शाश्वत फललाभ होता है। यदि व्यक्ति एक दिन भी अग्नि में देवी की कल्पना करके घृतधारा गिराता है तो वह ईप्सित फललाभ करता है। देवी—माता, शिव तथा विष्णु के पास, शैल, दरी (सलिङ्ग), तोरणप्रभृति अथवा प्रजापति का वसुधारागृह, चिरप्रसिद्ध अथवा संस्कृत निवास, पर्वत, नदीसंगम, पर्वतगुहा; किंवा घर में धारादान से अभीष्टसिद्धि होती है। सामान्यतः घर के एक ओर समसूत्रभाव से धारादान से वास्तुशुद्धि हो जाती है। ३-५-७-९-१० अथवा अधिक इच्छा होने पर २१ संख्यक धारा दी जाती है। ३० से अधिक देना उचित नहीं है।।१२-१८।।

पक्वेष्टं शैलदार्वं वा सलिङ्गं सह तोरणम्। पञ्च सप्त नवास्यं वा गवाक्षकविभूषितम् ॥१९॥
सर्वतोभद्रविन्यस्तं क्रमवृद्ध्या विवक्षितम्। ऊर्ध्वधूमस्य निष्कासं सप्रकाशं विशेषतः ॥२०॥

इति श्रीदेवीपुराणे तोरणविधिर्नाम पञ्चविंशोऽध्यायः

५-७ अथवा ९ धारा क्रमशः वृद्धि करते-करते गवाक्षादि प्रदेश को भूषित करने से वह सर्वतोभद्र रूप से विन्यस्त होती है अर्थात् धूँआ ऊर्ध्व निकले तथा अग्नि विशेषतः प्रकाशयुक्त रहे (बुझी न हो)।।१९-२०।।

पञ्चविंश अध्याय समाप्त

●

षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सदैवं सग्रहं कार्य्यमथवा देवतोरणम्। तस्य मध्ये भवेत् कुण्डं हस्तादिलक्षणान्वितम् ॥१॥
चतुष्कमथ वृत्तं वा पङ्कजाकृति चाथ वा। पृथिवी जयदं शक्र वृत्तं कामफलप्रदम् ॥२॥

देवगृह अथवा देवतोरण के मध्य में यथाविहित एक हाथ परिमित कुण्ड-निर्माण करे। कुण्ड चतुष्कोण, वर्तुल अथवा कमल के समान होना चाहिये। चतुष्कोण कुण्ड पृथिवी-विजय का मूल है। वृत्तकुण्ड से इष्टसिद्धि होती है।।१-२।।

पङ्कजे जयमारोग्यं योगज्ञानप्रदायकम्। शेषाः कार्यविभागेन कुण्डाः कार्य्या विजानता ॥३॥
सामान्यं सर्वहोमेषु शक्रकुण्डं वरोत्तमम्। विस्तारं खाततुल्यन्तु मेखलैस्त्रिभिर्भूषितम् ॥४॥

पद्माकार कुण्ड जय, आरोग्य तथा योगज्ञान का प्रयोजक है। अन्य सब प्रकार के जो कुण्ड होते हैं, वे कार्यविशेष के अनुरूप बनाये जाते हैं। चतुष्कोण कुण्ड सभी होम के लिये है तथा सुखप्रद है। कुण्ड की गहराई जितनी हो, उसका विस्तार भी उतना ही होना उचित है। कुण्ड की मेखला (कुण्ड को घेरने वाली रेखा) तीन होनी चाहिये।।३-४।।

चत्वारि त्रीणि द्वे कुर्य्यादंगुलं कुण्डमानतः। द्विगुणान् द्विगुणे कुण्डे होममात्रेण कारयेत् ॥५॥
एवं संसाधयेद्विप्र स्तुतः पात्रं सशृंखलम्। हैमं वा राजतं वापि ताम्रं वा लक्षणान्वितम् ॥६॥

(एक हाथ के कुण्ड में) एक मेखला का विस्तार चार अंगुल, अन्य मेखला तीन अंगुल तथा अन्य मेखला दो अंगुल की होगी। होम के अनुसार कुण्ड का मापविशेष होने पर मेखलाविस्तार का भी (उसी अनुपात से) परिमाणविशेष होगा। जैसे द्विगुण (दो हाथ के) कुण्ड की मेखला का विस्तार भी द्विगुण होगा (दो हाथ के कुण्ड की एक मेखला ८ अंगुल चौड़ी, अन्य मेखला ६ अंगुल चौड़ी तथा अन्य तीसरी मेखला ४ अंगुल चौड़ी होगी)। होम करने वाला ब्राह्मण इस प्रकार से करके शृंखला-सम्पन्न चार घृतपात्र लाये। वे स्वर्ण, चाँदी अथवा ताम्रनिर्मित एवं लक्षणयुक्त होने चाहिये।।५-६।।

चत्वारि कटकोपेतमयः शृंखलसंग्रहम्। तस्य मध्ये भवेद्रन्ध्रं कर्णार्द्धस्य शलाकया ॥७॥
होमोत्थया प्रमाणेन चतुरंगुलमानया। घृतनिष्क्रमणार्थाय कुर्य्यात् सम्यक् विपश्चितः ॥८॥

घृतपात्र में लौह की सिकड़ी तथा कड़ा रहे। इसमें स्रुक् पात्र रखना होगा। उसमें ४ अंगुल का शलाकाछिद्र बनाये। आधा तोला घृत निकल सके, छिद्र ऐसा हो।।७-८।।

पलैर्दशभिरर्द्धोन्यैर्नान्येकान्तु मया व्रजेत्। पञ्चभिस्तु शतैर्होमः सप्तत्या च षडस्त्रया ॥९॥
यथा पूर्णा व्रजेद्वत्स तथा कुर्य्यान्न चान्यथा। हस्तमात्रं भवेद् हैमं शृंखलं भुजगाकृति ॥१०॥
रन्ध्रे सूत्रनिबद्धञ्च अवलम्ब्य अधस्तनम्। मणिं वा पङ्कजं पात्रमाश्वत्थं कारयेत्तले ॥११॥

(रघुनन्दन भट्ट का मत है कि सहस्र होमार्थ कुण्ड १ हाथ का हो। अयुत होमार्थ दो हाथ का एवं एक लाख होमार्थ चार हाथ का कुण्ड बनाये। कुण्ड का जो माप है, उसकी गहराई भी वही होनी चाहिये।) ७६ का आधा कर्ष अर्थात् ३८ कर्ष में से साढ़े ९ पल घृत एक दण्ड में होमकुण्ड में गिर सके तथा ऐसे ही ५७ पल घृत एक अहोरात्रि में यथाप्रमाण होमकुण्ड में गिर सके; तदनुसार छिद्र रखे। इसे अन्यथा न करे (अर्थात् मनमाना कार्य न करे)। सुवर्ण का सिक्कड़ एक हाथ का सर्पाकृति हो। स्रुक् का छिद्र सूत्र के समान अधोदेश में लम्बमान हो। अथवा हथेली पर मणिमय पात्र अथवा पद्मपत्र अथवा पीपल के पत्ते को लेकर होम करे।।९-११।।

एवं कार्य्यानुरूपेण द्विगुणं त्रिगुणं पिवा। कुर्य्यात् पात्रं घृतं वेधं प्रतिष्ठाविधिचोदितम् ॥१२॥
उद्देशं किञ्चिदत्रापि कथयामि नृपोत्तम। समायनऋतुर्मासपक्षाहोरात्रपूर्ववत् ॥१३॥
लग्नादि विशोधयेद्वत्स सर्वकामप्रदा यथा। क्षणिकेषु च कार्य्येषु भक्तियुक्तं क्षणे शुभे ॥१४॥
क्षणं देवी च द्रष्टव्या यथा सर्वगता शिवा। तत्त्वभूता ग्रहा नागास्त्रिगुणापि शिवा गुणाः ॥१५॥

इस प्रकार कार्यानुसार प्रतिष्ठाविधिसम्मत घृतपात्र, घृत एवं स्रुक् प्रभृति लाये। हे वत्स! वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष तथा अहोरात्रत्रय के समान लग्नादि की विशुद्धि भी करे। सुविशुद्ध समय में आराधित होने पर देवी सभी इष्ट फल देती हैं। क्षण-स्थायी कार्यों में शुभ क्षण में भक्ति के साथ सर्वव्यापिनी शिवा का एक क्षण के लिये भी अवलोकन करना उचित है। परमा प्रकृति शिवा निर्गुण होकर भी त्रिगुण हैं। वे निखिल तत्त्व हैं, वे ही ग्रहगण तथा नागगणस्वरूपा हैं।।१२-१५।।

नित्ये नैमित्तिके होमे मन्त्रयोगेन दापयेत्। यो यस्य भक्तिमासक्तस्तस्य कुर्य्यात्तु सन्निधिम् ॥१६॥

नित्य-नैमित्तिकादि सभी होम में मन्त्रपाठ करते हुये शिवा हेतु आहुति देनी चाहिये। जो व्यक्ति देवी के प्रति भक्तियुक्त होता है, उसके सन्निधान में वे निश्चय आगमन करती हैं।।१६।।

सग्रहान् लोकपालांस्तु मातरा भुजगं पिवा। कल्पयेत् सर्वहोमेषु देवी एतैर्व्यवस्थिता ॥१७॥
स्थूलरूपा तु तैस्तुष्टैस्तुष्टा देवी महाफला। कालादिबलिगन्ध्यादिप्रतिष्ठावच्च कारयेत् ॥१८॥

होमकर्त्ता द्वारा नवग्रह, दस लोकपाल, मातृगण, सर्पगण सभी को आहुति देनी चाहिये; क्योंकि देवी इनके साथ अवस्थित रहती है। स्थूलरूपा महाबला देवी इनकी सन्तुष्टि से सन्तुष्ट होती हैं। सम्पन्न व्यक्ति जैसे प्रतिष्ठाकाल में (फलादि का) अर्पण करता है, उसी प्रकार सभी काल में फल, बलि तथा गन्धादि प्रदान करना चाहिये।।१७-१८।।

यदा सम्पत्तिसम्पन्नः सर्वकाले प्रदापयेत्। तदा मन्त्रग्रहभूतान् लोकपालान् निवेशयेत्॥१९॥
हैमराजतताम्रा वा सुनिवेशोपलक्षिता। वस्त्रपुष्पबलिर्गन्धदक्षिणादि यथाक्रमम्॥२०॥
मातरं लोकपालानां ग्रहाणाञ्च यथाविधि। हृदयेन प्रदेयन्तु मूलमन्त्रैः पुरातनैः॥२१॥

पहले ग्रहों की पूजा तथा ग्रहों को आमन्त्रित करके सुवर्णमयी, रौप्यमयी अथवा ताम्रमयी प्रतिमा में लोकपालगण को तथा मातृगण एवं ग्रहगण को यथाविधि वस्त्र, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य प्रदान करके दक्षिणा अर्पित करनी चाहिये। प्रसिद्ध मूलमन्त्र से अथवा वस्तु का नाम लेकर अन्त में नमः लगाकर इन उपचारों को प्रदान करना चाहिये।।१९-२१।।

अथवा सर्वसामान्यां वैदिकामपि कारयेत्। अथर्वविधिना वत्स पूर्वोक्ता वा यथा पुरा॥२२॥
प्रभूतमन्त्रनैवेद्यैर्भूरिदक्षिणसंयुतैः। कुर्य्यान्महाप्रयत्नेन अन्यथा न कथञ्चन॥२३॥

अथवा इनकी अथर्वविधि-सम्मत सर्वसाधारण पूजा करनी चाहिये। बृहत् नैवेद्य तथा प्रचुर दक्षिणा के साथ इनकी पूजा प्रयत्न से करनी चाहिये। अन्य प्रकार से पूजा नहीं करनी चाहिये।।२२-२३।।

छेदे भयं विजानीयात्तदथ तन्न कारयेत्। सहस्राहुतिहोमेन यत्र तत्र निवेशयेत्॥२४॥
मूलमन्त्रेण देव्यायाः शृंखला हृदयेन तु। घृतञ्च शिरोमन्त्रेण शिखायां तत्र पातयेत्॥२५॥
कवचेन तथा वह्निं रक्षयित्वा प्रदापयेत्। अश्वमेधेन मन्त्रेण सर्वं सर्वासु निक्षिपेत्॥२६॥

इनके लिये पशुबलि देना भयावह है; अतः वह न करे। सहस्राहुति होम कुण्ड में निवेदित करना चाहिये। यह कार्य देवी के मूल मन्त्र से किया जाता है। शृखल के लिये नमः, घृत के लिये मन्त्र वह्निजाया (स्वाहा), घृतपातनार्थ वषट् लगाये। 'हुं' मन्त्र से रक्षण तथा वौषट् मन्त्र से समस्त वस्तु को यथास्थान स्थापित करना चाहिये।।२४-२६।।

लोकपालान् ग्रहान् नागान् द्वादशार्द्धेन पूजयेत्। शिवाद्यान् सनकाद्यांश्च देवाद्यानपि पूजयेत्॥२७॥
नित्येषु च महाप्राज्ञ नैमित्तेषु विशेषतः। पञ्चकानि च सप्तादि नवकानि क्रियादिकैः॥२८॥
अग्ने वर्णाश्च गन्धश्च शब्दाश्चाकृतयस्तथा। विकाराश्च तथा वत्स बोद्धव्याः सिद्ध्यसिद्धिदाः॥२९॥

लोकपाल, ग्रह, नाग, शिवादि देवता, सनकादि ऋषिगण तथा अन्य देवताओं की होमपूजा विधेय है। हे महाप्राज्ञ! नित्य-नैमित्तिक क्रियामात्र में ही पञ्चाग्नि, सप्ताग्नि अथवा नवाग्नि होम कर्त्तव्य है। अग्नि का वर्ण, गन्ध, शब्द, आहुतिग्रहणभङ्गी, विकार तथा उसकी शिखा द्वारा कार्य सिद्ध होगा अथवा असिद्ध होगा—इसका अनुमान किया जाता है।।२७-२९।।

तदन्ते च स्तवं कार्यं सर्वकामप्रदायकम्। येन सान्निध्यमायाति सर्वहोमेषु मङ्गला॥३०॥
सहस्रार्चि महातेजा नमस्ते बहुरूपिणे। नीलकण्ठ शितिकण्ठ पीतवासाय पावने॥३१॥

तदनन्तर सर्वकामप्रदायक स्तव करना चाहिये। इस स्तव के फल से सर्वमङ्गला देवी सभी होम में सन्निहित रह जाती हैं। हे सहस्रार्चि! आप महातेजा तथा बहुरूपा हैं। आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ हैं। आप शितिकण्ठ हैं। आप ही पीतवासा पावन हैं।।३०-३१।।

स्रुवमेखलधाराय ब्रह्मणे दहने नमः। सर्वाशिने सर्वभर्त्रे पावकाय नमो नमः ॥३२॥

आप स्रुव मेखलाधारी, ब्रह्मरूपी दहन हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वभक्षक हैं। आप सर्वगत हुताशन हैं। आपको नमस्कार है।।३२।।

दुर्गाय उमारूपाय स्त्रीलिङ्गाय सुतेजसे। वसु अश्विनरूपाय सर्वाहाराय वै नमः ॥३३॥
त्वं रुद्र घोरकर्मासि घोरहा परमेश्वरः। विष्णुस्त्वं जगतां पालो ब्रह्मा सृष्टिकरः स्मृतः ॥३४॥
त्वञ्च सर्वार्थको देव यमाय पिशिताशिने। वरुणानिलाय सोमाय ईशदेवाय वै नमः ॥३५॥
सूर्य्याय चात्रिपुत्राय भूसुताय बुधाय च। बृहस्पतये शुक्राय शनि राहोऽथ केतवे ॥३६॥
सर्वगे ग्रहरूपाय व्यालमातङ्गरूपिणे। वृष्टिसृष्टिस्थितिर्भूतिकर्त्ताय वरदाय च ॥३७॥

आप दुर्गास्वरूप हैं। आप ही उमारूपी स्त्रीलिङ्ग हैं। हे सुतेजः! आप ही वसुगण तथा अश्विनीकुमाररूप हैं। हे सर्वभुक्! आपको नमस्कार है। आप ही संहारक रुद्र हैं। आप ही घोर दानवहंता परमेश्वर हैं। आप जगत्पालक विष्णु तथा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं। हे देव! आप ही सर्वस्वरूप लोकपालरूप से स्थित हैं। आप ही इन्द्र-अग्नि-यम-निर्ऋति-वरुण-राहु-चन्द्र तथा ईशान हैं। आपको नमस्कार है! आप ही सूर्य-चन्द्र-मंगल बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-राहु-केतु ग्रहरूपी हैं। आप ही सर्वग तथा व्यालमातङ्गरूपी भी हैं। आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टिकर्त्ता-स्थितिकर्त्ता-ऐश्वर्यप्रदाता-वरप्रदाता हैं, आपको नमस्कार है।।३३-३७।।

नमस्ते स्कन्दमातस्त्वं पित्रे चापि नमो नमः। कुण्डे वा मण्डले वापि स्थंडिले वापि त्वं विभो ॥३८॥
महानसे वा त्वां देव हुत्वा इष्टं लभेन्नरः। घृतक्षीररसधान्यतिलव्रीहियवान् कुशान् ॥३९॥
भावादभावतो वापि सततं होमयेदनले। एवं विधिविहीनोऽपि नरो विगतकिल्विषः ॥४०॥
किं पुनर्नित्यहोमं तु वसोर्द्धारा हुताशने।सर्वमङ्गलमन्त्रेण पूर्णाहुतिं प्रदापयेत् ॥४१॥

आपही कार्त्तिकेय के पिता-मातारूप हैं। आपको नमस्कार है। हे प्रभो! कुण्ड, मण्डल, स्थण्डिल अथवा महानस में आपको जो लोक में फलदाता है, अनेक इष्ट फल देने वाले हैं, लोग प्राप्त करते हैं। घृत-दुग्ध, रस, धान्य, तिल, व्रीहि, यव, कुशादि द्रव्य की अग्नि में आहुति देनी चाहिये। धनहीन व्यक्ति भी इस प्रकार होम करके पापरहित हो जाता है। जो नित्य होमकर्त्ता तथा वसुधारा-प्रदाता है, उसके बारे में तो क्या कहा जाय? सर्वमंगल मन्त्रों से पूर्णाहुति देनी चाहिये।।३८-४१।।

लोकपालग्रहाणां तु ओंकारेण नमोऽन्तिकैः। स्वैः स्वैर्मन्त्रैस्तु शेषाणां होमं कार्यं नृपोत्तम ॥४२॥

हे नृपोत्तम! मन्त्र के आदि में ॐकार तथा अन्त में नमः शब्द लगाकर इस प्रकार से लोकपाल तथा ग्रहगण के उद्देश्य से होम करना चाहिये। अन्य देवताओं के लिये उनके-उनके ही मन्त्र से होम करना चाहिये।।४२।।

अन्नं विचित्रं शुष्कञ्च संस्कृतं घृतपायसैः। होमयेद्विधिवद् विप्रो बलिञ्चापि प्रदापयेत् ॥४३॥
सितवस्त्रधरो भूपः सबलः सह वाहनः। पूजयेत् शम्भुं रुद्रादीन् मातरं पितरं द्विजान् ॥४४॥
आचार्य्यान् ब्राह्मणांल्लोकान् सर्वाश्रमरताश्च ये। नटनर्त्तकवेश्याश्च कन्यका विधवाः स्त्रियः ॥४५॥
दीनान्धकृपणांश्चैव अन्नदानेन पूजयेत्। एवं निवेशनं कृत्वा नित्यं जप्यं शतं शतम् ॥४६॥
प्रातर्मध्याह्नसंध्यायां स्तवं शान्तिं प्रकीर्त्तनम्। भवते नृपराष्ट्रस्य पूर्वोक्तं फलदायकम् ॥४७॥

इति श्रीदेवीपुराणे वसोर्द्धारानिवेशनविधिः नाम षड्विंशोऽध्यायः

विचित्र, विशुद्ध घृतपायस से शुद्ध अन्न से भी यथाविधि होम करना चाहिये तथा बलि प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर शुक्लवर्ण वस्त्र धारण करके राजा को सबल (शस्त्र) तथा सवाहन (वाहन के साथ) शिव, रुद्रादि देवता, माता, पिता, द्विज

तथा आचार्यों का पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण, सब प्रकार के आश्रमी, नट, नर्तक, कुमारी, विधवा, दीन, अन्ध तथा अनाथ व्यक्तियों को यथोचित सम्मान के साथ अन्नदान करना चाहिये। इस प्रकार से शत-शत स्थान में वसुधारा का निवेशन करके प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल यह स्तव पढ़ने से राजा के राज्य में शान्ति तथा पहले वर्णित विविध फल प्राप्त होते हैं।।४३-४७।।

षड्विंश अध्याय समाप्त

●

सप्तविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तप्तहाटकवर्णेन सूर्य्यसिन्दूरकान्तिकृत्। शङ्खकुन्देन्दुपद्माभो घृतक्षीरनिभः शुभः ॥१॥
जवाभोऽशोकपुष्पाभो लाक्षादरसमन्वितः। शुभदः सर्वकार्याणां विपरीतो ह्यसिद्धिदः ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—तप्त काञ्चनवर्ण, सूर्यवर्ण, सिन्दूरवर्ण, शङ्ख, कुन्द, चन्द्र, पद्म के समान वर्णयुक्त अथवा घृत-दुग्धवर्ण की होमाग्नि शुभसूचक होती है। जवावर्ण, अशोकपुष्पवर्ण तथा लाक्षारस के समान वर्ण वाली होमाग्नि सभी कार्यों में शुभसूचक होती है। इसके विपरीत (वर्ण) होने पर कार्यसिद्धि नहीं होती।।१-२।।

मेघदुन्दुभिशङ्खानां वेणुवीणास्वनः शुभः। वृषेन्द्रनृपकाकानां कोकिलास्वनपूजितः ॥३॥
कुंकुमागुरु-कर्पूरसित-गन्धि च पूजितः। हंसछत्रेभगोकुम्भपद्माकृतिकरः शुभः ॥४॥
सिंहबर्हिणश्येनानां चामराकृतिरिष्टिदः। सधूमो मृतगन्धा च मूकः षड्वरणोपमः ॥५॥
छिन्नज्वालोऽथ वा रौद्रो नेष्टः सर्वेषु पावकः। सुसंहतशिखः शक्र उद्ध्वं वातेऽपि याति यः ॥६॥
लेलिहानः शुभः कुण्डो दीप्तिमान् वरदोऽनलः। एवंविधः सदा पार्थ यज्ञैनैवाहस्थापनैः ॥७॥
यात्रायां ..क्रकेतौ च सर्वकार्येषु सिद्धिदः। न्यूना या वहेद् धारा मानात् सर्पिर्न सा शुभा ॥८॥

मेघ-दुन्दुभि-शङ्ख-वेणु तथा वीणा के समान होम की अग्नि का शब्द शुभ होता है। महावृषभ तथा कोयल के समान शब्द भी शुभ कहा गया है (यहाँ मूलोक्त 'नृपकाकाना' शब्द शुद्ध न होने से 'महावृषभ तथा कोयल' का पाठान्तर ग्रहण किया है)। होमाग्नि से कुङ्कुम, अगुरु अथवा कर्पूर के समान निकलने वाली गन्ध शुभ होती है (मूल में 'सित' का प्रयोग असंगत लगता है)। होमाग्नि की ज्वाला छत्राकृति, कुम्भाकृति, हंसाकृति, पद्माकृति शुभ तथा सिंह, मयूर, श्येन (बाज) भी पूंछ जैसी अरिष्टप्रद कही गयी है। धूआँ युक्त, घृत गन्धवाली, निःशब्द, भ्रमर जैसी काली, ऊपर से (ज्वाला के सिरे से) छिन्न तथा भयानक लगने वाली अग्निज्वाला शुभ नहीं होती। घनी शिखायुक्त ऊर्ध्वगामी होमाग्नि शुभसूचक कही गयी है। लपलपाती तथा कुण्ड में प्रदीप्त होमाग्नि भी शुभसूचक है। इस प्रकार की अग्नि यज्ञ-विवाह-प्रतिष्ठा-यात्रा-शक्रध्वजोत्सव इत्यादि सर्वकार्य में शुभ है। जब घृतधारा यथोक्त परिणाम से कम हो तो वह शुभ नहीं होती।।३-८।।

नाधिका शस्यते विप्र दुर्भिक्ष-कलि-कारिका। नुदते वहमाना या शंसते च हुताशनम् ॥९॥
सापि चान्यं नृपमिच्छेत् यावद् घोरायते भुवि। ऋजुनादी महारूपा मनोज्ञा प्रियकारिका ॥१०॥
सुवर्णा हेमवर्णा च धारा राज्यविवृद्धये। सततं पतते यातु तनोतीव च पावकम् ॥११॥
तनोति नृपराष्ट्रं सा वसोर्द्धारा न संशयः। सुगन्धि स्वच्छं विमलं कृमिकीटविवर्जितम् ॥१२॥
शस्यते च वसोर्द्धारा सर्पिर्गव्यन्तु पूजितम्। अभावाद् गव्यलाजं वा होतव्यन्तु सुशोभनम् ॥१३॥

घृतधारा यदि अधिक है, तो वह दुर्भिक्षकारिका होती है। यही युद्धादि का कारण भी हो जाती है। यदि अग्नि में दी जा रही घृतधारा बीच में भग्न हो जाती है (धारा खण्डित हो जाय) तब अथवा उसके द्वारा अग्निशिखा का नाश हो जाने पर उस राजा का नाश हो जाता है। यह पृथिवी के लिये भी भयंकर स्थिति वाली होती है। जो धारा अग्नि पर गिरकर अग्नि को (और भी) प्रदीप्त कर देती है तथा ज्वाला को शब्दयुक्त करती है, ऐसी मनोहर परिमाणानुसारिणी धारा इष्टसाधिका होती है। सुवर्णवर्णी अथवा उत्तमवर्णी धारा भी राज्यवृद्धि का हेतु है। जो वसुधारा (घृतधारा) अविच्छिन्नतया अग्नि पर गिरती है तथा अग्नि को बढ़ाती है, वह राज्य के राज्यविस्तार की सूचक होती है, इसमें संशय नहीं है। सुगन्धित, सीधी, मलरहित, कृमि-कीट-रहित गाय के घृत की वसुधारा प्रशस्त होती है। यदि गोघृत का अभाव हो, तब महिषघृत अथवा बकरी के घृत द्वारा किया गया होम भी समस्त पीड़ा का विनाश कर देता है।।९-१३।।

घृतक्षौद्रपयोधारा सर्वपीडानिवारिणी। गुड्वीशकलैर्होमं सहकारदलैः शुभैः ॥१४॥
अश्वत्था मालती दूर्वा आयुरारोग्यपुत्रदा। सौभाग्यञ्च श्रियं देवी प्रयच्छत्यविचारणात् ॥१५॥
अर्कादि वा शुभा वत्स सफला सर्वकामिका। होतव्या सर्वकालन्तु मातरादविच्छेदिनी ॥१६॥

गुरुच के टुकड़े, आम के पत्तों द्वारा किया होम भी शुभ होता है। पीपल, मालती तथा दूर्वा के होम से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है और इन समस्त वस्तुओं द्वारा होम से भगवती तत्क्षण सौभाग्यलक्ष्मी प्रदान करती हैं। मदार के पुष्पों द्वारा होम भी सर्वदा अभीष्ट प्रदान करता है। सर्वकाल में होम करने से शत्रु नष्ट होते हैं।।१४-१६।।

सर्वकालं वृतं प्रोक्तं निमित्ते चात्मवित्तमः। विशुद्धि सर्पिषा यानि तानि नात्र विचारयेत् ॥१७॥
ज्वालावर्णं शुभं गन्धं सर्वहोमेषु लक्षयेत्। संयतो संयताहारैः सर्वशास्त्रार्थपारगैः ॥१८॥
जपहोमरतैर्भूप धारा देया च तद्विदैः। पाषण्डविकलान् लुब्धान् धर्म्मापेतान् असंयतान् ॥१९॥
सर्वकालप्रदायी तु न वदेन्नावलोकयेत्। मृत्युञ्जयं महातत्त्वं चतुःसप्ताष्टजापिना ॥२०॥
भाव्यं वै नित्यहोमे तु अन्यथा विफलं भवेत्। सामान्या या भवेद्धारा तस्मिञ्जप्यं शतं शतम् ॥२१॥
प्रातर्मध्याह्नसन्ध्यासु सर्वकामसमृद्धये। वसुद्रव्यं घृतमाज्यममृतं हविः कामिकम् ॥२२॥
तस्य धारा सदा देया वसोर्द्धारा हि सा मता। वसुना स्वर्गकामेन दक्षेण च महात्मना ॥२३॥
मया च विष्णुना शक्र रुद्रेण च सहोमया। आत्मानञ्च स्वरूपेण धारायान्तु प्रदापयेत् ॥२४॥
देवी सान्निध्यमायाता सर्वकामप्रदायिका। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र वसोर्धारां प्रपातय ॥२५॥
नातः परतरं पुण्यं विद्यते नृपसत्तम। वसोर्द्धाराप्रदानस्य एकाहमपि यद्भवेत् ॥२६॥

सभी समय नैमित्तिक कार्यों में घृत प्रशस्त है। विशुद्ध घृतहोम से जो फल मिलता है, इन सब द्रव्यों से हवन करने से वह फल नहीं मिलता। अग्निशिखा, अग्नि के वर्ण एवं गन्ध से होमकर्त्ता को शुभ-अशुभ संकेत समझ लेना चाहिये। हे राजन्! सर्वदा संयत होकर जप-होम में परायण कार्यज्ञ ब्राह्मण द्वारा कभी भी धर्म से बाहर (विधर्मरत) एवं असद्ग्राही व्यक्ति के साथ सम्पर्क नहीं करना चाहिये। उधर देखना भी वर्जित है। पाखण्डी, विकल, लुब्ध, असंयत व्यक्ति से दूर ही रहना चाहिये। नित्य होम में मृत्युञ्जय महामन्त्र का समयानुरूप ४ बार, ७ बार तथा ८ बार जप करना चाहिये। अन्यथा होम सफल नहीं होता। इसके अतिरिक्त सामान्य वसुधारा में प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल १०० बार मन्त्रजप करना चाहिये। वसु, द्रव्य, घृत, आज्य, अमृत, हवि तथा कामिक की धारा सदा देनी चाहिये (ये सब घृत के ही पर्याय हैं, एक ही वस्तु के नाम हैं)। इसी का नाम वसुधारा है। स्वर्गकामी वसु तथा दक्ष ने इस धारा को प्रदान किया था। हे इन्द्र! मैं, विष्णु, शिव, दूर्गा सभी वसुधारा में स्वरूपतः अधिष्ठित रहते हैं। इसके फल से सर्व अभीष्टसाधिका देवी सन्निहिता

रहती हैं। हे राजेन्द्र! इसलिये तुम भी वसुधारा-पातन करो। हे नृपसत्तम! इससे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। एक दिन भी वसुधारा देने से जो पुण्य होता है, उससे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है।।१७-२६।।

नृपेषायुषकामेण पुत्रदारसुखार्थिना। देया धारा सदा वत्स रिपुनाशाय बुद्धिना ॥२७॥
विच्छेदो नित्यहोमस्य न च कार्यं कदाचन। महादोषमवाप्नोति ये तत्र विमुखाः नराः ॥२८॥

हे मतिमान्! हे वत्स! दीर्घजीवनकामी, पुत्रार्थी, पत्नीकामी, सुखार्थी तथा शत्रुवधाभिलाषी को सतत् वसुधारा प्रदान करना चाहिये। नित्य होमक्रिया का तारतम्य कभी खण्डित नहीं होना चाहिये। नित्य होम-विमुख व्यक्ति महादोषग्रस्त होते हैं।।२७-२८।।

द्रव्याभावे घृताभावे नृपतस्करजे भये। यदि नो वहते धारा तदा च्छिद्रं न विद्यते ॥२९॥
होमं कृत्वा क्षमापेत देवदेवीं नृपोत्तम। पुनः प्राप्तौ भवेद्होमं प्रतिष्ठाविधि चोदितम् ॥३०॥
महा आश्विनमासे तु अष्टमीनवमीषु च। कार्तिक्यां माघचैत्रे तु चित्रायां रोहिणीषु च ॥३१॥
वैशाख्यान्तु प्रदातव्या ज्येष्ठां ज्यैष्ठस्य सत्तम। आषाढे द्वादशी होममष्टमी पूर्णिमा नभे ॥३२॥
नभस्ये रोहिणी वत्स चतुर्थ्या स्कन्दजे दिने। संक्रान्तिषु च सर्वासु गुरुसौरिभवासु च ॥३३॥
चन्द्रसूर्य्योपरागेषु प्रतिष्ठा यज्ञ-कर्मणि। शक्रोच्छ्रये प्रदातव्या जन्मपुष्याभिषेचने ॥३४॥
मार्गे व्रतनिबन्धे तु शुभे वा केतुदर्शने। ग्रहकृत्योपसर्गेषु धारा देया शुभावहा ॥३५॥

फिर भी यदि धनाभाव से घृत का अभाव हो जाय अथवा राजभय, चौरभय आदि के कारण नित्य वसुधारा देने में तारतम्य भङ्ग हो जाय तब कोई दोष नहीं होता। हे राजन्! होम के उपरान्त देवी से 'क्षमस्व' कहकर क्षमा माँगकर विसर्जन करना चाहिये। पुनः उन देव-देवी का आवाहन करके प्रतिष्ठा तथा विधिसम्मत होम करना चाहिये।

आश्विन मास की महाष्टमी-महानवमी-कार्त्तिकी पूर्णिमा, माघ तथा चैत्र मास का चित्रा तथा रोहिणी नक्षत्र, वैशाखी पूर्णिमा, ज्येष्ठी पूर्णिमा, आषाढ़ द्वादशी, श्रावण मास की अष्टमी, भाद्र का रोहिणी नक्षत्र तथा चतुर्थी तिथि, स्कन्दषष्ठी, सभी सक्रान्ति, गुरुसंचार, शनिसंचार, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, प्रतिष्ठाकर्म, यज्ञकर्म, शक्रध्वजोत्सव, जन्मतिथि, पुष्यस्नान, यात्रा, उपनयन अथवा अन्य प्रकार के आभ्युदयिक कर्म, उत्पातदर्शन, जन्मतिथि, ग्रहोपसर्ग तथा आभिचारिक उपसर्गों में शुभावह वसुधारा प्रदान करनी चाहिये।।२९-३५।।

एवं यो वाहयेद् धारां शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। तस्य भूः सिध्यते सर्वा सनागा सह सागरा ॥३६॥
अश्वमेधसमं पुण्यं दिनहोमात् प्रजायते। वाजपेयशतं रात्रावग्निष्टोमशतं तथा ॥३७॥
आधयो व्याधयस्तस्य न भवन्ति कदाचन। आयुरारोग्यमैश्वर्यमिह चान्ते शिवी भवेत् ॥३८॥

इति श्रीदेवीपुराणे वसोर्धारादानविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः

जो राजा इस प्रकार से शास्त्रदृष्ट कर्म द्वारा वसुधारा प्रदान करता है, उसे पर्वत-सागरसमन्विता वसुन्धरा आयत्त हो जाती है। दिन में होम करने से अश्वमेध का फल एवं रात्रिहोम से १०० वाजपेय यज्ञ का फल तथा १०० अग्निष्टोमफल मिलता है। उसे कभी भी आधि-व्याधि नहीं होती। दीर्घजीवन-आरोग्य तथा ऐश्वर्य मिलता है और अन्त में शिवत्वलाभ होता है।।३६-३८।।

सप्तविंश अध्याय समाप्त

अष्टाविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

शूलिनो ब्रह्मणा प्राप्तमिन्द्राच्च मम आगतम्। मयापि ते यथा वृत्तं तथा राजन् प्रकाशितम् ॥१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—यह वृत्तान्त ब्रह्मा को शिव से प्राप्त हुआ था। इन्द्र ने ब्रह्मा से तथा इन्द्र से मैंने इसे पाया था। हे राजन्! इस वृत्तान्त का यथावत् वर्णन करता हूँ।।१।।

ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च महाभयविमोक्षदम्। मन्त्रितं शक्रगोविन्दवाचस्पतिपितामहैः ॥२॥
रुद्रस्तोत्रं महादेव्या विष्णवाराधनघोरजम्। वधं महिषरूपस्य भूमौ देव्यवतारणम् ॥३॥
व्रतं व्रजोच्छ्रयं धारा मङ्गलेषु पठेत् सदा। देव्यायतने देवस्य शङ्करस्य हरेरपि ॥४॥
गोष्ठे वा चत्वरे शैले गृहे वा सुमनोरमे। देवीं सम्पूजयित्वा तु भोजयित्वा कुमारिकाः ॥५॥

यह ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर का भी भयनाशक वृत्तान्त है। इन्द्र, गोविन्द, वाचस्पति तथा पितामह ने इसे मन्त्रित किया है। व्रत, ध्वज उत्तोलन, धारा तथा मंगलकार्य में रुद्रस्तोत्र, महादेवी तथा विष्णु की आराधना, महिषवध, देवी का अवतरण आदि का पाठ करना चाहिये। देवीगृह, देवगृह, शंकरगृह अथवा हरिगृह में, गोष्ठ में, चत्वर-शैल अथवा मनोरम गृह में देवी की पूजा करके कुमारी-भोजन कराना चाहिये।।२-५।।

तद्भक्तिभावितान् विप्रान् सद्वृत्ताञ्छास्त्रतत्परान्। यथाशक्त्या च पूज्येत हेमवस्त्रविभूषणैः ॥६॥
ततस्तान् स्वस्ति वाचयित्वा पूजयित्वा तु पुस्तकम्। सुगन्ध-गन्ध-धूपेन पुष्पमाल्यैः सुचन्दनैः ॥७॥
घण्टाचामरशोभाढ्यैर्दर्पणैरुपशोभिते। दुकूले वस्त्राभरणे दण्डयन्त्रे निवेशयेत् ॥८॥

सदाचारसम्पन्न, शास्त्रतत्पर देवीभक्त ब्राह्मणों की स्वर्णाभूषणादि से यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये और उनके द्वारा स्वस्तिवाचन करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि पुस्तक की पूजा करके सुगन्ध-गन्ध-पुष्पमाला-चन्दन-घण्टा-चामर-दर्पण-वस्त्र-आभरण द्वारा शोभित करके उसे स्थापित करना चाहिये।।६-८।।

वाचकं पूजयित्वा तु यथाविभवविस्तरैः। वाचयेत ततो राजा देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥९॥
तदन्ते शान्तिशब्दस्तु जनस्य स नृपस्य च। गोब्राह्मणपूजान्तु वनस्पतिमुखेषु च ॥१०॥
क्षत्रविट्शूद्रबालानां सर्वमेव शुभं तु वः। अनेन विधिना राजा यः पठेत् शृणुयादपि ॥११॥
चिन्तयेद् वाचयेद् वापि तस्य पुण्यफलं शृणु। अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥१२॥
अग्निष्टोममहाष्टोमराजसूयमहामखैः। यत्फलं लभ्यते तात तत्फलं शतधा भवेत् ॥१३॥

तत्पश्चात् यथाविहित वाचक का पूजन करके देवीमाहात्म्य का पाठ कराना चाहिये। पाठ के अन्त में गौ, ब्राह्मण, प्रजा, वनस्पति-प्रभृति का शान्तिपाठ करना चाहिये। इससे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि सभी का शुभ होता है। हे राजन्! जो व्यक्ति इस प्रकार से विधिवत् पाठ करता है, किंवा चिन्तन करता है, उसका पुण्यफल श्रवण करो। एक हजार अश्वमेध, सौ वाजपेय, अग्निष्टोम, महाष्टोम, राजसूय आदि महायज्ञ से जो फल प्राप्त होता है, उससे १०० गुणा फल इससे प्राप्त होता है।।९-१३।।

गङ्गातोयाभिषेकाद्यैस्तीर्थैर्नैमिषपुष्करैः। यत्फलं लभ्यते राजंस्तत्फलादयुताधिकम् ॥१४॥
ब्रह्महत्यादिपापानां शमनं परमं शतम्। वर्द्धनञ्चाथ धर्म्माणां काममोक्षफलप्रदम् ॥१६॥

पुत्रदं पत्निदं तात जयदं सौख्यदं परम्। अनेन विधिना वत्स प्राप्नोति श्रवणान्नरः।
इह कीर्तिं श्रियं ब्राह्मीं परत्र भवति लयम् ॥१७॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यास्तवपठनमाहात्म्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः

गंगास्नान, नौमिष-पुष्करादि तीर्थाभिषेक से जो फल प्राप्त होता है, उससे अयुतगुण फल इससे मिलता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं। अर्थ-धर्म-वृद्धिङ्गत हो जाता है। काम एवं मोक्षफल मिलता है। पुत्र-पत्नी-जय-सुख आदि मिल जाता है। हे वत्स! इसे विधानानुरूप श्रवण करने पर कीर्त्ति तथा लक्ष्मीलाभ होकर (मरणान्त में) परमपद की प्राप्ति हो जाती है।।१४-१७।।

अष्टाविंश अध्याय समाप्त

●

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

शक्र उवाच

एवं सर्वप्रदा देवी यथा नाथ प्रवर्णिता। तस्याहं श्रोतुमिच्छामि व्याख्याराधनपूजनम् ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—आपने सर्वदायिनी देवी का यथायथ रूप से वर्णन किया। अब देवी की विधिवत् आराधना को सुनने की इच्छा करता हूँ।।१।।

ब्रह्मोवाच

न परा चापरा देवी पूर्वं वा च पुरन्दरम्। तस्यास्त्वं भक्तिमापन्नः कथनादेव वासव ॥२॥
यदा सद्भावता तस्या व्याप्तिभावेन विद्यते। तदा त्वं सुरराजेन्द्र शृणुष्वैकमनोऽधुना ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे पुरन्दर! देवी परा हैं किंवा अपरा, इसे तुमसे पहले नहीं कहा। केवल यथायथ वर्णनमात्र से तुम भक्तियुक्त हो गये हो। हे सुरवर राजेन्द्र! अब एकाग्र होकर सुनो, जिस व्याप्तिभाव में देवी की सम्भावना है, वह कहता हूँ।।२-३।।

एका एव पराशक्तिः सर्वगा व्यापिनी किल। स्वभावात् कर्तृरूपत्वाद्भूताद्यैः पञ्चधा स्थिता ॥४॥
भूत तन्मात्रबुद्ध्याख्यकर्म्मवर्गमनोधिषु। अहङ्कारप्रधानेन प्रभावात् सा व्यवस्थिता ॥५॥
हेमजन्तुमहद्दण्डं सहस्रकिरणोज्ज्वलम्। तप्तहाटकसङ्काशं कोट्यायुतसमप्रभम् ॥६॥
शतकोटिप्रविस्तीर्णं समन्तात् परिवर्त्तनम्। तच्च वर्षसहस्रेण द्विधाभूतं पुनस्ततः ॥७॥

सर्वव्यापिका परमा शक्ति एकमात्र होकर ही स्वभाव तथा कर्तृत्व हेतु भूतादि द्वारा पञ्चधा विभक्त हैं। यह शक्ति अहङ्कार, प्रधान, भूत तथा तन्मात्रप्रभृति सर्वत्र स्थित हैं। तप्त स्वर्ण के समान समुज्ज्वल, कोटि सूर्यसमप्रभ, सर्वतोभाव से वर्त्तुल, शत-कोटि योजन विस्तृत जो महत् अण्ड है, वह अण्ड सहस्रवर्ष में द्विधा विभक्त होता है।।४-७।।

मध्ये तस्याभवद् ब्रह्मा चन्द्रसूर्येक्षणो विभुः। सकलं भू दिवं भूत खं दिशो मनोगोचरम् ॥८॥
स सिसृक्षुः प्रजाः सर्वास्तदादेशेन वासव। स एव स्थितये विष्णुर्विनाशे रुद्र सोऽभवत् ॥९॥
स्थावरस्य चरस्यास्य दृश्यादृश्यस्य वासव। जरायुजाण्डजस्वेदानामुद्भिदानां तथैव च ॥१०॥
नगनदसमुद्राणां विशेषे तद्भवोऽभवत्। विद्यावेदनवेदानां वाङ्मनी जननी तथा ॥११॥

मातामातृकभेदेन वर्णभेदेन सा स्थिता। मन्त्र-तन्त्र-क्रिया-मुद्रा-विष-भूत-ज्वरादिषु ॥१२॥
अन्यापि तत् प्रभावेण शमन्ते भिषजो रुजः। न च वर्णान्तराभावा आश्रमाणां क्रियास्तथा ॥१३॥
ईक्षते मन्त्ररूपेण सूर्य्यस्य इव रश्मयः। सा च वर्ण क्रमाद्भूता द्विजाति ब्रह्मचारिणी ॥१४॥
सङ्करप्रभावाणाञ्च वर्णानां करणे स्थिता। आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डाख्या सा च कीर्तिता ॥१५॥

उसमें से ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं। उनके दो नेत्र हैं—सूर्य तथा चन्द्र। तदनन्तर उन्होंने (प्रजासृष्टि की) कल्पना से पृथिवी-स्वर्ग-आकाश-दिक्-मन को प्रकट किया। शक्ति के आदेश से ब्रह्मा ने प्रजा की सृष्टि की इच्छा किया। वह ब्रह्मा प्रजापालनार्थ विष्णुरूप से तथा संहारार्थ रुद्ररूप से प्रकट हो गये। क्रमशः दृश्य, अदृश्य, स्थावर, चराचर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, वृक्ष, नद, नदी, समुद्र आदि की सृष्टि हो गयी। वह परमा शक्ति विद्या, वेदप्रभृति का व्यञ्जन करने वाली जननीरूप से तथा वर्ण भेद में मातृकारूपेण स्थित है। विष, भूत तथा जरादि विषय में वे मन्त्र-तन्त्र-क्रियारूपा हो गयीं। उनके प्रभाव से वैद्यगण रोगनिवारण में समर्थ हो गये। वर्ण, आश्रम, क्रियाप्रभृति सुचारुरूपेण सम्पन्न हो गये। वे सूर्यरश्मि के समान मन्त्ररूपेण सब देखती हैं। वे ही वर्णक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रियादि तथा संकरप्रभृति वर्ण में अवस्थित हैं। वे आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता एवं दण्डरूपा हो गयीं।।८-१५।।

दीप्तिः सूर्य्ये क्षमा भूमौ कान्तिश्चन्द्रे जले प्लुतिः। ज्वाला वह्नौ गतिर्वायौ व्योम्नि सा व्यापिनी भवेत् ॥१६॥
यजमाने तथा दीक्षा धारणा योगिनामपि। प्रज्ञा प्रज्ञावतां सा तु वाग्मिनान्तु सरस्वती ॥१७॥
लक्ष्मीः सा तु धनाढ्यानां सिद्धिः सिद्धीत्सुनामपि। दया दयावती सा तु प्रीतिः प्रीतिमतामपि ॥१८॥
शरो खड्गे ज्या धनुषि शब्दो वाद्येषु सा स्मृता। परस्य सा परत्वेन शिवस्य शिवगामिनी ॥१९॥
भक्तिमुक्तिप्रदा देवी ब्रह्मादीनान्तु सा मता ॥२०॥

इति श्रीदेवीपुराणे व्याप्तिप्रशंसानाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः

वे ही सूर्य की दीप्ति, चन्द्र की कान्ति, जल का तारल्य, अग्नि की ज्वाला, वायु की गति, आकाश का व्यापकत्व, यजमान की दीक्षा, योगीगण की धारणा, बुद्धिमान लोक की प्रजा, वाग्मीगण की सरस्वती, धनाढ्यों की लक्ष्मी, सिद्धिकामीगण की सिद्धि, दयालु की दया, प्रीतियुक्त की प्रीति, खड्ग की धार, धनुष का गुण तथा वाद्य की शब्द हैं। वे परमा शक्ति हैं, इसीलिये परमपुरुष शिव ही उन्हें पाते हैं। वे ब्रह्मादि देवगण की भक्ति, मुक्तिदायिनी हैं।।१६-२०।।

एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त

●

त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु तस्या सुराध्यक्ष आराधनविधिं पराम्। यथा सा तोषिता पूर्वं शङ्करादैः फलेप्सुभिः ॥१॥
कर्म्मयज्ञेन देवेश तथा त्वामपि पूजयेः। शम्भुः पूजयते देवीं मन्त्रशक्तिमयीं शुभाम् ॥२॥
अक्षमालाकरो नित्यं तेनासौ विभववान्नरः। अहं शैलमयीं देवीं यजामि सुरसत्तम ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे सुराध्यक्ष! अब देवी की आराधना-विधि सुनो। फलकामनार्थ शंकर आदि ने जिस प्रकार से देवी को प्रसन्न किया था, तुम भी कर्मयज्ञ से उनकी पूजा करो। महादेव हाथ में अक्षमाला लेकर नित्य मन्त्रशक्तिरूपा देवी की पूजा करके ही विभवान्वित हो सके हैं। हे सुरसत्तम! मैं भी शैलमयी देवी की पूजा करता हूँ।।१-३।।

तेन ब्रह्मत्वमेवेदं मया प्राप्तं सुदुर्लभम्। इन्द्रनीलमयीं देवीं विष्णुरर्च्चयते सदा ॥४॥
विष्णुत्वं प्राप्तवांस्तेन अद्भुतैः कंसनाशनाम्। देवीं हेममयीं कान्तां धनदोऽर्चयते सदा ॥५॥
तेनासौ धनदो देवो धनेशत्वमवाप्नुयात्। विश्वेदेवा महात्मानो रौप्यां देवीं मनोहराम् ॥६॥
यजन्ति विधिवद्भक्त्या तेन विश्वत्त्वमाप्नुयुः। वायुः पूजयते भक्त्या देवीं पित्तलसम्भवाम् ॥७॥
वायुत्वं तेन तत् प्राप्तमनौपम्यगुणावहम्। वसवः कामिकां देवीं पूजयन्ते विधानतः ॥८॥

तभी मैंने दुर्लभ ब्रह्मपद पाया है। विष्णु सर्वदा इन्द्रनीलमयी देवी की पूजा करते हैं, तभी उन्होंने सनातन विष्णुपद पाया है। कुबेर सर्वदा स्वर्णमयी देवी की पूजा करते हैं, इसीलिये उन्होंने धनरत्न पाया है। महात्मा विश्वेदेवगण रौप्यमयी देवी की पूजा करते हैं, इसीलिये उन्होंने विश्वेदेवत्व पाया है। वायुदेवता ने सदैव पित्तलमयी देवी का पूजन भक्तिपूर्वक करके वायुत्व प्राप्त किया है। वसुगण ने कामिका देवी का विधिवत् पूजन करके वसुत्व प्राप्त किया है।।४-८।।

प्राप्नुवंस्तन्महात्मानो वसुत्वं हि शुभावहम्। अश्विनौ पार्थिवीं देवीं पूजयेत विधानतः ॥९॥
तेन तावश्विनौ देवौ दिव्यदेहगतावुभौ। स्फाटिकां शोभनां देवीं वरुणोऽर्च्चयते सदा ॥१०॥
वरुणत्वं हि संप्राप्तं तेन ऋद्ध्या समन्वितम्। देवीं मन्त्रमयीं पुण्यामग्निर्यजते भावितः ॥११॥
अग्नित्वं प्राप्तवांस्तेन तेजोरूपसमन्वितम्। ताम्रां देवीं सदा काल भक्त्या देवो दिवाकरः ॥१२॥

अश्विनी कुमार ने देवी की पार्थिव मूर्त्ति का पूजन करके दिव्य देह पायी है। वरुण ने देवी की स्फाटिक प्रतिमा की पूजा करके महर्द्धि-सम्पन्न वरुणत्व पाया है। अग्नि ने सर्वदा अन्नमयी देवी का पूजन करके सर्वतेजोमय अग्नित्व पाया। दिवाकर सूर्य ने ताम्रमयी देवी की पूजा करके उत्तमपद सूर्यत्वलाभ किया है।।९-१२।।

अर्च्यते तत्र संप्राप्तं तेन सूर्य्यत्वमुत्तमम्। मुक्ताफलमयीं देवीं सोमः पूजयते सदा ॥१३॥
तेन सोमेन सोमत्वं संप्राप्तं सततोज्ज्वलम्। प्रवालकमयीं देवीं यजन्ते गुह्यकादयः ॥१४॥
तेन भोगबलोपेताः प्रयान्तीश्वरमन्दिरम्। वज्रलोहमयीं देवीं यजन्ते मातरः सदा ॥१५॥
मातृत्वं प्राप्य ताः सर्वाः प्रयान्ति परमं पदम्। एवं देवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥१६॥
पूजयन्ति सदा कालं चर्च्चिकां सुरनायिकाम्। तथा त्वमपि देवेन्द्र यदीप्ससि परां गतिम् ॥१७॥
शिवां मणिमयां पूज्य लभसे मनसेप्सितान्। कामान् सुरवराध्यक्ष कामिकैः पूजिता सदा।
ददाति सर्वलोकानां चिन्तामणिर्यथा शिवा ॥१८॥

इति श्रीदेवीपुराणे द्रव्यविधिपूजादेवीमाहात्म्यं नाम त्रिंशोऽध्यायः

चन्द्र ने मुक्ताफलमयी देवी की आराधना करके समुज्ज्वल रूप पाया है। इस प्रकार सतत् उज्ज्वल सोमत्व पाया था। गुह्यक आदि देवी की प्रवालमयी मूर्त्ति का पूजन करके सर्वभोग-बलयुक्त हो गये। मातृगण ने वज्रलोहमयी देवी का पूजन करके मातृस्वरूप परमपद प्राप्त किया है। इसी प्रकार देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षसगण सदैव चर्चिका सुरनायिका का पूजन करते हैं। हे महेन्द्र! यदि तुम भी परमगति पाने की इच्छा करते हो, तब मणिमयी देवी की पूजा करके ईप्सित फल प्राप्त करो। हे सुरवराध्यक्ष! सकाम होकर देवी की आराधना करने पर वे देवी चिन्तामणि के समान समस्त फल प्रदान करती हैं।।१३-१८।।

त्रिंश अध्याय समाप्त

●

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

भूयस्ते संप्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम्। यत् कृत्वा सर्वकामानां व्याप्तिः तृप्तिर्भविष्यति ॥१॥
दन्तिदन्तमयैर्दण्डैर्हेमबद्धैः सुशोभनैः। विचित्रपद्मरागाद्यैर्मणिभिरुपशोभितैः ॥२॥
रथं तैः कारयेद् देव्याः सप्तभौमं मनोहरम्। दुकूलवस्त्रसंच्छन्नमर्द्धचन्द्रोप्यशोभि तम् ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—देवी की आराधना के सम्बन्ध में पुनः कहता हूँ, जिसे करने से सर्वकामना सिद्ध हो जाती है। हाथीदाँत, सोना, विचित्र पद्मरागमणियों से बने रूप से शोभित विचित्र रथ को बनाकर उसे मनोहर वस्त्रों से आच्छादित करके अर्द्धचन्द्राकृति में शोभायमान करना चाहिये।।१-३।।

घण्टाकिङ्किणीशब्दोद्यं चामरैः कन्दुकान्वितैः। पताकाध्वजशोभाढ्यं दर्पणैरुपशोभितम् ॥४॥
तं रथं पूजयेच्छक्र जाती-कुसुम-मन्दकैः। पारिजातसुपुष्पैश्च रक्तकर्दमचन्दनैः ॥५॥
सुगन्धि धूपितं कृत्वा देवीं तत्र निवेशयेत्। प्रतिमां शोभनां वत्स महासुरक्षयङ्करीम् ॥६॥
पूजयेद्रथविन्यस्तां सर्वमङ्गलमङ्गलाम्। दुर्गा कात्यायनी देवी वरदा विन्ध्यवासिनी ॥७॥
निशुम्भशुम्भमथनी महिषासुरघातिनी। उमा क्षमावती माता शङ्करस्यार्द्धकायिका ॥८॥
प्रसीदतु सदा मेऽस्तु यच्च नो वाञ्छितं हृदि। अनेन बलिपूर्वेण नमस्कारयुतेन च ॥९॥

उसके चारो ओर किङ्किणी-घण्टा प्रभृति वाद्यों का शब्द करना चाहिये एवं चामर, ध्वजा, पताका, दर्पण से वह चारो ओर से शोभित होना चाहिये। हे इन्द्र! उस रथ का पूजन चमेली, पारिजात, मंदक प्रभृति पुष्पों से करके यज्ञकर्दम, चन्दनादि द्वारा उसकी पूजा करके उसे सर्वत्र सुगन्धिधूप से धूपित करने के अनन्तर उसमें भगवती को स्थापित करना चाहिये। सर्वमंगलमंगला, महा असुरक्षयकरी सुशोभिता देवीप्रतिमा को रथ पर स्थापित करके पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर दुर्गा, कात्यायनी, देवी, वरदा, विन्ध्यवासिनी, निशुम्भ-शुम्भदमनी, महिषासुरनाशिनी, उमा क्षमावती, माता, शंकर के अर्द्धाङ्ग में शयन करने वाली आप मेरे प्रति प्रसन्न जो जाइये, आप हृदय के अभीष्ट फल को प्रदान करिये—यह कहकर बलि प्रदान करके देवी को नमस्कार करना चाहिये।।४-९।।

पूजयित्वा ततो नैषा समस्ताप्सरगीतकैः। पञ्चमी सप्तमी पूर्णा नवम्येकादशीषु च ॥१०॥
तृतीया शिव विघ्नेश दिवसे वत्सरेषु च। महानदी-नद-सङ्ग-पर्वत-स्रवणेषु च ॥११॥
तत्र मण्डपविन्यासं महादार्विष्टनिर्म्मितम्। शैलं वा मृण्मयं वापि कृत्वा वास्तुविभावितम् ॥१२॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वशोभासमन्वितम्। पूर्वं च कारयेच्छक्रं पश्चाद् यात्रां प्रचक्रिरे ॥१३॥
महाजनपदोपेतां महास्त्रीसङ्घसङ्कुलाम्। सर्वान्नयावनैवेद्यैः समस्तैरपि पूजयेत् ॥१४॥
दद्याच्च दिग्बलिं शक्र सर्वदिक्षु समन्वितः। भूतवेतालसङ्घस्य मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥१५॥
जय त्वं कालि भूतेशी सर्वभूतसमावृते। रक्ष मां निजभूतेभ्यो बलिं गृह्ण शिवप्रिये ॥१६॥
मातर्मातेि वरे दुर्गे सर्वकामार्थसाधिनि। अनेन बलिदानेन सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे ॥१७॥

इस प्रकार देवी-पूजनोपरान्त मंगल वाद्य गीत आदि से देवी को तुष्ट करते हुये उन्हें ले जाना चाहिये। पञ्चमी-सप्तमी-पूर्णिमा-नवमी-एकादशी-तृतीयादि के दिन महानदी, पर्वत, नद, प्रस्रवणप्रभृति स्थान में से किसी स्थान पर पहले सर्वलक्षणयुक्त सर्वशोभायुक्त शैल किंवा मृण्मय वास्तु की कल्पना करके वहाँ सर्वलक्षणयुक्त, सर्वशोभासम्पन्न मण्डप निर्माण करने के पश्चात् यात्रा करनी चाहिये। यात्राकाल में महाजनपद में रमणीगण से घिरे रहकर नानाविध अन्न-पान-नैवेद्य से पूजा

करनी चाहिये। नाना दिक् भूत तथा वेतालसमूह के लिये मन्त्र द्वारा दिग्बलि प्रदान करनी चाहिये। अब मन्त्रार्थ कहते हैं— मातः दुर्गे! आप सर्वकाम तथा अर्थ प्रदान करें। आपकी जय हो। हे काली! हे भूतेशी! आप सर्वभूतसमावृता हैं। मेरी अपने भूतगण से रक्षा करें। यह बलि ग्रहण करिये तथा हमें सर्वकामना प्रदान कीजिये।।१०-१७।।

एवं दत्वा बलिं शक्र ततो देव्यावतारयेत्। विन्यसेद्भद्रपीठे तु मण्डलैरुपशोभितम् ॥१८॥
तत्रस्थां पूजयेद् देवीं हैमं रौप्यञ्च ताम्रजैः। कलसैस्तु सहस्रेण गन्धोदकसुपूरितैः ॥१९॥
समस्तफलसम्पूर्णैर्थाज्ञियैरथ पल्लवैः। स्नापयेदेकमेकेन रत्नगर्भैर्नवैर्दृढैः ॥२०॥
वेदमङ्गलशब्देन शङ्खवादित्रनिःस्वनैः। वेणुवीणामृदङ्गैश्च घण्टाकिङ्किणीरावृतैः ॥२१॥

हे इन्द्र! इस प्रकार बलि देकर देवी को रथ से उतार कर मण्डलादि से शोभित भद्रपीठ पर स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण, चाँदी, ताम्र-निर्मित कलस से, सहस्र कलस गन्धजल से देवी को स्नान कराना चाहिये। स्नान के कलस-समूह नूतन, दृढ़ तथा रत्नगर्भ होने चाहिये। अनेक रत्नकलस फल से भरे तथा विभिन्न पल्लवों से युक्त होने चाहिये। अर्थात् कलश के ऊपर यज्ञपल्लव स्थित होने चाहिये। स्नानकाल में वेदपाठ, मंगलशब्द होने चाहिये। शङ्ख, वीणा, मृदङ्ग, घण्टा, किङ्किणिप्रभृति माङ्गलिक वाद्य भी बजाये जाने चाहिये।।१८-२१।।

स्नापयित्वा ततो देवीं भूषयेद्दुकूलैः शुभैः। गोमयादिकृतैः पद्मैर्दीपवत्यैः विरोधितैः ॥२२॥
स्वस्तिकैर्नन्दिकावर्तैः शङ्खैर्नीलोत्पलोत्पलैः। यवशालाङ्कुरोद्भिन्नैर्यववाससमन्वितैः॥२३॥
प्रत्येकं तु ददेद्धूपं प्रत्येकं कलशैः स्नपेत्। तथा कर्पूरक्षोदेन चन्दनैः कुङ्कुमेन च ॥२४॥
गोरोचनासमेतेन देवीमालिप्य पूजयेत्। हेमजैर्जातिजैर्माल्यैः रत्नन्यासैरनेकथा ॥२५॥

स्नानान्त में वस्त्र से देवी के शरीर को पोंछकर रखे। शुभ दुपट्टे से उनको भूषित करे। जब प्रत्येक कलस से क्रमशः स्नान कराये तब उस समय गोमयादि का कमल बनाकर उस पर दीपवत्ती जलाये तथा कलसजल में स्वस्तिक, नीलकमल, उत्पल, यव-शालि आदि के अंकुर एवं यवप्रभृति भी रखे। प्रत्येक कलस से स्नान कराते समय धूप भी देना चाहिये। कर्पूरचूर्ण, चन्दन, कुङ्कुम, गोरोचन प्रभृति का देवी के सर्वाङ्ग में लेपन करके पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण की माला, रत्नमाला, जातीपुष्प की माला तथा नानाविध रत्न पहनाना चाहिये।।२२-२५।।

वासोभिः सुमनैश्चित्रैः पुनर्धूपं समुत्क्षिपेत्। भक्षयेत्तु तथा कन्यां द्विजान् दीनान् सुदुःखितान् ॥२६॥
भक्तभोज्यान्नपानेन तत्र सर्वांश्च प्रीणयेत्। भोजयित्वा क्षमायेत देवी मे प्रीयतामिति ॥२७॥

तदनन्तर वस्त्र, विचित्र पुष्प तथा धूप से अर्चना करनी चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मण, कुमारी आदि को भोजन कराना चाहिये। उनको भक्ष्य द्रव्य से परितुष्ट करने के पश्चात् 'देवी मेरे प्रति प्रसन्न होइये' कहकर क्षमा माँगनी चाहिये।।२६-२७।।

तथा देव्या रथे कृत्वा पुनरेव गृहं नयेत्। शान्तरेणुपथं सर्वं पुष्पदूर्वाक्षतैर्जलैः ॥२८॥
प्रक्षिप्यमाणैः कन्याभिः स्त्रीभिः मङ्गलवादिभिः। सलिलेन पथि पांशु कृत्वा पङ्कं प्रचक्रिरे ॥२९॥

तदनन्तर देवी को रथपर बैठाकर पुनः गृह में लाये। यात्राकाल में लोग अपने-अपने विभव-सम्पत्ति के अनुसार गमन करें। समस्त पथ की धूलि को स्वच्छ करके नारीगण मंगलशब्द करते-करते पुष्प-दूर्वा-अक्षत प्रभृति को फेंकते रहें। पथ की धूलि जिस प्रकार से दब जाय, ऐसा जल छिड़कना उचित एवं आवश्यक है।।२८-२९।।

पुरशोभां पथि शोभां द्वारशोभां गृहे-गृहे। कारयीत तथा शक्र सर्वबाधां निवारयेत् ॥३०॥
अच्छेद्यास्तरवस्तस्मिन् प्राणिहिंसा विवर्जयेत्। बन्धनस्था विमोक्तव्या वध्या क्रोधादि शत्रवः ॥३१॥

घर-घर की द्वारशोभा, अन्त:पुरशोभा, पथशोभा को सम्पादित करना अर्थात् इन स्थानों को सजाना तथा व्यवस्थित करना चाहिये, जिससे कोई विघ्न न हो। उस समय वृक्ष काटना, प्राणीहिंसा तथा क्रोधादि न करे। इस समय तो बद्ध व्यक्ति को भी मुक्त करना उचित है।।३०-३१।।

अकालकौमुदीं शक्र रथयात्रान्ते कारयेत्। सर्वदा सर्वदेवैस्तु शङ्कराद्यैः प्रतिष्ठिता ॥३२॥
रथयात्रा तदा शक्र सुरैः स्वर्गे सदा कृता। तथा किन्नरगन्धर्वैः भूपातालनिवासिभिः ॥३३॥
रथयात्राप्रभावेण मोदन्ते दिवि देवताः। आदित्यो रथयात्राकृद्रथेन नभसः क्रमेत् ॥३४॥

हे शक्र! अकालकौमुदीरूप रथयात्रा ऐसे सम्पन्न करनी चाहिये। शंकर आदि देवगण रथयात्रा प्रतिष्ठित करते हैं। सभी देवता रथयात्रा करते हैं। किन्नर-गन्धर्व-पृथिवीवासी-पातालवासी सभी रथयात्रा करते हैं। रथयात्रा के प्रभाव से देवगण स्वर्गसुख प्राप्त करते हैं। आदित्यदेव भी रथ द्वारा ही आकाशपथ का अतिक्रमण करते हैं।।३२-३४।।

देवा दिव्यविमानस्था रथयात्राप्रभावतः। क्रीडन्ते विविधैर्भोगैः सर्वातङ्कविवर्जिताः ॥३५॥
तथा त्वमपि देवेन्द्र रथयात्राकरो भव। शिवायाः शिवदातायाः परमेन समाधिना ॥३६॥

देवता रथयात्रा के प्रभाव से विमान पर बैठकर विभिन्न भोगयुक्त होकर निर्भय रूप से क्रीड़ा करते रहते हैं। हे देवेन्द्र! तुम भी परम समाधियुक्त होकर शिवप्रदा शिवा की रथयात्रा कराने का यत्न करे।।३५-३६।।

अगस्त्य उवाच

रथयात्राश्रितं पुण्यं ब्रह्मणा वासवस्य तु। पूर्वं यत् कथितं तात ते ते सर्वं मयाखिलम् ॥३७॥
ख्यापितं नात्र सन्देहो देवीमाहात्म्यमुत्तमम्। यः पठेत् शृणुयाद्वापि भक्तिमान् नृपसत्तम ॥३८॥
स सुखं यशः सौभाग्यं पुत्रप्राप्तिं यथेप्सिताम्। लभते नात्र सन्देह इत्येवं ब्रह्मणोऽब्रवीत् ॥३९॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे तात! रथयात्रा का पुण्यफल ब्रह्मा ने जैसे इन्द्र से कहा था, वह सब बतलाया। इसमें कोई सन्देह नहीं है। साथ ही ब्रह्मा ने यह भी कहा था कि जो भक्ति के साथ देवीमाहात्म्य का पाठ करता अथवा सुनता है, वह सुख, यश, सौभाग्य, पुत्र इत्यादि इच्छित फल प्राप्त कर लेता है।।३७-३९।।

सुबलेन कृते राज्ये पुरा शक्रस्य कीर्तिता। धनदस्य पुरा प्रोक्ता वरुणस्य च वायुना ॥४०॥
कृते स्थाने कृतानेन तथा श्रुत्वा च निर्ऋतैः। भुञ्जीत परया दृष्ट्या पुरी भगवती शुभा ॥४१॥

इति श्रीदेवीपुराणे रथयात्राविधिमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः

पूर्वकाल में सुबल द्वारा राज्य छीन लिये जाने पर इन्द्र-कुबेर-वरुण-वायु तथा निर्ऋति ने देवीमाहात्म्य का श्रवण करके अपनी-अपनी भोगवती पुरी को पुनः प्राप्त किया तथा परम आनन्द का भी लाभ किया।।४०-४१।।

एकत्रिंश अध्याय समाप्त

●

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

रथयात्रासु माहात्म्यं ब्रह्मणा उपवर्णितम्। श्रुत्वा प्रीतिं परां जग्मुः कर्म्मयोगमपृच्छत ॥१॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—ब्रह्मा द्वारा वर्णित रथयात्रा-माहात्म्य का श्रवण करके परम प्रसन्न इन्द्र ने पुनः कर्मयोग के सम्बन्ध में प्रश्न किया।।१।।

शक्र उवाच

भगवन् देवतागारमर्च्चास्थापनपूजनम्। सम्मार्ज्जनमुपलेपं दीप-वैतानजं फलम् ॥२॥
कृत्वा देव्या ह्यशेषन्तु किं लभन्ते ब्रवीहि नः।

इन्द्र कहते हैं—भगवन्! देवता, गौ आदि की अर्चना, स्थापना, पूजन तथा शरीर-सम्मार्जन, उपलेप, दीपदानादि अनुष्ठान करने पर क्या फल होता है, वर्णन कीजिये।।२।।

ब्रह्मोवाच

गङ्गानर्मदाविन्ध्याद्रिमुज्जयिन्यामथार्बुदे ॥३॥
हिमवान्निषधे द्रोणे सान्निध्यात्तिष्ठते शिवा। नदीतीरे तु दुर्गे च रथ्यापितृवनेषु च ॥४॥
स्थापिता भवते देवी सर्वकार्य्यार्थसिद्धिदा। मारणं शत्रुवर्गस्य पितृस्थाने समर्चिता ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—गङ्गा, नर्मदा, विन्ध्यादि, हिमालय आदि स्थानों में देवी सर्वदा सन्निहित रहती हैं। नदीतीर, दुर्ग, चौराहा तथा श्मशान में देवी को स्थापित करने पर सर्वकार्य की सिद्धि होती है। श्मशान में देवी की अर्चना करने से शत्रु का मारण होता है।।३-५।।

एकलिङ्गे द्रुमे शैले गृहे गोष्ठे त्रिकण्डके। पूजिता यत्र द्रव्याणां सुखदारोग्यदा भवेत् ॥६॥
तथा च सर्वगा सर्वैर्मोक्षदा पूजिता मता। गुरौ मेषगते शक्र देव्यार्चा यः प्रतिष्ठयेत् ॥७॥
इहैव स भवेद्धन्यो मृतो गच्छेत् परं पदम्। तस्मान्मेषगते शक्र उत्तमा नवमी मता ॥८॥

एकलिंग, वृक्ष, पर्वत, गृह, गोष्ठ, त्रिकण्टक प्रभृति स्थानों में देवी की पूजा करने पर पुत्र, आरोग्य, सुख, द्रव्यादि का लाभ होता है; लेकिन सर्वत्र देवी की आराधना करने पर मोक्ष मिलता है। बृहस्पति के मेष राशि में होने पर जो व्यक्ति देवी की अर्चना करता है, वह इस लोक में इन्द्र तथा परलोक में परमपद प्राप्त करता है। अतः हे शक्र! मेषस्थिता नवमी उत्तमा नवमी कही जाती है।।६-८।।

महाद्यस्मिन् नामाऽनन्तं सामं च सर्वकामदम्। देवी तत्र तदा शक्र पांसुजा अपि स्थापिता ॥९॥
भवते फलदा पुंसां कर्किस्थे च वृषध्वजम्। समदृष्टिगतं कृत्वा अजौ माधवकल्पसम् ॥१०॥
स्थापयेद् देव देवेशं सर्वकामार्थिनो यदि। विशेषः कथितश्चात्र सर्वकालेऽपि मङ्गला ॥११॥
येन केनचिद् द्रव्येण सर्वकामफलप्रदा। तथा ये सिद्धगन्धर्वा नृपा वा राज्यकांक्षिणः ॥१२॥
ते यजन्तु सदा देवीं स्थापयित्वा विधानतः। न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम् ॥१३॥
वयमस्य प्रभावं तु देव्याया भक्तिकारणम्। पूजिता विधिना शक्र नृणां भोगान् प्रयच्छति ॥१४॥

तभी इसे महानवमी कहते हैं। इसमें देवी की उपासना करने से सर्वकामफल प्राप्त होता है। इस दिन पांशु से देवीमूर्त्ति का निर्माण करके पूजन से इष्टलाभ होता है। यदि कोई सभी अभीष्ट फल पाना चाहता है तो जब बृहस्पति कर्क में हों तब ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की समान रूप से पूजा करनी चाहिये। विशेष यह है कि सभी समय किसी भी द्रव्य से देवी सर्वमंगला की आराधना से सर्वफल-लाभ होता है। सिद्ध, गन्धर्व, राज चाहने वाले राजा, सभी को सविधि देवी की आराधना करनी चाहिये। इनकी आराधना के लिये तिथि-नक्षत्र-उपवास आदि का नियम नहीं है। भक्ति ही मूल कारण है। हे शक्र! विधि से पूजन करके व्यक्ति भोगों को प्राप्त करता है।।९-१४।।

हेमभावा च मृद्वक्षी शैलचित्रायसापि वा। शक्तिशूलेऽजिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥१५॥
यो यस्य आयुधः प्रोक्तस्तस्मिंस्तं प्रतिपूजयेत्। देवी शक्त्यार्च्चिता पुंसा राज्यायुःसुतसौख्यदा ॥१६॥
याम्ये ब्रह्मा भवेत् काये रक्तवर्णो जवोपमः। मध्ये रुद्र ऋजुः शुक्रो वामे कृष्णस्ततो हरिः ॥१७॥
देवयक्षग्रहा नागा लोकेशः सचराचराः। शूले संपूजिते वत्स सर्वं भवति पूजितम् ॥१८॥

स्वर्णमयी, मृण्मयी, लकड़ी से बनी, पत्थर से बनी, चित्रमयी, शक्ति-शूल, किसी भी देवी (स्वरूप) की पूजा करने से सर्वकाम प्राप्त होता है। देवी के जिस-जिस हाथ में जो आयुध हैं, उनकी पूजा उसी-उसी हाथ में करनी चाहिये। यथाशक्ति इनकी पूजा करने से राज्य, पुत्र, सुख, आयु प्रभृति देवी देती है। जवापुष्प के समान रक्तवर्णा, जिनके कटिप्रदेश के वामभाग में ब्रह्मा स्थित हैं, मध्यदेश में ऋजु रुद्र तथा वामपार्श्व में कृष्णवर्ण हरि हैं, उन मूल प्रकृति की पूजा द्वारा देव, यज्ञ, ग्रह, नाग, दिक्पाल, सचराचर की पूजा हो जाती है। शूल की पूजा से सभी पूजित हो जाते हैं।।१५-१८।।

वार्क्षं वा शैलजां वापि रत्नधातुमयामपि। देव्यामेवं समं ऋक्षं वेलाकरणवासरम्।
विधिना शक्र दृष्टेण दशबाहुं त्रिलोचनाम् ॥१९॥

हे इन्द्र! शास्त्रज्ञ भक्तिमान लोग को वृक्ष, शैल, किंवा धातु द्वारा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक दस बाहु तथा तीन नेत्रों से युक्त देवी मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये।।१९।।

कारयेद् भक्तिमान् यस्तु देवीं शास्त्रविशारदः। सर्वलक्षणसम्पूर्णां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२०॥
राजन्तीमुत्तमाङ्गेन कवरीलम्बितेन च। अथ मुक्तानि भारेण धम्मिल्लदंशितेन च ॥२१॥
व्यामिश्रसितपुष्पैर्वा अलिपङ्क्तीव संस्थिता। रुदन्ति तमवक्रेण तिरस्कृतं निशाकरम् ॥२२॥
आयतैः कर्णमर्यादैस्तरलालोलनिर्मलैः। भ्रूक्षेपाक्षिधृतैः पक्षैः ऋजुजिह्मावलोकनैः ॥२३॥
भ्रूभङ्गचापदण्डेन भिनत्ति दृष्टिसायकैः। मध्योन्नत सगर्वेण अधरेण विराजते ॥२४॥

इस प्रकार से भक्तिमान शास्त्रज्ञ व्यक्ति को मूर्त्ति का निर्माण करके उसे सर्वलक्षण तथा सर्वाभरण-भूषित करना चाहिये। उनके उत्तमांग में आलम्बित कवरी, संयत केशपाश मुक्ताफल से इस प्रकार विगुम्फित हो, मानो अलिमाला पुष्पमाला के साथ मिल गयी हो। उनका मुखचन्द्र मानो चन्द्रमा का भी तिरस्कार (लाज्जित) कर रहा हो। उनके नयनयुगल कानों तक फैले, निर्मल तथा सदा चंचल हैं। उनके भ्रूभंग से विदित होता है कि मानो दृष्टिशरनिक्षेप करने से उनका भ्रूरूपी धनुष भग्न हो जायेगा। मध्योन्नत अधरयुगल गर्वित भाव का द्योतन करा रहा है।।२०-२४।।

आरक्ता विद्रुमाभेन स्मितं किञ्चित् स्मिताननाः। मयूखदन्तज्योत्स्नेन चकासन्तीं तडिदिव ॥२५॥

वे अधरयुगल आरक्त होकर मानो विद्रुम मणि को भी लज्जित कर रहे हैं। मृदु हास्य करते समय दाँतों की प्रभा से दाँत कुछ झलक जाते हैं, तव लगता है मानो दाँतों की ज्योत्स्ना आकाश के तड़ित् की तरह क्षणमात्र के लिये चमक उठी हो।।२५।।

त्रिरेखकन्धरां शान्तिं ग्रैवेयकविभूषिताम्। कठिनस्तनभारेण संशक्तौ तौ निरन्ध्रणौ ॥२६॥
महासमुन्नतौ पीनौ वक्षौ पीनोन्नतौ शुभौ। तनोरतनुः मध्येन मध्ये च त्रिवली मता ॥२७॥
रोमराजी नितम्बोर्द्धं ह्यनङ्गाङ्कुरसूचिवत्। विस्तीर्णजघना कार्य्या रम्भागर्भोरुकोमलौ ॥२८॥

उनके कन्धरादेश में तीन रेखा है, जिसके ऊपर ग्रैवेयक परिशोभित है। स्तनद्वय निबिड़, कठिन तथा सटे हुये हैं। इतने उच्च हैं कि मानो इनका भार न सह सकने के कारण देवी का मध्यदेश क्षीण है। मध्यदेश में त्रिवली, नितम्बों के ऊर्ध्व

में रेखावली है। प्रतीत होता है मानो दग्ध कामदेव यहीं पुनः अंकुरित हो गया है। जघनद्वय विस्तीर्ण एवं रम्भागर्भवत् कोमल है।।२६-२८।।

गूढ़गुल्फौ तु पद्माभौ पद्माङ्कितसुनूपुरौ। काञ्चित् किङ्किणीभावं तं ब्रह्मसूत्रेण राजते ॥२९॥
केयूरनागबन्धेन ह्यङ्गदैः रक्तकाञ्चनैः। ग्रैवेयका किरीटोर्द्धे सावशेषविशेषकम् ॥३०॥
राजते च तृतीयेन लोचनेनालकेन च। राजन्ती पीतवासेन छुरितारुणरेणुना ॥३१॥

गुल्फद्वय अत्यन्त गूढ़, पदाङ्कित तथा कमलवत् है। उसके ऊपर नूपुरद्वय हैं। कटिप्रदेश में देवी ने काञ्ची तथा किङ्किणी धारण किया है। हाथों में केयूर, नागबन्ध तथा अंगद है। गले में ग्रैवेयक है, मस्तक पर किरीट है। ललाट पर तिलक तथा तृतीय नेत्र है। उनके परिधान में पीत वस्त्र है। वह अरुण रेणु से विच्छुरित है।।२९-३१।।

द्विभुजा या च विंशाष्ट तावद्दोर्दण्डधारिणी। असिखेटकहस्ताभ्यां गदादण्डेन चापरौ ॥३२॥
शरचापपरेताभ्यां समुद्गर चापरौ। परशुचक्रधरौ चान्यौ डमरू दर्पणचामरौ ॥३३॥
शक्तिकुण्डधृतौ चान्यौ हलमूषल चापरौ। पाशतोमर चान्यौ तु ढक्कापणव चापरौ।
तर्ज्जयन्तीव चान्येन कुर्वन्ती कलकलारवैः ॥३४॥
अभयं स्वस्तिकाङ्केन अष्टाविंशभुजा शिवा। सिंहपद्मासना संस्था सिंहासनव्यवस्थिता ॥३५॥
महिषघ्नी शिरश्छेदान्तरं शस्त्रोग्रपाणिनाम्। तर्ज्जमानं हतं मूर्ध्नि नागपाशेन वेष्टितम् ॥३६॥

उनके २८ हाथों में नानाविध अस्त्र सज्जित हैं। वे असि, खेटक, गदा, दण्ड, शर, धनु, चाप, मुद्गर, परशु, चक्र, डमरु, दर्पण, चामर, शक्ति, कुम्भ, हल, मूषल, पाश, तोमर, टङ्क, आपणव प्रभृति अस्त्र द्वारा मानो तर्जन कर रही हैं। इनके अन्य दो हाथों में अभयमुद्रा तथा स्वस्तिक है। २८ भुजाओं वाली देवी सिंह पर आरूढ़ हैं। महिष का शिरश्छेद करते ही उग्र शस्त्रपाणि निहत असुर को नागपाश में बांधकर तर्जन कर रही हैं।।३२-३६।।

घातमाना रिपुं देवी पूजनीया पुरन्दर। स्थापिता पूजिता शक्र स्मरता पठतापि वा ॥३७॥
प्रयच्छति शुभान् कामान् मनोऽभीष्टान् यजेन्नरः। पङ्केषु शैलं दार्वं वा मृण्मये वापि वासव ॥३८॥
सोपवासः शुचिः स्नात्वा कामक्रोधविवर्ज्जितः। सर्वसङ्गोज्झितः प्रीतस्तन्मना भावभावितः ॥३९॥
पुष्पगन्धोपहारैश्च हविष्यान्तैरनेकशः। तिलसर्पिर्यवान् हुत्वा सर्वमङ्गलमन्त्रितान् ॥४०॥

हे पुरन्दर! इस प्रकार से शत्रुघातिनी देवी की पूजा, स्मरण तथा माहात्म्य का पाठादि करने से मनोवांछित फल मिलता है। हे शक्र! पङ्क, शैल, दारु (लकड़ी) आदि द्वारा मूर्त्ति-निर्माण करके उपवासी व्यक्ति स्नान करके पवित्र होकर, काम-क्रोध आदि से रहित होकर सभी संग का त्याग करके एकाग्र मन से पुष्प-गन्धप्रभृति उपहार लेकर देवी का पूजन करना चाहिये। विविध हविष्यान्न नैवेद्य दान करके घृत, तिल, यव इत्यादि को मन्त्रपूत करके आहुति प्रदान करनी चाहिये।।३७-४०।।

वस्त्रहेमाम्बुसम्पातैः कलसैर्देवीन्तु स्नापयेत्। ततस्तच्छास्त्रवेत्तारैः प्रतिष्ठान्तु प्रकारयेत् ॥४१॥
देवीं शास्त्रार्थतत्त्वज्ञैर्मातृमण्डलवेदिकैः। भूततन्त्रग्रहबालगारुड़ेषु कृतश्रमैः ॥४२॥
प्रतिष्ठान्तु शिवान्तैस्तु यथाशक्त्या तु दक्षयेत्। पूजयेद् ब्राह्मणाञ्छक्र कन्यां बालास्तथैव च ॥४३॥

वस्त्र से आच्छादित कलस से देवी को स्नान कराये। तदनन्तर जो देवी का शास्त्रार्थतत्त्व जानते हैं, जो मातृमण्डलादि से अभिज्ञ हैं, उनके द्वारा देवी की प्रतिष्ठा कराये। भूत-तन्त्र, ग्रह, सर्प, गारुड़ प्रभृति शास्त्र में जिन्होंने परिश्रम किया है,

उनके द्वारा प्रतिष्ठा कराये। अन्य द्वारा प्रतिष्ठा कराने से अमङ्गल होता है। ब्राह्मण तथा कुमारीगण की यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये।।४१-४३।।

दीनादिविकलान् सर्वान् यथाशक्त्या क्षमापयेत्। तदन्ते स्वस्तिवाच्यन्तु मङ्गला प्रीयतां मम ॥४४॥
सुखं तिष्ठन्तु राजानो गोब्राह्मणप्रजास्तथा। क्षत्रविट्शूद्रबालेभ्यः सर्वशान्तिकरा भवा ॥४५॥
सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु ये जनाः फलकामिनः। तथा स्तवेन चान्येन शिवगीतेन तोषयेत् ॥४६॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे प्रतिष्ठाकर्मयोगो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः

दीन-दरिद्र-विकलाङ्ग प्रभृति से क्षमाप्रार्थना करे। अन्त में स्वस्तिवाचन कराया जाय—हे सर्वमङ्गले, मुझपर प्रसन्न होइये। राजा, गौ, ब्राह्मण प्रजा इत्यादि सभी सुखयुक्त हो जायँ। क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-बालक प्रभृति सबका मंगल करिये। जो व्यक्ति जो कुछ कामना करे, उसे कृपया प्रदान कीजिये। इसके अतिरिक्त देवी को प्रीतिदायक लगने वाले अन्य स्तव का पाठ करके देवी को प्रसन्न करना चाहिये।।४४-४६।।

द्वात्रिंश अध्याय समाप्त

●

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वैवं देवराजेन कर्मयोगं पितामहात्। पप्रच्छ च स्तवं भूयः शम्भुगीतं यथा पुरा ॥१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—देवराज ने पितामह ब्रह्मा से इस प्रकार से कर्मयोग सुनकर पूर्व में महादेव ने स्तवगायन किया था, उसे ही पुनः पूछा।।१।।

शक्र उवाच

स्तवं देव पुरा देव्याः शम्भुना भार्गवस्य यत्। कथितं सिद्धिकामस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥

इन्द्र कहते हैं—हे पितामह! पूर्वकाल में महादेव ने सिद्धि की कामना वाले भार्गव को जो स्तव बतलाया था, अब उसका वर्णन मुझसे करिये।।२।।

ब्रह्मोवाच

शुक्रेण च पुरा शक्र तपस्तप्तं सुदुश्चरम्। दिव्यं वर्षसहस्रन्तु कैलासे शिखरोत्तमे ॥३॥
तथापि नोऽभवत्तस्य वरदस्त्रिपुरान्तकः। पुष्पदन्तगणः स्तोत्रमुदीरयन्मधुरस्वरः ॥४॥
तं बुद्ध्वा तद्गतं चित्तं शुक्रो वेदविदांवरः। स्तवेनानेन देवेशं तोषयामास भार्गवः।
विचित्रपदबन्धेन ललितं मधुरेण च ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! पूर्वकाल में शुक्र ने कैलास पर्वत पर जाकर सहस्र दिव्य वर्षों तक कठिन तपस्याचरण किया था; किन्तु अनेक प्रयास करने पर भी महादेव वर देने नहीं आये। वेदवित् शुक्र ने विचार किया कि भगवान् शंकर मधुर स्वर से पुष्पदन्तकृत स्तव से तद्गत चित्त होते हैं। तब वे विचित्र पदबद्ध मधुर स्वर से उस स्तव को गाकर महादेव को प्रसन्न करने लगे।।३-५।।

शुक्र उवाच

शक्रं वेदविदं कृताञ्जलिपुटं भक्त्या भवे भावितं संसाराद्भयभीतखिन्नमनसां विज्ञापयेत् शंकरम्।
देहं पश्यत नित्यरोगबहुलमायासदुःखावृतं भुक्षिभिस्तृषितं विभीषणकरं निर्लज्जकामातुरम् ॥६॥
दृष्ट्वा वञ्चितमोक्षमार्गरहितं क्रोधानलोद्दीपितं शुक्रोवाच महेश्वरस्य पुरतः स्तोत्रं तवाराधनम्।
संसाराद्विविधान् महाभयकरादत्यन्तशोकान्वितान् कर्माबन्धसुयन्त्रितात् प्रतिसवां प्राणी घटीयन्त्रवत् ॥७॥

शुक्र कहते हैं—हे शकर! मैं वेदविद् शुक्राचार्य संसारभय के कारण भीत होकर कृताञ्जलि होकर आपके समक्ष आत्म-निवेदन कर रहा हूँ। इस नित्य रोगबहुल देह की स्थिति देखिये। यह विविध आयास तथा दुःख से परिवृत्त है। सर्वदा क्षुधा-पिपासा से कातर है। क्षण-क्षण में भयातुर, निर्लज्ज तथा कामातुर हो जाती है। इस प्रकार आत्मनिवेदन करके शुक्र ने विचार किया कि यह संसार अत्यन्त भयंकर है। इसका अन्त नहीं है। यह दुःख-शोक से परिपूर्ण है। यह मोक्षमार्ग से रहित तथा क्रोधानल से उद्दीपित है। काम से व्याप्त होने के कारण जीवगण मुग्ध होकर घटीयन्त्र की तरह पुनः-पुनः उन्नति तथा पतन को प्राप्त होते हैं।।६-७।।

दृष्ट्वा चञ्चलतोयबुद्बुदसमं प्राप्येह मानुष्यकं सर्वं सर्वगतेन नान्यमनसा नैवार्च्चितो मोहतः।
ते धन्या भुवि मानवाः सुकृतिनस्ते सात्त्विकास्ते क्षमास्तेषां जन्म कृतार्थकं न च मृताः शोच्या भवन्तीह ते ॥८॥

जो जलबुद्बुद के समान क्षणभङ्गुर इस मनुष्यजन्म को पाकर भी अनन्यमन होकर महादेव की अर्चना नहीं करते, उनके समान मोहान्ध इस संसार में नहीं है। जो सर्वतोभावेन देवदेव पशुपति का आश्रय ग्रहण करते हैं, उनकी ही भावना को परम पुरुषार्थ कहा जायेगा। मनुष्यलोक में वे ही धन्य हैं, वे ही सुकृति तथा सात्विक भावयुक्त हैं, वे ही सक्षम हैं, उनका ही जन्म लेना सार्थक है। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् शोचनीय स्थिति को प्राप्त नहीं होते। ऐसी कोई भी इच्छित वस्तु नहीं है, जो उनको प्राप्त नहीं हो सके।।८।।

देवं परमार्थतः पशुपतिं सर्वात्मना संश्रिताः प्राप्तं किन्तु न तैः प्रधानपुरुषैर्ह्यद्याञ्छितं तत्फलम्।
ब्रह्मोपेन्द्रमरुन्महेन्द्रवसुभिर्विद्याधरैः सादरैर्लिङ्गं यस्य सदार्च्चितं मुनिगणैरन्यैश्च दैत्यादिभिः ॥९॥

ब्रह्मा, उपेन्द्र, वायु, इन्द्र, वसु, विद्याधर, मुनि एवं दैत्यगण द्वारा जिनका लिंग सदैव अर्चित होता रहता है, जो विश्वरूप धारण करके इस चराचर ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, कौन व्यक्ति उन कारणों के भी कारण देव पशुपति की अर्चना नहीं करेगा?।।९।।

व्याप्तं येन चराचरं जगदिदं विश्वात्मना मूर्तिभिः कस्तं कारणकारणं पशुपतिं देवं परं नार्च्चयेत्।
त्रैलोक्यराज्यञ्च तथामरत्वं नागेन्द्रकन्या सुरयोषिताश्च एतानि चान्यानि च ते लभन्ते येषां हरः प्रतिमना बभूव ॥११॥
ये लोकेषु विभूतिकान्तिवपुषो धर्म्मार्थकामप्रदा विभ्राणा मणिरत्नकुण्डलरुचि प्रोद्भासि गण्डस्थले।
कुर्वन्ति स्वमयूखकान्तिकिरणैर्नष्टान्धकारा दिशः तत्सर्वं विविधं प्रसाद्य विबुधाः प्राप्ता विभूतिं पराम् ॥१२॥

जिसके ऊपर महादेव प्रसन्न हो जाते हैं, वह त्रिलोकी का राज्य, अमरत्व, नागकन्या, सुरकन्याप्रभृति सभी उपभोग-साधन प्राप्त कर लेता है। त्रिभुवन में देवगण जिस अतुल ऐश्वर्य, अत्यन्त अद्भुत अंगकान्ति, धर्म-अर्थ-काम-प्रदायिनी अद्भुत शक्ति - युक्त हैं तथा वे गण्डस्थलस्थ समुज्ज्वल मणिकुण्डल एवं रत्नकुण्डल की किरणराशि द्वारा दिक्चक्र का अन्धकार नष्ट करते हैं, वह सब केवल सर्वेश्वर महादेव की आराधना का ही फल है।।१०-१२।।

यन्नीलोत्पलपत्रगन्धसुरभिं पीत्वा तु रात्रौ मधु कामं चारू विलासिना सुललितं सत्प्रेममालिङ्गितम्।
यद्विद्याधरतां गताः सुकृतिनस्त्यक्त्वा तनूं मानुषीं तत् कामारिनिषेवणादपगतं तेषां फलं शाश्वतम् ॥१३॥

जो नश्वर मनुष्यदेह त्यागकर विद्याधरत्व प्राप्त करके निशाकाल में नीलोत्पल गन्ध वाले मधुपान के पश्चात् चारु विलासिनी रमणियों के साथ सुललित प्रेमालाप तथा प्रेमालिङ्गनार्थ चेष्टारत होकर यथेष्ट सुख-सम्भोग करते हैं, भगवान् कामान्तक की उपासना ही उनके इस सुखसम्भोग का कारण है।।१३।।

यन्मातङ्गतुरङ्गमार्गणरथाः प्रख्यातयोधा रणे मत्तैश्चापि गजैर्मदौद्धविसवैः प्रक्लिन्नगण्डस्थलैः ।
संचूर्णान्तमुदान्विता सह नृपैः श्वेतातपत्रोच्छ्रितैः रुद्रेज्याभिरतस्य तत् फलमिदं सम्मुच्यते नान्यथा ॥१४॥

जिनके बलशाली सेना वाले अपने मदमत्त गजसमूह को उत्तेजित करके रणस्थल में विपक्षी राजाओं के हाथी-घोड़े-रथ आदि को चूर्णित करके आनन्दोत्पादन करते हैं, उनको ऐसा ऐश्वर्य केवल रुद्र की आराधना से ही मिला है। यह अन्यथा वर्णन नहीं है।।१४।।

ऐश्वर्य्यात्प्रवरैर्गजैश्च तुरगैर्यद् गम्यते लीलया लग्नैर्लग्नविशिष्टशोभनगुणैर्यन्नाम सङ्कीर्त्यते ।
ताम्बूलं त्रिफलेन्दुपल्लवयुतं विप्रेषु यद्दीयते तच्चित्तं हर साध्यपादपतनाद्भक्तिरतु मोक्षे स्थिता ॥१५॥

सर्वोत्तम हस्तिगण तथा अश्वगण आपकी लीलागति दिखलाकर जिसके ऐश्वर्य को प्रकाशित करते हैं, बन्दीगण जिनकी स्तुति करके गुणगान करते हैं, ब्राह्मणगण कर्पूरादि से सुगन्धित ताम्बूल लेकर जिसका उत्कर्ष-साधन करते है; उनका यह सब सौभाग्य हराराधन के फल के अतिरिक्त कुछ नहीं है।।१५।।

यन्नीलाम्बुजकोषकोमलदलप्रोत्फुल्लनेत्राः स्त्रियः काञ्चीमेखलनुपुरोरुयुगलव्यासक्तचीनांशुकाः ।
दास्यं यान्ति विकम्पितस्तनभरव्यावन्दिता भ्रूलताः प्रीत्यर्थं रतिनाथदेहदहनः संसेव्यते नान्यथा ॥१६॥

नीलाम्बुजनयना रमणीगण चीनांशुक, काञ्ची, मेखला, नूपुर आदि वसन-भूषण से सज्जित होकर अपने भ्रूयुगल को इतःस्ततः सञ्चालित करके लीलागमन से उन्नत पयोधरयुगल कम्पित करते-करते जिनका दास्य करती हैं, कामान्तक महादेव की आराधना से ही उनको इस सौभाग्य की प्राप्ति हो सकी है।।१६।।

सिन्दूरबद्धमधुवासितनागवृन्दं यद् भूपतेः कनकदण्डसितञ्च छत्रम् ।
यच्चञ्चलं चमरचारूविधूयमानं तत्सर्वमीशचरणे प्रणतस्य पुंसः ॥१७॥

सिन्दूर से शोभित मदमत्त गजघट, कनकदण्ड श्वेतछत्र, मनोहर चामरप्रभृति के उपभोग का भाग्य ईश्वरचरण में प्रणत को ही प्राप्त होता है।।१७।।

वीणावेणुमृदङ्गवाद्यपणवैः संयोगभावान्वितैः नारीभिः मदविह्वलाभिरनिशं ये गीयमाना नृपाः ।
शङ्खेन्दुस्फटिकावदातधवले हर्म्योत्तमे संस्थिता ते मोदन्ति दिवौकसा इव चिरं येषां प्रसन्नः शिवः ॥१८॥

विलासिनीगण वेणु-वीणा-मृदग आदि वाद्य यन्त्र लेकर नानाविध हाव-भाव के साथ गीत-वाद्यादि से उस व्यक्ति का आनन्द वर्द्धन करती हैं। महेश्वर जिसपर प्रसन्न हो जाते हैं, वह देवगण के समान शंख-चन्द्र-स्फटिक आदि की तरह ही धवलवर्ण हर्म्यतल में आसीन होकर परमसुखभोग करता है।।१८।।

यत्कान्तावदनारविन्ददशनज्योत्स्नाभिरामोज्वलं श्वासामोदचलं तुरङ्गचपलं प्रोल्लेलनाचञ्चलम् ।
विन्यस्तं मणिभाजनेषु विधिवद् बन्धूकरागं मधु नीलाम्भोरुहवासितं सुरगुरौ शुश्रूषया पीयते ॥१९॥

कान्तादशनज्योति के प्रतिफलित होने से जिसका मुखमण्डल ज्योत्स्नायुक्त है, उसकी निश्वासवायु से चञ्चल, मणिपात्र-स्थित बन्धूक पुष्प के समान लौहित्य वर्ण है, नीलोत्पलगन्धि मधुपान करके जो सुखभोग करते हैं, उनके इस सौभाग्य का कारण है—भगवान् की आराधना।।१९।।

यत् काञ्चीकलनादपीनजघनव्यासक्तचीनांशुकाः कर्णान्तायतलोचनाः सुवदना लावण्यलब्धास्पदाः ।
यद्दासीत्वमुपागताः क्षितिभुजामाशा विधेयाः स्त्रियः तत् सर्वं भवभक्तिपूतमनसां राज्ञां जगत्तत्फलम् ॥२०॥

जिसके कटि में काञ्चीदाम है, पीन जघनस्थल में चीनांशुक है, जिसके कर्णपर्यन्त फैले नेत्र हैं, जिनका अङ्गलावण्य मनोहारी है, जिनकी सुन्दर मुखकान्ति है, ऐसी समस्त रमणियाँ जिसका दासी के समान आज्ञापालन करती हैं, उनके इस सौभाग्य का एकमात्र कारण है—शिवभक्ति।।२०।।

ये सुप्ता रजनीषु मन्दिरवरे पर्य्यङ्कबिम्बे शुभे नारीभिर्मदविह्वलाभिरनिशं सोत्कण्ठमालिङ्गिताः ।
निन्द्रानाशमिहोपयान्ति मधुरैः सङ्गीततूर्य्यस्वनैः तत्सर्वं समुपार्जितस्य विधिवच्छम्भोः प्रणीतं फलम् ॥२१॥

जो रात्रिकाल में अपने प्रासादकक्ष में पर्यङ्क पर शयन करके उत्कण्ठित विलासिनीगण के कण्ठालिङ्गनार्थ सुखसम्भोग करते हैं, सुमधुर सङ्गीत तथा तूर्यध्वनि से जिनका निद्राभङ्ग होता है, वे वस्तुतः निश्चित रूप से शम्भु की कृपा का ही फलभोग कर रहे हैं।।२१।।

नानायन्त्रसहस्रसापि रचितं भीमावरुद्धाकुलं तं भित्वा प्रविशन्ति चारू विमलं दैत्याङ्गनान्तःपुरम् ।
सिद्धं द्रव्यरसायनं युवतयः कामाश्च कामानुगाः तत्सर्वं सुलभं भवेत सुधियां प्रीतेन कामारिणा ॥२२॥

भगवान् कामारि शम्भु जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, वे नाना यन्त्र, विचित्र भीमकाय प्रहरीगण से घिरे, मनोहर दैत्याङ्गनाओं के अन्तःपुर में प्रवेश करके नानाविध सिद्ध रसायन द्रव्य तथा कामचारी कन्याओं का उपभोग करते हैं।।२२।।

ये सर्वे शरणागताः सुपुरुषास्त्यक्तान्यकार्य्या दशा त्रैकाल्यार्च्चनजप्यहोमनिरताद्रोगादिभिर्वर्जिताः ।
ते भोगान् विविधानुभूयसकलान् कालेन कर्मक्षयाद् वित्तैश्वर्य्यसमन्विताः क्षितितले जायन्ति ते भूमिपाः ॥२३॥

जो सब सुपुरुष अन्य कार्य को त्याग कर सर्वेश्वर शिव की शरण लेते हैं, त्रैकालिक पूजा, जप, होमादि में लगे रहते हैं, रागादि दोषों का त्याग करते हैं, वे विविध भोगानुभव करके कर्मक्षय होने पर राजा होकर जन्म लेते हैं तथा अतुल ऐश्वर्य का भोग करते हैं।।२३।।

ये मूढा न श्रयन्ति वरदं संसारदुःखच्छिदं देवं सर्वसुरासुरप्रणमितं शम्भुं परं कारणम् ।
ते लोके परपिण्डतर्पणपरा दीनाः सदा दुःखिता जायन्ते भुवि मानवाः कुवसना धर्म्मार्थकामोज्झिताः ॥२४॥

जो मूढ़ व्यक्ति संसार के दुःखनाशक, सुरासुरवन्दित, परम कारण, वरप्रद शम्भु का आश्रय नहीं लेते हैं, वे दीर्घकाल-पर्यन्त मलिन वस्त्र पहनकर दुःखित अन्तःकरण से परपिण्ड से पेट भरकर विचरण करते हैं (परपिण्ड—अन्य लोगों से माँगकर पेट भरते हैं)। उनका धर्म-अर्थ-कामादि दुःख द्वारा हरण कर लिया जाता है।।२४।।

ये लोकाधिपतिं सुरासुरगुरुं ब्रह्मेन्द्रसम्पूजितं वेदाद्यन्तषडङ्गयोगविहितं सांख्यादिभिः कल्पितम् ।
सर्वज्ञं प्रभुमीश्वरं त्रिनयनं सर्वात्मना भाविताः ते भूयो न कलाकलङ्कगहनं पश्यन्ति योनिर्मुखम् ॥२५॥

जो व्यक्ति लोकाधिपति सुर-असुरगुरु, ब्रह्मादि देवगण द्वारा पूजित, वेद-वेदाङ्गादि से बोधगम्य, सांख्ययोग-कल्पित प्रभु त्रिनयन की सर्वतोभावेन भावना करते हैं, उन्हें पुनः गर्भयन्त्रणा नहीं सहनी पड़ती।।२५।।

ये त्वन्ये सुकृतैषिणः प्रतिदिनं प्रोत्थाय भावान्विताः कर्पूरागुरुचन्दनैः सुरुचितैः स्रग्भिस्तथाभूषणैः ।
क्षीरादिस्नपनैर्विधानविहितैः कुर्वन्ति शर्वार्च्चनं भोगान् सर्वगतानुभूय सुधियो गच्छन्ति दिव्यं पदम् ॥२६॥

जो सत्कर्म करने वाले व्यक्ति नित्य कर्पूर, अगुरु, चन्दन, माला, भूषण, क्षीरादि स्नानीय प्रभृति विहित द्रव्यों से सर्वेश्वर का पूजन करते हैं, वे समस्त सुखभोग करके अन्त में दिव्य पद प्राप्त करते हैं।।२६।।

ये केचित् कुपथाश्रिता जडधियो मन्दाममज्ञाः शठाः देवं शान्तमजं प्रधानपुरुषं निन्दन्ति मोहाच्छिवम्।
मृत्योद्गोचरमागताः यमभटैर्नानाविधैः शासनैः शाम्यन्ते नरकेषु ते प्रतिबलैश्चाक्रन्दमाणा भृशम् ॥२७॥

जो कुपथगामी-शठ-मन्द-जड़बुद्धि व्यक्ति शान्त, अज, प्रधान, पुरुष देव, महेश्वर की निन्दा करते हैं, वे मरणान्त में नरकगामी होते हैं।।२७।।

दानं भूतदयागुरूपदशनं क्षान्तिर्न चैवार्जिता सत्यं शौचमहिंस्रता शमदमत्यागोऽनुकम्पा तथा।
येषां नैवमिहास्ति मूढ़मनसां शर्वार्च्चनं क्वचित् तेषां नष्टपिशाचकागतधियां पुंसां विभूतिः कुतः ॥२८॥

वहाँ यमकिङ्करों द्वारा नाना प्रकार के शासन वाक्य से शासित होकर क्रन्दन करते हैं। दान, दया, गुरुसेवा, क्षमा, सत्य, शौच, अहिंसा, यम, दम, अनुकम्पा-प्रभृति रहने पर भी जो व्यक्ति कभी महेश्वर की आराधना नहीं करता, उसके ये सभी गुण विफल हो जाते हैं, उसे कभी भी ऐश्वर्य नहीं मिलता।।२८।।

द्वेष्टारस्तु शिवस्य ये कुपुरुषा गच्छन्ति तेऽधोगतिं तामिस्रे क्रकचासिपत्रनरके कुम्भी महारौरवे।
योनिमार्गसहस्रखिन्नगमनाः प्राप्येह मानुष्यकं रोगार्तो जड़वासनान्धबधिरा जायन्ति योनौ खलाः ॥२९॥

जो सब कुपुरुष शिवद्वेषी हैं, उनको अधोगति मिलती है। वे पहले तामिस्र, क्रकच, असिपत्र, कुम्भी, महारौरव-प्रभृति नरकों को भोगकर सहस्र योनि में भ्रमण करके रोगार्त्त, बधिर, अन्ध, जड़ किंवा मूकादि होकर मनुष्यजन्म ग्रहण करते हैं।।२९।।

जन्मव्याधिजरावियोगमरणक्लेशादिभिः सन्ततां भूतिं चञ्चलसागरोर्मिचपलं स्वप्नोपमं जीवितम्।
मातापितृकलत्रपुत्रसुहृदो ये केऽपि बन्धात्मकाः ज्ञात्वैवं नरलोकमध्रुवमिमं शर्वं सदा संश्रयेत् ॥३०॥

यह देह जन्म, व्याधि, जरा, शत्रुभय, मरण आदि क्लेशों से परिपूर्ण है। ऐश्वर्य तो सागर की तरङ्गों के समान चञ्चल है। जीवन स्वप्नवत् है। माता-पिता, कलत्र, पुत्र, सुहृद्—ये केवल बन्धकारक हैं। संसार का यह समस्त मायाजाल है। इसकी विवेचना करके सदैव महादेव की शरण लेना ही उचित है।।३०।।

यैर्दत्तं न धनं यथाविभवतः पात्रेषु दीनेषु वा विद्या नागमिता यशो न विततं शीलं न संरक्षितम्।
सत्यं नाधिगतं तपो न चरितं कीर्त्तिर्न विक्रामिता तेषां क्षेम शिवं न विद्यति नृणां मुक्त्वा हराराधनम् ॥३१॥

जो अपने विभव-धनादि के अनुसार सत्पात्र अथवा दरिद्रों को धन दान नहीं करते, विद्याध्ययन, यशोलाभ, उत्तम स्वभाव, सत्य, तपस्या, कीर्त्ति किंवा विक्रम जिनमें नहीं है, उनका भगवान् हर के आराधन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।।३१।।

येषां न शम्भुचरणाग्रतभक्तिवादः क्षुण्णां ललाटशतजर्ज्जरितं कपालम्।
तेषां कुतो बहुलचन्दनचर्च्चितानि मुक्ताफलार्च्चितवधूस्तनमण्डलानि ॥३२॥

जो शम्भु के चरणाग्र-स्थित भूमितल पर शत-शत प्रणाम करके अपने ललाट को जर्जरित नहीं करते, बहुचन्दन-चर्चित, मुक्ताफल-शोभित विलासिनीगण के स्तनमण्डल का भोग वे कैसे कर सकेंगे।।३२।।

ये त्वां विभो सुपरिकल्पनकल्पितेषु सम्यक् चरन्ति विविधेषु शिवार्च्चनेषु।
ते चारुतुङ्गघनकुङ्कुमपिञ्जरीषु विद्याधरीषु निवसन्ति कुचान्तरेषु ॥३३॥

हे विभो! जिनके हाथ आपकी अर्चना आदि में सतत निरत हैं, उनके वे दोनों हाथ विद्याधरीगण के कुङ्कुमशोभित अति उन्नत घन स्तनमण्डल के ऊपर स्थित रहें।।३३।।

प्रव्रज्या न कृता विधानविहिता उक्ता तु या शम्भुना शैवज्ञानमहार्णवस्य विधिवन्नैवञ्च पारं गतम्।
पुष्पैश्च बककर्णिकारतिलकैः नाभ्यर्च्चितः शुलधृक्कालोऽयं परपिण्डतर्पणपरैः काकैरिव प्रेषितः ॥३४॥

जो शिवोक्त विधि-विहित प्रव्रज्या का अनुष्ठान नहीं करते, शैवज्ञानरूप महासमुद्र का पार उनको प्राप्त नहीं होता। बक, कर्णिकार, तिलकादि पुष्पों द्वारा जिन्होंने महादेव की अर्चना नहीं की है, वे केवल कौआ की तरह परपिण्ड से उदरपूर्ति करते हैं।।३४।।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये नैवाभिः श्रुतिभिः स्तुतोऽहरहः शम्भुः विभुर्भूतले।
नैवाप्युत्कटगन्धधूपकुसुमैः पूजा कृता शङ्करे धात्रा नूनमकारणं वयमिह सृष्टा जगत्पूरणे ॥३५॥

मैंने जब संसारपाश को उच्छिन्न करने हेतु विधिवत् ईश्वर के पद का (चरणों का) चिन्तन नहीं किया, अहरहः (सर्वदा) स्तुतिपाठ अथवा गन्ध-धूप-पुष्पादि द्वारा उनकी अर्चना नहीं किया, तब विधाता ने निश्चित रूप से जगत्-पूरणार्थ सृष्टि किया है, यही प्रतीत होता है (अर्थात् तब जगत् से मेरी अथवा ऐसे अन्य लोगों की मुक्ति नहीं हो सकेगी। अतः आवागमन चक्र चलते रहने से जगत् जनसंकुल, प्राणिसंकुल बना रहेगा, भरा रहेगा)।।३५।।

संसर्गात्कौतुकाद्वा क्षणमपि यैः जप्तं पादेषु पद्मेषु शम्भो याति ब्रह्मेन्द्रविष्णुद्रविणपतिपुरांस्त्रीनतिक्रम्य लोकान्।
शान्त्या भावेन यस्तं प्रणमति सततं सर्वविन्यस्तसर्गी संछिन्नः क्लेशपाशैः प्रविशति विरजो रुद्रतेजोनिधानम् ॥३६॥

कौतुक से अथवा संसर्ग से जिस-किसी प्रकार से क्षणमात्र हेतु भी महादेव के चरणों में गिर जाने से तीनों लोकों का अतिक्रमण करके उत्तम लोक मिल जाता है। तब तो जो व्यक्ति भक्तिभाव से उनके चरणों पर गिरते हैं, उनका संसार-क्लेशपाश समाप्त होता है और वे विरज रुद्रतेजयुक्त हो जाते हैं।।३६।।

यत् किञ्चासनजप्यहोमनिरता रागादिभिः वर्ज्जिता शम्भोः पादनिपातघृष्टशिरसः प्रत्यङ्मुखाः पत्लिषु।
तेषामेव निगूढ़नूपुरवरा चञ्चच्चलन्मेखला सम्भ्रान्ताग्रजपङ्कजोद्यतकरा पर्य्येति लक्ष्मीः स्थिरम् ॥३७॥

जो तनिक भी आसन-जप-होमादि में निरत रहकर संसारसुख को त्यागने का प्रयत्न करते हैं तथा शम्भु के चरणयुगल में अवनत होकर दिन व्यतीत करते हैं, लक्ष्मीदेवी नूपुर-मेखलादि से भूषित होकर दाहिने हाथ में प्रफुल्ल पद्मपुष्प लेकर ससम्भ्रम उनका आश्रय लेती हैं (उसके यहाँ स्थिर रहती हैं)।।३७।।

यैर्नाद्याप्यन्यजन्मन्यसितकुवलयैः मिश्रिताभिः सिताभिः मालाभिः मालतीनां त्रिभिरमरगुरुणार्च्चितो नीलकण्ठः।
ते विद्यावित्तहीनाः प्रचलितमनसः क्षुत्तृषाक्षामकण्ठा लोकेऽस्मिन् दोषदुष्टाः परिभवविभवास्ते च नित्यं भवन्ति ॥३८॥

जो इस जन्म में, किंवा पूर्वजन्म में कुवलयमिश्रित मालतीमाला से भगवान् नीलकण्ठ की अचर्ना नहीं करते अथवा नहीं करते थे, वे संसार में धनहीन, विद्याहीन, चञ्चलचित्त, क्षुधा-पिपासा से कातर होकर, परिभवास्पद होकर लोगों में दोषभाजन होकर रहते हैं।।३८।।

ये मानवा विगतरागपरापरज्ञा योगेश्वरं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन ते प्रहतकिल्विषमोहजाला मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति ॥३९॥

जो व्यक्ति वीतराग तथा परापर बुद्धि (अपना-पराया) से रहित होकर सर्वदा योगेश्वर की आराधना करता है, वह ध्यानबल से सर्वपापरहित होकर, मोहजाल को छिन्न करके मोक्षपद प्राप्त करता है। उसे पुनः (जन्म लेकर) मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता।।३९।।

तद् गात्रं प्रणिपातरेणुधवलं सर्व्वस्य यत् सर्वदा ते नेत्रे तपसार्ज्जिते सुरुचिरे ताभ्यां हरो दृश्यते।
सा वृद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या शङ्करध्यायिनी सा जिह्वा मृदुभाषिणी हितकरी या स्तौति नित्यं शिवम् ॥४०॥

वही गात्र (यथार्थतः) गात्र है (शरीर है), जो महादेव को प्रणाम करते-करते (भूमि पर) धूल-धूसरित हो जाय। वे ही नेत्र मनोहारी हैं, जो हर के रूप का अवलोकन करते हैं। वह बुद्धि ही चन्द्रमा तथा शंख के समान निर्मल है, जो शंकर के ध्यान में लगी है। वह जिह्वा ही यथार्थ जिह्वा है, जो नित्य महादेव के स्तवपाठ में नियुक्त है।।४०।।

तच्चित्ते चपलं चिनोति कुशलं यन्निश्चलं शङ्करं ते श्रोत्रे परमे शिवामृतरसं याभ्यां हरः श्रूयते।
ते हस्ताः शिवधर्म्मकर्म्मनिरताः पूजाप्रमाणोत्सुका तौ पादौ समयौ प्रदक्षिणरतौ नित्यं विभोर्भावितौ ॥४१॥

चित्त सदैव चञ्चल है। उसमें से जिसका चित्त शंकर में नियुक्त होकर चञ्चलतारहित हो गया, वही चित्त अपने मंगल का साधन करता है। जो कान महादेव के गुण का श्रवण करते हैं, वे कान ही श्रेष्ठ हैं। जो हाथ महादेव के धर्मकर्म में लगे हैं तथा पूजा-प्रणामादि के लिये उत्सुक हैं, वे हाथ ही हाथ हैं। वे चरण ही चरण हैं, जो शिव की प्रदक्षिणा करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं।।४१।।

पापं पापरतं ह्यशुद्धमनसं निर्लज्जभग्नव्रतं क्रूरं तस्करमीर्षकं शठधियं तृष्णाधिकं निर्दयम्।
कामक्रोधवशं कृतघ्नचपलं तृष्णातुरं जिह्मलं मूर्खं हिंसनसूचकं पशुपते दोषाकरं त्राहि माम् ॥४२॥

हे पशुपते! मैं पापमति, अशुद्धचेता, निर्ल्लज्ज, भग्नव्रत, क्रूर, तस्कर, ईर्ष्यालु, शठबुद्धि, तृष्णा से तरल, निर्दय, कामादि के वशीभूत, कृतघ्न, चञ्चल, खल, मूर्ख, हिंसक हूँ। किम्बहुना, मैं सभी दोषों की खान हूँ। मेरा परित्राण आप ही करिये।।४२।।

दीनं दुःखितकं कुचैलमलिनं जिह्मं शठं दुर्भगं क्षुद्रं पापमतिं स्वधर्मचलितं बह्वाशिनं निर्धनम्।
अन्धं व्याधितनिष्ठुरं व्यसनिनं सद्भिः सदा निन्दितं मूर्खं धर्म्मविवर्ज्जितं पशुपते दोषाकरं त्राहि माम् ॥४३॥

हे पशुपते! मैं अतिदीन, सर्वदा दुःखी, मलिन वस्त्रों से भी मलिन हूँ। खलता-शठता मेरा धर्म है। दुर्भाग्य की तो बात ही नहीं है। मैं क्षुद्र; अथच पापाशय हूँ। स्वधर्म में मेरा मन नहीं लगता। बहुत भोजन करने से भी पेट नहीं भरता। अथच निर्धन हूँ। मैं एक साथ अन्धा (सन्मार्ग नहीं सूझना ही अन्धत्व है) तथा बधिर (सदुपदेश में रत नहीं होना, न सुनना ही बधिरता है) हूँ। मैं निष्ठुर तथा व्यसनी हूँ। पण्डितगण सदैव मेरी निन्दा करते रहते हैं। मैं मूर्ख तथा धर्माधर्मरहित होने के कारण सर्वदोष- युक्त हूँ। मेरी रक्षा करिये।।४३।।

इमं स्तवं शक्रविनिर्मितं पठन् दिने-दिने क्रतुफलमाप्नुयान्नरः।
लभत्यसौ यद्विहितं पुरातने तल्लक्षये गच्छति शाश्वतं पदम् ॥४४॥
एवं स्तुतः पुरा शम्भुः स्तोत्रेणानेन वासव। तुतोष देवदेवेशः शशाङ्काङ्कितशेखरः ॥४५॥

मनुष्यगण शुक्रकृत इस स्तोत्र का पाठ करके यज्ञफल पाते हैं तथा इस लोक में वांछित फल पाकर अन्त में परमपद से युक्त होते हैं। हे इन्द्र! भगवान् शशांकशेखर शुक्रकृत इस स्तवपाठ से प्रसन्न हो गये।।४४-४५।।

ईश्वर उवाच

वरं ब्रूहि ग्रहाध्यक्ष यत्ते मनसि वर्त्तते। सुरासुराधिपत्यं ते ददामि भृगुनन्दनम् ॥४६॥

ईश्वर कहते हैं—हे ग्रहाध्यक्ष! हे भृगुनन्दन! अब अपना अभिलषित वर माँगो। मैं तुमको सुर-असुरगण का आधिपत्य प्रदान करूँगा।।४६।।

शक्र उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव कृपा वा वर्त्तते तव। तदाह्याराधनं देव्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४७॥

शुक्र कहते हैं—देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तब यदि आपकी कृपा मुझ पर है, तब देवी की आराधना-प्रणाली का वर्णन करके मेरी कामना पूरी कीजिये।।४७।।

ईश्वर उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम्। कर्म्मयज्ञन्तु यज्ञानां सुकरं सुमहत्फलम् ॥४८॥

ईश्वर कहते हैं—हे वत्स! देवी की आराधना प्रणाली कहता हूँ। समस्त यज्ञों में कर्मयज्ञ अत्यन्त सुकर तथा महत् फलप्रद होता है।।४८।।

सांवत्सरी यथा पूजा सुकालेन समारभेत्। एवं नक्षत्रवेधादीन् कुर्यात् कन्दफलाशिनः ॥४९॥
यवसर्पिःप्रघासी च गोमूत्रं दधिगोमयम्। पवित्रं विहितं तन्त्रे असक्तानाञ्च भार्गव ॥५०॥

सांवत्सरिक (वार्षिक) पूजा की तरह यह पूजा उत्तम काल में प्रारम्भ करनी चाहिये। कन्द-मूल-फल पर निर्वाह करके किंवा यव-सर्पि (यव+घृत) मात्र का भोजन करके ही पूजा अर्चना करनी चाहिये। जो अशक्त हैं, वे गोमूत्र-दधि-दुग्ध का प्रयोग कर सकते हैं, जिसे शास्त्र ने पवित्र कहा है।।४९-५०।।

देवीव्रतं प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रसाधकम्। श्रावणे शुक्लपक्षे तु अष्टम्यां वायुभोजनः ॥५१॥
स्नात्वा सार्द्रपटीभूत्वा जितक्रोधः क्षमान्वितः। देवीं संस्नाप्य तोयेन पुनः क्षीरेण स्नापयेत् ॥५२॥

हे भार्गव! अब सर्वफलदायक देवीव्रत कहता हूँ। श्रावण मास की शुक्लाष्टमी को क्रोध जीतकर, क्षमावान तथा उपवासी रहकर स्नान करके गीले वस्त्र में ही प्रथम देवी को जल से तदनन्तर दुग्ध से स्नान कराना चाहिये।।५१-५२।।

ततो गुग्गुलधूपञ्च सतुरुक्षं प्रदापयेत्। ततो गन्धोदकस्नानं पुनस्तां येन स्नापयेत् ॥५३॥
श्रीखण्डेन समालभ्य बिल्वपत्रैश्च पूजयेत्। पायसं दापयेद्देव्या निवेद्य तेन भोजयेत् ॥५४॥
कन्यां द्विजांश्च शक्त्या तु तेषां दद्याच्च दक्षिणाम्। कात्यायनीति उच्चार्य प्रीयतां मम सर्वदा ॥५५॥

तदनन्तर गुग्गुलु तथा धूपदान करके गन्धजल से एवं तदनन्तर पुनः शुद्ध जल से स्नान कराना चाहिये। स्नानोपरान्त चन्दनादि लेप करके विल्वपत्र से अर्चना करनी चाहिये। पूजनोपरान्त पायस आदि निवेदित करके, उससे ब्राह्मण तथा कुमारीगण को भोजन कराना चाहिये। उन्हें दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये। तदननतर कहे कि हे देवी कात्यायनी! प्रसन्न हो जायँ।।५३-५५।।

आत्मनः पावनं तच्च कृत्वा आप्नोति भार्गव। आश्वमेधफलञ्चाग्र्यं देव्या लोकञ्च गच्छति ॥५६॥

यह कहकर पूजक को स्वयं भोजन कराना चाहिये। हे भार्गव! इस प्रकार से करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल तथा दुर्गालोक की प्राप्ति होती है।।५६।।

तदागत इमां भूमिं पृथिव्यां जायते नृपः। तेन स लभते योगं शिवाप्राप्तिकरं परम् ॥५७॥
मासे प्रौष्ठपदे शुक्र गोशृङ्गाग्रगृहीतया। मृदया ह्यात्मजो ह्यङ्गमुपलिप्य तु स्नापयेत् ॥५८॥
तदा आमलकैः स्नात्वा शुचिः सङ्गविवर्ज्जितः। पूजयेत् यूथिका पुष्पैर्देवीं क्षीरेण स्नापिताम् ॥५९॥
चन्दनोदकमिश्रेण कुङ्कुमेन विलेपयेत्। ततः पूपकनैवेद्यं कन्दवन्यांश्च दापयेत् ॥६०॥
अगुरुं धूपेन दद्यात्तिलतैलेन दीपिकान्। तेन ता भोजयेत् कन्या द्विजान् सद्वृत्तिवर्तिनः ॥६१॥

वहाँ भोग का अवसान हो जाने पर पृथिवी में जन्म लेकर वह राजा होता है तथा पुन: योग से देवीलोक प्राप्त करता है। हे शुक्र! भाद्रमास में गाय के शृंग के अग्रभाग में लगी मिट्टी को लेकर अपने अङ्ग में मले, तदनन्तर स्नान करे। तत्पश्चात् अङ्गों में आमलक का लेपन करके पुन: स्नान करे। इस प्रकार पवित्र होकर सभी सङ्गों से रहित होकर यूथिका के पुष्पों से देवी का पूजन, उन्हें क्षीर द्वारा स्नान, चन्दनमिश्रित कुङ्कुमादि का लेपन, अपूप-कन्द-वन्य फल आदि का नैवेद्य, अगुरु का धूप एवं तिल-तैल से प्रज्वलित दीप प्रदान करे। इन सब नैवेद्य द्वारा सदाचारी ब्राह्मणगण तथा कुमारीगण को भोजन कराये।।५७-६१।।

पाषण्डान् नावलोकेत नीचान् शास्त्रबहिष्कृतान्। दक्षिणा शक्तितो देया स्वस्ति वाच्येत मङ्गलम् ॥६२॥
पावनञ्चात्मनस्तच्च सौत्रामणिफलं लभेत्। गच्छते विष्णुलोकञ्च तदा विप्रोऽभिजायते ॥६३॥

पाषण्डी, नीच, शास्त्रज्ञानरहित ब्राह्मण को भोजन कराने का कोई फल नहीं होता। ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करके उनसे मङ्गलस्वस्तिवाचन कराना चाहिये। ऐसा करने से आत्मा पवित्र होती है तथा सौत्रामणि यज्ञफल मिलता है। वह साधक विष्णुलोक प्राप्त करता है भोगावसानोपरान्त वह जीव अगले जन्म में ब्राह्मणवंश में जन्म लेता है।।६२-६३।।

धनाढ्ये महति गोत्रे वेदवेदान्तपारगे। पुत्रवान् धनवान् भोगी सुखं प्राप्य शिवी भवेत् ॥६४॥

वह वेद-वेदान्तपारग महान् कुल में जन्म लेकर पुत्रवान्-धनवान् होकर परमसुख की प्राप्ति करता है एवं अन्त में उसे शिवत्व भी प्राप्ति होती है।।६४।।

आश्विने अष्टमीशुक्ले नदीमृद्भिश्च स्नापयेत्। ततो देवीं स्नापयेद्वत्स दधिना ह्युदकेन च ॥६५॥

आश्विन मास की शुक्लाष्टमी को नदी की मिट्टी लगाकर देवी को स्नान कराना चाहिये। तत्पश्चात् दधि-दुग्ध-शुद्ध जलादि से स्नान कराना चाहिये।।६५।।

आलभ्य रोचना मन्त्रैर्धूपो देयस्तु बालकम्। सनखं सिततामिश्रं पद्मपुष्पैश्च अर्च्चयेत् ॥६६॥
नैवेद्यं रोहितं मांसमाजं वा शल्यकं तथा। गोधूमविकृतिं भक्ष्यान् घृतपक्वानि दापयेत् ॥६७॥
तेन कन्यास्तु भोजीयाद् द्विजांश्चापि क्षमापयेत्। शक्तितो दक्षिणा देया आत्मनस्तच्च भोजनम् ॥६८॥

उन्हें स्नानान्त में रोचनादि लगाकर सुवासित धूपदान करके पद्मपुष्पों से अर्चित करना चाहिये। रोहित मांस, बकरे का मांस, शल्लकमांस, घृत में पके गोधूमचूर्ण का बना पिष्टकादि भी नैवेद्यों रूप में देना चाहिये। इन सभी नैवेद्य से कुमारीगण तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणादान करके क्षमा माँगनी चाहिये एवं अन्त में स्वयं भोजन करना चाहिये।।६६-६८।।

गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः। आरोगी सुखवान् धन्यो जायते इह मानवः ॥६९॥
दुर्गानामन्तु कीर्तयेत्तस्या लोके महीयते। कार्त्तिके दर्भमूलाभिर्मृद्भिः स्नायात्तु भार्गव ॥७०॥

इस प्रक्रिया से (साधक को) सहस्र गोदान का फल मिलता है। वह इस लोक में निरोग, धन-धान्य से सम्पन्न, सुखी होकर धन्य हो जाता है। इस दिन जो दुर्गानाम का जप करता है, उसे दुर्गालोक प्राप्त होता है। हे भार्गव! कार्त्तिक मास में पहले कुशाग्र में लगी मिट्टी से देवी को स्नान कराना चाहिये।।६९-७०।।

देवीं गन्धोदकैः स्नाप्य औशीरैः पूज्य लेपयेत्। धूपं पञ्चरसं देयं तिलतैलेन दीपकान् ॥७१॥
नैवेद्यं पायसं सर्पिः कन्याविप्रेषु चात्मनः। भोजनं स्वस्ति वाच्येत दक्षिणां प्रीयतां शिवा ॥७२॥

तत्पश्चात् देवी को (जल से) स्नान कराकर पुनः गन्ध जल से स्नान कराना चाहिये। स्नानान्त में उशीर आदि का लेपन, पञ्च रस धूप, तिलतैल से प्रज्वलित दीप, घृत-यावक प्रभृति नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। इस नैवेद्य से ब्राह्मणों तथा कुमारीगण को भोजन कराकर दक्षिणादि से उनको सन्तुष्ट करके देवी से क्षमायाचना करनी चाहिये।।७१-७२।।

अनेन विधिना वत्स विद्यादानफलं लभेत्। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः तदन्ते शिवतां व्रजेत् ॥७३॥

हे वत्स! ऐसे विधान से अनुष्ठान करने पर विद्यादान का फल मिलता है। वह साधक वेद-वेदान्तादि का तत्त्वज्ञ होकर अन्त में शिवत्व-लाभ करता है।।७३।।

मार्गशीर्षे नभे मासि ह्यष्टम्यां गिरिपृष्ठतः। स्थाप्य देवीं ततः स्नायात्तीर्थतोयेन भार्गव ॥७४॥
लेपयेत् बालकं कुष्ठं पूजाजातीगजाह्वयैः। धूपं कृष्णागुरूं दद्याद् घृतदीपान् निवेदयेत् ॥७५॥
दधिभक्तन्तु नैवेद्यं कन्यास्तेनैव भोजयेत्। दक्षिणां शक्तितो दद्यादात्मनस्तच्च पारणम् ॥७६॥
इमां मे प्रीयतां वाच्यं वाजपेयफलं लभेत्। इहैव धनवान् भोगी देहान्ते ब्रह्मणः पदम् ॥७७॥

अग्रहायण मास की अष्टमी को गिरिपृष्ठ पर देवी को स्नान कराकर पुनः तीर्थस्नान कराना चाहिये। स्नानोपरान्त कुष्ठ आदि सुगन्धित द्रव्य का लेपन, चमेली, नागपुष्प-प्रभृति से पूजन, कृष्णागुरु का धूप, घृतदीप, दधि मिला अन्न नैवेद्य के लिये प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर निवेदित द्रव्यों से कुमारीगण को भोजन कराकर कुमारीभोजन कराना चाहिये और उनको यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। अन्त में प्रार्थना करे कि 'हे उमे! मुझपर प्रसन्न हो जायँ'। ऐसा करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वह पृथिवी पर इस जन्म में धन-धान्यादि विविध सुखभोग करके देहान्त में ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।।७४-७७।।

पौषाष्टमीषु दूर्व्वाग्रैः स्नात्वा शुक्लपरिच्छदः। जितक्रोधो अद्वन्द्वश्च देवी कर्पूरवारिणा ॥७८॥
स्नापयेत् लेपयेच्छक्र मांसीवालकचन्दनैः। धूपञ्च निर्दहेत् प्राज्ञः पूजा नीलकुरूण्टकैः ॥७९॥
कृषरागुड नैवेद्यं कन्या भोजयेत्तेन वै। आत्मनः पावनं तच्च शक्त्या दक्षेत वाचयेत् ॥८०॥
नारायणी सदा प्रीता मम देवी प्रसीदतु। कृतेन ग्रहराजेन्द्र भूरिदान फलं लभेत् ॥८१॥
शुभगोधनसम्पन्नः परत्र शिवमाप्नुयात्।

पौषमासीय अष्टमी को श्वेत वस्त्र धारण करके दूर्वाग्र से देवी को स्नान कराकर सुख-दुःख-काम-क्रोध का त्याग करके उन्हें पुनः कर्पूरमिश्रित जल से स्नान कराने के उपरान्त जटामांसी, कर्पूर, चन्दनादि का लेप लगाकर कुरुण्टकपुष्प से पूजा करके तिल तथा मूँग से बनी खिचड़ी तथा गुड़ को नैवेद्य के रूप में अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर इसी नैवेद्य से कुमारीगण को भोजन कराकर उन्हें सन्तुष्ट करने से आत्मा में पवित्रता आती है। तत्पश्चात् 'देवी नारायणी सर्वदा प्रसन्न रहिये' कहकर क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। हे ग्रहश्रेष्ठ! ऐसा करने से प्रचुर दान करने का फल प्राप्त होता है। ऐसा करके वह (साधक) इस लोक में गोधन से युक्त होकर परलोक में शिवत्व प्राप्त करता है।।७८-८१।।

माघे मासि चाजगावं मृद्भिः स्नात्वा तु भार्गव ॥८२॥
देवीं तोयेन संस्नाप्य तथा क्षीरघृतेन च। स्नापयेत् पुनस्तोयेन लेपयेत् कुङ्कुमेन च ॥८३॥

हे भार्गव! माघ मास की अष्टमी तिथि को पहले मिट्टी, तदनन्तर शुद्ध जल, तदनन्तर क्षीर, अन्त में पुनः जल से देवी को स्नान कराकर कुङ्कुम का लेप करना चाहिये।।८२-८३।।

धूपं देवदलं दद्यात् कुन्दपुष्पैश्च पूजयेत्। घृतपूर्णञ्च नैवेद्यं कन्यां विप्रांश्च तेन वै ॥८४॥
भोजयेदात्मनस्तच्च दक्षिणां प्रीयतां जया। सर्वयागफलं शक्र लभते नात्र संशयः ॥८५॥

तत्पश्चात् धूपदानोपरान्त कुन्दपुष्प से पूजा करके घृतपूर्ण नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। उस नैवेद्य से कन्यागण तथा ब्राह्मणगण को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देकर भगवती शिवा (जया) को प्रसन्न करना चाहिये। अर्थात् कहे कि 'जय देवि! मुझपर प्रसन्न हो जाइये'। इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। इससे सर्वयज्ञफल प्राप्त होता है। यह निःसंदिग्ध है।।८४-८५।।

फाल्गुने सर्षपैः स्नात्वा देवीमाम्रफलांबुना। तथा इक्षुरसेनैव भूयस्तेनोदकेन च ॥८६॥
रोचने लेपयेत् पूजा शतपत्रिकया ग्रह। दीपो घृतेन धूपं च चन्दनं घृतशर्करा ॥८७॥
नैवेद्यं शाकवर्ज्यञ्च भोजनं कन्यकासु च। आत्मनस्तच्च कुर्वीत दक्षिणा स्वस्ति वाचयेत् ॥८८॥

फाल्गुन मास में प्रथमतः सरसों, तदनन्तर आम्रफलयुक्त जल, तदनन्तर गन्ने का रस—इनसे स्नान कराकर अन्त में जल स्नानोपरान्त गोरोचन विलेपित करने के बाद घृत का दीप जलाकर सुगन्धित धूप प्रसारित करके चन्दन द्वारा पूजन सम्पन्न करे। घृत-शर्करा प्रभृति से बने नैवेद्य प्रदान करके (घृत-शर्करा से बने नैवेद्य से तात्पर्य है) उस नैवेद्य से कुमारीगण को भोजन कराकर उनको दक्षिणा देकर स्वस्तिवाचन कराये।।८६-८८।।

विजया सुखदा नित्यमस्तु मे चिन्तितानि च। अनेन विधिना शक्र राजसूयफलं लभेत् ॥८९॥

तदनन्तर 'हे अपराजिता भवानी देवि! सर्वदा मुझ पर प्रसन्न होकर इच्छित फल प्रदान करिये' कहकर प्रार्थना करनी चाहिये। हे इन्द्र! इस विधि से अर्चना करने पर राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।८९।।

लभते वासनायुक्तो यतो देवीमयं जगत्। चैत्राष्टमीषु स्नपयेत् मातृस्थानमृदम्बुभिः ॥९०॥
देवीं तीर्थजलैः स्नाप्य लेप्या मदविलेपनैः। धूपं तुरूष्क-औशीरं युक्तियुक्तेन पूजयेत् ॥९१॥
नैवेद्यं शालिजं भक्तं शर्करा कन्यकास्वपि। आत्मनस्तच्च वाच्यन्तु शक्तितो दक्षिणां ददेत् ॥९२॥
अजिता सर्वकामानां पूरणाय सुखाय मे। विप्राः कन्याः समं वाच्या होमदानफलं लभेत् ॥९३॥

देवी को चैत्र मास की अष्टमी तिथि को 'प्रथमतः' मातृस्थानीय मृत्तिका को जल में मिलाकर उससे स्नान कराकर तदनन्तर तीर्थजल से स्नान कराये। तत्पश्चात् सुगन्ध विलेपन, उशीरादि धूप प्रदानोपरान्त शर्करा तथा शालिज अन्न पकाकर उसका नैवेद्य प्रदान करके उस अन्न से ब्राह्मण-कुमारीगण को भोजन कराना चाहिये। तत्पश्चात् यथाशक्ति दक्षिणा देकर यह प्रार्थना करे 'हे अजिता देवी! मुझे सर्वसुख प्रदान करके सभी कामनाओं को पूर्ण करिये'। तदनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। इस विधान से पूजा करने पर स्वर्णदान का फललाभ होता है।।९०-९३।।

सहकारफलं स्नानं वैशाखेऽष्टमीषु च। आत्मनो देवतां स्नाप्य मांसीं बालकवारिभिः ॥९४॥
लेपनं मधुकर्पूरं धूपं पञ्चसुगन्धिकम्। देव्या पूजाञ्च कुर्वीत केतकीमदनेन च ॥९५॥
क्षीरं शर्करनैवेद्यं कन्याविप्रेषु भोजनम्। आत्मनः पारणं तद्वत् दक्षिणां शक्तितो वदेत् ॥९६॥
अपराजितां भवानीं स्वस्तिनामेन वाचयेत्। प्रीयतां सर्वकालं मे ईप्सितन्तु प्रयच्छतु ॥९७॥
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु अनेनाप्नोति भार्गव। सूर्यलोकं व्रजेदन्ते तत्तुल्यो भवते ग्रह ॥९८॥

वैशाख मास की अष्टमी तिथि को सहकार फलमिश्रित जल से, तदनन्तर कर्पूर तथा जटामांसी-मिश्रित जल से देवी को स्नान कराये। तदनन्तर मधु एवं कर्पूर का लेप करके पञ्च सुगन्धधूप अर्पित करना चाहिये। देवी का पूजन केतकी तथा मदन-पुष्प से करे। क्षीर तथा शर्करा से भी देवीपूजन किया जाय। पूजान्त में ब्राह्मण तथा कुमारी को भोजन कराकर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर उनसे स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर 'हे अपराजिता भवानी देवी! सर्वदा मुझ पर प्रसन्न होकर ईप्सित फल

प्रदान करिये' कहकर प्रार्थना करके स्वयं भोजन करे। ऐसा विधानानुसार पूजन करने पर सर्वतीर्थफल प्राप्त होता है तथा देहान्त होने पर सूर्यलोक में सूर्यतुल्य ग्रहरूप में (साधक) स्थित हो जाता है।।९४-९८।।

अष्टम्याञ्चैव ज्येष्ठस्य तिलैः स्नायाद्विचक्षणः। सर्वसङ्गपरित्यागी देवीं जातिफलाम्बुना ॥९९॥
स्नापयेत् लेपयेत्तेन चन्दनेन सुगन्धिना। ततो विजयेन्दुपुष्पैः पूजयेद् ग्रहसत्तमः ॥१००॥
नैवेद्यं सक्तवो देव्याः शर्कराः कन्यकास्वपि। दक्षिणा शक्तितो देया चर्च्चिकां प्रति वाचयेत् ॥१०१॥
लभते शुक्र यज्ञस्य सौत्रामणिसमं फलम्। अष्टमी चैव आषाढ़े निशातोयेन स्नापयेत् ॥१०२॥
ततो देवीं जलकुष्ठं वारिणा उदकेन च। स्नात्वा लेपयेत् कर्पूरं चन्दनं रोचनाम्बुभिः ॥१०३॥

ज्येष्ठ मास भी अष्टमी को विद्वान् व्यक्ति सर्वसंग का त्याग करके तिलमिश्रित जल से तदनन्तर फलमिश्रित जल से देवी को स्नान कराकर सुगन्ध चन्दनादि से उनका लेपन करे। नवीन पुष्पों से पूजा करके सत्तू शर्करा प्रभृति नैवेद्य प्रदान करके उससे ब्राह्मण तथा कुमारीगण को भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर उनको यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रार्थना करे 'हे चर्चिका देवि! मुझ पर प्रसन्न हों'। ऐसा करने पर साधक को सौत्रामणि यज्ञ का फल मिलता है। इसी प्रकार आषाढ़ मास की अष्टमी के दिन पहले हल्दी के जल से, तदनन्तर शुद्ध जल से, तदनन्तर कूठमिश्रित जल से, तदनन्तर शुद्ध जल से स्नान कराये। स्नानोपरान्त रोचना-कर्पूर-चन्दनादि का लेपन लगाये।।९९-१०३।।

धूपं चन्दनकर्पूरबालकासितशल्यकैः। भक्त्या शर्करपूर्णानि शुभानि यानि कानि च ॥१०४॥
दापयेत् कन्यकां विप्रान् भोजनं ह्यात्मनस्तथा। शक्तितो दक्षिणा देया महिषघ्नीति कीर्त्तयेत् ॥१०५॥
दीपमाला घृतेनैव सर्वकामान् प्रयच्छति। सर्वयज्ञमहीदानसर्वतीर्थफलं लभेत् ॥१०६॥

तत्पश्चात् चन्दन, कर्पूर, बालकादि की सुगन्धित धूप प्रदान करके भक्ति से शर्करामिश्रित शुभ नैवेद्य देवी को अर्पित करे। पूजा के अन्त में कन्यागण तथा ब्राह्मणगण को भोजन कराकर उनको दक्षिणा प्रदानोपरान्त घृतप्रज्वलित दीपमाला लगाकर प्रार्थना करे—हे देवि! महिषघ्नि! मुझ पर प्रसन्न हो जायँ। तदनन्तर स्वयं भोजन करे। ऐसा करने से सर्वयज्ञफल प्राप्त होता है। पृथिवीदान का फल एवं सर्वतीर्थफल प्राप्त होता है।।१०४-१०६।।

एतद् व्रतवरं शुक्र मया ब्रह्मणा विष्णुना। जगतो हितमिच्छद्भिश्चीर्णं दुर्गाव्रतं महत् ॥१०७॥
भानुना ग्रहविध्वंसमनेन कृतवान् पुरा। तथा देवासुरा यक्षनागकिन्नरमानवैः ॥१०८॥
अप्सरोभिस्तथा स्त्रीभिः सौभाग्यस्य विवृद्धये। कृतवान् ग्रहशार्दूल त्वमपि कुर्य्या यथाविधि ॥१०९॥
श्रवणादपि प्राप्नोति सर्वकामसुखानि च। इष्टानि लभते पुंसो वन्ध्या पुत्रं प्रसूयते ॥११०॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे दुर्गाव्रतं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

हे शुक्र! ब्रह्मा, विष्णु तथा मैंने जगत् के हित के लिये इस सर्वश्रेष्ठ दुर्गाव्रत का अनुष्ठान किया है। पूर्व में सूर्य ने इस व्रत को करके ग्रहों का ध्वंस किया था तथा देव, असुर, यक्ष, नाग, किन्नर, मनुष्य, अप्सरा आदि ने भी सौभाग्यप्राप्ति के लिये यही व्रत किया था। हे ग्रहश्रेष्ठ! अब तुम भी इसका अनुष्ठान करो। किम्बहुना, इस व्रत के माहात्म्य को सुनने से ही सर्वकामनाफल, सर्वसुख तथा ईप्सित वस्तु प्राप्त हो जाती है। वन्ध्या को भी पुत्र उत्पन्न हो जाता है।।१०७-११०।।

त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त

●

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

देव्या गृहन्तु यः शुक्र काम्यति अतिशोभनम्। सर्वोपकरणैर्युक्तं नानावर्णैः सुवर्णितम् ॥१॥
तस्मिन् घण्टा ध्वजं छत्रं वितानं दर्पणानि च। दत्त्वा मुरजावंशादि नित्यं सङ्गीतकानि च ॥२॥
देवीशास्त्रार्थवेत्तारं पूजकं भवने शुभम्। एवं प्रवर्त्तते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३॥

ईश्वर कहते हैं—हे शुक्र! जो व्यक्ति सर्वविध उपकरण तथा नानाविध वर्ण से देवीगृह (मन्दिर) को सुशोभित कर देता है, उसमें घण्टा, ध्वज, छत्र, चन्द्रातप, दर्पणादि लगाकर सज्जित करता है, मुरज, वंशी आदि वाद्य यन्त्र बजवाकर संगीतध्वनि से देवीगृह को प्रतिध्वनित करता है तथा जिनको देवी के शास्त्रों का मर्म ज्ञात है तथा उनकी पूजा करते हैं, ऐसे पूजकों को जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वह श्रवण करो।।१-३।।

दशपूर्वापरांस्तात आत्मनश्चैकविंशतिः। उद्धृत्य च कुलं यायाद् ब्रह्मलोके महीयते ॥४॥
गच्छते भवती यत्र परा परमपूजिता। तत्र कल्पान्तरं यावद् भोगान् भुक्त्वा मनोरमान् ॥५॥
पुनः कालादिहायातः पृथिव्यामेकराट् भवेत्। स भृत्यवाहनोपेतः सान्तःपुरपरिच्छदः ॥६॥
भवेत चर्च्चिकाभक्तः पूर्वकर्म्मप्रभावतः। पुनर्देव्या द्विजातीनां तद्भक्तानां प्रियो भवेत् ॥७॥

ऐसे व्यक्ति पूर्व दस पीढ़ी तथा बाद की दस पीढ़ी का पापपंक से उद्धार करके अन्त में ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। ब्रह्मलोक के अनन्तर दुर्गालोक में वास करते हैं। वहाँ पर एक कल्पपर्यन्त विविध भोग करके अन्त में मर्त्यलोक के एकच्छत्र राजा होकर निवास करते हैं। मनुष्यजन्म ग्रहण करके भी पूर्वकर्मफल से भृत्य-वाहन-अन्तःपुर सुन्दर परिच्छदादि विविध भोग-साधन इनको प्राप्त होता है। इस जन्म में भी उसकी देवीभक्ति अक्षुण्ण ही रहती है। देवीभक्ति के प्रभाव से वह देवी का एवं देवीभक्तों का एवं ब्राह्मणों का प्रिय बना रहता है।।४-७।।

कन्यासंपूजको नित्यं देवीशास्त्रार्थपारगः। लभते परं सद्भावं तदन्ते शिवतां व्रजेत् ॥८॥

जो कुमारी कन्याओं का नित्य पूजन करता है, वह देवी के शास्त्रों का तत्त्ववेत्ता होता है; उसे देवी का सद्भाव एवं शिवलोक प्राप्त होना निश्चित है।।८।।

देव्या गृहन्तु यः शुक्र सम्मार्ज्जयति संयुते। तदा गच्छेच्छिवालोकं सर्वकामफलप्रदम् ॥९॥
देव्या गृहन्तु यः शक्र गोमयेनानुलेपयेत्। स्त्रियो वा यदि वा पुंसः षण्मासन्तु निरन्तरम् ॥१०॥
स लभेदीप्सितान् कामान् देव्या लोकञ्च गच्छति। अत्रैव यत्पुरावृत्तं कथयामीति शृण्वताम् ॥११॥

हे शुक्र! जो व्यक्ति नित्य देवीगृह का मार्जन करता है, वह धनवान हो जाता है। उसे सर्वसुख-सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाती है। तदनन्तर देहान्त में वह देवीलोक में गमन करता है। उसे सर्वकामना फल की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार से देवीगृह को जो पुरुष अथवा स्त्री छः मास तक निरन्तर गोमय आदि से स्वच्छ रखते हैं, उनको ईप्सित फल की प्राप्ति होकर अन्त में देवीलोक प्राप्त होता है। अब मैं प्राचीन इतिहास का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो।।९-११।।

असौ लुब्धो निराधारः कैवर्त्तो मात्स्यघातकः। नेपाले पतने शुक्र प्रययौ मात्स्यबन्धने ॥१२॥
स च विन्ध्याटवीमध्ये देवीगेहमपश्यत। तस्य जालं प्रभूतेन शीर्ण्णकालेन भार्गव ॥१३॥
देव्या गृहाग्रतो वृक्षस्तस्मिंस्तमुपलम्बयेत्। गतो गृहं स्वकं वत्स पुनस्तत्रैव कालतः ॥१४॥

एक दिन एक कैवर्त्त (मछुआरा) प्रातःकाल उठकर मछली पकड़ने इधर-उधर गया। आवागमन काल में उसने विन्ध्याटवी के बीच एक देवीगृह (देवीमन्दिर) का अवलोकन किया। कालप्रभाव से पुराना पड़ जाने के कारण उसका जाल जीर्ण हो गया था। उस मछुआरे ने अपने जाल को व्यर्थ देखकर उसे देवीगृह के सामने स्थित एक वृक्ष पर लटकाया और अपने घर चला गया। हे वत्स! कुछ दिनों के पश्चात् वह वहीं आया तथा एक जीर्ण वस्त्रखण्ड उसी वृक्ष पर लटकाकर हंसते-हंसते घर वापस लौट गया।।१२-१४।।

आगतः कर्परः खण्डं हसमानः सन्नकृत् समः। दत्वा गतः पुनः कोलान्मृतः सोऽभूद्गणाधिपः ॥१५॥
विद्याधरपतिश्चित्रः सर्वविद्यार्थपारगः। स्वल्पेनापि हि कर्म्मेण प्राप्तवान् महती श्रियम्।
तथा त्वमपि विप्रेन्द्र देव्या भक्तिपरो भव ॥१६॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे देव्याध्वजमहाभाग्यफलं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

वह व्यक्ति कालवशात् मृत्यु को प्राप्त हो गया और उसने मृत्यु के पश्चात् सर्वविद्यार्थतत्त्वविद् विद्याधर का जन्म प्राप्त किया। विद्याधर पद को प्राप्त होने पर उसने इस जन्म में भी किङ्किणीयुक्त शुभ्र वस्त्रनिर्मित ध्वज (देवीमन्दिर में) प्रदान किया। अपने इस अनुष्ठित कर्म के कारण उसे सर्वविद्यागण अधीश्वर का पद प्राप्त हो गया। हे शुक्र! उस व्यक्ति ने अपने स्वल्पमात्र कर्म के फलस्वरूप महान् ऐश्वर्य-लाभ किया था। इसलिये तुम भी देवी के प्रति भक्तियुक्त हो जाओ।।१५-१६।।

चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त

●

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विद्याधर उवाच

यद्येवं सा महाभागा ब्रह्मविष्णुपरात्परा। तदहं श्रोतुमिच्छामि ध्वजदानं विधानतः ॥१॥

विद्याधर कहता है—ब्रह्मा-विष्णु से जो महाभागा देवी का व्रतादि आपने सुना है, उसमें से ध्वजदान भी विधि अभी सुनने की इच्छा है।।१।।

अगस्त्य उवाच

यथा त्वं पृच्छसे वत्स तथा शक्रेण ब्रह्मणि। पृष्टः पूर्वं तथा तेन शम्भुगीतं प्रकाशितम् ॥२॥
शक्रस्य भावयुक्तस्य तदहं ते महात्मनः। कथयामि यथान्यायं ध्वजदानं महाफलम् ॥३॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—वत्स! यही बात इन्द्र ने ब्रह्मा से जानने की इच्छा प्रकट की थी। भगवान् शम्भु ने जिस प्रकार से शुक्र से कहा था, ब्रह्मा ने वही इन्द्र को बतलाया। अब मैं तुमको ही यथावत् उसी प्रकार से ध्वजदान-प्रसङ्ग कहता हूँ।।२-३।।

शुक्र उवाच

देव्या ध्वजप्रमाणन्तु विधिं दण्डस्य लाञ्छनम्। दीपते च यथा नाथ तदशेषं ब्रवीहि नः ॥४॥

शुक्र कहते हैं—हे नाथ! देवी के ध्वज की प्रमाण विधि तथा दण्डचिह्नादि जिस प्रकार से लगाना होगा, कृपया वह सब सम्यक् रूप से कहिये।।४।।

ईश्वर उवाच

अण्डजं वाण्डजं वापि ध्वजं केशविवर्ज्जितम्। नवं समञ्च श्लक्ष्णं च प्रसादाद्दण्डमर्द्धितम् ॥५॥
समं सूक्ष्ममृजं शुभ्रं शैलं वा धातुजं पिवा। तस्मिन् परे लिखेत् सिंहं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥६॥
रोचना सह चन्द्रेण हेमलेखन्या दूर्वया। प्रसादाच्चोलमानन्तु क्षितिं विस्तरतः करम् ॥७॥

ईश्वर कहते हैं---ध्वज वस्त्रनिर्मित हो, किंवा अन्य प्रकार का हो (कीटों द्वारा निर्मित रेशम का हो), तथापि जैसा भी हो वह नूतन, समान, चिकना ध्वज होना चाहिये। ध्वजमध्य में केशादि न हो। यदि ध्वजा पत्थर अथवा धातु की बनाई गई हो तो वह चिकना, सीधा अथच शुभ हो; कर्पूर तथा रोचना मिलाकर उससे पट के बीच एक सर्वलक्षणयुक्त सिंह का अंकन करे। यह पट प्रासाद से लेकर भूमिपर्यन्त लम्बमान हो।।५-७।।

ध्वजा पालनकर्त्तव्या दर्शयेद्दिक्षु देवताः। सर्वे वाहनलांछेन लाञ्छिताः सहजेन च ॥८॥
किङ्किणीं चामरोपेतान् घण्टादर्पणशोभितान्। कृतहोममहाप्राज्ञः सहकारदलान्वितान् ॥९॥
महामङ्गलशब्देन देव्याः कुर्वंस्तु पूजयेत्। सुगन्धपुष्पनैवेद्यं तथा विभवविस्तरैः ॥१०॥
कन्यका ब्राह्मणान् भोज्ये दधिपायसशर्करैः। भूतानान्तु बलिं दत्वा तथा तमुपरोहयेत् ॥११॥

ध्वजा के पार्श्व में अपने-अपने वाहनों के साथ दसो दिक्पाल देवताओं की मूर्त्ति का अंकन करना चाहिये। किङ्किणी, चामर, घण्टा, दर्पणादि से उसे शोभित करके प्राज्ञ व्यक्ति होमादि समापन करके उसमें सहकारपल्लव लगाकर प्रथमतः देवीपूजन करे। यथाशक्ति सुगन्ध पुष्प नैवेद्यादि द्वारा पूजन करके दधि, पायस, शर्करा आदि द्वारा ब्राह्मण तथा कुमारीगण को भोजन कराये। तदनन्तर भूतबलि प्रदान करके ध्वजोत्तोलन करे।।८-११।।

सर्वान् कामानवाप्नोति विद्याधरपतिर्भवेत्। मोदते विविधान् भोगान् सर्वविद्यार्थपारगः ॥१२॥

ऐसा करने से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं तथा वह विद्याधरों का अधिपति होकर विविध भोगों का भोग करता है एवं सभी विद्याओं का वेत्ता हो जाता है।।१२।।

अथवा हैमरौप्यस्था वार्क्षपार्थिवशैलजम्। कारयेन्मृगराजन्तु महाकरि महापहम् ॥१३॥
महानखकरोत्थानं मुक्ताफलं गदाप्रभम्। एवंविधं ततः कृत्वा नवम्यां पूजयेच्छिवाम् ॥१४॥
सोपवासः शुचिर्दक्षः सर्वसङ्गविवर्ज्जितः। कन्यकाः पूजयित्वा तु विप्रान् वेदविदस्ततः ॥१५॥
देव्या भक्ताः सदाचारास्त्रिकालहवने रता। ते यथा शक्तितस्तोष्या ध्वजारोहणकर्मणि ॥१६॥

अथवा स्वर्ण-रौप्य-वृक्ष-मिट्टी-प्रस्तरादि किसी भी वस्तु से ऐसा ही एक महासिंह का निर्माण करे, जिससे यह साफ झलके कि मानो वह सिंह एक मदमत्त हाथी का विदारण कर रहा है। मानों वह नखों के प्रहार द्वारा हाथी के कुम्भस्थल-स्थित गजमुक्ता को बाहर निकाल रहा है, इससे उस सिंह के अगले पञ्जों की चरणशोभा द्विगुणित हो रही है। ऐसा सिंह निर्मित करके नवमी तिथि को उपवासी रहकर शिवा देवी का पूजन करे। उस दिन वह उपवासी साधक पवित्र तथा सर्वसंग-विवर्जित होकर देवी-पूजन करे। ध्वजारोहण काल में देवीभक्त सदाचारयुक्त ब्राह्मणों तथा कुमारी कन्यागण को भोजन कराकर उनको परितुष्ट करना चाहिये।।१३-१६।।

कन्या दिव्या स्वयं प्रोक्ता कंन्यारूपा तु शूलिनी। यावत्साक्षतयोनिः स्यात्तावद्देव्या सुरारिहा ॥१७॥

देवी स्वयं कन्यारूपा हैं। जब तक कन्यागण अक्षतयोनि रहती हैं, तब तक वे देवीरूप होती हैं।।१७।।

द्विजो ब्रह्मा शिवो विष्णुः स्वकीयव्रतपालकाः। पूजितैस्तैस्तदा शुक्र सर्व्वे देवास्तु पूजिताः ॥१८॥
दीनान्धकृपणानान्तु अन्नं देयन्तु शक्तितः। यथा सर्वगता देवी तदुद्दिश्य क्षयं भवेत् ॥१९॥

जो ब्राह्मण सदा अपने व्रत का पालन करते हैं, वे ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वररूप होते हैं। उनका पूजन करके समस्त देवताओं की पूजा सम्पन्न मानी जाती है। दीन-अन्ध-कृपण आदि को यथाशक्ति दान करने को देवी-हेतु दान कहते हैं।।१८-१९।।

नानाभक्षाक्षतदधि दूर्व्वा च शर्करान्वितम्। बलिं वै सर्वभूतेभ्यो दशदिक्षु निवेदयेत् ॥२०॥

नाना भक्ष्य वस्तु, वस्त्र, दधि, अक्षत, दूर्वा प्रभृति बलि सर्वभूतगण हेतु दशो दिशाओं में प्रदान करना चाहिये।।२०।।

वज्रघोणा तथा जप्ता अष्टाविंशाक्षरापि वा। सिंहं स्तम्भे समारोप्य सर्वमङ्गलशब्दितम् ॥२१॥
वेदध्वनि महामन्त्र कालिका चर्च्चिका पदम्। न्यस्य सिंहं परं ध्यायेद् यादृशं पूर्वकल्पितम् ॥२२॥
एवं तं वस्त्रसंवीतं सर्वाभरणभूषितम्। देव्या महाध्वजं न्यस्य शेषाणामपि विन्यसेत् ॥२३॥

२८ अक्षरों वाले रुद्रमन्त्र का जप करके वज्र-घोणा आदि मंगलवाद्य के साथ इस सिंह को स्तम्भ पर चढ़ाकर वेदध्वनि, मन्त्रोच्चारण, कालिका-चर्चिका नामोच्चारण करके पूर्वकल्पित रूप से सिंह का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र-आभरण से भूषिता देवी का महाध्वज स्थापित करके अन्य देवगण का भी ध्वज स्थापित करना चाहिये।।२१-२३।।

ब्रह्मविष्णवेन्द्ररुद्राणां सोमसूर्य्यदिवौकसाम्। ध्वजदानं महादानं सर्वदानोत्तमं मतम् ॥२४॥
यावन्न दीयते शुक्र ध्वजः प्रासादमूर्द्धनि। तावन्न तत्र भवेद्वत्स प्रासादं देवलाञ्छितम् ॥२५॥
शून्यध्वजं सदा भूता नागगन्धर्व्वराक्षसाः। विद्रावन्ति महात्मानो नानाबाधां करन्ति च ॥२६॥

ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-रुद्र-चन्द्र-सूर्यप्रभृति देवगण को ध्वज प्रदान करना सर्वोत्तम दान कहा गया है। जब तक प्रासाद के शिखर पर ध्वज नहीं लगता, तब तक प्रासाद में देवचिह्न नहीं रहता। हे शक्र! भूत-नाग-गन्धर्व-राक्षस, सभी ध्वजरहित गृह में नाना उपद्रव करते हैं।।२४-२६।।

तस्माद्देवगृहद्वारपुरपत्तनपर्वतैः। उच्छ्रिताः शान्तिकामाय ध्वजाः शुक्र सदाहिताः ॥२७॥
न हि चान्यद् ध्वजदानादुत्तमो भवते क्वचित्। दानमिष्टञ्च पुष्टञ्च देव्या दीपस्तथैव च ॥२८॥
अनेन विधिना यस्तु ध्वजं शुक्र निवेदयेत्। सर्वकामानवाप्नोति स नरः शिवतां व्रजेत् ॥२९॥

हे शुक्र! अतएव शक्तिकामी व्यक्ति के लिये गृहद्वार, प्रासाद तथा नगर एवं पर्वतादि में ध्वजदान करना उचित तथा हितकारी है। इसके अपेक्षा दूसरा कोई उचित कार्य जगत् में नहीं है। हे शुक्र! जो व्यक्ति विधिवत् ध्वजादान करता है, उसे अभीष्ट पुत्र आदि सभी इच्छित वस्तु की प्राप्ति होकर अन्त में शिवत्व मिल जाता है।।२७-२९।।

तस्य दर्शनसम्भाषादपि पापरता नरः। विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो दिवं यान्ति न संशयः ॥३०॥
राज्ञा चानेन विधिना देवीलाञ्छनलाञ्छितम्। शङ्खचक्रवृषभाक्षहंसबर्हिणवारणैः ॥३१॥
साचारो भक्तिमास्थाय ध्वजयष्टिं समुच्छ्रयेत्। न तस्य सङ्गरे शुक्र व्याधयो न च वैरिणः।
न च शस्त्रव्रणपीड़ा भवेद् ध्वजसमुच्छ्रयात् ॥३२॥

इति श्रीदेवीपुराणे ध्वजदानविधिर्नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

उसके दर्शन से तथा उसके साथ बातचीत करने से भी पापीगण सर्वपापरहित हो जाते हैं तथा वे भी स्वर्गप्राप्ति करते है; यह निःसंदिग्ध है। महाराजागण को आचार से परिपूत होकर शंख-चक्र-वृष-तार्क्ष्य, हंस, मयूर, हाथी आदि चिह्नयुक्त ध्वजारोहण करना चाहिये। इससे उन्हें युद्ध, रोग, शत्रु आक्रमण, शस्त्रजनित व्रणपीड़ा प्रभृति अनिष्ट का सामना नहीं करना पड़ता।।३०-३२।।

पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त

षट्त्रिंशोऽध्यायः

शुक्र उवाच

स्तवः पुरा यथा देव्या मया पृष्टो वृषध्वजः। तमहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्प्रसादाच्च शूलिनः ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—हे वृषध्वज! पहले जिन देवी के सम्बन्ध में जिज्ञासा किया था, अब आपकी कृपा से सुनना चाहता हूँ।।१।।

ईश्वर उवाच

शृणु शुक्र यथा पृष्टो देव्याः स्तोत्रं सुदुर्लभम्। शमनं सर्वपापानां सर्वकामफलप्रदम् ॥२॥
यं श्रुत्वा भरते विद्या विद्यते च शिवात्मकम्। परापरविभागन्तु तदहं वचनैर्ध्रुवम् ॥३॥

जय पवनगगनदिनकरहुतवहशशिसलिलावनि आत्मस्थे।
स्थितिजगत्कारणहेतोर्मूर्त्तित्वे कल्पिते नमस्ते ॥४॥
जय सकलाध्वव्यापिनि अनादिनिर्लक्षशुद्धि आत्मस्थे।
आधाराद् वायुनामनेकतत्त्वार्थरूपिणि नमस्ते ॥५॥

ईश्वर कहते हैं—हे शुक्र! पहले जो सर्वपापनाशक, सर्वकामदायक, सुदुर्लभ स्तव के विषय में पूछा था, उसे सुनो। उसे सुनने से विद्यालाभ होता है, आत्मा में शिवत्व आता है तथा परापर विभाग नहीं रह जाता। अब मैं वाक्य द्वारा पहले की तरह कहता हूँ। वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, जल तथा पृथिवी की जय हो। आप जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय की कारणमूर्त्ति हैं। वे सब रूप आप ही ग्रहण करते हैं। आपको नमस्कार है। जो सकलार्थव्यापिनी, अनादि, अलक्ष्य, शुद्ध, आत्मस्थ, वायु का आधार, अनेक तत्त्वार्थरूपिणी हैं, उनको नमस्कार है।।२-५।।

जय नादबिन्दुरूपिणी ईशानात्मनि विद्यामये कलिकाले।
विद्या नियति सरागे पुरुषाव्यक्तवेशाय नमस्ते ॥६॥

जो नादबिन्दुरूपा, ईश्वर की आत्मा, विद्या का आलय, कलिकालरूप, विद्या-नियति तथा रागस्वरूप हैं तथा पुरुष अव्यक्त वेश, अनाद्या, सकलमातृरूपा, अनेक विज्ञानधारिणी हैं, उनको नमस्कार है।।६।।

खगगगनदहनरूपिणि जलधरतनुबंधमोचनि अनाद्ये।
जय सकलरूपमातृरूपेऽनेकविज्ञानधारिणि नमस्ते ॥७॥

खग-गणेश दहनार्थ जिन्होंने शरीर धारण किया है, उनका तनु जलधर के समान है तथा जो बन्धनमोचिनी हैं, आनाद्या, सकलमातृरूपा, अनेक विज्ञानधारिणी हैं, उनको नमस्कार है।।७।।

जय कालदेहरूपिणि विमुक्तद्विरामान्ते। विन्दुबन्धनिरुद्धं तद्भेदमोचनि नमस्ते ॥८॥

जो समय-समय पर कालदेह धारण करती हैं तथा त्याग करती हैं, माया से बद्ध का मोचन करती हैं, उनको नमस्कार है।।८।।

जय दशदिशत्वरूपिणि अशुभाशुभमार्गचोदनि। शुद्धज्ञानसुचोदनि मन्त्रात्मके मूर्त्यवस्थिते नमस्ते ॥९॥
जय सकलजन्तुमोहनि मायात्मकरूपिणि दुर्भेद्ये। जय कालदेहरूपिणि निश्वासोच्छ्वासवायुतत्त्वरसे ॥१०॥

जो दशदिशारूपिणी, अशुभ तथा शुभ मार्ग की परिचालिका हैं, मन्त्रमूर्त्तिरूप स्थिता हैं, उनको नमस्कार है। जो समस्त जन्तु-समूह का मोहन करती हैं; जो मायारूपा, दुर्भेदा, कालदेहरूपा, निश्वास-उच्छासरूप वायुतत्त्वरूप हैं, उनको नमस्कार है।।९-१०।।

व्यक्तिं पचसि च दहने पिण्डत्वात् पालयि वते नमस्ते। जय तत्त्वभावरूपिणि अत्यन्तसूक्ष्मादलक्ष्ये निर्जये ॥११॥

जो अग्निदहनरूप से पाककार्य (पाचनकार्य) सम्पन्न करती हैं, जो त्रिभुवन का पालन करती हैं, उनको नमस्कार है। जो तत्त्व तथा भावस्वरूपा हैं, अत्यन्त सूक्ष्म होने से अलक्ष्या हैं तथा निर्जया हैं, उनको नमस्कार है।।११।।

नोत्पन्ने नानुत्पादनि शिवशक्तिपरस्वरूपिणि नमस्ते। जय निष्कलार्थरूपिणि समस्तवस्त्वन्तसंस्थितावस्थे ॥१२॥
परमापरसकलगते भगवति वरदे वरे नमस्ते। जयपृव्यंङ्घ्रिगता ते गुल्माभ्भस्तेजो जङ्घ्यो ह्यनिलः ॥१३॥
ऊरूभ्यां वियद्गुह्योकाद्याहङ्कारगते नमस्ते। जय नाभ्यधःस्ताद् बुद्धिर्नाभ्यां प्रकृतिहृदिस्थितः पुरुषः ॥१४॥

जो उत्पत्तिरहित, उत्पादिका, शिवशक्ति, परस्वरूपिणी हैं; जो निष्कलार्थरूपा हैं, समस्त वस्तुओं में स्थिता हैं, उनको नमस्कार है। जो परमा, सर्वगता, भगवती तथा वरदा हैं, जिनके अंघ्रिद्वय से पृथिवी, गुल्फद्वय से वायु, उरुद्वय से तेज, जंघाद्वय से वियद्, पद तथा गुह्य एवं कटिदेश से अहङ्कार का (द्योतन) उदय होता है, उन आपको नमस्कार है। आपकी नाभि के अधोभाग में बुद्धि, नाभि में प्रकृति तथा हृदय में पुरुष स्थित है।।१२-१४।।

विद्यारागकुचाभ्यां नियतिपरे ह्युरःस्थलगते नमस्ते।
जय कालकण्ठगते कपालि घण्टामुखे स्थिता माया।
विद्या जिह्वां नाशेत् तत्त्वेश्वरसंस्थिते नमस्ते ॥१५॥

हे देवि! आपके स्तनद्वय में विद्या तथा राग एवं उरःस्थल में नियति है, आपको नमस्कार है। हे घण्टारवप्रिये! आपके कण्ठ में काल, मुख में माया, जिह्वा में विद्या एवं नासाग्र में ईश्वर तत्त्व संस्थित है। आपको नमस्कार है।।१५।।

जय त्रुटिगतत्वविन्दुनादशब्दात्मकञ्च मार्गे तु। शक्तितद्विरामतत्त्वाघटिततनुं नमस्ते ॥१६॥
जय सकलशत्रुमर्द्दनि मृगपतिगमनप्रियेन्दुदीप्ताद्ये। त्वं देवी समरकालेऽत्यद्भुतचेष्टौ त्वं नमस्ते ॥१७॥

जो त्रुटिकाल में नाद-बिन्दुस्वरूपा हैं, जो शब्दात्मिका शक्ति एवं तत्त्वरूपा हैं (तत्त्वघटित तनु हैं), उनको नमस्कार है। जो सर्वशत्रुविमर्दिनी हैं, सिंहस्थिता, चन्द्रप्रभा से दीप्ता हैं, युद्धकाल में अद्भुत विक्रमयुता हैं, उनको नमस्कार है।।१६-१७।।

जय विप्रदर्शनमात्रात् सहर्षवेगेण त्रुटितवलयोथम्। अभयमिव घोषयन्तं भक्तं शक्रञ्चाभयकारि नमस्ते ॥१८॥
जय सव्यादसव्ये बाणान् मुञ्चन्त्युज्ज्वलनवलयिनि। त्रुट्यन्ति संधिमार्गाः कात्यायनि कञ्चुके नमस्ते ॥१९॥

जो विप्रदर्शनमात्र से हर्षित होती हैं, जो वलयशब्द से भक्तों को अभय देती हैं तथा शत्रुगण को भयभीत करती हैं, उनको नमस्कार है। जो वाम तथा दक्षिण हस्त से बाणों को छोड़ती हैं, अपने बलगर्व से अग्रपंक्ति को स्फोटित करती हैं, उन कञ्चुकावृता कात्यायनी को नमस्कार करता हूँ।।१८-१९।।

जलशत्रुं चाभिमुखं दंष्ट्रादेवमुक्तशस्त्रहुङ्कारम्। रिपूभयदामभयदभक्तं मृतमूर्धान्तरे नमस्ते ॥२०॥
जय रिपुनिग्रहकारिणि नियमयमे दुःखशोकवैचित्र्ये। उद्वेगभयरुजाद्यैश्चोदयसि नेच्छन्नपि नमस्ते ॥२१॥

जो शत्रुओं पर दाँतों द्वारा भी अस्त्र छोड़ती रहती हैं, अपनी हुंकार ध्वनि द्वारा शत्रुओं में भय का तथा भक्तों में अभय का उत्पादन करती हैं, उनको नमस्कार है। जो शत्रुओं का निग्रह करती हैं; दुःख-शोक-उद्वेग-भय-पीड़ा प्रभृति को प्राणिगण की अनिच्छा पर नियन्त्रित करती हैं; उनको प्रणाम है।।२०-२१।।

जय ये भक्ताः शूलिनि प्रतापमानाभिमानसन्तुष्टाः। तेषां दृष्ट्या पुरतो लक्ष्मीः सञ्चरति च नमस्ते ॥२२॥
इति दुःखशोकिनं त्वं मुखं निर्लज्जं निकृतिं पिशुनम्। जरारुजपीड़ितगात्रं नास्तिक्यं त्राहि मां देवि ॥२३॥

हे शूलिनि! आप भक्तों को प्रताप-मान-अभिमानादि प्रदान करके सन्तुष्ट करती हैं। आपकी दृष्टि से ही उनको लक्ष्मीप्राप्ति होती है। आपको नमस्कार है। हे देवि! मैं दुःख तथा शोक से आच्छन्न, मूर्ख, निर्लज्ज, अपमानित, खल हूँ। मैं जरा-व्याधिपीड़ित, नास्तिक हूँ। मेरी रक्षा करिये।।२२-२३।।

त्वं ज्वररुजवीचौ आवर्त्ताकल्पयौवनोल्लोलैः। विषमे दुःखसमुद्रे मग्नं त्वं त्राहि मां देवी ॥२४॥

हे देवि! आप ही ज्वरों की पीड़ा का मुख्य कारण हैं। आपके अञ्चल में यौवन आकल्प स्थायी रहता है। मैं विषम दुःख-सागर में डूब रहा हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।।२४।।

यन्मे किञ्चित् दुःखं तत्सर्वं ते निवेदितार्जेन। यो यस्य प्रपन्नो निवेद्य दुःखं सुखी भवति ॥२५॥

हे देवि! मैं अत्यन्त कातर हो गया हूँ। इसी स्थिति में आपसे अपने दुःखों का निवेदन कर रहा हूँ। जो व्यक्ति जिसका आश्रित होता है, वह उससे ही अपने दुःखों को कहकर कुछ सुखी हो जाता है।।२५।।

अर्थे शूलिनि दुर्गे गौरी चण्डी प्रसीद मां देवी। अभिवाच्छितञ्च सिद्ध्यतु मम देवी तव प्रसादेन ॥२६॥

हे देवी शूलिनी, गौरी, चण्डी! मुझ पर प्रसन्न हो जाइये। आपकी कृपा से मेरा समस्त अभिलषित सिद्ध हो जाय।।२६।।

अर्च्चयित्वा तु दुर्गां यः पठति भक्तिमान् नरः। करतलगतिनिर्विघ्ना सिद्धिः स्याच्चिन्तिता तस्या ॥२७॥
एवं स्तुत्वा क्षमापेत विक्लवा गद्गदा गिरा। समन्युद्गीत उद्वाष्पो वरान् कामान् नृणां कुरु ॥२८॥

जो व्यक्ति देवी की अर्चना आदि करके भक्तिभाव से उनके समक्ष इस स्तव का पाठ करता है, उसे निर्विघ्न रूप से समस्त सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार अश्रुभरे गद्गद कण्ठ से स्तवपाठ द्वारा प्रार्थना करके क्षमाप्रार्थना के साथ मनुष्यगण अभिलषित वर माँगे।।२७-२८।।

पुनः प्रपातमष्टाङ्गं कर्त्तव्यं सिद्धिभाग्भवेत्। सकामो विविधान् भोगान् निष्कामः परमं पदम् ॥२९॥
प्राप्नुयान्नात्र सन्देहो वाच्यमेतत् स्तवं परम्। तत्त्वार्थरूपिणि देवी यस्मात् स्तोत्रप्रकाशितम् ॥३०॥
तस्मात् प्रयत्नतः शुक्र पठितव्यस्तदर्थिभिः। वेदार्थं चिन्तमानेन विष्णुना पठितः पुरा ॥३१॥

तदनन्तर पुनः अष्टाङ्ग प्रणाम भूमि पर लेट कर करे। इस प्रकार से सिद्धि मिलती है। सकाम होकर इस स्तवपाठ से विविध भोग प्राप्त होते हैं। निष्काम भाव से पाठ करने पर परमपद प्राप्त होता है, यह निःसंदिग्ध है। तत्त्वार्थरूपा देवी इस स्तव से प्रकाशित होती हैं। इसलिये हे शुक्र! तत्त्वजिज्ञासुगण द्वारा यह स्तवपाठ उनका कर्त्तव्य है। पूर्वकाल में विष्णु ने वेदार्थचिन्तन के समय इस स्तव का पाठ किया था।।२९-३१।।

ब्रह्मणा शिवसद्भावं सूर्येण मनुना तथा। दक्षः प्रजापतिव्यासदेवलासितगौतमैः ॥३२॥
वशिष्ठभृगुमाण्डव्यपुलहादिभिः सत्तमैः। एतद्देव्याः परं तत्त्वं सर्वभावप्रकाशकम् ॥३३॥
पठनात् श्रवणात् शुक्र सर्वकामफलप्रदम्। विद्यार्थी लभते विद्यां सुखार्थी सुखवान् भवेत् ॥३४॥
बन्धनात् मुच्यते बद्धो रोगाद्रोगी प्रमुच्यते। सर्वदानतपस्तीर्थयज्ञपुण्यमवाप्नुते ॥३५॥

इति श्रीदेवीपुराणे देवीस्तवो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मा-शिव-सूर्य-मनु-दक्षप्रजापतिगण-व्यास-देवल-असित-गौतम-वशिष्ठ-भृगु-माण्डव्य तथा पुलह प्रभृति ने इसके द्वारा देवीतत्त्व का सर्वतोभावेन प्रकाश प्राप्त किया था। हे शुक्र! इस स्तवपाठ से अथवा श्रवण करने से सर्वकामफल सिद्ध हो

जाता है। विद्यार्थी विद्यालाभ करते हैं, सुखार्थी सुखलाभ करते हैं, वृद्ध व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, रोगीगण रोगमुक्त होते हैं। यहाँ तक कि इससे सर्वदान का, तपस्या-तीर्थगमन-यज्ञादि का भी फल मिल जाता है।।३२-३५।।

षड्त्रिंश अध्याय समाप्त

●

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सर्वाणि हृदयस्थानि मङ्गलानि शुभानि च। ददाति ईप्सितान् लोके तेन सा सर्वमङ्गला ॥१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—देवी सभी के हृदय में स्थित शुभकारी मंगलजनक हो उनके द्वारा अभिलषित फल को प्रदान करती हैं, तभी लोग उनको सर्वमङ्गला कहते हैं।।१।।

शोभनानि च श्रेष्ठानि या देवी ददते हरे। भक्तानामार्त्तिहरणी मङ्गल्या तेन सा स्मृता ॥२॥
शिवा मुक्तिः समाख्याता योगिनां मोक्षगामिनी। शिवाय यो जपेद् देवी शिवा लोके ततः स्मृता ॥३॥

वे भक्तों का दुःख-निवारण करती हैं। भक्तों को शोभन; अथ च श्रेष्ठ फल देती हैं तभी वे मंगला हैं। शिव का अर्थ है—मुक्ति। देवी योगीगण को मोक्ष प्रदान करती हैं। शिवफलार्थ उनकी आराधना की जाती है; अतः उनका नाम शिवा है।।२-३।।

धर्मादीन् चिन्तितान् यस्मात् सर्वलोकेषु यच्छति। अतो देवी समाख्याता सा सर्वार्थानुसाधनी ॥४॥
विषाग्निभयघोरेषु शरण्यं स्मरणाद्यतः। शरण्या तेन सा देवी पुराणे प्रतिपाद्यते ॥५॥

वे लोगों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि सर्वार्थ प्रदान करती हैं; अतः वे सर्वकामार्थसाधिका रूप से प्रसिद्ध हैं। वे स्मरण-मात्र से अग्नि-विष-घोर भयादि से साधक भक्त की रक्षा करती हैं, इसीलिये पुराणों में उनको शरण्या कहा गया है।।४-५।।

सोमसूर्य्यानिला स्त्रीणि यस्या नेत्राणि भार्गव। तेन सा त्र्यम्बिका देवी मुनिभिः परिकीर्तिता ॥६॥
योगाग्निना तु या दग्धा पुनर्ज्जाता हिमालये। पूर्णसूर्य्येन्दुवर्णाभा अतो गौरीति सा स्मृता ॥७॥

चन्द्र-सूर्य-वायु देवी के नेत्रस्वरूप हैं; अतः मुनिगण उनको त्र्यम्बक कहते हैं। देवी ने योगाग्नि में अपने शरीर को दग्ध करके पुनः हिमालय में जन्म लिया था। उन्होंने पूर्ण चन्द्रमा के समान गौर देह धारण किया था, इसीलिये उनका नाम गौरी कहा गया है।।६-७।।

जलयाना नरा गौर्य्या समुद्रशयनाय वा। नारायणी समाख्याता नरनारीः प्रकुर्वता ॥८॥
स्मरणादिभये दुर्गे तारिता रिपुसङ्कटे। धारणाद्वत्सनाद् वापि कात्यायनी मता बुधैः ॥९॥

'नार' का अर्थ है—जल। वे समुद्रजल में शयन करती हैं; इसी कारण उनका नाम है—नारायणी। देवी ने स्मरणमात्र करने से इन्द्रादि देवगण का दुर्गम शत्रुसंकट भय निवारित करके उनका उद्धार किया था; अतः उनका नाम दुर्गा है। 'क' का अर्थ है—ब्रह्मा। इसका अन्य अर्थ है—शिव। इन दोनों को धारण करने के कारण देवी का नाम है—कात्यायनी।।८-९।।

रौद्राणि घोरकर्म्माणि कारणाच्च रौद्री मता। विन्ध्येऽवतीर्य देवार्थं हतो घोरो महाभटः ॥१०॥
अद्यापि तत्र सा वासा तेन सा विन्ध्यवासिनी। जयन्ती जयनाख्याता अजिता न जिता क्वचित् ॥११॥
विजित्य पद्मनामानं दैत्यराजं महाबलम्। विजया तेन सा देवी लोके चैवापराजिता ॥१२॥

ये घोर कर्म करने के कारण रौद्री हैं। इन्होंने देवगण की कार्यसिद्धि-हेतु विन्ध्याचल में जन्म लेकर महासुर घोर का नाश किया था। अभी भी देवी विध्याचल में निवास करती हैं। अत: इनका नाम है—विन्ध्यवासिनी। ये सर्वत: विजयी होने के कारण जयन्ती कहलाती हैं। इनको कोई जीत नहीं सकता, अत: इनका नाम है—अजिता। महाबली पद्म नामक दैत्यराज को जीत लेने के कारण इनको 'विजया' कहा गया। तभी से लोकालय में इनको 'अपराजिता' कहा जाने लगा।।१०-१२।।

सिंहमारुह्य कन्यात्वे निहतो महिषो यथा। महिषघ्नी ततो देवी कन्या वै सिंहवाहिनी ॥१३॥
काली दक्षापमानेन सर्वशत्रुनिबर्हणी। कलना कालसंख्या वा काली देवेषु गीयते ॥१४॥
कपालं ब्रह्मकं जातं करे धारयते सदा। कपाली तेन सा प्रोक्ता पालनाद्वा कपालिनी ॥१५॥

देवी ने कन्यारूप में सिंह पर आरोहण करके महिषासुर का वध किया था, तभी से उनको महिषघ्नी तथा सिंहवाहिनी कहते हैं। दक्ष ने जब भगवती के सामने यज्ञ में शिव का अपमान किया था तब इन्होंने उसे दण्ड देने-हेतु काली का रूप धारण किया और काली कहलाईं, अथवा ये काल में समस्त पदार्थसमूह का कलन करती हैं, अत: देवता इनको काली कहते हैं। ये सर्वदा हाथों में ब्रह्मा का कपाल धारण करती हैं, अत: ये कपालिनी किंवा कपाली कहलाती हैं।।१३-१५।।

हत्वा रूरूं महादैत्यं ब्रह्मविष्णुभयङ्करम्। तस्य प्रावृत्य वै चर्म्म मुण्डं वामकरे तथा ॥१६॥
गृहीत्वा निर्गता भूमौ सा चामुण्डा ततः स्मृता। नन्दते सुरलोकेषु नन्दने वसते तथा ॥१७॥
हिमाचले महापुण्ये नन्दा देवी ततः स्मृता। अल्पेनैवोपकारेण यस्माल्लोके सुखप्रदा ॥१८॥

इन्होंने ब्रह्मा-विष्णुप्रभृति देवगण के लिये भयंकर रुरु नामक महादैत्य का वध करके उसके चर्म तथा मुण्ड को धारण कर लिया था, तभी से इनको चामुण्डा कहते हैं। ये सुरलोक के नन्दनकानन तथा महापुण्यप्रद हिमालय में वास करती हैं, अत: इनका नाम (वहाँ पर आनन्दानुभव करने के कारण) नन्दा पड़ गया। ये अल्पमात्र आराधना करने पर ही लोगों का सुखसम्पादन करती हैं, इसीलिये इनको सुप्रसादा अथवा सुखप्रदा कहा जाता है।।१६-१८।।

कौशेयधारणाद्वापि सुप्रसादाथ कौशिकी। कौर्मन्तु वशं कृत्वा गृहीतं तत् पुरं यथा ॥१९॥
तेन सा गीयते देवी पुराणे कैटभेश्वरी। श्वेतं शुक्लां शिवं स्थानं-स्थानं यस्मादिहागता ॥२०॥
महाभारसमुत्पन्नः महाश्वेता ततः स्मृता। भाग्यवृद्धिः समाख्याता सर्वदिक्कामृतोपमा ॥२१॥
महार्थसाधना देवी महाभागा ततः स्मृता। सुबाहुस्त्रिदशा देवी नन्दिनी दुन्दुभिर्मता ॥२२॥
तेषाञ्च वादिनी नन्दी ईशत्वात्त्रिदशेश्वरी। रुद्रो भवः समाख्यातो भवः संसारसागरः ॥२३॥

देवी कौशेय वस्त्रधारिणी होने के कारण कौशिकी कही जाती हैं। इन्होंने कैटभ दैत्य का वध किया तथा उसके पुर की अधीश्वरी हो गयीं; तभी से इनको कैटभेश्वरी कहते हैं। इन्होंने महाभावाश्रय लिया (अर्थात् शुक्ल महादेव का आश्रय लिया); तभी से इनको महाश्वेता कहते हैं। भाग्य का अर्थ है—बुद्धि अथवा महार्थ साधन करने वाली। अमृतोपमरूप से सभी ओर से कामनापूरिका होने के कारण देवी को महाभागा कहा गया। देवी त्रिदशायुता हैं, अत: सुबाहु कही जाती हैं। देवी दुन्दुभि के समान आनन्दध्वनि की जनयित्री होने के कारण नन्दिनी कहलाती हैं। वे कथारूपा होने के कारण नन्दी एवं देवताओं की ईश्वरी होने के कारण त्रिदशेश्वरी कही जाती हैं। भव का अर्थ है—रुद्र, भव का अर्थ है—संसारसागरार्थ।।२३।।

भवः कामस्तथा सृष्टिर्भवानी परिकीर्त्तिता। मातराण्यग्रजा ज्येष्ठा सर्वसम्बन्धकारणात् ॥२४॥
तमोनिश्चलगामित्वात् तमोनिष्ठा विनाशिनी। ब्रह्मिष्ठा देवमातृत्वाद् गायत्री चरणाग्रजा ॥२५॥

भव का ही अर्थ है—काम। इनकी सृष्टि करने के कारण देवी हैं—भवानी। ये भूत-भविष्य-वर्त्तमानादि सभी काल में विराजित रहती हैं। अत: इन्होंने अपनी माता के भी पहले जन्म लिया, तभी इनको ज्येष्ठा कहते हैं। ये सर्वप्रकारेण तम: का नाश करती है, तभी ब्रह्मिष्ठा तथा चरणश्रेष्ठा होने के कारण गायत्री कहलाती हैं।।२४-२५।।

वेदेषु चरते यस्मात् तेन सा ब्रह्मचारिणी। अपर्णा सा निराहारा एकाशी एकपर्णिका ॥२६॥
पाटला पाटलाहाराद् देवी लोकेषु गीयते। धात्री माता समाख्याता धारणे चोपगीयते ॥२७॥
त्रयाणाञ्चैव लोकानां नाम त्रैलोकधात्रिका। त्रिदशैरर्च्चिता देवी देवयागेषु पूजिता ॥२८॥
भावे शुद्धस्वरूपा तु सावित्री तेन सा स्मृता। ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानां नयञ्च परमं गता ॥२९॥

सर्ववेद में विचारशीला होने के कारण ये हैं—ब्रह्मचारिणी। ये तपःकाल में निराहारा थीं, अतः अपर्णा कहलाईं। (उससे पूर्व) केवल एक पत्ता खाने के कारण एकपर्णिका नाम से प्रसिद्ध हो गयीं। पाटल का आहार करने के कारण देवी का नाम पाटला हो गया। जगत् को धारण करने के कारण धारिणी हैं। ये भगवती त्रिभुवनजननी तथा त्रिभुवन को धारण करने वाली हैं; अतः इनका नाम तीन लोक में त्रैलोक्यधात्रिका हो गया (त्रैलोक्यधारिका भी पाठान्तर है)। भावस्वरूपा देवी देवताओं द्वारा यज्ञ में पूजिता होती हैं। अतः इसी कारण लोक में इनका सावित्री नाम ख्यात है। ये देवी ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की भी लयकारिका हैं।।२६-२९।।

त्रयाणां शुभदायित्वात् त्रिशूली तेन शङ्करी। दक्षिणञ्चोत्तरं लोकं तथा ब्रह्मायणं परम् ॥३०॥
लयं सन्मार्गधर्मस्थं दृष्टौ त्रिनयना मता। पदैस्त्रिभिर्बलिर्बद्धो रागादि त्रिपदाथ वा ॥३१॥
उत्पत्तिस्थितिनाशेषु रजादि त्रिगुणा मता। सर्वज्ञा सर्व वै तृत्वाच्छान्तित्वाच्छान्तिरुच्यते ॥३२॥

ये इन तीनों का शुभ सम्पादन करती हैं, तभी इनका नाम त्रिशूली तथा शंकरी है। सन्मार्गी तथा धर्मपरायण को दक्षिण तथा उत्तरायण मार्ग एवं परिणाम में ब्रह्मपद मार्ग—इन तीन को नयन कराने वाली अर्थात् प्राप्त कराने वाली होने के कारण इनको त्रिनयना कहा गया है। इन्होंने ही चरणत्रय में बलि को बाँधा था (तीन पद भूमि लेने हेतु)। इनके तीन चरण हैं—ऋक्-यजुः तथा साम और सृष्टि में यही है—सत्व, रजः तथा तमः अर्थात् सृष्टि में रजोगुण, स्थिति में सत्त्वगुण, संहार में तमोगुण। इस कारण भगवती त्रिगुणा कहलाती हैं। यह भगवती सब जानती हैं, अतएव सर्वज्ञा हैं। शान्तिरूपा होने के कारण शान्तिनाम्नी हैं।।३०-३२।।

अरूपा परभावत्वाद् बहुरूपा क्रियात्मिका। जाता शैलेन्द्रगेहे सा शैलराजसुता ततः॥३३॥
साध्वी पतिव्रतत्वाच्च स्कन्दोत्पादेन मातृका। तारणाद्रिपुशक्रादेस्तारा लोकेषु गीयते ॥३४॥

ये ब्रह्मरूपा होने के कारण अरूपा तथा क्रियात्मिका होने के कारण बहुरूपा कहलाती हैं। पर्वतराज के गृह में जन्म लेने के कारण इनको शैलराजसुता कहा गया है। अतिपतिव्रता होने के कारण साध्वी तथा कार्त्तिकेय को जन्म देने के कारण मातृका नाम से प्रसिद्ध हैं। ये शत्रुप्रभृति अखिल भय से रक्षा करती हैं; अतएव इनको त्रिलोकी में तारा कहते हैं।।३३-३४।।

वामं विरुद्धरूपन्तु विपरीतन्तु गीयते। वामेन सुखदा देवी वामा तेन मता बुधैः ॥३५॥

वाम का अर्थ है—विरुद्ध अथवा विपरीत। ये देवी विरुद्ध तथा विपरीतचारी सुख का भी दान कर देती है; अतएव विद्वत् जन इनको वामा कहते हैं।।३५।।

चिति चैतन्यभवत्वाच्चेतना वा चितिः स्मृता। महद् व्याप्य स्थिता सर्वं महा सा प्रकृतिर्मता ॥३६॥

ये (सबके) हृदय में चैतन्यरूपा होकर विराजित रहती हैं; अतएव इनको चेतना अथवा चिति कहते हैं। ये समस्त विश्व में व्याप्त हैं; इस कारण इनको महाप्रकृति कहा गया है।।३६।।

स्मृतिः संस्मरणाद्देवी नियता च नियामनात्। मथनं मर्द्दनं प्राहुः शुम्भादि भयमाहवे ॥३७॥
निशुम्भशुम्भमथनी देवी देवेषु गीयते। रेवा तु नर्मदा देवी नदी वा रेवती मता ॥३८॥

अतिखण्डेन रक्षा वा लोके देवी प्रकीर्त्तिता। ऋक्षी शृङ्गाटकाकारा कुण्डली वा समुद्भवे ॥३९॥
स्वरव्यञ्जन उत्पत्तौ वेदमाता ततः स्मृता। पूज्यते या सुरैर्देवैः महीश्चैव प्रमाणतः ॥४०॥

ये संस्मरणरूपा होने के कारण स्मृति तथा नियामिका होने से नियता हैं। मन्थन का अर्थ है—मर्दन। वे समरक्षेत्र में शुम्भादि मय का मर्दन मन्थन करती हैं; अतः इनका नाम है—निशुम्भ-शुम्भमथनी। रेवा का अर्थ है—नर्मदा नदी अथवा देवी। अति का अर्थ है—विघ्ननाश। जो देवी अखिल विघ्नों को दूर करती हैं, वे हैं—रेवती। देवी स्वर-व्यञ्जन की उत्पत्ति में शृङ्गाटकाकार ऋक्षी हैं। कुण्डलीरूपेण विराजित रहती हैं; अतः सभी उनको वेदमाता कहते हैं।।३७-४०।।

बृहदस्य शरीरं यदप्रमेयं प्रमाणतः। बृहद्विस्तीर्णमित्युक्तं ब्राह्मी देवी ततः स्मृता ॥४१॥

इनका शरीर बृहद् (सर्वव्यापी) तथा अप्रमेय है; अतः इनका नाम है—ब्राह्मी देवी।।४१।।

धातुर्महेति पूजायां महादेवी ततः स्मृता। सेव्यते या सुरैः सर्वैस्तांश्चैव भजते यतः॥४२॥

'महा' धातु का अर्थ है—पूजा। समस्त सुरासुरगण इन देवी का पूजन करते है; उनका शरीर अतीव महत् है तभी सभी लोग उनको महादेवी कहते हैं।।४२।।

धातुर्भजेति सेवायां भगवत्येव सा स्मृता। तुष तुष्टौ स्मृतो धातुस्तस्य तुष्टा निपातने ॥४३॥
सृजत्येषा प्रजास्तुष्टि त्वाष्ट्रि तेन प्रकीर्त्तिता। महानिति च योगेषु प्रधाना चैव कथ्यते ॥४४॥

अखिल अमरगण उनकी सेवा करते रहते हैं; इसलिये इनका नाम है—भगवती। 'तुष्' धातु का अर्थ है—सन्तोष। यह देवी सन्तुष्ट होकर प्रजा का सृजन करती हैं; अतः इनको तुष्टि (अथवा त्वाष्ट्री) कहा गया है।।४३-४४।।

त्रिगुणा व्यतिरिक्ता सा पुरुषश्चेति चोच्यते। हिरण्यगर्भोऽभूद् बुद्ध्या तेन बुद्धिर्मता असौ ॥४५॥
विश्वं बहुविधं ज्ञेयं सा च सर्वत्र विद्यते। तस्मात्सा बहुरूपत्वात् बहुरूपा शिवा मता ॥४६॥

त्रिगुण-व्यतिरिक्ता देवी को ही पुरुष कहा जाता है। इनकी बुद्धि से ही हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव होता है; तभी ये बुद्धि हैं। विश्व (ब्रह्माण्ड) अनेक हैं; यह शिवा देवी भी नानारूपेण सर्वत्र विराजित होने के कारण बहुरूपा कहलाती हैं।।४५-४६।।

एते च असते लोका न एका न च सा स्मृता। एका च नाशतो लोका एकानंशा च सा स्मृता ॥४७॥
योगी शुक्रादयो देवा सनकाद्याः तपोधनाः। तेषां स्वामी तथा योगी ईश्वरी प्रभुपालना ॥४८॥

वे एकाकी होकर भी अपने अंशरूप से नहीं, प्रत्युत पूर्णरूपेण समस्त लोकों में व्याप्त रहती हैं, तभी इनका नाम है—एकानंशा। योगीगण—शुक्रादि, इन्द्रादि देवगण तथा सनकादि तपोधनगण की स्वामिनी होने के कारण उनको योगी, ईश्वरी, स्वामिनी तथा प्रभुपालना कहते हैं।।४७-४८।।

आत्मेन्द्रियमनादीनां संयोगो योग उच्यते। तेषां वा योजनाद् योगी योगैश्वर्य्यावबोधना ॥४९॥
स्मृतिः सिद्धिरिति ख्याता श्रिया संश्रयणांसवा। लक्ष्मीर्वा ललना वापि क्रमणात् कान्तिरुच्यते ॥५०॥

विद्वद्गण आत्मा, मन, इन्द्रियों के संयोग को योग कहते हैं। वे इन सबका संयोग घटित कराने के कारण योगी कही जाती हैं। वे विशिष्ट रूप से योगैश्वर्य को विबोधित कराकर स्मृत करा देती हैं; इसी कारण वे स्मृति तथा सिद्धि कहलाती हैं। उनकी ही कृपा से समस्त सम्पत्ति तथा सौन्दर्य की प्राप्ति होती है; इसीलिये उनको लक्ष्मी कहा गया है। उनको इसी कारण से ललना तथा कान्ति भी कहते हैं।।४९-५०।।

स्वराः स्मरणशीलत्वात् ज्ञेया सप्तस्वरात्मिका। अति प्रायण दाने वा तेन देवी सरस्वती ॥५१॥

सातों स्वरों के योग से उनका ही स्मरण किया जाता है; इसलिये वे सप्तस्वरात्मिका हैं तथा 'अति' का अर्थ है—दान, जो सप्तस्वर का दान करती हैं, वे ही देवी सरस्वती है।।५१।।

गायनाद्गमनाद्वापि गायत्री त्रिदशार्च्चिता। साधनात् सिद्धिरित्युक्ता साधिका वाथ ईश्वरी ॥५२॥
स्वामित्वाद्दानसिद्धित्वात् सिद्धिश्चर्य्या प्रकीर्त्तिता। स्मरणाच्चिन्तनाद् वापि शोध्यते महापातकात् ॥५३॥

अमरगण (देवगण) द्वारा आराध्या इन परमेश्वरी का सभी गायन करते है अथवा ये सर्वत्र गमनशील हैं। इसलिये इनको गायत्री कहा गया है। ये निखिल कार्य का साधन करती रहती हैं। इसी कारण से इनका नाम है—साधिका तथा सिद्धि। ये सबकी स्वामिनी हैं; इसलिये इनका नाम है—ईश्वरी। ज्ञानबल से ही इनके साक्षात्कार की सिद्धि होती है, तभी ये सिद्धिनाम्नी हैं। इनके स्मरण-चिन्तन से महापातकी भी शुद्ध हो जाता है।।५२-५३।।

तेन शुद्धिः समाख्याता देवी रुद्रतनौ स्थिता। महागजघटाटोपसंयोगे नरवाजिनाम् ॥५४॥
स्मरणाद्वारते बाणान् तेन सा काण्डवारिणी। विचित्रकार्य्यकरणा अचिन्तितफलप्रदा ॥५५॥

रुद्रतनुस्थिता देवी के स्मरण का यह फल है। इसलिये इनको शुद्धि कहा गया। हाथी-घोड़ों की सेनायुक्त भीषण युद्धकाल में इनका स्मरण करने-मात्र से ये देवी शरजाल का निवारण कर देती हैं; तभी इनका नाम है—काण्डवारिणी। ये देवी अचिन्त्य फलप्रदा हैं तथा विचित्र कार्य करने वाली हैं।।५४-५५।।

स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्त्तिता। आत्मवेदनशीलत्वादन्वीक्षणपराथवा ॥५६॥

जैसे स्वप्न में अनुभूत तथा इन्द्रजालवत् कार्य (विविध दृश्य उन्मिषित होते हैं) करने के कारण इनको माया कहा गया है। इनकी ही कृपा से आत्मदर्शन भी होता है।।५६।।

अन्वीक्ष्य कुरुते यस्मादान्वीक्षा सा ततः स्मृता। ऋग्यजुःसामभागेन साङ्गवेदगतापि वा ॥५७॥
त्रयीति कथ्यते लोके दृष्टादृष्टप्रसाधनी। पश्वादि पालनाद् देवी कृषिं कर्म्मान्तकारणात् ॥५८॥

किंवा देवी ही सम्यक्तः समस्त देखती रहती हैं, अथवा केवल दृष्टिमात्र से समस्त सृष्टिकार्य करती हैं; इसीलिये इनको अन्वीक्षा कहा गया है। दृष्ट-अदृष्ट—सबका फल देने वाली भगवती ही ऋक्, यजुः, सामरूप भागत्रय में विभक्त समुदय वेदों की (अधिकारिणी) अधिष्ठात्री हैं; तभी त्रयी नाम से ख्यात हैं। ये देवी ही पशुपालनादि तथा कृषिकर्म की कारणभूता हैं।।५७-५८।।

वर्त्तनाद् वारणाद् वापि वार्त्ता सा एव गीयते। नयानयगता लोके विकल्पेन निरामया ॥५९॥
दण्डनाद्गमनाद् वापि दण्डनीतिरिति स्मृता। क्रियाकारणरूपत्वात् सरणाच्च सरिन्मता ॥६०॥

अथवा सर्वत्र वर्त्तन (अवस्थिति) के कारण और जीवगण को कुपथ-अपथ से हटाने के कारण सभी इनको वार्त्ता भी कहते हैं। देवी ही पापीगण को दण्डित करती हैं। सुकृति करने वालों को सत्पथ पर नयन (प्रवृत्त) करती हैं; अतः अनीतिरोधिका नीति जो सन्देहनाशिनी है, वह दण्ड नीति देवी ही हैं। निखिल क्रिया-सम्पादिका होने के कारण सरण (सर्वत्र गमन) करने के कारण इनको 'सरित्' कहा जाता है।।५९-६०।।

गाङ्गमागमनाद्गङ्गा लोके देवी विभाव्यते। यमस्य भगिनी माता यमुना तेन सा मता ॥६१॥
प्रभा प्रसादशीलत्वाज्ज्योत्स्ना चंद्रार्कमालिनी। रजनी कीर्त्तिता देवी आर्तिप्राप्तिर्मता बुधैः ॥६२॥

यह 'गां' अर्थात् पृथिवी पर गमनागमन करती हैं, इसी कारण इनको 'गङ्गा' कहा गया है। ये यम की बहन माता यमुना कही जाती हैं। इनमें अलौकिक प्रभा एवं प्रसन्नता है। अतः इनको नक्षत्रचन्द्रमालिनीरूपा 'ज्योत्स्ना' कहते हैं। बुद्धिमान लोग के मत से रजनी का अर्थ है—देवी तथा आर्त्ति का अर्थ है—प्राप्ति।।६१-६२।।

रात्रीति तेन सा लोके परिणामसुखप्रदा। भयं नरकमाहुः स्यात् कुगतिप्रापणेषु च ॥६३॥
अवति रक्षणे त्राणे भगवत्येव मङ्गला। त्रिदेवास्त्रिगुणाः काला सुशर्म्मा शान्तिः कीर्त्यते ॥६४॥
ललये भूषणे वाथ त्रिशूली शूलपूजना। हिंसा हिंसनशीलत्वाद् वलनाच्च महाबला ॥६५॥

यतः इन देवी से अखिल अभीष्ट प्राप्त होता है, तभी जगत् में इनका नाम है परिणाम सुख देने वाली 'रात्रि'। ज्ञानीगण के मत से भय शब्द का अर्थ है—नरक तथा कुगति की प्राप्ति। अवति का अर्थ है—रक्षा तथा परित्राण। अतः देवी जीवगण की रक्षा नरकभय से करती हैं तथा जिनको दुर्गति प्राप्त है, उनका दुर्गति से परित्राण करती हैं, तभी उनका नाम है—मंगला भगवती। त्रि शब्द से त्रिदेव, त्रिगुण तथा तीन काल का बोध होता है। सुशर्मा का अर्थ है—शान्ति। 'ल' शब्द का अर्थ है—लय अथवा भूषण। अतः वे तीनों 'त्रि' को शान्ति देती हैं तथा उनका लय भी कर देती हैं। वे ही सबकी भूषणस्वरूपा भी हैं। इसलिये वे त्रिशूली नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हिंसनशीला है तथा सबका बलपूर्वक (कल्पान्त में) संहार कर देती हैं, तभी उनको बला एवं हिंसा कहा गया है।।६३-६५।।

दया दानस्वरूपेण कृपया च कृपा मता। दिव्यानां पार्थिवानाञ्च वंशानामिह सर्वशः ॥६६॥
आदित्याददिति ख्याता दितिर्दैत्यप्रसूयनात्। भास्वरास्तु करा यस्य सुरारिविनिवारणाः ॥६७॥
भासृ दीप्तौ स्मृतो धातुर्भास्वरा तेन चर्च्चिका। दैत्याद्यन्तकरी देवी दैत्यान्ता च सा स्मृता ॥६८॥

वे दानस्वरूपा होने से दया हैं, कृपा करने के कारण कृपादेवी हैं। वे स्वर्गीय, पार्थिव सभी कारणरूप से आदि से स्थिता हैं, अतएव उनका नाम अदिति है तथा वे दैत्यों का उत्पादन करती हैं; इसलिये वे दिति हैं। भास धातु का अर्थ है—दीप्ति; अतएव उनके भास्वर हैं। वे दैत्यों की संहारिका कही गई हैं तभी उनका नाम दैत्यान्ता हो गया है।।६६-६८।।

बहूनि यस्य रूपाणि स्थिराणि च चराणि च। देवमानुषतीर्थानि बहुरूपी तत उमा ॥६९॥
श्रवणे स्यन्दनार्थे च धातुरेष निपात्यते। श्रवणात्तेजसां चैव सावित्री तेन सा स्मृता ॥७०॥

वे देव-मनुष्यादि अनेक चराचर रूप में विराजित हैं; अतः उमा बहुरूपी नाम से प्रसिद्ध हैं। 'स्रु' धातु का अर्च है—स्रवण अर्थात् स्यन्दन (क्षरण)। वर्षा अर्थात् जलादि का क्षरण जिससे निपतित होता है, वह है स्रवण। वे उपास्या हैं; अतः सावित्री हैं। इस प्रकार से देवी का ही नाम है—स्रवणा तथा सावित्री।।६९-७०।।

अवेति रक्षणे धातु अधिप्राकारने तथा। अजवक्त्रा शिवा तेन असुरासुरवन्दिता ॥७१॥
भीषणी शत्रु सिंहस्य भीषणं स्वीकरोति च। भीषणी तेन सा नित्यं पुराणे चोपगीयते ॥७२॥

'अव्' धातु का अर्थ है—रक्षा। वे ही इसको करने वाली हैं, रक्षिणी हैं। इसीलिये उनको 'अवा' कहते हैं। वे ही देवता तथा असुरों की वन्दिता हैं; अतः उनका अन्य नाम है—वध्रा। वे प्रबल पराक्रान्त असुरों हेतु भीषणी हैं, भयदा हैं, किंवा भीषण कार्य करती हैं; अतएव पुराण शास्त्र उनको भीषणी कहते हैं।।७१-७२।।

यस्माद् वारयते लोकान् वृत्तिमेषां ददाति च। दुधाञ् धारणे धातुस्तस्माद् धात्री मता बुधैः ॥७३॥

'धा' धातु का अर्थ है—धारण-पोषण। यतः वे निखिल लोकों को धारण करती हैं, सभी को जीविका देकर उनका पोषण करती हैं; अतएव बुधगण उनको धात्री कहते हैं।।७३।।

वराण्याशंसु देवा वरदा च वरार्थिनाम्। धातु वृञ्वरणे प्रोक्तस्तेन सा वरदा मता ॥७४॥
शंकु च कीलकमित्याहुर्वेणी पंक्ति क्रमस्तथा। शिरसो राजते तस्यां शंकुवेणीं मता बुधैः ॥७५॥
हस्तं शरीरमित्याहुर्हस्तञ्च गगनं तथा। ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रा ज्योतिर्हस्ता ततः स्मृता ॥७६॥

'वृ' धातु का अर्थ है—प्रार्थना। देवगण उनके निकट जो माँगते हैं, वह है—वर तथा यह देवी प्रार्थना करने वालों को इच्छित-प्रार्थित वर प्रदान करती हैं, तभी वे हैं—वरदा। शंकु शब्द का अर्थ है—कीलक। वेणी शब्द का अर्थ है—श्रेणीबद्ध मुण्डपंक्ति-मुण्डमाला। जो विश्वमण्डल में कीलकरूप हैं, अर्थात् सभी उनमें आबद्ध हैं तथा उनके गले में मुण्डमाला विराजित है (आबद्ध (शंकु) मुण्ड) अतः उनका नाम है—शंकुवेणी। हस्त का अर्थ है—शरीर तथा आकाश एवं ज्योतिष शब्द ग्रह-नक्षत्र का द्योतक है। यतः उनके आकाशमय देह में निखिल ज्योति (ग्रह तथा नक्षत्र) विराजित हैं; तभी उनका नाम है— ज्योतिर्हस्ता।।७४-७६।।

ऐश्वर्यं परमं यस्य वशे चैव सुरासुराः। इदि परमैश्वर्ये च इन्द्राणी तेन सा शिवा ॥७७॥
त्रुट्यादि उच्यते कालः कालश्चान्ते विनाशने। भद्रं करोति सा धाता भद्रकाली मता ततः ॥७८॥

इदि धातु का अर्थ है—ऐश्वर्य। यतः वे परम ऐश्वर्ययुता तथा समुदय सुर-असुरगण उनके वश में हैं; इसीलिये उनको इन्द्राणी कहा गया है। काल शब्द का अर्थ है—त्रुटि आदि काल, शेष (अन्त) तथा मृत्यु। यतः वे सर्वदेवमय हैं, मृत्यु काल एवं शेष का भी भद्र (मंगलविधान) करती हैं, तभी उनको भद्रकाली कहा गया है।।७७-७८।।

शक्ता या जगतः कर्तुं सर्गानुग्रहसंग्रहान्। शकि शक्तौ स्मृतो धातुः शिवा शक्तिस्ततः स्मृता ॥७९॥

शक् धातु अर्थात् शक्ति। अतएव जगत् के सृजन-पालन-लय भी करने वाली होने से वे शक्ति हैं। तभी सब लोग इनको शक्ति कहते हैं।।७९।।

वसत्यदृष्टा सर्वेषु भूतेष्वन्तर्हिताय च। धातुर्वस निवासेति वासना तेन सा स्मृता ॥८०॥

वस् धातु का अर्थ है—अवस्थिति। वे सर्वत्र प्राणीगण के अन्तर में मंगलहेतु स्थित रहती है; इसीलिये उनका नाम है—वासना।।८०।।

ब्रह्माणी ब्रह्मजननी ब्रह्मस्येयं च वा मता। रुद्रस्येयं तु रुद्राणी रौद्रं हन्ति करोति वा ॥८१॥

वे ब्रह्मा की भी उत्पादिका तथा ब्रह्मशक्ति होने से ब्रह्माणी हैं। रुद्र की शक्ति अर्थात् रौद्र अर्थात् दानवों की संहारिणी हैं, किंवा भयंकर कार्य करती हैं; अतः उनका नाम रुद्राणी प्रसिद्ध है।।८१।।

महादेवात्समुत्पन्ना महान्ति वीक्षते यतः। माहेश्वर्या तनूर्यस्या माहेशी तेन सा मता ॥८२॥

वे महादेव से उत्पन्न हैं तथा महान्त (मृत्युकाल) में सभी उनका निरीक्षण करते हैं, वे ही ईश्वरी, महाशरीरा अर्थात् विश्वव्यापी हैं, तभी माहेशी कहलाती हैं।।८२।।

कुमाररूपाधारी च कुमारजननी तथा। कुमाररिपुहन्त्री च कौमारी तेन सा स्मृता ॥८३॥
शङ्खचक्रगदाधारी विष्णुमाता तथारिहा। विष्णुरूपाथवा देवी वैष्णवी तेन गीयते ॥८४॥

वे कुमाररूपधारी, कुमारजननी तथा कुमार के रिपुगण का नाश करने वाली हैं, तभी उनका नाम है—कौमारी। वे शंख-चक्र-गदाधारिणी, विष्णुजननी तथा विष्णुरूपा हैं; अतः इन शत्रुनाशिनी देवी को वैष्णवी कहते हैं।।८३-८४।।

वराहरूपधारी च वराहो यम उच्यते। तता वाराहजननी वाराही वरवाहिनी ॥८५॥

वे वाराहरूपधारी तथा वराह अवतार की भी उत्पादिक है; तभी वाराही कहलाती हैं। वे वरवाहिनी वाराही हैं।।८५।।

इन्द्राणी इन्द्रजननी शाक्री शक्रपराक्रमा। वज्राङ्कुशधरा देवी वज्रा तेनोपगीयते ॥८६॥

वे इन्द्रजननी, इन्द्राणी, शक्रतुल्य पराक्रमी होने से शाक्री तथा वज्र एवं अंकुशहस्ता होने के कारण वज्रा भी कहलाती हैं।।८६।।

चण्डं वीभत्समित्याहुर्मुण्डं ब्रह्मशिरो मतम्। स्वामी मुण्डमतञ्चान्यैर्धारणी करणार्थ वा ॥८७॥
चामुण्डा कीर्तिता देवैर्मातृणां प्रवरा तु सा। एका गुणात्मा त्रैलोक्ये तस्मादेका सा उच्यते ॥८८॥
देवी सा परमार्थेति वदन्ते भिन्नदर्शिनः। तत्र बुद्धेरमोहाच्च दृष्टान्तानि ब्रुवन्ति च ॥८९॥

चण्ड अर्थात् भयानक, मुण्ड का अर्थ है—ब्रह्म तथा मस्तक। किसी के मत से मुण्ड का शब्दार्थ है—स्वामी। अतः वे भयंकर दैत्यमस्तकधारिणी हैं। किंवा वे भयंकर आकृति सबकी स्वामी तथा ब्रह्मरूपा, किंवा ब्रह्म की भी उत्पादिका हैं। तभी देवगण मातृप्रधाना इनको चामुण्डा कहते हैं। एकमात्र ये ही गुणत्रयमयी देवी त्रिभुवन में स्थित हैं, तभी लोग इनको एका कहते हैं। भिन्न दृष्टि वाले मनुष्य इनको परमार्था कहते हैं। वे बुद्धिबल से इस सम्बन्ध के कई दृष्टान्त भी दिखलाते हैं।।८७-८९।।

ब्रह्माणं कारणं केचित् क्वचिदाहुर्दिवाकरम्। केचिद् रुद्रं परत्वेन आहुर्विष्णुं तथापरे ॥९०॥
कारणाच्च स्मृता ह्येते कारणार्थे सुरोत्तम। एकां सा तु पृथक्त्वेन शिवा सर्वत्र विश्रुता ॥९१॥

कोई ब्रह्मा को, कोई सूर्य को, कोई रुद्र को, कोई श्रेष्ठत्व के कारण विष्णु को जगत् का कारण मानते हैं। ये सभी सुरोत्तमगण नाना प्रयोजन से कारणरूप कहे जाते हैं; लेकिन वास्तव में एकामत्र शिवा ही इनसे पृथक् रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं।।९०-९१।।

यथा तु व्यज्यते वर्णैर्विचित्रैः स्फटिको मणिः। तथा गुणवशाद्देवी नानाभावेषु वर्ण्यते ॥९२॥

जैसे एक ही स्फटिक मणि नाना वर्ण से प्रकाशित होती है, वैसे ही देवी भी सत्य आदि गुणों के तारतम्य से नानाभावेन कही जाती हैं।।९२।।

एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते। वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशाज्जया ॥९३॥
नभसः पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा। भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशाच्छिवा ॥९४॥
यथा द्रव्यविशेषेण वायुरेकः पृथग् भवेत्। दुर्गन्धो वा सुगन्धो वा तथा गुणवशादुमा ॥९५॥
यथा वा गार्हपत्याग्निरन्यसङ्गान्तरं व्रजेत्। दक्षिणाहवनीयादि ब्रह्मादिषु तथा च सा ॥९६॥

जैसे एक ही मेघ वर्ण तथा आकृति के अनुसार पृथक्-पृथक् स्थित है, गगनमण्डल से पतित एक ही जल भूमि के रसविशेष में मिश्रित होकर भिन्न-भिन्न स्वाद वाला प्रतीत होने लगता है, जैसे वायु एक होकर भी द्रव्यविशेष के संसर्ग से दुर्गन्ध तथा सुगन्धरूप विभिन्न भाव धारण करती है, जैसे एक ही गार्हपत्य अग्नि अन्य संसर्ग से दक्षिण तथा आवाहनीयादि नाम से पृथक् हो जाती है, ऐसे ही देवी शिवा एक होकर भी सत्वादि गुणविभाग के कारण नाना मूर्त्ति में अवस्थान करती हैं।।९३-९६।।

एकत्वेन पृथक्त्वेन प्रोक्ता देवी निदर्शनैः। तस्माद् भक्तिः परा कार्य्या सर्ववर्गप्रसिद्धये ॥९७॥
देव्याया एष सिद्धान्तः परमार्थो महामते। एषा वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैव न संशयः ॥९८॥

ज्ञानीगण नाना प्रकार से इन देवी को एक होने पर भी पृथक् बतलाते हैं। अतः धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की सिद्धि हेतु इनकी ही परमभक्ति करना कर्त्तव्य है। हे महामते! इनके सम्बन्ध में यही चरम सिद्धान्त है। जो कुछ देवताओं का बल, यज्ञों का बल तथा स्वार्थ बल है, सब इनका ही बल है। यह निःसंदिग्ध है।।९७-९८।।

देव्या व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। इत्यन्ते पूज्यते देवी अन्नपानात्मिका सदा ॥९९॥
सर्वत्र शङ्करी देवी तनुभिर्नामभिश्च सा। वृक्षमूर्व्यां तथा वायौ व्योमे स्वर्गे च सर्वशः ॥१००॥
एवंविधा त्वियं देवी सदा पूज्या विजानता। रुद्राणी वेत्ति यस्त्वेव स तस्यामेव लीयते ॥१०१॥

एकमात्र ये देवी ही दृश्यमान स्थावर-जंगमात्मक विश्व में परिव्याप्त हैं। अन्न-पेयादि भी वे ही हैं। जीवसमूह सदा उनकी ही पूजा करते तथा उनके ही लिये यज्ञशील रहते हैं। यह देवी अनेक नाम से अनेक मूर्त्ति में सर्वत्र मंगलविधान करती हैं। समस्त प्रकार के वृक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, स्वर्गादि सभी स्थान में उनका ही अधिष्ठान है। ज्ञानीगण उनको इस प्रकार से जानकर सदैव अर्चना करते हैं। जो उनके इस भाव को जान पाता है, वह अन्त में उनमें ही लीन रहता है।।९९-१०१।।

अप्येकं वेत्ति यो नाम धात्वर्थनिगमैर्नरः। स दुःखैर्वर्ज्जितः सर्वैः सदा पापाद्विमुच्यते ॥१०२॥
न हि पापकृते शक्र चित्ते भवति चर्च्चिका। तस्मात् त्वं परया भक्त्या प्रपद्य शरणं शिवाम् ॥१०३॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यानामनिरुक्तिर्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

जो मानव पूर्वोक्त रीति से धात्वर्थयुक्त होकर उनके एक भी नाम को जान लेता है, वह सभी दुःख तथा अखिल पापों से सर्वदा मुक्त रहता है। हे इन्द्र! जो पापाचारी है; उसके हृदय क्षेत्र में कभी भी भगवती प्रकाशित नहीं होती। अतः तुम परमभक्ति से युक्त होकर उन शिवा का शरण ग्रहण करो।।१०२-१०३।।

सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त

●

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

शक्र उवाच

केनोपायेन सा देवी वरदा भवते नृणाम्। सर्वेषां हितकामानां तथा ब्रूहि पितामह ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—हे पितामह! देवी किस उपाय से मनुष्यों के प्रति वरदा होती हैं, सबके हितार्थ इसे कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

हिमवद् विन्ध्यानिलयैर्यथा व्याप्ता वसुन्धरा। शिवामङ्गलनन्दार्च्चिर्लोका व्याप्ता परापरा ॥२॥

भगवान् ब्रह्माजी कहते हैं—जैसे हिमालय, विन्ध्य तथा मलय पर्वत वसुन्धरा को व्याप्त करके स्थित हैं, उसी प्रकार भगवती देवी ही शिवा, मंगला तथा नन्दा मूर्त्ति में समस्त अपर-पर लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।।२।।

तथा दक्षिणविन्ध्याद्रेर्मलयाच्च यदन्तरम्। मङ्गला सा स्थिता देवी दुर्गां तत्र प्रपूजयेत् ॥३॥
उत्तरं विन्ध्यभागन्तु पश्चिमोदधिपूर्व्वगा। कुरूक्षेत्रान्तरालन्तु जयन्तीं शिव-अङ्गगा ॥४॥
कुरूक्षेत्रोत्तरं भागं हिमवद्दक्षिणेन च। नन्दा देवी कलांशास्तु देव्यास्तत्र प्रपूजयेत् ॥५॥

विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में तथा मलयगिरि के उत्तर में जो भूभाग है, वहाँ मंगला देवी विराजित हैं। यहाँ भगवती दुर्गा की पूजा करनी चाहिये। पश्चिम सागर के पूर्व तथा विन्ध्य के उत्तर, कुरुक्षेत्र के आभ्यन्तर जयन्ती नामक प्रसिद्धा शिवांश से उत्पन्ना शिवादेवी अधिष्ठिता हैं।।३-५।।

कालिकाख्या तथा तारा उमा सर्वनगेषु च। तथा किष्किन्धिकाद्या या भैरवी चेति विश्रुता ॥६॥
रुद्राणी च कुशलाम्ने भद्रकाली जालन्धरे। महालक्ष्मीस्तु कोलाख्ये कालरात्री च सज्यगा ॥७॥

अम्बाख्या लोहिता देवी पूज्यते गन्धमादने। उज्जयिन्यान्तु उज्जेनी जम्बुमार्गे तथा स्थिता ॥८॥
महाकालीति विख्याता वैदेहे भद्रकालिका। एता इन्द्रावताराख्या महादेव्यः सुरारिहाः ॥९॥
पूजिताश्चिन्तिता वत्स सर्वकामफलप्रदा ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे स्थान-कथन-नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः

कुरुक्षेत्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में जो भूखण्ड है, वहाँ नन्दादेवी स्थित हैं। वहाँ इन देवी के अंगादि देवों की अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकार किष्किन्धादि पर्वत पर भैरवी तथा अन्य पर्वतों पर कालिका, तारा तथा उमादेवी स्थिता हैं। कुशस्थली में रुद्राणी, जलन्धर में भद्रकाली, कोलाख्य पर्वत पर महालक्ष्मी, सह्य पर्वत पर कालरात्रि, गन्धमादन पर अम्बानामक लोहित वर्ण वाली देवी पूजिता हैं। इसी प्रकार उज्जयिनी में उज्जनी देवी, जम्बूमार्ग में महाकाली तथा वैदेह देश में भद्रकालिका स्थिता हैं। अतः हे इन्द्र! असुरनाशिनी इन सब महादेवीगण की अर्चना किंवा चिन्तना करने से वे सर्वाभीष्ट प्रदान कर देती हैं।।६-१०।।

अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त

●

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शौनक उवाच

येषु येषु च तीर्थेषु पूजिता सुरसत्तमैः। पूर्वमिन्द्रादिभिर्देवी तीर्थास्तान् प्रब्रवीहि नः ॥१॥

शौनक कहते हैं—पूर्व में उक्त देवी अमरवर इन्द्रादि द्वारा जिन-जिन तीर्थ में पूजिता हुई थीं, उन तीर्थों का नाम मुझसे कहिये।।१।।

मनुरुवाच

ब्रह्मणा पुष्करे देवी पूजिता सिद्धकामिना। कार्त्तिक्यां सर्वदेवैश्च तत्रैव मुनिसत्तम ॥२॥
हिमवद्गिरौ महापुण्ये नन्दा रुद्रेण पूजिता। सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं खड्गखेटकधारिणी ॥३॥
कामाख्या जामदग्न्येन किष्किन्ध्ये पर्वते नुता। देवी महेश्वरी शक्र पूज्यते काशिकाश्रमे ॥४॥

मनु कहते हैं—हे मुनिसत्तम! ब्रह्मादि समस्त देवगण द्वारा सिद्धि की कामना से पुष्कर तीर्थ में कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन देवी की पूजा की गयी। परम पवित्र हिमालय पर वरुणदेव ने नन्दादेवी की, नैमिषारण्य में भगवान् विष्णु ने शिवा की, मलय पर्वत पर भगवान् भास्कर ने अम्बादेवी की, महर्षि परशुराम ने सर्वाभीष्ट-सिद्धिप्राप्ति-हेतु किष्किन्धा पर्वत पर खड्ग-खेटकधारिणी कामाख्या-देवी की तथा काशिका धाम में महेश्वरी की पूजा इन्द्र ने की थी।।२-४।।

सर्वकामसुसिद्ध्यर्थं रजेति वेद पर्वते। यजेद्भौमात्मजो देवीं कामाख्ये गिरिकन्दरे ॥५॥
काश्यपो यजते देवीं सरस्वत्यास्तटे शुभाम्। पूर्वसिन्धौ यजेद्देवीं सनको नाम भावितः ॥६॥
दक्षिणे वामनामा च कार्तिकेयसमन्विताम्। लङ्कायां यजते देवीं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥७॥

सर्वकाम-सिद्धि के लिये वेद पर्वत पर मंगल, कामाख्या गिरि पर मंगल के अनुजगण, सरस्वती नदीतट पर कश्यप, पूर्व सिन्धुतीर पर एकाग्रचित्त से सनक तथा दक्षिण सागरतीर पर वाम नामक ऋषि ने कार्त्तिकेयसमन्विता देवी की अर्चना की थी। राक्षसराज विभीषण ने लंका में उनकी अर्चना की थी।।५-७।।

पश्चिमे वरुणो देवो यजते भावितोऽम्भसा। उत्तरे नन्दिकालौ च कैलासे तौ प्रपूजयेत् ॥८॥
अगस्त्यशिष्या मुनयो यजन्ति भावितां शिवाम्। कण्वाश्रमे महापुण्ये धर्मारण्ये सदा शिवाम् ॥९॥
कण्वो नाम मुनिश्रेष्ठो यजते काश्यपात्मजः। महाकाले महादेवी कोटितीर्थे सुरोत्तमैः ॥१०॥

पश्चिम में वरुणदेव ने एकाग्रता से जल से, उत्तर में कैलास पर्वत पर नन्दी ने, काल एवं अगस्त्य ऋषि के शिष्यों ने देवी शिवा की अर्चना की थी। परम पवित्र धर्मारण्य में स्थित कण्वाश्रम में कश्यपपुत्र मुनिवर कण्व ने सदा शिवा का पूजन किया था। इसी प्रकार से सुरोत्तमगण ने कोटितीर्थ में तथा वहीं महाकाल ने भी महादेवी का पूजन किया था।।८-१०।।

पूरिता सर्वकामानि प्रयच्छत्यविचारणात्। भद्राख्ये तु वरे देवी तुष्टा ह्यासीत् पुरन्दर ॥११॥

हे पुरन्दर! इस पर देवी ने विना विचार किये कि 'यह देना उचित है, अथवा नहीं' सन्तुष्ट होकर सभी को उनका अभीष्ट वर प्रदान कर दिया।।११।।

मान्धाता नाम राजेन्द्रः तृतीये यः प्रशंसितः। दिलीपस्य तदा देवी तुष्टा कावेरिसङ्गमे ॥१२॥
गोकर्णे राजसेनस्य अजापालस्य दण्डके। धन्वन्तरः पुरा तुष्टो गण्डक्याः सङ्गमे मुने ॥१३॥

जो पहले मान्धाता नाम के राजा थे तथा जो तृतीय मन्वन्तर में परम प्रशंसनीय इन्द्र हो गये थे, उनके प्रति देवी जहाँ भद्र- वट स्थित था, वहाँ प्रसन्न हो गयी थीं। कावेरीसंगम पर दिलीप राजा के प्रति, गोकर्ण में राजसेन के प्रति, दण्डक में अजापाल के प्रति गण्डकी-संगम पर धन्वन्तरी के प्रति देवी प्रसन्न हो गई थीं।।१२-१३।।

आत्रेयस्य महाशोणे नदे तुष्टा तु अम्बिका। महोदये महादेवो परशुरामेण तोषिता ॥१४॥
कोटिमुण्डेति विख्याता पीठक्षेत्रे शिवोपरि। महाराजेति या देवी मुण्डिपीठगता मुने ॥१५॥
सार्वभौमशिरैस्तस्याः पीठं रामेण कल्पितम्। खण्डमुण्डा तथा देवी अपरा तेन पूजिता ॥१६॥

हे मुने! महाशोणनद के पास आत्रेय के प्रति अम्बिका प्रसन्न हो गयीं थीं। महोदय क्षेत्र में परशुराम ने पीठक्षेत्र में शिवा के उपर कोटिमुण्ड के रूप में विख्याता देवी को प्रसन्न किया था। हे मुने! महारानी नाम से प्रसिद्ध जो देवी मुण्डीपीठ में विराजित हैं, परशुराम ने भूमण्डल में प्रसिद्ध शिवलिंगों के साथ उनकी पीठकल्पना की थी। उन्होंने खण्डमुण्डा नामक अन्य देवी का भी पूजन किया था।।१४-१६।।

गतिं दिव्यांगतौ येन सह नक्षत्रचारिभिः। मलयाद्रौ तथा देवी अघोरा नाम पूजिता ॥१७॥
जामदग्न्येन लङ्काद्रौ कालिकेति तथा पुरा। पूजिता विजया नाम शकद्वीपे महोदया ॥१८॥

जिससे उनको दिव्य गति प्राप्त हो गई। उक्त जामदग्न्य (परशुराम) ने पूर्व में मलयगिरि पर नक्षत्रचारीगणों के साथ अघोरा नामक देवी की तथा लङ्काद्रि में एवं शकद्वीप में महोदया विजया देवी की भी अर्चना की थी।।१७-१८।।

कुशद्वीपे तथा चण्डा सर्वदेवप्रपूजिता। क्रौञ्चेतियोगिनी नाम शाल्मलेऽतिवराङ्गना ॥१९॥
मन्दरे धूतिमाख्याता रामभद्रे जयावहा। पुष्करे कीर्त्यते देवी नाम्ना नारायणीति च ॥२०॥
जलमध्ये गता देव्यः प्लवा हेला प्रकीर्त्तिताः। पर्वतोर्ध्वगता देव्या धारणा धरणा मता ॥२१॥
एताः पौराणिका देव्यो जामदग्न्येन पूजिताः। महाधर्मविनाशार्थं ब्रह्मणामिततेजसा ॥२२॥

पूर्व में कुश द्वीप में चण्डादेवी निखिल देवगण द्वारा पूजित हुई थीं। क्रौंच पर्वत पर योगिनी, शाल्मलिद्वीप में वराङ्गना, मन्दर पर्वत पर धूतिमा, रामभद्र में जयावहा, पुष्कर में नारायणी, जल में प्लवाहेला तथा पर्वत के ऊर्ध्वदेश में धारणादि नाम से स्थित जो सभी पुराणप्रसिद्ध देवियाँ थीं, महत् अधर्म के विनाशार्थ अमित तेजस्वी जामदग्न्य परशुराम ने इन सबका पूजन किया था।।१९-२२।।

महादेवी पुराराध्या वदर्य्याख्ये तु आश्रमे। तपस्तप्यति गोविन्दः पूजितः पद्मजन्मना ॥२३॥
एवं सर्वगता देवी मन्त्रविद्यागमेषु च । संस्थिता मातृतन्त्रे च ज्येष्ठे तन्त्रे च भैरवे ॥२४॥

पूर्व में अमित तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ निरन्तर तपस्या की थी, जहाँ गोविन्ददेव इन ब्रह्मा से पूजित हुये थे। इस बदरिकाश्रम में ब्रह्मा ने महादेवी भी आराधना की थी। वे सर्वव्यापिनी देवी इस प्रकार से मन्त्र, विद्या, आगम, मातृतन्त्र तथा भैरवतन्त्र में सर्वत्र स्थित हैं।।२३-२४।।

पूर्वं शुक्रेण देवेशः पृच्छितो वृषवाहनः। मन्त्राणां किं बलं देव विद्यानाञ्च महेश्वर ॥२५॥

पूर्वकाल में भगवान् वृषवाहन से शुक्र ने पूछा—हे देव! मन्त्र तथा विद्या की शक्ति कैसी होती है?।।२५।।

ईश्वर उवाच

मन्त्राणां परमं वीर्य्यं विद्यानां परमं बलम्। श्रूयतां कथयिष्यामि संक्षेपाद् भृगुनन्दन ॥२६॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं तच्छृणुष्व समाहितः। आसीद् दैत्यो बलो नाम महाबलपराक्रमः॥२७॥

ईश्वर कहते हैं—हे भृगनन्दन! मन्त्र तथा विद्या का परम वीर्य तथा परम बल संक्षेप में सुनो। पूर्व में ब्रह्मा ने इसका वर्णन किया था। तुम समाहित चित्त से श्रवण करो। पूर्वकाल में एक महाबल पराक्रान्त दैत्य था।।२६-२७।।

देवगन्धर्व्वयक्षाणां चन्द्रेन्द्रभयकारकः। येन विष्णुर्यमः सूर्य्योऽग्नि आजौ प्रपीड़ितः ॥२८॥
अनिलानलरक्षाश्च वरुणश्च वशीकृताः। संयम्य येन नागेन्द्रा महाभोगा महाविषाः ॥२९॥
गरुडश्च कृतो भृत्यः सदाज्ञामतिवर्त्तिनः। येन संलिख्य शैलेन्द्र कन्दुकाकृतिकारितः ॥३०॥
क्रीडार्थं येन विप्रेन्द्र गिरयः प्रथिता भुविः। तेन देवाः सब्रह्माद्या दिवि संस्थाश्च चालिताः ॥३१॥

इन्द्रादि देवता, गन्धर्व, यक्ष, चन्द्र आदि उससे भयभीत थे। उक्त दैत्यराज ने संग्राम में भगवान् विष्णु, सूर्य, अग्नि, यम को पराजित करके पीड़ित किया था। उसने अनल (अग्नि), अनिल (वायु), वरुण तथा यक्षों को वश में कर लिया था। उक्त दैत्य ने महाविषधर महाभाग नागराज को बाँधकर अपना आज्ञाकारी बनाया था। गरुड़ भी उसके भृत्य हो गये थे। उस दैत्यराज ने पर्वतराज को क्षोभित करके खेल के गेंद के समान बनाया था। क्रीड़ा के लिये पर्वतों को पृथ्वी पर फैला दिया था। उसने ब्रह्मा से लेकर स्वर्गनिवासी देवगण को भी स्वर्ग से भगा दिया था।।२८-३१।।

दत्तं स्थानन्तु पातालं समयं शरदां शतम्। तथा ते भयमापन्ना मानं त्यक्त्वा गता गुरुम् ॥३२॥
पृच्छन्ति विनयात् सर्वे शक्रस्य हितकारिणः। केनोपायेन देवानां स्वर्गवासो भवेद्द्विज ॥३३॥
त्वमेव शास्त्रवेत्ता नो हितः शक्रस्य नित्यशः। शङ्कोदधिनिमग्नानामतिपोता भव त्वर ॥३४॥
एवं पृष्टः स देवैस्तु गुरुर्वचनमब्रवीत्।

उसने इनको १०० वर्ष के लिये पाताल में स्थान दे दिया। तब इन्द्र के हितैषी देवगण भय से उद्विग्न होकर मान त्यागते हुये बृहस्पति की शरण में गये। उन इन्द्र के हित चाहने वालों ने उनसे विनयपूर्वक पूछा—हे द्विज! किस उपाय से देवता स्वर्ग में (पुनः) स्थान प्राप्त कर सकेंगे, कृपया कहिये। आप ही हममें से शास्त्रज्ञ हैं, आप सतत् सुरराज का हित चाहने वाले हैं। आप दुःखस्वरूप कीचड़युक्त सागर में डूब रहे हमारा उद्धार करने के लिये महान् जहाज के समान हो जाइये।।३२-३४।।

बृहस्पतिरुवाच

यदयं दानवः शक्र न युद्धे भवते वशः ॥३५॥

देवगण की इस प्रार्थना पर बृहस्पति कहने लगे—हे इन्द्र! इस दानव को युद्ध में बल द्वारा वश में नहीं किया जा सकता। इसका वध भी नहीं किया जा सकता; क्योंकि यह अजेय है।।३५।।

दाता सत्त्वबलोपेतः स्वकार्यमखिलेष्वपि। अतस्तस्य प्रहेतव्यो विष्णुर्मायामहोदधि ॥३६॥
द्विजरूपधरो भूत्वा याचनाय वधाय च। गुरुणा चोदिता देवाततस्ते निधनं प्रति ॥३७॥
रणेन क्षयमायाति अजयः सङ्गरे यतः। अतः कपटमास्थाय प्रार्थनीयः क्रतुं प्रति ॥३८॥
गताः सर्वे ततः शान्ता यत्र देवो जनार्दनः। माधवेन ततो देवा दृष्ट्वा भयसमाकुलाः ॥३९॥
क्रमार्घ्यासन आलापैः सर्वे ते संस्तुता भृशम्। पृच्छितास्ततः सर्वेऽपि किमायातावदन् सुराः ॥४०॥

इसलिये कपट का सहारा लेकर यज्ञ के लिये उससे उसका शरीर माँगना ही कर्त्तव्य है। बृहस्पति का यह वाक्य सुनकर समस्त देवता स्वस्थ चित्त से वहाँ गये, जहाँ महासागर में भगवान् विष्णु स्थित थे। तदनन्तर देवदेव माधव ने समस्त देवगण को भयग्रस्त होकर आया देखकर उनका क्रमशः अर्घ्य-आसन तथा मधुर वचनों से आदर करके उनसे पूछा—हे सुरगण! तुम लोग किस उद्देश्य से आये हो?।।३६-४०।।

देवा ऊचुः

बलेन बलिना देव सर्वे वित्रासिता वयम्। मायावी त्वं वधे तस्य नान्योपायो भवेत् क्वचित् ॥४१॥

तब देवगण कहने लगे—हे देव! बलवान बलासुर से हम लोग अत्यन्त त्रसित हो गये हैं। अब मायिक उपाय के विना उसके वध का कोई अन्य उपाय नहीं बचा है।।४१।।

विष्णुरुवाच

करोमि भवतामिष्टं किन्त्वसौ बलसंयुतः। सालिको नयवेत्ता च सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥४२॥
गूढमन्त्रविचारो स्यात् धर्म्मैककृतनिश्चयः। तस्य मायां कथं कर्त्तुं शक्यते सुरसत्तमाः ॥४३॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे सुरसत्तमगण! मैं तुमलोगों का अभीष्ट-साधन अवश्य करूँगा। वह सात्त्विक, अतीव बली, नीतिज्ञ, सभी शास्त्रों का अर्थ जानने वाला, गूढ़मन्त्र-विचारी तथा परम धर्मपरायण भी है। अतः उसके समक्ष माया का प्रसार किस प्रकार से किया जा सकेगा?।।४२-४३।।

परैका भवते विद्या मम दत्ताथ शूलिना। मोहिनी नाम विख्याता मोहं सा कुरुते भृशम् ॥४४॥
अतोऽहं तस्य नाशाय स्मरामि परमेश्वरीम्। स्मरित्वा परमां विद्यां द्विजभावो जनार्दनः ॥४५॥
मध्यकायः सुवेशश्च वेदपाठी सविस्तरी। परिग्रही हुताशस्य ख्यापयन्तो व्रजन् जपेत् ॥४६॥

फिर भी भगवान् शूलपाणि ने जिस मोहिनी नामक एक परम विद्या मुझे प्रदान की थी, वह सभी को मोहित करने में समर्थ है। अतः मैं अब उसके विनाश के लिये इन परमेश्वरी का स्मरण करता हूँ। भगवान् विष्णु ने यह कहकर मोहिनी विद्या का स्मरण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने मध्यकाय देहधारी तथा सुवेशयुक्त वेदपाठपरायण सात्विक विप्र का रूप धारण किया एवं जप समाप्त करके यज्ञहेतु व्यवस्थार्थ कहने लगे।।४४-४६।।

यज्ञार्थं याचनां कस्य करोमि कथ्यतां मम। तं दृष्ट्वा सूर्य्यतेजाभं युक्तो विप्रैर्व्रजेत् सुरः ॥४७॥
बलस्ते यज्ञनिष्पत्तिं करोति द्विजसत्तम। हेमकूटे महाशैले तिष्ठते दानवोत्तमः ॥४८॥
सर्वज्ञोऽपि महामायी वञ्चनाय तदा गतः। मोहिनीं जपमानस्तु विद्यां परमसिद्धिदाम् ॥४९॥
विचित्रं दनुराजस्य पुरं सर्वपुरोत्तमम्। प्राविशद्वेदवादात्मा पठमानो जनार्दनः ॥५०॥
द्वारं गत्वा सुरेन्द्रस्य कुर्य्यात् प्राध्ययनं तदा। द्वारपालो वदत्येवं श्रुत्वा वेदध्वनिं शुभम् ॥५१॥

उन्होंने पूछा कि यज्ञार्थ किससे प्रार्थना करूँ। तब देवगण ने उनको सूर्य के समान तेजवान कार्यसिद्धि के लिये उपयुक्त विप्रमूर्त्ति देखकर कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! बलासुर आपके यज्ञ को सम्पन्न करा सकेगा। इस समय वह दानवराज हेमकूट महापर्वत पर स्थित है। तब भगवान् विष्णु सर्वज्ञ होकर भी परमसिद्धिप्रदा मोहिनी विद्या का जप करते हुये महामाया से आच्छन्न होकर बलासुर के बन्धनार्थ वेदपाठ करते-करते वहाँ गये और दानवराज की सर्वपुरोत्तम विचित्र नगरी में प्रवेश किया। वे उस नगरी के द्वार में प्रवेश करके उच्च स्वर से वेदध्वनि करने लगे। उस कल्याणप्रद वेदध्वनि को सुनकर द्वारपाल आया।।४७-५१।।

पुराणि रत्नानि शुभं ददामि याच्यं यत्तव। इष्टं दानं द्विजश्रेष्ठं दुर्लभञ्च महामते ॥५२॥
तेनोक्तं दर्शनं द्वाःस्थ दीयतां दनुसत्तम। तदा स पूर्वमादिष्टः प्रेषयामास तं नृपम् ॥५३॥
बलिनं बलसम्पन्नं दानवं सुरमर्दकम्। दानोद्यत्करं भद्रं दृष्ट्वा प्रीत्यावभाषत ॥५४॥
किमायातो भवांश्चात्र कार्य्यं विप्र तदुद्दिश। मोहिनीं जपमानस्तु वदते द्विज केशवः ॥५५॥

द्वारपाल कहने लगा—हे द्विजश्रेष्ठ! आप नगर, रत्न तथा अन्य जिस किसी भी उत्तम वस्तु को माँगे, वह दान किया जायेगा। हे महामते! आपकी इच्छित वस्तु दुर्लभ होने पर भी आपको प्रदान की जायेगी। तब भगवान् ने कहा—हे दनुजश्रेष्ठ द्वाररक्षक! मुझे राजदर्शन प्रदान करो। तब वह द्वारपाल वलासुर के पास गया। उनसे आज्ञा लेकर उसने ब्राह्मण को दान देने के लिये उद्यत महाबली पराक्रमी सुरशत्रु दानवराज के पास भेजा। तदनन्तर बलासुर ने उनका निरीक्षण करके प्रीति से प्रफुल्ल हृदय से कहा—हे विप्र! आप किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं, उसे व्यक्त करिये। तब द्विजरूपी भगवान् ने मोहिनी मन्त्र जपते हुये कहना प्रारम्भ किया।।५२-५५।।

द्विज उवाच

अहं संप्रेषितो देवैर्विद्धि मां काश्यपात्मजम्। यज्ञाः सैन्द्रैः समारब्धा ऋषिभिश्चासुराधिप ॥५६॥
तस्य निष्पादनार्थाय आगतोऽहं तवान्तिकम्। दानं मे दीयतां राजन् सिद्ध्यते येन तन्मखम् ॥५७॥

द्विज कहते हैं—हे असुरराज! मैं कश्यप ऋषि का पुत्र हूँ। मुझे देवगण ने भेजा है। इन्द्रादि देवों के साथ ऋषिगण ने यज्ञ प्रारम्भ किया है। मैं उसी यज्ञ के लिये यहाँ आया हूँ। हे राजन्! इसलिये जिससे वह यज्ञ सम्पन्न हो जाय, ऐसी वस्तु प्रदान करिये।।५६-५७।।

बल उवाच

येन संसिध्यते यज्ञो देवानां भो द्विजोत्तम। तद् वाचय धर्म दारान् शिवमद्य ददामि ते ॥५८॥

बलासुर कहता है—हे द्विजोत्तम! जिस प्रकार से देवताओं का यज्ञ सम्पन्न हो सके, वह कहिये। अब आपकी प्रार्थनीया धन-सम्पत्ति जो कुछ आप चाहे, यहाँ तक कि आप यदि मेरा शिर भी माँगें, वह भी प्रदान करूँगा।।५८।।

ब्राह्मण उवाच

येन संसिध्यते यज्ञो देवानामसुराधिप। तद्देयं तच्च आदिष्टं सत्यमत्रावयोरपि ॥५९॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे असुरराज! जिससे देवगण का यज्ञ सम्पन्न हो सके, वह तुम दान करोगे। इस विषय में मैं बताता हूँ। इस विषय में हम दोनों सत्य पर स्थित रहें।।५९।।

वल उवाच

याच्यतां येन ते कार्यं सत्यं विप्र ददामि ते। संस्मृत्य मोहिनीं विद्यां वदते द्विजसत्तम ॥६०॥

दानवराज बल कहता है—हे विप्र! आपका जो प्रयोजन इस सम्बन्ध में हो, कहिये। मैं सत्य कहता हूँ, वही प्रदान करूँगा। तब भगवान् (ब्राह्मणरूपधारी) मोहिनी मन्त्र जपते-जपते कहने लगे।।६०।।

ब्राह्मण उवाच

न मे धनैर्न दारैर्वा न भूम्या गजवाजिभिः। रत्नैः कार्यं महाबाहो देवयज्ञेऽसुराधिप ॥६१॥
येन निष्पाद्यते यज्ञः सुखदश्च दिवौकसाम्। तमहं याचयामि त्वां दीयतां तद्धुतं मम ॥६२॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे महाबाहो! असुरराज! उक्त यज्ञ को सम्पादित करने के लिये मुझे धन, स्त्री, भूमि, रत्न अथवा हाथी-घोड़े कुछ भी नहीं चाहिये। जिससे देवगण का यह यज्ञ सम्पन्न तथा सुखदायक हो सके, उसके लिये तुमसे माँगता हूँ। तुम शीघ्र उस वस्तु को प्रदान करो।।६१-६२।।

एतत् कार्यं भद्र मम ऋषीणाञ्च विशेषतः। देवार्थं तव कायेन सिध्यते तन्मखोत्तमम् ॥६३॥

हे भद्र! देवगण की प्रीति-हेतु यह कार्य मेरे लिये तथा ऋषिगण के लिये प्रयोजनीय है। इसमें और कुछ का प्रयोजन नहीं है। यह यज्ञ तुम्हारे शरीर से ही सम्पन्न होगा।।६३।।

तदा दत्ता तनुस्तेन दानवेन महात्मना। विष्णुनापि स चक्रेण शिरस्यभिहतोऽसुरः ॥६४॥
प्राकृतं देहमुत्सृज्य दिव्यकायस्त्वभूत्तदा। तस्यावयवसञ्जाता वज्रादयो रत्नजातयः ॥६५॥
लोचनेषु च तेजांसि पद्मरागिणि याभवन्। विशुद्धपात्रदानेन कायोरन्तःकरोऽभवत् ॥६६॥

तदनन्तर उस महात्मा दानव ने अपने शरीर को समर्पित कर दिया, तब भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र से असुरराज का शिर काट दिया। वह दानव मृत्यु के पश्चात् पञ्चभूतात्मक देह को त्याग कर दिव्य देहधारी हो गया। उसके अंग-प्रत्यंग से हीरा तथा तेजयुक्त नेत्रों से पद्मराग आदि रत्न उत्पन्न हो गये तथा सत्पात्र को प्रदानार्थ उसका शरीर ही रत्नाकररूप हो गया।।६४-६६।।

एवं संघातितः शुक्र विद्यामन्त्रबलेन च। विद्या मोहयित्वा तु न चास्त्रेण न सङ्गरे ॥६७॥
तस्माद् विद्या बलं सर्वं दुःसहं सिद्धिदायकम्। स्मारितं भक्तिना विप्रमनेप्सितफलप्रदम् ॥६८॥

हे शुक्र! भगवान् ने विद्यायुक्त मन्त्रबल से उस बलासुर को मोहित करके उसका वध किया था। वह युद्ध में अस्त्राघात से नहीं मर सकता था। अतएव हे विप्र! विद्यामन्त्रबल अतीव दुःसह होता है। भक्तिपूर्वक उसका स्मरण करने से वह साधक को समस्त अभीष्ट प्रदान कर देता है।।६७-६८।।

अथ दैत्ये गते स्वर्गं सुतस्तस्य महाबलः। सुबलः सागरोपान्तादुत्तरादंसमुत्सुकः ॥६९॥
संक्रुद्धो देवराजस्य वधाय वधकांक्षया। दिव्यं रथवरं रुह्य मनोगामि सदश्वगम् ॥७०॥
पादरक्षसमोपेतं बहुशस्त्रसमाकुलम्। कामगं सर्वशत्रूणां प्रधर्षं च महाबलम् ॥७१॥
सारथिं बहुशास्त्रज्ञं युद्धशास्त्रविशारदः। जयेति दुर्जयो देवैः सारथिः सौबलोऽभवत् ॥७२॥
पादरक्षो महाबलः सुमायो मन्त्रिसत्तमः। रुक्मी दैत्याधिपो नेता दण्डाध्यक्षो महाबलः ॥७३॥

इस प्रकार से दैत्य बलासुर के परलोकगत होने पर उसके महाबली पराक्रमी पुत्र सुबलासुर ने यह वृत्तान्त सुना और वह अत्यन्त क्रोधित हो गया तथा इन्द्रवधार्थ युद्ध करने भी इच्छा से उत्तर सागरतट से मन के समान वेगवान, उत्तमों में उत्तम घोड़ों से खींचे जाने वाले, पादरक्षकयुक्त तथा नाना प्रकार के अस्त्रों से सज्जित, कामगामी, समस्त शत्रुओं के लिये अविजित, अतिशय सारवान दिव्य रथ पर सवार होकर बाहर निकला। उसका सारथी भी बहुशास्त्रज्ञ तथा अनेक शस्त्रों का

ज्ञाता, देवताओं के लिये भी दुर्जेय जय नामक असुर था। उसने रथ का सारथी पद ग्रहण किया। महाबाहु मन्त्रणाज्ञाता सुमाय नामक असुर उसका पादरक्षक नियुक्त किया गया तथा बलवान पराक्रमी रुक्म नामक दैत्याधिप उस सेना का सेनापति बना।।६९-७३।।

येन विष्णुः सुरेन्द्रश्च बहुधा सङ्गरे जितः। न जितः स सुरैः सेन्द्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमैः ॥७४॥

उस रुक्मासुर ने युद्ध में कई बार विष्णु तथा इन्द्र को पराजित किया था, तथापि ब्रह्मा-विष्णुप्रभृति समस्त देवगण के साथ देवराज इन्द्र उसे एक बार भी पराजित नहीं कर सके थे।।७४।।

अथ तदनु राजेन्द्रे पितृवैरानलोद्भवे। जज्वाल वह्निवद् देवान् होतृवज्ज्वलितानन: ॥७५॥
यं यं पश्यति दैत्येन्द्रश्चन्द्रेन्द्रं पावकं वसुम्। तं तमभिद्रवत् क्रुद्धः पशुं रुद्र इवाज्ञया ॥७६॥

तदनन्तर देवगण को देखकर उस दानवराज के मन में पितृवैररूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। वह प्रज्ज्वलित होकर प्रदीप्त हुताशन में आहुति देने वाले होता के समान प्रतीत होने लगा। जैसे क्रोधी स्वभाव वाला सेवक अपने स्वामी से आज्ञा पाकर पशुओं के पीछे दौड़ने लगता है, तदनुरूप वह दैत्यश्रेष्ठ भी इन्द्र-चन्द्र-अग्नि-वसु आदि जिस देवता को भी देखता, क्रोध में भरकर वेग से उसकी ओर दौड़ पड़ता।।७५-७६।।

एवं ते दानवैर्देवा बहुधामर्षकाङ्क्षिभिः। दृष्ट्वा च पीडिता सर्वे इन्द्रस्य शरणं गताः ॥७७॥

इस प्रकार से उस क्रोधयुक्त दानवगण द्वारा समस्त देवगण उसे देखने-मात्र से पीड़ित होकर इन्द्र की शरण में गये।।७७।।

यावत् समाजं कृत्वा ते ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः। समागतास्तदा सैन्या सौबला बलगर्व्विताः ॥७८॥
दण्डोद्यतकराः केचिद्दैत्या निस्त्रिंशधारिणः। शरचापकराश्चान्ये चक्रशङ्कुकधारिणः ॥७९॥
शतघ्नी शतचक्री च सहस्रघ्नी धरा परे। वृक्षाद्रिपट्टिशवेत्रशूलिनः क्रकची परा ॥८०॥

तदनन्तर समस्त देवता ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र आदि जहाँ एकमात्र स्थित थे, बल से गर्वित सुबल दैत्य की सेना वहाँ पहुँची। उस सेना के दैत्यों में से किसी के हाथ में दण्ड, किसी के हाथ में धनुष-बाण, किसी के पास चक्र, किसी के पास शंकु, किसी के पास शतघ्नी थी। इसी प्रकार वे क्रमशः (एक-एक करके) शतचक्र, सहस्रघ्नी, प्रकाण्ड वृक्ष, बृहत् पर्वत लिये हुये थे। कोई पट्टिशधारी था, किसी ने वज्र धारण किया था। किसी ने शूल तो किसी ने क्रकच धारण किया था।।७८-८०।।

धारयन्तो महाबाहू गजसिंहोष्ट्रगामिनः। दनुजास्ते सुरान् सर्वान् अयोध्यन्त तदाहवे ॥८१॥
अथ भग्नांस्तदा दृष्ट्वा देवान् दैवपतिर्महान्। उदयाद्रिसमं रुद्रं गजराजबुभूषितम् ॥८२॥
सिन्दूरारुणरागाद्यं घण्टाचामरमण्डितम्। चतुर्दन्तं सुरूपाढ्यं महावेगं महाबलम् ॥८३॥
गजो दनुजसैन्यस्य कालसर्प इवाभवत्। अथ तत्र स्थितश्चेन्द्रं दृष्ट्वा ज्वालो महाबलः ॥८४॥
छागराजं समारूह्य दीप्ता शक्तिं व्यधारयत्। तं दृष्ट्वा महिषं धर्म्मो दण्डपाणिर्महाबलः ॥८५॥

वे सभी महाबाहु थे। कोई हाथी पर, कोई ऊँट पर, कोई सिंह पर सवार था। उस समय ये सभी दानवगण देवताओं के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो गये। तदनन्तर सुरराज ने देवताओं को युद्ध से विमुख होते देखकर सिन्दूर से रंगे, आभूषणों से सजे, घण्टा-चामर युक्त, चार दाँतों वाले, सुन्दर शरीर, महावेगवान, महाबली, प्रचण्ड स्वभाव तथा उदय गिरि के समान ऊँचे गजराज ऐरावत पर आरोहण किया। तब वह गजराज दैत्यसेना को कालसर्पवत् प्रतीत होने लगा। इन्द्र को गजारूढ़ देखकर महाशक्तिमान अग्निदेव ने छागराज पर आरोहण किया तथा ज्वलन्त शक्ति को हाथों में उठाया। यह देखकर महाबली दण्डधारी धर्मराज यम ने महिष पर आरोहण किया।।८१-८५।।

आरूढश्चित्रगुप्तश्च कालकेतुसमन्वितः। कृतान्तो निष्ठुरमिव वज्रदण्डो महाबलः ॥८६॥
एवन्तु निऋतिं निर्मेषे पुरूषे च तदानुजः। खड्गपाणिः सुरक्ताक्षः क्रुद्धकृष्णाञ्जनप्रभः ॥८७॥

उनके साथ कृतान्त के समान कठोर वज्रदण्डधारी महाबली पराक्रमी चित्रगुप्त भी कालकेतु के साथ महिषारूढ़ हो गये। इसी प्रकार खड्गधारी, लोहित नेत्र उत्कृष्ट काले अञ्जन के समान देह प्रभा वाले क्रुद्ध निर्ऋति भी मेष पर तथा उनके अनुज एक पुरुष सवार होकर आये।।८६-८७।।

बहुसैन्यान् समादाय इन्द्रसैन्यं समागतः। वरुणो वारुणैर्योधैर्झषगः पाशधारकः ॥८८॥
कृष्णसारं समादाय अङ्कुशेन समीरणः। विमाने कामगे यक्षो गदाधारी महाबलः ॥८९॥
कुवेरो यक्षकोटिभिर्वृतस्तत्र समागतः। रुद्राश्चैशानपूर्वाश्च वृषगाः शूलपाणिनः ॥९०॥

पाशधारी वरुणदेव भी मत्स्य पर बैठकर अपनी सेना के साथ वहाँ उपस्थित आये तथा वासुदेव ने भी हाथ में अंकुश कृष्णसार मृगधारी थे, महावली गदाधारी यक्षराज कुबेर अपनी इच्छानुरूप चलने वाले विमान पर बैठकर करोड़ों-करोड़ों यक्षगण से परिवृत होकर (युद्धार्थ) वहाँ आ गये। वहाँ ईशानप्रभृति एकादश रुद्र वृषारूढ होकर तथा त्रिशूल लिये हुये आये।।८८-९०।।

आदित्या रथगाः सर्वे विश्वेदेवाः सुवाहनाः। आश्विनौ चाश्वगौ भद्र नागा यक्षा ग्रहेश्वराः ॥९१॥
नक्षत्रा बहुरूपाश्च सिद्धविद्याधरादयः। ब्रह्मा विष्णुस्तदा तस्थौ सैन्यगोप्तौ सुरोत्तमौ ॥९२॥

वहाँ द्वादश आदित्यगण अपने रथ पर तथा महावली पराक्रमी विश्वेदेव भी रथारूढ़ होकर आये। अश्विनीकुमारद्वय अश्व पर तथा नाग, ग्रहेश्वर, अनेक नक्षत्र, सिद्धविद्याधरादि भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर वहाँ पहुँचे। उस समय वहाँ सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु भी देवसेना के रक्षक होकर स्थित हो गये।।९१-९२।।

महार्णव इव तस्थुर्मर्य्यादां न मुमोच सः। सेना भूस्वर्गपाताल-आपूरितदिगानना ॥९३॥
कोट्यार्बुदायुतसंख्या पद्मपद्म प्रमाणिता। असंख्याता महाबाहो सेना तत्र सुरोत्तमम् ॥९४॥

हे सुरोत्तम! हे महाबाहो! यह असंख्य सैन्यसमूह कोटि-कोटि, अयुत, अर्बुद-अर्बुद, पद्म-पद्मसंख्यक दलबद्ध होकर दिग् दिगन्त को व्याप्त करके स्वर्ग से पाताल-पर्यन्त फैल गया।।९३-९४।।

दृष्ट्वा तु सुबलो वामे शरैरवर्षत मेघवत्। समन्ताच्छादयित्वा तु प्रावृण्मेघ इवाम्बुभिः ॥९५॥
ननाद धनुरावेण वाद्ययानस्वनेन च। अथ नादं तदा श्रुत्वा चासुरं भयकारकम् ॥९६॥

तत्पश्चात् दानवराज सुवल ने सुरराज को देखकर धनुष की टंकार की ध्वनि तथा रथ के पहिये के निर्घोष (गड़गड़ाहट) में सुर मिलाकर घोर सिंहनाद किया और जैसे मेघ चारो ओर को अपनी घटाओं से घेर कर जलधारा का वर्षण करता है, तदनुरूप सुबल तीरवर्षण करके मानों तीरों का जाल चतुर्दिक बिछाने लगा। सुबल दैत्य का सिंहनाद अतीव भयकारक था।।९५-९६।।

शक्तिं दीप्तां समुद्गम्य दानवान् मर्दयन् शिखी। रुक्मी नाम महादैत्यो नेताऽसौ सौबले बले ॥९७॥
ज्वलनस्य रथञ्चोद्य दीप्तशूलो महाबलः। नानायुधमहासंघज्वलितार्कमितानलः ॥९८॥
शूलं हुताशने प्रेष्य सुरसैन्यभयप्रदान्। तैः शूलैः पावकीं सेनां बहुधा भयत्रासिताम् ॥९९॥
दृष्ट्वा शक्तिं सुदीप्तान्तु सञ्चिक्षेपाऽसुरोत्तमः। तां सुतेजां महावेगां सूर्य्यायुतसमप्रभाम् ॥१००॥
विविध्य निशितैर्बाणैः ददाह च तृणाग्निवत्। शरैः सातोद्यमानापि न न्यवर्त्तयत यदासुरैः ॥१०१॥

तदा शिलाविनाशाय शक्तिं चिक्षेप दानवः । अथ शिलाहतां शक्तिं दृष्ट्वा देवोऽसुरोत्तमः ॥१०२॥
शिलां मुद्गरघातेन हत्वा दैत्यं न्यपातयत् । शक्ति कोट्याहतं दैत्यं विगतासुं रथोपरि ॥१०३॥
रुक्मीं दृष्ट्वा हतं शङ्खो मन्युना अभ्यधावत ।

तदनन्तर अग्निदेव ने सुबलासुरकृत वह भयानक सिंहनाद सुनकर प्रदीप्त शक्ति छोड़ी और उससे दानवों का मर्दन करने लगे। यह देखकर नाना आयुधसमूह से देदीप्यमान, महाबली पराक्रमी सुबल के सेनापति रुक्मी नामक महा दैत्य ने अग्निदेव के रथ को लक्ष्य बनाकर देवसेना के लिये भयप्रद एक शूल फेंका। वह शूल देखकर अग्निदेव की सेना भय से त्रस्त हो गयी। तदनन्तर अग्निदेव ने अपनी सेना को इस शूलभय से अतिशय भयभीत होता देखकर उस दानवराज के ऊपर एक प्रदीप्त शक्ति को फेंका। वह शक्ति अयुत सूर्य के समान प्रभायुक्त तथा महावेगयुत थी। रुक्म ने उस शक्ति को देखा। उससे निकल रहे बाण उसी प्रकार से सैन्य को दग्ध कर रहे थे, जैसे तृणों को अग्नि दग्ध कर देती है। जब रुक्म दैत्य ने देखा कि बाणों से देवताओं को नहीं रोका जा सकता, तब उसने देवसमूह के संहारार्थ एक शिलामयी शक्ति को फेंका (इस शक्ति ने अग्निदेव द्वारा छोड़ी शक्ति को भग्न कर दिया)। तदनन्तर देवश्रेष्ठ अग्निदेव ने अपनी शक्ति को जब भग्न होते देखा, तब उन्होंने मूसल के आघात से दानव शक्ति को चूर्ण करके दैत्यराज रुक्म का वध कर दिया और वह रथ पर गिर गया।।९७-१०३।।

शङ्ख उवाच

हुताशन महाबाहो यागादौ भव चाहुतिः ॥१०५॥

अन्यथा रुक्मि मोहेन संग्रामे तव का स्थितिः । या शक्तिः शूलिना दत्ता दहतः सौबलं बलम् ॥१०६॥
सा ते हृदये सुबलाद् गुह्यं पास्यति प्राण आसवम् । पण्यस्त्रीव यथा लोभात् कामुकानां वरायते ॥१०७॥
एवं ते शोणिते शक्तिर्हृदि संस्कारमिष्यते । अथ जल्पं तदा काले शङ्खवाक्यानिलेरितः ॥१०८॥
दुन्दुभिः दानवेन्द्राणां सैन्यमध्यात् समुत्थितः । किं वाक्यैः शिशुभिस्तुल्यैः प्रमदा इव भाषते ॥१०९॥

तदनन्तर शंखासुर ने रुक्मी को शक्तिप्रहार द्वारा रथ के ऊपर निर्जीव पड़ा देखा, तव वह साक्षात् मूर्त्तिमान क्रोध के समान अग्निदेव की ओर दौड़ पड़ा। उसने कहा—हे महाबाहु हुताशन! यज्ञादि में तुमने यथार्थतः आहुति पायी है, अन्यथा रुक्मी के मूर्च्छित हो जाने पर तुम्हारी युद्ध में क्या स्थिति होती? महेश्वर ने जो शक्ति मुझे प्रदान किया था, आज उसी शक्ति से सुबलासुर की सेना का नाश करने वाले तुम्हारे जीवनरूप आसव को बलपूर्वक छीनकर पान करूँगा। हे दुर्बुद्धे! जैसे वराङ्गना अर्थलालसा से कामुक पुरुषों के पास जाती है अर्थात् उनके हृदयक्षेत्र में वास करती है, उसी प्रकार यह शक्ति तुम्हारे हृदय में निवास करेगी (अर्थात् तुम्हारे हृदय को भग्न कर देगी)। जब शङ्ख दैत्य यह सब वाक्य कह रहा था, तभी दुन्दुभि नामक शंखासुर की वाक्यरूप वायु से चालित होकर दानवेन्द्रगण की सैन्य के मध्य आया और उठकर कहने लगा—हे शंख! बच्चों के समान क्यों बोल रहे हो? तुम तो औरतों की तरह बोल रहे हो।।१०४-१०९।।

वैरनिर्य्यातना शङ्ख वरं रुक्मि भवान् भवेत् । भवे हतेऽथ गोविन्दे शक्रे वा सगुहे हते ॥११०॥
अन्यथा विफलं जन्म उन्मत्तशिशुचेष्टितम् । आमंत्र्य दुन्दुभिः शङ्खं गजञ्च समरुह्य सः ॥१११॥

रमणियाँ ही वाक्यों से वैर प्रकाशित करती हैं; अतएव वाक्यव्यय का प्रयोजन नहीं है। या तो वैरी का वध करो अथवा रुक्मी की तरह (मृत) दशा प्राप्त करो। यदि महेश्वर, विष्णु, किंवा कार्तिकेय के साथ सुरराज का वध हम करें तब तो हमारा जन्म सफल है, अन्यथा उन्मत्त अथवा शिशु की चेष्टा जैसा हमारा जन्म भी विफल ही है। दानवराज दुन्दुभि ने शंख से यह कहा और अपने हाथी पर बैठ गया।।११०-१११।।

इन्द्रायाभिमुखोऽधावज्ज्वलितं गृह्य चायुधम्। शूलं शूलिसमाकारं सर्वायुधनिवारणम् ॥११२॥
मुमोच स तु इन्द्राय इन्द्रोऽपि ज्वलिताशनिम्। शूलाय धारणं क्षेप्य सर्व्वायुधभयङ्करम् ॥११३॥
तं वज्रज्वलितमिन्द्रं शूलं भिन्नं द्विधाकृतम्। भूमौ पपात विफलं भ्रमराणां चेष्टितं कृतम् ॥११४॥

वह प्रदीप्त आयुधों को लेकर इन्द्र की ओर दौड़ा तथा शंकर के त्रिशूल के समान सर्वशस्त्र-निवारक एक त्रिशूल इन्द्र की ओर फेंका; लेकिन देवराज इन्द्र ने भी इस त्रिशूल के निवारणार्थ सर्व आयुधों में श्रेष्ठ प्रदीप्त वज्रास्त्र को छोड़ा। यह प्रज्वलित वज्रास्त्ररूप अशनि भी दुन्दुभी दैत्य के शूलाघात से दो टुकड़े होकर पृथिवी कर जा गिरी और इन्द्र का श्रम व्यर्थ हो गया।।११२-११४।।

वज्रे हते तथा चैव बृहस्पतिं महामतिम्। गोपेन्द्रं शरणं जग्मुर्गृहीत्वा सुरराट् तदा ॥११५॥
बलो हतस्त्वया च स्यात् सुबलस्ते चतुर्गुणः। स शङ्खो दुन्दुभिर्नाथ केनोपायेन शाम्यताम् ॥११६॥

तब देवराज इन्द्र ने वज्र को विफल होता देखकर महामति बृहस्पति को आगे किया तथा वे नारायण के शरणापन्न हो गये और कहा—हे नाथ! आपने बलासुर का वध तो अवश्य किया, लेकिन उसकी तुलना में उससे चतुर्गुण बली सुबल, शंख तथा दुन्दुभि जिस उपाय से शासित हों, वह कीजिये।।११५-११६।।

पश्य वज्रं न वज्राय दण्डं दण्डाय न प्रभो। विह्वलं देवसैन्यं तु सायुधं गजवाहनम् ॥११७॥
तस्योपायै कथं संख्ये वधायाथ शमाय च। कथयस्व सुरश्रेष्ठ शरणागतवत्सलः ॥११८॥

हे प्रभो! समस्त सुरसेना, मातङ्ग आदि वाहन तथा निखिल शस्त्रों के साथ विह्वल-जैसे हो गये हैं। वज्र अब अपना कार्य कर सकने में सक्षम नहीं है तथा यमदण्ड भी आज दण्डविधान में समर्थ नहीं है। हे सुरश्रेष्ठ! आप शरणागतवत्सल हैं। अब इस संग्राम क्षेत्र में इन दैत्यगण के विनाश तथा उन पर अधिकार का उपाय कहिये।।११७-११८।।

देवाः सवासवाः सर्वे रक्षणीया महाहवे। सुबलं बलसम्पन्नं नयोपायसमन्वितम् ॥११९॥
दुःसहं सुरसंधस्य वासवस्य विशेषतः। एवमुक्त्वा तथा मन्त्री विरराम पितामहः ॥१२०॥
उवाच सौष्ठवां वाणीं माधवो रिपुनाशनः।

इस भीषण समर में वाहनों के साथ समस्त देवगण की रक्षा होनी चाहिये। महाबली, नीति, उपाय जानने वाले दानवपति सुबल को समस्त देवता विशेषतः इन्द्र सर्वथा दुःसहनीय मानते हैं। सुरमन्त्री बृहस्पति यह कहकर चुप हो गये। यह सुनकर रिपुदलनकारी भगवान् विष्णु (माधव) मधुर वाक्य कहने लगे।।११९-१२०।।

विष्णुरुवाच

या सा आद्या परा शक्तिः शङ्करी मन्त्रसम्भवा ॥१२१॥
पदवर्णविभागेन सा ते क्षेमाय वासव। भविष्यति न सन्देहो महातत्त्वा महास्वरा ॥१२२॥
शकरं तोषयित्वा तु सा मया पदमालिनी। विद्याष्टकसमायुक्ता क्षेमा क्षेमाय मानघा ॥१२३॥

विष्णु कहते हैं—हे इन्द्र! पद-वर्णविभागानुसार मन्त्रसम्भवा आद्या परा शक्ति शंकरी हैं। वे ही महातत्त्वा, महास्वरा हैं। हे निष्पाप! यदि अब तुम मेरे साथ शंकर को प्रसन्न करके उन महाकारणरूपा सर्वकल्याणमयी महाप्रकृति का आश्रय ग्रहण कर सको तब वे अष्टविद्याओं के साथ तुमको शुभ फल प्रदान करेंगी।।१२१-१२३।।

दानवो बलसंयुक्तो विद्या मन्त्रबलेन च। यदि याति वशं कर्त्तुमन्यथा अजयो भवेत् ॥१२४॥
तदा विष्णुः सुरेन्द्रश्च बृहस्पतिमरुद्गणैः। गत्वा शम्भुं समाराध्य असुराणां वधैषिणः ॥१२५॥
जय त्वं जयतां श्रेष्ठ पञ्चमन्त्रतनूमय। गुणहीनगुणत्वाच्च जगतः पालने स्थितः ॥१२६॥

उक्त महाबली दानव को विद्या-मन्त्रबल से ही वशीभूत करना सम्भव है; अन्यथा अन्य उपाय से उसको पराजित नहीं किया जा सकता। वह अजेय ही रह जायेगा। तदनन्तर भगवान विष्णु ने दनुजदल के संहार की भावना से इन्द्र तथा बृहस्पति आदि के साथ भगवान् शंकर के पास जाकर उनकी यथाविधि अर्चना करके स्तुति करने लगे—हे अखिल जयशीलगण में श्रेष्ठ! आपकी जय हो। हे पञ्चमन्त्रस्वरूप! आप गुणातीत होकर भी जगत्-पालन में लगे हैं।।१२४-१२६।।

उत्पत्तिस्थापने नाशे रजः सत्वं तमोमयः। अरूपं बहुरूपं त्वं वचसामप्यगोचरः ॥१२७॥
सर्वगः सर्वरूपेषु सर्वभावव्यवस्थितः। त्राहि मां दानवानीकमहार्णवगतं हरिम् ॥१२८॥

आप अरूप होकर भी अनेक रूपों में विराजमान हैं। अतएव आपकी महिमा वाणी से परे है। आप जगत् की सृष्टि के समय रजोगुणमय, पालन के समय सत्त्वगुणमय तथा संहार के समय तमोगुणमय हो जाते हैं। आपकी गति सर्वत्र है। आप सर्वभूतों में समभावेन स्थित हैं। अतएव हे भगवन्! हम दानव-सैन्यरूप महार्णव में निमग्न हो रहे हैं। हमारी रक्षा कीजिये।।१२७-१२८।।

ससुरं गणमादित्यं वसुं चास्मिन् विलोकयन्। शान्तिं विधाय जगतः क्षेमं कुरु त्रिशूलिनः ॥१२९॥

हे त्रिशूलधारिन्! आप वसु-आदित्य तथा गणदेवताप्रभृति निखिल सुरगण के प्रति एक बार कृपादृष्टि करके जगत् की शान्ति का विधान करके मंगल करिये।।१२९।।

एवं गद्गदया वाचा विज्ञाप्य मधुसूदनः। तुतोष च तदा चासौ सोमः सोमार्द्धशेखरः ॥१३०॥
वरं वरय गोविन्द यत्ते हृदि व्यवस्थितम्। यथा च माधवो हृष्टः सुबलं दुन्दुभिं वध ॥१३१॥
एवन्तु याचिते रुद्रे प्रतिज्ञाते वरे हरे। चिन्तिता परमा शक्ति विद्याष्टकसमन्विता ॥१३२॥

भगवान् मधुसूदन के द्वारा गद्गद वाक्य से इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् शशांकशेखर महेश्वर ने परम परितुष्ट होकर कहा—हे गोविन्द! अभीष्ट वर माँगो। तब माधव ने आनन्दित होकर यह वर माँगा—सुबल तथा दुन्दुभि का संहार कीजिये। ऐसा वर माँगने पर भगवान् रुद्र ने कहा—यही हो और प्रार्थना को अंगीकार करते हुये अष्टविद्या-समन्विता परमा शक्ति का स्मरण किया।।१३०-१३२।।

तदा गता शिवा चाग्रे मूर्त्तिर्भूता ब्रवीति सा। यत् कार्यं देवदेवेश तदादिशय मे प्रभो ॥१३३॥

तब यही सर्वमंगलमयी शक्ति मूर्त्तिमती होकर सामने प्रकट होकर बोलीं—हे देवदेवेश! हे प्रभो! मुझे क्या करना है, आज्ञा दीजिये।।१३३।।

तदा देवेन तुष्टेन उक्ता सा सुबलं बध। तावत् सञ्चिन्तितं देव्या पूर्वं शापहतो मया ॥१३४॥
विरूपेण च हन्तव्यो नायुधेनासुराधमः। एवं सा यौवनं रूपं त्यक्त्वा वृद्धाभवत्तदा ॥१३५॥

तब महेश्वर देव ने उनको सुबलासुर के संहार का आदेश दिया। उन देव ने मन ही मन सोचा—मैंने उसको तो पहले ही शाप दिया था, तब यह नष्ट हो गया था (प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म में नाश किया था)। जो भी हो, यह असुर शस्त्राघात से विनष्ट नहीं होगा; अतः विपरीत रूप धारण करके उसका संहार करना होगा। यह सोचकर देवी ने अपना यौवन स्वरूप त्यागकर वृद्धारूप धारण कर लिया।।१३४-१३५।।

शिराजालेन सन्नद्धा निर्म्मांसा कोटरेक्षणा। प्रविवेशैव देव्योष्ठविकाशे नागबन्धना ॥१३६॥
अर्द्धालंकृतकर्णौ च वामोरूकरसंस्थिता। पीठसंस्थेन याम्येन विषादे परमे स्थिता ॥१३७॥
विवृतास्या सकम्पन्ती शतायुतसमा यमा। विद्याभिरष्टभिर्माया गुप्ता गुप्ताभिसंस्थिता ॥१३८॥

उस समय उनका शरीर नसों से व्याप्त तथा मांसरहित-सा हो गया। दोनों नेत्र मानो गढ़े में धँस गये, दोनों ओठ विवर्ण थे, मस्तक पर नागबन्धन, कर्णयुगल अर्द्धालंकृत, बाँयें उरु पर वाम कर तथा पृष्ठदेश पर दाहिना कर रखा (जैसे अतिवृद्ध लोग पीठ की ओर कमर को दाहिने हाथ का सहारा देते हैं तथा बाँयें हाथ से बाँयाँ जंघा सहारा हेतु पकड़ कर चलते हैं), मुख खुला तथा सभी अंग वृद्धावस्था से काँप रहे थे। देखने से लगता था कि ये परम विषण्णा सौ वर्ष की वृद्धा हैं। वे वहाँ गयीं, जहाँ अष्टविद्या माया गुप्त रूप से अवस्थित थी।।१३६-१३८।।

पथि पर्वतराजस्य द्रोणस्य सुमहात्मना। क्रौञ्चद्वीपे महाद्वीपे मध्ये सा मध्यसंस्थिता ॥१३९॥
विद्याष्टकं ततस्तस्या दिशैश्च विदिशैः स्थितम्। वृषसिंहगजबर्हिहंससर्पविषा परा ॥१४०॥
सबले ऋक्षराजे च सन्निविष्टा महाबला। कृष्णसारे गतिसारे वसुराजे स्थिता परा ॥१४१॥

ये देवी माया इस प्रकार से क्रौञ्च नामक महाद्वीप पर गयीं, जहाँ सुविशाल द्रोण नामक पर्वत पर गुप्त भावेन अष्टविद्या स्थित थीं और उनके साथ अवस्थित हो गयीं। इन सभी महाबली अष्टविद्याओं में से कोई वृष पर, कोई सिंह पर, कोई मयूर पर, कोई गरुड़ पर, कोई भालू पर, कोई द्रुतगामी कृष्णसार पर बैठकर देवी के आठो ओर (आठों दिशाओं में) स्थित हो गयीं।।१३९-१४१।।

ता विद्याः शतधा भूत्वा कुल वामसदक्षिणाः। परित्राणाय देवानां मर्त्यलोके नृपादिषु ॥१४२॥
अन्तःस्त्रिषु विशेषेण पुलिन्दशवरादिषु। लोकान्तरेण मार्गेण वामाचारेण सिद्धिदा॥१४३॥

ये सभी आठ देवियाँ दक्षिणाचार-पूजनीया कुलदेवतादिरूपेण शतधा विभक्त होकर देवगण के परित्राणार्थ मर्त्यमण्डल में नृप आदि के यहाँ अथवा विशेषतः अन्तःपुर में रमणीगण के पास रहती हैं। ये देवियाँ पुलिन्द-शबर आदि जाति वालों को लोकान्तर (लोकविपरीत) वामाचार सिद्धि प्रदान करती हैं।।१४२-१४३।।

वेश्यासु गोपबालासु उद्रकूपपरेषु च। पीठे हिमवतश्चंपा जालन्धरे स वैदिशे ॥१४४॥
महोदये वरेन्द्रे च बाढायां कोशले पुरे। भोटदेशे सकामाख्ये किष्किन्ध्ये च नगोत्तमे ॥१४५॥
मलये कोलनामे च काञ्च्याञ्च हस्तिनापुरे। उज्जयिन्याञ्च ता विद्या विशेषेण व्यवस्थिताः ॥१४६॥

वेश्या, गोपबाला, उद्र, हूण तथा खसदेश, हिमवत् पीठ, जालन्धर, विदिशा, महोदय, वरेन्द्र तथा बाढ़ देश में एवं कोशलपुर, भोटदेश, कामाख्या, गिरिवर किष्किन्धा तथा मलय में, कोल तथा काञ्चिदेश में, हस्तिनापुर तथा उज्जयिनी में इन सब विद्याओं का विशेष रूप से अधिष्ठान है।।१४४-१४६।।

प्रतिस्थाने स्थिताः शुक्र शिवाद्या ऊर्ध्वकेशिकाः। दृष्टाः क्रीडन्ति ता बालैर्बालतन्त्रे तु जम्भकाः ॥१४७॥
अष्टधा ग्रहराजस्य सखायत्वे व्यवस्थिता। एवं ता व्यापयित्वा तु विद्या लोकानशेषतः ॥१४८॥

हे शुक्र! इसके अतिरिक्त ऊर्ध्वकेशिका शिवादि सर्वत्र विद्यमान हैं। बालतन्त्र में जम्भका नामक प्रसिद्धा जो देवियाँ हैं, वे शिशुगण से दृष्ट होकर क्रीड़ा करती रहती हैं। सतत् सुरराज के सहायतार्थ अष्टधा विभक्त होकर ये विद्यादेवीगण ऐसी नानामूर्त्तियों से समस्त लोक को व्याप्त करके स्थित हैं।।१४७-१४८।।

सुबलस्य वधार्थाय स्थितो आवृत्य ताः पयः। सुबलोऽपि तदा चक्रे शरभञ्चाग्र तोरणम् ॥१४९॥
द्रोणाद्रिं वासवं हन्तुं त्वरया बलवाहनम्। महारथौघनादेन वाद्यरावेण चाम्बरम् ॥१५०॥
ध्वजैश्छिह्नातपत्रैश्च नादितं छादितं तथा। अथ तस्मिन् नगे दृष्ट्वा एतां परिणतां बलाम् ॥१५१॥

उस समय ये सभी देवीगण सुबलासुर का वध करने के लिये उसके मार्ग पर अधिकार करके स्थित हो गयीं। इधर दानवराज सुबल भी ससैन्य तथा सवाहन देवराज इन्द्र का निधन करने की इच्छा से संग्रामार्थ शरभनामक दानवश्रेष्ठ को

आगे लेकर तेजी से द्रोण पर्वत की ओर चल पड़ा। उसके रथों तथा नाना वाद्यों की ध्वनि से तथा पताकाश्रेणी एवं आतपत्रों से गगनमण्डल ध्वनिपूर्ण एवं आच्छादित हो गया। तदनन्तर दानवसेनापति शरभ में द्रोणपर्वत पर उस वृद्धा को देखा।।१४९-१५१।।

आवृत्य संस्थितां मार्गं दिङ्मुखानीव भास्करम्। तदा दानवनेता यो वदते त्यजतां पथम् ॥१५२॥
अन्यथा रथनागैस्त्वं वृद्धे क्षेमं न स्थास्यसि। अथ वृद्धा वचः श्रुत्वा दानवेन प्रभाषितम् ॥१५३॥

वह वृद्धा मार्ग, दिशायें तथा भास्कर का आवरण करके स्थित थी। दानव शरभ ने उससे कहा—हे वृद्धे! पथ छोड़ दो, नहीं तो हाथी तथा रथों से कुचल दी जायेगी तथा प्राण निकल जायेंगे। वृद्धा ने दानव का कथन सुनकर उसे अन्य प्रकार के भाव से उत्तर दिया।।१५२-१५३।।

वदते अन्यथा कृत्वा दानवेन तु कामितम्। आपूरय प्रयत्नेन अन्यथा न शुभं तव ॥१५४॥
अक्षेमं भवते तेषां यो मां वृद्धां न मन्यते। तदा दानवनेता यो गृहीत्वा तां करैः किल ॥१५५॥
उत्थापयेद् गतासुः स पपात धरणीतले। नेतारं निहतं दृष्ट्वा शङ्खो नामासुरोत्तमः ॥१५६॥
अभ्यधावत्तदा देव्या धरण्यां स निपातितः। तदा तु सुसुलो क्रुद्धो गत्वा देवीं करे किल ॥१५७॥
गृह्णाति तावत् पतितः स क्षितौ विगतासवः। एवं तान् दानवान् सर्वान् विनाहवनिपातितान् ॥१५८॥
पश्यन्ति मरुतो दृष्टास्त्यक्तशङ्काः पितामहा। भूतयोनिस्थिताः देव्या शूलासिशरशक्तिभृत् ॥१५९॥
घण्टाडमरुवेणूनि रवकाणि च वादयत्। शरभशङ्खौ हतौ दृष्ट्वा दुन्दुभिर्बलदर्पितः ॥१६०॥
माधवस्य वधार्थाय विरथेन व्रजेत् किल। यावद् देवी महालक्ष्मी महाविद्या सुरारिहा ॥१६१॥
निहत्य दारुणमाजौ दुन्दुभिं सन्निपात्य सा। कपाले रुधिरं कृत्वा श्येनकाद्यान् महाग्रहान् ॥१६२॥

वृद्धा कहती है—देखो, मैं दानव-सहवास की इच्छा करती हूँ। मेरी इच्छा पूरी करके जाना, अन्यथा तुम्हारा मंगल नहीं होगा। जो व्यक्ति मुझे वृद्धा जानकर घृणा करेगा, उसका मंगल नहीं होगा। वृद्धा के ऐसे वाक्य को सुनकर जैसे ही दानवनायक ने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाने लगा, तभी वह प्राणरहित होकर भूतल पर गिर पड़ा। तदनन्तर शंखासुर ने सेनापति को मृत देखा तब देवी की ओर दौड़ा। लेकिन दौड़ते ही वह भी गिर पड़ा (गतप्राण हो गया)। तदनन्तर असुरराज सुबल क्रुद्ध होकर देवी के पास जाकर जैसे ही उनका हाथ पकड़ा, वैसे ही वह भी प्राणहीन होकर भूतल पर गिर पड़ा। इस प्रकार विना युद्ध किये उन दानवगण को मृत देखकर देवगण परम प्रसन्न तथा शंकारहित हो गये। उस समय देवी के अनुचर सभी भूतगण कोई शूल लेकर, कोई तलवार लेकर, कोई-कोई शर, शक्ति लेकर स्थित था। वे घण्टा, डमरु, वंशी-प्रभृति नानाविध वाद्यध्वनि करने लगे। तदनन्तर दानवश्रेष्ठ दुन्दुभि ने शरभ तथा शंख का ऐसा विनाश देखकर बल-मद से मत्त होकर भगवान् माधव के वध-हेतु पैदल ही जाने लगा। उस समय असुरनाशिनी इन देवी महाविद्या माहलक्ष्मी ने दारुण संग्राम क्षेत्र में दुन्दुभि का विनाश कर दिया। तदनन्तर कपाल में उसका रक्त भरकर श्येनादि महाग्रहों को रक्त प्रदान किया।।१५४-१६२।।

शिवाद्यां तर्पयेद् देवीमिप्सितार्थफलप्रदाम्। एवं तान् दानवान् हत्वा महाबलपराक्रमान् ॥१६३॥
अवध्यान् सर्वदेवानां वासवे क्षेमदाभवत्। क्षेमं देवेषु सा देवी कृत्वा दैत्यपतेः क्षयम् ॥१६४॥

देवी ने उस रक्त से इच्छित फल देने वाली शिवादि देवियों को तृप्त किया। उन देवी ने इस प्रकार समस्त देवगण के लिये अवध्य महाबली असुरों का विनाश करके देवराज इन्द्र का मंगल-विधान किया।।१६३-१६४।।

क्षेमङ्करी शिवेनोक्ता पूज्या लोके भविष्यसि। अनेनैव तु रूपेण विद्याष्टकसमन्विता ॥१६५॥
एका वा नगरान्तस्था पूजिता स्थापिता शुभा। प्रासादे पाठकुड्ये वां पुस्तके जलवह्निगा ॥१६६॥
निस्त्रिंशे पूजयेत् क्षेमां सर्वकामफलप्रदाम्। दमनी पदमाला च श्रीघोषवज्रशासना ॥१६७॥

इस प्रकार से दैत्यराज का विनाश करके देवताओं का क्षेम अर्थात् मंगल-विधान करने पर भगवान् शंकर ने उनसे कहा—आज से तुम जगत में क्षेमङ्करी (मंगलकारिणी) कही तथा पूजी जाओगी। जो अष्टविद्या के साथ किंवा केवल उनकी ही मूर्त्ति को नगरप्रान्त में स्थापित करके अर्चना करता है, उसका परम मंगल होता है। प्रासाद, चित्रपट, पुस्तक, जल, अनल किंवा खड्ग में क्षेमकरी मूर्त्ति का पूजन करने से सभी अभीष्ट का लाभ होता है। दमनी, पदमाला, श्रीघोष तथा वज्रशासन की भी पूजा करनी चाहिये।।१६५-१६७।।

अस्त्रं प्रत्यङ्गिरा देव्याः पूजयेत् समुदाहृता। एताभिः स्थापनं कार्यं शिवासनशवान्तगम् ॥१६८॥
कन्यासंस्थे द्विजः सूर्ये भवते सर्वकामदम्। यतो देवी भवेद् वृद्धा पितरो वृद्धरूपिणः ॥१६९॥
पितृगेहवशे तस्मात् स्थापितव्या शुभार्थिभिः। हेमादिमणिरत्नानि देवीञ्चोद्दिश्य स्थापने ॥१७०॥
पात्राणि च वस्त्राणि कुर्य्यान्नानागृहादिषु। शतेन कारयेद् देवं सहस्रं सन्निवेशने ॥१७१॥

इन देवियों के अस्त्रों का भी पूजन करना चाहिये। हे द्विज! जब सूर्य कन्या राशि में हो, तब इन सब अस्त्रों के साथ शिवरूपी शव के आसन पर आसीन देवी की स्थापना से समस्त अभीष्ट प्राप्त होता है। देवी वृद्धारूपी हो गईं, अतएव पितृगण भी वृद्धरूपी हैं। तभी सूर्य के पितृदिग्गत् (दक्षिणायन) होने पर शुभ प्रार्थी (शुभकामी) व्यक्तिगण को उनकी स्थापना करनी चाहिये। देवी-स्थापना काल में देवी के उद्देश्य से स्वर्ण-मणि-रत्न तथा नाना ग्रहों हेतु विचित्र पात्रों का दान करना चाहिये। जो देवीमूर्त्ति को बनाता है, उसे १०० मुद्रा तथा जो गृहादि-निर्माण एवं संस्थापन करता है, उसको सहस्र मुद्रा प्रदान करनी चाहिये।।१६८-१७१।।

आत्मानं दारसर्वस्वं दद्यात्तत् स्थापके शुभे। यतः संसारादुद्धरणे नान्यः शक्तो गुरुं विना ॥१७२॥
अतो देवी च द्रष्टव्या गुरुर्मन्त्रप्रदायकः। स्थापको भैरवादीनां यो भवेद् द्विजसत्तमः ॥१७३॥
स गुरुर्म्मन्त्रसिद्धान्तदाता सर्वजगद्धितः। ग्रहनागे च लोकानां देवानां स्थापने हितः ॥१७४॥
विशेषबलिपूजादिवेत्ता देवी निवेशकः। धातूत्तमेन वर्णेन मत्स्यमांससुरादिभिः ॥१७५॥
देवीभ्यः स्थापनं शस्तं भयदं भवतेऽन्यथा। विहिता देवता विप्र तर्पणीया तु राजसी ॥१७६॥

जो ब्राह्मण प्रतिष्ठा करता है, उसको स्वयं एवं पत्नी तथा सर्वस्व दान कर देना चाहिये; क्योंकि गुरु के अतिरिक्त और कोई भी संसार से छुटकारा नहीं दिला सकता। इसी कारण देवी का दर्शन मन्त्रदाता गुरुरूपेण करना चाहिये। जो द्विजश्रेष्ठ भैरव आदि की मूर्त्ति स्थापित करते हैं, वे मन्त्रसिद्धान्त जानने वाले तथा जगत् के लोगों के हितकारी होने के कारण वे ही गुरु होने योग्य होते हैं। जो ग्रह, नागेश्वर तथा देवगण की (मूर्त्ति) स्थापन-सम्बन्ध में दक्ष हैं तथा बलि-पूजादि विषय को जानते हैं, वे ही देवी (मूर्त्ति) स्थापनार्थ योग्य हैं। धातुओं में उत्तम स्वर्णपात्रस्थ मत्स्य, मांस, सुरा आदि द्वारा देवीगण के साथ क्षेमङ्करी देवी की स्थापना प्रशस्त है, अन्यथा भयजनक होती है (इन सबके साथ ही यह स्थापना करनी चाहिये)। इन देवीगण में से जिसकी राजसिक भाव से अर्चना का विधान है, वह राजसी होती है।।१७२-१७६।।

तामसी तमसा पूज्या सुहृष्टा न तु सात्विकी। मन्त्राः पदमालयाख्यानां क्षेमायाः स्थापने परे ॥१७७॥
पूजने वा क्वचिच्छस्ता नैष्ठिका न कदाचन। कुलमार्गं तथा वाममातृदक्षिणवेदिका ॥१७८॥
देवीपूजाविधौ शस्ता न मन्दा न च नैष्ठिकाः। न सिद्धान्तैकभावस्था न च देवैकभाविता ॥१७९॥

इन देवीगण में से जिसकी तामसिक भाव से अर्चना की जाती है, वह तामसी हैं। जिसकी पूजा सात्विक भाव से की जाती है, वह सात्विकी हैं। इनमें से राजसी तथा तामसी देवीगण ही अनायास प्रसन्न होती हैं; सात्विकी ऐसी नहीं होती (शीघ्र प्रसन्न नहीं होती)। इन क्षेमङ्करी देवी की स्थापना तथा पूजाविषय में अविशुद्ध मन्त्र न हो तथा पूजकादि भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी न हों। कुलाचार, पैतृक भवन, मातृगण तथा दक्षिणमुखी वेदी देवीपूजा हेतु प्रशस्त है। मूर्ख, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, केवल सिद्धान्त में दृढ़चित्त, सर्वदा देवध्यान में लगा व्यक्ति प्रशस्त नहीं होता।।१७७-१७९।।

स्त्रीप्रधाना यतो देवी विद्या यत्नैवतो यजेत्। एवं यः पूजयेद्देवीं स्थापेयद् वा द्विजोत्तमः ॥१८०॥
स्थापयन्तु तथा तेन पूजार्पयति मानवः। स लभते हितान् कामानिह लोके द्विजोत्तमः ॥१८१॥

क्योंकि देवी स्त्रीप्रधाना हैं, इसीलिये विद्या (स्त्री) मन्त्रों से उनका पूजन कर्त्तव्य है। जो द्विजश्रेष्ठ इस प्रकार से देवी की स्थापना अथवा अर्चना करते हैं, हे द्विजोत्तम! वे इस लोक में सुखकारी सभी इच्छित विषयों को प्राप्त कर लेते हैं।।१८०-१८१।।

लिखित्वा धारयेद्धक्त्या बाहौ कण्ठे करे वरे। राज्यायुःसुतसौभाग्यं प्राप्नुयादविचारणात् ॥१८२॥
परत्र भैरवं स्थानं ब्रह्मविष्णुनमस्कृतम्। लभते नात्र सन्देहो सत्येदं देवीपूजनात् ॥१८३॥

जो देवीकवच को अंकित करके देवी की अर्चना करने के उपरान्त उसे बाहु-कण्ठ अथवा अन्य स्थान पर धारण करते हैं, वे अनायास ही इस जीवन में राज्य, आयु, पुत्र तथा सौभाग्य प्राप्त करते हैं एवं देहान्त के उपरान्त ब्रह्म-विष्णु द्वारा पूजित भैरवलोक प्राप्त करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह देवीपूजन से प्राप्त होता है।।१८२-१८३।।

स्मरणात् पठनाद्विप्र धारणाद् वा सुभावितः। विद्यानान्तु प्रभावेण लभते मनसेप्सितम् ॥१८४॥
चतुःषष्टिषु विद्यासु यथा वीर्यं महाफलम्। विजयादिषु विख्यातं सर्वाभ्युदयदायकम् ॥१८५॥

इति श्रीदेवीपुराणे विद्या-मन्त्र-भाव-क्षेमङ्करीप्रादुर्भावो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

हे विप्र! एकाग्र होकर देवी का स्मरण, स्तवपाठ तथा देवीकवचादि धारण करने से इन विद्याओं के प्रभाव से सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। हे इन्द्र! मैंने तुमसे विजयादि ६४ विद्याओं के वीर्य तथा उनकी अर्चनादि से जो फल मिलता है, साथ ही यह जिस प्रकार से अभ्युदयकारी है, वह सब कहा।।१८४-१८५।।

एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त

●

चत्वारिंशोऽध्यायः

उवाच

महाधर्म्मासुरो ब्रह्मन् केनोपायेन ब्रह्मणा। निर्ज्जितो युद्धशौण्डस्तु सर्वदेवभयङ्करः ॥१॥
एतत् कौतूहलं देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।

महर्षि शौनक कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अखिल अमरवृन्द के लिये भयङ्कर युद्धविशारद महाधर्मासुर पर भगवान् ब्रह्मा ने कैसे विजय प्राप्त किया, इस विषय में सुनने-हेतु मुझमें महान् कुतूहल हो रहा है।।१-२।।

मनुरुवाच

कौञ्चारेः स्थानमिन्द्रस्य तपोविघ्नसमुत्थितम् ॥२॥
होमावसानिकं घोरमसुरं कृष्णधर्म्मिणम्। तं दृष्ट्वा महतीं पूजां कृत्वा चामुण्डभैरवैः ॥३॥
धातुर्महेति पूजायां महाधर्म्मा ततः स्मृतः। पूर्वं देवासुरे युद्धे तारकेण महात्मना ॥४॥
आराध्य भगवद्विष्णुं द्वादशाख्यैर्महाव्रतैः। क्रतु भागवतैर्नाम मार्गाद्यैरुर्ज्जपश्चिमैः ॥५॥
तोषितो वासुदेवस्तु सर्वदेववधैषिणा। ततस्तस्य वरो दत्तस्तेन धर्म्ममहासुरः ॥६॥

मनु कहते हैं—पूर्व में यह असुर कृष्णधर्मा नाम से प्रसिद्ध था। तदनन्तर किसी समय उस भयङ्कर असुर को स्थाणुमित्र नामक किसी ऋषि ने अपने यज्ञ में विघ्न करते देखकर चामुण्डा, अष्टभैरव के साथ कार्त्तिकेय की महती पूजा-अर्चना करके उसका निवारण किया। मह धातु का अर्थ है—पूजा तथा उनके (विघ्न के) निवारणार्थ ही उक्त पूजा की गई। इस विवेचना द्वारा सभी उसको महाधर्मासुर नाम कहते हैं। पूर्वकालीन देवासुर युद्ध में महात्मा तारकासुर ने अमरगण का संहार करने की इच्छा से भगवान् विष्णु की आराधना करके उर्ज-पश्चिम भेद से द्विविध भगवत् प्रीतिकारी महाव्रतरूप मार्गादि नामक द्वादशविध यज्ञानुष्ठान द्वारा भगवान् वासुदेव को अत्यन्त प्रसन्न किया। तदनन्तर उसे भगवान् ने यह वर प्रदान किया।।३-६।।

साहाय्यं सङ्गरे तात करिष्यति ममाज्ञया। स तदा विष्णोरादेशाद्वरलब्धो महासुरः ॥७॥
समादिशति धर्म्माख्यं स ब्रह्मेन्द्रो व्यमोहयत्। एवं तस्य समादेशान्महाधर्म्मा सुहृष्टवान् ॥८॥
स चक्राङ्गमादाय द्रुहिणस्य विनाशने। गतवान् यत्र सेन्द्रस्तु ब्रह्मा तिष्ठति सोऽसुरः ॥९॥

भगवान् कहते हैं—हे वत्स! मेरी आज्ञा से संग्राम क्षेत्र में महाधर्मासुर ऐसी सहायता करेगा, जिससे तुमको अभीष्ट सिद्धि हो जाय। तदनन्तर महासुर तारक ने वर प्राप्त करके विष्णु के आदेशानुसार महाधर्मासुर के पास जाकर कहा—अरे! तुम भगवत् आज्ञा से ब्रह्मा सहित इन्द्र को वितारड़ित करो। इस प्रकार से शिवाराधना में तत्पर वह महाधर्मासुर उसके इस वाक्य से अत्यन्त आनन्दित हो गया तथा चक्र एवं अगद धारण करके ब्रह्मा का विनाश करने की इच्छा से वहाँ पहुँचा, जहाँ देवराज के साथ ब्रह्मा स्थित थे।।७-९।।

रुद्राराधनयुक्तात्मा कृष्णाष्टभ्यां फलार्थिनः। ततस्तस्य महायुद्धमभवच्छरदां शतम् ॥१०॥
सन्नद्धानां तदा तस्मिन् सुरासुरजिघांसया। तावत् स्यन्दनमारूढमुग्रसेनं महासुरम् ॥११॥
दृष्ट्वा बलं तदा तेषां देवी ब्रह्मणे चिन्तिता। भारं परं समास्थाय सर्वदेवनमस्कृता ॥१२॥

तदनन्तर अभीष्ट फलाभिलाषी इस दानवश्रेष्ठ ने कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके ब्रह्मादि देवगण के साथ १०० वर्ष-पर्यन्त महायुद्ध किया। उस समय इस संग्राम क्षेत्र में सुर तथा असुर एक-दूसरे को नष्ट करने की इच्छा से दृढ़ निश्चय करके तुमुल युद्धरत हो गये। ऐसा युद्ध चल ही रहा था कि इसी बीच भगवान् ब्रह्मा ने महासुर उग्रसेन को रथ पर आरूढ़ (आते) देखा तथा दानवों के भीषण पराक्रम को देखकर उन्होंने अखिल देवगण की आराध्या देवी आद्या शक्ति का चिन्तन किया।।१०-१२।।

आगता क्षणमात्रेण उग्रसेनवधैषिणी। विनियुक्ता तु संपूज्य वधाय दनुसत्तमे ॥१३॥
मुण्डं संपीडयेद्देवी उग्रसेनस्य नायकम्। ततस्तं पीडितं दृष्ट्वा उग्रसेनश्च दानवः ॥१४॥

वे यह चिन्तन होते ही तत्क्षण वहाँ प्रकट हो गईं। तब उन देवी ने ब्रह्मा द्वारा पूजित होकर तथा उनके द्वारा दानव के वधार्थ प्रार्थना करने पर उग्रसेन दैत्य के सेनापति मुण्डासुर को पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। उग्रसेन ने तब अपने सेनापति मुण्डासुर को इस प्रकार पीड़ित होते देखा।।१३-१४।।

इन्द्राय प्रेषयत् शक्तिं यमदण्डसमप्रभाम्। इन्द्रोऽपि वज्रनाराचैर्बहुधोग्रमताडयत् ॥१५॥

यह देखकर इन्द्र पर यमदण्ड के समान प्रभाशाली एक शक्ति छोड़ी। इस पर इन्द्र ने भी वज्र तथा नाराच अस्त्र से उग्रसेन को अनेक प्रकार से ताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया।।१५।।

उग्रसेनस्तदा क्रुद्ध इन्द्रं खड्गेन ताडयेत्। खड्गाहतस्तदा चेन्द्रो गजोपरि निषण्णवान् ॥१६॥
देवी दृष्ट्वा तदा चेन्द्रं मूर्च्छितं व्रणविह्वलम्। उग्रसेनस्य संक्रुद्धा आग्नेयास्त्रं प्रयुक्तवान् ॥१७॥

तब उग्रसेन ने क्रोधित होकर इन्द्र को खड्ग से ताड़ित किया। वे अपने वाहन गजराज पर मूर्च्छित होकर गिर गये। तब देवी ने उनको व्रणों से विह्वल मूर्च्छित देखकर क्रोध के साथ उग्रसेन पर आग्नेयास्त्र छोड़ा।।१६-१७।।

तेनाहतस्तदा उग्रो दह्यमानः सस्यन्दनः। वारुणं प्रेषयामास शमाय ज्वलनापहम् ॥१८॥
वायव्यं प्रक्षिपद्देवी तदा वारुणशान्तये। विक्षिप्तमेघसंघातं भग्नपादपभूधरम् ॥१९॥
मृगारूढं तदा देवं पाशाङ्कुशकरोद्यतम्। वेष्टयित्वा तु तं चौग्रं महाबलपराक्रमम् ॥२०॥
उग्रसेनबलं हत्वा स च पाशेन पाशितः। अस्य शरासनं छित्वा हत्वा चोग्रो निपातितः ॥२१॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रैलोक्याभ्युदये उग्रसेनवधो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः

दानवपुङ्गव उग्रसेन जब रथ के साथ आग्नेयास्त्र के प्रभाव से दह्यमान होने लगा, तब सन्ताप-शान्ति हेतु अग्निनिवारक वारुणास्त्र को उसने छोड़ा। देवी ने इस वारुणास्त्र के निवारणार्थ वायव्यास्त्र को छोड़ा। तब पाश-अंकुशधारी मृगपर आरूढ़ साक्षात् वायुदेव ने आविर्भूत होकर वारुणास्त्रजनित मेघमाला को इतःस्ततः विच्छिन्न किया तथा उनके वेग से वृक्षादि एवं पर्वत भग्न होने लगे। तब उन्होंने (देवी ने) महाबली पराक्रान्त भीषण उग्रसेन तथा उसकी सेना का संहार करने के लिये पाश द्वारा आवेष्टित करके बाँधा एवं शरासन से उसका छेदन करके संहार कर दिया।।१८-८१।।

चत्वारिंश अध्याय समाप्त

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

शौनक उवाच

उग्रसेने हते तात किं कुर्य्यात् स महासुरः। कृष्णधर्म्मा महाबाहो तन्मे ब्रूहि महामुने ॥१॥

ऋषि शौनक कहते हैं—हे तात! उग्रसेन के वधोपरान्त महासुर महाबाहु कृष्णधर्मा ने क्या किया, कृपा करके कहिये।।१।।

मनुरुवाच

हते चोग्रे तदा क्रुद्धः कृष्णधर्म्मा महासुरः। बाले महाहवं चक्रुं ब्रह्मेन्द्रं परिरक्षसे ॥२॥
एवं स तर्ज्जयित्वा तु देवीं चक्रेण ताडयत्। सिंहं पञ्चेषुभिर्भित्त्वा पुनर्देवीं व्यताडयत्।
देवी क्रुद्धा तदा वत्स कृष्णं वज्रेणऽताडयत् ॥३॥

मनु कहते हैं—उग्रसेन के हत होने पर महासुर कृष्णधर्मा क्रोधित होकर दारुण संग्राम करने लगा और उसने देवी से कहा—हे बाले! तुम मुझसे युद्ध करके ब्रह्मा तथा इन्द्र की रक्षा कर रही हो। इस प्रकार से तर्जन करके उसने देवी को चक्र से ताड़ित किया तथा उनके वाहन सिंह को पाँच शरों से विद्ध करके उनको पुनः शरजाल से आच्छन्न एवं विद्ध करने लगा। हे वत्स! तब देवी ने अतिशय क्रोधित होकर उस पर वज्रास्त्र का प्रहार किया।।२-३।।

वज्राहतं तदा कृत्वा रथोपस्थगतं तथा। तदा द्रुतं समाधावद् देव्या दण्डकरोद्यतः ॥४॥
आयान्तं तं शरैर्देवी पञ्चभिर्यमसादनम्। प्रेषयामास संक्रुद्धा तदा कृष्णस्य सारथिम् ॥५॥

जैसे ही सारथी ने कृष्णधर्मा को रथ पर गिरे देखा, वैसे ही वह एक भीषण दण्ड लेकर देवी की ओर दौड़ पड़ा। देवी ने उसे ऐसे आते देखकर महान् क्रोधयुक्त होकर पाँच बाणों के आघात से उस सारथी को यमलोक भेज दिया।।४-५।।

हते कृष्णरथाधारे कृष्णधर्म्मा महाबलः। पादस्थश्चक्रमादाय देव्याः स सम्मुखौ ययौ ॥६॥
आयान्तं तं महाबाहुं शरैः सन्नतपर्वभिः। विध्य हृदि शिरस्तस्य चक्रघातेनापातयत् ॥७॥

अपने सारथी को हत देखकर महाबली कृष्णधर्मा ने चक्र उठाया और पैदल ही देवी की ओर दौड़ पड़ा। तब देवी ने उसे अपनी ओर आते देखकर सन्नतपर्व वाले बाणों से उसके हृदय को वेध कर चक्र द्वारा उसके मस्तक को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया।।६-७।।

एवं तु कृष्णधर्म्माणं महाबलपराक्रमम्। सङ्गरे निहतं वत्स ब्रह्मेन्द्रपरिरक्षितम् ॥८॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे कृष्णधर्म्मवधो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः

हे वत्स! इस प्रकार उन भगवती ने महाबली पराक्रमी महाधर्मासुर (आदि) का रणक्षेत्र में संहार करके भगवान् ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्र का रक्षण किया था।।८।।

एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त

●

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

चन्द्रेशे चोग्रकृष्णे च हते तस्मिन् महाबले। देवास्तुष्टास्तदा देवीं पूजया वाग्भिः सान्त्वयन् ॥१॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—उक्त उग्रसेन तथा कृष्णधर्मा नामक प्रचण्ड दानवनायकों के निहत होने पर सुरगण अत्यन्त आनन्दित होकर देवी के पूजनोपरान्त स्तुतिवाक्य से उनके क्रोध को शान्त करने लगे।।१।।

त्वं देवी परिरक्षा नो ब्रह्मादीनां भयार्णवे। यथा कृष्ण महाघोरः क्रीडया विनिपातितः ॥२॥
त्वं बुद्धिः शुद्धिर्मेधाश्च कान्तिदीप्तिमतिर्यशः। रक्षा च परमा देवी विष्णिवन्द्रद्रुहिणादिषु ॥३॥

देवगण कहते हैं—हे देवि! आप ही हमलोगों को भयसागर से त्राण दिलाने वाली एकमात्र रक्षा करने वाली हैं। आपने अनायास भीषण दुर्दमनीय कृष्णधर्मासुर का वध कर दिया। हे देवि! आप ही इन्द्रादि एवं ब्रह्मादि देवगण की बुद्धि-मेधा-शुद्धि- कान्ति-दीप्ति-मति-यशः हैं तथा परम रक्षिणी हैं।।२-३।।

रक्षणाय नृपाणाञ्च मर्त्ये त्वं देवी पूजिता। जालन्धरे महादेवी पीठस्थानगता शिवा ॥४॥
त्वदंशगा स्त्रियो देवी भविष्यन्ति वरप्रदाः। भक्तानामभयदाः सर्वकामफलप्रदा ॥५॥
युगानुरूपधर्म्मेण धर्म्मिनां कामदायिकाः। स्थाने स्थाने भविष्यन्ति दृष्टादृष्टप्रसाधिकाः ॥६॥
मलये सह्यविन्ध्ये च हिमवत्यर्बुदादिषु। चित्रे गोपे नरे काले नीचाख्ये पर्वते तथा ॥७॥
लङ्कायाञ्चोड्रदेशे च स्त्रीराज्ये काशिकावने। कामरूपे तथा काञ्च्यां चम्पायाञ्चाथ वैदिशे।
वरेन्द्रे चोद्रियाणे च मलाख्ये शिखरे तथा ॥८॥

नवदुर्गास्थले जले चोले हैरण्ये कनकाकरे। सिंहले वेणुदण्डे च कर्णकुब्जे च वैदिशे ॥९॥
नवदुर्गास्थले कृत्वा त्रिमुण्डास्तत्र कीर्त्तिता। देव्याः सर्वार्थदातारः सर्वकामफलप्रदाः ॥१०॥

हे देवि! आप ही नृपतिगण की रक्षा करने के लिये मर्त्यलोकस्थ जलन्धर तीर्थ में महादेवी पीठ नामक स्थान में शिवा नाम से स्थिता तथा पूजिता हैं। हे देवि! मलय, सह्य, विन्ध्य, हिमालय, चित्रगोप, नरकाल, नीच तथा उदयादि पर्वत पर, लंका, उग्रदेश, स्त्रीराज्य, काशीकावन, कामरूप, काञ्ची, चम्पा, वैदिश, वरेन्द्र, उड्डीयान, मलयशिखर, कुशस्थल, जल, चोल, हिरण्यकनकाकर, सिंहल, वेणुदण्ड, कान्यकुब्ज आदि स्थान में आपके अंश से उत्पन्न नाना स्त्रीमूर्त्ति (देवीमूर्त्ति) प्रकाशित होंगी। नवदुर्गास्थल में त्रिमुण्डा नाम से कीर्त्तित होंगी। ये सभी देवीगण भक्तों हेतु सभी प्रकार से सर्वार्थदायिका, सर्वकाम-फलप्रदा होंगी एवं युगानुरूप धर्मात्मा मानवगण की अभिलाषा पूर्ण करेंगी।।४-१०।।

वैदिशे मध्यगा देवी सिंहयाने व्यवस्थिता। ऊर्ध्वं जयावहा देवी महाकालीति विश्रुता ॥११॥
परा जम्बुकनाथस्य वह्निभागगता मुने। भद्रकालीति विख्याता महालक्ष्मीर्गिरौ स्मृता ॥१२॥
यत्र सा साधिता विद्या पदमालाविराजिता। मृत्युञ्जयात्तथा चान्या नन्दिकेशो यथाप्तवान् ॥१३॥

ये सभी देवीगण सर्वार्थदायिनी तथा सर्वकामफलदा हैं। वैदिश देश में सिंहवाहिनी देवी ऊर्ध्वजयावहा नाम से ख्यात होंगी। हे मुनिवर! जम्बूकनाथ नामक पर्वत पर देवी वह्निमय अंश से स्थित होकर महाकाली कहलायेंगी। महालक्ष्मी गिरि पर स्थित एक देवी भद्रकाली नामक भी हैं। इस पर्वत पर भगवान् मृत्युञ्जय उक्त पदमालाविराजिता मन्त्रात्मिका विद्यादेवी की तथा एक अन्य विद्या की भी साधना करते हैं। पश्चात् काल में नन्दिकेश्वर ने इसे भगवान् मृत्युञ्जय से प्राप्त किया था।।११-१३।।

रात्रौ जप्ता महाबाहो सा विद्या शशिनः क्षये। विनाशयेन्महामृत्युमपमृत्युं न संशयः ॥१४॥

हे महाबाहो! कृष्णपक्षीय रात्रि में उक्त विद्या के मन्त्र का जप करने से निःसंदिग्ध रूप से अपमृत्यु तथा महामृत्यु से त्राण मिल जाता है।।१४।।

कलां कलां यदा चन्द्रो गच्छते रविमण्डलम्। तदा विद्यां जपेद्रात्रौ दिवाचन्द्रे विवर्द्धिते ॥१५॥
जरामृत्युभयं घोरं ब्रह्महत्यादिपातकम्। शमते सा नासन्देहो विद्या जप्ता महामुने ॥१६॥

इति श्रीदेवीपुराणे स्थानप्रशंसानाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जिस समय चन्द्रकला कलारूपेण सूर्यमण्डल में प्रविष्ट होती है (अर्थात् कृष्णपक्ष में) तब रात्रिकाल में तथा जिस समय चन्द्रकला परिवर्द्धित होती है (अर्थात् शुक्लपक्ष में) तब दिन में विद्यामन्त्र का जप करना चाहिये। हे महामुने! उक्त विद्या के जप द्वारा साधक निःसंदिग्ध रूप से जरा तथा मृत्युभय एवं घोर ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त हो जाता है।।१५-१६।।

●

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

शौनक उवाच

कथं विद्या तु सा प्राप्ता नन्दिना वृषवाहनात्। कथं तां लभते तात सोमो नन्दिसकाशतः ॥१॥
एवं सर्वं यथान्यायं कथयस्व महामुने।

शौनक ऋषि कहते हैं—भगवान् शंकर ने नन्दिकेश्वर से कैसे इस विद्या को प्राप्त किया था तथा परशुराम ने किस प्रकार से इस विद्या को नन्दिकेश्वर से पाया था, कृपया कहिये।।१।।

मनुरुवाच

महादेवी त्विदं घोरं हत्वा देवेन विष्णुना ॥२॥
दत्तापराजिता चन्द्रे तेन चन्द्रे बुधे पुनः। क्रमात् पुरुषेभ्यः प्राप्तां यावत् पाण्डुसुतादयः ॥३॥

मनु कहते हैं—उक्त महादेवी ने घोर असुर के संहार के उपरान्त भगवान् विष्णु तथा चन्द्र को इस अपराजिता देवीमन्त्र का दान किया था। इसी से क्षय प्राप्त होने पर भी चन्द्रमा पुनः (पूर्णिमा तक) बढ़ जाते हैं। तदनन्तर क्रम से चन्द्र ने इसे पुरुरवा को तथा पुरुरवा से क्रमशः पाण्डुपुत्र आदि ने इसे प्राप्त किया।।२-३।।

तथा सा कीर्त्तिता लोके सर्वकामप्रसाधिका। पदमाला महाबाहोर्घोरयुद्धे प्रकाशिता ॥४॥
पुष्पाख्या मृत्युनाशाय नन्दिने मृत्युहा मुने। दत्ता विद्या महाबाहो तेन रामस्य कीर्त्तिता ॥५॥
अभयं नाशनार्थाय तेन जप्ता महात्मना। येन पूर्वा जिता देवा ब्रह्माद्या बहुधा युधि ॥६॥

हे मुने! हे महाबाहो! घोर संग्राम क्षेत्र में प्रकाशिता उक्त मन्त्रात्मिक देवी जगत् में सर्व अभीष्ट फलदात्री हैं। पूर्व में मृत्युभय- विनाशार्थ महेश्वर ने नन्दी को मृत्युभयहारिणी पुष्पाख्या नामक महाविद्या प्रदान की थी। तदनन्तर नन्दी ने इसे परशुराम को प्रदान किया, जिन्होंने दानवराज अभयासुर के संहारार्थ इस मन्त्र को जपा था, जिस असुर ने युद्ध में पूर्वकाल में ब्रह्मादि देवगण को पराजित कर दिया था।४-६।।

शशाप कालिका क्रुद्धा विघ्नेशस्य वधैषिणम्। महासुर सुरत्रास यथा त्वं विघ्नवाहिनीम् ॥७॥
बाधसे विघ्नकोपेन तदा त्वं पर्शुना हतः। शमकोपसमुद्भूते वह्नौ दाहं गमिष्यसि ॥८॥

एक बार विघ्नेश्वर गजानन का विनाश करने के लिये उद्यत देखकर भगवती कालिका ने क्रुद्ध होकर उसे शापित किया था। देवी ने उससे कहा था—हे सुर-महासुरासुरगण-हेतु भयप्रद! जब तुमने मेरे पुत्र गजानन के सैन्य-दल को पीड़ा देने का साहस किया तब तुम निःसंदिग्ध रूप से गजानन के कोप के कारण परशुराम के कुठाराघात से आहत होकर उसके कोपानल में दग्ध हो जाओगे।।७-८।।

एवं पूर्वं स शापेन अभयः शापितोऽसुरः। जयाख्यं पर्वतं गत्वा चचार दुश्चरं तपः ॥९॥
फलमूलकणाहारः पर्णाशः अथवाभ्युदः। जपहोमक्रियासक्तः केशवाराधने रतः ॥१०॥
रौहिण्यव्रतभूयिष्ठः समचित्तः समाधिगः। चचाल तपसा देवान् प्रभूताब्धैर्मरुद्गणान् ॥११॥

इस प्रकार अभयासुर अभिशापग्रस्त होकर जयाख्य पर्वत पर गया और क्षात्रधर्मानुसार दुष्कर तप का अनुष्ठान करने लगा। वह मौनी होकर केवल फल-मूल-कण का आहार करता एवं कभी गलित पत्तों का ही भक्षण करके जीवन धारण करता था। वह प्रभूत चान्द्रायणव्रत तथा जप-होमादि में रत होकर संयतचित्त एवं समाधिस्थ स्थिति में भगवान् केशव की आराधना करने लगा। उसके तप से समस्त देवगण तथा मरुद् गण विक्षुब्ध हो गये। सभी समुद्र भी विक्षुब्ध होने लगे।।९-११।।

क्षात्रं व्रतं समाधाय तावत्तुष्टो जनार्दनः। अजयस्तवं महाबाहुर्देवासुरभयङ्करः ॥१२॥
भविष्यसि न सन्देहो नाशं व्यूहे व्रजिष्यसि। पञ्चत्रिंशत् क्रमाद्वाहं भित्त्वा गत्वासुराधिप ॥१३॥
न योद्धव्यं मया वत्स षट्त्रिंशस्तु भवान्तकः। एवं पूर्वं महाबाहो तपसा स सुरासुरान् ॥१४॥
विजित्य क्रीडते तात पृथिवीं वनकाननाम्। द्विजान् देवान् पितॄन् जित्वा ऋषीन् मुख्यानभिद्रवत् ॥१५॥

उसके इस क्षात्र व्रत से भगवान् जनार्दन प्रसन्न होकर उसके समक्ष आविर्भूत हो गये और कहा—हे वत्स! तुम निःसंदिग्ध रूपेण महान् भुजबलयुक्त तथा अजेय होगे। समस्त सुर-असुर भी तुमसे भयभीत रहेंगे, लेकिन तुम्हारी मृत्यु व्यूह में ही होगी। हे वत्स असुरराज! तुम कभी भी पञ्चत्रिंश व्यूह का अतिक्रमण करके किसी से युद्ध नही करना; क्योंकि पञ्चत्रिंश व्यूह के बाद वाले षट्त्रिंश व्यूह में ही तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। हे महाबाहो! इस प्रकार पूर्वकाल में वह असुर तप द्वारा सुर-असुरगण पर विजय पाकर समस्त पृथिवी के जलभाग तथा काननादि स्थलभाग पर क्रीडारत हो गया। हे तात! उसने द्विज-देवता तथा पितरों को पराजित किया एवं ऋषिगण पर भी आक्रमणकारी हो गया।।१२-१५।।

परिभ्रमद् यथाकामं त्रिदशैरपि वारितः। दण्डकं वनमासाद्य यत्र देवो गजाननः ॥१६॥
वाममित्रः सुहृष्टात्मा व्यूहतत्त्वविशारदः। अस्त्रग्रामप्रणेता च निसर्गाह्लादपूर्वकः ॥१७॥

यथेच्छ परिभ्रमण करने से उसे देवगण भी नहीं रोक सके। वह एक बार दण्डकवन में गया, जहाँ व्यूहतत्त्वविशारद, नाना अस्त्रप्रणेता परशुराम के मित्र भगवान् गजानन प्रसन्नचित्त से विराजमान थे।।१६-१७।।

तत्र गत्वा महाबाहो सुमतिं प्रत्ययाश्रमः। अगस्त्यदुहितरं देवीं गजवक्त्रप्रियां सदा ॥१८॥
तदा क्रुद्धा परशुर्धूलाघवेन बलेन च। विनिर्ययौ सुसम्बन्धो गजवक्त्रसुहृन्मुने ॥१९॥

वहाँ वह दानव स्वाभाविक अज्ञानता के कारण सर्वदा गजानन की परमप्रिया रहने वाली अगस्त्यकन्या सुमति को माँग बैठा। हे मुने! तब उन गजानन के परम सुहृद् परशुराम उसकी इस लघुता से क्रोधित होकर उसकी सेना से युद्धसज्जार्थ निकले।।१८-१९।।

राम उवाच

स्थीयतां सुरश्रेष्ठ सङ्गराय शमाय च। अन्यथा अद्य ते वक्षे पर्शुः पिबति शोणितम् ॥२०॥
रामवाक्यशरैः विद्धो अभयो मन्युना तदा। मुमोच सहसा बाणान् प्रावृषीव घनो जलम् ॥२१॥

परशुराम कहते हैं—हे असुरश्रेष्ठ! युद्ध के लिये तथा अभिमानशान्ति के लिये कुछ काल-पर्यन्त यहीं रुको, अन्यथा आज यह कुठार तुम्हारे वक्षःस्थल को चीर कर रक्तपान करेगा। तब दानवराज अभयासुर परशुराम के इस वाक्यबाण से विद्ध होकर क्रोध से भर गया तथा वर्षाकालीन जलधारा के समान बाणों की वर्षा करने लगा।।२०-२१।।

तस्य बाणघनाविद्धं ककुभोऽन्तं न लभ्यते। नीहारशतसञ्छन्ने निशान्ते शशिनः क्षये ॥२२॥
ततस्तं बाणतमसाच्छन्नं दृष्ट्वा गजाननः। सुमतिं पृष्ठतो दत्वा क्रमाद् व्यूहान् विनिर्म्ममे ॥२३॥

जैसे कृष्णपक्ष की रजनी के अन्तिम भाग में शिशिर से (कुहरे से) आच्छन्न दिशायें परिलक्षित नहीं होतीं, उसी प्रकार इस घने शरजाल से आवृत्त होने से कुछ भी लक्षित नहीं हो रहा था। तदनन्तर भगवान् गजानन ने जामदग्न्य (परशुराम) को बाणों से ढका देखकर तथा उससे तमसाच्छन्न दिङ्मण्डल को देखकर सुमति देवी को पीछे रखकर यथाक्रम से व्यूहरचना प्रारम्भ किया।।२२-२३।।

काकपक्षो उरस्यश्च दण्डाभोगः समण्डलः। सङ्घाताः प्राकृता व्यूहाः सप्त प्रोक्ताः क्रमादिमे ॥२४॥

काक, पक्ष, उरस्य, दण्ड, आभोग, मण्डल तथा सङ्घात—इन सात व्यूहों को प्राकृत व्यूह कहते हैं।।२४।।

प्रदथो दृढ़कोशाद्यः सोनायोरसकुक्षिकः। प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च सञ्जयो विजयस्तथा ॥२५॥
स्थूणाकर्णो विशालश्च बीजाभः स च सुमुखः। ऋषसूचीकुवलयो दुर्ज्जयश्च तथा परे ॥२६॥
भोगो गोमूत्रशकटो मकरोऽथ पतङ्गकः। मङ्गलः सर्वतोभद्रो दुर्धरश्च सुसंयतः ॥२७॥

वज्रगोधा समुद्गालः काकपक्षस्तथापरः। अर्द्धचन्द्रो महाव्यूहः कङ्कटः शृङ्ग एव च ॥२८॥
अरिष्टश्चाचलश्चापि तथा प्रतिहतो मतः। प्राकृतैरहितान् व्यूहान् षट्त्रिंशत्तं महामुने ॥२९॥

हे महामुने! प्रदध, दृढ़ कोशाद्य, सोन, अयोरस, कुक्षिक, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, सञ्जय, विजय, स्थूणाकर्ण, विशाल, वीजाभ, सुमुख, ऋष, सूची, कुवलय, दुर्जय, भोग, गोमूत्र, शकट, मकर, पतङ्ग, मंगल, सर्वतोभद्र, दुर्धर, सुसंयत, वज्रगोधा, समुद्गाल, काकपक्ष, अर्द्धचन्द्र, कङ्कट, शृङ्ग, अरिष्ट, अचल, प्रतिहत नामक प्राकृत व्यूह ३६ कहे गये हैं।।२५-२९।।

भूभृत् सुतात्मजस्तात शपयामास आहवे। आकारैर्नामरूपैश्चाश्वनागाश्च पत्तिभिः ॥३०॥
कुर्य्यात् क्रमानुरूपेण शतशोऽथ सहस्रशः। विषमे च समे भूमौ तिर्य्यञ्चः नृपजाङ्गले ॥३१॥
अवायः प्रत्यवायश्च कार्यश्चैवावलम्बने। तस्मिन् गजाननस्तात सपताकान् सतोरणान् ॥३२॥
तूर्य्यशङ्खरवोपेतान् कृत्वा युद्धं समुन्महत्। अभयोऽपि तदा क्रुद्धः क्रमाद् व्यूहान् व्ययोधसः ॥३३॥

पूर्वोक्त सात व्यूह के अतिरिक्त ये ३६ व्यूह होते हैं। तदनन्तर पार्वतीनन्दन गजानन ने युद्धार्थ इनकी रचना किया। यथाक्रम से रथ, मातङ्ग (हाथी), तुरङ्ग (अश्व) तथा पैदल सेना से उनके आकार तथा नाम के अनुरूप सैकड़ों-हजारों व्यूहरचना करके पुनः सम-विषम, वक्र, जलप्रायः तथा जलशून्य स्थान इस कार्य का बलावल देखकर अवाय एवं प्रत्यवाय प्रभृति व्यूहों का निर्माण किया। हे तात! तदनन्तर गजानन ने इस युद्ध में व्यूहों को प्रवेश-निर्गम पथयुक्त, पताका-श्रेणी से शोभित तथा तूर्य एवं शंखध्वनि से निनादित किया तथा युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये।।३०-३३।।

प्रतिव्यूहैर्यथा योगं यावत् त्रिंशत् समाधिका। पञ्चभिस्तावतो व्यूहान् स निघ्नन् अरिमर्दनः ॥३४॥
षट्त्रिंशे च तथा व्यूहे भिद्यमाने सुरारिणा। रामः शरासनं सज्यमिषुभिः सन्निवारयेत् ॥३५॥
तदाभयः सुसंक्रुद्धो शरान् प्रति शरैर्हनेत्। छित्त्वा शरासनं मेध्यं पशुं विव्याध पञ्चभिः ॥३६॥
शरैरुल्कासमाकारैर्दशभिः ताडयेच्छिरे। तदा शराहतं रामं दृष्ट्वा पार्वतिनन्दनः ॥३७॥

अब अभयासुर ने भी रोषान्वित होकर यथायोग्य प्रतिव्यूह की रचना किया। वह ३० वर्ष से अधिक समय तक व्यूहित सेना के साथ युद्ध करता रहा। तदनन्तर रिपुहन्ता अभयासुर इस प्रकार से ३५ व्यूहों का भेदन करके जब ३६वें व्यूह का भेदन कर चुका तभी परशुराम ने बाणों से उसके तरकस तथा धनुष की प्रत्यंचा को काट दिया। तदनन्तर अभयासुर रोषभरे हृदय के साथ अन्य तरकस लेकर प्रत्येक बाण के परशुराम के बाणों को काटकर पाँच बाणों से उनके धनुष तथा कुठार को भेदकर, दस उल्का के सदृश बाणों का प्रहार परशुराम के मस्तक पर किया। तब पार्वतीनन्दन गजानन देव ने परशुराम को बाणों से आहत होते देखा।।३४-३७।।

महामेघनिनादेन मुमोच दारुणं शरम्। विद्युतपूर्व्वमहारावं मन्त्रोदधिसमाकुलम् ॥३८॥
अलिवृन्दवरारावविशिखिदर्दुरसङ्कुलम्। केकिभिश्च सदा धृष्टं चातकेच्छाप्रवर्त्तकम् ॥३९॥
नीललोहितमध्यान्तं गरलेभसमप्रभम्। छादयन्तो दिशः सर्वाः पूरयन्तो नवाम्बुभिः ॥४०॥
पाशोद्यतकरं घोरं समयोपरि पपात सः। रथनागाश्वपादातं हन्यमानं सहस्रधा ॥४१॥
न संख्या विद्यते तात घातमानस्य दानवात्। तदाभयः सुसंक्रुद्धो वायव्यास्त्रं व्यचिन्तयत् ॥४२॥

यह देखकर भगवान् गजानन ने मेघ के समान गम्भीर गर्जना करके असुर पर वारुणास्त्र का प्रहार किया। गम्भीर शब्दायमान जलधारा से परिव्याप्त इस अस्त्र से पहले विद्युत् चमकने लगी; तदनन्तर भीषण ध्वनि होने लगी। यह देखकर चातकगण वृष्टि जनित जल पीने में प्रवृत्त हो गये तथा भ्रमरगण, मयूर तथा मेढ़क शब्द करने लगे। गरल तथा करि के समान देहप्रभा वाला अन्धकारमय यह अस्त्र नीललोहित वर्ण का लक्षित होने लगा। यह भीषण पाशपाणि वरुणदेव का

वरुणास्त्र समुदय दिक् मण्डल को आच्छादित करके नवजलधारा से सर्वत्र व्याप्त होकर हजारों हजार गज, अश्व, रथ तथा पैदल सैनिकों को गिराकर अभयासुर पर गिरने लगा। कितने दानव इस दिव्यास्त्र से निहत हो गये, उनकी गिनती ही नहीं थी। तब दैत्यराज अभय ने अतिशय क्रोधित होकर वायव्यास्त्रों का स्मरण किया।।३८-४२।।

सारङ्गं रथमारूढं स पताकाध्वजाकुलम्। नागाद्रिशिखरोत्खातभग्नप्रासादतोरणम् ॥४३॥
वारुणं नाशयामास जलास्त्रं पावनस्तदा। तदा रामेण क्रुद्धेन आग्नेयं चिन्तितं शरम् ॥४४॥

तब उस पवनास्त्र ने वारुणास्त्र को रोक दिया और सारंगयोजित रथ पर आरूढ़ (पवनास्त्र ने) होकर वृक्षों, शैलशिखरों, प्रासादों तथा तोरणावलि को भग्न कर दिया। इसने वारुणास्त्र नामक जलास्त्र को तिरोहित कर दिया। यह देखकर जामदग्न्य परशुराम ने रोषान्वित होकर आग्नेयास्त्र का स्मरण किया।।४३-४४।।

पिङ्गाक्षछागमारूढं सप्तजिह्वं भयानकम्। शक्तिहस्तं महा उग्रं कालाग्निसमतेजसम् ॥४५॥
दहन्तं दानवी सेनां भस्मीकुर्वञ्चराचरम्। तदा दानवनाथेन मुक्तं नारायणं शरम् ॥४६॥

तब उस पिङ्गाक्ष, बकरे पर आसीन, सात जिह्वा वाले, हाथ में शक्ति धारण किये प्रलयकालीन अग्निवत् प्रभायुक्त, महाभीषण आग्नेयास्त्र को चराचर को दग्ध करते तथा दानवसेना को दग्ध करते देखकर दानवराज ने अभयप्रद नारायणास्त्र को छोड़ा।।४५-४६।।

शङ्खचक्रगदाहस्तं खगपृष्ठव्यवस्थितम्। तदा शङ्कां सुरा जग्मुस्तेन रामो निपातितः ॥४७॥

तब समस्त सुरवृन्द शंख-चक्र-गदाधारी गरुडारूढ़ इन महास्त्र को देखकर यह शंका करने लगे कि अब इससे निश्चित रूप से जामदग्न्य परशुराम हत हो जायेंगे।।४७।।

विमुक्तोऽयममोघात्मा सुरार्च्चनैव संकृतिः। अकृत्वा संक्षयं याति अरिसैन्यं कदाचन ॥४८॥

जैसे सुरार्चनजनित संस्कार (पुण्य) कभी नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार से यह अमोघ अस्त्र छोड़े जाने पर प्रतिपक्ष की सेना का नाश किये विना कदापि शान्त नहीं होता।।४८।।

दिव्या न संहतिश्चास्य रामप्राणैरसंकृतैः। तदा रामेण क्रुद्धेन ब्रह्मास्त्रं प्रतिवारणे ॥४९॥
नारायणविघातार्थं चिन्तितं चतुराननम्। मुञ्जमेखलदण्डाक्षं स्रुवदर्भकृताजिनम् ॥५०॥
हूङ्काररावबहुलमागत्य पुरतः स्थितम्। तदाभयं महंश्चासीद् दैत्येषु च सुरेषु च ॥५१॥

परशुराम किसी भी प्रकार के सामान्य बाणों से इस अस्त्र का संहार नहीं कर सकेंगे। देवगण इसी प्रकार से चिन्ता कर रहे थे, तभी परशुराम ने क्रोधित होकर उक्त नारायणास्त्र के लिये विधाता के ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया। इस अस्त्र के कटिदेश में मनोहर मेखला, हाथों में चार हाथ वाला दण्ड, अक्षमाला, स्रुव तथा दर्भ (कुश) विद्यमान था। तदनन्तर यह भयानक अस्त्र घन-घन हुङ्कार करते-करते नारायणास्त्र के समक्ष आ गया। तब सुर-असुर सभी भयपूर्वक सोचने लगे।।४९-५१।।

अमोघे दिव्यवपुषे असंहार्य्ये महाबले। दिव्यास्त्रे ब्रह्मविष्णुजे कथं मोघान्निरर्थके ॥५२॥
अकृत्वा नायकानान्तु स्वं स्वं स्थानं व्रजन्ति ते। एवं ते युद्धसंरब्धे दृष्ट्वा ते ब्रह्मविष्णुजे ॥५३॥

वे सोचने लगे कि यह अमोघ, दिव्यवपुः, असंहार्य, महाबली, वैष्णव तथा ब्रह्मास्त्र नामक दिव्य दोनों अस्त्र कभी भी व्यर्थ होने वाले नहीं हैं। सभी यह सोचते-सोचते अपने-अपने स्वामी से विना आज्ञा लिये वहाँ से हटकर अपने-अपने स्थान पर जाने लगे। ब्रह्मा-विष्णु का यह (आपसी) युद्ध गजानन ने भी देखा।।५२-५३।।

गजाननोऽपि सञ्चिन्त्य यत्तत् पाशुपतं शरम्। महारूपं महामायं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥५४॥
पञ्चवक्त्रं महाघोरं दशबाहुं त्रिलोचनम्। सौम्यं घोरं सुघोरस्य ऊर्ध्वकेशं भयोत्कटम् ॥५५॥
जटाभारेन्दुगङ्गाहिधारमाणं शिवात्मकम्। वेणुवीणाशङ्खघण्टाडमरुशवसङ्कुलम् ॥५६॥

तब उन देव गजानन ने पाशुपतास्त्र का स्मरण किया। युगान्त (प्रलय) कालीन अग्नितुल्य भीषण प्रभायुक्त इस शिवात्मक अस्त्र का रूप तथा शरीर अतीव भयङ्कर था। इसके १० हाथ, ५ मुख तथा प्रत्येक चेहरे पर (मुख पर) तीन-तीन नेत्र थे। ये पाँचों मुख अतीव भयङ्कर थे। सबके केश भी ऊर्ध्व की ओर उठे थे। यह सौम्य होकर भी घोर था। इसके ऊर्ध्वोन्नत जटाजाल के मध्य में चन्द्रकला शोभित थी तथा भीषण सर्पराज थे; साथ ही सुरशैवालिनी गंगा भी प्रबल वेग से इधर-उधर धावमान थी। इस अस्त्र के हाथों में वेणु-वीणा-घण्टा-डमरु के परस्पर सट जाने से जो शब्द हो रहा था, वह डमरु ध्वनि के साथ तुमुल रूप में उठ रहा था।। ५४-५६।।

उल्कादण्डोज्वलं जालं गोनागकृतभूषणम्। ललन् मेखला नागेन्द्रं गजचर्म्मार्द्रवाससम् ॥५७॥
केकरं तर्ज्जमानन्तु शूलखट्वाङ्गधारिणम्। ग्रसमानं समस्तेदं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५८॥

उनके अंगों से उल्कादण्ड की प्रज्वलित ज्वाला निर्गत हो रही थी तथा उनका शरीर बड़े-बड़े गो-नाग-सर्पों से भूषित था। उनका परिधान से रक्त से आर्द्र गजचर्म, कटिदेश में नागराज की मेखला विराजित थी। वे शूल, खट्वाङ्गधारी, लपलपाती जिह्वा वाले भीमदर्शन पाशुपत वक्र दृष्टि से सबके प्रति ऐसा तर्जन कर रहे थे मानो सचराचर त्रैलोक्य को ग्रसित करने के लिये उद्यत हों।।५७-५८।।

पुरतो विघ्ननाथस्य लेलिहानं व्यवस्थितम्। वद तात भयं किं ते येनाहं स्मरितस्त्वया ॥५९॥
केन वाक्यस्य नाशाय त्वरया मे उदीरय। एवं तं पूजयित्वा तु अभयोपरि मोचितम् ॥६०॥

वे इसी लेलिहान स्थिति में विघ्ननाथ गजानन के सामने आकर करने लगे—वत्स! तुमको कौन-सा भय आ गया है, जिसके लिये मेरा स्मरण किया है? तुमने किस कारण से किसके विनाशार्थ मेरा स्मरण किया है? शीघ्र मुझसे कहो। तदनन्तर देव गजानन ने उनकी पूजा करके उस अस्त्र को अभयासुर पर छोड़ दिया।।५९-६०।।

तदा स तर्ह्यमानस्तु भित्त्वा दानववाहिनीम्। विदार्य्य ब्रह्मविष्णवस्त्रं मध्ये गत्वा विचार्य्य च ॥६१॥
दानवान्तं तदा चक्रुः कोटिधा बहुधा महत्। कृत्वान्तं दानवानान्तु अस्त्राणां भेदनं तथा ॥६२॥
अभयं घातयित्वा तु आगतस्तं सकारणम्। तेन शूलप्रहारेण विगतासुर्महाबलः ॥६३॥
प्राकृतं देहमुत्सृज्य गणलोकं समाययौ। ते च अस्त्राणि सम्पूज्य स्वं स्वं स्थानं विसर्ज्जिरे ॥६४॥

यह अस्त्र छोड़ने-मात्र से गर्जन करते-करते दैत्य सेना का भेदन करके ब्राह्म एवं वैष्णवास्त्र के बीच में गया और उन दोनों का विदारण करके असंख्य कोटि दैत्यों के प्राण हर लिये। यह अस्त्र इस प्रकार से असंख्य दानवगण का संहार करके तथा अन्य अस्त्रों का विदारण करके पुनः गजानन के पास चला गया। इधर वह महाबली पराक्रमी दैत्यराज अभय पाशुपतास्त्र के शूलप्रहार द्वारा जीवननाश होने पर पञ्चभूतात्मक शरीर का त्याग करके गणलोक चला गया। अब गजानन देव ने भी उन दिव्यास्त्रों का पूजन करके उनको उनके अपने स्थान पर भेज दिया।।६१-६४।।

हते तस्मिन् महामात्ये सर्वदेवारिकण्टके। दण्डके पूजिता देवी रुद्राणीति तदा मता ॥६५॥

निखिल देवगण के भीषण कण्टकरूप महामायावी अभयासुर का वध हो जाने पर इस दण्डकारण्य में रुद्राणी नाम से प्रसिद्धा देवी पूजिता होती हैं।।६५।।

नवम्यां कुजवारेण कुम्भसंस्थे तु भास्करे। कृष्णपक्षे तु यामार्द्धे अभयो विनिपातितः ॥६६॥
गणाः सम्पूजिता देवैर्देवी च विधिना ततः। सर्वबाधाविनिर्मुक्ता देवा याता नृपास्तथा।
पूजा स्नानं तथा दानं कृतमेतेषु कामिकम् ॥६७॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे त्रैलोक्याभ्युदयेऽभयवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जब सूर्य कुम्भराशि में हो, तब कृष्णपक्षीय मंगलवार वाली नवमी तिथि के दिन अर्द्ध प्रहर समय में उक्त अभयासुर के वधोपरान्त देवताओं ने निखिल अनुचरणगणों के साथ देवी का पूजन किया। तदनन्तर सुरगण तथा समस्त नृपतिगण ने सर्वबाधा-विनिर्मुक्त होकर यथास्थान को प्रस्थान किया। उक्त समय पर पूजा, स्नान तथा दान करने से यथा अभिलषित फल मिलता है।।६६-६७।।

त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

मनुरुवाच

गजाननोऽपि स्वस्थानं गतो मालव्यभूधरम्। रामोऽपि पृथिवीं जित्वा द्विजदेवेषु विन्यसेत् ॥१॥
न्यस्य राज्यस्तदा तात देवीनां कारयेत्पुरम्। सागरान्ते महापुण्यं यशोदण्डमहार्णवे ॥२॥
तत्रस्थामानयेद् देवीं कालिकां कालनाशिनीम्। अयोध्यायां महादेवी तेन सा सन्निवेशिता ॥३॥

मनु कहते हैं—हे तात! तदनन्तर भगवान् गजानन ने अपने वासस्थान मालव्य पर्वत पर गमन किया। परशुराम ने भी समस्त पृथिवी को जीतकर उसे देवता तथा द्विजगण को अर्पित किया और पुनः देवी का आह्वान करने लगे। वे सागर के पार उत्तर सागर में यशोदानामक परम पवित्र स्थान में स्थित कालनाशिनी कालिका को अयोध्या लाये और वहाँ उनको स्थापित किया।।१-३।।

तदंशा पूर्वमाख्याता या दुर्गा नव कीर्त्तिताः। महोदये महाबाहो ये चान्ये वैदिशे स्थिता ॥४॥
मृत्युञ्जयं महापुण्यं यत्र सन्निहितः शिवः। भृगुणा पूजिता देवी सा वै कालिका मता ॥५॥

पूर्व में उनकी अंशरूपा नवदुर्गा का उल्लेख किया है। हे महाबाहो! महोदय वे नवदुर्गा हैं एवं वैदिश देश में उनकी अपर दो मूर्त्तियाँ स्थित हैं। मृत्युञ्जय पुण्यक्षेत्र में भगवान् भवानीपति सतत सन्निहित रहते हैं। जमदग्निकुमार परशुराम ने सर्वाभीष्ट सिद्धि की इच्छा से वहाँ स्थित कालिका देवी की यथाविधि अर्चना की थी।।४-५।।

रामेण जामदग्येन सर्वकामसमृद्धये। तथान्येऽपि च ये वात्र देवी भक्ता यजन्ति च ॥६॥
ते विद्यायुर्यशोऽर्थादि सुखं प्राप्नोत्यनुत्तमम्। कामिकं कामिका देवी दद्याद्वै मलयालये ॥७॥
मन्दाक्षे दापयेद्देवी सर्वकामास्तु अम्बिका। तारा मन्दारशिखरे कामिकं ददते फलम् ॥८॥
वैरोचनेन दनुना कन्यार्द्धे चन्द्रपर्व्वते। पञ्चमूर्तिगता देवी पूजिता सर्वकामदा ॥९॥
मेधा गौरी यथा यक्षी ज्वालास्या विन्ध्यवासिनी। पूजिता संस्तुता ब्रह्मन् सर्वकामफलप्रदा ॥१०॥

इसी प्रकार से अन्यान्य देवीभक्त भी वहाँ उनका पूजन करते हैं। वे विद्या-आयु-यश तथा अर्थादि के साथ परम सुख प्राप्त करते हैं। मलयाचल पर कामिका, मन्दाक्ष पर्वत पर अम्बिका तथा मलयागिरि पर तारा नाम्नी जो देवी हैं, वे भी भक्तों

को इच्छित फल देती रहती हैं। दैत्यराज वैरोचन द्वारा सूर्योदय के कन्याराशि पर अर्द्धगत होने पर चन्द्रपर्वत पर मेधा-गौरी-यक्षी-ज्वाला तथा विन्ध्यवासिनी नामक पञ्चमूर्त्तिमयी सर्वकामप्रदा देवी भगवती पूजित की गई हैं। हे ब्रह्मन्! इन सबकी यथाविधि अर्चना करने तथा जप करने पर ये सभी देवीगण अभीष्ट फल देती हैं।।६-१०।।

किष्किन्ध्ये भैरवी देवी सर्वकामान् प्रयच्छति। विन्ध्ये विन्ध्यावटी नाम पूजिता तलसम्बरे ॥११॥
पञ्चास्था पूजिता देवी अपमृत्युं व्यपोहति। एवं संस्थानरूपेण पूजिता तारितात्मभिः ॥१२॥
सर्वकामप्रदा तात भवेत् सर्वसुखावहा ॥१३॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे त्रैलोक्याभ्युदये देव्या महाभाग्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

किष्किन्धा पर्वत पर भैरवी नाम से एवं विन्ध्य पर विन्ध्याटवी नाम से जो देवी हैं, उनके पूजन से भी सभी वांछित विषय सिद्ध हो जाता है। सम्बर पर्वततल में पञ्चास्या नामक जो देवी हैं, वे पूजिता होने पर अकालमृत्यु का भय हर लेती हैं। हे तात! पवित्र मानवगण इन देवी भगवती की इन मूर्त्तियों के पूजन द्वारा सर्वप्रकार के सुख एवं अभीष्ट इन देवीगण से प्राप्त करते हैं।।११-१२।।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त

●

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

शक्र उवाच

स्वल्पेनैव तु द्रव्येण महापुण्यं यथा भवेत्। तदहं श्रोतुमिच्छामि ग्रहयागं सुरेश्वर ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—जैसे ग्रह आदि (पुण्यकाल) में याग करने से सामान्य द्रव्यों से भी महत् पुण्यफल मिलता है, ऐसा ग्रहयोग सुनने की इच्छा है।।१।।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यथा त्वं परिपृच्छसि। अल्पक्लेशं महापुण्यं ग्रहार्कतिथियौगिकम् ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—तुमने जो अल्प क्लेश से साध्य तथापि महापुण्यजनक ग्रह-नक्षत्र-तिथि-योगघटित योग के सम्बन्ध में पूछा है, मैं उसके सम्बन्ध में वर्णन करता हूँ। श्रवण करो।।२।।

भृगुपूर्णाष्टमी योगं शिवयोगेषु चोत्तमम्। मृदुवर्गञ्च भाग्यञ्च उमाया भृगुवासरे ॥३॥
दैवयोगाद्यदा षष्ठि पुष्यर्क्षरविवासरम्। स्कन्दयागस्तदा कार्य्यः सर्वकामप्रसाधकः ॥४॥
वारेण वा यदा सूर्य्यः सप्तमी विजया मता। तदा तु भरते भानोर्योगः सर्वगुणावहः ॥५॥

शुक्रवार की पूर्णाष्टमी का (शुक्लपक्ष की अष्टमी) योग सभी शिवयोगों में उत्तम है। दैवयोगवशात् शुक्रवार की सप्तमी तिथि को रोहिणी आदि मृदुगण नामक नक्षत्र तथा पूर्वाफल्गुनी नक्षत्र एवं रविवार षष्ठी में पुष्यनक्षत्र का योग होने पर स्कन्दयाग करना चाहिये। यह सर्वकाम प्रदायक होता है। रविवासरी सप्तमी का नाम है—विजया। इस काल में भानुयाग (सूर्ययाग) करने से सभी समृद्धि प्राप्त हो जाती है।।३-५।।

शशि रिक्तान्यसंयोगे आर्द्रर्क्षे मातरासु च। नवम्यां मङ्गलायोगो भानुमूलदिनं यदा ॥६॥
अष्टम्यां त्वथ चन्द्राहे श्रावणेन सुखावहम्। अहि ब्रध्ने कुजाहे तु गणेशे तस्य चाहनि ॥७॥

पुनर्वसौ गुरुवरि द्वादश्यां श्रवणेन वा। सोमग्रस्तं तदा योगं विष्णोः सर्वार्थसाधकम् ॥८॥

सोमवासरी रिक्ता तिथि पर यदि आर्द्रा अथवा कृत्तिका नक्षत्र हो, रविवर की नवमी को मङ्गलायाग करना चाहिये। सोमवासरी अष्टमी के दिन यदि श्रवण नक्षत्र हो, मंगलवार के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तथा चतुर्थी तिथि हो, बृहस्पतिवार की चतुर्थी को पुनर्वसु नक्षत्र हो तथा सोमवासरी द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र हो, तब विष्णुयाग करने पर सर्वार्थसिद्धि मिलती है।।६-८।।

द्वितीयायां यदा सौम्ये कृत्तिकाक्षं भवेत् क्वचित्। ग्रहयागस्तदा कार्यः सर्वशान्तिप्रदायकः ॥९॥

यदि बुधवारीय द्वितीया को कदाचित् कृत्तिका नक्षत्र हो, तब इस समय सर्वशान्तिदायक ग्रहयाग करना चाहिये।।९।।

स्वाती शनि चतुर्थी च उमायागे वरा स्मृता। उत्तरासु च सर्वासु भानु पौर्णाष्टमीषु च ॥१०॥
यान्त्यभीषेकयागेषु सर्वकामावहाष्टमी। गुरोरेकादशी पुष्ये रोहिण्यां वा यदा शनि ॥११॥
सुतसौभाग्यकामाय यागं रुद्रविनायके। पूर्णिमासु च सर्वासु अष्टमीद्वादशीषु च ॥१२॥
चतुर्दश्यां तृतीयासु ग्रहर्क्षेषु शुभेषु च। सर्वेषां भवते यागो भक्तिपूर्वो महामुने ॥१३॥

स्वाती नक्षत्रयुता शनिवार की चतुर्थी को उमायाग करना प्रशस्त है। रविवासरी पूर्णा अष्टमी को उत्तराषाढ़ा हो या उत्तरफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद नक्षत्र पड़े तब शान्तिकार्य, अभिषेक तथा याग करने से सभी इच्छित फल मिल जाते हैं। गुरुवारीय एकादशी के दिन पुष्य नक्षत्र पड़े अथवा इस दिन शनि रोहिणी नक्षत्र में हो, उस समय रुद्र अथवा विनायक का याग करने से पुत्र-सौभाग्यादि मिल जाता है। हे महामुने! किसी भी पूर्णिमा, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी अथवा तृतीया तिथि के दिन शुभ नक्षत्र तथा शुभ ग्रह के योग में भक्तिपूर्वक सभी देवों का याग किया जा सकता है।।१०-१३।।

योगज्ञानं यशःसिद्धिं महादेवादवाप्नुयात्। आरोग्यं सप्रतापत्वं भास्करात् प्राप्यते ध्रुवम् ॥१४॥
गतिमिष्टां यथाकामं प्रयच्छति त्रिविक्रमः। विघ्नो न भवते तस्य यस्तु पश्येद्विनायकम् ॥१५॥

योग-ज्ञान-यश-सिद्धि शिवयाग से तथा आरोग्य, प्रभूत यश सूर्ययाग से निश्चय ही मिलता है। भगवान् नारायण का याग करने पर वे यथेच्छ अभीष्ट गति प्रदान करते हैं। जो यागस्थल में भगवान् विनायक का दर्शन करते हैं, उनको किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं होता।।१४-१५।।

विगतराविर्भवेत् षष्ठ्यां स्कन्दं दृष्ट्वा मखे क्षणात्। मातृयागान्महासिद्धिः सर्वेषामपि जायते ॥१६॥

षष्ठी तिथि के दिन यज्ञ में स्कन्द का (एक क्षण में लिये भी) निरीक्षण करने पर व्यक्ति तत्क्षण शत्रुरहित हो जाता है। मातृकागण का याग करने वाला सभी महासिद्धि प्राप्त कर लेता है।।१६।।

भवते धनवान् पुंसः प्रथमाहे हुताशनात्। स्वर्गापवर्गसंसिद्धिर्दुर्गायागात् प्रजायते ॥१७॥

अग्नि का यज्ञ करने पर पहले ही दिन व्यक्ति धनवान होता है। दुर्गायाग-फल से मानव को पहले स्वर्गभोग, तदनन्तर परिणामतः मोक्ष मिलता है।।१७।।

माघाद्यैर्मङ्गलां सौख्यां ज्यैष्ठाद्यैर्ब्रह्मजं यजेत्। ईषाद्यैः कालिकाद्यास्तु यष्टव्या विधिना मुने ॥१८॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रैलोक्याभ्युदये उदयतिथ्यृक्षयोगमाहात्म्यकीर्त्तनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

हे मुने! सर्व प्रकार के सुखलाभार्थ मानवगण को माघादि मासचतुष्टय में मंगलादेवी का, ज्येष्ठादि चार मास में ब्रह्माणी का तथा आश्विन्यादि मासचतुष्टय में यथाविधि कालिकादि देवी का पूजन याग से करना चाहिये।।१८।।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

देवी गुणत्रयाविष्टं मण्डपं कोटिविस्तरम्। ब्रह्मादि स्तम्बपर्य्यन्तमुत्पन्नं सचराचरम् ॥१॥
अण्डे हिरण्यगर्भस्थं यत्तत्त्वं गर्भसंश्रितम्। तत्रोत्पन्नमिदं व्योमरूपाणि द्यौर्मही भवेत् ॥२॥
अधोर्ध्वकाञ्चनमयश्चतुरस्रोच्छ्रितो महान्। उत्पन्नः स चतुःशृङ्गो मेरुर्दैवतसंश्रयः ॥३॥
पृथिवीं पद्मं दिशः पत्रं मेरुस्तस्य तु कर्णिका। युगाक्षकोटिविन्यस्तं तत्र कृत्वा रथं रविः ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—इन त्रिगुणमयी देवी के गुणत्रय से ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सचराचर कोटि-कोटि मण्डप समुत्पन्न होते हैं। पहले ब्रह्माण्ड में इस प्रकृति से सगर्भ महत्तत्त्व उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् महत्तत्त्व से क्रमशः आकाश, रूप, स्वर्ग, पृथिवी प्रादुर्भूत होती है। इस पृथिवी से और भी ऊर्ध्व में काञ्चनमय, चतुरस्र, अत्युन्नत, बृहत्, शृङ्गचतुष्टय से शोभित, देवगण की वासभूमि सुमेरु पर्वत प्रकाशित हुआ। इस पृथिवीरूपी पद्म के सभी दिक् पत्ररूप हैं एवं सुमेरु कर्णिकारूप है।।१-४।।

देवीञ्च संवृतो देवैर्याति तस्य प्रदक्षिणम्। तस्मिन् मेरौ त्रयस्त्रिंशत् वसन्ते याज्ञिकाः सुराः॥५॥

साक्षात् देवीस्वरूप भगवान् भास्कर कोटि चक्र तथा युगयुक्त सुविस्तीर्ण रथ पर आरोहण करके देवगण से घिर कर प्रतिदिन इस पृथिवीपद्म की प्रदक्षिणा करते हैं।।५।।

रुद्रा एकादश ज्ञेया आदित्या द्वादशैव तु। तथैव वसवो ह्यष्टौ अश्विनौ द्वौ च याज्ञिकौ ॥६॥
वसन् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहानादित्यानश्विनौ चात्मनस्तनुम् ॥७॥
पितॄन् भूयः प्रचक्षिष्ये ऋतुं संवत्सरार्त्तवान्। अतो यज्ञभुजामेषां पृथक् नामानि मे शृणु ॥८॥

पूर्वोक्त सुमेरु गिरि के ऊपर यज्ञभाक् एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु, अश्विनीकुमारद्वय—ये ३३ देवता अवस्थित हैं। बुध व्यक्ति इन अष्टवसु को पितृगण, रुद्रों को पितामह, द्वादश आदित्य को प्रपितामह तथा अश्विनीकुमारयुगल को अपने शरीरस्वरूप कहते हैं। अब ऋतु, संवत्सरप्रभृति पितृगण के विषय में बाद में उल्लेख करूँगा। इस समय इन सभी यज्ञभाक् रुद्रादि देवगण का पृथक्-पृथक् नाम कहा जा रहा है, सुनो।।६-८।।

अजैकपादहिर्बुध्न्यो अष्टौ रुद्रश्च वीर्य्यवान्। हरश्चैवाथ शर्वः त्र्यम्बकश्चापराजिताम् ॥९॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्द्दी रैवतस्तथा। ईश्वरोऽपि भुवश्चैते रुद्रा एकादश स्मृताः ॥१०॥
आदित्यानान्तु नामानि विष्णुः शक्रश्च वीर्य्यवान्। अर्यमा चैव धाता च मित्रोऽथ वरुणस्तथा ॥११॥
विवस्वान् सविता चैव पूषा त्वष्टा तथैव च। अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादशा स्मृताः ॥१२॥

अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, हर, शर्व, त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी तथा रैवत—ये एकादश रुद्र भुवनमण्डल के ईश्वर हैं। आदित्यगण का नाम है—विष्णु, शक्र, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंश तथा भग। ये द्वादश आदित्य हैं।।९-१२।।

ध्रुवो धवश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभाणश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ॥१३॥
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनौ अपि। विश्वेदेवान् प्रवक्ष्यामि नामतस्तान् निबोध मे ॥१४॥
क्रतुर्दक्षः सुरः सत्यः कामः कालो धृतिः कुरुः। मनुमान् रोचमानस्तु विश्वेदेवा दश स्मृता ॥१५॥

ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभाष—ये आठ वसु हैं। नासत्य एवं दस्र—ये अश्विनीकुमारद्वय हैं। अब विश्वेदेवगण का नामोल्लेख करता हूँ; श्रवण करो। क्रतु-दक्ष-सुर-सत्य-काम-काल-धृति-कुरु-मनुमान् तथा रोचमान—ये दश लोग विश्वेदेव हैं।।१३-१५।।

वर्त्तमाना इमे देवाः शृणु मन्वन्तरो भवान्। यामाश्च तुषिताश्चैव तथैव वशवर्त्तिनः ॥१६॥
सत्या अद्भुतरजसः साध्याश्च तदनन्तरम्। षट्सु मन्वन्तरेष्वेते देवा द्वादश द्वादश ॥१७॥
याम्या गतास्तथा त्वन्ये सत्यैः सतुषितैः सह। एते यशभुजो देवा नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठिताः ॥१८॥

ये सभी देवता वर्त्तमान सप्तम मन्वन्तर में विद्यमान हैं। अब अपर मन्वन्तर में जिन सब देवताओं का उद्भव हुआ है, उसे सुनो। पहले याम्य, तदनन्तर तुषित, वशवर्त्ती, सत्य, अद्भुतरजा: तथा तत्पश्चात् साध्य नामक द्वादशसंख्यक देवता गत छ: मन्वन्तर में प्रादुर्भूत हुये हैं। उक्त याम्य तथा तुषित के साथ सत्यादि समस्त देवगण गत हो गये हैं। ये सभी यज्ञभुक् देवगण नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित रहते हैं।।१६-१८।।

अतीतान् वर्त्तमानांश्च पुनश्चापि निबोध मे। आदित्या मरुतो रुद्राः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ॥१९॥
विश्वेऽथ वसवः साध्या विज्ञेया धर्म्मसूनवः। एवं धर्म्मसुतः सोमस्तृतीयो वसुरुच्यते ॥२०॥
धर्म्मोऽपि ब्रह्मणः पुत्रः पुराणे निश्चयो मतः।

जो सब देवता अतीत हैं, जो वर्त्तमान हैं, उनके सम्बन्ध में पुन: कहता हूँ, सुनो। पूर्वोक्त द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, मरुद्गण कश्यपपुत्र हैं तथा पुराण के विश्वेदेव, वसु तथा साध्यगण को धर्म का पुत्र जानना चाहिये। धर्मपुत्र सोम तृतीय वसु कहे जाते हैं। पुराणों के निश्चित मत से धर्म को ब्रह्मपुत्र कहा गया है।।१९-२०।।

अथ इन्द्रान् मनुश्चैव नामभिस्तु निबोध मे ॥२१॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषः स्मृतः। औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥२२॥
इत्येते षडतिक्रान्ता सप्तमः साम्प्रतो मनुः। वैवस्वत इति ज्ञेयो भविष्याः सप्त चापरे ॥२३॥

अब इन्द्र तथा मनुष्यगण का नामोल्लेख करता हूँ, सुनो। पहले स्वायम्भुव मनु, उनके पश्चात् स्वारोचिष एवं क्रमश: उत्तम, तापस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छ: मनु अतीत हो गये हैं। सम्प्रति वैवस्वत नामक सप्तम मनु हैं। अन्य सात मनु भविष्य में होंगे।।२१-२३।।

तेषामाद्योऽर्कसावर्णिः धर्म्मसावर्णिरिव च। तस्माच्च भवसावर्णिः ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ॥२४॥
पञ्चमो दक्षसावर्णिः सावर्णाः पञ्च कीर्तिता। रौच्यो भौत्यश्च द्वावन्यौ इत्येते मनवो मताः॥२५॥

उन सात मनु में से प्रथम हैं—अर्कसावर्णि, तदनन्तर क्रम से धर्मसावर्णि, भवसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि तथा पञ्चम दक्षसावर्णि—ये पाँचों सावर्णि नाम से विख्यात होंगे। रौच्य तथा भौत्य नामक अन्य मनुद्वय हैं। इस प्रकार सब मिलाकर १४ मनु होते हैं।।२४-२५।।

इन्द्रश्च विश्वभुक् ज्ञेयो विपश्चित्तदनन्तरम्। विभुः प्रभुः शिखि चैव तथैव च मनोजवः ॥२६॥
औजस्वी साम्प्रतस्त्विन्द्रो बलिर्भाव्यस्त्वनन्तरम्। अद्भुतस्त्रिदिवा चैव दशमस्त्विन्द्र उच्यते ॥२७॥
सुशान्तिश्च सुकीर्तिश्च ऋतधामा दिवस्पतिः। इति भूता भविष्याश्च इन्द्रा ज्ञेयाश्चतुर्दश ॥२८॥

प्रथम इन्द्र हैं विश्वभुक्। तदनन्तर क्रम से विपश्चित्, विभु, प्रभु, शिखी, मनोजय तथा ओजस्वी हैं। ओजस्वी वर्त्तमान इन्द्र हैं। इसके अनन्तर बलि राजा इन्द्र होंगे तथा उसके पश्चात क्रमश: अद्भुत, त्रिदिव, सुशान्ति, सुकीर्त्ति, ऋतुधामा तथा दिवस्पति इन्द्र होंगे। इस प्रकार अतीत तथा भविष्यत् में मिलाकर १४ इन्द्र होते हैं।।२६-२८।।

काश्यपोऽत्रि वशिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः। विश्वामित्रो जमदग्निश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥२९॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि मरुतोऽग्नीन् पितॄन् ग्रहान्। प्रवहो निवहश्चैव उद्भवः सम्भवस्तथा ॥३०॥
प्रवाहो विवहश्चैव परिवाहस्तथैव च। अन्तरीक्षे चरा ह्येते पृथङ्मार्गविचारणाः ॥३१॥
महेन्द्रप्रविभक्ताङ्गमरुतः सप्त कीर्त्तिताः।

काश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र तथा जमदग्नि—ये सात ऋषि कहे गये हैं। इसके अनन्तर वायु, अग्नि, पितृगण तथा ग्रहगण के विषय में कहता हूँ। प्रवह, निवह, उद्वह, संवह, प्रवाह, विवह तथा परिवाह—ये सप्त वायु वाह्य अन्तरिक्ष में पृथक्-पृथक् मार्ग में विचरते रहते हैं। पूर्व में देवराज ने वायु को सात खण्डों में विभक्त किया था। अतः ये उपरोक्त सात प्रकार के हो गये।।२९-३१।।

सूर्य्याग्निश्च शुचिर्नाम्ना वैद्युतः पावकः स्मृता ॥३२॥
निर्म्मथ्यः पवमानोऽग्निस्त्रयः प्रोक्ता इमेऽग्नयः। अग्नीनां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव तु ॥३३॥
मरुतामपि सर्वेषां विज्ञेयाः सप्त सप्ताकाः। एवं संवत्सरो ह्यग्निर्ऋतवस्तस्य जज्ञिरे ॥३४॥

सूर्याग्नि का नाम है—शुचि। वैद्युताग्नि का नाम है—पावक। पचमान अग्नि को निर्मथ्य कहते हैं। ये त्रिविध अग्नि निर्दिष्ट हैं। इन अग्नित्रय के पुत्र-पौत्र की संख्या ४९ है और उक्त सातों वायु में से प्रत्येक के ७-७ पुत्र हैं। इस अग्निरूप संवत्सर से सभी ऋतु उत्पन्न हुये हैं।।३२-३४।।

ऋतुपुत्रार्त्तवाः पञ्च इति सर्गः सनातनः। संवत्सरश्च प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
सांवत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थस्त्वनुवत्सरः ॥३५॥
पञ्चमो वत्सरस्तेषां तदेभिः पञ्चभिर्युगम्। तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्य्यस्तु परिवत्सरः ॥३६॥
सोम इद्वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः। रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः।
द्वादशं पञ्चधा भिन्नाः षष्टिभेदा गुरोर्गमात् ॥३७॥

आर्त्तव नामक ५ ऋतुपुत्र हैं। यही है—सनातन सृष्टि। उक्त पुत्रों में से प्रथम को संवत्सर, द्वितीय को परिवत्सर तथा तृतीय को सांवत्सर कहते हैं। चतुर्थ का नाम है—अनुवत्सर। पञ्चम का नाम वत्सर कहा गया है। संवत्सर अग्निरूप, परिवत्सर सूर्यरूप, सांवत्सर चन्द्ररूप, अनुवत्सर वायुरूप तथा वत्सर रुद्रस्वरूप है। बृहस्पति की गतिविशेष के कारण उक्त द्वादश युगात्मक पञ्चवत्सर द्वादश-पञ्च प्रकार से विभक्त होने से ५ × १२ = ६० प्रकार के हो जाते हैं।।३५-३७।।

विष्णुः सुरेज्यः शक्रश्च अग्निस्त्वष्टा तथैव च। अहिर्बुध्नः-पितृ-विश्वः-सोम-इन्द्रोग्नि-अश्विनः ॥३८॥
भगो द्वादशमस्तेषां युगानां द्वादशो मतः।

उक्त द्वादश युग में से प्रथम विष्णु, द्वितीय सुरेज्य, तृतीय शक्र, चतुर्थ अग्निस्त्वष्टा, पञ्चम अहिर्बुध्न्य, षष्ठ पितृ, सप्तम विश्व, अष्टम सोम, नवम इन्द्र, दशम अग्नि, एकादश अश्वि तथा द्वादश भग नामक युग कहा गया है।।३८।।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ॥३९॥
अङ्गिरा श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च। ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः ॥४०॥
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः। सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः ॥४१॥
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखः। हेमलम्बो बिलम्बश्च विकारी शर्वरी प्लवः ॥४२॥
शोभकृच्छुभकृत् क्रोधी विश्वावसुः पराभवः। प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ॥४३॥

परिवादी प्रमाथी च आनन्दो राक्षसोऽनलः। पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्म्मतिः ॥४४॥
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनक्षयः। षष्टि संवत्सरादन्ते युगैर्द्वादशभिः स्थिता ॥४५॥

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, अव्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शोभकृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिवादी, प्रमाथी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये ६० प्रकार के संवत्सर द्वादश युग में आद्यन्त-मध्य में स्थित रहते हैं।।३९-४५।।

गुरोर्द्वादशमासान्ते वत्सरमुदयास्तयोः। नाम्ना ऋक्षविभेदेन पञ्चधा परिवर्त्तनम् ॥४६॥
अनुगच्छति कालोऽयं ब्रह्मादिकलनोऽथ वा। सूक्ष्मस्थूलविभेदेन कलते सचराचरम् ॥४७॥

वृहस्पति के उदयास्त में नक्षत्रविशेष के कारण द्वादश मासान्त में एक-एक वर्ष होता है। ये सभी वत्सर पञ्चधा परिवर्त्तित होते हैं। ये सूक्ष्म तथा स्थूलभेद से ब्रह्मादि समस्त चराचर का कलन (लय) करते हैं, तभी इनका नाम है—काल।।४६-४७।।

कार्तिकं शोभनं राष्ट्रं सौम्यन्तु मध्यमं मतम्। पुष्यमाघौ शुभौ वर्षौ मध्यमौ फल्गुमाधवौ ॥४८॥

वृहस्पति के उदयास्त से द्वादश मास में एक वर्ष (वत्सर) होता है, इसमें कार्त्तिक नामक वर्ष शुभप्रद होता है। सौम्य अर्थात् अग्रहायण वर्ष मध्यम होता है। पुष्य तथा माघनामक वर्षद्वय शुभदायक एवं फाल्गुन तथा माधव नामक वर्ष मध्यम होता है।।४८।।

वैशाखः प्रवरस्तेषां मध्यमः शुचिसंज्ञितः। आषाढो ह्यधमः प्रोक्त उत्कृष्टः श्रावणो मतः ॥४९॥
भाद्रपदो मध्यफलः श्रेष्ठफलोऽश्विनो वर्षः। कृतिका रोहिणी कायमाषाढेनाभिसंज्ञितम् ॥५०॥
आश्लेषां हृदयं विद्धि मघा पूषन्तु वत्सरम्। एतैः शुद्धैः शुभं क्रूरहस्तैश्चाशुभं भवेत् ॥५१॥

वैशाख नामक वर्ष सभी वर्षों में श्रेष्ठ होता है तथा शुचि एवं आषाढ़ नामक वर्षद्वय मध्यम हैं। श्रावणवर्ष उत्कृष्ट है, भाद्रपद नामक वर्ष मध्यम तथा आश्विन नामक वर्ष उत्तम है। पूर्वोक्त वत्सर का कृत्तिका तथा रोहिणी नक्षत्र शरीर है, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र नाभिस्वरूप तथा पुष्या-आश्लेषा एवं मघानक्षत्र हृदयस्वरूप है। ग्रहशुद्धि रहने से यह समस्त वर्ष शुभ तथा क्रूर ग्रह पर आश्रित होने से अशुभ हो जाता है।।४९-५०।।

मध्यमं प्रभवं वर्षमीतयः सन्ति नो भयम्। चत्वारो विभवाद्याश्च शोभना वियुता ग्रहैः ॥५२॥
अङ्गिराद्याः शुभास्त्रीणि मध्यमावपरौ मतौ। ईश्वरो बहुधान्यश्च शुभौ पापौ प्रमाथिनौ ॥५३॥

पूर्वोक्त प्रभवनामक वर्ष मध्यम है, उसमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि का भय नहीं होता। विभवादि वर्षचतुष्टय यदि क्रूर ग्रहरहित हों, तब वे उत्कृष्ट हो जाते हैं। अङ्गिरादि वर्षत्रय शुभ होते हैं, उसके बाद वाले दो वर्ष मध्यम कहे गये हैं। ईश्वर तथा बहुधान्य नामक वत्सरद्वय शुभ एवं प्रमाथी नामक वर्षद्वय अशुभ हैं।।५२-५३।।

आद्ये तु मध्यमे वर्षे युगेऽस्मिंस्तु तृतीयके। श्रेष्ठमाद्यं चतुर्थस्य मध्यं प्रोक्तं द्वितीयकम् ॥५४॥
त्रीणि चान्यानि श्रेष्ठानि सर्वकामफलानि च। पञ्चमे प्रवरमेकं सर्वधारीति सन्मतम् ॥५५॥

वर्त्तमान तृतीय युग में आदि वाले दो वर्ष मध्यम, चतुर्थ युग का आदि वर्ष श्रेष्ठ तथा द्वितीय मध्यम होता है। इसके बाद वाले वर्षत्रय श्रेष्ठ एवं सर्वकामफलप्रद होते हैं। पञ्चम युग में एकमात्र सर्वधारी वर्ष ही श्रेष्ठ होता है।।५४-५५।।

एषाः कष्टफलाः सर्वे सर्वदोषभयावहाः। चत्वारः शोभना षष्ठे युगे अन्त्यमे शोभनम्॥५६॥
आधारस्तु सप्तमे वर्षे चत्वारो भयदा मताः। शोभनमन्तिमं वर्षं सर्वकामफलप्रदम्॥५७॥
अष्टमे द्वौ शुभौ चान्यौ अशुभं मध्यमं मतम्। मध्ये द्वे चान्तिमे वर्षे गुरुचारवशान्नृप॥५८॥

(पञ्चम युग में) शेष सभी वर्ष कष्टप्रद तथा सभी दोष तथा भय के उत्पादक होते हैं। षष्ठ युग में प्रथम चार वर्ष शुभकारक तथा अन्तिम वर्ष अशुभ फलदायक होता है। सप्तम युग में पहले चार वर्ष भयप्रद तथा अन्तिम वर्ष शुभकारक एवं अभीष्ट फलदाता होता है। अष्टम युग में पहले के दो वर्ष शुभ होते हैं। मध्यम अशुभ तथा बृहस्पति की गति के कारण अन्तिम दो वर्ष मध्यम कहे जाते हैं।।५६-५८।।

आद्यमन्तौ च न शुभौ नवमे द्वे परे शुभे। दशमे मध्यमं श्रेष्ठमाद्यौ अन्तौ च निन्दितौ॥५९॥
तद्वदेकादशे विद्यादाद्यमध्यन्तु शोभनम्। युगे गुरुवासाद् वत्स शुभाशुभफलं नृणाम्॥६०॥

नवम में आदि तथा अन्तिम वर्षद्वय अशुभ होते हैं। बीच के (आदि वर्ष के बाद वाले) दो वर्ष शुभ होते हैं। दशम युग में आदि वर्षद्वय तथा अन्तिम वर्षद्वय निन्दित तथा मध्यम वर्ष शुभ होता है। एकादश युग में भी दशम युग के समान ही शुभ- अशुभ समझना चाहिये। अन्तिम द्वादश युग में केवल पहला वर्ष ही प्रशंसनीय होता है। हे वत्स! बृहस्पति की गतिविशेष के कारण पूर्वोक्त वर्ष मानवगण को शुभाशुभ फल देता है।।५९-६०।।

जन्मर्क्षकृतकर्म्मेषु अष्टद्यानुगतेषु च। परिवर्त्ताः सदा कष्टाः शेषाः सर्वे शुभावहाः॥६१॥
कूर्म्मकालविभागेन यथाचारगमेन तु। शुभाशुभन्तु देशानां प्रयच्छन्ति महाग्रहाः॥६२॥
आग्नेयादिविभागेन त्रिकर्णनवधाकृतम्। कूर्म्माङ्गं भवते लोको यत्रेयं पृथिवी स्थिता॥६४॥

जन्मनक्षत्र तथा तृतीय, चर्तुर्थ, अष्टम, षष्ठ, दशम एवं द्वादश राशि में बृहस्पति आने पर सदा क्लेश देता है; अन्य स्थान पर जाने से शुभ हो जाता है। कूर्मविभागानुसार कालविशेष में सञ्चार-गमन के अनुसार ग्रहगण दशाविशेष में शुभाशुभ फल देते हैं। कृत्तिका से भरणी-पर्यन्त २७ नक्षत्रों को ९ भाग में बाँटने से तीन-तीन नक्षत्र एक-एक भाग में होते हैं। इसी से कूर्म- विभाग होता है। समस्त लोक कूर्म के अंग हैं। यह धरती भी कूर्म पर ही स्थित है।।६१-६४।।

केचित् कालं वदन्त्यन्ये स्वभावमागमेऽपरे। ग्रहभागगतं सर्वं दृश्यतेऽस्मिन् शुभाशुभम्॥६५॥
जम्बुद्वीपे तु वै देशे व्यवहारो भवेन्नृणाम्। तदहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपात् मुनिपुङ्गव॥६६॥

कोई काल को तो कोई स्वभाव को शुभाशुभ का कारण कहते हैं; लेकिन वास्तव में ग्रहभाव ही शुभाशुभ का कारण निर्द्धारित है। जम्बूद्वीप के जिस-जिस देश में कूर्मविभाग को माना जाता है, हे मुनिश्रेष्ठ! उनका नाम संक्षेप में कहता हूँ।।६५-६६।।

मिथिला मेखला काश्या अहिच्छत्रा पुरञ्जकाः। सूर्य्यावर्त्ता नाम पुरी कौशाम्बी याश्च शोभनाः॥६७॥
पाटलिपुत्रं भीरहुती गङ्गापरं यमुनान्तरम्। आनर्त्तपुरं पृथ्वीमध्यान्तं न दृश्यते क्रूरैः॥६८॥

मिथिला, मेखला, काशी, अहिच्छत्र, पुरञ्जक, सूर्यावर्त्त, कौशाम्बी, पाटलीपुत्र, भीरहुती (तीरमुक्ति), गङ्गाद्वार, यमुना का समीपवर्त्ती प्रदेश तथा आनर्त्तपुर कूर्ममध्य में स्थित हैं अर्थात् कृत्तिकादि तीन नक्षत्र के अन्तर्गत ये सब देश आते हैं (कूर्म पूर्वमुख होकर उत्पृष्ठभाव से शयान रहता है; अतः उसके मध्य में कृत्तिकादि तीन नक्षत्र होते हैं)[१]। जब ये सब नक्षत्र (कृत्तिकादि तीन नक्षत्र) क्रूरग्रह से दूषित होते हैं, तब ये सब देश नष्ट हो जाते हैं।।६७-६८।।

---

१. कूर्म के मध्यभाग में कृत्तिकादि तीन नक्षत्र हैं। मस्तक तथा पूर्व की ओर वहाँ आर्द्रादि तीन नक्षत्र हैं। उसका उत्तर पैर ईशानकोण में,

मागधा अङ्गवङ्गाश्च कलिङ्गाः पूर्वसागरम्। माहेन्द्री विषयं गङ्गा मिलिता यत्र सागरे ॥६९॥
समतटं वर्द्धमानश्च शिरोपेतैर्विनश्यति। कामरूपं विदेहाश्च नेपालं रेवतो गिरिः ॥७०॥
काश्मीरमम्बरश्चैव उत्तरपादे विनश्यति। कैकय अच्छोदवनं चित्रं कैलाशमेरुञ्च ॥७१॥
कनकमुत्तरदेशाः कुक्ष्योऽपहते विनश्यन्ति। वाहिका मथुरा वीथी पुरुषपुरा काकोली ॥७२॥
पार्श्वे या च मही पश्चिमपादे विनश्यन्ति। वैदिशश्च सौवीरसिन्धुबालामहाराष्ट्राणि ॥७३॥
सौराष्ट्रपुराधिगता देशाः पुच्छे विनश्यन्ति। अवन्तिका विदर्भाश्च काँची पुरिकाः सिंहला ॥७४॥
वलं मलयवासी च लङ्कापुरी तथैव च। चक्राक्षं दक्षिणे पादे हते नश्यन्ति पीडिताः ॥७५॥

मगध, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पूर्वसागर, माहेन्द्री, गङ्गासागर, संगम, समतट, वर्द्धमान—ये सब कूर्म के मस्तकस्थ नक्षत्रत्रय के दूषित होने पर नष्ट हो जाते हैं। कामरूप, विदेह, नेपाल, रैवतगिरि, काश्मीर तथा उडुम्बर देश—उत्तर पदस्थ नक्षत्रत्रय के दूषित होने पर नष्ट हो जाते हैं। केकय, अच्छोदवन, चित्र, कैलास पर्वत, सुमेरु पर्वत, कनकभूमिप्रभृति उत्तरदेश वामकुक्षिस्थ नक्षत्रत्रय के दूषित होने पर नष्ट हो जाते हैं। वाल्हीक, मथुरा, वीथी, पुरुषपुरा, काकोली प्रभृति देश पश्चिम पादस्थ नक्षत्रत्रय (धनिष्ठा-श्रवणा-उत्तराषाढ) के क्रूरग्रह द्वारा पीड़ित होने पर नष्ट होते हैं। वैदिश, सौवीर, सिन्धु, बालराजा, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र आदि देश भी पुच्छस्थ नक्षत्रत्रय के क्रूरग्रह द्वारा दूषित होने पर विनष्ट हो जाते हैं। अवन्तिका, विदर्भ, काञ्ची, सिंहल, बल, मलयपर्वत, लंकापुरी तथा चक्राक्ष दक्षिण पादस्थ नक्षत्रत्रय के क्रूरग्रह से दूषित होने पर नष्ट हो जाते हैं।।६९-७५।।

नर्म्मदाया मही मध्यं वैजयन्ती च कोङ्कणम्। पुरुषपुरनामा च सह्याख्यश्च महागिरिः ॥७६॥
अरण्यं गोपुरं भीमं कुक्षौ दक्षिणसंयुतम्। वेशं कोशलकान्तारहरकूटमहाध्वनाः ॥७७॥
वेण्या तटं समस्तञ्च गताः पूर्वाङ्घ्रिसङ्गता। विनश्यन्ति हताः क्रूरैर्ग्रहैरुत्पातसूचिताः ॥७८॥

नर्मदा, महीमध्य, वैजयन्ती, कोङ्कण, पुरुषपुर, सहयगिरि, अरण्य, गोपुर तथा भीमराज्य (भिल्लराज्य?) दक्षिण कुक्षिस्थित नक्षत्रत्रय के क्रूरग्रह से पीड़ित होने पर नष्ट हो जाते हैं। वेश, कोशल, कान्तार, हरकूट, महाध्वना, वेणी तट प्रभृति देश पूर्वपादस्थ नक्षत्रत्रय के उत्पातसूचक क्रूर ग्रह से पीड़ित होने पर नष्ट हो जाते हैं और वहाँ उत्पात होने लगते हैं।।७६-७८।।

सूर्यस्योदयमरुतादिसंक्रातौ क्रमपीडिताः। तिर्य्यग्गतश्च मध्याह्ने अस्तमिते अधोमुखो रविश्चरते ॥७९॥
अर्द्धं निशायां शयितः क्रमते उद्ध्वप्रभाते तु। विनिविष्टस्तु वकारादौ शयितो गरतैतिले ॥८०॥
कोलेव चोच्छ्रितो राशिं रविः संक्रमते सदा। धनुः सिंहवृषकुम्भैरुपसंस्थैः सदा वरैः क्षेमम् ॥८१॥
अनुपचयस्थैः क्रूरैस्तैर्दृष्टो लोकनाशाय।

सूर्य के उदय-अस्त आदि संक्रान्ति स्थल में भी पीड़ाक्रम से अवगत हो सकते हैं। मध्याह्न के तिर्यग्गामी होने पर संक्रमण होता है। सूर्य के अस्तसमय में अधोमुख संक्रमण होता है। अर्द्धरात्रि में शयानभाव से संक्रमण, प्रभात में उर्ध्वभाव से संक्रमण, वव, बालव, वणिज तथा विष्टि करणस्थ सूर्य के उपविष्ट भाव में संक्रमण, गर करण तथा तैत्तिल करणस्थ सूर्य

दक्षिण पद अग्निकोण में, पूर्वपद नैर्ऋत कोण में, पश्चिमपद वायुकोण में, पुच्छ पश्चिम की ओर, दक्षिण कक्ष दक्षिण की ओर, वामपद उत्तर की ओर है। कृत्तिका से पूर्वक्रम में तीन-तीन नक्षत्र पदादि में हैं। ईशान कोण में भरणी, अश्विनी, रेवती। उत्तर में उत्तरभाद्रपद, पूर्वभाद्रपद, शतभिषा है। इत्यादि क्रम से कूर्म का विभाग होता है। इस प्रकार अग्निकोण में उत्तरफाल्गुनी, मघा तथा आश्लेषा से आरम्भ होगा। बृहस्पति संहिता १४वाँ अध्याय तथा नारदसंहिता प्रभृति ग्रन्थ में यह कूर्मविभाग द्रष्टव्य है। तब भी देश-नाममेद में कुछ पार्थक्य रहता ही है। उसकी मीमांसा कालादिभेद से की जाती है।

का शयानभाव में संक्रमण, कौलव करण में सूर्य का उर्ध्वभावेन संक्रमण होता है। तब भी कौलव करणादिस्थ सूर्य के अस्तमय संक्रमणादि को उत्पादसूचक जानना चाहिये। संक्रमणकाल में मेष-वृष-कर्क-सिंह-तुला-धनु-मकर अथवा कुम्भराशि यदि षष्ठ, दशम, एकादश हो; तब शुभदायक होता है। यदि ऐसा न हो, यदि पापग्रह से दूषित हो, तब लोक का विनाश होता है।।७९-८१।।

अ इ त ए कृत्तिका ओ व वि वु रोहिणी ॥८२॥

वे वो क कि मृगशिराः कु घ ङ छ आर्द्रा। के को ह हि पुनर्वसुः हु हे हो ड पुष्या ॥८३॥

डि डु डे डो आश्लेषा म मि मु मे मघा। मो ट टि टु पूर्व्वाफाल्गुनी टे टो प पि उत्तरफाल्गुनी ॥८४॥

अ इ ए त—कृत्तिका तथा ओ व वि वु रोहिणी है। वे वो क कि—मृगशिरा। कु छ ङ छ—आर्द्रा। के को ह हि—पुनर्वसु। हु हे हो ड—पुष्य। डि डु डे डो—आश्लेषा। म मि मु मे—मघा। मो ट टि टु—पूर्वाफाल्गुनी। टे टो प पि—उत्तरफाल्गुनी।।८२-८४।।

पु ष ण ढ हस्ता पे पो र रि चित्रा। रु रे रो त स्वाती ति तु ते तो विशाखा ॥८५॥

ना नि नु ने अनुराधा नो य यि यु ज्येष्ठा। ये यो भ भि मूला भु ध फ ढ़ पूर्वाषाढ़ा ॥८६॥

पु ष ण ढ़-हस्त। पे पो र रि चित्रा। रु रे रो त—स्वाती। ति तु ते तो—विशाखा। ना नि नु ने—अनुराधा। नो य यि यु ज्येष्ठा। ये यो भ भि—मूला। भु ध फ ढ़—पूर्वाषाढ़ा।। ८५-८६।।

भे भो ज जि उत्तराषाढ़ा जु जे जो ख अभिजित्। खि खु खे खो श्रवणा ग गि गु गे धनिष्ठा ॥८७॥

गो श शि शु शतभिषा शे शो द दि पूर्व्वभाद्रपदा। दु थ झ ज उत्तरभाद्रपदा दे दो च चि रेवती ॥८८॥

भे भो ज जि—उत्तराषाढ़ा। जु जे जो ख—अभिजित्। खि खु खे खो—श्रवणा। ग गि गु गे धनिष्ठा। गो श शि शु—शतभिषा। शे शो द दि—पूर्वभाद्रपद। दु थ झ ज—उत्तरभाद्रपद। दे दो च चि—रेवती।।७७-८८।।

चु चे चो ला अश्विनी लि लु ले लो भरणी। एतैर्वर्णाक्षरैः सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८९॥

आद्याक्षरस्य नामेन बुध्या कथय शुभाशुभम्। विशाखादि स्थिते सूर्य्ये उत्पातमृत्युकारकि ॥९०॥

चु चे चो ला—अश्विनी। लि लु ले लो—भरणी। इन सब अक्षर के अनुसार त्रैलोक्य मे नाम के आद्य अक्षर द्वारा विवेचना करके सबका शुभाशुभ कहना चाहिये। विशाखादि में स्थित सूर्य उत्पात तथा मृत्युकारक होता है।।८९-९०।।

सिद्धियोगाश्च जायन्ते आद्यन्ताः स्वाति पश्चिमाः। विंश षोडश संख्याताः पञ्चदश च चतुर्दश ॥९१॥

विश्वे सूर्य्याश्च ग्रहाश्च सूर्य्याद्याः शनिपश्चिमाः। छाया सर्वेषु कार्य्येषु साधनाय प्रकीर्त्तिता ॥९२॥

विवाहमङ्गलादीनां संप्रतिष्ठाद्यभिषेचनम्। यात्रा पुष्याभिषेके च छाया संसाधनी शुभा ॥९३॥

इति श्रीदेवीपुराणेऽभ्युदयपादे कालव्यवस्थानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अश्विनी से स्वाती-पर्यन्त नक्षत्र में स्थित सूर्य से कार्यसिद्धि होती है। २०-१६-१५-१४-१३-१२ तथा ११ संख्या होने पर सूर्य से शनिपर्यन्त ग्रहों का अनुभव करना चाहिये। यात्रा, पुण्याभिषेक, प्रतिष्ठा, अभिषेक तथा विवाहादि मंगलकार्य में छायासाधन शुभ होता है (क्योंकि छाया एवं छायाचक्र सभी कार्यसाधनार्थ उपयोगी होता है)।।९१-९३।।

षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्गाः क च ट त पादयाः। लोहितभृगुसौम्यसौराणाम् ॥१॥
सूर्य्यस्य अकाराद्याः शशिनो वर्णा यकाराद्याः । मेषादिषु नवभागार्थे सस्वरवर्णाः क्रमेण समभिगताः ॥२॥

कवर्ग मंगल का, चवर्ग शुक्र का, टवर्ग बुध का, तवर्ग बृहस्पति का, पवर्ग शनि का होता है। अकार स्वर सूर्य का तथा यकारादि वर्ण चन्द्र का कहा गया है। वर्णसमूह मेषादि राशि के नवांश के अन्तर्गत होता है।।१-२।।

वर्गे च परिसमाप्ते पूर्ववदारभ्यते भूयः । स्वरव्यञ्जनसंयोगो भूतत्त्वलता यथायोगम् ॥३॥
ज्ञात्वा सर्वमशेषं धर्मादिकमारभेन्नित्यम् । त्रुट्यनुपक्षमासक्रमायनसमादिषु ॥४॥
पितरः सर्वदेवानां ग्रहादीनां निबोधत। आर्त्तवा पितरो ज्ञेया ये जाता ऋतुसूनवः ॥५॥

वर्ग समाप्त हो जाने पर पुनः प्रथम वर्ग से प्रारम्भ करना चाहिये अर्थात् चन्द्रवर्ग तथा यवर्ग के पश्चात् कौन वर्ग होगा? उत्तर होगा कि 'कवर्ग'। यथासम्भव स्वर-व्यञ्जन का संयोग, भू, तत्त्व, लता, त्रुटि (स्वल्पकाल), दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वत्सरादि का पूर्ण रूप से विचार करके ही धर्मादि कार्य का आरम्भ करना चाहिये अर्थात् कौन समय शुभ है अथवा अशुभ है—इसका निर्णय करना चाहिये। अब पितृगण तथा ग्रहप्रभृति देवगण के विषय में सुनो। जो ऋतुगण के पुत्र हैं, वे पितृगण आर्त्तव कहे जाते हैं।।३-५।।

प्रपितामहा ऋतवः पञ्चाशत् ब्रह्मणः सुताः । सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निस्वात्ताश्च ते त्रिधा ॥६॥
आदित्यश्चैव सोमश्च लोहिताङ्गो बुधस्तथा। बृहस्पतिश्च शुक्रश्च तथा चैव शनैश्चरः ॥७॥
राहुश्च धूमकेतुश्च एते नवग्रहा स्मृताः । त्रैलोक्यस्य मे नित्यं भावाभावविवेचकाः ॥८॥
आदित्यश्चैव सोमश्च द्वावेतौ मण्डलौ ग्रहौ । राहुच्छायाग्रहस्तेषां शेषास्ताराग्रहाः स्मृताः ॥९॥

ऋतुगण पितामह हैं। पञ्चशतसंख्यक पितृपुरुष ब्रह्मा के पुत्र है। वे अग्निष्वात्त, सौम्य तथा बर्हिषद—इन तीन भागों में विभक्त हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि राहु तथा केतु—ये नव ग्रह हैं। नव ग्रह ही त्रैलोक्य में शुभ-अशुभ के सूचक हैं। चन्द्र-सूर्य मण्डलग्रह हैं। राहु छायाग्रह है। अवशिष्ट ताराग्रह हैं।।६-९।।

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः । पच्येते चाग्निरादित्यो उदकं चन्द्रमाः स्मृतः ॥१०॥
आदित्यं पठ्यते शम्भुरुमां विद्यान्निशाकरम् । पितामहस्तु विज्ञेयः तृतीयोऽङ्गारको ग्रहः ॥११॥
काश्यपस्य सुतः सूर्य्यः सोमो धर्म्मसुतः स्मृतः । देवासुरगुरू द्वौ च भानुमन्तौ महाग्रहौ ॥१२॥
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती। बुधः सोमात्मजः श्रीमान् सूर्य्यपुत्रः शनैश्चरः ॥१३॥
सैंहिकेयः स्मृतो राहूः केतुश्च ब्रह्मणः सुतः । सर्वेषान्तु ग्रहाणां वै अधस्ताच्चरते रविः ॥१४॥

सोम नक्षत्रों का अधिपति तथा दिवाकर ग्रहराज हैं। सूर्य अग्नि है, चन्द्र जल है, सूर्य शिव है, चन्द्र शिवा है। मण्डलग्रह हैं ब्रह्मा। सूर्य कश्यप के पुत्र हैं। चन्द्र धर्म के पुत्र है। दो तेजस्वी ग्रह क्रमशः बृहस्पति देवगुरु हैं, शुक्र दैत्यगुरु हैं तथा असुरगुरु भी हैं। ये दोनों प्रजापति के पुत्र हैं। श्रीमान् बुध चन्द्रपुत्र हैं। शनि सूर्यपुत्र हैं। राहु हैं सिंहिकापुत्र और केतु ब्रह्मा के पुत्र हैं। सूर्य समस्त ग्रहों के नीचे विचरण करते हैं।।१०-१४।।

रवेरुर्ध्वं स्थितः सोमः सोमात् नक्षत्रमण्डलम्। नक्षत्रेभ्यो बुधस्तूर्ध्वं बुधादूर्ध्वन्तु भार्गवः ॥१५॥
तस्मादङ्गारकः चोर्द्ध्वं तस्य चोर्ध्वं बृहस्पतिः । तस्माच्छनैश्चरः चोर्ध्वं तस्योर्ध्वमृषिमण्डलम् ॥१६॥

रवि से ऊर्ध्व में सोम स्थित है। सोम से ऊर्ध्व है नक्षत्रमण्डल। नक्षत्रों से ऊर्ध्व हैं बुध। शुक्र बुध से भी ऊर्ध्व हैं। उससे मंगल ऊर्ध्व हैं, मंगल से ऊर्ध्व हैं बृहस्पति। वृहस्पति से ऊर्ध्व हैं शनि एवं शनि से ऊर्ध्व है ऋषिमण्डल।।१५-१६।।

ऋषिभ्यश्च ध्रुवश्चोर्ध्वं मायान्ते त्रिदिवं ध्रुवे। आदित्यनिलयो राहुः कदाचित् सोममार्गणः ॥१७॥
सूर्य्यमण्डलसंस्थस्तु नित्यं केतुः प्रसर्पति। नवयोजनसहस्राणि विस्तारो भास्करस्य तु ॥१८॥
विस्तारो त्रिगुणश्चास्य परिणाहे तु मण्डलम्। द्विगुणः सूर्य्यविस्ताराद् विस्तरः शशिनः स्मृतः ॥१९॥
द्विगुणं मण्डलञ्चास्य यथैव सवितुस्तथा। चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ॥२०॥
भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरावुदाहृतौ ॥२१॥

ऋषिमण्डल से ऊर्ध्व हैं—ध्रुव। स्वर्ग ध्रुव के साथ सम्बद्ध है। राहु कभी सूर्यमण्डल में तो कभी चन्द्रमण्डल में रहते हैं। केतु नित्य सूर्यमण्डलस्थ होकर विचरण करते हैं। सूर्य का विस्तार है ९००० योजन। मण्डल का विस्तार तो सूर्यविस्तार से तीन गुणित है। सूर्य के विस्तार की अपेक्षा चन्द्रविस्तार दूना है। सूर्यमण्डल जैसे सूर्य की अपेक्षा तीनगुना बड़ा है, उसी प्रकार चन्द्रमण्डल भी चन्द्र की अपेक्षा त्रिगुण है। शुक्र चन्द्र के सोलहवें भाग का एक भाग है। बृहस्पति शुक्र से एक चतुर्थांश छोटे हैं।।१७-२१।।

विस्तारमण्डलाभ्यान्तु पादहीनास्तयोर्बुधः। बुधस्य तुल्यानि ऋक्षाणि सर्वह्रस्वानि यानि तु ॥२२॥
योजनार्द्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते। राहुः सूर्य्यप्रमाणस्तु कदाचित् सोमसंशितः।
तस्माद् ग्रहप्रमाणस्तु केतुस्त्वनियतः स्मृतः ॥२३॥

मंगल एवं शनि वृहस्पति की अपेक्षा एक चतुर्थांश हीन हैं। शनि-मंगल की अपेक्षा बुध एक चतुर्थांश हीन है। हीनता को निज विस्तार तथा मण्डल विस्तार—इन दोनों पक्ष से जानना चाहिये। नक्षत्रों का परिमाण बुध के समान है। सर्वापेक्षा छोटा जो नक्षत्र है, उसका परिमाण है—आधा योजन। इससे छोटा नक्षत्र नहीं है। राहू कभी तो सूर्य के परिमाण वाला होता है और कभी चन्द्र के परिमाण का हो जाता है। ग्रहगण का परिमाण राहु से ही होता है। केतु के परिमाण में स्थैर्य नहीं है।।२२-२३।।

भूर्लोकं भुवःस्वर्लोकं त्रैलोक्यमिदमुच्यते। महर्ज्जनस्तपःसत्यं सप्तलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥२४॥
भूर्लोकः पार्थिवो लोकात् अन्तरीक्षं भुवः स्मृतः। भाव्यो लोको दिवि ह्येताच्छेषा ऊर्ध्वं यथाक्रमम् ॥२५॥

भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक—ये तीन तथा महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये सब मिलाकर सप्तलोक हो जाते हैं। भूर्लोक पार्थिव लोक है, भुवर्लोक अन्तरीक्ष लोक है, शेष लोक भाव्य कहे जाते हैं। ये एक-दूसरे से क्रमशः ऊर्ध्व में स्थित होते हैं।२४-२५।।

भूतस्याधिपतिर्ह्यग्निस्ततो भूतपतिस्तु सः। वायुर्नभसोऽधिपतिस्तेन वायुनभस्पतिः ॥२६॥
भाव्यस्य सूर्य्योऽधिपतिस्तेन सूर्य्यो दिवस्पतिः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव गुह्यकाः सह राक्षसैः ॥२७॥
भूर्ल्लोकवासिनः सर्वे अन्तरीक्षचरान् शृणु। मरुतः सप्तभिः स्कन्धैः रुद्रास्तथैव चाश्विनौ ॥२८॥
आदित्या वसवः सर्वे तथैव च गवां गणाः। चतुर्थे तु महर्लोके तिष्ठन्ते कल्पवासिनः ॥२९॥

अग्नि भूतगण (भूर्लोक) का अधिपति होने के कारण भूतपति है। वायु नभः अर्थात् अन्तरीक्ष लोक का अधिपति है। इसीलिये उसको नभस्पति कहा गया है। सूर्य भाव्य लोकों का अधिपति होने के कारण भाव्याधिपति कहलाता है। इसे दिवस्पति भी कहते हैं। गन्धर्व, अप्सरा, गुह्यक, राक्षस—ये भूर्लोकवासी हैं। अन्तरीक्ष में कौन विचरण करता है, उनका विवरण सुनो। सात श्रेणी में विभक्त वायु, एकादश रुद्र तथा अश्विनीकुमारद्वय अन्तरीक्षचारी हैं। आदित्यगण, वसुगण तथा सुरभि आदि गोगण स्वर्लोकवासी हैं। चतुर्थ लोक महर्लोक में कल्पान्त-पर्यन्त स्थायी स्थिति वाले देवगण रहते हैं।।२६-२९।।

प्रजानां पतिभिः सर्वे सेव्यते पञ्चमो महान्। मनुः सनत्कुमाराद्या वैराजाश्च सुताशयः ॥३०॥
षष्ठे तु संस्थिता ह्येते देवादेवविबोधकाः। सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भववासिनाम् ॥३१॥
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतिघातलक्षणः। महीतलात् सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ॥३२॥

पञ्चम लोक जनलोक में प्रजापतिगण का वास है। षष्ठ लोक (तपोलोक) में मनु, वैराज, सनत्कुमारादि ऋषियों का वास है। ये देव तथा असुरों के ज्ञानदाता हैं। सप्तम सत्यलोक में जो रहते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यही ब्रह्मलोक है। यहाँ ब्रह्मलोक का प्रतिघात ही नहीं है। पृथिवी से शत सहस्र योजन ऊर्ध्व में सूर्यलोक स्थित है।।३०-३२।।

दश तानि ध्रुवे यावद् द्विगुणे द्विगुणान्तरे। दशयोजनकोट्यस्तु भूमेरूर्ध्वं ध्रुवः स्मृतः ॥३३॥
त्रयोविंशतिलक्षाणि त्रैलोक्यात् मेघ उच्यते। द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ॥३४॥
लोकान्तरमथैकैकं ध्रुवादूर्द्ध्वं विधीयते। देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥३५॥
भूता विद्याधराश्चैव अष्टौ ते देवयोनयः। ते ब्रह्माण्डस्य मध्यस्थाः परतस्तमसावृतम् ॥३६॥

सूर्य से ऊर्ध्व में ध्रुव-पर्यन्त ग्रहनक्षत्रगण क्रमशः सम अथवा गुणादि के अन्तर से स्थित हैं। पृथिवी से ध्रुवलोक-पर्यन्त १० स्थान हैं। ध्रुव इस पृथिवी से १० करोड़ योजन ऊर्ध्व में है। त्रैलोक्य का उत्सेध है—२३ लाख योजन। ध्रुव से ऊर्ध्व में (महःप्रभृति) सभी लोक क्रम से दो-दो लाख योजन के अन्तर से स्थित हैं। देव-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग-भूत तथा विद्याधर—ये आठ देवयोनि हैं। ये सभी ब्रह्माण्ड के मध्य में रहते हैं। तदनन्तर सब अन्धकार से आवृत है।।३३-३६।।

ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते। ततो महान् प्रधानश्च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥३७॥
पुरुषादीश्वरो ज्ञेयो यस्य शक्त्यावृतं जगत्। शिवोमा भानुदेवानां परात्परतरा मता ॥३८॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रैलोक्याभ्युदये ग्रहगतिर्नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति तथा पुरुष—ये पूर्व-पूर्व के कारण हैं। पुरुष के पूर्व में ईश्वर है। ईश्वर की शक्ति से ही जगत् आवृत है। अतः शिव-दुर्गा ज्योति सभी देवगणों में श्रेष्ठतर है।।३७-३८।।

सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त

●

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

राका चानुमती चैव द्विविधा पूर्णिमा तथा। सिनीऽवाली कुहूश्चैव अमावस्या द्विधैव तु ॥१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—पूर्णिमा द्विविध है राका एवं अनुमती। अमावस्या भी द्विविध है—सिनीवाली एवं कुहू।।१।।

अमा नाम रवे रश्मिश्चन्द्रलोके प्रतिष्ठिता। यस्मात् सोमो वसत्यस्मात् अमावासी ततः स्मृताः ॥२॥

अमा नामक रविदिधिति (रविरश्मि) चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित है। सोम के इसी अमा रश्मि में वास करने के कारण इसका नाम है—अमावासी (अमा में निवास करने वाला)।।२।।

पूर्वोदिते कलाभिन्ने पौर्णमास्यां निशाकरे। पूर्णिमानुमती ज्ञेया यश्चास्तमितभास्करे ॥३॥

यदि पूर्णिमा का कलान्यून चन्द्र सूर्यास्त से कुछ पूर्व उदित होता है, तब उस पूर्णिमा को अनुमती कहा जाता है।।३।।

यस्मात् तामनुमन्यन्ते देवता पितृभिः सह। तस्मादनुमती नाम पूर्णिमा च तदा स्मृता ॥४॥

यह पूर्णिमा अर्थात् चतुर्दशीयुक्ता पूर्णिमा देवपितृगण की अनुमत होने के कारण अनुमती कहलाती है।।४।।

यदा चास्तमिते सूर्य्ये पूर्णचन्द्रस्य चोद्गमः। युगपत् सोतरा राका तदानुमतिपूर्व्विका ॥५॥
राका तामनुमन्येते देवताः पितृभिः सह। रञ्जना चैव चन्द्रस्य राकेति कवयोऽब्रुवन् ॥६॥

सूर्यास्त होने पर अथवा सूर्यास्त के ही क्षणों में जिस पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्रोदय होता है, वह है राका पूर्णिमा। उसके पूर्व वाली है अनुमती। चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा अनुमती पूर्णिमा है, उसके अतिरिक्त जो पूर्णिमा है, वही राका है। यही इस वचनद्वय का तात्पर्य है। चन्द्र का रञ्जन करने वाली होने के कारण कविगण इसे राका कहते हैं।।५-६।।

सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः। अमावस्यां विशेत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृताः ॥७॥
कुह्वति कोकिलेनोक्ते यः कालस्तु समाप्यते। तत्कालसंज्ञा त्वेषा वै अमावस्या कुहुः स्मृता ॥८॥

क्षीणाशेष चन्द्र जिस अमावस्या में सूर्य में प्रवेश करते हैं, वही है सिनीवाली अर्थात् चतुर्दशीयुक्त अमावस्या। कोकिल के शब्द को 'कुहू' कहा गया है। जो कोकिलवत् कृष्णवर्ण है, वह सभी कृष्णवर्णयुक्त वस्तु भी कुहू है। अतः ऐसी अमावस्या भी कुहू पदवाच्य है।।८।।

अनुमत्या सराकाया सिनीवाल्या कुहूं विना। एतासां द्विनवः कालः कुमात्रेति कुहूः स्मृताः ॥९॥

चतुर्दशीयुक्त जो अमावस्या है, वही चन्द्रदर्शन से रहित है। अतः गाढ़ कृष्णवर्ण के कारण वह 'कुहू' है।।९।।

कलाः षोडश सोमस्य शुक्ले वर्द्धयते रविः। अनु तेनामृतं कृष्ण पीयन्ते दैवतैः क्रमात् ॥१०॥
प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां तपनः कलाम्। विश्वे देवास्तृतीयान्तु चतुर्थीन्तु प्रजापतिः ॥११॥
पञ्चमी वरुणाश्चापि षष्ठिं पिबति वासवः। सप्तमीमृषयो दिव्या वसवोऽष्टौ तथाष्टमीम् ॥१२॥
नवमीं कृष्णपक्षस्य पिबतीन्द्रः कला मपि। दशमीं मरुतश्चापि रुद्रा एकादशीं कलाम् ॥१३॥

सूर्य शुक्लपक्ष में अमृत द्वारा चन्द्र की षोडश कलाओं को वर्द्धित करता है। कृष्णपक्ष में देवगण इसी वर्द्धित अमृत का क्रमशः पान करते हैं। प्रथम अमृतकला का पान अग्नि, द्वितीय का पान सूर्य, तृतीय का पान विश्वेदेव करते हैं। चतुर्थ कला अमृत का पान प्रजापति, पञ्चम का वरुण, षष्ठ का [1]वसुपुत्रगण, सप्तम का ऋषिगण, अष्टम का अष्टवसु गण एवं इसी कृष्ण-पक्षीय नवम कला का इन्द्र पान करते हैं। दशम कला का पान वायु एवं रुद्रगण एकादश कला का पान करते हैं।।१०-१३।।

द्वादशीन्तु कलां विष्णुर्धनदश्च त्रयोदशीम्। चतुर्दशीं पशुपतिः कलां पिबन्ति नित्यशः ॥१४॥
तत पञ्चदशीञ्चैव पिबन्ति पितरः कलाम्। कलावशिष्टो निष्पीतः प्रविष्टः सूर्य्यमण्डलम् ॥१५॥
अमायां विशति रश्मौ अमावासी ततः स्मृता। पूर्वाह्णे प्रविशत्यर्कं मध्याह्ने तु वनस्पतिः।
अपराह्णे विशत्यप्सु स्वयोनिं वारिसम्भवः ॥१६॥
आपः प्रविष्टसोमस्तु शेषया कलयैकया। तृणगुल्मलतावृक्षान् निष्पादयति चौषधीः ॥१७॥

द्वादशी कला का पान विष्णु एवं कुबेर त्रयोदश कला का पान करते हैं। पशुपति नित्यशः चतुर्दशी कला का पान (नित्यशः का तात्पर्य कृष्णपक्ष में नित्य) करते हैं तथा पञ्चदशी कला का पान पितर करते हैं। विना ग्रहण की गयी कला

---

१. मूल में 'वासवः' पाठ है। इन्द्र का उल्लेख तो नवम कला-हेतु अगल से है। अतः यहाँ षष्ठ कला-हेतु इन्द्र का अर्थ नहीं होगा। अतः शुद्ध पाठ 'वासरः' होना चाहिये। उसका अर्थ होगा—दिनाभिमानी देवता।

सूर्यमण्डल में प्रवृष्ट होकर अमा नामक सूर्यरश्मि में मिल जाती है। तभी अमावस्या को अमावासी कहते हैं। वारिसम्भव (जलोत्पन्न) चन्द्र पूर्वाह्न में सूर्य में, मध्याह्न में वनस्पति में तथा अपराह्न में अपने उत्पत्ति स्थान जल (तत्त्व) में प्रवेश करते हैं। चन्द्रमा उपरोक्त बची हुई एक कला लेकर ही जल में प्रवेश करते हैं और तृण, गुल्म, लता, वृक्षादि में प्रविष्ट होकर औषधि-सम्पादन करते हैं।।१४-१७।।

तमोषधिः स्थितं गावश्चरन्त्योऽपः पिबन्ति च। तदङ्गानुगतं गोभ्यः क्षीरत्वमुपगच्छति ॥१८॥
तत् क्षीरसमवृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातयः। स्वाहाकारवषट्कारैः जुह्वत्याहुतयः क्रमात् ॥१९॥
हुतमग्निषु देवाय पुनः सोमं विवर्द्धयेत्। एवं संक्षीयते सोमः क्षीणश्चाप्यायते पुनः।
तस्मात् सूर्यः शशाङ्कस्य क्षयवृद्धिर्विधेद्विभुः ॥२०॥

इति श्रीदेवीपुराणे चन्द्रक्षयवृद्धिर्नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

गोगण घास-तृणादि चरते समय औषधिस्थित चन्द्रामृत तथा जलस्थित चन्द्रामृत का पान करते है, जो उनके अंगों में मिलकर दुग्धरूप से उत्पन्न होता है। द्विजगण अमृतरूप में परिणत इस दुग्ध को वषट्कार-स्वाहाकार प्रभृति से मन्त्रपूत करके होम करते हैं। देवोद्देश्य से किया गया होम पुनः चन्द्र की (अमृत) वृद्धि का कारण होता है। चन्द्रमा इसी प्रकार क्षयीभूत होकर पुनः आप्यायित (पूर्णिमा तक) होकर (वृद्धिङ्गत) स्थित रहते हैं। अतः सूर्य ही चन्द्र के क्षय-वृद्धि का कारण है।।१८-२०।।

अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

यदयं वदते लोको वालिशत्वान्महामते। तदहं संप्रवक्ष्यामि चन्द्रसूर्य्योपरागिकम् ॥१॥
यदि सत्यमयं ग्रस्तस्तेजोराशिर्दिवाकरः। तत् कथन्तूदरस्थेन राहुणा भस्मसात्कृतः ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे महामते! लोकालय में मूढता के कारण चन्द्र-सूर्यग्रहण के सम्बन्ध में जो कहा जाता है, उस विषय में मेरा कहना यह है कि यदि वास्तव में तेजोराशि दिवाकर का ग्रास राहु कर लेता है, तब सूर्यतेज राहु को भस्म क्यों नहीं कर देता।।१-२।।

अथवा राहुणाक्रम्य शत्रुवक्त्रं प्रवेशितः। तत् कथं दशनैस्तीक्ष्णैः शतधा च विखण्डितः ॥३॥
विमुक्तश्च पुनर्दृष्टस्तथैवाखण्डमण्डलः। न चास्यापह्नुतं तेजो न स्थानादपसारितः ॥४॥
यदि वाप्येष निष्पीतः कथं दीप्ततरोऽभवत्। तस्मान्न तेजसां राशी राहोर्वक्त्रं गमिष्यति।
भक्ष्यार्थं सर्वदेवानां सोमः सृष्टः स्वयम्भुवा ॥५॥

अथवा यदि राहु आक्रमण करके शत्रु सूर्य को मुख में ग्रसता है, तब वह सूर्य को अपने तीक्ष्ण दाँतों से सौ टुकड़ों में खण्ड-खण्ड क्यों नहीं कर देता? जब राहु सूर्य को मुक्त कर देता है, तब पुनः उसे अपने अखण्ड मण्डल में ही देखा जाता है। उसके तेज का कम होना तथा स्थानच्युति आदि कुछ भी लक्षित नहीं होता (वह जैसा का तैसा बाहर निकल आता है)। यदि वह किसी प्रकार से भी निष्पीत हो गया होता, तब वह पुनः दीप्त कैसे हो जाता? इसलिये वास्तव में तेजोराशि

सूर्य राहु के मुख में जाता ही नहीं। स्वयम्भु भगवान् ने देवगण के लिये भक्षणार्थ चन्द्रसृष्टि किया है। चन्द्र का अमृत (जिसे देवगण भक्षण करते हैं) सूर्यतेज से ही उत्पन्न है।।३-५।।

तत्रस्थसमृतञ्चापि सम्भवं सूर्यतेजसा। पिबन्ति यस्तूभयं देवाः पितरश्च स्वधा मृतम् ॥६॥
त्रयश्च त्रिंशतं चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च। त्रयश्च त्रिंसहस्राश्च देवाः सोमं पिबन्ति च ॥७॥
राहोरप्यमृतं भागं पुरा सृष्टं स्वयम्भुवा। तस्मात् तद्राहुरागत्य पातुमिच्छति पर्वसु ॥८॥

देवगण जलमय अमृत का पान करते हैं एवं पितृगण स्वधामृत का पान करते हैं। तीन सौ तैंतीस तथा तीन हजार तीन देवता सोमपायी हैं। स्वयम्भू ने राहु के लिये भी अमृतभाग निश्चित किया है। इसीलिये राहु पर्व-पर्व पर उसके पान की इच्छा करता है।।६-८।।

उद्धृत्य पार्थिवीं छायां मन्दकामं तमोमयः। पातुमिच्छन् ततश्चेन्दुमाच्छादयति छायया ॥९॥
शुक्ले च चन्द्रमभ्येति कृष्णे पर्वणि भास्करम्। सूर्यमण्डलसंस्थस्तु चन्द्रमेव जिघांसति ॥१०॥
तस्मात् पिबति तं राहुस्तनुमस्य विनाशयन्। अविहिंसन् यथा पद्मं पिबति भ्रमरो मधु ॥११॥

तमोमय राहु पृथिवी की छाया को ग्रहण करके अमृतपानेच्छा से उस छाया द्वारा चन्द्र को आच्छन्न करता है। वह शुक्लपक्ष में चन्द्र के पास आता है तथा आमावस्या के समय सूर्यमण्डल में उपस्थित होता है। सूर्यमण्डल में उपस्थित होकर चन्द्रामृत का पान ही उसका लक्ष्य रहता है। राहु चन्द्र का शरीर नष्ट नहीं करके केवल उस अमृत का पान ही करता है, जैसे कि भ्रमर पद्मपुष्प का नाश किये बिना उसका मधुपान करता है। यहाँ भी वही प्रक्रिया है।।९-११।।

चन्द्रस्य अमृतं तद्वद् भेदाद्राहुरश्नुते। चन्द्रकांतो मणिर्यद्वत् तुहिनं क्षरते क्षणात् ॥१२॥
क्षरन्नपि न हीयेत तेजसा नैव मुच्यते। यथा सूर्य्यमणिश्चापि सूर्य्यादुत्पाद्य पावकम् ॥१३॥
न भवत्यङ्गहीनोऽपि तेजसा नैव मुच्यते। एवं चन्द्रश्च सूर्य्यश्च छादितावपि राहुणा ॥१४॥
स्वतेजसा न मुच्येते नाङ्गहीनौ बभूवतुः। पर्वस्वथ च चन्द्रस्य माणिक्यकलसाकृतिः ॥१५॥
सोमो दैवतसंयोगाच्छायायोगाच्च पार्थिवे। राहोश्च वरलब्धाद्वै प्रक्षरेदमृतं शशी ॥१६॥

चन्द्र का अमृत इसी प्रकार से राहु पान करता है। जैसे चन्द्रकान्त मणि से भले ही हिमक्षरण होता रहता है, लेकिन इससे चन्द्रकान्तमणि का कोई क्षय नहीं होता; वह तेजहीन नहीं होती इसी प्रकार जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यकिरणसंयोग से अग्नि उत्पादित करती है, तब भी अंगहीन नहीं होती और तेजोमुक्त भी नहीं होती। इसी प्रकार से चन्द्र-सूर्य भी राहु से आच्छादित होकर भी तेजोहीन-अङ्गहीन नहीं होता। पर्वकाल में सोमदेवता का अधिष्ठान होने से पृथिवी या छायायोग होने से तथा राहु को पूर्वकाल में मिले वरदान के कारण माणिक्य कलसाकृति वाले चन्द्रमण्डल से अमृतक्षरण होने लगता है।।१२-१६।।

स्वदोहकाले संप्राप्ते वत्सं दृष्ट्वा यथा च गौः। स्वाङ्गादेव क्षरेत् क्षीरं तथेन्दुः क्षरतेऽमृतम् ॥१७॥
पितेव सूर्य्यो देवानां सोमो मातेव लक्ष्यते। यथा मातुः स्तनं पीत्वा जीवन्ति सर्वजन्तवः ॥१८॥
पीत्वामृतं तथा सोमात् तृप्यन्ते सर्वदेवताः। सम्भूतं पर्वयोगेषु तथायं क्षरते शशी ॥१९॥

जैसे दोहन काल उपस्थित होने पर वत्स को देखते ही गौ का दुग्ध क्षरित होने लगता है, उसी प्रकार से चन्द्र से भी अमृत का क्षरण होता है। सूर्य देवगण के पितास्वरूप हैं तथा चन्द्र मातास्वरूप हैं। जैसे मातृस्तनपान करके जीवगण जीवनरक्षा करते हैं, उसी प्रकार से चन्द्र का अमृतपान करके देवगण भी तृप्त होते हैं। पर्वकाल के उपस्थित होने पर चन्द्र से पूर्व कही गयी उपमा के समान अमृत का क्षरण होने लगता है।।१७-१९।।

तं क्षरन्तं यथाभागमुपजीवन्ति देवताः। तस्मिन् काले समभ्येति राहुरप्यवकर्षति ॥२०॥
सर्वमर्द्धं त्रिभागं वा पादं पादार्द्धमेव वा। आक्रम्य पार्थिवीं छायां यावंती चन्द्रमण्डलम् ॥२१॥
स्मृतः स भागो राहोस्तु देवभागास्तु शेषकाः। तृप्तिं विधाय देवानां राहोः पर्वगतस्य च ॥२२॥

चन्द्र से हो रहा अमृतक्षरण सभी देवगण का उपजीव्य है। उस समय राहु आकर पुनः आकर्षित करता है। पृथिवी-छाया चन्द्रमण्डल के सर्वांश में, अर्द्ध, त्रिभाग, पाद, अथवा पादार्द्ध जितने में भी अधिकार कर पाता है, वही राहु का भाग है। शेष भाग देवगण का है। वे उसे पर्वगत (ग्रहणोपरान्त) ग्रहण करते हैं।।२०-२२।।

चन्द्रो न क्षयमायाति तेजसा नैव मुच्यते। तिथिभागाश्च यावन्तः पुनस्त्वर्कप्रमाणतः ॥२३॥
पर्वच्छायास्थितः कालस्तावानेवं प्रकीर्त्तितः। अधोराहुपुरः सोमः सोमादूर्ध्वं दिवाकरः ॥२४॥
पर्वकाले स्थितिस्त्वेवं विपरीतः पुनः पुनः। अतश्छादयते राहुरभवच्छशिभास्करौ ॥२५॥

चन्द्र अथवा देवगण का पर्वदिन पर तथा समागत राहु का तृप्तिविधान करके भी क्षयीभूत अथवा तेजोहीन नहीं होता। सूर्यप्रमाण में तिथि का अंश (सन्धिकाल) जितना होता है, तभी तक ग्रहणजनित छाया रहती है। राहु चन्द्र का आवरण करता है। अतः चन्द्र राहु से ऊर्ध्व है। दिवाकर भी पर्वकाल (ग्रहणकाल) में इसी प्रकार अवस्थित रहता है। अन्य समय विपरीत अवस्थिति है अर्थात् तब चन्द्र ऊर्ध्व है तथा सूर्य निम्न है। इसीलिये राहु निम्न में इसी कारण से ही मेघ के समान चन्द्र-सूर्य का आच्छादन करता है।।२३-२५।।

राहुरभ्रकसंस्थानः सोममाच्छाद्य तिष्ठति। उद्धृत्य पार्थिवीं छायां धूममेघ इवोत्थितः ॥२६॥
चन्द्रस्य यददृष्टव्यं राहुणा भास्करस्य वा। नाम्ना च खण्डितं तस्य केवलं श्यामलीकृतम् ॥२७॥
कर्दमेन यथा वस्त्रं शुक्लमभ्युपहन्यते। एकोद्देशे तु सर्वं वा राहुणा चन्द्रमास्तथा ॥२८॥
प्रक्षालितं तदेवास्तु पुनः शुक्लतरं भवेत्। राहुमुक्तं भवेत् तद्वन्निर्म्मलं चन्द्रमण्डलम् ॥२९॥
राहुणाच्छादितौ वापि दृष्ट्वा चन्द्रदिवाकरौ। विप्राः शांतिपरा भूत्वा पुनराप्याय यन्त्रितम् ॥३०॥

राहु चन्द्र-सूर्य के जिस अंश का आच्छादन करता है, उसे खण्डित कहते हैं; लेकिन वह खण्डित नहीं होता, अपितु केवल उतना अंश श्यामलीकृत हो जाता है। जैसे शुक्ल वस्त्र एक ओर अथवा पूरा कीचड़ से सन जाता है, उसी तरह से चन्द्रमा भी राहुग्रस्त होकर श्यामल हो जाता है। पुनः कीचड़ से सना वस्त्र जिस प्रकार धोने से स्वच्छ उज्ज्वल वर्ण वाला हो जाता है, उसी प्रकार चन्द्रमण्डल भी राहुमुक्त होकर पुनः निर्मल हो जाता है। चन्द्र-सूर्य को राहु से आच्छन्न देखकर, जबतक वह राहु से मुक्त न हो जाय, तब तक ब्राह्मणगण को धर्मकार्य में लगे रहना चाहिये।।२६-३०।।

एवं न गृह्यते सूर्य्यश्चन्द्रमास्तत्र गृह्यते। अबुधास्तं न पश्यन्ति मानुषा मांसचक्षुषा।
जगत् सम्मोहनं चैव ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥३१॥

इति श्रीदेवीपुराणे ग्रहणविकल्पो नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः

इस प्रकार से यह देखा गया है कि सूर्य वास्तव में (राहु से) गृहीत नहीं होता, चन्द्र ही गृहीत होता है। अनभिज्ञ मनुष्य अपने इन नेत्रों से उसे देख नहीं सकता। वास्तव में चन्द्र-सूर्य का ग्रहण जगत् के लिये सम्मानजनक होता है।।३१।।

एकोनपञ्चाशोऽध्याय समाप्त

पञ्चाशोऽध्यायः

शौनक उवाच

एते क्षणा मुहूर्ताश्च लवाः काष्ठाः कलाः पुषा । यामाहः पक्षमासाश्च क्रत्वयनसमा युगाः ॥१॥
षष्ट्यब्दकालसंख्याता ग्रहयोगबलोद्भवाः । शुभावहा यथा तात तथा नो वक्तुमर्हसि ॥२॥

ऋषि शौनक कहते हैं—यह जो क्षण, मुहूर्त, लव, काष्ठा, कला, प्रहर, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वत्सर, युग तथा ग्रहाचारसम्भूत काल संज्ञक साठ वर्ष जिस प्रकार से शुभ हो जायँ, वह कहिये।।१-२।।

मनुरुवाच

संवत्सरप्रमाणेन देव्याः कृतपुरोहिताः । यष्टव्या विधिना तात सर्वकामप्रसिद्धिदा ॥३॥
महाभयविनाशाय महारिपुवधाय च । महाभ्युदयकामाय महासिद्धिफलाय च ॥४॥
पूजयेद् याजयेद्देवीं षष्टिधा परमेश्वरीम् । ऋतुनागकृता पीडा यक्षरक्षोग्रहोद्भवा ॥५॥
संवत्सरमहादोषजन्मर्क्षमुपमर्दकाः । केतूल्काशशिराहुभ्यां भौमार्किसितभानुजाः ॥६॥
शमयेद् यजमानस्य देवीहोमरतस्य च । मण्डलादिविभेदेन महास्नानाभिषेचनैः ॥७॥

मनु कहते हैं—हे तात! पुरोहित का आश्रय लेकर एक वर्ष तक सर्वकाम-सिद्धिप्रदा का यथाविधि पूजन करना चाहिये। महाभय-विनाश, महाशत्रुवध, महामंगलस्पृह तथा महासिद्धि-फलोद्देश्य से देवी परमेश्वरी की षष्टिधा पूजा तथा होम करना चाहिये। ऋतुपीड़ा, नागपीड़ा, यक्ष-राक्षस-ग्रहपीड़ा, वर्षदोष, जन्म-नक्षत्रपीड़ा, शनि, राहु, केतु, मङ्गल, शुक्र तथा सूर्यादि-जनित पीड़ा देवी के लिये होमरत यजमान के लिये विनष्ट हो जाते हैं। मण्डलादि भेद से महास्नान एवं अभिषेचन करना चाहिये।।३-७।।

चन्द्रसम्पूर्णपुष्यर्क्षफलरत्नाभिपूजनैः । मङ्गला मङ्गलं धत्ते विधिना पूजिता मुने ॥८॥
उत्पातक्षोभनिर्घातविकृतीनां शमाय च । कथयामि महाप्राज्ञ शृणुष्वैकमनाधुना ॥९॥

पूर्ण चन्द्र रहते पुष्य नक्षत्र हो तब फल-रत्न द्वारा उन मंगला देवी की यथाविधि पूजा करने से वे मंगल करती हैं। उत्पात-क्षोभ-निर्यात-प्रभृति वैकृत उत्पातों की शान्ति के लिये जो कर्त्तव्य है, उसे अब कहता हूँ। इसे एकाग्र होकर सुनो।।८-९।।

मङ्गला विजया भद्रा शिवा शान्तिर्धृतिः क्षमा । ऋद्धिर्वृद्धिरुन्नतिः सिद्धिस्तुष्टिः पुष्टिः श्रिया उमा ॥१०॥
दीप्तिः कान्तिर्यशाः लक्ष्मीरीश्वरीति प्रकीर्त्तिताः । विंशतिश्चोत्तमा देव्यः सत्त्वभावव्यवस्थिताः ॥११॥

मंगला, विजया, भद्रा, शिवा, शान्ति, धृति, क्षमा, ऋद्धि, वृद्धि, उन्नति, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, श्रिया, उमा, दीप्ति, कान्ति, यशादेवी, लक्ष्मी, ईश्वरी—ये बीस उत्तम देवता प्रथम भाग में स्थित हैं अर्थात् सत्त्वभाव में व्यवस्थित हैं।।१०-११।।

प्रथमा संस्थिता वत्स सर्वसिद्धिप्रदायिका । ब्राह्मी जयावती शक्तिरजिता चापराजिता ॥१२॥
जयन्ती मानसी माया दितिः श्वेता विमोहिनी । शरण्या कौशिकी गौरी विमला रति लालसा ॥१३॥
अरुन्धती क्रिया दुर्गा राजसा इति चापराः । मध्यभागे स्थिता देव्यो युगानामशुभापहाः ॥१४॥

हे वत्स! ये प्रथमा सर्वसिद्धि देने वाली हैं। ब्राह्मी, जयावती, शक्ति, अजिता, अपराजिता, जयन्ती, मानसी, माया, दिति, श्वेता, विमोहिनी, शरण्या, कौशिकी, गौरी, विमला, रति, इच्छा, अरुन्धती, क्रिया तथा दुर्गा रजःप्रकृति हैं तथा अपरा कहलाती हैं। ये मध्यभाग में स्थित हैं तथा युगों के अशुभ का नाश करने वाली हैं।।१२-१४।।

काली रौद्री कपाली च घण्टाकर्णा मयूरिका। बहुरूपा सुरूपा च त्रिनेत्रा रिपुहाम्बिका ॥१५॥
माहेश्वरी कुमारी च वैष्णवी सुरपूजिता। वैवस्वती तथा घोरा कराली विकटादितिः ॥१६॥
चर्च्चिका चेति चान्तस्था देव्यस्त्रैलोक्यविश्रुताः। पूजितव्या मुनिश्रेष्ठ सर्वकामप्रसाधिकाः ॥१७॥
त्रिदशासुरगन्धर्व्वयक्षरक्षोरगैर्नुताः। भावकालाश्रया कार्य्या द्रव्यरूपफलप्रदाः ॥१८॥

काली, रौद्री, कपाली, घण्टाकर्णा, मयूरिका, बहुरूपा, सुरूपा, त्रिनेत्रा, रिपुहा, अम्बिका, माहेश्वरी, कुमारी, वैष्णवी, सुरपूजिता, वैवस्वती, घोरा, कराली, विकटा, अदिति तथा चर्चिका—ये त्रैलोक्यविश्रुता देवीगण अन्त्य भाग में स्थित हैं। हे मुनिवर! ये सर्वकाम-प्रसाधिका हैं। ये सभी त्रैलोकप्रसिद्ध देवीगण हैं। सुरासुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नगादि भाव का आश्रय लेकर इन सर्वकामदायिनी देवी का पूजन करते हैं। ये समय तथा चित्तशुद्धि से आयत्त होती हैं। ये द्रव्यानुसार फलदान करती हैं।।१५-१८।।

प्रत्येकशः समस्ता वा कर्त्तव्या मुनिसत्तम। अथवा युगभेदेन पञ्च पञ्च प्रपूजिताः ॥१९॥
रत्नहेमकृता देव्यो दृष्टादृष्टप्रदायिकाः। नवसप्तकभेदेन रूद्रेशहरतुम्बरैः ॥२०॥
ब्रह्मा पितामहो विष्णुः जनार्दनप्रभुः स्थितः। मातरो भेदभावेन षट्स्वराः शिवयोजिताः॥२१॥
दैवदेव्योपकाराय मन्त्रा ह्येते प्रकीर्त्तिताः। ग्रहभेदेन ता देव्यो नवसंख्याः प्रपूजिताः ॥२२॥
खखोल्कसंवृत्य गा आशव इति कीर्त्तिताः। मन्त्रा गृहे जले वत्स सर्वे ओङ्कारपूर्वकाः ॥२३॥
नमस्कारांतसंयुक्ताः पूजायां होमे च स्वाहा। लोकपालाः प्रकर्त्तव्या दशधा तास्तु देवताः ॥२४॥
नागास्तारन्तभेदेन अनन्ताद्या विजातिकाः। सूर्य्या द्वादशभेदस्था रुद्रा एकादश स्मृताः ॥२५॥
एवं सर्वगता देव्यः पञ्चभूततनुस्थिताः। पञ्चधा ताः समाख्याता द्वादशा त्रिगुणा शिवा ॥२६॥
एतांस्तानैकभेदेन सर्वमंगल अङ्गगा। प्रभवादिप्रभेदेन कथयामि शृणुष्व तत्।
सिंहासनस्थिता देवी जटामुकुटमण्डिता ॥२७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इन प्रत्येक की अथवा सभी की पूजा करनी चाहिये। अथवा ६० वत्सर के द्वादश युगभेद से उक्त ६० देवताओं में से ५-५ देवी को सुवर्णरत्न से निर्मित करके पूजा करने पर दृष्ट फल तथा अदृष्ट फल प्राप्त होता है। तदनन्तर इनके गुप्त मन्त्रों को कहा जा रहा है, वे सब पूजा में उपयोगी हैं। ग्रहभेद से नव संख्यक देवी की पूजा करना विधेय है। ग्रहपूजा में प्रणवादि-नमस्कारान्त में खखोल्क, संवृत्य, गा, आशव आदि कतिपय मन्त्र कहे गये हैं (इन मन्त्रों के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाना चाहिये)। होम के समय मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाना चाहिये। ये पञ्चमूर्त्ति देवगण ही दिक्पाल भेद से १९ हैं। अनन्तादि-नागभेद हैं नागमय संख्यक, सूर्यभेद से द्वादश संख्यक तथा रुद्रभेद से एकादश हैं इस प्रकार से वे सर्वगता हैं (वर्षभेद से पञ्चरूपा हैं)। शिवा ही (युगभेद से) द्वादश गुणित हो जाती हैं। एक सर्वमंगला देवी ही प्रभवादि षष्टि वत्सर (६० वर्ष) भेद से जिस नानाभेद से युक्त हो जाती हैं, उसे कहता हूँ; सुनो। सिंहासनासीना देवी जटामुकुटमण्डिता हैं।।१९-२७।।

शूलाक्षसूत्रधारा च वरदाभयचापधृक्। दर्पणं शरखेटञ्च खड्गमुद्गरधरा शिवा ॥२८॥
सुरूपा लक्षणोपेता सुस्तनी चारुभाषिता। सर्वाभरणभूषाङ्गी सर्वशोभासमन्विता ॥२९॥
नेत्रत्रयकृतद्योता सूर्यसोमहुताशनाः। एवंविधा महादेवी गृहे सप्ताङ्गुला वरा ॥३०॥
नवद्वादशमाना वा द्वादशार्द्धं न पूजयेत्। प्रासादे करमाना सा यावत् पञ्चदशा करा ॥३१॥
कन्यासां मध्यमां विद्धि द्विगुणा त्रिगुणा वरा। हैमा राजत ताम्रा वा महार्घमणिचर्च्चिता ॥३२॥

वे शूल-अक्षसूत्र-वर-अभय-धनु-दर्पण-बाण-खेटक-खड्ग-मुद्गरधारी-सुरूपा-सुलक्षणा-सुस्तनी-शुभशंसिनी-सर्व आभरण भूषिता-सर्वशोभायुता हैं। वे सूर्य, चन्द्र, अग्निरूप त्रिनयन से समुज्ज्वला हैं। महादेवी की प्रतिमा साधारण गृह में सप्त अंगुल, नौ अंगुल अथवा बारह अंगुल की होनी चाहिये। इससे बड़े माप की देवी प्रतिमा साधारण गृह में पूजनीय नहीं होती। प्रासाद एक हाथ से लेकर पन्द्रह हाथ तक का हो सकता है। इसमें भी कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तमरूप तीन विभाग हैं। कनिष्ठ परिमाण है एक हाथ, मध्यम है दो हाथ एवं उत्तम है तीन हाथ। वह प्रतिमा सुवर्णमयी, रजतमयी अथवा ताम्रमयी अथवा महार्घ मणियों से बनी होनी चाहिये।।२८-३२।।

हेमोत्था सा सदा कार्या सर्वकामप्रसाधिका। राजता आयुरारोग्यं ताम्रा सौभाग्यवर्द्धनी ॥३३॥
चित्रसूत्रचिता देवी गणगन्धर्वपूजिता। समस्तरत्नखचिता सर्वशोभासमुज्ज्वला ॥३४॥
भावकार्य्यानुरूपेण प्रभवे स्थापयेत् सदा। एवंकृत्वा शुभां देवीं प्रतिष्ठां कारयेत्ततः ॥३५॥

स्वर्णप्रतिमा सर्वकाम-प्रसाधिका होती है। रजतमयी प्रतिमा आरोग्य तथा आयुवृद्धि प्रदान करती है। ताम्रमयी प्रतिमा सौभाग्यदायिनी होती है। विचित्र सूत्रशोभिता देवियाँ गन्धर्वगण से पूजिता होती हैं। समस्त रत्नभूषिता तथा सर्वशोभा-समुज्ज्वला देवीप्रतिमा चित्तशुद्धि के साथ तथा सम्यक् (विधान से) कर्मानुसार प्रभव वत्सर में स्थापित करनी चाहिये। इस प्रकार से शुभ देवीप्रतिमा का निर्माण कराकर उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये।।३३-३५।।

मण्डपञ्चार्द्रशाखाभिः क्षीरिवृक्षसमुद्भवैः। दशद्वादश आरभ्य यावद्हस्तशतं भवेत् ॥३६॥
अष्टोत्कृष्टं मुनिश्रेष्ठ वेदी हस्तचतुष्टयम्। तस्य मध्यगता कार्य्या सप्तहस्ता अथापरा ॥३७॥

क्षीर वृक्ष (जिसकी टहनी तोड़ने पर दूध ऐसा स्राव हो)-सम्भूत आर्द्र (हरी, जो सूखी न हो) शाखा द्वारा १०, १२ हाथ का अथवा १०८ हाथ का मण्डप बनाना चाहिये। हे मुनिवर! उसमें ४ अथवा ७ अथवा अन्यविध वेदी बनानी चाहिये।।३६-३७।।

ईशानपूर्व्वे चाग्नेये दिग्भागे मनतुष्टिदे। देवीगेहं प्रकर्त्तव्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥३८॥
एकादशकरं कार्यं यावद्धस्तशतापि वा। विवृद्ध्या क्रमशो वत्स अष्टोत्कृष्टं विधीयते ॥३९॥

ईशानकोण, पूर्व की ओर अथवा अग्निकोण में जहाँ मन को अच्छा लगे, उसी ओर सर्वलक्षणयुक्त देवीगृह बनाना चाहिये। एकादश हाथ अथवा एकादश धनु से लेकर १०८ धनु-पर्यन्त देवीगृह का परिमाण होना चाहिये। शक्ति के अनुसार इसमें समस्त कार्य (अनुष्ठानादि) करना चाहिये।।३८-३९।।

कराणां धनुषाणां वा शैलं पक्वेष्टकाष्ठजम्। सर्वतोभद्रविन्यास सावष्टम्भमथापि वा ॥४०॥
विजयाख्यं जयं वापि सगवाक्षविभूषितम्। वेद्या शोभकव्यालाढ्यं मत्तवारणशोभितम् ॥४१॥
अनेकचित्रपत्राढ्यं पद्मस्वस्तिकमण्डितम्। शङ्खोत्पलकृतापीडं हंसबर्हिणचर्च्चितम् ॥४२॥

देवीगृह शिलामय अथवा पकी ईंटों वाला अथवा लकड़ी का बनाना चाहिये। यह सर्वतोभद्राकृति अथवा सावष्टम्भ, विजय अथवा जयनामक होना चाहिये। वह गवाक्ष (झरोखों) से युक्त हो। वेदी शोभित हो। सर्पचित्र, मत्त हस्तिचित्र, अनेक चित्र हों। पद्म-शोभित हो तथा वहाँ पद्मस्वस्तिक हों। ऊर्ध्व में पद्म-शंख के चित्र हों। साथ ही हंस, मयूर आदि के भी चित्र लगे हों।।४०-४२।।

एवंविधं महासौधं देव्यार्थे कारयेद् बुधः। तस्मिन् प्रतिष्ठयेद्देवीं वेदीं स्तम्भैः समैः कृताम् ॥४३॥

देवी के लिये इस प्रकार का महासौध बनाना ज्ञानी साधक का कर्त्तव्य है। इसी में देवी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उस भवन में समान स्तम्भयुक्त वेदी बनाये।।४३।।

पञ्चोच्छ्रयकरा कार्य्या सपादं क्षितिगं परम्। पादोना चेष्टकोच्छ्रायां पूर्वद्वारसमेऽपि वा ॥४४॥
निष्पादिता यदा वेदी स्तम्भतोरणभूषिता। तदा मण्डपविन्यासे तोरणं परिकल्पयेत् ॥४५॥

वेदी ऊँची पाँच हाथ की हो, लेकिन उसके चौथे भाग का एक भाग भूमि के भीतर रहे। चार हाथ ऊपर रहे, एक हाथ भूमि में नीचे हो। वेदी ईंट-निर्मित तथा गृह के किञ्चित् पूर्वांश में हो अथवा द्वार के ही समसूत्र में बनी हो। स्तम्भ, तोरणयुक्त वेदी बन जाने पर मण्डप-तोरण लगाना चाहिये।।४४-४५।।

सर्वकामसमृद्ध्यर्थमिषो मासः प्रकीर्त्तितः। चालनं स्थापनं वापि पुनः संस्कारमेव वा ॥४६॥
तस्मिन् देव्याः प्रकर्त्तव्यं महान्तं फलकांक्षिभिः। स्वल्पबीजान् महालाभं वप्ता काले अवाप्नुयात् ॥४७॥
अथातः संप्रवक्ष्यामि देवीतोरणलक्षणाम्। सर्वासां येन देवीनां यजनाय भविष्यति ॥४८॥

आश्विन मास सर्व अभीष्टदायक होता है। फलाकांक्षी व्यक्ति को चालन, स्थापन तथा पुनः संस्कारादि कार्य इसी मास में करना चाहिये। यथाकाल में स्वल्प बीज भी बोने पर बोने वाले को अधिक फल होता है। अब मैं सभी देवियों के याजन में उपयोगी देवी के तोरण का लक्षण कहता हूँ।।४६-४८।।

स ज्वरव्रणनिहतैर्वेदीस्तम्भैः समैः शुभैः। कर्त्तव्यं तद्वद्देवीनां तोरणं विस्तरोच्छ्रयम् ॥४९॥

सरल, व्रणरहित, सम, सुदृश्य, वेदी स्तम्भ के समान विस्तार हो तथा सम हो एवं शुभ हो। ऐसा देवीतोरण होना चाहिये। वह उच्छ्राय वाला भी होना चाहिये।।४९।।

हस्तभूमिगतं कार्यं दृश्यं हस्तचतुष्टयम्। न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थं प्लक्षैः पूर्व्वा दिशा क्रमात् ॥५०॥

वह भूगर्भ में यह एक हाथ गड़ा हो। चार हाथ ऊँचाई का जमीन के ऊपर हो। उसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में यथाक्रमेण न्यग्रोध, गूलर, उडुम्बर तथा पीपल एवं प्लक्षवृक्ष से बनाना चाहिये।।५०।।

सर्वेषां शिवपट्टस्थं त्रिशूलं लाञ्छनं शुभम्। दर्भचीवरवस्त्राद्यं स्रङ्मालागन्धचर्च्चितम् ॥५१॥
विजयेति पदोच्चारात्तोरणं सन्निवेशयेत्। हरिचन्दनसमाकारान् सुरवज्रोज्ज्वलान् सितान् ॥५२॥
धूम्रशुक्लशिरीषाभान् पुष्पापीडविचित्रितान्। बहुरूपान् स्वरूपाभान् देवाङ्कानुच्छ्रयेद् ध्वजान् ॥५३॥
इन्द्रादिलोकपालानां मध्ये छत्रं सुशोभनम्। सुवृत्तं प्रवरं श्वेतं वृषस्वस्तिकलाञ्छितम् ॥५४॥

सभी तोरण शिरःपट्ट तथा त्रिशूलचिह्नयुक्त होने चाहिये। कुशा-वस्त्रखण्डशोभित-माला-गन्ध-चर्चित तोरण को 'विजय' मन्त्र शब्द का उच्चारण करके सन्निवेशित करना चाहिये। पुष्पशीर्ष वाला, श्वेत, धूम्रवर्ण, शिरीषपुष्पवर्ण तथा देवचिह्नित ध्वज उसमें लगाना चाहिये। इन्द्रादि लोकपालार्थ मध्य में उत्तम छत्र होना चाहिये। वह छत्र सुवृत्त श्वेत होना चाहिये तथा उसमें वृष-स्वस्तिक बने होने चाहिये।।५२-५४।।

चर्तुहस्तप्रमाणान्ताः पताका हस्तविस्तराः। ऋज्वैरव्रणवंशैश्च उच्छ्रयेद्विजयेति च ॥५५॥

ध्वज चार हाथ का एवं पताका एक हाथ की होनी चाहिये। ध्वज सरल तथा कटा-फटा नहीं होना चाहिये। विजयमन्त्र का उच्चारण करके उसे फहराना चाहिये।।५५।।

पदं देव्याः समुच्चार्य्य यत्तद्वै सर्वकामिकम्। गजसिंहकृतैः सर्वैः कलसैर्बाहुसंस्थितैः ॥५६॥
पञ्चवक्त्रैः समाच्छन्नैः पञ्चवक्त्रैः शरावकैः। सच्छत्रैर्वारकैः शुभ्रैश्चित्रबर्हिणशुकादिभिः ॥५७॥

जिस समय जिस पद में समस्त अभिलाषाओं की सिद्धि निहित है, उस देवीपद का उच्चारण भी करना चाहिये। गज, सिंह, कलस, मयूर, शुकप्रभृति उसमें चित्रित होने चाहिये। (यहाँ श्लोक ५७ का मूल पाठ प्रामादिक लगता है)।।५६-५७।।

वस्त्ररत्नविशेषैश्च भूषयेद्देविवेदिकाम्। तीर्थतोयसमुत्थाभिः सिकताभिश्चिता यदा ॥५८॥
तदा शाल्यादिचूर्णोत्थैर्मौक्तिकादिरजैर्लिखेत्। पद्मं यागविधानार्थं मण्डले यादृशं मतम् ॥५९॥
अनेकानि च शोभानि दर्शयेद् देविमण्डले। ऐन्द्रादि कुण्डं स्रुवादिपात्रमर्घ्यादि याज्ञिकम् ॥६०॥
फलानि गन्धपुष्पाणि पात्राणि समिधानि च। मृद्वल्कलानि रत्नानि उदकानि समाहरेत् ॥६१॥

देवी का वेदीवस्त्र भी रत्नविशेष से भूषित रहे। वेदी को तीर्थजल में से (जल के तल से) निकाली मिट्टी से बनाये (अर्थात् लिप्त करे)। उस पर मौक्तिकादि धूलि से, अभाव होने पर शालिचूर्णादि द्वारा यागविधानादि के अनुकूल मण्डलोचित पद्म का अंकन करना चाहिये। मण्डल में नाना प्रकार की कारीगरी से उसे सजाये। ऐन्द्रादि कुण्ड, स्रुवादि पात्र, अर्घ्यादि याज्ञिक पात्र, फल, गन्ध, पुष्प, पत्र, समिध, मृत्तिका, वल्कल, रत्न तथा जल आदि लाकर वहाँ रखना चाहिये।।५८-६१।।

अविवासानि पूर्वन्तु होमं कृत्वा दिशां बलिम्। दत्त्वा स्नानं पुरा कृत्वा प्रतिष्ठाविधिहोमिते ॥६२॥
गोत्रक्रमेण या देव्या संस्थिता नृपसत्तम। ताः पूज्या मूलमन्त्रेण स्वनामपदपूर्व्विकाः ॥६३॥
प्रतिष्ठा तासु कर्त्तव्या प्रमाणेन कदाचन। एकाङ्गुलात् समारभ्य यावद्द्वादश-अङ्गुलाः ॥६४॥

इससे पूर्वदिन में अधिवास, अगले दिन स्नानान्त में होम (नित्यहोम), दिग्बलि देने के अनन्तर प्रतिष्ठा तथा होम करना चाहिये। हे नृपश्रेष्ठ! वंशानुक्रम से जो देवता प्रतिष्ठित हैं, (श्रेणीभेद से पूर्वोक्त क्रम से जो देवता स्थित हैं उनका स्वनामसम्बद्ध पद से पूजा-प्रतिष्ठा करनी चाहिये), उनकी प्रतिष्ठा षष्टि विद्यामन्त्र से करनी चाहिये। स्वनाम-पद मूलमन्त्र के पहले लगाकर उनका पूजन करना चाहिये। पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रमाण कदापि कर्त्तव्य नहीं है। एक अंगुल से लेकर बारह अंगुल तक की प्रतिमा होनी चाहिये।।६२-६४।।

गृहे तु शोभना अर्चा धर्म्मकामार्थमोक्षदा। सर्वमङ्गलमन्त्रैश्च आद्यानां स्थापनं भवेत् ॥६५॥
पदमालेति मध्यानामन्त्यानां चर्च्चिका पदैः। दानं गोभूहिरण्यादि येन वा प्रीयते शिवा ॥६६॥

इस परिमाण की शोभना प्रतिमा लगानी चाहिये। इससे धर्म-अर्थ-काम तथा मुक्ति मिलती है। पहले सर्वमंगलमन्त्र से देवताओं की (आद्य देवताओं में) प्रतिष्ठा करनी चाहिये। आद्य देवताओं की प्रतिष्ठा के उपरान्त पदमाला विद्या से मध्यम देवताओं की तथा अन्त्य देवताओं की प्रतिष्ठा चर्चिका पदों से करनी चाहिये। शिवा की प्रसन्नता के लिये गौ, स्वर्ण, भूमि आदि का दान करना चाहिये।।६५-६६।।

आचार्याय प्रदातव्यं द्विजादेः कन्यकासु च। तत्र देयं सदा वत्स नृपबन्धुजनस्य च ॥६७॥
प्रभवं वत्सरं कार्यं पीतवर्णं सुशोभनम्। चन्दनेन पटे लेख्यं मधुसूदनरूपिणम् ॥६८॥

यह दान आचार्य, ब्राह्मण तथा कुमारी कन्याओं को प्रदान करना चाहिये। हे वत्स! उस समय राजा एवं बन्धुगण को दान द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये। एक पट पर चन्दन से प्रभव वर्ष का अंकन करना चाहिये। यह वर्ष चित्र, पीतवर्ण, शोभन तथा मधुसूदन स्वरूप होना चाहिये।।६७-६८।।

तस्य पूजा प्रकर्त्तव्या यथाविभवविस्तरैः। रुद्रादित्यवसून् देवा देव्यः पितर मातरः॥६९॥
नागा यक्षा मनुष्याश्च ग्रहाश्च त्रिविधाः क्षणाः। मुहूर्ताः ऋतवो योज्या अयनानि फलानि च ॥७०॥
एवंकृत्वा महायोगं प्रतिष्ठां पूर्वचोदिताम्। देवपीठगता वत्स पूजनीया दिने दिने ॥७१॥
प्रातर्मध्याह्नसन्ध्यासु महापूजां सुमङ्गलाम्। मन्त्रजापः क्रिया होमः कर्त्तव्यः सर्वसिद्धये ॥७२॥
एकभक्तेन नक्तेन अयाचित उपोषणैः। क्षीराहारैर्यताहारैः कन्दमूलफलाशिनैः ॥७३॥
यवषष्टिकगोधूमैर्हविष्यकृतभोजनैः। कर्त्तव्यं यजनं देव्याः सर्वकालं जितेन्द्रियैः ॥७४॥

हे वत्स! इस प्रभव वर्ष की पूजा यथाशक्ति करनी चाहिये। रुद्र, सूर्य, वायु, देवता, देवी, पितर, मातृगण, नाग, यक्ष, मनुष्य, ग्रह, विविध क्षण, मुहूर्त्त, ऋतु, अयनादि का पूजन करना चाहिये। पीठगत देवी की प्रतिष्ठा करके वे तथा पीठ देवगण प्रतिदिन पूजनीय हैं। प्रातः-मध्याह्न-सायं सुमंगलादेवी की महापूजा, मन्त्र जप, क्रिया, होमादि कर्त्तव्य करने से सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। एक समय आहार, अथवा मात्र रात्रि आहार अथवा अयाचित भोजन करना चाहिये। क्षीर का आहार, मिताहार, कन्द-मूल खाकर रहना चाहिये। अथवा यवपिष्टक, गोधूम, हविष्य का भोजन करना चाहिये। अथवा सर्वकाल उपवासी रहकर जितेन्द्रिय रहकर देवी का यजन कर्त्तव्य होना चाहिये।।६९-७४।।

अनेनैव विधानेन सर्वपापक्षयो भवेत्। महापातकनाशाय इन्द्रेण कृतवान् पुरा ॥७५॥
द्विजं वृत्रासुरं हत्वा पितॄन् हत्वा सुमालिना। सुतञ्च व्रतं मनुना गुरुं गौतमकाश्यपैः ॥७६॥

इस विधान से सर्वपापक्षय हो जाता है। महापातक-नाशार्थ पूर्व काल में इसे इन्द्र ने किया था। ब्राह्मण वृत्रासुर के हत्याजनित त्राणार्थ इन्द्र ने किया था। सुमाली ने पितृहत्या-पापमुक्ति के लिये इसका अनुष्ठान किया था। मनु ने पुत्रवधजनित तथा गौतम ने काश्यप गुरु पीड़नजनित पापक्षयार्थ इस व्रत को किया था।।७५-७६।।

एवं शुद्धिगता वत्स शक्रदेवाः प्रजापते। राज्यार्थं वसुना कृत्वा ब्रह्मणा हरिणा यथा ॥७७॥
रुद्रेण त्रिपुरं दग्धं विष्णुना शरभो हतः। अनेनैव विधानेन वेदान् शम्भुः गृहीतवान् ॥७८॥
नष्टां कूर्म्मतनुं कृत्वा प्राप्तवान् मधुसूदनः। अधृष्टौ कृतवानासीत् क्रतुर्दशरथेन च ॥७९॥
अन्यैश्च मुनिशार्दूल प्रजायुःराज्यकाङ्क्षिभिः। कृतवान् सुरगन्धर्वैर्यक्षरक्षो सदा नृपैः ॥८०॥

हे वत्स! इस प्रकार इन्द्रादि देवगण तथा प्रजापतिद्वय ने शुद्धि प्राप्त किया था। वसु ने राज्यप्राप्ति के लिये इस पूजा को किया था। ब्रह्मा तथा हरि द्वारा भी यही पूजा सम्पन्न की गई थी। इस पूजाव्रत के प्रभाव से रुद्र ने त्रिपुरदहन किया था। विष्णु ने इसी विद्या के प्रभाव से शरभ का वध किया था। इसी पूजा-विधान के प्रभाव से शम्भु ने वेदों को ग्रहण किया था। दशरथ ने अनावृष्टि के समय यही यज्ञ सम्पन्न करके प्रजा की रक्षा के लिये कार्य किया था। हे मुनिशार्दूल! प्रजा, आयु तथा राज्याभिलाषी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा महाराजगण यही कर्म करते हैं।।७७-८०।।

ये पुनर्भक्तिमास्थाय सर्वकालं यजन्ति च। तेषामायुः श्रिया ब्राह्मी स्वर्गे स्थानञ्च शाश्वतम् ॥८१॥
यावद्भुश्चन्द्रमादित्यौ तावत् क्रीडन्ति ते सुखम्। स्वर्गे विष्णुपुरे रम्ये चन्द्रार्कग्रहभूषिते ॥८२॥
आगत्य इह जायन्ते नृपा वेदार्थपारगाः। देवीभक्ताः सदाचाराः सुखिनो विगतारयः ॥८३॥
देहान्ते शिवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति परां गतिम्। त्रैलोक्याभ्युदये पादे प्रभवे मङ्गलादिभिः ॥८४॥

जो भक्तिपूर्वक सर्वदा महादेवी का पूजन करते हैं, उन्हें आयुवृद्धि, सम्पत्ति तथा विद्या की प्राप्ति हो जाती है। अन्त में उन्हें स्वर्ग में चिरकालीन स्थान मिलता है। वे जब तक पृथिवी है, चन्द्र-सूर्य हैं, तब तक क्रमशः स्वर्ग, चन्द्र, सूर्यलोक, ग्रहलोक तथा रमणीय विष्णुलोक में क्रीड़ा करते हैं। तत्पश्चात् पृथिवी पर जन्म लेकर वेदार्थनिष्णात, देवीभक्त, सदाचारी, सुखी, शत्रुरहित राजा के रूप में जन्म लेते हैं। तदनन्तर देहान्तोपरान्त परमगति अर्थात् शिवसायुज्य की प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार इस त्रैलोक्याभ्युदय नामक (पुराण के इस) पाद में प्रभव वर्षकालीन मङ्गलादि पूजा-विधान कहा गया।।८१-८४।।

विभवे विजयां देवीं शूलपद्माक्षधारिणीम्। वरदोद्यतसिंहस्थां सर्वकामप्रसाधनीम् ॥८५॥
कृत्वा होमादिलाभेन पूजयेद्यस्तु भार्गव। सर्वदा सर्वकामान् स पूर्वोक्तांल्लभते मुने ॥८६॥

हे मुने! विभव वर्ष में शूल-पद्माक्षधारिणी, वरदा, सिंहस्था, सर्वकामप्रदा विजया देवी की सतत् पूजा-होम आदि प्रमुख कार्य से जो करते हैं, हे भार्गव! वे पूर्वोक्त फललाभ करते हैं।।८५-८६।।

भद्रां शुक्ले समे कुर्य्याद्भद्रासन व्यवस्थिताम्। नीलोत्पलकलहस्तां शूलसूत्राक्षधारिणीम् ॥८७॥
पुष्परागकृता शोभां पूर्वोक्तविधिना नुताम्। क्षीराशी पूजयेद् यस्तु षडङ्गेन सुभावितः ॥८८॥
सर्वपीठोपहारेण सुगन्धकुसुमादिभिः। होमं क्षीरघृतैः कुर्य्याल्लक्षैकन्तु महामुने ॥८९॥
सर्वकामानवाप्नोति मुच्यते ब्रह्महत्यया। राष्ट्रस्यास्य नृपाणाञ्च जायते वृद्धिरुत्तमा ॥९०॥

हे मुने! शुक्ल वत्सर में नीलोत्पल फल हाथ में लिये, शूल तथा अक्षसूत्रधारिणी, पुष्पराग से शोभिता, भद्रासन व्यवस्थिता भद्रादेवी का पूजन उपरोक्त विधि से करना चाहिये। मात्र दुग्ध पीकर रहे और षडङ्गन्यास के साथ शुद्ध चित्त से सुगन्ध-पुष्पादि द्वारा सर्वपीठ देवताओं की पूजा के साथ इन भद्रादेवी का पूजन करना चाहिये। हे मुनिवर! दुग्ध-घृत से एक लाख होम करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक सर्वाभीष्ट-प्राप्ति के साथ ही ब्रह्महत्याजनित पाप से भी मुक्त हो जाता है। उस राज्य का तथा पूजक राजा का विशेष अभ्युदय भी होता है।।८७-९०।।

शिवा वृषासना कार्य्या त्रिनेत्रा वरशालिनी। डमरूरगधारी च सशूला वत्सरान्विता ॥९१॥
जटामुकुटचार्धेन्दुवासुकीकृतकङ्कणा। स्थापिता पूर्वविधिना शिवाङ्गैः पूजिता मुने ॥९२॥
पद्मबिल्वदधिसर्पिस्तिलहोमा वरप्रदा। भवते यजमानस्य देशस्य च नृपस्य च ॥९३॥

हे मुने! अनुवत्सर अर्थात् चतुर्थ प्रमोद नामक वत्सर में वृषारूढ़ा, त्रिनेत्रा, वर-डमरु-सर्प-शूलधारिणी, जटा-मुकुटयुता, अर्द्धचन्द्रभूषिता, वासुकी नागवलय से शोभिता तथा शिवादि से पूजिता शिवा की स्थापना पूर्वोक्त विधि से करके कमल, बिल्वपत्र, दधि, घृत तथा तिल से होम करना चाहिये। इससे भगवती यजमान को (राजा को) राज्य का वरदान देती हैं।।९१-९३।।

शान्तिः प्रजापतौ कार्य्या पद्मासनव्यवस्थिता। अक्षसूत्रकरा देवी वरदोद्यतपाणिनी ॥९४॥
पूजिता सितगन्धादिक्षीराहाररतैर्मुनेः। आशु कामप्रदा देवी भवते नृपशान्तिदा ॥९५॥

प्रजापति वत्सर में पद्मासना, वर मुद्रा तथा अक्षसूत्रधारिणी शान्तिदेवी का कपूर, चन्दन, दुग्ध, अन्नादि से पूर्वोक्त क्रम से पूजा करनी चाहिये। इससे अभिलषित सिद्धि तथा राज्य में शान्ति प्राप्त होती है। ये देवी शीघ्र कामनापूर्त्ति करती हैं।।९४-९५।।

धृतिरङ्गिरसे कार्या दण्डासनव्यवस्थिता। पद्मदर्पणधारी च सर्वाभरणभूषिता ॥९६॥
स्थापिता पूर्वविधिना वामदेवादि पूजिता। मधुक्षीरादि होमाच्च सर्वकामप्रसाधिका ॥९७॥

अङ्गिरस वत्सर में दण्डासनासीना, पद्म-दर्पणधारी, सर्वाभरणभूषिता, कामदेवादि देवों से पूजिता, धृति देवी की उक्त विधि से स्थापना करके मधु-दुग्ध-घृत से होम करने पर सर्व अभीष्ट प्राप्त होता है।।९६-९७।।

क्षमा तु श्रीमुखे कार्य्या योगपट्टोत्तरीयका। पद्मासनकृताधारा वरदोद्यतपाणिनी ॥९८॥
शूलमेखलसंयुक्ता प्रशान्ता योगसंस्थिता। सितपुष्पोपहारेण सितहोमेन सिद्धिदा ॥९९॥

श्रीमुख वत्सर में योगपट्टोत्तरीया, पद्मासना, वरोद्यता हाथों वाली, शूल-मेखलाधारिणी, प्रशान्ता, योगावलम्बिनी क्षमा देवी की पूजा शुक्ल पुष्पों से तथा कर्पूर से होम करने पर सिद्धि प्राप्त होती है।।९८-९९।।

भावाख्ये कारयेद्दृप्तिं पर्य्यङ्कासनसंस्थिताम्। दर्पणालोकसुमनां तिलकालकभूषिताम् ॥१००॥
मालाचामरशोभाढ्यां वेणुवीणा सदा प्रियाम्। सर्वरक्तोपहारेण सर्वकामफलप्रदा ॥१०१॥

भाववत्सर में पर्यंक पर आसीना, दर्पण के अवलोकन से प्रसन्न होने वाली, माला-चामर से शोभिता, सदैव वेणु-वीणा-वादन से प्रसन्ना, तिलक तथा अलक से भूषिता ऋद्धि देवी की स्थापना करके रक्तवर्ण पुष्प-गन्धादि सर्वविध उपचारों से पूजा करने पर सर्व अभीष्ट फल मिलता है।।१००-१०१।।

वृद्धिं मुधाह्वये कुर्य्यात् पट्टोपरि व्यवस्थिताम्। रत्नमालाधरां देवीं बीजं पूरवरप्रदाम् ॥१०२॥
महाविभवसारेण गन्धपुष्पपवित्रकैः। पूजिता संस्तुता वत्स फलहोमा वरप्रदा ॥१०३॥

हे वत्स! मुधा वत्सर में पट्ट पर आसीना, रक्तमाला से शोभिता, बीजपूर-वरधारिणी 'वृद्धि' देवी की पूर्वोक्त प्रकार से महाविभव के अनुसार गन्ध-पुष्प-कुश से पूजा करके उनकी स्तुति करनी चाहिये। तदनन्तर फल से होम करने पर वे वरप्रदा हो जाती हैं।।१०२-१०३।।

धाताख्ये उन्नतिं कुर्य्यात् सर्वलक्षणलक्षिताम्। वीणावादनशीलाञ्च सर्वाभरणभूषिताम् ॥१०४॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरगन्धपुष्पसुपूजिताम्। सितचन्दनगन्धाढ्यां सितपङ्कजभूषिताम् ॥१०५॥
दण्डासनस्थिता देवी प्रतिहार्य्योपशोभिता। घृताश्रीफलहोमेन आयुरारोग्यराज्यदा ॥१०६॥

धाता वत्सर में सर्वलक्षणान्विता, वीणावादनरता, सर्वाभरणभूषिता 'उन्नति' देवी की पूर्वोक्त विधान से प्रतिमा स्थापित करके कुङ्कुम-अगुरु-कर्पूर-गन्ध-पुष्पादि से पूजा तथा कर्पूर कुङ्कुम से होम करने पर आयुवृद्धि तथा आरोग्यवृद्धि होती है। ईश्वर वत्सर में सिद्धार्थ वरधारिणी, कर्पूर-चन्दन-गन्धों से शोभिता, शुक्ल पद्मभूषिता, दण्डासन आसीना, नूपुरशोभिता 'सिद्धि देवी' की पूर्वोक्त प्रकार से स्थापना करके उनका यथोक्त विधि से पूजनोपरान्त घृत-बिल्वपत्र से होम करना चाहिये। ये प्रसन्न होकर आयुवृद्धि, राज्य तथा आरोग्य प्रदान करती हैं।।१०४-१०६।।

बहुधान्ये सदा तुष्टिः कलसोपरि संस्थिता। पाशाङ्कुशकरा देवी पद्मस्वस्तिकधारिणी ॥१०७॥
मदिरौदनगन्धाढ्या महार्घमणिभूषिता। सर्वपीतोपहारेण घृतहोमेन सिद्धिदा ॥१०८॥

बहुधान्य वत्सर में कलस पर स्थिता, पाश-अङ्कुश-पद्म-स्वस्तिकधारिणी, मदिरान्नगन्धयुक्ता, महार्घमणि से आभूषिता 'तुष्टि' देवी का पीतवर्ण के सर्वविध वस्तु से पूजन करके पीत वस्त्रादि उपहार प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् घृत के होम द्वारा प्रसन्न होकर वे सिद्धि प्रदान करती हैं।।१०७-१०८।।

प्रमाथिनी समे पुष्टिर्नवयौवनगर्व्विता। खड्गहस्ता महारूपा चर्म्ममुद्गरधारिणी ॥१०९॥
अश्वारूढा महादेवी काश्मीरागुरुचर्च्चिता। वनमाल्योपहारेण मधुहोमेन सिद्धिदा ॥११०॥

प्रमाथी वत्सर में नवयौवनगर्विता, खड्ग-चर्म-मुद्गरधारिणी, अश्वारूढा, कुङ्कुम-अगुरु से चर्चिता, 'पुष्टि' देवी की उपरोक्त विधान से स्थापन-पूजनादि करके वनमाला उपहार प्रदान करने के उपरान्त मधु के होम से देवी सिद्धि प्रदान करती हैं।।१०९-११०।।

विक्रमे तु श्रिया कार्य्या पद्मासनव्यवस्थिता। पद्मश्रीफलधारी च करिणैः कलसान्वितैः ॥१११॥
स्नाप्यमाना महादेवी सर्वाभरणभूषिता। कुङ्कुमागुरुहोमेन सर्वभोगवरप्रदा ॥११२॥

विक्रम वत्सर में भगवती 'श्री' कमला का अर्चन करना चाहिये, जो पद्मासना, पद्म तथा श्रीफलधारिणी, सर्वाभरणभूषिता देवी हैं, जिनको हाथी जलपूर्ण कलश को अपनी सूंड से उलटते हुये स्नान करा रहे हैं। कुङ्कुम तथा अगुरु के होम से इनको प्रसन्न करने पर देवी सर्वभोग प्रदान करती हैं।।१११-११२।।

वृषे उमा प्रकर्त्तव्या पद्मोपरि व्यवस्थिता। योगपट्टोत्तरा सङ्गमृगसिंहपरीवृता ॥११३॥
ध्यानधारणसन्ताननिरुद्धनियमे स्थिता। कमण्डलुश्च सूत्राक्षवरदोद्यतपाणिनी ॥११४॥
ग्रहमाला विराजन्ती जयाद्यैः परिवारिता। पद्मकुण्डलधारीं च शिवार्च्चनरता सदा ॥११५॥
गन्धमाल्योपहारेण चन्दनागुरुधूपिता। कर्पूरागुरुहोमेन सर्वकामफलप्रदा ॥११६॥

वृष वत्स मे पद्म पर स्थिता, योगपट्टोत्तरीया, मृग-सिंहादि से घिरी, जयादि देवियों से वेष्टिता, वरदानोद्यता, ध्यान-धारणादि योगयुक्ता, कमण्डलु-अक्षसूत्रधारिणी, ग्रहमाला विराजमाना, पद्मकुण्डलों से शोभिता, शिवार्चनरता 'उमा' देवी की पूर्वोक्त पद्धति से स्थापना तथा अर्चना करके उन्हें गन्धमाला उपहार प्रदान, चन्दन-अंगुरु धूप प्रदान करके कर्पूर-अगुरु से होम द्वारा प्रसन्न करने से सर्वाभीष्ट प्राप्त होता है।।११३-११६।।

चित्रभानौ समे दीप्तिश्चन्द्रासनव्यवस्थिता। किरणोज्ज्वलधारी च सिंहासनव्यवस्थिता।
रक्तगन्धोपहारेण सर्वदा भावपूजिता ॥११७॥
रक्तचन्दनहोमेन घृतमिश्रेण सिद्धिदा। सुभानौ कारयेत् कान्तिं नीलोत्पलव्यवस्थिताम् ॥११८॥
सर्वाभरणभूषाङ्गीं कपालोत्पलधारिणीम्। जातीपुष्पमालाधरीं महाकर्पूरचर्चिताम् ॥११९॥
पूजितां भावयोगेन जातीहोमा वरप्रदाम्। यशो तारणनामे तु शङ्खपुस्तकधारिणी ॥१२०॥

शुद्ध चित्त होकर चित्रभानु वत्सर में चन्द्रासन पर आसीना 'दीप्ति' देवी की स्थापना पूर्वोक्त विधि से करके पूजा करनी चाहिये तथा घृतमिले लाल चन्दन से होम करना चाहिये। इससे वे सिद्धि प्रदान करती हैं। सुभानु नामक वत्सर में नीलोत्पल के समान मुख वाली, सर्वाभरणभूषिता, कलसकमलधारिणी, जातीकुसुम मालाशोभिता, मृगमद (कस्तूरी), कर्पूर से चर्चिता 'कान्ति' देवी की प्रतिमा निर्मित करके उनकी शुद्धचित्त से पूजा करने से वे वरप्रदा हो जाती हैं। 'तारण' नामक वत्सर में यशो देवी की पूजा करनी चाहिये। ये शंख-पुस्तकधारिणी हैं।।११७-१२०।।

पर्य्यङ्कोदरसंस्था तु पीतवर्णा सुचर्च्चिता। परिजातकपुष्याद्या यज्ञगन्धानुलेपना ॥१२१॥
नागकेशरहोमेन यथेष्टफलदायिका। पार्थिवे कारयेल्लक्ष्मीं पद्मगर्भव्यवस्थिताम् ॥१२२॥

ये देवी पर्यङ्क पर बैठी हैं। पीतवर्णा हैं। उत्तम अनुलेपन से लिप्त हैं। पारिताज पुष्पों से पूजित एवं यज्ञगन्ध का लेप की हुई हैं। इनकी पूजा करके नागकेशर पुष्प द्वारा होम करना चाहिये। इससे देवी इच्छित प्रदान करती हैं। पार्थिव वत्सर में 'लक्ष्मी' का पूजन करना चाहिये, जो कमलमध्य में स्थित हैं।।१२१-१२२।।

पद्मपूरकहस्ताञ्च महार्घमणिभूषिताम्। श्यामाङ्गीं गन्धपुष्याढ्यां कस्तूर्य्यादिभिरर्च्चिताम् ॥१२३॥
पूजितामुपहारेण घृतहोमे वरप्रदाम्। वयेश्वरी प्रकर्त्तव्या वृषयुग्मव्यवस्थिता ॥१२४॥
जटामुकुटभालेन्दुत्रिशूलोरगभूषणा। मणिमौक्तिकशोभाद्या सितचन्दनचर्च्चिता ॥१२५॥
पूजिता कुसुमैर्हृद्यैः सर्वकामफलप्रदा। एताश्चोत्तमभागस्थाः पूजिताः संस्तुताः शिवा ॥१२६॥

ये देवी हाथ में पद्म-पूरकधारिणी हैं। महार्घ मणिविभूषिता हैं। ऐसी श्यामाङ्गी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, कस्तूरी आदि के अनुलेपन तथा अन्य उपहारों से इनकी पूजा करके घृत से होम करना चाहिये। देवी वरप्रदा हो जाती हैं। व्यय नामक वत्सर में ईश्वरीमूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। जटा-मुकुट-चन्द्र-त्रिशूल इनके आभूषण हैं। मणि-मुक्तादि से इनकी मूर्त्ति को शोभित करना चाहिये। ये वृषयुग्म पर विराजिता हैं। सुगन्ध श्वेत चन्दन विलेपनोपरान्त मनोहर पुष्पों से पूजन करना चाहिये। ये सर्वकामना पूर्ण करती हैं। इन सभी देवीगण की भक्तिपूर्वक पूजा करने तथा स्तव से स्तुति करने से सर्व अभीष्टसिद्धि हो जाती है तथा राजाओं की राज्यवृद्धि होती है। इन सबको पायस का नैवेद्य, उपहार तथा विलेपन प्रदान करना चाहिये।।१२३-१२६।।

सर्वकामप्रदा देव्यो नृपराष्ट्रविवर्द्धनाः । सर्वासां पायसं दद्यादुपहारविलेपनम् ॥१२७॥
चन्दनागुरुकर्पूरविल्वपद्मानि पूजनम् । होमं क्षीरघृतं शस्तं तिलक्षौद्रसमन्वितम् ॥१२८॥
जितद्वन्द्वेन कर्त्तव्यं क्षीरपायसभोजिना । सर्वलोकोपकाराय आत्मनश्च शुभाय च ॥१२९॥
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं सर्वाभ्युदयहेतुकम् । देवीनां पूजनं शस्तं संवत्सरभयापहम् ॥१३०॥

इत्याद्ये देवीपुराणे संवत्सरदेवताप्रथमविंशतिविधिः

चन्दन, अगुरु, कर्पूर, बिल्वपत्र, कमलपुष्प इत्यादि उपहारों से सबकी पूजा करने से तथा पायसादि प्रदान करने से अनुष्ठान सम्पन्न होता है। द्वन्द्वों को जीतकर पायसमात्र (क्षीर) का भोजन करके सर्वसाधारण के तथा अपने मंगल के लिये सब पापों का नाश करने हेतु देवीगण का पूजन कर्त्तव्य है। इससे सर्वविध अभ्युदय होता है तथा संवत्सर में भयादि नहीं रह जाता।।१२७-१३०।।

देवीपुराणोक्त प्रथम विंशति विधि समाप्त

ब्राह्मो हंसासना कार्य्या मुञ्जमेखलभूषिता । चतुर्वक्त्रा सकुर्वाणा दण्डकाष्ठकमण्डलु ॥१३१॥
अक्षसूत्रधरा देवी स्रुवहस्ता च धारिणी । योगपट्टकदण्डाङ्गी वेदोद्गीरित आनना ॥१३२॥

ब्राह्मी मूर्त्ति को मूंज की मेखला से भूषिता तथा हंसरूढ़ा बनानी चाहिये। ये चतुर्मुखी हैं तथा इनके हाथ में दण्ड, कमण्डलु, अक्षसूत्र एवं स्रुवा है। ये योगपट्ट पर स्थित हैं तथा इनके मुख से सदैव वेदोच्चार होता रहता है।।१३१-१३२।।

कृत्वा प्रतिष्ठयेद्यस्तु सर्वजिद्वर्षके शुभे । पूर्वोक्तेन विधानेन सर्वमङ्गलस्थापने ॥१३३॥
यो विधिर्विहितस्तात सोऽप्यत्रैव प्रकीर्त्तिता । होम जाप्य बलिं गन्धशालिषष्टिककृष्णशः ॥१३४॥
पायसं दधिभक्तञ्च लड्डूकानपूपकांस्तथा । ध्वजमाल्योपहारञ्च कुङ्कुमागुरुरोचनाः ॥१३५॥
मणिमौक्तिकदामानि कृत्वा देवीं निवेशयेत् । सर्वकामानवाप्नोति मुच्यते सर्वपातकैः ॥१३६॥
अश्वमेधसमं पुण्यं लभते ह्यविचारणात् । क्षेमारोग्यं सुभिक्षञ्च तस्मिन् देशे प्रजायते ॥१३७॥

पूर्वोक्त विधि के अनुसार इनके प्रतिष्ठा कार्य को भी इसी प्रकार से यथाविधि करना चाहिये। होम, जप, बलि, गन्ध, शालि, षष्टिक, कृषर, पायस, दध्यन्न, लड्डु, अपूप, ध्वज, माला, कुङ्कुम, अगुरु, गोरोचन, मणि, मुक्ता-प्रभृति उपहार से देवीपूजा करके स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार करने से सर्वार्थसिद्धि होती है, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। उस देश में मंगल, आरोग्य एवं सुभिक्ष अक्षुण्ण रहता है।।१३३-१३७।।

यत्रेयं क्रियते पूजा ब्राह्मीमुद्दिश्य मानवाः । तुष्टं युगं प्रकर्त्तव्यं सूर्यरूपं सतेजसम् ॥१३८॥
गोब्राह्मणनृपाणाञ्च यजमानसुखावहम् । जयावती प्रकर्त्तव्या सर्वधारी तु वत्सरे ॥१३९॥

जहाँ देवी की पूजा की जाती है (ब्राह्मीदेवी की पूजा) वहाँ सूर्य तेजयुक्त होकर शुभकारी तथा मंगलकारी होते हैं तथा युग भी प्रफुल्ल हो जाता है। इससे ब्राह्मण, गौ, राजा तथा यजमानादि सबका हित होता है। सर्वधारी नामक वत्सर में जयावती मूर्ति की उपरोक्त विधि से स्थापना करनी चाहिये।।१३८-१३९।।

शरशार्ङ्गवरा देवी सर्वाभरणभूषिता । रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गी सर्वशत्रुनिबर्हणी ॥१४०॥
यस्तु पूजयते भक्त्या स लभतेप्सितं फलम् । शाक्री विरोधीनामे च वज्रहस्ता गजे स्थिता ॥१४१॥

ये देवी शर तथा धनुषधारिणी हैं एवं सभी आभूषणों से भूषिता है। इनका शरीर लाल चन्दन से लिप्त है। ये सभी शत्रुओं का संहार कर देती हैं। इनकी पूजा करने वाला इच्छित फललाभ करता है। विरोधी नामक वत्सर में शाक्री देवी की मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये। इनके हाथ में वज्र है तथा ये देवी हाथी पर आसीना हैं।।१४०-१४१।।

सुरूपाङ्कुशहस्ता च हारकेयूरभूषिता। गणगन्धर्वसंयुक्ता सिद्धचारणसेविता ॥१४२॥
महाविभवसारेण पूजनीया नृपोत्तमैः। वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैः पुष्पधूपपवित्रकान् ॥१४३॥
दद्याद्रक्तोपहारन्तु सर्वक्षत्रविवृद्धये। गजाङ्कगुग्गुलं होमं क्षीरं सर्पिःपरिप्लुतम् ॥१४४॥
लक्षैकं हवमानस्य सर्वकामान् प्रयच्छति। आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं ददाति त्रिदशेश्वरी ॥१४५॥

ये देवी सुरूपा, हार-केयूर आदि अलङ्कारों से आभूषिता हैं। इनके चरणों की सेवा सिद्ध-चामर-गन्धर्वगण करते रहते हैं। वस्त्र-अलंकार-गन्ध-पुष्प आदि से नरपतिगण को इनकी पूजा महान् विभव से करनी चाहिये। रक्तवर्ण उपहार प्रदान करने से क्षत्रियगण की वृद्धि होती है। घृत, गुग्गुलु, गजाङ्क आदि से एक लाख होम करने से यह देवी इच्छित फल देती हैं तथा आयु-आरोग्य-ऐश्वर्य आदि सब देती हैं।।१४२-१४५।।

अजिता विकृते कार्य्या मकरासनसंस्थिता। पाशाङ्कुशधरा देवी सुरूपा विभवान्विता ॥१४६॥
जातीकाशोकपुष्पैश्च पूजनीया सुभावितैः। होम एलात्वचं कुष्ठं पयोहारस्य सिद्धिदा ॥१४७॥

विकृत नामक वत्सर में अजिता देवी की मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये देवी मकरासन पर आसीन रहती हैं। ये पाश-अंकुशधारिणी, सुरूपा तथा ऐश्वर्यदायिनी हैं। जाती, अशोक आदि पुष्पों से भक्तिपूर्वक इनका पूजन करना चाहिये। इलायचीत्वक्, कूठ तथा दुग्ध से हवन करने से देवी सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं।।१४६-१४७।।

खरेऽपराजिता देवी सिंहारूढ़ा महाबला। पिनाकेषुकरा कार्य्या खड्गखेटकधारिणी ॥२४८॥
त्रिनेत्रा जटाभारेन्दुवासुकीकृतभूषणा। कृत्वा सर्वोपहारन्तु प्रतिष्ठाविधि चोदिताम् ॥१४९॥
स्थापनं कारयेत्तात ततः पूजा पुरातनी। महाविभवभावेन होमचन्दनकुङ्कुमम् ॥१५०॥
दधिभक्तं घृतं क्षीरं नैवेद्यं द्विजतर्पणम्। कन्याभोजन पूजा च सर्वकामफलप्रदा ॥१५१॥

खर नामक वत्सर में अपराजिता की मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये सिंहारूढा हैं। इनके हाथों में धनुष-बाण-कुम्भ-खड्ग तथा खेटक है। इनके तीन नेत्र हैं। मस्तक पर जटा, ललाट पर चन्द्र तथा अंगों में वासुकी का आभरण है। पहले कही गयी विधि से नाना उपचारों से इनकी प्रतिष्ठा करके अपने वित्त के अनुसार पूजा करनी चाहिये। चन्दन-कुङ्कुमादि से होम करना चाहिये। दध्यन्न-घृत-क्षीरादि नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। अन्त में कुमारीकन्या को भोजन तथा उनका पूजन करने से सभी अभीष्ट सिद्ध होता है।।१४८-१५१।।

जयन्ती नन्दने कार्य्या कुन्तशूलासिधारिणी। खेटकखड्गहस्ता च पूजनीया सुवासितैः ॥१५२॥
एलाकुङ्कुमकर्पूरगन्धलड्डूकर्पूरकैः। प्रयच्छति शुभान् कामांस्तुरगोरगहोमनैः ॥१५३॥

नन्दन वत्सर में जयन्ती की मूर्त्ति बनानी चाहिये। ये कुम्भ, शूल, असि तथा खेटक धारण करती हैं। इलायची, कुङ्कुम, कर्पूर, गन्ध, लड्डू आदि द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा तथा होम करने से देवी शुभ फल देती हैं।।१५२-१५३।।

विजये मानसी कार्य्या स्यन्दने संव्यवस्थिता। घण्टामुद्गरधारी च वज्राङ्कुशकरोद्यता ॥१५४॥
सर्वाभरणभूषाङ्गी सर्ववेदनमस्कृता। चम्पकोशीरपुन्नागपूजनात् सर्वकामदा ॥१५५॥

विजय नामक वत्सर में देवी मानसी की मूर्त्ति बनानी चाहिये। ये घोड़े पर स्थिता हैं। घण्टा, मुद्गर, वज्र तथा अंकुश धारण करती हैं। इनके अंग सर्व आभरण से आभूषित हैं तथा सभी देवता इनको प्रणाम करते हैं। ये चम्पक, उशीर, पुन्नागप्रभृति पुष्पों से पूजन करने पर सर्वसिद्धि देती हैं।।१५४-१५५।।

माया जये प्रकर्त्तव्या बहुरूपा सुशोभना। पाशाङ्कुशधरा देवी मालाचामरधारिणी ॥१५६॥
श्यामवर्णसुरूपाद्या पीतवस्त्रपरिच्छदा। सहकारकृता पीडा मदकुङ्कुमचर्च्चिता ॥१५७॥
हेमरत्नमणिवज्रपूजिता विधिना मुने। क्षीरपायसदानेन सर्वहोमा च सिद्धिदा ॥१५८॥

हे मुने! जय नामक वर्ष में सुशोभना बहुरूपा मायामूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। उनके हाथ में पाश-अंकुश-माला तथा चामर है। ये श्यामवर्णा, सुरूपा तथा पीतवस्त्रधारिणी हैं। इनके मस्तक पर सहकारपल्लव की माला तथा सर्वाङ्ग में शुभ्र चन्दन लिप्त है। होम-रत्न-मणि-वज्रप्रभृति उपहार तथा क्षीर-पायसादि नैवेद्य से पूजा तथा होम करने पर देवी सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं।।१५६-१५८।।

दितिं दैत्यनुतां देवी मन्मथे पूजयेन्मुने। दण्डासनस्थितां भद्रां सर्वाभरणभूषिताम् ॥१५९॥
फलनीलोत्पलकरामुत्सङ्गशिशुभूषिताम्। फलगन्धोपहारेण हवनाच्च शुभप्रदाम् ॥१६०॥

मन्मथ नामक वत्सर में दैत्यपूजिता दिति देवी की मूर्त्ति बनानी चाहिये। ये दण्डासन-संस्थिता हैं तथा सर्वाभरण-भूषिता हैं। इनके हाथ में नीलोत्पल तथा फल है। गोद में बालक है। गन्ध-पुष्पादि से पूजन तथा होमादि से ये देवी सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं।।१५९-१६०।।

श्वेतां दुर्म्मुखवर्षार्द्धे श्वेतपङ्कजभूषिता। दण्डाक्षसूत्रधारी च व्रतस्था योगमास्थिता ॥१६१॥
जपहोमार्च्चनं दानं गन्धक्षीरबलिप्रियाम्। रसनिर्यासहोमेन सेव्या तु शुभदायिका ॥१६२॥

दुर्मुख नामक वर्ष में देवी श्वेता की मूर्त्ति-निर्माण करना चाहिये। ये देवी व्रतचारिणी हैं तथा श्वेत कमलों से भूषिता तथा योग-अवलम्बिनी हैं। इनके हाथ में दण्ड तथा अक्षसूत्र है। ये क्षीरबलिप्रिया हैं तथा जप-होमादि द्वारा इनकी अर्चना करने पर शुभ फल मिलता है।।१६१-१६२।।

विमोहनी हेमलम्बे पीतवर्णा मृगासना। ध्वजशूलाक्षधारी च वेणुहस्ता ध्वनिप्रिया ॥१६३॥
सुरूपा यौवनस्था च हारकेयूरभूषिता। मधुपायसहोमेन पूजया च शुभप्रदा ॥१६४॥

हेमलम्ब नामक वर्ष में विमोहिनी मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये मृगासना तथा पीतवर्णा हैं। इनके हाथ में ध्वज-शूल-अक्षसूत्र तथा वेणु है। ये सुरूपा, युवती तथा हार-केयूरादि अलंकार से भूषिता हैं। मधु तथा पायस आदि द्वारा होम तथा पूजन करने से ये देवी सिद्धिप्रदा हो जाती हैं।।१६३-१६४।।

विलम्बे कारयेद्देवीं शरण्यां वरदाभयाम्। सिंहासनसमासीनामातपत्रविभूषिताम् ॥१६५॥
श्यामचन्दनकोशीरचर्च्चितां सितवाससाम्। कुङ्कुमागुरुहोमेन चिन्तितार्थप्रसाधिनीम् ॥१६६॥
कौशिकीं कौशिकारूढां कृष्णवर्णां कपालिनीम्। कर्त्तृकां मुण्डहस्तां च त्रिशूलकरभास्वराम् ॥१६७॥
बलिमांसोदनाहारां कृष्णगन्धस्रजप्रियाम्। तुरुष्कागुरुहोमेन विकारिभयनाशिनीम् ॥१६८॥

विलम्ब नामक वर्ष में शरणादेवी की मूर्त्ति निर्मित करनी चाहिये। ये सिंहासनारूढ़ा हैं। ये सबको अभय तथा वर प्रदान करती हैं। इनके मस्तक पर छत्र है। ये श्वेत वस्त्रों से भूषिता हैं। इनका सर्वाङ्ग श्यामल है। सर्वाङ्ग में चन्दन, उशीरप्रभृति का उपलेप लगा है। कुङ्कुम-अगुरु इत्यादि उपचार से पूजा तथा होमादि करने से ये देवी प्रसन्न होकर सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं।

विकारी वर्ष में कौशिकी की मूर्त्ति निर्मित करनी चाहिये। ये कौशिक पर आरूढा, कृष्णवर्णा तथा कपालिनी हैं। हाथ में मुण्ड तथा त्रिशूल है। बलि-मांस-अन्न नैवेद्य इनको प्रिय है तथा इनको कृष्णवर्ण चन्दन तथा माल्यदान करना चाहिये। तुरुष्क-अगुरु से होम करने से देवी सभी भय का निवारण कर देती हैं।।१६७-१६८।।

गौरी शङ्खेन्दुवर्णाभां शर्वरी अभिधे भवेत्। वृषपद्मासनासीनां साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥१६९॥
वरदोद्यतरूपाद्यां सर्वमाल्यफलप्रियाम्। तगरागुरुहोमेन कुङ्कुमेन शुभप्रदाम् ॥१७०॥

शर्वरी वर्ष में गौरीमूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। शंख तथा चन्दन के समान इनका वर्ण है। ये वृष तथा पद्मासन पर आसीन हैं। इनके हाथ में अक्षसूत्र तथा कमण्डलु है। इनकी मूर्त्ति सुप्रसन्न है, मानो ये सदैव वर देने के लिये उद्यत हैं। सभी माला तथा सभी फल इनको प्रिय हैं। कुङ्कुम-अगुरु इत्यादि से पूजा तथा होम करने पर देवी शुभ फल प्रदान करती हैं।।१६९-१७०।।

प्लवाख्ये विमला कार्य्या शुद्धहारेन्दुवर्च्चसा। मुक्ताक्षसूत्रधारी च कमण्डलुकरा वरा ॥१७१॥
नरासनसमारूढां श्वेतमाल्याम्बरप्रिया। दधिक्षीरौदनाहारा कर्पूरमदचर्चिता ॥१७२॥
सितपङ्कजहोमेन राष्ट्रायुःनृपवर्द्धनी। शोभकृदतिकर्त्तव्या वसन्तोज्ज्वलभूषणा ॥१७३॥

प्लवाख्य वर्ष में विमला मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये मुक्ता का हार तथा चन्द्र के समान शुभ्रवर्णा हैं, हाथ में मुक्ता, अक्षमूत्र एवं कमण्डलु हैं। ये नरासन पर आरूढ़ हैं। श्वेतमाला तथा श्वेत वस्त्र इनको प्रिय है। दधि-क्षीरान्न-नैवेद्य-कुङ्कुमादि विलेपन से तथा श्वेत पद्मादि से पूजा तथा होम करने पर नृपतिगण को देवी आयु तथा राज्यवृद्धि प्रदान करती है। शोभकृत वर्ष मे रतिदेवी की मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये वसन्तोज्वलभूषणा हैं।।१७१-१७३।।

नृत्यमाना शुभा देवी समस्ताभरणैर्युता। वीणावादनशीला च मदकर्पूरचर्च्चिता ॥१७४॥
अशोकस्रजहोमेन सर्वकामफलप्रदा। शुभकृल्लालसा कार्य्या करिणीपृष्ठसंस्थिता ॥१७५॥

ये देवी शुभा तथा सर्वदा नृत्यप्रिया तथा समुज्ज्वल विविध भूषणों से अलंकृता हैं। इनके शरीर में कर्पूरादि का लेप है। ये वीणावादन पसन्द करती हैं। अशोकपुष्प तथा माला से होम करने पर ये प्रसन्न होकर सभी कामना सिद्ध कर देती हैं। शुभकृत् वर्ष में लालसा देवी का निर्माण करना चाहिये। ये देवी करिणी की पीठ पर आरूढ़ा हैं।।१७४-१७५।।

वज्रदर्पणहस्ता च सितचन्दनचर्च्चिता। हारकेयूरशोभाढ्या सुरक्तवसनोज्ज्वला ॥१७६॥
पर्परौदनपूजायां जलहोमेन सिद्धिदा। क्रोधिन्यरुन्धती देवी सितवासां वृते स्थिताम् ॥१७७॥
पत्रपुष्पोदककरां चन्दनेन सुचर्च्चिताम्। होमाध्ययनशीला च फलकन्दाशनप्रियाम् ॥१७८॥
उशीरागुरुहोमेन संवत्सरं भयापहा। विश्वावसौ क्रिया कार्य्या यज्ञाङ्गकृतभूषणा ॥१७९॥

इनके हाथों में दर्पण तथा माला है। शरीर शुभ्र चन्दन से लिप्त है। रक्त वस्त्र तथा हार-केयूरादि विविध अलंकारों से शोभिता हैं। पर्पट, ओदन, नैवेद्य से पूजा करनी चाहिये। ये जल से होम करने से सिद्धि प्रदान करती हैं। क्रोधी नामक वत्सर में अरुन्धती देवी की मूर्त्ति बनानी चाहिये। ये व्रतधारिणी हैं। इनका परिधान शुभ्र वस्त्र है। इनके हाथों में पत्र-पुष्प-जल लिप्त है। ये देवी चन्दन द्वारा अनुलिप्त हैं। ये स्वयं होम एवं अध्ययन करने वाली हैं। इनको कन्द-मूल-फल प्रिय है। उशीर-अगुरु होम द्वारा ये इस संवत्सर के अशुभ (भय) का नाश करती हैं। विश्वावसु वर्ष में क्रिया देवी की प्रतिमा बनानी चाहिये। यज्ञाङ्ग ही इनके भूषण हैं।।१७६-१७९।।

स्रुवमेखलधारी च शुक्लरक्तसितोज्ज्वला। पद्मोपरि समासीनां पूजयेद्यस्तु भावितः ॥१८०॥
चम्पकोशीरपुन्नागैः स लभेतेप्सितान् मुने। दुर्गा दिग्गजमत्तालिपृष्ठगा अरिसूदनी ॥१८१॥

चर्म्मासिशरपिनाकधारिणी महिषापहा। तच्छिरोत्थमहाकायैस्तद्भटैः परिवारिता ॥१८२॥
रक्तस्रग्रक्तनेत्रैश्च क्षीरपायसभोजनैः। वेष्टिता नागपाशेन केचिद्भिन्ना गतासवः ॥१८३॥
देवी शूलहताः कार्य्या सर्वे ते संमुखाननाः। पादोपमासने चैक एको हरि निवेशितः ॥१८४॥
एवंविधेन रूपेण परवसुसमे कृताम्। पूजयेत् सततं यस्तु गन्धधूपस्रगादिभिः ॥१८५॥
हेमराजतपत्रैश्च क्षीरपायसभोजनैः। स लभेतेप्सितान् कामाँस्त्रिगुणा जीवते समाः॥१८६॥
अनुक्तानान्तु देवीनां होमं क्षीरघृतं मतम्। आयुधं खड्गशूलञ्च नैवेद्यं घृतपायसम् ॥१८७॥

इत्याद्ये देवीपुराणे संवत्सरदेवताद्वितीयविंशतिविधिः

ये पट्ट पर आसीना हैं। इनके हाथों में स्रुव तथा मेखला है। परिधान है—शुभ्र रक्त वस्त्र। जो व्यक्ति भक्तिभाव से चम्पा-उशीर-पुन्नागप्रभृति से इनका पूजन करता है, उसे इच्छित फल प्राप्त होता है। दुर्गा देवी मत्त दिग्गज पृष्ठ पर आरूढ़ा हैं। ये शत्रुनाशिनी हैं। हाथों में चर्म, असि, धनुष तथा बाण है। ये देवी महिषघातिनी हैं। ये चारो ओर से असुर सैन्य से घिरी हुई हैं। इनके नेत्रों से रक्त टपक रहा है। इनका भोजन है—क्षीर तथा पायस। देवी द्वारा नागपाशबद्ध होकर प्राण त्याग रहा है, कोई शूल से विद्ध हो रहा है और मरते समय देवी को देख रहा है। कोई असुर देवी के तलवों के नीचे पड़ा है। परावसु वत्सर में जो देवी की ऐसी प्रतिमा बनाकर उसे विचित्र शोभायुक्त करके गन्ध, धूप, माला द्वारा तथा स्वर्ण-चाँदी के पात्र में रखे क्षीर-पायसादि नैवेद्यार्पित करके पूजन करता है, उसकी सर्वकामना सिद्ध हो जाती है तथा उसकी आयु भी तीन गुणित हो जाती है। जिन सब देवी के विषय में यहाँ अधिक नहीं कहा गया, उन सबका आयुध है—खड्ग तथा शूल। उनका नैवेद्य है—घृत-पायस तथा उनके लिये क्षीर द्वारा होम करना चाहिये।।१८०-१८६।।

देवीपुराण में संवत्सर देवता द्वितीय विंशति विधि-वर्णन समाप्त

कालो प्लवङ्गनामे तु दण्डपाशोद्यता भवेत्। कृष्णगन्धोपहारेण पूजिता शुभदायिका ॥१८८॥

प्लवङ्ग नामक वत्सर में कालीमूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। इनके हाथों में दण्ड तथा पाश है। कृष्ण गन्धोपहार से पूजित होने पर ये शुभ फल प्रदान करती हैं।।१८८।।

रौद्री तु कीलके कार्य्या मुण्डकर्त्तृकधारिणी। रक्तगन्धोपहारेण पूजिता शुभदायिका ॥१८९॥

कीलक नामक वर्ष में रौद्रमूर्त्ति (रौद्र देवी की मूर्त्ति) का निर्माण करना चाहिये। इनके हाथों में नरमुण्ड तथा कैंची हैं। इनका पूजन रक्तगन्ध के (लाल चन्दनादि के) उपहारों द्वारा करने से ये शुभ फल देती हैं।।१८९।।

सौम्ये कपालिनी कार्य्या त्रिशूलवरधारिणी। पीतरक्तोपहारेण होमेन च वरप्रदा ॥१९०॥

सोमनामक वर्ष में कपालिनी देवी की मूर्त्ति का पूजन करना चाहिये। इनके हाथ में शूल तथा कपाल है। पीत तथा रक्त उपहार से पूजित होकर ये वरदायिनी हो जाती हैं।।१९०।।

साधारणे सघण्टा तु घण्टाकर्णा त्रिशूलिनी। रक्तकृष्णोपहारेण सर्वकामान् प्रयच्छति ॥१९१॥

साधारण नामक संवत्सर में घण्टाकर्णा देवी का पूजन करना चाहिये। इनके हाथों में घण्टा तथा त्रिशूल है। पीत एवं रक्तवर्ण के उपहार तथा होम द्वारा प्रसन्न होकर ये वर देती हैं।।१९१।।

विरोधकृन्मयूराख्या मयूरासनसंस्थिता। पाशशक्तिकरा देवी त्रिनेत्रा अलकोज्ज्वला ॥१९२॥
गन्धपुष्पोपहारेण चन्दनागुरुचर्च्चिता। पूजिता भावहोमेन सर्वकामान् प्रयच्छति ॥१९३॥

विरोधकृत् नामक वर्ष में मयूर पर आसीन मयूरा देवी का पूजन करना चाहिये। इनके हाथों में पाश तथा शक्ति है। इनके तीन नेत्र हैं तथा मस्तक पर केशराशि अत्यन्त उज्ज्वल है। गन्ध-पुष्प-चन्दन-अगुरु से इनकी पूजा करने तथा होम करने से ये देवी सभी कामनाओं की पूर्त्ति करती हैं।।१९२-१९३।।

परिवाद्यां यजेद् देवीं बहुरूपां नरासनाम्। शूलखड्गधरीं वत्स सर्वाभरणभूषिताम् ॥१९४॥
शुक्लरक्तासितपीतैर्गन्धधूपपवित्रकैः। पूजिता भावहोमेन बलिदानेन तुष्टिदा ॥१९५॥

परिवादी वर्ष में बहुरूपा की मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये। ये नरासना (नर पर आसीना) तथा सभी आभूषणों से भूषिता हैं। इनके हाथों में खड्ग तथा शूल है। श्वेत-रक्त-कृष्ण तथा पीतवर्ण गन्ध-पुष्प-धूपादि विविध उपचारों से पूजन, बलि तथा होमादि से प्रसन्न होकर देवी आनन्द प्रदान करती हैं।।१९४-१९५।।

प्रमाथिने सुरूपां तु हारकेयूरभूषिताम्। दण्डासनसमारूढां पद्मस्वस्तिकधारिणीम् ॥१९६॥
मधुमालास्रजा पीडा सर्वगन्धोपचर्च्चिता। बलिमाल्योपहारेण हवनेन शुभप्रदा ॥१९७॥

प्रमाथी वत्सर में सुरूपा देवी का पूजन करना चाहिये। ये दण्डासन पर बैठी तथा हार-केयूर आदि अलंकारों से भूषिता हैं। इन्होंने हाथों में कमल-स्वस्तिक धारण किया है। इनके शरीर में सर्व प्रकार की सुगन्धियों का विलेपन है। मस्तक पर मधूक की माला है। गन्धमाला तथा बलिदानादि से इन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इससे प्रसन्न होकर देवी शुभ फल-प्रदात्री हो जाती हैं।।१९६-१९७।।

आनन्दाख्ये त्रिनेत्रा तु शूलपट्टिशधारिणी। जटोरगशरच्चन्द्रभूषिता शिवरूपिणी ॥१९८॥
गन्धमाल्योपहारेण पूजिता सितपङ्कजैः। प्रयच्छति शुभान् कामान् जपहोमपरायणा ॥१९९॥

आनन्द नामक वत्सर में शूल-पट्टिशधारी त्रिनेत्रा मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये। ये शिवस्वरूपा हैं (अर्थात्) मस्तक पर जटा, सर्प तथा चन्द्र है। गन्धमाला, श्वेतपद्म इत्यादि पूजा-जप-उपहार-होम से प्रसन्न होकर ये शुभ फल देती हैं।।१९८-१९९।।

रिपुहा राक्षसे कार्य्या वज्रचक्रधनुर्द्धरा। पूजिता गन्धमाल्यैश्च बलिहोमेन सिद्धिदा ॥२००॥

राक्षस संवत्सर में देवी रिपुहा की पूजा करनी चाहिये। इनके हाथों में वज्र-चक्र तथा धनुष है। गन्धमाला आदि उपहार तथा बलिदान से पूजा करने पर ये देवी सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं।।२००।।

अनले अम्बिका देवी शूलसूत्राक्षधारिणी। रक्तबल्युपहारेण पूजना हवना शुभा ॥२०१॥

अनल नामक वत्सर में अम्बिका देवी की प्रतिमा बनाकर उनका पूजन करना चाहिये। इनके हाथों में शूल तथा अक्षसूत्र है। रक्तवर्ण उपहार तथा बलिदानादि से पूजा करने पर देवी शुभ फल प्रदान करती हैं।।२०१।।

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिनेत्रा शूलधारिणी। वीणावादनशीला च हारकेयूरभूषिता ॥२०२॥
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गी जातिचम्पकपूजिता। कालयुक्ते कुमारी तु मयूरासनशक्तिभृत् ॥२०३॥

पिङ्गल नामक वर्ष में माहेश्वरी देवी की मूर्त्ति निर्मित करके उनका पूजन करना चाहिये। ये वृषभ पर आसीना, त्रिनेत्रा तथा शूल धारण की हुई हैं। अंगों पर चन्दन-अगुरु इत्यादि का विलेपन है तथा हार केयूर आदि से शोभित हैं। ये वीणावादिनी हैं। जाति, चम्पक इत्यादि पुष्पों से पूजा, बलिदान तथा होमादि करने पर शुभ फल देती हैं। कालयुक्त वत्सर में मयूर पर स्थित कुमारी देवी की प्रतिमा बनानी चाहिये।।२०२-२०३।।

त्रिदण्डी बालरूपा च रक्तमाल्यसमुज्ज्वला। रक्तवासा बलिगन्धा क्षौद्रमांसासवप्रिया ॥२०४॥
पूजिता विधिवद्देवी हवनात्तुरङ्गमा शुभा। सिद्ध्यर्थे वैष्णवी कार्य्या शङ्खचक्रगरुत्मगा ॥२०५॥

ये कुमारी देवी कण्ठ में रक्त मालाधारिणी हैं। इनका परिधान रक्तवर्ण का वस्त्र है। देखने में बालिका लगती हैं। मधु-मद्य तथा मांस इनको प्रिय हैं। विधिपूर्वक पूजिता होकर ये सर्वसिद्धि प्रदान करती हैं। सिद्धार्थ नामक संवत्सर में वैष्णवी मूर्त्ति बनानी चाहिये; जो गरुड़ पर बैठी तथा शंख-चक्रधारिणी हैं।।२०४-२०५।।

वनमाला कृतापीडा वनमालासुशोभना। पूजिता गन्धपुष्पाद्यैर्जातीचन्दनचम्पकैः ॥२०६॥
बलिलड्डुका दानेन सर्पिषा हवना शुभा। रौद्रे सुरवराध्यक्षा गजराजोपरि स्थिता ॥२०७॥

इनके मस्तक तथा बाल की चोटियों में वनमाला स्थित है। जाती (चमेली), चन्दन, चम्पकादि से इनकी पूजा करनी चाहिये। बलिदान, लड्डू तथा घृतादि नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। इससे देवी शुभ फल देती हैं। रौद्र वत्सर में देवी सुरपूजिता की प्रतिमा बनानी चाहिये। ये देवी गजराज पर आसीना हैं।।२०६-२०७।।

वज्राङ्कुशधरा देवी हारकेयूरभूषिता। पीतगन्धोपहारेण बलिमाल्यनिवेदनैः ॥२०८॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरहवनेन वरप्रदा। वैवस्वती प्रकर्त्तव्या दुर्म्मतौ महिषोपरि ॥२०९॥

इनके हाथों में वज्र तथा अंकुश है। इनके आभूषण हैं—हार तथा केयूर। सुशीतल चन्दन, माला, कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूरप्रभृति उपहार तथा बलिदानादि से पूजन द्वारा ये प्रसन्न होती हैं तथा पूजक को वर देती हैं। कुङ्कुम तथा अंगुरु के हवन से ये वरप्रदा हो जाती हैं। दुर्मति वत्सर में वैवस्वती की प्रतिमा बनानी चाहिये। ये देवी महिष पर सवार हैं।।२०८-२०९।।

शूकरास्या कपालेन पिबन्ती दण्डधारिणी। रक्तमाल्यकृता पीड़ा गन्धासवसुपूजिता ॥२१०॥
बलिहोमाज्यदानेन सर्वकामफलप्रदा। दुन्दुभाख्ये अघोरा तु करालवदनोज्ज्वला ॥२११॥

इनका मुख शूकर के समान है। ये कपालपात्र से (मद्य) पान में निरत रहती हैं। इनके हाथों में दण्ड है। शिर पर लाल माला है। गन्ध-पुष्प-वलि तथा घृत से होम करने पर ये सर्वकामप्रदा हो जाती हैं। दुन्दुभ संवत्सर में अघोरा देवी की प्रतिमा बनानी चाहिये। ये कराल मुख वाली हैं।।२१०-२११।।

सिंहचर्म्मधरा देवी कृष्णचर्म्मपरिच्छदा। मुण्डमाला कपालञ्च शूलहस्ता बलिप्रिया ॥२१२॥
सर्वगन्धोपहारेण पुरहोमेन शान्तिदा। करालो रुधिरोद्गारी ऊर्द्ध्वकेशी भयानना ॥२१३॥

इनका वस्त्र है—सिंहचर्म तथा सर्वाङ्ग रुरु मृग के चर्म से आच्छादित है। इनके गले में मुण्डों की माला है। हाथों में कपाल एवं शूल है। ये देवी बलिप्रिया हैं। सब प्रकार की वलि, गन्ध-पुष्पादि तथा होमादि से ये देवी शान्तिप्रदात्री हो जाती हैं। रुधिरोद्गारी वत्सर में करालो देवी की मूर्त्ति बनानी चाहिये, जो ऊर्ध्व केशी तथा भयानक मुख वाली हैं।।२१२-२१३।।

मुण्डमालाधरा देवी कर्त्तृका पिशिताननाः। सर्वकृष्णोपहारेण मांसासवप्रपूजना ॥२१४॥
बिल्वागुरुघृतक्षौद्रहवना शुभदायिका। रक्ताक्षविकटा कार्य्या उष्ट्रारूढा महाभुजा ॥२१५॥

ये मुण्डमाला-धारिणी हैं। इनका मुखविवर सदा मांस से भरा रहता है। समस्त कृष्णवर्ण के उपहार तथा मद्य-मांस इन्हें प्रिय हैं। बिल्वपत्र, अगुरु चन्दन, घृत, मधु इत्यादि से हवन करने पर ये अतीव शुभ फल प्रदान करती हैं। रक्ताक्ष वत्सर में ऊँट पर बैठी महाभुजा वाली विकटादेवी की मूर्त्ति बनानी चाहिये।।२१४-२१५।।

पाशदण्डकरालाख्या सर्वसत्त्वे भयङ्करा। कृष्णगन्धानुलिप्ताङ्गी वृश्चिकशलभान्विता ॥२१६॥
रसोनासवमत्स्यादौ जवाकुसुमचर्च्चिता। तेनाद्युक्ता महाकाला सार्द्रा मांसबलिप्रिया ॥२१७॥

जपहोमार्च्चना देवी सर्वगन्धबलिप्रिया। क्रोधने तु दितिः कार्या देवमाता बहुप्रजा ॥२१८॥
भद्रासनसमारूढा गीतिभिर्बालकैर्वृता। फलपुष्पोपहस्ता च शिशुपालनक्रोधना ॥२१९॥
चतुर्वर्णधरा देवी क्षीराहारस्य सिद्धिदा। पूजिता पङ्कजोशीरैश्चन्दनागुरुचर्च्चिता ॥२२०॥
फलकक्कोलहोमा च घृतक्षीरासने शुभा। क्षये तु चर्च्चिता कार्य्या प्रेतारूढा महाभुजा ॥२२१॥

इनके हाथों में पाश तथा दण्ड है। ये करालवदना हैं। इनको देखकर सभी प्राणीगण भयभीत हो जाते हैं। इनका सर्वाङ्ग कृष्ण चन्दन से लिप्त है। वृश्चिक तथा शलभ इनके चारो ओर घूमते रहते हैं। इनका खाद्य है—मांस, मत्स्य, मद्य, वसा आदि। इनका पूजन जवापुष्प से करना चाहिये। ताजे मांस की बलि इनको अति प्रिय है। सर्वविध गन्ध-पुष्पादि तथा बलि से इनको प्रसन्न करना चाहिये।

क्रोधन वत्सर में 'अदिति' देवी की प्रतिमा बनानी चाहिये। ये देवी देवमाता तथा बहुप्रजा वाली हैं। ये भद्रासन से बैठी हैं, गायन करने वाले बालकों से घिरी हुई हैं। इनके हाथों में फल तथा पुष्प हैं। ये शिशुपालन में लगी हैं। इनका वर्ण चतुर्विध है। जो व्यक्ति कमल, उशीर, चन्दन, अगुरु, फल-पुष्पादि से इनका पूजन करता है, घृत-क्षीरादि नैवेद्य प्रदान करता है, देवी उसकी सभी कामना पूर्ण करती हैं। क्षय वर्ष में चर्चिका मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये विशाल भुजाओं वाली तथा प्रेतारूढा हैं।।२१६-२२१।।

ऊद्‌र्ध्वकेशोत्कटा क्षेमा निर्म्मांसस्नायुबन्धना। नागाभरणभूषाङ्गी करालवदनोज्ज्वला ॥२२२॥
खड्गखट्वाङ्गधारी च कर्त्तृका मुण्डधारिणी। मातृणां प्रवरा देवी सर्वदेवनमस्कृता ॥२२३॥

इनके केश ऊपर उठे हुये हैं। नेत्र विकट हैं। शरीर मांसरहित-सा केवल नसों से भरा है। इनके आभूषण सर्प हैं। ये करालवदना तथा खट्वाङ्ग एवं खड्गधारिणी हैं। इनके गले में मुण्डमाला है। ये देवी मातृगणों के मध्य श्रेष्ठ हैं एवं सभी देवगण द्वारा पूज्या हैं।।२२२-२२३।।

हैमा वा रत्नवार्क्षा वा शैला चावित्रजापि वा। स्थाप्या पूर्वविधानेन सर्वकामप्रसाधनी ॥२२४॥

इनकी स्वर्णमयी, रत्नमयी, काष्ठमयी, शैलमयी किंवा चित्रमयी मूर्त्ति को पूर्वोक्त विधान से स्थापित करके पूजा करनी चाहिये। इससे सभी इच्छायें फलीभूत हो जाती हैं।।२२४।।

मातृचक्रो गतः कार्यो वीणाहस्तः सुरेश्वरः। तुम्बुरुर्भैरवो नाथ अन्ते विघ्नेश्वरो भवेत् ॥२२५॥
गजवक्त्रो महाकायो लम्बोदरवृकोदरौ। परशुर्मोदकं वामे करे याम्येऽक्षसूत्रकम् ॥२२६॥
वरदं दण्डमत्स्यं वा वामार्द्धे युवती युवा। सुरूपा शोभना कार्य्या रतिनाम्नी गजानने ॥२२७॥

मातृचक्र के अग्रभाग में वीणा हाथ में लिये तुम्बुरु (गन्धर्व) अथवा भैरवमूर्त्ति का निर्माण करके पश्चात् भाग में विघ्नहारी गणेश की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिये। गणेशमूर्त्ति हाथी के मुख वाले, स्थूल तथा लम्बोदर होनी चाहिये। उनके बाँयें हाथों में परशु तथा मोदक एवं दाहिने हाथों में अक्षसूत्र, अभय अथवा दण्ड एवं मत्स्य होना चाहिये। इनके बाँयें भाग में रतिनाम्नी सुरूपा युवती मूर्त्ति होनी चाहिये।।२२५-२२७।।

सर्वाभरणशोभादि उभयोरपि कारयेत्। विद्येशो गर्ज्जमानन्तु उपवीतं महोरगाम् ॥२२८॥
देवी पट्टांशुसंवीता मणिकङ्कणचर्च्चिता। हारकेयूरशोभाभिस्तिलकालकभूषिता ॥२२९॥
कृत्वा तृतीयवर्णेन षड्भेदेन चेश्वरम्। वह्निना भवते देवी औङ्कारा नम चण्डिका ॥२३०॥
एतेऽर्च्चनजपहोमप्रतिष्ठायज्ञकर्म्मणि। मन्त्रा देवाय देव्यायाः स्वाहान्ता होमने मुने ॥२३१॥

हे मुने! नाना आभूषणों से दोनों को विभूषित करना चाहिये। गणेशमूर्त्ति के कंधों पर गर्जनशील महत् सर्प यज्ञोपवीत के रूप में रहना चाहिये। देवी का परिधान है—पट्टवस्त्र। आभरण है—मणिकङ्कण-हार-केयूरादि तथा उनके ललाट में तिलक है एवं अलकें रेखा द्वारा भूषित हैं। तृतीय वर्ण को षट्दीर्घ भेद से लगाकर अग्निबीज लगाकर 'भवते देवि' कहकर ॐकारोपरान्त 'नमश्चण्डिकायै' कहकर यथोक्त मन्त्र से पूजा-जप-होम-प्रतिष्ठा-यज्ञकर्म समापन करना चाहिये। होम के समय मन्त्र के आदि में देवाय तथा अन्त में स्वाहा शब्द कहना चाहिये।।२२८-२३१।।

यासां वाहनहोमेज्याबलिस्वायुधकल्पना। नोदिता वत्स देवीनां तासां शृणु यथाविधि ॥२३२॥
वृषासना प्रकर्त्तव्या त्रिशूलायुधधारिणी। दध्योदनं प्रकर्त्तव्यं बलिगन्धं सितं मतम् ॥२३३॥
होमं क्षीरं घृतं क्षौद्रं तिला याव फलानि च। सामान्यानां समस्तानां विद्याष्टकसमुद्रकम् ॥२३४॥
ऋतुषट्कं प्रकर्त्तव्यं वसन्तादि यथाविधि। बालायुवानमध्यावत् कृष्णाननभवोज्ज्वला ॥२३५॥
गौरी वृद्धा शिशुश्चेति स्त्रीयुग्मा ऋतवो मताः। एकादश प्रकर्त्तव्याः सर्वे रुद्रास्त्रिशूलिनः ॥२३६॥
जटाभारेन्दुवर्म्माङ्गा वासुकीकृतकङ्कणा। त्रिनेत्राः सितवर्णाभाः सर्वदेवनमस्कृता ॥२३७॥

हे वत्स! जिस देवी के वाहन, होम, पूजा, बलि, आयुध आदि के विषय में नहीं कहा गया है, वह कहता हूँ। इनका वृष आसन है। आयुध त्रिशूल है। बलि है—दध्योदन। क्षीर, घृत, मधु, तिल, यव, फल आदि नैवेद्य हैं। समस्त मातृगण की मूर्त्ति तथा अष्टविद्या मूर्त्ति को मुद्रा के साथ स्थापित करना चाहिये। वसन्तादि छः ऋतुओं की मूर्त्ति का निर्माण यथाविधि करना चाहिये। ऋतुओं की मूर्त्ति जोड़े में होनी चाहिये अर्थात् युग्म स्त्रीमूर्त्तिस्वरूप हो। इनका वर्ण कृष्ण तथा गौर हो (युग्म में एक कृष्ण, दूसरी गौर हो)। ये मूर्त्तियाँ ऋतुओं के क्रम से क्रमशः बाला, युवती, मध्या, किशोरी, वृद्धा तथा शिशु होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त ११ रुद्रों की मूर्त्ति बनानी चाहिये। ये सभी त्रिशूलधारी हो, इनके मस्तक पर जय हो, ललाट पर चन्द्रशेखर हो तथा अंगों में सर्पों का आभरण हो। सभी त्रिनेत्र एवं शुभ्र वर्ण के हों। समस्त देवगण इनको नमस्कार करते हैं।।२३२-२३७।।

पूजिताः संस्तुता वापि सर्वकामफलप्रदा। महालक्ष्मीः प्रकर्त्तव्या नृत्यमाना कपालिनी ॥२३८॥
कर्त्तृका मुण्डखट्वाङ्गी नृपमालाम्बरधारिणी। कूष्माण्डानां प्रेतस्था दन्तुरा वर्व्वरा गिरौ ॥२३९॥
पूजिता नवमासे तु सर्वकामप्रदायिका ॥२४०॥

इत्याद्ये देवीपुराणे संवत्सरदेवतातृतीयविंशतिविधिः

ये पूजित तथा संस्तुत (स्तुति द्वारा) होने पर सर्वकामफल प्रदान करते हैं। साथ ही महालक्ष्मी मूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। ये कपालधारिणी, सर्वदा नृत्यरता, हाथ में मुण्ड तथा खट्वाङ्गधारिणी हैं तथा इनका परिधान है—राज्ययोग्य (राजसी) वस्त्र। कूष्माण्डा देवी प्रेतासनासीना हैं। बर्बरा पर्वत पर इनकी पूजा नौ मास करने पर वे सर्वसिद्धिप्रदात्री हो जाती हैं।।२३८-२४०।।

देवीपुराणान्तर्गत संवत्सर देवता तृतीया विंशति विधि समाप्त

●

विष्णुः सूर्य्योऽभवन्मेषे युगं विष्णुः प्रकीर्तितम्। सर्वाभरणशोभाढ्यं रक्तमाल्याम्बरप्रियम् ॥२४१॥
वह्निना पूजयेद्देवं कालयुक्तेन भावितः। सर्वकामानवाप्नोति युगपीडाभिमुच्यते ॥२४२॥
दानं होमाज्यगोभूमिं दत्वा गोमेधमाप्नुयात्। वृषे शुक्रोऽभवत् सूर्य्यः सुरेज्यो युग उच्यते ॥२४३॥
यष्टव्यो मणिवैदूर्य्यगन्धपुष्पपवित्रकैः। वृषाश्वास्तु गजा देया दक्षिणा कनकं पिवा ॥२४४॥

मेषराशीस्थ सूर्य विष्णुस्वरूप हैं तथा युगों को भी विष्णुस्वरूप कहा गया है। अतएव नाना आभरण, रक्तवर्ण वस्त्र, रक्तमाला आदि से सजाकर भक्तिपूर्वक होम से सूर्यपूजन करना चाहिये। इससे सर्वार्थसिद्धि होती है। युगपीड़ा से मुक्ति हो जाती है। होम में घृत-गौ, भूमि का दान करने से गोमेध यज्ञफल प्राप्त हो जाता है। वृष शरीरस्थ शुक्र ही सूर्य हैं एवं बृहस्पति ही युग हैं। वैदूर्यमणि, गन्ध-पुष्प नानाविध उपहार से इनकी पूजा करनी चाहिये। वृष, अश्व, हस्ति, स्वर्ण ब्राह्मणों को दक्षिणा में देना चाहिये।।२४१-२४४।।

अश्वत्थसमिधा होमं युगपीडां व्यपोहति। अथवा मिथुने कार्य्यः शुकश्चेति युगं जयेत्॥२४५॥
रक्तपीतोपचारेण हेमवस्त्रफलाशनैः। यवा गावः प्रदातव्या युगपीड़ानिवारणाः॥२४६॥
होमं विन्दति नाम्यन्तु आयुः सम्पद्दायकम्। धाता कर्किणि यष्टव्यो युगं बर्हिणं प्रपूजयेत्॥२४७॥

अश्वत्थ (पीपल) की समिधा द्वारा होम करने से युगपीड़ा समाप्त हो जाती है। अथवा मिथुनस्थित सूर्य की कल्पना शुक्ररूपेण करके रक्त तथा नीलवर्ण नाना प्रकार के उपहार-स्वर्ण-वस्त्र-फल-आसन आदि से इनका यजन करना चाहिये। इस काल में गोदान, यवदान करने से युगपीड़ा नष्ट होती है तथा होमकार्य से आयु तथा सम्पत्ति प्राप्त होती है। कर्क राशि मे विधाता सूर्य हैं तथा अग्नि युग हैं। इनकी पूजा करनी चाहिये।।२४५-२४७।।

सितरक्तोपहारेण गन्धपुष्पपवित्रकैः। विद्रुमोत्पलवैदूर्य्यहेमहारकृताशनैः॥२४८॥
युगसूर्य्यौ प्रकर्त्तव्यौ सर्वकामफलप्रदौ। कुङ्कुमागुरुकर्पूररक्तपुष्पोपशोभितौ॥२४९॥
आद्यन्तमूलमन्त्रेण पूजितौ युगभेदिनौ। सिंहे मित्रेति यष्टव्यौ युगं त्वष्टा प्रपूजयेत्॥२५०॥
हेमेन्द्रनीलजौ कार्य्यौ युगसूर्य्यौ सुशोभिनौ। मालतीवकुलाशोककुरुण्टकुसुमोज्ज्वलौ॥२५१॥
पद्मस्वस्तिकधारौ तौ पूजितौ वरदायकौ। यष्टव्यो वरुणः कन्ये अहिर्बुध्न्यो युगं तथा॥२५२॥
पुष्परागमयं सूर्यं युगं मौक्तिकजं कुरु। दत्त्वा मौक्तिकदानौ तु युगपीडाव्यपोहकौ॥२५३॥

गन्ध-पुष्प तथा पवित्रादि श्वेत तथा रक्त नाना उपहारों से पूजन करना चाहिये एवं विद्रुममणि, वैदूर्यमणि, रत्नहारादि उपहार प्रदान करना चाहिये। कुङ्कुम-अगुरु-कर्पूर आदि तथा पुष्प से युगसूर्योपासना करने पर तथा युगनक्षत्र दिन में आद्यन्त मूलमन्त्र पाठ करने से तथा पूजा करने से सर्व अभीष्ट फल मिलता है। सिंहराशि में मित्र सूर्य हैं तथा विश्वकर्मा ही युग (त्वष्टा) हैं। इनकी पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण तथा इन्द्रनील मणि द्वारा इनकी मूर्ति बनाकर मालती, बकुल, अशोक, कुरुवकप्रभृति पुष्पों से पूजा करनी चाहिये। ये दोनों ही पद्म तथा स्वस्तिकधारी हैं। ये भक्तों को अभयदान तथा वरदान प्रदान करते हैं। कन्याराशि में वरुण ही सूर्य तथा अहिर्बुध्न्य युग हैं। पद्मरागमणि तथा मुक्ताफल द्वारा इनकी मूर्ति-कल्पना करके शतपत्रादि पुष्प, कर्पूर, अगुरु प्रभृति उपहार द्वारा पूजा करनी चाहिये। इस समय मुक्ताफल दान करने से युगपीड़ा नष्ट होती है।।२४८-२५३।।

भवतो युगसूर्य्यौ तु आयुरारोग्यवृद्धिदौ। विवस्वान् सप्तमे कार्य्यः पितुश्चेति युगस्तथा॥२५४॥
शङ्खस्फटिकजौ देवौ रजते परिकल्पितौ। गन्धपुष्पोपहारेण वस्त्राभरणभूषितौ॥२५५॥
जपहोमं प्रकर्त्तव्यं वसवर्तुशिवेन च। सर्वकामानवाप्नोति युगपीड़ां निवारयेत्॥२५६॥

युग तथा सूर्य लोक को आयु तथा आरोग्य दान करते हैं। सप्तम राशि में विवस्वान् सूर्य हैं तथा पितृपति युग हैं। रजत, शंख, किंवा स्फटिक द्वारा इनके मूर्ति की कल्पना करके विविध वस्त्राभरण से भूषित करके गन्ध-पुष्पादि द्वारा पूजा तथा होमादि करने से सर्वाभीष्ट सिद्ध होता है तथा युगपीड़ा विनष्ट होती है।२५४-२५६।।

वृश्चिके सविता सूर्य्यो विश्वेति युगमुच्यते। तौ वज्रनीलसम्भूतौ हेमधारासुसिञ्चितौ ॥२५७॥
रक्तपीतारुणं शुक्लवस्त्रसंवीतचर्चितौ। कृत्वा कुङ्कुमगन्धाद्यौ पङ्कजोत्पलमालिनौ ॥२५८॥
होमं देवदलं नागं घृतं क्षीरं विमिश्रितम्। लक्षेदं दक्षिणा देया गावो वस्त्रं मणिं भुवम् ॥२५९॥
युगसूर्य्ये भवेत् पूजा पञ्चमत्रिचतुर्थकैः। सर्वकामानवाप्नोति युगपीडा विनश्यति ॥२६०॥

वृश्चिक राशि में सविता सूर्य है तथा विश्व ही युग है। यह वज्रनीलसम्भूत मूर्त्ति विभिन्न स्वर्णाभरण से भूषित है। इनका परिधान रक्त, पीत तथा शुक्ल प्रभृति वर्ण का है। संवीत चर्चित देह, कुङ्कुम-चन्दनादि का विलेपन तथा पद्ममालादि प्रदान करके देवदल (देवदारु) की लकड़ी से होम करना चाहिये। घृतमिश्रित क्षीर आदि नैवेद्य, रत्न, भूमि, गौ, वस्त्र इत्यादि लक्ष दक्षिणा देकर युगसूर्य देव का पूजन करने से सर्व अभीष्ट सिद्ध होता है तथा युगपीड़ा नष्ट हो जाती है।।२५७-२६०।।

पूषा धनुषि यष्टव्यो युगं सोमो विधीयते। महानीलभवः सूर्य्यः शुक्तिकायां तथा युगम् ॥२६१॥
युगसूर्य्यौ तु हेमस्थौ सितकुङ्कुमचर्च्चितौ। वस्त्रपुष्पाक्षतं तोयं धूपनैवेद्यपूजितौ ॥२६२॥
द्विराद्यप्रथमान्तेन सर्वकामफलप्रदौ। युगपीडानिवाराय यष्टव्यौ रविसंयुगौ ॥२६३॥

धनु राशि में पूषा सूर्य हैं तथा चन्द्र युग है। महानील मणि द्वारा सूर्य की तथा मोती से युग की मूर्त्ति बनाकर कुङ्कुम-वस्त्र-पुष्प, अक्षत, धूप, नैवेद्यादि से उनकी पूजा करनी चाहिये। दिवा के प्रथम तथा अन्तिम भाग में इनकी पूजा करनी चाहिये। इस समय युगसूर्य का पूजन करने से कामनासिद्धि होती है तथा युगपीड़ा निवृत्त हो जाती है।।२६१-२६३।।

यष्टव्यस्त्वष्टा मकरे इन्द्राग्नियुगसंयुतः। कुरु इन्द्रेन्द्रनीलोत्थौ पट्टोपरि सुसञ्चितौ ॥२६४॥
चन्दनागुरुकर्पूररोचनामदचर्च्चितौ। रक्तवस्त्रसुपुष्पाद्यौ महार्घमणिभूषितौ ॥२६५॥

मकर राशि में विश्वकर्मा सूर्य हैं तथा इन्द्राग्नि युग हैं। इन्द्रनीलादि से इनकी मूर्त्ति का उत्तम पट पर निर्माण करके चन्दन, अगुरु, कर्पूर, गोरोचन, हरिद्रादि का लेपन करना चाहिये। रक्तवर्ण के वस्त्र, सुपुष्प, महामूल्य रत्नों द्वारा दोनों को भूषित करना चाहिये।।२६४-२६५।।

दत्वा क्षीरोदनं धूपं पञ्चनिर्य्याससम्भवम्। होमं कृत्वा मधुसर्पिःसमिधारक्तचन्दनैः ॥२६६॥
ततः क्षमापयेदेतौ युगवह्निदिवाकरौ। मण्डलान्तेन कुम्भेन हेम्यमुद्रायतेन च ॥२६७॥
द्विजानां दक्षिणां दत्वा सर्वयागफलं लभेत्। युगपीडा न जायेत तस्मिन् देशे महामुने ॥२६८॥
यत्रायं विधि सम्पन्नः सयुगः पूज्यते रविः। कुम्भे अशोति यष्टव्यो युगाश्विनसमायुतौ ॥२६९॥

पञ्चनिर्यास धूप तथा पायसान्न आदि से पूजा करनी चाहिये। पूजा के पश्चात् मधु-घृत-समिधा तथा रक्तचन्दनादि से होम करके दोनों से क्षमायाचना करनी चाहिये। मण्डलान्त में ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार से सर्व यज्ञफल मिलता है। हे महामुने! उस देश में युगपीड़ा नहीं होती, जहाँ सूर्यपूजा इस प्रकार से की जाती है। कुम्भ राशि में सूर्य होने पर अश्विनीकुमारगण युग होते हैं।।२६६-२६९।।

हेमपट्टकृतौ देवौ युगसूर्य्यौ सराजतौ। वेदि पट्टपरिच्छन्नौ कर्पूरमदचर्च्चितौ ॥२७०॥
कुण्डकूर्चिकौरण्डपुष्पापीडाविभूषितौ। दत्त्वा देवदलं धूपं सतुरुस्कं वसान्वितम् ॥२७१॥
पञ्चाब्देन तु मन्त्रेण होमं कृत्वा क्षमापयेत्। द्विजानां दक्षिणां दत्त्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥२७२॥

इनकी स्वर्णप्रतिमा अथवा रजतप्रतिमा बनाकर परिच्छन्न वेदिका पर स्वर्णपट्ट पर स्थापन करके कर्पूरादि सुगन्धद्रव्य का लेपन करना चाहिये तथा कुन्द, कुर्चिकादि के पुष्पमाला गूंथकर दोनों को भूषित करना चाहिये। तदनन्तर देवदल तथा

रसान्वित तुरुष्क की धूप देकर पञ्चाङ्ग मन्त्र से होम करना चाहिये तथा होमान्त में क्षमा प्रार्थना करके ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिये। इससे वाजपेय यज्ञ का लाभ होता है।।२७०-२७२।।

ब्रह्महत्यां व्यपोहेत युगपीडा न जायते। इन्द्राय कथितञ्चेदं वृत्राघस्योपशान्तये ॥२७३॥

ऐसा करने से उसके ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उस पर युगपीड़ा का प्रभाव नहीं होता। वृत्रवधजनित पापशान्ति हेतु इन्द्र ने इसी विधि का पालन किया था।।२७३।।

मीने भगोऽतितेजाथो युगञ्चापि भगं तथा। यष्टव्यौ युगसूर्य्यौ तौ पक्षेन्द्रमणिसञ्चितौ ॥२७४॥
हेमराजतपात्रस्थौ जातिकामदचर्च्चितौ। करवीरकृता पीडौ कर्णिकारस्रजान्वितौ ॥२७५॥
रक्तवस्त्रपरिच्छन्नौ धूपागुरुसुगन्धिनौ। दधि ओदन क्षीरञ्च पायसं बलिभोजनैः ॥२७६॥
हुत्वा चादित्यदेवेन युगानामुदयेन तु। दत्त्वा दानं द्विजातीनां हेमभूषितवाससी ॥२७७॥
ततः क्षमापयेदेतौ चाश्वमेधफलप्रदौ। ब्रह्महत्यासुरापानपितृहत्याविशोधनौ ॥२७८॥

मीन राशि में भग नामक सूर्य तथा भग ही युग है। इन्द्रनीलादि मणि से दोनों की मूर्त्ति का निर्माण करके स्वर्णपट्ट अथवा रजतपट्ट पर स्थापित करके सुगन्धि द्रव्य का लेपन करना चाहिये। शिखा प्रदेश को करवीरमाला तथा मस्तक पर कर्णिका की माला से भूषित करना चाहिये। तदनन्तर रक्तवर्ण वस्त्र, अगुरु धूप, दधि, दध्योदन, क्षीर, पायस प्रभृति नैवेद्य का उपहार प्रदान करके दोनों के लिये होम करना चाहिये। होम के अन्त में ब्राह्मणों को स्वर्ण-वस्त्र-अलंकारादि दान करना चाहिये। तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है तथा ब्रह्महत्या, सुरापान, पितृहत्याजनित पाप से शुद्धि मिल जाती है।।२७४-२७८।।

तौ युगार्कौ प्रयष्टव्यौ मूर्तिसंस्थौ सुशोभनौ। युगपीडाविनाशाय सर्वकामफलप्रदौ ॥२७९॥
मेषादिविष्णुसूर्य्यस्तु नारायणयुगान्वितः। पूज्या ब्रह्मोक्तन्यायेन प्रतिमा मण्डलेऽपि वा ॥२८०॥

युगपीड़ा-विनाशार्थ इस प्रकार से सुशोभित मूर्तिमान युगसूर्य की पूजा करना कर्त्तव्य है। इससे सर्वाभीष्ट सिद्ध हो जाता है। मेषादि द्वादश राशि में जो नारायणादि सूर्य तथा युगपूजा का विषय कहा गया है, उसकी प्रतिमा, किंवा मण्डल बनाना चाहिये।।२७९-२८०।।

मण्डपं मण्डपा यत्र मुच्यन्ते कर्म्मणोऽशुभान्। संवत्सरभयाद् घोरान् मण्डलाद्वाथ मण्डलम् ॥२८१॥
अलं पर्य्याप्तिभूषायां मण्डलं तेन चोच्यते। वसनाभरणाच्चित्तरञ्जनं राजता मता ॥२८२॥
समसूत्रं कृतं क्षेत्रं पूर्वोत्तरप्लवे भुवि। मण्डलं लक्षणोपेतं तत्र कार्यं महामुने ॥२८३॥
प्रागुत्तरेऽथ मध्ये वा यथालाभमथाबले। सूत्रेण वस्तुना शुद्धिं न चादिशति वर्द्धितम् ॥२८४॥

मण्डल शब्द का अर्थ अशुभ कर्म किंवा भय है। अतएव अशुभ कर्म किंवा संवत्सरादि का भय होने पर भय से परित्राण करने के कारण इसका नाम मण्डप अथवा मण्डल है। अथवा अलं शब्द से पर्याप्ति भूषा अर्थ है। इसे नानाविध वर्ण से भूषित होने के कारण मण्डल कहते हैं। हे मुनिवर! पूर्वोत्तर की ओर समसूत्र स्थान में सर्वलक्षणयुक्त मण्डप बनाना चाहिये। पूर्वोत्तर अथवा मध्यस्थान में बनाने से भी क्षति नहीं होती। सूत्रपात बिना किये जो मण्डल बनता है, वह सम्यक् शुद्ध नहीं होता। इसे सूत्र से बनाना शुद्ध होता है। यह उससे बनाने पर किसी दिशा में कम-अधिक नहीं होता।।२८१-२८४।।

वस्त्राणां पुरुषाणां वा तत्रस्थं सुपरीक्षितम्। वर्णशुद्ध्यादिरूपेण कुञ्चितं समदर्पणम् ॥२८५॥
तस्मिन् मानविभागन्तु बुद्ध्या भागत्रयं कुरु। कर्णिका केशरान्भागे सर्वपत्राणि लेखयेत् ॥२८६॥

जिनका हाथ सुपरीक्षित है, उनके हाथ से इसे (नापकर) बनाया जा सकता है। प्रथमत: इसी प्रकार से वर्णविन्यास करना चाहिये, जिससे ठीक से समान भाव से उसे (बराबर) देखा जा सके। तदनन्तर मान के विभागानुसार (माप के विभागानुसार) विभक्त करके उसे पुन: तीन भाग में विभक्त करना चाहिये। कर्णिका एवं केशर के शेषभाग में पत्रों को अंकित करना चाहिये।।२८५-२८६।।

दलाग्राणि मूलभागे पञ्चरङ्गध्वजेऽथवा। त्रिवर्णमेकवर्णं वा द्वारं पद्मासमानि तु ॥२८७॥
चतुरेकेऽथ वा प्राच्यां वीथीपत्रविहङ्गमैः। नरनाभं पिवा वत्स पद्मनीलोत्पलोत्पलः ॥२८८॥
शक्रादिमयवज्रादि लिखेद्विन्दुगतापि वा। मुक्ताफलप्रवालोऽथ पुष्परागकृता रजा ॥२८९॥
सितकुङ्कुमरागैर्वा नीलैर्मरकतैरपि। शालिषष्टिकचूर्णैर्वा यवगोधूमजाथ वा ॥२९०॥
कौसुम्भरजनीभृङ्गपत्रचूर्णीकृता शुभा। यवाङ्गुलोच्छ्रयो रेखा समा पुञ्जविवर्जिता ॥२९१॥

दलों के अग्रभाग को मूलदेश में रखे, अथवा पञ्चवर्ण ध्वज के समीप उसे पर्याप्त बनाये। द्वार भी पद्म के अनुरूप होना चाहिये1 वर्णत्रयसमन्वित अथवा एक वर्ण का भी हो सकता है। चतुर्दिक् में अथवा एक पत्र में पूर्व की ओर विहङ्गमादि का चित्र बनाना चाहिये। हे वत्स! मण्डल नौ नाम का हो। पद्म, नीलपद्म तथा कल्हारादि का चित्र वहाँ रहे। वहाँ बिन्दुस्थान में इन्द्रादि की प्रतिमूर्त्ति किंवा वज्रादि का अंकन करना चाहिये। मुक्ताफलचूर्ण, प्रवालचूर्ण, पुष्परागमणिचूर्ण, कर्पूर, कुङ्कुम, मरकतमणिचूर्ण, शालितण्डुलचूर्ण, यवचूर्ण, गोधूमचूर्ण, कुसुम्भ, हरिद्रा अथवा भृंगपत्रचूर्ण से मण्डल का चित्रण शुभ होता है। यह सब रेखायें समान होनी चाहिये। इनकी उच्चता एक यव से लेकर एक अंगुलि-पर्यन्त होनी चाहिये। एक ही स्थान पर पुंजीभूत भी इसे नहीं होना चाहिये।।२८७-२९१।।

सर्वशोभासमायुक्ता मण्डपञ्च विकल्पयेत्। शूलाङ्कुशं करे कुर्य्याति शङ्कराङ्के शिवं यजेत् ॥२९२॥
पद्मस्वस्तिकनाराचखड्गाङ्के तु शिवां यजेत्। मालावृत्ताब्जपद्माङ्के व्योमाङ्के तु दिवाकरम् ॥२९३॥
शक्तिबर्हिणसूत्राङ्के स्कन्दं पीत्वा युगे गणान्। स्रुवदण्डाक्षमालाङ्के कमण्डलुकरन्त्वजम् ॥२९४॥
वज्राकपालशूलाङ्के देवाः स्वस्वायुधेऽङ्किते। वसवो दण्डभृङ्गारैश्चक्रशङ्खाङ्कितं हरिम् ॥२९५॥
शूलव्योमासि चक्राङ्के शिवसूर्याम्बिका हरिम्। यष्टव्याः सर्वकामेण भोगदारोग्यदा मुने ॥२९६॥

मण्डल सर्वशोभायुक्त होना चाहिये। मण्डल में विचित्र शिवादि मूर्त्ति अथवा शूल-अङ्कुश चिह्न में ही शिवपूजा करनी चाहिये। दुर्गा की पूजा पद्म, खड्ग, स्वस्तिक, नाराच में करनी चाहिये। माला, वृत्त, पद्म तथा शून्य चिह्न में सूर्यपूजा हो सकती है। शक्ति मयूर तथा सूत्रचिह्न में कार्त्तिकेय की पूजा करनी चाहिये। युगचिह्न में गणपूजा करनी चाहिये। स्रुव-दण्ड-अक्षमाला-कमण्डलु चिह्न में ब्रह्मा की पूजा की जाती है। कपालचिह्न अथवा शूलचिह्न में रुद्रपूजा होती है। अन्य देवता गण के लिये पूजार्थ उनके-उनके अस्त्रचिह्न की पूजा करनी चाहिये। दण्ड तथा भृङ्गारचिह्न से वसुपूजा एवं शङ्खचक्र चिह्न में हरिपूजा करनी चाहिये। शूलचिह्न, शून्यचिह्न, खड्गचिह्न, चक्रचिह्न में क्रमश: सर्वभीष्ट-सिद्धि हेतु शिव, सूर्य, दुर्गा तथा विष्णु की पूजा करनी चाहिये। हे मुने! भोग तथा आरोग्य इससे प्राप्त होता है।।२९२-२९६।।

रिपुहा सिद्धिदा वत्स स्वाङ्गषट्कप्रपूजिता। मूलमन्त्रैः स्वकैर्वाथ ओङ्कारेणाभियोजितैः ॥२९७॥
चन्दनागुरुकर्पूरमदरोचनकुङ्कुमैः। गन्धधूपादिनिर्य्यासतुरुष्कनखशर्करैः ॥२९८॥
चम्पकोत्पलपद्मानि जातीकुब्जकमालिका। बिल्वपत्राणि पुष्पाणि नवपत्राणि पत्रिका ॥२९९॥
निवेद्य घृतभक्त्यादिघृतपूर्णादिलड्डुकाः। बलिः शाल्योदनं क्षीरं दधिक्षौद्रविमिश्रिता ॥३००॥
पद्मेन्द्रनीलवज्रादिरत्नानि बहुधानि च। अण्डजोऽण्डजभेदानि विचित्राण्याहतानि च ॥३०१॥

ध्वजमालावितानानि चारुरूपाणि कारयेत्। पताकाचामरादीनि बहुधा परिकल्पयेत् ॥३०२॥
किङ्किणीशब्दबहुलं घण्टाशब्दवराकुलम्। कर्त्तव्यं देवतागारं विचित्रेन्द्रसदोपमम् ॥३०३॥

हे वत्स! मूल देवता की षडङ्ग पूजा वहाँ करने पर शत्रुनाश तथा कार्यसिद्धि होती है। पूर्वोक्त देवपूजा उन-उन मूलमन्त्र द्वारा या प्रणवादि (जिसके प्रारम्भ में प्रणव रहे) मन्त्र से करना कर्त्तव्य है। हे वत्स! चन्दन, अगुरु, कर्पूर, रोचना, कुङ्कुम, सुगन्धधूप, निर्यास, तुरुष्क, चम्पक, लड्डू आदि विचित्र उपचार, क्षीर, दधि, घृत तथा मधुमिश्रित शाल्योदन बलि, पद्मरागमणि, इन्द्र- नीलमणि, वज्रमणि आदि रत्न, विचित्र धौत (धुली) कपास का पट्टवस्त्र, ध्वज, माला, चन्द्रातप इत्यादि विविध मनोहर उपहार प्रदान करना चाहिये। अनेक प्रकार की पताका, चामर से सज्जित करना चाहिये। किङ्किणी तथा घण्टाशब्द से मन्दिर को सर्वदा कोलाहलमय करके इन्द्रालय (स्वर्ग) के समान विचित्र शोभायुक्त कर देना चाहिये।।२९७-३०३।।

शुचिः सन्नद्धो मन्त्रज्ञो मौनी ध्यानपरायणः। गतकामभयाद्वन्द्वोरागमत्सरवर्ज्जितः ॥३०४॥
आत्मानं पूजयित्वा तु सुगन्धसितवाससम्। सुमुहूर्त्ते यजेद्देवान् स्वकीयासनसंस्थितान् ॥३०५॥

मन्त्र के ज्ञाता व्यक्ति को मौनी तथा ध्यानयुक्त होकर काम, क्रोध, भय, दुःख, राग, मत्सर, अन्य भाव प्रभृति का त्याग करके पहले गन्ध-पुष्पादि से आत्मपूजा करने के पश्चात् शुभ मुहूर्त्त में अपने-अपने आसन पर स्थित देवगण का पूजन करना चाहिये।।३०४-३०५।।

आह्वानेनार्घ्यपाद्यादिहेमपात्रेण दापयेत्। रत्नबिल्वाक्षतपुष्पदधिदूर्व्वाकुशास्तिलाः ॥३०६॥
सामान्यं सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकल्पितः। अभावाद्दधिदूर्व्वादिर्मानसं वाथ कल्पयेत् ॥३०७॥

पाद्य एवं अर्घ्य देते समय उसे स्वर्णपात्र में लेकर देवता का सम्बोधन करना चाहिये। रत्न, बिल्वपत्र, अक्षत, पुष्प, दधि, दूर्वा, कुश, तिल—सभी देवताओं की साधारण अर्घ्यसामग्री होती है। इनके अभाव में दधि-दूर्वादि यथाप्राप्त वस्तु द्वारा, किंवा मन ही मन कल्पना करके भी अर्घ्यदान किया जा सकता है।।३०६-३०७।।

दत्त्वार्घ्यं पूजनं कार्यं देवाङ्गलोकपालयोः। गणमातृग्रहाणाञ्च कलादि शरदां युगम् ॥३०८॥

अर्घ्यदानोपरान्त प्रथमतः सभी पूजन के अंगीभूत लोकपाल, गण, मातृ, ग्रह, शरदादि ऋतु, काल, युगप्रभृति की पूजा करनी चाहिये।।३०८।।

मुद्रादि दर्शनं कार्य्यमर्घ्यं दत्त्वा जपादिकम्। कृत्वा देवाय तद्दत्त्वा बलिदानं ग्रहादिषु ॥३०९॥
बलिर्भूतपिशाचेषु देवरक्षोगणेषु च। शिवादि जम्भकादीनां नागानां पय पायसम् ॥३१०॥
कृसरां पितृदेवानां हविर्यक्षेषु चासवम्। दैत्यानां मत्स्यमांसानि देवीनां पुनर्मोदकम् ॥३११॥
बलिपूजाप्रदानान्ते ततो होमं समारभेत्। हस्तादि लिखिते कुण्डे समाख्याते समीकृते ॥३१२॥
ओष्ठमेकाङ्गुलं कार्यं नाभी वा दश चायता। अष्टविस्तरसामान्या गजश्रोष्ट्रसमोपमा ॥३१३॥
चतुरङ्गुलमानेन प्रथमा मेखला भवेत्। एकोना द्वे तृतीया तु एवं कुण्डं शुभावहम् ॥३१४॥
चतुरस्रञ्च पूर्वादिमश्वत्थदलसन्निभम्। अर्धेन्दु कृकटाकारं वृत्तं पञ्चकमष्टधा ॥३१५॥
पद्माकारं प्रकर्त्तव्यं कुण्डञ्चेशानगोचरे। शाखा अश्वत्था श्रीपर्णो स्रुचा रैकङ्कतोऽपि वा ॥३१६॥
खदिरासनबिल्वादौ स्रुवं हस्तादिदैर्घतैः। अङ्गुष्ठपरिणाहाद्यं दण्डकुम्भकभूषितम् ॥३१७॥

मुद्राप्रदर्शन तथा अर्घ्यदान करके जपादि करना चाहिये। जपान्त में देवता के लिये जपसमर्पणोपरान्त ग्रह-भूत-पिशाच-देव-रक्ष प्रभृति को बलि उपहार प्रदान करना चाहिये। शिवा, जम्भकादि तथा नागगण को पायस की बलि, पितृ तथा देवगण

को तिलादि-मिश्रित अन्न (कृषर) की बलि; इसी प्रकार से यक्षों को घृत-मधु, दैत्यों को मत्स्य-मांस, देवीगण को मोदकादि की बलि प्रदान करनी चाहिये। बलि के उपरान्त होम का आरम्भ करना चाहिये। एतदर्थ समाख्यात (समान गढ़े वाला), समीकृत, हस्तादि परिमित कुण्ड का ओष्ठ एक अंगुल एवं नाभि १२ अंगुल की विस्तृत होनी चाहिये। नाभि का विस्तार अष्ट अंगुल, प्रथम मेखला का परिमाण ४ अंगुल होना चाहिये। द्वितीय मेखला तीन अंगुल, तृतीय मेखला २ अंगुल की होनी चाहिये। ऐसा माप वाला कुण्ड शुभ होता है। पूर्वदिक् अथवा ईशान कोण में कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। कुण्ड चतुष्कोण, अर्द्धचन्द्रतुल्य, वृत्त, अश्वत्थपत्र वाली आकृति का, पञ्चकोण, अष्टकोण अथवा पद्माकृति होना चाहिये। स्रुक् अश्वत्थादि की शाखा से बने होने चाहिये। स्रुव खदिर, बिल्व, काष्ठादि का बना होना चाहिये। उसका परिमाण तथा दैर्ध्य एक हाथ का होना चाहिये। उसका परिणाम अंगुष्ठपरिमित होना चाहिये एवं उसमें दण्ड-कुम्भ भी रहना चाहिये।।३०९-३१७।।

दुष्करं पुष्करौ द्वौ तु मध्यं रेखोच्छ्रिताङ्कितम्। स्रुचा सार्द्धकरा कार्य्या दण्डं वृत्तं सुशोभनम् ॥३१८॥
षडङ्गुलपरीणाहं भ्रामयन्ति विनिर्गतम्। द्व्यङ्गुलं मूलदेशे तु कुम्भं पुष्करमूलगम् ॥३१९॥
कर्णिका तद्विजानीयात् त्रिभागेण तु पुष्करम्। वेदी समाङ्गुला कार्य्या पञ्चवृतं प्रकल्पयेत् ॥३२०॥

उसमें मध्यरेखाङ्कित दो पुष्कर रहेंगे। स्रुचा आधा हाथ माप की रहेगी। उसमें वृत्त तथा दण्ड रहेगा। उसका परिणाह ६ अंगुल का होगा। मूलदेश में पुष्कर मूलस्थ दो अंगुल का कुम्भ होगा। पुष्कर की तीन विभाग कर्णिका होगी। वेदी समांगुला तथा पञ्चवृता होगी।।३१८-३२०।।

त्रीणि खातं समं कार्य्यमग्रं कुर्य्यात् षडङ्गुलम्। गोकर्णाकृतिशोभाढ्यं कन्यासाङ्गुलिरन्ध्रगम् ॥३२१॥
घृतं निष्क्रमणं कार्यं यवत्रयसुवेक्षितम्। एवं स्रुवं स्रुचा कार्ये ताभ्यां होमं सुखावहा ॥३२२॥

उसका खात (गढ़ा) समान तथा ६ अंगुल आगे करे। वह देखने में गोकर्ण के समान हो। उसमें कनिष्ठ अंगुली प्रवेश कर सके—ऐसा वक्र हो। उसमें से यवत्रयपरिमित घृत निर्गत हो सके—ऐसा करे। ऐसी स्रुव तथा स्रुचा रखने पर होम सुखावह होता है।।३२१-३२२।।

शमी गभीरिणी कार्य्या धैर्याद्धस्तप्रमाणिता। वितस्तिपरिणाहाद्या मध्यं वै षोडशाङ्गुलम् ॥३२३॥
वृत्तं करद्वयोपेतं दशाङ्गुलसुवृत्तिगम्। आपीडं तं समं कार्यं मध्ये आयासबन्धनम् ॥३२४॥
घटिकाङ्गारयोगार्थं शणरज्ज्वा यथाविधि। सुदृढा वह्निमन्त्रेण पूजयित्वा तु पातयेत् ॥३२५॥

उसकी दीर्घता हस्तप्रमाण, परिणाह एक विस्तति का, मध्य १६ अंगुल—ऐसी एक शमीपट्ट की अरणि तथा वृत्त करद्वयोपेत हो, दशांगुल वृत्तियुक्त लौह बन्धनयुक्त मन्थन दण्ड बनाना चाहिये। उसे सन की रस्सी से बांधना चाहिये। यह घटिका अंगार योगार्थ बाँधनी चाहिये। इसकी पूजा करके घर्षण द्वारा अग्नि का उत्पादन करना चाहिये।।३२३-३२५।।

अभावे सूर्य्यकान्ते च तदभावात् करीषजा। सामान्यायतनागारे आनयेत्ताम्रभाजने ॥३२६॥
शरावे मृन्मये पात्रे कुण्डे पूजान्विते न्यसेत्। अग्निचक्रविधानेन सर्वकर्म्माणि कारयेत् ॥३२७॥

इसके अभाव में सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न, उसके अभाव में करीष से उत्पन्न अग्नि का ग्रहण करना चाहिये। सामान्य आयतन का होने पर भी ताम्रपत्र अथवा मृण्मय पात्र द्वारा अग्नि लाया जा सकता है। प्रथमत: कुण्ड थी पूजा करके उसमें अग्निस्थापन करने के पश्चात् अग्निचक्रविधानानुसार समस्त कार्य सम्पन्न करनी चाहिये।।३२६-३२८।।

हैमराजतताम्राणि काष्ठशैलमृदानि च। रत्नादीनि च पात्राणि शुभदेवाङ्कितानि च ॥३२८॥
अर्घनैवेद्यपूजार्थं बलिदानञ्च कारयेत्। यस्मादेवं विधानेन होमं कृत्वा यथाविधि ॥३२९॥
मण्डलं दर्शयेद्वत्स शुचौ भक्ते उपोषिते। मन्त्रपूतेन हस्तेन दत्वा तु शिरसि स्रजम् ॥३३०॥

पुष्पाणि करयोर्दत्त्वा मण्डलान्ते क्षमापयेत्। पतितं यत्र देवोर्ध्वं तदंशं तं विदुर्मुने ॥३३१॥
एवं दृष्टो शिवो वत्स गत्वा वह्निं क्षमापयेत्। पूर्णाहुतिप्रदानञ्च दृष्ट्वा पापात् प्रमुच्यते ॥३३२॥

स्वर्ण, रजत, ताम्र, काष्ठ, पत्थर, मिट्टी, रत्नादि का पात्र जो शुभ देवाङ्कित हो, उसमें अर्घ्य-नैवेद्यादि प्रदान करनी चाहिये। पूजोपकरणादि हेतु स्वर्णपात्र प्रशस्त होता है। अभाव में रौप्यपात्र, उसके अभाव में ताम्रपात्र, उसके अभाव में काष्ठपात्र, वह भी न हो तब प्रस्तरपात्र अथवा मृण्मयपात्र ग्रहण करना चाहिये। रत्नादिपात्र देवगणों के लिये प्रिय है। वलिप्रदान के अनन्तर यथाविधि होम का समापन करके उपवासी तथा पवित्र भक्त को मण्डल में प्रवेश कराना चाहिये। इसे अपने हाथ से मन्त्रपूत करके माला पहनाकर उसके हाथ में पुष्पादि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर उसे मण्डप के पास ले जाकर क्षमाप्रार्थना कराकर अग्नि के समीप प्रार्थना करानी चाहिये। तत्पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिये। पूर्णाहुति काल में उसका दर्शन करने से वह (अग्निदर्शन करके) पापों से मुक्त हो जाता है।।३२८-३३२।।

सर्वकामानवाप्नोति विगताघो महामुने। स्नातो मन्त्रार्द्धकुम्भाम्भैः सर्वव्याधिविमुच्यते ॥३३३॥

ऐसा करने से वह सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करता है। मङ्गलकुम्भ तथा अर्घ्यजल से स्नान करने से वह साधक समस्त व्याधि से मुक्त हो जाता है।।३३३।।

गोभूहिरण्यवस्त्राणि रत्नवाजिगजादि वा। आचार्य्याय प्रदातव्या आत्मानञ्च निवेदयेत् ॥३३४॥
द्विजानां दक्षिणा देया कन्यकानां विशेषतः। लोके पूजा प्रकर्त्तव्या यथार्हं च क्रमागता ॥३३५॥

तत्पश्चात् यजमान को गो, भूमि, स्वर्ण, यन्त्र, अश्व, हाथी आदि की दक्षिणा आचार्य को देकर उनके पास आत्मसमर्पण करना चाहिये। ब्राह्मण तथा कुमारीगण को विशेषतः दक्षिणा देनी चाहिये। लोकसमाज में भी जो पूर्वापर क्रम से पहले पूजित होते हैं, उनका पूजन करके यथाक्रमेण सबका सम्मानादि करना चाहिये।।३३४-३३५।।

दीनान्धकृपणानाञ्च अन्नं देयं च सर्वदा। कृमिकीटपतङ्गेषु भूमौ दध्योदनं क्षिपेत् ॥३३६॥
सर्वदा सर्वभूतानां सुखं कार्यं सुखार्थिना। स्थावरं जङ्गमं वापि ऋतुराज्यं न हिंसयेत् ॥३३७॥
एवं युगादिभिर्देव्यो बहुभेदाः सभास्कराः। यस्तु मण्डलकुण्डस्थां कृत्वा चित्रेऽथवा यजेत् ॥३३८॥
नासावाध्यात्मिकादीनि दुःखानि क्वचिदाप्नुयात्। आधिव्याधिकृता पीडा तस्मिन् देशेऽपि नो भवेत् ॥३३९॥

दीन, अन्ध तथा कृपणों को सदैव अन्न देना चाहिये। कृमि-कीट-पतङ्गों के लिये पृथिवी पर दधि-ओदन छिड़कना चाहिये। सुखार्थी होने पर स्थावर-जंगम प्रभृति सभी को सुखी करने की चेष्टा करनी चाहिये। किसी के प्रति भी हिंसा करना उचित नहीं है। इस प्रकार से युग-सूर्यादिभेद से देवी के वहुविध रूप हैं। जो व्यक्ति मण्डल, कुण्ड अथवा चित्रमध्य में देवी का पूजन करता है, उसे तथा उसके देश में आध्यात्मिकादि दुःखभोग नहीं करना पड़ता। हे मुनिवर! जिस देश में सर्वदा इस प्रकार से देवीपूजन होता है, उस देश में आधि-व्याधि-आदि नहीं होती।।३३६-३३९।।

सुभिक्षं क्षेम वैराग्यं गजवाजिसदोज्ज्वलम्। हेमरत्नाकराकीर्णं राष्ट्रं तस्य प्रजायते ॥३४०॥
पर्ज्जन्यः कालवर्षी स्याच्छस्यशाली वसुन्धरा। यज्ञ इष्टिरता विप्रा गावो भुवि पयोऽन्विताः ॥३४१॥

उस राज्य में सभी समय सुभिक्ष तथा मंगल होता है। वैराग्य, गज, अश्व, स्वर्ण, रत्नप्रभृति सब प्रकार की सम्पत्ति वहाँ हो जाती है। वह देश समृद्ध हो जाता है। वहाँ मेघ यथाकाल वर्षा करते हैं, वसुन्धरा शस्य से पूर्ण हो जाती है। ब्राह्मणगण यज्ञादि में रत रहते हैं एवं गायें दुग्धवती होती हैं।।३४०-३४१।।

पतिव्रता सदा नार्यो भृत्याः स्वामिपरायणाः। नोपसर्गोऽपमृत्युर्वा तत्र देशे भवेत् क्वचित्।
यत्रेयं सततं पूजा देवीनां क्रियते मुने ॥३४२॥

इति श्रीदेवीपुराणे देवीसंवत्सरमण्डलबलिहरणविधानं नाम पञ्चाशोऽध्यायः

जहाँ देवी की सतत् पूजा होती है, वहाँ की नारीगण सदा पतिव्रता हो जाती हैं तथा भृत्यगण स्वामीपरायण हो जाते हैं। वहाँ कुछ भी उपसर्ग नहीं होता, अपमृत्यु आदि कुछ नहीं होता।।३४२।।

पञ्चाश अध्याय समाप्त

●

एकपञ्चाशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

येयं देवी इहामुत्र हिताय समुपाश्रिता। स्वार्थसिद्धौ परार्थे वा भवन्ती कथयामि ते ॥१॥
मङ्गला शाकम्भरी काली देव्या या त्रिविधा तनुः। घोरहा रुरुहा वत्स शुभा कन्दकनाशिनी ॥२॥
दमनी महिषघ्नी च तथा च महिषासुरा। एता मूलगता देव्यः षष्टिधा कोटिधा पराः ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—लोक में अपने स्वार्थ की सिद्धि तथा परार्थसिद्धि के लिये जो देवी का आश्रय लेता है, उनके सम्बन्ध में कहता हूँ। मङ्गला-शाकम्भरी-काली—इन तीन देवीगण का शरीर ही रुरुहा, घोरहा, कन्दकनाशिनी, दमनी, महिषघ्नि तथा महिषासुरादिभेद से ६० प्रकार का है। ये मूलशक्ति ही कोटि-कोटि शरीररूप मूर्त्ति में विराजित हैं।।१-३।।

एतेषां शास्त्रवेत्तारो देवीपूजाविधौ शुभा। मातृमण्डलवेत्ता च ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ॥४॥
प्रतिचारी विशोर्वापि शूद्रो वा तत्त्वविद्यदि। पूजाविधौ भवेत् श्रेष्ठो न मन्दो न कुशीलवः ॥५॥
न नैष्ठिको विशास्त्रो वा पूजको भवते शुभः। अभिधौ य शिवां पूज्येतापरेण नियोजितः ॥६॥
स याति नरके घोरं स्वामी राजा च नश्यति। तस्माच्छिवविधा देवी विष्णुर्भागवतैः शुभैः ॥७॥

जो शास्त्रज्ञ हैं तथा मातृमण्डलादि के विषय में एवं देवीगण की पूजा के विषय में जानते हैं, वे ही यथार्थ अधिकारी हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र में जो तत्त्वज्ञ है, देवीपूजाविधान में वही श्रेष्ठ है। मन्द, कुशीलव, नैष्ठिक तथा अशास्त्रज्ञ पूजक नहीं हो सकता। अन्य से नियोजित होकर यदि कोई व्यक्ति अनियमित पूजा करता है, तो वह नरकगामी होता है तथा उसका स्वामी अथवा राजा नष्ट हो जाता है। देवी शिवस्वरूपा हैं। शिव विष्णुस्वरूप हैं। सूर्य विष्णु से अभिन्न हैं; अतः भागवत विष्णुपूजा करते हैं।।४-७।।

पूजितः शिवतः सूर्य्यः शिवः सर्वफलप्रदः। अग्रे वा शिवसिद्धान्ततिलकादिप्रवेदिभिः ॥८॥
माठरोक्तविधौ वापि सर्वकामप्रदायकः। अहञ्च वेदविधिना ग्रहा नागा परे सुराः ॥९॥
सुशास्त्रविधिमाश्रित्य पूजिताः फलदा नृणाम्। वैपरित्याद्भयं कुर्य्यादपदे राजनस्य च ॥१०॥

सूर्य की पूजा भी शिववत् करनी चाहिये। सूर्य सर्वफलदाता हैं (अथवा शिवरूप सूर्य सर्वफलदाता हैं)। जो शिव-सिद्धान्तानुरूप तिलकादि से अवगत हैं, वे पहले ही इनका पूजन करते हैं। माठरोक्त विधिपूर्वक पूजित होने से सूर्य सभी कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं (इस विधि से पूजित होने पर भगवान् अवश्य साधक को मनोवाञ्छित फल देते हैं)। मैं, अन्य देवता, ग्रह, नागादि शास्त्रोक्त विधानानुरूप पूजित होकर यथाशास्त्र फल प्रदान कर देते हैं। इससे विपरीत (अविधान-अशास्त्रीय) होने पर देश का, राजा का तथा जनता का अमंगल होता है।।८-१०।।

तस्मात् परार्थ्यमुद्दिश्य पूजां विधि शुभावहा। मधुराम्लादिना केचित् तुष्यन्ते वटुकैः परे ॥११॥
कषायलवणैस्तिक्तैरेवं भिन्ना नृणां मतिः। देवा मूर्त्तिगताः स्थूलाः शब्दगा ध्यानगाः परे ॥१२॥

अतएव परार्थसिद्धि हेतु यथाशास्त्र, शुभ विधानानुसार पूजा करनी चाहिये। कोई मधुप्रिय, कोई अम्लप्रिय, कोई कटुप्रिय कोई लवणप्रिय, कोई तिक्तप्रिय होता है, इसलिये इस प्रकार से मनुष्यगण की रुचि तथा चित्त भिन्न-भिन्न होता है। इसी प्रकार से देवगण भी भिन्न रुचि वाले होते हैं। स्वार्थ अथवा परार्थ-सिद्धि के लिये मूर्त्ति-निर्माण करके पूजा करने पर कोई पूजा से, कोई नामजप से तो कोई ध्यान से एवं कोई मानसिक स्मरण से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।।११-१२।।

स्वार्थसिद्धौ परार्थे वा मनसा यान्ति चिन्तिताः। तथापि उपचारेण जातिभेदक्रियादिभिः ॥१३॥
शिवे विवर्ज्जयेत् कुन्दमुन्मत्तञ्च हरेस्तथा। देवीनाञ्चार्कमन्दारौ सूर्य्ये केशयुतं मृगम् ॥१४॥
एवं विधिं समाश्रित्य पूजयेल्लभतो फलम्। हेमपात्रेण सर्वाणि लभते च हितान् मुने ॥१५॥

तथापि जातिभेद-क्रियाभेद से सबकी विविध उपचारों से पूजा करनी चाहिये। (जैसे) महादेव के पूजन में कुन्दपुष्प निषिद्ध है, उसी प्रकार विष्णु पूजा में धतूरा, देवीपूजा में मदार तथा मन्दारपुष्प निषिद्ध है। इस प्रकार से सविधि (विधानानुरूप) पूजन द्वारा फल लाभ होता है। हे मुने! स्वर्णपात्र से पूजादि कार्य-अर्घ्यदानादि कार्य करने से सभी का मंगल होता है।।१३-१५।।

अर्घ्यं दत्वा तु रौप्येण आयुराज्यसुताँल्लभेत्। ताम्रपात्रेण सौभाग्यं धर्मं मृन्मयसम्भवैः ॥१६॥
वार्क्षपात्राणि पात्राणि नैष्ठिकादिषु कारयेत्। शैलानि क्रूरजातीनां रक्तादि सर्वकामिकम् ॥१७॥
धातूत्तमानि पात्राणि नृपराष्ट्रविवृद्धये। त्रपुसीस कलौ हानिरन्यजातिषु कारयेत् ॥१८॥

रौप्यपात्र से अर्घ्यदान से आयु-राज्य-पुत्रलाभ, ताम्रपात्र से सौभाग्य, मृत्पात्र से धर्मलाभ कहा गया है। नैष्ठिक आदि (व्रतपालनकर्त्ता) के लिये काष्ठपात्र प्रशस्त है। क्रूर जाति वालों हेतु पत्थर का बना पात्र प्रशस्त है। उत्तम धातुपात्र होने से नृपति की राज्यवृद्धि होती है। अन्यान्य जाति वालों हेतु रांगा-सीसा-लोहा आदि का पात्र प्रशस्त कहा गया है।।१६-१८।।

विवाहयज्ञश्राद्धेषु प्रतिष्ठासु विशेषतः। पात्राणाञ्चादरः कार्य्यः पात्राण्येवोत्तमानि च ॥१९॥
पात्रेषु पृथिवी दुग्धा सुधा पात्रेषु धार्य्यते। वेदाः सोमं क्रतुर्यज्ञाः पात्राण्येव विदुर्बुधाः ॥२०॥
बलिहोमक्रियादीनि विना पात्रे न सिध्यति। तस्माद् यज्ञाङ्गमेवाहुः पात्रञ्चाग्र्यं महामुने ॥२१॥

विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, प्रतिष्ठादि कार्य में पात्र का ही आदर होता है; क्योंकि इन सबमें पात्र ही प्रधान है। पात्रगुण से ही पृथिवी दुग्धा हुई है। पात्रगुण से ही सुधा उत्थित हो सकी है। वेद-चन्द्र-क्रतु-यज्ञ को पण्डितगण पात्र कहते हैं। पात्र के अभाव में बलि-होम आदि क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती। अतः हे महामुने! यज्ञ में पात्र दक्षिण (दाहिने हाथ) बाहु के समान हैं।।१९-२१।।

यो यस्य आयुधः प्रोक्तस्तस्य तल्लाञ्छनं भवेत्। वाहनध्वजच्छत्रेषु लाञ्छनं परिकल्पयेत् ॥२२॥
षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रञ्चोत्तमं परिकीर्त्तितम्। रस अङ्गुलकीनन्तु न पात्रं कारयेत् क्वचित् ॥२३॥

जिस देवता का जो आयुध कहा गया है, वह उस-उस देवता का चिह्न है। वाहन, ध्वज, छत्रप्रभृति सर्वत्र चिह्न ही कल्पित हैं। ३६ अंगुल तक का पात्र उत्तम माना गया है। छः अंगुल से छोटा पात्र नहीं प्रयोग करना चाहिये।।२२-२३।।

नानाविचित्ररूपाणि पुण्डरीकाकृतीनि च। शङ्खनीलोत्पलाकारान् पात्राणि परिकल्पयेत् ॥२४॥

कमल, शंख, नीलोत्पल इत्यादि की तरह विचित्राकृति पात्र लेना चाहिये। जिससे पात्र की शोभा बढ़े, उसी अनुरूप रत्नादि जड़ कर पात्र को तैयार करना चाहिये।।२४।।

विना पात्राणि यः कुर्य्यात् प्रतिष्ठां याज्ञिकीं क्रियाम्। विफला भवते सर्वा वाहनाद्धि धनापहा ॥२५॥
बलिहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने अभोग्यता। धूपहीने च उद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयम् ॥२६॥
रत्नहीने हरेद्भार्य्यां पताकैर्ध्वजनायकम्। छत्रहीने हरेच्छत्रं विताने मकरं भवेत् ॥२७॥

बिना पात्र के जो व्यक्ति प्रतिष्ठा आदि यज्ञ की क्रिया आरम्भ करता है, उसके कर्म फलीभूत नहीं होते; अपितु धन-वाहन आदि नष्ट हो जाते हैं। बलिहीन क्रिया से दुर्भिक्ष, सुगन्धहीन क्रिया से भाग्यहीनता, धूपहीन क्रिया से उद्वेग तथा वस्त्रहीन (बिना वस्त्रार्पित) क्रिया से धनक्षय अवश्य होता है। रत्नहीन क्रिया से भार्या का विनाश, छत्रहीन क्रिया से साधक का छत्ररहित होना तथा चन्द्रातपरहित क्रिया (पताका-ध्वजादिरहित) से मकर योनि प्राप्त होती है।।२५-२७।।

वेदीहीने तु चालं स्यान्नगरस्य पुरस्य च। कलसैर्बन्धुनाशश्च भवति मुनिसत्तम ॥२८॥
तोरणानामभावे तु हरेज्जातीश्च बान्धवान्। स्रुवि कुण्डविहीनं तु यज्ञं लुप्यन्ति राक्षसाः ॥२९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वेदीहीन क्रिया से पुर-नगर आदि चालित होते हैं (झंझावात आदि से)। कलसहीन क्रिया करने से बन्धुगण से वाद-विवाद हो जाता है। तोरणरहित क्रिया करने पर जाति एवं बन्धु का विनाश होता है। स्रुव तथा कुण्डरहित क्रिया में राक्षसगण ही यज्ञ का विनाश कर देते हैं।।२८-२९।।

रजोहीनं तु दौर्भाग्यं प्राप्नुयात् कारकः सदा। दक्षिणारहिते सर्वं भवते अविचारणात् ॥३०॥
मन्त्रविद्याविहीनन्तु सम्पूर्णमपि नश्यति। पात्रमन्त्रसमायुक्तं सर्वदोषान् निवारयेत् ॥३१॥

इति श्रीदेवीपुराणे पात्रविधिर्नाम एकपञ्चाशोऽध्यायः

रजोविहीन क्रिया करने पर यज्ञ करने वाले का दुर्भाग्य उदित हो जाता है। दक्षिणारहित क्रिया में तो सब कुछ विफल होता है। मन्त्रविहीन क्रिया में तो सबका नाश निश्चित है। अतएव पात्र-मन्त्रादि सर्वलक्षण से क्रिया को युक्त करने से वह क्रिया सर्वदोष- निवारक हो जाती है।।३०-३१।।

एकपञ्चाश अध्याय समाप्त

●

द्विपञ्चाशोऽध्यायः

मनुरुवाच

शृणु शौनक तत्त्वेन अपमृत्युनिवारणम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रवियागमनुत्तमम् ॥१॥
ग्रहा माघादिभेदेन आदित्यं मकरे यजेत्। हस्तमात्रे शुभे पद्मे कर्णिका केशरोज्ज्वले ॥२॥
कुङ्कुमादिरजैर्लिख्यमष्टपत्रं रवेर्ग्रहम्। आदित्यं पूजयेन्मध्ये पूर्वपत्रे निशाकरम् ॥३॥

मनु कहते हैं—हे शौनक! सुनो। अपमृत्यु-निवारक, सर्वकामप्रद श्रेष्ठ रवियाग कहता हूँ। मासभेद से ग्रहगण का याग विहित है। इनमें माघ मास में रवियाग करना चाहिये। कुङ्कुमादि द्वारा एक हाथ का उज्ज्वल कर्णिका वाला तथा केशरयुक्त एक अष्टदल कमल बनाना चाहिये। यही है—रविगृह। इसके मध्यस्थान में रवि (आदित्य) का पूजन करना चाहिये। इसके पूर्वदल में चन्द्र का पूजन करना चाहिये।।१-३।।

मङ्गलं वह्निपत्रस्थं दक्षिणेन बुधं यजेत्। शनिर्नैर्ऋतपत्रस्थं सुरेज्यं वरुणालयम् ॥४॥
वायव्ये सैंहिकेयन्तु भार्गवञ्चोत्तरे यजेत्। केतुं शिवाङ्गके देयं यागे सर्वशुभोदये ॥५॥

आदिवर्णं कृताधारं आदित्यं शम्भुना यजेत्। शेषा वारुणवर्णेन अष्टधाभिर्दिवेन तु ॥६॥
गन्धपुष्पं पवित्रन्तु हृदयेन प्रदापयेत्। वरदाभयमुद्रौ तु मध्ये व्योमं प्रदर्शयेत् ॥७॥

इसके (अग्निकोण) अग्निदल में मंगल, दक्षिण दल में बुध, नैर्ऋत्य दल में शनि, पश्चिम दल में बृहस्पति, वायुदल में राहु, उत्तरदल में शुक्र तथा ईशान दल में केतु का पूजन करना चाहिये। आदिवर्ण के साथ शम्भुवर्ण का योग करके इन मन्त्र से सूर्य का पूजन करना चाहिये। शेष वारुण वर्ण को (वारुणमन्त्र से) अष्टधा भिन्न करके उससे पूजा करनी चाहिये। सुपवित्र गन्ध-पुष्पादि को मन्त्रपाठपूर्वक प्रदान करना चाहिये। यह मध्य (हृदय) में अर्पित करना चाहिये। वरद एवं अभय मुद्रा का प्रदर्शन करके मध्य में व्योममुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।।४-७।।

सर्वरक्तोपचारन्तु आदित्याय प्रकल्पयेत्। स्वस्ववर्णग्रहाणान्तु देयं पुष्पविलेपनम् ॥८॥
होमं तिलाज्यक्षौद्रन्तु पायसन्तु निवेदयेत्। एवंकृत्वा जपं देवमादित्याय सुसंख्यया ॥९॥
स्नानं शिष्याय कर्त्तव्यं मन्त्रपूतेन वारिणा। सर्वकामानवाप्नोति यो विधिं कारयेदिमम् ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे आदित्ययागो नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः

सभी पूजोपचार रक्तवर्ण के होने चाहिये। इन्हें ही प्रदान करना चाहिये। अन्य ग्रहगणों का पूजन उनके-उनके वर्ण के पुष्प तथा विलेपन आदि से करना चाहिये। तिल-घृत-मधुमिश्रित इस सामग्री से हवन करके पायस आदि अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति जप करके उस जप को सूर्यदेव को अर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर शिष्य को गुरु द्वारा मन्त्रपूत जल से स्नान कराना चाहिये। इस विधान से पूजन द्वारा साधक सर्व कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है।।८-१०।।

द्विपञ्चाश अध्याय समाप्त

●

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

आदित्यं भास्करं सूर्यं रविं भानुं दिवाकरम्। स्रष्टारं तेजिनं भावं जयन्तं शुभदं शिवम् ॥१॥
मकरादिप्रभेदेन आदित्यादिशुभोदयम्। यष्टव्या हस्तमात्रे तु द्विवृद्ध्या धनुषावधि ॥२॥
शुभदोऽयं जयं भाग्यं कल्याणमपराजितम्। मङ्गलमिष्टसिद्धिञ्च विभवं शुभदं शुभम् ॥३॥
इष्टाख्यं व्याधिनाशन्तु मकरादौ समारभेत्। सर्वपापहरा यागाः सर्वे आयुर्धनप्रदाः ॥४॥

माघ मास से प्रारम्भ करके पौष-पर्यन्त यथाक्रमेण आदित्य, भास्कर, सूर्य, रवि, भानु, दिवाकर, स्रष्टा, तेजस्वी, भाव, जयन्त, शुभद तथा शिव का याग करना चाहिये। मकरादि प्रभेद से शुभोदय, जय, सौभाग्य, कल्याण, अपराजय, मंगल, अष्टसिद्धि, सम्पदा, इष्टसिद्धि होती है तथा व्याधि का नाश हो जाता है। यह याग सर्वपापनाशक तथा आयु एवं धनप्रद होने के साथ ही शुभप्रद भी होता है।।१-४।।

सर्वरोगविनाशाय सर्वे कार्य्याः सुखाय च। नित्यं श्वेतोपहारेण आयुरारोग्यदायकाः ॥५॥

सुखार्थी व्यक्ति के लिये तथा जो सर्वरोग-विनाश की इच्छा करते हैं, उनके लिये यही याग कर्त्तव्य है। आयु चाहने वाले तथा आरोग्यकामी को श्वेत उपहारों से नित्यपूजा करनी चाहिये।।५।।

सुतसौभाग्यकामेन कार्य्या रक्तोपचारिकाः। पीतेन ग्रहनाशार्थं कृष्णैः शत्रुनिवारणम् ॥६॥

पुत्रार्थी तथा सौभाग्यकामी व्यक्ति को रक्तवर्ण उपहार से पूजा करनी चाहिये। ग्रहपीड़ा नष्ट करने के लिये पीत उपहार से पूजन करना उचित होता है। शत्रु-निवारणार्थ कृष्ण उपहार से पूजा करना उचित है।।६।।

ग्रहाणां यजनं कार्यं समन्त्रं बलिपूजनम्। फलरत्नौषधीगन्धबीजधातुमृदादिभिः ॥७॥
सप्तोदकं समन्त्रेण स्नात्वा भाग्योदयो भवेत्। गजानां तुरगाणाञ्च रविशक्रसमन्वितम् ॥८॥
स्नानं होमं प्रकर्त्तव्यं लक्षायुतसहस्रकम्। मातराणां सदा चक्रं हेमराजतताम्रजम् ॥९॥
पूजनं विधिना विप्र संवत्सरभयापहम् ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे ग्रहमातृविधिर्नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

इस ग्रहयज्ञ में बलि-पूजनादि मन्त्रपाठ के साथ करना चाहिये। फल-रत्न-औषधि-गन्ध-बीज-धातु तथा मृत्तिका जल में मिलाकर मन्त्रपूत इस सप्तोदक द्वारा स्नान करने वाला महाभाग्यशाली हो जाता है तथा अश्व, हाथीप्रभृति का स्वामी हो जाता है। लक्ष-अयुत किंवा सहस्र होम करना चाहिये। स्वर्ण-रौप्य किंवा ताम्र से मातृचक्र का निर्माण करना चाहिये। विधिपूर्वक पूजन से संवत्सर-भय का विनाश हो जाता है।।७-१०।।

त्रिपञ्चाश अध्याय समाप्त

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

मनुरुवाच

सहस्रलक्षणोपेतं वैदूर्य्ये कारयेच्छिवम्। हैमपीठं सुशोभाढ्यं वज्राङ्कं तत्र मातराः॥१॥
चर्च्चिकाद्याः प्रकर्त्तव्याः पूर्वादि परिकल्पिताः ॥२॥
महाभयविनाशाय ऋतुयागप्रपूजिताः। शिवं रुद्रं सदा वत्स कर्णिकायां निवेशितम् ॥३॥

मनु कहते हैं—वैदूर्य तथा वज्रादि मणिजटित सहस्रलक्षण वाला स्वर्णपीठ बनाना चाहिये। उसमें पूर्वादिक्रमेण मातृकागण की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिये। ऋतु के अनुसार इन समस्त मातृकागण के पूजन द्वारा महाभय नष्ट हो जाता है। कर्णिकामध्य में रुद्र महादेव को स्थापित करना चाहिये।।१-३।।

महाविभवसारेण वस्त्रगन्धं सुपूजितम्। प्रयच्छति शुभान् कामान् मनोऽभीष्टान् सदा जने ॥४॥
तस्य पूजा प्रकर्त्तव्या गेहे सर्वत्र कालिके। जपहोमार्च्चनं पूजा त्रिकालं सततं भवेत् ॥५॥

अपने विभवसामर्थ्य के अनुसार वस्त्र-गन्धादि द्वारा पूजा करने से सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। गृहस्थों के लिये तो सभी काल में पूजा करना उचित है। पूजा-जप-होम त्रिकाल में करते रहना चाहिये।।४-५।।

कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदचन्दनरोचनाः। गन्धपुष्पाश्च दातव्याः सितनिर्य्याससिद्धकाः ॥६॥
सर्वभयविनाशाय प्रमाथी पिङ्गलापि वा। शनि सूर्य्या च राहूत्था क्षयादि महदापदः ॥७॥
अन्नजन्मर्क्षमृत्युस्थाः समं यान्त्यविचारणात्। ताम्रे पत्रे प्रकर्त्तव्या ग्रहभागप्रकल्पिता ॥८॥
रक्तचन्दनमिश्रेण तोयेन सतते जिताः। रक्तकरवीरपुष्पैर्मन्त्रपूतार्घपूजिताः ॥९॥

कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूर, चन्दन, रोचना, गन्ध, पुष्प तथा धूपादि से पूजा करनी चाहिये (इन सब मातृकाओं का पूजन करना चाहिये)। इससे उत्पातजनित सभी भय का नाश हो जाता है। जन्म-मृत्यु-प्रभृति स्थानस्थित (कुण्डली में स्थित) शनि-सूर्य-राहु की ग्रहपीड़ा समाप्त हो जाती है। ताम्रपात्र में यथायथ रूप से ग्रहों की स्थापना करके रक्तचन्दन मिले जल से उनको स्नान कराकर लाल कनेरपुष्प से मन्त्र पढ़ते हुये पूजन करना चाहिये।।६-९।।

व्योमे वा मण्डले वापि सर्वकामफलप्रदा। अर्कपालाशखदिरा अपामार्गोऽथ पिप्पला ॥१०॥
श्रीफला शमी दूर्व्वा च कुशाग्राः समिधो मताः। धूपं गुग्गुलुलोध्रस्य सर्ज्जचोलदलं परम् ॥११॥
श्रीवेष्टकं कुष्ठञ्च वृक्षादि गुग्गुलं तथा। गुडौदनं रवेर्देयं पायसं हविषान्वितम् ॥१२॥

आकाश, किंवा मण्डल में ग्रहों की पूजा करने से सर्वकामना फल सिद्ध हो जाता है। अर्क (मदार), पलास, खदिर, अपामार्ग, पिप्पल, श्रीफल, शमी, दूर्वा तथा कुशाग्र—ये सभी ग्रहों के समिध हैं (क्रमशः प्रत्येक ग्रह का एक-एक है)। गुग्गुलु, लोध्र, सर्ज, दारुचीनी, पद्मकाष्ठ, श्रीवेष्टक, कूठ, अगुरु तथा गुग्गुलु—ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के धूप हैं। सूर्य को गुड़ का अन्न तथा घृतमिश्रित पायस प्रदान करना चाहिये।।१०-१२।।

दध्योदनं बुधे देयं गुरौ क्षीरौदनं तथा। घृतान्नं तिलमासान्नं मासं चित्रौदनं तथा ॥१३॥

बुध को दध्योदन एवं बृहस्पति को क्षीरोदन प्रदान करना चाहिये। इसी प्रकार घृतान्न, तिलान्न, माषान्न (उर्द की बनी सामग्री), मांस, चित्रोदन प्रभृति ग्रहों को दान करना चाहिये।।१३।।

गां सुरक्तां रवौ दद्याच्छृङ्गी सोमे वृषं कृजे। काञ्चनं वस्त्रमश्वञ्च गां सुकृष्णामजायसम् ॥१४॥
दक्षिणां गन्धपुष्पादिं स्वं स्वं वर्णं प्रदापयेत्। होम ग्रहादिपूजायै शतमष्टाधिकं पि वा ॥१५॥
अष्टाविंशाष्टहोमन्तु यथाप्राप्तिर्विधीयते। लक्षहोमं प्रकर्त्तव्यं सर्वपीड़ानिवारणम् ॥१६॥

रवि की दक्षिणा है—लाल गौ, चन्द्र की शृङ्गी, मंगल की वृष, बुध की स्वर्ण, बृहस्पति की वस्त्र, शुक्र की अश्व, शनि की काली गौ, राहु की लोहे का खड्ग एवं केतु की दक्षिणा है—बकरा। ग्रहगण की दक्षिणा, गन्ध-पुष्पादि उनके-उनके वर्णानुरूप देना चाहिये। ग्रहपूजार्थ अष्टोत्तरशत होम करना चाहिये। अभाव में २८ अथवा ८ करने से भी कार्य सम्पन्न होता है। सर्वपीड़ा निवारणार्थ एक लाख होम करना चाहिये।।१४-१६।।

गायत्र्या ग्रहमन्त्रैश्च कुष्माण्डी जातवेदसैः। ऐन्द्रवारुणश्चाग्नैश्च वायुयामसवैष्णवैः ॥१७॥
होमं शतसहस्रन्तु अष्टोत्कृष्टं विधीयते। सर्वपीडाविनाशाय कोटिहोमं शुभावहम् ॥१८॥
यवव्रीहिघृतं क्षीरं तिलाकङ्गुप्रशान्तिकम्। पङ्कजोशीरविल्वाम्रदलं होमे प्रकीर्त्तितम् ॥१९॥

गायत्री ग्रहमन्त्र तथा अन्य जातवेदा इत्यादि मन्त्र द्वारा १००८ होम करना चाहिये। सर्वपीड़ा-निवारण हेतु कोटि होम शुभकारी होता है। यव, व्रीहि, घृत, क्षीर, कङ्गु आदि से होम करने पर शान्ति होती है। पंकज, उशीर, बिल्वदल, आम्रफलादि भी होमकार्यार्थ उत्तम होते हैं।।१७-१९।।

सर्वशास्त्रार्थकुशलैर्ग्रहमातृप्रपूजकैः। होमं कार्यं सदा विप्र सर्वशान्तिप्रदायकैः ॥२०॥
ग्रहकृत्योपसर्गादि ऋतुमाससमाः शुभाः। यक्षरक्षःकृता पीडा लक्षहोमात् प्रशाम्यति ॥२१॥

इति श्रीदेवीपुराणे मातृग्रहलक्षहोमविधिर्नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

जो सर्वशास्त्रार्थ-कुशल हैं, ग्रह तथा मातृकाओं की पूजा करते रहते हैं, वे सब ब्राह्मण होम द्वारा सर्वशान्तिलाभ कर लेते हैं। ग्रहपीड़ा-उपसर्ग आदि ऋतुपीड़ा-मासपीड़ा-वर्षपीड़ा तथा यक्ष-रक्षसादिकृत सभी पीड़ा लक्षहोम द्वारा शान्त हो जाती है।।२०-२१।।

चतुःपञ्चाश अध्याय समाप्त

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

शौनक उवाच

सर्वलोकोपकाराय संक्षेपान्न तु विस्तरात्। उत्पातशमनीं शान्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

ऋषि शौनक कहते हैं—अब समस्त लोकों की शान्ति-हेतु संक्षेप में उत्पातनाशक शान्ति (उपाय) के विषय में सुनने की इच्छा है।।१।।

मनुरुवाच

अपचारेण लोकानामुपसर्गं महात्मनाम्। अपरक्ताविनाशाय सृजन्ते देवता मुने ॥२॥
उत्पातान् विविधाकारांस्त्रिधावस्थानुपस्थितान्। दिव्यान्तरीक्षान् भौमांश्च यथावत्तान् निबोधत ॥३॥

मनु कहते हैं—हे मुनिवर! लोक में सभी का अत्याचार देखकर उनके विनाशार्थ देवताओं ने नाना प्रकार के उपसर्गों को सृष्ट किया है। उत्पात विविधाकृति होने पर भी स्वर्ग, अन्तरीक्ष तथा भूमि से उत्थित होता है। उनको यथाक्रमेण कहता हूँ; श्रवण करो।।२-३।।

स प्राचीन्दिशमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य मणिमणिककुम्भस्थालीदरणामायासो राजकुलविवादो वा यानच्छत्रशय्यासनावसथो ध्वजगृहैकदेशः प्रभज्यते। गजवाजिमुख्या प्रम्रियन्ते हस्तिनी वा माद्यति इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि इन्द्रदैवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। इन्द्रं विश्वा अवीवृषमिति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिराज्याहुतिः जुहोति—इन्द्राय स्वाहा। शचीपतये स्वाहा। वज्रपाणये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापप्रशमनाय स्वाहेति। व्याहृतींश्च पृथक् कृत्वा॥४॥

प्रथमतः पूर्व दिशा का वर्णन करता हूँ। यदि मणि-माणिक, कुम्भ, स्थाली प्रभृति हठात् विदीर्ण हों अथवा अयश किंवा राजकुल से विवाद उपस्थित हो, वातायन-छत्र-शय्या-आसन-गृह इत्यादि का कोई स्थान भग्न हो जाय, अश्व-हाथीप्रभृति मृत हो जायँ, हस्तिनी मत्त हो उठे तो ये सब इन्द्रकृत दैवी आपत्तिरूप हैं। जिनका प्रायश्चित्त है—मन्त्रपाठपूर्वक स्थालीपाक करना तथा पञ्च घृत आहुति से इन्द्र हेतु होम करना। आहुति यह है—इन्द्राय स्वाहा, शचिपतये स्वाहा, वज्रपाणये स्वाहा, ईश्वराय स्वाहा, सर्वपापप्रशमनाय स्वाहा। होमान्त में व्याहृति होम अलग से करना चाहिये।।४।।

स दक्षिणां दिशमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य शरीरे चाविष्टानि भवन्ति व्याधयो वानेकविधाः। स्वप्नमस्वप्नातिभोजनमभोजनमतिनिद्रास्वालस्यं गृहद्वारेण वा सर्पोऽपगच्छते कपोतः प्रविशति। स्त्रीशरीरे वारोहति। कृष्णस्त्रीदर्शनमादेश्यम् इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि यमदेवतान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। नाके सुपर्णमिति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिर्जुहुयात्—यमाय स्वाहा। प्रेताधिपतये स्वाहा। दण्डपाणये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापप्रशमनाय स्वाहेति। सर्वत्र प्रणवादि स्वाहान्तता व्याहृतींश्च पृथक् कृत्वा॥५॥

अब दक्षिण दिशा का वर्णन करता हूँ। जब शरीर में अनेक व्याधि हो, निद्रावस्था में विविध स्वप्न हों अथवा स्वप्न ही न हो, अल्पभोजन-अतिभोजन-अतिनिद्रा-आलस्य-गृहद्वार पर सर्पागमन-गृहमध्य में कबूतर प्रवेश करें अथवा स्त्री लोगों पर बैठ जायँ तथा असम्भावित काली स्त्री दिखलाई पड़े तो ये सब यमकृत अद्भुत दर्शन हैं। इसके लिये स्थालीपाक करके ५ आहुति इन मन्त्रों से प्रदान करे—यमाय स्वाहा, प्रेताधिपतये स्वाहा, दण्डपाण्डये स्वाहा, ईश्वराय स्वाहा, सर्वपापप्रशमनाय स्वाहा। श्लोक ४ तथा ५ के स्वाहा मन्त्रों के आदि में प्रणव लगाना चाहिये एवं व्याहृति होम अलग से करना चाहिये।।५।।

स प्रतीचीं दिशमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य क्षेत्रे गृहसंस्थेषु धान्येष्वीभय आरण्ये पशुमृगाश्चारोहन्ति। आखुपतङ्ग-पैपीलिकाशाशकभौमकसूक्ष्मकशलभ इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि वरुणदेवतान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। वरुणं वा विशादण्डमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिर्जुहुयात्—वरुणाय स्वाहा। अपाम्पतये स्वाहा। पाशपाणये स्वाहा। सर्वपापशमनाय स्वाहा। ईश्वराय स्वाहेति। व्याहृतिभिश्च पृथक् कृत्वा॥६॥

अब पश्चिम दिशा का वर्णन करते हैं। जब खेत में समस्त धान (फसल) पक जाय, तब अतिवृष्टि-अनावृष्टि-शलभ, मूषिक, खग तथा राजा का आक्रमणादि होने पर, चूहे-पतङ्ग (टिड्डी आदि), चींटी, खरगोश-भौमक-सूक्ष्म कीटों का भय हो, तब यह वरुणकृत अद्भुत दर्शन होता है। तब स्थालीपाक करके ५ आहुति प्रदान करे। यथा—ॐ वरुणाय स्वाहा, ॐ अपाम्पतये स्वाहा, ॐ पाशपाणये स्वाहा, ॐ सर्वपापशमनाय स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा। व्याहृति होम पृथक् करना चाहिये।।६।।

स प्रत्युदीचीं दिशमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य मणिकनकरजतवस्त्रवज्रवैदूर्य्यमणिकवियोगा भवन्ति। आरम्भकाणि च विपद्यन्ते। मित्राणि वा विरज्यन्ते। वेश्मनि अवावूनि वा जायन्ते। वल्मीकाश्चोद्धूयन्ते। शुष्कवृक्षाः प्ररोहन्ति। तैलं त्यजन्ति। मधूनि वा पीयन्ते। रात्राविन्द्रधनुर्दृष्ट्वा श्वेताश्वेतञ्च वायसम्। श्मशाने धूमो जायते। अश्वतरी वा गर्भं गृह्णाति इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि वैश्रवणदेवतान्यत्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। आदित्यं देवमिति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिः जुहुयात्—वैश्रवणाय स्वाहा। यज्ञाधिपतये स्वाहा। हिरण्यपाणये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापशमनाय स्वाहेति। व्याहृतिभिश्च पृथक् हुत्वा॥७॥

अब उत्तर दिक के लिये कहा जाता है—जब मणि, स्वर्ण, चाँदी, वज्र, वज्रमणि (हीरा), वैदूर्य आदि की हानि हो, तब जब कि आरम्भ किया कार्य नष्ट हो जाय, मित्र की विपत्ति, घर में मधुचक्र होना, अलाबू उत्पन्न होना, घर में चींटी होना, शुष्क वृक्ष का पुनः जीवित होना, तैल जल जाना, रात में इन्द्रधनुष दिखलाई देना, श्वेत अश्व, श्वेत कौआ तथा श्मशान में धूम्र दिखलाई पड़ना, अश्वतरी का (खच्चरी का) गर्भित होना आदि जब उपस्थित हो, तब यह सब वैश्रवणकृत विघ्न होता है। आदित्य देव का स्थालीपाक करके ५ घृताहुति प्रदान करे—ॐ वैश्रवणाय स्वाहा, ॐ यज्ञाधिपतये स्वाहा, ॐ हिरण्यपाणये स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा, ॐ सर्वपापप्रशमनाय स्वाहा। व्याहृति होम पृथक् करे।।७।।

स पृथिवीमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य पृथिवी स्फुटति। कूजति, कम्पति, धूमायति, अकस्मात् सलिलमुद्गिरति। अकाले च वृक्षाः पुष्पफलानि वा वर्त्तन्ते। इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि अग्निदैवत्यानि अद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। अग्निं हुतमिति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिः अभिजुहोति—अग्नये स्वाहा। अर्च्चिष्मतये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापशमनाय स्वाहेति। व्याहृतिभिश्च पृथक्-पृथक् हुत्वा॥८॥

अब पृथिवी के सम्बन्ध में कहा जा रहा है। जब पृथिवी स्थान-स्थान से विदीर्ण हो जाती है, पृथिवी से शब्द उत्थित होता है, किंवा पृथिवी कम्पित होती है, हठात् धूम अथवा जल निकलने लगता है, अकाल में वृक्ष में फल-पुष्प निकलने लगते हैं—यह सब अग्निकृत अद्भुत होता है। इसमें अग्नि के होमार्थ स्थालीपाक करके ५ घृताहुति प्रदान करनी चाहिये। यथा—ॐ अग्नये स्वाहा, ॐ अर्चिस्पतये स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा। ॐ सर्वपापशमनाय स्वाहा। (यहाँ ५ आहुति कही गयी है, लेकिन सभी प्रतियों में केवल ४ मन्त्र अंकित हैं)। व्याहृति होम पृथक् करना चाहिये।।८।।

सोऽन्तरीक्षमन्वावर्त्तते। अथ यदास्यान्तरा वर्षाणि चोल्काः पतन्ति। निपतन्ति, धूमायन्ति, दिशो दह्यन्ति। केतवश्चोत्तिष्ठन्ते। गवां शृङ्गेषु रुधिरं स्रवन्ति। अत्यर्थं हिमान्युत्पतन्ति। इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि सोमदैवतान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। सोमं राजानमिति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिरभिजुहोति पृथक्-पृथक्—सोमाय

स्वाहा। नक्षत्राधिपतये स्वाहा। सीरपाणये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापशमनाय स्वाहेति। व्याहृतिभिश्च पृथक् कृत्वा॥९॥

अब अन्तरीक्ष के सम्बन्ध में कहते हैं—अकाल में भयानक वृष्टि, उल्का गिरना, चारो ओर धूम दिखना, दिग्दाह, केतुभय, गाय की सींग से रुधिर का स्राव, अतिशय हिमपात इत्यादि चन्द्रकृत अद्भुत होते हैं। प्रायश्चितार्थ सोमराजा हेतु स्थालीपाक करके ५ आहुति (घृत की) पृथक्-पृथक् प्रदान करनी चाहिये। यथा—ॐ सोमाय स्वाहा, ॐ नक्षत्राधिपतये स्वाहा, ॐ सीरपाणये स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा, ॐ सर्वपापशमनाय स्वाहा। व्याहृति होम अलग से करना चाहिये।।९।।

स दिवमन्वावर्त्तते। अथ यदास्य विधाता धार्यते। वाता वायन्ते। अभ्रेषु करकाणि दृश्यन्ते। खरकरभकङ्कोलूक-गृध्रश्येनभासवायसकपोतगोमायुसंस्थान्युपलपांशुमांसपश्वस्थिरुधिरवर्षाणि प्रवर्त्तन्ते। इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि वायुदैवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति। इदं विष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकं कृत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिरभिजुहोति—विष्णवे स्वाहा। सर्वाधिपतये स्वाहा। चक्रपाणये स्वाहा। ईश्वराय स्वाहा। सर्वपापशमनाय स्वाहेति। व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक्॥१०॥

अव स्वर्ग के सम्बन्ध में कहता हूँ। खर, करभ, कंक, पेचक (उल्लू), गृध्र, श्येन, कौआ, कपोत प्रभृति के शरीर से प्रस्तर, पांशु, मांस, रक्तादि का वर्षण होना वायुकृत अद्भुत होता है। प्रायाश्चितार्थ 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' से स्थालीपाक करके ५ घृताहुति प्रदान करना चाहिये। यथा—ॐ विष्णवे स्वाहा, ॐ सर्वाधिपतये स्वाहा, ॐ चक्रपाणये स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा, ॐ सर्वपापशमनाय स्वाहा। व्याहृति होम अलग से करना चाहिये।।११।।

भूमिकम्पो दिशां दाहो ग्रहयुद्धश्च जायते। गगने दृश्यते केतुरादित्यश्चैव कम्पते॥११॥
आदित्याज्जायते च्छिद्रं कृष्णवर्णो हि जायते। विपरीतान्नदींश्चैवं रुधिरञ्च प्रवाहयेत्॥१२॥
शिला वा प्लवते यत्र रविर्मध्ये यदा क्वचित्। गगनात् श्रूयते दिव्यं निर्घातश्चैव जायते॥१३॥
अत्यद्भुतं महाघोरं सृष्टिसंहारकारकम्। राज्योपसंहरञ्चैव राजानां क्षयकारकम्॥१४॥

भूमिकम्प, दिग्दाह, ग्रहयुद्ध, गगन में केतुदर्शन, सूर्य में कम्पन, सूर्यमण्डल में छिद्रदर्शन, सूर्यमण्डल का काला होना, विपरीत भाग में नदी का स्रोत जाना, रुधिरप्रवाह, नदी में शिला डूवना, गगन में निर्वात शब्दादि महायोग अद्भुत उदय होने पर सृष्टिसंहार-राज्यसंहार तथा राजा की मृत्यु होती है।।११-१४।।

इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्व्वाण्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति।
गृहे गृहे भवेच्छान्तिः मातृणां पूजनं बलिः। दानं रुद्रं जपेन्नित्यं भास्करेज्या ग्रहार्च्चनम्॥१५॥
लक्षहोमं महाहोमं कोटिहोमं पुरोदितम्। गोभूहिरण्यवस्त्रान्नतिलदानं शुभावहम्॥१६॥
पायसं दधिक्षीराज्यं देयं सर्वेषु भोजनम्। एवं प्रजायते शान्तिस्ततो द्रव्याणि आहरेत्॥१७॥
तानि तोयेन प्रोक्षीयादुपहाराणि यानि तु।

अथ पूर्वाह्णे च यथावदाज्ये चाहुतिं दूर्वापयोदधिसर्पिःसर्षपान् फलवती अपामार्गतिलव्रीहियवसमिधान्येतान्याहरेद् वा स्नातः प्रयतः शुचिः शुचिवासाः स्थण्डिलमुपलिप्य नित्यतन्त्रेणोदनकृषरयवागूसक्तुपायसं दधिमधुघृताक्ताः पृथक् च वरः सर्वेषां वा पायसं ततः अग्निमुपसमाधाय जुहुयात् यथावदिति॥१८॥

इति श्रीदेवीपुराणे सार्वदैविकी सर्वोत्पातशान्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

ऐसी स्थिति में घर-घर में इसकी शान्ति होनी चाहिये। मातृगणपूजन, बलि, दान, रुद्रजप, सूर्यपूजा, ग्रहपूजा, लक्षहोम, महाहोम, कोटिहोम, गो-भूमिस्वर्ण-वस्तु-अन्नादि दान, तिलदानादि करना चाहिये। लोगों को पायस, दधि, क्षीर, घृतादि

खिलाना चाहिये। तब शान्ति होती है। प्रथमतः सभी वस्तु लाकर जल से धोये। दूर्वा, आतप तण्डुल, दधि, घृत, सरसों, अपामार्ग, तिल, यव, व्रीहि इत्यादि उपकरण पूर्वाह्न में ही लाकर रखे। अगले दिन स्नान करके पवित्र वस्त्रधारी होकर स्थण्डिल को पवित्रता से लीपकर नित्य तन्त्रानुसार ओदन, कृषर, यवागू, सत्तू, पायस, दधि, मधु, घृतादि मिलाकर पृथक्-पृथक् होम करना चाहिये। अथवा केवल पायस होम ही सर्वोत्तम होता है।।१५-१८।।

पञ्चपञ्चाश अध्याय समाप्त

●

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

इन्द्रं विश्वा अवावृषं समुद्रव्य च संशिरः। रथीतमं रथीनां वा राजानां शतपतिं पतिम् ॥१॥
नाके सुपर्णमुपत्यांत हवा रेवन्तो अभ्य च क्षत त्वा।
हिरण्याक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य भूरण्यं योनौ शकुनम् ॥२॥
वरुणं वोधिपादमृचामिन्द्रं हवामहे। परिव्रजेच्च बाह्वोर्ज्जगन्धासो स्वर्णवं नरम् ॥३॥
आदित्यं देवं सविता मन्योः कवि क्रतुमर्च्चामि। सत्यसवं रत्नधामभि प्रियमतितरं कविम् ॥४॥
ऊर्ध्वं यस्या मतिभा आदित्युत्सवो मणि। हिरण्यपाणि त्वमिमीते सुक्रतुः कृपापयः ॥५॥
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥६॥
सोमं राजानं भवते अग्निमन्वारभामहे। आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्राह्मणञ्च बृहस्पतिम् ॥७॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांशूले ॥८॥
वात आवात भेषजं शन्तु मया त्तना कुदे। प्रणतायुंषि तारिषत् ॥९॥
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ॥१०॥
अष्टापदी नव पदीं भूमीं सहस्राक्षं वा परमे व्योमन् ॥११॥
काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती पुरुषः पुरुषः परि। दधानो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन चेति ॥१२॥
यथैव यज्ञस्तथैव बन्धूर्यासि तनोसि प्रतनोसि अथैनमभिवाद्य वाचयति।
ध्रुवोसि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया भूयासमिति ॥१४॥
पशुभिरिति चैवं यं कामं कामयते सोऽस्मै कामः समृद्ध्यते ॥१५॥
यो जानाति न जीयते हन्ति शत्रुमभिद्य स एव भवेद्वसु सहस्रजित् ॥१६॥
इहैव स्तं मा वियौष्टं दीर्घमायु व्यस्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः मोदमानौ च स्वे गृहे ॥१७॥
पुनः पत्नी अग्निवदायुषा सह वर्च्चसा। दीर्घायुरास्यापः पतिभिर्जीवाति शरदः शतम् ॥१८॥

स्थालीपाकादिकर्मविधिरुच्यते। परिसमूह्य-उपलिप्य-उल्लिखय-उद्धृत्य-अभ्युक्ष्य-अग्निमुपसमाधाय-दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य-प्रणीय-परिस्तीर्य-आत्मवदासाद्य-पवित्रीकृत्वा-प्रोक्षनी-संस्कृत्य-आत्मवत् प्रोक्ष्य-निरुपाथमधिस्तुत्य-पर्यग्निकुर्यात्॥१९॥

स्रुवं प्रताप्य समुह्य अभ्युक्ष्य पुनः प्रताप्य निदध्यात् संत्ताप्योत्पूय अवेक्ष्य प्रोक्षणी पूर्ववदुपयमनान् कुशानादाय समिधोऽभ्याधाय पर्युक्ष्य जुहुयात्। एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धौमः॥२०॥

प्रथमतः परिसमूहन करना चाहिये। इसके मन्त्र मूल में श्लोक १ से १८ तक अंकित हैं। इसमें परिसमूहन, उपलेप, उल्लिखन, उद्वर्त्तन, अभ्युक्षणादि कृत्य सम्पन्न करके अग्नि के पास स्थाली लानी चाहिये। दक्षिण भाग में ब्रह्मा का आसन स्थापित करके वहाँ कुश रखकर प्रोक्षणादि संस्कार करना चाहिये। संस्कार के उपरान्त उत्तम रूप से निरूपणादि के पश्चात् अग्नि के ऊपर निहित करना चाहिये। द्रव्यसंस्कारार्थ स्रुव को प्रतप्त करके उसका संशोधन एवं अभ्युक्षण करके पुनः उसे प्रतप्त करना चाहिये। तत्पश्चात् उसका स्थापन, पूजन, उपयमनादि संस्कार करके समिध लेकर उस पर समिध छोड़ते हुये हवन करना चाहिये। सभी होम में इसी विधान से कार्य करना चाहिये।।१-२०।।

परिसमूहनादिभिर्देवता प्रतिभागमंत्राश्च व्याख्यास्यामः ॥२१॥

यद्देवो देवहेलनमिति परिसमूहनम्। मानस्तोकेत्युपलेपनम्। त्वां वृत्रे जिन्द्र सत्पतिम् इत्युल्लिख्य। व्रजं गच्छेत्युद्धृत्य। देवस्य त्वेति अभ्युक्ष्य। अग्निमृत्वेति अग्निमुपसमाधाय। समिधाग्नि द्रव्यस्य चेति समिदाधानं दधात्॥२२॥

मयि गृह्णामीति अग्रहस्तं कृत्वा हिरण्यगर्भ इति दक्षिणतो ब्रह्मा। आपो हिष्ठेति च उत्तरतः प्रणीता। कयानश्चित्रा इति प्रणीत्य परितः परिस्तरणम्। पवित्रस्थो वैष्णव्य इति पवित्रछेदनी। इषे त्वेत्याज्यनिरूपणम्॥२३॥

त्रातारमिति स्रुवं प्रताप्य। अनिशितोषि प्रकृत्याभि सम्मार्जनम्। प्रत्युष्टं रक्षेति पुनः प्रतपनम्॥२४॥

सवितुर्वः प्रसव तत् पुनामि इत्युत्पवनम्। तदेवाग्निरित्यर्च्चनम्। धूरसीति पर्युक्षणम्॥२५॥

अब परिसमूहनादि देवता के प्रतिभाग के मन्त्र मूलोक्त श्लोक २२ से २५ तक में अंकित हैं।।२१-२५।।

एवं लक्षणसंयुक्तं सर्वहोमेषु याज्ञिकम्। विधानं विहितं तत्र ब्रह्मणामिततेजसा ॥२६॥
अन्यथा ये प्रकुर्वन्ति सूत्रमाश्रित्य केवलम्। निर्वासास्तत्र गच्छन्ति सर्वे देवा न संशयः ॥२७॥

भगवान् ब्रह्मा ने सभी होम के लिये इसी प्रकार की यज्ञविधि को शास्त्रों में विहित किया है। इसके विपरीत करने पर यदि मात्र सूत्र के अनुसार ही होमकर्म किया जाता है, तब देवता निराश होकर वहाँ से चले जाते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये।।२६-२७।।

यद्देवा देवहेलनं देवासश्च कुमारयम्। अग्निर्मतिः स्यादेन गोविश्वान् मुञ्च त्वंहसः ॥२८॥ इति परिसमूहनमन्त्रः।।२८।।

यह मूलोक्त परिसमूहन मन्त्र का अन्तिम श्लोक है।

मा नः स्तोके तनये मा न आयूषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः। मानो वीरान्रुद्रभामिनोऽवधीः हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे। इत्युपलेपनमन्त्रः।।२९।।

यह उपलेपन मन्त्र है।

त्वां वृत्तेष्विन्द्र सत्पतिं भवत्वां काष्ठां सर्व्वतः। सत्वन्नाश्चित्र वज्रस्ते वष्ठपा मस्तुवानोऽयुवः। गामश्वं रथ्यामिन्द्रं सत्किरमत्राराज्यं न जिग्मये॥३०॥ इत्युल्लिखनमन्त्रः।।३०।।

यह उल्लिखन मन्त्र है।

व्रजं गच्छ गोष्ठामं वर्ष तु तेम्यो वर्धान्न। देवसवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन। पाशैर्यास्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। उद्धृत्यमन्त्रः।।३१।।

यह उद्धृत्य मन्त्र है।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनौ बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां अश्विनौ भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाभिषिंचामि। अभ्युक्षणमन्त्रः।।३२।।

यह अभ्युक्षण मन्त्र है।

अग्निर्मूर्धः दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपंः। अपाँ रेतांसि जिन्वति स्वाहा। अग्निवाहनमंत्रः।।३३।।

यह अग्निवाहन मन्त्र है।

समिधाग्निं ध्रुवस्य ते। घृतैर्बोधयतातिथिम् अस्मिन् हव्या जुहोत नः। सुसमिद्धा यशोचिषे घृतं तीव्रं जुहोति नः। अग्नये जातवेदसे। इति समिदाधानमन्त्रः।।३४।।

यह समिधादान मन्त्र है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुते माम् कस्मै देवाय हविषा विधेमः। इति ब्रह्ममन्त्रः।।३५।।

यह ब्रह्ममन्त्र है।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। प्रणीतायुष्यमन्त्रः।।३६।।

यह प्रणीतायुष्य मन्त्र है।

कया नश्चित्र आभूवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता। इति प्रणीतापरिस्तरणमन्त्रः।।३७।।

यह प्रणीतापरिस्तरण मन्त्र है।

पवित्रेऽस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसव उत्पुनामि अच्छिद्रेण। परिच्छेदनमन्त्रः।।३८।।

यह परिच्छेदन मन्त्र है।

इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थः देवो वः सविता प्रार्पयतु। सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। इति आज्यनिरूपणमन्त्रः।।३९।।

यह आज्यनिरूपण मन्त्र है।

त्रातारमिन्द्रं सवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रं ह्वयामि। शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः। इति स्रुवप्रतपनमन्त्रः।।४०।।

यह स्रुवप्रतपन मन्त्र है।

अनिशितासि सतपनं क्षित्वा जिनीं द्वाजराजे ध्याये सन्मार्क्षि आदित्यैवास्नातो सीन्द्राष्यै। इति समूहनम्।।४१।।

यह समूहन मन्त्र है।

विष्णोर्वैशौऽर्यापूर्जित्वा दलेन त्वां चक्षुषा पश्यामि। इति संमार्जनमन्त्रः।।४२।।

यह सम्मार्जन मन्त्र है।

प्रत्युष्टं रक्ष प्रत्युष्टा अरातयः योनिष्ठेऽप्युत् वक्षोनिष्ठरं भरातये पुनः। इति प्रतापनमन्त्रः।।४३।।

यह प्रतापन मन्त्र है।

धूरसि धूर्व्वन्ते धूर्वत्वां या अस्मान् यस्त्वयं धूर्व्वामः। धूर्ववतिधूर्ववतम्। देवानामसि वह्नितमं स्वस्तितमं पप्रितमं जुष्ठतमं देवहुतमं आहुतमं हविर्धानमृचेश्वमीछामी ते यज्ञपतीवार्षीः। इति पर्युक्षणमन्त्रः।।४४।।

यह पर्युक्षण मन्त्र है।

प्रजापतये स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अन्तरिक्षाय स्वाहा। ओं भूः स्वाहा। ओं भुवः स्वाहा। ओं स्वः स्वाहाः। इति मूलहोमाहुतयः।।४५।।

ये मूलहोमाहुति मन्त्र हैं।

एवं वेदिकोऽग्निः संष्टुतो भवति। अथातः परिस्तरण देवताः कथ्यन्ते ॥४६॥

परिसमूहने काश्यपः। उपलेपने विश्वेदेवाः। उल्लेखने मित्रावरुणौ। उल्लिखने पृथ्वी। अभ्युक्षणे गन्धर्वः। अग्निसादने शर्वः॥४७॥

इस प्रकार से वैदिक अग्नि संस्कृत हो जाती है। तदनन्तर परिस्तरण देवता कहे जाते हैं। परिसमूहन में काश्यप, उपलेपन में विश्वेदेव, उल्लेखन में मित्रावरुण, उद्धरण में पृथिवी, अभ्युक्षण में गन्धर्व तथा अग्निसादन में शर्व देवता होते हैं।।४६-४७।।

मनुरुवाच

परिसमूह्योपलिख्योल्लिखन् कर्मविधिरुच्यते। दक्षिणासादने ब्रह्मा। उत्तरतः पूरणे सागराः। आस्तरणे त्रसाः। अथावसादने शतक्रतुः। पवित्रबन्धने पितरः। प्रोक्षणीसंस्कारे मातरः॥४८॥

जुह्वते श्रुवे श्रुवापाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। आज्यातपने वसवः। अधिश्रवणे वैवस्वतः। पर्यग्निकरणे मरुतः। उद्वासने स्कन्दः। उत्पन्नप्रत्युत्पवने चन्द्रः द्यौः॥४९॥

आज्यावेक्षणे दिशः सर्वाः। पवित्रधारणे प्रणीताः। यामुमा देवी। ईध्मे च लक्ष्मीः। विश्वस्य विश्वाभूतानि॥५०॥

पूर्वोक्तानान्तु वह्नीनामेकमानीय पावकम्। होमकर्म प्रकर्त्तव्यं विधिं ज्ञात्वा महामुने ॥५१॥
एता वै देवताः प्रोक्ता ब्राह्मणानां हिताय वै। यज्ञेषु पशुबन्धेषु सर्वयज्ञक्रियासु च ॥५२॥

इति श्रीदेवीपुराणेऽभ्युदयपादे हवनविधिर्नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः

अब परिसमूह्य उपलिख्योलिखन कर्म कहते हैं। दक्षिणासादन में ब्रह्मा, उत्तरप्रणीतापूरण में सागर, आस्तरण में नाग, अवसादन में शतक्रतु, पवित्रीबन्धन में पितृगण, प्रोक्षण में मातृगण, जुह्वन में ब्रह्मा, स्रुक् में विष्णु, स्रुव में महेश्वर, आज्योत्पवन में वसुगण, अधिश्रयण में वैवस्वत, पर्यग्निकरण में मरुत्, उद्वासन में स्कन्द, उत्पवन-प्रत्युत्पवन में चन्द्र एवं द्यौः, आज्यवेक्षण में सभी दिशायें, पवित्रधारण में तथा प्रणीता में उमादेवी, ईन्धन में लक्ष्मी तथा विन्यास में विश्वभूतगण देवता हैं। पूर्वोक्त किसी भी अग्नि में विधान के अनुसार होमकर्म करना चाहिये। हे महामुने! ब्राह्मणों के हितार्थ इन देवताओं का उल्लेख किया गया। पशुवध तथा सर्वविध यज्ञों में यही क्रिया होती है।।४८-५२।।

षट्पञ्चाश अध्याय समाप्त

●

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

मनुरुवाच

धेनुं तिलमयीमाघ्यां दद्याद् पुरुषश्चोत्तरायणे। सर्वकामानवाप्नोति ज्यैष्ठे जलमयीं ददेत् ॥१॥
पुष्ये घृतमयीं दद्याच्छ्रेष्ठाहि विधिना मुने। ईहिताँल्लभते लोकान् स्थानेषु विविधेषु च ॥२॥

मनु कहते हैं—जो व्यक्ति उत्तरायण में तिल की धेनु दान करता है, उसे सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होती है। ऐसे ही जो ज्येष्ठ मास में जलमयी, पौष में घृतमयी धेनु शुभ दिन में दान करता है, वह सर्वसिद्धि प्राप्त करता है।।१-२।।

शौनक उवाच

प्रभवादि त्वया तात देव्याः षष्टिरुदाहृता। विस्तरात् पूजनं तासां कालान्तरफलप्रदम् ॥३॥
संक्षेपादेककायस्थां देवीमातृग्रहान्विताः। त्रिदिवलोकपालेन संयुक्ताः सर्वकामदाः ॥४॥
षष्टिवर्षकृता पूजा मासैकेन प्रयच्छति। तथा कथय मे सर्व सर्वलोकसुखावहम् ॥५॥

ऋषि शौनक कहते हैं—हे तात! आपने देवी के ६० प्रकार के भेद कहे हैं, उनकी पूजा करना अत्यन्त विस्तृत है तथा उसका फल भी दीर्घकाल में मिलता है। ऐसी कौन-सी देवी हैं, जो मातृगण, ग्रहगण तथा लोकपालगण के साथ पूजित होकर एक मास में ही ६० वर्ष की पूजा का फल देती हैं। अब उनका वर्णन कीजिये; जिससे सर्वलोक के लिये सुखावह पूजा (ज्ञात) हो जाय।।३-५।।

मनुरुवाच

हेमराजतताम्रा वा काष्ठाद्या मृन्मयापि वा। चित्रा वा रत्नजा चापि कार्य्या देवी सुलक्षणा ॥६॥
शुभद्रव्यभवा चान्या सिंहपद्मग्रहान्विता। मातरो भयसंयुक्ता चर्च्चिता मुकुटान्विता ॥७॥
गणेशस्कन्दसम्पन्ना लोकपालसमन्विता। ब्रह्मेशविष्णुशिरसा नीलोत्पलकरा वरा ॥८॥

मनु कहते हैं—स्वर्णमयी, रजतमयी, ताम्रमयी, काष्ठमयी अथवा मिट्टी की किंवा चित्रमयी अथवा रत्नमयी सुलक्षणयुता देवीमूर्त्ति का निर्माण करना चाहिये। अन्य शुभकर द्रव्य से सिंह, पद्म, ग्रहगण का निर्माण करना चाहिये। अभययुक्ता मातृगण, गणेश, कार्त्तिक, लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की मूर्त्ति बनानी चाहिये। देवी द्विभुजा होना चाहिये तथा उनके दोनों हाथों में श्रेष्ठ नीलकमल विराजित होना चाहिये।।६-८।।

खड्गखेटकधारी च शरच्चन्द्रकरापि वा। चन्द्रसूर्य्यकरा कार्य्या यावत् षष्टि कृताधिका ॥९॥
द्विभुजां भावरूपेण कारयेद् भुजकल्पनाम्। एवं कृत्वा शुभां देवीं इन्द्रमणिगृहे यजेत् ॥१०॥
द्विबद्धा शतमष्टौ च शरदण्डमथापि वा। सौम्यास्ये सौम्यसंस्थानां यश्चास्यन्तैजसे गृहम् ॥११॥

वहाँ खड्ग-खेटक, किंवा शर एवं चक्र तथा सूर्य-चन्द्र स्थित रहने चाहिये। अपनी मनोवृत्ति के अनुसार देवी के हाथों की कल्पना करनी चाहिये। ऐसी शुभलक्षणयुता देवी की प्रतिमा बनाकर ११ हाथ के गृह में अथवा १०८ हाथ के किंवा छः दण्ड परिमित गृह में इनकी उत्तर की ओर स्थापना करनी चाहिये। साधक को स्वयं भी उत्तर की ओर मुख करके बैठना चाहिये।।९-११।।

तस्य पूर्वे समं कुण्डं कार्य्यमैन्द्रं सुखावहम्। पूर्वास्यं पश्चिमास्यं वा यत्र वा रमते मनः ॥१२॥

उसके पूर्व की ओर सुखावह कुण्ड बनाना चाहिये। पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर कार्य (होमकार्य) करना चाहिये।।१२।।

ततः पूजा जपं होमं मन्त्रस्तोत्रप्रकीर्तनम्। यात्रा मण्डलपूजा च पुस्तकादेश्च पाठनम् ॥१३॥
लोकयात्रा रथयात्रा कार्यं होमं दिने दिने। घृतक्षीरमधुव्रीहितिलबिल्वदलादिकम् ॥१४॥
होमं कार्यं सुगन्धैश्च धूपैः पुष्पैः सदार्च्चनम्। कर्पूरागुरुलेपादिवितानध्वजचामरम्।
देयं सर्वार्थसिद्ध्यर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१५॥

तदनन्तर पूजा, जप, होम, मन्त्र, स्तोत्र, कीर्त्तन, यात्रा, मंगलपूजा, पुस्तकपाठ, लोकयात्रा, रथयात्रा आदि कार्य प्रतिदिन करना चाहिये। घृत-क्षीर-मधु-व्रीहि-तिल-बिल्वदल से होम करना चाहिये। सुगन्ध-धूप तथा विविध पुष्पादि से अर्चना करनी चाहिये। सर्वपापनाश तथा सर्वार्थ-सिद्धि हेतु कर्पूर-अगुरु विलेपन, चन्द्रातप, ध्वज, चामर आदि उपहार प्रदान करनी चाहिये। इससे सर्वार्थसिद्धि तथा सर्वपापनाश होता है।।१३-१५।।

ब्रह्मोवाच

मेषादारभ्य देवीनां पूजा कार्य्या सदा मुने। यावत् संवत्सरं पूर्णं सर्वकामफलार्थिभिः ॥१६॥
दिलीपेन यथा पूर्वं पूजां कृत्वा क्रमागताम्। सुरोत्तमे महाकल्पे भाग्यऋद्धिस्वकामिना ॥१७॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—जो सर्वकामनासिद्धि की इच्छा वाले हैं, उनको वैशाख मास से प्रारम्भ करके पूर्ण संवत्सर-पर्यन्त देवी की पूजा करनी चाहिये। जैसे सुरोत्तम कल्प में सौभाग्यवृद्धि के लिये राजा दिलीप ने पूजन किया था तथा सिद्धकाम हो गये थे।।१६-१७।।

तथा च अम्बरीषेण अन्यैश्च नृपसत्तमैः। कृता शिवार्चने बुद्धिस्तिथिकालक्रमागताः ॥१८॥
यो विभज्य पुरा ह्येकः कालव्यापी महेश्वरः। सर्वदेवतनुर्भूत्वा प्रयच्छति फलं नृणाम् ॥१९॥
यज्ञमाज्यं तथा पूपं वेदवक्त्रसमन्वितः। दत्वा फलं द्विजातिषु पूतैः सर्वेषु धर्म्मिषु ॥२०॥
सर्वां च मङ्गलां रूपां कृत्वा चाष्टशतां तनुम् ॥२१॥
पुनाति सर्वलोकान् स क्रियाभावाङ्गमीश्वरः। सर्वेषु चागता देवी सर्वदेवैरभिष्टुता ॥२२॥

राजा अम्बरीष तथा अन्य नरपतिगण ने भी तिथि-कालादि के साथ तथा बुद्धि के साथ पूजा करके सिद्धि प्राप्त किया था। महाकाल महेश्वर एकमात्र होकर भी स्वयं को विभक्त करके सर्वदेवरूप होकर मनुष्यलोक को शुभ फल प्रदान करते हैं। वे सर्व-धर्मपूत ब्राह्मणों को यज्ञ, घृत, यूप, वेद तथा ओङ्कारादि का फल प्रदान करते हैं। वे ही मंगलारूपिणी अष्टशत शरीर धारण करके पृथक्तः लोकसमूह को पवित्र करते हैं। वे देवी सर्वभूतसमूह की अधिष्ठात्री हैं। देवगण उनकी ही पूजा करते हैं।।१८-२२।।

वैष्णवीं तनुमास्थाय स्थिता सा व्यवहारतः। वर्णाश्रमागतान् धर्मान् यथाकालं क्रमागतान् ॥२३॥

वे ही वैष्णवी शरीर धारण करके लोकव्यवहारसिद्ध वर्णाश्रमादि क्रमागत धर्म की रक्षा करते हैं।।२३।।

तथा तथा सुरेशान प्रयच्छति नृणां सदा। रजस्तोमां विजानीयात् सृष्टिहेतुं स्थितौ पुनः ॥२४॥
विष्णुः सत्त्वं गतो नाशे कालः सततमाश्रितः। त्रयाणां समतां वत्स महादेवः सदाशिवः ॥२५॥

हे वत्स! मैं रजोगुणयुक्त होकर उनकी सृष्टि करता हूँ। विष्णु सत्त्वगुणयुक्त होकर पालन करते हैं। काल तमोगुणयुक्त होकर सबका नाश करते हैं। इन तीन गुणों की साम्यभावावस्था ही हैं—सदाशिव महेश्वरी।।२४-२५।।

स ईशः सर्वदेवानां नानाभेदगतः पुनः। क्रियाख्याज्ञानभेदेन शतथाथ सहस्रशः ॥२६॥
भेदो न शक्यते वक्तुं लोकेषु स्वल्पबुद्धिषु। एवं विदित्वा भिन्नेच्छा इष्टापूर्त्तगतं विभुम् ॥२७॥

वे ही सर्वदेवगण के ईश्वर हैं। एक होकर भी अनेक विभागयुक्त हैं। क्रियार्थ अज्ञानभेद के कारण वे सैकड़ों-हजारों रूप में विभक्त हो जाते हैं। स्वल्प बुद्धि वाले उनके अनन्त भिन्न-भिन्न रूप को नहीं कह पाते हैं। वे ही इष्ट तथा पूर्तगत एवं विभु हैं।।२६-२७।।

पूजनीयं मुनिश्रेष्ठ सर्वकामेश्वरेश्वरम्। एकानैकविभागस्थं सर्वशास्त्रे क्रियायुतम् ॥२८॥
कामरूपी महादेवं कामदं भवते नृणाम्। सुरासुरमनुष्याणां यक्षरक्षोरगादिषु।
फलं प्रयच्छति चेष्टं सर्वबुद्धिः प्रभावजम् ॥२९॥

वे सर्वकामेश्वरेश्वर, एक होकर भी अनेक विभागयुक्त, कामरूपी, महादेव, कामद एवं सर्वशास्त्रक्रियायुक्त हैं। उनका पूजन करने पर वे सर्वकामना-सिद्धि प्रदान कर देते हैं। सद्भावावलम्बन करके उनकी पूजा करने पर वे सुरासुर, मनुष्य, यक्ष, रक्ष, सर्प प्रभृति सभी को वांछित फल प्रदान करते हैं।।२८-२९।।

कर्म्मयज्ञस्तपोयज्ञः स्वाध्यायं च शान्तिदम्। प्रयच्छति फलं यस्मात् पंचधा परमेश्वरः ॥३०॥
तस्मात्तस्य सदा चर्य्या कर्त्तव्या हितमिच्छता। हितन्तु चेष्टं संसिद्धिर्निरवद्यं सुखं यतः ॥३१॥

वे परमेश्वर ही कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याय, ध्यान तथा शान्तिकर्म का पञ्चविध फल प्रदान करते हैं। मंगलाकांक्षी व्यक्तिगण सर्वदा उनका पूजन करते हैं। यह होने पर इष्टसिद्धि होती है। साथ ही विमल सुख का अनुभव होता है।।३०-३१।।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ध्यानयोगं सदाभ्यसेत्। तच्च भक्तिक्रमात् प्राप्यं कर्मयोगाच्च नान्यथा।
कर्म्म पूजा जपो होमं देवार्चास्थापनादिकम् ॥३२॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रैलोक्याभ्युदये पादे पूजाप्रशंसानाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

साधक को सभी द्वन्द्वों से मुक्त होकर ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिये। भक्ति से वह लाभ होता है तथा भक्ति भी क्रमशः पूजा, जप, होमादि, देवार्चनादि कर्मयोग से प्राप्त होती है। इसके विपरीत (आचरण) करने से कुछ भी सिद्ध नहीं होता।।३२।।

सप्तपञ्चाश अध्याय समाप्त

●

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

कथं स राजा भाग्यन्तु सर्वलोकाधिपो विभुः। कथञ्च दिव्यतां यायाद् विष्णुसायुज्यतां विभो ॥१॥
सर्वदेवैश्वरस्तस्य कथं तुष्ट उमापतिः। एतत् कौतूहलं देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२॥

महान् ऋषि बृहस्पति कहते हैं—देव! कैसे भाग्य से नरपति सर्वलोक के अधीश्वर हो गये, कैसे दिव्यलोक प्राप्त करके विष्णु का सायुज्यलाभ किया तथा कैसे सर्वदेवेश्वर उमापति उनसे सन्तुष्ट हो गये, वह सब श्रवण करने का अतिशय कौतूहल हो रहा है।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

कल्पे सुरोत्तमे पूर्वं कैलासे पर्वतोत्तमे। दिव्येन तपसा युक्तं भाग्यर्क्षे तोषितं शिवम् ॥३॥
तेन वरप्रसादेन सर्वलोकेश्वरा द्विज। भाग्यो ह्यासीन्महाबाहो सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विज! पूर्व के सुरोत्तम कल्प में इन नरपति ने कैलास पर्वत पर दिव्य तप से महादेव को प्रसन्न करके उनके वरदान द्वारा सर्वलोक अधीश्वर का पद प्राप्त किया था। वे महाबाहु थे तथा देवगण सदैव उनकी प्रशंसा करते रहते थे।।३-४।।

मेधादिगुणसंयुक्तः कामक्रोधादिवर्ज्जितः। सांवत्सरस्तथामात्यः पुरोधा भिषजान्वितः ॥५॥
सांवत्सरोऽथ तत्रज्ञ अमात्यः सर्वशास्त्रवित्। पुरोधा वेदपौराणदंड्याथर्वशास्त्रवित् ॥६॥

वे काम-क्रोधादि से विहीन तथा मेधादि गुण से युक्त थे। वे सर्वदा सांवत्सरिक, पुरोहित तथा भिषक् (भिक्षुकों) से घिरे रहते थे। उनके सांवत्सरिकगण तत्त्वज्ञ थे। अमात्यगण सर्वशास्त्रज्ञ थे तथा उनके पुरोहितगण वेदज्ञ थे। उनके पुरोहित सदैव उनके हितसाधन में लगे रहते थे। वे पुराणज्ञ थे। वे दण्डनीति तथा अथर्व शास्त्र के भी ज्ञाता थे।।५-६।।

दश यज्ञक्रिया देवा हितकृदहितोऽन्यथा। भिषजोऽष्टाङ्गवेदाङ्गो लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥७॥
अनुरक्तस्तथा भक्तो द्वन्द्वाद्वन्द्वगुणान्वितः। कोषं रत्नादिसम्पन्नं सुभक्तभोगसंयुतम् ॥८॥
भार्या इष्टा हिता नित्यं पुरं हर्म्यसमाकुलम्। अश्वेभवाहनं पुष्टं तस्य चासीद् द्विजोत्तमः ॥९॥

हे द्विजोत्तम! वे दश यज्ञक्रियावान भी थे। राजा का हितसाधन करते रहते थे। राजा के वैद्यगण अष्टाङ्ग आयुर्वेद के ज्ञाता थे। सभी लघुहस्त तथा जितेन्द्रिय थे। वे सभी राजा के प्रति अनुरक्त रहते थे। राजा का कोष रत्नादि से भरा था। पुत्रगण राजा के प्रति आज्ञाकारी, सुभक्त थे। रानियाँ प्रिया तथा राजा के मंगल में निरत रहती थीं। राजपुरी हर्म्यमाला से परिवेष्टित थी तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट थे।।७-९।।

एवं सर्वगुणोपेतं पुरोधानुमते स्थितः। सांवत्सरोदिते काले विजयाय समारभेत् ॥१०॥
ततः कालेन महता शङ्करस्य नृपोत्तमः। तपश्चरन्महातेजा पुत्रायुतसमावृतः ॥११॥
प्राप्ते संवत्सरे पुण्ये युगेऽपि तु निरामये। भाग्यर्क्षद्वादशी नाम सर्वभाग्यप्रदायिका ॥१२॥
तत्र कृत्वा हरेरर्च्चां यष्टा पद्मे यथाविधि। सर्वलक्षणसम्पन्ना श्रेष्ठमृक्षभवा मुने ॥१३॥

इस सर्वगुणयुक्त राजा ने पुरोहितादि के मतानुसार दैवज्ञ द्वारा बतलाये गये शुभ काल में विजय कार्य का प्रारम्भ किया। उन्होंने पुत्रगण से परिवेष्टित होकर संवत्सर मध्य में निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न किया। तदनन्तर सर्वसौभाग्यदायिनी भाग्यद्वादशी के दिन उन्होंने पद्मों से हरिपूजा करके एक पक्षपर्यन्त यागादि भी किया। हे मुने! तदनन्तर उन्होंने उत्तम काष्ठ द्वारा मूर्त्ति का निर्माण किया।।१०-१३।।

शङ्करार्द्धहरिं पुंसः उमेशं स्थापयेद् बलात्। भक्त्या सर्वोपहारेण द्वादशारे तु मण्डले।
आद्येन चक्रराजेन पूजितं मधुसूदनम् ॥१४॥

उन्होंने यह मूर्ति उमामहेश्वर की निर्मित कराकर विविध उपचारों से उनका पूजन किया। १२वें दिन मण्डल में मधुसूदन का पूजन करके उनको भी प्रसन्न किया। यह पूजन आद्य चक्रराज में किया था।।१४।।

तुतोष तस्य नृपतेस्तेन भाग्यत्वमाप्नुयात्। तुष्टेन देवदेवेन वरं दत्तं द्विजोत्तमम् ॥१५॥
अनिरुद्धस्तु त्वं वत्स मम तुल्यो भविष्यसि। शंखचक्रासिपाणिस्त्वं सर्वकामाँल्लभिष्यसि ॥१६॥
कृत्वा दिव्यायुतं राज्यं मम सायुज्यमाप्स्यसि। भाग्यस्यैकादशार्क्षन्तु तेन चान्यापि या तिथिः ॥१७॥
तस्मिन् संपूजिता देवाः सर्वकामप्रदायकाः। प्रभवादिसमे श्रेष्ठे युगे चैव मनोरमे ॥१८॥
भाग्याख्या द्वादशी तात अष्टम्यां वा तदर्च्चनम्। यागमण्डलपूजार्च्चा हरिमुद्दिश्य कारयेत् ॥१९॥
आचार्य्याय प्रदातव्यं हेमगोभूतिलादिकम्। दक्षिणा आत्मसारेण पुनाति नरकार्णवात् ॥२०॥

भगवान् मधुसूदन ने प्रसन्न होकर वर द्वारा राजा को वैसा ही सौभाग्य प्रदान किया। भगवान् ने कहा—'हे वत्स! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम दिव्य १०००० वर्ष राज्य करके शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज मूर्ति धारण करके मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे। इस भाग्यद्वादशी तथा एकादशी एवं ऐसी ही अन्य तिथि में देवगण का पूजन करने से सर्वार्थ सिद्ध हो जाता है। हे तात! प्रभवादि श्रेष्ठ मनोरम युग भाग्याख्य द्वादशी अथवा अष्टमी में उनका अर्चन यागमण्डल में उनके लिये (हरि-हेतु) करना चाहिये एवं आचार्य को स्वर्ण, गौ, भूमि, तिलादि दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। इससे नरक से छुटकारा मिलता है।।१५-२०।।

युगं भाग्यप्रभावेण प्रयच्छति फलं हरिः। यथा काले च क्षेत्रे च एकापि कर्णिका मता ॥२१॥
प्रयाति शतधा वृद्धिं यथा चाद्ये युगे द्विजः। यथा माघे तथा पौष्ये वासरेऽपि द्विजोत्तम ॥२२॥
तुल्यं पुण्यं विजानीयाद् द्वादश्यामष्टमीषु च। तुष्यते देवदेवेशः शशाङ्काङ्कितशेखरः ॥२३॥

हरियुग तथा भाग्यप्रभाव क्रियाफल प्रदान करता है। यथाकाल क्षेत्र में एक भी कणिका बो देने से जैसे वह सौगुणित बीज प्रदान करती है, उसी प्रकार आद्ययुग, भाग्य तथा अष्टमी आदि तिथि सर्वत्र वैसा ही फल देती है। द्वादशी तथा अष्टमी को पूजादि से भगवान् चन्द्रशेखर तुष्ट हो जाते हैं।।२१-२३।।

पुत्रायुराज्यसौभाग्यं प्रयच्छति जनार्दनः। यः पुनर्माघमासेन करोति हरिरर्च्चनम् ॥२४॥
पद्मे सुलक्षणोपेते वर्णकैरुपशोभिते। तस्य तुष्यति देवेशश्चक्रपाणिर्जनार्दनः ॥२५॥

इति श्रीदेवीपुराणे भाग्यद्वादशीनामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः

भगवान् जनार्दन पुत्र-आयु-राज्य-सौभाग्य प्रदान करते हैं। जो माघ मास में विचित्र वर्ण का सुलक्षण पद्म निर्माण करके हरिपूजा करते हैं, चक्रधारी भगवान् जनार्दन उनसे प्रसन्न होते हैं।।२४-२५।।

अष्टपञ्चाश अध्याय समाप्त

●

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं पूजनीया यथा शिवा। तथा ते कथयिष्यामि शृणु वत्स समासतः ॥१॥
चैत्रादौ या समाख्याता पूजा सर्वार्थसाधनी। तस्या भेदान् प्रवक्ष्यामि इष्टापूर्तिप्रसिद्धये ॥२॥
चैत्रां चित्रक्षणां पूजां कृत्वा त्वष्टाफलं लभेत्। तृतीयायान्तु वैशाखे रोहिण्यर्क्षे प्रपूजयेत् ॥३॥
उदकुम्भप्रदानेन ब्रह्मलोके महीयते। इन्द्राग्निदैवते मृदो पौर्णमास्यां तथैव च ॥४॥
पूजां कृत्वा भवेद् ब्रह्मन् विगताघो नरोत्तमः। अग्नौ परिग्रहः काय्यों दानं देयं द्विजातिषु ॥५॥
त्रयाणामेकमादाय अग्निं देवीं प्रपूजयेत्। अग्निहोत्री भवेत् पूतः शेषं वर्णाङ्कितं फलम् ॥६॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! सर्वकाम-सिद्धिहेतु जैसे देवी का पूजन करना चाहिये, अब वही कहता हूँ; श्रवण करो। चैत्रादि मास में जो सर्वार्थसाधिका पूजा कही गयी है, अभीष्ट-सिद्धि हेतु उसका प्रकार कहता हूँ।

चैत्रमास के चित्रा नक्षत्र में पूजा तथा याग करने से अभीष्ट फल मिल जाता है। रोहिणी नक्षत्रयुक्त वैशाख मास में तृतीया को देवीपूजन करना चाहिये। इस दिन जलपूर्ण कुम्भ दान करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। पौर्णमासी के दिन विशाखा

नक्षत्रयुक्त इस दिन देवी की पूजा से सर्वपातक नष्ट हो जाते हैं। हे नरोत्तम! अग्नित्रय में से जिस किसी अग्नि में अग्निहोत्री को होम तथा पूजन करना चाहिये एवं ब्राह्मणों को यथाशक्ति दान देना चाहिये।।१-६।।

मूलर्क्षे पशुपातेन ज्येष्ठां देवीं प्रपूजयेत्। सर्वकामानवाप्नोति भावशुद्धेन कर्म्मणा ॥७॥
आषाढे मासि यो देवीमाषाढर्क्षे प्रपूजयेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति देवीलोकं च गच्छति ॥८॥

ज्येष्ठ मास के मूल नक्षत्र में भक्तिपूर्वक बलिदानादि द्वारा देवी की पूजा करने पर सभी कामनायें सिद्ध होती हैं तथा पूजक देवीलोक प्राप्त करता है। आषाढ़ में आषाढा (पूर्वाषाढ़ा अथवा उत्तराषाढ़ा) नक्षत्र में जो व्यक्ति देवीपूजन करता है, उसका सर्वाभीष्ट सिद्ध होता है तथा अन्त में उसे देवीलोक मिलता है।।७-८।।

श्रावणे पूजयेद् देवीं प्रतिपद्यादितः क्रमात्। ब्रह्ममूर्त्तिगता ऋक्षे पौष्ये भौजङ्गमेऽपि वा ॥९॥
अथवा सुविधानेन पवित्रारोहणं भवेत्। ब्रह्माग्न्युमागणेशस्य नागस्कन्धतनुस्थिता ॥१०॥
रविमातररूपा तु मङ्गलायनरूपगा। वृषविष्णुसमाकारा कामरुद्रसमाकृती ॥११॥
शक्ररूपा प्रयष्टव्या देव्या गन्धस्रगादिभिः। प्रथमे चाश्रमे पूजा गृह्यकर्म व्रतादि च ॥१२॥
कृत्वा कामानवाप्नोति विगताघो मुनीश्वरः।

श्रावण मास में प्रतिपदादि तिथि में रोहिणी, रेवती किंवा आश्लेषायुक्त होने पर पूजा करनी चाहिये अथवा देवी के ही रूपान्तर ब्रह्मा, अग्नि, उमा, गणेश, नाग, छन्द, सूर्य, मातृगण, मंगला, यम, शिव, विष्णु, काम, रुद्र, इन्द्र-प्रभृति का पूजन गन्ध-माला आदि विविध उपचारों से करना चाहिये। गृहस्थाश्रम में ऐसी पूजा, गृहकर्म तथा व्रतादि करने से सभी पाप नष्ट होते हैं तथा सर्वकामना-सिद्धि होती है।।९-१२।।

प्रौष्ठे पौर्णासु कर्त्तव्या पूजा जागरणं निशि ॥१३॥
महोत्सवविधानेन सौत्रामणिफलं लभेत्। अष्टम्यां रोहिणीं ऋक्षे सोपवासन्तु पूजयेत् ॥१४॥
विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वकामसमृद्धिदम्। तत्रैव कारयेद् देवीं पितृरूपां महोदयाम् ॥१५॥

हे मुनीश्वर! भाद्रमास की पौर्णमासी पूजनोपरान्त रात्रिजागरण करना चाहिये। साथ ही महोत्सव भी करना चाहिये। इस प्रकार पूजनादि से सौत्रामणि यज्ञ का फल मिलता है। रोहिणी नक्षत्रयुत अष्टमी तिथि को उपवास रखकर पूजादि करने से सर्व-समृद्धिसम्पन्न विष्णुलोक की प्राप्ति हो जाती है। इस समय पितृरूपा देवी की अभ्युदयकारिणी पूजा करनी चाहिये।।१३-१५।।

कन्यास्थे च रवौ वत्स पूजनीया यथाविधि। भौजङ्गीं तिथिमाश्रित्य यावच्चन्द्रार्कसंगमम् ॥१६॥
ऋक्षे पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्रीं विवर्ज्जयेत्। आहवेषु विपन्नानां जलाग्निर्भृगुपातिषु ॥१७॥
चतुर्दश्यां भवेत् पूजा अमावस्यान्तु कामिकी। कन्यास्थे तु रवौ दिवे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् ॥१८॥

हे वत्स! आश्विन मास की पञ्चमी तिथि से जब कन्या राशि में सूर्य हो, प्रारम्भ करके अमावस्या तक यथाविधि देवी की पूजा करनी चाहिये तथा उस समय (अमावस्या को) पितृगण का पूजन करना भी उचित है। जो युद्ध में, किंवा जल-अग्नि तथा उच्च स्थान से गिरकर मृत हो गये हैं, उनके लिये पिण्डदान नहीं दिया जाता। चतुर्दशी को दिन भी देवीपूजा करनी चाहिये; लेकिन अमावस्या को कालिकापूजा का नियम है। आश्विन मास की शुक्लाष्टमी को पूजा (देवीपूजा) करनी चाहिये।।१६-१८।।

सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः। पूजां समारभेद् देव्या ब्रह्मर्क्षे वरुणोऽपि वा ॥१९॥

तब अर्द्धरात्रि में उपवासी रहकर समारोह के साथ पूजा करनी चाहिये। पूर्वाषाढ़ा किंवा अभिजित् नक्षत्र में पूजारम्भ करना चाहिये।।१९।।

पशुघातः प्रकर्त्तव्यो गरलाजवधस्तथा। बलिक्षेपस्तु रक्षाणां कार्य्यः सर्वेषां शान्तये ॥२०॥
रथयात्रा प्रकर्त्तव्या या पुरा संप्रकीर्त्तिता। महोत्सवं महापुण्यं तस्मिन् देवी प्रपूजयेत् ॥२१॥

सर्वशान्ति हेतु छागादि बलि प्रदान करनी चाहिये तथा रक्षोगण को भी बलि-उपहार से सन्तुष्ट करना उचित है। पूर्वोक्त नियमानुसार देवी की रथयात्रा का महोत्सव करना चाहिये तथा इस महोत्सव में देवीपूजन भी करना चाहिये।।२०-२१।।

तुलास्थे दीपदानेन पूजा कार्य्या महात्मना। दीपवृक्षाः प्रकर्त्तव्या दीपचक्रास्तथापरा ॥२२॥
दीपयात्रा प्रकर्त्तव्या चतुर्दश्यां कुहूषु च। सिनीवालीस्तथा वत्स तदा कार्यं महाफलम् ॥२३॥
सर्वशेषे प्रकर्त्तव्यं बलिपूजा होमोत्सवम्। देवतानां समुत्थानं कार्यं पौष्णासु बुद्धिमान् ॥२४॥
नैराजनं प्रकर्त्तव्यं नृनागतुरगादिषु। कार्त्तिक्यां कारयेत् पूजां यागं देवीप्रियं सदा ॥२५॥

कार्त्तिक मास में जब तुलाराशि में सूर्य हो, दीपमालादान तथा पूजन करना चाहिये। इस मास में चतुर्दशी तथा अमावस्या के दिन दीपमाला, दीपचक्र तथा दीपवृक्षादि का निर्माण करना चाहिये। इस समय दीपमाला भी कर्त्तव्य है। इस दिन बलि-पूजा-होम तथा उत्सवादि करना चाहिये। देवगण का अभ्युत्थान करके मनुष्य-अश्व-हस्ती प्रभृति का नीराजन करना चाहिये। कार्त्तिक मास में देवी का पूजन तथा याग अवश्य करना चाहिये। यह याग देवी को अतिप्रिय है।।२२-२५।।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तत्र पूजा महाफला। गवां सर्गं प्रकर्त्तव्यं नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२६॥
सर्वयज्ञफलं ब्रह्मन् प्राप्नुयादविचारयन्। अस्त्राणां पूजनं तत्र कर्त्तव्यं सर्वसिद्धये ॥२७॥

इसमें महाफलप्रदायक ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर की पूजा करनी चाहिये। गवोत्सर्ग किंवा नील वृषोत्सर्ग करने से सभी यज्ञों का फल मिल जाता है। इस दिन अस्त्रपूजन से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।।२६-२७।।

मार्गे पूजा प्रकर्त्तव्या अहिर्बुध्नेक्षणा शुभा। सोमार्के कारयेत् पूजां सर्वकामफलप्रदाम् ॥२८॥
पुष्ये पुण्याभिषेकन्तु कर्त्तव्यं पूजयेज्जयाम्। चतुर्थ्यां शुक्लमाघस्य महापूजा विधीयते ॥२९॥
माघ्यां पूजा प्रकर्त्तव्या देवीं वै मङ्गलां यजेत्। फाल्गुने पूजयेद् देवीं चण्डिकेति च या मता ॥३०॥
मातराणां विशेषेण तत्र पूजा विधीयते। एवं सर्वगता देवी सर्वदेवतनुस्थिता ॥३१॥
पूजिता विधिना वत्स सर्वकामान् प्रयच्छति ॥३२॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रैलोक्याभ्युदये पादे पूजाप्रशंसानाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः

अग्रहायण मास में उत्तरभाद्रपद तथा मृगशिरा नक्षत्र में देवी की पूजा करने से सर्वभीष्ट सिद्ध हो जाता है। पौष मास में पुण्याभिषेक करके जया देवी की पूजा करनी चाहिये। माघ मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन महापूजा करनी चाहिये। इस समय देवी मंगला की पूजा की जाती है। फाल्गुन मास में देवी चण्डिका की पूजा करनी चाहिये। मातृगण की विशेष पूजा करना उचित है। हे वत्स! देवी सर्वाधिष्ठात्री हैं। देवगण उनके ही शरीरभेदमात्र हैं। उनकी पूजा विधिपूर्वक कर सकने पर सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।२८-३१।।

उनषष्टितम अध्याय समाप्त

षष्टितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

अश्वमेधसमं पुण्यं वृषोत्सर्गादवाप्यते। रेवत्याञ्चाश्विने मासि कार्त्तिक्यां कार्त्तिकस्य वा ॥१॥
गोविवाहोऽथवा काय्योंऽमायां वै फाल्गुनेऽपि वा। शिवाया मङ्गलं चैत्रं तृतीयायां महाफलम् ॥२॥
अश्वत्थोडुम्बरीयागं विवाहं विधिना भवेत्। सतोरणं भवेत् तीर्थे उत्सर्गं गोकुलेऽपि वा ॥३॥

मनु कहते हैं—आश्विन मास के रेवती नक्षत्र तथा कार्तिक मास के कृत्तिका नक्षत्र के दिन वृषोत्सर्ग करना चाहिये। इससे अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। माघ अथवा फाल्गुन मास में गोविवाह तथा चैत्रमास की तृतीया के दिन देवी की मंगलपूजा तथा अश्वत्थ-उडुम्बर याग करना चाहिये। गोविवाह कार्य में तीर्थ में अथवा गोष्ठ (गोशाला) में विवाह विधिवत् सम्पन्न करना चाहिये।।१-३।।

चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वौ वा सम्भवतोऽपि वा। वत्सं सर्वाङ्गसंपूर्णं कन्या सा लोहिता भवेत् ॥४॥
अलङ्कृत्य यथा शोभा उत्सर्गं कारयेन्मुने। विवाहमेकवत्सैकं नीलेन भवते सदा ॥५॥
वृषेण अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलदायकम्। जायेरन् बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥६॥
यजेद्वा अश्वमेधं नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। लोहितो यस्तु वर्णेन शङ्खवर्णमुखो वृषः ॥७॥
लाङ्गूलशिरसश्चैव स वै नीलवृषः स्मृतः। अङ्कितं सृज्यते पूर्वं गाञ्चालङ्कृत्य सर्वतः ॥८॥

चार, दो अथवा अभाव में एक हृष्ट-पुष्ट वत्सतरी (बछड़ी) को अलंकारादि से भूषित करके उत्सर्ग करना चाहिये। उसका विवाह नील वृष के साथ करना चाहिये। इससे अश्वमेध यज्ञफल मिलता है। इसी कारण लोग बहुपुत्र की कामना करते हैं; क्योंकि उनमें से एक पुत्र भी गया जा सके अथवा अश्वमेध कर सके अथवा नीलवृष का उत्सर्ग कर सके (इसी कामना से बहुपुत्र चाहते हैं)। जिसका वृष का वर्ण लोहित है तथा मुख शंखवत् श्वेत है, साथ ही मस्तक तथा पूंछ भी श्वेत है, वही नीलवृष कहा जाता है। बछड़ा तथा वृष, दोनों को यथाशक्ति अलंकृत करके उत्सर्ग करना चाहिये।।४-८।।

तप्तेन वामतश्चक्रं याम्ये शूलं समालिखेत्। धातुना हेमभावेन आयसेनाथ वाङ्कयेत् ॥९॥
एवं कृत्वा अवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम्। यमुद्दिश्य सृजेद् वत्स स लभेदविचारणात् ॥१०॥

स्वर्ण अथवा लौहनिर्मित त्रिशूल तथा चक्र को तप्त करके बाँयीं ओर चक्र तक तथा दाहिनी ओर त्रिशूल को अंकित करना चाहिये। हे वत्स! जिसके लिये इस वृष का उत्सर्ग किया जाता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।९-११।।

यथा शिवो अजा अर्च्चा पूजिता सर्वकामदा। एवं देवत्रयं जप्त्वा अनन्तं लभते फलम् ॥११॥
मङ्गला विहितं यच्च गोदानजं फलं तथा। सहस्रक्रतवस्तेन वृषोत्सर्गादवाप्नुयात् ॥१२॥
गन्धाष्टमी भवेन्मार्गे गन्धर्वफलदायिका। सहस्रक्रतवस्तेन वृषोत्सर्गादवाप्नुयात् ॥१३॥
क्षीराष्टमी महापुण्या चन्द्रलोकफलप्रदा ॥१४॥

ब्रह्मा-विष्णु एवं महेश्वर के पूजन से जो सर्वकामना फल प्राप्त होता है, उनका मन्त्रजप करने से जो अनन्त फल प्राप्त होता है, गोदानजनित जो फल मिलता है, सहस्र यज्ञ करने का जो फल है, वह सब इस वृषोत्सर्ग से मिल जाता है। अग्रहायण मास में गन्धाष्टमी में पूजा करने से गन्धर्व लोक प्राप्त होता है एवं क्षीराष्टमी को पूजा करने पर चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है।।११-१४।।

दध्ना विष्णुपदं याति हविषा रविमण्डले। मधुना देवताः सर्वाः शिवं शालिकृतान्नजैः ॥१५॥
ब्राह्मं नीवारपूजाभिर्मङ्गला संप्रयच्छति। इहैव सर्वकामानि प्रदद्यात् सर्वमङ्गला ॥१६॥
यथेप्सितानि लोकानां शिवा पूर्वेन पूजिता। प्रयच्छति सुरलोके चेष्टान्यपि समन्ततः ॥१७॥

इस दिन दधि से पूजा करने पर विष्णुपद की प्राप्ति होती है। घृत द्वारा पूजन से सूर्यलोक प्राप्त होता है। मधु से पूजा करने पर सर्वदेवता-स्वरूप प्राप्त होता है, शाल्यन्न से पूजा द्वारा शिवलोक-प्राप्ति एवं नीवारान्न द्वारा पूजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार देवी सर्वमङ्गला का पूजन करने से वे प्रसन्न होकर इस लोक में सभी अभीष्ट को पूर्ण करती हैं तथा अन्त में इष्ट फल प्रदान करती हैं। साथ ही देहान्त में सुरलोकरूप इष्ट फल प्रदान करती हैं।।१५-१७।।

प्रपारामतडागानि देवतायतनानि च। पूर्त्तानि तेष्वपि चेष्टं हेमदानं महामुने ॥१८॥
उपकल्पितेषु भागेषु यदि विघ्नोपजायते। तदा दुर्गादिषु कार्य्या तिथिषु सर्वकामदम् ॥१९॥

हे मुनिवर! कूप, आराम, तड़ाग, देवतागृह आदि पूर्त्तकार्य में भी होम-दानादि करना चाहिये। उपकल्पित यागादि कार्य में विघ्न की आशंका हो सकती है; अतः उसे दुर्ग के स्थान में करना चाहिये तथा सर्वकामदा तिथि पर करना चाहिये।।१८-१९।।

वैशाखशुक्लस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे।
नभस्य मासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥२०॥
उपरागे चन्द्रमसे रवेश्च तं मिस्रोऽष्टकायामयनद्वयं च।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विभिन्नं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ॥२१॥

वैशाख की शुक्ल तृतीया, कार्त्तिक मास की शुक्ल तृतीया, भाद्र मास की कृष्णपक्षीय त्रयोदशी, माघ मास की पूर्णिमा, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण, अष्टका, अयनद्वय—इन दिनों में पितृलोक-हेतु तिलमिश्रित जलाञ्जलि दान करनी चाहिये।।२०-२१।।

श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति।
एतेषु कालेषु च दानहोममुत्सर्गधाता यत्नेषु दत्तम्।
अनन्तकल्पं सुरसिद्धगीतं वेदेषु चेष्टं मुनयो वदन्ति ॥२२॥

इन सभी तिथियों पर श्राद्ध करने से सहस्र वर्षकृत श्राद्ध का फल मिलता है। पितरगण ऐसा निर्देश करते हैं। इन सब काल में दान, होम, उत्सर्ग, खात आदि को यत्न से दान करने पर उसका अनन्त फल होता है, यह सुर-असुर-मुनि-सिद्धगण- प्रभृति सभी कहते हैं। वेद ने भी यही कहा है।।२२।।

अथवा जीर्णसंस्कारविधिः पुण्यो महामुने। देवतादिषु कर्त्तव्यो महाभोगफलेप्सुभिः ॥२३॥
मूलादष्टगुणं पुण्यं जीर्णसंस्कारके भवेत् ॥२४॥
तस्मादनाथजीर्णेषु कार्यं संस्करणं मुने। स्वकीयं परकीयं वा यथाविभवविस्तरैः ॥२५॥
स्वतो वा परतो वापि यस्तु संस्कुरुते सुरान्। स यावच्चन्द्रसूर्य्यौ द्यौस्तावत् कालं सुखी भवेत् ॥२६॥

हे महामुने! जो अक्षय पुण्यफल की कामना करते हैं, उनको जीर्ण देवालय, तीर्थ आदि का संस्कार करके लाभ उठाना चाहिये। हे मुने! जीर्णसंस्कार का फल नूतन देवालय-प्रतिष्ठा की अपेक्षा आठगुणा अधिक होता है। अतएव अस्वामिक (लावारिस पड़े) जीर्ण देवालय का संस्कार करना उचित है। स्वकीय हो अथवा परकीय ही क्यों न हो, अपने विभव के अनुसार

स्वयं अथवा अन्य से प्रेरित होकर भी जो व्यक्ति जीर्ण देवलयादि का संस्कार करता है, वह चन्द्र-सूर्य-तथा पृथिवी के स्थितिकाल-पर्यन्त देवलोक में सुखलाभ करता है।।२३-२६।।

लोकेषु तेषु देवानां विरतस्तेषु दृष्टधीः। यथा गोमेधयज्ञेषु पशुरोमसमाः समाः ॥२७॥
वसते दिवि हृष्टात्मा जीर्णसंस्कारकारकः। अनाथा वा सनाथा वा पूजनीयाः सदा सुरा ॥२८॥
विशेषेण तु ये पूर्वास्ते ते चेज्या सततं मुने। पृथुना चेष्टमानादौ मैनाके उमाशङ्करम् ॥२९॥
ययातिना च गोमन्ते शङ्करं हरिणा सह। कैलासेऽर्धनारीशं रघुणा पूजितं पुरा ॥३०॥
दिलीपेन तथा राज्ये त्रिमूर्तिं कामिकेऽचले। दक्षिणापि हि संप्राप्तं देवीमिष्ट्वेहितं फलम् ॥३१॥
अन्येऽपि ऋषयः सिद्धिं गताः पूर्तेन कर्म्मणा ॥३२॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे पूजाविधिर्नाम षष्टितमोऽध्यायः

जैसे गोमेध यज्ञ द्वारा यज्ञकर्त्ता उस पशु के रोयें जितने काल तक स्वर्गभोग करता है, उसी प्रकार जीर्ण देवगृह का संस्कार करने वाला भी उतने काल तक स्वर्गभोग करता है। अनाथ हो अथवा सनाथ (देवालय), देवगण सर्वदा पूज्य हैं। हे मुनिवर! पूर्व-पूर्व महात्मागण सर्वदा इस कार्य में लगे रहते थे। पृथुराज ने मैनाक पर्वत में पूर्व में उमा तथा महेश्वर का पूजन किया था। ययाति ने गोमन्त पर्वत पर हरिहर का पूजन किया था। रघु ने कैलास पर्वत पर अर्द्धनारीश्वर की पूजा की थी। दिलीप ने कामिकाचल पर त्रिमूर्त्ति का पूजन किया था। इन सबने ही अपना-अपना इच्छित फल प्राप्त किया था। पूर्व में क्षत्रियगण ने पूर्त्तकार्य करके सिद्धिलाभ किया था।।२७-३२।।

षष्टितम अध्याय समाप्त

●

एकषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

चैत्रादौ कारयेत् पूजां मम वत्स यथाविधि। गन्धधूपार्च्चनादानैर्मालाभिर्दमनोद्भवैः ॥१॥
सहोमं पूजयेद् देवं सर्वकामानवाप्नुयात्। सर्वतीर्थाभिषेकस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२॥
उमां शिवं हुताशञ्च द्वितीयायान्तु पूजयेत्। हविष्यमन्त्रनैवेद्यं देयं गन्धार्च्चनं पुरा ॥३॥
फलमाप्नोति विप्रेन्द्र उमया यत् प्रभाषितम्। तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् ॥४॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रस्रगर्च्चिताम्। सुगन्धपुष्पधूपैश्च दमनेन सुमालिताम् ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! चैत्र मास से प्रारम्भ करके संवत्सर-पर्यन्त विधिवत् गन्ध-पुष्प-धूप-पुष्प-माल्यादि से पूजा करनी चाहिये। होम के साथ पूजन करने पर सर्वकामना पूर्ण होती है तथा सर्वतीर्थ अभिषेक का फल मिलता है। द्वितीया तिथि में उमा, शिव, हुताशन की पूजा करके हविष्यान्न का नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। इससे यथोक्त फल प्राप्ति होती है। हे विप्रेन्द्र! तृतीया को कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूर, मणि, वस्त्रादि द्वारा देवी तथा शंकर की पूजा करके उन्हें सुगन्ध-पुष्प-धूप-नैवेद्यादि प्रदान करना चाहिये।।१-५।।

आन्दोले दोलयेद् वत्स शिवोमा तुष्यते सदा। रात्रौ जागरणं कार्यं प्रातर्देया तु दक्षिणा ॥६॥
हेमवस्त्रानुपात्राणि ताम्बूलानि स्रजानि च। सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखार्थिभिः ॥७॥

देवी को तथा शंकर को झूले पर बैठाकर झुलाना चाहिये। इससे दोनों प्रसन्न हो जाते हैं। रात्रिजागरणोपरान्त प्रातः दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। स्वर्ण, वस्त्र, पात्र, ताम्बूलादि, माला-जलपात्रादि दक्षिणा में प्रदान करना चाहिये। जो स्त्री सौभाग्य की तथा पुत्रादि की कामना करती है, उसे भी इसी प्रकार से पूजा करनी चाहिये।।६-७।।

गणेशे कारयेत् पूजां लड्डुकादिभिर्भावितः। चतुर्थ्यां विघ्ननाशाय सर्वकामसमृद्धये ॥८॥
पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान् महोरगान्। क्षीरसर्पिस्तु नैवेद्यं देयं सर्वविषापहम् ॥९॥

चतुर्थी तिथि पर विघ्ननाशार्थ तथा सर्वसमृद्धिहेतु गणेश का लड्डू आदि से पूजन करना चाहिये। पञ्चमी को सर्व विघ्नविनाश के लिये क्षीर-घृतादि नैवेद्य प्रदान करके अनन्तादि महानागगण का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन द्वारा समस्त विषों का नाश होता है।।८-९।।

षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वोपहारिणी। इहैव सुखसौभाग्यमन्ते स्कन्दपुरं व्रजेत् ॥१०॥
भास्करस्य तु सप्तम्यां पूजां दमनकादिभिः। कृत्वा प्राप्नोति भोगादीन् विगतारिर्महातपाः ॥११॥

षष्ठी तिथि के दिन सर्वविध उपहारों द्वारा कार्त्तिकेय की पूजा कर्त्तव्य है। इससे इस लोक में सुख-सौभाग्यादि तथा अन्त में स्कन्दलोक प्राप्त होता है। सप्तमी के दिन नाना उपहारों से भास्कर देव की पूजा करने से भोगादि लाभ तथा शत्रुनाश होता है। साथ ही वह पूजक महातपा हो जाता है।।१०-११।।

मातराणाञ्च अष्टम्यां पूजां सर्वार्थगन्धिकीम्। कृतवांल्लभते वत्स सिद्धिमिष्टां तु दमनकैः ॥१२॥

हे वत्स! अष्टमी तिथि को सर्वविध सुगन्ध पुष्पादि उपहार से मातृगण का पूजन करने से इष्टसिद्धि होती है।।१२।।

नवम्यां पूजयेद्देवीं महामहिषमर्दिनीम्। कुङ्कुमागुरुकर्पूरधूपान्नध्वजदर्पणैः ॥१३॥
दमनैर्मरुपत्रैश्च विजयाख्यं पदं लभेत्। धर्म्मराजे दशम्यान्तु पूजा कार्य्यानुगन्धकीम् ॥१४॥

नवमी तिथि को महिषमर्दिनी देवी की पूजा कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूर, धूप, दमनक, मरुपत्र, ध्वज, दर्पण, नैवेद्यादि से करने पर देवी की कृपा से विजय-प्राप्ति होती है। दशमी को गन्ध-पुष्पादि उपहार से धर्मराज की पूजा करनी चाहिये।।१३-१४।।

विगतारिर्निरातङ्कः इह चान्ते परं पदम्। एकादश्यां वृषे पूजा कार्या सर्वोपहारका ॥१५॥
धनवान् पुत्रवान् कान्ते वृषलोके महीयते। द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥१६॥

वह व्यक्ति इहलोक में शत्रुरहित तथा निर्भय होकर परलोक में परमपद प्राप्त करता है। एकादशी तिथि के दिन सर्वविध उपहार से धर्मपूजा करनी चाहिये। इससे इस लोक में धनवान, पुत्रवान होकर परकाल में वृषलोक प्राप्त करता है। हे महाबाहो! द्वादशी तिथि को कर्पूर, अगुरु तथा चन्दन से विष्णुपूजन करना चाहिये।।१५-१६।।

हविष्यान्नं महाबाहो कर्त्ता विष्णुपदं लभेत्। कामदेवस्त्रयोदश्यां पूजनीयो यथाविधि ॥१७॥
रतिप्रीतिसमायुक्तो अशोकमणिभूषितः। कुम्भे वा सितवस्त्रे वा लेख्यः पत्रफलादिभिः ॥१८॥
खण्डशर्करनैवेद्यैः सौभाग्यमतुलं लभेत्। चतुर्दश्यान्तु देवेशं शशाङ्काङ्कितशेखरम् ॥१९॥

तदनन्तर हविष्यान्न भोजन करना चाहिये। इससे विष्णुलोक प्राप्त होता है। त्रयोदशी तिथि के दिन रतिप्रीतिसङ्गी अशोकपुष्प-मणिमण्डित कामदेव की पूजा घट अथवा वस्त्र पर अंकित चित्र पर पत्र-फल-खण्ड-शर्करा-नैवेद्यादि से करने पर अतुल सौभाग्य मिलता है। चतुर्दशी के दिन देवेश शशाङ्काङ्कित शेखर की पूजा करनी चाहिये।।१७-१९।।

क्षीरादिस्नपनैः स्नाप्यं धूपपुष्पसुगन्धिभिः। पूजनीयं यथान्यायं दमनैर्होमसंयुतैः ॥२०॥
वस्त्रान्नमणिपूजा च कर्त्तव्या महती शिवे। वितानध्वजछत्रञ्च देयं कार्य्यन्तु जागरम् ॥२१॥

इनकी पूजा धूप-पुष्प-सुगन्धि-दुग्ध से स्नान कराकर हेमसंयुत दमनमाल्यादि द्वारा यथाविधान करनी चाहिये। इन शिवा हेतु चन्द्रातप, ध्वज तथा छत्र इनकी प्रसन्नता के लिये प्रदान करना चाहिये तथा जागरण करना चाहिये। इससे वांछित फल मिलता है।।२०-२१।।

महापुण्यमवाप्नोति अश्वमेधं शताधिकम्। पौर्णमास्यां तथा कार्य्या सर्वकामसमृद्धये ॥२२॥
इन्द्राय शचीयुक्ताय कामिकं लभते फलम्। एवं पञ्चदशाहं च यस्तु पूजा प्रकुर्वते ॥२३॥
सर्वयज्ञतपोदानफलान्यस्य अवाप्नुयात्। विचित्रदेवभोगेषु क्रीडते दिवि स्वेच्छया ॥२४॥

इससे सैकड़ों अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। सर्वाभीष्ट सिद्धि के लिये पूर्णिमा के दिन शची देवी के साथ इन्द्र की पूजा करनी चाहिये। इससे अभिलषित फल-प्राप्ति होती है। इस प्रकार से १५वीं तिथि को जो पूजा करता है, उसे सभी यज्ञ, तपस्या तथा दान का फल मिल जाता है। वह जीवन के अन्त के पश्चात् स्वर्ग में विचित्र देवभोग प्राप्त करके यथेच्छ क्रीड़ा करता है।।२२-२४।।

पुण्यक्षयादिहायातः पृथिव्यां भवते नृपः। विगतारिर्न सन्देह इत्याह भगवान् शिवः ॥२५॥

इति श्रीदेवीपुराणे महाभ्युदये दमनकीपूजानामैकषष्टितमोऽध्यायः

यथाकाल पुण्यक्षय होने पर वह पृथिवी पर जन्म लेकर राजा होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह भगवान् शिव का कथन है।।२५।।

एकषष्टितम अध्याय समाप्त

●

द्विषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वैशाखे तु प्रकर्त्तव्या पूजा पाटलजैः स्रजैः। सर्वकाममवाप्नोति ज्यैष्ठे पद्मार्ज्जुनैस्तथा ॥१॥
आषाढे बिल्वकह्लारैरिहितं लभते फलम्। नवमालीकुसुमैः पूजा नभे कार्य्या महाफला।
कदम्बचम्पकैरीषे सर्वकामफलप्रदा ॥२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—वैशाख मास में पाटल, पुष्पमाला द्वारा तथा ज्येष्ठ मास में पद्म तथा अर्जुनपुष्प द्वारा पूजन करने से सर्वाभीष्ट लाभ होता है। आषाढ़ मास में विष तथा कल्हारपुष्पों से पूजा द्वारा विहित फल मिलता है। श्रावण मास में नवमालिका पुष्प से तथा भाद्र मास में कदम्ब तथा चम्पकपुष्प से पूजा द्वारा महाफल मिलता है।।१-२।।

पूजा पङ्कजमालाभ्यां सर्वाभ्युदयदायिका। शतपत्रिकया पूजा कार्त्तिके सर्वकामिका ॥३॥
मार्गे नीलोत्पला पूजा पुष्पे कुंजकजास्तथा। माघे कुन्दकृता पूजा सर्वकामप्रदायिका ॥४॥

आश्विन मास में पद्म तथा मालतीपुष्प से पूजन करने से सर्व अभीष्ट फल मिलता है। कार्त्तिक मास में शतदल से पूजा द्वारा सभी अभ्युदय होता है। अग्रहायण मास में नीलोत्पल से तथा पौष मास में कुञ्जपुष्प से पूजा करने पर सभी अभीष्ट-सिद्धि होती है। माघ मास में कुन्दपुष्प से पूजा करने पर सर्वाभीष्ट फल मिलता है।।३-४।।

फाल्गुने मरुपत्रोत्था माधवी शुभदायिका। एवं संवत्सरं चैत्र्यां यः कुर्य्याद् ग्रहसत्तम ॥५॥
गन्धपुष्पान्नवस्त्रैश्च तस्य पुण्यफलं शृणु। हेमगोभूमिवस्त्रान्नविद्यादानफलं लभेत् ॥६॥

फाल्गुन मास में मरुपत्र से तथा चैत्रमास में माधवीपुष्प से भी गयी पूजा मंगलप्रद होती है। इस संवत्सर में ऐसी पूजा करने पर चैत्र पूर्णिमा के दिन गन्ध, अन्न तथा वस्त्र से पूजा करनी चाहिये। व्रत के अन्त में यथाविधि होम-दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! उसका पुण्यफल सुनो। सुवर्णदान-गोदान-भूमिदान-वज्रदान-अन्नदान तथा विद्यादान का फल इससे मिलता है।।५-६।।

वाजपेयमहामेधराजसूयशताधिकम्। अश्वमेधं पशुमेधं गोमेधं क्रमशः फलम् ॥७॥

इससे सौ वाजपेय, नरमेध, राजसूय यज्ञफल की तुलना में अधिक फल प्राप्त होता है। अश्वमेध, गोमेध यज्ञफल की भी क्रमशः प्राप्ति होती है।।७।।

लभते दक्षिणा होमं व्रतान्ते विधिना ददेत्। पूरणं फलपुष्पैश्च वस्त्रपट्टस्रजान्नजम् ॥८॥
घृतक्षीरदधिभक्तैः सर्वकामफलप्रदः। एवं भावानुरूपेण यस्तु पूजां प्रकल्पयेत् ॥९॥
शिवाय संभवेद् वत्स शिवस्थानचरः सदा ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे प्रतिमापूजानाम द्विषष्टितमोऽध्यायः

फल-पुष्प-पट्टवस्त्र-घृत-क्षीर-दधि तथा भात सतत प्रदान करके व्रत पूर्ण करने से अभिलषित समस्त फल मिल जाते हैं। वत्स! जो व्यक्ति इस प्रकार से चित्तशुद्धि के साथ पूजन करता है, उसे शिवसालोक्य मिलता है।।८-१०।।

द्विषष्टितम अध्याय समाप्त

●

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

मन्दरस्थं महादेवं ब्रह्मा पृच्छति शङ्करम्। केषु केषु च स्थानेषु द्रष्टव्योऽसि मया प्रभो ॥१॥

मनु कहते हैं—ब्रह्मा ने मन्दराचल पर स्थित देवदेव शिव से पूछा—हे प्रभो! किस-किस स्थान पर मैं आपको देख सकता हूँ।।१।।

ईश्वर उवाच

वाराणस्यां महादेवं प्रयागे तु महेश्वरम्। नैमिषे देवदेवन्तु गयायां प्रपितामहम् ॥२॥
कुरुक्षेत्रे विदुः स्थानं प्रभासे विश्वरूपिणम्। पुष्करे तु अयोगंधं विश्वञ्च विमलेश्वरे ॥३॥
अट्टहासे महानादं महेन्द्रे तु महाव्रतम्। उज्जयिन्यां महाकालं माकोटे तु महोत्कटम्।
शङ्कुकर्णे महातेजं गौकर्णे च महाबलम् ॥४॥
रुद्रकोट्यां महायोगी महालिङ्गं स्थलेश्वरे। हर्षे च हर्षितञ्चैव सर्वं मध्यमकेश्वरम् ॥५॥
केदारे चैव ईशानं रुद्रं रुद्रे महालये। सुवर्णाक्षे सहस्राक्षं वृषभे वृषभध्वजम् ॥६॥
भैरवे भैरवाकारं भवं शस्त्रपदे विदुः। उग्रं कनखले चैव भद्रकर्णह्रदे शिवम् ॥७॥
देवदारुवने दिण्डिं चण्डं मध्यमजङ्गले। ऊर्ध्वरेतं तुरुण्डे च सुकलान्ते कपर्दिनम् ॥८॥
कृत्तिवासञ्च एकाम्रे सूक्ष्मञ्चाम्रातिकेश्वरे। कालञ्जरे नीलकण्ठं श्रीकण्ठं मण्डकेश्वरे।
ध्यानसिद्धेश्वरे योगी गायत्रीञ्चोत्तरेश्वरे ॥९॥

विजयं नाम काश्मीरे जयन्तं मरुकेश्वरे। हरिश्चन्द्रे हरिश्चैव पुरिश्चन्द्रे तु शङ्करम् ॥१०॥
जटिं रामेश्वरे विद्यात् सौम्यं कुक्कुटकेश्वरे। भूतेश्वरे भस्मगात्रं जललिङ्गे जलेश्वरम् ॥११॥

ईश्वर कहते हैं—वाराणसी में महादेव, प्रयाग में महेश्वर, नैमिष में देवदेव, गया में प्रपितामह, कुरुक्षेत्र में स्थाणु, प्रभास में विश्वरूपी, पुष्कर में अयोगन्ध, विमलेश्वरतीर्थ में विश्व, अट्टहास में महानाद, महेन्द्रपर्वत पर महाव्रत, उज्जयिनी में महाकाल, साकोट तीर्थ में महोत्कट, शङ्कुकर्ण तीर्थ में महातेज, गोकर्ण तीर्थ में महाबल, रुद्रकोटि तीर्थ में महायोगी, स्थूलेश्वर तीर्थ में महालिङ्ग, हर्षतीर्थ में हर्षित, मध्यम तीर्थ में सर्व, केदार में ईशान, रुद्रमहालय तीर्थ में रुद्र, सुवर्णाक्ष तीर्थ में महास्राक्ष, वृषभ पर्वत पर वृषध्वज, भैरव तीर्थ में भैरव, शत्रुपद तीर्थ में भव, कनखल में उग्र, भद्रकर्ण ह्रद में शिव, देवदारुवन में दिण्डि, मध्यमजङ्गल तीर्थ में चण्ड, तुरण्ड में ऊर्ध्वरेत, सुकलान्त में कपर्दी, एकाम्रकानन में कृत्तिवास, आम्रातिकेश्वर तीर्थ में सूक्ष्म, कालंजर में नीलकण्ठ, मण्डकेश्वर में श्रीकण्ठ, ध्यानसिद्धेश्वर तीर्थ में योगी, उत्तरेश्वर तीर्थ में गायत्री, काश्मीर में विजय, मरुकेश्वर में जयन्त, हरिश्चन्द्र तीर्थ में हरि, पुरिश्चन्द्र में शङ्कर, रामेश्वर तीर्थ में जटी, कुक्कुटेश्वर तीर्थ में सौम्य, भूतेश्वर तीर्थ में भस्मगात्र एवं जललिङ्ग तीर्थ में जलेश्वर स्थित हैं।।२-११।।

भिक्षुकं करिकायान्तु वाराहं विन्ध्यपर्वते। ताम्रं पश्चिमसन्ध्यायां विरजायां त्रिलोचनम् ॥१२॥
तृप्तेश्वरे त्रिशूली च श्रीशैले त्रिपुरान्तकम्। जललिङ्गे विदुः कालं कपाली करवीरके ॥१३॥
दीप्तचक्रेश्वरे वेदं नेपाले पशुपतिं पतिम्। श्रीकारारोहणे लकुटिं वेदीकायामुमापतिम् ॥१४॥
गङ्गायां सागरे त्वमयमोङ्कारममरकण्टके। सप्तगोदावरे भीमं स्वयम्भूर्नकुलेश्वरे ॥१५॥
कर्णिकारे गणाध्यक्षं भूर्भुवं गन्धमादने। सिद्धेश्वरन्तु आकाशे पाताले हाटकेश्वरम् ॥१६॥
अष्टषष्टिस्तु नामानि देवदेवस्य धीमतः। पुराणे चोपगीतानि ब्रह्मणा च स्वयम्भुवा ॥१७॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्नातो वा यदि वा शुचिः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवलोकञ्च गच्छति ॥१८॥

इति श्रीदेवीपुराणे महादेवस्याष्टषष्टिनामकीर्त्तनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः

करिका तीर्थ में भिक्षुक, विन्ध्यपर्वत पर वाराह, पश्चिम सन्ध्यातीर्थ में ताम्र, विरजाक्षेत्र में त्रिलोचन, तृप्तेश्वर में त्रिशूली, श्रीशैल में त्रिपुरान्तक, जललिङ्ग तीर्थ में काल, करवीर में कपाली, दीप्तचक्रेश्वर तीर्थ में वेद, नेपाल में पशुपतिनाथ, श्रीकारारोहण तीर्थ में लकुटि, वेदिका नदीतीर पर उमापति, गंगासागर तीर्थ में अश्व, अमरकंटक में ओङ्कार, सप्तगोदावरी में भीम, नकुलेश्वर में स्वयम्भु, कर्णिकार में गणाध्यक्ष, गन्धमादन पर्वत पर भूर्भुव, आकाश में सिद्धेश्वर, पाताल में हाटकेश्वर—सर्वज्ञ देवदेव के यही नाम पुराणों में ब्रह्मा ने कहे हैं। जो प्रातः उठकर, स्नानान्त में अथवा जब कभी भी पवित्र होकर इन ६८ नामों का पाठ करता है, वह सर्वपापरहित होकर शिवलोक प्राप्त करता है।।१२-१८।।

त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त

●

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वृषं गावौ समादाय युवानौ लक्षणान्वितौ। हेमशृङ्गौ शफे रौप्यौ सवस्त्रौ पूजयेन्मुने ॥१॥
शिवोमां पूजयित्वा तु तद्दिने यः प्रयच्छति। शिवभक्ताय विप्राय रोहिण्यां वा मृगेण वा ॥२॥
न वियोगो भवेत्तस्य सुतपत्नीपतिवृतः। वातरंहसवैमानैर्गच्छेच्छिवपुरं द्विजः ॥३॥

तत्र भोगांश्चिरान् भुक्त्वा इह आगत्य जायते। समृद्धो धनधान्याभ्यां पुत्रमित्रसमाकुलः ॥४॥
विगतारिर्भवेद् ब्रह्मन् व्रतस्यास्य प्रभावतः। यो वा रत्नसमायुक्तं गोयुगं पूजयेन्मुने ॥५॥
प्रयच्छति शिवोमे च प्रीयेतां भावितात्मनः। स सर्वपापश्चदुःखेभ्यो विमुक्तः क्रीडते सदा।
इह लोके भवेद्धन्यो देहान्ते परमं पदम् ॥६॥

इति श्रीदेवीपुराणे गोरत्नव्रतं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे मुने! युवा तथा लक्षणयुक्त वृष एवं गौ (बछड़ी) लाकर उनको सींग में स्वर्ण, खुर में चाँदी मढ़कर तथा वस्त्र से ढक कर पूजा करनी चाहिये। जो व्यक्ति रोहिणी नक्षत्रयुक्त अथवा मृगशिरा नक्षत्रयुक्त दिन में शिव-दुर्गा की पूजा करके उन्हें (गोमिथुन को) ब्राह्मण को दान करता है, वह व्यक्ति पुत्र-पत्नी से तथा स्त्री पुत्र-पति से कभी अलग नहीं होता। अन्त में वायुवेगयुक्त विमान पर बैठकर शिवलोक जाते हैं। वहाँ चिरकालीन स्थिति में भोगों को भोग कर पुनः पृथिवी पर जन्म लेते हैं। इस व्रत के प्रभाव से वे व्यक्ति धन-धान्ययुक्त, पुत्र-मित्रयुक्त होकर शत्रुरहित हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! हे मुने! जो इस प्रकार से रत्न से विभूषित गोमिथुन का पूजन करता है तथा उन्हें 'शिव मुझ पर प्रसन्न हों' कहकर दान करता है, वह सर्वपाप एवं सर्वदुःखरहित होकर सुखभोगी होता है। वह इस लोक में धन्य होकर परलोक में परमपद की प्राप्ति करता है।।१-६।।

चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त

●

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तृतीयायान्तु शुक्लायां लिखेद्वस्त्रयुगे शुभे। रोचनासितकाश्मीरैः शिवोमां पूजयेत्ततः ॥१॥
हेमरत्नस्त्रजैर्वत्स मन्त्रयुग्ममुदीरयेत्। नदमानं मन्त्रशङ्खं यत्तत् पूर्वमुदाहृतम् ॥२॥
तेन जप्यार्च्चनं होमं कर्त्तव्यं द्विजसत्तम। अवियोगाय नारीणां व्रतराजं सदा हितम् ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—शुक्लपक्षीय तृतीया तिथि के दिन दो वस्त्र पर गोरोचन, कर्पूर तथा कुङ्कुम से शिवदुर्गा अंकित करके मन्त्रद्वय का उच्चारण करके सुवर्ण-रत्न-माला से पूजन करके मन्त्रगर्भ शंखध्वनि (मन्त्रयुक्त) करनी चाहिये। मन्त्र पहले कहा गया है। हे द्विजोत्तम! उस मन्त्र द्वारा ही जप, पूजा एवं होम भी करना चाहिये। इस व्रतराज के फल से नारीगण को वियोग-जनित दुःख नहीं होता है।।१-३।।

सहेमं रत्नपुष्पाढ्यं सहस्रं दापयेद्धुतम्। महापुण्यं महाभाग्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४॥

स्वर्ण, रत्न, पुष्प द्वारा १००० होम करना चाहिये। यह होमकार्य महापुण्यप्रद, महाफलदायक तथा सर्व अभीष्ट फलप्रद होता है।।४।।

सुतभ्रातृवियोगन्तु न भवेत्तेन भो द्विज। न व्याधिर्नोपसर्गश्च यावत् तन्तुरजं मुने ॥५॥
तावत् कालमुमालोके क्रीडते मुदितश्चिरम्। हस्तमात्रा तृणं कार्य्या अङ्गुष्ठातर्ज्जनीगता ॥६॥
प्रदीप्य यावत् सा दीप्ता तावद् भोज्यं समारभेत्। देवीं सम्पूजयित्वा तु षोडशान्तेन भावितः ॥७॥
हेमपुष्पैस्तथा गन्धै रत्नैश्चित्रैर्यथाविधि। संवत्सरं यथान्यायं सत्यान् कामानवाप्नुयात् ॥८॥

हे द्विज! इस कर्म के प्रभाव से पुत्रवियोग कदापि नहीं होता तथा भ्रातृवियोग भी नहीं होता। उस साधक को व्याधि तथा अन्य उपसर्ग भी नहीं होते। वह एक मन्वन्तर-पर्यन्त उमालोक में क्रीड़ा करता है। इस षोड़शान्त मन्त्रोच्चार से सुवर्ण, पुष्प, गन्ध तथा विचित्र रत्न द्वारा यथाविधि पूजा करने के उपरान्त एक हाथ का तृण अंगुष्ठ-तर्जनी योग से पकड़कर उसे प्रज्वलित करना चाहिये। जब तक वह जलता रहे तभी तक भोजन करना चाहिये। एक वर्ष तक ऐसा व्रत करने से समस्त कामवस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं।।५-८।।

प्रदीप्ता नवमी वत्स हेमगोदक्षिणा मता। व्रतान्ते विधिना तेन संग्रामे अपराजितः ॥९॥
भवते शत्रुसंघस्य यथा देवो महेश्वरः। अनेनैव विधानेन गुग्गुला गुडिकाथवा ॥१०॥

यह कर्म नवमी तिथि को करना चाहिये। हे वत्स! इसका नाम है—प्रदीप्त नवमी। इस व्रत की दक्षिणा है—स्वर्ण तथा गौ। यह व्रत यथाविधि सम्पन्न करने पर देवदेव महेश्वर की तरह समर में शत्रुओं पर विजय मिल जाती है। साधक उनके लिये अजेय हो जाता है। गुग्गुला अथवा गुड़िका व्रत का भी यही विधान है।।९-१०।।

पूजयित्वा शिवां मन्त्रैः प्रदीप्ते होमयेद्विधौ। पूर्वोक्ता दक्षिणा चात्र फलं वाजिमखोदितम् ॥११॥

शुक्ल पक्ष में मन्त्रोच्चार करके शिवा की पूजा तथा होम करना चाहिये। दक्षिणा पूर्ववत् प्रदान करनी चाहिये। इस व्रत का फल है—अश्वमेध यज्ञ के समान फल की प्राप्ति।।११।।

मनुरुवाच

ग्रहदोषापसृष्टस्य राज्ञो राजसुतस्य वा। महिष्या वा मृतापत्या द्विजातिष्वथ राजनि ॥१२॥
विपद्गते फलं यस्य सुप्रयत्नकृतोद्यमे। गजाश्वगोवृषाणाञ्च यत्र हानिः प्रजायते ॥१३॥
यत्र भौमान्तरीक्षे च उपसर्गः प्रदृश्यते। तत्र कुर्य्यान्महायोगं प्राज्ञं पुण्याभिषेचनम् ॥१४॥
मूलं राजा समाख्यातस्तस्य शाखा प्रजादिकम्। तदुपघातसंस्कारैः शुभे वा अशुभेऽपि वा ॥१५॥
यत्नः कार्य्यः सदा वत्स मूलं शाखादिकं भवेत्। मूले विनष्टे नश्यन्ति शाखाद्याः फलसञ्चयाः ॥१६॥
ततोऽर्थं मूलरक्षाणां यतितव्यं महामुने। धर्मार्थकाममोक्षाणां स हि हेतुः प्रपद्यते ॥१७॥

मनु कहते हैं—राजा अथवा राजपुत्र के ग्रहदोष से कातर हो जाने पर अथवा रानी को मृतापत्यता अथवा एक साथ अधिक सन्तानदोष किंवा मनःपीड़ा होने पर अथवा राजा के विपन्न हो जाने पर महायाग तथा पुण्याभिषेचन करना चाहिये। उस बुद्धिमान व्यक्ति को गज-अश्व-गो-वृषभ की हानि होने पर, भौम-अन्तरिक्ष उत्पात या ग्रहोत्पात होने पर भी यही अनुष्ठान करना चाहिये। इससे विपद में सुप्रयत्नकृत कर्मोद्यम से कार्यसिद्धि होती है। राजा जड़ है एवं प्रजा उसकी शाखायें हैं। हे वत्स! इस मूल संचित अदृष्ट के कारण शुभाशुभ होने पर सतत यज्ञ करने का नियम है। मूल बचे रहने पर ही शाखायें बचती हैं। मूल के नष्ट होने पर शाखा-फलादि सभी नष्ट हो जाते हैं। अतएव हे महामुने! मूल की सदा रक्षा करनी चाहिये। राजा ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का हेतु होता है।।१२-१७।।

ब्रह्मणा या पुरा शान्तिर्महेन्द्रार्थं बृहस्पतिः। व्याख्याता कीर्त्तयिष्यामि तां ते शौनक शृणुष्व ताम् ॥१८॥
पुष्ये स्नानं तथा पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। उत्पातशमनं दिव्यं यत्र कार्य्यावधारय ॥१९॥

भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र के हितार्थ जो शास्त्रविधि बृहस्पति से कही थी, हे शौनक! आप सब भ्रातृगणार्थ वह सब कहता हूँ। पुष्यस्नान दिव्य तथा महापुण्यप्रद है। यह सर्वपापनाशक है। इस समय यह सुनो कि उपसर्ग नष्ट किससे होते हैं।।१८-१९।।

वल्मीकतुषकेशास्थिकटुं कण्टकवर्जिते। स्निग्धश्लेष्मातिदौर्गन्धिविगताक्षे महीतले ॥२०॥
कङ्ककापोतगृध्रोलूककाकादिपरिवर्ज्जिते। सुशुभे चर्म्मकाशोके वकुलाम्राभ्रशाद्वले ॥२१॥

वहाँ वल्मीक, तुष, केश, अस्थि तथा तीक्ष्ण काँटे नहीं होने चाहिये। भूमि स्निग्ध हो, श्लेष्मादियुक्त अथवा दुर्गन्ध वहाँ न हो। कङ्क, कपोत, गृध्र, उलूक, काक आदि वहाँ न हों। स्थान उत्तम शोभान्वित हो; चम्पक, अशोक, बकुल, आम्रवृक्षों से शोभित हो। वह स्थान अनेक आम्रवृक्ष से युक्त तथा शाद्वल हो।।२०-२१।।

तरुणा तरुवेल्लिप्रतते निरुपहतदलान्विते। सुमधुरे वृक्षप्राये फलपल्लवशोभिते ॥२२॥
पक्षिशावगणाकीर्णे कृकवाकूपशोभिते। जीवंजीवकहारीतशतपत्रशुकाकुले ॥२३॥
चकोरं कुरु वा वत्स चक्रवाकोपशोभिते। शिखिपारावतश्रीककोककोकिलनादिते ॥२४॥
मधुपुष्पसुरापानमत्तषट्कर्णाकुले। यागं कुर्य्याद्वनोद्देशे क्षेत्रारण्येऽथवा शुभे ॥२५॥

नवीन तरुलता, निर्धूत पत्ते हों, प्रचुर मधुमय पौधे हों, फल-पल्लव, पक्षि-शावक, ताम्रचूड़-चकोर-हारीत-कठफोड़वा-शुक-एक प्रकार के चकोरविशेष, चक्रवाक वहाँ की शोभा वर्द्धित करते रहें। मोर, पारावत वहाँ की श्री बढ़ाते रहें। चक्रवाक तथा कोयलें गान करती रहें। पुष्पों के पराग के पान में प्रमत्त भौरों से वह स्थान परिव्याप्त हो। ऐसी वनभूमि अथवा शुभ क्षेत्रारण्य में याग करना चाहिये।।२२-२५।।

हिमाद्रौ जुहुयाद् यावत् सह्ये विन्ध्याचलेऽपि वा। नदीनां पुलिने वाथ सङ्गमे वा मनोरमे ॥२६॥
सिकतापङ्क-उत्कीर्णे जलपक्षिनखक्षते। प्रोत्प्लुतहंसच्छत्राभे गीते कारण्डसारसैः ॥२७॥
सहस्राक्षसमारम्ये सरे इन्दीवरेक्षणे। विकसत्कमलवदनाकुले कलहंसभाषिणी ॥२८॥
प्रोद्भिन्नकुड्मलकुचा नलिनीपत्रनिवासिनी। गोरोमन्थजशकृत् खुराः फेनरवाकुले ॥२९॥
सुतसम्पूर्णहुङ्कारगोवत्सवरवल्गिते। समुद्रतीरे कुर्याच्च यत्रायाताः सुतागताः ॥३०॥
रत्नसम्पूर्णकोषाश्च निवसन्ति निराकुलाः। स्वनीलनिचुलाकीर्णे उपान्ते वा खगान्विते ॥३१॥
सिंहकोलगजानाञ्च यत्र एकत्र भूभृदा। विभीयो यत्र आस्ते खगा मृगसमन्विताः ॥३२॥
तत्र कुर्य्यात्सदा स्नानं यत्र मातृगृहं शुभम्। काञ्चीकलाथ नुपूरजघनोरूभरालसा ॥३३॥
श्रीमती मृगेक्षणा वा परपुष्टप्रभाषिणी। गृहे यत्र मुदा आस्ते तत्र कुर्य्याच्च वा मुने ॥३४॥

हिमालय, सह्य पर्वत अथवा विन्ध्याचल में होम करना चाहिये। नदी-तीर, मनोहर नदीसंगम, जलचर-पक्षीगण के नखक्षत से भरे मिट्टी के ऊपर, छत्राकृति, उत्प्लवमान हंसों से भरे, कारण्डव-सारस की आवाज से गुञ्जित, इन्दीवर चक्षु-विकसत् कमल - वदना, क्वणत् कलहंसभाषिणी-प्रोद्भिन्नकोरकस्तनी-कमलिनी श्रेणी की आधारभूत सहस्राक्षसमा रमणीय सरोवर में, गोमय-गोखुर चिह्न, गोरोमसम्भूत फेनबलयुक्त, वत्सावाहनार्थ हम्बारव से समायुक्त तथा गोवत्स के उछलने से शोभित स्थान पर, रत्नकोषपूर्ण पोत जहाँ निरुद्वेग होकर ठहरते हों—ऐसे सुनील निचुलाकीर्ण पक्षिशोभित समुद्रतीर पर, अथवा सिंह-हाथी-वाराहगण जहाँ एकत्र वास करें—वहाँ पर, जहाँ मृग-पक्षीगण निर्भय हों, उस स्थान पर सतत् पुष्यस्नान करना चाहिये। हे महामुने! जहाँ मातृमन्दिर हो, वहाँ सदा स्नान करना चाहिये। काञ्ची-नूपुरभूषिता, जघन-ऊरु-भार से मन्थरा, मृगलोचना, परपुष्टप्रभाषिणी जहाँ प्रमुदिता हों, हे मुने! वहाँ पुष्यस्नान कर्त्तव्य होता है।।२६-३४।।

पूर्व्वोदक् प्लवने भूमौ प्रदक्षिणपथे जने। श्वाविन्मृधि केविवरैः कर्कटिवासवर्ज्जिते ॥३५॥
वर्णा गन्धरसोपेताः घना स्निग्धा समाः शुभा। दृष्टा सा वीजरोहाद्यैर्बहुशः सुपरीक्षिता ॥३६॥
गत्वा तां शुभे मुहूर्ते कौवेर्य्यामधिवासयेत् ॥३७॥

जो पूर्वोत्तर में नीचा हो, ऐसे प्रदक्षिण पथ तथा जलाशय के समीप के भूभाग पर पुष्यस्नान करना चाहिये। शल्लकीगर्त्त, मूषिक गर्त्त तथा कर्कटगर्त्तरहित स्थान में ही पुष्यस्नान करना चाहिये। उत्तर दिक् में जाकर उत्तम वर्ण-गन्ध-सुगन्धयुक्त, घन, स्निग्ध, सम-सुपरीक्षित वेदी पर शुभ मुहूर्त्त में अधिवासन करना चाहिये।।३५-३७।।

बलिपुष्पोपहारञ्च मन्त्रयुक्तं निवेदयेत्। आगच्छन्तु सुराः सर्वे यत्र पूजाभिलाषिणः ॥३८॥
दिशो द्विजा नगाश्चैव ये चाप्यन्येंऽशभागिनः। आवाह्यैवं ततः सर्वान्नेवं ब्रूयात् पुरोहितः ॥३९॥
श्वः पूजां प्राप्य यातारो दत्त्वा शान्तिं महीभुजे। कृत्वा पूजां ततस्तासां रात्रौ तस्मिन् परावसेत् ॥४०॥

वहाँ मन्त्रोच्चारण के साथ बलि-पुष्पोपहार प्रदान करना चाहिये। वहाँ कहे कि—पुण्याभिलाषी देवगण, दिशायें-द्विजगण-नागगण तथा अन्य इसके अंशों को पाने के अधिकारीगण यहाँ आइये। पुरोहित इस प्रकार से इनका आवाहन करके कहे कि—आगामी दिन पूजा ग्रहण करके राजा को शान्ति प्रदान करके गमन करें। तदनन्तर उनकी पूजा करके रात्रि में वहीं शयन करना चाहिये।।३८-४०।।

स्वप्नाः शुभाश्च गोवत्सदधिदेवाङ्गदर्शनम्। दृष्टा दूर्व्वाक्षतं रत्नफलशैला जयावहाः ॥४१॥
छत्रचामरशङ्खाब्जसितवासादिदर्शनम्। लाभो वा सर्वकामानां पूरणाय प्रकीर्तिताः ॥४२॥
फलपुष्पलतावृक्षाः क्षीरिणः शुभदा मताः। तेषामारोहणं श्रेष्ठं प्रासादे वृषभादिषु ॥४३॥
चन्द्रार्कग्रहणं शस्तं पर्वतारोहणं शुभम्। निगडैर्बन्धनं स्वप्ने विद्विषश्च जयावह ॥४४॥

स्वप्न में गो, गोवत्स, दधि, देवाङ्गना का दर्शन शुभ होता है। दूर्वा, अक्षत, रत्न, फल का दर्शन राजा हेतु जयप्रद होता है। स्वप्न में छत्र, चामर, शङ्ख तथा शुक्ल वस्त्रदर्शन अथवा उनकी प्राप्ति से सभी अभीष्ट प्राप्त होता है। स्वप्नदृष्ट क्षीरयुक्त फल-पुष्प-लता-वृक्ष सुखदायी होते हैं। वृक्ष पर, प्रासाद पर तथा वृषभ पर आरोहण भी शुभ है। स्वप्न में चन्द्र-सूर्यग्रहण प्रशस्त हैं। पर्वतारोहण भी शुभ है। स्वप्न में स्वयं का जंजीर से बंधा होना जय का सूचक है।।४१-४४।।

परिवर्त्तं गिरेः कुर्य्याच्छत्रुर्वाचावगूहति। वेष्टयेद्यस्तु प्रासादं स्वान्तेस्तस्य जयो भवेत् ॥४५॥
मृतरोदनमागम्यागमनञ्च शुभावहम् ॥४६॥
स्वप्ने तु कूपपङ्केषु गर्त्ताद्वा तरणं शुभम्। नदीषु तरणं शस्तं समुद्रोत्तरणं तथा ॥४७॥

स्वप्न में पहाड़ का परिवर्तन, शत्रु का आलिङ्गन तथा प्रासाद-वेष्टन जयप्रद होता है। अपनी नाभि से वृक्षोत्पादन स्वप्न में देखने से सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। वहीं अपनी मृत्यु, रोदन तथा अगम्यागमन देखना, कूप-कीचड़-गर्त्त-नदी अथवा कूप से स्वयं को निकलते देखना भी शुभप्रद होता है।।४५-४७।।

निर्ज्जित्य शत्रुसैन्यञ्च जयं प्राप्नोति मानवः। कटकादि-अलङ्काराः पुत्रराज्यसुखप्रदाः ॥४८॥
सुहृदञ्जनवैपञ्ची लाभाः स्त्रीधनदायकाः। रुधिरन्तु पिबेद्यस्तु तरते वा यदि क्वचित् ॥४९॥
मासादिभक्षणे लाभे लभते चेहितं फलम्। हास्यनृत्यरतोत्साहपाठनाः कलिकारकाः ॥५०॥

स्वप्न में शत्रुजय देखने से जय मिलती है। वलयादि अलंकारों का स्वप्न पुत्र-राज्यप्रद तथा शुभ होता है। स्वप्न में सुहृद, अञ्जन-वीणाप्रभति देखने पर स्त्रीधन प्राप्त होता है। रक्त जलपान, रक्त जल में तैरना, गीले मांस की प्राप्ति अथवा उसका भक्षण देखने पर अभीष्ट-प्राप्ति होती है। वहाँ हास्य-नृत्य-रति-उत्साह तथा अध्ययन देखने से कलह होता है।।४८-५०।।

याम्ययानाङ्गना कृष्णानयनं भयमृत्युदम्। पङ्कजा गोधगामित्वं कूपमनुप्रवेशनम् ॥५१॥
उत्तरे भयदं स्वप्ने रक्तमाल्याम्बरागमः। स्वराष्ट्रे कपिकाकोलूवराहाहिनिर्ग्रन्थयः ॥५२॥

स्वप्न में दक्षिण दिशा की ओर जाना, कृष्ण वर्ण स्त्री का साथ होना भय तथा मृत्यु का हेतु होता है। पंकज का अधोगमन, कूपप्रवेश, अथवा उत्तर दिशा की ओर रक्त माला, रक्त वस्त्र पहनकर जाना भयसूचक है। गर्दन, ऊँट, वानर, काक, उलूक, वराह, सर्प तथा निर्ग्रन्थी साधु देखना अशुभकारक है।।५१-५२।।

दृष्ट्वाशुभान् जपः कार्य्यो धातुजाः न फलप्रदाः । वातपित्तकफोत्थेषु यानाग्नितरणादिका ॥५३॥
ग्रीष्मशरद्वसन्तेषु प्रकोपा न फलप्रदाः । श्रुतानुकीर्त्तने दृष्टमनुभूतानुगर्हिताः ॥५४॥

अशुभ स्वप्न देखने पर जप कर्त्तव्य है; लेकिन कफ-पित्त-वात के कारण सम्भूत जो स्वप्न होते हैं, वे निष्फल होते हैं। ग्रीष्म-शरद-वसन्त वात-पित्त-कफ प्रकोपमूलक होते हैं। इसके कारण गमन-तारण जैसे स्वप्न फलप्रद नहीं होते। देखे गये स्वप्न का बखान करने तथा सुनाने से उनका फल नहीं होता। हाँ, उसके फल का अनुभव करने के उपरान्त कहने से कोई दोष नहीं है।।५३-५४।।

न चेष्टा यदि वा दृष्टाः प्रदोषे प्रथमे तथा । मध्ये मध्यफलाः सर्वे चान्ते शीघ्रफलप्रदाः ॥५५॥
गोविसर्गे च ये दृष्टास्ते तथा परिकीर्त्तिताः । दृष्ट्वा स्वप्नान् शुभान् यागं कुर्य्यानिष्ठान्न कारयेत् ॥५६॥
स्नानं देवार्च्चनं होमं जपं शान्तिं समारभेत् । कृत्वा शुभं भवेत् सर्वं ततो मण्डलमालिखेत् ॥५७॥

प्रथम प्रदोष दृष्ट स्वप्न फलप्रद नहीं होता। मध्यरात्रि को देखे गये स्वप्न मध्यफल तथा अन्तिम रात्रि में देखे स्वप्न शीघ्र फल देते हैं। प्रातःकाल (गोमोक्षकाल) में दृष्ट स्वप्न सद्यः फलप्रद होते हैं। शुभ स्वप्न देखकर याग करना चाहिये। दुःस्वप्न देखने पर पहले स्नान, देवार्चन, होम, जप, शान्ति कार्य करना चाहिये। इससे शुभ होता है। तदनन्तर मण्डल अंकित करना चाहिये।।५५-५७।।

चतुर्हस्तं समारभ्य यावद्धस्तशतं भवेत् । मण्डलं तत्र कर्त्तव्यमत ऊर्द्ध्वं न कारयेत् ॥५८॥
विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवम् । वर्द्धमानञ्च दैवञ्च मंदाक्षं कामदायकम् ॥५९॥
रुचकं स्वस्तिकाख्यञ्च द्विदशञ्चेति मण्डलाः । सित्यादिहरिताश्च रजाः कार्य्याः सुशोभनाः ॥६०॥

मण्डल ४ हाथ से लेकर १०० हाथ तक का हो सकता है। इससे बड़ा मण्डल नहीं होना चाहिये। विमल-विजय-भद्र-विमान-शुभद-शिव-वर्द्धमान-दैव-लताक्ष-कामदायक-रुचक तथा स्वस्तिक—ये द्वादश मण्डल होते हैं। श्वेत से हरा-पर्यन्त सुशोभन चूर्ण इसे बनाने के लिये उचित होता है।।५८-६०।।

शालिषष्टिककौसुम्भरजनीहरिपत्रजाः । मणिविद्रुमरागाश्च भस्मना अभिमन्त्रिता ॥६१॥
सितसर्षपधूपाद्या रजः कृत्वा तु पातयेत् । अस्त्रराजं न्यसेन्मन्त्री सम्भवेऽतिपदं पि वा ॥६२॥

शालि, षष्टिक, कुसुम्भ, हल्दी तथा हरितपत्र से यह सब चूर्ण बनाना चाहिये। भस्माभिमन्त्रित श्वेत सर्षप, धूपाढ्य, मणि-विद्रुम, पद्मराग की भस्म को अभिमन्त्रित करके चूर्ण बनाकर मण्डप लिखना चाहिये। अस्त्रराजमन्त्र अथवा सम्भव पद द्वारा (इन्हें पढ़ते हुये) इस चूर्ण से मण्डललेखन करना याजक का कर्त्तव्य है।।६१-६२।।

समोत्थानं शुभं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम् । सचन्दनगुरुकर्पूरक्षोदधूपाधिवासितम् ॥६३॥
भूभागं सुमितं सिद्धं पूर्वपश्चिम चोत्तरम् । साम्यं स्वस्तिकमत्स्याद्यैः सूत्रैर्वाण्डजपत्रजैः ॥६४॥
पद्मपत्राष्टकं मध्ये द्विगुणं त्रिगुणं पिवा । द्वाराणि समसूत्राणि कर्णिका केशरोज्ज्वलम् ॥६५॥

मण्डलस्थान को सम-गोमय से लिप्त, चन्दन-अगुरु-कर्पूरचूर्ण तथा धूप से अधिवासित होना चाहिये। मण्डल का भूभाग उत्तम रूप से परिमाण के अन्तर्गत एवं पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, चतुर्दिक् समान होना चाहिये। सूत्रपात में स्वस्तिक मत्स्यादि रेखा होनी चाहिये। मध्य में अष्टदल पद्म होना चाहिये अथवा तदपेक्षया दूना-तिगुना होना चाहिये। द्वारसमूह (सभी द्वार) समसूत्र में होने चाहिये। पद्म भी कर्णिका तथा केसर द्वारा उज्ज्वल रहना चाहिये।।६३-६५।।

पद्मं तथावशेषानि स्वस्तिकान्युत्पलानि च। सव्यावलम्बहस्तस्तु रजःपातं समाचरेत् ॥६६॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरुपविष्टा यथेप्सया। अधोमुखाङ्गुलिं कृत्वा पातयेत्तु विचक्षणः।
समारेखा तु कर्त्तव्या विच्छिन्ना पुञ्जवर्जिता ॥६७॥
अङ्गुष्ठपर्व्ववैपुल्या समा कार्य्या विजानता। संसक्तं विषमं स्थूलं विच्छिन्नकृषरावृतम् ॥६८॥

बचे भाग में स्वस्तिक चिह्न तथा कल्हार नामक जलोत्पन्न पुष्पविशेष का चित्र रहना चाहिये। दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका, अंगुष्ठाङ्गुलियोग से इच्छागत रूप से उक्त पञ्चवर्ण चूर्ण का (रेखाङ्कनार्थ) उपयोग करना चाहिये। चूर्ण उपयोग करते समय उँगलियाँ अधोमुखीन के साथ-साथ सभी रेखायें समान—बिना छिन्न तथा पुञ्जरहित रहनी चाहिये (पुञ्ज अर्थात् कहीं घनी कहीं विरल)। अंगुष्ठपर्व से मोटी रेखा नहीं बनानी चाहिये। समस्थल रेखा होनी चाहिये। परस्परतः सटी, विषम (मोटी-पतली), अधिक स्थूल, विच्छिन्न कृषरावृत्त (खिचड़ी जैसी) नहीं होनी चाहिये।।६६-६८।।

पर्य्यन्तसहितं ह्रस्वमालिखेद्वा कदाचन। संसक्ते कलहं विद्याद्वक्ररेखे तु विग्रहम् ॥६९॥
अतिस्थूले भवेद्व्याधिर्नित्यं पीड़ा विमिश्रिते। विन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशयः ॥७०॥

प्रान्त में विसर्पी (टेढ़ा-मेढ़ा) तथा ह्रस्व मण्डल नहीं बनाना चाहिये। सटी रेखाओं वाले मण्डल से कलह उत्पन्न होता है। वक्ररेखा मण्डलयुद्ध कराता है। अतिस्थूल रेखा व्याधिकारक, मिश्रित रेखा पीड़ाप्रद, बिन्दुयुक्त रेखा शत्रुभयदायी होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।६९-७०।।

कृशायाञ्चार्थहानिः स्याद् विच्छिन्ने मरणं ध्रुवम्। विप्रयोगो भवेत्तस्य इष्टं द्रव्यसुतस्य वा।
अविदित्वा लिखेद्यस्य मण्डलन्तु यथेप्सया ॥७१॥
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः पूर्वभाषिताः। चतुरस्रं चतुर्द्वारं लिखेन्मण्डलमुत्तमम् ॥७२॥
मण्डलस्य प्रमाणेन पद्मं द्वारान् समालिखेत्। हस्तेनोन्नतकर्त्तव्यं पद्मं विप्र कदाचन ॥७३॥
नाधिकं चतुरूद्ध्वन्तु लिखितव्यं विजानता। प्रतापायु स्त्रियो धर्म्मी राज्यं श्रीरूपशान्तता ॥७४॥

कृश रेखा से अर्थहानि, विच्छिन्न रेखा से निश्चित मरण तथा इष्ट द्रव्यवियोग अथवा पुत्रवियोग हो सकता है। जो व्यक्ति बिना जाने (बिना विधिज्ञान के) मण्डललेखन करता है, उसे पूर्वोक्त समग्र दोष हो जाता है। चतुष्कोण-चतुर्द्वार मण्डल लेखनीय है। मण्डलप्रमाण में पद्म तथा सभी द्वारों को लेना चाहिये। हे विप्र! एक हाथ से छोटा तथा चार हाथ से बड़ा पद्म कदापि नहीं बनाना चाहिये। यदि मण्डल पूर्वद्वारी है तब प्रताप, आयुवृद्धि, स्त्री, धर्म, राज्य, ऐश्वर्यरूप शान्ति मिलती है।।७१-७४।।

योगाप्तिरर्थलाभश्च पूर्वद्वारे तु मण्डले। सिद्धिर्मेधा यशः सौख्यमारोग्यं जनवल्लभम् ॥७५॥
सर्वकामार्थसिद्धिश्च उत्तरे द्वारमण्डले। पुत्रमायुर्बलञ्चैव सौभाग्यं रिपुमर्दनम् ॥७६॥
यज्ञकर्माभिवृद्धिश्च पश्चिमद्वारि मण्डले। तस्य मध्ये पुनः पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥७७॥
चतुर्वितस्तिकं विप्रे राजन्ये त्रिवितस्तिकम्। पद्मस्यैवानुपूर्वेण नालं तदनुपूर्वशः ॥७८॥
वारुणीं दिशमाश्रित्य नालन्तु परिकल्पयेत्। सप्तपातालसौनालं भुवनान्ताः प्रकीर्त्तिता ॥७९॥

उसे योगलाभ तथा अर्थलाभ भी होता है। मण्डल के उत्तर द्वारा होने पर सिद्धि-मेधा-यश-सुख-आरोग्य-लोकप्रियता तथा सर्व अभीष्ट-प्राप्ति होती है। पुत्र-आयु-बल-सौभाग्यप्राप्ति एवं रिपुमर्दन भी होता है। पश्चिम दिशा की ओर पद्म का नाल करना चाहिये। चतुर्दश भुवनों में से सात पाताल ही नाल हैं। कर्णिका सुमेरु है। पद्मबीज हैं—ग्रहगण। पद्मकेशर नदीसमूह हैं तथा पर्वतगण कटक में स्थित हैं। अष्टदल हैं—आठ दिशायें। इस प्रकार से पद्मप्रतिष्ठा होती है। नाल केवल सप्तपाताल ही नहीं है, बल्कि वह भूलोंकरूपेण भी कहा गया है।।७५-७९।।

ईदृशं कल्पितं पद्मं देवदेवेन शम्भुना। ध्वजतोरणसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम् ॥८०॥
कर्णिका तु भवेन्मेरूर्बीजैर्ग्रहगणाः स्थिताः। केशरास्तु भवेन्नद्यः कण्टके पर्वता स्थिताः ॥८१॥
अष्टौ दला दिशः प्रोक्ता एकः पद्मः प्रतिष्ठितः। सप्तपातालभूर्लोके नालन्तु परिकीर्त्तितम् ॥८२॥
भूर्लोकस्तु दला ज्ञेयो दिगात्मा शून्यगोचरा। स्वर्लोकः कर्णिकाख्यातस्त्रैलोक्यं पद्मसंज्ञितम्।
कर्णिकायां न्यसेद्देवं पूजाकाले महेश्वरम् ॥८३॥
मातरा ग्रहनागाश्च यक्षा रक्षा दिवौकशः। वसवो मुनिलोकेशाः सरुद्रा भुवनाधिपाः ॥८४॥
लवाः काष्ठाः क्षणा यामा रात्र्यहाः ससिताः सिताः। पक्षा मासा ऋतुर्मार्गो समा युगयुगान्तराः ॥८५॥
कल्पान्ताश्च महाकल्पाः पद्मे चैवं समालिखेत्। प्रथमे मण्डले देवं शिवं विद्येशसंयुतम्।
गणनायकसंयुक्तं द्वितीयावरणे यजेत् ॥८६॥

देवदेव शम्भु का इस प्रकार का ध्वजा-तोरणयुक्त, पताका से अलंकृत मण्डल ही पद्म का प्रवर्त्तयिता होता है। पद्म ही त्रैलोक्यरूप है। दिक् शून्य समन्वित भूर्लोक उसका दल है। कर्णिका स्वर्लोक है। कर्णिका में महेश्वर-मातृगण-ग्रहगण-नाग-यक्ष-राक्षस-सूर्य-वसु-मुनि-लोकपाल-मास-ऋतु-संवत्सर-युग-युगान्तर-कल्पान्त तथा महाकल्प लेखनीय हैं। प्रथम मण्डल में विद्येश्वरसमन्वित शिवा एवं द्वितीय मण्डल में गणेशसमन्वित शिव का पूजन करना चाहिये।।८०-८६।।

सग्रहं भास्करं प्राच्यामैशान्यान्तु पिनाकिनम्। सौम्यास्यं केशवं रक्षे पश्चिमस्यां पितामहम् ॥८७॥
तृतीये मण्डलारण्ये भेदिन्यामुपकल्पिते। नानारत्नाकराकीर्णे भूयो देवान् समालिखेत् ॥८८॥
पुरोहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् पितॄन् सुरान्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धान् निधापयेत् ॥८९॥
ग्रहाश्च ग्रहनक्षत्रैः सरुद्राश्चैव मातरः। स्कन्दं विष्णुं विशाखञ्च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥९०॥
वर्णकैर्विविधैः कृत्वा कृत्यैर्गन्धगुणान्वितैः। यथा सम्पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥९१॥
भक्ष्यैरनेकैर्विविधैः फलमूलामिषैस्तथा। पानैस्तु विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥९२॥
विशेषाद्विहिता पूजा ग्रहयज्ञे मया पुरा। मातराणां सुराणाञ्च साप्यत्रैवोपकल्प्यते ॥९३॥

पूर्व दिक् में ग्रहगण तथ सूर्य, ईशान कोण में शिव, नैर्ऋत्य कोण में केशव तथा पश्चिम की ओर ब्रह्मा पूज्य हैं। पुरोहित द्वारा तृतीय मण्डल में यथास्थान नाग-यक्ष-देवता-गन्धर्व-अप्सरा-मुनि-सिद्ध तथा पितृगण को स्थापित करना चाहिये। ग्रह-नक्षत्र-रुद्र-मातृगण-स्कन्द-विष्णु-विशाख-लोकपाल तथा सुराङ्गनागण की मूर्त्ति विचित्र वर्णों से चित्रित करके उनका गन्ध-माला-अनुलेपन-विविध भक्ष्य पदार्थ तथा फल-मूल-आमिष से, सुरा-दुग्धासवादि नानाविध पेयों से पूजन करना चाहिये। देवगण तथा मातृगण की विशेष पूजनविधि ग्रहयज्ञ प्रकरण में पहले कह दी गई है। यहाँ भी तदनुरूप विधान से पूजा करनी चाहिये।।८७-९३।।

पिशाचान् दानवान् रक्षान् मांसमद्यैः प्रपूजयेत्। अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैर्मांसेन पितरस्तथा ॥९४॥

पिशाच, दानव तथा राक्षसों का पूजन मद्य-मांस से करना चाहिये और अभ्यञ्जन-अञ्जन-तिल तथा मास से पितरों की पूजा करनी चाहिये।।९४।।

मुनयः सामयजुभिः ऋग्गन्धैर्धूपमाल्यकैः। त्रिमधुरेण च नागानशेषैर्वर्णकैस्तथा ॥९५॥
धूपाज्याहुतिदानैश्च देवान् रत्नदक्षिणैः। गन्धर्वाप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुमनैस्तथा ॥९६॥
शेषास्तु सार्ववर्णिके बलिगन्धैश्च पूजयेत्। प्रतिसराणि पताकाश्च वस्त्राण्याभरणानि च ॥९७॥
सर्वेषां च प्रदेयानि सयज्ञोपवीतानि च। दक्षिणे पश्चिमे चैव वायव्यां मण्डलस्य वा ॥९८॥
ग्रहयज्ञविधानेन होमं मातृमखोदितम्। कृत्वा द्रव्यैरिमैर्वत्स यथोक्तैर्लक्षणान्वितैः ॥९९॥

ऋक्-साम-यजुर्वेदपाठ एवं गन्ध-धूप-मालादि से मुनिपूजा करनी चाहिये। दुग्ध-शर्करा-मधु—इस त्रिमधुर द्वारा नागों का पूजन कर्त्तव्य है। धूपादि दान तथा होम से देवगण की पूजा करनी चाहिये। गन्ध-पुष्प-माला से गन्धर्व तथा अप्सराओं की पूजा करनी चाहिये। अन्य देवताओं का पूजन सर्व वर्णयुक्त गन्ध तथा बलि से की जाती है। प्रतिसर-पताका-वस्त्र-आभरण तथा यज्ञोपवीत सभी को प्रदान करना चाहिये। मण्डल के दक्षिण-पश्चिम अथवा वायुकोण में पूर्वोक्त ग्रह-यज्ञविधान से मातृयज्ञोक्त होम करना कर्त्तव्य है।।९५-९९।।

लाजाक्षतं घृतं क्षौद्रं दधि क्षीरं सरीसृपाः। सिद्धार्थाः सुमनोगन्धधूपाश्च ससितोत्कटाः ॥१००॥
गोरोचनातिला दर्भाः स्वर्त्तुजानि फलानि च। घृतपायसपूर्णाश्च रागवान् विनिवेदयेत् ॥१०१॥
पश्चिमायान्तु वेद्यायां पूजेयं स्नानिकी भवेत्। कलशान् सुदृढान् कुर्य्याल्लक्षणेन वदामि ते ॥१०२॥

इति श्रीदेवीपुराणे पुष्याभिषेके चिन्ता नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

लाज (लावा), अक्षत, घृत, मधु, दधि, श्वेत सरसों, गन्ध, पुष्प, धूप, शर्करा, गोरोचन, तिल, कुश, आर्त्तवफलरूप सुलक्षण होम द्रव्यों से होम करके घृतपायस का पूर्णपात्र में क्षेपण करना चाहिये। पश्चिम वेदी में जो पूजा है, वह स्नान के पश्चात् साक्षात् उपयोगी है (अर्थात् स्नानोपरान्त करना चाहिये)। वहाँ सुदृढ़ कलस-स्थापना आदि करना चाहिये। उसे अब मैं लक्षणानुरूप कहता हूँ।।१००-१०२।।

पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त

●

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

उत्पत्तिं लक्षणं मानं कथयामि महामुने। बाधकः कलशश्चैव येन लोके प्रकीर्तितः ॥१॥
अमृते मथ्यमाने तु सर्वदेवैः सदानवैः। मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२॥
उत्पन्नममृतं तत्र महावीर्यं पराक्रमम्। तस्यायं धारणार्थाय कलशः परिकीर्तितः ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे महामुने! कलसोत्पत्ति का लक्षण तथा परिणाम कहते हैं। धारणशील कलस जिस कारण से होता है, वह कहता हूँ। सभी देवगण ने दानवगण के साथ मन्दर पर्वत को मन्थनदण्ड बनाकर तथा उसकी मन्थनरज्जु वासुकी को बनाकर अमृत मंथन किया। इससे महावीर्य पराक्रम का हेतुभूत, अमृत उत्पन्न हो गया। उस अमृत के धारण के लिये (रखने के लिये) कलस की उत्पत्ति हो गयी।।१-३।।

कलां कलां गृहीत्वा वै देवानां विश्वकर्म्मणाम्। निर्म्मितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलशस्तेन उच्यते ॥४॥
कलशस्य मुखे ब्रह्मा ग्रीवायान्तु महेश्वरः। मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः ॥५॥

विश्वकर्मा ने देवगण का अंश-अंश ग्रहण करके उसका निर्माण किया था। देवतागण ने कला-कला (अंश-अंश) द्वारा इसे बनाया था; अतः इसका नाम कलस कहा गया। इसके मुख में ब्रह्मा, ग्रीवा में महेश्वर, मूल में विष्णु तथा मध्य में मातृगण की स्थिति रहती है।।४-५।।

शेषास्तु देवताः सर्वा वेष्टयन्ति चतुर्दिशम्। कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपास्तु संश्रिताः ॥६॥

शेष देवतागण कलस के चारो ओर उसे वेष्टित करके विराजित रहते हैं। कलस के भीतर सप्त सागर तथा सप्तद्वीप स्थित रहते हैं।।६।।

नक्षत्राणि ग्रहाः सर्वे तथैव कुलपर्वताः। हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ॥७॥
रोहितो माल्यवन्तश्च सूर्य्यकान्तिश्च पर्वताः। गङ्गा सरस्वती सिन्धु सुभगा यमुना नदी ॥८॥
एरावती शतह्रदा तथा वैतरणी नदी। गोदावरी नर्म्मदा च मही नाम महानदी ॥९॥
कुरुक्षेत्रं प्रयागञ्च एकहंसं पृथूदकम्। अमरेश्वरं पुण्डरीकं गङ्गासागरमेव च ॥१०॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशे निवसन्ति ते। ग्रहशान्तिश्च पुष्टिश्च प्रीति गायत्रिरेव च ॥११॥

ग्रह-नक्षत्र, हिमवान-हेमकूट-निषध-मेरु-रोहित-माल्यवान् तथा सूर्यकान्ति आदि पर्वत, गंगा-सरस्वती-सिन्धु-सुभगा-यमुना- ऐरावती-शतह्रदा-वैतरणी-गोदावरी-नर्मदा-मही आदि नदी, कुरुक्षेत्र-प्रयाग-एकहंस-पृथूदक-अश्वमेध-पुण्डरीक तथा गंगासागर प्रभृति सब तीर्थ जो पृथिवी पर स्थित हैं, वे सभी कलस में स्थित रहते हैं। ग्रह, शान्ति, पुष्टि, प्रीति, गायत्री भी कलस में स्थित रहते हैं।।७-११।।

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च। अथर्ववेदसहिताः सर्वे कलशसंस्थिताः ॥१२॥
न चैव कलशाः पुण्याः शम्भूमूर्त्तिसमुद्भवा। गोभ्योऽपगोभ्यो मरुतः समुदश्च तथापरे ॥१३॥
मनोहरः खलु भद्रः पञ्चमः परिकीर्त्तितः। विरजस्तनुदूषश्च षष्ठसप्तमकावुभौ ॥१४॥
अष्टमस्त्विन्द्रियोपेतो नवमो विजयः स्मृतः। नवैव कलशाः ख्याता अधिदेवं निबोधत ॥१५॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वसंहिता—ये सभी कलस में स्थित हैं। नव कलस ही शिवमूर्त्ति से उद्भूत तथा पवित्र होता है। गोभा, अपगोभा, मरुत्, सुमहान्, भद्र, विरज, तनुदूष, इन्द्रियोपेत तथा विजय—ये नव कलस ख्यात हैं।।१२-१५।।

नवमो यः समाख्यातो विजयो नाम नामतः। शिवस्तत्र स्थितः साक्षात् सर्वपापहरः शुभः ॥१६॥

विजयनामक नवम कलश के अधिदेवता हैं—सर्वपापहारी साक्षात् शुभ भगवान् शिव।।१६।।

स तु पञ्चमुखः ख्यातो लोके सर्वार्थसाधकः। पञ्चब्रह्मात्मको यस्मात्तेन पञ्चमुखः स्मृतः ॥१७॥
पश्चिमे तु मुखे सद्यो वामदेवस्तथोत्तरे। पूर्वे तत्पुरुषं विद्यादघोरञ्चापि दक्षिणे ॥१८॥
ईशानः पञ्चमो मध्ये सर्वेषामुपरि स्थितः। एते पञ्चमुखा वत्स पापघ्ना ग्रहनाशनाः ॥१९॥

लोक में शिव पञ्चानन नाम से प्रसिद्ध हैं। पञ्चब्रह्मात्मक होने के ही कारण वे पञ्चमुख कहे गये हैं। वे सर्वार्थसाधक हैं। इनका पश्चिम मुख सद्योजात, उत्तरमुख वामदेव, पूर्वमुख तत्पुरुष एवं दक्षिणमुख अघोर है। साथ ही मध्यमुख सर्वोपरि ईशान है। हे वत्स! पापनाशक पञ्चमुख ग्रहदोष का निवारण करता है।।१७-१९।।

सद्योजातं भवेच्छुक्लं वामदेवन्तु पीतकम्। रक्तस्तत्पुरुषो ज्ञेयो अघोरः कृष्ण एव च ॥२०॥
ईशानः पश्चिमस्तेषां सर्ववर्णसमन्वितः। कामदः कामरूपी स्याज् ज्ञानाधारः शिवात्मकः ॥२१॥

सद्योजात शुक्लवर्ण, वामदेव पीतवर्ण, तत्पुरुष रक्तवर्ण, अघोर कृष्णवर्ण तथा अन्तिम मुख ईशान सर्ववर्णात्मक होता है। ये कामरूपी कामनाओं के आपूरक, ज्ञानाधार शिवात्मक हैं।।२०-२१।।

क्षितीन्द्रो ज्येष्ठकलशो द्वितीयो जलसम्भवः। तृतीयो पवनश्चैव चतुर्थस्तु हुताशनः ॥२२॥
पञ्चमो यजमानस्तु षष्ठश्चाकाशसम्भवः। सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त आदित्यश्च तथाष्टमः॥२३॥
एते चोत्पादिता देव्या शिवेनाधिष्ठिताः पुरा। इन्द्रस्य मूर्त्तयश्चाष्टौ सूर्य्यान्तास्तनवः शिवः ॥२४॥

प्रथम कलस के अधिदेवता पृथिवी, द्वितीय के जल, तृतीय के पवन, चतुर्थ के अग्नि, पञ्चम के यजमान, षष्ठ के (देवता हैं) आकाश सप्तम के सोम तथा आदित्य अष्टम कलस के देवता हैं। यह इन्द्र की ही अष्टमूर्त्ति है। इसकी उत्पत्ति देवी से ही होती है; अतः ये आठों शिव द्वारा ही अधिष्ठित हैं। सूर्य भी शिव ही हैं।।२२-२४।।

क्षितीन्द्रः पूर्वतो न्यास्यः पश्चिमे जलसम्भवः। वायव्ये वायवो न्यास्य आग्नेये अग्निसम्भवः ॥२५॥
सौम्यमुत्तरतो योज्यं सौरं दक्षिणतो न्यसेत्। न्यस्यैवं कलशानान्तु पूर्वरूपं विचिन्तयेत्।
कलशानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां विष्णुरेव हि ॥२६॥

प्रथम कलस पूर्व की ओर, द्वितीय पश्चिम की ओर, तृतीय वायुकोण में, चतुर्थ अग्निकोण में, पञ्चम नैर्ऋत्य कोण में, षष्ठ ईशान कोण में, सप्तम उत्तर की ओर, अष्टम दक्षिण की ओर स्थापनीय है। इस प्रकार से स्थापित करके इनके पूर्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। कलश के मुख में ब्रह्मा तथा कलश की ग्रीवा में विष्णु स्थित रहते हैं[१]।।२५-२६।।

मध्ये मातृगणाः सर्वे सेन्द्रा देवाश्च पन्नगाः। कुक्षौ तु सागरास्तेषां सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥२७॥
श्रिया चैव तथोमा च गन्धर्वा ऋषयस्तथा। पञ्चभूतास्तथा धारास्तेषामधरतः स्थिताः ॥२८॥

कलश-मध्य में मातृगण-इन्द्रादि देवगण स्थित रहते हैं। कलश के भीतर सातों समुद्र, सप्तद्वीपयुक्त पृथिवी, लक्ष्मी, उमा, गन्धर्व, ऋषिगण आदि भी इस आधारस्वरूप पञ्चभूत कलश में नीचे स्थित रहते हैं।।२७-२८।।

पूर्णाः पूतेन तोयेन सिद्धास्त्वेकान्ततोज्ज्वला। सरित्सरः सखातेन तडागेन जलेन वा ॥२९॥
वापीकूपौ च दिव्येन सामुद्रेण सुखावहाः। सर्वमङ्गलमङ्गल्याः सर्वकिल्बिषनाशकाः॥३०॥

नदी, सरोवर, तड़ाग, वापी, कूप तथा समुद्र के पवित्र जल से युक्त सुखावह प्रसिद्ध कलश-मण्डल के पार्श्व में उज्ज्वल रूपेण स्थित रहता है। यह नव कलश सर्वमंगल-माङ्गल्ययुक्त सर्वपापनाशक होता है।।२९-३०।।

अभिषेके सदा ग्राह्या कलशा ईदृशाः शुभाः। यात्राविवाहकाले वा प्रतिष्ठायज्ञकर्म्मणि ॥३१॥
योजनीया विशेषेण सर्वकामप्रसाधकाः। मृतापत्या तु या नारी या च वन्ध्या प्रकीर्तिता ॥३२॥
मूढगर्भा अगर्भा च दुर्भगा व्याधिपीडिता। एतासान्तु सदा कार्यं स्नापनं पुण्यमण्डले ॥३३॥

इससे सतत् अभिषेक करना चाहिये। यात्रा-विवाह-प्रतिष्ठा तथा यज्ञ में सर्वाभीष्टप्रद यह कलश स्थापनीय है। मृतापत्या, वन्ध्या, मूढ़गर्भा, दुर्भगा, अगर्भा तथा रमणीगण को पुण्यमण्डल में स्नान कराना चाहिये।।३१-३३।।

सर्वरत्नौषधीगन्धफलपुष्पसमन्विताः। ग्रहदोषे प्रयोक्तव्याः कल्याणे मङ्गले तथा ॥३४॥
ग्रहान् धारयते यस्मान्मातरा विविधास्तथा। दुरितांश्च महाघोरस्तेन ते धारकाः स्मृताः ॥३५॥
एकैकान्तु कलां मूर्त्तौ क्षित्यादीनां यथाक्रमम्। संहृत्य संस्थिता यस्मात्तेन ते कलशाः स्मृताः ॥३६॥

ग्रहदोष-शान्ति, कल्याण कर्म तथा मंगलार्थ स्नान में सर्वरत्न-सर्वौषधि गन्ध-पुष्पयुक्त कलश स्थापित करना चाहिये। यह ग्रह तथा मातृगण को धारण करता है, महाघोर दुरित को दूर करता है, तभी इसे धारक कहते हैं। यह पृथिवी आदि की एक-एक कला को ग्रहण करके स्थित है, अतः कलाग्रहण के कारण इसे कलश कहा गया है।।३४-३६।।

हैमराजतताम्रा वा मृण्मया लक्षणान्विताः। पञ्चाङ्गुलवैपुल्यमुत्सेधः षोडशाङ्गुलान् ॥३७॥
कलशानां प्रमाणन्तु मुखमष्टाङ्गुलं भवेत्। अष्टमूर्त्तिस्थितो योऽसौ स शिवः पद्मसंस्थितः ॥३८॥

---

१. यहाँ विरोधाभास है। पहले लिखा गया है कि (श्लोक ४,५ देंखे) ग्रीवा में महेश्वर हैं। यहाँ ग्रीवा में विष्णु की स्थिति कहते हैं। लगता है कि लिपिकार के प्रमाद से यह विरोधाभास हो गया है।

मूर्त्तयोऽष्टौ गणास्तस्य कर्णिकायां शिवः स्थितः । ये गणास्ते दला नागे ये नागा कलशाश्च ते ॥३९॥
कलशाश्च ग्रहाः प्रोक्ता लोकपाला दिशश्च ते । एतैः सर्वमिदं व्याप्तमाब्रह्म भुवनं जगत् ॥४०॥
दुराधर्षैर्महासत्त्वैः सर्वपापविशोधकैः ॥४१॥

इति श्रीदेवीपुराणे कलशोत्पत्तिनिवेशाधिदेवलक्षणकीर्त्तनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः

यह स्वर्णमय, रजतमय, ताम्रमय अथवा मृण्मय (मिट्टी का बना) हो सकता है। इसे सुलक्षणयुक्त बनाना चाहिये। इसकी स्थूलता ५ अंगुल, ऊँचाई १६ अंगुल होनी चाहिये। कलश का मुख ८ अंगुल का होना चाहिये। अष्टमूर्त्ति शिव पद्मसंस्थित रहते हैं। अष्टमूर्त्ति, शिवप्रमथगण, तथा शिव कर्णिका में स्थित हैं। प्रमथगण ही पद्म के दल हैं। पद्मदल नाग के समीपस्थ हैं। नाग ही कलश हैं। कलशगण ही ग्रह-लोकपाल तथा दिशायें हैं। सभी असीम शक्तिशाली, सर्वपापनाशक, अलङ्घनीय ग्रहादि द्वारा ही चराचर जगत् व्याप्त है।।३७-४१।।

षट्षष्टितम अध्याय समाप्त

●

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रत्नानि बीजपुष्पाणि फलानि कलशे क्षिपेत् । पुष्पमाल्याश्च वस्त्रान्ते सितचन्दनचर्च्चिताः ॥१॥
वज्रमौक्तिकवैदूर्य्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः । सर्वधातुफलबिल्वनारङ्गोडुम्बरैस्तथा ॥२॥
बीजपूरकजम्बीरआम्रआम्रातदाडिमैः । यवशालिनीवारैश्च गोधूमसितसर्षपैः ॥३॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदरोचनचन्दनम् । मांसैलाकुष्ठकर्पूरपत्रचण्डाम्बराञ्जनम् ॥४॥
जातीपत्रकणागन्धपृक्कागौरीसपर्णकम् । वचारात्रि समञ्जिष्ठा तुरुष्कं मङ्गलाष्टकम् ॥५॥
दूर्व्वा मोहनिमृङ्गाङ्कशतमूली शतावरी । बला नागबला देवी सहदेवा गजध्वरा ॥६॥
पूर्णकोशा सिता पाठा गुञ्जा सुरसिकालताम् । व्यापकं गजदन्तन्तु शतपुष्पा पुनर्नवा ॥७॥
ब्राह्मी देवी शिवा रुद्रा सर्वगन्धानि काञ्चनम् । समाहृत्य शुभान्येतान् कलशेषु निधापयेत् ॥८॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—कलश में नानारत्न, बीज, पुष्प तथा नाना फल का निःक्षेप करना चाहिये। वस्त्र में शुक्ल चन्दन- चर्चित पुष्पमाला, वज्र (हीरा), वैदूर्य, मुक्ता, महापद्म, स्फटिकादि नाना रत्न, विविध धातु, उडुम्बर, गुवाक्, जम्बु, आम्र, अनारप्रभृति फल, यव-शालि-नीवार-गोधूम-श्वेत सरसों आदि शस्य, कुङ्कुम-अगुरु-कर्पूर-मद-रोचन-चन्दन-जटामासी-कूठ-कर्पूरपत्र-तिन्तिड़ी-अम्बूरी-अञ्जन-जातीपत्र-गोरोचन-वचा-मञ्जिष्ठालता-तुरुष्क-दूर्वा-मोहिनी-शतमूली-शतावरी-बला-नागबला-सहदेवा-पाठा-गुञ्जा-सुरसिका-ध्यामक-गजदन्त-शतपुष्पा-पुनर्नवा-ब्राह्मी-शिवा-रुद्रा ऐसी सभी गन्धौषधि का तथा काञ्चनादि मांगलिक वस्तुओं का मिश्रण कलशमध्य में रखना चाहिये।।१-८।।

कल्याणं विजयं धूपौ चन्द्रोदये समङ्गलम् । सर्वरत्नमलंकारं रोचनाख्यं तु पट्टकम् ॥९॥
बुद्ध्या द्व्यंगुलमंगुल्या षड्विंशांगुलयावधी । नोत्तमं चतुरस्रं वा पद्मचन्द्रिकगर्भिकाम् ॥१०॥
वामे सपद्ममत्स्ये भागा स्वस्तिकविनायकैः । श्री श्री वृक्षवराहेम अमी देवी शुभान्वितम् ॥११॥
सर्वरत्नमलङ्कारं पट्टं कार्यं द्विहस्तकम् । हस्तविस्तार उच्छ्रायं दशाङ्गुल्यं सुशोभनम् ॥१२॥
स्नानाख्यं सार्द्धहस्तन्तु पट्टं वृत्तासनान्वितम् । शय्याख्यं द्विगुणं दैर्घ्याद्धनुर्मानं सपीठकम् ॥१३॥

कर्पूरादि मांगलिक द्रव्यरूप सुवासित कल्याण तथा विजयनामक धूपद्वय प्रज्वलित करना चाहिये। सर्वरत्नालङ्कार तथा एक हाथ लम्बा एवं दो हाथ चौड़ा एक पट्टवस्त्र परिधानार्थ रखना चाहिये। एक डेढ़ हाथ का स्नान वस्त्र, एक गोलाकृति तथा एक आसनास्तरण तथा इससे दूने नाप का एक शय्यावस्त्र (चादर) रखना चाहिये तथा एक धनुष नाप का सिंहासन भी लाना चाहिये।।९-१३।।

गजसिंहकृताटोपं हेमरत्नविभूषितम्। सिंहाख्यं सार्द्धविस्तारा कुण्डासनमथापि वा ॥१४॥
समपादं ग्रहाख्यं वा हेमपत्रविभूषितम्। वज्रेन्द्रनीलरुद्राख्यं महार्घमणिचर्च्चितम् ॥१५॥
चतुष्पादोऽथ वा कार्य्यस्त्रिमण्डलसमोऽपिवा। व्याघ्रचित्रकपट्टे वा उपधानानि कारयेत् ॥१६॥

उसमें नाना रत्नभूषित होने चाहिये तथा रत्नमय गज तथा सिंह की आकृति रहनी चाहिये। यह सुवर्णपत्र से आवृत होना चाहिये। वज्र (हीरा), नीलम तथा रुद्र आदि महामूल्यवान मणियों से जड़ा होना चाहिये। उसके चार पाये हों, किंवा मण्डलाकृति त्रिपाद ही रहे। उसमें व्याघ्राकृति उपधान हो तथा बैठने हेतु उसमें चौकोर चार हाथ का सुलक्षण शय्या ऐसा स्थान होना चाहिये।।१४-१६।।

अन्यैर्वा रञ्जितैश्चर्मैर्मृदुतूलकपूरिताम्। शय्यां दैर्घ्यार्द्धविस्तीर्णां चतुर्हस्तां सुलक्षणाम् ॥१७॥
वितस्ताधिकमिच्छन्ति नृपेश गुरुविद्यया। पद्मपादाथ पादा वा गजसिंहपदाथ वा ॥१८॥
दन्तिदन्तविचित्रा वा हेमरत्नविभूषिता। शुभपट्टोत्तरा धात्रा करिण्या हस्तमुच्छ्रिताः ॥१९॥

अथवा अन्य रंग-बिरंगे मृगचर्मों से सुसज्जित, कोमल रुई के गद्दे वाली शय्या बनानी चाहिये, जिसकी चौड़ाई लम्बाई की आधी होनी चाहिये। इसके पाये पद्म की आकृति वाले, किंवा गजाकृति अथवा सिंहाकृति वाले होने चाहिये। गजदन्त से बने ये पाये स्वर्णादि से मढ़े होने चाहिये। यह हाथी दाँत अथवा स्वर्ण-रत्न से विभूषित, शुभ्र पट्ट वस्त्र से शोभित तथा एक हाथ ऊँची होनी चाहिये।१७-१९।।

किन्नराद्याः प्रकर्त्तव्याः सर्वशोभासमन्विताः। शुभबन्धसमोपेताः सकुम्भा अथ सग्रहाः ॥२०॥
शिवोपलसमं मानं कार्यं वै शिववारणम्। पद्मस्वस्तिकसङ्घट्ट उत्पलं विहगान्वितम् ॥२१॥
यत्र वल्लीकृतापीडहेमदन्तं सुसञ्चितम्। वज्रपद्ममहापद्मरागवैदूर्य्यभूषितम् ॥२२॥

सिंहासन के चारो ओर किन्नरादि की सुन्दर प्रतिमूर्त्ति बनानी चाहिये। सामने स्वर्णकुम्भों को चर्मरज्जु द्वारा पादसमूह (पायों में) बांधना चाहिये। ऊपरी विभाग में शुभ्र प्रस्तर के समान वर्ण वाला चन्द्रातप लगाना चाहिये। उसमें पद्म, स्वस्तिक, उत्पल, पक्षी आदि की कारीगरी अंकित होनी चाहिये। लता-पत्र-सुवर्ण-दन्तादि से उसे सज्जित करना चाहिये। उसके चतुर्दिक वज्र, पद्म, महापद्मराग, वैदूर्य प्रभृति रत्नराशि लगी रहनी चाहिये।।१९-२१।।

गजकुम्भसमाकारमर्द्धचन्द्रकृतापि वा। सहस्रकिन्नरीमानं सप्तमञ्च शतैः पि वा ॥२३॥
नृवेशं सर्वलोकानां त्रिशतं द्विगतं पिवा। तूणौ शय्या समा कार्य्या मृदुकौष्ठकपूरकैः ॥२४॥
उपधानं विचित्रन्तु कनकं मृदु वर्त्तुलम्। वृत्तशृङ्गाटकाकारान् श्रवणाख्याय कण्डुकान् ॥२५॥
यानं शय्याकृति कार्यं वृत्तपादं सुशोभनम्। वितस्तिरुच्छ्रिता कार्य्या शिवपादार्क्षमृत्तिका ॥२६॥

राजा को इस सिंहासन के सम्मुख अन्य राजाओं तथा साधारण लोगों हेतु हस्तिकुम्भाकृति अथवा अर्द्धचन्द्राकृति हजार, सात सौ, किंवा तीन सौ अथवा दो सौ शय्या (बैठने हेतु सोफा की तरह) बनवाना चाहिये। इन सब पर कोमल, वर्त्तुल तथा सुवर्णप्रभ विचित्र उपधान रखना चाहिये। इस सभा का आकार सुगोल गिरिशृङ्ग के समान शोभित रहना चाहिये। ये सभी शय्या एक वितस्ति ऊँची तथा इन सबके पाये गोल तथा सुशोभन रहने चाहिये।।२३-२६।।

एवं समस्तं प्रत्यग्रं कृत्वा शय्यासनादिकम्। वस्त्रालङ्कारशोभाढ्यमभिषेकं समारभेत् ॥२७॥
ततो धूपस्य वैश्यस्य चर्म्मरोहितमक्षतम्। सिंहस्याथ तृतीयस्य व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥२८॥
चत्वारि तानि चर्म्माणि तस्या वेद्या उपस्तरेत्। शुभे मुहूर्ते संप्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥२९॥
हेमं वा राजतं ताम्रं क्षीरवृक्षमयं पिवा। भद्रासनं प्रकर्त्तव्यं सार्द्धहस्तसमुच्छ्रितम् ॥३०॥
सपादहस्तमानन्तु राज्ञा मण्डलिकान्तरा। सुसंहृष्टमना राजा हैमन्ते दीपं संविशेत् ॥३१॥
दैवज्ञामात्य कञ्चुकिवन्दिपौरसुहद्वृतः। द्विजः वेदध्वनिगीतपटुवाद्यरवान्वितः ॥३२॥

इस प्रकार से समस्त नूतन शय्या तथा आसनादि को वस्त्रालङ्कार से शोभित करके अभिषेक कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। सर्वाग्र में अभिषेक स्थल में वैश्यचर्म, रोहितचर्म, सिंहचर्म तथा व्याघ्रचर्म को यथाक्रमेण रखकर आसनकल्पना करनी चाहिये। हेमन्त ऋतु में जब चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में हो, तब इस शुभ मुहूर्त में राजा को आनन्दित चित्त से मन्त्री-दैवज्ञ-स्तुतिपाठक-देहरक्षक तथा अन्यान्य सुहृद तथा पुरवासियों से घिरा रहकर सुवर्ण अथवा चाँदी अथवा ताँबा अथवा क्षीरवृक्ष के काष्ठ से बने आधा हाथ परिमाण ऊँचे तथा एक हाथ चौड़े पाये लगे भद्रासन पर बिछे पूर्वोक्त चर्मों पर आसीन होना चाहिये। उस समय ब्राह्मणगण मृदु स्वर में वेदपाठ करते रहें तथा गीत तथा पटुवाद्य वादन होता रहे।।२७-३२।।

मृदङ्गशङ्खतूर्य्यैश्च शुभ शब्दैर्हता शुभम्। अहतक्षौमानि निवसं नृपं कम्बलछादितम् ॥३३॥
कलशैर्बलिपुष्पाढ्यैः सर्पिपूर्णैश्च स्नापयेत्। अष्टषोडशविंशांष्टशतमष्टाधिकं पिवा।
कलशानां समाख्यातमधिकानामुत्तरोत्तरम् ॥३४॥

मृदङ्ग, शंख, तूर्य का शब्द गूंजता रहे। राजा को क्षौम वस्त्र धारण कराकर कम्बल से आच्छादित कर देना चाहिये। तदनन्तर सुगन्धि पुष्पयुक्त घृतपर्ण कलश से राजा को स्नान कराना चाहिये। एतदर्थ ८, किंवा १६, किंवा २८, अथवा १०८—यह कई उत्तरोत्तर अधिक फलप्रद कलशसंख्या निश्चित की गयी है।।३३-३४।।

कल्याणैर्न तु मन्त्रेण मङ्गलेन जपेन वा। देवी शम्भु भवेनाथ स्नाप्याज्येन अथापि वा ॥३५॥
आज्यं तेजःसमुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्। आज्यं सुराणामाहारमाज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥३६॥
भौमान्तरीक्षदिव्यं वा यत्तु कल्मषमागतम्। सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छति ॥३८॥
ततः कम्बलमुपनीय पुष्पस्नानाम्बुपूरितैः। कलशैः स्नापयेद्राजन्नार्च्चयोऽनेन मन्त्रेण ॥३९॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥४०॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ। अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥४१॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा। दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥४२॥
देवपत्न्यश्च या प्रोक्ता देवमातर एव च। सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसो गणाः ॥४३॥
नक्षत्राणि मुहूर्त्ताश्च पक्षाऽहोरात्रिसन्धयः। संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठा क्षणा लवाः।
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः ॥४४॥

तदनन्तर राजगुरु राजा के शरीर से कम्बल हटाकर पुष्पों से सुगन्धित जलपूर्ण कलश से राजा को मन्त्र द्वारा स्नान कराये। स्नानमन्त्रार्थ है—हे महाराज! देवगण तथा प्राचीन सिद्धगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, साध्यगण, मरुद्गण, द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, ११ रुद्र, स्वर्गवैद्य अश्विनीकुमारद्वय, देवजननी अदिति तथा देवी स्वाहा-सिद्धि-सरस्वती-कीर्त्ति-लक्ष्मी-द्युति-श्री-सिनीवाली-कुहू-दिति-सुरसा-विनता, कद्रु तथा अन्य देवपत्नीगण एवं देवमातृगण तथा अप्सरागण तुमको अभिषिक्त करें। इस शुभ कालावयव में वे सभी तुमको अभिषिक्त करें। सभी नक्षत्रगण, समस्त मुहूर्त्त, पक्षद्वय, दिवस, रात्रि, सन्ध्या, कला, काष्ठा, क्षण, लव, संवत्सर आदि जो भी काल के अवयव हैं, वे सभी तुम्हारा अभिषेक करें।।३५-४४।।

वैमानिकाः सुरगणाः मानवाः सागरैः सह। सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा ॥४५॥
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये। सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ॥४६॥
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः। भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दकः ॥४७॥
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽथ नन्दनः। एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ।
दुरयो दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा॥४८॥
मार्कण्डेयो दीर्घतपा शुनःशेपो विदूरथः। और्वः संवर्त्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥४९॥
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहानुजः। एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ॥५०॥
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः। पर्वतास्तरवो वन्द्याः पुण्यान्यायतनानि च ॥५१॥

विमानगामी देवगण, मानव, सागर, सरितायें, महाभाग नागगण, किम्पुरुषगण, वैखानसव्रती, वायुभोगी द्विजगण, सप्तर्षिगण पत्नीसहित, ध्रुवस्थानादि, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, नन्दन, एकत्र, द्वित, त्रित, जाबलि, कश्यप, दुरय, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतपा, शुनःशेप, विदूरथ, और्व, संवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन, यवक्रीत, देवरात, उनके छोटे भाई—ये सभी जो मुनिगण वेदव्रती हैं तथा उनके शिष्यों के साथ सस्त्रीक अन्य तपस्वीगण, पर्वतसमूह, वृक्षसमूह, सभी पवित्र स्थान तुम्हारा अभिषेक करें।।४५-५१।।

प्रजापति दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः। वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥५२॥
अग्नय पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम्। एते चान्ये च बहवः पुण्यैः सङ्कीर्त्तनाशुभैः।
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ॥५३॥

प्रजापति, दिति, समस्त गौ, विश्वमातृगण, दिव्य वाहनसमूह, चराचर अखिल लोकसमूह, अग्निगण, पितृगण, मेघगण, सभी दिशायें, समस्त जल, आकाश तथा अन्य अनेक प्रसिद्ध पुण्यात्मा व्यक्तिगण इस सर्वोपद्रवविनाशक कलशजल से तुमको अभिषिक्त करें।।५२-५३।।

इत्येवं शुभदैरेतैर्मन्त्रैर्दिव्यैस्तथापरैः। शैवैर्नारायणैः रौद्रैर्ब्रह्मशक्रसमुद्भवैः।
आपोहिष्ठा हिरण्येति शम्भवेति तथैव च ॥५४॥
सर्व्वमङ्गलमङ्गल्यैर्वस्त्रं कार्पासिकं ध्रियात्। शङ्खवेणुरवैस्तूर्य्यैराचान्तो मङ्गलैर्नृपः ॥५५॥
ततः सम्पूजयेद्देवान् गुरून् विप्रान् ध्वजायुधान्। छत्रं वाद्यं गजानश्वान् परिजप्तानि धारयेत् ॥५६॥
देवेन विजयेनाढ्यमलङ्काराणि पार्थिवः। द्वितीयायां ततो वेद्यां गत्वाहूय हुताशनम् ॥५७॥

इस प्रकार और भी शुभद दिव्य स्नानमन्त्रों के साथ-साथ नारायणसूक्त, रुद्रसूक्त, ब्रह्मसूक्त तथा इन्द्रसूक्त का पाठ करके राजा स्वयं आपोऽहिष्ठेति, हिरण्येति, सम्भवेति तथा सर्वमङ्गल्येति—इन चार मन्त्रों का पाठ करके कार्पासवस्त्र पहने। तब मांगलिक शंख-वेणु-तूर्य का वादन होना चाहिये। तत्पश्चात् राजा देवता-गुरु-ध्वज-आयुध-अश्व-छत्र-गज की पूजा करके विजय मन्त्र से अलङ्कारादि धारण करे। दूसरे दिन पूजावेदी के पास जाकर देवगण के मुखरूप अग्नि का आह्वान करे।।५४-५७।।

देवानां वदनं स्थानं निमित्तानि तु लक्षयेत्। स्वाहा रुद्राय चेन्द्राय विष्णवे ब्रह्मणे शिवे ॥५८॥
प्राजापत्ये कुमाराय विघ्नहाय विनायके। सूर्य्याय ग्रहराजाय वराहाय त्रिविक्रमे ॥५९॥
मातृणां वरदे मात्रे चामुण्डायै स्वधेति च। नागराजायानन्ताय ततो राजा समाहरेत् ॥६०॥

उसमें रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, कार्त्तिकेय, विघ्ननाशक गणेश, ग्रहराज सूर्य, वराह तथा त्रिविक्रम-हेतु प्रारम्भ में ॐ तथा अन्त में स्वाहा लगाकर आहुति प्रदान करे तथा 'चामुण्डायै स्वधा' कहकर मातृगणों में से वरदा माता चामुण्डा को तथा नागराज अनन्त को आहुति प्रदान करे।।५८-६०।।

क्रमेण संस्थिते चर्म्मण्युपविशेन्नराधिपः। वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च ॥६१॥
तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम्। उपविष्टे पुनर्होमं तैर्मन्त्रैः सघृतैस्तिलैः ॥६२॥
कृत्वा शेषं समाप्तिं स प्राञ्जलिः संस्थितो वदेत्। यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ॥६३॥
सिद्धिं दत्त्वा सुविपुलां पुनरागमनाय वै। नृपतिरतो दैवज्ञान् पुरोधाँश्च द्विजानर्च्चयेत् ॥६४॥
गोभूहिरण्यरत्नैश्च अन्यानपि क्रमागतान् ॥६५॥
स्थलदेवान् पुरोदेवीन् नदीकूलचतुष्पथान्। अभयञ्च जने देयं गङ्गोत्सङ्गं समारचेत् ॥६६॥
अलङ्कृत्य यथान्यायं सितौ तौ वस्तुभूषितौ। देवदेवीति विज्ञाय बन्धनस्थांश्च मोचयेत् ॥६७॥
नमो विचित्राङ्गसदुष्टान् पुनस्तान् कृतागसान्। विभवानुरूपभावैश्च पुरे पूजां समारभेत् ॥६८॥

तदनन्तर उपर्युपरि (एक पर एक) स्थापित वृष, वृषदंश, रुरु, पृषत्, सिंह तथा व्याघ्र—इन जन्तुओं के चर्म पर बैठकर पुनः पूर्वोक्त मन्त्रोच्चारण द्वारा तिलयुक्त घृत की आहुति देकर पूर्णाहुति देने के अनन्तर कृताञ्जलिबद्ध होकर कहे—समस्त देवगण मेरी पूजा ग्रहण करें। पुनः आगमनार्थ मुझे विपुल सम्पत्ति देकर मेरी रक्षा करें। इस प्रकार देवाहुति सम्पन्न करके दैवज्ञपुरोहित को तथा ब्राह्मणों को गौ-भूमि-स्वर्ण-रत्नादि दान करके सन्तुष्ट करे एवं एक दम्पति को अलङ्कार से विभूषित करके उनको देवता तथा देवी मानकर पूजित करे। जनसमुदाय को अभयदान दे। बद्ध अपराधियों को छोड़ दे एवं अपने विभव के अनुरूप नगर में उत्सव करे।।६१-६८।।

सिंहासनं समास्थाय चतुष्के घृतद्योतितैः। दीपैः रजतपत्रस्थैः तोयार्घामृतवंदितैः ॥६९॥
रोचनादिकं पश्येद् दर्पणं मङ्गलानि च। एवं पुष्ये अवाप्नोति कर्त्ता राज्यायुसम्पदः ॥७०॥
विनापि वर्षे फलदं पुष्टं पुष्याभिषेचने। राष्ट्रोत्पातोऽयसेषु धूमकेतोश्च दर्शनम् ॥७१॥
ग्रहावमर्दनं चैव पुष्यस्नानं समाचरेत्। नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति ॥७२॥
मङ्गलञ्चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते। अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्माभिकांक्षया ॥७३॥
तत् पूर्वमभिषेकेण विधिरेष प्रशस्यते।

तदनन्तर चतुष्कोणस्थ घृतप्रदीपयुक्त सिंहासन पर आसीन होकर रजतपात्रस्थ जलामृत की वन्दना करे। रोचनादि-युक्त करके मंगल दर्पण देखे। इस पुण्य से राजा राज्य-आयु तथा सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। इस पुष्याभिषेचन से ये सब बढ़ते हैं। राष्ट्रोत्पात, धूमकेतुदर्शन, ग्रहपीड़ा आदि के नाशार्थ पुष्यस्नान करना चाहिये। संसार में ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इससे शान्त न हो जाय। इससे बढ़कर कोई मांगलिक कार्य नहीं है। राज्यार्थी तथा पुत्रकामी राजा के लिये यह अभिषेक-विधि कही गयी है।।६९-७३।।

देवेन ब्रह्मणे दत्तं तेनाप्युशनसे पुनः ॥७४॥
उशनाच्च गुरोः प्राप्तं ततो देवः स ते गतम्। महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्त्तिर्बृहस्पतिः ॥७५॥
स्थानमायुः प्रजावृद्धिः सौभाग्यकरमुत्तमम्। अनेनैव च तोयेन हस्त्यश्वं स्नापयेत्तु यः ॥७६॥
तस्याभयविनिर्म्मुक्तं परां वृद्धिमवाप्नुयात्। प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमभिषेकन्तु पार्थिव ॥७७॥
माण्डलीकनरेन्द्राणां सामन्ताधिपतेः पिवा। सामन्तानां सदा कार्यं विघ्नेश्वरमखं शुभम् ॥७८॥

स्त्रिया वा लक्षणोपेता यस्य वा लभतेऽसुखम्। तस्येदं कारयेत् स्नानं सर्वकामप्रसाधकम् ॥७९॥

इति श्रीदेवीपुराणे पुष्याभिषेको नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः

यह विधान सबसे पूर्व ब्रह्मा से महादेव ने कहा था। ब्रह्मा द्वारा शुक्र को तथा शुक्र से बृहस्पति को यह ज्ञात हुआ। बृहस्पति से देव-सभा में इसका आगमन हुआ; क्योंकि यशस्वी बृहस्पति ने इन्द्र के कल्याणार्थ इसको देवसभा में व्यक्त किया था। इससे आयुवृद्धि तथा सौभाग्य प्राप्त होता है। जो कोई इस मन्त्रपूत जल से हाथी अथवा अश्व को स्नान कराता है, वह व्याधिमुक्त होकर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। राजा, सामन्तपति तथा मण्डलेश्वर का इस विधान से प्रतिवर्ष अभिषेक होना चाहिये। सामन्तगण हेतु विनायक याग में यह विशेष रूप से आवश्यक है। अथवा जो नारी सुलक्षणा-सुभगा होना चाहे, उसे भी इस सर्वाभीष्टप्रद मन्त्रजल से स्नान कराना चाहिये।।७४-७९।।

सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

गोतीर्थे पुत्रकामाय धनकामाय सङ्गमे। मातृस्थानेषु सौभाग्यं श्मशाने मृतपुत्रिकाम् ॥१॥
जीर्णे कूपे काकवन्ध्यां पुष्करिणीतटे शुभे। नित्यं विनायकस्थाने स्नापयेत्तु कुमारिकाम् ॥२॥

मनु कहते हैं—धनकामना से संगमस्थान पर, पुत्रकामना से गोतीर्थ में एवं सौभाग्यलाभार्थ मातृस्थानों में स्नान करना चाहिये। मृतवत्सा को श्मशान में तथा काकवन्ध्या को प्राचीन कूप में अथवा शुभ पुष्करिणीतट पर स्नान करना चाहिये। कुमारीगण को नित्य विनायकस्थान में स्नान करना चाहिये।।१-२।।

रक्तवासोत्तरीयान्तु यस्या नोत्पाद्यते नरः। नद्यास्तु पश्चिमे कूले लेख्यस्तीर्थेषु चाग्रतः ॥३॥
मातृणां वामभागे तु यज्ञस्याग्नेयता दिशि। तले तु एकवृक्षस्य मध्ये चैव चतुष्पथे ॥४॥

जिसके पुत्र नहीं हैं, उस नारी को रक्तवर्ण वस्त्र धारण करके नित्य नदी के पश्चिम किनारे पर मातृगण की मूर्त्ति अंकित करना चाहिये अथवा अग्निकोण में किंवा एक वृक्ष के नीचे चतुष्पथ में अंकित करना चाहिये।।३-४।।

लिखेत् पूर्वेणैव रणे श्मशाने नैर्ऋते लिखेत्। जीर्णकूपे यथेच्छन्तु पर्वतस्योत्तरेण तु ॥५॥
ऐशान्यामेकलिङ्गे तु याम्यां वन आरामयोः। त्रिकूटस्योत्तरे भागे आधारस्याष्टपदे लिखेत् ॥६॥
पुस्तके नैर्ऋते लेख्यमायतनेषु पृष्ठतः। वायव्यां वारुणीमध्ये गोष्ठे चैव यथेप्सया ॥७॥
नैर्ऋत्यां याम्यमध्ये तु पुलिने तु समालिखेत्। कौवेरी ऐशानीमध्ये सङ्गमे च समालिखेत् ॥८॥
तडागात्पदशतेनैव लिखेद्दिक्षु यथेप्सया। एते स्थाना मयाख्याता स्थानश्रेष्ठाश्च दोषजाः ॥९॥

यह मूर्ति युद्धभूमि में पूर्व की ओर तथा श्मशान में नैर्ऋत्य की ओर अंकित की जा सकती है। पुरातन कूप में चाहे जिस ओर इसे अंकित किया जा सकता है। पर्वत पर उत्तर की ओर, ईशानकोण में एकलिंग स्थान पर, वन-उपवन में दक्षिण की ओर, त्रिकोट स्थान में उत्तरभाग में, देवालय में नैर्ऋत्य कोण में अथवा पश्चिम दिशा में तथा वायुकोण के मध्य में, गोष्ठ में कहीं भी, नदीपुलिन पर दक्षिण की ओर तथा नैर्ऋत्य कोण के मध्यभाग में, नदीसंगम स्थल में उत्तर की ओर तथा ईशान कोण के मध्यभाग में एवं तड़ाग से १०० पद के पश्चात् कहीं भी इच्छानुसार अंकित की जा सकती है। यह सब उत्तम स्थान हैं। अब दोषपूर्ण स्थानों को कहता हूँ।।५-९।।

भयं मृत्युं करिष्यन्ति गोत्रोत्सादं दरिद्रताम्। मन्त्रसिद्धिर्न जायेत सुतश्चैव विनश्यति ॥१०॥
कुलक्षयमतो याति सभृत्यपशुबान्धवैः। आदौ भूमिं परीक्षेत पश्चात् कुर्वीत मण्डलम् ॥११॥

दोषयुक्त स्थान में मण्डल, मूर्त्ति अंकित करने से भय, मृत्यु, वंशनाश तथा दरिद्रता होती है; मन्त्रसिद्धि नहीं होती। पुत्र नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु-पशु-बन्धु-बान्धवों के साथ अपना भी विनाश हो जाता है। पहले भूमि की परीक्षा करके तब मण्डल अंकित करना चाहिये।।१०-११।।

सशल्यामुषरां चैव स्फुटितां विषमां तथा। वल्मीकं ग्रामधानञ्च अशुभां तां विवर्ज्जयेत् ॥१२॥
सशल्यान्ते क्लेशबहुला ऊषरे तु धनक्षयः। स्फुटिते मरणं ज्ञेयं विषमे शस्त्रतो भयम्।
वल्मीके अनपत्यार्थं ग्रामे धाने त्वनिर्वृतम् ॥१३॥

ऊसर, ऊँची-नीची, क्षार, काँटों वाली, छिद्रयुक्त, फटी हुई, वल्मीकयुक्त, ग्रामधान वाली भूमि अशुभ होती है। उसका वर्जन करना चाहिये। शल्ययुक्त भूमि से अनेक क्लेश, ऊषर से धनक्षय, गर्त्तवाली फटी भूमि से मरण तथा विषम भूमि से शस्त्रभय होता है। वल्मीकयुक्त भूमि पर मण्डल अंकन करने से सन्तान नहीं होती; अपितु वल्मीकयुक्त भूमि पर मण्डलाङ्कन से अपनी हानि होती है।।१२-१३।।

सुषमां शाद्वलां भूमिं कूर्म्मपृष्ठोन्नतां तथा। पूर्वप्लवा वृद्धिकरी नराणाञ्च शुभप्रदा ॥१४॥
दक्षिणतो मृत्योर्भयमर्थक्षयं पश्चिमतः। बलं ददत्युत्तरतः।
नैर्ऋते शस्त्राद्भयमाग्नेय्यामग्निदाहश्च ॥१५॥
ऐशान्यां कामदा मही वायव्यां शस्त्रतो भयम्। अष्टौ दिग्भागाः मयाख्यातास्ततः कर्म समारभेत् ॥१६॥

जो भूमि सुषमा, नव तृणयुक्त तथा कच्छप की पीठ के समान जिसका मध्य में ऊँचा आकार है अर्थात् उन्नत है, पूर्वभाग नीचा है, वही मनुष्य का सर्वविध कल्याण सम्पादन करती है। वह वृद्धिकरी तथा शुभप्रदा होती है। इसी पर मण्डपकार्य करना चाहिये। दक्षिण की ओर जो भूमि नीची है, उसमें मरणभय होता है। पश्चिम की ओर नीची भूमि में बलक्षय होता है तथा उत्तर की ओर अवनत भूमि में मण्डल अंकन करने से बलवृद्धि होती है। जो भूमि नैर्ऋत्य कोण में नीची होती है, उसमें मण्डल अंकन करने से शत्रुभय होता है। अग्निकोण में अवनत भूमि पर मण्डलांकन करने का फल है—अग्निभय। ईशान कोण में जो भूमि अवनत है, उस पर यह कार्य करना अभीष्टप्रद है। वायुकोण में जो भूमि नत है, वहाँ यह कार्य शत्रुभय देता है। इस प्रकार से आठों दिशाओं के गुण-दोष कर विचार करके ही कर्मारम्भ करना चाहिये।।१४-१६।।

ग्रहान् पापान् हनेद्धेतो रक्तोऽपि च गणान् हनेत्। कृष्णः सर्वासुरान् हन्ति पीतकन्तु विनायकान् ॥१७॥
पिशाचान् राक्षसांश्चैव हरते हरितो रजः। रुद्रो ब्रह्मा हरिर्देवी सर्वदेवन्तु पञ्चमम् ॥१८॥
आकाशात् कृष्णकी जातः पृथिवीं हरितां विदुः।

इति श्रीदेवीपुराणे काम्यस्नानस्थाननिरूपणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः

जिस भूमि की रज रक्तवर्ण है, उस पर कार्य करने से पापग्रह दूर हो जाते हैं। कृष्ण रज वाली भूमि पर मण्डलाङ्कन करने से सभी अशुभों का विनाश होता है। पीत रजयुक्त भूमि पर यह कार्य सभी विघ्नों को दूर कर देता है। हरिद्वर्ण भूमि पर मण्डलाङ्कन करने पर पिशाच तथा राक्षसादि विनष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश-दुर्गा में से यथाक्रम से ब्रह्मा को रक्तवर्ण, विष्णु को पीतवर्ण, महेश्वर को कृष्णवर्ण तथा दुर्गा को हरिद्वर्ण भूमि का अधिष्ठाता जानना चाहिये।।१७-१८।।

अष्टषष्टितम अध्याय समाप्त

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

सर्वकामप्रदं पुण्यं गणयागं वदामि ते। हिताय सर्व्वलोकानां पार्थिवानां विशेषतः ॥१॥
विनायकः कर्म्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः। गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा पुरा ॥२॥
तेनोपलक्षितं कर्म लक्षणानि निबोधत। स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डञ्च पश्यति ॥३॥
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चावरोहति। अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठति ॥४॥
व्रजमानं तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः। विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ॥५॥

मनु कहते हैं—अब मैं सर्वलोक के हितार्थ सर्वाभीष्टप्रद परम पवित्र, विशेषतया राजाओं के लिये हितकारी गणयाग का वर्णन करता हूँ। पहले ब्रह्मा तथा महेश्वर ने गणेश को सभी कर्मों के विघ्नविनाश का कार्य तथा गणसमूह के आधिपत्य का नियोग प्रदान किया है। उन गणेश की प्रसन्नता हेतु ही इस कर्म का मूल उद्देश्य है, तभी इसे गणयाग कहते हैं। यह कब आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है, वह कहता हूँ। यदि कोई स्वप्न में स्वयं को जल में निमग्न देखे तथा केशरहित मुण्ड अथवा काषाय वस्त्रधारी तथा विकृत मुख व्यक्तिगण को देखे, किंवा स्वयं को ऊँट-गर्दभादि निकृष्ट जन्तुसहित तथा अन्त्यजों के साथ स्थित देखे, किंवा अपने पीछे किसी को धावमान देखे, तब उसका कोई भी कार्य सफल नहीं होता और वह अकारण ही क्रमशः विपन्न होता जाता है।।१-५।।

तेनोपधृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः। कुमारी न च भर्त्तारमपत्यं गर्भिणी तथा ॥६॥

यदि वह राज्यपुत्र है तब भी इस दुर्निमित्तक स्वप्न के कारण राज्यलाभ नहीं कर पाता। यदि स्वप्न देखने वाली कुमारी है, तब वह सम्पत्तिलाभ तथा विवाहोपरान्त गर्भिणी होकर भी सन्तान-प्राप्ति नहीं कर पाती।।६।।

आचार्य्यत्वं श्रोत्रियश्च शिष्यो नाध्ययनं तथा। वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषीञ्चैव कृषीवलः ॥७॥

यदि ऐसा स्वप्न देखने वाला शिष्य है, तब वह गुरु के पास से वेदशिक्षा से वंचित हो जाता है। यदि वह शुद्ध ब्राह्मण है, तब भी आचार्य से विद्या नहीं प्राप्त कर पाता, यदि कृषक है तब वह अच्छी खेती का फल नहीं प्राप्त कर पाता।।७।।

स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्। गौरसर्षपकक्कोलसद्योनोत्सादितस्य च ॥८॥
सर्व्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसैस्तथा। भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्यान् द्विजान् शुभान् ॥९॥
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात्। मृत्तिकां रोचनां गंधान् गुगुलूञ्छाप्सु निक्षिपेत् ॥१०॥
यदा कृतं होकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात्। चर्म्मण्युपानहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ॥११॥

उसे यह दुःस्वप्नजनित दोष-निवारणार्थ पुष्य नक्षत्र के दिन यथाविधि सफेद सरसों तथा कङ्कोल-मिश्रित सर्वौषधिजल से स्नान कराना चाहिये तथा मस्तक पर विविध गन्धद्रव्य का विलेपन करके उसे भद्रासनासीन कराकर उत्तम ब्राह्मण से स्वस्ति-वाचन कराकर अश्वशाला, हस्तिशाला तथा बाबी की मिट्टी तथा तीर्थ-संगमादि की मिट्टी, चन्दन, गुग्गुलु, रोचना को जलमध्य में छोड़े तथा भद्रासन के समीप रक्तचर्माधार में ह्रदजल से भरे एक वर्ण के चार कुम्भों को स्थापित करे।।८-११।।

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्। तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥१२॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्य्यबृहस्पती। भगं मित्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो विदुः ॥१३॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते पञ्चमूर्द्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु ते सदा ॥१४॥

तब कहे—जैसे पहले ऋषिगण ने शत छिद्रयुक्त कलश द्वारा देवराज का अभिषेक किया था, मैं भी उसी प्रकार तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, मित्र, वायु तथा सप्तर्षिगण सभी तुम्हारे सौभाग्य को जानते हैं। तुम्हारे केश, सीमन्त स्थल, ललाट, कर्ण, वक्ष में जो कुछ भी दुर्भाग्य है, वह सब ये देवगण दूर करें।।१२-१४।।

स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौडुम्बरेण तु। जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्यते ॥१५॥
सितश्च सन्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटाः। कूष्माण्डराजपुत्रांश्च यजेत् स्वाहासमन्वितम् ॥१६॥
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः। दद्याच्चतुष्पथे सूपं कुशानास्तीर्य्य सर्वतः ॥१७॥

यज्ञीय उडुम्बर पात्रस्थ सरसों का तैल तुम्हारे स्नान में सहायक हो। यह सब मन्त्र पढ़कर दाहिने हाथ में स्थित कुशमुष्टि की सहायता से उसके मस्तक पर कलशजल से सेचन करना चाहिये तथा स्नानान्त में नमः के साथ नाम का उल्लेख करके कूष्माण्डराजपुत्र प्रभृति विघ्नदायकों को आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्व में बनाये गये चतुष्पथ पर कुशों को बिछाकर उस पर सूर्य की पूजा करनी चाहिये।।१५-१७।।

कृत्वा कृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च। मत्स्यान् पक्वांस्तथा वामान् मांसानि विविधानि च ॥१८॥
पुष्पांश्चित्रान् सुगन्धांश्च सुराञ्च त्रिविधामपि। मूलकं पूरिकापूपांस्तथैवोण्डैरकस्रजः ॥१९॥
दधिपायसमन्त्रञ्च गुडवेष्टितमोदकान्। विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् ॥२०॥
दूर्व्वासर्षपपुष्पाणां कृत्वार्घ्यं पुष्पमञ्जलिम्। रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे ॥२१॥

नानाविध अन्न, मत्स्य, आममांस, विचित्र सुगन्धित पुष्प, तीनों प्रकार की सुरा, दधि, पायसान्न तथा गुड़-निर्मित मोदकादि अर्पित करना चाहिये। वहाँ गणेश की जननी अम्बिका की पूजा दूर्वा, सरसों, पुष्पादि की अञ्जलि द्वारा करके प्रार्थना करनी चाहिये—हे माते! मुझे सुन्दर रूप, यश, भाग्य, पुत्र, धन तथा सभी अभीष्ट प्रदान कीजिये।।१८-२१।।

ततः शुक्लाम्बरधरः पुष्पगन्धानुलेपनः। ब्राह्मणान् भोजनं दद्याद् वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२२॥
एवं विनायकं पूज्यं ग्रहान् पूर्वविधानतः। असाध्येन प्रसादेन गुरुदेवद्विजार्च्चनम् ॥२३॥
कर्म्मणां फलमाप्नोति श्रियञ्चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२४॥

इति श्रीदेवीपुराणे विनायकमण्डलपूजास्नानविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

तत्पश्चात् श्वेत वसन धारण कर पुष्प-गन्धादि का आलेपन करके ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। वस्त्रयुग्म (वस्त्र की जोड़ी) गुरु को देना चाहिये। अब पूर्व विधानानुसार गणेश तथा ग्रहादि का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार की अर्चना द्वारा अन्य के लिये दुष्प्राप्य गुरु, देवता, द्विजगण की कृपा से असामान्य सम्पदा प्राप्त होती है।।२२-२४।।

उनसप्ततितम अध्याय समाप्त

●

सप्ततितमोऽध्यायः

ॐ विनायकाय गौं नमः। गां हृदयाय नमः। श्रीं शिरः। गूं शिखा। गैं नेत्रे। गौं कवचम्। गः अस्त्रम् ॥१॥

एतैः सर्वैः प्रकर्त्तव्यं मण्डलैः सोपपातकैः। घाताग्निशत्रुतोयाग्निदिनरात्र्यर्द्धगामि तु ॥२॥
एवं मण्डलविन्यासैर्हैमराजतभास्करैः। पटे वा लिखिता भूर्जे मन्त्रा आयुःप्रदायकाः ॥३॥

अव गणेश का रक्षाविधान कहा जा रहा है। ॐ विनायकाय गौं नमः। गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं नेत्रत्रयाय वौषट्। गौं कवचाय हुम्। गः अस्त्राय फट्—इन मन्त्रों को स्वर्ण अथवा रजतफलक पट, किंवा पर अथवा भूर्जपत्र पर मण्डलाकृति लिखकर धारण करने से आयुवृद्धि होती है।।१-३।।

नराणां बाणयोधानां तुरगेभवृषोष्ट्रयोः। नामाद्यक्षरसंरुद्धा हेमलेखानि नादरात् ॥४॥
मदकुङ्कुमकर्पूररोचनारसलेखिताः। गोमयेन सवत्साया भूमौ च पतितेन तु ॥५॥
परस्थं मातृमध्यस्थं षोडशानान्तु रुद्रगम्। द्विगुणस्थं गुणान्तस्थं मण्डलानुगतं कृतम् ॥६॥
पाणौ कण्ठकटिवस्त्रं रुरूदेवादपट्टगम्। मत्तवारणसंरूढं पूजितं धनुपत्रदम् ॥७॥
वस्त्रहेममणिमाल्यगन्धकर्पूरचन्दनैः ॥८॥

वाणयोद्धा, अश्व, हस्ती, वृष तथा उष्ट्र को हस्तिमद, कुङ्कुम, गोरोचना द्वारा स्वर्णपत्र पर अपने नाम के प्रथमाक्षर अङ्कन के साथ (इसे भी लिखे, जो मन्त्र ऊपर दिये हैं) लिखने से कोई भय नही रह जाता तथा सवत्सा गौ के गोवर से भूमि पर १६ मातृमण्डल तथा एकादश रुद्र को लिखकर उसमें यह उपरोक्त कवच लिख देने पर सभी आपत्तियाँ दूरीभूत हो जाती हैं। इसे हाथ, कण्ठ अथवा कटि में धारण करने अथवा पहने गये कपड़ों में बांधने से धन-पुत्र का लाभ होता है। मत्त हाथी पर बैठकर वस्त्र, माला, गन्ध, चन्दन, कस्तूरी, अगुरु तथा स्वर्णाभूषण से भूषित होकर वह लोक में पूजा का पात्र बन जाता है।।४-८।।

फलैर्नीरसनिर्मांसं मध्यस्थं धनधान्यदम्। जातीचम्पकोशीरं पूजितं घृतमध्यगम् ॥९॥
सितभावोपचारेण आरोग्यायुःप्रवर्द्धनम् ॥१०॥

घृतमध्य-स्थित यह रक्षामण्डल जातीपुष्प, चम्पकपुष्प तथा उशीर से पूजित तथा कर्पूरभावोपचार सम्पन्न होने पर आरोग्यप्रद तथा आयुवृद्धिप्रद हो जाता है।।९-१०।।

रक्ता पीता सिता नीला कामस्तम्भनमोहजैः। कर्त्तव्यं सर्वकार्य्येषु कालज्ञात्र समृद्धये ॥११॥

इति श्रीदेवीपुराणे रक्षाविधानं नाम सप्ततितमोऽध्यायः

रक्त-पीत-कृष्ण-नील मण्डल द्वारा कामस्तम्भन तथा मोहनकार्य होता है। सर्वकार्य-समृद्धि के लिये कृष्ण मण्डल बनाना चाहिये।।११।।

सप्ततितम अध्याय समाप्त

●

एकसप्ततितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

पार्थिवात्तु कृता रक्षा बहुधा रुद्रलाञ्छिता। तद्वर्णवदसंख्याता गजकुम्भस्थमाहवे ॥१॥
परसैन्यविनाशाय पीतपुष्पादिपूजिता। सर्वकामप्रदा रक्षा आद्यवर्णोपलाञ्छिता ॥२॥

मनु कहते हैं—रुद्रबीज-युक्त रक्षामण्डल राजभय-निवारक होता है। ३२ रुद्रबीजयुक्त रक्षामण्डल को गजमस्तक पर स्थापित करने से युद्ध में विजय प्राप्त होती है। पीत पुष्पपूजित रक्षामण्डल परसैन्य-विनाशक होता है। आद्य वर्णयुक्त रक्षामण्डल सर्वकामप्रदायक होता है।।१-२।।

अष्टवर्गकृतान्तस्था चन्द्रमध्यगता पुनः। सितपुष्पोपचारेण ज्वरदा च श्रमापहा ॥३॥
तेजोवर्णगता रक्षा तन्मण्डलकृतानुगा। नागाविरूपसम्पूर्णा विषभूतज्वरापहा ॥४॥
वायुबीजकृता पीडा सपताका सिताञ्चिता। चालने परसैन्यस्य विधिनानेन कल्पिता ॥५॥

आद्यवर्ण तथा यमबीजस्थित कर्पूरमध्यगत रक्षामण्डल शुक्ल पुष्पों से पूजित होने पर ज्वर, दाह तथा श्रम का हरण कर लेता है। तेजोवर्णयुक्त रक्षामण्डल नागाधिराजस्वरूप है। उससे विष, भूत तथा ज्वर विनष्ट हो जाता है। वायुबीजशोभित पताका, कर्पूरयुक्त मण्डल परसैन्य-पराजयार्थ विहित है।।३-५।।

वटकाष्ठोत्थफलके वह्निस्तम्भेन वा मुने। रक्षेयं ताम्रफलके ज्वरशीतनिवारणी ॥६॥
क्षीरचन्द्रघृतान्तस्था दाहतापशमे मता। फलहोमाय वा मन्त्रा फलदा घृततर्पणा ॥७॥
पुष्पहोमा जयं दद्यादायुरारोग्यसम्पदः। तर्पणाय सकुष्ठादि सर्वकामफलप्रदा ॥८॥

वट की लकड़ी पर लिखित रक्षामण्डल वह्निस्तम्भनकारी होता है। ताम्रफलक पर लिखित रक्षामण्डल ज्वरशीतनाशक होता है। दुग्ध-कर्पूर तथा घृतमध्य में स्थित रक्षामण्डल दाह-ताप का प्रशमन करता है। रक्षामन्त्र से फल द्वारा होम एवं घृत द्वारा तर्पण करने से पूर्ण फल मिल जाता है। पुष्प द्वारा होम करने पर जय-आयुवृद्धि-आरोग्य तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। कूठ आदि से तर्पण करने से सर्वकामफल मिलता है।।६-८।।

आदित्यस्य च वर्णेन कालवर्णेन वा मुने। रुद्रदेवेन देवस्य तर्पणं विहितं मुने ॥९॥
चतूर्व्यूहसमायुक्तः पूजितो मधुसूदनः ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे रक्षात्रिमूर्त्तिसूर्य्यतत्त्वभेदपूजा नामैकसप्ततितमोऽध्यायः

आदित्य वर्ण किंवा काल वर्ण से कालतर्पण रुद्रविधान से ही करना चाहिये। संकर्षण-अनिरुद्ध-प्रद्युम्न-वासुदेवरूप चतुर्व्यूह-युक्त मधुसूदन पूजित होकर रक्षाविधान करते हैं।।९-१०।।

एकसप्ततितम अध्याय समाप्त

●

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

दुर्गाणाञ्च पुराणाञ्च प्रमाणायामसंस्थितिम्। यथावच्छ्रोतुमिच्छामि सर्वलोके सुखावहाम् ॥१॥

ऋषि वशिष्ठ कहते हैं—दुर्ग—नगर का प्रमाण, विस्तार तथा संस्थान परिपाटी यथायथ सुनने की इच्छा है; क्योंकि यह सर्वलोक हेतु सुखकारी है।।१।।

बृहस्पतिरुवाच

सृष्ट्यादौ कथिता ब्रह्मन् ब्रह्मणामिततेजसा। स्वर्भूर्लोकविभागश्च पातालतलवासिनाम् ॥२॥
जम्बूद्वीपे यथा लोका निवसन्ति सुखार्थिनः। तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा शम्भुः पुराऽब्रवीत् ॥३॥

बृहस्पति कहते हैं—हे ब्रह्मन्! सृष्टि के प्रारम्भ में अमित तेजस्वी ब्रह्मा ने स्वर्ग-मर्त्य तथा पातालविभाग का निर्देश दिया था। जिस प्रकार से लोग सुखाभिलाषी होकर जम्बूद्वीप में निवास करें, इस सम्बन्ध में शिव ने पूर्वकाल में जो कहा था, वह मैं कहता हूँ।।२-३।।

सर्वेषां सुरसङ्घानां यथा ब्रह्मा उवाच ह। पूर्वं निकामचारिण्यो ह्यनिकेता अथावसन् ॥४॥
प्रजाः सर्वाः सुहृष्टात्मा भयद्वन्द्वविवर्ज्जिताः। पृथुः शासदिमां पृथ्वीं धर्म्मवर्त्मव्यवस्थितः ॥५॥

इसे ब्रह्मा ने भी सभी देवताओं से कहा था। पूर्व में सभी लोग स्वच्छन्द, गृहहीन, हृष्ट चित्त थे। भय-शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व से रहित थे। तत्पश्चात् राजा पृथु ने धर्मपथ पर चलकर पृथिवी का शासन किया था।।४-५।।

प्रजा लोभं गता विप्र क्रामक्रोधबलेन च। कामं स्त्रीषु प्रवृत्तासु निशुम्भवशगा यदा ॥६॥
तदा सदाभवत् सिद्धिः कल्पवृक्षसमुद्भवा। देवापि मेरुमाच्छन्ना दुर्गदानवशङ्कया ॥७॥

स्त्रीगण के यथेच्छाचरण के कारण लोग काम क्रोध-लोभादि से क्रमशः ग्रस्त होने लगे। वे स्त्री में प्रवृत्त होकर शुम्भ-निशुम्भ असुरों के अधीन हो गये (काम-क्रोध ही शुम्भ-निशुम्भ हैं)। तब कल्पवृक्ष से सबकी इच्छापूर्त्ति होती थी। उस समय दैत्यभय के कारण देवगण ने सुमेरुरूपी दुर्ग का आश्रय लिया था।।६-७।।

ततो ब्रह्मा समाधाय विश्वकर्म्मा महामतिः। गृहाणि चक्रिरे तासु प्रजासु सुखहेतवे ॥८॥
जलशीतातपादीनां प्रतिघाताय चक्रिरे। यथा प्रीतिर्यथा योगं निकेतानि पृथक्-पृथक् ॥९॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने महामति विश्वकर्मा को नियुक्त किया। उन्होंने सभी लोक के जल-शीत-रौद्र के कष्ट को दूर करके सुखविधानार्थ गृह का निर्माण किया। सुविधा तथा उपकरणादि के संग्रहानुरूप पृथक्-पृथक् गृह निर्मित किये गये।।८-९।।

मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च। संप्रयान्ति च दुर्गाणि धान्यं पार्वतमौदकम् ॥१०॥
यथाकालं यथादेशं समेषु विषमेषु च। नगरं सन्निवेशानि दुर्गाणाञ्च यथाविधि ॥११॥

मरुभूमि में, निम्न स्थान में पर्वत तथा नदी के समीप जिन-जिन दुर्गों का आश्रय होता है, वह मरुदुर्ग-पर्वतदुर्ग तथा जलदुर्ग कहलाते हैं। देश-काल के अनुरूप समतल स्थान में तथा विषम स्थान में दुर्ग की स्थापना की गई। इस प्रकार उस काल में यथाविधि नगर तथा दुर्ग सन्निवेशित किये गये।।१०-२१।।

ततस्तु मापयामास सखेटकानि पुराणि च। ग्रामाणि च यथाभागं तथैवान्तःपुराणि च ॥१२॥
तेषामायामविष्कम्भान् सन्निवेशान्तराणि च। चक्रुस्ततो यथाप्रज्ञं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः ॥१३॥
मानार्थानि प्रमाणानि तदाप्रभृति चक्रिरे। भानुं रेणुं कचं लिक्षा यूका यवक्रमाष्टधा ॥१४॥
गुणिता ह्यङ्गुलं विप्र यवाष्टकमुदाहृतम्। देवाङ्गुलं समाख्यातं स्वं स्वं सर्वेषु चाङ्गुलम् ॥१५॥

सामान्य नगर, ग्राम, अन्तःपुर आदि की दीर्घता, विस्तार, सन्निवेशान्तर को नियमानुसार नापकर प्रस्तुत किया गया। उनके परिमापार्थ उपयोगी मान का व्यवहार किया गया। धूप में जो सूर्यकिरण के सूक्ष्म धूलिकण दृष्टिगोचर होते हैं, वे हैं त्रसरेणु। आठ त्रसरेणु का एक लिक्षा, तीन लिक्षा का एक राजसर्षप, तीन राजसर्षप का एक गौरसर्षप, छः गौरसर्षप का एक यव कहा गया है। आठ यव के बराबर एक अंगुल होता है। सभी कार्य में उस कार्य को करने वाले व्यक्ति के अंगुल का ही मान ग्राह्य होता है।।१२-१५।।

यवाङ्गुलप्रदेशास्तु हस्तकिष्कधनूंषि च। दश त्वङ्गुलपर्वाणि प्रादेश इति संज्ञितः ॥१६॥
अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते। तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥१७॥
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल इष्यते। अरत्नैरङ्गुलान्युक्तः संख्यया त्वेकविंशतिः ॥१८॥
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तपादाङ्गुलानि तु। कष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः ॥१९॥

यव-अंगुल-प्रादेश-हस्त-किष्कु तथा धनु परिमाण होते हैं। दस अंगुलिपर्व का एक प्रादेश होता है। अंगुष्ठ तथा तर्जनी का विस्तार होता है—एक वितस्ति। वितस्ति होता है दश अंगुल का। अरत्नि होता है इक्कीस अंगुल। चौबीस अंगुल का एक हस्त कहा जाता है। दो अरत्नि का एक किष्कु होता है। किष्कु का परिमाण है बयालीस अंगुल।।१६-१९।।

चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो नालिका युगमेव च। धनुः सहस्रे द्वे क्रोणे गव्यूतिर्द्विगुणं मतम्॥२०॥
अष्टौ धनुः सहस्राणि योजनं भवते नृणाम्। एवं मानविभागेन व्यवहारः स्थितो भुवि॥२१॥

चार हाथ का धनु, दण्ड, नालिका तथा युग होता है। दो हजार धनु (आठ हजार हाथ) का एक क्रोश तथा दो क्रोश का एक गव्यूति होता है। आठ हजार धनु (३२०० हाथ) का एक मनुष्ययोजन कहा गया है। इस प्रकार का मानव-व्यवहार पृथिवी पर प्रचलित है।।२०-२१।।

ऐन्द्रोत्तरप्लवे भूमौ पुरं दुर्गञ्च शस्यते। चतुरस्रमथावृत्तं त्र्यस्रं दीर्घमथापि वा॥२२॥
पुरं यथाक्रमात् श्रेष्ठं मध्यमोत्तमकनीयसम्। समन्ताद्योजनान्यष्टावैन्द्रं देवपुरं मतम्॥२३॥
दश द्वे वैष्णवं प्राहुः षष्टिमानन्तु शाङ्करम्। दश ब्राह्मं तथा पञ्च सामान्यं सार्वभौमिकम्॥२४॥

ईशानकोण में जो नीचा हो, ऐसे भूभाग पर नगर तथा दुर्ग बनाना श्रेयस्कर होता है। चतुष्कोण, वृत्त, त्रिकोण तथा दीर्घ नगर से चतुष्कोण को श्रेष्ठ, वृत्तनगर को मध्यम, त्रिकोण को उत्तम तथा चतुर्दिक आठ योजन के नगर को ऐन्द्रपुर (देवपुर), द्वादश योजन वाले नगर को वैष्णवपुर, साठ योजन वाले को शैवपुर कहते हैं। दश योजन परिमित नगर को ब्राह्मपुर एवं एक योजन वाले नगर को सामान्य सार्वभौमिकपुर कहते हैं।।२२-२४।।

योजनाद्धि च मानानि पुराणि सन्निवेशयेत्। मध्ये राजगृहं कार्यं विप्राणाञ्चोत्तरादितः॥२५॥
क्रमाच्छेषाणि कार्य्याणि प्रकृतिर्बाह्यतः पुरात्। वसेयुरन्यथा दोषो वर्णशङ्करजो महान्॥२६॥

साधारण नगर एक क्रोश का होता है। राजगृह नगरमध्य में होता है। उत्तर आदि चार दिशाओं में क्रमशः ब्राह्मणादि चारो वर्ण को यथाक्रम से निवास करना चाहिये। निम्न जाति का वासस्थान पुर से बाहर होता है। ऐसा न होने पर महान् वर्णसंकर दोष हो जाता है।।२५-२६।।

कृत्रिमेषु च दुर्गेषु चेष्टप्राकारकल्पना। चतुःपञ्चकमानेन कल्पयेद् विधिना मुने॥२७॥
खातिक्यरचितं कार्य्यं प्रणालिभिः समन्वितम्। चत्वार्य्यष्ट वाथवा त्रीणि द्वौ वा भूमिवशाद्भवेत्॥२८॥
नवदुर्गासमेतञ्च सशिवं भुजगान्वितम्। नगरं सर्वतोभद्रं कर्त्तव्यं रुचकं पिवा॥२९॥

कृत्रिम दुर्ग में ईटों की चाहारदीवारी बनानी चाहिये। ४-५ प्राकार (दीवार) यथाविधि कल्पनीय है। प्राकार से आवेष्टित दुर्ग खाई से घिरा होना चाहिये। खाई प्रणाली के अनुसार होनी चाहिये। यह प्रणाली भूमि के अनुसार ४-८-३ अथवा २ होनी चाहिये। नवदुर्गा-शिव तथा नागप्रतिमायुक्त नगर सर्वतोभद्र होता है। रुचक नगर भी इसी प्रकार का होता है।।२७-२९।।

स्वस्तिकं मध्यमं कार्य्यं कुमारीपुरमेव च। चतुष्पथे चतुर्युक्तं सर्वकामसुखावहम्॥३०॥
छिन्नकर्णविनासञ्च दुस्थितं कुशदुर्बलम्। नगरं न प्रशंसन्ति गर्त्तं विद्धं विभेदितम्॥३१॥

स्वस्तिक नामक नगरमध्य में कुमारीपुरी की स्थापना करनी चाहिये। स्वस्तिक नगर में चार चौराहे होने चाहिये। यह नगर सर्वकामसुखावह होता है। नासाहीन, कर्णहीन, कृश, दुःस्थित, दुर्बल, गर्त्तविद्ध, विभेदयुक्त नगर अच्छा नहीं होता।।३०-३१।।

अग्रतः स्वल्पप्रासादं छिन्नघ्राणं विदुर्बुधाः। द्विमुखं कर्णहीनन्तु कृशं मध्ये कृशं विदुः॥३२॥
दुःस्थितं निम्नं याम्यन्तु नैर्ऋतं धनदुर्बलम्। सौम्यं सर्वसुखाच्छादिपूरितं वारुणं वशम्॥३३॥

याम्यमायुःप्रदं पूर्णं नगरं प्रीतिवर्द्धनम् । सर्ववस्तुसम्पूर्णं च सर्वारोग्यसुखप्रदम् ॥३४॥

नासाहीन नगर वह है, जिसमें नगर के सामने की ओर कम—अल्प प्रासाद हों। द्विमुख नगर को कर्णहीन कहते हैं। मध्य में (बीच में) जो कृश है (कम प्रासाद है), उसे कृश नगर कहा जाता है। दक्षिण की ओर नीचा नगर दुःस्थित होता है। नैर्ऋत्य कोण में नीचा नगर दुर्बल अथवा धनदुर्बल कहलाता है। जो उत्तर भाग में परिपूर्ण नगर है, वह सभी सुख तथा आनन्द को प्रदान करने वाला होता है। जो पश्चिम भाग वाला नगर है (जो पश्चिम में परिपूर्ण है), वह सर्ववशकारी होता है। इसी प्रकार दक्षिण भाग में परिपूर्ण नगर आयुदायक एवं प्रीतिदायक होता है। ईशानकोण में जो नगर परिपूर्ण है, वह सर्व आरोग्य तथा सुखप्रद होता है।।३२-३४।।

मध्यं चतुष्पथोपेतं न च तं पीडयेत् क्वचित् । ब्रह्मस्थानं हितं विप्र शिवस्तत्र सदा स्थितः ॥३५॥

मध्य में पूर्ण तथा वहीं चतुष्पथयुक्त नगर कदापि पीड़ित नहीं करता। ऐसा नगर ब्रह्मस्थान होता है तथा वहाँ शिव सदैव स्थित रहते हैं। हे विप्र! ऐसा नगर हितकारी होता है।।३५।।

चतुर्विंशतिताद्यस्तु हस्तानष्टगतं परम् । अत्र मध्यं प्रशंसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥३६॥
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यं निवेशनम् । नगरार्द्धञ्च विष्कम्भं खेटं ग्रामं ततोऽर्द्धतः ॥३७॥
नगराद्योजनं खेटं खेटाद् ग्रामार्द्धयोजनम् । द्विक्रोशं परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्धनुः ॥३८॥

मध्य नगर का परिमाण है १२ क्रोश तथा ८०० हाथ। मध्य नगर चतुर्दिक समान होता है। उसमें ह्रास-वृद्धि नहीं होती। ८०० किष्कु मुख्य निवेशन होता है। खेट अथवा विष्कुम्भ का नगरार्द्ध होता है। ग्राम खेट माप का आधा होता है। खेट नगर से योजनमात्र दूर होता है। खेट से ग्राम आधा योजन होता है। २ क्रोश परम सीमा है। चार धनुष परिमित स्थान क्षेत्रसीमा है।।३६-३८।।

त्रिंशद्धनुर्ग्राममाहुः सीमामार्गो दशैव तु । विंशद्धनुः ग्राममार्गं सीमामार्गो दशैव तु ।
धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान् राजपथः कृतः ॥३९॥
नृवाजिरथनागानामसम्बाधं सुसञ्चरः । धनूँषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु निर्म्मिताः ॥४०॥

ग्राम का न्यून परिमाण होता है—३०० धनुष। सीमापथ भी १० धनुष है। श्रीमान् राजपथ १० धनु अर्थात् ४० हाथ विस्तीर्ण होना चाहिये। इस प्रकार होने पर मनुष्य, अश्व, रथ तथा हाथी आदि अबाध संचरण कर सकते हैं। शाखापथ ४ धनुष चौड़ा होता है।।३९-४०।।

त्रिकरास्त्वुपरथ्यास्तु द्विकराप्युपरथ्यका । जङ्घापथश्च चतुष्पादः त्रिपदं स्याद्गृहान्तरम् ॥४१॥
व्यतीपादस्त्वर्द्धपादं प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः । अवकरः परिवारः पादमात्रं समन्ततः ॥४२॥

उपरथ्या (एक प्रकार का पथ) तीन हाथ, अल्परथ्या (उसके अन्तर्गत का पथ) दो हाथ होता है। जङ्घापथ चतुष्पाद के लिये होता है। त्रिपद के बाद गृहान्तर कहा जाता है। वृत्तिपाद अर्द्धपाद का, प्राग्वंश (एक प्रकार का यज्ञस्थल) पादपरिमित होता है। अवचार तथा परिचार (स्थानविशेष) चारो ओर पादमात्र का होता है।।४१-४२।।

प्रावृट्काले तु सावित्री कर्त्तव्या अन्यथा नहि । आद्ये कार्य्या पुरा विप्र अष्टलोकविवर्जिताः ॥४३॥
न विशेच्छौकरं वक्त्रं तस्मिन् पालो भवेदमी । एवं नगरेऽष्टके सिद्धे पुरेषु च महामुने ॥४४॥
ततो मेघाकृतिं दुर्गं कल्पयन्ति नृपोत्तमाः ॥४५॥
सहजं गिरिदुर्गञ्च कैलासं शाङ्करं यथा । तथा चार्द्रापि द्रष्टव्यं बहुतोयगृहान्वितम् ॥४६॥

राजगण-कल्पित इस प्रकार से नगर में मेघाकृति दुर्ग होता है। गिरिदुर्ग स्वाभाविक[1] होता है, जैसे शिव का दुर्ग है—कैलास। बहुजल-गृहयुक्त गिरिदुर्ग पृथिवी पर भी वैसे ही होता है।।४३-४६।।

आख्यातं दिव्यसम्पन्नं विना दैवजलं शुभम्। सार्द्धयोजनमानन्तु समं दीर्घमथापि वा ॥४७॥
श्रेष्ठं मध्यं भवेद्धन्वं पादांतकल्पसंभवेत्। क्रोशं क्रोशार्धमं दुर्गं श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥४८॥

समदुर्ग आधा योजन विस्तृत होता है। इसकी अपेक्षा बड़े दुर्ग भी श्रेष्ठ होते हैं। उससे आधा दुर्ग (चौथाई योजन) मध्यम होता है। इसका भी आधा दुर्ग कनिष्ठ माना गया है। जो क्रोश अथवा क्रोशार्द्ध दुर्ग है, उसे भी मनीषीगण ने श्रेष्ठ माना है।।४७-४८।।

इषुर्न चरते यत्र अधस्तात् प्रेरितो मुने। पथस्तेन धनुष्मता तत्र संस्कारमारभेत् ॥४९॥

नीचे से प्रशस्त धनुष से छोड़ा बाण छोड़ने पर ऊपर जहाँ तक जाय, दुर्ग का मान (ऊँचाई) उतना ही होना चाहिये।।४९।।

चतुर्दिक्षु स्वदेशान्तदुर्गं दैवकृतं नृपः। कारयेद् युद्धयोग्यन्तु सप्तग्रामशतावृतम् ॥५०॥
दुर्गे कृते चतुर्दिक्षु मण्डलं न विशत्यरिः। वीरवासावसंरोधात् पार्ष्णिग्राहभयादपि ॥५१॥
दुर्गं चतुर्विधं ज्ञेयमापत्स्वाश्रयकारणम्। औदकं पार्वतञ्चैव धान्वनं वनजं तथा ॥५२॥

जिस प्रकार से दुर्ग युद्ध के योग्य हो, वही करना चाहिये। दुर्ग ७०० ग्रामों से घिरा होना चाहिये। दुर्ग के चारो ओर इस प्रकार से वीरों का समावेश होना चाहिये, जिससे शत्रु भीतर प्रविष्टा न हो सके। विपत्ति में आश्रयभूत दुर्ग चार प्रकार का होता है। यथा—जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, मरुदुर्ग तथा वनदुर्ग।।५०-५२।।

चत्वारो मूलदुर्गे तु द्विभेदाः परिकीर्तिताः। अन्तर्द्वीपं स्थलञ्चैव गुहाप्रान्तरमेव च ॥५३॥
प्रोक्तं निरुदकं स्तम्बमिरिणाख्यं तथैव च। खाञ्जनं चैव विज्ञेयं स्तम्बगहनमष्टमम् ॥५४॥
आपो द्विधा गता यत्र तदन्तर्द्वीपमुच्यते। विज्ञेयं तु नदीदुर्गमित्युवाचोशना स्वयम् ॥५५॥

यह चतुर्विध मूल दुर्ग दो-दो प्रकार के होते हैं अर्थात् अन्तर्द्वीप, स्थल, गुहा, प्रान्तर, निरुदक, ईरिण, खाञ्जन तथा स्तम्बगहन। जहाँ दोनों ओर जल प्रवाहित हो रहा है, वह अन्तर्द्वीप होता है। वही नदीदुर्ग भी कहा गया है। यह शुक्र का वाक्य है।।५३-५५।।

स्थूलमुन्नतदेशः स्यादगाधसलिलावृतम्। जलदुर्गं द्वितीयं स्यात् तडागं सरसश्च यत् ॥५६॥
गिरीणामन्तरालं यद्देवद्वारं सुदुर्गमम्। गुहाख्यं पर्वतं दुर्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५७॥
प्रोत्तुङ्गटङ्कविच्छिन्नं सोपसारं सुसंस्कृतम्। प्रास्तरं गिरिदुर्गं स्यात् सर्वदुर्गसुलक्षणम् ॥५८॥

अगाध सलिल से घिरा बीच में उन्नत भूमि पर बना जलदुर्ग होता है। तड़ाग अथवा सरोवरमध्य में बना दुर्ग भी जलदुर्ग कहलाता है। पहाड़ों के भीतर जो दुर्ग बने होते हैं, उसे गुहादुर्ग कहा जाता है। उत्तुङ्ग टङ्क विच्छिन्न (ऊँचे पर्वत में खोदकर बनाया) सुसंस्कृत प्रान्तर ही गिरिदुर्ग कहलाता है। यह सबसे उत्तम माना गया है।।५६-५८।।

बहिर्निःसलिलं दुर्गं तृणवृक्षविवर्जितम्। ज्ञेयं निरुदकं स्तम्बं सदा दुर्गविधायकैः ॥५९॥
एतदेकञ्च विज्ञेयमीरिणं सोषरं बुधैः। स्वल्पक्षारजलोपेतं द्वितीयं सोषरं स्मृतम् ॥६०॥

---

१. यहां मूल पाठ ४३-४४ में प्रमाद लक्षित होता है। लिपिकार आदि की त्रुटि है। कुछ तात्पर्य स्पष्ट न होने से ४३-४४ का अनुवाद नहीं है।

बाहर वृक्ष-तृण से रहित बहिर्जलाशयशून्य दुर्ग को निरुदक दुर्ग कहा गया है। ईरिण दुर्ग दो प्रकार के होते हैं। प्रथम है—क्षार भूमि अथवा अल्पक्षार वाली भूमि पर बना दूसरा है एवं मरुभूमि से बना। मरुभूमि में बना। यह द्वितीय ईरिण दुर्ग भी क्षारयुक्त तथा क्षारहीन भूमि के कारण दो प्रकार का होता है।।५९-६०।।

एतावांस्तु विशेषः स्याद्धान्वनं द्विविधं पुनः। खञ्जनाख्यं पुनर्ज्ञेयं सजलाधारकर्दमम् ॥६१॥
स्तोकवृक्षसमायुक्तं स्तम्बाख्यं गहनं विदुः ॥६२॥
वनदुर्गं द्वितीयन्तु प्रवदन्ति मनीषिणः। नदीपर्वतदुर्गेषु चतुरः पार्थिव आवसेत् ॥६३॥

इसी प्रकार से मरुदुर्ग भी दो प्रकार का होता है। खाञ्जन नामक वनदुर्ग अल्प वृक्षयुक्त कर्दम भूमि में बना होता है। जहाँ अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हों, ऐसे स्थान का दुर्ग स्तम्बगहन दुर्ग होता है। नदीदुर्ग तथा पर्वतदुर्ग में राजा को यत्नतः वास करना चाहिये।।६१-६३।।

वर्णोत्तमहिते ते द्वे सर्वकामप्रसाधके। धान्वनं वनदुर्गञ्च आटव्यं तत् प्रकीर्तितम् ॥६४॥
वसन्ति स्वेन विधिना यथोद्दिष्टेन ते मुने ॥६५॥

ये दोनों दुर्ग वर्णश्रेष्ठ वालों के लिये हितकारी तथा सर्वकामसाधक होते हैं। मरुदुर्ग तथा वनदुर्ग आटव्य (जंगली) होता है। वह जंगली राजाओं के लिये आवासयोग्य कहा गया है। हे मुने! इस विधि से यथोद्दिष्ट रूप से वे रहते हैं।।६४-६५।।

अन्येऽपि च भविष्यन्ति दुर्गाश्रयसमाश्रिताः। तेऽपि तेषु यथायोगं हितकार्य्यरताः सदा ॥६६॥
खण्डस्फोटितसंस्कारं द्रव्याणां निचयांस्तथा। रक्षाञ्चैव यथाशास्त्रं कुर्य्याद् दुर्गेष्वतन्द्रितः ॥६७॥

दुर्गाश्रित राजाओं को यथासम्भव अपने आश्रय दुर्ग की सम्यक् देखभाल करनी चाहिये। उसके टूटे-फूटे की मरम्मत, द्रव्यसञ्चय तथा दुर्गरक्षण निरालस्य होकर राजा को करना चाहिये। शास्त्रोक्त रीति से अतन्द्रित होकर दुर्गरक्षण करना चाहिये।।६६-६७।।

दुर्गोत्पत्तेश्चतुर्थांशं दुर्गेष्वेवोपयोजयेत् ॥६८॥
खण्डस्फोटितसंस्कारं क्रियादौ नित्यकर्म्मणि। कर्त्तव्यं पोषणे पादं कोषमर्द्धं प्रवेशयेत् ॥६९॥

राजा को दुर्ग (राज्य) के आय का चतुर्थांश दुर्ग की मरम्मत, देख भाल आदि में लगाना चाहिये। पालन-पोषणार्थ एक चतुर्थांश व्यय करना चाहिये और आधी आय को कोष में सञ्चित करना चाहिये।।६८-६९।।

देशकालवशाद्वापि कल्पनीयौ व्ययाव्ययौ। प्राकारपरिखादीनां कल्पयेद्वा पृथक्-पृथक् ॥७०॥
द्रव्याणां निचयार्थञ्च सग्रामान् महर्द्धिकान्। परिखाखननं नित्यं नित्यं वप्रविवर्द्धनम् ॥७१॥
प्राकारोपचयं नित्यं नित्यं धान्यादिसंग्रहः। शरीरस्य शरीरो वा पोतो पोतस्य वा यथा ॥७२॥
तथा दुर्गस्य कार्य्येषु दुर्गाचारहितो भवेत् ॥७३॥

अथवा राजा को देश-काल का विचार करके आय-व्यय निश्चित करना चाहिये (जो खर्च व्ययोग्य न हो, उसे नहीं करना चाहिये)। समग्र दुर्ग-संस्कारार्थ एक ही बार में निश्चित करना चाहिये कि कितना व्यय होगा अथवा प्राकार-परिखाखनन आदि के लिये पृथक्-पृथक् व्यय का निर्धारण भी किया जा सकता है।

द्रव्य की आय के लिये महासमृद्ध पैदावर वाले ग्रामों की स्थापना करनी चाहिये। नित्य धान्यादि का संग्रह करना कर्त्तव्य है। जैसे देहधारी अपनी देह की रक्षा में तथा उसके हित में लगा रहता है, जैसे जहाज का स्वामी अपने जहाज के हित में तत्पर रहता है, उसी प्रकार दुर्ग के स्वामी को दुर्गहित में लगे रहना चाहिये।।७०-७३।।

आपदः सुलभा राज्ञां तेषां दुर्गः प्रतिक्रियाः। दुर्गेषु मतिमांस्तस्मान्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥७४॥
सुप्रभूनारिविध्यानां सर्वलोकोपकारिणाम्। स्वाम्यादीनामनुच्छित्तावेकं दुर्गं बलं विदुः ॥७५॥
कृतोऽप्यापत् प्रतीकारो मोहादेव प्रमादतः ॥७६॥
तस्कराः खण्डयन्त्येव नरं निद्रालुकामिकम्। अनर्घ्यनिचयोपेतं सापसारं सुरक्षितम् ॥७७॥

राजाओं पर विपत्ति आती रहती है। यह उनके लिये दुर्लभ नहीं है। उस विपत्तिसमूह के प्रतिकार का उपाय है—दुर्ग। अतएव बुद्धिमान् राजा को दुर्ग के प्रति कभी असावधान नहीं रहना चाहिये। अपने पक्ष के लिये अविरुद्ध, सर्वलोकोपकारी, स्वामित्व के उच्छेद को प्रतिबन्धित करने के कारण (स्वामित्व से हटाने को रोकने वाले अर्थात् सुरक्षा प्रदान करने वाले) दुर्ग राजा का एक प्रधान बल कहा गया है। यदि प्रमत्त राजा पर आई आपत्ति का किसी प्रकार से प्रतिकार हो भी जाय, तथापि यदि दुर्ग के प्रहरी निद्रालु तथा आलसी हैं, तब तस्कर जैसे वहाँ की सम्पत्ति नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार से आलस्य एक सुरक्षित राजा का भी नाश कर देता है।।७४-७७।।

दुर्गं दुर्गगुणोपेतं यस्य राज्ञः सुसंभृतम्। अनुच्छेद्यः स शत्रूणां मित्राणां याति चापदि ॥७८॥

दुर्ग में ऐसे सभी गुण होने चाहिये, जिससे उस पर शत्रुपक्षीय आक्रमण न हो सके। जिस दुर्ग में ऐसी गुणराशि विद्यमान रहती है, ऐसे गुण से जो मण्डल परिपूर्ण होता है, उसका शत्रुपक्ष कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते और अन्ततः उससे मित्रता कर लेते हैं।।७८।।

अदुर्गस्तु पुनः शीघ्रमभियुक्तो बलीयसा। उत्सेधवधबन्धानामेकमाप्नोत्यसंशयम् ॥७९॥
तस्मात् सुकृतरक्षेषु दीर्घकालः सहिष्णवः। दुर्गेषु निचयाः कार्य्या द्विगुणा द्वादशाब्दिकाः ॥८०॥

जिसका दुर्ग सम्यक् रूप से स्थित तथा निर्मित, सुरक्षित नहीं होता, बलवान शत्रु के आक्रमण से उस राजा को उच्छेद, वध-बन्धनादि में से एक न एक स्थिति आक्रान्त कर ही देती है। इसलिये दुर्ग को सुरक्षित करना ही उचित है। उसे दीर्घकाल तक स्थायी रहने योग्य बनाना चाहिये। उसमें १२ वर्ष से दूने समय की उपभोग सामग्री, युद्ध सामग्री का संचय रखना भी आवश्यक होता है।।७९-८०।।

अशेषस्नेहधान्यादिभैषज्यलवणानि च। शुष्कशाकादिवल्लूरं क्षारगन्धस्तृणानि च।
अङ्गारायवसं काष्ठं सारदारूणि वेणवः ॥८१॥
स्नायुलोहाश्मचर्म्माणि वल्कारण्या विषाणि च। शस्त्रभावगतं यन्त्रं विषाणान्यग्निमुक्तयः ॥८२॥
शरा धनूंषि प्रासाश्च कृतार्य्याः काण्डकल्पनाः। कचग्राहिण्यकुन्द्रानां वरत्रा शणरज्जवः ॥८३॥
दात्रिका दूतयः कुण्डा भूसुण्ड्यो दृषदस्तथा। व्याघ्री शतघ्नी रोषण्यो जलयन्त्राणि मुद्गराः ॥८४॥
इत्येवमाढ्याः कार्य्या निचया दुर्गचिन्तकैः। पुराणामिति यद्द्रव्यं कीटाद्युपहतञ्च यत् ॥८५॥

तैल आदि नाना स्नेहद्रव्य, धान्यादि, लवण, औषधि, शुष्क शाक आदि, क्षार, तृण आदि, अङ्गार (कोयला), यव, काष्ठ, सारकाष्ठ, वंश (बांस), स्नायु, लौह, प्रस्तर, चर्म, वल्कल, विष, शस्त्र, आवरण, विभिन्न यन्त्र, शृङ्ग, शर, धनु, प्रास, कुदाल, सन की डोरी, दात्रिका, कुम्भ, भुसुण्डि, दृषद, व्याघ्री, शतघ्नी, जलयन्त्रादि, मुद्गर इत्यादि आवश्यक द्रव्यों को दुर्ग में रखना उचित है। पुराने तथा कीटादियुक्त जो द्रव्य दुर्ग में रखा हो, उसका व्यय करके नूतन द्रव्य रखना चाहिये।।८१-८५।।

एवं प्रक्षिप्य तावत्तद्व्ययं तस्यैव कारयेत्। तावता हि व्ययाभावे दृष्ट्वा कालसहिष्णुताम् ॥८६॥
नवानां परिवर्तेन क्षिपेज्जनपदेषु वा। रक्षेत् शतकुलीमेकस्ता रक्षेच्छतिको दश ॥८७॥

दशैताश्चिन्तयेदेकं चतुर्थांशं पुरस्य वा। समागमं मनुष्याणां निमित्तं स्थानमेव च ॥८८॥
कालमर्थप्रमाणञ्च विद्याद्दशकुलाधिपः। मानुषाग्रं कुटुम्बस्य विभवे याति जीवके ॥८९॥

जब यह देखे कि यह सब पुरातन द्रव्य दुर्ग में समायोजित नहीं हो रहा है, अथच अधिक समय तक पड़े रहने से व्यवहार योग्य नहीं रह जायेगा, तब उसे नये द्रव्य से बदल कर वह सब जनता में दान कर देना चाहिये। एक व्यक्ति को दस कुल का अधिपति होना चाहिये। वे दस कुल अब दशशत के अधिपति होने चाहिये। इसी प्रकार से दस लोग नगर के एक चतुर्थांश की रक्षा करें। जिसे दश कुल का आधिपत्य मिले, वह मनुष्यों के गमनागमन, विपद-आशंका, अर्थ, बल-प्रमाणादि का पर्यवेक्षण करे। यदि उसे कुटुम्ब-सम्बन्धित कोई कार्य आ जाय, तब वह अन्य स्थान में जा सकता है।।८६-८९।।

व्ययं विवाहसम्बन्धं दायग्राहञ्च तत्त्वतः। नापृष्ट्वा प्रविशेत् कश्चिदायान्तं वा प्रवेशयेत् ॥९०॥
कारणं मोक्षकालञ्च विजानीयाद् द्वयोरपि। अभ्यागतोऽन्यदेशीयो नैकरात्रात्परं वसेत् ॥९१॥
सुस्थवृत्तेऽन्यदा तस्य प्रवेशाभाव एव च। अन्यदेशागतं पण्यं प्रवेश्यन्तं निवासिभिः ॥९२॥

व्यय, विवाह, सम्बन्ध, दानग्रहणप्रभृति कोई विशेष कार्य न रहने पर किसी को दुर्ग में प्रवेश करने देना अथवा बाहर जाने देना उचित नहीं है। प्रवेशार्थी तथा बहिर्गमन हेतु जाने वाले के क्रमशः प्रवेश एवं निर्गम के कारण से अवगत होना आवश्यक है। उनके पुनः प्रवेशादि के कारण से भी अवगत होना चाहिये। (पूरी जाँच करके) यदि विदेशी अभ्यागत व्यक्ति से विपत्ति की कोई आशंका न हो, तब उसे एक रात्रि हेतु ठहराया जा सकता है। यदि विपत्ति की आशंका हो तब प्रवेश करने देना भी उचित न होकर वर्जित है। अन्य देश से आया कोई पण्यद्रव्य (व्यापार का द्रव्यसामान) भी वहाँ के निवासियों के लिये उपयोगी होने पर भीतर लाया जा सकता है।।९०-९२।।

दातव्यं प्रतिपण्यञ्च तैरेव हि विनिःसृतम्। दुर्गोपयोगि यद्द्रव्यं धान्यं वा वल्कलादिकम् ॥९३॥
तस्य कुर्य्यादनिर्व्वाहं कीटाद्युपहतादृते। नानिबद्धो वसेत् कश्चिन्न लिङ्गी न च भिक्षुकः ॥९४॥

उसे लेकर उसके बदले में (पण्य द्रव्य लाने वाले को) प्रतिपण्य प्रदान करना चाहिये। धान्य-वल्कलादि जो द्रव्य दुर्ग-हेतु उपयोगी हो, यदि वह कीटादि से भक्षित न हो, तब उसे खर्च (व्यय) नहीं करना चाहिये। यदि कोई विशेष कार्य न हो, तब किसी को भी दुर्ग में रुकने नहीं देना चाहिये। चिह्नधारी, भिक्षुक को भी नहीं रुकने देना चाहिये।।९३-९४।।

न शस्त्रिणां न चोन्मत्तो न वाग्मी न कुशीलवौ। प्रवेशयेन्न चाज्ञातान् प्राक्प्रविष्टांश्च शोधयेत् ॥९५॥

सशस्त्र व्यक्ति, उन्मत्त, वाग्जीवी तथा कुशीलव आदि को दुर्ग में प्रवेश देना उचित नहीं है। अज्ञात कुल-शील व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध होना चाहिये। यदि (असावधानी से) ऐसा कोई व्यक्ति प्रवेश पा गया हो, तब उसे बाहर निकाल देना ही उचित होता है।।९५।।

आयुधीयैरशून्यानि सदा द्वाराणि कारयेत्। आगामिनाञ्च नार्यानामुपभोगाय कल्पयेत् ॥९६॥
विक्रयं सर्वपण्यानां बहिः सूनासुगासु च। अद्वारेण प्रविष्टस्य द्वारेणांसमयेऽपि वा ॥९७॥
द्विपादग्निनिषेधार्थं सातत्यादवघोषणम् ॥९८॥

द्वारदेश पर सदा सशस्त्र प्रहरी नियुक्त रहना चाहिये। जिस कार्य से भविष्य में लाभ हो, उसे ही करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कार्य नहीं करना चाहिये। सभी पण्यद्रव्य एक ही बार में नहीं बेचना चाहिये। मद्यशाला बाहर होना ही उचित है। यदि कोई प्रवेशद्वार की जगह किसी अन्य स्थान से प्रवेश करता है अथवा कोई असमय में प्रवेशद्वार से दुर्ग के भीतर आ

गया हो, इन दोनों ही स्थितियों में उस व्यक्ति के दोनों पैरों का छेदन करके उसे उपयुक्त दण्ड प्रदान करना चाहिये। अग्निभय के निवारणार्थ सर्वदा घोषणा करते रहना चाहिये।।९६-९८।।

प्रक्षेप्य पटलेभ्यश्च तृणजातं धनात्यये। नोपहन्यादमेध्येन न गर्तैर्नाप्यपस्करैः ॥९९॥
गृहकाष्ठातृणैर्वापि विटमार्गं न रोधयेत्। अन्योन्यालोकि कर्त्तव्यं स्थानकं स्थानकान्तरात् ॥१००॥

अग्निभय उपस्थित होने पर गृह का तृण आदि (ज्वलनशील पदार्थ) दूर फेंक देना चाहिये। गृहकाष्ठ-तृणादि किंवा कोई अपवित्र वस्तु द्वारा किसी पर भी आघात नहीं करना चाहिये। किसी विट आदि का मार्गावरोध भी नहीं करना चाहिये। आवास स्थान इस प्रकार बनाना उचित है, जिससे एक स्थान पर रहते हुये अन्य को देखा न जा सके।।९९-१००।।

प्राकारबाहुमेकैकं चरेयुर्निशि रक्षिणः। तान्येव भयशङ्कायां राज्ञि दूरगतेऽपि वा ॥१०१॥
निरन्तराणि कुर्वीत स्थानकानि प्रयत्नवान्। व्यामिश्रास्तेऽपि कर्त्तव्याः सैनिकैः पुरवासिभिः ॥१०२॥
लेख्यका वत्सतज्जातिगोत्रसंख्यादिलक्षिताः। प्राकाराधिष्ठितं पादं पादं सर्वत्र चारिणम् ॥१०३॥

रात्रि में प्राचीर के एक-एक ओर एक-एक प्रहरी विचरण करता रहे। किसी भय की आशंका रहने पर किंवा राजा के दूर देश-गमन करने पर प्राचीर के सभी स्थानों पर प्रहरी नियुक्त करना चाहिये। पुरवासी सैन्यगण अपनी जाति-संख्या को नियमानुसार विशेष-विशेष चिह्न धारण करके उनके (प्रहरीगण) के साथ मिलित होकर पदचालना करते-करते प्राचीर के सभी स्थानों पर विचरण करते रहें।।१०१-१०३।।

आबद्धकवचं मध्ये बलस्यार्द्धं निवेशयेत्। उष्ट्राश्वाश्वतरारूढैः शीघ्रदूरप्रयायिभिः ॥१०४॥
संशोध्य परितो भूमिं दुर्गस्य दशयोजनात्। यतो यतो भयाशङ्का तत्र तत्र महामतिः ॥१०५॥
चरैर्विज्ञाय वृत्तान्तं तस्य योग्यं समाचरेत्। भाण्डागारेषु यत्नेन कोष्ठागारेषु नित्यशः ॥१०६॥

सैन्यगण कवच पहनकर आधी-आधी संख्या में प्राचीर के मध्य में रहें। ऊँटसवार, घुड़सवार तथा शीघ्रगामी सैन्य द्वारा दुर्ग की दस योजन-पर्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये। जहाँ-जहाँ भय की आशंका हो, गुप्तचर से उस-उस स्थान के वृत्तान्त को जानकर उसके यथायोग्य प्रतिकार (बचाव) का प्रयत्न करना चाहिये। भाण्डारागार तथा कोष्ठागार पर पहरा लगाना चाहिये।।१०४-१०६।।

जलशालासु चोद्युक्ताः प्रयोज्याः कुलजाः स्थिराः। भीता लुब्धास्तथा त्रस्ताः भृत्या व्यसनिनः शठाः ॥१०७॥
द्यूतमद्यरता दुर्गे न कार्य्यास्त्वधिकारिणः। नित्यं मन्त्रिजनोपेतं भिषक्सांवत्सरान्वितम् ॥१०८॥
सूत्रधारगणोपेतं नानाशिल्पिसमाकुलम्। ग्रहकृत्योपसर्गादि शमनेषु प्रतिष्ठितम् ॥१०९॥
विषभूतोपहारांश्च गारूडिकादिकांस्तथा। द्विजान् वेदविदश्चैव कारयेत् सन्निधौ नृपः।
श्वश्रृगालान् महादुर्गे गोपुरादिषु वर्ज्जयेत् ॥११०॥

जलशाला आदि पर सद्वंश में उत्पन्न स्थिर बुद्धि लोगों की नियुक्ति करनी चाहिये। भीत, लुब्ध, व्यसनी, शठ, जुआरी, शराबी लोगों को कोई भी विशेष अधिकार देकर नियुक्त नहीं करना चाहिये। महाराजगण को अपने पास मन्त्री, वैद्य, दैवज्ञ, सूत्रधार, शिल्पी, शान्तिकारी ब्राह्मण, विषवैद्य, भूतहारी (भूतादि से त्राणकर्त्ता), गारुड़िक (गारुड़ विद्या वाले) तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों को सदा रखना चाहिये। दुर्ग में तथा गोपुर में कुत्ते, शृङ्गाल आदि जन्तु रखना निषिद्ध है।।१०८-११०।।

एवं कृते सदा विप्र पुष्कलां लभते श्रियम्। पातिगां सबलोपेतां निराबाधां सुखेन च ॥१११॥

हे विप्र! ऐसा करने वाले राजा अतुल सम्पत्ति के अधीश्वर होकर विघ्नरहित होकर पृथिवीपालन-जनित सुख प्राप्त करते हैं।।१११।।

वसिष्ठ उवाच

गोपुरस्य प्रमाणन्तु श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । कीदृङ्मानं प्रकर्त्तव्यं दिनऋक्षेषु केषु च ॥११२॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—अब मैं गोपुर के सम्बन्ध में सुनना चाहता हूँ। कृपया गोपुर का परिमाण कितना हो तथा किस दिन, किस नक्षत्र में उसे बनाना उचित है, कहिये।।११२।।

बृहस्पतिरुवाच

पूर्वादीन् कारयेद्द्वारान् महादुर्गेषु चोत्तमान् । द्वात्रिंशत् करकोत्सेधमर्द्धेनैव तु विस्तरम् ॥११३॥
द्वितीयं मध्यमं कार्यं करषोडशकोच्छ्रयम् ॥११४॥
तस्य चार्द्धेन विस्तारं तृतीयं मनुमानगम् । चतुर्थं भानुमानन्तु रुद्रमानन्तु पञ्चमम् ॥११५॥
षष्ठं दशकरं कार्यं सप्तमं ग्रहमानितम् । वसुमानं भवेद्विप्र द्वारतश्चाष्टमं मतम् ॥११६॥

बृहस्पति कहते हैं—दुर्ग के पूर्वादि द्वार को अत्यन्त उत्तम रूप से बनवाना चाहिये। यह ३२ हाथ ऊँचा तथा १६ हाथ चौड़ा होना चाहिये। द्वितीय द्वार मध्यमरूप होना चाहिये। उसकी ऊँचाई १६ हाथ तथा चौड़ाई आठ हाथ होना उचित है। तृतीय द्वार १४ हाथ ऊँचा, चतुर्थ द्वार १२ हाथ ऊँचा, पञ्चम द्वार ११ हाथ ऊँचा, षष्ठ द्वार १० हाथ ऊँचा, सप्तम द्वार ९ हाथ ऊँचा तथा अष्टम द्वारा ८ हाथ ऊँचा होना चाहिये।।११३-११६।।

उच्छ्रायाच्चार्द्धविस्तारान् द्वारान् कुर्व्वीत बुद्धिमान् । शैलानि दृढकोष्ठानि नानाहेतियुतानि च ॥११७॥
ऊर्ध्वमण्डपयुक्तानि वीथिकोपवनादिभिः । राजस्थानसमायुक्तान् वातायनसमन्वितान् ॥११८॥

जिसकी जितनी ऊँचाई कही गयी है, चौड़ाई उसकी आधी होनी चाहिये। द्वारदेश के सामने विविध लतामण्डप तथा उपवनादि होने चाहिये। प्रत्येक द्वार पर राजा के लिये बैठने का स्थान होना चाहिये। प्रत्येक द्वार वातायन से समन्वित होना चाहिये।।११७-११८।।

मतवारणविद्याद्यान् ध्वजकैरुपशोभितान् । गजव्यालकृतापीडान् पद्मपत्रमनोहरान् ॥११९॥
कारयेद्विविधान् द्वारान् यथाशोभं यथाक्रमम् । मध्यमं षोडशमानञ्चार्थमानमथापि वा ॥१२०॥
द्वारं सर्वेषु दुर्गेषु प्रवदन्ति मनीषिणः । सकपाटार्गलोपेतं सकीलकमथापि वा ॥१२१॥
भुजगेन सयन्त्राद्यान् नागबन्धसुसञ्चितान् । आयसान्यष्टकीलानि यथाभागगतानि च ॥१२२॥
कारयेद् द्वारसंस्थानि द्वारे द्वारान्तराणि च । मण्डपं वीथिका चाथ यत्र शस्त्रभृतो नराः ॥१२३॥
तिष्ठन्ति द्वारपालाश्च नित्यं सन्निहितायुधाः । दुर्गेषु कारयेद् दुर्गां महिषासुरघातिनीम् ॥१२४॥

द्वारदेश में हाथी-सर्प-पद्म आदि विविध चित्र अंकित करना चाहिये तथा स्थान-स्थान पर ध्वजा लगाकर द्वार की शोभासम्पन्न करना चाहिये। सभी दुर्गों का मध्यम द्वार १६ हाथ अथवा १४ हाथ ऊँचा होना चाहिये। द्वार के कपाट तथा अर्गला आदि सुदृढ़ होने चाहिये एवं लौहनिर्मित आठ कील यथास्थान स्थापित होने चाहिये। जहाँ द्वारपालगण सशस्त्र होकर पहरा दें, वहाँ पर मण्डप अथवा लतामण्डप निर्मित होना चाहिये। ऐसा मनीषीगण का कथन है। द्वार में भुजाकुल यन्त्रादि तथा नागबन्धादि सज्जित होना चाहिये। दुर्ग के द्वार देश पर देवी महिषमर्दिनी की मूर्त्ति रखनी चाहिये।।११९-१२४।।

द्वारस्थं गजवक्त्रं वा धनदं वाथ पद्मजम् । त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां देवऋक्षेषु चाथवा ॥१२५॥
कारयेत् पुरद्वारादि सुलग्ने ग्रहवर्ज्जिते । यथा शुक्रयुते वाथ दृष्टे वा चोच्छ्रयेऽथवा ॥१२६॥

अथवा वहाँ गणेश, कुबेर अथवा ब्रह्मा की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी किंवा देवनक्षत्र में ग्रहरहित (दुष्टग्रहरहित) उत्तम लग्न में पुर-द्वारादि का निर्माण करना चाहिये। मैं (बृहस्पति) तथा

शुक्र—इन दोनों ग्रह से युक्त अथवा इन दोनों से दृष्ट किंवा इन दोनों के उच्च लग्न में पुर-द्वारादि का निर्माण करना चाहिये।।१२५-१२६।।

शिलान्यासे बलिः कार्य्यः प्रासादोक्तो यथाविधि। हेमं कुम्भं सरत्नं वा शाखाधः सन्निवेशयेत् ॥१२७॥
पूतना शकुनी तत्र जम्भादीन् पूजयेद् ग्रहान्। देवान् यज्ञान् ग्रहान्नागान् पूजयित्वा यथाविधि ॥१२८॥

देवी के समक्ष बलि प्रदान करके प्रासादप्रतिष्ठा विधान के अनुसार पुरद्वार का प्रतिष्ठा कार्य करना चाहिये। सरत्न स्वर्णकुम्भ को पल्लवयुक्त करके द्वारदेश पर स्थापित करने के उपरान्त पूतना, शकुनिप्रभृति ग्रहगण, जन्तुगण का पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार देव, यक्ष, ग्रह, नाग आदि का भी यथाविधि पूजन करना चाहिये।।१२७-१२८।।

दैवज्ञान् सूत्रधारांश्च वस्त्रहोमस्रगादिभिः। ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्यांश्च पशुं शान्तौ निपातयेत् ॥१२९॥

तदनन्तर माला, वस्त्रदानादि से दैवज्ञ तथा सूत्रधारों को सन्तुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मणगण को स्वस्तिवाचनपूर्वक बलिप्रदानादि कृत्य करके शान्तिविधान करना चाहिये।।१२९।।

दध्यक्षतस्रजः कुम्भं भक्ष्यभोज्यं चतुर्विधम्। कारयेत् सर्वलोकादिमुत्सवं विविधं पुरे ॥१३०॥
शङ्खभेरीनिनादेन कुर्य्याच्चोत्सवादिकम्। शाखोच्छ्रयं तथा कार्यं छत्रं श्वेतपताकिकम् ॥१३१॥
एवं समुच्छ्रयेच्छाखाः सर्वद्वारेषु बुद्धिमान्। पूर्वांशं शोधयेच्चास्य स्वातीपुष्यसमुद्गमे ॥१३२॥
तेन परापि संसिद्धाः शेषाः सिद्धाः परा मुने। दिङ्भ्रान्तैः सुमहद्दोषो नृपस्य तन्निवासिनाम् ॥१३३॥

दधि-अक्षत-माला-कुम्भप्रभृति मंगलद्रव्य एवं नाना भक्ष्य-भोज्य वस्तुओं द्वारा साधारण लोगों के उत्सव का विधान करना चाहिये। प्रत्येक द्वार पर शंख-भेरी आदि मंगलवाद्य बजाने चाहिये। स्थान-स्थान पर आम की पत्ती के बन्दनवार-श्वेत छत्र-श्वेत पताकादि लगाकर उत्सव करना चाहिये। स्वाती किंवा पुष्य नक्षत्र के पूर्वांश का शोधन करना चाहिये। इससे अन्य अंश भी सिद्ध हो जाते हैं। हे मुने! राजा अथवा वहाँ रहने वालों के लिये दिग्भ्रम होना दोषावह होता है।।१३०-१३३।।

उडुम्बरं समं कार्य्यञ्चोर्ध्वं डिम्बरकं पिवा। सार्द्धहस्तन्तु विस्तीर्णमुच्छ्रयं हस्तमानितम् ॥१३४॥
शाखां विशामहीनान्तु षोडशांशामथापि वा। त्रिशाखमपि कर्त्तव्यं मध्यद्वारं विपश्चिता ॥१३५॥

ऊर्ध्व देश के प्रस्थ में आधे हाथ का चौड़ा, एक-हाथ ऊँचा 'उडुम्बर' लगाना चाहिये। द्वार के माप का १/२० किंवा १/१६ शाखा का परिमाण होना चाहिये। मध्यद्वार में उडुम्बर की ३ शाखायें होनी चाहिये।।१३४-१३५।।

स्तम्भा वृत्ताश्च द्वात्रिंशत् षोडशाष्टाष्टमेव च। चतुरस्राथ कर्त्तव्या यथाशोभं यथापुरम् ॥१३६॥
विचिन्त्यार्थं तथा शास्त्रं दुर्गद्वारं निवेशयेत्। ऋद्धिमाप्नोति येनासु भयशोकविवर्जितम् ॥१३७॥
राजा प्रजाश्च नन्दन्ति सम्यग्द्वारे कृते मुने। सामान्यं लक्षणं तासां सौम्रं सर्वत्र शस्यते ॥१३८॥
पुरदुर्गेषु कर्त्तव्यं यथावत्तन्निबोधत। नागोत्तमसमारूढसच्छत्रो विशते यथा ॥१३९॥
तथा प्रतोल्यः कर्त्तव्या दुर्गे धर्म्मार्थकामदाः। अथवा आयसं शुद्धाः शृणु विस्तरतः फलम् ॥१४०॥
न चोर्द्ध्वं पञ्चविस्ताराः पूर्वदेव विवर्द्धिताः। नराक्ष्या पञ्चविस्तीर्णा यद्वद्धा दक्षिणा मताः।
सप्त सप्तहता तोया पञ्चसप्तहतोत्तरा ॥१४१॥
पञ्चाङ्गुलस्य वृद्ध्या वा सदा कार्य्यास्तु गोपुराः। आयमानविहीनास्तु दुर्गा राज्ञो भयावहाः ॥१४२॥

बत्तीस, सोलह अथवा आठ गोल एवं चतुष्कोण स्तम्भ बनाना चाहिये। प्रयोजन के अनुरूप शास्त्रोक्त नियमानुरूप दुर्गद्वार स्थापित करना चाहिये। द्वार का निर्माण सम्यक् रूपेण होने पर राजा तथा प्रजागण ऋद्धि प्राप्त करके भय-शोकरहित

हो जाते हैं। हे मुने! राजा तथा प्रजा दोनों ऐसी स्थिति में आनन्दित होते हैं। पुर-दुर्गादि का सूत्रानुरूप सामान्य लक्षण कहता हूँ, श्रवण करो। दुर्ग की प्रतोली (उच्च पथ) इस प्रकार बनानी चाहिये, जिससे उसके भीतर से उच्च हाथी पर बैठा छत्र लगाया हुआ व्यक्ति आ जा सके। दुर्गद्वार लौह का बना उत्तम होता है। उसकी ऊँचाई ९ हाथ एवं चौड़ाई ५ हाथ होनी चाहिये। यह पूर्वद्वार होता है। दक्षिणद्वार ११ हाथ ऊँचा एवं चौड़ा ५ हाथ होता है। तदनन्तर ५ अंगुल वृद्धि करके गोपुर का निर्माण करना चाहिये। जिस गोपुर को परिमाणादि का कोई नियम रखे बिना निर्मित किया जाता है, वह राजाओं के लिये भयावह होता है।।१३६-१४२।।

नित्योद्वेगभयत्रस्ततन्निवासिजनान्तराः । सम्पूर्णमानवास्त्वङ्गसुखदा गोपुराः सदा ॥१४३॥
तासां नामानि वक्ष्यामि यथा वा परिकीर्तिताः ॥१४४॥
श्रिया कान्तिर्द्युतिर्लक्ष्मीर्जयाभद्रापराजिता । अनन्ता शोभना दुर्गाः पूर्वेण परिकीर्त्तिताः ॥१४५॥
शान्तिवृद्धिर्भवा देवी काली घोरा विमोहिनी । विमला चेति याम्येन प्रतोल्यः शुभदायिकाः ॥१४६॥
रोचना मङ्गला रौद्री उग्रा चण्डा यशोवती । प्राप्तिर्दीप्तीति वारुण्यां वीथिकाः सर्वकामदाः॥१४७॥
इच्छा प्रीतिः शुभा माता यशोदा धनदा उमा । शरण्या चेति सौम्येन दुर्गे गोपुरिका मता ॥१४८॥

ऐसे दुर्ग में जो लोग निवास करते हैं, उनको नित्य उद्वेग तथा भय उपस्थित होता है। जिस पुरद्वारादि का परिमाणादि तथा सभी विषय (निर्माणादि) अंगहीन नहीं है, उसमें निवास करने से सुख-समृद्धि होती है। अब उनके नाम क्रमशः कहता हूँ। पूर्वदिक् में श्री-कान्ति-द्युति-लक्ष्मी-जया-भद्रा-अपराजिता-अनन्ता-शोभना तथा दुर्गा; दक्षिण दिक् में शान्ति-वृद्धि-भवा-देवी-काली-घोरा-विमोहिनी-विमला; पश्चिम दिक् में रोचना-मङ्गला-रौद्रा-उग्रा-चण्डा-यशोवती-प्राप्ति तथा दीप्ति एवं उत्तर दिक् में वीथिका-सर्वकामदा-इच्छा-प्रीति-शुभा-माता-यशोदा-धनदा-उमा-शरण्या इत्यादि नाम वाला गोपुर शुभ होता है।।१४३-१४८।।

सुस्थिता सुषमा कार्य्या अविद्धा सुमनोहरा । सर्वलक्षणसम्पूर्णा पञ्चसप्ताथ भूमिका ॥१४९॥
मूलाद्वा दशहीनानि मालाद्वाराणि कल्पयेत् । शैलानि काष्ठवेष्टानि वज्रसौधानि कारयेत् ॥१५०॥
लेपानि सर्वगन्धानि प्रासादविभवानि च । एवं लक्षणसम्पन्नं दुर्गं यस्य महीपतेः ॥१५१॥
स पातीह भयात्सर्वान् लोकान् कोषसमन्वितान् । पद्मस्वस्तिकगोमूत्रवस्तुन्यासगतेऽपि वा ॥१५२॥
मध्यामध्यगतैर्गेहैः पङ्क्तिवृत्तगतैः पिवा । पुरं दुर्गं पिवा कार्यं प्रासादगृहभूषितम् ॥१५३॥

इति श्रीदेवीपुराणे गोपुरद्वारलक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः

सुस्थित, सुषमायुक्त, अविद्ध, सुमनोहर सर्वलक्षणयुक्त गोपुर होना चाहिये। पुरद्वार की सर्वतोभावेन शोभावृद्धि करनी चाहिये। पुरद्वार के सन्निकट पत्थर तथा काष्ठादि द्वारा वज्रसौध का निर्माण करना चाहिये। वहाँ सर्वगन्ध का लेप करके उसे वैभवयुक्त बनाना चाहिये। प्रासादार्थ जो समस्त शोभा आवश्यक है, वह सब पुरद्वार से सम्बद्ध करना चाहिये। जिस राजा का इस लक्षण से युक्त दुर्गादि का निर्माण होता है, उसे तथा उसकी प्रजा को कोई भय नहीं रह जाता। वह कोषयुक्त होता है। दुर्ग में बीच-बीच में एक-एक गृह बनाकर उसमें पद्म-स्वस्तिक-गोमूत्र आदि पवित्र वस्तु रखना चाहिये। नाना प्रकार के प्रासाद, गृहादि द्वारा दुर्ग की शोभा का सम्पादन करना चाहिये।।१४९-१५३।।

द्विसप्ततितम अध्याय समाप्त

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि अधोदुर्गनिवेशनम्। यथा यस्य प्रकर्त्तव्यं नृपलोकसुखावहम् ॥१॥
यस्मिन् विश्वं भवेच्चोद्ध्वं दुर्गं दुर्गविशारदः। तदधोभागवासन्तु कुर्य्यात् सर्वसुखावहम् ॥२॥

मनु कहते हैं—अब राजाओं के लिये सुखप्रद अधोदुर्ग-निवेशन का विषय कहता हूँ। ऊर्ध्वदुर्ग में निवास की अपेक्षा अधोदुर्ग में निवास करना अत्यन्त सुखप्रद होता है।।१-२।।

पूर्वं निम्नं शुभं दुर्गं सर्वेषां पुरवासिनाम्। आग्नेय्यामग्निदाहस्तु याम्ये तस्करजं भयम् ॥३॥
नैर्ऋते निर्धना लोका भवन्ति तन्निवासिनः। निर्धना धनहीनास्तु अपरा मानते जनाः ॥४॥
नित्योद्वेगपरा वत्स वायव्यां सन्नते गिरौ। मुदिताः सर्वलोकाश्च दुर्गे सौम्यांशनामिते ॥५॥

पूर्वदिक् में अधोदुर्ग बनाना चाहिये। यह पुरवासियों के लिये सुखकारी होता है। अग्निकोण में बनाने से अग्निदाह का भय तथा दक्षिण में बनाने से तस्कर का भय होता है। नैर्ऋत्यकोण में बनाने से पुरवासीगण निर्धन होते हैं। पश्चिम में बनाने पर निर्धन तथा धनहीन—दोनों ही होते हैं। हे वत्स! वायव्य कोण में बनाने पर नित्य उद्वेग होता है एवं उत्तर में बनाने पर प्रजागण सुखी होते हैं।।३-५।।

ऐशान्यां धर्म्मनिरता धनधान्यसमाकुलाः। भवन्ति तन्निवासिन्यो दुर्गे निम्नगते मुने ॥६॥
पूर्वभागे नृपश्चाधो वसेन्निम्नं यदा भवेत्। आग्नेये तेजसा विप्राः सुखदा भयदास्तथा ॥७॥

हे मुने! ईशान कोण में अधोदुर्ग बनाना शुभ होता है। पुरवासी धर्मनिरत तथा धन-धान्य से सम्पन्न होते हैं। दुर्ग में पूर्वभाग में राजा का निवास करना शुभ होता है। वहाँ अग्निकोण में निवास करने वाले ब्राह्मणों से राज्य में सुख-समृद्धि आती है तथा कोई भय नहीं होता।।६-७।।

याम्ये अन्त्यजना वास्या नैर्ऋते शस्त्रकारिणः। वारुणे जलद्रव्यादि तथा शूद्रजनादयः ॥८॥
गन्धगन्धर्वनिरता वायव्ये नदते जनाः। सौम्ये हट्टजलं कार्य्यमैशान्यां देवतादिकम् ॥९॥

दुर्ग में दक्षिण की ओर नीच व्यक्तिगण, नैर्ऋत्य कोण में अस्त्र बनाने वाले, पश्चिम की ओर जल-द्रव्य आदि तथा शूद्र जन, वायु कोण में गायक-वादकगण, उत्तर में राजप्रिय व्यक्तिगण का निवास होना चाहिये। ईशानकोण देवताओं का स्थान होता है (वहाँ मन्दिर आदि बनाना चाहिये)।।८-९।।

विपरीते महान् दोषः पूर्वे हट्टं नृपान्तकम्। भवते सुखदं वत्स यथासंस्थानवासिनाम् ॥१०॥

इससे विपरीत होने पर महान् अनिष्ट होता है। राजा का वास पूर्व की ओर ही उत्तम होता है। हे वत्स! ऐसा वासनियम होने के कारण सभी सुख तथा सम्पत्ति मिलती है।।१०।।

दुर्गं पुरञ्च नगरं कर्त्तव्यं मङ्गलायुतम्। न च शून्यानि वासानि धारयेद्देवतादिषु ॥११॥
न गृहं वीथिका दुर्गं पुरे शीर्णं विधारयेत्। राजभागं भवेत्तच्च देवतादिषु विन्यसेत् ॥१२॥
देवश्च शङ्करः कार्य्यः सगणो मङ्गलायुतः। तस्मिन् नित्योत्सवाः सर्वे गृहप्रासादभूषिताः ॥१३॥
वसेयुरुद्ध्वगा लोका बाधाशाश्वतवर्जिताः। अटव्यादिषु दुर्गेषु अधोवासं न कारयेत् ॥१४॥

दुर्ग, अन्तःपुर, नगर आदि सभी स्थानों को मङ्गलमय बनाना चाहिये। किसी देवालय को शून्य (मूर्त्तिरहित) नहीं रहने देना चाहिये। जो गृह, वीथिका, दुर्गप्रभृति जीर्ण हो जायँ, उन्हें तोड़ देना चाहिये। देवगण को प्रदत्त वस्तु पर राजा का

अधिकार होता है। नगर में भगवान् महादेव का महोत्सव करना चाहिये। उत्सवकाल में प्रासाद तथा गृहादि को सज्जित करके नगर को शोभित करना चाहिये। इससे ऊर्ध्ववासी गण पर कोई बाधा नहीं आती। अरण्य में अधोदुर्ग में वास करना उचित नहीं होता।।११-१४।।

वसंस्तृणादिगेहेषु भयादिपरिवर्ज्जिताः। अधोभागेन मेघादीन् धारयेन्मुनिसत्तमः ॥१५॥
धारयन् महदाप्नोति भयं राजा अरातिजम्। राष्ट्रं रिपुबलेनैव राजा च परिपीड्यते ॥१६॥

अधोदुर्ग में तृणादि-निर्मित (झोपड़ी आदि) गृह में मेषादि का वर्जन करके वास करना चाहिये। अन्यथा महत् शत्रुभय उपस्थित हो जाता है। समस्त राष्ट्र तथा राजा शत्रुसैन्य द्वारा अभिभूत हो जाता है।।१५-१६।।

तस्माद् दुर्गविवृद्ध्यर्थञ्चोर्ध्ववासो विधीयते। उद्ध्वं तु सुभृतावास्याः कुभृतास्तु निवासयेत् ॥१७॥
मत्तोन्मत्तान् प्रमत्तांश्च दुर्गे न वासयेन्नरान्। नैके कुर्य्यात्प्रभुत्वन्तु न शूद्रे न कुशीलवे ॥१८॥
न च वन्धकिने कुर्य्यान्न चोऽयसि नियन्त्रिते। कुर्य्याद् दुर्गं विशीर्येत यथा गेहं शिरोहतम् ॥१९॥

दुर्ग के मंगलार्थ इनका ऊर्ध्व में निवास रखना उचित है। उत्तम भृत्यों को ऊर्ध्व में रहने देना चाहिये तथा दुष्ट जन को अधः में निवास कराना चाहिये। मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त व्यक्तिगण को दुर्ग में रहने देना उचित नहीं है। शूद्र, कुशीलव, वेश्यापुत्र पर प्रभुत्व का अधिकार छोड़ना उचित नहीं है। इन सब लोगों पर प्रभुत्व का भार छोड़ने का फल दुर्ग का ध्वंस होता है; ठीक उसी प्रकार जैसे मस्तक (छत)-विहीन गृह।।१७-१९।।

ऐन्द्रेशस्तु शिवो दुर्गे अधोद्ध्वें तन्निपीडयेत्। स्वकायपीडनाद्दोषं शिवे स्वामी विनश्यति ॥२०॥
जलजे गिरिदुर्गे च वाधोवासो भयावहः। अटव्ये तु विशेषेण शाश्वतं वर्ज्जयेदधः ॥२१॥
अरण्येषु च दुर्गेषु ऊषरेषु विशेषतः। बाह्ये वासं न कुर्व्वीत अरण्येषु तथैव च ॥२२॥
अरण्ये धर्म्महानिः स्यादूषरेऽपि तथैव च। अटव्ये शत्रुजा शङ्का तस्माद्वासमधस्त्यजेत् ॥२३॥

दुर्ग के पूर्वदिक् के अधोभाग में शंकर एवं ऊर्ध्व भाग में दुर्गा का गृह बनाना चाहिये। इस स्थान पर किसी प्रकार का अत्याचार अथवा पीड़नादि करना निषिद्ध है; अन्यथा महादेव कुपित होकर सब नष्ट कर देते हैं। जलदुर्ग तथा गिरिदुर्ग के बाहर निवास करने पर भय की आशंका रहती है। इसी प्रकार वनदुर्ग के, विशेषतः ऊषर को अधोभाग में (नीचे की ओर) रहने पर भी भय की आशंका निश्चित रूप से होती है। अरण्य तथा ऊषर के दुर्ग के अधोभाग में रहने पर धर्महानि होती है। वनदुर्ग के अधः में रहने पर शत्रुसंकट होता है। अतः इस अधःवास का त्याग करना चाहिये।।२०-२३।।

कृषिकर्म्मा तु चर्म्मादि लोहितन्तु गणायसम्। शरयन्त्रौषधादीनां संग्रहाय अधो वसेत् ॥२४॥
वणिग्वीथिनिवासिन्यो धान्यमेया हिरण्येन। ऊर्ध्वे चास्या वशीकृत्य राज्ञा दुर्गहितैषिणा ॥२५॥

कृषि, चर्म, गो, लौह, धनु, बाण, यन्त्र, औषधि आदि का संग्रह करने के लिये नीचे वास करना उचित है। वणिक् तथा व्यवसायीगण को स्वर्णादि प्रदान करके उन्हें वशीभूत करने के अनन्तर ऊर्ध्व में वास कराना चाहिये। इससे दुर्ग का हित होता है।।२४-२५।।

पङ्कलं खेटकं पर्णं दुर्गाधः कर्षयेत् सदा। तन्निवासिजना सेवने कार्य्याः सबलाः सदा ॥२६॥
एवं न क्षीयते दुर्गं धनधान्येन संभृतम्। वर्द्धते च जनः कोषो राजा च सुखमेधते ॥२७॥

दुर्ग के नीचे की (निम्नदेशस्थ) भूमि को कीचड़ से तनिक आच्छादित (गीली), शून्य गर्भ अथवा पत्रादियुक्त होने पर कर्षित करना चाहिये। दुर्गनिवासी व्यक्तिगण को सर्वदा स्वस्थ तथा सबल रखने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार से धन-

धान्य द्वारा संवर्द्धित दुर्ग कभी भी नष्ट नहीं होता। इस प्रकार के दुर्ग में सबकी सुखवृद्धि होती है तथा कोष पूर्ण रहता है एवं राजा भी सुखपूर्वक कालयापन करता है।।२६-२७।।

यथा यथा विवर्धन्ते दैवौकानि गिरौपरि। तथा तथा विवर्द्धन्ते राज्ञो धर्म्मयशश्रियः ॥२८॥
यथारण्यवासिनाञ्च धर्म्मो भवति देहिनाम्। एवं राज्ञः श्रिया धर्म्मो दुर्गे कालवशाद्भवेत् ॥२९॥

घर-घर में जितनी ही देवतागण की संख्यावृद्धि होती जाती है, राजा उतना ही सुखभोग करता है। जैसे अरण्यवासी (वानप्रस्थ) व्यक्तिगण की धर्मवृद्धि होती है, उसी प्रकार से दुर्ग में निवास करने से राजाओं की कालक्रम से धर्म-यश सुख की वृद्धि होती है।।२८-२९।।

दुर्गाधः कृत्रिमं दुर्गं किञ्चित् कालं विवक्षया। विजयार्थं प्रकर्त्तव्यं यथावत् तान्निबोध मे ॥३०॥
दुर्गाश्रयं समालक्ष्य ऊर्ध्वं दुर्गं बलं तथा। जलेन्धनञ्च धान्यञ्च यवसमायुधादिकम्।
तथा कुर्य्यान्महाबाहो कृत्रिमं विजयोत्तमम् ॥३१॥
काष्ठेष्टमथवा शैलं खातिकारचितं तथा। द्रुमवल्लीलतोपेतं गर्भं तोयसमन्वितम् ॥३२॥

हे राजन्! समस्त वस्तु की रक्षा के लिये दुर्ग के अधोभाग में जिस प्रकार का कृत्रिम दुर्ग बनाना होता है, वह कहता हूँ। दुर्ग के निकट स्थान में यह कृत्रिम दुर्ग बनाना चाहिये। हे महाबाहो! ऐसा करने से सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। इससे धन-धान्य-यव-मुद्ग, अस्त्र-शस्त्र की रक्षा होती है। काठ, ईंट, प्रस्तर किंवा मिट्टी से इसका निर्माण करना चाहिये। इसे वृक्ष-लतादि से वेष्टित करना चाहिये एवं मध्य में जल का स्थान बनाना चाहिये।।३०-३२।।

बाह्यतोयं सुरक्ष्यं वा दुर्गयन्त्रोपलादिभिः। कर्त्तव्यं गृहप्राकारैस्तोरणैरुपशोभितम् ॥३३॥
वीथी पूरकसंयुक्तमथवा मण्डपान्वितम्। मण्डपं शतदण्डेन द्विगुणं त्रिगुणं पिवा ॥३४॥

इसमें स्थान-स्थान पर वीथिका तथा मण्डप का निर्माण करना चाहिये। मण्डप का परिमाण १०० दण्ड, किंवा २०० अथवा ३०० दण्ड होना चाहिये। इसे बाहरी ओर से भी जल की खाई अथवा दुर्गयन्त्र—प्रस्तर आदि से सुरक्षित करना चाहिये। गृह-प्राचीर तथा तोरणादि से भी इसे शोभित करना चाहिये।।३३-३४।।

मानाद्वृत्तमथ त्र्यस्रमायतेन्दु यथाशुभम्। अनेकगर्भगर्भाढ्यं देवतामातरान्वितम् ॥३५॥
सुदुर्गं नायकं कार्यं नागयज्ञं उमान्वितम्। अनेकमाण्डमेयादिभृतं कूपप्रपान्वितम्।
सूर्य्याग्नी धर्म्मतो देयौ शुभे चापादि वर्ज्जिते॥३६॥

यह मण्डप चन्द्रमण्डल के समान समवृत्त होना चाहिये। इसके गर्भ में अनेक मातृकायें, देवमन्दिर आदि रहने चाहिये। नाना प्रकार के पण्यद्रव्य, खाद्य तथा पानीयशालायें होनी चाहिये। ऐसी जगह जहाँ किसी विपत्ति की आशंका न हो, वहाँ पर अग्नि तथा शय्या स्थापित करनी चाहिये।।३५-३६।।

एवं कालवशात् कुर्य्याद् विजयाख्यं महापुरम्। नीचोच्चविधिसंस्थानं लक्षयित्वा गृहं बलम् ॥३७॥
पुरं दुर्गं प्रकर्त्तव्यं महर्द्धिफलकाङ्क्षया। त्रित्रिकं गर्भगर्भन्तु दण्डैश्चान्द्रादिभेदितैः ॥३८॥

कालानुसार इस विजय नामक महापुर का निर्माण करना चाहिये। नीचस्थ ग्रहों के बलाबल की विवेचना करके उत्तम तिथि पर महाफल की इच्छा से दुर्गनिर्माण (प्रारम्भ) कराना चाहिये। इसके गर्भगृह को नाना चित्रों से शोभित कराना चाहिये।।३७-३८।।

पूर्वादिदेशऋक्षन्तु द्विगर्भन्तु द्विरष्टकम्। बाह्ये द्वादशकं देयं तत्र विद्याद् बलाबलम् ॥३९॥
प्रवेशे भयदाः क्रूराः सौम्याः सौम्यफलप्रदाः। निष्काशे शुभदाः सर्वे पुरे दुर्गे च कीर्तिताः ॥४०॥

पूर्वादिक्रमेण षोडश गर्भ बनाकर बहिर्भाग में द्वादश[1] ग्रह(?) को सन्निवेशित करके पुर-दुर्गादिनिर्माण के बलाबल को जानना चाहिये। प्रवेश स्थल में क्रूर ग्रह रहने से भय की आशंका रहती है। वहाँ शुभ ग्रह रहने पर शुभ फल होता है। निर्गम स्थान में सभी ग्रह पुर, दुर्ग में शुभद होते हैं।।३९-४०।।

एकं पत्नीविनाशाय द्वे च मित्रधनापहे। त्रीणि ज्येष्ठसुतं हन्युर्नीचस्थानस्थिता ग्रहाः ॥४१॥
न भानौ नीचगे कुर्यात्पुरप्रासादकल्पनाम्। स्वामी नाशमवाप्नोति तत्पुरं नैव सिध्यति ॥४२॥

नीच स्थान में एक ग्रह रहने पर पत्नी-विनाश, दो रहने पर मित्रनाश तथा धनक्षय एवं तीन रहने पर ज्येष्ठ पुत्र का नाश होता है। सूर्यग्रह के नीचे होने पर पुर-प्रासाद का निर्माण उचित नहीं होता। इससे कार्यसिद्धि नहीं होती। उलटे अधिपति का विनाश हो जाता है अर्थात् अमंगल हो जाता है। ऐसा पुर कभी भी फलित नहीं होता।।४१-४२।।

सौम्यैश्चोच्चस्थितैः कुर्य्याद्द्रव्यार्थं विजयं पुरम्। दुर्गं क्रूरैः प्रकर्त्तव्यं शत्रुनाशाय बुद्धिमान् ॥४३॥
बलं चन्द्रार्कलग्नानां बुद्धावासं समं समम्। आयुर्दा यशदा पाकराजयोगाष्टवर्गकम् ॥४४॥
चन्द्रदृष्टिबलं कर्म्म सदख्या प्रश्नसम्भवान्। सोत्पातदैवसत्त्वोत्थं ज्ञात्वा दुर्गे शुभाशुभम् ॥४५॥
राजयोगं समावेशं संवत्सरमतं स्फुटम्। क्रियासाधनसिद्ध्यर्थं चारभेदग्रहसंश्रयम् ॥४६॥
स्थानकालस्वभावाख्यं बलं मित्रगृहाश्रितम्। रश्मिजञ्च तथा चान्यद्बलानां प्रवरं बलम् ॥४७॥

जब शुभ ग्रह उच्चस्थ हों, तब विजयपुर—दुर्ग का निर्माण कराना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति को शत्रुनाशार्थ क्रूर ग्रहकाल में दुर्गनिर्माण कराना चाहिये। चन्द्र-सूर्य तथा लग्न का बल देखकर उनकी समावस्था में आयुर्दाय-दशापाक-राजयोग-चन्द्रदृष्टिबल- अष्टवर्ग आदि की विवेचना करके प्रश्न से कर्म के शुभाशुभ को जानकर उत्पात एवं दैव के शुभाशुभ का पर्यवेक्षण करके पुर-दुर्ग का निर्माण कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त राजयोग-समावेश, संवत्सर के स्फुट ग्रहगणों के संचार तथा आश्रय, स्थान, काल, स्वभाव, मित्रगृहाश्रित बल देखना चाहिये, क्योंकि ग्रहबल ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ बल होता है।।४३-४७।।

वक्रैः सौम्यशतैः कुर्य्याद् ग्रहैर्दुर्गपुरादिकम्। नित्यञ्च ते ग्रहा दद्युर्ऋद्धिं स्वामिजनस्य च ॥४८॥

क्रूरग्रह जब शुभ ग्रहगत हों, उस काल में दुर्ग-पुर आदि का निर्माण कराना चाहिये। ग्रहगण ही नित्य-नित्य राजा की समृद्धि में वृद्धि करते हैं।।४८।।

द्रेक्काणराशिवेशं च नवांशमुदये शुभे। त्रिंशद्द्वादशभागे च कारयेत् पुरकल्पनाम् ॥४९॥
क्रूरैः क्रूरं विजानीयात् सौम्यैः सौम्यं विधीयते। शत्र्वादिविग्रहैर्वत्स रिपुमित्रविवर्ज्जितैः ॥५०॥
अतीतैरस्तलग्नैश्च न कुर्य्यात् सन्निवेशनम् ॥५१॥

द्रेक्काण, राशि, होरा, नवांश, लग्न, त्रिंशांश, द्वादशांश प्रभृति शुभयोग देखकर पुरनिर्माण कराना चाहिये। क्रूरग्रह-संयुक्त लग्न में यह कार्य कराने से क्रूर फल तथा शुभ ग्रह वाले काल में यह कार्य कराने से शुभ फल मिलता है। शत्रुगृहगत, अतीत एवं अस्त लग्न में पुर बनाने का कार्य नहीं करना चाहिये।।४९-५१।।

---

१. ग्रह तो ९ होते हैं। यहाँ द्वादश ग्रह से द्वादश राशि का तात्पर्य प्रतीत होता है। यह संदिग्ध है।

न कीटारण्यलग्नेषु न च सन्ध्यागतैर्ग्रहैः। पुरं दुर्गं प्रकर्त्तव्यं शत्रुक्षेत्रसमाश्रितैः ॥५२॥
मित्रर्क्षं मित्रसम्पन्नैः पुष्टैरुच्चाभिलाषिभिः। स्वक्षेत्रे स्वत्रिकोणेषु स्थितैः कार्यं सदापुरम् ॥५३॥
दुर्गं दुर्गसमीपस्थं तस्य मित्रत्रिकोणजैः। ग्रहैश्चन्द्रबलोपेतैः कार्यं सर्वं शुभावहम् ॥५४॥

ग्रहगण जब मित्र, मित्रयुक्त, मित्रदृष्ट, उच्चस्थ, स्वक्षेत्रस्थ तथा स्वत्रिकोणस्थ हों तब पुर की कल्पना करनी चाहिये। जब ग्रह मित्रगृह किंवा त्रिकोण में हो, किंवा चन्द्रबल से युक्त हों, उसी समय दुर्ग किंवा दुर्ग के समीपस्थ स्थान (के निर्माण) की कल्पना करना सर्वतोभावेन शुभ होता है।।५२-५४।।

सौम्ये धर्म्मार्थकामानि शेषाः स्थानसमागताः। अग्निदाहं भयं हानिं रिपुपीडां सदारतिम् ॥५५॥
आग्नेयादि विजानीयात् पूर्वदुर्गो कृते पुरे। नन्दते पूर्वभागस्थे ईशे धर्म्मो विवर्द्धते ॥५६॥
सर्वकामानवाप्नोति पूर्वेशानोत्तरेण तु। सरित्पूर्वैः बलोपेतैः शुभा याम्येन सारतः ॥५७॥
तडागं सवनं पश्चात् सौम्ये चेन्दीवरं दलम्। पूजयित्वा हरं दुर्गां ग्रहान् मातॄन् विनायकान्।
प्रासादोक्तविधानेन बलिं दत्वा कुरु पुरम् ॥५८॥

इति श्रीदेवीपुराणे पुरदुर्गचिन्ताजातक्रियानाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

उत्तर की ओर दुर्गादि-निर्माण से धर्म-अर्थ-कामादि का लाभ होता है। अग्निकोण में यह कार्य करने पर अग्निदाह-भय-हानि-शत्रुभय देता है। यदि पूर्वभाग में राजा वास करे तो धर्मवृद्धि होती है। पूर्व-ईशान तथा उत्तर की ओर निवास करने से समस्त अभीष्ट का लाभ होता है। दुर्ग के पूर्व में नदी तथा दक्षिण में गह्वर, पश्चिम में तड़ाग तथा उत्तर में वन होना चाहिये। सैन्यगण द्वारा इसकी सभी दिशायें रक्षित होनी चाहिये। इस प्रकार से शिव-दुर्गा-मातृगण-ग्रहगण-विनायकगण आदि का पूजन करके प्रासादप्रतिष्ठा क्रम से बलिदानादि क्रिया सम्पन्न करके पुर-दुर्ग की प्रतिष्ठा करनी चाहिये।।५५-५८।।

त्रिसप्ततितम अध्याय समाप्त

●

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

नित्यो विभुः स्थितः कालो अवस्था तस्य हेतुना। नैमित्तादिविशेषैस्तु लोके पुण्यफलप्रदाः ॥१॥
संक्रान्ताख्य पुरा ख्यातं पुण्यं धारा शुभा मुने। ग्रहणादिफलं पुंसां तीर्थभेदं शृणुष्व तत् ॥२॥

मनु कहते हैं—यद्यपि काल नित्य एवं विभु है, तथापि विशेष हेतु के कारण उसकी विशेष-विशेष अवस्था कही गयी है तथा निमित्तभेद से वे-वे अवस्थायें लोकसमूह को पुण्यफल प्रदान करती हैं। हे मुने! पहले संक्रान्त तथा उस कालकृत पुण्य-धारादि के सम्बन्ध में कहा गया है। अब ग्रहण आदि के फल तथा तीर्थों में सम्बन्ध में कहता हूँ, श्रवण करो।।१-२।।

गङ्गाद्वारं कुरुक्षेत्रं नर्म्मदामरकण्टकम्। यमुनासङ्गमं पुण्यं वेत्रवती विपाशान्विता ॥३॥
सरयू कौशिकी विन्ध्या गण्डकी च सरस्वती। चन्द्रभागा महापुण्या नदी गोदावरी तथा ॥४॥
कावेरी गोमती तापी देविका वरुणापरा। एताः पुण्यतमा नद्यो ग्रहणादिषु कीर्त्तिताः ॥५॥

गंगाद्वार, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, अमरकण्टक, यमुनासङ्गम, वेत्रवती, विपाशा, सरयू, कौशिकी, विन्ध्या, गण्डकी, सरस्वती, चन्द्रभागा, महापुण्या नदी गोदावरी, कावेरी, गोमती, तापी, देविका तथा वरुणा—ग्रहण आदि में ये सभी नदियाँ पुण्यतमा कही गई हैं।।३-५।।

अन्याश्च बहवः पुण्या अन्यकाले च कामदाः। अयने विषुवे ख्याती व्यतीपाते तथैव च ॥६॥
दिनच्छिद्रे अमावस्यां ग्रहाणां सङ्गमेषु च। सम्मोहेषु समाजेषु एकर्क्षं सप्तपञ्चधा ॥७॥
एवंविधेषु पर्वेषु चन्द्रे सर्वकलाभृते। तृतीयायाञ्च वैशाखे अष्टम्यां कुजवासरे ॥८॥
चतुर्दश्याञ्च कृष्णायां भौमाहे पितृतर्पणम्। कर्त्तव्यं सर्वकामानां पूरणाय नरोत्तमैः ॥९॥

अन्यान्य काल के लिये पुण्यदायक और भी अनेक तीर्थ हैं। अयन-विषुव-व्यतीपात, त्र्यहस्पर्श, अमावस्या, ग्रहसङ्गम, ग्रहयुद्ध, पाँच अथवा सात ग्रहों का साथ अवस्थान—इस प्रकार के पर्व, वैशाखी पूर्णिमा तथा तृतीया-अष्टमीयुक्त मंगलवार तथा कृष्णपक्ष की चतुर्दशीयुक्त मंगलवार—इन तिथियों में पितृतर्पण करने से मनुष्यों की सभी कामनायें सिद्ध हो जाती हैं।।६-९।।

अमावस्यान्तु संक्रान्तौ शिवादित्यन्तु यो नरः। यजते भक्तिमान् पूतः स पूतो भवते मुने ॥१०॥
कार्त्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गा यमुना सङ्गमे। मार्गे तु ग्रहणं पुण्यं देविकायां महामुने ॥११॥
पुष्ये तु नर्म्मदा पुण्या माघे सन्निहिता शुभा। फाल्गुने वरुणा ख्याता चैत्रे पुण्या सरस्वती ॥१२॥
वैशाखे च महापुण्या चन्द्रभागा सरिद्वरा। ज्येष्ठे तु कौशिकी पुण्या आषाढे भाविका नदी ॥१३॥
श्रावणो सिन्धुनामा च प्रोष्ठे श्रेष्ठा तु गण्डकी। आश्विने सरयुः श्रेष्ठा भूयः पुण्या तु नर्मदा ॥१४॥

जो व्यक्ति अमावस्या संक्रान्ति के दिन भक्ति के साथ शिवादित्य याग करता है, वह पवित्र हो जाता है। कार्त्तिक मास में ग्रहण होने पर गंगा-यमुना के संगम पर अधिक फल मिलता है। अग्रहायण में ग्रहण होने पर देविका नदी में स्नान का अधिक फल होता है। हे महामुने! पौषमासीय ग्रहण पड़ने पर नर्मदा, माघ मास के ग्रहण में पास की शुभ नदी, फाल्गुन के ग्रहण में वरुणा नदी, चैत्रमास के ग्रहण में सरस्वती, वैशाख मास के ग्रहण में चन्द्रभागा, ज्येष्ठमास के ग्रहण में कौशिकी, आषाढ़मासीय ग्रहण में भाविका, श्रावण मास के ग्रहण में सिन्धु, भाद्र मास के ग्रहण में गण्डकी एवं आश्विन मास के ग्रहण में सरयू तथा नर्मदा में स्नान प्रशस्त कहा गया है।।१०-१४।।

गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते ॥१५॥
सूर्य्ये च शशिना ग्रस्ते तमोरूपे महामुने। नर्म्मदातोयसंस्पर्शात् कृतकृत्या भवन्ति ते ॥१६॥
ये सूर्य्ये सैंहिकेयेन ग्रस्ते वैराजनं नराः। स्पृशन्ति अवगाहन्ति न ते प्राकृतमानुषाः ॥१७॥

हे महामुने! चन्द्रग्रहणकाल में गोदावरी-स्नान महापुण्यदायी है। चन्द्र तथा सूर्य दोनों के ग्रहणकाल में नर्मदा का मात्र जलस्पर्श करके मनुष्यगण कृतकृत्य हो जाते हैं। जो जलस्पर्श करते हैं अथवा जल में प्रवेश करते हैं, वे साधारण मनुष्य नहीं रह जाते।।१५-१७।।

स्नात्वा राजक्रतुं लेभे दृष्ट्वा गोदानजं फलम्। स्पृष्ट्वा गोमेधतुल्यन्तु पीत्वा सौत्रामणिं लभेत्।
स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारणात् ॥१८॥
रविचन्द्रोपरागे तु अयने चोत्तरे तथा। एवं गङ्गापि द्रष्टव्या तद्वद्देवी सरस्वती ॥१९॥

उस नदीजल में अवगाहन से राजसूय यज्ञ का फल, जलदर्शन से गोदान का फल, जलपान करने पर सौत्रामणि यज्ञ का फल तथा स्नान करने से अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। चन्द्र-सूर्यग्रहण में, उत्तरायण-दक्षिणायन संक्रान्ति दिवस पर गंगा तथा सरस्वती का दर्शन करना चाहिये।।१८-१९।।

शिवादित्यफलं यच्च मण्डले समुदाहृतम्। सग्रहे मङ्गलायोगे तदपि प्राप्नुयान्नरः ॥२०॥

शिवादित्य-याग का जो फल कहा गया है, ग्रहण यदि मंगलवार को हो तब मनुष्य को वही फल उस दिन स्नानमात्र से मिल जाता है।।२०।।

ऊषरारण्यक्षेत्रेषु पुण्यं यत् समुदाहृतम्। तदत्र कालमाहात्म्यादुग्रागे क्षमांधिकम् ॥२१॥
यो वा आहृत्य तोयेन विधिना अभिषेचनम्। समन्त्रेणैव पूतेन तस्य पुण्यं ततोऽधिकम् ॥२२॥

ऊषर-अरण्यादि में बहुकालीन तपस्या का जो फल मिलता है, केवल ग्रहणकाल-माहात्म्य से वह फल प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति तीर्थजल से विधिपूर्वक मन्त्रपाठ करके अभिषेचन करता है, उसे भी यही पुण्य मिलता है।।२१-२२।।

आत्मवित्तानुसारेण पात्रैस्तैजसपार्थिवैः। वार्क्षैः शैलैरथ विप्र फलं प्राप्नोत्यनिन्दितम् ॥२३॥
ये वा वै मृत्तिकां तस्मिंस्तीर्थे आहृत्य च मुने। प्रातः प्रातः समुत्थाय वन्दयन्ति नरोत्तमाः।
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता भवन्ति विगतामयाः ॥२४॥

जो अपने सामर्थ्य के अनुसार तैजस, पार्थिव, काष्ठ अथवा पत्थर से निर्मित पात्र द्वारा जल एवं तीर्थ की मिट्टी लाकर प्रतिदिन प्रातः उसकी वन्दना करते हैं, उनके समस्त पाप तथा दुःख समाप्त हो जाते हैं।।२३-२४।।

फलपुष्पोपहारेण यो वा तस्मिन् रवीश्वरम्। स्नात्वा संपूजयेद्विप्र स भवेद्विगतामयः ॥२५॥
मन्त्रपूतेन तोयेन कुम्भैः पुष्पफलान्वितैः। सफलैर्विधिना स्नातः सर्वकामाँल्लभेत सः ॥२६॥

जो तीर्थजल में फल-पुष्पादि द्वारा सूर्योपासना करते हैं, उनकी सभी आधि-व्याधि दूरीभूत हो जाती है। मन्त्रपूत जलयुक्त कुम्भ का पुष्प-फलादि से पूजन करके जो उससे स्नान करते हैं, उनका सर्व अभीष्ट सिद्ध होता है।।२५-२६।।

यदेवं कथितं पुण्यं मया ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्। तत् समग्रं भवेत्तस्य अरण्येषूषरेषु च ॥२७॥
अरण्यानि प्रवक्ष्यामि यथा चैवोषराणि च।

मैंने ब्रह्मा से सुनकर इन सब स्थानों का माहात्म्य तथा पुण्य फल जो-जो कहा है, वह अरण्य तथा ऊषर में भी मिल सकता है। अब अरण्य तथा ऊषर का वर्णन करता हूँ।।२७।।

सैन्धवं दण्डकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम् ॥२८॥
उपलावृतमारण्यं जम्बूमार्गोऽथ पुष्करम्। हिमवासस्ततोऽरण्ये उत्तमः परिकीर्त्तितः ॥२९॥
नवस्वेतेष्वरण्येषु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। ब्रह्मलोकातिथिर्भूत्वा स याति परमं पदम् ॥३०॥

अब अरण्य का वर्णन सुनो। सैन्धव, दण्डकारण्य, नैमिष, कुरुजाङ्गल, उपलावृत, अरण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कर तथा हिमालय रूप ९ अरण्य हैं। ये उत्तम अरण्य कहे गये हैं। जिसके द्वारा इनमें से कहीं भी प्राणत्याग किया जाता है, उसे ब्रह्मलोक का अतिथि बनाया जाता है एवं अन्त में उसे परमपद की प्राप्ति होती है।।२८-३०।।

कर्णिको शिव चाख्येति कालिकागणयो शिवे। कालञ्जरे महाकाले तुल्यश्चैतेषु यत् फलम् ॥३१॥

इति श्रीदेवीपुराणे ग्रहणनद्यरण्ययोषरप्रशंसानाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

काशी, कालञ्जर, महाकालप्रभृति स्थानों का पुण्यफल भी पूर्ववत् कहा गया है, वे सभी उत्तम अरण्य हैं।।३१।।

चतुःसप्ततितम अध्याय समाप्त

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

हिमवद्धेमकूटे च विन्ध्ये माहेन्द्रपर्वते। वैदिशे उज्जयिन्ये वा महासेनेऽथ भूभृते ॥१॥
गोपगिरौ महापुण्ये चित्रकूटेऽथवा मुने। कालञ्जरेऽथवा काश्यां पुष्पाख्ये वेदपर्वते ॥२॥
उज्जयिन्यामयोध्यायां दापयेदथ महेश्वरे। एतेषु पुण्यदेशेषु विषुवायणसङ्गमे ॥३॥

हे शुभे! हिमालय, हेमकूट, विन्ध्य, महेन्द्र पर्वत, वैदिश, उज्जयिनी, महासेनपर्वत, गोपगिरि, महापुण्ययुक्त चित्रकूट, कालञ्जर, काशी, पुष्पाख्य वेदपर्वत, उज्जयिनी, अयोध्या आदि पुण्यस्थान में विषुव तथा अयनसंक्रान्ति में दानादि करना चाहिये।।१-३।।

पुष्करे नैमिषे वत्स देया पञ्चमुखेऽक्षये। गिरौ धाराप्रदानेन ग्रहपीड़ा न जायते ॥४॥
बहुवक्रगते देहे वत्सवन्त भयं भवेत्। जन्माधात्रर्क्षपीड़ा वा दत्ता धारा व्यपोहते ॥५॥

हे वत्स! पुष्कर-नैमिष तथा महेश्वर पर्वत पर ग्रहण में धारादान करने से ग्रहपीड़ा नहीं होती (धारा पूर्व अध्यायों में वर्णित है, यहाँ घृतधारा देनी होती है), ग्रहपीड़ा नहीं होती। अनेक परिवारों वाले सङ्कीर्ण गृह में वास करके भी इन सब कार्यों को करके भय को दूर किया जा सकता है।।४-५।।

जम्बूमार्गे सदा पूजा धारापातं विशिष्यते। सर्वकामानवाप्नोति नर्म्मदायां महामुने ॥६॥
धारादानेन गङ्गायां कालिन्द्याञ्च महाह्रदे। दत्त्वा विधानविहितां न भयं जायते क्वचित् ॥७॥
शनिसूर्य्यकृतां पीड़ां गुरुभौमां व्यपोहते। यथा पूजा विधानेन प्रति संवत्सरोत्थिताम् ॥८॥
पीडां निवारयेद्वत्स संवत्सरग्रहोद्भवाम्। मन्त्रजापात्सदा वत्स न भयं विद्यते क्वचित् ॥९॥

जम्बूमार्ग (?) में पूजा तथा धारादान सदा प्रशस्त होता है। नर्मदा, गंगा तथा कालिन्दी ह्रद में धारादान करने से भी भय दूरीभूत हो जाते हैं, तभी सर्वाभीष्ट सिद्ध होते हैं। प्रति संवत्सर में जो शनि-सूर्य-बृहस्पति-मंगल आदि की ग्रहपीड़ा होती है, इन समस्त पुण्यस्थानों में यथाविधि पूजन से वह दूर हो जाती है। हे वत्स! मन्त्रजप करने से कहीं भी कोई भय नहीं रह जाता।।६-९।।

एकान्ते दुष्टरहिते पापजन्तुविवर्जिते। धाराहोमं प्रकर्त्तव्यं यथोक्तं श्रियमिच्छता ॥१०॥
जिह्वायां पातयेद्धारां न द्रुतां न विलम्बिताम्। सावधानेन मनसा मृत्युञ्जयनियामिताम् ॥११॥

जो यथाविधि फलकामना करते हैं, उन्हें एकान्त में बैठकर दुष्ट जनशून्य स्थान में धारा-होमादि का अनुष्ठान करना चाहिये। जिह्वा में (यह अपनी शारीरिक जिह्वा नहीं हैं) अर्थात् अग्निजिह्वा में धारा गिरानी चाहिये। न तो अधिक द्रुतगति से, न तो विलम्बित गति से धारा देनी चाहिये। शिवोक्त-विधि से सावधान होकर धारादान करना चाहिये। यही धाराहोम कहलाता है।।१०-११।।

मन्त्रयोगाद्भवेत् सिद्धिर्दृष्टादृष्टप्रसाधिका। ग्रहपूजा हरेत् पीडां त्रिविधामपि उत्थिताम् ॥१२॥
ग्रहाश्च त्रिविधाः प्रोक्ताः तेषां मन्त्रास्त्रिधा मताः। अङ्गजा मूलमन्त्राश्च पिण्डाः पदगतास्तथा ॥१३॥

मन्त्रयोग से ही दृष्टादृष्ट फलदायिनी विद्या सिद्ध होती है। ग्रहपूजा से त्रिविध पीड़ा शान्त हो जाती है। ग्रह त्रिविध हैं तथा उनके मन्त्र भी त्रिविध ही हैं। वे हैं—अग्रज, मूलमन्त्र तथा पदगत पिण्ड।

होमकाले प्रयोक्तव्याः पूजाकाले तथैव च। एवं सिद्धिमवाप्नोति इह स्वर्गापवर्गिकीम् ॥१४॥
भावकाले क्रियायोगाद्धारायां लभ्यते मुने ॥१५॥

धारादानं प्रकर्त्तव्यं यन्त्रपात्रघटादिभिः। नैमित्ते नित्यहोमे च पूर्वैश्च कथितो विधिः ॥१६॥

इति श्रीदेवीपुराणे निमित्तधारापरिच्छेदो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इनका पूजा-होमादि काल में प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से इहकाल में स्वर्गापवर्गदायिनी सिद्धि मिलती है। हे मुने! क्रियायोगार्थ धाराकार्य द्वारा भाव प्राप्त होता है। नित्य तथा नैमित्तिक कार्य में यन्त्र, पात्र तथा घटादि द्वारा पूर्वोक्त विधानानुसार धारादान करना चाहिये।।१४-१६।।

पञ्चसप्ततितम अध्याय समाप्त

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

नारद उवाच

नर्मदायां मया तात श्रुतं स्नानफलोदयम्। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन मार्कण्डेयतपाश्रमम् ॥१॥
चतुर्मुखं महापुण्यं तथा माहेश्वरं वरम्। आमराकं गिरिश्रेष्ठं देवनद्याः फलोदयम् ॥२॥
वारणाख्यं महापुण्यं तथा पश्चिमसागरम्। जटाशैले महादेवं पञ्चमृत्युविनाशनम् ॥३॥
गङ्गाभाग्योदयं नाथ केदारं पर्वतोत्तमम्। नन्दादेवी गतन्देवं महादेवी महाफलम् ॥४॥
नैमिषं पुष्करं देवं तथा स्थानेश्वरं वरम्। कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५॥
घटेश्वरं महादेवं कौमारं दक्षिणार्णवे। रामेश्वरं शिवं देवं ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥६॥
अविमुक्तञ्च काश्याख्यां मायापुर्य्यां सुरेश्वरम्। एवं तीर्थानि देवेश महापुण्यफलानि च।
श्रुतानि अघनाशाय शतशोऽथ सहस्रशः ॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पिता! मैंने मार्कण्डेय मुनि के आश्रम में तीर्थयात्राप्रसंग में नर्मदास्नानफल का श्रवण किया था। साथ ही महापुण्यतीर्थ चतुर्मुख, माहेश्वर, अमरगिरि, देवनदी, वारणा, पश्चिमसागर, जटाशैल में महेश्वर, पञ्चाग्र, गंगाभाग्योदय, केदारपर्वत, नन्दा, महादेवी, नैमिष, पुष्कर, स्थाणेश्वर, कुरुक्षेत्र, घटेश्वर महादेव, दक्षिण समुद्र में कौमार, ब्रह्महत्यानाशक रामेश्वर शिव, काशीस्थ अविमुक्तेश्वर शिव, मायापुरीस्थ सुरेश्वर आदि जो महापुण्यजनक तीर्थ हैं, उन सबके सम्बन्ध में भी सुना था। ऐसे पापनाशक सहस्रों-सैकड़ों तीर्थों के सम्बन्ध में सुना था।।१-७।।

अभिषेकप्रसङ्गेन कुमारस्य महात्मनः। कीर्त्तितं वैदिशे देशे भृङ्गारं दिवमुत्तमम् ॥८॥
जम्बूद्वीपस्य चैशान्यां तस्य पश्चिमदक्षिणे। वैदिशे चोत्तरे भागे सप्तगव्यूतिसंस्थितम्।
कुण्डं शैलद्वयास्थं च महापुण्यं महोदयम् ॥९॥
विनायकानां शान्त्यर्थं शक्रस्य च महात्मनः। पुण्याभिषेचनं चक्रे पुष्पदन्तो गणोत्तमः ॥१०॥
नन्दिने मृत्युनाशाय शतसाहस्रमुत्तमम्। लड्डुकानां ददौ यत्र तत्तीर्थं कथय प्रभो।
लोकानां हितकामाय कलौ पापप्रणाशनम् ॥११॥

वैदिश देश में कुमार के अभिषेक के प्रसङ्ग में यह सभी प्रसंग कहा गया है। जम्बूद्वीप में ईशान तथा पश्चिम-दक्षिण कोण में, वैदिश स्थान के उत्तर भाग में चतुर्दश कोस दूर दो पर्वतों के मध्य महापुण्यप्रद जो कुण्ड है, जिस स्थान में गणेश तथा इन्द्र की शान्ति हेतु पुष्पदन्त गन्धर्व ने पुण्याभिषेचन किया था तथा मृत्युनाशक नन्दिकेश्वर को शत-सहस्र लड्डू अर्पित किया था; अब लोक के हित के लिये कलिकल्मषापहारी उस पुण्यतीर्थ का वर्णन कीजिये।।८-११।।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। हिताय सर्वलोकानां सर्वपापशमाय च ॥१२॥
पुष्पदन्तो गणोपेतस्तपस्तप्येत् सुदारुणम्। पुष्पकान्तं गिरिं वत्स अङ्गारेशस्य जायते ॥१३॥
यत्राण्डजः पुरा मग्नो गतो देवपुरं मुने। तस्य नाम्ना समाख्यातं तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥१४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! तुमने जो पूछा है, उसका वर्णन लोकहितार्थ तथा पापशान्ति के लिये करता हूँ; सुनो। पुष्पदन्त ने अपने अनुचर वर्ग के साथ पुष्पकान्त पर्वत पर दुष्कर तपस्याचरण किया था। हे वत्स! उस पुष्पकान्त पर्वत से दक्षिण अग्निकोण में कपोततीर्थ स्थित है। इस स्थान में प्राणत्याग करके कपोत सुरलोक गया था; अतः उसके ही नाम से यह पापनाशक तीर्थ कपोततीर्थ कहलाया।।१२-१४।।

तस्मादुद्धृत्य यस्तोयं शिवलिङ्गाभिषेचनम्। करोति स पुमान् वत्स सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१५॥
मयापि तत्र देवेशः स्थापितश्चोत्तरेण तु। विष्णुना निर्म्मलेशस्तु पश्चिमे गुरुणा परम् ॥१६॥
दक्षिणेन तथा देवं कुजेन ईशगोचरे। मातृणां मण्डलं यत्र नन्दिना पूजितं पुरा ॥१७॥
अन्येऽपि ये महादेवं चर्च्चिकां वा महोदयाम् ॥१८॥
भानुं नारायणं वत्स मङ्गलान्तेन चाम्भसा। स्नापयन्ति महाभागा न ते प्राकृतमानुषाः ॥१९॥

हे वत्स! इस तीर्थ से जल लेकर शिवलिंग का अभिषेक करने से सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। इस स्थान के उत्तर में मैंने भी देवेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की थी। विष्णु ने भी निर्मलेश्वर नामक शिवलिंग स्थापित किया था तथा उसके पश्चिम स्थान में बृहस्पति ने भी शिवलिंग की स्थापना की थी। इस शिवलिंग के दक्षिण में जहाँ पहले नन्दीश्वर ने मातृगण का पूजन किया था, वहाँ मंगल ग्रह ने भी शिवलिङ्ग स्थापित किया था। अन्य कोई व्यक्ति क्यों न हो, यह जो स्थान हैं, जहाँ भगवान् महादेव, देवी चर्चिका, सूर्य तथा नारायण ने मंगलाभिषेचन किया था, वहाँ (अभिषेचन करने वाला) स्नान करने वाला कदापि मनुष्य नहीं हो सकता।।१५-१९।।

ये पुनश्चर्च्चिकां कृत्वा प्रस्तरादि समुद्भवान्। तथा ये चाभिषिञ्चन्ति ते लभन्ते हितं फलम् ॥२०॥
मङ्गलारूपिणी देवी मातृभिः परिवारिता। ब्राह्म्याद्या दक्षिणे कार्य्या वैष्णव्याद्यास्तथोत्तरे ॥२१॥

यहाँ जो अपने धन-सामर्थ्य के अनुसार प्रस्तरादि द्वारा देवी चर्चिका की मूर्त्ति बनाकर अभिषेक करता है, उसे मंगलफल प्राप्त होता है। देवी मंगलरूपा हैं। मातृगण सदा उनको घेरे रहती हैं। मूर्त्ति के दक्षिण में ब्राह्मी प्रभृति एवं उत्तर में वैष्णवी प्रभृति मातृगण को भी स्थित करना चाहिये।।२०-२१।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रभामण्डलसंस्थिताः। कुमारं गणनाथञ्च ग्रहान् पीठाधःसंस्थितान् ॥२२॥
एवं कृत्वा मुनिश्रेष्ठ यत्र तत्रेजिता शिवा। प्रयच्छति परं लोकं पुष्पाङ्के उभयात्मकम् ॥२३॥

मूर्ति के प्रभामण्डल में विष्णु-रुद्रप्रभृति भी अवस्थान करते हैं। कार्तिक तथा गणेश पीठ के अधोभाग में रहते हैं। जो इस प्रकार से (मूर्त्तिविन्यास) करता है, चाहे वह जहाँ भी रहे, देवी अजिता उसे दिव्यलोक प्रदान करती हैं। पुष्पाङ्क नामक स्थान से उसे उभयात्मक लोक मिलता है।।२२-२३।।

तत्र भावानुरूपेण मृच्चित्रा धातु वार्क्षजाः। कृत्वा यस्तेन तोयेन स्नापयेत् स्वयमात्मनः ॥२४॥
जपहोमरतो ध्यानी भिक्षाशी अथ क्षीरशः। एकान्तरेण भक्तेन उपवास अयाचितैः ॥२५॥
स लभेत हितान् कामान् यदा गूढव्रतो भवेत्। विद्या जप्तेन तोयेन अयुतं वा प्रयच्छति ॥२६॥
शिवायाः सम्भवेद् वत्स सर्वपापविवर्जितः। देव्याः पुत्रः सदा लोके दर्शनाच्चाघनाशनम् ॥२७॥

इस स्थान पर अपने धन-सामर्थ्य के अनुसार जो व्यक्ति मिट्टी, लकड़ी, पत्थर आदि से मूर्त्ति-निर्माण करके अभिषेक करता है, नित्य जप-होमादि में रत रहता है, जिसका एकमात्र चिन्तन भगवत् ध्यान ही है, जो भिक्षा में प्राप्त दुग्ध अथवा अन्न से मात्र एक बार आहार करता है और उसी से जीवन-निर्वाह करता है, वह गूढ़व्रत होकर इच्छित फल प्राप्त करता है। जो देवी के उद्देश्य से १०००० बार मन्त्रित पवित्र जल देवी को प्रदान करता है, हे वत्स! वह सभी पापों से मुक्त होकर देवी का पुत्रस्वरूप माना जाता है तथा उसका दर्शन करके लोग पापमुक्त हो जाते हैं।।२४-२७।।

कलशा हेमधातूत्था मृन्मया वा सुलक्षणाः। लोककुम्भचतुर्थांशाः कर्त्तव्याः स्नापना शिवाः ॥२८॥
गृहे षोडशभागेन जपध्यानरतस्य च। आचार्य्यस्य सदा वत्स होमयुक्तिः प्रकीर्त्तिता ॥२९॥

देवी के स्नान का कलश स्वर्ण अथवा मृत्तिका का बना सुलक्षण होना चाहिये। अथवा चाँदी-ताम्र का बना होना चाहिये। उसका माप लौकिक कलश का १/४ होना चाहिये। गृहस्थगण को जप-ध्यानादि कार्य में लगे आचार्य के लिये १/१६ रखना चाहिये। (१/१६ क्या रखें—यह स्पष्ट नहीं है)।।२८-२९।।

नारद उवाच

विद्याहं श्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। यथा स्नानं प्रकर्त्तव्यं देवी देवस्य वा विभो ॥३०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे विभो! कलश-प्रमाण तथा जपहोमादि को कहा गया। अब यह कहें कि किस दिन अभिषेक करना प्रशस्त होता है?।।३०।।

ब्रह्मोवाच

कथयामि मुनिश्रेष्ठ न देयाऽदीक्षिते क्वचित्। विद्या मृत्युञ्जया नाम दशावरणसंस्तुता ॥३१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिवर! मैं कहता हूँ। अदीक्षित व्यक्ति को यह देना निषिद्ध है। इसका नाम है—मृत्युञ्जय विद्या; यह १० आवरण में आवृत है।।३१।।

ब्राह्मणः षष्ठवर्णेन विष्णुनाः पञ्चमस्तथा। वाज्यनादविलोमन्तु तेन तद्भेदयेन्मुने ॥३२॥
द्वितीयं भवते वर्ण विष्णुं वर्णचतुर्थं तथा। ब्रह्म पञ्चमसंयुक्तं तृतीयं परिकीर्त्तितम् ॥३३॥
वायुवर्णगतं वर्णं सविसर्गन्तु पञ्चमम्। चतुर्थः कीर्तितं वत्स सर्वकामसमृद्धये ॥३४॥
वेदाढ्यो मतिमन्त्रस्था विद्या सावाख्यरा मुने। सकृदुच्चरिता वत्स मृत्युहा विधिना भवेत् ॥३५॥
अनया स्नापिता देवी सर्वकामान् प्रयच्छति। यागे वा रुद्रके याज्या पद्मे वा ग्रहनाशिनी ॥३६॥
प्रत्यनुगं षट्कं तु द्व्यक्षरं प्रथमं हृदि। होमं समस्तमुच्चार्य कार्यं स्वाहांतिकं सदा ॥३७॥

(इस मृत्युञ्जयी विद्या के श्लोकों का ३२ से लेकर ३७ तक का अनुवाद नहीं किया जा रहा है; क्योंकि इसे संकेत के रूप में अंकित किया गया है। अतएव केवल मूल दिया जा रहा है। अनुवाद करना पूर्णतः वर्जित है; बिना गुरुकृपा के इन संकेतों का तात्पर्य किसी को भी हृदयङ्गम नहीं होता)।।३२-३७।।

नारद उवाच

कलशानां प्रमाणन्तु जपहोमेन कीर्तितम्। दिनेषु केषु कर्त्तव्यं कथयस्व प्रसादतः ॥३८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—कलशप्रमाण तथा जप-होमादि के विषय में आपने कहा। अब यह कहिये कि किस दिन अभिषेक करना उचित होता है?।।२८।।

मार्कण्डेय मुनिश्रेष्ठ पुराणे समुदाहृतम्। नर्मदायां सरस्वत्यास्तैर्दानर्क्षे मुनेऽत्र तु ॥३९॥
चतुर्दश्याममावस्यामष्टम्यां नवमीं तथा। द्वादश्यां पौर्णमास्याञ्च संक्रान्तौ ग्रहणादिषु ॥४०॥
व्यतीपाते दिनच्छिद्रे चैत्रादिषु च पर्वषु। मासान्ते ऋतुवर्षान्ते गूरुमन्ददिनेषु च ॥४१॥
तेषां सप्तमयोगेषु क्रतुवेदे करोति वा। सप्तम्यां सोपवासेन अष्टम्यां पूजनं महत् ॥४२॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय ने नर्मदा तथा सरस्वती के सम्बन्ध में जो कुछ पुराण में (मार्कण्डेय पुराण में) कहा है, उसे कहता हूँ। यहाँ भी वही उचित है। चतुर्दशी, अमावस्या, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, पौर्णमासी, संक्रान्ति, ग्रहण, व्यतीपात, दिनछिद्र (स्पर्श), चैत्रादिमास, पर्वमासान्त, ऋत्वस्त, वत्सरान्त, वृहस्पतिवार, मंगलवार तथा उनके सप्तम, षष्ठ, चतुर्थ योग में यह सब प्रशस्त है। सप्तमी को उपवासी रहकर अष्टमी के दिन पूजा करने पर महत् फल प्राप्त होता है।।३९-४२।।

जपहोमं प्रकर्त्तव्यं पूजयित्वा तु मंगलाम्। क्षीरस्नानन्तु यः कृत्वा कुण्डतोयेन स्नापयेत् ॥४३॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदेन च विलेपयेत्। सुगन्धधूपनैवेद्यवासांसि स्रजदर्पणम् ॥४४॥
दत्ता देव्यास्ततः पूजां सर्वकामानवाप्नुयात्। ईहलोके भवेद्धन्यो धनपुत्रायुसंयुतः ॥४५॥
देहान्ते शिवलोके तु मोदते चोत्तमं सुखम्। एवं च विधिना देवीं मन्त्रपूतेन वारिणा ॥४६॥
स्नात्वा स्नापयते विप्र स भवेदमरवल्लभः। यथा वयं यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः ॥४७॥

देवी मंगला का पूजन करके जप-होम करना चाहिये। पहले क्षीरस्नान कराना चाहिये। तदनन्तर कुम्भजल (कलशजल) से स्नानोपरान्त कुङ्कुम, अगुरु, कर्पूर प्रभृति गन्धद्रव्यों का विलेपन करना चाहिये। सुगन्ध धूप-नैवेद्य-वस्त्र-माला आदि से पूजा करने पर सर्वार्थसिद्धि हो जाती है। इहलोक में पुत्र-धन-धान्यादि से युक्त होकर वह व्यक्ति देहान्त के पश्चात् सुखभोग करता है। इस प्रकार से विधिवत् स्वयं स्नान करने के अनन्तर विधिपूर्वक मन्त्रपूत जल से देवी को स्नान कराकर वह मेरा प्रिय हो जाता है। मैं, विष्णु तथा महेश्वर एक समान (मेरे समान) हैं।।४३-४७।।

तथा संपूजनीयस्ते अविचारेण भावितः। तत्रस्ता देवताः सर्वा कुण्डे सन्तर्पिता सुराः ॥४८॥
पितृणां भवते प्रीतिस्तज्जलेन अनुत्तमा। यस्तत्र कुरुते श्राद्धं स्नात्वा पात्रविशेषतः ॥४९॥

हम तीनों की पूजा समान भाव से करनी चाहिये (भेद नहीं रखना चाहिये)। पूर्वोक्त कलशजल से समस्त देवगण तथा पितृगण का तर्पण करना चाहिये; क्योंकि इस जल से उनको अधिक प्रसन्नता होती है। स्नान करके वहाँ पात्रविशेष में श्राद्ध करना चाहिये।।४८-४९।।

स कृत्वा दश वर्षाणि तेन सन्तर्पिता पितॄन्। दत्वा दानं तथा कोटिगुणं फलमवाप्नुयात् ॥५०॥

इससे यहाँ एक दिन किये गये श्राद्ध का फल १० वर्ष श्राद्ध करने के समान प्राप्त होता है। इस दिन यहाँ जो दान दिया जाता है, उसका करोड़ों गुना फल प्राप्त होता है।।५०।।

जपहोमफलं तत्र अनन्तं भवते कृतम्। गव्यूतिमात्रं स्मृतं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५१॥
अथोत्तरं विशेषेण मदीयशिवसन्निधौ। यात्राकाले पुरावृतमितिहासं निबोधत ॥५२॥

वहाँ एक गुना दान का फल कोटिगुणित होता है और वहाँ जप-होमादि का फल अक्षय हो जाता है। इस सर्वपापनाशक क्षेत्र का परिमाण दो क्रोश होता है। इसके उत्तर में मेरे द्वारा स्थापित शिव हैं। इस सम्बन्ध में एक पुराना इतिहास कहता हूँ; श्रवण करो।।५१-५२।।

वेत्रवत्यास्तटे रम्ये वटवृक्षो महामुने। तत्र कापोतसंघानां राजा आसीन्महान् द्विजः ॥५३॥
वैदिशे ब्रह्महा वत्स सुहृत्स्त्रीबालघातकः। महाकर्मविपाकेन दुष्कृतेन च आवृतः ॥५४॥
नानायोनिगतः पापी कथंचित् पापपर्ययात्। मृतो देहं गतं तस्य धात्री भूतं सुपर्णवत् ॥५५॥
तेन पक्षी भवेद्राजा स कपोतशतावृता। कालेन स गतः श्रुत्वा पुष्पाख्यं गिरिपर्वतम् ॥५६॥
तत्र कुण्डगते वृक्षं समारूह्य सखीवृतः। क्रीडमानोऽपतत्तोये पञ्चत्वमुपगतश्च सः ॥५७॥

हे मुनिवर! पूर्व में वेत्रवती नदी के तटस्थित महारण्य में किसी वटवृक्ष में कपोतसमूह से घिरा कोई कपोतराज वास करता था। यह कपोत पूर्वजन्म में ब्रह्महत्या, मित्रद्रोह, स्त्रीहत्या, बालहत्या प्रभृति अनेक पापों में लगा था। मृत्यु के उपरान्त यह पापी नाना योनियों में जन्म ले-लेकर कुछ पापक्षय कर सका था। अन्त में देहान्त होने पर उसकी मृत देह जम्बूक नामक तीर्थ के निकट किसी प्रकार से पत्तित हो गयी। हे द्विज! इसके फलस्वरूप सैकड़ों-सैकड़ों कपोतों का राजा होकर उसने जन्म लिया। कालक्रम से वह कपोत एक बार पुष्पाख्य पर्वत के कुण्ड के समीप आ बैठा। दैवात् वह सहचरों के साथ क्रीड़ा करते-करते उस कुण्ड में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।।५३-५७।।

विधूत पापमज्जन्तु संभूतः स शुको मुनिः ॥५८॥
शुकी गर्भे महाबाहो सर्वशास्त्रार्थपारगः। देवीपूजारतो वत्स देवस्नानरतः सदा ॥५९॥
कर्मयज्ञसमायोगाद्देवलोकं गतश्च सः। शिवं लोकं समासाद्य शिववन्मोदते सुखी ॥६०॥

इति श्रीदेवीपुराणे कपोतकीर्त्तनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः

इससे उसकी (बची) पापराशि नष्ट हो गयी। वह एक शुकी के गर्भ से जन्म लेकर शुक नामक मुनि हो गया। अब वह देवी के स्नान-पूजादि कार्य में रत रहता था। सर्वदा कर्मयज्ञ का अनुष्ठान करते-करते उसे (देहान्त के पश्चात्) देवलोक की प्राप्ति हो गयी। अब वह शिवलोक में जाकर शिव के समान सुख से स्थित है।।५८-६०।।

षट्सप्ततितम अध्याय समाप्त

●

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सर्वे शिवाश्रमाः पुण्या सर्वपापप्रणाशनाः। सर्वस्नानोपवासादि फलदा भवते नृणाम् ॥१॥
अनाराध्य नृपं यद्वद् भूतिः पुष्टिर्न लभ्यते। असंपूज्य शिवं विप्र तद्वत् पुण्यं न प्राप्यते ॥२॥
विशेषेण कलौ घोरे कृष्णरूपे तमोवृते। किं द्विजाः शिवपोतन्तु तेन पारं भवार्णवात् ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—महेश्वर के सभी आश्रम पुण्यस्थान हैं तथा सर्वपापहारी हैं; वहाँ स्नान-उपवासादि करने से शीघ्र फल प्राप्त होता है। जैसे राजा की आराधना के विना उनके भृत्यगण की वेतनवृद्धि नहीं हो पाती, उसी तरह शिवपूजन के अभाव में पुण्यवृद्धि नहीं होती। विशेषतः तमःप्रधान घोर कलिकाल में भगवान् शंकर जहाज के समान हैं। इनके अतिरिक्त इस संसार- सागर से ब्राह्मणगण को और कौन पार करा सकता है?।।१-३।।

गच्छन्ति स्नापकाः पुण्या लड्डुकादिप्रदानतः। यस्तु लिङ्गाकृतिं कृत्वा गृहे वा भावनायुतः ॥४॥
लड्डुकादिप्रदानं तु करोति सततं द्विजः। स गच्छति शिवं लोकमनौपम्यं मनोरमम् ॥५॥

जो व्यक्ति (द्विज) गृह में शिवलिङ्ग रखकर लड्डूकादि द्वारा शिव की पूजा करता है, उनके ध्यान में लगा रहता है, वह मृत्यु के पश्चात् मनोहर शिवलोक में गमन करता है।।४-५।।

सदा विभवसंपन्नः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः। तत्रस्थः सुखसम्पन्नः क्रीडते विविधैः सुखैः ॥६॥
देवीरूपो हरो वत्स विष्णुर्देवा वयं तथा। सर्वरूपी महाभागा सूर्यस्य रिपुनाशिनी ॥७॥

हे वत्स! वह शिवलोक में जाकर विभव-सम्पन्न होकर सर्वदुःख का परित्याग करके विविध सुखों को भोगता है। महेश्वर-विष्णु तथा मैं, हम सभी इन देवी के ही रूपान्तरमात्र हैं, क्योंकि वे देवी सर्वरूपा, महाभागा हैं तथा सूर्य के भी शत्रुओं की विनाशिनी हैं।।६-७।।

नागराजरूपिणी देवी गोरूपा चर्चिकाम्बिका। मातरा भावगा वत्स नारायणी तथा मता ॥८॥
महाश्वेता महादेवी रिपुहा सूर्यसन्निधौ। सर्वगा सर्वदेवानां वरदा सर्वतो जिता ॥९॥

हे वत्स! वे नागराजरूपा, गोरूपा, मातृरूपा, चर्चिका, अम्बिका, नारायणी, महेश्वरी, महादेवी हैं। वे महाश्वेता, सर्वगता तथा सर्वदेवगण-हेतु वरदा हैं। उनकी सर्वत्र जय है। इसीलिये उनको अजिता कहते हैं। वे शत्रुनाशिनी तथा सूर्यसन्निधियुक्ता है।।८-९।।

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणा देवी त्रिवेदा त्रिपदा धृतिः। त्रिकला त्रिशुभा शक्ति त्रिशूला शूलरूपिणी ॥१०॥
व्यक्ताव्यक्ताकृतिं कृत्वा हेमरूप्यमयीं शुभाम्। त्रिशूले पूजयेद्वत्स स्नात्वा कापोतवारिणा ॥११॥
चन्दनागुरुगन्धाढ्यां स्रजधूपसुधूपिताम्। सकृद्दृष्ट्वा शुभं हन्यात्सप्तजन्मकृतं मुने ॥१२॥

वे देवी त्रिमूर्त्ति, त्रिगुणा, त्रिवेदा, त्रिपदा, धृति, त्रिकला, त्रिशक्ति, त्रिशुभा, त्रिशूला तथा शूलरूपा हैं। उनकी आकृति व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों है। हे वत्स! हेममयी देवीमूर्ति स्थापित करके त्रिशूल की पूजा करके जो उस कपोतकुण्ड के जल से स्नान करता है और चन्दन, अगुरु, गन्ध, माला, धूपादि से पूजन करता है, हे मुने! उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।।१०-१२।

पूर्वोक्ता ये महातीर्था तेषामेकतमोऽपि वा। मायापुर्याञ्च वा काश्यां जम्बुमार्गेऽथ नैमिषे ॥१३॥
निवसन् पूजयेद्देवीं सर्वकामानवाप्नुयात्। द्विजो मुण्डी शिखी वापि यत्र तत्र व्यवस्थितः ॥१४॥
मन्त्रजप्यार्च्चनासक्तो होमात् सर्वमवाप्नुयात्। तिलाज्याहुतिदानानि देवीकुण्डेन भावतः ॥१५॥
हुतं हुतं पयो वत्स सततं लभते फलम्। पोतं न वाप्लवं ख्यातं पापकर्म शुभं मतम् ॥१६॥

पूर्व में जिन महातीर्थ मायापुरी काशी अथवा जम्बूमार्ग-नैमिष आदि को कहा गया है, उनमें से किसी भी तीर्थ में देवीपूजा करने से सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। देवीकुण्ड में तिल-घृत-दुग्ध की आहुति दान करने से शुभ फल प्राप्त होता है। द्विज, मुण्डी, शिखी आदि मन्त्रजपार्चन, होम से सब कुछ प्राप्त करते हैं। हे वत्स! दुग्ध की आहुति द्वारा सतत् फललाभ होता है। पोत शब्द का अर्थ है—नौका। यह शुभ तीर्थ भवार्णव का पोत है। अतः इसका नाम है—कपोततीर्थ। अथवा कुत्सित पापकर्म से लोगों का परित्राण करने के कारण यह कपोततीर्थ है।।१३-१६।।

तत्र वा भारते लोकान् कपोतन्तु न धावति।

ॐ व्योमव्यापिने व्योमरूपाय। ॐ सर्वव्यापिने शिवाय।

अनन्ताय अनाथाय अनाश्रिताय भवाय च। शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्यं योगिने ध्यानाहाराय॥

ॐ नमः शिवाय शर्वाय भवशिवाय नमः। सोममूर्ध्नि तत्पुरुषाय अघोरहृदयाय नमः॥

वामदेवगुह्याय सद्योजातमूर्त्तये । नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे निधनाय नमः ॥

सर्वविद्याधिपतिज्योतिरूपाय परमेश्वराय नमः ।

अचेतन अचेतन व्योम व्योम अरूप अरूप प्रमथ प्रमथ तेज तेज । ज्योति ज्योति अनाक्ष अनाक्ष चेतन चेतन नाना नाना धू धू धू धू । ॐ भूर्भुवः स्वः।

अनिधन निधने भव शिव शर्व परमात्मने । महेश्वर महादेव सत् भावेश्वर महातेजः ।
योगाधिपतये मुञ्च मुञ्च प्रथम प्रथम भव भव भवोद्भव सर्वभूतसुखप्रद ॥

सर्वसान्निध्यकर ब्रह्मविष्णु रुद्र पर अर्चित । असंस्तुत । पूर्वस्थित पूर्वस्थित, नाक्षि नाक्षि, क्षरू क्षरू । पतंग पतंग, पिंग पिंगा, संग संग, सूक्ष्म सूक्ष्म । शिव सर्वाय सर्वपतये नमः । ॐ नमः। ॐ नमो नमः ॥१७॥

शिवाय ॐ नमो नमः । शिवभट्टारक आयाहि शिव सर्वदा अत्र सन्निधिं कुरु। त्विदमं अधिष्ठायाधिष्ठाय शान्त शान्त्रतमम् । ॐ नमो नमः स्वाहा व्योमव्यापी । ईश्वराय मन्त्रः। ततः पञ्च ब्रह्माणि सर्वात्मा स्वशिवम् । ज्वालिनी पिङ्गलास्त्रं अघोरास्त्रम्। शिवाङ्गानि विद्याधिपति ब्रह्म शिवा रुद्राणी पुरुष्टुतं पाशुपतास्त्रम् । योगविद्याङ्गानि योगविद्याङ्गानि विभुर्ज्ञानी क्रियाचरी वागेशी ज्वालिनी वामाद्याः शक्तयः ॥१८॥

विघ्नेश्वरा गणेश्वराः लोकपालाः वज्राद्यस्त्राः। अनन्ताद्याः नागाः। सूर्याद्या ग्रहाः। जम्भाद्याः बालग्रहाः। देवाद्या देवग्रहाः। शिवाद्याश्चित्राद्या विश्वाद्याः शिव उच्चारकपरिवाराः ॥१९॥

ॐ नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यरेतसे नमो नमः । हिरण्यपतये नमः उमापतये नमः स्वाहा ॐ ॥२०॥
एष मन्त्रः। दशात्मा व्योमव्यापी ओं आं ईं ऊं व्यां रां लां बां क्षम्। परमदशाद्या विद्याङ्गशिवाङ्गाश्च परापरविकल्पनाः। मुद्रादर्शनं पूर्वं गन्धधूपपुष्पनैवेद्यार्घजपहोमविधिः ॥२१॥

मंगला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कीर्त्तिर्यशस्विनी ।

सर्वमंगलाया मन्त्रपूजाविधानं लिख्यते—

पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशा शोभा जया धृतिः ॥२२॥
आनन्दा च स्वनन्दा च देव्याः स्वोंऽश कीर्त्तितः । एकैकेन तु वर्णेन देव्यो मुद्राश्च दर्शयेत् ॥२३॥
ईशान्यादीनि देयानि स्वायुधानि यथाविधिः । योनिमुद्रा लिङ्गमुद्रा व्यापिनी छत्रं घण्टां मधुम् ॥२४॥
खेटकं च शूलचक्षुं पाशं खड्गं शरं धनुः । वीणापद्मशङ्खमुद्रास्ता षोडशका भवन्ति ॥२५॥
मन्त्रपदानि—

ॐ कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डाद्ये ठं ठं। मूलमन्त्रः॥२६॥

ॐ कालि कालि ठं ठं हृदयम्। ॐ कालि कालि वज्रिणि शिरः। ॐ कालीश्वरि शिखा । ॐ काली वज्रेश्वरि कवचम्। ॐ कालि कालि लौहदण्डायै अस्त्रम् ॥२७॥

मूलमन्त्रं नेत्रः। अनेन न्यासः। पञ्च ब्रह्माणी सर्वमङ्गलमंगल्येति पश्चात् क्षमापयेत् ॥२८॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्या योगविधानं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

मन्त्र हैं (अतः अनुवाद सम्भव नहीं है; सभी मन्त्र मूलोक्त यथावत् हैं अर्थ नहीं होता)। यहाँ पञ्चब्रह्म, सर्वात्मा, स्वशिव, ज्वालिनी, पिङ्गलास्त्र तथा अघोरास्त्र अंकित है। शिवाङ्ग हैं—विद्याधिपति, ब्रह्मशिरा, रुद्राणी, पुरुष्टत् तथा पाशुपतास्त्र।

योगविद्याङ्ग हैं—विभुर्दानी, क्रियाचारी, वागेशी, ज्वालिनी कामाद्या शक्ति। शिवभट्टारक का परिवार है—विद्येश्वर, गणेश्वर, लोकपाल, वज्रादि अस्त्र, अनन्तादि नाग, सूर्यादि ग्रह, जम्भादि बालग्रह, देवादि देवग्रह, शिवादि रुद्र तथा विष्णु। गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य, अर्घ्यदान, जप-होमादि प्रत्येक कार्य में मुद्राप्रदर्शन अवश्य करना चाहिये। योनिमुद्रा, लिङ्गमुद्रा, व्यापिनी, छत्र, घण्टा, दण्ड, खेटक, शूल, चक्र, पाश, खड्ग, शर, धनु, वीणा, पद्म तथा शंख इन १६ मुद्राओं का मन्त्रपाठ के साथ प्रदर्शन करना चाहिये। इस प्रकार पञ्चब्रह्म समापन करके मन्त्रपाठपूर्वक क्षमायाचना-प्रणामोपरान्त पूजा का समापन करना चाहिये।।१६-२८।।

सप्तसप्ततितम अध्याय समाप्त

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

मनुरुवाच

अतः परं महापुण्यं सर्वकामप्रसाधकम्। ब्रह्मणा सनकादीनां भक्त्या यत् प्रतिपादितम् ॥१॥
तदहं संप्रवक्ष्यामि व्रतानां प्रवरं व्रतम्। सर्वलोकोपकाराय शृणुष्वावहितो द्विज ॥२॥

मनु कहते हैं—पूर्व में भक्त सनकादि मुनिगण से भगवान् ब्रह्मा ने सर्वाभीष्टप्रद व्रत का वर्णन किया था, अब लोगों के उपकारार्थ उस श्रेष्ठ व्रत को कहता हूँ। अवहित चित्त से सुनिये।।१-२।।

उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम्। अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्त्तयेत् ॥३॥

उपवास करने की अपेक्षा भिक्षाप्राप्त अन्न श्रेष्ठ है। उसकी अपेक्षा विना माँगा अन्न श्रेष्ठ है। उसकी अपेक्षा रात्रिव्रत श्रेष्ठ है। अतएव रात्रिव्रत करके कालयापन करना चाहिये।।३।।

देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा। अपराह्णे पितृभिर्भुक्तं संध्यायां गुह्यकादिभिः ॥४॥
सर्ववेलामतिक्रम्य नक्ते भुक्तमभोजनम्। वामाचारो महादेवो नक्तेनोर्ध्वरते पुमान् ॥५॥

देवताओं का आहारकाल है—पूर्वाह्ण; ऋषियों का मध्याह्न, पितृगण का अपराह्न एवं गुह्यकों का आहारकाल है—सन्ध्याकाल। सर्वापेक्षा सभी बेला का अतिक्रम करके रात्रि में भोजन करना भी अभोजन माना गया है। वामाचार में महादेव रात्रिभोजी मनुष्यों का उद्धार करते हैं।।४-५।।

हविष्यं भोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्। अग्निकार्यमधः शय्या नक्तभोजी समाहरेत् ॥६॥
एवं विधिः सदाचारो देवदेवीप्रपूजकः। कृष्णाष्टम्यां प्रयत्नेन कृत्वा नक्तं विधानतः ॥७॥

नक्तभोजी (रात्रिभोजी) व्यक्ति को हविष्यभोजन, स्नान, सत्य, लघु आहार तथा होमकार्य करना चाहिये। ऐसे सदाचारयुक्त व्यक्ति को इस प्रकार से विधानपूर्वक देवीपूजा करनी चाहिये। अग्रहायण की कृष्णाष्टमी को विधिवत् रात्रिव्रत करके शंकर का पूजन करना चाहिये।।६-७।।

मासस्य मार्गशीर्षस्य शंकरं देवमर्चयेत्। पीत्वा शक्त्या च गोमूत्रमनाहारो निशि स्वपेत् ॥८॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्। एवं पौषेऽपि संपूज्य शम्भुनामानमीश्वरम् ॥९॥
कृष्णाष्टम्यां घृतं प्राश्य वाजपेयाष्टकं लभेत्। माघे महेश्वरं नाम कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत् ॥१०॥
निशि पीत्वा तु गोक्षीरं गोमेधाष्टकमाप्नुयात्। फाल्गुने च महादेवं सम्पूज्य प्राशयेत्तिलान् ॥११॥

शक्ति के अनुसार गोमूत्रमात्र का आहार करके रात्रियापन करना चाहिये। ऐसे रात्रियापन द्वारा यज्ञ का आठ गुना फल प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पौषमासस्थ कृष्णाष्टमी के दिन शम्भु नामक ईश्वर की आराधना करके घृत खाकर रात्रियापन करने से आठ वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। माघ में महेश्वर नामक ईश्वर का कृष्णाष्टमी के दिन पूजन करना चाहिये। रात में गोक्षीर पीकर रहने से आठ गोमेध यज्ञफल मिलता है। फाल्गुन में (कृष्णाष्टमी के दिन) महादेव का पूजन करके तिल का आहार करना चाहिये।।८-११।।

राजसूयस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्। चैत्रे तु स्थाणुनामानं कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत्॥१२॥
यवाँश्च भर्जितानद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्। वैशाखे शिवनामानमिष्ट्वा रात्रौ कुशोदकम्॥१३॥

इससे राजसूय यज्ञ से भी आठगुणा अधिक फल प्राप्त होता है। चैत्र के दिन स्थाणु नामक ईश्वर की पूजा कृष्णाष्टमी को करके भुने यव का आहार करके रात्रि व्यतीत करने से उस व्यक्ति को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वैशाख मास में शिवनामक ईश्वर की आराधना करनी चाहिये और मात्र कुश का जल पीकर रात्रियापन करना चाहिये।।१२-१३।।

पीत्वा पुरुषमेधस्य फलमष्टगुणं लभेत्। ज्येष्ठे पशुपतिं पूज्य गवां शृङ्गोदकं पिबेत्॥१४॥
गवां कोटिप्रदानस्य यत्पुण्यं तदवाप्नुयात्। आषाढे चोग्रनामानं पञ्चगव्यं तु प्राशयेत्॥१५॥

इससे उस व्यक्ति को नरमेध से भी आठगुणा अधिक फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मास की कृष्णाष्टमी को पशुपति नामक ईश्वर का पूजन करके (जीवित) गाय के सींग को धोकर उस जल का पान करना चाहिये। इससे एक करोड़ गोदान का फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मास की कृष्णाष्टमी के दिन उग्र नामक ईश्वर का पूजन करके मात्र पञ्चगव्य पीकर रात्रि व्यतीत करनी चाहिये।।१४-१५।।

सौत्रामणिसहस्रस्य फलमष्टगुणं लभेत्। श्रावणे शर्वनामानमिष्ट्वार्कं निशि भक्षयेत्॥१६॥
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते। मासे भाद्रपदेऽष्टम्यां त्र्यम्बकं नाम पूजयेत्॥१७॥
प्राशनम्बिल्वपत्राणां मन्त्रदीक्षाफलं लभेत्। ईश्वरमाश्वयुजे मासि पूज्यान्ते तण्डुलोदकम्॥१८॥
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्। कार्त्तिके रुद्रनामानं संपूज्य प्राशयेद्दधि।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्॥१९॥
वर्षान्ते भोजयेद्विप्रान् कन्यका अबलास्तथा। पायसं घृतसंयुक्तं मधुना संपरिप्लुतम्॥२०॥
शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत्। निवेदयीत रुद्राय गाञ्च कृष्णां पयस्विनीम्॥२१॥
वर्षमेकं चरेद्भक्त्या नैरन्तर्येण यो नरः। कृष्णाष्टमीव्रतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु॥२२॥

इससे उस व्यक्ति को १००० सौत्रामणि यज्ञ के आठ गुणित (८०००) यज्ञ का फल मिलता है। श्रावण में कृष्णाष्टमी के दिन शर्वनामक शिव का पूजन करके रात्रि में इष्ट्वार्क (?) का भक्षण करने से वह सौ करोड़ वर्ष-पर्यन्त रुद्रलोक में वास करता है। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी को त्र्यम्बक नामक ईश्वर का पूजन करके बिल्वपत्र खाकर रात्रि व्यतीत करने से मन्त्रदीक्षा प्राप्त करने के तुल्य फल मिलता है। आश्विन मास की कृष्णाष्टमी को 'ईश्वर' का पूजन करके तण्डुल की माड़ खाकर रहने से पौण्डरीक यज्ञ का चौगुना फल मिलता है। कार्त्तिक में 'रुद्र' का कृष्णाष्टमी को पूजन करके मात्र दधि खाकर रात्रि व्यतीत करने से अग्निष्टोम यज्ञ का चौगुना फल मिलता है। वर्षान्त में विप्रगण को भोजन कराकर अबला तथा कुमारीगण को पायस को घृत तथा मधु से आप्लुत करके भोजन कराना चाहिये एवं यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्र भक्ति के साथ उन्हें प्रदान करना चाहिये। भगवान् रुद्र के उद्देश्य से ब्राह्मण को काले रंग की (कृष्णवर्णा) गौ प्रदान करनी चाहिये, जो दुग्ध देती हो। जो व्यक्ति एक वर्ष-पर्यन्त इस प्रकार भक्तिपूर्वक कृष्णाष्टमी का पूजन करता है, उसका पुण्यफल सुनो।।१६-२२।।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । वसेच्छिवपुरे दिव्यं न चेहायाति कर्हिचित् ॥२३॥
पुण्येष्वेतेषु सर्वेषु विषुवद् ग्रहणादिषु । दानोपवासहोमाद्यमक्षयं जायते कृतम् ॥२४॥

इति श्रीदेवीपुराणे कृष्णाष्टमीव्रतं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

वह सर्वपापरहित, सर्वैश्वर्ययुक्त होकर दिव्य शिवपुर को प्राप्त करता है। उसका संसार में पुनः आगमन नहीं होता। इन सब विषुव तथा ग्रहणादि में दान, उपवास, होम का अक्षय पुण्य मिलता है।।२३-२४।।

अष्टसप्ततितम अध्याय समाप्त

●

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती । मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मीः शिवा नारायणी क्रमात् ॥१॥
मार्गतृतीयामारभ्य पूर्वोक्तं लभते फलम् । अर्धनारीश्वरं रुद्रमथवा उमाशंकरम् ।
पूजयेद्विधिवन्नारी न वियोगमवाप्नुयात् ॥२॥

अग्रहायण मास की तृतीया से प्रारम्भ करके प्रत्येक मास में यथाक्रमेण गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा तथा नारायणी की पूजा करने से पूर्वोक्त फल मिलता है। अथवा अर्द्धनारीश्वररूप रुद्रदेव की पूजा करनी चाहिये। अथवा उमा-शंकर की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से नारीगण को कभी भी (पति) वियोगजनित दुःख नहीं होता।।१-२।।

अथवा विष्णुरूपेण पूजयेच्चेश्वरं सदा । शंकरं वामभागस्थं सर्वकाममवाप्नुयात् ॥३॥

अथवा विष्णुरूपी ईश्वर की पूजा करनी चाहिये। वामभागस्थ शंकर तथा विष्णु की पूजा करने से सर्वाभीष्ट-सिद्धि होती है।।३।।

मार्गशिरादौ केशवनारायणमाधवान् पूजयेत् । धूपस्रग्दीपाद्यैरुपोष्य सम्पूज्य दक्षिणाभिर्नामभिः ॥४॥
अश्वमेध नृपसूयवाजपेयमतिरात्र उक्तमथाग्निष्टोमो गवां मेधः पुरुषमेध सौत्रामणि ।
पञ्चयज्ञा हेमगोलक्षं सर्वे मखा स्थाप्यन्ते नित्यं स्मरणार्च्चनात् नाम द्वादशी ॥५॥

इति श्रीदेवीपुराणे नामद्वादशी

अग्रहायण मास से प्रारम्भ करके प्रत्येक मास की द्वादश को उपवासी रहकर धूप-दीप-माल्यादि से भगवान् नारायण की पूजा करनी चाहिये तथा पूजनोपरान्त ब्राह्मणगण को यथाशक्ति दक्षिणा देकर नामकीर्त्तनादि करना चाहिये। इससे अश्वमेध-राजसूय-वाजपेय-अतिरात्र-अग्निष्टोम-गोमेध-नरमेध-सौत्रामणि-पञ्चयज्ञ-स्वर्णदान-लक्षगोदान-सर्वयज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यह नामद्वादशीमाहात्म्य समाप्त होता है।।४-५।।

देवीपुराणोक्त नामद्वादशी समाप्त

●

मनुरुवाच

यदीच्छति शुभं नारी ईहजन्मे परत्र च । तदा कुर्याद्द्विजश्रेष्ठ विष्णुना कथितं व्रतम् ॥१॥

मनु कहते हैं—हे नरश्रेष्ठ! यदि कोई स्त्री इस जन्म अथवा अगले जन्म में शुभ की कामना करती है, तब उसके लिये विष्णुकथित व्रत अवश्य करणीय है।।१।।

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्। उमामहेश्वरं नाम कर्त्तव्यं विधिना यथा ॥२॥
प्रौष्ठाश्विनेऽथवा माघे भाग्ये मृगेऽथवा मुने। मैत्रे शाक्रेऽथवा कार्यमष्टम्यां वाथ शाङ्करे ॥३॥
पूर्वेऽहनि सपत्नीकं दाम्पत्यं सुखसङ्गतम्। एकभार्यं नरं वत्स सर्वधर्मव्रतान्वितम्।
आमन्त्र्यममरोमेशं प्रातः कार्यमनुग्रहम् ॥४॥

यह व्रत सर्वपापहारी, पुण्यप्रद, सर्वकामफलदायक है। इसे उमामहेश्वर व्रत कहा जाता है। इसे कैसे करना होगा, यह कहता हूँ। भाद्र मास, आश्विन मास, माघ मास अथवा अग्रहायण मास की अष्टमी को यह व्रत करना चाहिये। पहले दिन (पूर्व दिन) पति-पत्नि एक साथ वहाँ जायँ, जिनकी एक ही पत्नि हो तथा जो सर्व व्रतादि धर्मकार्य का अनुष्ठान करते हों। उनके यहाँ जाकर यह कहें—हे महाशय! कल प्रातःकाल कृपा करके मेरे घर आइये।।२-४।।

मुदान्वितस्तदा कुर्यात् कलिद्वन्द्वविवर्जितः। मधु चान्नेन भोज्यं तु क्षीरेज्ययवशालिजम् ॥५॥
सितश्लक्ष्णे तथा रक्ते शुभे कार्ये तु वाससी। न केशे स देशे वत्स देवदेवीप्रसादके ॥६॥
स्नात्वा उमेश्वरं पूज्यं स्थण्डिले प्रतिमासु वा। हुत्वा दिशो बलिं दत्त्वा वितानावथ कारयेत् ॥७॥

अगले दिन कलह-दुःख का परित्याग करके आनन्दित होकर प्रसन्न मन से उन दम्पति के आने पर उनको मधुमिश्रित पायसादि का भोजन कराना चाहिये। चिकना श्वेत अथवा रक्त वर्ण वस्त्रयुगल पूजार्थ प्रस्तुत करना चाहिये। हे वत्स! केशयुक्त स्थान पर देवीपूजन निषिद्ध होता है। स्नानादि का समापन करके स्थण्डित किंवा प्रतिमा पर उमामहेश्वर का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् होम एवं दिग्बलि प्रदान करके दो चन्द्रातप लगाना चाहिये।।५-७।।

चतुरस्रं चतुर्द्वारं गोमयेनोपलिप्यते। चतुष्कं शालिगोधूमैर्वर्णकैरुपशोभ्यते ॥८॥
दीपमालान्वितं कृत्वा दाम्पत्यं भोजयेत्ततः। शङ्करोमां सदाध्याय शक्राद्यं शुभचर्चितम् ॥९॥
मदचन्दनकाश्मीरकर्पूरागुरुधूपितम् । जातीपुन्नागमन्दारशतपत्रेक्षुमालितम् ॥१०॥

चतुष्कोण चतुर्द्वारयुक्त बनाना चाहिये, जहाँ जमीन गोबर से लीपी हो। शालि तथा गोधूमचूर्ण से उसे नाना वर्ण से चित्रित करना चाहिये। मण्डल में दीपमाला रखकर उन दम्पति को भोजन कराना चाहिये। सर्वदा उमा तथा शंकर का ध्यान करते रहना चाहिये। नानाविध चन्दन, मद, काश्मीर-विलेपन प्रदान करना चाहिये। कर्पूर तथा अगुरु से धूपित करना चाहिये। जाती, पुन्नाग, मन्दार, शतपत्र से पूजन करना चाहिये।।८-१०।।

क्षमाप्य युग्मं संवीतं त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणम्। सुखालापेन सम्पूज्य ध्यायन्तीं तमुमेश्वरम् ॥११॥

पूजान्त में उस युगल की तीन बार प्रदक्षिणा करके प्रार्थना करनी चाहिये। सुखालाप से उनकी अभ्यर्थना करके प्रदक्षिणोपरान्त उमामहेश्वर का ध्यान करना चाहिये तथा सुखपूर्वक कालयापन करना चाहिये।।११।।

आचम्यार्घ्यपाद्यं ते दद्यात् गंगोदकं तथा। सहिरण्यं सरत्नं च पुनर्दत्त्वा क्षमापयेत् ॥१२॥

इस कार्य में आचमन, अर्घ्य, पाद्यादि गंगाजल से प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर स्वर्ण-रत्नादि दक्षिणा देकर उमामहेश्वर से क्षमायाचना करनी चाहिये।।१२।।

प्रीयतां मे उमेशं तु सर्वदेवपतिं पतिम्। अनेन प्राप्नुयान्नारी अवियोगं सुरेश्वर ॥१३॥
सौभाग्यमिहजन्मेऽपि पुत्रराज्यसुखानि च। मृता याति परं स्थानं शंकरोमा अधिष्ठितम् ॥१४॥

तत्र भोगान् महान् भुक्त्वा चेहायाता महाकुले। समृद्धं वृद्धिसम्पन्ने पतिं विन्दति शोभनम् ॥१५॥

क्षमाप्रार्थना इस प्रकार है—'हे उमे! हे ईश्वर! मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' यह करने पर स्त्रीगण को वियोगजनित दु:ख नहीं सहना पड़ता। हे सुरेश्वर! इस जन्म में उसे सौभाग्य मिलता है, पुत्र-राज्यसुख प्राप्त होता है एवं मरणान्त में जहाँ शंकर-उमा स्थित हैं, वह उत्तम स्थान प्राप्त होता है। वहाँ यथेष्ट भोग-सुखादि का लाभ करके पुन: मनुष्य लोक में समृद्ध महान् कुल में जन्म होता है। वह स्त्री शोभन पति से युक्त हो जाती है।।१३-१५।।

लावण्यरूपसम्पन्ना भर्तुः श्रेष्ठा सदा भवेत्। श्लाघनीया समस्तस्य विभवान्तःपुरस्य च ॥१६॥

वह तब अतिशय रूपिणी होकर जन्म लेती है। उसे उत्तम पति प्राप्त होता है। वह स्वामी द्वारा परम आदर पाती है तथा समस्त लोकों में भी प्रार्थित हो जाती है (अर्थात् सभी लोकों में उसको सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है)। वह अन्त:पुर की वैभवरूप होती है।।१६।।

सुपुत्रा जीववत्सा च आधिव्याधिविवर्जिता। भुक्त्वा यथेप्सितान् कामान् वृद्धत्वे पतिपूर्विकाम् ॥१७॥
दिवं याति सुरश्रेष्ठ शंकरोमार्च्चिका स्त्रियः। नरो वानेन विधिना नारीनां भवते पतिः ॥१८॥
समृद्धः सर्वभूतानां पतित्वमुपगच्छति। शंकरोमाव्रतं शक्र लक्ष्म्या पूर्वमनुष्ठितम् ॥१९॥

हे सुरश्रेष्ठ! इस जन्म में वह समस्त सुख-सम्पदा का भोग करती है एवं वृद्धावस्था होने पर पति की मृत्यु के पूर्व ही स्वर्गधाम प्रयाण करती है। जो ऐसी रमणी का पति होता है, वह समृद्ध तथा सर्वभूतसमूह का अधीश्वर हो जाता है। हे शक्र! शंकर उमा का यह व्रत पूर्वकाल में लक्ष्मी द्वारा अनुष्ठित किया गया था।।१७-१९।।

रत्या देव्या अरुन्धत्या रोहिण्या सुरसत्तम। कृतमासीत् सुखार्थन्तु ताश्च भुञ्जन्ति तत्फलम् ॥२०॥
उमामन्त्रेण चोमेशं ईशमन्त्रेण शंकरीम्। पूजिता सर्वकामानि प्रयच्छत्यविचारणात् ॥२१॥

इति श्रीदेवीपुराणे उमामहेश्वरव्रतम्

हे सुरश्रेष्ठ! देवी सरस्वती, अरुन्धती, रोहिणी ने सुखकामनार्थ यह व्रत किया था। वे इसी व्रत का फल अभी भी सुखपूर्वक भोग रही हैं। जो उमामन्त्र से ईश्वर की तथा ईश्वर के मन्त्र से उमा की अर्चना करते हैं, वे सर्वाभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं।।२०-२१।।

देवी पुराणोक्त उमामहेश्वर व्रत समाप्त

●

इन्द्र उवाच

कथितं शंकरोमाख्यं व्रतं मे मनतुष्टिदम्। श्रोतुमिच्छाम्यहं तात विष्णुशंकरसंज्ञितम् ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—आपने उमामहेश्वर व्रत का वर्णन किया। इसे श्रवण करके मुझे मन:सन्तोष प्राप्त हो रहा है। अब विष्णु-शंकर व्रत सुनने की इच्छा है।।१।।

मनुरुवाच

यथा उमेश्वरं तात तथा कार्यमिदं व्रतम्। किन्तु पीतानि वासांसि केशवाय प्रकल्पयेत् ॥२॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं सुगन्धञ्च जनार्दने। कार्यं पूजानुसद्भावं लड्डूकां दधिपायसम् ॥३॥
एवं तौ पूजयित्वा तु प्रतिमे स्थण्डिलेऽपि वा। आहूय ब्राह्मणौ वत्स वेदसिद्धान्तपारगौ ॥४॥

मनु कहते हैं—इसे पूर्णतः उमामहेश्वर व्रत की ही तरह करना चाहिये। इसमें विशेष यह है कि भगवान् विष्णु को पीतवर्ण की वस्तु (फल-पुष्प-नैवेद्यादि, वस्त्रादि) ही देनी चाहिये। वेदज्ञ ब्राह्मण द्वारा स्थण्डिल किंवा प्रतिमा स्थापित करके गन्ध-पुष्प-सुगन्ध-धूप-लड्डू-दधि-पायस आदि द्वारा नारायण एवं शंकर की पूजा करनी चाहिये।।२-४।।

यति वा व्रतसम्पन्नौ जटाकाषायधारिणौ। पूजयित्वा विधानेन शूलपाणिजनार्दनौ ॥५॥
क्षमाप्य विधिना वत्स सर्वकामप्रसाधकौ। हेमं तु दक्षिणां विष्णोर्मौक्तिकं शङ्कराय च ॥६॥
दत्वा प्रव्रजतो लोको क्रमाद्देहक्षये व्रजेत्। भुक्त्वा भोगांस्तथा शक्र इहायातो नृपेश्वरः ॥७॥
कुले भवति भूपालः सुखपुत्रायुसंयुतः ॥७॥

यति अथवा जटा-काषायधारी चाहे कोई भी क्यों नहीं हो, उसे विधिवत् शूलपाणि तथा जनार्दन की पूजा द्वारा सर्वमनोकामनाफल प्राप्त हो जाता है। विष्णु के लिये स्वर्णदक्षिणा कही गयी है। शंकर की दक्षिणा के लिये मोतीदान किया जाना चाहिये। इससे देहान्त के पश्चात् उत्तम लोक मिलता है। हे शक्र! वहाँ पर भोग भोगकर पुनः इस लोक में राजकुल में नृपश्रेष्ठ के यहाँ जन्म मिलता है। वह सुखी, पुत्र-आयुयुक्त भूपति होता है।।५-७।।

पूर्वभावाद्भवेद्भक्तिः शिवविष्णुप्रसाधकी। योगं प्राप्य परं याति यत्तु स्थानमनामयम् ॥८॥

इति श्रीदेवीपुराणे शङ्करनारायणव्रतम्

उसमें पूर्वजन्मार्जित संस्कारबल से महादेव तथा नारायण के प्रति भक्ति का उदय होता है। अतः वह साधक होकर योगबल से परमधाम प्राप्त कर लेता है।।८।।

देवीपुराणोक्त शंकरनारायण व्रत समाप्त

अनेन विधिना कार्यं लक्ष्मीनारायणव्रतम्। ब्रह्मगायत्र्यजं तात चन्द्ररोहिण्यजं पिवा।
भावविभानुरूपेण सत्त्वमात्रफलं लभेत् ॥१॥

इसी विधान से शुभलक्ष्मी नारायण व्रत का भी अनुष्ठान करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मगायत्री जप तथा चन्द्ररोहिणी व्रत भी किया जाता है। इसे भक्तिपूर्वक विभवानुरूप अनुष्ठित करने से इच्छानुरूप फल प्राप्त होता है।।१।।

शक्र उवाच

सम्मार्जनफलं देव सूचितं न प्रकीर्त्तितम्। तदहं श्रोतुमिच्छामि मानवानां हिताय वै ॥२॥

इन्द्र कहते हैं—हे देव! सम्मार्जन-फल कैसा है? आपने उसका वर्णन नहीं किया। मानवगण के मङ्गलार्थ उसका वर्णन कीजिये; उसके विषय में सुनने के लिये मुझमें अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।२।।

ईश्वर उवाच

वाराहे तु पुरा कल्पे मनो रैवतके तथा। तस्मिन्नासीत् महीपाल चन्द्रमित्रनृपोत्तम ॥३॥
पत्नी च कुङ्कुमा नाम अयुतं त्रय चोत्तमा। लावण्यरूपसम्पन्ना चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥४॥
सानुदिनं सदा भक्त्या देव्याः सम्मार्जने रता। द्वारशोभां पथिशोभां देव्यामुद्दिश्य कारयेत् ॥५॥
स प्रपच्छ तदा राज्ञीं किमेतद्देवि त्वं सदा। सम्मार्ज्जनपरा नित्यमन्यकर्मपराङ्मुखा।
एतन्नो ब्रूहि तत्त्वेन राजरूपं पतिप्रिया ॥६॥

ईश्वर कहते हैं—पूर्व में वाराह कल्प के रैवतक मन्वन्तर में चन्द्रमित्र नामक एक उत्तम राजा था; उसकी पत्नी का नाम कुङ्कुमा था और वह उसकी पटरानी थी। वह अयुतत्रय रानियों में उत्तमा थी। वह रूप-लावण्य से युक्त एवं चन्द्रकान्ति के सदृश कान्तिमती थी। वह प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देवी के सम्मार्जनकार्य में रत रहती थी; साथ ही देवी के लिये द्वारशोभा तथा पद्मशोभा करती रहती थी। एक दिन राजा ने उससे पूछा—देवि! तुम समस्त कार्यों का त्याग करके इस सम्मार्जनकार्य में ही क्यों सदा तत्पर रहती हो? यदि कोई विवशता न हो तो कारण बतलाकर मेरे कौतूहलाक्रान्त चित्त को तृप्त करो।।३-६।।

कुङ्कुमोवाच

न हि मेऽस्त्यपरा भक्तिर्यथा संमार्ज्जने शृणु। तथाहं कथयिष्यामि पुराकर्म्म कृतं मया ॥७॥
पूर्वमासं ह्यहं विल्वा पतन्ती वियच्चारिणी। तत्राहं भ्रममाणा तु गता किष्किन्ध्यपर्वतम् ॥८॥
तत्र देवी निराधारा ह्याकाशे तिष्ठते सदा। केनापि पूजने दत्तं भक्तं पात्रं सुपूजितम् ॥९॥

कुङ्कुमा कहती है—इस सम्मार्जन कार्य में मेरी जितनी भक्ति है, उतनी किसी कार्य में नहीं है। इसका कारण समझाने के लिये मुझे वह कहना होगा कि पूर्वकाल में मैंने कौन-कौन से कार्य किये थे। अब वही कहती हूँ। पहले (जन्म में) मैं चील पक्षी थी। आकाश में भ्रमण करते-करते एक दिन मै किष्किन्धा पर्वत पहुँची। वहाँ देवी सदा आकाश में स्थित रहती हैं। वहीं किसी ने पूजन के क्रम में देवी के लिये पात्र में भरकर अन्न प्रदान किया था।।७-९।।

मयापि क्रममादाय गृहीतुमुद्यमः कृतः। क्रमान्नतं गृहीतन्तु पक्षैः पांशु निवारिता ॥१०॥

उस पात्रपूर्ण अन्न को देखकर मैं उसे पाने की इच्छा के साथ मँडराने लगी। तदनन्तर सम्पूर्ण वेग से अन्न की ओर झपटते समय मेरे पंखों की हवा से वहाँ की धूल उड़ गयी तथा वह स्थान साफ हो गया।।१०।।

पूर्णदत्तक्रमान्नेव ग्रहीतुं पांशु मार्ज्जिता। तावत्तस्मिन् समायातः पूजको देवलो द्विजः ॥११॥
वयं नष्टा भयात् कालान्मृता जाता वसोर्गृहे। चन्द्रमित्रस्य तेनैव दत्ताहं प्रथमा वधूः ॥१२॥
राज्ञी त्रिंशत्सहस्रानामभूदहं तत्प्रभावतः। अकामा देवतागारे पक्षपातस्य मार्ज्जनात् ॥१३॥
तेन राज्ञी चेयं याता कामान् सम्मार्ज्जनेन किम्। फलं भवति यद्देव्या तत्र वेद्मि यथोच्यताम् ॥१४॥

मेरे पंखों की वायु से वहाँ की धूल स्वच्छ हो गयी; तभी वहाँ का देवल नामक पुजारी ब्राह्मण आ गया। उसे आया देखकर मैंने भयभीत होकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। तदनन्तर कुछ समय पश्चात् देहत्यागोपरान्त चन्द्रमित्र नामक वसु के गृह में मेरा जन्म हुआ। उन्होंने ही मेरा वाग्दान आपके साथ किया। अब मैं उसी पंखों की हवा से देवीस्थान का सम्मार्जन करने के कारण आपकी ३० हजार रानियों में से पटरानी बनी हूँ। मैंने विना कामना (बिना जाने) के स्थान मार्जित करने से रानी बनने का यह सौभाग्य पाया। जब अनजाने में देवीस्थान-मार्जन का इतना फल है, तब जानते हुये सम्मार्जन करने का कितना बड़ा फल होगा, वह वाणी से नहीं कह सकती।।११-१४।।

एवं पूर्वं कथेच्छम्भुर्भार्गवस्य प्रपृच्छतः। ब्रह्मणा देवराजस्य मयापि च तवाखिलम्।
कथितं जीर्णसंस्कारे सम्मार्जनफलं नृप ॥१५॥

इति श्रीदेवीपुराणे सम्मार्ज्जनमाहात्म्यं नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः

पूर्वकाल में शुक्र द्वारा पूछे जाने पर महेश्वर ने यह कथा कही थी। तदनन्तर ब्रह्मा ने तत्कालीन इन्द्र से यह आख्यान कहा। अब मैंने इस सम्मार्जनफल को तुमसे कहा।।१५।।

एकोनाशीतितम अध्याय समाप्त

अशीतितमोऽध्यायः

विद्येश्वर उवाच

कथं देव्याः सदा पूजा तद्भक्तैर्गृहपालकैः। कर्त्तव्या सिद्धिमिच्छद्भिः दृष्टादृष्टफलार्थिभिः ॥१॥

विद्येश्वर कहते हैं—जो गृहस्थ होने पर भी सद्भक्त हैं तथा दृष्ट-अदृष्ट फल तथा सिद्धि की कामना करते हैं, वे देवीपूजा कैसे करें? अब यही सुनना चाहता हूँ।।१।।

अगस्त्य उवाच

साध्विदं यत्त्वया प्रश्नं कृतं वत्सेश्वरप्रियम्। तदहं निखिलं वक्ष्ये तव भक्तस्य विद्यया ॥२॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे वत्स! तुमने जो पूछा है, वह अति उत्तम है तथा यह कथा ईश्वर को प्रिय है। तुम भक्त हो, मैं संक्षेप में सब कहता हूँ।।२।।

देव्या भक्तैः सदा देवी सर्वगा सर्वसंश्रिता। द्रष्टव्या नागगुल्मेषु तृणपक्षिसरीसृपे ॥३॥
द्विज-अन्त्यजजातिषु दुःखितेषु सुखेषु च। सूक्ष्मासूक्ष्मविशिष्टेषु सुरभीष्वसुरभीषु च ॥४॥
न क्रुष्टः क्रोधमागच्छेन्न च पूजा सुकृष्यते। तृणहेमविशेषेण न लोभो न च कामिता ॥५॥

जो देवी के प्रकृत भक्त हैं, वे सर्वत्र देवी का ही दर्शन करते हैं। वृक्ष-लता-तृण-पक्षी-सरीसृप-ब्राह्मण, किंवा अन्य जाति, दुःखी, सूक्ष्म, स्थूल, सुरभि-असुरभि, द्विज-अन्त्यज-प्रभृति सर्वत्र देवी ही विराजमान हैं। उनके प्रति यदि कोई आक्रोश भी करता है, तब भी देवी के प्रकृत भक्त उसके प्रति क्रोधित नहीं होते। आदर-पूजा करने पर प्रसन्न नहीं होते। तृण तथा स्वर्ण उनके लिये समान है। उनकी किसी वस्तु के प्रति इच्छा नहीं होती और लोभ भी नहीं होता।।३-५।।

परदारपरस्वादेर्वाच्या मनकर्मभिः। यस्य नोत्सहते राजन् तस्य देवी न दूरतः ॥६॥
भूषितोऽपि वरं देवं किं वने निवसन्नृपः। सकामेनैव सिद्धिः स्यान्निष्कामस्य गृहं वनम् ॥७॥

हे राजन्! जो मन-वाणी-कर्म से पराई स्त्री तथा पराया धन अपहरण के लिये उद्यत नहीं होते, उनके लिये देवी की प्राप्ति कठिन नहीं है। जो प्रकृत भक्त हैं, उनके लिये वन में जाकर तपस्या का प्रयोजन नहीं है। जब सकाम होकर भी देवी की आराधना से सिद्धि प्राप्त होती है, तब निष्काम होकर कार्य करने तथा वन में जाकर तपस्या करने का क्या प्रयोजन है?।।६-७।।

यस्तु सर्वप्रजापालः सर्ववर्णाश्रमेज्यकः। स्वेन वर्त्मनि वर्त्तेत स दुर्गां शक्यमीजितुम् ॥८॥

जो राजागण वर्णाश्रमभेद से समस्त प्रजा का पालन करके अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का अनुष्ठान करते हैं, वे ही देवी की आराधना के पात्र होते हैं।।८।।

राजोवाच

यद्येवं वर्णजातीनां देवी सर्वत्र संस्थिता। तदहं श्रोतुमिच्छामि आश्रमाणां च पालनम् ॥९॥

राजा कहते हैं—यह श्रवण किया कि देवी सभी वर्ण तथा जाति में स्थित रहती हैं। अब वर्णाश्रम के विषय में जानने की इच्छा है।।९।।

अगस्त्य उवाच

पूर्वं देवेन ब्रह्माय शूलिना कथिता किल। श्रुता ते मनुदक्षाद्यैर्भृगुमित्रोऽथ काश्यपैः ॥१०॥
तथा मयापि तेभ्यश्च यथा प्राप्ता तथा तव। कथयामि महाराज देव्या भक्तिपरो भवान् ॥११॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—पूर्वकाल में महेश्वर ने ब्रह्मा को यही वृत्तान्त सुनाया था। ब्रह्मा से मनुप्रभृति ने श्रवण किया। मनु से भृगु ने, काश्यप आदि ऋषियों ने तथा उनसे मैंने सुना। हे राजन्! तुम देवीभक्त हो, इसलिये तुमसे कहता हूँ।।१०-११।।

यथा आसीत्पुरा राजन् महाकल्पे नराधिपः। तथा पालय प्रजाः सर्वा स्वे स्वे धर्मे व्यवस्थिता ॥१२॥
तस्य राजस्य देवेन्द्रः पृच्छते गरुडध्वजम्। रक्षणाय समस्तस्य दिव्यस्य स हिते रतः ॥१३॥
प्रणम्य तं जगन्नाथं विष्णुं कमललोचनम्। पपृच्छति समस्तस्य ब्रह्माद्यस्य च कारणम् ॥१४॥

हे राजन्! पूर्व महाकल्प में जैसे इन्द्र राष्ट्रप्रिय थे, उसी प्रकार प्रजागण भी स्वधर्म-निरत तथा सत् स्वभाव वाले थे। देवराज ने अपने राज्य तथा देवताओं के हित-साधनार्थ एक दिन भगवान् कमललोचन विष्णु को प्रणाम करके निखिल ब्रह्माण्ड के कारण के सम्बन्ध में पूछा।।१२-१४।।

शक्र उवाच

जयानन्त महाबाहो सर्वदेवनमस्कृत। एकमूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिस्तु पीतवासो जगत्प्रियः ॥१५॥
सर्वव्यापि महाकाय स्थलभावानुचारकः। परावर परावस्तु कारणात्मन् नमो नमः ॥१६॥

इन्द्र कहते हैं—हे अनन्त महाबाहो! आप समस्त देवगण द्वारा प्रणम्य हैं। आप एक मूर्त्ति होकर भी गुणभेद के कारण त्रिमूर्त्ति हैं। आप पीतवस्त्रधारी, जगत्प्रिय हैं। आप सर्वव्यापी, महाकाय, स्थूल-सूक्ष्म, पर-अपर हैं। आप जगत् के कारण हैं, आपको प्रणाम है।।१५-१६।।

प्रकृतिस्थं च भावेश विकृतिरव्ययः प्रभुः। चिन्त्याचिन्त्यप्रमेयश्च कालकालनहेतवः ॥१७॥
धर्माधर्ममहाभाग भावाभावनमो नमः। महदादि गुणावास सर्वगुणविवर्जितः ॥१८॥

हे प्रभो! आप ही प्रकृति-विकृति हैं। चिन्त्य-अचिन्त्य हैं। आप ही अव्यय-प्रभु तथा प्रमेयरूप हैं। आप काल-धर्म-अधर्म-महामाया-भाव तथा अभाव के हेतु हैं। आपमें ही महत् आदि गुणसमूह हैं, तब भी आप निर्गुण हैं।।१७-१८।।

श्रूयसे स्तवसे त्वञ्च वेदसे वेदको भवान्। सम्पूज्यसे पूजको नाथ सर्वगः सर्वकृत्तिभूः ॥१९॥
अविनाश विनाशित्वे पार्थिवादिप्रयोजने। त्वं भवान् कारणाभाव परापर नमोस्तु ते ॥२०॥

आप ही स्तूयमान हैं, आप ही स्तुति करने वाले भी हैं। वेद्य होकर भी वेदक हैं। पूज्य हैं तथापि पूजक भी स्वयं हैं। आप सर्वग, सर्वकर्त्ता, विभु, अविनाशी एवं पार्थिवादि प्रयोजन वाले हैं। आप परापर-सर्वकारण हैं। आपको प्रणाम है।।१९-२०।।

हृषीकेश गदाधारिन् महादनुकुलान्तक। महागदासिधाराय पृच्छामि जगद्धेतवे ॥२१॥

हे हृषीकेश, हे गदाधारी! हे दैत्यकुलविनाशक! आप ही जगत् के कारण हैं। मैं जगत् के हितार्थ आपसे पूछता हूँ।।२१।।

एवं स्तुतस्तदा राजन् विष्णुः प्रोवाच याच्यताम्। यत्ते मनसि वर्त्तेत ददामि ब्रूहि वासव ॥२२॥

हे राजन्! इन्द्रकृत इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु कहते हैं—हे वासव! अपनी इच्छा कहो; उसे मैं पूर्ण करूँगा।।२२।।

शक्र उवाच

भगवन् किं परा भक्तिः कस्य वा क्रियते सदा। कस्मिन् द्वीपे स्थितौ पुंभिर्यष्टव्या सा परापरा ॥२३॥

शक्र कहते हैं—भगवन्! श्रेष्ठ भक्ति क्या है, वह किसे प्राप्त होती है। किस द्वीप के निवासी इन परात्परा देवी की आराधना के अधिकारी हैं, इसे सुनना चाहता हूँ।।२३।।

श्रीभगवानुवाच

एकस्मिन् मे दिने शक्र ब्रह्मा यान्ति चतुर्दश। तिसृणां त्वं च तत्संख्या ब्रह्माहेन पुरन्दर ॥२४॥
एवं वर्षशते पूर्णे योगनिद्रा परापरा। तस्मिन् लीलयाम्यहं शक्र पुनरेतत् सृजामि च ॥२५॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे इन्द्र! मेरे एक दिन में चतुर्दश (१४) ब्रह्मा बदल जाते हैं। ब्रह्मा के तीन दिन में १४ इन्द्र बदल जाते हैं। अपने ऐसे (इसी परिमाण वाले) १०० वर्ष में मैं योगनिद्रा का आश्रय लेता हूँ तथा उसका अन्त होने पर पुनः लीला से सृष्टि करता हूँ।।२४-२५।।

एवं ते च दिनाः पक्षाः मासार्त्तव तथायने। स ते कालं च कल्पं च महाकल्पं तथैव च ॥२६॥
भवते सृजते शक्र या सा परमकारिणी। योगनिद्रा महामाया सर्वाद्या न व्यवस्थिता ॥२७॥
स्थापिता परमेशेन यस्मिन् काले तदुच्यताम्। लब्धं त्रिंशत् सहस्राणां शतानि नव एव च।
तस्य मां भूतभूतस्य कालस्य सुरसत्तम ॥२८॥
तस्मिन् सा पूजिता देवी ब्रह्मणा मनुरूपिणा। स्वायंभुवतनुर्भूत्वा जगतः स्थितिकारणे ॥२९॥

इस प्रकार से दिन-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-वत्सर-कल्प-महाकल्प इत्यादि को यथाक्रमेण होता है। परम-कारणरूपा देवी समस्त सृष्टि करती हैं। मैं इस समय योगमाया का आश्रय लेता हूँ। इस समय का परिमाण है—एक लाख तीस हजार नौ सौ वर्ष। हे सुरश्रेष्ठ! इस समय में ब्रह्मा ही स्वायम्भुव मनु के रूप में देवी की पूजा करते हैं। वे ही जगत् की स्थिति के कारण हैं।।२६-२९।।

तेन ज्ञातानि नामानि ते च द्वीपा सरिद्वरा। पातालस्थितयः शक्र भवन्ति च व्रजन्ति च ॥३०॥
तथापि मां कृता माया मोहनी सुरजन्तुषु। अनेककालभूतं यदद्यैव प्रतिभाषते ॥३१॥

इति श्रीदेवीपुराणे देव्यवतारे कालभावव्यवस्थानामाशीतितमोऽध्यायः

वे सभी नामों से अवगत हैं। हे शक्र! ये सभी द्वीप, सरितारूपेण इस समय पातालपुर के अन्तर्गत हो जाते हैं। इस प्रकार से समस्त सृष्टि की उत्पत्ति तथा विनाश होता है। सभी सुर-असुर पर विमोहिनी महामाया का ऐसा प्रभाव है कि यह सब जो घटना बहुत पूर्व घटित हो गई थी, वह आज की घटना प्रतीत होती है।।३०-३१।।

अशीतितम अध्याय समाप्त

●

एकाशीतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

भगवंस्तव वाक्यानां न तृप्तिर्भवते मम। कालाग्निपार्थिवं मानं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—भगवन्! आपका वाक्य सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। अब कालाग्नि के पार्थिव परिमाण को सुनना चाहता हूँ।।१।।

भगवानुवाच

नहि पार्थिवद्वीपेषु मेरुपृष्ठेऽपि वासव। भोगाह्लादकता नृणां यथा पातालवासिषु ॥२॥
येषु न कालरुद्रस्य नानास्त्रीशतसंकुलाः। विचित्रहर्म्यविन्यासाः कूटस्य मेरुपृष्ठतः ॥३॥
सा एवं कालरुद्रस्य तनुरूपेण संस्थिता। सा परा शिवभावेन परमपदप्रदायिका ॥४॥

भगवान् कहते हैं—पातालवासीगण में जिस प्रकार का भोगाह्लाद परिलक्षित होता है, वैसा स्थान मेरुपृष्ठ के पार्थिव द्वीप-समूह में कहीं नहीं है। विशेषत: कालरुद्रपुर में जिस प्रकार सैकड़ों-सैकड़ों स्त्रीयुक्त विचित्र हर्म्यावलि विन्यस्त है, मेरुपृष्ठ के किसी स्थान पर वैसा नहीं है। परमपद देने वाली परात्परा देवी इस कालरुद्र के शरीररूपेण स्थित हैं।।२-४।।

तस्य युगसहस्रान्ते ब्रह्माद्यानां भयङ्करम्। तं विद्धि कालरुद्रेति सौम्यरूपं सदा शिवम् ॥५॥
कालाग्निधामनं लक्षं योजनानां प्रमाणतः। अर्धेन उच्छ्रयस्तस्य पादाः पादेन वासव ॥६॥

हे इन्द्र! इस कालरुद्र के युगसहस्रान्त में ब्रह्मादि का नाश हो जाता है। इन सौम्यमूर्त्ति सदाशिव को ही कालरुद्र जानना चाहिये। कालाग्नि का स्थान लक्ष योजन विस्तार वाला है। ऊँचाई इसकी आधी है तथा उसका पादपरिमाण १/४ है।।५-६।।

सिंहरूपा महाघोरा महानक्रा महाबला। कालाग्निरुद्ररूपो यो बहुरुद्रसमावृतः ॥७॥
अनन्तः पद्मरुद्रश्च धातारः कारणीश्वरः ॥८॥
दारुणोऽग्निरुद्रश्च यमहन्ता भयान्तकः। लोहितः क्रूरतेजात्मा घनो वृष्टिबलाहकः ॥९॥
विद्युतश्च न शीघ्रश्च प्रसन्नः शान्तिसौम्यदृक्। सर्वज्ञो विविधो बुद्ध्या द्युतिमान् दीप्तिसुप्रभः ॥१०॥
एते रुद्रा महात्मानः कालिकाशक्तिबृंहिता। संहरन्ति समस्तेदं ब्रह्माद्यं सचराचरम् ॥११॥

उसके चतुर्दिक उसे घेरकर महाबली सिंहरूपी तथा मकररूपी रुद्रगण स्थित हैं। अनन्त, पद्मरुद्र, धाता, कारण, ईश्वर, दारुण, अग्निरुद्र, यमहन्ता, क्षमान्तक, लोहित, क्रूरतेजा, घनवृष्टि, बलाहक, विद्युत्, चल, शीघ्र, प्रसन्न, शान्त, सौम्यदृक्, सर्वज्ञ, विविध, बुद्धि, द्युतिमान्, दीप्ति, सुप्रभ—ये महात्मा रुद्रगण देवी काली की शक्ति से युक्त होकर चराचर ब्रह्माण्ड का संहार करते हैं।।७-११।।

कालाग्निभुवनीशोऽयं शतकोटिभिरावृतम्। तस्या पुरस्य विस्तारः शतकोटिसुवर्तनम् ॥१२॥

कालाग्नि भुवनेश्वर शतकोटि रुद्रगणों से घिरा रहता है। उस पुर का विस्तार शतकोटि योजन है तथा उसकी आकृति गोल है।।१२।।

देवगन्धर्वसिद्धानां तत्र भोगाः सुदुर्लभाः। पूर्वोत्तरपरा भक्तिर्याम्यान्तरस्थिता परा ॥१३॥
अनलानिलवाच्या च निर्ऋताशा न चापरा। एतेषां मध्यतो राजन् कालरुद्रस्तु शोभते ॥१४॥

हे राजन्! वहाँ जो समस्त भोगवस्तु है, उसको देव-गन्धर्व-ऋषिगण-सिद्ध कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण इत्यादि विभागक्रम से अग्नि-वायु-वरुण-निर्ऋति-ईशान आदि वहाँ वास करते हैं। इनके मध्य में भगवान् कालरुद्र का वास है।।१३-१४।।

पंक्त्याकारैः पुरैः सर्वं कटकं तस्य संस्थितम्। समन्तादिष्टिधवलं प्राकारात्तोलगोपुरैः ॥१५॥
वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यप्राकारैः सर्वतोऽन्वितम्। कालाग्निनरकान्ते तु पुरं कालस्य संस्थितम् ॥१६॥
पञ्चाशल्लक्षविस्तारं समन्तात् परिवर्तुलम्। जाम्बुनदमयैर्हर्म्यैः खचितं रत्नधातुभिः ॥१७॥

इस कालरुद्रपुर में उनके कटक, प्राकार, अट्टालिका, गोपुर आदि स्थान पंक्तिबद्ध होकर स्थित हैं। वज्र, इन्द्रनील, वैदूर्य मणियों से बने प्राचीर से पुरी परिवेष्टित है। कालाग्नि नरक का प्रान्तभाग है—कालपुर। यह ५० लाख योजन विस्तार वाला तथा सभी प्रकार से वर्त्तुल है। वहाँ नानाविध रत्नों से जड़ी स्वर्णनिर्मित हर्म्यश्रेणी है।।१५-१७।।

प्रमदाजनसंहृष्टं नानावर्णसमावृतम्। कामोन्मत्तप्रमत्तैश्च तज्जातीजनसंकुलम्।
कालस्य भुवनं दिव्यं वृत्ताकारं मनोहरम् ॥१८॥
वेष्टितं हेमप्राकारैर्योजनायुतमुच्छ्रितम्। प्राकारा बहिदण्डान्ते अक्षयं योजनायतम् ॥१९॥

यह कामोन्मत्त तथा प्रमत्त जनों से परिवेष्टित कालरुद्र का भवन अतीव मनोहर तथा वर्त्तुलाकृति है। यह स्वर्णप्राचीरों से घिरा है। इसकी उच्चता १०००० योजन है। बाहरी भाग का प्राचीर योजन भर के विस्तार वाला तथा अक्षय है।।१८-१९।।

अग्निजालैश्च निविडैर्भयदैः किंशुकप्रभैः। हरितालनिभा ज्वालाः सिन्दूरा गैरिकप्रभाः ॥२०॥

इस प्राचीर में अतीव भयानक अग्निशिखा जलती रहती है। कहीं किंशुकवर्ण, कहीं हरितालवर्ण, कहीं सिन्दूरवर्ण, कहीं गेरुये रंग की अग्निशिखा उठती रहती है।।२०।।

अत ऊर्ध्वं प्रजज्वालाः सुवातोद्धूतभास्वराः। वीचितरङ्गकल्लोलज्वालामालाकुलान्वरम् ॥२१॥

उसके ऊर्ध्व में यह समस्त अग्निशिखायें वायु से ताड़ित होकर लहरों की तरंग के समान कल्लोलित होती रहती हैं।।२१।।

प्रविस्तारप्रमाणेन योजनद्वयकोटयः। अष्टानवतिलक्षानि ज्वाला ऊर्ध्वं ततः शिलाः ॥२२॥
वज्रभूता महातप्ता तस्य तेजोनियामिका। चत्वारि कोटिमानेन कारणेन तु स्थापिता ॥२३॥
तस्योर्ध्वेन भवेत् किंस्वित् कोट्यश्चत्वारि वासव ॥२४॥
एवं कामाग्निरुद्रस्य माहात्म्यं कीर्त्तितं मया। श्रवणात् सर्वपापानि शमन्ते कालजान्यपि ॥२५॥

इति श्रीदेवीपुराणे कालाग्निरुद्रमाहात्म्यं नामैकाशीतितमोऽध्यायः

इस दो करोड़ अष्टनवति लक्ष योजन-पर्यन्त ऊँची यह सब अग्निशिखा प्रज्वलित रूप में उठती रहती है। इसके ऊर्ध्व में वज्रवत् महातप्त शिखायें चार करोड़ योजन-पर्यन्त विस्तृत हैं। इसके ऊपर चार करोड़ योजन तक कुछ भी दिखलाई नहीं देता।इस प्रकार यह कालाग्नि रुद्रवृत्तान्त तथा माहात्म्य कहा गया। इसे सुनने पर काल का समस्त पाप नष्ट हो जाता है।।२२-२५।।

एकाशीतितम अध्याय समाप्त

●

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

कालाग्निभवनस्यार्धे वज्रपाषाणमूर्धनि। ये स्थितास्तत्र देवेश तान् कथयस्व प्रसादतः ॥१॥

शक्र कहते हैं—हे देवेश! कालाग्नि भवन के ऊर्ध्व में वज्रपाषाण मस्तक पर क्या है, उसका वर्णन करें।।१।।

श्रीभगवानुवाच

यथा पृच्छति मां शक्र ऊर्ध्वं कालपुरस्य तु। तथा ते कथयिष्यामि शृणुष्व वदतो मम ॥२॥
ऊष्मोदके नरकाः शक्र कोट्यः पंचाशन्मानतः। चत्वारिंशच्छतं तेषां प्रधानं तन्निबोधत ॥३॥

भगवान् कहते हैं—इन्द्र! तुम्हारी जिज्ञासा के अनुसार कालपुरुष के ऊर्ध्व जो कुछ है, वह कहता हूँ। एकाग्र होकर श्रवण करो। जिस प्रज्वलित शिखा के ऊर्ध्व में पचास करोड़ चार हजार नरक हैं, उनमें जो प्रधान विख्यात हैं, उनको एकाग्र होकर श्रवण करो।।२-३।।

अवीचिः कृमिभक्ष्यश्च तथा वैतरणी महान्। कूटं शाल्मलिरुच्छ्वासं युगपर्वतरौरवम् ॥४॥
निरुच्छ्वासः पूतिमांसं तप्तलाक्षास्थितञ्जनः। क्रकच्छेदस्तथा पंकः कण्टायससुतापितम् ॥५॥
पूतिपूर्णस्तथा भेदः स्तम्भं च रुधिरं वसा। तामिस्रमपतुण्डश्च तीक्ष्णासिश्च नपुंसकः ॥६॥
लोहितन्तु स्त्रिया भीमा अङ्गारराशिरिवोपरि। कुम्भीपाकः क्षुरमध्यः सञ्जीवनसुतापकम् ॥७॥
कालसूत्रं महापद्मं शीतोष्णं क्षतुरमेव च। अम्बरीषं तथा घोरं महारौरवसम्पुटम् ॥८॥
सूचीमुखेषु यन्त्रश्च तैलतप्तत्रपुस्तथा। असिपत्रं तथा पीनं करपत्रं च वासव ॥९॥
चत्वारिंशच्छतं घोरं तेषां त्रीणि परान् शृणु। अवीचीरौरवकुम्भीपाकाः पच्यन्ति पापकान् ॥१०॥

अवीचि, कृमिभक्ष्य, वैतरणी, कूट, शाल्मलि, उच्छ्वास, युग्मपर्वत, रौरव, निरुच्छ्वास, पूतिमांस, तप्तलाक्षा, स्थिताञ्जन, क्रकच्छेद, पङ्क, कण्टायस, सुतापित, पूतिपूर्ण, भेदस्तम्भ, रुधिर, वसा, तामिस्र, अपतुण्ड, तीक्ष्णासि, नपुंसक, लोहित स्त्री, भीमा, अङ्गारराशि, कुम्भीपाक, क्षुरमध्य, सञ्जीवन, सुतापक, कालसूत्र, महापद्म, शीतोष्ण, क्षतुर, अम्बरीष, घोर, महरौरव, सम्पुट, सूचिमुख, इक्षुयन्त्र, तप्ततैल, त्रपु, असिपत्र, पीन, करपत्र इत्यादि चत्वारिंशत् शत इन घोर नरकों में से अवीचि, रौरव तथा कुम्भीपाक प्रधान हैं। इनमें पापियों को पकाया जाता है।।४-१०।।

देवद्विजगुरुद्रोहा बालस्त्रीवधवञ्चकाः। सद्वृत्तमाचरन् शक्र विघ्नकाः पाचयन्ति ते ॥११॥
देव्या दिवं तथा वस्त्रभूमिराज्यापहारकाः। पाचयन्ते नरकैर्ह्येतैर्वर्णाश्रमविघातकाः ॥१२॥
कूष्माण्डी सर्वमेतेषां रक्षकः सन्नियोजितः। पादेन कालरुद्रस्य तस्याश्रमस्य संस्थिते ॥१३॥
अनन्तरूपशोभाढ्या वयं मूर्ध्नि व्यवस्थिताः। पाताला पृथिवी शक्र मम मालेव मस्तगाः ॥१४॥

जो देव-द्विज-गुरुद्रोही हैं, बालक-स्त्रीवधकारी तथा वञ्चक हैं, वे सभी नरक में पतित होते हैं। हे शक्र! जो कोई धर्मकार्य नहीं करते, सत्कर्म में विघ्न करते हैं, जो देवद्रव्य, वस्त्र, भूमि तथा राज्य का अपहरण करते हैं, वर्णाश्रम-विघातक हैं, वे सब नरक में पतित होकर यातनाभोग करते हैं। कूष्माण्डगण इन सब नरकों में इन पापकारियों को दण्डार्थ रक्षक नियुक्त हैं। कालरुद्र के आश्रम के ऊर्ध्व में अनन्त शोभायुक्त मैं निवास करता हूँ। हे शक्र! पाताल तथा पृथिवी मेरी एक लोकमाला के समान है।।११-१४।।

वयं कालग्निरुद्रस्य शतांशेन प्रमाणतः। ममोपरि स्थिताः सप्त पाताला मनकामदाः।
यत्र नागाः शूराः रक्षाः तिष्ठन्ति मम पूजकाः ॥१५॥
रुद्रभक्तास्तथा चान्ये ब्रह्मदेवीज्यकाः परे। परतत्त्वमजानन्तः पृथग्भावेन भाविताः ॥१६॥
अन्ये सर्वगतान् सर्वान् देव्याः शक्त्यावलोकिताः। पश्यन्ते मम सद्भावा मुमुक्षुः परगामिनः ॥१७॥

मेरे परिमाण से कालाग्निरुद्र का परिमाण १/१०० ही है। मेरे ऊर्ध्व में सात पाताल हैं। उसमें मेरे भक्त नाग-असुर तथा यक्ष निवास करते हैं। उनमें से कोई-कोई रुद्रभक्त है, कोई ब्रह्मभक्त अथवा देवीभक्त। वे परमतत्त्व न जानने के कारण

पृथक्-पृथक् रूप से मेरी पूजा करते हैं। हे इन्द्र! उनमें से कुछ दैव शक्ति के अनुसार हम सभी को अभिमानकर पूजा करते हैं। वे मुमुक्षु होकर क्रमशः परमधाम प्राप्त करते हैं।।१५-१७।।

यस्मिन् ये संस्थिताः शक्र तान्निबोध समासतः। आभासं करतालं च शर्करं च गभस्तिमम् ॥१८॥
महातालं सुतालं च सप्तमं च रसातलम्। सौवर्णमष्टकं शक्र न प्रसीद्धयन्ति चागमैः ॥१९॥

हे शक्र! अब ये जहाँ वास करते हैं, उसे कहता हूँ। आभास, करताल, शर्कर, गभस्ति, महातल, सुतल तथा रसातल— ये हैं सप्तलोक। अष्टम लोक स्वर्णनिर्मित है। उसका आगमादि में उल्लेख नहीं है।।१८-१९।।

देव्या रुद्रपरा लोका मन्त्रतन्त्रविशारदाः। स्वदेहान्ते प्रविशन्ति नागकन्याः रमन्ति च ॥२०॥
अष्टमं तद्विजानीयाद् वसुरत्नोपशोभितम्। विभूतिक्रीडं संक्षेपात् कथयामि सुराधिप ॥२१॥

जो मन्त्र-तन्त्रविशारद देवीभक्त अथवा रुद्रभक्त हैं, वे देहान्त में उस लोक में प्रवेश करके नागकन्या का उपभोग करते हैं। अष्टम लोक यही है तथा यह रत्नादि से शोभित है। हे सुराधिप! अब इस समय उन समस्त स्थानों की विभूति का संक्षेप में वर्णन करता हूँ।।।२०-२१।।

प्रथमं भासमानन्तु तत्र हेममयी मही। नानारत्नसमाकीर्णं प्रासादं स्फटिकोज्ज्वलम् ॥२२॥
रत्नैश्च खचिताः स्तम्भा द्वारबन्धाश्च वासव। स्त्रीसहस्रसमाकीर्णं लक्षकोटिभिरेकधा ॥२३॥
आवृतं कोटिकोटीनां प्राधान्यात् कथयामि ते। नमुचिः शंकुकर्णश्च महानादस्तृतीयकः ॥२४॥

प्रथम स्थान आभास में धरती स्वर्णमयी है। वहाँ के सभी प्रासाद उज्वल स्फटिक से बने तथा नाना रत्नों से भूषित हैं। हे वासव! वहाँ के खम्भे भी रत्न से जड़े हैं। द्वारबन्ध भी रत्नमय हैं। वहाँ सहस्र-सहस्र नागकन्यायें तथा नाग एवं राक्षस लक्षकोटि विराजित हैं। वे करोड़ों-करोड़ हैं। उनमें से जो प्रधान हैं, उनका वर्णन करता हूँ। नमुचि, शंकुकर्ण तथा तीसरा नाग महानाद है।।२२-२४।।

अनन्तः कूलिको नाग एलापत्रश्च नागकाः। राक्षसाः शूलदन्तश्च रक्ताढ्यो विकटस्तथा ॥२५॥

अनन्त, कुलिक एलापत्र—ये सर्व प्रधान छः नाग हैं। राक्षसों में से शूलदन्त, रक्ताक्ष तथा विकट श्रेष्ठ हैं।।२५।।

सुखभाग् दुःखसन्तप्ता देव्या भक्तिसमन्विताः। स्त्रीसहस्रमदैर्हृष्टा आभासेषु कृताः जनाः॥२६॥
शतकोटिप्रविस्तारैर्वरताले निबोधत। पद्मरागमयी भूमि रत्नैः खचितमन्दिराः ॥२७॥
तत्र हर्म्योच्छ्रिता तुङ्गा इन्द्रनीलैर्विभूषिताः। द्वारे बन्धाश्च प्रवला मुक्ता रुक्माश्च तोरणाः।
अनेककोटयो यत्र राक्षसासुरपन्नगाः ॥२८॥

ये सभी सुखी तथा दुःखरहित हैं। इनकी देवीभक्ति अचल है। यहाँ के सभी लोग सहस्रों स्त्रियों से परिवेष्टित होकर परमानन्द से कालातिपात करते हैं। अब शतकोटि योजन विस्तार वाले वरताल का वर्णन करता हूँ। इस स्थान की सभी भूमि पद्मरागमयी है तथा सभी प्रासाद रत्नजटित हैं। यहाँ के सभी हर्म्य इन्द्रनील मणियों से भूषित अत्यन्त उच्च हैं। द्वारदेश में चाँदी से निर्मित तोरण हैं, जो मूँगे तथा मोती से शोभित हैं। वहाँ करोड़ों राक्षस-असुर तथा नागगण निवास करते हैं।।२६-२८।।

प्रह्लादो अग्निजिह्वश्च अनूह्लादोऽसुरास्त्रयः। वासुकिः शंखपालश्च धृतराष्ट्रस्त्रयोरगा ॥२९॥
विद्युन्माली हिरण्याक्षो विद्युज्जिह्वश्च राक्षसाः। चलचकितवितस्तैर्धूपयक्षसु चायतैः ॥३०॥
तासां दृष्टिनिपातेन सविकारामलेन च। विस्त्रम्भालापभावेन विभासोत्फुल्लितेन च।
स्मरोऽपि स्मरणाच्चैता गतासूरिव लक्ष्यते ॥३१॥

प्रह्लाद, अग्निजिह्व तथा अनुह्लाद—ये तीन असुर; वासुकि-शंखपाल-धृतराष्ट्र—ये नागत्रय तथा विद्युन्माली, विद्युज्जिह्व तथा हिरण्याक्ष—ये तीन प्रधान राक्षस यहाँ वास करते हैं। उनका विस्तृत कटाक्ष, हाव, भाव, आलाप एवं हास्यप्रफुल्लता देखने से प्रतीत होता है, मानो कामदेव प्राणत्याग करके यहा जन्म ले चुके हैं।।२९-३१।।

शिखिझङ्कारशब्देन स्तोककैर्नादितेन च। अलिभिर्गीतशब्देन कोकिलाकूजितेन च।
उद्दीपयति चानङ्गं विखिन्नमनचेतसाम् ॥३२॥
नानामद्यविशेषाणि पिवन् पानानि वासव। असुरानेन भावेन देवीं पूजयते सदा ॥३३॥

वहाँ मयूर की केकी ध्वनि, चातक का कलनाद, भ्रमरगुंजन, कोकिलकूजन सुनकर दु:खित व्यक्ति के मन में भी कामदेव का उद्दीपन हो जाता है। वहाँ असुरगण विभिन्न मद्य तथा पानद्रव्य को पीकर अपने-अपने भाव से सदा देवी का पूजन करते रहते हैं।।३२-३३।।

करताले स्थिता ह्येवं श्रीताले च निबोधत। ताराख्य शिशुपालश्च अमयश्चासुरास्त्रयः ॥३४॥
कम्बलस्तक्षकः पद्मो नागराख्यस्त्रयस्तथा। यमदन्तोग्रदन्तश्च विशालाख्यश्च राक्षसाः ॥३५॥

अब त्रितल के विषय में कहता हूँ। वहाँ ताराक्ष, शिशुपाल तथा अमय—ये तीन असुर हैं। कम्बल त्र्यम्बक एवं पद्म—ये तीन नाग हैं। यमदण्ड, उग्रदण्ड तथा विशालाक्ष—ये तीन राक्षस भी वहाँ रहते हैं।।३४-३५।।

चतुर्थं सम्प्रवक्ष्यामि दैत्याश्च महिषोपमाः। तृतीयः कालपृष्टश्च नागाः कर्कोटपङ्कजाः ॥३६॥
शंकुकर्णस्तृतीयश्च राक्षसाश्च निबोधत। महादेवं महाकायं तृतीयन्तु महाभुजम् ॥३७॥

अब चतुर्थ स्थान के सम्बन्ध में कहता हूँ। यहाँ दैत्यगण महिष के समान रहते हैं। यहाँ कालपृष्ठ, कर्कोट तथा शंकुकर्ण— ये तीन नाग हैं। महादेव, महाकाय तथा महाभुज नामक तीन राक्षस भी निवास करते हैं।।३६-३७।।

शर्करे ते विजानीयाः पञ्चमन्तु निबोधत। अमरः शम्भुस्तापाख्यो असुरास्ते त्रयः स्मृताः ॥३८॥
सुपर्णः कूलिको नागस्तृतीयश्च धनञ्जयः। अस्थिभद्रो विरूपाख्यो उग्ररूपाश्च राक्षसाः ॥३९॥
गतस्ते ते समाख्याता पृष्ठे वैरोचने शृणु। कालनेमिर्हिरण्याख्यो निशुम्भश्च त्रयोऽसुराः ॥४०॥

अब पञ्चम स्थान का वर्णन किया जाता है। यहाँ अमर, ताराक्ष तथा शुभ नामक तीन असुर, सुवर्ण-कुलिक तथा धनञ्जय नामक तीन नाग, अस्थिभद्र-विरूपाक्ष-उग्रपाश नामक तीन राक्षस निवास करते हैं। अब छठे स्थान के सम्बन्ध में कहता हूँ। यहाँ कालनेमि, हिरण्याक्ष तथा निशुम्भ नामक तीन राक्षस रहते हैं।।३८-४०।।

अत्रैव यत् पुरावृत्तं कथयामि सुरोत्तम। दाक्षिणात्ये महाराष्ट्रे कुलदेवस्तु ब्राह्मणः ॥४१॥
तस्य पुत्रः समुत्पन्नो नाम्ना तस्करवल्लभः। स च कालेन महता नामरूपं प्रवर्त्तितः ॥४२॥

हे सुरोत्तम! यहाँ का एक पुरावृत्त इस सम्बन्ध में सुनो। दाक्षिणात्य प्रदेश के महाराष्ट्र देश में कुलदेव नामक एक ब्राह्मण निवास करता था। उसका तस्करवल्लभ नामक एक पुत्र था। कालक्रम से इस ब्राह्मणपुत्र ने अपने नामानुरूप कार्य प्रारम्भ किया (अर्थात् चौर्य कार्य करने लगा)।।४१-४२।।

मित्रदेवद्विजातीनां महद्द्रव्यापहारकः। कदाचित् कालपर्यन्ते मलये पर्वते गतः ॥४३॥
तत्र कन्याभिधाना तु भवति जलसंवृता ॥४४॥
बहुद्रव्यसुसम्पूर्णा नगरद्वारसंस्थिता। स च द्यूतं रमित्वा तु नाम्ना तस्करवल्लभः ॥४५॥
रात्रौ प्रविष्टवांस्तस्मिन् उत्सृष्टो द्रव्यहारकः। यावद्दीपः समप्राप्तस्तैलस्तेनाभवत् किल ॥४६॥
तावत् तेन तथा तैले द्रव्यान्वेषणकारिणे। दत्ते प्रबुध्यवाँस्तत्र देवलो देविपूजकः ॥४७॥

बन्धु हो, चाहे देवता अथवा ब्राह्मण हो, वह सभी का द्रव्य अपहरण करने लगा। किसी समय वह मलय पर्वत पर गया। वहाँ पर कन्याभिधाना देवी का मन्दिर था। नगरवासी व्यक्तिगण वहाँ अनेक द्रव्यों द्वारा इन देवी की पूजा करते थे। तस्करवल्लभ भी एक दिन द्यूतक्रीड़ा के लिये धन-अपहरणार्थ उस मन्दिर में गया। वह रात्रिकाल में छिपकर उस मन्दिर में गया था। उसने हाथ में एक तैलपूर्ण दीपक जलाकर हाथ में लिये मन्दिर में प्रवेश किया था। जब तक दीपक जलता रहा, वह मन्दिर के द्रव्य तथा आभूषणों की खोज करता रहा। तभी देवल नामक पुजारी ब्राह्मण वहाँ जाग कर पहुँच गया।।४३-४७।।

स च प्राणभयान्नष्टः कालान्मृत्युरभूत् पुनः । काञ्चीराजाधिपः शक्र नाम्ना खड्गकरोद्यतः ॥४८॥

यह देखकर वह चोर प्राणभय से वहाँ से भाग गया। यह तस्करवल्लभ नामक चोर समय आने पर मृत हो गया और अगले जन्म में खड्गकरोद्यत नाम से काञ्ची राज्य का अधीश्वर हो गया।।४८।।

देवीभक्तवरो नित्यं मद्यमांसवसाप्रियः । देवब्राह्मणद्रोही च देवभूग्रामहारकः ॥४९॥

यद्यपि इस जन्म में भी वह देवी के प्रति भक्तियुक्त था तथापि सर्वदा मद्य-मांसादि का आहार, देव-ब्राह्मण की हिंसा, देव- सम्पत्ति का एवं भूमि-ग्रामादि का अपहरण करता रहता था।।४९।।

कालेन मृत्युमापन्नो रोचनो राक्षसाधिपः । पिङ्गाख्यो दशकोटीनां महाबलपराक्रमः ॥५०॥

कालवशात् मृत्यु हो जाने पर यह राजा वैरोचन पुर में महाबलवान पराक्रमी १० कोटि राक्षसों का अधिपति होकर जन्म ग्रहण किया और उसका नाम हो गया—पिङ्गाक्ष।।५०।।

अजरो अमरः शक्र ब्रह्मकल्पायुजीवितः । तेन दीपप्रभावेन शर्कराधिपतिर्महान् ॥५१॥
दुष्टभावोऽपि सञ्जातः किं पुनस्तत्समाश्रिताः । भवन्ति तत्र राजेन्द्र ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥५२॥

हे इन्द्र! वह राजा ऐसे दुष्ट स्वभाव का होकर भी दीपदान के प्रभाव से अजय-अमर तथा ब्रह्मा की कल्पपरिमित आयु को प्राप्त हो गया। लेकिन जो भक्तिपूर्वक देवी का आश्रय ग्रहण करते हैं, वे ब्रह्मलोक में निवास करते हैं।।५१-५२।।

एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रसङ्गेन सुराधिप। शेषान् नागाँश्च वक्ष्यामि पाताले ये तु कीर्त्तिताः ॥५३॥
पौण्डरीकश्च दुष्प्रेक्ष्यं श्वेतभद्रं वयोरगाः । पिङ्गाख्यो मेघनादश्च तथा घोरश्च राक्षसाः ॥५४॥
रसातले जरासन्धो वैरोचनो बलिस्तथा। कोटिथा यो मया बद्धस्तव कार्येषु सत्वरी ॥५५॥

हे सुरश्रेष्ठ! प्रसङ्गक्रम में तुमसे यह कहा। अब पाताल में जो सब नागगण वास करते हैं, उनके सम्बन्ध में कहता हूँ। वहाँ पौण्डरीक, श्वेत एवं भद्र—ये तीन नाग, पिंगाक्ष-मेघनाद तथा अघोर—ये तीन राक्षस रहते हैं। रसातल में जरासन्ध तथा बलिप्रभृति करोड़ों असुरगण वास करते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारे ही कार्य-हेतु मैंने बलि को छल से बद्ध किया था।।५३-५५।।

पुनः स्वर्गं गमिष्यामि पुनस्त्वं शंसिता प्रभुः । ऐरावतो महानागः पिङ्गमश्वतरं तथा ॥५६॥
मारीचः कुम्भकर्णश्च माल्यवाँस्त्रय राक्षसाः । पातालाः सप्त विख्यातास्त्रिषष्टिभुवनेश्वराः ॥५७॥

तभी तुम पुनः स्वर्गराज्य के अधीश्वर हो सके थे तथा मैं भी पुनः स्वस्थान प्राप्त कर सका था। इस स्थान में ऐरावत, पिङ्ग तथा अश्वतर नामक तीन नाग, मरीचि-कुम्भकर्ण-माल्यवान नामक राक्षसत्रय वास करते हैं। त्रिषष्टि भुवनों में से सप्त पाताल श्रेष्ठ हैं।।५६-५७।।

वृत्ताकारानि पातालाः शतकोटिप्रविस्तराः । वृत्तत्रयविभक्तास्ते दैत्यपन्नगराक्षसाः ॥५८॥

पातालसमूह वृत्ताकार तथा शतकोटि योजन विस्तार वाला है। इसमें दैत्य, नाग तथा राक्षसों का तीन विभाग है।।५८।।

कल्पे कल्पे विनश्यन्ति तन्नामानो भवन्ति च। न हि संख्या भवेच्छक्र मृता जाता पुनः पुनः ॥५९॥

ये सभी दैत्य-नाग तथा राक्षसगण कल्प-कल्प में नष्ट होकर इसी नाम से पुनः जन्म लेते हैं तथा पुनः काल के वश में लयीभूत हो जाते हैं। इस प्रकार इनकी गणना कर सकना सम्भव नहीं है।।५९।।

उपपातालमष्टन्तु सौवर्णं तु निबोधत। यत्रासौ भगवान् देवो अर्धनारीश्वरः प्रभुः ॥६०॥
वयं च तत्र क्रीडामो ब्रह्मा वेदविदांवरः। द्वितीय इव कैलाशे यत्र भोगा मनोरमाः ॥६१॥
यत्रासौ भगवान् देवो वरदो हाटकेश्वरः। तत्र हेममयी भूमिर्वज्रवैदूर्यचित्रिता ॥६२॥

अब अष्टम जो उपपाताल है, उसका वर्णन करता हूँ। वह सुवर्ण का है तथा भगवान् अर्द्धनारीश्वर वहाँ निवास करते हैं। ब्रह्माप्रभृति तथा मैं, सभी वहाँ नित्य क्रीड़ारत रहते हैं। इस स्थान की विविध मनोहर भोगवस्तु देखने पर यह द्वितीय कैलासपुरी प्रतीत होता है। यहाँ भगवान् हाटकेश्वर वरद रूप धारण करके स्थित रहते हैं। यहाँ की स्वर्णमयी भूमि हीरा तथा वैदूर्य से चित्रित है।।६०-६२।।

विचित्रा धातुभिर्भाति देवासुरमनोहरा। सर्ववृक्षसमाकीर्णा सदार्त्तववनस्पतिः ॥६३॥
सुगन्धफलपुष्पाणां गन्धद्रव्यसमन्विता। सुगन्धिः शीतलो वायुर्विहरेन्मनतुष्टिदः ॥६४॥

वहाँ विचित्र धातुयें स्थान-स्थान में विन्यस्त होकर इस स्थान की शोभावृद्धि कर रही है। वह देवता तथा असुरप्रभृति सभी के मन का हरण कर सकने में सक्षम है। वहाँ सुगन्धित फल, पुष्पयुक्त वृक्ष तथा वनस्पतिसमूह सभी ऋतुओं में शोभावृद्धि करते हैं। वहाँ सुगन्धयुक्त शीतल वायु बहती रहकर सर्वदा लोगों के मन को सन्तोष देती है।।६३-६४।।

हेमप्रासादप्राकारास्तरवोद्यानकाननाः। सरित्सर्वतडागैश्च दीर्घिकैरुपशोभितम् ॥६५॥

वहाँ स्वर्ण के प्रासाद तथा प्राकार, तरु उद्यान तथा कानन विद्यमान हैं। वे विचित्र वृक्षमाला से परिवेष्टित हैं। उनके चारो ओर स्वर्णप्राचीर उनको घेरे हुयें हैं। सरिता, तडाग तथा दीर्घिकासमूह से यह पुरी शोभित है।।६५।।

स्फाटिकैः शैलसोपानैर्मुक्ताफलसमन्वितम्। भान्ति अंभांसि तान्द्रैस्तु नीलरक्ताम्बुजैः सितैः॥६६॥
कुसुमोत्पलसंच्छन्नं ते च कार्त्तस्वराम्बुजा। तटे वृक्षलतागुल्मकोषोत्पलपक्षिणः ॥६७॥
सर्वे कार्त्तस्वराः शक्र पातालं तेन शोभितम्। तत्राङ्गना मदोन्मत्ताः क्रीडन्त्युद्यानकन्दरैः ॥६८॥

दीर्घिकासमूह के सोपान स्फटिक-निर्मित हैं तथा बीच-बीच में मुक्ताफल लगे लटक रहे हैं। जल में नील, रक्त तथा श्वेत कमल खिलकर उस सरोवर को परम शोभित कर रहे हैं। इन सब जलाशयों की पद्मराशि, तटस्थित वृक्ष, लता, गुल्म, प्रस्तर तथा पक्षीगण—सभी सुवर्णमय हैं। हे शक्र! इसीलिये यह पुरी (पाताल) इतनी सुशोभित है। यहाँ की विलासिनी नारियाँ मदोन्मत्त होकर उद्यान, कन्दरा, वन, उपवनादि में सर्वदा क्रीड़ारत रहती हैं।।६६-६८।।

वनोपवनउद्यानैर्दीर्घिकासरमध्यगाः। क्रीडन्ति जलक्रीडाभिर्दोलान्दोलनतत्पराः ॥६९॥
रतिप्रमत्ता निश्चेष्टा सर्वदुःखविवर्जिताः। अशेषसुखतृप्तासु दुःखैकस्मरक्रीडनम् ॥७०॥
विचरन्ति महाभागैः सर्वाभरणभूषिताः। विन्यस्तकेशभारास्ताः कवरीधम्मिल्लमुक्तकैः ॥७१॥
अलंकारालयस्तासां पृष्ठगाः कुसुमन्त्रिताः। मूर्ध्नि च स्रग्गता भान्ति संशिताग्रैः प्रलम्बिताः ॥७२॥
शाखापत्रविशेषेण ललाटतिलकेन च। यत्रापरविशेषेण इन्द्रकेण विराजते ॥७३॥
कर्णो विन्यस्तपत्रेण कुण्डलैर्भाति चापरा। सितासितारूपैर्दीर्घैस्त्रस्त बालमृगा इव ॥७४॥

कभी-कभी वे दीर्घिका एवं सरोवर में जलक्रीड़ा एवं कभी उद्यानादि स्थान में दोलान्दोलनादि क्रीड़ारस में मत्त होकर समस्त दुःखों से शून्य होकर परमसुख से काल व्यतीत करती हैं। कामपीड़ा के अतिरिक्त और किसी प्रकार का दुःख उनमें देखने में नहीं आता। वे महाभागागण सर्वभूषणभूषिता होकर महाभाग्यशाली व्यक्तियों के साथ विचरती रहती हैं। कभी विभिन्न केशविन्यास करके, कभी करवीर बन्धन करके, कभी अपनी लम्बी अलकों को पीठ पर झुलाते-झुलाते विचरण करती हैं। वे नाना अलङ्कारों से भूषित रहती हैं। कोई-कोई मस्तक पर विचित्र पुष्पस्रक् धारण करके स्थित रहती हैं। तथा वह लम्बमान होकर पृष्ठदेश पर उड़ रहा है। किसी ने शाखा तो किसी ने पत्र धारण किया है तथा किसी ने ललाट पर तिलक लगाया है। किसी-किसी ने ललाट पर चन्द्राकार, किसी ने सूर्याकार पत्र बनाकर लगाया है। किसी ने कानों पर पत्र तो किसी ने कुण्डल पहना है। विलासिनीगण के नेत्र भयचकित हिरणी के समान आयत तथा चञ्चल हैं। तथा श्वेताभ विमिश्र उज्ज्वल नीलिमा जड़ित हैं।।६९-७४।।

यासां नेत्रा विराजन्ते पुरे श्रीहाटकेश्वरे। एवंविधैः सदास्त्रीभिर्नित्यः स्मरनिपीडिभिः ॥७५॥
रमन्ति सुरता भोगाः सुतृप्ताः शिवभाविताः ॥७६॥

इति श्रीदेवीपुराणे हाटकेश्वरपुरवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः

जो शिवभक्त हैं, वे हाटकेश्वरपुर में इन समस्त कन्दर्पमोहिनी रमणियों के साथ सुरत-सम्भोग से तृप्त होकर परमानन्द से काल व्यतीत करते हैं।।७५-७६।

द्व्यशीतितम अध्याय समाप्त

●

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

सर्वत्र च श्रुता देव वेदवेदार्थपारगैः। पुराणमितिहासञ्च सन्त एव न चाष्टमम् ॥१॥
त्वं पुनः कथ्यसे चाष्ट उत्तमं तच्च सर्वसु। कथन्तत्केन वा सृष्टमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥२॥

इन्द्र कहते हैं—हे देव! वेद-वेदाङ्ग-आगम-पुराण-इतिहास आदि में सर्वत्र सात पाताल का ही वर्णन अंकित है। इस अष्टम पाताल के विषय में तो कहीं सुना नहीं गया; लेकिन आपने अष्टम पाताल का वर्णन किया है तथा उसे सर्वापेक्षा उत्तम कहा है। यह कैसा है, किसके द्वारा सृष्ट है, यह जानने की इच्छा है।।१-२।।

श्रीभगवानुवाच

कैलासशिखरासीनं देवदेवं त्रिलोचनम्। तिष्ठन्तमुमया सार्धं ऋषिदेवनमस्कृतम् ॥३॥
तं द्रष्टुं भगवान् ब्रह्मा वयं शक्रबृहस्पती। तथा च क्रीडते स्कन्दो बर्हिणारुणनित्यशः ॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—देवदेव त्रिलोचन जो देव तथा ऋषियों द्वारा नमस्कृत हैं, वे कैसाल पर्वत पर उमा के साथ निवास करते हैं। एक दिन ब्रह्मा-बृहस्पति तथा मैं सभी उनको देखने के लिये कैलास पर्वत गये थे। इस स्थान पर कार्त्तिकेय नित्य मयूर पर बैठकर क्रीड़ा करते हैं।।३-४।।

ब्रह्मणो ह्यासनं हंस शिखिना चञ्चुना हतः। रुराव करुणं शब्दं देव्या तञ्च निशम्य च ॥५॥
विहस्य ब्रह्माणीमालोक्य ब्रह्मा तञ्च तथा शिखीम्। दण्डेनाताडयत्किञ्चित् शिखिना सह वारितम् ॥६॥
तञ्च श्रुत्वा तथा देव्या दुःखायमनुचिन्तयत्। तथा मेघसमाकारं घोरं घोरपराक्रमम् ॥७॥

तब ब्रह्मा के आसन हंस पर कार्त्तिकेय के मयूर ने चोंच से प्रकार कर दिया। इससे हंस करुण शब्द करने लगा। देवी ब्रह्माणी ने इस दु:खद दृश्य को देखकर ब्रह्मा के प्रति सहास्य दृष्टिपात किया। तब ब्रह्मा ने मयूर पर किञ्चित् दण्डप्रहार कर दिया। इससे मयूर भी आर्त्तनाद करने लगा। देवी (उमा) ने यह सुनकर उसकी सहायता करने की इच्छा किया। इससे मयूर के मुख से ब्रह्महंस पर वार करने वाले घोर पराक्रम असुर की उत्पत्ति हो गयी।।५-७।।

निष्क्रान्तं शिखिरावस्य ब्रह्मयानस्य वारकम्। तं दृष्ट्वा सहसा देवी शङ्किता ब्रह्मव्रीडया ॥८॥
शङ्करेणापि सम्प्रोक्तो ब्रह्मणोऽस्य स्तवं कुरु ॥९॥
करोति शम्भुना उक्तः स्तवेदं कमलोद्भवम्। देवानां परमं देवमुत्पत्तिस्थितिकारकम् ॥१०॥
तथा देशं समास्थाय देवदेवस्य शूलिनः। स्तवेन स्तवते रुरुर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥११॥

इस दृश्य से ब्रह्माणी सहसा भयभीत हो गईं। (ब्रह्माणी को भयभीत देखकर) शिव ने उस मयूर से प्रकट हो गये असुर से कहा—देवगण की उत्पत्ति तथा स्थिति के कारण परमदेव कमलोद्भव ब्रह्मा की स्तुति करो। वह रुरु नामक असुर शिव की आज्ञा पाकर परमेष्ठि ब्रह्मा की स्तुति करने लगा।।८-११।।

रुरु रुवाच

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे। अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने ॥१२॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक। रजोरूपगुणाविष्टसृजसीदं चराचरम् ॥१३॥
सत्रपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्। गुणसंतानमूर्तिस्त्वं ददसे परमेश्वर ॥१४॥
वेदवेदान्तगर्भाय नमामि च त्वां ब्रह्मणः। यस्य नित्यं श्रुतिः शब्दं चत्वारो वरमाननात् ॥१५॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाणो निष्क्रमन्ति पदक्रमाः। शिक्षाकल्पनिरुक्तानि च्छन्दो ज्योतिषि चागमाः ॥१६॥

रुरु कहता है—हे देवाधिदेव, आप त्रिगुणात्मक सुमेधा हैं। आपका जन्मादि अव्यक्त है। आप जगत्कारण तथा महात्मा हैं। आप एक होकर भी सृष्टि-स्थिति तथा प्रलयार्थ त्रिधा विभक्त हैं। आप रजोगुणावलम्बी होकर चराचर विश्व की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणावलम्बी होकर पालन करते हैं एवं तमोगुण का अवलम्ब लेकर संहार करते हैं। हे परमेश्वर! आपकी भावना करने वालों को आप मुक्ति दान करते हैं। वेद-वेदान्तादि आपके ही गर्भ में अवस्थित हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिनके मुख से समस्त श्रुतिसमूह बहिर्गत होते हैं, जिनके चतुर्मुख से अपने चरणादि-संयुक्त ऋक्, यजुः, साम, अर्थवेद, पदक्रम, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्दः, ज्योतिष तथा आगमादि निर्गत होते हैं।।१२-१६।।

चक्षुभूता अशेषस्य जगतोऽस्य सुखप्रदाः। त्रयः कालास्त्रयो देवास्त्रयो विष्णुत्रयः क्रियाः ॥१७॥
यस्य सम्भवनामस्य तं नमामि पितामहम्। इन्द्रचन्द्रहरिर्यक्षरक्षहुतवहस्तुतम् ॥१८॥
तं नमामि सदा देवमव्यक्तं व्यक्तकारणम्। एवं स्तुताः रुरोः पूर्वं ब्रह्मा वरप्रदोऽभवत् ॥१९॥

साथ ही वे अखिल जगत् के नेत्ररूप होकर सबको आनन्द प्रदान करते हैं। कालत्रय, देवत्रय, क्रियात्रय तथा विष्णु आदि जिनमें विद्यमान हैं, उन पितामह को प्रणाम है। इन्द्र-चन्द्र-हरि-यक्ष-रक्ष-वायु आदि जिनका स्तव करते हैं तथा जो अव्यक्त होकर भी व्यक्तकारी हैं, उनके चरणों में प्रणाम है। रुरु असुर की इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्मा वरोद्यत हो गये।।१७-१९।।

ब्रह्मोवाच

याच वत्स वरं मह्यमसुराधिपते शुभम्। ददामि सप्तलोकानां त्वं प्रभुरजरोऽक्षयः ॥२०॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—तुम वर माँगो। हे असुराधिपते! तुम सातों लोकों के अधीश्वर होकर अक्षय-अजर हो जाओ।।२०।।

एवं तु भगवाँस्तेन कस्मिंस्तिष्ठामि सत्तम। मयान्तरपाताले तु भक्षणाद् विनिवेशितः ॥२१॥
स च देव्या मुखालोकहृष्टः किञ्चिन्निरीक्षते। शम्भुना च तथा उक्त इयमेनं वधिष्यति ॥२२॥
तथा चोक्ते पुनः शंका उज्झिता सुरसत्तम। स च अवान्तरं गत्वा पातालं चक्रे ह्यदानवः ॥२३॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वकामफलप्रदम्। सर्वर्तुकगुणोपेतं सर्वरत्नविभूषितम् ॥२४॥
तत्रस्थस्य ततस्तस्य कालनेमिसुतादयः। आगत्य प्रीतिभावन्तु भुवनमिष्टदर्शनम् ॥२५॥
हाटकेश्वरदेवस्य यदा पूजा निवर्त्तिता। तदा तेन प्रतिज्ञातं मम साहाय्यतां भवान् ॥२६॥

तदनन्तर रुरु ने भगवान् ब्रह्मा से पूछा—भगवन्! मेरा स्थान कहाँ होगा? तब ब्रह्मा ने उसके लिये पातालपुरी का स्थान निश्चित किया। दैत्यपति वर पाकर देवी उमा के मुख की ओर देखता रह गया। इस समय भगवान् शम्भु ने कहा कि देवी ही इसका वध करेंगी। तब मेरी शंका नष्ट हो गयी। तदनन्तर रुरु पातालपुरी चला गया। वह प्रसन्न होकर वहाँ गया, जो स्थान सर्वलक्षणयुक्त, सर्वकामप्रद, सर्वरत्न-समन्वित तथा सर्वऋतुयुक्त था। वहाँ किसी भी आवश्यक वस्तु का अभाव नहीं था। जब रुरु वहाँ वास कर रहा था, तब कालनेमि के पुत्रगण हाटकेश्वर भगवान् की नित्य पूजा के लिये वहाँ प्रेमपूर्वक आये। पूजनोपरान्त वे रुरु के प्रेमपूर्वक वार्त्ता करने पर उसके प्रति वशीभूत हो गये तथा उसकी सहायता के लिये वचन भी दे दिया।।२१-२६।।

तथा कालेन महता प्रीत्या दैत्या वशं गताः। ते सर्वे कन्यका दध्यूः कुलजोऽयं महाबलः ॥२७॥
तथा सबलसम्पन्नो जित्वा पृथ्वीं सकाननाम्। सद्वीपां सबलोपेतां सर्वशैलसरोपगाम् ॥२८॥

इसी प्रकार कुछ ही काल में सभी दैत्यगण उसके वश में हो गये। सभी ने उसे महाबली तथा कुलीन देखकर अपनी-अपनी कन्या भी उसे प्रदान कर दी। इस प्रकार से रुरु असुर अधिक बलयुक्त हो गया तथा उसने सागरों सहित समस्त पृथिवी को जीत लिया। सभी द्वीप तथा सभी पर्वतों पर भी विजय प्राप्त कर लिया।।२७-२८।।

देवानां विग्रहं चक्रुस्तेन ते विजिताभवन्। ब्रह्मणो वरदानेन देव्याभावसमुद्भवः ॥२९॥
न जेतुं शक्यते देवैर्ब्रह्माद्यैस्तु पुरन्दरः। तथा स बलवान् मत्त शक्रदेवाँस्तु मामपि ॥३०॥

हे शक्र! इस प्रकार सब पर जय प्राप्त करके वह दैत्य देवगण के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो गया। देवगण उसके साथ युद्ध करके पराजित हो गये। ब्रह्मा के वर से तथा देवी की कृपा से वह दैत्य ब्रह्मा तथा पुरन्दरादि सब पर विजय प्राप्त करके अजेय हो गया। क्रमशः इन्द्रादि देवगण को पराजित करके वह दैत्य मुझ पर भी विजय प्राप्त करने की अभिलाषा करने लगा।।२९-३०।।

प्रजानां वासवो ब्रह्मा यत्राहं सुरसत्तम। त्रिकूटे शैलराजेन्द्रे वयं सत्त्वसमाधिगाः।
तिष्ठामः स्तूयते ब्रह्मा शक्रचन्द्रादिभिस्तथा ॥३१॥

उस समय इन्द्र-चन्द्र-ब्रह्मा प्रभृति देवगण मिलकर त्रिकूट पर्वत पर उपस्थित हो गये (जहाँ मैं समाधिस्थ था)। वहाँ सभी मिलकर मेरी स्तुति करने लगे।।३१।।

देवा ऊचुः

नमः पंकजनेत्राय विष्णवे जिष्णवे नमः। नमो देवातिदेवाय देवतारिहने नमः ॥३२॥
नमस्त्वाश्रमधर्माय विघ्नहन्ताय वै नमः। नमः सर्वसमर्थाय सर्वधर्मरताय च ॥३३॥

देवदानवयक्षाणां त्वं रक्षापालकः प्रभो। अस्माकं त्वं गतिर्दैव रुरुणा त्रासिता वयम् ॥३४॥

देवगण कहते हैं—हे विष्णो! हे कमलनयन! हे जिष्णो! देवाधिदेव! आप देवगण के भी पूज्य है। आपको प्रणाम है। आप आश्रमधर्म के विघ्नहर्त्ता हैं, सर्वसमर्थ तथा सर्वधर्मरत हैं। आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप देव, दानव, यक्ष, रक्ष प्रभृति सभी का पालन करने वाले हैं। हम रुरु दैत्य के भय से भीत हो गये हैं। आपके विना हमारी गति नहीं है।।३२-३४।।

त्राता नस्त्वं एको मज्जमानान्महोदधौ। रुरुसागरघोरेऽस्मिन् दैत्यग्राहे महाजले ॥३५॥
इषु चक्रासिमकरे त्वं पोतो भव अच्युत। एवं यावत्समस्तानामभयेदं समुद्यतः।
तावत् स दनुराजेन्द्रस्तत्रैव सहसागतः ॥३६॥
तथा स युध्यमानस्तु मया च सह वासव। सर्वदेवैः समारब्धो योधितुं दनुपुङ्गवः ॥३७॥

हम सभी (संकटरूपी) महासमुद्र में डूब रहे हैं। हमारी रक्षा करें। हमारे लिये यह दैत्य महासमुद्र के समान है। अन्य दैत्य गण इस (विपत्तिरूपी) समुद्र में नक्र के समान हैं (ग्राह के समान हैं)। उनके बाण-चक्र-खड्ग इत्यादि अस्त्र मकर के समान हैं। अब आप जहाज बनकर हमारी रक्षा करिये। हे इन्द्र! देवगण की इस स्तुति से प्रसन्न होकर जैसे ही मैं उनको अभय देने के लिये उद्यत हो ही रहा था कि उसी समय वह दैत्य हठात् वहाँ उपस्थित होकर मुझसे युद्ध करने लगा। तब सभी देवगण मेरी सहायता के लिये दानव से युद्ध करने लगे।।३५-३७।।

तथा ते बलसम्पन्ना असुरा बलदर्पिताः। हताश्चक्रासिशारङ्गैः निपतन्ति महोदधौ ॥३८॥
तथाऽन्ये भिद्यमानास्तु गता पारं तथा परे। प्रविष्टाश्चैव पातालं केचिन्नष्टा रसातलम् ॥३९॥

तव मैं भी चक्र-खड्ग तथा शार्ङ्ग धनुष द्वारा उन बल से दर्पित असुरगण को खण्ड-खण्ड करने लगा। इससे असहनीय कष्ट में पड़कर कोई समुद्र में कोई समुद्र तो पार भाग गया। कोई पाताल में तो कोई रसातल में छिप गया।।३८-३९।।

एवं तं दानवं सैन्यं मम चक्राहतं महत्। दृष्ट्वा दैत्यपतिः शक्र महामायां प्रवर्त्तितः ॥४०॥
तेन ते दैत्यमरुता वसुवासवचन्द्रमाः। यमनैर्ऋतिधर्म्माद्याः क्षणमात्रेण निर्ज्जिताः ॥४१॥

हे शक्र! अपनी सेना को मेरे चक्र से आहत होता देखकर तथा छिन्न-भिन्न होते देखकर उस दैत्यपति ने महामाया का विस्तार किया। इससे उसके साथ युद्ध में वसु-इन्द्र-चन्द्र-यम-निर्ऋति-धर्मप्रभृति सभी क्षणमात्र में पराजित हो गये।।४०-४१।।

तथा ब्रह्मा सशक्रश्च बृहस्पतिर्महामतिः। वयं च सहसा याता यत्र देवस्त्रिलोचनः ॥४२॥
स च देव्या सह शक्र एकोऽनेकाऽभवन्मुदा। चित्तं न लक्ष्यते तस्य न च भावो न कारणम् ॥४३॥

हे इन्द्र! इस स्थिति में ब्रह्मा, इन्द्र, बृहस्पतिप्रभृति हम सभी तत्काल देवदेव त्रिलोचन के पास चले गये। हमको देखकर उन्होंने देवी के साथ हठात् अनेक रूप धारण कर लिया; लेकिन हम सब उनके चित्त के इस भाव का कारण नहीं समझ सके कि उन्होंने ऐसा क्यों किया?।।४२-४३।।

स एव शक्तिरूपत्वात् स च ब्रह्मस्वरूपिणः। स च मां शक्रभावेन कारणेव व्यवस्थितः॥४४॥
एवंविधं तदा ज्ञात्वा शिवशक्तिमयं जगत्। मया च सह ब्रह्मेण स्तोतुमारब्ध तद्विधम् ॥४५॥

हे इन्द्र! तदनन्तर यह विचार आया कि वे सर्वशक्तिमान हैं। भिन्न-भिन्न कारण तथा गुणानुसार वे ही ब्रह्मा तथा विष्णुरूप धारण करते हैं। इस प्रकार से सर्वजगत् को शिवशक्तिमय जानकर मैं तथा ब्रह्मा भगवान् की स्तुति करने लगे। ब्रह्मा तथा मैं विष्णु—दोनों ही महेश्वर तथा देवी का पर्यायक्रमेण स्तवन करने लगे।।४४-४५।।

ब्रह्मकेशवावूचतुः

नमस्ते भगवन् देव दिग्वासाः कृत्तिवाससे। तमहं संप्रवक्ष्यामि सा तु सर्वसुखप्रदा ॥४६॥
जय त्वं सर्वमंगल्ये सर्वकारणकारण। श्मशानवासि देवेश निरावासे नमोऽस्तु ते ॥४७॥

हे देवदेव भगवन्! आप कृत्तिवास हैं, दिशायें ही आपका वस्त्र हैं, आप ही जगत् में सर्वसुख का वितरण करने वाले हैं, आपको प्रणाम है। जो सर्वमंगलरूप हैं, सर्वकारण के भी कारण हैं, जो देवेश श्मशानवासी होकर भी निरावास हैं, उनको प्रणाम है।।४६-४७।।

कपालहस्तमीशानं कपालकृतभूषणाम्। सर्वलोकप्रणेतारं सर्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥४८॥
जये भुवनकर्त्तारी त्वं सर्वभुवनाधिपे। कपालमालिनं देवं महाकाल नमोऽस्तु ते ॥४९॥
चन्द्रमूर्ध्नि कृतं नित्यं चर्म्मवासः सदाप्रियम्। भूतभव्यभवं सौम्ये भुवनेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥५०॥

हे ईशान! आपके हाथों में कपाल है। कपाल ही आपका आभूषण है। हे देवि! आप सबकी प्राणरूपा हैं। हे देवि! सबकी प्राणरूपा आप हैं, सर्वेश्वरी हैं। भुवनों की सृष्टि करने वाली भुवनेश्वरी हैं (यहाँ शिव की तथा उमा की क्रमशः स्तुति की जा रही है)। हे शिव! आपकी माला ही कपाल है। आप देव महाकाल हैं। चर्मवास आपको प्रिय है (चर्मपरिधान प्रिय है)। आप मस्तक पर स्थित चन्द्र से शोभित हैं। हे देवि! आप भूत-भविष्य-वर्त्तमान में सौम्यरूपा हैं। आपको प्रणाम है।।४८-५०।।

त्वं हि योगात्मिके योगे सर्वयोगप्रदायिके। गजचर्म्मधरं देवं चण्डरावे नमोऽस्तु ते ॥५१॥
त्रिशूलपाणिनं नित्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम्। दिव्ययोगोद्भवे दिव्ये योगेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥५२॥

हे देवि! आप योगरूपा, योगात्मिका तथा सर्वयोगप्रदात्री हैं। हे देव! आप गजचर्मधारी तथा प्रचण्ड शब्द करने वाले हैं। आपको नमस्कार है। हे देव त्रिशूलपाणि! त्रिनेत्रधारी त्रिदशेश्वर! आपको प्रणाम है। हे दिव्य योगोद्भवा योगेश्वरी! आपको प्रणाम है।।५१-५२।।

त्वं हि रौद्री महारौद्री नित्यं रौद्रपराक्रमा। त्रिमूर्तिं च परं देवं त्रिपुरान्त नमोऽस्तु ते ॥५३॥
सर्वेश्वरं सर्वगतं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम्। त्वं च रुद्रात्मिके देवी रुद्रेश्वरी नमोऽस्तु ते ॥५४॥
जय देवि सुरश्रेष्ठे त्वं सर्वसुरपूजिते। सर्वत्रावस्थितं शान्तं सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते ॥५५॥

हे देवि! आप ही रौद्री, महारौद्री तथा रौद्रपराक्रम हैं। हे देव त्रिपुरान्तक! आप त्रिमूर्तिधारी परमदेव हैं। आपको प्रणाम है। आप सर्वज्ञ, सभी ओर मुँह वाले, सर्वगत, सर्वेश्वर हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! आप रुद्रात्मिका, रुद्रेश्वरी नामधारी हैं। हे सर्वदेवश्रेष्ठा! आपको सभी प्रणाम करते हैं। हे देवि! आप सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। सभी आपका पूजन करते हैं। हे देव! आप सर्वत्र स्थित, शान्त, सर्वव्यापी हैं। आप सर्वमय हैं। आपको प्रणाम है।।५३-५५।।

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः। सुराणामधिपे देवि सुरेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥५६॥
जय विद्यात्मिके विद्ये विद्याभरणभूषिते। यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥५७॥
स्थूलसूक्ष्मविभागेन व्याप्तं येन चराचरम्। सर्वविद्याप्रदातारि विद्येश्वरि नमोऽस्तु ते ॥५८॥

आप ही सर्व हैं, जिसमें सर्व है तथा जिससे सर्व है, आपको प्रणाम है। हे देवी सुरेश्वरि! सुरगण से नमस्कृता, विद्यात्मिका, विद्यारूपी भूषणों से भूषिता आपकी जय हो। हे देव! हे सर्वमय देव! हे सर्वात्मने! आपको नमस्कार है। हे देवि! स्थूल-सूक्ष्म विभाग से आप सचराचर में व्याप्त हैं। हे सर्वविद्याप्रदात्री! हे विद्येश्वरि! आपको प्रणाम है।।५६-५८।।

त्रिदशैस्त्वं स्तुता दिव्ये त्वं त्रिलोचनवासिनी। अनादिमादिमं रुद्रं व्यक्तातीतं नमो नमः ॥५९॥
अनन्तं शाश्वतं विश्वं ध्रुवं नित्यमुमापतिम्। त्रिशूलपाणिस्त्वं देवि गणाध्यक्षे नमोऽस्तु ते ॥६०॥

हे देवि! आप त्रिदशवन्दिता, दिव्या, त्रिलोचनाङ्कवासिनी हैं। हे देव! आप अनादि आदिम रुद्र हैं, आपका रूप व्यक्तातीत है (व्यक्त नहीं हो सकता)। आपको प्रणाम है। हे उमापति! आप अनन्त, शाश्वत, विश्वरूप तथा ध्रुव हैं। हे देवि! आप त्रिशूलपाणि, गणाध्यक्षा हैं। आपको प्रणाम है।।५९-६०।।

श्रीकण्ठं श्रीधरं श्रीशं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते। विद्यामयी तनुर्यस्य विद्यातीतं च संस्थितम् ॥६१॥
गणानां नायिका त्वं हि गणेश्वरी नमोऽस्तु ते। त्वं हि दुर्गे महावीर्य्ये दुर्गे दुर्गपराक्रमे।
सकलो निष्कलश्चैव कलातीत नमोऽस्तु ते ॥६२॥
योगाधिपो योगगम्यो योगात्मा योगसम्भवः। रमसे देवि दुर्गेषु दुर्गेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥६३॥
त्वं चण्डा त्वं प्रचण्डा च त्वं ब्रह्माण्डविदारिणी। महायोगधरं नित्यं योगेश्वर नमोऽस्तु ते ॥६४॥

हे श्रीकण्ठ, श्रीधर, नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। हे देवि! आपकी देह विद्यामयी है। आप सर्वविद्यातीत हैं। हे देवि! आप सर्वभूतमय तथा कृपामयी एवं गणनायिका गणेश्वरी हो। आपको प्रणाम है। आप दुर्गा, महावीर्या, दुर्गे-दुर्गपराक्रमा हैं, सकल-निष्कल तथा सर्वकलातीत हैं। हे देव! आप योगीश, योगसम्भव तथा योगगम्य हैं, योगस्थित हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! आप दुर्गेश्वरी, सकल दुर्गचारिणी हैं। आप प्रचण्डा, चण्डा तथा ब्रह्माण्डनाशिनी हैं। हे देव! आप महायोगधर, नित्य योगेश्वर हैं। आपको प्रणाम है।।६१-६४।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म प्रख्यातं भुवनत्रये। चण्डरूपा महाविद्या चण्डेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥६५॥
त्वं देवी उग्रसञ्चारी त्वमुग्रव्रतधारिणी। तस्यार्धन्तु शिवो नित्यं सदाशिव नमोऽस्तु ते ॥६६॥

हे देव! आप ही भुवनत्रय में विख्यात 'ओम्' एकाक्षर ब्रह्म हैं। हे देवि! आप चण्डरूपा, महाविद्या, चण्डेश्वरी हैं, आपको प्रणाम है। हे देवि! आप उग्रसंचारी उग्रशूलधारिणी उग्रव्रतधारिणी हैं। हे शिव! आप अर्द्ध तनु वाले हैं (अर्द्धनारीश्वर हैं)। हे सदाशिव! आपको प्रणाम है।।६५-६६।।

अर्धमाना परा या तु तस्मार्धस्य परापरम्। त्वमुग्रशूलहस्ता च उग्रेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥६७॥
त्वं हि क्रोधात्मिके देवि क्रोधभावेन संस्थिता। परात्परतरं शान्तं शांतातीत नमोऽस्तु ते ॥६८॥
अकारोकारमूर्धश्च मकारो बिन्दुरेव च। दानवानां वधार्थाय क्रोधेश्वरी नमोऽस्तु ते ॥६९॥
त्वं हि नारायणी देवी कौमारी ब्रह्मचारिणी। निर्वाणं परमातीतं नित्यातीत नमोऽस्तु ते ॥७०॥

हे देवि! आप क्रोधात्मिका, क्रोधभाव से अवस्थिता, सर्वपरात्परा हैं। हे देवि! आप शान्ता-शान्त्यतीता हैं। आप एकाक्षर ब्रह्मरूप से स्थिता हैं। आप अकार उकार के ऊर्ध्व मकार बिन्दुरूपा हैं। हे दानववधकारिणि! हे क्रोधेश्वरि! आप ही नारायणी-कौमारी-ब्रह्मचारिणी हैं। आपको प्रणाम है। हे देव! आप परमातीत, निर्वाण तथा नित्य अतीत हैं। आपको प्रणाम है।।६७-७०।।

चित्तवेत्ता तथा चित्तं वेद्यो निश्चित्यकस्तथा। सर्वं मन्त्रमयैर्दिव्यैः स्तूयसे त्वं नमोऽस्तु ते ॥७१॥
त्वं जया विजया नित्या अजिता चापराजिता। असच्चित्तं सचित्तञ्च चित्तातीत नमोऽस्तु ते ॥७२॥
बालार्कशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। त्वं सिद्धिः साधकानान्तु सिद्धेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥७३॥

हे देव! आप चित्तरूपा हैं। चित्तवेत्ता होकर भी चित्तहीन तथा चित्तगत भी हैं। हे देवि! आप सर्वमन्त्र-पद से स्तुता हैं। आप ही गो, विजया, जया, अजिता, अपराजिता हैं। आप सदसच्चित्त होकर भी (सद्-असद्) सर्वचित्तातीत हो। बालार्क के सौ भाग शतधा परिकल्पित हैं। आप साधकों की सिद्धि हैं। हे सिद्धेश्वरि! आपको नमस्कार है।।७१-७३।।

द्युतिर्दीप्तिः कान्तिश्च कीर्त्तिः श्रद्धा त्वमेव च। त्वमनौपम्यभासश्च शिवः शान्त नमोऽस्तु ते ॥७४॥

आप ही द्युति-दीप्ति-कान्ति-कीर्ति तथा श्रद्धा हैं। हे शिव! आप शान्तरूपेण शुभाषित हैं (कहे गये हैं)। आप अनुपम हैं। आपको प्रणाम है।।७४।।

अनन्तं शाश्वतं विश्वं देहस्थं देहवर्जितम्। मेधा सरस्वती त्वं हि त्वं श्रीर्देवि नमोऽस्तु ते ॥७५॥
त्वं हि वृष्टिः स्वयं देवि त्वं सृष्टिश्च प्रजापतिः। हृदिस्थं सर्वभूतेषु व्योमस्थन्तु नमोऽस्तु ते ॥७६॥

हे शिव! यद्यपि अनन्त शाश्वत विश्व आपकी देह में है, तथापि आप हैं—देहरहिता। हे देवि! आप मेधा, लक्ष्मी तथा देवी सरस्वती हैं। आप वृष्टि, सृष्टि तथा देवि हैं। हे शिवे! आप प्रजापति हैं, हे शिव! आप सब भूतसमूह के हृदय में स्थित होकर व्योमस्थ हैं। आपको नमस्कार है।।७६-७६।।

अग्राह्यमिन्द्रियैर्वापि सर्ववर्णविवर्जितम्। त्वं वणिक्कृषिकर्माणि त्वं सीता च नमोऽस्तु ते ॥७७॥

आप इन्द्रियों से अग्राह्य हैं, सर्ववर्ण-विवर्जित हैं। हे देवि! आप ही कृषि-वाणिज्य हैं। आप सीता हैं। आपको नमस्कार है।।७७।।

धरणी धारणी त्वं च त्वं वेला सागरेषु च। स्वतेजोगूढमात्मानं गुहावास नमोऽस्तु ते ॥७८॥
गूढातीतश्च गूढात्मा गूढानां गूढगोचरम्। त्वं दिशो विदिशश्चैव त्वं सन्ध्या च नमोऽस्तु ते ॥७९॥

हे देवि! आप ही धरणी हैं तथा उसे धारण करने वाली भी हैं। हे देव! आप ही वेला तथा सागर भी हैं। आपका तेज गूढ़-अतिगूढ़ है। आत्मा गुहा में स्थित है। हे देव! आप गूढातीत हैं तथापि गूढ जनों को गोचर भी हैं। हे देवि! आप ही दिक्-विदिक् हैं। आप ही नमस्कृता सन्ध्या हैं।।७८-७९।।

त्वं मातृका च देवेशि स्वरवर्णविभूषिता। गुहाकासप्रदा नित्यं पूजार्थार्थं नमोऽस्तु ते ॥८०॥
महात्मानं महादेवं महामाया परापरम्। सर्वशास्त्रेषु वेदेषु गीयसे त्वं नमोऽस्तु ते ॥८१॥

हे देवि! आप मातृका हैं। आप स्वर-वर्णभूषिता हैं। हे गूढ़ात्मन् महादेव! गुहा आपका नित्य स्थान है। नित्य पूजार्थ आपको प्रणाम है। हे महादेव! आप महात्मा हैं। आप महामाया के अतीत हैं। यह सभी शास्त्रों तथा वेदों का गायन है (कथन है)।।८०-८१।।

त्वं गायत्री सदा देवी वेदमाता स्वयंभुवा। महाज्ञानपरा नित्यं ज्ञानगम्य नमोऽस्तु ते ॥८२॥
ईशानमीश्वरं ब्रह्म सदाशिवाशिवं तथा। देवर्षिपितृभिर्नित्यं स्तूयसे त्वं नमोऽस्तु ते ॥८३॥

हे देवि! आप गायत्री, स्वयम्भुवा वेदमाता हैं। आप महाज्ञानमात्र से गम्य, परा, नित्य हैं। आपको प्रणाम है। हे शिव! सदाशिव आप ईशान-ईश्वर-ब्रह्म हैं। देवर्षि, पितर, देवता नित्य आपका स्तवन करते हैं। आपको प्रणाम है।।८२-८३।।

पद्मासना चतुर्वक्त्रा अक्षपाणिश्चतुर्भुजा। पञ्चानां परतो नित्यं निरालम्ब नमोऽस्तु ते ॥८४॥

हे चतुर्भुजे देवि! आपकी जय हो। आप पद्मासना हैं। आपके हाथों में अक्षमाला है। आप चतुरानना भी हैं। आप पञ्चभूत-समूह से अतीत हैं। आप नित्य निरालम्ब हैं। आपको प्रणाम है।।८४।।

सद्यो वा अघोरश्च तत्पुरुषेशानमेव च। हंसयानसमारूढा त्वं ब्रह्माणी नमोऽस्तु ते ॥८५॥
त्रिनेत्रा शूलहस्ता च जटामुकुटधारिणी। पञ्चब्रह्मकलातीत षष्ठब्रह्म नमोऽस्तु ते ॥८६॥

हे देव! आप अघोर हैं। आप सद्य-वाम-पुरुष तथा ईशान हैं। आप हंस के आसन पर समारूढ़ा हैं। आप ब्रह्माणी हैं। आपको प्रणाम है। आप त्रिनेत्रा, त्रिशूलहस्ता, जटामुकुटधारिणी हैं। हे शिव! पञ्चब्रह्मकला से अतीत आप षष्ठ ब्रह्ममय हैं। आपको प्रणाम है।।८५-८६।।

कालः कालाग्निरुद्रश्च आदित्योदयमेव च। वृषस्कन्धसमारूढा त्वं रुद्राणी नमोऽस्तु ते ॥८७॥
त्रिजटा बालरूपा च शक्तिहस्तारुणा स्वरा। पञ्चधावस्थिता नित्यं पञ्चावरणं नमोऽस्तु ते ॥८८॥

हे काल! हे कालाग्निरुद्र! आप ही में आदित्यादि ग्रहगण हैं। हे रुद्राणि! आप वृषभस्कन्ध पर आसीना हैं। आपको प्रणाम है। शक्ति हस्तारुणा, स्वरा, त्रिजटा एवं बालरूपिणी हैं। हे देव! पञ्च आवरण से आप नित्य आच्छादित हैं। आपको प्रणाम है।।८७-८८।।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। मयूरासनमारूढा कौमारी त्वं नमोऽस्तु ते ॥८९॥
पद्मचक्रगदाहस्ता पीताम्बरविभूषिता। निर्वाणं परमातीतं निरञ्जन नमोऽस्तु ते ॥९०॥

आप क्षिति-जल-तेज-मरुत्-व्योमरूप पञ्चभूत में स्थित हैं। हे कौमारि! आप मयूरासन पर आरूढा हैं; आपको प्रणाम है। आप शंख-चक्र-गदाधारी तथा पीताम्बरविभूषत हैं। हे देव! आप निरंजन परमातीत हैं। आपको प्रणाम है।।८९-९०।।

क्षराक्षरविनिर्मुक्तं स्वरव्यञ्जनवर्जितम्। त्वं गरुडासना देवी वैष्णवी त्वं नमोऽस्तु ते ॥९१॥

हे देवी! गरुड़ासना! आप क्षर-अक्षर-विनिर्मुक्त, स्वर-व्यञ्जन वर्जित हैं। हे देवी वैष्णवी आपको नमस्कार है।।९१।।

रक्तनेत्रे सुदंष्ट्रे च कालरूपे भयङ्करे। कला कलङ्करहितं निष्कलंक नमोऽस्तु ते ॥९२॥
आकृतिं नैव जानामि गतिमुत्पत्तिमेव च। मेघवर्णे महाघोरे त्वं वाराहि नमोऽस्तु ते ॥९३॥

हे रक्तनेत्रा, रक्तदंष्ट्रा, भयङ्करी, कालरूपा! जय जय निष्कलङ्के! कलाकलंकरहिते! आपको प्रणाम है। आपकी आकृति, गति उत्पत्ति कोई नहीं जानता। हे मेघवर्णे, महाघोरे, आप वाराही हैं। आपको नमस्कार है।।९२-९३।।

वज्रपाणि सहस्राक्षे छत्रध्वजमनोरमे। स्वयम्भुवं महात्मानं महादेव नमोऽस्तु ते ॥९४॥
भावैर्बन्धयसे विश्वं भावैर्मोक्षयसे पुनः। ऐरावतसमारूढे त्वमिन्द्राणि नमोऽस्तु ते ॥९५॥

हे छत्रध्वज से मनोरम, सहस्राक्ष, वज्रपाणि, स्वयम्भू, महात्मन् महादेव! आपकी जय हो। आपको प्रणाम है। इस विश्व का बन्ध-मोक्ष आपमें ही लयीभूत हो जाता है। हे देवि! आप ऐरावत पर आसीन इन्द्राणी हैं। आपको प्रणाम है।।९४-९५।।

त्वं निर्मांसे महादेहे मांसौदनबलिप्रिये। स्वभावभावमात्मानं भवोद्भव नमोऽस्तु ते ॥९६॥
यो भवः सम्भवश्चैव भयं चाभयमेव च। कपालखट्वाङ्गकरे त्वं चामुण्डे नमोऽस्तु ते ॥९७॥

हे देवि! आप निर्मांसा, महादेहा, मांसबलिप्रिया हैं। हे शिव! आप स्वभावभावस्वरूप आत्मा आप है। आप ही भाव तथा भवोद्भाव हैं। भय तथा अभय देने वाले आप ही भवसम्भव हैं। हे देवि! आप कपाल-खट्वाङ्गधारिणी चामुण्डारूपा हैं। आपको प्रणाम है।।९६-९७।।

त्वमेका सप्तधा देवि बहुधा च विराजसे। भावयेत् प्रणिधानेन योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥९८॥

हे देवि! आप एक होकर भी सप्तधा, एकरूपा, बहुरूपा विराजित हैं। हे भव! ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो आपके गुणों का वर्णन कर सके। आप जो भी हैं, आपको भक्तिभरा प्रणाम करता हूँ। हे देवेश्वरि! भगवान् शिव के साथ ही आपका स्तवन कर रहा हूँ।।९८।।

स्तवोऽयं तव देवेशि सशिवाय महात्मने। तोषणीया च त्वं देवि सर्वासुरनिबर्हणि॥९९॥
घण्टानिनादशब्देन छत्रध्वजसमाकुले। शार्दूलेन च यानेन शोभसे त्वं नमोऽस्तु ते॥१००॥

हे देवेशि! हम सब शिव के साथ आपकी स्तुति कर रहे हैं। आप प्रसन्न हो जाइये। हे देवि! आप इन दुरन्त सभी असुरों का नाश करिये। हे देवि! आप घोर घण्टानाद तथा छत्र-ध्वजयुक्त होकर सिंहयान पर शोभित हैं। आपको प्रणाम है।।९९-१००।।

क्रमसि त्वं क्षणार्धेण भुवनानि महातले। भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च नमोऽस्तु ते॥१०१॥
त्वमोकार व्यवस्थिता देवि अकारादिविसर्गतः। त्वं स्थिता सर्ववर्णेषु पृथग्रूपे नमोऽस्तु ते॥१०२॥

हे देवि! आप क्रम से क्षणार्ध में ही मर्त्यलोक-भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक में तथा महातल में भ्रमण करती हैं। आप महाबला हैं। आपको प्रणाम है। आप अकार से लेकर विसर्गपर्यन्त सर्ववर्णगता हैं, तथापि आप सभी वर्णों से पृथक् भी हैं।।१०१-१०२।।

त्वं वामाद्या स्वयं देवि शक्तिव्यूहे व्यवस्थिता। विभुराद्या तथैव त्वं महादेवि नमोऽस्तु ते॥१०३॥
त्वं रात्रिस्त्वं दिनं देवि ऋतवो वत्सरानि च। निमेषश्च मुहूर्त्तश्च त्वं संक्रान्तिर्नमोऽस्तु ते॥१०४॥

हे देवि! आप ही आद्याशक्ति, शक्तिव्यूह-व्यवस्थिता हैं। आप ही आद्या तथा विभु हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! आप ही दिवा-रात्रि हैं, आप ही वत्सर तथा ऋतु हैं, आप ही निमेष-मुहूर्त्त तथा संक्रान्ति हैं। आपको प्रणाम है।।१०३-१०४।।

त्वं काली कालरात्रि च कृतान्ती च सुदारुणा। त्वं भीषणी महारौद्री महाकाली नमोऽस्तु ते॥१०५॥

आप काली-कालरात्रि-कृतान्ती-सुदारुणा हैं। आप ही भीषणी, महारौद्री, महाकाली हैं। आपको प्रणाम है।।१०५।।

दक्षयज्ञविघाती त्वं यमशीर्षनिकृन्तनी। त्वं देवि वीरमाता च उग्रकाली नमोऽस्तु ते॥१०६॥
त्वमेव देवि आकाशो त्वं च पातालगोचरा। त्वं स्वर्गे चापवर्गे च मुक्तिदा त्वं नमोऽस्तु ते॥१०७॥

हे दक्षयज्ञविनाशिनी, यमशीर्षनिकृन्तनी देवि! आप वीरमाता तथा उग्रकाली हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! आप आकाश-चारिणी हैं। आप पृथिवी अथवा पातालास्थिता हैं। आप दुर्गा, अपवर्गा तथा मुक्तिदायिनी हैं। आपको प्रणाम है।।१०६-१०७।।

त्वं हि सर्वात्मिका देवि सर्वमूर्त्तिषु संस्थिता। स्थूलसूक्ष्मविभागेन योगिनी त्वं नमोऽस्तु ते॥१०८॥
यं यं पश्याम्यहं देवि स्थावरे जंगमेषु च। तं तं व्याप्तं त्वया सर्वं कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥१०९॥

हे देवि! आप सर्वात्मिका हैं तथा सभी मूर्त्तियों में स्थित हैं। अथवा सभी मूर्त्तिरूपा हैं। हे देवि! आप ही स्थूल-सूक्ष्म विभाग तथा योगिनी हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! जो-जो स्थावर-जंगमादि दृष्टिगोचर होता है, आप कात्यायनी सबमें व्याप्त है। आपको प्रणाम है।।१०८-१०९।।

त्वञ्च शक्तिक्रिया देवि नादबिन्दुकलात्मिका। त्वं शिवा परभावेन ज्ञानशक्तिर्नमोऽस्तु ते॥११०॥
त्वया देवि प्रसन्नाया शिवः प्रत्यक्षतो मम। तथा त्वं रूरूबन्धाय प्रसादं कुरु शांकरि॥१११॥

हे देवि! आप ही शक्ति, क्रिया, नाद-बिन्दु-कालरूपा हैं। आप ही शिवा परात्परा हैं। आप सर्वज्ञानशक्ति हैं। आपको प्रणाम है। हे देवि! प्रसन्न हो जाईये। कृपादृष्टि से हमें देखिये। हे शाङ्करि! हम आपसे रुरु दैत्य का प्राण माँगते हैं।।११०-१११।।

वासवब्रह्मसूर्य्याणां ह्रयमाणे त्रिविष्टपे। दैत्यौघमज्जमानानां त्वं पोता भव शूलिनी ॥११२॥
एवं स्तुतः पुरा शम्भु देवीं तस्य तनौ स्थिताम्।

इन्द्र, ब्रह्मा-सूर्यादि जितने भी देवता हैं, उन सबने अपने अधिकार खो दिये हैं। इन दारुण दैत्यों ने उनको स्थानच्युत कर दिया है। सभी विपत्तिसागर में मग्न हैं। हे सर्वजननि! आप जहाजरूप में इससे पार कराइये। हे शूलधारिणि! आपको प्रणाम है।।११२।।

तुतोष तावुभौ शक्र सह ब्राह्मेण माधवः ॥११३॥
वरं यथेष्टचित्तेन दत्तवान् शंकरः शिवा।

देवगण द्वारा इस प्रकार से शम्भु तथा उनकी अर्द्धाङ्गिनी देवी का स्तव करने पर वे दोनों सन्तुष्ट हो गये तथा उनको इच्छित वर प्रदान किया। शम्भु तथा उमा ने इन्द्र तथा ब्रह्मा के साथ विष्णु को सन्तुष्ट किया।।११३।।

इत्येवं देवदेव्यायाः ब्रह्माद्यैः पठितं स्तवम् ॥११४॥
यथेष्टफलकामानां पूरकं श्रद्धयान्वितम्। चिन्तितं पठिताधीतं श्रुतं लेखकृतञ्च वा।
ददाति सर्वकामानि वाङ्मनःकायबुद्धिजान् ॥११५॥

जो कोई ब्रह्मादि देवताओं द्वारा पठित इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसे यथेष्ट फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसका चिन्तन, अध्ययन, श्रवण तथा लेखनादि करने से भी सर्व अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है। उसे मन, वाणी, शरीर तथा बुद्धि के सभी अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है।।११४-११५।।

आर्त्तानां भवभीतानां शत्रुभिरावृतानपि। करोति परमां रक्षां वनसरिन्नगेषु च ॥११६॥
व्याघ्रसिंहवराहेषु तस्करे चाष्टमीषु च। स्मरणादेव स्तोत्रस्य स्रंशते महदापदा ॥११७॥

जो आर्त्त, सांसारिक भय से भीत, शत्रु से घिरे हुये, अरण्य, नदी; किंवा पर्वतादि स्थान में विपदायुक्त हो जाते हैं, व्याघ्र, सिंह, वराह द्वारा आक्रान्त एवं वन में अथवा दस्यु से दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं, वे इस स्तव का एक बार मात्र स्मरण करते ही सभी विपत्ति से छुटकारा पा जाते हैं।।११६-११७।।

ब्रह्महा गुरुघाती च सुरापः पितृघातकः। पठनान्मुच्यते शक्र अश्वमेधफलं लभेत् ॥११८॥

इति श्रीदेवीपुराणे रूरूवधोपाये देवदेवीस्तवो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मघाती, गुरुघाती, सुरापायी, पितृघाती इत्यादि जितने भी प्रकार के पापी हैं, वे इस स्तव का पाठ करके तत्क्षण पाप से मुक्त हो जाते हैं तथा वे अश्वमेध-फल को प्राप्त करते हैं।।११८।।

त्र्यशीतितम अध्याय समाप्त

●

चतुरशीतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

भगवन् भवतो ख्यातिमरातिक्षयजां कथाम्। सुमनाकृष्टिजननीं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥
कथं स दैत्यराजेन्द्रो महाबलपराक्रमः। अजयः सर्वदेवानां भवान् चावहितो वद ॥२॥

इन्द्र कहते हैं—हे भगवन्! देवी ने किस प्रकार से अरातिकुल का वध किया तथा इससे देवगण का आनन्दवर्द्धन किया? उन्होंने किस प्रकार से देवगण के लिये भी अजेय महाबली पराक्रमी दैत्यपति का नाश किया था? कृपया इसका वर्णन करिये।।१-२।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु ते कथयिष्यामि देव्याः कीर्तिं रूरोर्वधम्। यथा पृष्टं त्वया शक्र तथाहं ते निबोधत ॥३॥
दत्त्वा शक्तिं स्वकोशेभ्यो देवदेवेन वासव। गच्छध्वं सगणाः सर्वे विष्णुब्रह्मपुरन्दराः ॥४॥

भगवान् कहते हैं—हे शक्र! तुम्हारी जिज्ञासा के अनुसार रुरु असुर-सम्बन्धित देवी की कीर्तिकथा को कहता हूँ; सुनो। मैं समस्त वृत्तान्त कहता हूँ। देवदेव महादेव ने हमारे स्तव से सन्तुष्ट होकर अपने शरीर से शक्ति प्रदान करके हमलोगों से कहा—हे ब्रह्मादि देवगण! तुमलोग यथास्थान जाओ। विष्णु-ब्रह्मा-इन्द्र आदि सभी जाओ।।३-४।।

तदादेशाद् वयं सर्वे गता यत्रासुराधिपः। तथा तेन जितास्तस्मात् पुनस्तत्रैव आगताः ॥५॥
स च क्रोधसमाविष्टः शम्भुं घाताय आगतः। तं दृष्ट्वा सहसा शम्भुर्गणान् सर्वान् समादिशत् ॥६॥
योधध्वं दानवेन्द्रेण देवानां हितकाम्यया। तथा स गजसंघेन वेष्टमानोऽपि वासव ॥७॥

उनका आदेश प्राप्त करके सभी देवगण वहाँ गये, जहाँ वे पहले दैत्यपति द्वारा पराजित किये गये थे। उनको हारने के पश्चात् पुनः आते देखकर दैत्यराज क्रुद्ध हो गया। वह शम्भु का वध करने की अभिलाषा से वहाँ उपस्थित हो गया। यह देखकर महेश्वर ने अपने प्रमथगणों को आदेश दिया कि तुमलोग देवताओं के हितार्थ दैत्यराज से युद्ध करो। हे वासव! तब प्रमथगण देवताओं के साथ मिलकर दैत्यों से युद्धरत हो गये।।५-७।।

निर्जित्य सहसा देवान् शिवोपरि व्यवस्थितः। एतस्मिन्नन्तरे देव रूपं कृत्वा तु भैरवम्।
किल विध्वंसयिष्यति न च भीतः प्रहर्षितः ॥८॥
ततस्तस्याहवं घोरं सह देवेन शम्भुना। सञ्जातं सह देवानां दानवानां भयङ्करम् ॥९॥

लेकिन दैत्यराज ने क्षणमात्र में उन सबको पराजित कर दिया और महेश्वर की ओर दौड़ पड़ा। तब यह देखकर महादेव ने भैरवमूर्त्ति धारण कर लिया और दैत्यराज से कहा—हे दुरात्मन्! अभी मैं तुम्हारा विनाश साधन कर देता हूँ। इतना हर्षित मत हो। तब महादेव युद्धप्रवृत्त हो गये। दोनों के बीच तुमुल संग्राम होने लगा। यह संग्राम देखकर देवता तथा दैत्य भयभीत हो गये।।८-९।।

कथञ्चित् सुप्रयत्नेन वीर्यवन्तश्च वासव। छिन्नं तस्य तदा कण्ठं धारासृग्भूतलं गता।
असंख्या रुधिरास्तत्र निर्गताः काश्यपीतलात्। भूतार्थं भूतिरूर्ध्वन्तु कवचिनः सोत्तरच्छदाः ॥१०॥
सुरक्तरागपट्टैस्तु आपीडितोऽपि ताडिताः। विकाशोद्यता निस्त्रिंशास्तडिद्धस्ता सखेटकाः ॥११॥
आयामितशिरोत्कम्पविषाणाकरकार्म्मुकाः । प्रभापातालमाकाररथाङ्घ्रिकरभीषणाः ॥१२॥

हे इन्द्र! तब दोनों ने प्रयत्न द्वारा एक-दूसरे पर आघात किया, जिससे उनके कण्ठ से रक्तधारा पृथिवी पर गिरने लगी। महादेव की रक्तधारा पृथिवी पर गिरते ही उससे असंख्य भूतगण प्रकट हो गये, जिनकी संख्या से आकाश ढक गया। उनके अंग पर कवच, रक्तवर्ण उत्तरीय तथा रक्तवर्ण का परिधान था। उनके शिखादेश पर माला थी। सभी के हाथ के निस्त्रिंश विद्युत् के समान चमक रहे थे। किसी के हाथ में खेटक, किसी के हाथ में शृङ्ग का धनुष, किसी के हाथ में रथचक्र था। सब मस्तक संचालित करते-करते युद्धक्षेत्र में आ गये।।१०-१२।।

प्रपीडिताग्रसंवर्त्तक्षुभिताम्बररागिणः । प्रदेशिनी सनासाक्षि वर्त्तितोष्ठद्विजा मता ॥१३॥
वैजयन्तीधराः रौद्राः परिघशक्तिपाणयः । ज्वलन्ताग्निनभाकारपट्टिशोद्यतशक्तिभृत् ॥१४॥
कटङ्कटकराः केचित् पाशाङ्कुशकरास्तथा । भल्लीकर्णीकचन्द्रार्धकुठारकरभासुराः ॥१५॥
मुञ्चन्त्यस्त्रमहौघानि बलान्ते बलदर्पिताः । भयव्रीडोज्झितमनाः शौर्यवीर्यबलान्विताः ॥१६॥

उनका दु:सह तेज इतना अधिक था कि मानो वह सूर्य को भी म्लान करने लगा। आकाशस्थ ग्रहों को भी वह तेज क्षुभित करने लगा। किसी की नाक अत्यन्त दीर्घ थी। किसी के नेत्र बहुत बड़े थे। किसी भी दन्तपंक्ति ओठों से बाहर झलक रही थी। उन सबमें से कोई पताका, कोई परिख धारण किये था। इसी प्रकार से कोई-कोई हाथों में अग्नि के समान ज्वलन्त शक्ति, पट्टिश, कङ्कटक, पाश, अंकुश, माला, कर्णिका, अर्द्धचन्द्र, कुठार इत्यादि अस्त्र-शस्त्र धारण करके बलदर्पयुक्त हो युद्धक्षेत्र में आकर शस्त्रचालन करने लगे। वे सभी शौर्य-वीर्ययुक्त थे।।१३-१६।।

केचित् स्यन्दनमारूढा मृगराजस्थिताः परे । गजवाजिस्था ऋक्षस्था पदस्थामोघवीर्यवः ॥१७॥
लक्षकोटिविभागैश्च वेष्टितस्तैर्महाबलैः । लिह्यन्ति भेदमायान्ति निवर्त्तन्ते शिवायुधैः ॥१८॥

उनमें से कोई रथ पर, कोई-कोई सिंह, गज, अश्व, भालू पर सवार था। कोई पैदल ही युद्ध कर रहा था। इस प्रकार लाखों करोड़ों महाबली प्रमथगण ने दैत्यराज को घेर लिया। लेकिन असुरों की बाणवर्षा से उनके अंग छिन्न-भिन्न होने लगे।।१७-१८।।

विशीर्यन्तोऽपि बाणौघैः सन्मुखं प्रवहन्ति च । रक्तमेदेन गोः पूर्णा तेषां कोशोद्भवेन च ॥१९॥
ततो ब्रह्मादयो देवा भयं जग्मुः सवासवाः । यदि स्यान्निर्जितो देवः क्षयः सर्वदिवौकसाम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्र ब्रह्मा चिन्तयते क्रियाः । स्त्रीरूपधारिणो भूत्वा सहायत्वं महेश्वरे ॥२१॥

दैत्यराज के अनवरत शराघात के कारण प्रमथगणों के अंगों से रक्तप्रवाह होने लगा। यह रक्तधारा क्रमश: पृथिवी को प्लावित करने लगी। यह देखकर ब्रह्मा आदि देवता इन्द्र के साथ भयभीत हो गये तथा यह सोचने लगे कि यदि इस युद्ध में महेश्वर की पराजय हो जाती है, तब समस्त देवताओं का सर्वनाश हो जायेगा। हे इन्द्र! तब ब्रह्मा ने यह निश्चय किया कि मैं स्त्रीरूप धारण करके युद्ध में महेश्वर की सहायता करूँगा।।१९-२१।।

क्षिप्रं कुर्युः स्वकार्येदं एवं विश्वेश्वरे रणे । तत्रोत्पादितवान् ब्रह्मा स्वशक्तिं किरणोज्ज्वलाम् ।
कमण्डलुकरां देवीं शरासनकरां तथा ॥२२॥
एकैकां कोटिरूपेण सर्वायुधधरां स्थिता । निघ्नन्ति न च हन्यन्ते पातयन्ति सहस्रशः ॥२३॥
ब्रह्मरूपधरां किन्तु ललनाकारविग्रहाम् । हंसस्यन्दनमारूढां स्वकीयायुधधारिणीम् ॥२४॥
तर्ज्जयन्ती महौजेन दानवानां भयङ्करी । तस्य घोरानि कर्माणि दृष्ट्वा स विस्मयन् शिवः ॥२५॥

यह सोचते ही उन्होंने तत्क्षण अपनी शक्ति की सृष्टि की। वह समुज्वल वर्ण थी। उसके एक हाथ में कमण्डलु तथा अन्य हाथ में शरासन था। उन्होंने एकाकिनी होकर भी कोटि-कोटि मूर्त्ति धारण किया। वे एक बार में ही विविध अस्त्र दैत्य पर छोड़ने लगी। वे ब्रह्मा के समान रूप वाली होकर भी स्त्रीमूर्त्ति थीं। वे हंस पर बैठकर अपने आयुधों के साथ दानव सेना के प्रति तर्जन-गर्जन करने लगी। उनका तर्जन-गर्जन घोर था। उनके घोर कर्म को देखकर शिव भी विस्मयान्वित हो गये।।२२-२५।।

का पुनः स्रष्टा सुस्नेहा सदा ते प्रतिपक्षजित् । अस्या शक्तिद्वितीयायां सृजामि अपराजिताम् ॥२६॥

इति श्रीदेवीपुराणे रूरूवधे ब्रह्माण्युत्पत्तिर्नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः

इसके पश्चात् शत्रु-विनाशार्थ ब्रह्मा की यह सृष्टि देखकर उन्होंने इनकी द्वितीया अपराजिता शक्ति की स्वयं सृष्टि करने का निश्चय किया।।२६।।

चतुरशीतितम अध्याय समाप्त

●

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

भगवानुवाच

तथा युद्धं समालक्ष्य ब्रह्माणी दनुजैः सह। शंकरेणादि सा शक्तिः ध्याता उत्पत्तिकारणैः ॥१॥
परस्परन्तु संरुध्य युध्यन्ति विजयन्ति च। एवं स्मृत्वा तु स्वां मूर्तिं स चक्रे त्रिदशेश्वरः ॥२॥
ध्यात्वा हृदाम्बुजावस्थां शशांकशतनिर्मलाम्। पीनस्कन्धसमारूढां शूलखट्वाङ्गधारिणीम् ॥३॥
एवं गृहाण छिन्धि एवं रौद्रालापां सुरासुराम्। तां दृष्ट्वा रिपवः सर्वे विद्रुताः भयविह्वलाः ॥४॥

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्माणी के साथ दैत्यों का यह युद्ध देखकर भगवान् शंकर ने अपनी शक्ति की सृष्टि का चिन्तन किया। कुछ क्षणोपरान्त युद्ध में विजयार्थ उन त्रिदशेश्वर ने अपनी शक्तिमूर्त्ति की सृष्टि अपने हृत्कमल से की, जो शत चन्द्रों के समान निर्मल थी। वे सिंह पर आरूढ, हाथों में त्रिशूल तथा खट्वाङ्गधारिणी थी तथा बराबर 'मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो' का शब्द करती जा रही थीं। उनको देखते ही सभी शत्रुगण भयपीड़ित होकर पलायन करने लगे।।१-४।।

षण्मुखेनापि दृष्टेन ध्यात्वात्मस्थमरीचिनी। उत्पादिता महावीर्या शतपत्रसमास्थिता ॥५॥
शक्तिघण्टाधरा भीमा शरशृङ्गारनामिताः। हंसस्वरसमेणैव ध्वनिना पूरयद्दिशः ॥६॥

यह देखकर भगवान षड़ानन (स्कन्द) ने भी अपने ही समान कान्तियुक्त एक शक्ति की सृष्टि की। ये महावीर्ययुता, पद्मासनासीना थीं। इनके एक हाथ में घण्टा तथा दूसरे हाथ में धनुष-बाण था। ये हंस के समान गभीर नाद से दिशाओं को व्याप्त करने लगीं।।५-६।।

चलविद्युन्नवाकारा दैत्यानां पतितां वने। मया शक्र स्वतेजोत्था विसृष्टा कारणेच्छया ॥७॥
द्विजेन्द्रसंस्थिता भीमा केयूरकटकोज्ज्वला। शारङ्गघोरघोषेण शङ्खनादेन भूरिणा ॥८॥
हेलाहुङ्कारशब्देन दानवेन्द्रनिषूदिनी। वैवस्वतेन स्वां मूर्त्तिं श्रुत्वा समुपपादिता ॥९॥

ये आकाशीय विद्युत् के समान दैत्यसेना पर टूट पड़ीं तथा उनका विनाश करने लगीं। हे शक्र! तदनन्तर मैंने भी अपने तेज के द्वारा एक शक्ति की सृष्टि की। वे गरुड़ पर आसीना तथा केयूर-कटक आदि विविध आभूषणों से उज्वला थीं। वे अपने शार्ङ्ग धनुष की टङ्कार कर रही थीं। उनके धनुष की टंकार, शंखनाद तथा गम्भीर सिंहनाद को सुनकर अनेक दैत्यों ने प्राण त्याग दिया। तदनन्तर यमराज ने भी अपने शरीर से एक शक्ति की सृष्टि की।।७-९।।

अभेद्यकर्कशेणैव घोरदण्डेन दंष्ट्रिणा। महामहिषमारूढां पाशदंडायुधोद्यता ॥१०॥
घर्घरिणातिशब्देन प्रलयाम्बुदनिः स्वना। कालजिह्वे च दुष्प्रेक्ष्या क्षयार्चिरिव निर्मला ॥११॥

उनके हाथों में अभेद्य दण्ड तथा पाश था। वे दंष्ट्री (बड़े दाँतों वाली) वृहत्तर महिष पर आसीन थीं। उनके प्रलयसागर के निनादरूप घर्घर शब्द से दिशायें व्याप्त हो गयीं। उनको देखकर दैत्यगण उनको साक्षात् काल की जिह्वा के समान तथा प्रलयाग्नि के समान अनुभव करने लगे।।१०-११।।

शक्रोऽप्येवं स्वकीयार्चितप्तचामीकरप्रभाम्। मत्तद्विरदमारूढां सहस्रनयनोज्ज्वलाम् ॥१२॥
वज्रांकुशकरां देवीं शरासनकरां तथा। एकैक्यं कोटिरूपं तु सर्वायुधधरां स्थिताम् ॥१३॥
निघ्नन्ति न च हन्यन्ति पातयन्ति सहस्रशः। महास्त्रैर्भेदयन्त्याशु दानवानां वरूथिनीम् ॥१४॥

तदनन्तर देवराज इन्द्र ने भी अपने शरीर से एक शक्ति की सृष्टि की। वह इन्द्र के समान कान्तियुक्त, सहस्र नेत्र वाली, हाथों में वज्र-अंकुश तथा शरासनधारिणी थीं। वे मत्त हाथी पर आरोहण करके एक ही बार में हजारों-हजार अस्त्र छोड़ने लगीं और दैत्यसेना को छिन्न-भिन्न करने लगीं।।१२-१४।।

गतागताक्षयं शक्र वेलामम्भोनिधेरिव। प्लावयन्ती च मेदिन्यां तद्वद्दैत्यवरूथिनीम् ॥१५॥
तृप्तास्ता मांसभेदेन न जितो दानवेश्वरः। प्रलम्बासिगदापाणिः परं विस्मयमागताः ॥१६॥
विषादभयशंकार्ता देवदेवपुरोगमाः। स्तुवन्ति ताः सदा शक्र शिवं सर्वा मरीचयः ॥१७॥

हे शक्र! इस प्रकार ये शक्तियाँ दानवों का नाश तो करती जा रहीं थी, लेकिन वे जितने ही दानवों का नाश करती जातीं, दानव सेना उसी प्रकार जैसे सागर की लहर पर लहर आती रहती है, उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत होती जाती थीं। यह पृथिवी मांस तथा मेद से भर गयी; परन्तु दानवराज पर विजय न हो सकी। यह देखकर देवगण विस्मय से भर गये तथा भगवान् शिव की स्तुति करने लगे।।१५-१७।।

पतिता बाहुदण्डा नो चलन्ति दानवा प्रभो। तदा ब्रह्मादयो देवाः परां शंकामुपागता ॥१८॥
स्तुवन्ति देवदेवेशं कालरुद्रं परापरम्। श्रुत्वा वाक्यं तत शम्भुः शक्तीनामच्युतस्य च ॥१९॥
महत्क्रोधं ततोत्पन्नं क्रोधाद्वह्निसमुत्थितः। वह्निज्वाला सुदीप्तास्तु तिर्यगूर्ध्वमधोगताः ॥२०॥
ज्वालाकलापमध्यस्थां सूर्यायुतसमप्रभाम्। कालरुद्रस्य या शक्तीः शिवसाहाय्यतः स्थिताम् ॥२१॥

हे प्रभो! दैत्यपति किसी भी प्रकार से पराजित नहीं हो रहा है। वह पहले की तरह ही युद्ध किये जा रहा है। शम्भुदेव ब्रह्मादि देवगण तथा सभी देवशक्तियों का यह वाक्य सुनकर अत्यन्त क्रोध में भर गये। तदनन्तर उनके ललाट से दारुण अग्निज्वाला निकलकर पार्श्व-ऊर्ध्व-अधः आदि सभी स्थानों में व्याप्त हो गयी। वह अयुत सूर्य के समान थी। उस अग्नि से भगवान् कालरुद्र ने सहायतार्थ (देवसेना के लिये) एक शक्ति की सृष्टि की।।१८-२१।।

अदतीव च जगत्सर्वं कालरात्रिर्भयानना। दंष्ट्राला पिंगलाक्षी तु प्रलयाम्बुदनिस्वना ॥२२॥
वज्रांकुशकरा देवी दण्डासिपाशमुद्यता। गदाशक्तिविहस्ता तु त्रिशूलायुधधारिणी ॥२३॥
तर्ज्जयन्ती दिशः सर्वा देवदेवपुरःस्थिता। उवाच त्वरितां वाणीं किं करोमि सुरेश्वर ॥२४॥

वह शक्ति सहस्रों सूर्य के समान प्रभावान थी। उसका मुख अत्यन्त भयंकर था। मानों तीनों लोकों को वह ग्रसने के लिये उद्यत थी। उसके नेत्र पिङ्गलवर्ण, दाँत बड़े-बड़े थे तथा उसका शब्द प्रलय के समान गम्भीर था। उसके हाथों में गदा-शक्ति-त्रिशूल था। वह तर्जन-गर्जन करती हुई सभी दिशाओं को निनादित करती-करती देवदेव के पास उपस्थित होकर त्वरित वाणी से कहने लगी—हे देवदेव! सुरेश्वर! मुझे क्या करना है।।२२-२४।।

ततो देवेन सा उक्ता कृष्णेन चापराजिता। यदि मे वत्सला देवि रुरु त्वं हि निपातय ॥२५॥
एवं करोमि देवेश यत्त्वया च सुभाषितम्। सृष्टं च शम्भुना तस्मान्महोदधिसमाशयम् ॥२६॥

भगवान् शम्भु कहते हैं—यदि मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम है, तब तुम रुरु दैत्य का वध करो। (तब भगवान् की आज्ञा सुनकर) देवी ने कहा—आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। तब भगवान् शिव ने एक मधुसमुद्र की सृष्टि की।।२५-२६।।

त्वं च साहसशक्तिभि पीत्वा क्रोधवशं गता। तदा तु दानवी सेना कोटिधा वर्धिता पुनः ॥२७॥
तद्वीर्यहृष्टकाम्यास्ताः भक्ष्यं प्रार्थ्यन्ति कृत्स्नशः। बुभुक्षितास्म देवेश भक्ष्यास्माकं प्रयच्छत ॥२८॥

तदनन्तर भगवान् शिव ने कहा—हे देवि! तुम समस्त शक्तियों के साथ इसका पान करो। उस समय समस्त दानवी सेना करोड़ों की संख्या में वर्द्धित होकर यह देख रही थी। तदनन्तर शक्तिगण ने हर्षित होकर मधुपान किया। तत्पश्चात् भूख मे (पीड़ित) होकर कहा—हे देवेश्वर! हमारे लिये कुछ भक्ष्य पदार्थ भी प्रदान करिये।।२७-२८।।

ततः शिवेन ताः सर्वाः अनिवारिततेजसः। निवेदितं मया तुभ्यं रूरू त्वं हि घातय ॥२९॥
ततः कलकलारावं कृत्वा देवीं सुदारुणम्। दानवीं चतुरङ्गेण पातितान्तु महौजसा ॥३०॥

तव भगवान् महादेव ने उनसे कहा—मैं तुम लोगों के लिये (खाद्य) पशुस्वरूप दैत्यपति रुरु को अर्पित करता हूँ। तुम सब उसके वधार्थ उद्योग करो। तदनन्तर ये देवी अन्य सभी शक्तियों के साथ मिलकर घोर सिंहनाद करके चतुरंग दैत्यसेना पर टूट पड़ीं।।२९-३०।।

ततः परस्परालापं कृत्वा धूर्यमिवाकुलम्। घर्घरारावघोरेण स्यन्दनानां जवस्थिताम् ॥३१॥
वज्रपट्टशिलासङ्घैः स्फालनैः स्ववलिनोत्थिताम्। अक्षणाभिकषोत्पन्नैः क्वणद्भिः पूरितं नभः ॥३२॥
आलोकालोकपर्यन्तं ब्रह्माण्डं स्खलितं पुनः। प्रतिशब्दं महाघोरं श्रवणे कातराकरम् ॥३३॥
जनान् जनस्थितानान्तु नखरैर्निष्ठुरा हताः। चूर्णयन्ति पतन्तीव रुक्ममाणिक्यसञ्चयाः ॥३४॥
सौर्यवर्णाङ्घ्रिपालैस्तु सनाथा भूधरोपमा। भग्नांकुशाः समुत्पत्तिः प्रतिगन्यविरोषिताः ॥३५॥
दुर्दिनं मेघधारैव दन्तिनां शीकरैर्घनैः। न परं नापरं शक्र जनयन्ति जनैषिणः ॥३६॥
आलोकस्थं समुत्सुक्यं व्याहरन्तं परस्परम्। सदा नित्यैवमेकन्तु सान्द्रीभूतोऽमयं बली ॥३७॥

इस समय सभी का समवेत सिंहनाद, तूर्यों का भीषण शब्द, रथसमूह के चलने का शब्द, रथचक्र-रथनेमि तथा रथ के अक्षकर्षण का शब्द तथा कशाघात का शब्द, वज्रपट्टिश तथा शिलाओं के टूटने का शब्द—सब महाशब्द एक में मिलकर दिशाओं तथा आकाश में व्याप्त हो गये। ये सर्व घर्घर शब्द इतने घोरतर थे कि लोगों के कान भी उस समय वधिर-से हो गये। हे इन्द्र! लोकालोक-पर्यन्त यह ब्रह्माण्ड उससे प्रतिध्वनित होने लगा। पर्वतसदृश हाथी अन्य मत्त गजों से युद्धार्थ दौड़ पड़े। उन पर बैठे महावत उनको वश में करने के लिये अंकुशाघात भी करते जा रहे थे। अंकुशाघात से उनके मस्तक के स्वर्ण-चाँदी-माणिक्यनिर्मित आभरण भी खिसक कर भूमि पर गिरने लगे। किसी-किसी महावत का अंकुश तक टूट गया तथापि वह हाथियों को निवृत्त नहीं कर सका। मदमत्त हाथियों की झर रही मदधारा से चारो ओर की भूमि व्याप्त हो गई। योद्धागण यही नहीं समझ पा रहे थे कि कौन अपने पक्ष का है, कौन विपक्षी है? वे दूर थे, वे एक-दूसरे को पुकारने लगे। इस प्रकार दोनों सेना (इतनी युद्धरत थीं) एक प्रकार से एक-दूसरे में मिलित लगने लगी।।३१-३७।।

कपोलपुलितं हेमं रोमार्धतनुकर्कशम्। सुकठोरप्रहारैस्तु निरपेक्षन्तु निष्ठुरम् ॥३८॥
उरसि यत्र कलितं हुङ्कारसहिता रवम्। उच्छूनं तु बलं तन्तु वमन्तं रभसा बलम् ॥३९॥
भग्नवृन्दं करिमिश्रं रथेरुर्ध्वं प्रवर्त्तितम्। भ्रमन्तावर्त्तकुटिलं चलदृष्टिरकातरम् ॥४०॥

कोई-कोई मुह को फाड़-फाड़ कर अट्टाहास करने लगा। किसी के शरीर में रोमांच-सा हो गया और वह कर्कश भावयुक्त हो गया। दोनों दल निरपेक्षता से, निष्ठुरता से एक-दूसरे पर आघात करते जा रहे थे। कोई-कोई किसी शत्रु के वक्ष पर हुंकार करते हुये अस्त्र छोड़ रहा था, किसी का वक्ष शूल से विद्ध था तो किसी के हाथ-पैर भग्न थे। कोई घूर्णमान हो रहा था तो कोई (युद्ध में) चञ्चल दृष्टियुक्त था अर्थात् युद्ध की पीड़ा से कातर था।।३८-४०।।

रक्षन्तमेकमेकं तु सर्वायुधविशारदम्। शिलीमुखैर्बहुदन्तैश्च षष्टिवक्त्रैः सुसंकटम् ॥४१॥
तनुत्राणं सुसंघट्टरणत्कर्णिवराकुलम्। स्फोटं वज्रायुधानाञ्च अरिप्रतिरवाकुलम् ॥४२॥
क्वचित्पतन्ति च गजा दारिताः सुप्रहारिभिः। क्वचित्तुरङ्गगात्राणि भग्नवज्ररथाः क्वचित् ॥४३॥

सभी अस्त्रविद्या-विशारद थे। एक पक्ष वाले आपस में एक-दूसरे की रक्षा विपक्षी से करते जा रहे थे। छोड़े गये बाण वेग से आकर जब कवच से टकराते तब 'झनझन' शब्द से चूर्ण करते अथवा टूटकर गिरते थे। यह 'झनझन' शब्द पर्वतस्थ गुहाओं तक को प्रतिध्वनित करने लगा। दारुण अस्त्राघात से कहीं हाथी, कहीं घोड़े, कहीं रथ इत्यादि छिन्न-भिन्न होने लगे।।४१-४३।।

दंडवज्रगदाशूलशक्तिखट्वांगभेदितम्। गणाधिपेन बलिना क्वचित् परशुसूदितम् ॥४४॥
क्वचित्प्रयान्ति संमोहं कर्कशाहतमस्तकम्। क्वचित्पतन्तमुत्थन्तं दंशिताधरभास्वरम् ॥४५॥
क्वचिन्नमितमातङ्गं ऐरावतद्विजापहम्। क्वचिन्महिषशृङ्गैश्च नागकूटैर्निपातितम् ॥४६॥
वृषशृङ्गैः क्वचित् प्रोक्तं क्वचिच्छिखिसमाहतम्। क्वचिद्वज्रनखैर्भिन्नमुरुगरुडचञ्चुना ॥४७॥
क्वचिद् वृषप्रहारैस्तु विह्वलमवनीगतम्। क्वचिच्छिवाभिर्भक्ष्यान्तः ज्वालाङ्कृतदेहजम् ॥४८॥
क्वचिद् दुर्गन्तु नृणां मन्त्रमालाविभूषितम्। इत्थम्भूतं बलं तेषां शक्तिभिः कुलितायुधम् ॥४९॥

दण्ड-चक्र-गदा-शूल-शक्ति-खट्वाङ्ग प्रभृति अस्त्रों से अनेक का अंग-भंग हो गया था। कहीं पर कोई बलवान सेनापति अपने कुठार का आघात किसी के मस्तक पर कर रहा था तो कहीं स्वयं अन्य के आघात से मूर्च्छित हो रहा था। इसी प्रकार नाना स्थानों में कोई गिर रहा था, कोई गिर कर उठने का प्रयत्न कर रहा था। कोई अधर दंशन कर रहा था। कहीं-कहीं पर ऐरावत के दाँतों के प्रहार से कोई हाथी क्षत-विक्षत हो रहा था। कहीं कोई हाथी महिष के शृङ्ग के आघात से घायल अथवा मृत होकर गिर रहा था। कहीं वृष शृङ्ग से आहत होकर पड़े थे। कहीं मयूर एवं गरुड़ के नखों द्वारा विदीर्ण थे। इस प्रकार से (दैत्य सेना के) हस्तिसमूह नष्ट होने लगे। वृष के प्रहार से कोई योद्धा पृथिवी पर गिरकर छटपटा रहा था। कोई बाणों के आघात से मूर्च्छित था तो कहीं शृङ्गाल उसका भक्षण कर रहे थे। कोई (पीड़ा से) रुदन कर रहा था, कोई (पागल-सा होकर) नाच रहा था। इस प्रकार से देवशक्तिगण दैत्य सेना को विदलित करने लगी।।४४-४९।।

संवर्त्ताम्बुजपत्राढ्यां कृत्वा वीणां सुवर्चसाम्। पिनाकाकारमार्गं च भ्रूलतां भूललाटगाम् ॥५०॥

वे अपने-अपने उज्ज्वल धनुष पर तीखी धार वाले बाण चढ़ाकर अपनी भौं को टेढ़ी करके सभी बाण (असुरसेना पर) छोड़ने लगीं।।५०।।

कुन्तकर्पूरयष्टीभिर्भुशुण्डीहलमुद्गरैः। वत्सदन्तैः कुठारैश्च झषदंशैः सिताम्भरैः ॥५१॥
शलाकैः शिलीमुखैः शूलैः पट्टिशैर्मूसलैर्हलैः। वसुनन्दैः करालैश्च विकरालैः सखेटकैः॥५२॥
वारणैर्विविधाकारैः पाशांकुशमृगाननैः। नाराचैः कनकदण्डैश्च कार्मुकैर्वृक्षपर्वतैः ॥५३॥
शिलालोष्टैः कपालैश्च वज्रशक्तिगदाकुलैः। खट्वाङ्गपरशुपट्टैश्च क्रकचैश्चक्रसर्वगैः ॥५४॥
शस्त्रसंहातसञ्जातं शिखिध्वजसमाकुलम्। आतपत्रानि दीव्यन्ति सायुधस्पंदनानि च ॥५५॥
क्षयानलेव दृश्यन्ते प्रकीर्णस्तु युगक्षये। घोरं प्रवर्त्तितं युद्धं सुराणां भयकारकम् ॥५६॥

कुन्त, कर्पूर, यष्टि, भुसुण्डि, हल, मुद्गर, वत्सदन्त, कुठार, तोमर, सिताम्भर, शलक, शिलिमुख, शूल, पट्टिश, कराल वसुनन्द, विकराल खेटक, विविध आकृति के पाश, अंकुश, मृगानन, नाराच, कंकदण्ड, कार्मुक, वृक्ष, पर्वत, शिला, ढेले, कपाल आदि फेंककर युद्ध किया जा रहा था। वज्र, शक्ति, खट्वाङ्ग, पट्टिश, गदा, क्रकच, चक्र आदि नाना

अस्त्रों से दिङ्मण्डल आच्छादित हो गया। नानावर्णयुक्त पताका-छत्र-स्यन्दनादि के टूटकर गिरने से रणस्थल (नाना वर्णों) से शोभित हो गया। तब यह लग रहा था कि अब युगों का अन्त करने वाला प्रलयकाल आ गया है। यह घोर युद्ध देवताओं में भी भय संचारित कर रहा था।।५१-५६।।

चण्डाग्निधारदलिताश्चण्डघाताः करोत्थिताः। करवालाः पतन्त्याद्यः क्षये च रविरश्मयः ॥५७॥
शक्र चापेन चापानि सदा मण्डलितानि च। गजझङ्कारमुखरां बाणावलिपरिश्चलम् ॥५८॥
कुन्तदारितदेहास्तु सावष्टम्भमयैर्भुजैः। दण्डस्थापि न लक्षन्ति न युध्यन्ति गतासवः ॥५९॥

कोई-कोई प्रचण्ड तलवार के आघात से प्राणत्याग कर गया, किसी पर अन्य द्वारा किये गये आघात से उसका खर-पाश- तलवार भूमि पर पतित था। कहीं मण्डलाकार (पृथिवी पर पड़े) धनुष इन्द्रधनुष जैसे लग रहे थे। कहीं-कहीं पर छोड़े गये बाण झन-झन की आवाज के साथ गिरते जा रहे थे।।५७-५९।।

क्षुरार्धचन्द्रचन्द्रासिविनिवर्तितसकर्कशा। पतिताश्चोत्थाय धावन्ति सलक्षाः सुप्रहारिणः ॥६०॥
छिन्नबाहूकरकण्ठशिरोरुविनिसुस्थिताः। उज्झन्ति शक्तिसङ्घानि कुटिलेक्षणवर्जिता ॥६१॥
द्विधरापि समुत्थन्ति बहवः शौर्यमुज्ज्वलाः। ततोज्झितापि दृश्यन्ति भ्राम्यमाणा व्यवस्थिता ॥६२॥

कहीं-कहीं पर क्षुर, अर्द्धचन्द्र, चन्द्रहास इत्यादि अस्त्रों के खरतर आघात से जो मूर्च्छित थे, कुछ क्षण के उपरान्त पुनः वह उठकर अस्त्र-शस्त्र लेकर विपक्ष की ओर दौड़ पड़ते थे। किसी की बाहु, किसी का कण्ठ, किसी का मस्तक, किसी का वक्षःस्थल छिन्न होने लगा। तथापि उसे जिघांसा लगी ही रही। कोई-कोई मस्तकरहित धड़ वेग से ऊपर उठा, पुनः भूमितल पर गिरने लगा। चलाये जा रहे खरपाश, तलवार आदि विद्युत् की तरह चारो ओर चमक रहे थे। वे झक्-झक् कर रहे थे।।६०-६२।।

आधूय वारुणान्तस्था घनस्थेव तडिल्लता। सम्मुखीकृतसारङ्गकोटिमालोक्यमुद्यताः ॥६३॥
ज्यातलानां रवाश्चण्डा गता भिन्दन्ति रोदसी। तद्वत् शराणि लक्षानि विनिशीर्य द्विधां तनुम् ॥६४॥
पतिताः संविलक्ष्यन्ति छिन्नपक्षेव पर्वताः। प्लवन्तासृक् प्रवाहीणि गन्धं जम्बूनदी यथा ॥६५॥

एक साथ सहस्रों-सहस्रों शरासनों की टङ्कार ध्वनि तथा तल-शब्द मिलित होकर समस्त पृथिवी तथा नभ को व्याप्त कर रहा था। शरसमूह वायुवेग से धावित होकर लक्ष्य पर गिरते जा रहे थे। तत्क्षण अपने लक्ष्य का भेद करके पंख कटे पर्वत के समान भूमि पर गिर रहे थे। चारो ओर रक्तप्रवाह गंगातरंग की तरह बहता जा रहा था।।६३-६५।।

आतपत्रसिताम्भोजकुमुदोत्पलवाहिनी । झषनक्ररथाश्चित्रकरिमकरसमाकुलाम् ॥६६॥
वसुनन्द सुभृत्कायं कृषिकूर्मञ्च सञ्चराम्। भूपृष्ठं प्लावितं सर्वं तेषां कायसमुद्भवैः ॥६७॥
अनेकाकाररूपैस्तु दिक्पालानान्तु मूर्त्तयः। तस्मिन् जाता महाघोराः संहारार्थं शिवेच्छया ॥६८॥
सुग्रीवं कुम्भकर्णञ्च नन्दिञ्चैव महाबलम्। प्राग्निगन्तानि भाषन्तो दिक्पालास्त्वरितागताः ॥६९॥

तदनन्तर महेश्वर भगवान् ने अपने सहायतार्थ अनेक रूपधारी अनेक दिक्पालों की मूर्त्ति की सृष्टि की। उनमें सुग्रीव, नन्दी, कुम्भकर्ण तथा महाबल इत्यादि युद्धार्थ आ गये। वे महाघोर लोग शिवेच्छा से असुरों के संहारार्थ आये थे। ये लोग त्वरित गति से आये थे।।६८-६९।।

तथा दृष्ट्वा तु ते शक्र पूर्वं देवैः पराजिताः। पिङ्गलाख्यं महाघोरं नंदिकं च गजाननम्॥७०॥
भृकुटीमुखं च चत्वारो दक्षिणेन समागता। पूजिता धर्मराजेन सर्वान्तकनिवारणाः ॥७१॥

हे शक्र! उनको देखकर देवगण ने जो पूर्व में पराजित हो गये थे, उनका सत्कार किया। महाघोर पिंगलाक्ष, नन्दिक, गजानन तथा भृकुटीमुख—ये चारो दक्षिण की ओर उपस्थित हो गये। धर्मराज ने अपनी सहायता होने का विचार करके इनका यथोचित सम्मान किया।।७०-७१।।

करालं तालजंघं च कैलाशं च महाबलम्। गोकर्णसहिताः पालाः शोणितासवलोलुपाः ॥७२॥
पश्चिमां दिशमुद्घोष्य आगताः कोटिभिर्वृताः। ते दृष्ट्वा मेघयानेन पूजिता संस्तुताः सदा ॥७३॥

कराल-तालजंघ-कैलास तथा गोकर्णप्रभृति रक्त-मांसलोलुप दिक्पालगण कोटि-कोटि अनुचारों के साथ पश्चिम की ओर उपस्थित हो गये। इनको देखकर मेघवाहन ने यथेष्ट सम्मान-प्रदर्शन किया।।७२-७३।।

दन्तुरं लोहजंघश्च ऊर्ध्वकेशं महामुखम्। उत्तरेणागताः क्रूरा मांसशोणितभोजनाः ॥७४॥
सोमेन पूजितः शक्र आत्मरक्षार्थिना सदा। त्रिलोचनाश्चतुर्वक्त्रा अग्निर्ज्वलिततेजसः ॥७५॥
खट्वांगशूलहस्तास्तु कपालकृतशेखराः। आमर्दकाग्निकालाद्या एकपादादयस्तथा ॥७६॥

हे इन्द्र! दन्तुर, लोहजङ्घ, ऊर्ध्वकेश, महामुखप्रभृति मांस-रक्तभोजी दिक्पाल उत्तर की ओर आये। चन्द्रमा ने अपनी सहायतार्थ उनकी यथेष्ट अभ्यर्थना की। इसके अतिरिक्त त्रिलोचन, चतुर्वक्त्र वाले ज्वलित अग्निवत् तेजस्वी विविधाकृति भूतगण चारो ओर से आकर युद्धक्षेत्र में उपस्थित हो गये। सभी के हाथों में खट्वाङ्ग तथा शूल था। सभी के मस्तक पर अस्थिमाला थी। उनके नाम थे—आमर्दक, अग्निमाल, एकपाद आदि।।७४-७६।।

एवम्भूतगणाश्चान्ये देवीनां परिचारिकाः। चतुर्विंशतियोगिन्यः चतुर्दिक्षु उपस्थिताः ॥७७॥

तदनन्तर देवी की परिचरिकागण २४ योगिनियाँ चारो ओर वहाँ उपस्थित हो गयीं।।७७।।

एवं कोटिविभागैश्च किंकरीभिः समावृताः। किंकरैश्च महाघोरैः रौद्ररूपैः स्वतेजसैः ॥७८॥
एवंविधेस्तदा शक्र रुद्रचित्तोद्भवैर्गृहैः। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं व्याप्तं तैः सचराचरम् ॥७९॥
यथा स्वच्छन्दरूपेण भैरवेण महात्मना। देवानामुपकाराय असुराणां वधाय च ॥८०॥
तथा संक्षेपतः शक्र मया च तव कीर्त्तितम्। विस्तरं ब्रह्मणस्येदं गुहेन कथितं पुरा ॥८१॥
शिवेन शक्र देव्यायाः स्कन्देन अवतारितम् ॥८२॥

इति श्रीदेवीपुराणे रुरुवधे ग्रहोत्पत्तिर्नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः

उनके साथ कोटि-कोटि सहचारी तथा महाघोर रुद्ररूपी किङ्कर भी थे। हे शक्र! इस प्रकार रुद्रचित्त से उत्पन्न ग्रहगण द्वारा ब्रह्माण्ड व्याप्त हो गया। हे शक्र! महात्मा भैरव ने देवगण के उपकारार्थ तथा असुरगण के विनाशार्थ जो उपाय किया था, उसका संक्षेप में वर्णन किया। पूर्व में भगवान् स्कन्द ने ब्रह्मा से इसे विस्तृत रूप से कहा था। इसे महेश्वर ने देवी से तथा देवी ने कार्त्तिकेय से कहा था।।७८-८२।।

पञ्चाशीतितम अध्याय समाप्त

●

षडशीतितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ततो निर्जित्य तैः सर्वैः शिवाज्ञाचारवर्तिभिः। सवाजिवारणरथाः कवचिनः सोच्चरंहसा ॥१॥

ततः सा दानवी सेना भक्षिता तैर्महाबलैः। शक्तिभिस्तु अमोघाभिः शिवतेजोपबृंहितैः ॥२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—तदनन्तर महादेव की आज्ञा के पालक वे सभी प्रमथगण हस्ती, रथ प्रभृति के साथ समस्त दानव-सेना को ग्रास कर गये। सभी शक्तिगण ने भी रुद्रतेज से युक्त होकर तत्क्षण दानव सैन्य का विनाश कर दिया।।१-२।।

ततोऽसौ दानवेन्द्रस्तु प्रविष्टो वसुधातलम्। काञ्चनी च पुरी यत्र चित्रा चित्रवतीति च ॥३॥
तत्र हाटकरुद्रस्तु विद्यैर्विद्येश्वरैर्वृतः। तत्रापि सा महाभागा वृता पातालमातरैः ॥४॥
मण्डलीकृतसारङ्गकर्णान्तागतपत्रिणा। ज्याघोषे घोरमुखरा तर्जयन्ती पुरःस्थिता ॥५॥
दृष्ट्वा तालप्रविष्टोऽसौ यत्र शंकरचर्चितम्। अथर्वरुद्रसंयुक्ता वृता सा योगमातरैः ॥६॥

यह सब देखकर दानवेन्द्र रुरु जहाँ काञ्चनमय पुर में हाटकेश्वर महादेव सिद्धगण-सेवित होकर उनसे घिरे विद्यमान थे, उस पृथिवीतलस्थ पुर में प्रवेश किया। वह पुरी चित्रों से चित्रवती थी। वहाँ जाकर उसने देखा कि देवी भी मातृगण के साथ उपस्थित थीं। वे कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर शरसन्धान कर रहीं थीं। तर्जन-गर्जन कर रहीं थीं तथा सामने आकर प्रत्यञ्चा की ध्वनि से कानों को वधिर कर रहीं थीं। उनका यह घोररूप देखकर दैत्यराज वहाँ से पाताल की तलपुरी में गया। यहाँ पर अथर्वण रुद्रगण द्वारा परिवेष्टित एवं पूजित शंकर विद्यमान थे। वह स्थान भी योगमातृगण से आवृत हो गया था।।२-६।।

दृष्ट्वा घोरेण रूपेण प्रनष्टस्तु शिलोच्चये। यत्र रूप्यमयी भूमिः पुरी चन्द्रमसा स्मृता ॥७॥
कपालरुद्रसहिता वृत्ता सा ह्यग्निमातृभिः। दृष्ट्वा घोरेण सौभग्नो गतः शीघ्रं गभस्तिमान् ॥८॥
पुरी सूर्यवती नाम ताम्राभा भाति सर्वतः। तत्रापि पश्यते देवी वृता किम्पुरुषादिभिः ॥९॥
कपालमातरैर्युक्तां खट्वाङ्गकरभासुराम्। तां दृष्ट्वा वेपमानस्तु गतः श्रीतालसंज्ञकम् ॥१०॥

देवी तथा मातृगण को वहाँ भी प्रवेश करते देखकर दैत्यराज वहाँ से भागकर सूर्यवती नामक ताम्रवर्ण पुरी में गया। वहाँ भी उसने देवी को किम्पुरुषगण तथा मातृगण को स्थित देख, जो खट्वाङ्ग आदि विविध अस्त्रों के साथ वहाँ आ गयी थीं। यह देखकर दैत्यपति भय से कम्पित होकर श्रीताल नामक स्थान में भाग आया।।७-१०।।

यत्र विद्युन्मती नाम पुरी चैत्रमयी शुभा। पिंगरुद्रैर्वृता देवी तथा चोत्पलमातरैः ॥११॥
तर्जयन्ती महाक्रूरा तां दृष्ट्वा तु अधोगतः। यत्र सा स्फाटिका भूमिः सुतलं नाम भूतलम् ॥१२॥

वहाँ वह विद्युन्मयी पुरी में प्रविष्ट हो गया। यह चैत्रमयी शुभ पुरी थी। यहाँ साथ ही साथ उसने देखा कि देवी वहाँ रुद्रगण तथा मातृगण के साथ घिरी होकर आ गयी हैं। वे सब दानवराज की ओर महाक्रूर रूप से तर्जन कर रही हैं। यह देखते ही दैत्यपति सुतल नामक स्फटिकमयी भूमि वाले स्थानों पर आया।।११-१२।।

पुरी कान्तिमती भीतः प्रनष्टस्त्वसुराधिपः। तत्रापि शक्र देवेशी गणरुद्रैः समावृता ॥१३॥
भगिन्या मातृसहिता खड्गपाशांकुशोद्यताः। वीर्यशौर्योज्झिता त्वेषां गतस्त्वाभाससंज्ञिताम् ॥१४॥
पुरी भस्मवती यत्र तत्रोष्मसमन्विता। ऊच्छुष्ममातरैर्युक्ता तत्र सा पुरतः स्थिता ॥१५॥

हे सुराधिप! वहाँ जो कान्तिमती नामक पुरी है, वहाँ प्रवेश करके उसने देखा कि वहाँ देवी रुद्रगण तथा मातृगण के साथ खड्ग-पाश-अंकुश आदि उठाये (आक्रमणोद्यत होकर) उपस्थित हैं। यह देखकर दैत्यराज अपना शौर्य-वीर्य आदि डर के मारे भूल गया और भागकर आभास नामक स्थान की भस्मवती पुरी में आ पहुँचा। वहाँ भी उसने मातृगण के साथ देवी को उपस्थित देखा।।१३-१५।।

क्रूरालापा महाक्रूरा तर्ज्जयित्वाब्रवीदिदम्। तिष्ठ तिष्ठ महामूढ त्वयि क्रुद्धः पिनाकधृक् ॥१६॥
कुत्र वा गच्छसे पाप यत्र नाहं कुतोऽत्र तत्। कारणानलमध्यस्थं ममेदं वक्त्रगं जगत् ॥१७॥

दैत्यपति को समुख देखकर महाक्रूर रूप से वे देवी क्रूरालाप करते कहने लगीं—हे मूढ! कहाँ भाग कर जा रहा है? जिस पर स्वयं पिनाकपाणि महादेव क्रोधित हो जायँ, उसे भागने का कहाँ स्थान मिलेगा? ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं विद्यमान नहीं हूँ। इस ब्रह्माण्ड का मूल कारण मैं हूँ। मेरे मुखविवर में यह समस्त जगत् स्थित है।।१६-१७।।

एतच्छ्रुत्वा वचोऽत्युग्रं पुनर्योद्धुं समुद्यता। जीवितुं भयमुत्सृज्य शरासनकरः शरैः ॥१८॥
ज्याघातघनघोषेण वर्षयन्नशनिरिव। प्रचक्रिरे महामायां मायां कृत्वा सहस्रशः ॥१९॥
चतुरंगं रचित्वा तु रथतुरगगजाकुलम्। विभिन्नकोटरैर्दन्तिरुक्मपुंखैश्च पत्रिभिः ॥२०॥
चण्डघातशरैर्भेद्यं पातयन् मातृमातरा। घण्टाडमरूशब्देन वाहिनी बधिरीकृता ॥२१॥

देवी का यह वाक्य सुनकर दैत्यराज ने भय का परित्याग कर दिया। उसने शरासन धारण करके पुनः युद्ध प्रारम्भ कर दिया। वह वज्रनिर्घोष की तरह पुनः पुनः ज्याशब्द करते हुये बाणवर्षा करने लगा। दैत्यराज ने ऐसी एक माया का प्रकाश किया, जिसके कारण रथ-अश्व-हाथीप्रभृति सुसज्जित चतुरंग सेना प्रकट हो गयी। उसमें रथ, अश्व, गज सभी सम्मिलित थे। सभी प्रचण्ड ज्याशब्द से दिशाओं को व्याप्त करके मातृगण पर शस्त्रवर्षा करने लगे। उनके घण्टा-डमरु के शब्द से सम्पूर्ण सेना वधिरप्राय हो रही थी।।१७-२१।।

पाटवं जनमुख्येन विद्युत्कोटिनिभेक्षणी। निहत्य तस्य मायान्तु शस्त्रछेदं प्रचक्रिरे ॥२२॥
बाणैरप्रतिवीर्यैश्च छिन्दयित्वा शरासनम्। कृत्वा सर्वास्त्ररहितं दानवेन्द्रं सुगर्वितम् ॥२३॥

यह देखकर भगवती महामाया अत्यन्त क्रोधित हो गयीं। उनकी चक्षुप्रभा कोटि विद्युत् के समान चमकने लगी। उन्होंने तत्क्षण इस माया का उच्छेद कर दिया। देवी के सुतीक्ष्ण बाणों ने उसके समस्त अस्त्रों का तथा शरासन का छेदन कर दिया। इस प्रकार महेश्वरी देवी ने उस गर्वित दानव को सभी प्रकार से शस्त्ररहित कर दिया।।२२-२३।।

हतवीर्यं हतशौर्यं हिंसयित्वा महेश्वरी। आकृष्टान्ती सरक्तौघं मेदमज्जास्थिमांसवम् ॥२४॥
तस्य चर्म च मुण्डं च गृहीत्वा तु विनिर्गता। समवायं ततः कृत्वा प्रत्यंगिरमभाषत ॥२५॥

इस प्रकार वह दानवराज हतवीर्य तथा हतशौर्य हो गया। तदनन्तर देवी ने बाणों के आघात से उसकी देह के रक्त, मज्जा तथा अस्थि तक को छेदित कर दिया। अन्त में उसका मुण्ड छेदन करके वहाँ से निर्गत हो गयीं। तब सभी मातृगण वहाँ एकत्रित होकर नृत्य करने लगीं।।२४-२५।।

तासामिच्छास्तु विज्ञाय भीताः सर्वे दिवौकसः। ऊचु किं कूर्म हे रुद्र घोररूपा मरीचयः ॥२६॥
ततो ब्रह्मादयो देवाः शिवेनोक्ताः पुरन्दर। मन्देव मन्दमानाया स्वस्वामिनि पुरोगता ॥२७॥
दूरं भवधवं संक्षिप्तं बभूवुः सुरपुङ्गवाः। ब्रह्मा प्रोवाच शक्त्यात्मा स्तवं मे दद अम्बिके ॥२८॥
एवं शिवो वयं शक्र प्रार्थयित्वा पुरस्थिताः। शम्भुनापि तथा गृह्य सप्तस्वरविभूषितम् ॥२९॥
वीणावाद्यं समारब्धं सारावितसकौशिकम्। ग्राममूर्च्छनतानार्थैः कृत्स्नं जगदपूरयत् ॥३०॥
नृत्यते परमो देवो अस्माकं सह वासव। मया गीतं समारब्धं स्तवं ब्रह्मादिभिस्तथा ॥३१॥

उनका ऐसा कृत्य देखकर देवगण भयभीत होकर महादेव से कहने लगे—हे रुद्र! शक्तिगण ने ऐसा घोररूप धारण किया है, अब क्या उपाय है? महेश्वर कहते हैं—तुम सब अपनी-अपनी शक्तियों के साथ शीघ्र अपने पुर को चले जाओ।

इससे सब कुछ शान्त हो जायेगा। तब सभी ने आज्ञापालन किया और चले गये। प्रथमतः अब ब्रह्मा ने देवी से जाकर कहा—देवी अम्बिके! अब मेरी शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। तदनन्तर मैंने, महेश्वर तथा इन्द्र प्रभृति सभी ने देवी के सम्मुख यही प्रार्थना की। महेश्वर ने सप्तस्वर-संयुक्त वीणा हाथ में लेकर ग्राम, मूर्च्छना एवं तालादि के साथ वाद्य किया तथा जगत् को प्रतिध्वनित करके नृत्य आरम्भ कर दिया। तब ब्रह्मादि स्तव करने लगे।।२६-३१।।

विकसितकर्णिकारकमलोत्पललललाटजं जटामुकुटनिघृष्टगंगशशिपन्नगविचित्रतनुम्।
त्रिदशविलासिनी वदनपंकजगीतवरं ध्रुवमिह तन्नमामि चण्डेशं शिवं शिरसा ध्रुवकम् ॥३२॥
प्रणतजनसितमसुरबलहरं त्रिदशाधिपते चण्डेश्वर नमोऽस्तु ते।
सदा गिरिदुहितृपते वरवृषभगते नमाम त्वां पशुपते ॥३३॥
देवाधिदेव वरदं पुरुषाधिपुरुषसुखदम्। भूताधिभूतगुहजननं वन्दे हरिरविशशिनयनम् ॥३४॥
वेदैर्मन्त्रैश्च परिपठितं विविधैः स्तोत्रैः ततः परमं वीणावेणुमृदंगैः शङ्खैर्बहुविधवाद्यैर्दुन्दुभिनर्दैः।
र्दिव्यैर्गेयैः गीतरवं पदशततालप्रमाणयुतं ललितैः करणैः नृत्यरतं जय जय देवं चण्डशिवम् ॥३५॥

इति श्रीदेवीपुराणे रुरूवधे चण्डेश्वरवर्धनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः

विकसित कर्णिकार, कमल, उत्पलादि द्वारा सुशोभित, गंगा जिनके जटामुकुट पर विराजती हैं, चन्द्र तथा पन्नग द्वारा जिनका शरीर सुशोभित है, देवीगण जिनका गुणगान करते हैं, हम उन चण्डेश्वर शिव के चरण में शरीर तथा मस्तक प्रणत करके प्रणाम करते हैं। जो प्रणत जनसमूह का हितसाधन करते हैं, जो असुरगण का बलहरण करते हैं, नगेन्द्रनन्दिनी जिनकी पत्नी हैं, वृष जिनका वाहन है, उन त्रिदशाधिपति चण्डेश्वर को हम प्रणाम करते हैं। जो देवाधिदेव वरप्रद तथा सुखप्रद हैं, जो भूताधिपति तथा कार्त्तिकेय के पिता हैं, जो चन्द्र-सूर्य तथा विष्णु आदि की सृष्टि करते हैं, उनको प्रणाम है। जो वेदमन्त्रों से परिपठित होते हैं, विविध स्तोत्रों से जिनका स्तवन किया जाता है, वीणा-वेणु-मृदंग-शंख-दुन्दुभि आदि वाद्यों को वादित करके देवता जिनका गुणगान करते हैं, जिनका पदपरिमाण सैकड़ों तालवृक्ष के समान है, जो मनोहर हाव-भाव के साथ नृत्य करते हैं, उन चण्डेश्वर को प्रणाम है।।३२-३५।।

षडशीतितम अध्याय समाप्त

●

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

भगवानुवाच

एतस्मिन्नन्तरे शक्र चन्द्रकोटिसमप्रभाः। सदाशिवसमुद्भूताः शांतरूपा मनोहराः ॥१॥
रोदसीं चतुरोद्भाष्य वीणाहस्ताः समागताः। शम्भुना सहिताः शक्र नानाभावसमन्विताः ॥२॥
सरोजाद्यैर्विचित्रैश्च वर्त्तिनीभिः सुवर्त्तितैः। फलतोक्षे पवित्राक्षैश्चलत्तारैः रसान्वितैः ॥३॥
नानाविहारललितैश्चतुरस्रैः सरक्षगैः। उत्फुल्लाद्यैर्द्रुतैर्भेदैस्त्रिरुन्नतरसान्वितैः ॥४॥
ऊर्ध्वाध्ववलितापाठवेपान्ध्ननमागतैः। बाहुभिर्वातप्रक्षिप्ताः प्रयान्ति शिविकादिशाम् ॥५॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे इन्द्र! इस समय करोड़ों चन्द्र के समान प्रभावती, सदाशिव से उद्भूता शक्तिदेवी वीणाधारिणी वहाँ उपस्थित थीं। उनका रूप अत्यन्त शान्त तथा मनोहर था। हे शक्र! वे भगवान् शिव के साथ नाना भाव के साथ नृत्यरत हो गयीं। कभी विचित्र पद्मबन्ध करके, कभी इतःस्ततः भौं को नचाते हुये, कभी नाना अंगविक्षेप करके, कभी ऊर्ध्व में तो कभी अधः में पदविक्षेप करती थीं। कभी वे इतःस्ततः हस्तविक्षेप करके नृत्य करने लगतीं।।१-५।।

दृष्ट्वा समाथमाकाराः कराम्भोजविनिर्मिताः। पूरयन्तमम्बरं शक्र चारुचारी नताननाः ॥६॥
उत्क्षेपं दण्डपादाब्जैर्भानोः सान्द्रैर्नभस्तले। निरुद्धं स्पन्दनं साश्वं विपरीतगतिस्थितम् ॥७॥
कर्णस्थानसूचिभिर्नागाः पदतले स्थिताः। गुरुः पीडन्ति फलिनो वमन्ति गरलमसृक् ॥८॥

उनके इस प्रकार से नृत्य करने से सूर्य की रथगति रुद्ध हो गयी। उनके पदभार को मेदिनी सहन न कर सकी; अतः पृथ्वी का भार सहने वाले फणिगण अपने फणों को संकुचित करके विष तथा रक्त का वमन करने लगे।।६-८।।

समानं भोगभावञ्च भिषजानां विवर्णितम्। नागराजकुलान्यष्टौ स्वस्थानानि विहाय तु ॥९॥
विद्रुतानि युतस्तानि भीतानि तरलानि तु। इतश्चैतश्च गच्छन्ति मूर्च्छाकुलितमानसाः ॥१०॥
शेषो गुरुर्भराक्रान्तो याति मोहं मुहुर्मुहुः। तथा मेघानि ऋक्षाणि ग्रहाणि विविधानि च ॥११॥
स्थानच्युतानि सर्वाणि तान्दृष्ट्वा हर्षितानि च। नभःस्थितानि मुञ्चन्ति स्रग्मालानि नित्यशः ॥१२॥

अष्ट नागराजगण अपने स्थान का त्याग करके इतःस्ततः दौड़ने लगे। अनन्तदेव भी (देवी के) भार से आक्रान्त होकर पुनः पुनः मोहग्रस्त होने लगे। मेघ, नक्षत्र तथा ग्रहगण स्थानच्युत होने लगे। नृत्य देखकर वे हर्षित होने लगे। विमानचारीगण आकाशमण्डल से ही पुष्पमाला का वर्षण करने लगे।।९-१२।।

नृत्यारम्भे स्थिताः सर्वे परमानन्दमागताः। एवं नानाप्रकारैस्तु भावाभावविलासजैः ॥१३॥
गणैः रुद्रैः समुत्पेता योगिनीभिः समन्विताः। वेतालैः राक्षसैर्गुह्यैः क्रीडयित्वा गतस्तु यः ॥१४॥
रुद्रं संपूजयित्वा तु पुरतः संव्यवस्थितः। तदा तुष्टेन देवेन पूजयित्वा तु शक्तयः ॥१५॥
एवमुक्तास्तु ता देव्याः सर्वलोकस्य मातरः। पूज्याः सर्वेषु कार्येषु ब्रह्माद्यैर्मनुजैरपि ॥१६॥

इस प्रकार का नृत्यारम्भ होने पर सभी परमानन्दित हो गये। इस प्रकार से नाना भाव-विलासपूर्वक गण (शक्तिगण), रुद्रगण, प्रथमगण, योगिनीगण, वेताल, राक्षस तथा गुह्यगण साथ-साथ कुछ समय तक नृत्य करते-करते विविध क्रीड़ा करके देव महेश्वर का पूजन करके देवाधिदेव महेश्वर के समक्ष खड़े हो गये। महेश्वर ने प्रसन्न होकर शक्तिगण को यथोचित सम्मान देकर कहा—हे देवीगण! तुम लोग समस्त लोकों की मातृरूपा हो। ब्रह्मा से लेकर मनुष्यपर्यन्त सभी लोग सभी कार्य में तुमलोगों की पूजा करेंगे। तुमलोगों की सृष्टि जगत् पालनार्थ की गई है। तुम सबमें से ज्येष्ठ आद्या शक्ति जगत्कारण हैं।।१३-१६।।

जगतः पालनार्थाय निर्मिताः कारणेच्छया। कारणं तत्पराशक्तिर्यासावाद्या अनामया ॥१७॥
ब्रह्माद्यानसृजन् शक्र वयं रुद्रास्तथैव च। उत्पत्तिस्थितिनाशाय क्रमशः सा नियोजयेत् ॥१८॥
अकामेन तु देवेश यथा सूर्यस्य अंशवः। पुण्डरीकविबोधाय क्रमसंकोचनाय च ॥१९॥
एवं सा सर्वकार्याणां प्रवृत्तये च निवृत्तये। न चादि न च मध्यान्ता वस्तुमात्रेण संस्थिता ॥२०॥

हे इन्द्र! ये ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाशार्थ ब्रह्मा, रुद्र तथा मेरी भी सृष्टि करती हैं। जैसे सूर्य की किरणें कमलों के विकास तथा संकोच की स्वाभाविक कारण हैं, उसी प्रकार से आद्या शक्ति भी सर्वकार्यसमूह की प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का कारण हैं। उनका आदि-मध्य तथा अन्त नहीं है। वे वस्तुमात्र में विद्यमान हैं।।१७-२०।।

तस्येच्छा शम्भुना उक्ता पूज्या मर्त्ये भविष्यथ। इप्सिताँश्च तथा कामान् भक्तानां संप्रदाष्यथ ॥२१॥

तदनन्तर महेश्वर ने शक्तिगण से कहा—मर्त्यलोक में तुम लोगों की पूजा होगी। तुमलोग भक्तों की मनोकामना पूरी करना।।२१।।

तदा या यस्य चोत्पन्ना तेन सा स्तविता विभो। ब्रह्मणा शिवस्कन्देन मया वैवस्वतेन च ॥२२॥
इन्द्रेण सर्वदेवैस्तु रुद्रो देव्यास्तु पूजिताः। लोकपालैर्ग्रहैर्नागैर्दानवैश्च प्रपूजिताः ॥२३॥
तथा शक्रादिभिर्देवैरेतन्मातृस्तवं कृतम् ॥२४॥

तदनन्तर देवगण अपनी-अपनी शक्ति का स्तव करने लगे। ब्रह्मा-रुद्र-यम-इन्द्र-मैं आदि सभी ने रुद्रशक्ति की पूजा किया तथा सभी लोकपाल-ग्रह तथा नागगण भी देवी-पूजन करने लगे। तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं ने इस प्रकार से मातृस्तव प्रारम्भ किया।।२२-२४।।

प्रचण्डमणिकुण्डलं भृकुटिभासुरोग्राननं करालमतिभीषणं विकृतवेषमुल्बणम्।
ज्वलत्परशुवल्लकीडमरुमुण्डखट्वांगिनं नमामि वृषभस्थितां त्रिनयनां महाभैरवीम् ॥२५॥

जिनके कानों में प्रचण्ड मणिकुण्डल है, मुहुर्मुहुः भ्रूभङ्ग से जिनका मुखमण्डल अतिभीषण लग रहा है, जो उग्रस्वभावा तथा विकृतवेशा हैं, परशु-वल्लकी-डमरु-मुण्ड तथा खट्वाङ्ग जिनके हाथों में विराजित है, जो वृषवाहना तथा त्रिनयना हैं, उन महादेवी के चरणों में प्रणाम है।।२५।।

सितप्रवरपङ्कजे भ्रमरवृन्दनादाकुले सदा विमलविस्तृते विपुलराजहंसस्थिताम्।
स्थितिं प्रवरविराजते ऋषिकुलोपसंसेवितां नमामि शिरसा पितामहसमुद्भवां मातरम् ॥२६॥

जो भ्रमरवृन्द द्वारा निनादित, विमल तथा विस्तृत श्वेत विपुल राजहंस पर पद्मासन लगाकर स्थित हैं, ऋषिगण जिनकी सर्वदा सेवा करते रहते हैं, पितामह से उत्पन्न उन मातृपद को प्रणाम है।।२६।।

शरच्छशिशतोज्ज्वलां तुहिनशङ्खकुन्दप्रभां स्फुरत्किरणभासितां सितवृषासनस्थिताम्।
जटाविकटजूटके दधाति चन्द्रलेखां तु यां नमामि त्रिशिखाभूतां प्रमथनाथदेहोद्भवाम् ॥२७॥

जो शरत् कालीन चन्द्र के समान समुज्ज्वला हैं, जिनकी अंगकान्ति हिम, शंख तथा कुन्द के समान है, जो अपनी किरणों से स्वयं समुज्ज्वल हैं, जो वृषासना हैं, जिनके जटाजूट में चन्द्रलेखा विराजित है, जिनका आयुध त्रिशूल है, प्रमथनाथ से उत्पन्न उन मातृपद में प्रणाम करता हूँ।।२७।।

मयूरवरगामिनीं दरदशुद्धवर्णोत्कटां वर्णञ्च चरणं कलितघण्टिकां निशितशक्तिहस्तोद्यताम्।
प्रभानिकररश्मिभि ऋग्गायमानांशुकां नमामि गुहसम्भवां त्रिदशशत्रुनिबर्हिणीम् ॥२८॥

जो मयूरगामिनी हैं, जिनका वर्ण विशुद्ध है। उत्कट चरणों में क्षुद्र घण्टिका तथा हाथों में तेज तलवार तथा शक्ति जिनकी अंशुक प्रभा से झलमल कर रही है, उन त्रिदश-शत्रुनाशिनी गुहसम्भवा शक्ति के चरणों में प्रणाम है।।२८।।

तसीप्रचयचान्द्रप्रभूतकुसुमां पुंजोपमां गदामुसलधारिणीं धनुशंखचक्रायुधाम्।
गरुत्मरथसंस्थितां विपुलपुण्डरीकेक्षणां नमाम्यूर्जितसम्भवां विमलसिद्धिदां वैष्णवीम् ॥२९॥

जिनका वर्ण अतसी के कुसुमपुंज के समान है, जिनके हाथों में गदा, मूसल, धनु, शंख तथा चक्र है; जो गरुड़ पर आसीन हैं, जिनके नेत्र विकसित कमल के समान हैं, उन सिद्धिप्रदा वैष्णवी शक्ति के चरणों में प्रणाम है।।२९।।

प्रभिन्नघनकज्जलच्छविं वराहरूपाननां कृपाणकरभासुरां परिघकालपाशोद्यताम्।
कृतान्ततनुसम्भवां प्रलयमेघघोषस्वरां महामहिषवाहिनीं शूकरीं नमाम्यादरात् ॥३०॥

जिनकी अंगछवि कज्जलराशि के समान है, जो वराह के समान मुखवाली हैं, जिनके हाथ में कृपाण, परिघ तथा कालपाश है, प्रलयकालीन मेघवत् जिनका गम्भीर शब्द है, जो महिषवाहन हैं, कृतान्ततनु-सम्भवा (यमसम्भवा) उन शक्ति को प्रणाम है।।३०।।

विशुद्धकनकप्रभां चकितविद्युल्ललितोपमां करीन्द्रवरसंकुलां विविधभूषणैर्भूषिताम्।
स्फुरत्कुलिशधारिणीं सुरसमूहसंपूजितां नमामि वरदायिकां विपुलभोगदां शक्रजाम् ॥३१॥

जिनकी अंगकान्ति विशुद्ध स्वर्णवत् है, जो विविध भूषणों से भूषित होकर हाथी के पीठ पर आरोहित हैं, जिनका आयुध है वज्र, सुरगण जिनका पूजन करते हैं, जो भक्तों को वर देने वाली हैं तथा विपुल भोग देने वाली हैं, उन इन्द्रशक्ति को प्रणाम है।।३१।।

दिवाकरशतप्रभां सितकपालमालाधरां करालदशनाननां प्रलयरवीव पिंगेक्षणाम्।
रुरूतनुघातिनीं रुधिरमांसमेदप्रियां नमामि शिवसंस्थितां शरणदां महोग्रायुधाम् ॥३२॥

शत-शत सूर्य के समान जिनकी ज्योति है, जो शुभ्र कपालमाला धारण करती हैं, जो करालवदना हैं, प्रलयसूर्यवत् जिनके चक्षु भी पिंगल वर्ण हैं, जिनका शरीर अति मनोहर है, रुधिर, मांस तथा मेद जिनको अतीव प्रिय है, जो उग्र आयुधधारी हैं, उन उग्र शक्ति को प्रणाम है।।३२।।

चलच्छ्रवणचामरप्रहृष्टषट्पदारावितं कपोलमदवारिणा दशदिशान्तरं मोदयन्।
गजेन्द्रवदनां शुभां सकलविघ्नविध्वंसनीं नमामि गणनायिकां प्रमथनाथदेहोद्भवाम् ॥३३॥

जो चंचल (कान) श्रवणयुगल द्वारा भ्रमरबाधा का निवारण करती हैं, जिनके कपोलों से क्षरित मदगन्ध दशो दिशाओं को आमोदित कर रही है, जो गजेन्द्र के समान मुखवाली हैं, जो समस्त विघ्नों का विनाश कर देती हैं, उन गणनायिका शक्ति को प्रणाम है।।३३।।

स्फुटप्रकटविक्रमं सकललोकपालार्चितं सुरारिकुलनाशनं प्रणतपापदुःखापहम्।
नरो नमति मातरं स्तवति सर्वदेवस्तुतामवाप्य विपुलं सुखं व्रजति मातृलोकं परम् ॥३४॥

इति श्रीदेवीपुराणे रुरूवधे मातृस्तवो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः

जो अतुल विक्रम वाली हैं, समस्त लोकपाल जिनकी अर्चना करते हैं, जो असुरों का विनाश करती हैं, जो भक्त के दुःख तथा पाप का नाश करती हैं, उन मातृगण का जो स्तव करता है, वह अतुलनीय सुख-सम्पदा प्राप्त करके देहान्तोपरान्त मातृलोक में गमन करता है।।३४।।

सप्ताशीतितम अध्याय समाप्त

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

भगवानुवाच

देवैः शिवागमैस्त्वेताः पूजिताश्च मुमुक्षुभिः। गारुडे भूततन्त्रे च कालतन्त्रे च पूजिताः ॥१॥
साध्यन्ते सर्वमन्त्राणि चिन्तामणिसमा शिवा। पाषण्डिभिर्भविष्यैस्तु बौद्धगारुडवादिभिः ॥२॥
स्वधर्मनिरतैर्वत्स स्वेन ध्यानेन पूजिताः। येन येन हि भावेन पूजयन्ति मनीषिणः ॥३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—यदि मुमुक्षु जन वेद-आगम-गरुड़-भूततन्त्र-कालतन्त्र से सभी मातृगण का पूजन करते हैं, तब वे चिन्तामणिवत् सर्वकार्य-साधन कर लेते हैं। पाषण्ड, बौद्ध, गारुड़वासी भी स्वधर्मरत होकर विधिपूर्वक पूजा द्वारा सिद्धिलाभ कर लेते हैं।।१-३।।

तेन तेन फलं दद्युः द्विजानामन्त्यजामपि। विवाहमङ्गलैः कार्यैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः ॥४॥
मर्त्यलोकेऽपि पूज्यन्ते दृष्टादृष्टफलार्थिभिः। यत्किंचिद्ब्राङ्मयं लोके दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥५॥
तत्सर्वं शक्तिभिर्ज्ञातं शक्र नास्त्यत्र संशयः। देवतानां पितॄणां च मनुष्याणां च वासव ॥६॥
गोप्यास्त्वेताः समाख्याताः शिवेनानन्तरूपिणा। उत्पत्तिस्थितिसंहारबन्धमोक्षविचेष्टितम् ॥७॥
स्वर्गापवर्गनिरयं सर्वमस्मात् प्रवर्त्तते। अनन्तमादितः कृत्वा यावत्पादाक्षगोचरम् ॥८॥
शक्तिभिस्तु ततः सर्वं घृतेन तु पयो यथा। तस्मात्त्वमपि देवेन्द्र कर्मयज्ञेन पूजय ॥९॥

ब्राह्मण हो, किंवा चाण्डाल हो, जो जिस भाव से पूजा करेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। देव-गन्धर्व तथा किन्नर विवाह-मंगल में इनका पूजन करते हैं। ये मनुष्य लोक में भी दृष्ट-अदृष्ट फलकामना से पूजित होती हैं। हे इन्द्र! इस जगत् में जो कुछ भी दृश्य-अदृश्य है, वह सब शक्ति से ही उत्पन्न है। इसमें कोई संदेह नहीं है। हे इन्द्र! देवता, पितृगण-मनुष्य आदि सबकी कारण हैं—शक्ति। इस शक्ति से ही उत्पत्ति-स्थिति-संहार-बन्धन-मोक्ष-चेष्टा-स्वर्ग-अपवर्ग-नरकादि प्रवर्त्तित होता है। अनन्त से लेकर यहाँ तक जो कुछ गोचर है, वह सब शक्ति ही है। जैसे घृतबिन्दु जल में छोड़ने से वह जल पर व्याप्त हो जाता है, ऐसे ही शक्ति भी सर्वव्यापक है। हे देवेन्द्र! इसलिये कर्मयज्ञ से पूजन करना चाहिये।।४-९।।

हेमरूक्मप्रबालोत्थचित्रकाष्ठे तु शैलजाः। पूजिता विधिना वत्स सर्वकामफलप्रदाः ॥१०॥
यो देवं मातरोत्पत्तिं शिवशक्तिविजृम्भितम्। रुरूदैत्येन्द्रमथनं भक्त्या संकीर्त्तयिष्यति ॥११॥
शृणुयाद्यः पठेद्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु। सर्वबाधाविनिर्मुक्तः सर्वकामसमन्वितः ॥१२॥
इहैव जायते शक्र अन्ते च परमं पदम्। श्रवणाच्च अवाप्नोति सर्वदानव्रतादिकम् ॥१३॥

इति श्रीदेवीपुराणे रुरूवधसमाप्तिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः

हे वत्स! स्वर्ण-चाँदी-प्रवाल-चित्र-काष्ठ-प्रस्तर इत्यादि किसी भी वस्तु में मूर्त्ति बनाकर पूजन करने से सर्वकामना की सिद्धि होती है। जो व्यक्ति मातृगणोत्पत्ति, शिवलिंग का प्रभाव तथा रुरु दैत्यवध का कीर्त्तन करता, श्रवण करता अथवा पाठ करता है, उसकी सभी बाधायें दूर हो जाती हैं। वह इस लोक में सर्वकामना प्राप्त करके अन्त में परमपद प्राप्त करता है। श्रवणमात्र करने से भी सर्वदानफल तथा सर्वव्रतफल मिल जाता है।।१०-१३।।

अष्टाशीतितम अध्याय समाप्त

●

एकोननवतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

येनोपायेन सर्वेषां देवि सर्वफलप्रदा। तदहं श्रोतुमिच्छामि नवम्यामाश्रितं फलम् ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—जिस उपाय से पूजित होने पर देवी समस्त कामनाओं का फल प्रदान करने वाली होती हैं, अब उसे सुनना चाहता हूँ।।१।।

ब्रह्मोवाच

आश्विने वाथ माघे च चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा। कृष्णादारभ्य कर्त्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरे ॥२॥
अष्टमी चाश्विने कृष्णा एकभक्तेन कारयेत्। मंगलारूपिणीं देवीमथवा रुरूघातिनीम् ॥३॥
पूजयेन्नवभेदेन गन्धमाल्यनिवेदनैः। कन्यकाः भोजयेद्वत्स देवीभक्तांश्च मानवान् ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—आश्विन-माघ-चैत्र अथवा श्रावण मास के कृष्णपक्ष से प्रारम्भ करके शुक्लपक्ष-पर्यन्त व्रत करना चाहिये। आश्विन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन एक समय भोजन करके रहना चाहिये तथा गन्ध-माला एवं अन्य उपचारों द्वारा मंगलरूपा अथवा रुरु दैत्यविनाशिनी देवी का पूजन करना चाहिये। साथ ही देवीभक्त ब्राह्मणों को तथा कुमारीगण को भोजन कराना चाहिये।।२-४।।

नक्तेन नवमी कार्या अयाचन्दशमीं क्षपेत्। उपवासमेकादश्यां पुनरेवं विधिर्भवेत् ॥५॥
यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपवास्या विधानतः। स्नानहोमजपं पूजा कन्याभोजन्तु प्रत्यहम् ॥६॥
कर्त्तव्यं द्विजद्वन्द्वेन देव्या भक्तिरतेन च। नवम्यां पशुघातन्तु महिषादि अजाविकम् ॥७॥

नवमी के दिन रात्रिव्रत तथा दशमी के दिन अयाचित वृत्ति के द्वारा व्यतीत करना चाहिये एवं एकादशी को उपवास करना चाहिये। इस क्रम से चलना चाहिये। शुक्लाष्टमी-पर्यन्त इसी क्रम का पालन करना चाहिये। शुक्लाष्टमी को उपवास करना चाहिये। स्नान-होम-जप-पूजन तथा कुमारी-भोजन नित्य सम्पन्न करना चाहिये। जितद्वन्द्व तथा भक्त व्यक्ति को इस प्रकार से पूजन करना चाहिये। नवमी के दिन महिष अथवा अजादि की बलि प्रदान करनी चाहिये।।५-७।।

कर्त्तव्यं भूतवेताल न च आत्मनः काम्यया। कन्याः अलंकृतास्तत्र द्विजाः देव्याः परायणाः ॥८॥
नटनर्त्तकप्रेक्षाश्च रथयात्रां सजागराम्। दानं देयं यथाशक्त्या सर्वेषामपि भक्तिना ॥९॥

इस प्रकार से भूत तथा वेतालगण को बलि का उपहार देना चाहिये। अपने लिये पशुवध करना अत्यन्त गर्हित है। इस प्रकार से देवीभक्त ब्राह्मण को विविध अलंकारों से भूषित होकर नट-नर्त्तक तथा दर्शकों के साथ देवी की रथयात्रा का महोत्सव करना चाहिये एवं सभी को भक्तिपूर्वक यथाशक्ति दान देना चाहिये।।८-९।।

महाभैरवरूपाणां अस्थिमालाधराः नराः। पूजनीया विशेषेण वस्त्रशोभाधरादिषु ॥१०॥
कर्त्तव्या सर्वकामार्थं प्रापणाय सुरोत्तम। अनेन विधिना शक्र यदृच्छं लभते फलम् ॥११॥

जो महाभैरव का रूप धारण करके गले में अस्थिमाला धारण करते हैं, उनका पूजन वस्त्र आदि से करना चाहिये। हे शक्र! हे सुरोत्तम! सर्वकामार्थ-सिद्धि हेतु यही कर्त्तव्य है। इससे इच्छित फल प्राप्त हो जाता है।।१०-११।।

मंगला भैरवी दुर्गा वाराही त्रिदशेश्वरी। उमा हैमवती कन्या कपाली कैटभेश्वरी ॥१२॥
काली ब्राह्मी च माहेशी कौमारी मधुसूदनी। वाराही वासवी चर्च्चा नामान्यानि जपेन्नरः ॥१३॥

मंगला, भैरवी, दुर्गा, वाराही, त्रिदशेश्वरी, उमा, हैमवती, कन्या, कपाली, कैटभेश्वरी, काली, ब्राह्मी, माहेशी, कौमारी, मधुसूदनी, वाराही, वासवी, चर्चा—इन नामों का जप करना चाहिये।।१२-१३।।

पूजयेद् भोजयेत् कन्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। वस्त्रालङ्कारकाञ्च्यादिकटकाः कटिसूत्रकाः ॥१४॥
दातव्या आत्मनः शक्त्या देवीभक्तैः सुखार्थिभिः। अथवा नवरात्राणि सप्तपञ्चत्रिरेकथा ॥१५॥
एकभक्तेन नक्तेन अयाचन्नुपवासनैः। क्षपयेदाश्विने शक्र यावच्छुक्ला तु अष्टमी ॥१६॥
पूजयेन्मङ्गला तत्र मण्डले विधिकल्पिते। सर्वसद्भावसम्पन्ने सर्वाविधिविधायिके ॥१७॥

शास्त्रोक्त विधि से पूजा करके कुमारी-भोजन कराना चाहिये तथा उनको शक्ति के अनुसार वस्त्र, अलङ्कार, स्वर्ण, कटक, कण्ठसूत्र तथा कटिसूत्र आदि प्रदान करना चाहिये। हे इन्द्र! अथवा नवरात्र, सप्तरात्र, पञ्चरात्र, त्रिरात्र किंवा एक रात्रि काल में एक समय खाकर अथवा रात्रिव्रत, अयाचित व्रत किंवा उपवास करके शुक्लाष्टमी-पर्यन्त व्यतीत करना चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार यथाविधि सर्वसद्भावयुक्त मण्डल बनाकर उसमें देवी सर्वमंगला की पूजा करने से सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है।।१४-१७।।

सर्वकामप्रदे शक्र सर्वकामानवाप्नुयात्। अर्थकामस्य अर्थं तु राज्यकामस्य राज्यदम् ॥१८॥
पुत्र आरोग्यदं वत्स महापातकनाशनम्। सर्ववर्णैश्च कर्त्तव्यं पुंस्त्रीबालनपुंसकैः ॥१९॥
सर्वगा सर्वदा देवी यस्माच्छक्र महाफला। अनया विधिना वत्स ददते अविचारणात् ॥२०॥

हे इन्द्र! यह सर्वकामप्रद है। इससे सर्वकाम-प्राप्ति हो जाती है। अर्थकामी अर्थ, राज्यकामी राज्य, पुत्रकामी पुत्र तथा आरोग्यकामी आरोग्य प्राप्त करता है। किम्बहुना इसके द्वारा महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, नपुंसक प्रभृति सभी एवं ब्राह्मणादि सभी वर्ण को इस प्रकार पूजा करनी चाहिये; क्योंकि देवी सर्वगामिनी हैं। उनके यहाँ अच्छे-बुरे का विचार नहीं है, भक्ति द्वारा वे सभी के लिये अभीष्टप्रदा हो जाती हैं।।१८-२०।।

सर्वेषां व्रतयोनीनां सर्वव्रतमहाफलम्। नवम्याख्यं महापुण्यं तव सम्यक् प्रकाशितम् ॥२१॥
नाख्येयं भक्तिहीनस्य मूर्खस्याहेतुवादिने। देयं भक्ताय शान्ताय शिवविष्णुरताय च ॥२२॥
देवीभक्तः सदाचारः कन्यापूजारतो नरः। इहैव सर्वकामानि लभते अविचारणात् ॥२३॥

इस प्रकार मैंने सभी योगों से श्रेष्ठ तथा सभी व्रतों की तुलना में महाफलप्रद इस नवमी व्रत को तुमसे कहा। भक्तिरहित, मूर्ख तथा हेतुवादी व्यक्ति को यह कदापि प्रदान नहीं करना चाहिये। जो भक्त व्यक्ति शान्त-शिवभक्त विष्णुभक्त होता है, जो सदाचारयुक्त रहता है तथा देवीभक्त है और जो कन्यापूजादि में निरत है, उसे ही यह बतलाना चाहिये। इहलोक में इसके द्वारा ही सर्वकामना सिद्ध होती है।।२१-२३।।

नाधयो व्याधयस्तस्य न च शत्रुभयं भवेत्। सङ्गरे विजयो नित्यं महानेकोऽपि जायते ॥२४॥
श्रवणात्सर्वकामानि लभते अविचारणात् ॥२५॥

इति श्रीदेवीपुराणे अष्टमीनवमीव्रतं नामैकोननवतितमोऽध्यायः

इससे आधि-व्याधि किंवा शत्रुभयादि उपस्थित नहीं होते। युद्ध में विजय होती है तथा वह अकेले ही महत् कार्य सम्पन्न कर लेता है। इसे मात्र सुनने से ही सभी कामनायें पूर्ण होती हैं।।२४-२५।।

एकोनवतितम अध्याय समाप्त

●

नवतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

यद्येवं सर्वदेवानां परमा मातरा विभो। तदहं श्रोतुमिच्छामि तेषाञ्च विधिपूजनम् ॥१॥
कानि पुष्पाणि दानानि व्रतानि नियमास्तथा। येन सम्पूजिता देव्यः क्षिप्रं सिद्धिफलप्रदाः ॥२॥
लोकानामुपकाराय अस्माकं च विशेषतः। एतदेव यथादेशं कथय नः प्रसादतः ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे विभो! मातृगण सर्वदेवगण में श्रेष्ठ हैं; यह सुना। अब उनकी पूजाविधि सुनने की इच्छा है। उन्हें कौन-कौन सा पुष्प अर्पित करना चाहिये, किस नियम से पूजाफल शीघ्र प्राप्त होता है, लोगों के उपकारार्थ तथा हमलोगों के विशेष उपकारार्थ इन सबका आप यथायथ वर्णन करिये।।१-३।।

एवं पूर्वं नृपश्रेष्ठ विष्णुः शक्रेण पृष्टवान्। तत् समाज्ञाय शक्रस्य ब्रह्मणा कथितं यथा ॥४॥
तथाहं ते प्रवक्ष्यामि विद्यातत्त्वार्थपारग।

हे राजन्! पूर्व में इन्द्र से ब्रह्मा ने जो कहा था, तदनुसार मैं भी तुमसे वर्णन करता हूँ।।४।।

अगस्त्य उवाच

पुरे वा यदि वा ग्रामे नगरे खेटकेऽपि वा ॥५॥
दृष्टादृष्टफलार्थिभिः पूजनीयास्तु मातरः। एकलिंगे नदीतीरे द्रुमशैले वनेऽपि वा ॥६॥
पूजिताः सर्वविद्यानां साधनाय फलप्रदाः। गृहे चत्वरे हट्टान्ते पूजिता धनपुत्रदाः ॥७॥
नागरद्वारपूर्वाद्या वृद्धिराज्यसुखार्थदाः।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—पुर-ग्राम-नगर अथवा खेटक में दृष्ट-अदृष्ट फलकामना से मातृगण की पूजा करनी चाहिये। एकलिंग, नदीतट, वृक्षतल, पर्वत अथवा वन में पूजा करने से सर्वकामना सिद्ध होती है। यहीं पर सर्वविद्याओं की साधना भी करनी चाहिये। गृह-चत्वर-हट्ट में पूजा करने से धन तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। नगरद्वार में पूजा करने से राज्यवृद्धि-सुखसमृद्धि तथा अर्थलाभ होता है।।५-७।।

गंगातीरेऽथवा विन्ध्ये सर्वकामफलप्रदाः ॥८॥
वेदपर्वतश्रीशैले किष्किन्धापर्वतादिषु। मोक्षदा दिवदा वत्स निष्कामाः फलवाञ्छिताः ॥९॥

हे वत्स! गंगातीर अथवा विन्ध्य पर्वत पर पूजन से सर्वकामना-सिद्धि हो जाती है। वेदपर्वत, श्रीशैल तथा किष्किन्धापर्वत पर निष्काम होकर पूजन से शीघ्र फल मिलता है। यहाँ मोक्षफल मिलता है।।८-९।।

एते स्थानाः समाख्याता आशु फलसमीहकाः। कालान्तरफला देव्यः सर्वाः सर्वत्रपूजिताः ॥१०॥
कालाग्निशिवपर्यन्तां येषां व्याप्तिमहात्मनाम्। ता यत्र यत्र पूज्यन्ते तत्रैव फलदायकाः ॥११॥
सर्वदेवनुता देव्यः सर्वदेवप्रसूतयः। शिवाद्या याभिर्जायन्ते कस्ताः न प्रतिपूजयेत् ॥१२॥

इन स्थानों में पूजनादि से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है। अन्य स्थानों में पूजन करने पर कालान्तर में (समय पश्चात्) फल मिलता है। कालाग्नि शिव-पर्यन्त जो व्याप्त होकर स्थित हैं, उनकी पूजा चाहे जहाँ भी की जाय, वह सर्वफल प्रदान करती है। यह सभी वेदों में कहा गया है। वे सर्वदेवगण में प्रणम्य हैं तथा सर्ववेद-प्रसूति हैं। स्वयं महेश्वर की सृष्टि जिनसे होती है, कौन उनकी पूजा नहीं करेगा?।।१०-१२।।

या सूते प्रथमं शम्भुर्ब्रह्मविष्णुविवस्वतः। आदित्यवरुणचन्द्रार्कः कस्तां न प्रतिपूजयेत् ॥१३॥
तासाञ्च शुभनक्षत्राहे दारुमानीय बुद्धिमान्। मणिमौक्तिकवैडूर्यकाष्ठचन्दनचन्दनाः ॥१४॥

जिन्होंने पहले ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-यम-आदित्य-चन्द्र-वरुण आदि सबकी सृष्टि की है, कौन उनकी पूजा नहीं करेगा? बुद्धिमान व्यक्ति को शुभ नक्षत्र में काष्ठादि लाकर उनकी मूर्त्ति बनानी चाहिये। यह मूर्ति मणि-मुक्ता-वैदूर्य-काष्ठ चन्दनादि से बनानी चाहिये।।१३-१४।।

मधूकपाथ बिल्वाम्राशोकतिन्दुकशिंशपाः। शैलपार्थिवहेमोत्थास्तावद्धातु शुभप्रदाः ॥१५॥
तद्विदैर्घटिता वत्स तद्वेदिभिः प्रतिष्ठिताः। ताश्चोत्तराननाः स्थाप्याः सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१६॥

मधूक-बिल्व-अशोक-तिन्दुक-शिंशपा की लकड़ी अथवा पाषाण-मिट्टी तथा स्वर्णादि की मूर्त्ति बनाना शुभ होता है। उत्तम प्रकार से वेदी बनाकर उसमें मूर्त्ति को प्रतिष्ठित करके उनकी उत्तरमुखी स्थापना करनी चाहिये। इससे सर्वकाम-प्राप्ति होती है।।१५-१६।।

सर्वशैलेष्टकाष्टोत्थं गृहं वास्तुविभाजितम्। वलभीमण्डपं वत्स मठं वा स्थापने शुभम् ॥१७॥
गन्धं नैवेद्यधूपेन बलिमाल्यविभूषणैः। अधिवासनपूर्वास्तु स्थापनीया यथाक्रमम् ॥१८॥
वेदध्वनिमहाघोषैः स्त्रीसङ्गीतोपशोभितम्। कर्त्तव्यं स्थापनं तेषां बहुवादित्रनादितम् ॥१९॥
रात्रौ जागरणं तत्र देव्या पूजार्थवृद्धये।

देवी की स्थापना का गृह प्रशस्त ईंट अथवा लकड़ी से बनाना चाहिये। अथवा वलभी मण्डप किंवा मठ बनाकर उसमें स्थापित करना चाहिये। गन्ध-नैवेद्य-धूप-बलि-माला तथा अलंकारादि से पूर्व में अधिवास-स्थापन करना चाहिये। स्थापनाकाल में वेदध्वनि, उच्च वाद्य तथा संगीतादि कराना चाहिये। रात्रि में जागरण करने के पश्चात् प्रातः उठकर पूजा करनी चाहिये। ।१७-१९।।

आख्यानैर्मातरः शास्त्रैः रुद्रक्रीडाकरैः शुभैः ॥२०॥
दशावतारपूर्वास्तु कथा वाच्या यथाक्रमम्। एवं प्रत्यूषसि सम्प्राप्ते बलिं संध्यासु दापयेत् ॥२१॥
यथा मातृगणं पूज्यं देवभैरवरूपिणम्। स्त्रीसंघाः कन्यका विप्रा पूजनीयाः स्वशक्तिना ॥२२॥
मठञ्च कारयेत्तत्र देव्याः पूजार्थवृद्धये। सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वोपकरणान्वितम् ॥२३॥
वापीकूपं तडागं वा वाटिकावनशोभितम्। वेश्यातूर्योपसम्पन्नं ध्वजछत्रविभूषितम् ॥२४॥
घण्टादर्पणदीपाद्यं देयं द्रव्यानुरूपतः। घटिकायन्त्रयष्ट्यादिदिनसंख्यार्थसिद्धये ॥२५॥

माता का आख्यान शास्त्रवर्णन तथा शुभ रुद्रक्रीड़ा की कथा सुनो। दशावतार आदि कथा को यथाक्रम सुनकर तब सन्धिवेला में वलि देनी चाहिये। पूजान्त में भैरवरूप ब्राह्मण की तथा मातृरूपा कुमारीगण की यथाशक्ति पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। देवीपूजार्थ सर्वलक्षणयुक्त तथा सर्व उपकरण युक्त मठ प्रस्तुत करना चाहिये (मठ—निर्माण कक्ष आदि का)। वापी, कूप, तालाव आदि खुदवाकर वृक्षवाटिका द्वारा उसे रमणीक बनाना चाहिये। वहाँ पर वेश्या, तूर्य, ध्वज, छत्र, घंटा, दर्पण, दीपादि सभी वस्तुयें सुसज्जित करनी चाहिये। अपनी वित्तशक्ति के अनुसार द्रव्य प्रदान करना चाहिये। दिनमान जानने के लिये तथा क्षण-मुहूर्त्तादि के निर्णयार्थ वहाँ पर अनेक अथवा एक घटिकायन्त्र एवं शंकु का स्थापन करना चाहिये।।२०-२५।।

कर्त्तव्यानेकमेकं वा यथाकालपरिच्छदे। अनेन विधिना वत्स मातराः स्थापयेन्नरः ॥२६॥
इहैव पूजनीयास्तु मृतो याति परां गतिम्। ये तस्य दासकर्माणि दास्यो वेश्यादिका गृहे।
तेऽपि यान्ति दिवं वत्स किं पुनस्तस्य बान्धवाः ॥२७॥

इति श्रीदेवीपुराणे मातृप्रतिष्ठामहाभाग्यं नाम नवतितमोऽध्यायः

जो व्यक्ति इस विधि से मातृस्थापन करता है, वह इहलोक में पूज्य होकर मृत्यु के अनन्तर परमगति प्राप्त करता है। हे वत्स! उस व्यक्ति के बान्धवों की तो बात ही क्या, उसकी दासी तथा वेश्यादि भी उस व्यक्ति के सत्कर्म-फल के कारण स्वर्ग प्राप्त करते हैं।।२६-२७।।

नवतितम अध्याय समाप्त

●

एकनवतितमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वा स्त्रियः। पूजयेन्मातरो भक्त्या स सर्वाँल्लभतेप्सितान् ॥१॥

मृण्मयीं प्रतिमां कृत्वा विन्ध्ये वा यस्तु पूजयेत्। आत्मवित्तानुसारेण स लभेन्मौक्तिकं फलम् ॥२॥

महामुनि अगस्त्य कहते हैं—ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अथवा स्त्रीगण भी यदि भक्तिपूर्वक मातृपूजा करते हैं, तब उनको भी इच्छित फल मिलता जाता है। मृण्मयी प्रतिमा का निर्माण करके अथवा विन्ध्य पर्वत पर अपने वैभव के अनुसार जो मातृपूजा करता है, उसे मौक्तिक (मुक्ति सम्बन्धिनी) फल की प्राप्ति होती है।।१-२।।

एकां वा यदि वा देवीं देवं वा वल्लकीकरम्। गजाननयुतं स्कन्दं सर्वकामफलप्रदम् ॥३॥
ब्राह्मीं च वैष्णवीं देवीं कौमारीं शक्रधर्मजाम्। पूज्यमानो अवाप्नोति ऐहिकं फलमुत्तमम् ॥४॥

एक देवी अथवा देव तथा वीणापाणि देव, गणेश के साथ कार्त्तिकेय, ब्राह्मी, वैष्णवी, कौमारी तथा ऐन्द्री देवी का पूजन करने पर ऐहिक उत्तम फल मिलता है।।३-४।।

वृषारूढां महादेवीं त्रिनेत्रां शूलधारिणीम्। पूज्यमानो लभेद्वत्स यद्यत्फलमभीप्सितम् ॥५॥
यां पूज्य पूज्यतां यान्ति सर्वलोकस्य विद्यते। तां पूजय सदा मातृं ब्रह्मविष्णुनमस्कृताम् ॥६॥

हे वत्स! वृषारूढ़ा, त्रिनेत्रा, शूलधारिणी महेश्वरी की पूजा करने पर अभीष्ट प्राप्ति हो जाती है। जिनका पूजन करके विद्याबल से सर्वपूजा सम्पन्न हो जाती है, उन ब्रह्मा-विष्णु-नमस्कृता माता की सतत् पूजा करनी चाहिये।।५-६।।

ब्रह्मापि पूजयते यां विष्णुर्देवस्त्रिलोचनः। तां पूजय सदा देवीं सुरशत्रुनिबर्हिणीम् ॥७॥
देव्यावतारशास्त्राणि रुद्रविष्णुभवानि च। वाचयन् चिन्तयन् वत्स ईप्सितं लभते फलम् ॥८॥

जिनकी पूजा ब्रह्मा-विष्णु तथा देव त्रिलोचन भी करते हैं, उन सुरशत्रुनाशिनी देवी की सदा तुम भी पूजा करो। देवी, शिव, विष्णु के अवतार कथामय शास्त्र का पाठ तथा चिन्तन करने से इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है।।७-८।।

यस्तु देव्या गृहे नित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तयेत्। स भवेत्सर्वलोकानां पूज्यः पूजापदं व्रजेत् ॥९॥
मातरा पुरतो यस्तु वसोर्धारां प्रपातयेत्। पृथिव्यामेकराड् वत्स इह चैव भवेन्नरः ॥१०॥
छत्रं वाथ प्रपां वह्निं प्रावृड्ग्रीष्महिमागमे। कारयेन्मातृपुरतः सर्वकामानवाप्नुयात् ॥११॥

माता के समक्ष वसुधारा प्रदान करने पर पृथिवी पर एकाधिपत्य मिलता है। जो व्यक्ति नित्य देवीगृह में विद्यादान करता है, वह सर्वलोकपूज्य होकर पूजापद को प्राप्त करता है। हे वत्स! माता के सामने वर्षा में छत्रदान, गीष्म में जलसत्र तथा शीत में अग्नि जलाने से सभी अभीष्ट फल मिलता है।।९-११।।

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि येन तुष्यन्ति मातरः। लिख्यते येन विधिना दीयते तत् शृणुस्व नः ॥१२॥
सिद्धान्तमोक्षशास्त्राणि वेदान् स्वर्गादिसाधकान्। तदङ्गानीतिहासानि देया धर्मविवृद्धये ॥१३॥
गारुडं बालतन्त्रं च भूततन्त्राणि भैरवम्। शास्त्राणि पठनाद्दानात् मातरः फलदा नृणाम् ॥१४॥

जिससे मातृगण सन्तुष्ट हो जाती हैं, उस विद्यादान को कहता हूँ। लेखन तथा दानविधि को मुझसे सुनो। सिद्धान्त शास्त्र, मोक्ष-शास्त्र, स्वर्गाधिसाधक शास्त्र, वेद, वेदांग तथा इतिहास से धर्मवृद्धि होती है। गारुड़शास्त्र, बालतन्त्र, भूततन्त्र, भैरवतन्त्र का पाठ करने से मातृगण शुभ फल प्रदान करती हैं।।१२-१४।।

ज्योतिषं वैद्यशास्त्राणि कला काव्यं शुभागमान्। दानादारोग्यमाप्नोति गान्धर्वं फलते पदम् ॥१५॥

ज्योतिष, वैद्यकशास्त्र, कला, काव्य तथा उत्तम आगमशास्त्र प्रदान करने पर आरोग्य-लाभ तथा अन्त में गन्धर्व पद प्राप्त होता है।।१५।।

विद्याम्भो वर्त्तते लोको धर्माधर्मं च विन्दते। तस्माद्विद्या सदा देया दृष्टादृष्टफलार्थिभिः ॥१६॥
महीदानं च गोदानं हेमवस्त्रतिलान् जलम्। धान्यदीपान्नदानं च महादानानि दानसु ॥१७॥

जो सब ग्रन्थ लेख्य तथा देय है, उसका नामकीर्त्तन भी लेखनादि विधि में निहित है। विद्या से लोकव्यवहार तथा धर्म-अधर्म का ज्ञान होता है। अतएव आरोग्यलाभ तथा अन्त में गन्धर्वपद मिलता है। इसलिये दृष्ट-अदृष्ट फल की आकांक्षा करने वाले मानव का विद्यादानरूप कर्त्तव्य है। भूमिदान, गोदान, सुवर्णदान, वस्त्रदान, तिलदान, जलदान, धान्यदान, दीपदान तथा अन्नदान ही महादान है।।१६-१७।।

इह प्रक्षीयते दानं दीपदानं नराधिप। विद्या वृद्धिमवाप्नोति दीयमानापि नित्यशः ॥१८॥

हे राजन्! दीपदान भी दान है। विद्या से वृद्धि होती है। दान करने से देय वस्तु का क्षय हो जाता है, लेकिन नित्य विद्यादान करने से वृद्धि प्राप्त होती है। हे राजन्! दान द्वारा दी गई वस्तु का अपने पास से क्षय होता है (वह वस्तु अपने पास कम जो जाती है), लेकिन नित्य विद्यादान करते रहने से भी वह बढ़ती जाती है।।१८।।

एकोच्चारेण भूदानं दत्तं भवति भूमिप। न हि तद्विद्यते भूय देहपातादनन्तरम् ॥१९॥
विद्यादानं ददद्वत्स एकधा दशधा भवेत्। शतधा कोटिधा गच्छेदिहापि विद्यापारगः ॥२०॥

विद्यादान में एक ही वर्ण का उच्चारण करने-मात्र से भूमिदान के फल की प्राप्ति होती है। देहपात के पश्चात् (परलोकार्थ) इससे अधिक फलदायक कुछ भी नहीं है। हे वत्स! विद्यादान एक गुणित करने पर अगले जन्म में दसगुना, सौगुना, यहाँ तक कि कोटिगुणा विद्वान् हो जाता है।।१९-२०।।

राज्ञा तस्करदायादैर्जलवह्निसरीसृपैः। सर्वदानानि क्रियन्ते विद्या केनापि न क्रियते ॥२१॥
विद्यादानेन दानानि नहि तुल्यानि बुद्धिमान्। विद्या एव परं मन्ये यत्तत् पदमनुत्तमम् ॥२२॥

राजा, चोर, ज्ञातिगण, जल, वह्नि तथा सरीसृप जन्तु सर्वविध देय वस्तु पर अधिकार प्राप्त भले ही कर लें, लेकिन वे विद्या पर कभी भी अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते। विद्यादान परमदान है, ऐसा दान 'न भूतो न भविष्यति' होता है। हे मतिमान्! विद्यादान के समान कोई दान नहीं है। विद्या ही परम वस्तु है, क्योंकि विद्या से ही सर्वश्रेष्ठ पद की प्राप्ति हो जाती है।।२१-२२।।

शृण्वन्नुत्पद्यते भक्तिर्भक्त्या गुरुमुपासते। स च विद्यागमान् वक्ति विद्या ग्रन्थाश्रिता नृप ॥२३॥

विद्या को सुनने से भक्ति उत्पन्न होती है। भक्तिबल से गुरु की उपासना होती है। गुरु ही विद्याजनक आगम का वर्णन करते हैं, वह विद्या हमारे ग्रन्थ में स्थित है। अतएव ग्रन्थलेखन एवं दान करना चाहिये।।२३।।

विद्याविवेकबोधेन शुभाशुभविचारिणः। विन्दते सर्वकामाप्तिं तस्माद्विद्या परागता ॥२४॥
विद्यादानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। येन दत्तेन चाप्नोति शिवं परमकारणम् ॥२५॥

विद्याजनित विवेकज्ञान से शुभाशुभ-विचारक व्यक्तिवर्ग सर्व अभीष्ट को प्राप्त करते हैं। अतएव विद्या ही परम वस्तु है। विद्यादान ही परम दान है, ऐसा दान और नहीं होता, हो भी नहीं सकता। विद्यादान के फल से परमकारण शिव प्राप्त हो जाते हैं।।२४-२५।।

विद्याविचारतत्त्वज्ञो राज्ञः सन्मार्गगामिनः। भुञ्जतेऽपि हि भोगानि गच्छन्ति परमां गतिम् ॥२६॥
अन्त्यजा अपि यां प्राप्य क्रीडन्ते ग्रहराक्षसैः। सा विद्या केन मीयेत यस्याः सर्पाः न सर्पिणः ॥२७॥

जो सभी न्याययुक्त राजागण विद्या को सद्विचार से तथा यथार्थतः जान लेते हैं, वे संसार में प्रचुर भोग प्राप्त करके परलोक में उत्तम गति प्राप्त कर लेते हैं। जिनका आश्रय लेकर अन्त्यज-जैसे हीन व्यक्ति भी ग्रह-राक्षसादि से क्रीड़ा करते हैं, जिसके प्रभाव से सर्प भी शक्तिहीन हो जाते हैं, उस विद्या की तुलना किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती।।२६-२७।।

यवेन कुञ्जरं हन्ति सर्षपेन तुरङ्गमम्। मक्षिकापदमात्रस्य विषस्य विषमा गतिः ॥२८॥

हे वत्स! देखो, विष अति भयानक वस्तु है। इसकी गति अत्यन्त कुटिल है। इसके यव परिमाण भक्षण करते ही हाथी भी मर जाता है। सर्षपमात्र खाने पर भी अश्व नष्ट हो जाता है तथा मक्खी उसको छूते ही मर जाती है। इस प्रकार विष की विषम गति होती है।।२८।।

एवंविधं विषं वत्स विद्यामन्त्रप्रभावतः। जीर्यते भक्षितं पुम्भिस्तस्माद्विद्या परापरा ॥२९॥
न हि विद्या कुलं जातिं रूपं पौरुषपात्रताम्। एषा ते सर्वलोकानां पठिता उपकारिका ॥३०॥

हे वत्स! ऐसे विष को भी शुद्ध विद्या तथा मन्त्र के प्रभाव से मनुष्य खाकर पचा लेता है। अतएव सर्वापेक्षा विद्या ही प्रधान है। असत् कुलोत्पन्न, अन्त्यज, कुरूप अथवा पौरुषहीन से भी विद्या घृणा नहीं करती। प्रत्युत जो भी इसको प्राप्त करता है, उसका उपकार ही होता है।।२९-३०।।

भूतैर्ग्रहीता विध्वस्ता दष्टा वा महापन्नगैः। विद्या उत्थापयेद्वत्स अन्त्यजस्यापि संस्थिता ॥३१॥

हे वत्स! विद्या अन्त्यज जाति के हृदय में रहकर भी भूतग्रस्त अथवा सर्प से डसे व्यक्ति का उपकार-साधन करती है।।३१।।

सर्वेषामेव वृद्धानां विद्यावृद्धो हि मान्यता। वयोवृद्धो हि शूद्राणां विशानां धनधान्यतः।
क्षत्रियाणां तु वीर्येण विप्राणां शास्त्रपारगः ॥३२॥

वृद्धों में जो विद्वान् (विद्यावृद्ध) हैं, वे ही मान्य हैं। शूद्रों में जिनकी आयु अधिक है, वे मान्य होते हैं। वैश्यों में जो सर्वाधिक धनवान होता है, उसका ही लोग सम्मान करते हैं। क्षत्रियगण अपने से अधिक बलवान का सम्मान करते हैं तथा ब्राह्मणगण अपने में से शास्त्रज्ञ व्यक्ति को ही प्रधान मानते हैं।।३२।।

वित्तं बन्धुर्वयश्चैव तपो विद्या यथाक्रमम्। पूजनीया हि सर्वेषां विद्या तेषां गरीयसी ॥३३॥

जन समाज में धन, बन्धु, वयस, तपस्या तथा विद्या उत्तरोत्तर प्रशंसनीय हैं; इनमें विद्या ही सर्वाधिक आवश्यक तथा श्रेष्ठ है।।३३।।

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा। विद्यया लभते विद्या चतुर्थी नोपलभ्यते ॥३४॥
यः कृत्स्नां तु महीं दद्यान्मेरुतुल्यं तु काञ्चनम्। स यद्यन्यायतः पृच्छेन्न तस्योपदिशेत्क्वचित् ॥३५॥

गुरुजन की सेवा, प्रचुर धनव्यय तथा विद्यावत्ता (धारणा शक्ति) से ही विद्यालाभ हो सकता है। इन तीन के अतिरिक्त कोई चतुर्थ उपाय नहीं है। जो कोई भले ही प्रचुर भूमि तथा पर्वत के समान सुवर्णदान करके भी यदि अन्यायपूर्ण प्रश्न करता है, तो उसे कोई उपदेश नहीं देना चाहिये।।३४-३५।।

एवंविधो महाभाग विद्यायामुपवर्णितः। संक्षेपान्न च विस्तारात्तस्य दानफलं शृणु ॥३६॥
श्रीताडपत्रजे संघे समे पत्रसुसंचिते। विचित्रपट्टिकापार्श्वे चर्मणां संपुटीकृते ॥३७॥
रक्तेन अथ कृष्णेन मृदुना वर्धितेन च। दृढसूत्रसुबद्धेन एवंविधकृतेन च ॥३८॥

हे महाभाग। इस प्रकार मैंने तुमसे विद्या के स्वरूप को कहा है। अब अति संक्षेप में पुस्तक-प्रदान करने का फल कहता हूँ; सुनो। पहले तालपत्रों का समभाव में कर्त्तन करके उन्हें एक चर्माधार में रखना चाहिये। तदनन्तर दोनों ओर दो काठ का पटरा देकर काले अथवा लाल सूत्र से उनको बाँधना चाहिये। यही पुस्तक का आकार होता है।।३६-३८।।

यस्तु द्वादशसाहस्रीं संहितामुपलेखयेत्। ददाति चाभियुक्ताय स याति परमां गतिम् ॥३९॥

जो व्यक्ति इसमें १२००० श्लोकों की संहिता स्वयं लिखकर शास्त्र का अनुशीलन करने वाले सत् ब्राह्मण को प्रदान करता है, उसे परमगति मिलती है।।३९।।

पूर्वोत्तरप्लवे देशे सर्वबाधाविवर्जिते। गोमयेन शुभे लिप्ते कुर्यान्मंडलकं बुधः ॥४०॥
चतुर्हस्तप्रमाणेन शुभं तु चतुरस्रकम्। तस्य मध्ये लिखेत्पद्मं सितरक्तरजादिभिः ॥४१॥
सर्वर्त्तुकशुभैः पुष्पैर्भूषयेत्सर्वतोदिशम्। वितानं दापयेन्मूर्ध्नि शुभचित्रविचित्रितम् ॥४२॥

पण्डित व्यक्ति को अपने घर के पूर्व अथवा उत्तरभाग में निरुपद्रव स्थान में गोमय से (लीपकर) चारो ओर चौकोर चार हाथ का एक पवित्र मण्डल-निर्माण करना चाहिये। उसके मध्य में शुभ्र रक्तवर्ण चूर्ण से एक पद्म बनाकर उसको चारो ओर ऋतु में प्राप्त पुष्पों से भूषित करना चाहिये। उसके ऊपर नाना चित्रों से चित्रित वितान (चंदोवा) लगाना चाहिये।।४०-४२।।

पार्श्वतः सितवस्त्रैश्च सम्यक्शोभां प्रकल्पयेत्। कन्दुकैरूर्ध्वचन्द्रैश्च दर्पणैश्चामलैस्तथा ॥४३॥
घण्टाकिंकिणीशब्दैश्च सर्वत्र उपकल्पयेत्। तस्य मध्ये लिखेद्यन्त्रं नागदन्तमयं शुभम् ॥४४॥

उसे दोनों ओर श्वेत वस्त्र से आच्छादित करके पास में चामर, दर्पण तथा अर्द्धचन्द्रादि मांगलिक वस्तु रखकर शोभावृद्धि करनी चाहिये। चतुर्दिक घण्टा-वाद्य लगाना चाहिये। उस मण्डलमध्य में शुभ नागदन्त यन्त्र बनाना चाहिये।।४३-४४।।

अधः कस्मिन् विवर्धन्तु पार्श्वतो हरिदन्तिभिः। शोभितं दृढबन्धेन बद्धं सूत्रेण बुद्धिमान् ॥४५॥
तस्योर्ध्वं विन्यसेद् देव्याः पुस्तकं लिखितं शुभम्। आलेख्यमपि तत्रैव पूजयेद् विधिना ततः ॥४६॥

अधोभाग में पट्टवस्त्र लगाकर पार्श्वद्वय में हाथी-सिंह चित्रित करना चाहिये तथा सूत्र से उसे दृढ़ रूप से बद्ध करना चाहिये (डोर से दृढ़ता से बाँधना चाहिये)। वहाँ वह पवित्र पुस्तक तथा पुस्तक की अधिष्ठात्री देवता का चित्रपट रखकर विधानोक्त पूजा करनी चाहिये।।४५-४६।।

निरुदकैस्तथा पुष्पैः कृमिकीटविवर्जितैः। चन्दनेन सदर्भेण भस्मना चावधूनयेत् ॥४७॥
धूपं च गुग्गुलं देयं तुरुष्कागुरुमिश्रितम्। दीपमालां तथा चाग्रे नैवेद्यं विविधं पुनः ॥४८॥
खाद्यं पेयान्वितं लेह्यं चोष्यं वापि निवेदयेत्। पूजयेत्क्षितिपालाँस्तु लोकपालान् यथाक्रमम् ॥४९॥

पहले जो पुष्प प्रदान किया जाता है, उसमें कृमि-कीटादि नहीं होने चाहिये तथा वे तनिक भी जल से भींगे नहीं होने चाहिये। उनको दूर्वा-मिश्रित चन्दन से सुगन्धित करके भस्म (सुगन्धित) से सुवासित करना चाहिये। तुरुष्क तथा अगुरु-गुग्गुलुयुक्त धूप देना चाहिये। सामने दीपमाला तथा विविध नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर भक्ष्य, पेय, लेह्य, चोष्य रूप चतुर्विध अन्न प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् दिक्पाल तथा लोकपालादि की यथाक्रम से पूजा करनी चाहिये।।४७-४८।।

कन्याः स्त्रियस्तु सम्पूज्य मातराः कल्पयेच्च ताः। पुस्तकं देवदेवीञ्च विप्राणां दक्षिणा तथा ॥५०॥
स्वशक्त्या चैव दातव्या नृपं पौरांश्च पूजयेत्।

पिता, माता, स्त्रीजन तथा कुमारीगण को यथायोग सन्तुष्ट करके पुस्तक तथा देव-देवीगण की पूजा करनी चाहिये एवं इस पूजनादि कार्य के अन्त में ब्राह्मण को स्वशक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर राजा एवं पुरवासीगण का सम्मान करना चाहिये।।५०।।

तथा सम्पूजयेद्वत्स लेखकं शास्त्रपारगम् ॥५१॥
छन्दोलक्षणतद्वंगं सत्कविं मधुरस्वरम्। प्रणष्टं स्मरते ग्रन्थं श्रेष्ठः पुस्तकलेखकः ॥५२॥
नातिसन्ततविच्छिन्नैर्न शुक्लैः न च कर्कशैः। नन्दिनागरकैर्वर्णैः लेखयेच्छिवपुस्तकम् ॥५३॥

शास्त्रज्ञ छन्दोविद् सुकवि स्वरवान् लेखक की पूजा करके उनको सन्तुष्ट करना चाहिये। जो विलुप्तप्राय ग्रन्थ का पुनरुद्धार करने वाला लेखक है, वह पुस्तकलेखकों में सर्वापेक्षा उत्तम एवं श्रेष्ठ होता है। सभी मांगलिक ग्रन्थों को नागरी अक्षर में लिखना चाहिये। वे अतिरिक्त सटे, अत्यन्त दूर किंवा ऐसे न लिखें हों जिनको पढ़ सकना दुर्बोध हो।।५१-५३।।

प्रारम्भे पञ्चश्लोकानि पुनः शान्तिं तु कारयेत्। रात्रौ जागरणं कुर्यात् सर्वप्रेक्षां प्रकल्पयेत् ॥५४॥
नटचारणलग्नैश्च देव्याः कथनसम्भवैः। प्रत्यूषे पूजयेल्लोकाँस्ततः सर्वान् विसर्जयेत् ॥५५॥

पुस्तक के प्रारम्भ में पाँच वन्दना श्लोक तथा अन्त में शान्ति श्लोक लिखना चाहिये। इस प्रकार से पूजा सम्पन्न करके रात्रि में नट, चारण आदि के साथ केवल देवी का गुणानुवाद करते रात्रिजागरण करना चाहिये। अगले दिन प्रातः लोकपालगण की पूजा करके विसर्जन करना चाहिये।।५४-५५।।

एकान्ते सुमनर्क्षेण विस्रब्धेन दिने दिने। निष्पाद्यं विधिनानेन शुभर्क्षे शुभवासरे ॥५६॥
ततः पूर्वोक्तविधिना पुनः पूजां प्रकल्पयेत्। तथा विद्याविमानन्तु सप्तपञ्चत्रिभूमिकम् ॥५७॥
विचित्रवस्त्रशोभाढ्यं शुभलक्षणलक्षितम्। कारयेत् सर्वतोभद्रं किङ्किणीखवरान्वितम् ॥५८॥
दर्पणैरर्धचन्द्रैश्च घण्टाचामरमण्डितम्। तस्मिन् धूपं समुक्षिप्य सुगन्धं चन्दनागुरुम् ॥५९॥
तुरुष्कं गुग्गुलं वत्स शर्करामधुमिश्रितम्। पूर्ववत्पूजयेत् सर्वान् कन्यास्त्रीद्विजपौरवान् ॥६०॥
तथा तं पुस्तके वस्त्रे विन्यसेद्विधिपूजितम्। एवं कृत्वा तथा चिन्त्या मातरः प्रीयतां मम ॥६१॥
यस्यैव शङ्के तच्छास्त्रं पुस्तके प्रविकल्पयेत्। तथा तपस्विनः पूज्याः सर्वशास्त्रार्थपारगाः ॥६२॥
शिवव्रतधरा मुख्या विष्णुधर्मपरायणाः। महता जनसङ्घेन रथस्थं दृढवाहनैः ॥६३॥

एकान्त में बैठकर एकाग्र स्थिति में होकर कहे गये नियम से पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अन्य एक उत्तम नक्षत्र वाले शुभ दिन में पूर्वोक्त नियम से पुनः पूजा करनी चाहिये। इस पुस्तक को रखने के लिये एक छः पाये अथवा सात पाये अथवा तीन पाये की चौकी को विचित्र वस्त्रावरण से आच्छादित करना चाहिये। वहाँ शुभ लक्षण से युक्त सर्वतोभद्र मण्डल को अंकित करके उस पर घण्टा-चामर-दर्पण तथा अर्द्धचन्द्र को सजाना चाहिये। उस पर उस पुस्तक को चन्दनचर्चित करके स्थापित करना चाहिये तथा पुनः पहले की तरह गन्ध-चन्दन-धूप-दीप-मधुपर्कादि नाना उपचार द्वारा कुमारी, स्त्रीजन, द्विज एवं पौरजनों की पूजा करके यथाविधि पुस्तक की भी अर्चना करनी चाहिये। उस समय वह पुस्तक वस्त्र में बंधी होनी चाहिये। तब 'मातृगण मुझपर प्रसन्न हों' यह कहना चाहिये। यह जिस देवता का ग्रन्थ है, उसकी पूजा इस पुस्तकपूजा से ही हो जाती है। तदनन्तर सर्वशास्त्रपारङ्गत तपस्वी गण की जो सर्वशास्त्र पारदर्शी शैव तथा वैष्णव हैं, उनका भी पूजन करना चाहिये। तदनन्तर बहुजन समूह से परिवृत युवा दृढ़ वाहनयुक्त रथ को लाना चाहिये।।५६-६३।।

प्रधानैर्वापि तं नेयं यस्य देवस्य अंशजम्। सामान्यं शिवतीर्थेषु मातराभवनेषु च ॥६४॥
तस्मिन् पूज्यं तथा कृत्वा देवदेवस्य शूलिनः। समर्पयेत्प्रणम्येशं मातरः प्रीयतामिति ॥६५॥

वहाँ इस पुस्तक को उस देवता के समीप रखना चाहिये, जिनके अंश से वह ग्रन्थ सम्भूत है। सामान्यतः सभी पुस्तकों को शिवतीर्थ अथवा मातृभवन में भी ले जाया जा सकता है। उस पुस्तक में महादेव शूलपाणि का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'मातृगण मुझ पर प्रसन्न हों' कहकर मातृगण को प्रणाम करना चाहिये।।६४-६५।।

सदाध्ययनयुक्ताय विद्यादानरताय च। विद्यासंग्रहयुक्ताय सर्वशास्त्रकृतश्रमे ॥६६॥
तेनैव वर्त्तते यस्तु तस्य तं विनिवर्त्तयेत्। जगद्धिताय वै शान्तिं सन्ध्यायां वाचयेत्तथा ॥६७॥
तेन तोयेन दातारं मूर्ध्नि समभिषिञ्चयेत्। शिवं वदेत्ततः सर्वमुच्चार्यं जगतस्तथा ॥६८॥

तत्पश्चात् समस्त शास्त्रपारंगत तथा सर्वदा शास्त्रचर्चारत एवं ग्रन्थसंग्रह के लिये उद्योगी किसी अध्यापक को यह पुस्तक समर्पित करनी चाहिये, जो शास्त्रानुशीलन से ही जीवन-निर्वाह करता हो। सन्ध्याकाल में (वह ब्राह्मण) जगद्बन्धु हरि के लिये शान्तिपाठ करके उस शान्तिपूत जल को पुस्तकदाता के मस्तक पर छिड़क कर कहना चाहिये कि 'इस संसार में सभी का कल्याण हो'।।६६-६८।।

एवं कृते महाशान्तिर्देशस्य नगरस्य तु। जायते नात्रा सन्देहः सर्वबाधाः शमन्ति च ॥६९॥

ऐसा करने से केवल दाता का ही नहीं, प्रत्युत समस्त देश तथा नगर की भी महाशान्ति होती है और सबकी पीड़ा शान्त होती है। यह निःसंदिग्ध है।।६९।।

अनेन विधिना यस्तु विद्यादानं प्रयच्छति। स भवेत्सर्वलोकानां दर्शनादघनाशनः ॥७०॥
मृतोऽपि गच्छते स्थानं ब्रह्मविष्णुनमस्कृतम्। सप्त पूर्वापरान्वंशान् आत्मनः सप्त एव च ॥७१॥
उद्धृता पापकलिना विष्णुलोके महीयते। यावत्तत् पत्रसंख्यानि अक्षराणि विधीयते ॥७२॥
तावत्स विष्णुलोकेषु क्रीडते विविधैः सुखैः। तदा क्षितिं समायातो देव्या भक्तिरतो भवेत् ॥७३॥

जो व्यक्ति इस नियम के अनुसार पुस्तकदान करता है, उसे देखने-मात्र से सभी का सञ्चित पाप भी ध्वस्त हो जाता है और वह देहान्तोपरान्त ब्रह्मा-विष्णु के लिये भी प्रार्थनीय सुखस्थान में गमन करता है। इस व्यक्ति के सत्कर्म-फलस्वरूप उसके पूर्वापर चौदह पीढ़ी वाले तथा अपने से लेकर आगे की सात पीढ़ी वाले मृत पुरुष पापसागर से त्राण पाकर विष्णुलोक में पूजित होते हैं। वहाँ वे तब तक निवास करते हैं, जितने अक्षर उस पुस्तक में होते हैं। तब तक वे विष्णुलोक में विविध सुखभोग करते हैं। तदनन्तर पृथिवी पर जन्म लेकर देवी के भक्त हो जाते हैं।।७०-७३।।

समस्तभोगसम्पन्ने विद्वान् स जायते कुले। विद्यादानप्रभावेण योगशास्त्रं ददेद्यदि ॥७४॥

विष्णुलोक का भोगकाल समाप्त हो जाने पर पुनः इस कर्मक्षेत्र में सत्कुल में जन्म लेकर विद्वान एवं देवीभक्त होकर समस्त लौकिक सुख का भोग करते हैं। यदि वह योगशास्त्र का ग्रन्थ प्रदान करता है उसका यह फल है।।७६।।

आत्मवित्तानुरूपेण यः प्रयच्छति मानवः। अशाठ्यात्फलमाप्नोति आढ्यतुल्यं न संशयः ॥७५॥

मानव को अपनी धनशक्ति के अनुसार यह सब दान करना चाहिये। यदि उसमें धनविषयक शठता नहीं करता, तब धनी को प्रचुर धन व्यय करके जो फल मिलता है, पुस्तकप्रदाता भी वैसा फल प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।७५।।

स्त्रिया वानेन विधिना विद्यादानफलं लभेत्। भर्त्तुरनुज्ञया दत्तं विधवा वा समुद्दिशन् ॥७६॥

सधवा स्त्री स्वामी की आज्ञा लेकर इस विधान से ग्रन्थदान करने पर यथोक्त फल प्राप्त करती है। इसी प्रकार विधवा स्त्री भी अपने मृतस्वामी के लिये स्वर्गप्राप्ति की कामना से यह दान कर सकती है।।७६।।

विद्यार्थिने सदा देयं वस्त्रमभ्यङ्गभोजनम्। छत्रिका उदकं दीपं यस्मात्तेन विना नहि ॥७७॥
लेखनी घटनं तीक्ष्णं मसीपादन्तु लेखनीम्। दत्त्वा तु लभते वत्स विद्यादानमनुत्तमम् ॥७८॥
पुस्तकास्तरणं दत्त्वा तत्प्रमाणं सुशोभनम्। विद्यादानमवाप्नोति सूत्रबन्धन्तु बुद्धिमान् ॥७९॥

हे वत्स! पाठशील (पठनशील) छात्र को सर्वदा वस्त्र, तैल, छत्र, जल, दीप, खाद्य तथा वस्त्र देना चाहिये। यह सब छात्र हेतु नित्य प्रयोजनीय वस्तु है। लेखनी, मसीपात्र, कलम छीलने वाली तीक्ष्ण छूरी तथा पुस्तक की आकृति के अनुसार पुस्तक रखने का आधार छात्र को प्रदान करने से बुद्धिमान व्यक्ति ग्रन्थदान का ही फल पा लेता है।।७७-७९।।

यन्त्रकमासनं चैव दण्डासनमथापि वा। विद्यावाचनशीलाय दत्तं भवति राज्यदम् ॥८०॥
अञ्जनं नेत्रपादानां दत्तं विद्यापरायणे। भूमिगृहन्तु क्षेत्रन्तु सर्वराज्यफलप्रदम् ॥८१॥
यस्य भूम्यां स्थितो नित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तते। तस्यापि भवते स्वर्गं तत्प्रभावान्नराधिप ॥८२॥

यदि केवल भोजपत्र, (पुस्तक का) आसन, ग्रन्थाधार ही शास्त्र का अध्ययन करने वाले अथवा अनुशीलन करने वाले को दिया जाय, तब राज्यदान का फल प्राप्त हो जाता है। हे महाराज! जिसकी भूमि पर नित्य ग्रन्थदान किया जाता है, उस दान के प्रभाव से भूस्वामी भी स्वर्ग प्राप्त करता है।।८०-८२।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विद्या देया सदा नरैः। इहैव कीर्त्तिमाप्नोति मृतो याति परां गतिम् ॥८३॥

इति श्रीदेवीपुराणे विद्यादानमहाभाग्यफलं नामैकनवतितमोऽध्यायः

अतएव सर्वप्रयत्न से ग्रन्थदान करना चाहिये। इससे दाता व्यक्ति इस लोक में यशस्वी होकर परलोक में परमगति प्राप्त करता है।।८३।।

एकनवतितम अध्याय समाप्त

द्विनवतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

त्वमेव परमो देव वेदवेदान्तपूजितः। त्वयापि कथिता देवी पूजिता शिवविष्णुना ॥१॥
सा च सर्वगता शान्ता शिवकालाग्निव्यापका। यत्र यत्र च पूज्येत तत्र तत्र फलप्रदा ॥२॥
कृतं दिवससामर्थ्यं त्रेतायां यज्ञकर्मणा। द्वापरे यजनाध्ययनात् सिध्यन्ते ह्यविचारणात् ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे प्रभो! आप देवताओं के प्रभु हैं तथा वेद-वेदान्त द्वारा आप ही पूज्य हैं। आपने कहा कि देवी की पूजा शिव-विष्णु भी करते रहते हैं। वे देवी सर्वगता शान्ता हैं तथा शिव की काल एवं अग्निमूर्त्ति में भी अधिष्ठिता हैं। कहीं भी उनका आह्वान करके पूजा की जाय, वे पूजक का मनोरथ सिद्ध कर देती हैं। सत्ययुग में तप से, त्रेता में यज्ञकर्म से, द्वापर में यजन से तथा अध्ययन द्वारा निर्विवाद रूप से अभीष्ट प्राप्ति होती है।।१-३।।

एवं पूर्वं त्वया नाथ सूचितं न प्रकाशितम्। कलौ घोरे महाप्राप्ते युगे च तमसावृते ॥४॥
विष्णोः कृष्णत्वमापन्ने कथं देवी वरप्रदा। कस्मिन् स्थाने स्थिता नित्यं द्वीपे वा पृथिवीतले ॥५॥
एतदाख्याहि मे तात प्रसीद सुरसत्तम ॥६॥

आपने इससे पूर्व इसकी सूचना-मात्र दिया था, लेकिन सम्यक् रूप से इसका (विस्तृत) वर्णन नहीं किया था। अब कृपया यह कहें कि घोर कलिकाल उपस्थित होने पर समस्त लोकसमूह को पापाचरण करते देखकर जब भगवान् विष्णु कृष्णरूप से अवतीर्ण होंगे, उस समय देवी पृथिवी के किस द्वीप पर अथवा किस स्थान पर नित्य स्थित होकर वरप्रदा होंगी? हे पिता! हे देवदेव! आप प्रसन्न होकर मुझसे इसका वर्णन कीजिये।।४-६।।

ब्रह्मोवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ निगूढार्थविवेचक। सन्देहविनिवृत्त्यर्थं पृष्ठकं शुभमिच्छता ॥७॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! तुमने अत्यन्त विज्ञ तथा सद्विवेचक होकर भी केवल लोकहितार्थ यह संशय करके जो पूछा है, उसके लिये बारम्बार तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ।।७।।

यथैव भवता पृष्टं देवी सर्वत्रगा शिवा। यथा च नात्र संदेहस्तथैव कथयामि ते ॥८॥
या सा घोरवधार्थाय सर्वदेवनमस्कृता। विन्ध्याद्रौ संस्थिता देवी सा च पूज्या यथाविधिः ॥९॥

तुमने यह जो प्रश्न किया कि देवी सर्वत्र स्थित हैं, तब भी उनका स्थानविशेष में अवस्थान कैसे है? यह सत्य है। तथापि वे जिन-जिन स्थानों में नित्य मूर्त्ति में हैं, वह कहता हूँ। वे घोरासुर के विनाशार्थ देवगण की प्रार्थना से विन्ध्याचल में आविर्भूत होकर वहाँ नित्य स्थित होकर भक्तों की यथाविधि पूजा ग्रहण करती हैं।।८-९।।

मन्त्रद्रव्यक्रियाध्यानान्महासिद्धिकरा नृणाम्। स्त्रीबालविकलान्धानां सा भवेत् सूक्ष्मसिद्धिदा ॥१०॥

मन्त्र, द्रव्य, क्रिया तथा ध्यान—इन चार उपासना विधि से उनकी आराधना द्वारा समस्त सिद्धि प्राप्त की जाती है। वे स्त्री- बालक-अन्धे तथा खञ्ज लोगों को सामान्य उपासना करने पर ही सिद्धि प्रदान कर देती हैं।।१०।।

सर्वकामप्रदा लोके सर्वेषामपि वासव। हिमवत्यचले नन्दा देवी प्रत्यक्षसिद्धिदा ॥११॥
सा च संस्मरणाद्ध्यानाद्यात्रानियमकर्मणि। सिध्यते येन विधिना शिवेन कथिता पुरा ॥१२॥
देव्यायां मम गोविन्द ऋषीणां परिपृच्छताम्। तथा ते कथयिष्यामि शृणु तत्त्वेन वासव ॥१३॥

हे इन्द्र! इसी प्रकार हिमालय पर भी लोग देवी की नन्दा नामक नित्यमूर्त्ति का दर्शन करते हैं तथा वे देवी वहाँ पर सबकी सर्व प्रकार से मनोकामना पूरी कर देती हैं। लोग उनकी मूर्त्ति का स्मरण अथवा ध्यान करके यात्रादि जो भी कार्य करते हैं, वह अनायास पूर्ण होता है। हे देवराज! इस विषय में शिव से पहले मैंने तथा अन्यान्य ऋषिगण ने पूछा था। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा था, उसे कहता हूँ। हे इन्द्र! अवहित होकर सुनो।।११-१३।।

अगस्त्य उवाच

एवं पृष्टः पुरा ब्रह्मा देवराजेन विद्यप। महाभाग्यन्तु देव्यायाः नन्दाया यत्फलं पुनः ॥१४॥
तीर्थयात्राफलं पुण्यं यथा देव्या पपृच्छितम्। तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।
सूर्यलोकं लभेद्राजन् ब्रह्मणा कथितं यथा ॥१५॥

इति श्रीदेवीपुराणे देवीमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे महाराज! पूर्व में ब्रह्मा ने इन्द्र के प्रश्नानुसार नन्दादेवी की आराधना का फल तथा देवतीर्थ यात्रा का फल जिस प्रकार से कहा था, वह मैं अब तुमसे यथावत् कहता हूँ। जीवगण इसका श्रवण करके सूर्यलोक प्राप्त करते हैं।।१५-१६।।

द्विनवतितम अध्याय समाप्त

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

कैलाशशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। अनेकशिखराकीर्णे गणगन्धर्वसेविते ॥१॥
सहस्रकिरणोपेते तप्तकाञ्चनभूषिते। देवताऋषिभिश्चैव सदा सिद्धनिषेविते ॥२॥

अगस्त्य कहते हैं—हे महाराज! कैलास पर्वत अतीव रमणीय है तथा वह गौरिकादि धातु वाले असंख्य शिखरों से घिरा है। वहाँ सूर्य की किरणें समुज्ज्वल तथा काञ्चनराशि के समान सुशोभित हैं। वह गन्धर्वों की नित्य वासभूमि है। वहाँ देवता, ऋषि तथा सिद्धगण विमानों पर सदैव विचरण करते रहते हैं।।१-२।।

विमानकोटिसंच्छन्ने वितानध्वजशोभिते। नृत्यन्ति तत्र वै केचित् केचिद्वादन्ति दुन्दुभिम् ॥३॥
गायन्ति गणगन्धर्वा नृत्यन्ति देवयोषितः। स्तोत्रमुदीरयन्त्यन्ये अन्ये विजयमङ्गलैः ॥४॥

वहाँ करोड़ों विमान हैं तथा वह स्थान ध्वज-वितानादि से भरा है एवं वहाँ गन्धर्वगण नित्य गायन करते हैं। कोई दुन्दुभि प्रभृति वाद्य बजाकर समय व्यतीत करता है तो अन्य कोई देवदेव महादेव के विजयस्तोत्रों को पढ़ता रहता है।।३-४।।

स्तुवन्ति भगवन्देवमृषयश्च महातपाः। चन्द्रादित्यग्रहाश्चैव तथा तारागणा अपि ॥५॥
ये चान्ये त्रिदशाः सिद्धा योगसिद्धा महामखैः। शक्राद्या लोकपालाश्च ब्रह्मविष्णुमरुद्गणाः ॥६॥

वहाँ देवता नृत्य करके शिव को प्रसन्न करते हैं तथा महातपा ऋषिगण, चन्द्र-सूर्यप्रभृति ग्रहगण, तारागण, अन्य देवगण, सिद्धगण, योगीगण तथा अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त इन्द्रादि लोकपाल-ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देवता—सभी वास करते हैं।।५-६।।

सर्वे वसन्ति तत्रैव दिव्यैश्वर्यसमन्विताः। प्रणम्य प्राञ्जलिर्देवी इदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
कौतूहलं महादेव उत्पन्नं मे महेश्वर। मर्त्यलोके महादेव गुप्तस्थानानि कथ्यताम् ॥८॥
कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया। अनिवर्त्तकानि तीर्थानि गुह्यस्थानानि मे प्रभो ॥९॥
तन्मे ब्रूहि सुरेशान यद्यहं तव वल्लभा। श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रश्नं नन्दादेव्या महात्मना ॥१०॥

वे सभी वहाँ दिव्यैश्वर्ययुक्त होकर निवास करते हैं। एक बार वहाँ देवी ने महादेव को प्रणाम करके कृताञ्जलि होकर उनसे पूछा—हे प्रभो! हे महेश्वर! मर्त्यलोक में जो सब गुप्तक्षेत्र तथा अति गोपनीय तीर्थ हैं, जिन स्थानों पर जाकर लोगों को भवबन्धन से त्राण मिल जाता है, हे प्रभो! यदि मैं आपकी प्रेयसी हूँ, तब आप प्रसन्न होकर उन सबका वर्णन करिये। मैं आपसे नन्दादेवी का माहात्म्य जानना चाहती हूँ। यह जानने का मुझमें अत्यन्त कुतूहल है।।७-१०।।

कथं देव प्रविष्टोऽसौ हिमवंते महागिरौ। तीर्थयात्राफलं देव कीदृशं भवति प्रभो ॥११॥
अनिवर्त्तकानि मार्गाणि कुण्डप्रवेशमेव च। प्रसीदति यथा देवी सुकृतेनेह कर्मणा ॥१२॥
नरके पच्यमानानां नराणां परमेश्वर।

हे महेश्वर! नन्दादेवी ने किस कारण से हिमालय में प्रवेश किया था, वह सुनने की भी नितान्त इच्छा है। हे प्रभो! वहाँ तीर्थयात्रा का क्या फल होता है? तथा संसार में ऐसे कितने स्थान हैं, जहाँ जाने पर पुनः गर्भयातना नहीं सहनी पड़ती। हे परमेश्वर! ऐसा कौन-सा पुण्य है, जिसका अनुष्ठान करके देवी प्रसन्न होती है?।।११-१२।।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा देवी व्यवस्थिता ॥१३॥
शृण्वन्तु देवताः सर्वा ये चान्ये च तपोधनाः। कथ्यमानां च तीर्थानां यथा देव्या प्रचोदितम् ॥१४॥

हे परमेश्वर! नारकीय मनुष्य भी (जिसे अनुष्ठित करके) नन्दादेवी की प्रसन्नता प्राप्त कर लेते हैं? (देवी का प्रश्न सुनकर) ईश्वर कहते हैं—हे देवि! यह नन्दादेवी जिस प्रकार से (जिस कारण से) हिमालय पर अवस्थान कर रही हैं, वह कहता हूँ; सुनो तथा इसे देवतागण एवं अन्य ऋषिगण भी सुनें।।१३-१४।।

एवं श्रुत्वा तथा ब्रह्मा शिवस्य वचनं शुभम्। सर्वे चैवागतास्तत्र शिवस्य पुरतः स्थिताः ॥१५॥
अहोपूर्वाणि कथ्यन्ते सर्वे कौतूहलान्विताः। आगतास्ते समीपे तु देवासुरमहोरगाः ॥१६॥

तभी देवी के प्रश्नानुसार महादेव जब गुह्य तीर्थों का वर्णन करने के लिये उद्यत हो ही रहे थे, यह जानकर वहाँ ब्रह्मा भी आ गये तथा देवता-दानव-नागगण सभी प्राचीन वृत्तान्त-श्रवणार्थ अत्यन्त कुतूहलयुक्त होकर भगवान् शिव के पास उपस्थित हो गये।।१५-१६।।

भावितात्मानश्च ते सर्वे हृष्टरोमा समुद्गताः। पार्वत्यास्तु प्रशंसन्ते ययेदं पृच्छितः शिवः ॥१७॥
माता देवासुराणाञ्च वन्द्या च परमेश्वरी। पशूनाञ्च हितार्थाय मोक्षार्थञ्च तपस्विनाम् ॥१८॥
पृच्छते च ततो देवी नन्दाशास्त्रं सुदुर्लभम्। कौतूहलान्विता देव्या शृण्वन्तु शिवभाविता ॥१९॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे सर्वे प्रणतमूर्त्तयः ॥२०॥

आनन्दोदय से उनके शरीर रोमाञ्चित हो गये थे तथा वे इस प्रश्न को उठाने के लिये सुरासुरजननी अखिल लोक में एकमात्र पूज्या परमेश्वरी पार्वती की पुनः पुनः प्रशंसा करने लगे; क्योंकि उन्होंने अज्ञ लोगों के हितार्थ तथा तपशीलों की मुक्ति के लिये महादेव के समक्ष यह प्रश्न प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस नन्दाशास्त्र-हेतु जिज्ञासा प्रकट की थी। तब सभी देवगण तथा अन्य सभी अवनत देह से अञ्जलिबद्ध होकर नितान्त कौतूहल से महादेव के वाक्यों में मन लगाकर दुर्लभ नन्दादेवी का वृत्तान्त-श्रवण करने लगे।।१७-२०।।

ईश्वर उवाच

हिमवत्यचले रम्ये नाना सिद्धनिषेविते। अप्सरोगणसङ्कीर्णे नानावृक्षसमाकुले ॥२१॥
किन्नरीगणसङ्कीर्णे ऋषयश्च तपोधनाः। नित्यं सेवन्ति तत्स्थानं पर्वतं भूधरेश्वरम् ॥२२॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवगण! हिमालय पर्वत अत्यन्त रमणीय है। वह विभिन्न प्रादेशों से शोभित है। उसमें असंख्य सिद्ध, अप्सरा तथा किन्नरीगण वास करते हैं। वहाँ ऋषिगण तप का अनुष्ठान करने के लिये गिरिराज हिमालय का आश्रय सतत् लिया करते हैं।।२१-२२।।

तस्मिन्पुण्यानि तीर्थानि गुह्यस्थानानि यानि च। अनिवर्त्तकानि चत्वारि तानि शृण्वन्तु देवताः ॥२३॥

यहाँ जो अनेक पवित्र गुप्त तीर्थस्थान हैं, उनमें से चार स्थान पवित्रतम कहे गये हैं, जहाँ जाने पर जीव पुनः संसार-यातना का भोग नहीं करता। उसे कहता हूँ। देवगण सुनें।।२३।।

भैरवं चैव केदारं तथा रुद्रं महालयम्। नन्दादेवी चतुर्थं तु पञ्चमं नोपलभ्यते ॥२४॥
शिवतीर्थानि गुह्यानि कथितानि महीतले। अधुना सम्प्रवक्ष्यामि नन्दातीर्थस्य यत्फलम् ॥२५॥
यथा गंगा नदीनान्तु उत्तमत्वेन संस्थिता। तद्वद्भगवती नन्दा उत्तमत्वे व्यवस्थिता ॥२६॥

भैरव, केदार, रुद्र महालय तथा नन्दादेवी—ये चार गुह्य शिवतीर्थ हैं। इनमें से पहले तीन के सम्बन्ध में मैंने पूर्वकाल में कह दिया था। यह चतुर्थ नन्दातीर्थ हिमालयस्थ है। मर्त्यलोक में (ऐसा) कोई पञ्चम तीर्थ नहीं है। अब मैं नन्दातीर्थ का फल कहता हूँ। हे प्रिये! जैसे नदियों में गंगा ही प्रधान है, उसी प्रकार से नन्दादेवी भी सर्वश्रेष्ठ हैं।।२६।।

नगेन्द्राणां यथा मेरुरुत्तमो वै व्यवस्थितः। तारकाणां यथा चन्द्रः प्रभुत्वेन महातपे।
तीर्थानाञ्च तथा नन्दा प्रभुत्वेन व्यवस्थिता ॥२७॥
ग्रहानाञ्च यथा भानुः प्रभुत्वेन व्यवस्थितः। तद्वत् क्षेत्रं महादेवि नन्दायाः परमेश्वरि ॥२८॥
खगेन्द्राणां प्रभुर्यद्वत् सुपर्णो अचलात्मजे। तद्वत् तीर्थं महादेवि नन्दाया उत्तमं प्रिये ॥२९॥
फणीन्द्राणां यथा राजा वासुकिस्त्रिदशार्चिते। तीर्थानामुत्तमं तद्वत् नंदाख्यं सुरसुन्दरि ॥३०॥

हे परमेश्वरि! जैसे पर्वतों में सुमेरु उत्तम है, जैसे ताराओं में चन्द्रमा उत्तम है उनका अधिपति है, वैसे ही नन्दातीर्थ तीर्थों में उत्तम कहा गया है। हे महादेवि! जैसे सूर्यदेव ग्रहों के अधिपति हैं, वैसे ही नन्दाक्षेत्र उत्तम है। हे प्रिये! जिस प्रकार से पक्षिगणों में गरुड़ राजा हैं, उसी प्रकार से नन्दाक्षेत्र भी सर्वोत्तम है। हे प्रिये! जैसे सर्पों (नागों) में उनके राजा वासुकि हैं, उसी प्रकार से हे सुरसुन्दरि! नन्दा देवी को तीर्थों में उत्तम तीर्थ कहा गया है।।२७-३०।।

ऋषीणां च यथा वन्द्यः कश्यपो भृगुरेव च। नन्दातीर्थं महादेवी वन्द्यं पुण्यं च कीर्त्तितम् ॥३१॥
योषितानां यथा भद्रे राज्ञी त्वं सुरनायकि। देवतानामहं देवि नन्दातीर्थं तथा प्रिये ॥३२॥
तस्मात् किं बहुनोक्तेन वर्णितेन पुनः पुनः। मोक्षस्थानं यथा देवि अनौपम्यं सुरार्च्चिते ॥३३॥
अनौपम्यं तथा तीर्थं नन्दाख्यं परमेश्वरि। पृथिव्यान्तु स्थितो वापि नन्दादेवीं प्रकीर्त्तयेत् ॥३४॥

हे महादेवि! जैसे ऋषिगण में कश्यप तथा भृगु वंद्य हैं, उसी प्रकार से तीर्थों में पुण्यक्षेत्र नन्दादेवी प्रसिद्ध तथा वन्द्य है। हे सुरेश्वरि! जैसे स्त्रीगण में तुम स्त्री लोगों की साम्राज्ञी तथा मैं जैसे देवताओं का प्रभु हूँ, उसी प्रकार से समस्त तीर्थों में से नन्दादेवी श्रेष्ठ है। हे देवि! इस सम्बन्ध में बारम्बार अधिक क्या वर्णन किया जाय; जैसे काशीक्षेत्र की संसार में तुलना कहीं से नहीं की जा सकती, उसी प्रकार हे परमेश्वरि! नन्दातीर्थ भी अनुपम ही है।।३१-३४।।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो यः स्मरेद्भावितात्मनः। नन्दास्थानं नराः प्राप्य न ते प्राकृतमानुषाः ॥३५॥
ये व्रजन्ति च तत्रैव अनिवर्त्तपथे स्थिताः। अश्वमेधफलं तेषां नराणां तु पदे पदे ॥३६॥
ये मृतास्तु पथे देवि कुण्डे वा नरपुंगवाः। न तेषां विद्यते मर्त्ये पुनरागमनं प्रिये ॥३७॥

कोई भी व्यक्ति वह चाहे जहाँ कहीं रहता हो, वहीं से नन्दा देवी के माहात्म्य का कीर्त्तन करना चाहिये। वह केवल उसकी भावना, चिन्तन से भी सर्वपापरहित हो जाता है। जो नन्दादेवी क्षेत्र में नित्य अवस्थान करते हैं, वे मनुष्य होकर भी देवता ही हैं। जो इस पुण्यक्षेत्र नन्दातीर्थ में जाता है, उसके प्रत्येक पगसंचार से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। हे देवि! यदि किसी की इस तीर्थ में मार्ग पर अथवा कुण्ड के पास मृत्यु हो जाती है, तब हे प्रिये! उसको पुनः संसार में नहीं आना पड़ता।।३५-३७।।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। सर्वदानेषु यत्प्रोक्तं तपश्चान्द्रायणादिभिः ॥३८॥
कोटिकोटिगुणं कृत्वा यत्पुण्यं सकलं भवेत्। नन्दा सन्दर्शनाद्देवि भवते सुविचारणात् ॥३९॥

हे देवि! इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय। सभी यज्ञों के अनुष्ठान का जो फल है, सभी तीर्थगमन का जो पुण्य है, चान्द्रायणादि कष्टसाध्य तपस्या का जो फल होता है, जो फल असीम दान का है, इन सभी को करोड़ों गुणित करने पर जो पुण्यसंख्या होती है, वह एकमात्र नन्दादेवी के दर्शन से निःसंदेह प्राप्त हो जाती है।।३८-३९।।

देव्युवाच

अश्वमेधं महायज्ञं तपश्चान्द्रायणादिकम्। देव्याः संदर्शनेनाथ व्यर्थमेतत्तथागमाः ॥४०॥

देवी कहती हैं—हे नाथ! तब यह विदित होता है कि अश्वमेधादि समस्त यज्ञ तथा चान्द्रायणादि तपस्या एवं तन्त्रोक्त क्रिया- कलाप आदि सभी किसी भी प्रकार से नन्दादेवी के पुण्य के बराबर नहीं हैं?।।४०।।

परमेश्वर उवाच

न भयं नैव लोभो मे स्नेहो वा सुरवन्दिते। अज्ञत्वं वाथ दीनत्वं येनाहमनृतो ध्रुवम्॥४१॥
तपोयज्ञेषु देवानां सन्तर्पणविधिर्मतः। ते च ब्रह्मादयो भद्रे तैस्तु नन्दा प्रतिष्ठिता॥४२॥
योऽसावनादिमध्यान्तः शिवः शक्तिमयः परः। तस्येयं परमा नन्दा सर्वकिल्बिषनाशिनी॥४३॥

परमेश्वर कहते हैं—हे सुरवन्दिते! मुझमें भय-लोभ-स्नेहादि हैं ही नहीं। अज्ञत्व-दीनत्व आदि से भी मैं रहित हूँ। हे भद्रे! यज्ञ, तपस्या आदि सभी कर्मों से सभी देवगण को परितृप्त किया जाता है। लेकिन ऐसे देवगण, ब्रह्माप्रभृति भी नन्दादेवी का स्तवन करते हैं। उनका (देवी का) आदि-मध्य-अन्त कुछ भी नहीं है। वे शिवशक्तिमयी नन्दादेवी भक्तों की पापराशि को दूर करके परमानन्द प्रदान करती हैं।।४१-४३।।

तत्प्रभावेन प्राप्नोति तपो यज्ञादिकं फलम्। मन्त्राणां देवशक्तीनां न विचारो वरानने॥४४॥
कालिकाहास्यवाक्यानि ग्रहभूतविषापहाः। एवं कलियुगे घोरे यस्मिन् देहान्तरा नराः॥४५॥
भुञ्जन्ति दर्शनात्कन्या तस्य किं तपसादिकम्। अश्वमेधादिकं भद्रे येन त्वं विस्मयं गता॥४६॥

हे वरानने! इस लोक में देवी नन्दा के प्रभाव से समस्त यज्ञ-तपादि का फल मिलता है। उनकी ही कृपा से मन्त्रसमूह में दैवी शक्ति आविर्भूत होती है तथा उनके गुणकीर्त्तन से ही ग्रह-भूत-विषादि का भय नहीं रह जाता। इस घोर कलिकाल में भी नन्दादेवी के सन्निधान में उनके दर्शनजनित पुण्यप्रभाव से ही अपूर्व विषयभोग प्राप्त होता है। हे भद्रे! ये कन्यायें जो उनका दर्शन करती रहती हैं, इनकी न तो कोई तपस्या है, न अश्वमेध आदि अनुष्ठान ही इन्होंने किया है। हे सुन्दरि! इससे तुम विस्मय मत करो।।४४-४६।।

अंगुष्ठोदरमात्रेण वोढुर्यन्मणिना फलम्। न तत्सहस्रपाषाणान् वहनं प्राप्नोति मानव॥४७॥
वेद एव हि धर्माणां प्रवरो धर्मदर्शकः। तस्मिन् सा पूज्यते देवी मानस्तोकेति वेद सा॥४८॥

जैसे अति क्षुद्राकृति अंगुष्ठमात्र मणि को धारण करने से जैसा फल मिलता है (ग्रहादि में रत्नधारण से), वैसा फल हजारों पत्थर ढोने से भी नहीं मिल सकता; वैसे ही असंख्य धर्मानुष्ठान के स्थान पर एक ही बार नन्दादेवी के दर्शन का अधिक फल है। हे देवि! सभी धर्मोपदेष्टाओं में वेद श्रेष्ठ है। यह वेद जिसके श्रेष्ठ प्रमाण हैं, उसी में विधाता ने स्वयं नन्दादेवी की प्रशंसा की है।।४७-४८।।

देव्युवाच

लोकानां तु मनोज्ञानं उद्योतनं प्रति प्रभो। पूर्वपक्षान्यहं नाथ सम्यग्यात्रां निबोधय॥४९॥

देवी कहती हैं—हे विभो! लोक में इस सुमनोभाव-सम्पादक यात्रा का समय, पक्ष आदि कहने की कृपा करिये।।४९।।

परमेश्वर उवाच

मासे भाद्रपदे देवि शुक्लपक्षे व्रजेत्सदा। तस्येच्छा श्रावणेऽषाढे अन्यथा न कदाचन॥५०॥
तेषाञ्च चन्द्रनागस्तु पीडां कुर्यात् सुलोचने। न गच्छन्ति सुराः सिद्धाः किं पुनर्मानुषादयः॥५१॥
विषवातहताः केचिद्धिमवातप्रपीडिताः। विमुच्यन्ते नरा देवि यान्ति देव्या प्रसादतः॥५२॥

परमेश्वर कहते हैं—हे देवि! वर्ष में आषाढ़-श्रावण तथा भाद्र—इन तीन मास के शुक्लपक्ष में इनकी यात्रा करनी चाहिये; अन्य समय में कभी नहीं जाना चाहिये। हे सुलोचने! अन्य काल में यात्रार्थ जाने पर जाने वाले को वहाँ देवी के किङ्कर चन्द्रनाग यातना प्रदान करते हैं। मनुष्य की तो बात ही क्या; उस काल में देवता अथवा सिद्धगण भी वहाँ नहीं जाते। यदि आषाढ़, श्रावण, भाद्र में जाने पर मार्ग में कोई तीर्थयात्री विषवायु से आहत अथवा हिमवायु के स्पर्श से अत्यन्त अशक्त हो भी जाय, तो नन्दादेवी की कृपा से वह ऐसी यातना से मुक्त हो जाता है।।५०-५२।।

पापकर्म्मा नरा ये तु गणाध्यक्षो निवारयेत्। शेषान्वै चन्द्रनागस्तु नित्यं रक्षति तद्गतः ॥५३॥

यदि वहाँ कोई पापिष्ठ व्यक्ति जाता है, उसे गणाध्यक्ष उसे वहाँ पहुँचने नहीं देते। लेकिन जो पुण्यशील है, देवी के किङ्कर चन्द्रनाग उसकी अशेष विघ्न-विपत्ति से रक्षा करते हैं तथा उसे पहुँचा देते हैं।।५३।।

कपिलः पिंगलश्चैव धूमकेतुर्महाबलः। सोमकश्चन्द्रनागश्च रक्षन्ति बलदर्पिताः ॥५४॥
नित्यं रक्षन्ति तत्तीर्थं पञ्चकोटिसमन्विताः ॥५५॥

सोमक, चन्द्रनाग, कपिल, पिङ्गल, धूमकेतु नामक महाबली भृत्य (देवी के भृत्य) पाँच करोड़ अनुचरों से घिरकर नित्य इस तीर्थ की रक्षा करते हैं।।५४-५५।।

उमोवाच

किं पुरस्य तु विस्तारः का सिद्धिः का च रम्यता। को वा विन्यासो हर्म्याणां केन वा निर्मितानि च ॥५६॥
किम्प्रमाणन्तु कन्यानां को वेषो वर्णयौवनम्। उद्यानाः कीदृशाश्चैव दीर्घिका वापि कीदृशी ॥५७॥
किं वा वदन्ति ताः कन्याः नन्दायाः पुरतः स्थिताः। कान्तस्य च कथं प्राप्तिस्तासां वर सुरेश्वर ॥५८॥
कतरेण तपेनैव मर्त्त्या भुञ्जन्ति ताः स्त्रियः। कस्मिंस्तु पूजिता देवी क्षिप्रं प्रत्यक्षतां व्रजेत् ॥५९॥

भगवती उमा कहती हैं—हे प्रभो! नन्दापुरी का विस्तार कितना है? वह कैसा रमणीक है, वहाँ क्या सिद्धि प्राप्त होती है? वहाँ अट्टालिकाओं का निर्माण किसने किया है? किस प्रणाली से वे रक्षित हैं तथा वहाँ के कन्याओं की आकृति-वर्ण तथा यौवन कैसा है? वहाँ के उद्यान तथा दीर्घिका कैसी हैं? हे देवदेव! वे कन्यागण देवी के पास रहकर क्या कहती हैं? उनको पति का लाभ कैसे होता है तथा कैसी तपस्या करके मनुष्य उन कन्याओं का उपभोग कर सकते हैं? कहाँ पर पूजन करने से नन्दा देवी का शीघ्र दर्शन मिलता है?।।५६-५९।।

कस्मिन् क्षेत्रे द्रुता सिद्धिर्नियमेन केन प्रभो। लिङ्गानां लक्षणैश्चैव यस्मिन् सिध्यन्ति साधकाः ॥६०॥
समयाश्च कति प्रोक्ता मन्त्रोद्धारश्च कीदृशः। कीदृशं यजनं देव्या रूपकं चैव कीदृशम्।
एतत्सर्वं यथान्यायं कथयस्व प्रसादतः ॥६१॥

हे प्रभो! किस क्षेत्र में किस अनुष्ठान से द्रुत सिद्धि मिलेगी? यह कहिये तथा किस लक्षणयुक्त लिंगपूजन से साधकगण सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं? उपासना का समय कितना हो, मन्त्रोद्धार का क्या प्रकार है, देवी की पूजा कैसे करनी है तथा उनकी मूर्त्ति कैसी हो? कृपया अनुग्रह करके मुझसे कहिये।।६०-६१।।

ईश्वर उवाच

नन्दा देव्या पुरी रम्या भोगाढ्या सुरवन्दिता। वसन्ति तत्र वै कन्या सततं मदनातुराः ॥६२॥
पादपद्मं सदा पूज्यं नन्दाया वरवर्णिनि। शोचयन्ति सदात्मानं नन्दाया अग्रतः स्थिताः ॥६३॥
अश्रुपातजलौघेन सोष्णेन तु वराङ्गनाः। नन्दाया पादपद्मौ तु अजस्रं क्षालयन्ति ताः ॥६४॥

ईश्वर कहते हैं—हे प्रिये! नन्दादेवी अतिशय रम्य पुरी है। विविध भोगों से युक्त होने से सुरों द्वारा भी वन्दित है। देवगण भी वहाँ की इच्छा रखते हैं। वहाँ देवकन्यागण कामार्त होकर नित्य विराजित रहती हैं। हे सुन्दरि! वे देवी के समक्ष रहकर अत्यन्त (प्रेम में) शोकाकुल होकर उनके चरणकमलों की अर्चना करती रहती हैं। उनके नेत्रों से बह रही उष्ण अश्रुधारा देवी के चरणद्वय का प्रक्षालन करती रहती है।।६२-६४।।

कन्यका ऊचुः

किं कार्यं जलक्रीडायां दोलाक्रीडनकेन किम्। उद्यानक्रीडनैर्वापि द्यूतक्रीडनकेन किम् ॥६५॥
पुस्तकवाचनेनापि काव्याख्यायिकक्रीडया। वीणाशास्त्रेण किं कार्यं चित्रपत्रपरिच्छदैः ॥६६॥
उन्मत्तचेष्टितं सर्वं पतिहीनं महातपे। मृदंगपटहैः शब्दैर्वल्लकीपणवादिभिः ॥६७॥
नृत्यवादित्रकं सर्वं पतिहीनं न राजते। वेणुवीणानिनादेन विपञ्चिद्ध्वनिनादितैः ॥६८॥
किंवा लम्बूकवीणायां कार्यं पिञ्जलकेन किम्। व्याधितस्य यथाक्रन्दस्तद्वत्तत्रोर्ध्वनिःस्मृता ॥६९॥

कन्यागण कहती हैं—हे देवि! हमारी जलक्रीड़ा, दोलाक्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, वनविचरण, पुस्तकपाठ, काव्यरचना, वीणाशास्त्र परिचय, चित्रलेखन, वेशरचना—सभी निष्फल हैं। स्त्रीगण के लिये पतिविरहित सभी कार्य पागल की क्रिया ही है। पतिविहीना के लिये मृदङ्ग, पटह, वल्लकी, पणवादि वाद्य का परिचय तथा नृत्यकार्य कुछ भी शोभित नहीं होता। वेणुवीणादि वाद्य, विपञ्चिध्वनि-निनाद, लम्बूक वीणावादन, पिञ्जलकादि की ध्वनि भी पतिविहीना के कानों में कर्कश ध्वनि के समान ही लगती है।।६५-६९।।

अरण्यरुदितं सर्वं विधवानां सुरेश्वरि। किं वा रूपेण कर्त्तव्यं किं कार्यं यौवनेन च ॥७०॥
मकरीकरपत्रैश्च पयोधरकपोलयोः। ललाटैर्तिलकैर्वापि विन्यस्तैः किं प्रयोजनम् ॥७१॥
को वा आगत्य मर्त्योऽस्मिन् यः परिष्वज्य मर्दयेत्। वस्त्रैर्विलेपनैर्दिव्यैः स्रग्दामभ्रमराकुलैः ॥७२॥
मुकुटैश्चुटकैर्वापि किम्वा लालाटपट्टिकैः। यद्वद्भित्तिषु चित्राणां मण्डनं तद्वन्निष्फलम् ॥७३॥

हे सुरश्रेष्ठा! पतिविहीना के लिये रूप-यौवनादि सभी अरण्यरोदनवत् निष्फल हैं। ऐसे कौन दयालु हैं जो आकर आलिङ्गनादि से उनको सुखी करें? जैसे गृहभित्ति के अन्दर चित्र-विचित्र वस्त्र, विलेपन, चूड़ा, मुकुट, भ्रमराकुल माल्यादि से चित्र को सुशोभित करने पर भी उसमें कोई प्रयोजन साधित नहीं होता, उसी प्रकार पतिविहीना के स्तनयुगल तथा कपालदेश पर मकरादि अंकन, ललाट पर तिलक-अंकन नितान्त निष्प्रयोजन ही होता है।।७०-७३।।

दयां कुरु सुराध्यक्षे नान्यस्त्राता सुरेश्वरि। एवं याचन्ति देवेशि भर्त्तारं नन्दमन्दिरे ॥७४॥
उद्यानदीर्घिकैर्वापि प्रवालाङ्कुरशोभितैः। क्वचित्स्फटिकसोपानैः क्वचिन्मरकतसञ्चितैः ॥७५॥
क्वचिद्हाटकसम्भूतैः इन्द्रनीलमयैः क्वचित्। रजोवर्त्तमयैर्दिव्यैः क्वचिद्वज्रविनिर्मितैः ॥७६॥
तपनीयोद्भवैः पद्मैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः। सितासितैस्तथा रक्तैः श्रीमुखैर्मुखरैस्तथा ॥७७॥
हंससारससंगीतैः जीवंजीवकनादितैः। नानापक्षिगणैः रम्यैः शोभन्ते दीर्घिकाः सदा ॥७८॥

हे सुराध्यक्षे! आप कृपा करिये। आपके अतिरिक्त इस विपदा से रक्षा करने वाला कोई नहीं है। हे पार्वति! नन्दा मन्दिर की कन्यायें देवी के पास ऐसी प्रार्थना करती हैं। हे प्रिये! एक दीर्घिका में कहीं स्फटिक का, कहीं मरकतमणि का, कहीं इन्द्रनीलमणि का तो कहीं काचमय कमल लगा होता है। कहीं वह रजोवर्त्तमय दिव्यरूप है, तो कहीं हीरा से निर्मित है। कहीं विद्रुम का बना है। शुभ्र, कृष्ण, रक्तादि नानावर्ण के पक्षिगण विचरण कर रहे हैं। हंस-सारस आदि के कर्णसुखकारी संगीत से तथा जीवञ्जीवक के निनाद से यह दीर्घिका शोभित है।।७४-७८।।

कान्तहीना महादेवि वने च पुष्करिणीव। अशोकबकुलैर्नागैः शुभैस्तिलकपञ्चकैः ॥७९॥
पुन्नागनागबकुलैः पनसैर्ब्रह्मयष्टिकैः। जम्बीरैर्बीजपूरैश्च पुष्कलैरुपशोभितम् ॥८०॥

हे महादेवि! यह नितान्त भोगस्थानरूप होने पर भी कान्तहीन (पतिरहित) नारीगण के लिये वन में स्थित क्षुद्र पुष्करिणी के समान प्रतीत हो रही है। अशोक-बकुल-नाग-तिलक-चम्पक-पुन्नागप्रभृति पुष्पवृक्ष तथा अमृत के समान सुस्वादु जम्बीर, बीजपूरक, जम्बूक प्रभृति वृक्षों से यह शोभित है।।७९-८०।।

एवमादिफलैः रम्यैः सुस्वादैरमृतोपमैः लवलीफलकङ्कोलैः लवङ्गलकुचैस्तथा ॥८१॥
तमालपत्रकर्पूरैः जातीफलसदाडिमैः ॥८२॥

सुरपादपसङ्कीर्णं सरलैर्देवदारुभिः। नानावल्लीसमाकीर्णं लतागुल्ममहौषधैः ॥८३॥
नानापुष्पफलोपेतं नित्यं मुनिमनापहम्। अम्बिके नाथहीनन्तु पैत्र्यं वावरपादपम् ॥८४॥

इसी प्रकार लवलीफल, कंकोल, नारङ्ग, लकुच, तमाल, कर्पूर, जातीफल, अनारप्रभृति वृक्षों से समाकुल तथा सरल देवदारु प्रभृति सुरपादपों से समाकीर्ण, विविध लता, गुल्म तथा औषधियों से व्याप्त, नित्य पुष्प-फलादि से शोभित, मुनियों के चित्त की भी मलिनता को दूर करने वाला यह उद्यान भी पतिहीना नारीगण के लिये जनशून्य तथा हिंसक जन्तुयुक्त निबिड़ वन के समान प्रतीयमान होता है।।८१-८४।।

तपनीयोद्भवैर्हम्यैः स्तम्भैर्विद्रुमसंप्रभैः। क्वचित्स्फाटिककुण्डैश्च राजपट्टैर्मयैः दृढैः ॥८५॥
पुष्परागमयैश्चान्यैः क्वचिद्वज्रसुसञ्चितैः। इन्द्रनीलमयैश्चान्यैः द्वारैर्मेखलयोजितैः ॥८६॥
कपाटैः पद्मरागोत्थैर्महानीलमयैः क्वचित्। द्वारैश्चैवोपद्वारैश्च राजासनसुरञ्जितैः ॥८७॥
वातायनोर्ध्वमार्गैश्च तथा सोपानपंक्तिभिः। वाद्यहर्म्यैर्मनोरम्यैर्नित्यं गन्धर्वसङ्कुलैः ॥८८॥
घण्टाचामरविन्यस्तैः किङ्किणीजालमण्डितैः। विन्यस्तवस्त्रसङ्घातैरातपत्रवितानकैः ॥८९॥
मौक्तिकद्राममालाभिः क्वचित्स्रग्दाममण्डितैः। मन्दिरैर्मन्दराकारैर्मयसद्भावकल्पितैः ॥९०॥
द्विसप्तभूमिकोपेतैः सुरम्यैः सोज्ज्वलैर्ग्रहैः। हेमप्राकाररचिता प्रतोली गजमण्डिता ॥९१॥
ध्वजमालाकुला दिव्याः सिंहद्वारैस्तु शोभिता। विटंकोत्पलगोतुङ्गाः स्वर्गाद्रम्यतरा पुरी ॥९२॥
नाथहीना महादेवी रौद्रा यमपुरीरिव। वरं मर्त्या च वनिता पतिमाश्रित्य संस्थिता ॥९३॥
पतिहीना न शोभन्ते अम्बिके कल्पजीविता। अयुतं योजनानान्तु नन्दादेव्याः पुरी प्रिये ॥९४॥
कोटिकोटिभिः स्त्रीणान्तु समन्तात्पूरिता पुरी। चित्राम्बरधराः सर्वाश्चित्रगन्धानुलेपनाः ॥९५॥

हे अम्बिके! इस पुरी के स्वर्णमय प्रासादसमूह प्रवालस्तम्भ, स्फटिकस्तम्भ तथा रत्नमय दृढ़ कुट्टिम से शोभित हैं, जिसके गवाक्षपथ में मणिमय हाथी खुदे हुये हैं। जहाँ वाद्यागार समूह संगीतकुशल गन्धर्वों से व्याप्त है तथा जहाँ के सभी गृह घण्टा-चामर आदि विविध वस्तु से युक्त हैं तथा प्रति गृह वितान एवं छत्रादि छोटी घण्टियों से भूषित हैं तथा शिल्पीश्रेष्ठ मयासुर के शिल्पकौशल से निर्मित मन्दराकृति सभी मन्दिर मुक्तामाला तथा पुष्पमाला से विभूषित हैं, सभी मन्दिरों में नौ-नौ शिखर हैं तथा पुरी के चारो ओर स्वर्ण का सुन्दर प्राचीर है, सामने का द्वार हाथियों से रक्षित है, सिंहद्वारों पर फहराती ध्वजा शोभित है तथा गगनचुम्बी गृहसमूह जिसका शोभावर्द्धन कर रहे है, हे देवि! उस स्वर्ग की अपेक्षा अत्यन्त मनोहर पुरी भी पतिरहित स्त्रीगण हेतु भीषण लौहमयी पुरी की तरह दुःख का ही कारण हो गयी है। हे महादेवि! यह हमें यमपुरी-जैसी रौद्रपुरी लग रही है। हे प्रिये! स्त्रीगण के लिये दुःखमय, क्षणध्वंसी मर्त्यलोक भी पति के साथ सुखदायी प्रतीत होता है, लेकिन पतिविरहित होकर कल्पपर्यन्त जीवित रहना तो दुःख का ही कारण है। हे देवि! नन्दादेवी अयुत योजन विस्तृत

है तथा असंख्य नारियों से भरा है। यहाँ कोटि-कोटि नारीगण हैं। वे विचित्र मालाधारिणी एवं सर्वतः विचित्र गन्धलेपयुक्ता हैं।।८५-९५।।

चित्रमाल्यधराः नित्यं चित्राभरणभूषिताः। चित्रवर्णधराः सर्वाः विचित्रगतिगामिनि ॥९६॥
नानावाद्यरता नित्यं नानागन्धर्वतत्पराः। नानाक्रीडाप्रमत्तास्तु नानालेख्यरताः सदा ॥९७॥
नानाशास्त्रार्थसम्पन्ना नानालेख्यरताः स्त्रियः। अक्षीणयौवनाः सर्वा जरामृत्युविवर्जिताः ॥९८॥
नन्दा पुरवरे कन्याः मध्यमाधमवर्जिता ॥९९॥

ये अति सुन्दर भाव से विचरती रहती हैं, सर्वदा गन्धर्वों के साथ मिलित होकर विविध वाद्यों का वादन करती हैं। ये सभी नाना क्रीड़ारता, विचित्र गतिगामिनी, नाना चित्ररचना करती रहती हैं। ये अनेक शास्त्र की पण्डिता हैं। ये सभी सर्वोत्तम स्थिरयौवना कन्यागण जरा-मृत्यु से रहित होकर नन्दापुर में वास करती हैं। इनमें अधम-मध्यम-उत्तमादि भेद नहीं है।।९६-९९।।

उमोवाच

रूपातिशयसम्पन्ना नानागुणसमन्विताः। किमर्थं दुखिताः जाता कान्तसौख्यविवर्जिताः ॥१००॥

उमादेवी कहती हैं—हे नाथ! ये कन्यागण अतीव सुन्दरी, अशेष गुण वाली होने पर भी पति से रहित होकर क्यों दुःख भोगती हैं, यह कहिये।।१००।।

ईश्वर उवाच

दमयन्ती यथा सीता रूपातिशयपारगा। दुःखितास्तेन सञ्जाता कान्तसौख्यविवर्जिताः ॥१०१॥
अहल्या बंधकी जाता गोतमस्य तु योषिता। रूपस्य तु प्रभावेण दासी जाता तिलोत्तमा ॥१०२॥
तस्माद्रूपञ्च नेच्छन्ति लक्षणज्ञास्तपोधनाः। अतिरूपेण स्वल्पायुः पुरुषो योषितोऽपि वा ॥१०३॥
अथवा सौम्यहीनस्तु जायते तु महातपे। नन्दापुरवरे देवि कन्यकानान्तु चेष्टितम् ॥१०४॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवि! दमयन्ती, सीता प्रभृति देवीगण असामान्य रूपवती थीं। इसीलिये इनको पतिविच्छेद के कारण अतीव दुःख भोगना पड़ा था। गौतमपत्नी अहल्या पाषाणी बन गई थी, उनकी सुन्दरता ही इसका एकमात्र कारण है। अप्सरा तिलोत्तमा भी रूपवती होने के कारण देवगण की दासी हैं। इन सभी कारणों से लक्षणज्ञ तपस्वीगण रूप का आदर नहीं करते तथा स्त्री अथवा पुरुष अत्यन्त रूपवान होने पर अल्पायु होता है अथवा कुछ भी सुखोपभोग नहीं कर पाता। इसी कारण नन्दापुरी की (रूपवती) कन्यायें शोक करती रहती हैं।।१०१-१०४।।

उदाहृतं मया भद्रे यथा पृष्ठं त्वया प्रिये। पूजास्थानानि वक्ष्यामि यस्मिन् सान्निध्यतां व्रजेत् ॥१०५॥
लिंगस्थां पूजयेद्देवीं स्थण्डिलस्थां तथैव च। पुस्तकस्थां महादेवीं पादुके प्रतिमासु च ॥१०६॥
चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत्। अग्निस्थां पूजयेत्प्राज्ञो हृदये वा सुशोभने ॥१०७॥
एभिः स्थानैर्महादेवी पूजिता वरदा भवेत्। मम पार्श्वे श्रुतं यैस्तु ज्ञातं देवि तपोधनैः ॥१०८॥
तेऽपि वन्द्या अहं यद्वच्छिवधर्मपरायणाः। तल्लिंगमाश्रयेन्मन्त्री शुक्राद्यैर्यत्प्रतिष्ठितम् ॥१०९॥

हे भद्रे! तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया था, मैंने उसका तदनुसार उत्तर दे दिया। अब नन्दादेवी का अर्चना स्थल कहता हूँ, जहाँ पूजा करने पर देवी का सान्निध्य मिलता है। हे महादेवि! विद्वान् व्यक्ति को शिवलिंग, स्थण्डिल, पुस्तक, प्रतिमा तथा उन देवता की पादुकाद्वय पर, चित्रित पट पर, खड्ग, बाण, जल, अग्नि अथवा अपने हृदय में नन्दादेवी का पूजन करना चाहिये। इस अर्चना से वे प्रसन्न होकर वर प्रदान करती हैं। हे देवि! जैसे मैं सबके द्वारा पूजनीय हूँ, उसी प्रकार जिन

ऋषिगण ने मुझसे यह सब विषय सुना है, वे परमशैव तपस्वीगण भी मेरे ही समान पूज्य हैं। जो लिंग शुक्रादि (महत् आत्माओं द्वारा) प्रतिष्ठित हैं, मन्त्रज्ञ को उनका ही आश्रय लेना चाहिये।।१०५-१०९।।

कचाद्यैर्यत् कृतं लिङ्गं वर्जनीयन्तु साधकैः। कल्पसौख्यप्रदं प्रोक्तं वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठितम् ॥११०॥
साधिकारं तु यल्लिङ्गं मुक्तभोगं तथैव च। ज्ञातव्यं साधकेन्द्रेण सिद्धिदं चाप्यसिद्धिदम् ॥१११॥

कदाचित् (अथवा कच द्वारा स्थापित) जो लिंग है, उसका साधक को त्याग कर देना चाहिये (वह वैदिक मन्त्रों से प्रतिष्ठित होने पर भी सविकार है अर्थात् उसमें पूर्वापेक्षा अनेक विकृत भाव आ जाते हैं)। उसमें पूर्वापेक्षा अनेक परिवर्तन हो जाने के कारण उसकी अर्चना से सामान्य लाभ होता है। भले ही ऐसे लिंगों ने पूर्व में सिद्धि प्रदान किया हो, लेकिन अब वे लिंग सिद्धि नहीं दे सकते। यह श्रेष्ठ साधकों को जान लेना चाहिये।।११०-१११।।

देव्युवाच

साधिकारं तु यल्लिङ्गं वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठितम्। निवर्त्तितविकारञ्च उक्तं शम्भुं स्वयम्भुवम् ॥११२॥
कुर्वन्ति भक्तिवात्सल्यं लोकानां वासनात्मकम्। दुर्विज्ञेयमिदं ज्ञानं योगिनामप्यगोचरम्।
मर्त्यैर्जडधियैर्नाथ कथं विज्ञायते प्रभो ॥११३॥

देवी कहती हैं—हे प्रभो! आपने कहा है कि प्रतिष्ठित सविकार भक्तिप्रिय शम्भु प्रतिष्ठित होने पर भक्त की कामना पूर्ण कर देते है, यह लिंगविषयक ज्ञान योगीगण हेतु दुर्ज्ञेय है। इसे क्षुद्रबुद्धि मानव कैसे जान सकता है?।।११२-११३।।

ईश्वर उवाच

साधु साधु महादेवि रहस्यमिदमुत्तमम्। यत्त्वया चोदितं भद्रे तथैव च न चान्यथा ॥११४॥
दुर्विज्ञेयं सुरैश्चापि किं पुनर्मर्त्यजन्तुभिः। आधिष्टो साधकं ज्ञेयं हृदयानन्दकारकम् ॥११५॥
इन्द्रियाणां चौत्सुक्यं ददाति लिङ्गदर्शने। सेव्यमानं ततो लिङ्गं नित्यानन्दप्रदायकम् ॥११६॥
सुस्वप्नो पश्यते नित्यं विमानस्थां वराङ्गनाम्। भैरवं पश्यते नित्यं क्रीडन्तं मातृमण्डले ॥११७॥
उमामहेश्वरं वापि स्वप्ने पश्यति साधकः। अनिवर्त्तिताधिकारञ्च लिङ्गं च त्रिभुवनेश्वरम् ॥११८॥

ईश्वर कहते हैं—हे महादेवि! तुम्हारा यह अति रहस्यपूर्ण प्रश्न श्रवण करके तुमको बारम्बार साधुवाद देता हूँ। हे भद्रे! तुमने जो कहा है, वही उचित है; अन्यथा नहीं है। क्योंकि देवगण भी इसका यथार्थ जान सकने में अक्षम हैं। सामान्य मर्त्य जीव कैसे जान सकते हैं? जिनके हृदय में जिस लिंगदर्शन से आनन्द होता है, (उसके प्रति) इन्द्रियों में उत्सुकता जाग्रत होती है, उसमें ही भगवान् को नित्य स्थित जानना चाहिये। उसकी सेवा करने से साधक नित्य आनन्दमग्न रहकर स्वप्न में विमानचारिणी देवकन्या तथा मातृमण्डल में क्रीड़ारत भैरव एवं उमामहेश्वरमूर्त्ति का दर्शन प्राप्त करते हैं। हे त्रिभुवनेश्वरि! उसे ही विकाररहित लिंग कहा गया है।।११४-११८।।

आक्रामन्ति महाविघ्नाः सदैत्याः राक्षसादयः। शून्यागारं यथा देवि आक्रामन्ति नराः प्रिये ॥११९॥
अनर्चितन्तु भुञ्जन्ति तथा लिङ्गन्तु कश्मलाः। प्रेतं तथा सुराध्यक्षे आक्रामन्ति पिशाचकाः।
शून्यं च वाङ्गलिङ्गन्तु आश्रयन्ति तथा प्रिये ॥१२०॥

हे प्रिये! जैसे बहुत कालपर्यन्त जनसमागमरहित भवनों में यक्ष-दैत्य आदि का आश्रय स्थल हो जाता है तथा वे निकट-स्थ लोगों का विघ्न करते हैं, वही सविकार है। हे प्रिये! इसी प्रकार से जहाँ बहुत काल-पर्यन्त पूजादि नहीं की जाती, वह विकृत (देवशून्य) लिंग विघ्नकारी प्रेत-पिशाचादि का आश्रय हो जाता है और वही सविकार लिंग है।।११९-१२०।।

श्रीदेव्युवाच

पर्याप्तञ्च श्रुतेनैव तव वाक्येन शंकर। विशेषोत्पादितो मह्यं सुतरां गहनं कृतम् ॥१२१॥
सूक्ष्मरूपा यदा विघ्नाः राक्षसा भूतनायकाः। ईदृशीं तनुमास्थाय लिङ्गं भुञ्जन्ति वै सदा ॥१२२॥
तदा तेऽपि मनोरम्यं स्थानं कुर्वन्ति शंकर। साधकस्य सदानन्दं तेऽपि कुर्वन्ति नित्यशः ॥१२३॥
स्वप्नांश्च शोभनान् देवी साधकस्य ददन्ति च। पूजार्थिनो महावीर्याः प्रीतिं कुर्वन्ति साधके ॥१२४॥
प्रभावयन्ति दुष्टात्मा वदन्ति वरदा भव। तस्य वर्षशतेनापि कुतः सिद्धिः प्रजायते ॥१२५॥

देवी कहती हैं—हे शंकर! आपसे अनेक कथायें सुनीं, लेकिन एक विषय में मेरा चित्त नितान्त संशययुक्त हो गया है। उसे पूछती हूँ। यदि विघ्नकारी राक्षस तथा पिशाचादि अतीव सूक्ष्म देह धारण करके अनर्चित शिवरहित लिंग में आश्रय लेकर नित्य भोग प्राप्त करते हैं तथा यदि वहीं लिङ्गसाधक पूजक को वे ही आश्चर्ययुक्त सुस्वप्न दिखला दें तब वे महाबली पिशाचगण साधक की नित्यपूजा पाकर उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो जायेंगे तथा वे दुष्टाशय वाले अपने ईश्वरत्व को स्थापित करके साधक को वर देने हेतु कहेंगे, ऐसे उनके वाक्य पर विश्वास करके वह उस देवशून्य (तथा पिशाचयुक्त) लिङ्ग की १०० वर्ष-पर्यन्त अर्चना द्वारा साधक को इष्टसिद्धि होगी अथवा नहीं होगी?।।१२१-१२५।।

ईश्वर उवाच

महाचोद्यं महादेवि अनौपम्यं सुरार्च्चिते। ब्रह्माद्यैरपि देवेशैरीदृशं न प्रचोदितम् ॥१२६॥
यथावत्कथयिष्यामि मा विषादं कुरु प्रिये। अघोरास्त्रं न्यसेत्तस्मिन् स्वादकञ्च महाबलम् ॥१२७॥
दंष्ट्रैः करकरायन्तु ज्वलन्तं विदिशैर्दिशैः। पक्षमेकं यथा देवि यथास्थानं सुखावहम् ॥१२८॥
अर्च्यमानं तु तल्लिङ्गं स्वप्नं ददति पूर्ववत्। साधिकारं तु तल्लिंगमाशु सिद्धिप्रदायकम् ॥१२९॥

ईश्वर कहते हैं—हे महादेवि! हे सुरेश्वरि! तुमने जो कुछ पूछा है, वह एक महान् जिज्ञासा है। ब्रह्मादि देवगण ने भी (आज तक) ऐसी जिज्ञासा नहीं की। हे प्रिये! इसका उत्तर देता हूँ। तुम विषादरहित होकर श्रवण करो। प्रथमतः अपूजित लिंग के चतुर्दिक दंष्ट्रासमूह से (दाँतों से) प्रज्वलित हो रहे अघोरास्त्र मन्त्र का निक्षेप करके पूजा करनी चाहिये। ऐसे एक पक्ष पूजा करने पर पूजक को पूर्वोक्त प्रकार का स्वप्न होगा। ऐसा लिंग ही सविकार लिंग है, जो (तत्काल) शीघ्रता से फल देता है।।१२६-१२९।।

अजाविकखरोष्ट्रैश्च आरूढां पश्यते तनुम्। उद्वेगः कलहो नित्यं सखापानान्तु जायते ॥१३०॥
कृष्णाम्बरधरां नारीं रात्रौ पश्यति साधकः। तस्मात् किम्बहुनोक्तेन तल्लिङ्गं राक्षसालयम् ॥१३१॥
वर्जनीयं प्रयत्नेन मृत्युरोगभयावहम्। उपायं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रहीने प्रतिष्ठिते ॥१३२॥
स्वयन्तु पठ्यते लोके न च तथ्येन सुन्दरि। ऊषरे तु यथाधान्यं स्थापितं निष्फलं भवेत् ॥१३३॥

जिस लिंगपूजन से सर्वदा उद्वेग तथा अकारण कलह हो तथा रात्रि में छाग, मेष अथवा ऊँट पर बैठी काली वस्त्र पहनी नारीमूर्त्ति दिखलाई पड़े, अधिक क्या कहें, वह राक्षसाधिष्ठित लिंग होता है। उसकी पूजा से मृत्यु-रोग-भय आते हैं। अतः उसका यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। मन्त्रप्रयोग बिना ही स्थापित लिंग का उपाय कहता हूँ। लेकिन हे सुन्दरि! लोग इसे सुनकर हास्य करेंगे; अतः इसे नहीं कहना चाहिये। जैसे ऊषर में बोया बीज निष्फल होता है, वैसे ही इसे लोगों से कहना भी निष्फल होता है।।१३०-१३३।।

लिङ्गे मन्त्रविहीने तु पूजनं निष्फलं भवेत्। उपायं सम्प्रवक्ष्यामि तस्यापि मृदुभाषिणि ॥१३४॥
प्रसन्नां धारयेत्प्राज्ञ आवेशं वाथ पण्डितः। स्वयम्भुः कल्पितञ्चापि कथितं सिद्धिबलाबलम् ॥१३५॥
पवर्गाच्चतुर्थे वर्गे विपरीतसुलोचने। तस्यापि प्रथमे वर्गे आदिबीजं तृतीयकम् ॥१३६॥

मन्त्रप्रयोग विना ही स्थापित लिंगपूजन से कोई फल नहीं होता। हे मृदुभाषिणि! अब उसका उपाय कहता हूँ (यहाँ श्लोक १३५ तथा १३६ में मन्त्रोद्धार है। वह गोपनीय होने से मन्त्रोद्धार व्यक्त करना वर्जित है)।।१३४-१३६।।

प्रसन्ना च सदा देवि इष्टानिष्टप्रसूचनी। किं चात्र बहुनोक्तेन स्वयं सङ्कल्पिते प्रिये ॥१३७॥
आश्रयस्तत्र कुर्वीत आशुसिद्धिप्रदायिके। दुष्टसत्त्वसमाकीर्णे जने भक्तिविवर्जिते ॥१३८॥

वे देवी प्रसन्न होकर, पूजित होकर इष्ट-अनिष्ट की सूचना प्रदान कर देती है। इस विषय में अधिक क्या कहूँ, स्वयं विवेचन करके इनका आश्रय लेने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है। दुष्ट जन्तु से समाकीर्ण स्थान में आश्रय नहीं लेना चाहिये। भक्ति- रहित (लोगों के) स्थान में भी आश्रय लेना उचित नहीं होता।।१३७-१३८।।

न कुर्यादाश्रयं मन्त्री दिङ्मोहो यत्र जायते। न कुर्याद्विदिशे तीर्थं स्नानपानं शिवात्मनि ॥१३९॥
वापीकूपतडागं वा प्रासादं वा निकेतनम्। न कुर्यात् तृप्तिकामस्तु अनलानिलनैर्ऋते ॥१४०॥

वहाँ मन्त्रज्ञ को आश्रय लेने से उसे मार्गभ्रम हो जाता है (अर्थात् भौतिक रूप से मार्गभ्रम तथा बौद्धिक रूपेण मार्गभ्रम)। मन्त्रज्ञ साधक को कभी किसी अनजाने तीर्थ में जल में स्नान अथवा जलपान नहीं करना चाहिये। वहाँ वापी-कूप-तड़ाग-प्रासाद-गृह को आश्रयार्थ नहीं बनाना चाहिये। वृद्धिकामी व्यक्ति को कभी भी अग्नि, वायु तथा नैर्ऋत्य कोण में जल पीना चाहिये।।१३९-१४०।।

आग्नेय्यां मनसस्ताप्ये नैर्ऋते क्रूरकर्मकृत्। अग्निदाहं सदा कुर्यात् अमानुषचतुष्पदाम् ॥१४१॥
वायव्यां चलचित्तस्तु प्रीयमाणे जले प्रिये। स्थानस्य पावके भागे वापीकूपतडागकम् ॥१४२॥
नैर्ऋते पीयमानस्तु आत्मा न दुःखितो भवेत्। कन्यापि तज्जलं पीत्वा पतिं गृह्णाति कामतः ॥१४३॥

हे प्रिये! अग्निकोण में जलपान से मनस्ताप, नैर्ऋत्य में राक्षसों की तरह क्रूर प्रकृति वालों का भय तथा वायुकोण में जलपान से बल-वित्त की हानि तथा स्वस्थान के अग्निकोण में स्थित वापी-कूप-तड़ागादि का जल पीने से मनुष्यादि सभी जीवों को अग्निदाह का भय उपस्थित होता है। नैर्ऋत्य का जल पीकर कन्या प्रगल्भा होती है तथा अपनी इच्छा से पति का वरण करती है। व्यक्ति की आत्मा दुःखित होती है।।१४१-१४३।।

प्रासादस्योत्तरे देवि वसन्ति नैव सिद्धिदाः। विदिशासु च सर्वासु छायाक्रान्तापि नो शुभाम् ॥१४४॥
दक्षिणोन्नतो या क्षोणी वारुणी नैर्ऋतोन्नताः। शुभा च सिद्धिदा नित्यं साधकस्य जनस्य वा ॥१४५॥

प्रासाद के उत्तरभाग में सिद्धिदातृगण स्थित नहीं रहते। सभी दिशाओं के कोण का छायाक्रान्त होना उचित नहीं होता। प्रासाद के दक्षिणभागस्थ जो उत्तम भूमि है अथवा नैर्ऋत्य किंवा वरुण कोण में जो उन्नत भूमि है, वही साधक द्वारा पूजन कार्य के लिये तथा लोगों के लिये सिद्धिप्रद होती है।।१४४-१४५।।

द्रव्याँश्चैव प्रवक्ष्यामि यथा तैः पूज्यते प्रिये। नन्दा भगवती देवी सिद्धिदा साधकस्य तु ॥१४६॥

हे देवि! हे प्रिये! अब उन द्रव्यों का वर्णन करता हूँ, जिनके द्वारा पूजा (नन्दा देवी की) करने पर वे प्रसन्न होती हैं तथा साधकों को सिद्धि प्रदान करती हैं।।१४६।।

मणिरत्नमया कार्या हेमरूप्यमयापि वा। चन्दनेनापि कर्त्तव्या पादुके प्रतिमापि वा ॥१४७॥
श्रीपर्णे श्रीद्रुमे चापि देवदारुमयी परा। षडङ्गुला च सा कार्या पादुके पूजयेत्सदा ॥१४८॥

मणिरत्न से किंवा सुवर्ण अथवा चाँदी से, किंवा चन्दन से उनकी प्रतिमा तथा पादुकाद्वय बनाना चाहिये। किंवा बेल, श्रीपर्ण अथवा देवदारु की लकड़ी से छः अंगुल की प्रतिमा बनानी चाहिये तथा पादुका भी बनवानी चाहिये। इसकी सदा पूजा करनी चाहिये।।१४७-१४८।।

पटस्य लक्षणं वक्ष्ये यथा सिध्यन्ति साधकाः। ग्रन्थिकेशविहीने तु अजीर्णे समतन्तुके ॥१४९॥
अस्फाटिते अच्छिद्रे तु स्थलेनैव समालिखेत्। मंगलारूपिणी कार्या जयाद्यैः परिवारिता ॥१५०॥

अब पट का वर्णन किया जाता है। उसका लक्षण कहता हूँ। इससे साधक को शीघ्रता से सिद्धि मिलती है। इसमें कोई ग्रन्थि अथवा केशादि नहीं लगा होना चाहिये। वह जीर्ण नहीं होना चाहिये। सभी सूत्र समान होने चाहिये। बिना फटे, छिद्ररहित स्थल पर रखकर इस पट पर मंगलमयी नन्दा देवी की मूर्त्ति को उनके जयादि सखीगण के साथ अंकित करना चाहिये।।१४९-१५०।।

वीणाहस्ता प्रसक्ता तु नानालंकारशोभिता। जीर्णे तु भवते व्याधिः स्फोटिते मरणं भवेत् ॥१५१॥
केशैः सुशोकदं विद्याद् ग्रन्थिभिः स्खलनं भवेत्। छिद्रेण उत्थितो वापि साधकस्य बलाबले ॥१५२॥
वृद्धं च व्याधिदं व्यङ्गं दीर्घं स्थूलं कृशं तथा। वृद्धेन भवते वृद्धो व्याधिते व्याधितो भवेत् ॥१५३॥
कुरूपेण कुरूपं तु मूर्खेन तु न पूज्यते। लेखकस्य तु यद्रूपं चित्रे भवति तादृशम् ॥१५४॥

देवीचित्र वीणाहस्ता एवं नाना अलङ्कारों से शोभित होना चाहिये। यदि चित्र जीर्ण होगा तब व्याधि एवं फटा होने पर मृत्यु होती है। केशयुक्त होने से शोकप्रद, ग्रन्थियुक्त होने से व्यक्ति को हानि होती है। छिद्र होने से साधक को बलहीनता होती है एवं वृद्ध (पुराना) होने पर व्याधिप्रद तथा दीर्घ-स्थूल-कृश होने पर व्यङ्ग दोष होता है। यदि चित्रकार वृद्ध हो तब चित्रपट में भी वार्द्धक्य लक्षित होता है, पीड़ित चित्रकार द्वारा बने चित्र से पीड़ा अनुभूत होती है। व्याधित व्यक्ति द्वारा बनाया गया चित्र भी व्याधित प्रतीत होता है। कुरूप द्वारा बनाया चित्र श्रीहीन होता है तथा मूर्ख चित्रकार द्वारा बनाये चित्र की भी पूजा नहीं करनी चाहिये। चित्रकार की जो अवस्था होती है, उसका चित्र भी वैसा ही झलक देता है।।१५१-१५४।।

खड्गस्य लक्षणं वक्ष्ये त्रिशिखस्य च सुन्दरि। नानाशस्त्रोद्भवं कार्यं मृदुलौहमयं पिवा ॥१५५॥
स्फुटितं खण्डितं ह्रस्वं सव्रणं सन्धितं तथा। मृदुलौहे अपूज्यस्तु सन्धिते मरणं भवेत् ॥१५६॥

हे सुन्दरि! अब अन्य पूजा के आधार—खड्ग तथा त्रिशूल का लक्षण कहता हूँ। नाना अस्त्र गलाकर किंवा मृदु लौह द्वारा उसका गठन नहीं करना चाहिये। किसी स्थान में खण्डित अथवा चिटका, क्षुद्र, छिद्रबहुल किंवा लम्बित (जुड़ा हुआ) अस्त्र नहीं लाना चाहिये। नूतन अर्थात् कोमल नूतन लौह से निर्मित खड्ग आदि से देवी की पूजा नहीं करनी चाहिये। जुड़े अस्त्र से पूजा करने पर पूजक की मृत्यु होती है।।१५५-१५६।।

सव्रणेऽपि हि हृद्रोगे रेखया पातकी भवेत्। भार्या माता तथा पुत्रा म्रियन्ते खण्डितेन तु ॥१५७॥
ह्रस्वेन लाघवं लोके दीर्घेणापि ह्यसिद्धिदम्। अन्यशस्त्रोद्भवेनापि भवते मरणं ध्रुवम् ॥१५८॥

किसी प्रकार की ऊँची नीची खड्ग आदि से पूजा करने से हृदयरोग का जन्म होता है। रेखायुक्त अस्त्र से पूजा करने से पाप का संचय होता है। जोड़े गये अस्त्र से पूजा करने पर स्त्री-पुत्र तथा माता की मृत्यु होती है। छोटे अस्त्र से पूजा करने पर जगत् में लघुता मिलती है। अधिक बड़ा अस्त्र असिद्धि प्रदान करता है। अन्य अस्त्र गलाकर बनाये गये अस्त्र से की गई पूजा से साधक का मरण होता है।।१५७-१५८।।

पञ्चाशदङ्गुलं खड्गं त्रिशिखं च सुरेश्वरि। ईदृशं कारयेत्प्राज्ञ आशुसिद्धिफलप्रदम् ॥१५९॥

हे सुरेश्वरि! शास्त्रज्ञ साधक पन्द्रह अंगुल के खड्ग तथा त्रिशूल की पूजा करके शीघ्र सिद्धिलाभ करता है।।१५९।।

कृत्वा तु पूर्ववत्त्यागं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। आलभेत्सर्वद्रव्याणि खड्गाद्यान् सप्तपञ्चधा ॥१६०॥

पहले शास्त्रोक्त विधान से नियमपूर्वक पूर्वोक्त प्रकार से पूजन करके पूर्वोक्त खड्गाधार खड्ग-त्रिशूल आदि को ग्रहण करना चाहिये।।१६०।।

अथ सर्वैर्यजेद्देवीं नन्दां त्रिभुवनेश्वरीम्। शाकयावकपिण्याकक्षीराशी भिक्षादोऽपि वा ॥१६१॥
कन्दमूलफलाशी वा जपं कुर्याद्विचक्षणः। अन्तरितोपवासेन अथ नक्तेन वर्ज्जयेत् ॥१६२॥
त्रिरात्रेण तु वर्त्तेत अथ चान्द्रायणादिभिः। होमयेल्लक्षमेकन्तु आज्यमिश्रन्तु गुग्गुलम् ॥१६३॥
अथवा श्रीफलैर्वापि होमं कुर्याद्विचक्षणः। त्रिलक्षेण लभेत् खड्गं त्रिशूलं पाञ्चलक्षिकम् ॥१६४॥
खड्गेन भवते राजा मध्ये खेचरचारिणाम्। त्रिशूलेन सुरेशानो भवते नात्र संशयः ॥१६५॥

तदनन्तर त्रिभुवनेश्वरी नन्दादेवी को प्रणाम करके उनका पूजन करना चाहिये। साधक को पहले दिन शाक-पिष्टक-पिण्याक-क्षीर-कन्द-मूल-फलमात्र का भक्षण करना चाहिये। अगले तीन दिन रात्रिभोजन करना चाहिये। उससे आगे तीन दिन भिक्षा में जो कुछ मिले, उसका भक्षण करना चाहिये। अन्तिम तीन रात उपवास करना चाहिये। इस प्रकार से व्रत तथा चान्द्रायणादि का अनुष्ठान करते हुये जप करना चाहिये। तदनन्तर घृतयुक्त गुग्गुलु से अथवा घृत में सने बिल्वपत्र से एक लाख होम करना चाहिये। इस प्रकार तीन लाख होम करके खड्ग को तथा पाँच लाख होम करके त्रिशूल को पूजाधार बनाकर पूजन करना चाहिये। इस खड्गपूजन द्वारा साधक खेचरगण (आकाशचारियों) का राजा हो जाता है। त्रिशूलार्चन से साधक देवताओं का भी स्वामी हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है।।१६१-१६५।।

पूर्वमेव त्रयो लक्षान् जपं कृत्वा समारभेत्। अन्यथा तु महादेवि होमं नैव तु कारयेत् ॥१६६॥
समया सम्प्रवक्ष्यामि यैस्तुष्टिदं फलं लभेत्। शैवान् पाशुपतान्वापि महाव्रतधरां पिवा ॥१६७॥
कुमारिकाश्च तद्युक्तान् भोजयेत्पूजयेत्सदा। नाद्यात्स्त्री नायकान् भक्तान्न नारीं ताडयेत्क्वचित् ॥१६८॥
प्रताडयेन्न चाक्रोशं विवस्त्रं नैव कारयेत्। प्रसुप्तां नैव पश्येत ताड्यमानां निवारयेत् ॥१६९॥

हे महादेवि! पहले तीन लाख जप करके तब होम करना चाहिये। जप किये बिना होम करने नहीं बैठना चाहिये। अब पूजक के लिये आवश्यक आचारसमूह को कहता हूँ, जिन आचारयुक्त प्रयोग से भगवती पूजकों पर सन्तुष्ट हो जाती हैं। शैव, पाशुपत अथवा विशिष्ट व्रतचारी तथा देवीभक्त एवं कुमारीगण का पूजन करके उनको भोजन कराना चाहिये। स्त्रीगण के लिये जो भोजन रखा गया हो, उसे नहीं खाना चाहिये। उन पर न तो प्रहार करने देना चाहिये, न ही उनको निवारित करना चाहिये।।१६६-१६९।।

मूत्रं पुरीषं कुर्वन्तीं न पश्येन्न जुगुप्सयेत्। नैव तां भूषयेन्मन्त्री यदीच्छेच्छाश्वतं पदम् ॥१७०॥

निद्रिता नारी को नहीं देखना चाहिये। मूत्र-पुरीषादि करते समय इनकी ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये। कभी भी स्त्रीगण की निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि शाश्वत पद की कामना हो तो यह कृत्य नहीं करना चाहिये। यदि मन्त्रविद् अविनाशी स्थान की इच्छा करते हैं, तब उनको चाहिये कि स्त्रीगण को भोजन कराये।।१७०।।

मज्जन्ति योषितो यत्र शौचं कुर्वन्ति यत्र वा। उद्वहन्ति जलं यत्र तत्तीर्थं पूजयेत् सदा ॥१७१॥
मृद्भस्मदण्डकाष्ठानि तस्मिन् तीर्थे निवेशयेत्। सुखपादावाचरन्तु तत्तीर्थं कारयेद् बुधः ॥१७२॥

जहाँ स्त्रीजन जल में अवगाहन करती हैं या शौच (स्नानादि) करती हैं अथवा जहाँ का जल ले जाती है, उस तीर्थ की सदा पूजा करनी चाहिये। वहाँ पर मृत्तिका, भस्म अथवा दन्तकाष्ठ नहीं फेंकना चाहिये। पण्डित व्यक्ति को ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे वहाँ लोग अनायास चल-फिर सकें।।१७१-१७२।।

अनेन तुष्यते देवी नन्दा चानन्दचारिणी। वस्त्रं पत्रं तथा भक्ष्यं फलं पुष्पं विलेपनम् ॥१७३॥
नानालङ्करणं देवि यत्किंचिज्जलदायिकम्। नन्दामुद्दिश्य दातव्यं तुष्यते तेन सा प्रिये ॥१७४॥

इससे उस व्यक्ति पर आनन्दचारिणी नन्दादेवी अत्यन्त प्रसन्न हो जाती हैं। हे प्रिये! जो व्यक्ति पत्र, फल, गन्ध, पुष्प, वस्त्र, अलंकार तथा नानाविध पेय एवं भक्ष्य वस्तु नन्दा के उद्देश्य से अर्पित करता है, उस पर देवी विशेष कृपा करती हैं।।१७३-१७४।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सिद्धिस्थानानि यानि तु। यस्मिन्नाराधिता देवी क्षिप्रं भवति सिद्धिदा ॥१७५॥

हे देवि! अब सिद्धिस्थानों का उल्लेख करता हूँ, जहाँ नन्दा देवी की उपासना से शीघ्र सिद्धि मिलती है।।१७५।।

मन्दारं शतशृङ्गञ्च त्रिकूटं पर्वतं तथा। विन्ध्ये गंगासरिद्यत्र रेवती यमुनापि वा ॥१७६॥
पयोष्णां अश्वरथ्ये तु अथवा कुण्डलेश्वरे। शङ्करेश्वररामेशे अथवा अमरेश्वरे ॥१७७॥
सरस्वतीतटे पुण्ये सुगन्धायतनेऽपि वा। स्थानेष्वेषु जपं कुर्यान्नन्दा तद्गतमानसः ॥१७८॥

शतशृङ्गयुक्त मन्दार, त्रिकूट, विन्ध्यपर्वत पर तथा जहाँ गंगा-यमुना एवं रेवती नदी बहती है वहाँ तथा कुण्डलेश्वर, शंकरेश्वर, वामेश्वर तथा अमरेश्वर तीर्थ में रेवती के सुन्दर तट पर, सरस्वती-तट पर, सुगन्धा के पास तथा हरिश्चन्द्र तीर्थ में साधक को नन्दादेवी को हृदय में धारण करके जप करना चाहिये।।१७६-१७८।।

वेत्रवत्यास्तटे रम्ये हरिश्चन्द्रे तथा प्रिये। भैरवं शूलभेदञ्च चण्डीशं त्रिपुरान्तकम् ॥१७९॥
अष्टचक्रञ्च क्रौञ्चेशं कपालाक्षाग्रनामकम्। अजाविकखरोष्टाख्यं स्थानान्यन्यानि वर्जयेत् ॥१८०॥

हे प्रिये! रम्य वेत्रवती-तट पर भी जप किया जा सकता है। भैरव, शूलभेद, चण्डीश, त्रिपुरान्तक, अष्टचक्र, क्रौञ्चेश, कपाल तथा उग्र नामक स्थान में एवं अजा, अवि, खर, ऊँट जहाँ सर्वदा विचरण करते हैं, वहाँ जपकार्य नहीं करना चाहिये।।१७९-१८०।।

ब्रह्मस्यापि भवेच्छिप्रमेभिः स्थानैर्महातपैः। ऊर्ध्वगः कलहो नित्यं व्रतभङ्गं विनाशकृत् ॥१८१॥
शुभाभिधानकैः स्थानैस्तत्र साधनमारभेत्। चतुर्थीं चाष्टमीं नैव नवमी वा चतुर्दशी ॥१८२॥
शुक्लपक्षे तु कर्त्तव्यं देव्या यजनमुत्तमम्। ततो नन्दीश्वरो गच्छेदहोरात्रन्तु कारयेत् ॥१८३॥
स्नात्वा गंगानदीतीरे कृत्वा च उदकक्रियाम्। नन्दादेवीं नमस्कृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८४॥

हे देवि! जिन सब स्थानों में जप ब्रह्मा द्वारा किया गया, लेकिन बीच-बीच में छिन्न हो गया; वहाँ जप से उद्वेग-कलह होता है और व्रतभङ्ग हो जाता है। शुक्लपक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी को देवी की अर्चना प्रारम्भ करनी चाहिये। नन्दीश्वर में जाकर अहोरात्र अर्चना करनी चाहिये। गंगानदी में नहाकर उसके तट पर तर्पणादि करना चाहिये। तदनन्तर नन्दादेवी को नमस्कार करने से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१८१-१८४।।

चूभिकामगमे स्नायान्महापातकनाशने। पिण्डगंगा कुशगंगा तत्र स्नात्वा तु मानवः ॥१८५॥
देवानां तर्पणं कुर्यात् पिण्डं पितृषु दापयेत्। घृतेन मधुना वापि सक्तून् गुडविमिश्रितान् ॥१८६॥
तिलोदकं ततो दत्त्वा कुशोदकसमन्वितम् ॥१८७॥

ॐ पितृभ्यः स्वाहा। ॐ पितामहेभ्यः स्वाहा। ॐ प्रपितामहेभ्यः स्वाहाः।

ॐ मातामहेभ्यः स्वाहा। ॐ उमामहेश्वर वरेभ्यः स्वाहा॥१८८॥

पिण्डं दत्त्वा हेममन्त्रैः प्रणिपत्य क्षमापयेत्। एवं देवि विधिं कृत्वा कुलानां तारयेच्छतम् ॥१८९॥

इसी प्रकार पिण्डगङ्गा तथा कुशगङ्गा में स्नान करके देवतर्पण को सम्पन्न करके पूर्वोक्त नियमानुसार पितरों के लिये घृत-मधु तथा गुड़मिश्रित सत्तू का पिण्ड बनाकर प्रदान करना चाहिये। प्रथमतः जल से ही ॐ पितृभ्यः स्वाहा, ॐ पितामहेभ्यः

स्वाहा, ॐ प्रपितामहेभ्य: स्वाहा, ॐ मातामहेभ्य: स्वाहा तथा ॐ उमामहेश्वरेभ्य: स्वाहा मन्त्र से प्रत्येक को कुशोदकयुक्त पूर्वोक्त पिण्ड प्रदान करके नमस्कारोपरान्त क्षमायाचना करनी चाहिये। हे देवि! इस विधान से पिण्ड प्रदान करने से अपने १०० पीढ़ी के पूर्वज स्वर्ग जाते हैं।।१८५-१८९।।

नन्दागंगां पुनः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः। ततो वैतरणीं गत्वा स्नानं तत्रैव दापयेत् ॥१९०॥
देवानामुदकं दत्त्वा पिण्डं तत्रैव दापयेत्। महादेवं नमस्कृत्वा स गच्छेदुत्तरां दिशम् ॥१९१॥

नन्दागङ्गा में पुन: स्नान करके सभी पापों से त्राण मिल जाता है। तदनन्तर वैतरणी में स्नान करके वहाँ भी देवों को तर्पित करके वहाँ भी पिण्ड प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर महादेव को प्रणाम कर उत्तर की ओर गमन करना चाहिये।।१९०-१९१।।

महागणपतिं दृष्ट्वा पूजां कृत्वा विधानवित्। गच्छेदायतनं दिव्यं देव्या भवनमुत्तमम् ॥१९२॥
पूजां कृत्वा विधानज्ञो यावत् प्रणतविग्रहः। तावत्तं गगने देवी विमानस्था सवासवा ॥१९३॥
अभिनन्दते तं धन्यं नरेन्द्रं पुण्यभाजनम्। नन्दादेव्याश्चरणाब्जं येन दृष्टं सुदुर्लभम् ॥१९४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शाश्वतं भुवनोत्तमम्। अनेनैव तु देहेन देव्याः पुत्रन्तु जायते ॥१९५॥
कार्त्तिकेयसमो भूत्वा महावीर्यपराक्रमः। तिष्ठते सूचितं काले मत्प्रसादेन सुव्रतः ॥१९६॥
तदन्ते व्रजते मोक्षं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्। देव्या दक्षिणमुखो भूत्वा मूलमन्त्रं जपेद्बुधः ॥१९७॥

वहाँ विधिज्ञ व्यक्ति को महागणपति का दर्शन करके पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर त्रिभुवनसुन्दर दिव्य देवीभवन (मन्दिर) की ओर जाना चाहिये। हे देवि! जो व्यक्ति वहाँ नन्दादेवी की पूजा करके देह को अवनत करके रहता है, अन्तरिक्षचारी देव-दानवगण उस पुण्यात्मा धन्य पुरुष का अभिनन्दन करते हैं। अतिदुर्लभ नन्दादेवी के चरणकमल जिसके नयनों द्वारा देख लिये जाते हैं, वे व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करते हैं। हे सुव्रत! मेरी कृपा से इसी शरीर में वह कार्त्तिकेय के समान महाबली पराक्रमी होकर भगवती के पुत्ररूप से गृहीत होता है। वहाँ अनेक कालपर्यन्त अवस्थानोपरान्त विविध अभि-लषित भोग भोगकर मुक्त हो जाता है। बुधजन को चाहिये कि देवी के मूल मन्त्र का दक्षिणमुख होकर जप करें।।१९२-१९७।।

दर्शनं जायते तस्य साधकस्य न संशयः। शुक्लाम्बरधरां नारीं रात्रौ पश्यति साधकः ॥१९८॥
तां दृष्ट्वा जायते सिद्धिरणिमादिगुणाष्टकम्। देव्याः प्रदक्षिणां कृत्वा कुण्डस्य च विशेषतः ॥१९९॥

वे साधक देवी का साक्षात् दर्शन प्राप्त करते हैं, देवी उनको रात्रिकाल में अपनी शुक्लवस्त्रा स्त्रीमूर्त्ति का दर्शन देती हैं। उसके दर्शन से साधक को अणिमादि षड् ऐश्वर्य-प्राप्ति के साथ मन्त्रसिद्धि भी हो जाती है। सिद्धिलाभ हो जाने के पश्चात् देवी तथा देवीकुण्ड की प्रदक्षिणा करनी चाहिये।।१९८-१९९।।

ध्यात्वा देवीं ततः कुण्डे प्रविशेन्मत्स्यवज्जले। पौरुषत्वं जले तत्र त्रासं नैव तु कारयेत् ॥२००॥
पश्यते क्षणमात्रेण स्त्रीमुखं द्वारमुत्तमम्। नानारत्नमयं दिव्यं हेमप्राकारतोरणम्।
मण्डपे तिष्ठते देवी द्वारस्याग्रे सुशोभने ॥२०१॥

तदनन्तर देवी का चिन्तन करते-करते कुण्डसलिल में मछली के समान प्रवेश करना चाहिये। जल में प्रवेश करके भीतभाव प्रकाशित नहीं करना चाहिये; प्रत्युत साहस प्रकाशित करना चाहिये। वहाँ कुछ क्षण रुकने के उपरान्त नानारत्नजटित स्त्रीमुखी, सुवर्ण प्राचीरवेष्टित, एक परमसुन्दर द्वार लक्षित होता है। जहाँ नाना रत्नमय तोरण स्थित है। हे सुन्दरि! इसी द्वार से सन्निहित मण्डप में देवी अवस्थान करती हैं।।२००-२०१।।

पूर्णकुम्भाश्च सौवर्णाः जलपल्लवमण्डिताः । निर्मिता विश्वकर्मेण सर्वरत्नमयाः शुभाः ॥२०२॥
मणिहेममयैः स्तम्भैर्विमानैर्ध्वजशोभितैः । मौक्तिकदाममालाभिर्मणिमालाभिर्मालितम् ॥२०३॥

सामने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित जलपूर्ण तथा आम्रपल्लवों से सुशोभित असंख्य रत्न एवं स्वर्ण से गठित कुम्भ स्थापित हैं। वहाँ मण्डप में खम्भे मणियों से जटित तथा स्वर्णयुक्त हैं, उसमें मुक्तामाला तथा मणिमाला से सुशोभित पताकायुक्त चन्द्रातप (वितान) प्रसारित है।।२०२-२०३।।

घण्टाचामरशोभाढ्यमातपत्रैर्विभूषितम् । सौवर्णा मुरजास्तत्र तिष्ठन्ते मेघनिस्वनाः ॥२०४॥
इन्द्रनीलपरिच्छन्नं विचित्रमणिचर्चितम् । शालभञ्जिकपुष्पैश्च रत्नपंकजशोभितम् ॥२०५॥
पारिजातकमालाभिः समन्तात्परिवारितम् । नन्दा भगवती देवी प्रतिमारूपधारिणी ॥२०६॥
तिष्ठते मण्डपद्वारे सहस्रभुजभूषिता । सर्वायुधधरा सौम्या पुष्पमालाविभूषिता ॥२०७॥

वहाँ पर घण्टा-चामर-आतपत्र विराजित हैं। मेघ के समान गम्भीर शब्द वाले सुवर्ण से बने वाद्यसमूह वहाँ स्थित हैं। मण्डप-द्वार पर विचित्र मणिजटित तथा रत्नकमलों से शोभित एवं चतुर्दिक पारिजात पुष्पों की माला से परिवृत मणिमय दो पुत्तलिकाओं से युक्त इन्द्रनील मणिमय सिंहासन में भगवती सौम्या नन्दादेवी सहस्र भुजाओं से भूषिता तथा सर्व आयुधधारिणी पुष्पमाला-विभूषिता होकर स्थित हैं।।२०४-२०७।।

दिव्यगंधानुलिप्ताङ्गी कुङ्कुमारुणविग्रहा । कुण्डलैः कटकेयूरैर्मुकुटादिविभूषिता ॥२०८॥
तां दृष्ट्वा तु महादेवीं प्रतिमारूपधारिणीम् । तस्या प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणिपत्य शिवेन तु ॥२०९॥
तस्याग्रे तिष्ठते चान्या जया च प्रतिहारिका । दृष्ट्वा तु साधकं वीरं इष्टस्तुष्टो प्रभाषते ॥२१०॥

उनकी देह दिव्य गन्ध से लिप्त तथा कुङ्कुमारुणविग्रहा है। वे कुण्डल, कटक, केयूर तथा मुकुट आदि से भूषिता हैं। उन प्रतिमारूपा महादेवी का दर्शन करते ही उनकी प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। उनके सामने जयादेवी स्थित रहकर प्रतिहारी का कार्य करती हैं। वे साधक को देखते ही उसके साहस से सन्तुष्ट तथा आनन्दित होकर कहती हैं।।२०८-२१०।।

स्वागतं ते महावीर पुण्यभाजो महातपाः । तिष्ठन्तु साधका अत्र यावत्प्रत्यागममहम् ॥२११॥
पृच्छामि भगवतीं देवीं तुभ्यञ्चैव प्रवेशनम् । एवन्तु वदते देवी जया द्वारस्य पालिका ॥२१२॥
गता शीघ्रन्तु देव्यायाः समीपं वरवर्णिनी । जानुभ्यां धरणीं गत्वा जया वदति हर्षिता ॥२१३॥

वे कहती हैं—हे महावीर! आप सुखपूर्वक तो आये हैं? हे पुण्यशील साधकगण! आप कुछ क्षण यहाँ अपेक्षा करें। मैं नन्दादेवी के निकट से आप लोगों को यहाँ प्रवेश करने देने की अनुमति लेकर आती हूँ। द्वाररक्षिका जयादेवी यह कहकर अति शीघ्रता से नन्दा देवी के पास उपस्थित होकर अपने जानुद्वय को भूपृष्ठ पर स्थापित करके सानन्द कहती हैं।।२११-२१३।।

जयोवाच

आगतो मर्त्यो लोकेऽस्मिन्द्वारे तिष्ठति साधकः । क्रियते साम्प्रतं किन्नु आदेशं वद अम्बिके ।
विहस्य भगवती नन्दा इदं वचनमब्रवीत् ॥२१४॥

जया कहती हैं—हे अम्बिके! मर्त्यलोक से भक्तगण आकर द्वार पर स्थित हैं। अब मैं क्या करूँ, कृपया आदेश दीजिये। तब हंसकर भगवती नन्दा इस प्रकार कहती हैं।।२१४।।

देव्युवाच

यथा तै पादपद्मन्तु मदीयं हृदये कृतम्। ममापि च तथा भद्रे साधका हृदये स्थिताः ॥२१५॥
मा विधारय तान् द्वारे त्वरितन्तु प्रवेशय। इष्टातुष्टमना देवि जया त्वरितमागता।
आगत्य साधकस्य तु समीपस्था प्रभाषते ॥२१६॥

भगवती कहती हैं—हे भद्रे! जब उन्होंने मेरे पादपद्म को हृदय में धारण किया है, तब मैं भी उन साधकों के हृदय में स्थित हूँ। अतएव इन वीरगण को आने से मत रोको। शीघ्र आने दो। यह सुनकर जया भगवती का अभिनन्दन करती है और साधकों के पास शीघ्र जाकर इस प्रकार कहती हैं।।२१५-२१६।।

जयोवाच

भो भो वीर महासत्त्व तुभ्यं देवी वरप्रदा। ततस्तु विदितं वीर अप्सरैर्भक्तवत्सलैः ॥२१७॥
इष्टास्तुष्टमनाः सर्वाः निर्गताश्च वराङ्गनाः। चामरैः कनकदण्डैश्च छत्रैर्मणिविभूषितैः ॥२१८॥

जया कहती हैं—हे महाबली वीरगण! नन्दादेवी आप लोगों के प्रति सन्तुष्ट हैं। यह कहकर जयादेवी उनको द्वार से प्रवेश करने की अनुमति प्रदान कर देती हैं। तब नन्दादेवी के समीप रहने वाले देवकन्यागण मर्त्यवासी भक्तों को प्रवेश करते देखकर आनन्द तथा सन्तोष में निमग्न होकर उसके सम्मुख आ जाती हैं। वे स्वर्णदण्डयुक्त चामर तथा मणिखचित छत्रधारण किये रहती हैं।।२१७-२१८।।

अर्घ्यहस्तास्तथा चान्याः पुष्पहस्तास्तथा पराः। आगच्छन्ति ततः कन्या दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥२१९॥
कुङ्कुमागुरुगन्धैश्च लिप्ताङ्गाः सुमनोहराः। तिलकैरर्धचन्द्रैश्च हेमरत्नविभूषिताः ॥२२०॥

किसी के हाथों में अर्घ्य होता है तो कोई दिव्यभूषणभूषिता कन्या पुष्पराशि लेकर आती है। सभी कुङ्कुम, अगुरु, चन्दनादि द्वारा सर्वाङ्ग लिप्त रहती हैं तथा विविध स्वर्ण तथा रत्न के आभूषणों से भूषित रहती हैं। उनके ललाट पर अर्द्धचन्द्र की आकृति का तिलक भूषित रहता है। वे नाना अलंकार से युक्त दिखाई देती हैं। कोई सर्वाङ्ग में पद्म अंकित करके चम्पक, प्रियङ्गुप्रभृति के पुष्प धारण की हुई होती हैं।।२१९-२२०।।

नानालङ्कारसम्पन्नाः सर्वाः पीनपयोधराः। पद्मांकवपुषः सर्वाः प्रियङ्गुचम्पकादयः ॥२२१॥
नीलोत्पलदलश्यामा अन्या विद्युत्समप्रभाः। कामरूपास्तथा चान्या गजेन्द्रगतिविक्रमाः ॥२२२॥
पूर्णचन्द्राननाः सर्वाः सर्वास्तामृतसम्भवाः। अर्घ्यं पाद्यं ततो दत्त्वा भाष्योत्फुल्ललोचनाः।
स्वागतं ते महावीर एहि गच्छाम साधक ॥२२३॥

किसी का रूप नीलकमल के समान, तो कोई विद्युत् के समान गौरवर्ण होती है। कोई इच्छानुरूप रूप बदलने में समर्थ होती है। इन गजगामिनी गण में से सभी का मुख पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर होता है। तदनन्तर वे देवसम्भवा कन्यागण समागत भक्तों को पाद्य-अर्घ्य प्रदान करके विस्फारित नेत्रों से कहती हैं—हे महावीर साधकगण! आपका स्वागत है। इधर हमारे साथ चलिये।।२२१-२२३।।

एवमुक्त्वा ततः कन्या प्रविशन्ति पुरोत्तमम्। हेमप्राकारदीप्तं तं मणितोरणनूपुरम् ॥२२४॥
दिव्यगन्धर्वगानाढ्यं दिव्यवाद्यसमाकुलम्। इन्द्रनीलपरिच्छन्नं बालार्कायुतसंप्रभम् ॥२२५॥
ध्वजमालाकुलं सर्वं मयूरच्छत्रभूषितम्। पद्मरागमयैः स्तम्भैः क्वचित्स्फाटिकमयैः शुभैः ॥२२६॥
विद्रुमाढ्यैस्तथा चान्यैः नानारत्नमयैस्तथा। मुरजवाद्यशब्दैश्च शङ्खकाहलनिःस्वनैः ॥२२७॥

यह कहकर वे भक्तगण को सुवर्ण प्राचीर से घिरे मणिमय कपाट से शोभित एक उत्तम भवन में ले जाती हैं। वहाँ दिव्य गन्धर्वगण दिव्य गीत तथा वाद्य ध्वनि कर रहे होते हैं। कहीं इन्द्र नीलमय, कहीं नवोदित सूर्य के समान रक्तवर्ण तथा मयूरपुच्छ के छत्र तथा पताकासमूह शोभित हो रहे होते हैं। वहाँ स्थान-स्थान पर पद्मराग मणि के, कहीं स्फटिक के, कहीं प्रवाल के तो किसी स्थान पर रत्नों के स्तम्भ शोभायमान रहते हैं। कहीं-कहीं मुरज-शंख-काहलादि का शब्द सुनाई देता रहता है।।२२४-२२७।।

गेयैश्च मधुरैर्दिव्यैः श्रोत्रेन्द्रियमनोहरैः। कन्यानां गीतशब्देन नित्यं प्रमुदितं परम्।
दृश्यते मण्डपं रम्यं नागदण्डविभूषितम् ॥२२८॥

कहीं पर कर्ण को सुखकारी लगने वाले दिव्य गायन हो रहे होते हैं। उस स्थान पर देवकन्याओं के गीतों का शब्द अत्यन्त सुन्दर रूप से गूंज रहा होता है। वहाँ पद्मराज मणिनिर्मित तथा हाथीदाँत से जड़ा रमणीय मण्डप दिखाई देता है।।२२८।।

पद्मरागपरिच्छन्नं चामरैरुपशोभितम्। सिंहासनन्तु देव्याया न्यस्तं हेममयं शुभम् ॥२२९॥
दर्पणैरर्धचन्द्रैश्च मौक्तिकाहारभूषितम्। अनौपम्यं महादेवि रत्नाकरमिवोत्थितम् ॥२३०॥

उसके मध्यस्थान में नन्दादेवी के अस्थायी रूप से बैठने हेतु एक शुभ रत्न जड़ा सिंहासन स्थापित दिखाई देता है। हे महादेवि! वह चामर से शोभित एवं पद्मरागयुक्त स्वर्ण से निर्मित है। वह मुक्ताहार, दर्पण तथा अर्द्धचन्द्राकृति रत्नों से भूषित है। हे महादेवि! उस विराजित अनुपम सिंहासन को देखकर प्रतीत होता है मानो वह दूसरा रत्नाकर ही है।।२२९-२३०।।

ईदृशं मन्दिरं दिव्यं नानाधातुविचित्रम्। तस्मिंस्तु मण्डपं प्राप्य कन्या वचनमब्रवीत् ॥२३१॥
अस्मिंस्तु मण्डपे वीर निमेषं तिष्ठ सुव्रत। स्वयमागच्छते देवी वरं तुभ्यं प्रयच्छति ॥२३२॥
एवमुक्त्वा ततः कन्याः प्रविशन्ति पुरोत्तमम्। कृताञ्जलिपुटाः सर्वाः कन्याः वचनमब्रुवन् ॥२३३॥

कन्यागण ऐसे दिव्य नानाधातुयुक्त विचित्र मन्दिर में स्थित उस मण्डप के पास उपस्थित होकर कहती हैं—हे सुव्रत वीरगण! आपलोग मुहूर्त्त काल इस मण्डप में अवस्थित रहिये। देवी स्वयं आकर आपको अभीष्ट प्रदान करेंगी। यह कहकर वे कन्यागण ने आभ्यन्तरीण भवन में प्रवेश कर जाती हैं तथा वहाँ जाकर कृताञ्जलिबद्ध होकर भगवती से निवेदन करती हैं।।२३१-२३३।।

कन्यका ऊचुः

आगता मर्त्त्या लोकेऽस्मिन् द्वारे तिष्ठन्ति साधकाः। शरणागता महादेवि जयादेव्या प्रवेशिताः ॥२३४॥

कन्यायें कहती है—हे महादेवि! मर्त्यलोक से साधक आकर द्वार पर उपस्थित होकर आपके शरणागत हो रहे हैं। भगवती जयादेवी ने उनको पुर में प्रवेश करा दिया है।।२३४।।

तासां तद्वचनं श्रुत्वा कन्यकानां सुरेश्वरि। सिंहयुक्तं रथं दिव्यं स्वयमारुह्य निर्गताः ॥२३५॥
कन्याकोटिसहस्रन्तु देव्या सह विनिर्गतम्। काश्चिद्गच्छन्ति वै हृष्टाः काश्चिद्वीजन्ति चामरैः ॥२३६॥
नृत्यन्ति कन्यकाः काश्चित्काश्चित्स्तोत्रं पठन्ति च। नानावाद्यरताः काश्चिन्नानागीतरतास्तथा ॥२३७॥
काश्चिज्जयजयाशब्दैः स्तुवन्ति परमेश्वरीम्। परिवारिताः कन्यैश्च आगता मण्डपे शुभे ॥२३८॥

हे सुरेश्वरि! कन्यागण का यह वाक्य श्रवण करके महालक्ष्मी सिंह वाहनयुक्त दिव्य रथ पर बैठकर बाहर आईं। उनके साथ-साथ सहस्र कोटि देवकन्या भी बाहर आईं। उनमें कोई-कोई आनन्दसागर में मग्न चल रही थीं। कोई-कोई देवी पर चामर व्यजन कर रही थी, कोई नृत्य कर रही थी, कोई देवी का स्तवन कर रही थी। कोई वाद्य बजा रही थी, कोई ललित

गायन द्वारा देवी का स्तव कर रही थी। कुछ कन्यागण जय-जय-जय कहकर परमेश्वरी की स्तुति किये जा रही थीं। इस प्रकार से कन्याओं से घिरी हुई परमेश्वरी उस शुभ मण्डप में आईं।।२३५-२३८।।

प्रविष्टो मण्डपे देव्याभ्यन्तरे भुवनेश्वरी। सिंहासनोपविष्टस्तु श्वेतपद्मोपरिस्थिता ॥२३९॥
जटामुकुटविन्यस्ता भस्माकुलितविग्रहा। ललाटनयनोपेता श्रवणायतलोचना ॥२४०॥
पूर्णचन्द्रानना देवी पयोधरभरालसा। सुनितम्बा सुमध्या च सर्वावयवशोभिता ॥२४१॥
भूषिता पट्टमाणिक्यैर्दिव्यगन्धानुलेपना। सितस्रग्दामवस्त्रैश्च शोभाढ्या मृदुभाषिणी ॥२४२॥
स्वकान्तिकिरणौघेन पुरीमुद्योत्य संस्थिता ॥२४३॥

मण्डप में आकर उसके भीतर प्रवेश करके देवी पूर्वोक्त सिंहासन पर स्थित श्वेतकमल पर बैठ गयीं। उनका सर्वाङ्ग भस्म से आच्छादित था, मस्तक जटा-मुकुट से भूषित था। देवी का ललाट अत्यन्त विस्तृत था। नेत्रद्वय कानों तक फैले विशाल थे। उनका मुख पूर्ण चन्द्र के समान रमणीय था। वे स्वयं के स्तनयुगल तथा नितम्बों के भार से क्लान्ति का अनुभव कर रही थीं। उनके सभी अंग अतीव सुन्दर तथा माणिक्य-विभूषित थे। वे दिव्य गन्ध से लिप्त थे। वे मृदुभाषिणी थीं तथा शुभ्र पुष्पमाला एवं शुभ्र वस्त्र से सुशोभित थीं। उनकी देहकान्ति की किरणों से वह पुरी भी उद्भासित थी।।२३९-२४३।।

श्रीदेव्युवाच

प्रवेश्य साधकान् सर्वानासनं चैव दीयताम्। देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अप्सरा निर्गता द्रुतम् ॥२४४॥

श्रीदेवी कहती हैं—साधकगण को शीघ्र लाओ। उनको यहाँ आसन प्रदान करो। देवी का यह आदेश सुनकर शीघ्रता से वे अप्सरायें बाहर आकर साधकगण से इस प्रकार कहने लगीं।।२४४।।

अप्सरा ऊचुः

एहि वीर महासत्त्व प्रविशाभ्यन्तरे पुरे। तुष्टा तु ते महादेवी वरं तुभ्यं प्रयच्छति ॥२४५॥

अप्सरागण कहती हैं—हे महाबली वीरगण! हमारे साथ अन्य भवन में चलिये। महादेवी आप लोगों के प्रति सन्तुष्ट हैं। वे आप लोगों को वर प्रदान करेंगी।।२४५।।

कन्यानां वचनं श्रुत्वा साधकस्तिष्ठते ततः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रविशेद् भुवनोत्तमम् ॥२४६॥
दण्डवत् पतितो भूम्यां देव्याग्रे च व्यवस्थितः। सगद्गदं वदेद्वाक्यं किञ्चिदाकुलितेक्षणः ॥२४७॥

कन्यागण का यह वचन सुनकर साधकगण उठे तथा कृताञ्जलि होकर उन्होंने गृह में प्रवेश किया एवं देवी का दर्शन पाते ही भूमि पर दण्डवत् गिर पड़े। तदनन्तर विनीत भाव से देवी के समक्ष आये तथा अपने नेत्रों को तनिक विस्फरित करके उन्होंने गद्गद वाणी से कहा।।२४६-२४७।।

साधक उवाच

त्वं गतिः शरणं देवि त्वं माता परमेश्वरि। अहं जन्मान्तरे क्षीणस्त्वामेव शरणं गतः ॥२४८॥

साधक कहता है—हे देवि! आप ही जीव की एकमात्र गति हैं। आप ही जगत् की जननी तथा जगत् की बन्धु हैं। हम मानव जन्म में नितान्त क्षीण होने के कारण आपकी शरण लेते हैं।।२४८।।

देव्युवाच

स्वागतं भद्र भद्रं ते वरं मे ब्रूहि सुव्रत। एवं सम्भाषितो देव्या साधकः पुण्यकर्मकृत् ॥२४९॥

मुक्त्वा तु मानुषं देहं विद्याभरणभूषितः। बालार्काणां सहस्रस्य कान्तिर्वै धारयेत सः ॥२५०॥
सुरूपः सुभगः सौम्यः महाबलपराक्रमः। इदं रत्नपुरी दिव्या सर्वकामफलप्रदा ॥२५१॥
साधक त्वं प्रसादेन क्रीडयस्व यथासुखम्। स्कन्दतुल्यबलो भूत्वा यावदाहूतसंप्लवम् ॥२५२॥

देवी कहती हैं—हे भद्र! तुमलोग निर्विघ्न तो आये हो? हे सुव्रत! मुझसे वर माँगो। पुण्यशील साधक गण देवी के यह कहते ही मनुष्यदेह का परित्याग करके सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी, महाबली, दिव्यालङ्कारभूषित, शान्तिमय परमसुन्दर शरीरधारी हो गये। वे सुरूप-सुभग-सौम्य थे। तब देवी ने उनसे पुनः कहा—हे साधक! तुमलोग मेरी कृपा से इच्छा के अनुसार फलप्रदा इस दिव्यरत्नपुरी में यथासुख अवस्थान करो। कार्त्तिकेय के समान बलशाली होकर प्रलयकाल-पर्यन्त परमसुखपूर्वक यहाँ क्रीड़ा करो।।२४९-२५२।।

साधक उवाच

त्वन्मुक्तश्च भविष्यामि जन्मदुःखविवर्जितः ॥२५३॥

साधक कहते हैं—हे देवि! हमारी भक्ति आपमें ही रहे तथा अब हमें गर्भयातना न भोगनी पड़े।।२५३।।

देव्युवाच

कोटिमेकन्तु कन्यानां तव दत्तन्तु साधक। अयुतद्वयं तु शेषाणां कन्यकानान्तु कल्पितम् ॥२५४॥
देव्याः पादाम्बुजं वत्स साधकः पुण्यकर्मकृत्। गतो वै साधकैः सार्धं स्तूयमानस्तु मंगलैः ॥२५५॥

देवी कहती हैं—हे साधकप्रवर! तुमको एक कोटि देवकन्या प्रदान करती हूँ। तुम्हारे अनुचर के रूप में २०००० कन्यायें निर्दिष्ट की जाती हैं। तदनन्तर वह पुण्यात्मा साधक मांगलिक वाक्यों से अभिनन्दित किया गया। वह देवी के चरणकमलों में प्रणाम करके अन्य साधकों के साथ देवी द्वारा निर्दिष्ट भवन में चला गया।।२५४-२५५।।

वरं दत्त्वा महादेवी साधकस्य महेश्वरी। प्रविश्य भवनं दिव्यं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥२५६॥
ततः कलकलाशब्दैः कन्यकानां पुरोत्तमे। न श्रूयते पुरे किञ्चिन्नानावादित्रनिःस्वनैः ॥२५७॥

महादेवी नन्दा ने इस प्रकार साधक को वर प्रदान किया तथा अपने देवदुर्लभ दिव्य भवन में चली गयीं। इधर साधकगण ने अपने जिस भवन में प्रवेश किया, वहाँ कन्यागण के आनन्दसम्भूत मधुर शब्द के कारण तथा नानावाद्य के निनाद के कारण कुछ भी सुनने में नहीं आ रहा था।।२५६-२५७।।

परिष्वजन्ति ताः कन्या भ्रमरा इव पंकजम्। नानाक्रीडासमायुक्ता दिव्यस्त्रीपरिवारिताः ॥२५८॥
क्रीडन्ति साधकास्तावत् यावदाहूतसंप्लवम् ॥२५९॥

जैसे भौंरे पद्म का चतुर्दिक स्पर्श करते हैं, उसी प्रकार से वे कन्यायें भी साधक का आलिंगन करने लगीं। इस प्रकार से साधकगण दिव्यस्त्रीसमूह से आवेष्टित होकर महाप्रलयपर्यन्त विविध क्रीड़ासुख का अनुभव करने लगे।।२५८-२५९।।

ईश्वर उवाच

कथयामि महादेवि यथा भुञ्जन्ति ताः स्त्रियः। नन्दापादार्चनासक्ता नन्दास्मरणतत्पराः ॥२६०॥
नन्दाध्यानरता दित्यं नन्दाभक्तिसमन्विताः। नन्दास्मरणसन्तुष्टा नन्दादानैकतत्पराः ॥२६१॥
नन्दाभक्तजने भक्ता नन्दायात्रैकतत्पराः। नन्दामन्त्ररता नित्यं व्रतयोगरताश्च ये ॥२६२॥
पतयस्ते भविष्यन्ति कायकानान्तु सुव्रते। जलप्राकारदुर्भेद्यं हिमप्राकाररक्षितम् ॥२६३॥
चन्द्रनागप्रतीहारं देव्या आज्ञा महल्लकम्। अन्तःपुरतरं दिव्यमसुरेश्वरदुर्लभम् ॥२६४॥
नन्दाभक्तजनैर्भोग्यं निजमन्तःपुरीमिव।

ईश्वर कहते हैं—हे महादेवि! वहाँ की कन्यागण ऐसे पुरुष के साथ जिस प्रकार से विषयभोग चरितार्थ करते हैं, वह कहता हूँ। जो नन्दाध्यान-परायण होकर नित्य नन्दा के पादपद्म की अर्चना करते हैं, नन्दा के ही प्रति भक्ति रखकर उनका ही ध्यान करते हैं तथा नन्दा-स्मरण में ही सन्तोष-लाभ करते हैं, नन्दा की प्रीति के लिये उत्तम वस्तुसमूह को उन्हें अर्पित करते हैं, नन्दादेवी के महोत्सव में ही आसक्त रहते हैं तथा जो नन्दामन्त्र से ही व्रत-याग करते हैं, हे सुव्रत! उनको ही वे अपना पति बनाकर सुखभोग करती हैं। तब इन कन्याओं के पतिगण हिमप्राचीर से वेष्टित, जल-परिखा से परिवृत, द्वारपाल चन्द्रनाग द्वारा रक्षित, सुरासुर दुर्लभ, एकमात्र नन्दाभक्तों को ही सुलभ ऐसे स्थान में दिव्य अन्त:पुर में अपने ही अन्त:पुर के समान रहते हैं।।२६०-२६४।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि मन्त्रोद्धारस्य लक्षणम् ॥२६५॥

यजनञ्चैव देवीनां रूपकञ्च महातपे। पवर्गात् पञ्चमे वर्गे वाजञ्चैव तदन्तिमम् ॥२६६॥
उच्चरेत प्रयत्नेन भिन्नं वैहायसेन तु। पुनस्तु मध्यमं बीजं तृतीयं स्वरभेदितम् ॥२६७॥
पुनः प्रथमं दातव्यं भिन्ना वैहायसेन तु। एकादशेन संभिन्नं बीजं कुर्याद्वरानने ॥२६८॥
तस्यापि परमं देवि उद्धरेत्प्रथमं पुनः। तृतीयं भूतजे नैव अधस्थो न तु याजयेत् ॥२६९॥
पुनर्द्वितीयभूतस्थं भेदयैकादशेन तु। तस्यापि परतरे वर्गे प्रथमन्तु समुद्धरेत् ॥२७०॥
पुनश्चतुर्थभूयस्थं बीजं यत्नेन उद्धरेत्। कालक्षान्तं ततो बीजं भेद एकादशेन तु ॥२७१॥
नवाक्षरा महाविद्या नन्दाया हृदयं प्रिये। सर्वकामफलप्रदा नित्यं विद्येयन्तु महातपे ॥२७२॥
अक्षरं युग्मायुग्मञ्च अङ्गानि तु प्रकल्पयेत्। नवमन्तु भवेदस्त्रं कालाख्यं सविसर्गजम् ॥२७३॥
अनया जप्यमानस्य कन्यकास्तु महातपे। नित्यं कुर्वन्ति आनन्दं नन्दायास्तु पुरोत्तमे ॥२७४॥
अनिमेषे क्षणा नित्यं रत्नं पश्यन्ति साधकाः। दर्शनिनोत्सुकाः सर्वाः कामार्त्ताः कामिनीः प्रिये ॥२७५॥

अब मन्त्रोद्धार का लक्षण कहता हूँ। तदनन्तर पूजाविधि तथा देवी के रूप का भी वर्णन करूँगा। (श्लोक २६६ की द्वितीय पंक्ति से लेकर २७१ पर्यन्त देवी के अतिगुप्त मन्त्र का वर्णन है। इसका मन्त्रोद्धार वर्जित है। केवल गुरु से ही इसे जाना जा सकता है)।

हे प्रिये! यह नवाक्षरा महाविद्या नन्दा का हृदय है। यह सर्व कामप्रदा तथा नित्य फलदा है। (पुन: श्लोक २७३-२७४ भी अतिगुप्त मन्त्र है। मन्त्रोद्धार वर्जित है)।

हे महातपे! इसके जप से नन्दादेवी के पुर में साधक कन्यागण के साथ नित्य आनन्द करते हैं। ऐसे साधक को कन्यागण नित्य अनिमेष देखती हैं। वे कामिनीगण सर्वदा कामोत्सुक होकर उसके दर्शन के लिये उत्सुक रहती हैं।।२६५-२७५।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि देव्याया यजनं शुभम्। साधकानां हितार्थाय तन्मे निगदतः शृणु ॥२७६॥
अनन्तमासनं कृत्वा धर्मादींश्च निवेशयेत्। ततः प्रकल्पयेत् पद्ममासनं प्रणवेन तु ॥२७७॥
अनन्तादीनि देवेशे प्रणवेन प्रकल्पयेत्। तत आवाहयेद्देवीं मूलमन्त्रेण सुव्रते ॥२७८॥

हे देवि! अब साधकों के हितार्थ देवी की शुभ पूजन परिपाटी कहती हूँ; श्रवण करो। पहले अनन्तदेव को आसन प्रदान करके धर्मादि देवगण को प्रणव आरम्भ में लगाकर (नाम के आरम्भ में प्रणव लगाकर) पद्मासन की कल्पना करके हाथों से बैठाये। हे सुव्रते! केवल ॐकार मात्र से उनकी अर्चना करके मूलमन्त्रोच्चार करके देवी का आवाहन करना चाहिये।।२७६-२७८।।

शुक्लाम्बरधरां सौम्यां जटामुकुटमण्डिताम्। नानालङ्कारशोभाढ्यां सितभस्मावगुण्ठिताम् ॥२७९॥
अभयवरप्रदां देवी वरहस्तां चतुर्भुजाम्। नानापुष्पैस्तथा भक्ष्यैर्लेह्यचोष्यैश्च ईप्सितैः ॥२८०॥
पूजयेत् परया भक्त्या महाभोगजिगीषया। अङ्गानि पूजयेत्पश्चाद्धृदयं वह्निगोचरैः ॥२८१॥

तदनन्तर इस प्रकार से देवी नन्दा का ध्यान करना चाहिये—देवी श्वेत वस्त्रधारिणी, जटा-मुकुट-विभूषिता, विविध अलंकारों से अलंकृता, सर्वांग में श्वेत भस्म से आच्छादित तथा हाथों के संकेत से भक्त के भय को दूर करके अभीष्ट-प्रदानार्थ उद्यता भगवती नन्दा का ध्यान करते हुये विपुल भोगों की कामना से परम भक्ति के साथ विविध पुष्प तथा भक्ष्य, पेय, लेह्य, चोष्यरूप चतुर्विध अन्न प्रदान करके पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवी की पूजा के अन्त में उनके अंगदेवता का पूजन करना चाहिये।।२७९-२८१।।

आग्नेयान्तु शिरः पूज्य नैर्ऋत्यां पूजयेत् शिखाम्। कवचं परमे भागे ऐशान्येऽस्त्रं प्रपूजयेत् ॥२८२॥
पूर्वपत्रे जया स्थाप्या विजयां दक्षिणे न्यसेत्। अजितां पश्चिमे पत्रे उत्तरे अपराजिताम् ॥२८३॥

अग्निकोण में शिरः की पूजा, नैर्ऋत्य में शिखा की पूजा, वायुकोण में कवच की पूजा करके ईशान भाग में अस्त्र की अर्चना करनी चाहिये। साधक को पूर्वभाग में जया को रखकर दक्षिण में विजया को स्थित करने के बाद पश्चिम भाग में अजिता को स्थापित करके उत्तर भाग में अपराजिता की स्थापना करनी चाहिये।।२८२-२८३।।

द्विभुजां बालरूपान्तु रक्ताम्बरधरां सदा। वीणागृहीतहस्तां तु नानालङ्कारभूषिताम् ॥२८४॥
स्वाभिधानाभिधेयाञ्च भूत्यांशश्चैव पूजयेत्। शुक्लाम्बरधरा हृष्टा दक्षिणे वरवर्णिनी ॥२८५॥
पश्चिमे पीतरूपा तु उत्तरे वृषरूपिणी। रूपयौवनसपन्ना दिव्याभरणभूषिता ॥२८६॥
आज्ञां प्रार्थयमानस्तु देवीनां तद्गता प्रिये। प्रतिभूत्वा सदा कुर्यात्कृताञ्जलिपुरःस्थिता ॥२८७॥

अब इनका ध्यान कहते हैं—ये सभी देवीगण रक्त वस्त्रधारिणी हैं। विविध अलंकारों से आभूषिता हैं तथा ये सभी द्विभुजा हैं एवं वीणाधारिणी हैं। ये सभी बालरूपा हैं। इस प्रकार ध्यान करके प्रत्येक का नाम लेकर पूजा करनी चाहिये; तदनन्तर इन चारो देवीगण के आवरण देवताओं का पूजन करना चाहिये। पूर्व में शुक्लवसना, दक्षिण में रक्तवसना, पश्चिम पीतवसना तथा उत्तर में कृष्णवसना देवी का पूजन करना चाहिये। ये सभी रूपवती युवतीगण दिव्य आभरणभूषिता होकर जयादेवी के सामने अञ्जलिबद्ध होकर स्थित रहती हैं तथा उनके आदेश की प्रतीक्षा करती रहती हैं।।२८४-२८७।।

स्वनामैः पूजयेद्देवीं वेदिकाद्यैर्व्यवस्थिताम्। पश्चिमायां जयां देवीं वरदाभयपाणिनीम् ॥२८८॥
नन्दानन्दकरी देवी भवते साधकस्य तु। लोकपालान् स्वनामैस्तु अस्त्रांश्चैव प्रपूजयेत् ॥२८९॥
प्रतिभावं यदा मन्त्री मन्त्रेण सह कारयेत्। फलं न विद्यते तस्य प्रभुत्वेन यदा स्थितः ॥२९०॥

वेदिका के ऊपर अवस्थिता देवीगण को उनके नाम का उल्लेख करके पूजा करनी चाहिये। जयादेवी करद्वय से साधक को वर तथा अभय प्रदान करके पश्चिमाभिमुखी होकर अवस्थान करती हैं। नन्दादेवी इस प्रकार से परिवारवर्ग के साथ साधक को आनन्दित करती हैं। लोकपालगण का तथा उनके अस्त्रसमूह का यथानाम उल्लेख करके पूजा करनी चाहिये। मन्त्रवित् द्वारा मन्त्र के साथ देवता को विच्छिन्न भाव से जानकर अर्चना करने का कोई फल नहीं होता अर्थात् मन्त्र तथा देवता को अविच्छिन्न, अद्वय भाग से ही जानना चाहिये। तभी उसका फल होता है।।२८८-२९०।।

आत्मानं प्राकृतं मन्येन्मन्त्रं मन्येद्यथा शिवम्। विधिरेष समाख्यातः कार्यश्चैव तु साधकैः॥२९१॥
दिव्यप्राकृतभावेन पूज्यमाना महाधिपे। हृदये भव देवेशि अन्यथा तु न सिद्धिदः ॥२९२॥
पूजाकाले तु कर्त्तव्यमदाने मन्त्ररूपिणम्। अन्यथा यत्तु देवेशि विघ्नैः स परिभूयते ॥२९३॥

एवं कृत्वा महायागं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। अतः परं प्रवक्ष्यामि मुद्रालक्षणमुत्तमम् ॥२९४॥
अंगुलाग्रस्थिताः सर्वा अंगुष्ठेव ततोपरि। नमस्कारा स्मृता मुद्रा देव्याः सान्निध्यकारिका।
अनया विधिना देवि देव्याः सान्निध्यतां व्रजेत् ॥२९५॥

इति श्रीदेवीपुराणे नन्दाप्रशंसानाम त्रिनवतितमोऽध्यायः

स्वयं को सामान्य जीव मानकर मन्त्र में शिवभावना करके पूजा करनी चाहिये। हे सुरेश्वरि! दिव्यभाव तथा प्राकृतभाव से पूजा करनी चाहिये, अन्यथा नाना विघ्न आकर पूजा में विघ्न कर देते हैं। इस प्रकार से महायज्ञरूप नन्दापूजा से सर्वसिद्धि मिल जाती है। अब मुद्रालक्षण कहा जायेगा। एक हाथ की सभी अंगुलियों पर अन्य हाथ की सभी अंगुलियों को रखने से नमस्कार मुद्रा होती है, जो देवी का सान्निध्य देने वाली कही गई है। हे देवि! इस प्रकार मुद्राबद्ध होने से देवी का सान्निध्य प्राप्त होता है।।२९१-२९५।।

त्रिनवतितम अध्याय समाप्त

●

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

उमोवाच

नन्दा देव्याः पुरी देव श्रुता मे परमेश्वर। अधुना श्रोतुमिच्छामि सुनन्दायाः पुरोत्तमम् ॥१॥
किं प्रमाणं च कन्यानां प्रवेशश्च पुरस्य तु। केन मार्गेण गच्छन्ति नरा ये भावितात्मनः ॥२॥
केन वा तुष्यते देवी कथं प्रत्यक्षतां भवेत्। विधिरेष समाख्याहि मम कौतूहलं प्रभो ॥३॥

भगवती उमा कहती हैं—हे परमेश्वर! नन्दादेवी की पुरी के सम्बन्ध में सुना। अब सुनन्दा देवी के पुर की कथा सुनने की इच्छा हो रही है। वहाँ कितनी कन्यायें हैं तथा जो मनुष्य सुनन्दा देवी के भक्त हैं, वे वहाँ किस मार्ग से प्रवेश करते हैं एवं किस प्रकार की आराधना से देवी प्रसन्न होकर उनको दर्शन देती हैं? हे प्रभो! इसका सदुत्तर देकर मेरे कुतूहल को दूर करिये।।१-३।।

ईश्वर उवाच

सुनन्दाया पुरी रम्या अनौपम्या सुरेश्वरि। तथापि कथयिष्यामि तव कौतूहलं प्रिये ॥४॥
नानारत्नोपशोभाढ्या नानाभरणभूषिता। नानारत्नोज्ज्वला देवी नानामेखलयोजिता ॥५॥
रत्नसोपानपंक्तिभिः सुचित्रा तु विराजते। नानाशय्यासनाकीर्णैर्नानाचामरशोभितैः ॥६॥
नानावस्त्रवितानैश्च नानाविमानसङ्कुला। नानाकवाटविन्यस्ता नानास्तम्भसमन्विता ॥७॥
नानाध्वजोच्छ्रिता रम्या नानाघण्टानिनादिता। नानादर्पणविन्यस्ता नानास्त्रग्दामभूषिता ॥८॥

ईश्वर कहते हैं—हे सुरेश्वरि! देवी सुनन्दा की पुरी अतीव रम्य है। संसार में अतुलनीय है। तुम्हारे कौतुक के निवारणार्थ उसके सम्बन्ध में कुछ बतलाता हूँ। श्रवण करो। हे प्रिये! यह विविध रत्नों से समुज्ज्वल, नाना प्रकार की सजावट से भूषित, अनेक स्तम्भ, कपाट तथा मेखला से युक्त है। यह रत्न के सोपानों से सुशोभित भी है। नाना शय्या से पूर्ण, नाना चामरों से शोभित है। यहाँ नाना ध्वज फहराते रहते हैं, जो रम्य हैं। नाना घण्टाध्वनि यहाँ गुंजरित होती रहती है, यहाँ नाना दर्पण लगे हैं एवं चतुर्दिक पुष्प-मालादि से यह पुरी विभूषित है।।४-८।।

नानावर्णरजैः कीर्णा रम्या हेमवती मही। न निम्ना नोन्नता चापि सुखपादप्रचारदा ॥९॥
नानासरित्समाकीर्णा नानानिर्झरकाश्रिता। नानापक्षीगणाजुष्टा हेमद्रुमलताकुला ॥१०॥
नानापुष्पफलोपेता सुन्दरीभिरलंकृता। कामकार्मुकसंघुष्टा सायकैर्विध्वस्तचेतसः ॥११॥

नानावर्ण रज से पूर्ण, रम्य स्वर्णमयी भूमियुक्त इस पुरी की धरती न तो नीची है, न ऊँची है। यहाँ सुखपूर्वक चला-फिरा जा सकता है। यहाँ नाना नदी, निर्झर विराजित हैं। नाना जाति के पक्षीगणों से तथा विविध पुष्प-फल से यह परिपूर्ण है। यहाँ स्वर्णमय वृक्ष तथा लतायें इसकी शोभावृद्धि करती हैं। यहाँ कामदेव के शराघात से पीड़ित सुन्दरी रमणियाँ विराजमान हैं।।९-११।।

स्तनोरसि भराक्रान्ता प्रस्खलन्ति पदे पदे। कामेन सहसालापं नित्यं कुर्वन्ति योषितः ॥१२॥

वे स्तनों के भार से इतनी आक्रान्त हैं कि प्रत्येक कदम पर लड़खड़ा जाती हैं तथा वे सभी अचानक ही कामदेव से मानों आलाप करने लगती हैं।।१२।।

कन्यका ऊचुः

पातालपुरसुन्दर्यः किं प्रयुक्तास्त्रिलोचन। यथा कामं दहस्वेति एवं विध्वंसि निर्दय ॥१३॥
अल्पानि हीनसत्त्वानि अंगनानां मनोभवः। म्लेच्छापि न प्रहरन्ति मुक्त्वा त्वां मकरध्वजम् ॥१४॥
कान्तं ध्यात्वा कृशोदर्यः एकमेवाभिगृह्णिताः। भवन्ति लज्जिता भूयो अवसाने सुरेश्वरि ॥१५॥
अनेन मदनार्त्तास्तु सुनन्दायाः पुरे प्रिये। कथिता यादृशी आर्त्तिर्योषितानान्तु सुन्दरि ॥१६॥

भगवान् शिव के प्रति कन्यागण कहती हैं—हे त्रिनयन! इस पातालपुरी की महिलाओं ने कामदेव का क्या अपराध किया है, जिससे वे निर्दय होकर यह यातना प्रदान कर रहे हैं? अब और सहा नहीं जाता। आप कामदेव को दग्ध कर दीजिये। तदनन्तर कामदेव को उपालम्भ देती हैं—हे मदन! तुमसे कहा जा रहा है कि इन क्षुद्रप्राण स्त्रीजन पर तुम्हारे अतिरिक्त कोई म्लेच्छ भी प्रहारार्थ उद्यत नहीं होगा। हे सुरेश्वरि! सुनन्दापुरी की कन्यागण इस प्रकार से कामार्त्ता होकर यदि किसी परिचित पुरुष का वरण स्वामिभाव से करती भी हैं, तब उसके द्वारा प्रत्याख्यात हो जाने से अत्यन्त लज्जित हो जाती हैं। हे प्रिये! हे सुन्दरि! सुनन्दापुरस्थ इन कामार्त्त रमणीगण की जो आर्त्तना है, उसका तुमसे वर्णन किया।।१३-१६।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि देव्या सिद्धिनिषेवितम्। तावद्गच्छेन्महातीर्थं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥१७॥
गङ्गातीरे महादेवी पश्यते मरुकेश्वरम्। तत्र गत्वा तु मेधावी त्रिरात्रं कारयेद् बुधः ॥१८॥
त्रिरात्रे चैव सम्पूर्णे प्रणिपत्य महेश्वरम्। उत्तराभिमुखो भूत्वा व्रजेदीशानगोचरम् ॥१९॥
ऊर्ध्वयानं ततः पश्येन्नदीवामे शिलोच्चयाः। पितृणामुदकं दत्त्वा कालकूटं व्रजेत्ततः ॥२०॥

अब यह कहता हूँ कि सुनन्दा की उपासना से कैसी सिद्धि होती है। हे महादेवि! जो साधक देवताओं के लिये भी दुर्लभ इस महातीर्थ में जाता है, उसे गंगातट पर मरुकेश्वर का दर्शन करके वहाँ उपस्थित रहकर तीन रात तक व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। तीन रात का व्रत पूर्ण हो जाने पर महादेव को प्रणाम करके उत्तराभिमुखीन होकर ईशान तीर्थ में जाकर वहाँ ऊर्ध्वयान का दर्शन करके उनके वाम भाग में प्रवहमान शिलोच्चया नदी में पितृतर्पण करके कालकूट को प्रस्थान करना चाहिये।।१७-२०।।

कलहंसेश्वरं नाम शम्भोरायतनं महत्। तत्रादिपूजां कृत्वा तु प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२१॥
कौशिकायां पुरः स्नात्वा मुच्यते नरः किल्बिषैः। शूलभेदं ततो गच्छेत्तत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥२२॥

वहाँ पर कलहंसेश्वर महादेव अति सुन्दर तथा विस्तृत प्रासाद में अवस्थित हैं। उनकी पूजा करके उनको बारम्बार प्रणाम करने के पश्चात् कौशिका नदी में स्नान करने पर जीव के सभी पाप दूरीभूत हो जाते हैं। तत्पश्चात् साधक को देवदुर्लभ शूलभेद तीर्थ में जाना चाहिये।।२१-२२।।

तत्रापि पूजां कृत्वा तु एकचित्तस्तु साधकः। तद्वसन्भवनं गच्छेत् केदारं यत्र क्रीडितम् ॥२३॥
लोकदृष्टेन मार्गेण स गच्छेत् कार्तिकं पुरम्। गुह्येश्वरं नमस्कृत्वा गच्छेद्वैश्रवणं पुरम् ॥२४॥

वहाँ भी एकाग्र चित्त से पूजा करके वसन्तवन में जाना चाहिये, जहाँ भगवान् केदारनाथ क्रीड़ा करते हैं। वहाँ से प्रकाश्य पथ द्वारा (लोकदृष्ट मार्ग से) कार्त्तिकपुर जाना चाहिये और वहाँ गुह्यकेश्वर को प्रणाम करके वैश्रवणपुर जाना चाहिये।।२३-२४।।

व्रजेन्नन्देश्वरं देवमहोरात्रन्तु कारयेत्। भागं चतुष्टयं कृत्वा देवाग्निगुरु-आत्मनि ॥२५॥
भक्षयित्वा ततः प्राज्ञो गच्छेत्तदुत्तरां दिशम्। ततो वैतरणीं गत्वा स्नात्वा तु विधिवत् क्रमात् ॥२६॥
देवानामुदकं दत्त्वा पिण्डं पितृषु दापयेत्। महाविनायकं दत्त्वा पूजां तस्य प्रकल्पयेत् ॥२७॥

वहाँ वैश्रवणदेव को प्रणाम करके नन्देश्वर की यात्रा करनी चाहिये। वहाँ अहोरात्र-पर्यन्त उपवासोपरान्त व्रत करके मिट्टी के पात्र में चरु बनाना चाहिये। वहाँ इष्टदेव, अग्नि तथा गुरु—प्रत्येक को एक-एक भाग देकर स्वयं एक भाग (१/४) का भोजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उत्तर की ओर गमन करना चाहिये। क्रमशः वैतरणी नदी में जाकर यथाविधि स्नान तथा देवतर्पणोपरान्त पितृगण के उद्देश्य से पिण्ड प्रदान करने के उपरान्त महाविनायक का पूजन करना चाहिये।।२५-२७।।

देव्याश्रमन्तु संप्राप्य नमस्कृत्य महेश्वरम्। पूर्वभागे तु कुण्डस्य ऐशानीं दिशमाश्रितः ॥२८॥
सुनन्दाया शिला तत्र जलमध्ये प्रतिष्ठिता। पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥२९॥

अब साधक को देवी के आश्रम में जाना चाहिये। वहाँ महेश्वर को प्रणाम करने के पश्चात् पूर्व की ओर कुण्ड के ईशान में जाना चाहिये। वहाँ कुण्डमध्य में सुनन्दामूर्त्ति से अंकित शिला है। वहाँ परमेश्वरी सुनन्दा की गन्ध-धूपादि द्वारा पूजा करनी चाहिये।।२८-२९।।

नन्दाकुण्डं ह्रदं तत्र प्रविशेत्तत्र साधकः। नन्दादेवीं नमस्कृत्य ततो विज्ञापयेद् बुधः ॥३०॥
अनिवर्त्तपथं देवी देहि मे परमेश्वरि। ततः समीपतो गच्छेत् शिवेन पूर्वचोदितम् ॥३१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रविशेत विचक्षणः। धन्वन्तरप्रमाणं तु प्रविशेन्मत्स्यवद्द्रुतम् ॥३२॥
प्रविश्याभ्यन्तरे वीर ऐशानीदिशमाश्रितः। धन्वन्तरत्रयं गत्वा श्रीमुखं तत्र पश्यति ॥३३॥
प्रविशेत्तज्जलान्तःस्थं श्रीमुखं द्वारमुत्तमम्। धन्वन्तरशतं गत्वा पश्येदामलकं द्रुमम् ॥३४॥
तत्फलं भक्षयेत् प्राज्ञो नमस्कृत्वा महेश्वरीम्। तत्फलं भक्षमात्रेण वलिपलितवर्ज्जितः ॥३५॥

तब साधक नन्दाह्रद में प्रवेश करके नन्दादेवी को प्रणामोपरान्त इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—हे परमेश्वरि! मुझे वह पथ प्रदान करिये, जिससे जाने पर पुनः वापस नहीं आना पड़ता। यह प्रार्थना करने के उपरान्त साधक शिवनिर्दिष्ट पथ पर जाकर मछली की तरह अत्यन्त तीव्र गति से जलाशय में प्रवेश करके उत्तर की ओर तीन धनुष पथ पार करने के बाद श्रीमुख द्वार दिखाई देता है। उस रम्य द्वार में प्रवेशोपरान्त १०० धनुष के बराबर पथ पार करने पर आमलक वन परिलक्षित होता है। अब साधक को देवी को प्रणाम कस्के उस वन के आमलकफलों का भक्षण करना चाहिये। उस फल के भक्षणमात्र से उसका वार्द्धक्य दूर हो जाता है।।३०-३५।।

बलं नागसहस्रस्य तत्क्षणादेव जायते। धन्वन्तरशतं गत्वा प्रविशेत ततोऽधिकम् ॥३६॥
दृश्यते मण्डपं रम्यं शुद्धं हेममयं महत्। शुद्धस्फाटिकस्तम्भाढ्यं चतुर्द्वारं महापुरम् ॥३७॥

उस साधक में फल के खाने मात्र से ही १००० हाथियों का बल आ जाता है। अब वहाँ से १०० धनुष आगे जाने पर विशुद्ध स्वर्णमय अत्यन्त विस्तारयुक्त एक मण्डप का दर्शन होता है, जो शुद्ध स्वर्ण का बना है। वहाँ के स्तम्भ शुद्ध स्फटिक के है एवं वह महापुर चार द्वारों से युक्त है।।३६-३७।।

पद्मरागोपरिच्छन्नं पताकैरुपशोभितम्। स्वयं तिष्ठति तत्रैव महाकालगणाधिपः ॥३८॥
साधकञ्चागतं दृष्ट्वा स्वागतन्तु वदत्यसौ। अथ नन्दी वदेद्वाक्यमुपवेशाय साधकम् ॥३९॥
पृच्छामि अम्बिकां यावत्तावत्तिष्ठ महातपः। ततः शीघ्रं गतो नन्दी सुनन्दायाः समीपतः ॥४०॥

नन्दी उवाच

आगतो मर्त्यो लोकेऽस्मिन् तव पार्श्वे महेश्वरि ॥४१॥

वे स्तम्भ पद्मराग मणि-जटित हैं तथा वहाँ पताकासमूह शोभित हो रहे हैं। वहाँ स्वयं महाकाल तथा गणाधिप स्थित रहते हैं। वे साधक को आते देखकर प्रश्न करते हैं। द्वारपाल नन्दी साधक को बैठने के लिये आसन देते है तथा यह कहते हैं कि देवी अम्बिका को तुम्हारे आगमन का संवाद देकर आता हूँ। तुम कुछ क्षण यहीं रुको। यह कहकर नन्दी शीघ्रता से देवी सुनन्दा के पास जाकर कहते हैं—हे महेश्वरि! मर्त्यलोक से साधक आपके पास आये हैं।।३८-४१।।

सुनन्दा उवाच

आगच्छन्तु महानन्दी मम भक्तिपरायणः। देव्यायाः वचनं श्रुत्वा ततो नन्दी समासतः ॥४२॥
साधकस्य इदं वाक्यं वदेन्नन्दी शुभावितम्। धन्योऽसि भो महावीर एहि गच्छाम साधक ॥४३॥

भगवती सुनन्दा कहती हैं—हे नन्दी! मेरे भक्तों को ले आओ। देवी का वचन सुनकर नन्दी साधक के पास आकर कहते हैं—हे महावीर साधक! तुम धन्य हो, क्योंकि देवी तुम पर प्रसन्न हैं। तुम मेरे साथ आओ।।४२-४३।।

अर्घ्यं पाद्यं ततो गृह्य कन्या निर्गत्य वेश्मनि। केयूराभरणैर्दिव्यैर्मणिकुण्डलभूषिता ॥४४॥
चम्पकाकारवपुषः कर्णान्तायतलोचनाः। नीलोत्पलदलश्यामा नानालंकारभूषिताः ॥४५॥
रक्ताम्बरधरा काचिच्छुक्लाम्बरधरापराः। पीताम्बरधरा चान्या पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥४६॥

तब वहाँ देवकन्यायें पाद्य-अर्घ्य लेकर आती हैं। वे सभी चम्पापुष्प के समान गौरवर्णा एवं दिव्य मणियुक्त केयूर तथा कुण्डल से भूषित हैं। उनके नेत्र कर्ण तक विस्तृत हैं। उनमें कोई नीलकमलदलवत् श्याम वर्णा है, किसी ने रक्तवर्ण वस्त्र तो किसी ने श्वेत वस्त्र, किसी ने पीत वस्त्र का परिधान धारण किया है। सभी का मुख पूर्णचन्द्रवत् शोभित है।।४४-४६।।

सर्वा यौवनसम्पन्नाः सर्वाः पीनपयोधराः। सर्वास्ताः कामरूपिण्यः सर्वास्तामृतसम्भवाः ॥४७॥
याश्चान्याश्चापरास्तत्र निर्गताश्च समन्ततः। गेयैश्च मधुरैर्दिव्यैर्मण्डलैश्च मनोरमैः ॥४८॥
चामरैः कनकदण्डैश्च मणिरत्नमयैर्दृढैः। चामरहस्तास्तथा काचित् पुष्पहस्तास्तथापरा ॥४९॥
मदार्त्ता मुदिताः सर्वाः ईक्षन्ते निमिषेक्षणाः। पूज्यन्ते साधकास्तत्र अर्घ्यपाद्यैश्च मंगलैः ॥५०॥
ईष्टा तुष्टमनाः सर्वा अवगूहनतत्पराः। ततस्तु साधकं गृह्य प्रवेशयन्ति तत्पुरम् ॥५१॥

वे सभी यौवनसम्पन्ना हैं, उनके स्तनयुगल अतिस्थूल हैं। वे सभी देवगण से उत्पन्न हुई हैं तथा उस समय जो सभी अप्सरायें चारों ओर से आईं, उनमें से कोई मधुर दिव्य गायन कर रही थीं, कोई मणिरत्न जड़े सुदृढ़ सुवर्णदण्ड वाले चामर

लेकर व्यजन कर रही थीं। कोई पुष्पों को हाथों में लेकर आई थीं, सभी मदान्ध होकर निर्निमेष नेत्रों से साधकों को देख रहीं थीं। वे अर्घ्य-पाद्य आदि उपचारों से साधकों की अर्चना करके परम आनन्द तथा सन्तोष का अनुभव कर रही थीं। तदनन्तर वे साधक को साथ लेकर भवन के अन्दर प्रविष्ट हो गयीं।।४७-५१।।

विज्ञापयेत्ततो भक्त्या त्वं गतिः शरणं मम। ततो देवी वदेद्वाक्यं प्रसन्नवदनोज्ज्वला ॥५२॥

तब साधकगण ने वहाँ देवी का दर्शन करके उनको प्रणाम किया एवं भक्तिपूर्वक उनसे कहा—हे देवि! आप ही हमारी एकमात्र आश्रय तथा उपाय हैं। अन्य कुछ भी आश्रय नहीं है। तब देवी का मुख प्रसन्नता से उज्ज्वल हो गया। वे साधकों से कहती हैं।।५२।।

देव्युवाच

स्वागतं ते महावीर साधकस्त्वं कृतो मया। एवं सम्भाषिता देव्या साधकास्तु महात्मनः ॥५३॥
तत्क्षणादेव जायन्ते साधका दिव्यरूपिणः। इयं दिव्यपुरी वत्स चन्द्रवत्या समन्विता ॥५४॥
क्रीडस्व मत्प्रसादेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ। तदन्ते भवते मोक्षो मत्प्रसादेन पुत्रक ॥५५॥

देवी कहती हैं—हे महावीर! तुम सुख से तो आये हो? मैंने तुमको अपनी साधकश्रेणी में सम्मिलित कर लिया है। देवी के यह कहते ही साधकगण दिव्यरूपधारी हो गये। तब उनसे देवी पुनः कहने लगीं—हे वत्स! तुम मेरी कृपा से जब तक चन्द्र तथा सूर्य इस जगत् में हैं, तब तक इस दिव्यपुरी में रहकर यथेच्छ क्रीड़ा करो। हे पुत्र! तदनन्तर मेरी कृपा से मुक्त हो जाओगे।।५३-५५।।

देवानान्तु यथा रुद्रं अतिरस्कृतशासनः। तथैव भवने मह्यं क्रीडय त्वं यथासुखम् ॥५६॥
एवं दत्त्वा वरं देवी साधकस्य सुरेश्वरि। नमस्कृत्वा ततो मन्त्री प्रविवेश सुरोत्तमम् ॥५७॥
मंगलैः स्तूयमानस्तु गीतवाद्यमनोरमैः। चामरैर्वीज्यमानस्तु स्कन्दतुल्यपराक्रमः ॥५८॥
पुष्पयानं समारुह्य क्रीडते भवनोत्तमे। योजनानां सहस्रन्तु भवनस्य च विस्तरः ॥५९॥
सहस्रकोटिकन्यानां समन्तात् पूरितं पुरम् ॥६०॥

इति श्रीदेवीपुराणे सुनन्दाप्रवेशविधिर्नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः

जैसे देवगण महात्मा रुद्र के आज्ञा की अहवेलना नहीं कर सकते, उसी प्रकार तुमलोग भी यहाँ अपने आदेश का इच्छानुरूप पालन कराते हुये सुखपूर्वक विहार करो। हे सुरेश्वरि! साधकों ने देवी सुनन्दा से यह वर पाकर उनको प्रणाम किया तथा उस पुरी में प्रवेश किया। वहाँ जाकर वे कार्तिकेय के समान पराक्रमी हो गये तथा सर्वदा मांगलिक मनोहर गीतवाद्यों से अभिनन्दित एवं चामरादि से सेवित होकर पुष्पकरथ पर बैठकर विहार करते रहते हैं। इस सुनन्दापुरी का विस्तार १००० योजन है तथा यह पुरी सर्वदा सहस्रकोटि कन्याओं से परिपूर्ण रहती है।।५६-६०।।

चतुर्नवतितम अध्याय समाप्त

●

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

उमोवाच

सुनन्दायाः पुरं रम्यं श्रुतं मे परमेश्वर। अधुना श्रोतुमिच्छामि कन्यकायाः कथय प्रभो ॥१॥

भगवती उमा कहती हैं—हे परमेश्वर! आपसे सुनन्दापुरी की रमणीयता सुनी। हे प्रभो! अब कनकापुर कैसा है, यह सुनने की इच्छा है।।१।।

ईश्वर उवाच

कन्यकायाः पथं देवि कथयामि समासतः। शाकयवपयोवायुलघ्वाहारो अथापि वा ॥२॥
होमयेल्लक्षमेकन्तु पद्मबिल्वसमन्वितम्। ततो गच्छेन्महावीरः पूर्वोक्तेन पथेन तु ॥३॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवि! कनकापुर के पथ की बात संक्षेप में कहता हूँ। सिद्धिकामी व्यक्ति पहले शाक अथवा यवचूर्ण, दुग्ध अथवा कुछ अल्प आहार ग्रहण करके रहे अथवा केवल वायुमात्र पर जीवित रहे। तदनन्तर पद्मपत्र किंवा बेल के पत्ते से एक लाख होम करे। तदनन्तर पूर्वनिश्चित पथ पर चले।।२-३।।

अधुना मन्त्रपदानि भवन्ति–ॐ नन्द निनन्द किलि किलि स्वाहा ॥४॥
इमां विद्यां जपं कुर्यात्ततः सिद्धिः प्रजायते। पूर्वोक्तेन विधानेन मुद्रा नित्यं प्रकल्पयेत् ॥५॥
ततस्तु कारयेद्धोमं गुडिकैर्गुग्गुलस्य तु। अयुतमेकं महादेवि ततः सिद्धिः प्रजायते ॥६॥

हे महादेवि! अब होम तथा जप का मन्त्र कहा जाता है। 'ॐ नन्द निनन्द किलि किलि स्वाहा' मन्त्र का जप करने से सिद्धिलाभ होता है। किंवा पूर्व में कहे गये नियम से अंगन्यासादि करके गुग्गुलु की गुड़ि द्वारा १०००० होम करना चाहिये। इससे सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।४-६।।

पूर्वमेव एषो लक्षान् जप्त्वा होमं प्रकल्पयेत्। होमान्ते दर्शनं रात्रौ सिद्धिस्तस्य प्रजायते ॥७॥

लेकिन होम करने के पहले तीन लाख जप करना आवश्यक है। तदनन्तर होम सम्पन्न हो जाने पर रात्रि में देवी का दर्शन प्राप्त करके साधक सिद्ध हो जाता है।।७।।

ततो गच्छेत मेधावी साधकैः सहितः पथि। देव्याश्रमपदं प्राप्य चरुं तत्र प्रसाधयेत् ॥८॥
भागं चतुष्टयं कृत्वा देवि अग्निशिवात्मनि। आत्मभागं ततो मन्त्री साधकैः सह भक्षयेत् ॥९॥

तत्पश्चात् साधकों के साथ देवीपुर की ओर यात्रा करके देवी के आश्रम में आकर चरु बनाये। उस चरु का चार भाग करके तीन भाग अग्नि को प्रदान करके चतुर्थ भाग को साधकों के साथ स्वयं भक्षण करे।।८-९।।

विज्ञापयेत्ततो देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः। अहं दुःखान्तरे भीतस्तामेव शरणं गतः ॥१०॥
देहि मे त्वं पथं देवि अविघ्नेन महेश्वरि। एवं विज्ञाप्य देवेशीं स गच्छेदुत्तरां दिशम् ॥११॥

तत्पश्चात् देवी को बारम्बार प्रणामोपरान्त इस प्रकार प्रार्थना करे—हे महेश्वरि! मैं संसारदुःख से भयभीत होकर आपकी शरण ले रहा हूँ। अब मेरे मार्ग के विघ्नों का विनाश करो। यह प्रार्थना करके उत्तर की ओर जाना चाहिये।।१०-११।।

शरक्षेपत्रयं गत्वा दृश्यते शैलमुत्तमम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशा प्रतिमा तत्र तिष्ठति ॥१२॥

उतना पथ चले जितने दूर तथा एक-एक करके तीन बाण छोड़ने तक जहाँ निशान लगता है अर्थात् एक बाण जहाँ तक पहुँचा वहाँ तक जाय। पुनः वहाँ पहुँचकर वहाँ से पुनः वहाँ तक जाय जहाँ वहाँ से छोड़ा गया दूसरा बाण जाय। तदनन्तर दूसरा बाण जहाँ तक गया, वहाँ पहुँचकर वहाँ से पुनः उतनी दूर जाय, जहाँ वहाँ से छोड़ा तीसरा बाण गिरे। वहाँ एक उत्तम पर्वत लक्षित होगा। वहाँ पर शुद्ध स्फटिक के समान एक प्रतिमा स्थित है।।१२।।

नमस्कृत्वा तु गन्तव्यमैशान्यां दिशि संस्थितम्। धन्वन्तरशतं गत्वा अर्धचन्द्राकृतिः शिला ॥१३॥
तत्र मातृगृहस्थैव उत्तरा दिशि तिष्ठति। नमस्कृत्वा तु गन्तव्यं यावद्दृश्यं नभःस्थलम् ॥१४॥
करवीरवनं तत्र हेमपुष्पं सुगन्धि च। षट्पदारवरम्याढ्या दिव्यभूम्या व्यवस्थिता ॥१५॥

इनको प्रणाम करके उत्तर की ओर १०० धनुष-पर्यन्त गमन करे। वहाँ अर्द्धचन्द्राकृति शिलानिर्मित मातृभवन स्थित है। वहाँ मातृगण को प्रणाम करके जहाँ तक आकाश लक्षित होता है, वहाँ तक गमन करे। वहाँ स्वर्णकुसुमों से सुशोभित करवीर कानन है तथा उस पर भ्रमरों का मधुर गुंजन स्थान को रमणीय बनाता रहता है।।१३-१५।।

प्रतिमारूपधरा सा दिव्यहेममया शुभा। नानारत्नोज्ज्वला रम्या साधकानां फलप्रदा ॥१६॥
तस्याः पूर्वोत्तरे भागे वनं गीर्वाणपादपम्। अशोकबकुलैश्चैव शुभैस्तिलकचम्पकैः ॥१७॥
प्रियंगुनागपुन्नागैः नानापादपसङ्कुलैः। नानागुल्पसमाकीर्णं नानावल्लीसमाकुलम् ॥१८॥
सदा पुष्पफलोपेतं सदा षट्पदनादितम्। कोकिलारावरम्यन्तु नानापक्षिनिषेवितम् ॥१९॥

इस स्थान पर देवी की नाना रत्नों से दीप्यमान सुवर्णप्रतिमा है, जिसे देखने पर भक्तों को अभीष्ट फल प्राप्त होता है। वहाँ से पूर्वोत्तर कोण में पारिजात वन है। वह अशोक, बकुल, तिलक, चम्पक, प्रियंगु, नाग, पुन्नागप्रभृति से घिरा है। अन्य अनेक वृक्षों से परिपूर्ण, विविध लता, गुल्म तथा वल्ली से समाकुल पुष्पफलों से परिव्याप्त एवं वन उसमें अविरत भ्रमरगुञ्जन तथा कोकिलागण का कुहूरव होता रहता है तथा विविध पक्षियों से वह परिव्याप्त है।।१६-१९।।

अस्य मध्ये महादेवी देव्या भवनमुत्तमम्। नानारत्नैश्च विन्यस्तं नानाध्वजसमाकुलम् ॥२०॥
नानालीलावती रम्या नुपूरारावनिःस्वना। दीर्घिकाभिः सुरम्याभिः शोभिताभिः सरोरुहैः ॥२१॥
तत्र मानवकन्यास्तु देव्याः पादप्रपूजकाः। यक्षिण्यः कामरूपास्तु गन्धर्वी किन्नरी तथा ॥२२॥
विद्याधर्यः सुरूपास्तु देवीमाराधयन्ति ताम्। कामार्त्ता विह्वला नित्यं भर्त्तारं प्रार्थयन्ति ताः ॥२३॥

इस वन के बीच कनका देवी का सुन्दर भवन है। वह विविध रत्नों से जटित तथा असंख्य पताकाओं से व्याप्त है। वहाँ की सभी दीर्घिकायें प्रस्फुटित कमलसमूह से अत्यन्त शोभित हो रही हैं। वहाँ देवी की चरण-सेविका दैत्यकन्यागण तथा कामरूप यक्षिणी, गन्धर्वी, किन्नरी तथा सुन्दर विद्याधरीगण देवी की आराधना करती रहती हैं। सभी कामवेग से विह्वल होकर देवी के निकट सर्वदा पति के वरणार्थ प्रार्थना करती रहती हैं।।२०-२३।।

अनेकसिद्धिसङ्कीर्णं देव्यायाः स्थानमुत्तमम्। देव्या विमानमारुह्य आगता कनकेश्वरी ॥२४॥
जटामुकुटरत्नाढ्या भस्मोद्धूलितविग्रहा। पञ्चमुद्रासमोपेता नानारत्नविभूषिता।
महाव्रतधरा देवी आगता यत्र साधकाः ॥२५॥

इस सर्वसिद्धिमय अनुपम देवीपुर में प्रवेश करने पर देवी कनकेश्वरी विमान पर बैठकर साधकों के समीप उपस्थित होती हैं। वे देवी जटा-मुकुट से विभूषित, नाना रत्नों से अलंकृत, सर्वांग में भस्मलिप्त होकर पञ्चमुद्रा धारण किये रहती हैं।।२४-२५।।

देव्युवाच

स्वागतं ते महाराज वीरसत्त्व महातपः। मदीयं भवनं वत्स नानासिद्धिसमाकुलम् ॥२६॥
विचित्रमणिनाकीर्णं देवानामपि दुर्लभम्। यदि तिष्ठसि अत्रैव दिव्यैश्वर्यसमाकुले ॥२७॥
पातालयोषितो गृह्य यक्षिणीं वाथ रूपिणीम्। किन्नरीं वाथ गृह्णीय विद्याधरीमथापि वा ॥२८॥
खड्गं वा रोचनां वापि गुडिकां वापि पादुके। अष्टधा दिव्यसिद्धीनामेकां गृह्य यथेप्सया ॥२९॥
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् पश्चान्मोक्षो भविष्यति। एवं दत्त्वा वरं देव्या साधकस्य तु सुन्दरि ॥३०॥

देवी कहती हैं—हे वीरश्रेष्ठ महाराज! तुम सुखपूर्वक तो आये हो? हे वत्स! इस मणिरत्न जटित मेरे भवन में अशेष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अतएव यह देवगण के लिये भी सुलभ नहीं है। तुम इस दिव्य ऐश्वर्ययुक्त पुर में रहकर पातालकन्या, सुन्दरी यक्षिणी, किन्नरी, विद्याधरी, खड्ग, रोचना, गुड़िका तथा देवीपादुका—इन आठ दिव्य सिद्धियों में से किसी एक को ग्रहण करो। इससे यथेच्छा से विपुल भोगों का उपभोग करके तदनन्तर मुक्तिलाभ करो। हे सुन्दरि! देवी ने साधकों को यह वर दिया।।२६-३०।।

गता विमानमारूह्य स्वकं यं स्थानमुत्तमम्। चन्द्रकान्तमयीं नन्दां प्रतिमारूपधारिणीम् ॥३१॥
पूजयन्ति कृशोदर्य कान्तार्थिन्यो गृहे गृहे। मुक्ताफलमयीं देवीं सुनन्दायाः पुरे प्रिये ॥३२॥
गन्धधूपैः सुपुष्पाद्यैस्त्रिकालं पूजयन्ति ताः। स्फाटिकां शुभ्ररूपान्तु कनकाढ्याञ्च कामिनीः ॥३३॥
अर्च्चयन्ति सदाकालं मथिता मन्मथेन तु। स्वकीयैर्भुवनैर्दिव्यैः पूजां कुर्वन्ति ता स्त्रियः ॥३४॥

उन्होंने वर देकर विमान पर आरोहण किया तथा अपने स्थान पर चली गयीं। यहाँ पर प्रत्येक गृह में क्षीण कमर वाली नारीगण पति के लिये ज्योत्स्ना के समान शुभ्रवर्ण नन्दा-प्रतिमा की अर्चना करती रहती हैं तथा हे प्रिये! जैसे सुनन्दापुरी में मुक्ताफल-जडित सुनन्दा देवी की गन्ध-पुष्प-धूपादि के उपचार से त्रिकाल पूजा की जाती है, वैसे ही स्वस्थान में कामार्त्ता कामिनीगण स्फटिकवत् शुक्ल वर्ण कनका देवी की सर्वदा अर्चना करती हैं।।३१-३४।।

प्रलये तु समुत्पन्ने देव्याः पुरवरैः सह। विद्यते द्वे महादेवि तदा लीयन्ति देवताः ॥३५॥

हे महादेवि! प्रलयकाल में जब अन्य सभी देवता लयीभूत हो जाते हैं तब उस समय ये दो महादेवी (सुनन्दा तथा नन्दा अथवा कनका देवी—इनमें से कौन दो यह स्पष्ट नहीं है) तथा उनका दिव्य पुर ही शेष रह जाता है।।३५।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सखायानान्तु लक्षणम्। धर्मशीलास्तपोयुक्ताः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥३६॥
मात्सर्येन परित्यक्ताः सर्वसत्त्वहिते रताः। प्रियवादिनः सोत्साहा मर्त्यलोकजुगुप्सकाः ॥३७॥
परस्परसुसन्तुष्टा अनुकूला साधकस्य तु। ईदृशैः साधनं कुर्यात् सुसखायैः सहैव तु ॥३८॥

अब इसके बाद सखागण का लक्षण कहता हूँ। धार्मिक, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, तपोऽनुष्ठायी, मात्सर्यरहित, सर्वभूत के प्रति दयालु, प्रियवादी, उत्साहयुक्त, मर्त्यलोक की निन्दा करने वाली (उसमें रुचिहीन) तथा आपस में अनुकूल सन्तुष्ट ही सिद्धिलाभ के भागी होते हैं। अतः साधक को ऐसे सुहृद् सखागण के साथ मन्त्रसाधन करना चाहिये।।३६-३८।।

ब्रह्मोवाच

या नन्दा सा शिवः साक्षान्नन्दारूपधरः शिवः। उभयोरन्तरं नास्ति नन्दायास्तु शिवस्य च ॥३९॥
न नन्दायरमं ध्यानं न नन्दापरमं तपः। न नन्दापरमं तीर्थं शिवः साक्षात् प्रभाषते ॥४०॥
लेख्येऽपि तिष्ठते यस्य इदं ध्यानं महातपः। तस्यापि प्रीयते देवी किं पुनर्मन्त्रपूजिता ॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो नन्दा हैं, वे ही शिव हैं। साक्षात् महादेव ही नन्दारूप धारण करते हैं। नन्दा तथा शिव में कोई आपसी भेद नहीं है। शिवमिश्रित (अभिन्न) नन्दा परम ज्ञानरूपा हैं। नन्दा ही शिव हैं। नन्दा से परे कोई ध्यान नहीं है, नन्दा से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। नन्दा से श्रेष्ठ कोई तीर्थ नहीं है। यह साक्षात् शिव का वचन है। हे तपोधन! जिसे मात्र इसका ज्ञान है, देवी उससे प्रसन्न हो जाती हैं और उसे मन्त्रप्रयोग, पूजनादि से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।।३९-४१।।

ईश्वर उवाच

नास्तिकाय न दातव्यं न शम्भुगुरुनिन्दके। पिशुनाय न दातव्यं देव्या भक्तिविवर्जिते ॥४२॥
गुरुद्विजदेवविष्णुकन्यागोनिन्दकेन च। दातव्यन्तु महादेवि देव्या भक्तिरतस्य च ॥४३॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवि! नास्तिक, खल, देवीभक्तिरहित, शिवनिन्दक, गुरुनिन्दक के समक्ष नन्दामाहात्म्य का कथन नहीं करना चाहिये। जो देव-द्विज-गौ-विष्णु-कन्या तथा गुरु के निन्दक होते हैं, उनसे भी नन्दामहिमा नहीं कहनी चाहिये।।४२-४३।।

अन्यथा तु वरारोहे हीयते शास्त्रसन्ततिः। स्नेहाल्लोभात् प्रदानेन नरकं यान्ति रौरवम्॥४४॥

हे वरारोहे! नन्दाभक्तों से ही उनके माहात्म्य को कहना चाहिये तथा इससे सम्बद्ध ग्रन्थ प्रदान करना चाहिये। हे सुन्दरि! अभक्तों को यह सब बतलाने तथा ग्रन्थ देने से शास्त्रपरम्परा लुप्त हो जाती है। यदि कोई लोभ अथवा स्नेह के वश में होकर अपात्र को यह सब प्रदान करता है तो उसे नरकवास प्राप्त होता है और वह रौरव नरक में गमन करता है।।४४।।

त्रिमन्त्रां पठते यस्तु नन्दाभक्तिपरायणः। सोऽचिरेणैव कालेन सिद्धिमिष्टां लभेन्नरः॥४५॥

जो नन्दादेवी के प्रति भक्तियुक्त होकर उनके माहात्म्य को तीनों सन्ध्या में पढ़ता है, वह अतिशीघ्र ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।।४५।।

यथोक्तश्चैव कर्त्तव्यमादेशः परमेश्वरि। श्रवणाद्भावयुक्तस्य सर्वकामान् प्रयच्छति॥४६॥
दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च। भावितः फलमाप्नोति कोटिकोटिगुणोत्तरम्॥४७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी धनभाग्भवेत्। मुच्यते बन्धनाद्बद्धो रोगी रोगात् प्रमुच्यते॥४८॥

अधिक क्या कहें, वह १०० राजसूय तथा १०० अग्निष्टोम याग से भी करोड़ों गुणित फल प्राप्त करता है। इससे पुत्रकामी को पुत्र एवं धनार्थी को प्रभूत धन मिलता है। बद्ध व्यक्ति बंधनमुक्त हो जाता है। रोगी को रोगों से मुक्ति मिल जाती है। हे परमेश्वरि! शिव के इस आदेश का (त्रिसंध्यापाठ का) पालन सभी के लिये कर्त्तव्य है। इससे सभी इच्छित सिद्धि मिलती है।।४६-४८।।

यान् यान् कामान्नरो भक्त्या पूजयन्नभिकांक्षते। तांस्तान् स लभते शक्र इत्येवं शिव अब्रवीत्॥४९॥
देवेन कथितं देव्या शक्रस्य तु पितामहात्। मया तव नृपव्याघ्र किं भूयः परिपृच्छसि॥५०॥

इति श्रीदेवीपुराणे नन्दामहाभाग्यं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः

हे इन्द्र! मानव भक्तियुक्त होकर देवीपूजन करके जो-जो अभीष्ट माँगता है, उसे वह प्राप्त होता है। यह स्वयं महादेव का वचन है। इस नन्दामाहात्म्य को सर्वप्रथम महादेव ने पार्वती से कहा था। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा था। हे महाराज! अब मैंने तुमसे कहा है। अब और क्या जानना चाहते हो?।।४९-५०।।

पञ्चनवतितम अध्याय समाप्त

●

षण्णवतितमोऽध्यायः

नृपवाहन उवाच

केन केन प्रकारेण देव्या वर्णाश्रमैर्विभो। पूजनीया स्ववृत्तस्थैरेतदिच्छामि वेदितुम्॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—हे विभो! सदाचारयुक्त वर्णाश्रमी गण किस-किस विधान से देवी की पूजा करते हैं, वह जानने की इच्छा हो रही है। आप कहिये।।१।।

अगस्त्य उवाच

साधु राजन् यथा पृष्टं वर्णाश्रमविभागतः। पालनं पूजनं देव्या प्रवक्ष्यामि ह्यशेषतः ॥२॥
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः। दृष्टादृष्टार्थमिच्छद्भिः सेवनीयः सदा द्विजैः ॥३॥

महर्षि अगस्त कहते हैं—हे महाराज! आपने जिस वर्ण तथा आश्रम का भेद देवी की पूजापरिपाटी के सम्बन्ध में पूछा है, वह अत्यन्त उत्तम बात है। मैं इस विषय में सविशेष कहता हूँ। वेद ब्राह्मणादि वर्णत्रय द्वारा ही अनुशीलित होता है और उनको निःश्रेयस देता है। अतः इहकाल में अथवा परकाल में शुभार्थी द्विजातिगण सर्वदा वेदशास्त्र की सेवा करते हैं। दृष्ट तथा अदृष्ट फलार्थ वेदों की सदैव सेवा करनी चाहिये।।२-३।।

मातृतः पितृतः शुद्धः पञ्चसप्त तथा द्विजः। संस्कारैर्गर्भधारी च तदा तस्य क्रिया ततः ॥४॥
यथा हि मद्यभाण्डस्य शुद्धिः केनापि न विद्यते। पञ्चगव्यं न तद्याति एवं प्रायं श्रुतेः क्रिया ॥५॥
जातिसंस्कारहीनस्य द्रव्यसंकरकारिणः। शूद्रान्नभोजिनो राजन्न वेदो ददते फलम् ॥६॥

हे महाराज! जिनके मातामहकुल की ऊर्ध्वतम पाँच पीढ़ी के तथा पितृकुल की सात पीढ़ी के लोग वेदोक्त विधान से संस्कृत होते आये हैं, वे ही पवित्र तथा वेद के अधिकारी होते हैं। जैसे मद्यभाण्ड किसी प्रकार से भी पवित्र नहीं होता, उसी प्रकार से जिसमें वंशानुक्रम से जातिसंस्कार नहीं है, जो द्विजाति होकर भी शूद्रान्न का भोजन करता हैं अथवा एक द्रव्य के संयोग से अन्य द्रव्य का रूपान्तर करता है, उसे वेदशास्त्र कोई फल प्रदान नहीं करते।।४-६।।

शूद्रस्य अन्नमश्नित्वा वेदं यदि उदीरते। उच्छिष्टभोजी वर्णानां नरके पर्युपासते ॥७॥
चाण्डाल चण्डकर्मे च वृषलीपतिसन्निधौ। यदि उदीरते वेदं तदा विप्रोऽपि तत्समः ॥८॥

जो कोई शूद्र का अन्न खाकर वेदोच्चारण करता है, वह उस नरक में जाता है जहाँ उच्छिष्टभोजी जाते हैं। जो ब्राह्मण चाण्डाल के अपवित्र कानों में वेद सुनाता है, किंवा शूद्र के समक्ष वेदोच्चारण करता है, उसे शूद्रत्व प्राप्त हो जाता है।।७-८।।

वेदमन्त्रान् यदा विप्रः शूद्रद्रव्येण तर्पते। सर्पिषा यवगोधूमतिलपिष्टकशालिभिः ॥९॥
यावती तस्य द्रव्यस्य रजोरेणु विधीयते। तावतीश्च महाघोरे नरके पर्युपासते ॥१०॥

यदि ब्राह्मण शूद्रस्वामी के यव-गोधूम-तिल-पिष्टक-शालिधान्य अथवा घृत द्वारा वेदमन्त्रप्रयोग से अपने पितृगण के लिये तृप्ति हेतु उपाय करता है, तव उन द्रव्यसमूह में जितने रेणु होते हैं, उतने समय-पर्यन्त वह अत्यन्त भीषण नरक में स्थित हो जाता है।।९-१०।।

न हि वेदं समासाद्य विधिं जह्याद् द्विजोत्तम। तस्य एव हि आज्ञा न लंघनीया कदाचन ॥११॥

वेद को पढ़कर उसके विधिवाक्य का परित्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि विधि ही वेद की आज्ञा का वाक्य है। उसका अतिक्रम नहीं करना चाहिये।।११।।

चक्रवृत्तिधरा विप्रा उञ्छकापोतवृत्तिनः। दन्तोलूखालिकाहारा वेदानां लभते फलम् ॥१२॥

जो सब ब्राह्मण चक्रवृत्ति करते हैं, किंवा जो उञ्छवृत्ति अथवा कापोतवृत्ति करते हैं, अथवा जो दण्ड किंवा उलूखल की वृत्ति करते हैं, वे वेदचर्चा से रहित होकर भी वेद का फल प्राप्त करते हैं।।१२।।

नदीसङ्गमगोष्ठेषु विचित्रेषु तटेषु च। विचित्रभूमिदेशेषु दर्भदूर्वावृतेषु च ॥१३॥
गृहेषु शुभलिप्तेषु विष्णुसूर्यगृहेषु च। पठितव्यः सदा वेदः स्वरवर्णसुलक्षितः ॥१४॥

नदी के संगमस्थान में, गोष्ठ में, विचित्र नदीतट पर, किंवा कुश तथा दूर्वायुक्त पवित्र प्रदेश में अथवा गोबरलिप्त पवित्र भवन में, विष्णुमन्दिर में, सूर्यमन्दिर में बैठकर सदा वेदपाठ करना चाहिये। पाठ स्वर-वर्ण विशृङ्खलित नहीं होना चाहिये; अपितु सुलक्षित तथा स्पष्ट शुद्ध उच्चारणयुक्त होना चाहिये।।१३-१४।।

प्लुतदीर्घक्रमह्रस्वसानुस्वारसुलक्षिताम्। ऋचमुच्चारयेत् प्राज्ञो न द्रुतां न विलम्बिताम्॥१५॥

विज्ञ व्यक्ति को ह्रस्व-दीर्घ तथा प्लुतक्रम से वेदमन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। द्रुत अथवा विलम्बित पाठ नहीं करना चाहिये।।१५।।

तपस्तपति योऽरण्ये मुनिर्मूलफलाशनः। ऋचमेकाञ्च योऽधीते तच्छतानि च तत्समम्॥१६॥

जो मुनि वन में मात्र फल-मूल पर जीवन धारण करके तपस्या का आचरण करते हैं तथा दूसरी ओर जो मात्र एक वेद मन्त्र का सम्यक् अध्ययन करके उसका उच्चारण करते हैं, इनमें पूर्वोक्त १०० मुनियों के साथ इन द्वितीय व्यक्तियों की तुलना होती है (अर्थात् पूर्वोक्त १०० मुनिगण के बराबर यह एक मन्त्र का ज्ञाता होता है)।।१६।।

अपरञ्च महादोषः श्रूयते ऋषिभाषितः। इन्द्रो हिनस्ति वज्रेण अपशब्दमनुच्चरन्॥१७॥

दूसरी ओर इस विषय में ऋषिगण-कथित महान् दोष को भी सुना जाता है। यदि किसी के द्वारा वेदपाठ करते समय वर्णादि सुलक्षित नहीं होते, बीच-बीच में उच्चारण में दोष आ जाता है, तब उसका इन्द्रवज्र द्वारा विनाश कर देते हैं।।१७।।

यज्ञकाले किलशर्मा ऋचां शुद्धामुदीरितः। हतो रुद्रेण शक्रेण सराष्ट्रबलवाहनः॥१८॥

इसका प्रमाण यह है कि पूर्व काल में यज्ञ के समय किलशर्मा नामक याज्ञिक यज्ञकार्य में अशुद्ध रूप से वेदमन्त्र का उच्चारण कर रहे थे, जिससे कुपित होकर इन्द्र ने उसका विनाश उसके राज्य, सेना, वाहनादि के साथ कर दिया।।१८।।

तस्माच्छुद्धः क्रियाजातिद्रव्यसम्पत्तिलक्षणैः। वेदो वेदनशीलस्य ददाति दिविजं फलम्॥१९॥
अग्निहोत्रेण यज्ञो वै वेदश्चान्द्रायणादिभिः। सिध्यते नात्र सन्देह इत्येवं मनुरब्रवीत्॥२०॥

अतएव विशुद्ध जाति वाला अनुष्ठानविधि तथा उस अनुष्ठान से सम्बन्धित द्रव्यों से सम्पन्न व्यक्ति ही वेदशास्त्र का अनुशीलन करके स्वर्गफल प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में मनु का वचन है कि अग्निहोत्रादि याग का तथा चान्द्रायणादि व्रत का अनुष्ठान करके ही लोग निःसंदिग्ध रूप से वेदों के अधिकारी हो सकते हैं।।१९-२०।।

गर्भधारित्रसंस्कारैर्यदा विप्रो व्रतं लभेत्। तदा चाध्ययनं कुर्याद्वेदस्य विधिना शृणु॥२१॥

जिस काल से विप्र गर्भवास काल के संस्कार से संस्कृत होकर उपनीत होकर जिस नियम से वेदाध्ययन करेंगे, उसे कहता हूँ, श्रवण करो।।२१।।

न संकीर्णे जले कुर्यान्न च तस्करसन्निधौ। न श्वानशूकरकाककृकराभ्यः समावृतः॥२२॥

अपरिष्कृत स्थान में, जल में, तस्कर के पास, किंवा अश्व, शूकर, काक, कृकरादि अशुद्ध प्राणीगण से परिवृत्त होकर वेदपाठ नहीं करना चाहिये।।२२।।

सन्ध्यागर्जितनिर्घातो रजोदाहस्तमोवृते। नैर्ऋते मृतनष्टेषु राज्ञां संग्रामविप्लवे॥२३॥
श्राद्धभुञ्जेन, वान्तस्तु नाजीर्णो न च कामितः। नाष्टम्यां न च गोदोहे न पौर्णी न च पार्वणे॥२४॥
न शेषे न च इन्द्राहे न संक्रान्तौ तथा परे। न राहोरुपरागेषु न च केतुप्रदर्शने॥२५॥

नोत्पाते च पठेद्वेदं यदीच्छेत् श्रेयः सर्वदा। उपाध्यायं समाश्रित्य तस्य चाज्ञाकरो भवेत्।
एवं संवर्त्ततो वत्स फलन्ते वेदिकाः क्रियाः॥२६॥

इति श्रीदेवीपुराणे वेदानुषङ्गो नाम षण्णवतितमोऽध्यायः

सन्ध्यागर्जन, वज्रपात, दिग्दाह होने पर, रात्रिकाल में, किसी की मृत्यु होने पर, राजाओं के युद्धजन्य परिवर्त्तन-भय होने पर वेदपाठ नहीं करना चाहिये तथा श्राद्धकर्त्ता, श्राद्धान्नभोजी, अजीर्णरोगी एवं कामुक वेदपाठ के अधिकारी नहीं होते। अष्टमी, प्रतिपद, पूर्णिमा, अमावस्या तिथि के दिन, संक्रान्ति के दिन, चन्द्र-सूर्यग्रहण के दिन, केतुदर्शन तथा अन्य उत्पात होने पर अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को वेदपाठ नहीं करना चाहिये। इन सब काल से अतिरिक्त काल में गुरु के समीप वेदाध्ययन से मंगल होता है तथा इसी से वैदिक कर्मसमूह फलप्रद होते हैं।।२३-२६।।

षण्णवतितम अध्याय समाप्त

●

सप्तनवतितमोऽध्यायः

शक्र उवाच

गोमेधो अश्वमेधश्च पशुमेधादयो मखाः। तेषु प्राणिवधस्तात ते च स्वर्गादिसाधनाः॥१॥
एवं पूर्वापरार्थेषु विरोधः सुमहान् भवेत्। छिन्धि मे संशयं नाथ सर्वशास्त्रार्थपारग॥२॥

शक्र कहते हैं—हे नाथ! गोमेध, अश्वमेधादि जिन सब यज्ञ का उल्लेख है, उसमें नित्य प्राणिवध होने पर भी उसके अनुष्ठान से स्वर्गादि फल प्राप्त होता है। इस विषय में पूर्वापर अत्यन्त विरोध परिलक्षित होता है। हे नाथ! आप समस्त शास्त्रों के पारदर्शी हैं। अतः इस सम्बन्ध में मेरा सन्देह दूर करिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञेष्वेषां वधः स्मृतः। अन्यत्र घातनाद्दोषो वाङ्मनःकायकर्मभिः॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! यज्ञ के लिये ही पशु की सृष्टि होती है और यज्ञार्थ ही उनका वध विहित है। यज्ञ के कार्य के अतिरिक्त वाणी, मन, काय तथा कर्म से भी वध करने से दोष होता है।।३।।

देवार्थे पितृकार्येषु मनुष्यार्थे पुरन्दर। वधयत्र भवेदेन अन्यथा महाकिल्विषम्॥४॥

हे पुरन्दर! देवकार्य-पितृकार्य में प्रसिद्ध मनुष्यकृत पशुवध से पाप नहीं होता। इसके विपरीत (उदरपूर्त्ति अथवा क्रीडार्थ) पशुवध करने पर पाप होता है।।४।।

नवकृषरपूपानि पायसं मधुसर्पिषी। वृथा मांसञ्च नाश्नीयाद्देवपितृनहोमितम्॥५॥

देवता तथा पितृगण को निवेदन किये विना नूतन कृषर (तिल उर्द की खिचड़ी), पूप, पायस, मधु, घृत तथा मांस का भक्षण करना व्यर्थ होता है।।५।।

न वृथा चेष्टयेत्किञ्चित्त्रिवर्गस्य विरोधया। न च वाचं वदेद्दुष्टां न दीनां न च कर्कशाम्॥६॥

धर्म-अर्थ-काम के विरुद्ध प्रयत्न नहीं करना चाहिये। वाक्य को कर्कश रूप से, दोषयुक्त रूप से अथवा अति दीनभाव से नहीं बोलना चाहिये।।६।।

नासहायो व्रजेद्रात्रौ न पंके न चतुष्पथे। न शून्यागारे तिष्ठेत न च पर्वतमस्तके ॥७॥

रात्रि में एकाकी नहीं चलना चाहिये। चतुष्पथ पर एवं कीचड़ में भी रात्रि में नहीं चलना चाहिये। निर्जन गृह में तथा पर्वत के शिखर पर अवस्थित नहीं होना चाहिये।।७।।

न श्मशाने न देवस्य प्रासादेषु कदाचन। न च गवि प्रसूतायां विश्वसेत् स्त्रीजनेषु च ॥८॥

श्मशान अथवा देवालय में अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिये। सद्य: प्रसूता गौ तथा साधारण स्त्रीजन का विश्वास नहीं करना चाहिये (सद्य: प्रसूता गौ आक्रामक हो जाती है)।।८।।

न वृक्षारोहणं कुर्यान्न च कूपावलोकनम्। न गोद्विजहुताशान्नं मध्ये न गमनं क्वचित् ॥९॥
न वह्नौ तापयेत् पादं न च तमभिलंघयेत्। न सूर्यमवलोकेत उदयास्तमने क्वचित् ॥१०॥

कूयें में नहीं झाँकना चाहिये, वृक्ष पर नहीं चढ़ना चाहिये। कभी भी अस्तकाल एवं उदयकाल में सूर्य को नहीं देखना चाहिये। गो-ब्राह्मण तथा अग्नि के बीच से कभी भी गमन नहीं करना चाहिये (दो गौ के बीच से, ब्राह्मणों के बीच से होकर नहीं जाना चाहिये। अग्नि का लंघन नहीं करना चाहिये)। अग्नि पर पैर नहीं तापना चाहिये और न ही उसका लंघन करना चाहिये।।९-१०।।

न मुखेन धमेदग्निं न च खड्गं तु लंघयेत्। तथा चैवायुधान् सर्वान् यत्रोपस्करमार्जनीः ॥११॥
न प्रमत्तजनाकीर्णे न च स्त्रीबालसेविते। गृहे वामगमं कुर्यान्न च विश्वासक्रीडनम् ॥१२॥

मुँह से फूंक कर अग्नि प्रज्वलित नहीं करनी चाहिये। खड्गादि अस्त्र तथा झाड़ू आदि को लाँघना नहीं चाहिये। जिस गृह में उन्मत्त स्त्री अथवा बालक वास करते हैं, वहाँ निवास करना, जाना तथा विश्वास करना वर्जित है।।११-१२।।

न विषं भक्षयेत्प्राज्ञो न भुजङ्गैश्च क्रीडयेत्। न गुरुद्विजवेदांश्च निन्दयेन्न च आक्षिपेत् ॥१३॥

बुद्धिमान व्यक्ति को विषपान नहीं करना चाहिये। सर्प से नहीं खेलना चाहिये। वेद-ब्राह्मण-गुरुजन की निन्दा नहीं करनी चाहिये। किसी विषय में भी उनपर आक्षेप नहीं करना चाहिये।।१३।।

सर्वं भद्रं शुभं ब्रूयात्सर्वकालं शुभाननः। शुक्लवासा शुचिः स्रग्वी न च केशनखः सुखी ॥१४॥
शुक्लमाल्यधरो नित्यं सुगन्धः सुखवाससः। नेत्राञ्जनं निषेवेत दन्तधावनपूर्वकम् ॥१५॥

सर्वदा प्रफुल्ल होकर मंगलवाक्य का प्रयोग करना चाहिये। सर्वदा पवित्र रहना चाहिये। नख-केशादि काटकर श्वेत वस्त्र पहन कर सुगन्धि, शुभ्र पुष्पमाला धारण करनी चाहिये। नित्य दन्तधावन करना चाहिये एवं नेत्रों में अञ्जन लगाना चाहिये।।१४-१५।।

ऋजुपथे सदाचारो ऋजुसेवी जितेन्द्रियः। पठनाजपनासक्तो लिखना श्रवणा तथा ॥१६॥

सदाचारी तथा जितेन्द्रिय होकर सरल पथ पर रहकर सरल उपायों का अनुसरण करना चाहिये। सर्वदा धर्मग्रन्थ-पाठ, लिखना तथा सुनना आवश्यक है। इष्ट मन्त्र का जप भी करते रहना चाहिये।।१६।।

नित्यं दैवतपूजायामौषधाधारणेषु च। जपहोमार्च्चने सक्तो विन्दते सुखमुत्तमम् ॥१७॥
न गच्छेन्मैथुनं पर्वे न देवगुरुसन्निधौ। न कुर्याज्जले नादन्तु न वेद्यैर्न च वत्सरैः ॥१८॥
न प्रधानजनवादं नृपाक्षेपं कदाचन। नृपबन्धुगुर्वमात्यभिषग्ज्योतिपुरोहितैः ॥१९॥
विरोधानीह दुःखानि सुखं प्रीत्या अवाप्नुयात् ॥२०॥

इति श्रीदेवीपुराणे आचारकीर्त्तनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः

नित्य देवार्चन, होम तथा जपकार्य में लगे रहना चाहिये। साथ ही कुछ-कुछ वैद्यशास्त्र का भी अध्ययन करना लाभप्रद होता है। पर्वकाल में, देवता तथा गुरुजनों के पास मैथुन नहीं करना चाहिये एवं जल में रहते समय किसी से वितण्डा—कहा-सुनी नहीं करना चाहिये, राजा, चिकित्सक, हिंसक तथा महात्मागण के साथ तर्क-कलह नहीं करना चाहिये; क्योंकि राजा, बन्धु, अमात्य, गुरु, सूर्य, ज्योतिषी तथा पुरोहित से विवाद करने पर पग-पग पर दुःखभोग होता है। इन सबके साथ सत् प्रीति रखने से सुख से काल व्यतीत किया जा सकता है।।१७-२०।।

सप्तनवतितम अध्याय समाप्त

●

अष्टनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवमाचारयुक्तात्मा सततं चर्च्चिकारतः। आप्नुयात् सर्वकामांस्तु यथेप्सितमनोऽनुगान् ॥१॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार वेदोक्त आचार में रहकर चर्चिका देवी का भक्त होने पर अभिलषित फल मिलता है।।१।।

शक्र उवाच

नित्यं ये भगवतीभक्तास्तैर्नरैर्द्विजसत्तम। किं कार्यं किं वा नो कार्यं तद्वद पृच्छतो मम ॥२॥

इन्द्र कहते हैं—हे प्रभो! जो नित्य इन भगवती के भक्त हैं, उन मानवगण का कर्त्तव्य क्या है तथा अकर्त्तव्य क्या है, वह जानना चाहता हूँ। कृपया बतायें।।२।।

ब्रह्मोवाच

सर्वा सर्वगता देवी सर्वदेवनमस्कृता। यष्टव्या शुद्धभावेन न भिन्ना पृथगेव सा ॥३॥
नामभेदाद्भवेद्भिन्ना न भिन्ना परमार्थतः। शिवा नारायणी गौरी चर्च्चिका विमला उमा ॥४॥
तारा श्वेता महाश्वेता अम्बिका शिवशासनात्। यावद्द्रव्यं भवेदर्हं तावद्देवी व्यवस्थिता ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! सर्वगामिनी, सर्वदेववन्द्या, सर्वस्वरूपिणी भगवती की शुभ चित्त से अर्चना करनी चाहिये। वे एक होकर भी पृथक् रूप होती हैं। वे नामभेद से भिन्न हैं, परमार्थतः भिन्न-भिन्न नहीं हैं। शिव के आदेश से वे शिवा, नारायणी, गौरी, चर्चिका, विमला, उमा, तारा, श्वेता, महाश्वेता तथा अम्बिका—इन कई नामों से वे पृथक्-पृथक् हैं। संसार में जो कुछ भी है, जो भी द्रव्य है, सभी में देवी स्थित हैं।।३-५।।

सा वन्द्या पूजनीया च सततं नन्दभावितैः। विजयार्थं नृपैः खड्गे छूरिकापादुकापटे ॥६॥
चामुण्डा चित्ररूपा वा लिखिता वाथ पुस्तके। ध्वजे वा कारयेच्चक्र स नृपो विजयेद् द्विषम् ॥७॥

वे सदैव वन्द्या तथा पूज्या हैं। राजागण संग्राम में विजयलाभार्थ खड्ग, छुरिका, पादुका, पुस्तक अथवा चित्रपट पर अंकित उन चामुण्डा देवी की नित्य पूजा करते रहते हैं। हे इन्द्र! राजागण ध्वज में उनकी पूजा करके भी शत्रुजय करते हैं।।६-७।।

विशेषाच्छ्रावणारभ्य तस्याः पूजान्तु कारयेत्। पवित्रारोहणं वत्स सर्वशास्त्रेषु गीयते ॥८॥

अग्नेर्ब्रह्मस्य पार्वत्या गजवक्त्रमहोरगाम्। स्कन्दभानुगणामातृदुर्गाधर्मेशगोवृषाम् ॥९॥
विष्णोः कामस्य देवस्य शक्रस्य च दिनांशगाम्। पूजनीया तु चामुण्डा चण्डपापविनाशिनी ॥१०॥

हे वत्स! श्रावण आदि में उनकी विशेष पूजा का विधान है तथा सभी शास्त्रों में पवित्रारोहण की कथा वर्णित है। अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, महानाग अनन्त, कार्त्तिक, सूर्य, प्रमथगण, मातृगण, धर्म, गौ, वृष, विष्णु, कामदेव, इन्द्र तथा दिक्पालगण की पूजा देवी पापनाशिनी चामुण्डा के साथ करने पर अत्यन्त भयानक पाप का भी ध्वंस हो जाता है।।८-१०।।

सर्वकार्यादिना दत्ता एभिर्नामैः पुरन्दर। अथवाषाढमासे तु श्रावणे वापि कारयेत् ॥११॥
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यामधिवासं सुराधिप। सर्वोपहारसम्पन्नं नन्दायाः भक्तिमाश्रितः ॥१२॥
शुक्लतन्तुमयं कार्यं पवित्रं बहुतन्तुभिः। ग्रन्थिभिः सुविचित्राभि रचितञ्चैव मौक्तिकैः ॥१३॥
सुधौतं बद्धयेत् तन्तुं रोचनाशशिकुङ्कुमैः। तथा सर्वाणि द्रव्याणि पुष्पगन्धफलानि च ॥१४॥

हे पुरन्दर! सभी काल में सर्वदा इन नामों से पूजा करनी चाहिये। अथवा आषाढ़ किंवा श्रावण मास की सप्तमी किंवा त्रयोदशी तिथि को साधक को भक्ति के साथ नन्दादेवी का अधिवास करना चाहिये। अधिवास काल में देवता के हाथों में श्वेत, धौत तथा ग्रन्थियुक्त सूत्र का पवित्रबन्धन करना चाहिये। सभी गाँठ सुन्दर तथा विचित्र होने चाहिये। उसमें मोती लगा होना चाहिये। रोचना, मुक्ता तथा कुङ्कुम गाँठों में बंधे होने चाहिये। तदनन्तर सर्वद्रव्य पुष्प-गन्ध-फल आदि प्रदान करना चाहिये।।११-१४।।

नैवेद्यानि विचित्राणि वस्त्राद्याभरणानि च। हेमतारमयान् पुष्पान् कुशानि मृदवस्तथा ॥१५॥
सुस्नातो मन्त्रविधिना अग्निकार्यं तथा कुरु। तथा च पूजयेद्देवीं प्रतिमां स्थण्डिलेऽपि वा ॥१६॥
पादुके वाथ खड्गे च छूरिकाधनुषोस्तथा। मन्त्रधावनपूर्वन्तु पञ्चगव्यं चरूं कुरु ॥१७॥

प्रचुर विचित्र नैवेद्य-वस्त्र-नाना आभरण, कोमल कुशपत्र आदि से देवी की अर्चना करनी चाहिये। अधिवासन के पूर्व दन्तधावन-सहित स्नानोपरान्त यथोक्त मन्त्रों से अग्नि स्थापित करनी चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चगव्य में चरु इसी अग्नि पर बनाना चाहिये। तत्पश्चात् प्रतिमा में, स्थण्डिल में, देवीपादुका में, खड्ग में, क्षुरिका में अथवा धनुष में—इनमें से किसी में भी देवी का पूजन करना चाहिये।।१५-१७।।

दत्त्वा दिशां बलिं वत्स तथा कुर्याधिवासनम्। सदशैर्वस्त्रपत्रैर्वा स्थापयेत् तत् पवित्रकम् ॥१८॥
कृत्वा सत्राभिमन्त्राद्यं नैवेद्यं च निवेदयेत्। रात्रौ तु जागरं कुर्यात् सर्वशोभासमन्वितम् ॥१९॥

हे वत्स! पहले इस प्रकार पूजा करने के उपरान्त दिक्पालगण को बलिप्रदानोपरान्त पूर्वोक्त अधिवास करना चाहिये। अधिवासांग के रूप में जो पवित्रबन्धन किया जाता है, उस पर देवी का १०० मन्त्र जप करने के उपरान्त उसे किसी पत्र से आच्छादित करके रात्रि-जागरण करना चाहिये। उस स्थान को सर्वशोभायुक्त बनाना चाहिये।।१८-१९।।

नटनर्तकवेश्यानां सङ्गानि मुदितानि च। तिष्ठन्तु वाद्यगीताभिर्निरतानि पुरन्दर ॥२०॥
प्रभातसमये वत्स प्राप्ते दद्यात् पुनर्बलिम्। प्रत्यूषे विधिवत् स्नात्वा तथा देवीं हुताशनम् ॥२१॥
जप्त्वा हुत्वाथ कन्याश्च स्त्रियो भोज्या द्विजांस्तथा। पवित्रारोहने वृत्ते दक्षिणामुपपादयेत् ॥२२॥

हे इन्द्र! यह जागरण उस रात्रि में नट, नर्त्तक वेश्यागण के साथ मिलित होकर देवी के समक्ष परमानन्द से गायन-वाद्य के साथ होना चाहिये। हे वत्स! प्रभात होने पर यथाविधान स्नानोपरान्त पुनः दशो दिशाओं में बलिप्रदान करने के पश्चात् देवी तथा अग्नि की पूजा करनी चाहिये एवं यथाशक्ति उनके मन्त्र का जप तथा उस मन्त्र से होम करने के उपरान्त

कुमारीगण एवं ब्राह्मणगण को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार पवित्र बन्धन से सुसम्पन्न होकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।।२०-२२।।

यथा शक्ता भवेच्छक्र नित्यं कार्यकारिणा। राज्ञा नानाविधा भक्ति अक्षक्रीडा मृगावधम् ॥२३॥
द्विजाचार्यैश्च स्वाध्यायं न कार्यं कृषिगोवृषैः। बालैः स्त्रीभिश्च आत्मीयं दिनानि दश पञ्च वा ॥२४॥

हे इन्द्र! तदनन्तर कुछ नियमपालन करना चाहिये। राजा द्वारा द्यूतक्रीड़ा, मृगया निषिद्ध है। द्विजगण के लिये स्वाध्याय भी निषिद्ध है। वैश्यों के लिये तब तक कृषिकर्म निषिद्ध है, जब तक कि वैश्य यह कार्य कर रहे हों। उनके लिये वाणिज्य भी निषिद्ध है। यह निषेधपालन १० दिन अथवा ५ दिन तक करना चाहिये।।२३-२४।।

देव्या व्यापारनामाभिः कर्त्तव्यं सततं हरे। तथा सम्पूर्णकर्त्तव्यं पुनः कुर्यात् पवित्रकम् ॥२५॥
एवं यः कारयेद्वत्स तस्य पुण्यफलं शृणु। सर्व-यज्ञ-व्रत-दानसर्वतीर्थाभिषेचनम् ॥२६॥
प्राप्नुयान्नात्र सन्देहो यस्मात् सर्वगता शिवा। नाधयो न च दुःखानि न पीडा न च व्याधयः ॥२७॥
न भयं शत्रुजं तस्य न ग्रहैः पीड्यते क्वचित्। सिध्यन्ते सर्वकार्याणि अपि यानि महान्त्यपि ॥२८॥
नातः परतरं वत्स मन्ये पुण्यविवृद्धये। नराणाञ्च नृपाणाञ्च स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः ॥२९॥
सौभाग्यजननं वत्स तव स्नेहात्प्रकाशितम्। मयापि ते नृपश्रेष्ठ यथावदुपपादितम्।
श्रवणादपि पुण्याय किं पुनः कारणाद्विभो ॥३०॥

इति श्रीदेवीपुराणे पवित्रारोहणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः

हे वत्स! जो व्यक्ति इस विविध अनुष्ठान को करता है, उसका पुण्यफल कहता हूँ; सुनो। विविध यज्ञ, व्रत, दान तथा सभी तीर्थों में अवगाहन का जो फल मिलता है, सर्वस्वरूपा भगवती उसे इस पूजन द्वारा वही फल प्रदान करती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उस व्यक्ति को कोई रोग, दुःख अथवा मनस्ताप नहीं होता। शत्रुभय नहीं रहता तथा ग्रहपीड़ा भी उसे कभी नहीं होती। उसके महान् कार्य भी सुसम्पन्न हो जाते हैं। इसकी तुलना में अन्य कोई पुण्यवर्द्धक कार्य है ही नहीं। हे वत्स! इसके अनुष्ठान से मनुष्यों का, विशेषतः स्त्रीगण तथा राजाओं का सौभाग्यवर्द्धन होता है। हे महाराज! ब्रह्मा ने इन्द्र के प्रति कृपा करके जो कहा था, उसे मैंने भी तुमसे कहा। इसे सुनने मात्र से भी पुण्य मिलता है। फिर अनुष्ठान से जो फल मिलता है, उसे अधिक क्या कहूँ।।२५-३०।।

अष्टनवतितम अध्याय समाप्त

●

नवनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वाभ्युदयवर्धनम्। यत्कृत्वा भवते राजन् सर्ववर्णोऽपि चानघ ॥१॥
नभोमासे तु सम्प्राप्ते नक्ताहारो जितेन्द्रियः। प्रातःस्नायी सदाध्यायी अग्निकार्यपरायणः ॥२॥
देवीं संपूजयेद्वत्स पुन्नागबिल्वचम्पकैः। धूपन्तु गुग्गुलं दद्यान्नैवेद्यं घृतपाचितम् ॥३॥
क्षीरान्नं दधिभक्तञ्च अथवा शाकयावकम्। जपं कुर्यात्तु मन्त्रस्य सहस्रं शतमेव वा ॥४॥
देव्यायास्त्रं समप्येत यावत्पूर्णव्रतो भवेत्। पूर्णे व्रते ततो वत्स कन्याचार्यद्विजांस्त्रियः ॥५॥
भोजयेत् पूजयेद्भक्त्या हेमभूवस्त्रगोवृषैः। अभावात् मन्त्रजापन्तु नित्यं कार्यं नृपोत्तम ॥६॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे राजन्! अब सर्व अभ्युदय-सम्पादक व्रत का वर्णन करता हूँ। इसका अनुष्ठान करने से सभी वर्ण के लोग पापरहित हो जाते हैं। हे वत्स! श्रावण मास में ब्रह्मचर्य से रहकर नित्य प्रातःस्नान, नित्य होम, रात्रि आहार तथा वेदपाठ करके बिल्व-पुन्नाग-चम्पकप्रभृति पुष्प; गुग्गुलुधूप से पूजा करनी चाहिये तथा नाना नैवेद्य, घृत-पक्व क्षीरान्न, दधिमिश्रित अन्न, पायसान्न प्रभृति अन्न निवेदन करके १००० अथवा १०० बार मन्त्रजप करके देवी के अंगों में जपसमर्पण करना चाहिये। सम्पूर्ण मास ऐसा करने से व्रत पूर्ण हो जाता है। हे वत्स! व्रत पूर्ण हो जाने पर कन्या-आचार्य-द्विज-स्त्रीगण-कुमारीगण तथा पुरोहित को भोजन कराना चाहिये। यथाशक्ति सुवर्ण-भूमि-वस्त्र-गौ तथा वृष प्रदान करके उनकी पूजा करनी चाहिये। हे नृपोत्तम! यदि इतने दानादि में समर्थ न हो तब इसके अनुकल्प के रूप में मन्त्रजप करना चाहिये।।१-६।।

यः कुर्यात् सततं भक्त्या सोऽपि तत्फलमाप्नुयात्। न च व्याधिर्जरा मृत्युर्न भयं चोरसम्भवम् ॥७॥
भवते नन्दाभक्तस्य अन्ते च पदमव्ययम् ॥८॥

जो इसे सतत् भक्तिपूर्वक करता है (जप करता है), वह भी वही फल प्राप्त कर लेता है। उसे (पूजक को) कोई मनःस्ताप तथा व्याधि एवं भय नहीं रह जाता। उसकी अकालमृत्यु नहीं होती, उस पर अकाल में जरा की स्थिति नहीं आती। वह देहान्तोपरान्त देवीलोक में नित्यपद प्राप्त करता है।।७-८।।

अथ मन्त्रपदानि भवन्ति—ॐ नन्दे नन्दिनी सर्वार्थसाधनी।

(मूलविद्या)

ॐ नुं नन्दे हृदयम्। ॐ तुं नन्दिनी शिरः। ॐ सर्वानि शिखा। ॐ अर्थसाधिनी कवचम्।

ॐ नुं नेत्रम्। ॐ नमः हुंफट् अस्त्रम्। ॐ नन्दिनी उपचारहृदयम् ॥९॥

तृतीयामथ पञ्चम्यां चतुर्थ्यामष्टमीषु च। नवम्यां पौर्णमास्याञ्च एकादश्याञ्च द्वादशीम् ॥१०॥
षष्ठ्यां चैव विद्येषा पूजनीया विशेषतः। नन्दामुद्दिश्य यो दद्याच्छ्वावणे गोवृषं सितम् ॥११॥
स लभेदिष्टकामानि अन्ते लोकञ्च शाश्वतम्।

अब मन्त्रपद कहते हैं। मूलविद्या है—ॐ नन्दे नन्दिनी सर्वार्थसाधिनी। ॐ नन्दे हृदयम्। ॐ नन्दि शिरः। ॐ सर्वानि शिखा। ॐ अर्थसाधिनि कवचम्। ॐ नुं नेत्रम्। ॐ नमः हुं फट् अस्त्रम्। ॐ नन्दिनी उपचारहृदयम्। (स्त्री-बालक-शूद्र ॐ के स्थान पर ओं का उच्चारण करें। (इस विषय में देखें—आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ)।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, नवमी, पूर्णिमा, एकादशी तथा द्वादशी के दिन विशेषतः इन मन्त्रों से देवी-पूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति नन्दादेवी के उद्देश्य से श्वेत गौ तथा वृषभ दान करता है, वह इस लोक में अभीष्ट फल प्राप्त करके अन्त में नित्य धाम में वास करता है।।९-११।।

नवम्यां यः समुद्दिश्य दद्याद्गां काञ्चनं पिवा ॥१२॥
स व्रजेद् धूतपातस्तु नन्दालोकं तनुक्षये। आश्विने नवरात्राणि उपवास-अयाचितैः ॥१३॥
कृत्वा देवीं प्रपूज्येत अष्टम्यामपरेऽहनि। हेम-वस्त्र-मणि-पुष्प-नानाचित्र-विभूषणैः ॥१४॥
दानं च काञ्चनं देयं नन्दाशास्त्रार्थपारगे। स धूतपापसङ्घातः सर्वकामसमन्वितः ॥१५॥
विमाने चामरोत्क्षिप्ते चारु चाक्षरशोभिते। गच्छते नन्दलोकन्तु यत्र देवी पुरारिहा ॥१६॥

जो व्यक्ति नवमी तिथि को नन्दा देवी के लिये गौ अथवा स्वर्णदान करता है, वह निष्पाप होकर देहान्त के बाद नन्दालोक में निवास करता है। जो व्यक्ति आश्विन मास में नवरात्र में उपवास तथा अयाचित भोजन करते हुये देवीपूजा करता है तथा नित्य नन्दाशास्त्रज्ञाता ब्राह्मण को स्वर्णदान देता है, उसका सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। सर्वपापमुक्त होकर जहाँ दानवदलनी भगवती विराजित हैं, वह पूजक चामरधारिणी अप्सराओं के साथ विमान पर बैठकर उस नन्दालोक को गमन करता है।।१२-१६।।

रमते कन्याकोटिभिरप्सरोगणसेवितः। तदन्ते आगतश्चात्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥१७॥
नन्दाभक्तः शिवे भक्ते नन्दायात्रैकतत्परः।

वहाँ अप्सराओं से परिवृत होकर कोटि कन्याओं के साथ परम-सुखपूर्वक क्रीड़ा करता है और वहाँ भोगों का अवसान हो जाने पर पृथिवी पर जन्म लेकर नन्दा तथा शिव के प्रति परम भक्तियुक्त होकर नन्दा का महोत्सव करने वाला सम्राट् हो जाता है। वह नन्दाभक्त शिवभक्त होता है तथा नन्दा के सेवार्थ तत्पर रहता है।।१७।।

कार्तिके पूजयित्वा तु देवीं याति गजाह्वयैः॥१८॥
अन्नदानं ददेद् विप्र कन्यायां स्त्रीजनेषु च। श्वेतानि चैव वस्त्राणि तथा देयानि दक्षिणा॥१९॥
मुच्यते सर्वपापैस्तु जन्मान्तरकृतैरपि। इहत्रैव भवेद्योगी परत्र पदमव्ययम्॥२०॥

जो कार्तिक मास में जातीपुष्पों से देवी की अर्चना करता है तथा ब्राह्मण, स्त्रीगण एवं कन्याओं को प्रचुर अन्न, श्वेत वस्त्र तथा दक्षिणा प्रदान करता है, वह जन्म-जन्मान्तर के पापों से विमुक्त होकर इस जन्म में योगी हो जाता है एवं जन्मान्तर में नित्य धाम की प्राप्ति करता है।।१८-२०।।

मार्गस्य विधिवत्स्नात्वा देवीं पूजय कुङ्कुमैः। नैवेद्यं पूष्पपूर्णांश्च देया कन्याश्च ब्राह्मणे॥२१॥
भोजयेद् दक्षयेद्वत्स वस्त्रैः कीटकुलोद्भवैः। प्राप्नुयात् सर्वकामानि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२२॥

हे वत्स! इसी प्रकार से जो अग्रहायण में नित्य यथाविधान से स्नान करके कुङ्कुम तथा नानाविध नैवेद्य से देवीपूजन करते हैं तथा कुमारी एवं ब्राह्मणों को कीट द्वारा बनाये अर्थात् रेशमी वस्त्र प्रदान करते हैं, उनको कुसुम-माला से विभूषित करके भोजन कराते हैं, वे पापों से मुक्त होकर अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त करते हैं।।२१-२२।।

पौषे देवीं समाधाय पूजयेद्धवलैः स्रजैः। नैवेद्यं शालिभक्तञ्च कन्यां भोजयेत् भक्षयेत्॥२३॥
पीतैर्वस्त्रैस्तथा देया शय्या देव्या तुलोद्भवा। अनेन विधिना वत्स साक्षाद्देवी प्रसीदति॥२४॥
ददते कामिकान् भोगानन्ते च स्वपुरं नयेत्।

इस प्रकार से यदि कोई देवी की स्थापना करके धवल पुष्पों की माला, विभिन्न नैवेद्य तथा शालितण्डुल के अन्न से देवी का पूजन करता है एवं कन्यागण को भोजन करता है, पीत वसन तथा तूल से बनाई शय्या प्रदान करता है, हे वत्स! भगवती उस पर साक्षात् प्रसन्न हो जाती हैं। भगवती उसकी समस्त ऐहिक कामनायें पूरी करती हैं तथा अन्त में स्वस्थान में ले जाती हैं।।२३-२४।।

माघे तु पूजयेद्देवीं कुन्दजैर्विधिवत् स्रजैः॥२५॥
कुङ्कुमेन सदर्पेण तथा समुपलेपयेत्। स्नापितां विधिवत्पूर्वं ततः कन्यास्तु भोजयेत्॥२६॥
द्विजांश्च नन्दिनीभक्तान् विधिना घृतपायसैः। दक्षिणां तिलहोमैश्च यथाशक्त्या प्रदापयेत्॥२७॥
विधूतपापकलितः सर्वभोगथनान्वितः। विशत्रुर्बहुपुत्रश्च भवते नरसत्तमः॥२८॥
देहान्ते नन्दिनीलोकं सर्वदेवनमस्कृतम्। व्रजते नात्र सन्देहो अनेन विधिना नृप॥२९॥

जो व्यक्ति माघ में कुन्दपुष्पों से देवी की यथाशास्त्र पूजा करता है, कुमारीगण को भोजन कराकर उनके अंगों में कुश से कुङ्कुम लगाकर भोजन कराता है तथा वह नन्दाभक्त ब्राह्मणगणों को घृत-पायसादि का भोजन कराकर यथाशक्ति तिलहोम करके दक्षिणा देता है, उसके समस्त पाप विदूरित हो जाते हैं। वह विशेष धनवान, पुत्रवान तथा शत्रुहीन होकर संसार में यथेष्ट भोग करता है। तदनन्तर देहान्तोपरान्त वह देवगण-पूजित नन्दिनी-लोक में गमन करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।।२५-२९।।

फाल्गुन्यां पूजयेद्देवीं सहकारस्रजैः शुभैः। तथा नैवेद्यभक्ष्याणि शर्करामधुना सह ॥३०॥
भोजयेत् कन्यका विप्रान् दक्षिणा सितवाससी। अनेन विधिना भोगी देवीलोकं च गच्छति ॥३१॥

फाल्गुन में पूर्णिमा तिथि के दिन सुन्दर आम्रमंजरी की माला तथा शर्करा-मधुमिश्रित नाना नैवेद्य से जो देवीपूजन करते हैं तथा उस नैवेद्य का पूजासमाप्ति पर द्विजगण तथा कुमारीगण को भोजन कराते हैं एवं श्वेत वस्त्रों को दक्षिणारूपेण प्रदान करते हैं, वे इस स्थान में नानारूप भोग करके अन्त में देवीलोक-गमन करते हैं।।३०-३१।।

संप्राप्ते चैत्रमासे तु देवीमिज्याद् दमनकैः। नैवेद्यं लड्डुका देयास्तथा कन्याश्च भोजयेत् ॥३२॥
स्त्रियश्च रक्तवस्त्रैश्च दीक्षितव्या यथाविधिः। अनेन सर्वविधिना प्राप्नुयादविचारणात् ॥३३॥
देवीलोकं व्रजेद्वत्स यत्र भोगा निरन्तराः।

चैत्रमास में जो भक्त नाना उपचार से देवी की पूजा करके कुमारीगण तथा अन्य स्त्रीगण को रक्त वस्त्र परिधान देकर लड्डू का भोजन कराते हैं, वे इस पुण्यबल से निर्विवाद रूप से इस लोक का सभी भोग भोग करके भोगभूमि देवीधाम में जाकर नित्य वास करते हैं।।३२-३३।।

वैशाखे पूजयेद्देवीं कर्णिकारस्रजैः शुभैः ॥३४॥
नैवेद्यं सक्तवः खण्डं कन्याश्चैव भोजयेत्। शुभानि हेमवस्त्राणि देयानि द्विजसत्तमैः ॥३५॥
देवी सुप्रीतये वत्स सर्वदेवमनुत्तमैः। कृतवाँस्तु विधिरेष तथा गन्धर्वकिन्नरैः ॥३६॥

वैशाख मास में जो कर्णिकारपुष्पों की सुन्दर माला समर्पित करते हैं एवं लड्डू का नैवेद्य प्रदान करके कन्यागण को उस लड्डू का भोजन कराते हैं तथा ब्राह्मणों को सुन्दर स्वर्णवस्त्र दान करते हैं, उनपर देवी परम प्रसन्न हो जाती हैं। देवता-गन्धर्व-किन्नर तथा ब्राह्मण सभी यह व्रत करते हैं।।३४-३६।।

ज्येष्ठे तु शंकरी पूज्या रक्ताशोककुरंटकैः। तथा देयञ्च नैवेद्यं घृतपूर्णं च कन्यकाः ॥३७॥
भोजनीयास्तथा दक्षेद् गोभूदानहिरण्यतः। तथा देयाः जलकुम्भाः सम्पूर्णा वासिताः शुभाः ॥३८॥
अनेन वारुणान् भोगान् देवी क्षिप्रं प्रयच्छति।

इसी प्रकार ज्येष्ठ मास में रक्त अशोक, कुरुण्टक पुष्पों द्वारा देवी शंकरी की पूजा करके घृतपूरित बहुत से नैवेद्य प्रदान करना चाहिये तथा कन्यागण को भोजन कराकर गौ, भूमि, हिरण्य तथा जलपूर्ण कुम्भ प्रदान करना चाहिये। देवी उस भक्त के प्रति अनुग्रह करके शीघ्र ही उसको वारुण लोक में ले जाती हैं।।३०-३९।।

आषाढे पूजयेद्देवीं पद्मनीलोत्पलैर्दलैः ॥३९॥
नैवेद्यं शर्कराभक्तं सदधि भक्तपायसम्। कन्या द्विजाः स्त्रियो भोज्याद्क्षयेच्च तथा च तान् ॥४०॥
नाना-हैमाम्बर-राग-तिल-भू-अश्व-मौक्तिकैः। पूज्या भगवती भक्त्या सर्ववर्णप्रसिद्धये ॥४१॥

आषाढ़ में देवी का पूजन पूर्वोक्त नियमानुसार नित्य नीलपद्म से करना चाहिये। उनको शर्करा तथा दधियुक्त अन्न का नैवेद्य, पायसान्न प्रदान करके कुमारी, ब्राह्मण तथा स्त्रीगण को भोजन कराकर अपने अनुकूल रखना चाहिये। उनको काञ्चन,

वसन, गौ, तिल, भूमि, अश्व तथा मुक्ताराशि प्रदान करके सन्तुष्ट करना चाहिये। इससे देवी उनके प्रति प्रसन्न हो जाती हैं। सभी वर्ण वालों को सिद्धिलाभार्थ भगवती की भक्ति के साथ इस नियम से पूजा करनी चाहिये।।४०-४१।।

नन्दा सुनन्दा कनका उमा दुर्गा क्षमावती। गौरी सर्वेश्वरी श्वेता नारायणी सुतारका ॥४२॥
अम्बिका चेति नामानि श्रावणादेरनुक्रमात्। ये च कीर्त्यन्ति उत्थाय ते नरा धूतकिल्विषाः ॥४३॥
भवन्ति नृपशार्दूलाः पृथिव्यां धनसङ्कुलाः। एतानि पथि संग्रामवृद्धिपीडासु नित्यशः ॥४४॥
स्मरंस्तरति घोराणि चर्चिकेति यदुत्तमम्। व्रतानां प्रवरं वत्स समासार्धं तु पादतः ॥४५॥
मासं वापि प्रकर्त्तव्यं श्रावणादि क्रमेण तु। नापुण्यैः प्राप्यते वत्स नरैर्नृपवरैस्तथा ॥४६॥
प्राप्यते भगवतीभावं यस्य तुष्टा तु नन्दिनी ॥४७॥

इति श्रीदेवीपुराणे नन्दाव्रतं नाम नवनवतितमोऽध्यायः

नन्दा, सुनन्दा-कनका-उमा-दुर्गा-क्षमावती-गौरी-योगेश्वरी-श्वेता-नारायणी-सुतारका-अम्बिका—इन बारह नामों का उल्लेख करके पूजा करनी चाहिये। जो प्रभात में उठते ही इन नामों का कीर्त्तन करते हैं, उनके शरीर को कोई पाप स्पर्श नहीं करता। वे जन्मान्तर में पृथिवी पर धनशाली राजा हो जाते हैं। मार्ग में, युद्ध में, पीड़ा के समय इन नामों का स्मरण करने से घोर विपत्ति भी दूर हो जाती है। हे वत्स! मैंने जो वर्षव्यापी उपासनाविधि कही है, वह सभी व्रतों में श्रेष्ठ है। यह व्रत श्रावण मास से लगातार एक वर्ष करना चाहिये; लेकिन जो अशक्त हैं उसे छः मास किंवा तीन मास ही पूजा करनी चाहिये अथवा केवल श्रावण मास पर्यन्त एक मास करे। इससे भी सिद्धि मिलती है। हे वत्स! उन सिद्धियों को कोई भी राजा अनेक पूजन से भी प्राप्त नहीं कर सकता। लेकिन देवी नन्दा जिसके चित्त पर भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट हो जाती हैं, वे ही उनको प्राप्त कर पाते हैं।।४२-४७।।

नवनवतितम अध्याय समाप्त

●

शततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

सर्वेषाञ्चैव पात्राणां देवी पात्रन्तु शंकरी। तान्तु पूजय विद्यैषा दृष्टादृष्टप्रदायिका ॥१॥
ब्रह्मशास्त्रविधिः शक्र कथिता विजयावहा। शक्रेति पौर्णिमा तात श्रावणस्य शुभावहा ॥२॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे महाराज! समस्त पूजापात्रों में देवी शंकरी ही प्रधान पात्र हैं। इन शुभाशुभ-प्रदायिनी भगवती की यथाविधान से पूजा करनी चाहिये। हे वत्स! ब्रह्मा ने इन्द्र से जिस श्रावणी पूर्णिमा पर विजयापूजन का विधान कहा है, उससे ही यह तिथि शक्रपूर्णिमा नाम से प्रसिद्ध है। इससे देवी की अर्चना करने से विजय तथा कल्याण प्राप्त होता है।।१-२।।

शक्र उवाच

विजया या समाख्याता सर्वकामप्रसिद्धये। तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः सुरसत्तमः ॥३॥

इन्द्र कहते हैं—हे सुरवर! जो विजया नामक पूर्णिमा है, उससे देवी की अर्चना करने पर सर्व-अभीष्ट-सिद्धि होती है। इस समय इस विषय में सविशेष श्रवण की इच्छा है; आप कृपया कहिये।।३।।

ब्रह्मोवाच

पुत्रार्थं राज्यविद्यार्थं यशः सौभाग्यतोऽपि वा। विजयारोग्यकामाय विजयां कुर्वीत पौर्णिमाम् ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! साधक को पुत्र, राज्य, विद्या, यश, सौभाग्य, विजय तथा आरोग्य की कामना करके विजया पूर्णिमा का अनुष्ठान करना चाहिये।।४।।

हैमं वा राजतं वापि भैक्ष्यं खड्गं च पादुके। प्रतिमां वापि कुर्वीत सर्वलक्षणसंयुताम् ॥५॥
तामादाय शुभे ऋक्षे शुक्लवस्त्रविभूषिताम्। यवशाल्यङ्कुरोपेतामातपत्रविभूषिताम् ॥६॥
देवीं सुशोभनां वस्त्रैः कल्पयेत्तत्र तां न्यसेत्। हुत्वा हुताशनं मन्त्रैस्ततो देवीं तु विन्यसेत् ॥७॥
रोचनाचन्दनचन्द्रैरुपलिप्य प्रपूजयेत्। नानापुष्पविशेषैस्तु धूपगन्धानुभोजनैः ॥८॥

सुवर्ण अथवा चाँदी से निर्मित सुलक्षण देवीप्रतिमा किंवा तीक्ष्ण खड्ग अथवा देवी की पादुकाद्वय को ग्रहण करके शुभ नक्षत्र में श्वेत वस्त्र पहनाकर चतुर्दिक आम के पत्ते तथा यव के अंकुर एवं धान्य के अंकुर फैलाकर उसके ऊपर पूजनीय प्रतिमा आदि स्थापित करके देवीमन्त्र द्वारा अग्नि में होम करके देवी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तदनन्तर रोचना तथा चन्दन से उनको लेप करके नाना पुष्प, धूप, गन्ध तथा नैवेद्य प्रदान करना चाहिये।।५-८।।

पूजयेद्विधिवद्देवीं तथा बीजानि आहरेत्। यवगोधूममुद्गादि शालियष्टिक आढकी ॥९॥
तिलमाषाः प्रमाथी च श्यामाका नववालकाः। बिल्वाम्रदाडिमोचोद्धूमो च कापित्थनागरान् ॥१०॥
वदरान् बीजपूरांश्च उदुम्बर-आखेटकान्। दापयेच्चैव भक्त्या वै नैवेद्यान्यपराणि च ॥११॥

इस प्रकार विधानपूर्वक देवीपूजन करके नाना बीजों का संग्रह करना चाहिये। छः आढक वजन के बराबर यव, गोधूम, मूँग, धान्य तथा प्रस्तृति परिमाण में तिल, उर्द तथा श्यामाक तृण प्रदान करना चाहिये। बिल्व, आम, अनार, मोचक, कपित्थ, नागर, वदर, बीजपूर, उडुम्बर तथा आखेटक आदि फल भी क्रमशः आढ़क परिमाण में प्रदान करना चाहिये। यह सब भक्तिपूर्वक नैवेद्य के रूप में प्रदान करना चाहिये।।९-११।।

फलार्थन्तु फला देव्या जयार्थं यव अंकुरान्। पुष्पं सौभाग्यकामाय रत्नान्यायुर्धनाय च ॥१२॥
धनुः शत्रुविनाशाय प्रियमिच्छाय तद्धवान्। अन्नं सर्वार्थकामाय यथालाभन्तु दापयेत् ॥१३॥
ततः क्षमापयेद्देवीं विद्यां गृह्णेव प्रार्थिताम्। पुत्रार्थं भोजयेद्बालान् विजयाय स्त्रियो द्विजान् ॥१४॥
धर्मार्थं चैव भोज्येत अनया विद्याभिमन्त्रिताम्।

कर्मफल-लाभार्थ फल, विजयार्थ यवांकुरादि, सौभाग्यकामनार्थ पुष्प, युद्धविजयकामनार्थ विविध रत्न एवं शत्रुनाशार्थ धनुष प्रदान करना चाहिये। सर्वसिद्धि-कामनार्थ यथा उपस्थित अन्नादि प्रदान करना चाहिये तथा देवी से क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् पुत्र-कामनार्थ बालकों को तथा विजयार्थ स्त्रीगण को भोजन कराना चाहिये एवं द्विजगण को धर्मार्थ (धर्मवृद्धि हेतु) देवीमन्त्र से परिपूत अन्न प्रदान करना चाहिये।।१२-१४।।

दक्षिणां च गुर्वाचार्ये कन्यका ब्राह्मणेषु च ॥१५॥
दापयेद्यथाशक्त्या तु तथा तमनुगृह्य च। भोज्याग्रं पुत्रकामेन ग्रामं विद्याभिमन्त्रितम् ॥१६॥
भोक्तव्यं पृथक्पात्रेण न च कुर्वीत शंकरम्। अनया विधिपूर्वं तु मन्त्रमत्रैव विद्यते ॥१७॥
तद्यः पृथिव्यां रेतस्तामेह ददतु यो मां भक्षितानि।
विद्या प्रयच्छन्नष्टौ पुत्रान् जनयते वेदवेदाङ्गपारगान् ॥१८॥
योऽधीत्य न प्रयच्छेत् सोऽपुत्रोऽपुंसको भवति।

अहं वीर्येनाहं बलेन धनेन। ॐ नमो भगवते अक्षीणरेतसे स्वाहा ॥१९॥
रतिकाले हि चिन्तयेद् दैवतं त्रिदशेश्वरम्। यस्य रेतेन लोकोऽयं भूषितः पावनो भुवि ॥२०॥
ॐ रेताय महारेताय सर्ववीर्यं महाबले। कामाय कामदेवाय मम कामान् प्रयच्छतु-ठंठं ॥२१॥
अनयाभिमन्त्रितं शयनं भजेत्।
प्रयच्छत्यष्टौ पुत्रान् यदि मोहं न गच्छति। एवं विद्यां गृहीत्वा तु देवीं नित्यं प्रपूजयेत् ॥२२॥

तदनन्तर गुरु, आचार्य, कन्या तथा ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने के उपरान्त स्वयं पुत्रकाम होकर मूलोक्त मन्त्र द्वारा परिपूत निवेदित अन्न का (नैवेद्य का) एक मास तक भक्षण करना चाहिये (मन्त्र मूल में अंकित है) उसे पृथक् पात्र में लेकर खाना चाहिये। नैवेद्य जिस पात्र में रखा हो, उसमें खाकर समस्त नैवेद्य को संकर नहीं करना चाहिये। मन्त्र मूल में श्लोक १८ तथा १९ में अंकित हैं।

रतिकाल में भगवान् त्रिदशेश्वर का ध्यान करते हुये यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—'यस्य रेतेन लोकोयं भूषितः पावनो भुवि, ॐ रेताय महारेताय सर्ववीर्यमहाबले, कामाय कामदेवाय मम कामान् प्रयच्छन्तु ठं ठं (ठं ठं के स्थान पर स्वाहा लगाये)। इस मन्त्र को पढ़कर शयन करने पर पुरुष यदि काममोह से विभोर न हो, तब आठ पुत्र उत्पन्न होते हैं। इस विद्या द्वारा नित्य देवी-पूजन करना चाहिये।।१५-२२।।

भवते सर्वकामानां सिद्धिमिष्टां पराजिताम्। यानीह फलपुष्पाणि उत्पद्यन्ते तु प्रावृषि ॥२३॥
देव्या विप्राय कन्यायां गुरवे अपि दापयेत्। यथालाभं श्रुतं वत्स देयं पुष्पं फलानि च ॥२४॥
श्रावणी नवमी या सा आश्विनी कार्तिकीपि वा। स्थातव्यमनेन विधिना अवश्यं सिद्धिमिच्छता ॥२५॥
होमेन व्रतचर्येण चरुमन्त्रप्रसादनात्। अपुत्रो लभते पुत्रं धनं सौभाग्यजीवितम् ॥२६॥

इससे सर्वकाम सिद्ध होते हैं। वर्षाकाल में जो सब पूजा में विहित पुष्प उगते हैं, उसी से देवी, कन्यागण तथा गुरु का पूजन करना चाहिये। हे वत्स! श्रावण-आश्विन तथा कार्त्तिक में नवमी के दिन सिद्धिकाम साधक को इस नियम से देवी की स्थापना करके तथा ब्रह्मचारी होकर होम करना चाहिये। होमाग्नि में ही चरु पकाकर पूर्वोक्त मन्त्र से उसे परिपूत करके भक्षण करने पर पुत्रहीन को पुत्र होता है तथा प्रचुर धन, सौभाग्य एवं दीर्घ जीवन प्राप्त होता है।।२३-२६।।

अथवा अनया विद्या लक्षणा बृहती सिता। राजपूरकविद्यानि वटशृङ्गादिवादरात् ॥२७॥
नागकेशरपुष्पाणि तदन्ते लभते फलम्। फलं सर्पिः जलदानात् फलं प्राप्नोति विद्यया ॥२८॥
अजयो भवते लोको विद्याधरधराधिपः। एतत्ते सर्वमाख्यातं विजयाख्यं व्रतोत्तमम् ॥२९॥
सिद्धिदं सर्वलोकानां विधिना तपसेवनात् ॥३०॥

इति श्रीदेवीपुराणे विजयाव्रतं नाम शततमोऽध्यायः

यह मन्त्र पढ़कर बृहती अथवा बीजपूर के अंकुर अथवा नागकेशर के पुष्पों का भक्षण करने से अभीष्ट पूर्ण हो जाता है। जो इस विद्या से मन्त्रित करके कोई फल अथवा घृत का भोजन किंवा सामान्य जल ही पी लेते हैं, वे इस संसार में सबके लिये अजेय होकर परलोक में विद्याधरों के अधिपति हो जाते हैं। यह सर्वोत्तम विजया नामक व्रत कहा गया। इसका विधिवत् अनुष्ठान करने से सभी को अभीष्ट-प्राप्ति होती है।।२७-३०।।

शततम अध्याय समाप्त

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रूपसौभाग्यकारकम्। नक्षत्रविधिना वत्स यथा तुष्यति शंकरी ॥१॥
मार्गादारभ्य मूलेन पादौ जातिमयैः स्रजैः। पूजयेत्सोपवासस्तु नक्षत्रोक्तं तु पारणम् ॥२॥
यवान्नं हविषा सिद्धं ब्राह्मे जंघे प्रपूजयेत्। कह्लारैर्भृंगराजैश्च तिलमाषान्नभोजनम् ॥३॥
तेनैवं प्रथमं विप्रा अश्विन्यां जानुनि यजेत्। कुन्दैः असितपुष्पैश्च भोजनं दधिशर्करा ॥४॥

मनु कहते हैं—हे वत्स! तदनन्तर रूपसौभाग्यकारी नक्षत्रविधि कहता हूँ, जिससे भगवती शंकरी प्रसन्न हो जाती हैं। इस व्रत को अग्रहायण मास से प्रारम्भ करना चाहिये। साधक को मूल नक्षत्र में उपवासी रहकर जातीपुष्पों द्वारा देवी के चरणद्वय की अर्चना करनी चाहिये तथा यह नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर घृत में पके अन्न का भक्षण करना चाहिये। नक्षत्र में कल्हार तथा भृंगराज के पुष्प से देवी के जंघा का पूजन करके तिल एवं माषान्न का भक्षण करना चाहिये। नक्षत्र में शीत ऋतु में उत्पन्न कुन्दपुष्प द्वारा देवी का पूजन करके शर्करामिश्रित दधि से पारण करना चाहिये।।१-४।।

आषाढद्वयेऽपि तां देवीं बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत्। नक्षत्रांते तु भुञ्जीयाद् ब्राह्मणान् तच्च पारणम् ॥५॥

पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढा नक्षत्र में यथाविधान बिल्वपत्र से देवी की अर्चना करके नक्षत्र की समाप्ति होने पर ब्राह्मणभोजन कराकर स्वयं पारण करना चाहिये।।५।।

युग्मं फाल्गुनं गुह्यं तु पारयन्त्या प्रपूजयेत्। दधिभक्तं तु नैवेद्यं कोटिञ्च कृत्तिकैर्यजेत् ॥६॥
दमनैः सितपुष्पैश्च लड्डुका देवी भोजने। भाद्रपदे द्वौ च पार्श्वे पूजयेत्कुसुमैः सितैः ॥७॥
क्षीरान्नं देवी विप्राणां नक्षत्रान्ते तु भोजनम्। पौष्या कुक्षिगता देव्या सहकारस्रजैर्यजेत् ॥८॥

उत्तरा तथा पूर्वा दोनों फाल्गुनी में देवी के गुह्य स्थान की पूजा करके निवेदित दधि तथा अन्न से पारण करना चाहिये। कृत्तिका नक्षत्र में श्वेत दमनक पुष्पों द्वारा देवी के कटि प्रदेश का पूजन करके नक्षत्रान्त में लड्डू खाकर पारण करना चाहिये। पूर्वभाद्रपद तथा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों में शुक्ल पुष्पों से देवी के दोनों पार्श्व की अर्चना करनी चाहिये एवं ब्राह्मणों को क्षीरान्न का भोजन कराने के उपरान्त स्वयं नक्षत्रावसान में (क्षीरान्न) भक्षण करना चाहिये।।६-८।।

घृतमाषान्नभोजनं तु अनुराधा उरो यजेत्। कर्णिकारस्रजैः पीतैर्भोजनं घृतपाचितम् ॥९॥

रेवती नक्षत्र में आम्रमञ्जरी की माला द्वारा देवी के कुक्षि की पूजा करके घृतमाषान्न द्रव्य का भोजन नक्षत्रान्त में करना चाहिये। अनुराधा नक्षत्र में पीत कर्णिका के पुष्प की माला से देवी के वक्षःस्थल की अर्चना करके पारण के समय घृत में पके द्रव्य का भोजन नक्षत्रान्त में करना चाहिये।।९।।

पृष्ठदेशं धनिष्ठासु हेमपुष्पैः प्रपूजयेत्। कर्णपत्रञ्च नैवेद्यं देवीं शाखासु पूजयेत् ॥१०॥
मरुपत्रैः सुगन्धैश्च देयं भोज्यं तु पायसम्। करौ करेण पूज्यन्तु उशीरतगरादिभिः ॥११॥
गुडं क्षीरं तु नैवेद्यं मञ्जुलाश्च पुनर्वसौ। कुङ्कुमेन प्रपूज्येत देयं भोज्यन्तु षष्ठिकम् ॥१२॥
नखान् भुजङ्गदैवत्ये पुन्नागादिभिः पूजयेत्। भोज्यन्तु मार्ज्जिता देया ग्रीवां ज्येष्ठासु पूजयेत् ॥१३॥
सितमालाभिर्देव्यायाः देयं भोज्यं घृतादिकम्। रक्तपुष्पदलैः कर्णैः पूजयेत् भोजयेद्धविः ॥१४॥
पुष्ये भूयन्तु पद्माद्यैः शर्करान्नं तु भोजयेत्। दशनान् स्वातिना सेव्या सुरक्तैः कुङ्मलैर्यजेत् ॥१५॥

धनिष्ठा नक्षत्र में काञ्चनकुसुम से देवी के पृष्ठ देश की पूजा करके नक्षत्रान्त में पारण करना चाहिये। विशाखा नक्षत्र में सुगन्धित मरुपत्र से देवी के बाहुद्वय का पूजन करके पायसान्न निवेदित करना चाहिये। हस्त नक्षत्र में तगर तथा उशीरपुष्पों से देवी के करद्वय की (कोहुनी से आगे की) पूजा करनी चाहिये तथा गुड़ एवं क्षीर निवेदित करना चाहिये। पुनर्वसु नक्षत्र में कुङ्कुम द्वारा देवी के उंगलियों की पूजा करके यष्टिक का नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। आश्लेषा नक्षत्र में पुन्नागप्रभृति पुष्प द्वारा देवी की ग्रीवा का पूजन करके सघृत भोग निवेदित करना चाहिये। रक्त पुष्पदल[1] से देवी के दोनों कानों की पूजा कर तथा हवि अर्पित करना चाहिये। पुष्य में पद्मदलों से देवी के मुखकमल की अर्चना करके शर्करा का नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। स्वाती नक्षत्र में रक्तपद्म की कलिका से देवी की दन्तपंक्तियों का पूजन करना चाहिये।।१०-१५।।

हास्यन्तु शतभिषैज्यानागकेशरचन्दनैः। खर्जूरशर्कराभोज्यं नासिकासु मघां यजेत् ॥१६॥
यवपुष्पैस्तथा भोज्यं गोधूमकृतिसंस्कृतम्। मृगनेत्रे तु देव्यायाः सुगन्धैः कुसुमैर्यजेत् ॥१७॥
चित्राचित्रस्रजैर्देव्या ललाटं चित्रभोजनम्। भरणी शिरसा देव्यां चम्पकादिस्रजैर्यजेत् ॥१८॥
क्षीरान्नभोजनं देयमार्द्रकेशान् प्रपूजयेत्। जात्यादिकुसुमैर्देव्याः सर्वात्मनि च भोजनम् ॥१९॥
नक्षत्रमातरा ह्येताः रूपपुत्रार्थिभिः सदा। शम्भुं वाप्यथवा विष्णुं घृतहोमान्नदक्षिणा ॥२०॥
देयं वस्त्रयुगं विप्रे सपत्नीके जितेन्द्रिये। देव्या शास्त्रार्थकुशले शिवज्ञानविशारदे ॥२१॥

शतभिषा नक्षत्र में चन्दन के साथ नागकेशरपुष्प से देवी के मुखमण्डल की पूजा करके खर्जूर-शर्करा का भोग लगाना चाहिये। मघा नक्षत्र में जवापुष्प से देवी के नासारन्ध्र की अर्चना करनी चाहिये एवं गोधूमचूर्ण के पिष्टकादि का नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। मृगशिरा नक्षत्र में सुगन्धित पुष्पों से देवी के नेत्रस्थान की अर्चना करनी चाहिये एवं नक्षत्रान्त में नाना प्रकार के अन्न का भोजन (नैवेद्योपरान्त) करना चाहिये तथा विविध वर्ण की ध्वजा का रोपण करना चाहिये।

भरणी नक्षत्र में चम्पक आदि पुष्प की माला प्रदान करके देवी के मस्तक की पूजा तथा मन्त्राधिपति देवताओं की पूजा करके द्विजगण को क्षीरान्न प्रदान करना चाहिये (उनको आर्द्रकेश (जब शिर के बाल गीले हों तब) स्थिति में पूजित करना चाहिये)। रूपार्थी तथा पुत्र की कामना करने वाले व्यक्तिगण व्रतान्त में जातीप्रभृति पुष्पों से देवी, नक्षत्र, मातृगण, विष्णु तथा महेश्वर आदि का पूजन घृत-होम आदि से करके ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करें। जो ब्राह्मण पत्नीयुक्त तथा देवीशास्त्र के मर्मज्ञ हों—शिवशास्त्र में सुनिपुण हों, ऐसे सस्त्रीक तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण को दो वस्त्र के साथ (पति-पत्नी दोनों को वस्त्र के साथ) दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।।१६-२१।।

सम्पूर्णचन्द्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा। शोभना दशना शुभ्रा कर्णौ चापि सुमांसलौ ॥२२॥
षट्पदोदरनिभैः केशैस्तथा कोकिलनादिनी। ताम्रौष्ठी पद्मपत्राक्षी सुहस्ता स्तननामिता ॥२३॥
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता रम्भादलनिभोरु च। सुश्रोणी मृदुमध्या च सुश्लिष्टाङ्गुलिशोभना ॥२४॥
प्रमदा सुभगा भर्त्तुर्मनुष्योऽपि महाभुजः। पीनवक्षाः पृथुभावः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥२५॥
सितदन्तो गजगामी महाबलपराक्रमः। प्रियः सर्वस्य लोकस्य पद्मपत्रायतेक्षणः ॥२६॥

जो नारी यह व्रत करती है, उसकी मुखछवि पूर्णचन्द्र के समान होती है। उसके नयनयुगल पद्मपत्रवत् होते हैं। सभी दाँत अति सुन्दर हो जाते हैं। कर्णयुगल मांसल होते हैं तथा उसके केश भ्रमर के समान कान्तियुक्त हो जाते हैं। कण्ठस्वर कोयल के समान मधुर हो जाता है। ओष्ठद्वय लोहित तथा हस्तद्वय पद्म के समान कोमल हो जाते हैं। नाभि दक्षिणावर्त्त गहरी हो जाती है। दोनों ऊरु कदलीवृक्ष के समान हो जाते हैं। उसकी उंगलियाँ परस्पर सटकर अतीव सुन्दर होती हैं एवं नितम्ब

१. यहाँ दोनों कानों की पूजा किस नक्षत्र में करनी चाहिये मूल में नहीं लिखा है।

विशाल तथा मध्यदेश क्षीण होता है तथा वह प्रमदा अपने स्वामी की प्रिय हो जाती है। इस व्रत को करने वाला पुरुष महाभुजशाली हो जाता है। उसकी मुखश्री चन्द्रमा के समान हो जाती है। वक्षःस्थल विशाल हो जाता है। बाहुद्वय जानुपर्यन्त लम्बमान हो जाते हैं। नयनयुगल कमलपत्र के समान विशाल एवं सुशोभन हो जाते हैं। उसकी दन्तपंक्ति अत्यन्त श्वेत होती है तथा उसकी गति हाथी के समान होती है। उसके शरीर में असामान्य बल आ जाता है। वह सबका प्रिय होता है।।२२-२६।।

मृदुवाक्हास्ययुक्तश्च स्त्रीणां च मनोहारकः। कामतुल्यो महाविप्रो व्रतेनानेन जायते ॥२७॥
नारियोगश्च इष्टानामर्थानाञ्च शुभागमः। नक्षत्राख्यं महापुण्यं व्रतानान्तु व्रतोत्तमम् ॥२८॥
आपत्स्वपि न भेदं तु प्रियैः कार्यं यदुच्यते। अपि दोषात्मकैर्भावैर्न त्याज्यं मुनिसत्तम ॥२९॥

इति श्रीदेवीपुराणे नक्षत्रव्रतं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः

वह मृदु बोलने वाला तथा मृदु हास्य के साथ वाक्यप्रयोग करने वाला होता है। वह संसार में सबका प्रिय होता है। विशेषतः इस व्रत का अनुष्ठान करके वह कन्दर्पवत् बलवान होकर स्त्रीगण के चित्त का हरण करता है। यह नक्षत्रव्रत सब व्रतों में उत्कृष्ट है तथा अति पवित्र है। इसका अनुष्ठान करने से इष्टलाभ तथा प्रचुर अर्थागम होता है। ऊपर जिस व्रत को कहा गया, उसका घोर विपत्ति में भी नारीगण को त्याग नहीं करना चाहिये। हे मुनिसत्तम! दोषयुक्त भाव से इसका त्याग करना उचित नहीं है (अर्थात् विपत्ति से घबड़ाकर इस व्रत को दोषयुक्त समझकर त्याग देना अनुचित है)।।२७-२९।।

एकाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

आषाढे तोयधेनूं यो घृतं भाद्रपदे तथा। माघे तु तिलधेनूः स्यात्स दत्त्वा लभते हितम् ॥१॥

अगस्त्य मुनि कहते हैं—जो आषाढ़ मास में जलधेनु, भाद्र में घृतधेनु तथा माघ में तिलधेनु प्रदान करता है, वह दाता कल्याण का भाजन हो जाता है।।१।।

विद्याधर उवाच

कानि दानानि देव्याया देयानि मुनिसत्तम। कानि पात्राणि देशं वा कालं द्रव्यविधिं वद ॥२॥
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः।

विद्याधर कहते हैं—हे मुनिवर! देवी के उद्देश्य से क्या-क्या दान प्रशस्त है तथा कैसा पात्र दान देने योग्य है, किस काल-किस देश, किस-किस द्रव्य को दान देना कर्त्तव्य है, इसे सुनने की इच्छा हो रही है, आप कृपापूर्वक कहिये।।२।।

अगस्त्य उवाच

न्यायतो यानि प्राप्तानि शाकान्यपि नृपोत्तम ॥३॥
तानि देव्यानि देव्यायाः कन्यका योषितां सदा। तद्भक्तेषु च विप्रेषु अपरेषु च नित्यशः ॥४॥
विशेषात् प्रावृषि वत्स देवी कामान् प्रयच्छति। देशं नन्दागयाशैलं गंगानर्मदापुष्करम् ॥५॥
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रं प्रयागं जम्बुकेश्वरम्। केदारं भीमनादञ्च दण्डकं पुष्कराह्वयम् ॥६॥
सोमेश्वरं महापुण्यं तथा अमरकण्टकम्। कालञ्जरं तथा विन्ध्यं यत्र वासं गुहस्य तु ॥७॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—हे महाराज! न्यायार्जित होने पर सामान्य वस्तु शाक भी देवी की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मण, कुमारी, स्त्रीजन तथा अन्य किसी देवीभक्त को सभी काल में प्रदान किया जा सकता है। हे वत्स! विशेषतः वर्षाकाल में देवी की प्रीति के लिये दान करने पर देवी समस्त अभीष्ट प्रदान करती हैं तथा दान करने का स्थान नन्दातीर्थ, गयाधाम, गंगातीर, नर्मदा, पुष्कर, काशीधाम, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, जम्बुकेश्वर, केदार, दण्डकारण्य, भीमनाद, परमपवित्र गोमेश्वर, कालञ्जर तथा विन्ध्याचल है, जहाँ कार्त्तिकेय निवास करते हैं।।३-७।।

द्रव्यं भूहेमगोधान्यं तिलवस्त्रघृतादिकम्। विधिना उपवासेन एकान्नं नक्तभोजनम् ॥८॥
शुचिना भावपूतेन क्षान्तिसत्यव्रतादिना। अपि सर्षपमात्रोऽपि दातारं तारयेद्दत् ॥९॥

दान के दाता को यथाविधान उपवासी रहकर अथवा रात्रि में अथवा मात्र एक बार भोजन करके सत्यवाक्, क्षमाशील तथा अतिपवित्र होकर भूमि, सुवर्ण, धेनु, धान्य, तिल, वस्त्र, घृतादि प्रभृति प्रदान करना चाहिये। यदि कोई सरसों के समान अत्यल्प द्रव्य भी प्रदान कर देता है तो देवी उस दाता को संसारसागर से पार करा देती हैं।।८-९।।

यः पुनर्विधिना वत्स देवीमुद्दिश्य प्रावृषि। विप्रेषु विप्रकन्यासु तिलादीन् संप्रयच्छति ॥१०॥
तदा संतुष्यते देवी अचिरेण तु विद्यया।

हे वत्स! जो वर्षाकाल में देवी की प्रसन्नता के लिये शास्त्रविधान से ब्राह्मण तथा विप्रकन्यागण को यह सब वस्तु प्रदान करते हैं, देवी उनके प्रति अति शीघ्रता से प्रसन्न हो जाती हैं।।१०।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि नन्दादेव्याः परं व्रतम् ॥११॥
येन संप्रीयते वत्स अचिरेण महात्मनाम्। हेमोत्थं पादुके कार्ये यथाशक्त्या तु भावितः ॥१२॥
आम्रदूर्वाक्षतबिल्वपत्रैः पूजितमन्त्रतः। देवीं सम्पूजयित्वा तु स्थण्डिले प्रतिमासु वा ॥१३॥
तद्भक्ताय च विप्राय कन्यासु च निवेदयेत्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो स्वर्गलोकं च गच्छति ॥१४॥

अब नन्दादेवी का परमव्रत कहता हूँ। हे वत्स! जिसका अनुष्ठान करने से शीघ्र देवी प्रसन्न होती हैं (यह ऐसा व्रत है)। पहले स्वर्ण की पादुका बनानी चाहिये। अपनी अर्थशक्ति के अनुसार देवीपादुका का निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर स्थण्डिल अथवा प्रतिमा में इस पादुका का पूजन आम्रपल्लव, दूर्वा, अक्षत, बिल्वपत्र उपचार से यथोक्त मन्त्र से करना चाहिये। देवीभक्त ब्राह्मण तथा कुमारीगण को पूजित द्रव्यसमूह तथा पादुकाद्वय प्रदान करना चाहिये। इस पूजन के फल से साधक सभी पाप से मुक्त होकर स्वर्गलोक प्रयाण करता है।।११-१४।।

तनुक्षये महाप्राज्ञो विद्याधरपतिर्भवेत्। कालेन चेहायातः पृथिव्या नृपसत्तम ॥१५॥
भवते नात्र सन्देहो ब्रह्मणेदं च भाषितम्। प्रजापतिर्वशिष्ठेन कश्यपस्य च दक्षयोः ॥१६॥

हे महाप्राज्ञ! तदनन्तर देहान्तोपरान्त दुर्गालोक गमन करके विद्याधरों का अधिपति होकर निवास करता है। वहाँ पर भोगावसानोपरान्त पृथिवी का राजा होकर जन्म लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। ब्रह्मा ने वशिष्ठ से इस व्रत की कथा का वर्णन किया था। वशिष्ठ ने इसे प्रजापति दक्ष तथा कश्यप से कहा था।।१५-१६।।

तथा त्वमपि राजेन्द्र कुरुष्वेदं पदव्रतम्। महदैश्वर्यकांक्षाय देवीप्रत्यक्षकारिणे ॥१७॥

इति श्रीदेवीपुराणे पदव्रतं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

हे महाराज! मैंने अब तुमसे इसका वर्णन किया है। तुम इस पदव्रत को करो। यह विपुल ऐश्वर्य प्रदान करता है। अधिक क्या कहें, इससे देवी का साक्षात्कार भी प्राप्त होता है।।१७।।

द्व्यधिक शततम अध्याय समाप्त

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तव दानमनुत्तमम्। येन तुष्टा पुरा देवी शक्रस्य तु महात्मनः ॥१॥
नीलां वा यदि वा श्वेतां पाटलां कपिलां पिवा। अदुःखां वत्सबालाञ्च सुखदोहां गवां नृप ॥२॥
आदाय विधिवद्देवीं पूजयेत् स्रजपंकजैः। धूपञ्च पञ्चनिर्यासं सतुरुष्कागुरुचन्दनम् ॥३॥
दत्त्वा मन्त्रपूजान्तु देव्या नैवेद्यमुपकल्पयेत्। पायसं घृतसंयुक्तं क्षमापयेत्तथा तु ताम् ॥४॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—अब एक दान का वर्णन करता हूँ, जिसे पूर्वकाल ने इन्द्र ने सम्पन्न करके देवी को प्रसन्न किया था। हे राजन्! पहले नीला, श्वेत अथवा पाटला कपिला सवत्सा दुग्धवती गौ लाये। उसमें पद्ममाला द्वारा देवी की यथाविधान पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पाँच वृक्ष के निर्यास से तथा तुरुष्क, अगुरु, चन्दन से बने धूप प्रदान करे। इसे मन्त्र पूजनादि से प्रदान करने के पश्चात् दुग्ध के साथ नैवेद्य प्रदान करे। घृतमिश्रित पायसान्न भी प्रदान करे तथा पूजा के अन्त में देवी से क्षमायाचना करे।।१-४।।

द्विजाय शिवभक्ताय निवेदयेत् सवत्सगाम्। सहेमवस्त्रकाङ्स्याञ्च महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥५॥
यावद् यद्रोमसंख्यानं तावद्देव्याः पुरे वसेत्। इहात्र विगतपापो जायते नृपसत्तमः ॥६॥

शिवभक्त द्विज को सुवर्ण, कांस्य तथा वस्त्रों के साथ इस पूजित सवत्सा गौ को प्रदान करने से महत् पुण्य सञ्चित होता है। उस गौ में जितने रोम होते हैं, तब तक वह साधक देवी के लोक में निवास करता है। अन्त में भोग समाप्त हो जाने पर इस पृथिवी पर पापस्पर्श से रहित राजा होकर जन्म लेता है।।५-६।।

मनुनायं विधिं कृत्वा प्राप्तं लोकमनुत्तमम्। अहं ते कथयिष्यामि शृणु राजन् यथाविधि ॥७॥
शुभां हेममयीं गावं कारयेद्रजतखुराम्। तां वस्त्रप्रावृतां कृत्वा पूजयेद् दनुदर्यहाम् ॥८॥
विचित्रचित्रपुष्पैश्च गन्धधूपनिवेदनैः। तथा क्षमापयेद्देवीं तां गां तत्रैवमानयेत् ॥९॥

हे महाराज! मनु द्वारा कही गयी इस विधि का पालन करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। हे राजन्! उसका शास्त्रीय विधान कहता हूँ; श्रवण करो। सुवर्ण से गौ का निर्माण करके उसके खुरों को चाँदी का बनाना चाहिये। तदनन्तर उसे विचित्र वस्त्रों से आवृत करके गन्ध-पुष्प-धूपादि से देवी की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उस गौ को लाकर देवी से क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये।।७-९।।

देवी त्वदीय आदेशात् तव भक्तेषु दीयते। पुनस्तां विप्रराजाय दापयेत् शिवभाविते ॥१०॥
अक्षय्यफलकामेन प्रायश्चित्तविशुद्धये। मनुना चीर्णमासीच्च व्रतमन्यैः नृपोत्तमैः ॥११॥
सप्तपूर्वान्परान् वंशानपि किल्विषसंस्थितान्। उद्धृत्य नयते वत्स देवीलोकमनुत्तमम् ॥१२॥

इति श्रीदेवीपुराणे हेमगोव्रतं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

तदनन्तर इस मन्त्र को पढ़े—हे देवि! आपके आदेश से शिवभक्त को यह गौ प्रदान करता हूँ। यह कहकर पापक्षय एवं अक्षय फल की कामना करके परमशैव ब्राह्मण को वह गौ दान करना चाहिये। इस व्रत को पहले मनु ने, तदनन्तर अन्य राजाओं ने किया था। हे वत्स! ऐसे गौ प्रदान करने से, जो गोदान करता है उसके पूर्वापर वंश में उत्पन्न सभी पीढ़ी वालों की पापमुक्ति होती है तथा उनको देवीलोक में निवास मिलता है।।१०-१२।।

त्र्यधिक शततम अध्याय समाप्त

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

मार्गे रसोत्तमं दद्याद् घृतं पौषे महाफलम्। तिला माघे मुनिश्रेष्ठ धान्याः सप्ताथ फाल्गुने ॥१॥
विचित्राणि च वस्त्राणि चैत्रे दद्याद् द्विजोत्तमः। वैशाखे यवगोधूमान् ज्येष्ठे तोयभृतान् घटान् ॥२॥

भगवान् मनु कहते हैं—हे द्विजगण! मार्गशीर्ष में उत्तम रस पौष मास में घृत, माघ मास में तिल, फाल्गुन मास में सप्तधान्य एवं चैत्र मास में विचित्र वस्तु प्रदान करनी चाहिये। वैशाख में यव तथा गेहूँ एवं ज्येष्ठ में जलपूर्ण कुम्भ दान करना चाहिये।।१-२।।

आषाढे चन्दनं देयं कर्पूरञ्च महाफलम्। नवनीतं नभो मासि छत्रं प्रोष्ठपदे मतम् ॥३॥
गुडशर्करखण्डाद्यान् लड्डूकानाश्विने मुने। दीपदानं महापुण्यं कार्त्तिके यः प्रयच्छति ॥४॥

आषाढ़ में कर्पूरदान का अक्षय फल मिलता है। श्रावण में नवनीत एवं भाद्र में छत्र प्रदान करना चाहिये। हे मुने! आश्विन मास में गुड़, गुड़ का विकार (खांड) तथा लड्डू आदि प्रदान करना चाहिये। कार्त्तिक में दीपदान को महापुण्य माना गया है।।३-४।।

सर्वकामानवाप्नोति क्रमान्मार्गादुदाहृतान्। धेनूं पौषे घृतां दद्यान्माघे तिलमयीं तथा ॥५॥
ज्येष्ठे तोयमयीं दद्याद् घृतवत्सां महाफलाम्। सुरूपां श्रावणे दद्याद् गां महाफलदायिकाम् ॥६॥

इस प्रकार अग्रहायण-पर्यन्त प्रत्येक मास में उस मास के लिये विहित दान द्वारा अभीष्ट फल मिलता है। पौष मास में घृतधेनु, माघ में तिलधेनु तथा ज्येष्ठ में घृत से वत्स बनाकर जलधेनु का दान करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है। श्रावण मास में सुरूप गौदान महान् फलदायक कहा गया है।।५-६।।

सर्वहेममयैः शृङ्गैः रौप्यपादैरुदाहृताम्। कांस्यपात्र्यां सघण्टां तु किङ्किणीरुपशोभिताम् ॥७॥

इन सभी गौ के सींग स्वर्णमय तथा खुर चाँदी-जटित होने चाहिये। कांस्यपात्र, घण्टा तथा किङ्किणी के साथ इन गौ को सुशोभित करना चाहिये।।७।।

सयुगां सस्रजां वत्स दातव्या विधिनानया। देवीब्रह्मेशसूर्यं वा विष्णुं वाथ यथाविधि ॥८॥
स्वभावचित्तसम्पन्नो पूजयित्वा द्विजोत्तम। दातव्या वीतरागे तु कामक्रोधविवर्जितम् ॥९॥
अयाचके सदाचारे विनीते नियमान्विते। गोप्रदाता लभेत् कामान् स्वर्गे लोके मनोरमान् ॥१०॥

हे वत्स! माला आदि धारण कराकर इन्हें विधिवत् देना चाहिये। पहले देवी, ब्रह्मा, शिव, सूर्य तथा विष्णु का यथाविधि पूजन करके गौदान ब्राह्मणों को करना चाहिये। जिसमें काम-क्रोध आदि विषय में आसक्ति नहीं है, जो किसी से याचना नहीं करते, विनीत हैं तथा शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं, ऐसे ब्राह्मण को दान करने से दाता व्यक्ति पुण्यधाम में, स्वर्गादि मनोरम स्थल में निवास करता है और उसके सभी अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं।।८-१०।।

अगस्त्य उवाच

तिलधेनूं प्रवक्ष्यामि दुर्गा येन प्रसीदति। अपि दुष्कृतकर्माणि यां दत्त्वा निर्मलो भवेत् ॥११॥
प्रत्यक्षा येन देवी तु राज्यपुत्रसुखावहा। भवते त्वचिरेणैव तां शृणुष्व नृपोत्तम ॥१२॥

मुनि अगस्त्य कहते हैं—हे महाराज! अब मैं तिलधेनु का वर्णन करता हूँ, जिसे दान करने से देवी दुर्गा प्रसन्न हो जाती

हैं और दाता को शीघ्र दर्शन देती हैं तथा दाता अकार्य (दुष्कृति) करने वाला होने पर भी इस दान से निर्मल हो जाता है। राज्य-पुत्र-स्वर्ग देने वाली यह देवी कैसे प्रसन्न होती हैं, हे नृपोत्तम! उसे सुनो।।११-१२।।

देवदेवीमनुज्ञाप्य स्नात्वा चैव जितेन्द्रियः। पूजयेत् पुष्पगंधान्नधूपदीपपवित्रकैः ॥१३॥
हुत्वा हुताशने देवीं तथा द्रोणमयीं कुरु। आढकेन भवेद्वत्स सर्वरत्नविभूषिताम् ॥१४॥

जितेन्द्रिय व्यक्ति को पहले स्नान करके देवताओं की आज्ञा लेकर गन्ध-पुष्प-कुश-धूपादि उपचारों से देवी का पूजन करना चाहिये। अग्नि में होम करना चाहिये। द्रोण अथवा आढ़क परिणाम का तिल संग्रह करके उसमें एक धेनु की आकृति का गठन करके उसे विभिन्न रत्नों से विभूषित करना चाहिये।।१३-१४।।

हेमशृङ्गीं शफैः रुप्यैः गंधघ्राणां सुशोभनाम्। मुखं गुडमयं कार्यं जिह्वामन्नमयीं तथा ॥१५॥
कम्बलं शुक्लसूत्रां तु पादो इक्षुमयास्तथा। ताम्रं पृष्ठे भवेत्तस्या ईक्षणं मणिमौक्तिकैः ॥१६॥

उस धेनु के सींग स्वर्ण के तथा खुर चाँदी होने चाहिये। उसकी नाक चन्दन से, मुखमण्डल गुड़ से तथा जिह्वा अन्न से बनी होनी चाहिये। शुद्ध कम्बल (ऊनी) सूत्र से उसके रोयें बने होने चाहिये। ईख के तने से उसके चारो पैर बने होने चाहिये तथा ताँबें के पत्ते से पीठ मढ़ी होनी चाहिये। उसके दोनों नेत्र मणि-मुक्ता के होने चाहिये।।१५-१६।।

चारुपत्रमयौ कर्णौ दन्तैः फलमयैः शुभैः। नवनीतस्तनां कुर्यात् पुष्पमालामयं कुरु ॥१७॥
पृच्छञ्च मणिमुक्तैस्तु फलैः शुचिं समर्पयेत्। शुभां वस्त्रयुगच्छन्नां चारुछत्रविभूषिताम् ॥१८॥

उसकी दन्तपंक्ति फल-निर्मित होनी चाहिये। कर्णयुगल पलाश के पत्ते से एवं स्तन मक्खन से बने होने चाहिये। अब उसे पुष्पमाला से भूषित करना चाहिये। उसकी पूँछ मणि-मुक्ता की होनी चाहिये। उसके सभी अंगों को श्वेत वस्त्र से ढाककर उसके मस्तक पर सुन्दर छत्र लगाना चाहिये।।१७-१८।।

ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः। काँस्योपदोहनं दद्याद् देव्या मे प्रीयतामिति ॥१९॥
मन्त्राभिमन्त्रितं कृत्वा तद्भक्ताय निवेदयेत्। यावन्ति तिलवस्त्राणि धातुमूलफलस्य च ॥२०॥
विद्यन्ते रजरेणूंषि तावत्स्वर्गे वसेन्नरः। पितॄन् विगतपापांस्तु कृत्वाधस्थगतानपि ॥२१॥

ऐसी तिलधेनु (गौ) को बनाकर जो व्यक्ति श्रद्धा के साथ मन्त्रोच्चार करते-करते यह कहकर कि 'देवि मुझपर प्रसन्न हो जाइये' कांस्य के दूध दुहने के पात्र के साथ देवीभक्त ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह तब तक स्वर्ग में निवास करता है, उस धेनु में जितने तिल के दाने, वस्त्र, धातु, मूल, फल हैं, जितने कण हैं। उस पूजक के पितृगण भी निष्पाप होकर देवीलोक प्राप्त करते हैं। अधःलोकस्थ होने पर भी उनको उच्चगति मिल जाती है।।१९-२१।।

प्राप्य देव्याः शुभं लोकं स्थापयेदविचारणात्। तस्मिन् मे रमते वत्स यावदाचन्द्रतारकम् ॥२२॥
तथा कालादिहायातो जायते पृथिवीपतिः। विनयतेजसम्पन्नो बहुपुत्रसुखान्वितः ॥२३॥
पुनर्देव्या व्रते नित्यं पूजने विधिवत्तथा। प्राप्य योगमहेश्वर्यं प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥२४॥

इति श्रीदेवीपुराणे तिलधेनुर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः

वह पूजक स्वयं भी चन्द्र-सूर्य जबतक जगत् में हैं, तब तक (उच्चस्थ लोकों में) क्रीड़ा करता रहता है। भोगावसान होने पर पृथिवी पर बहुपुत्रवान, परम सुखी, शत्रुरहित राजा होकर जन्म लेता है। वह राजा होकर भी यथाविधान देवी की अर्चना करके इसी देह से ही महान् योगैश्वर्य पाकर देहान्तोपरान्त मुक्तिलाभ करता है।।२३-२४।।

चतुरधिकशततम अध्याय समाप्त

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

तिलाभावे प्रदातव्या सर्पिर्धेनू विजानता। स्नापयित्वा भवानीन्तु घृतक्षीरैर्यथाविधिः ॥१॥
पूजयेत् स्रजमालाभिर्नैवेद्यैः सुमनोरमैः। आहरेत्सर्वद्रव्याणि उपकल्पेत तत्र तान् ॥२॥
गव्ये सर्पिषि कुम्भे तु पुष्पमालाविभूषिते। कांस्यपात्रं तथा वस्त्रैश्छादयीत विजानता ॥३॥
हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः। पादानिक्षुमयान् कुर्यात् कुर्याद्रौप्यांस्तथा शफान् ॥४॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—यदि तिल उपलब्ध न हो तब विज्ञ व्यक्ति घृतधेनु का निर्माण कर सकते हैं। पहले भगवान् को तथा खीर से स्नान शास्त्रविधानोक्त रीति से कराने के बाद पुष्पमाला एवं विविध नैवेद्य से पूजा करके नीचे लिखे द्रव्यों का संग्रह करना चाहिये। पहले गाय के घृत से भरा एक कलश पुष्पमाला से भूषित करके उसमें स्वर्ण-मणि-मुक्ता तथा प्रवाल निःक्षेप करके उसके मुख पर रखे कांस्य पात्र पर ईख से बने चार चरण, जिसमें चाँदी के खुर लगे हों, रखकर वस्त्र से आच्छादित करना चाहिये।।१-४।।

हेमचक्षुस्तथा शृङ्गो कृष्णागुरुमयैः शुभैः। सप्तधान्यानि तत्पार्श्वे पत्रोर्णेन च कम्बलम् ॥५॥
घ्राणो तगरकर्पूरो स्तनाः फलमया शुभाः। मुखञ्च गुरुक्षीरेण सितां जिह्वां प्रकल्पयेत् ॥६॥
पुच्छं क्षौममयं कार्यं रोमाणि सितसर्षपैः। ताम्रं पृष्ठं विचित्रन्तु स्नेहरूपा मनोरमा ॥७॥

उसके लिये स्वर्ण के नेत्र तथा कृष्णवर्ण अगुरु द्वारा दो शृङ्ग की कल्पना करनी चाहिये। कर्पूरवासित तगरपुष्प द्वारा नासिकाद्वय, गुड़ द्वारा मुखमण्डल, क्षीर द्वारा शुक्ल रंग की जिह्वा, फलसमूह से स्तनचतुष्टय, क्षौम वस्त्र से पुच्छ, श्वेत सरसों से रोमावलि तथा ताम्र के पत्र से विचित्र पीठ की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार से सुलक्षणा तथा मनोरमा धेनु गठित करनी चाहिये।।५-७।।

विधिना घृतवत्सं च कुर्याद् लक्षणलक्षितम्। एतौ कृत्वा तथा नन्दां पूजयित्वा विधानतः ॥८॥
तद्भक्ताय प्रदातव्या मङ्गलाशास्त्रपारगे। मात्रे सदोपकाराय गृह्ण मेऽनुग्रहाय च ॥९॥
प्रीयतां नन्दिनी देवी मङ्गला चर्चिका उमा। इत्युक्त्वा अर्चयेद्धेनूं कृत्वा नन्दामनोनुगाम् ॥१०॥

इसी प्रकार घृत के बछड़े की उपरोक्त लक्षणयुक्त प्रतिमा बनाकर पूजनोपरान्त शास्त्रज्ञ नन्दाभक्त को वह गौ इस मन्त्र से प्रदान करनी चाहिये। मन्त्र है—हे विप्र! मुझे आप दया का पात्र जानकर मेरे उपकारार्थ इस धेनु को ग्रहण करिये तथा इस धेनुदान द्वारा चर्चिका, नन्दिनी, मंगला, उमादेवी मेरे प्रति प्रसन्न हो जायँ। यह कहकर उस धेनु को नन्दादेवी हेतु प्रदान करना चाहिये।।८-१०।।

अनेन विधिना देया यवशालीक्षूकल्पिता। हेमरत्नान्नवस्त्रा वा देया गौर्विधिनानया ॥११॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सर्वकामानवाप्नुयात्। यत्र क्षीरवहा नद्यो यत्र सर्पिर्वहा ह्रदाः ॥१२॥
पयसा कर्दमा यत्र तस्मिन् लोके महीयते। तेषां स्वामित्वमाप्नोति मुदया परया युतः ॥१३॥

इसके साथ अन्य एक धेनु को अन्न, शालिधान्य, इक्षु आदि से कल्पित स्वर्ण, रत्न, वस्त्रयुक्त करके प्रदान करनी चाहिये। इससे दाता अभीष्ट फल प्राप्त करता है। वह सर्वपापमुक्त होकर सर्वाभीष्ट-सिद्धि प्राप्त करता है। जहाँ घृतनदी तथा क्षीरनदी प्रवाहित है और दूध से पृथिवी कीचड़मयी हो गयी है (अर्थात् इतना दुग्ध है), उस लोक में वह साधक सबका पूज्य होकर परमानन्द से निवास करता है।।११-१३।।

दिशां पूर्वापरांस्तात आत्मनस्त्वेकविंशतिः । भूयः पृथ्वीशतामेति इहलोके समागतः ॥१४॥
सकामानामियं व्युष्टिः ततस्तावदुदाहृता । देव्या लोकमवाप्नोति निष्कामो घृतधेनुदः ॥१५॥

इति श्रीदेवीपुराणे घृतधेनुर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

उसके पुण्य से उसकी २१ पीढ़ी तक के पितरों का उद्धार हो जाता है। भोगक्षय होने पर वह साधक पुनः पृथिवी पर जन्म लेकर राजा होता है। हे वत्स! तुम्हारी इच्छानुसार घृतधेनु का दानफल वर्णन किया। जो इसे निष्काम भाव से करता है, उसे देवीलोक की प्राप्ति हो जाती है।।१४-१५।।

पञ्चाधिक शततम अध्याय समाप्त

●

षडधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

तोयधेनूं शृणु वत्स यथा देवी प्रसीदति । कुम्भं तोयसमापूर्णं रत्नवस्त्रयुगान्वितम् ॥१॥
समस्तबीजसंयुक्तं दूर्वापल्लवशोभितम् । मुराबालमुशीरं च कुष्ठामलकचन्दनैः ॥२॥
मालाच्छत्रमुपानहं तिलपात्रैश्चतुर्युतम् । दधिक्षौद्रघृतं पात्रं विधानमुपकल्पयेत् ॥३॥
वत्सकं पूजयेद्वत्स कृतं हविमयं बुधः । देवीमभ्यर्च्य विधिवत् सोपवासो च नक्तवान् ॥४॥
देव्या भक्ते प्रदातव्यं सर्वकामानवाप्नुयात् । जयारिसूदनी देवी देवानां भयनाशिनी ॥५॥
वेदमाते वरे दुर्गे सर्वगे शुभदे नमः ॥६॥
अनेन वत्समन्त्रेण तां दानायाभिमन्त्रयेत् । देवी मे प्रीयतां नित्यं यथेप्सितफला शिवा ॥७॥

इति श्रीदेवीपुराणे जलधेनुर्नाम षडधिकशततमोऽध्यायः

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे वत्स! अब जलधेनु के विधान को सुनो, जिससे देवी प्रसन्न हो जाती हैं। जलपूर्ण कलश में विविध बीज, दूर्वा, पल्लव, रत्नादि रखकर उसके मुख को दो वस्त्रों से बाँधे तथा मुरा, बाल, उशीर, कूठ, आमलकी, चन्दन माला छत्र उपानह रखे; दधि, घृत, शहद पात्र स्थापित करके नारायण की एक वर्ष तक उपासना करे।

हे वत्स! स्वयं उपवासी अथवा रात्रिभोजी होकर यथाविधान देवी का पूजन करके देवीभक्त को समस्त द्रव्यों के साथ यह जलधेनु (कलशादि) प्रदान करना चाहिये। इससे सभी इच्छित कार्य सिद्ध होते हैं। पहले इस मन्त्र को पढ़ना चाहिये—हे जयारिसूदिनी देवी! आप देवताओं के भय का नाश करती हैं। आप वेदमाता हैं, दानव-संहारिणी हैं। हे वरप्रदा दुर्गे, सर्वगे, शुभदे! आपको प्रणाम है। हे वत्स! इस मन्त्र द्वारा दान देने वाली वस्तुओं को अभिमन्त्रित करे—'हे सर्वाभीष्ट फलदायिनी शिवादेवि! मुझपर सर्वदा प्रसन्न रहिये।' यही दानवाक्य है।।१-७।।

षड़धिकशततम अध्याय समाप्त

●

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

स्वयम्भुरेष भगवान् वेदोद्गीतः पुरा त्वया। शिवाद्याः ऋषिपर्यन्ताः स्मार्त्ता वा स्थानकारकाः ॥१॥
कथं माता भवेद्देवी एतत्कौतूहलं मम ॥२॥

मनु कहते हैं—हे भगवन्! पहले आपने वेद को अनादि कहा था तथा शिव से लेकर अन्य ऋषिगण तक ने बीच-बीच में इसे स्मरण करके प्रकाशित मात्र किया था। वे वेदरचनाकार नहीं हैं। तब ऐसी स्थिति में देवी को वेदमाता क्यों कहते हैं, यह जानने की उत्सुकता है। कृपया कहिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

ज्ञानशक्तिः क्रिया धेनूर्देव्या रूपाः प्रकीर्तिताः। मातृका ज्ञानशक्तिस्तु क्रिया सा तमरूपिणी ॥३॥
वामाद्या सा त्रिधा भूत्वा ज्येष्ठा रौद्रा ऋजुस्थिता। कुण्डली त्रिकटाकारा द्वौ द्वौ बिन्दुसमन्विता ॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! ज्ञान-क्रिया तथा धेनु—यह तीनों ही देवी की मूर्त्तिविशेष हैं। मातृदेवी ज्ञानशक्ति है। क्रिया-शक्ति तमोरूपा है। यह त्रिगुणात्मिका कुण्डली ही ज्येष्ठा, रौद्रा तथा ऋजु नाम मूर्त्तित्रयरूपेण आराधित होती है। यह सभी दो-दो बिन्दुयुता हैं।।३-४।।

सा प्रसूताष्टवर्गाणि स्वरा वसो द्विधा पुनः। अनुनासांश्च घोषांश्च एकोना शतमर्द्धितान् ॥५॥
मातरा तस्य वर्गस्थां द्रष्टव्यः प्रथमः शिवः। षोडशान्तविभक्तस्तु अकारे संव्यवस्थितः ॥६॥
अकारे ब्रह्मरूपेण शिवरूपेण चापरे। विष्णु-स्कन्द-यम-शक्र-चर्चिकान्तरसंस्थिता ॥७॥
बिन्दौ चन्द्रार्कसूर्यौ तु ततः सा शतधा मता। क्रियारूपा भवेद्देवी वेदमाता शृणुस्व ते ॥८॥
ओंकारप्रणवा वेदा गायत्री वेदसम्भवा। षडङ्गास्ते समाख्याता उपांगाश्चतुरोऽपरे ॥९॥
छन्दोलक्षणसंयुक्ता मातृकागर्भजा विदुः ॥१०॥

वे अष्टवर्ग के स्वर तथा व्यञ्जनरूप द्विविध वर्ण का प्रसव करती हैं (ये ही प्रत्येक के दो-दो बिन्दु हैं)। इस प्रकार से इन वर्णों के अनुस्वारयुक्त तथा अनुस्वारहीन दो प्रकार से ९९ संख्या होती है। मातृकादेवी प्रत्येक वर्ण की अधिष्ठात्री हैं। महादेव १६ स्वरवर्णों पर वर्णाकार से स्थित हैं। अकार ब्रह्मा हैं। अन्य सभी वर्णों परममहादेव-विष्णु-कार्त्तिक-यम-इन्द्र तथा चर्चिकादेवी स्थित हैं। बिन्दु में सूर्य-चन्द्र स्थित हैं। इस प्रकार से ये १०० हैं। ये क्रियारूपा देवी ही देवताओं की जननी हैं; क्योंकि ॐकार से ही वेदोत्पत्ति है। वेद से ही गायत्री का प्रकाश होता है। यह वेद छन्दोलक्षण के साथ गायत्री का प्रकाशित होता है।।५-१०।।

मनुरुवाच

किं वेदो रूपमानेन उपाङ्गं संख्याभेदतः। भक्तं किं वेदरूपन्तु तन्मे ब्रूहि समासतः ॥११॥

मनु कहते हैं—हे प्रभो! वेदों का रूप कैसा है तथा उसका परिमाण क्या है? उपाङ्ग किसे कहते हैं? कृपया यह संक्षेप में कहिये।।११।।

ब्रह्मोवाच

एक एव भवेद्वेदश्चतुर्भेदः पुनः कृतः। शाखार्थमल्पसत्त्वानां ग्रहणायातिविस्तरात् ॥१२॥
संविभक्तो मया वत्स ऋग्यजुःसामाथर्वणः। अत्र भेदास्तु ऋग्वेदे दश चैव प्रकीर्तिता ॥१३॥

आश्लेषाः संख्या चर्चाश्च श्रावकाश्चर्चकास्तथा। श्रावणीया च क्रमा च पुटक्रमवटक्रमाः ॥१४॥
दण्डश्चेति समासेन पुनरेकैव पारगाः। शाखाश्च विविधा भूयः शाकला ब्रह्ममातृकाः ॥१५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! मूल वेद एक है। वह अति विस्तृत है। हीन शक्ति वाले उसे सहज में ग्रहण नहीं कर सकते। मैंने ही इनको ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्वरूप चतुर्भाग में विभक्त किया था। इनमें ऋग्वेद की दस शाखायें हैं; यथा—आश्लेषा, संख्या, चर्चा, श्रावका, चर्चिका, श्रावणीया, क्रमा, पुटक्रमा, वटक्रमा तथा दण्डा। इनमें सबमें अथवा एक में प्रारम्भ होना चाहिये। तदनन्तर इसकी तीन शाखायें हैं—शाकल, ब्रह्म तथा मातृका (मतान्तर से मातृका के स्थान पर माण्डका अंकित है)।।१२-१५।।

तेषामध्ययनं प्रोक्तं मण्डलाश्चतुषष्टिकाः। वर्गाणां परिसंख्यातं चतुर्विंशशतानि च ॥१६॥
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च। ऋचामशीतिपादञ्च तत्र पारणमुच्यते ॥१७॥
ऋग्वेदे तु भवेत्संख्या यजुर्वेदस्य श्रूयताम्। षडशीतिविभेदेन मया भिन्नं शिवाज्ञया ॥१८॥

इनका ही अध्ययन कहा गया है तथा ऋग्वेद के ७४ मण्डल एवं १२४ वर्ग हैं। ऋङ्मन्त्र १०५०० हैं तथा ८० पादविभाग हैं। यह ऋग्वेद की संख्या है। अब यजुर्वेद की संख्या सुनो। मैंने शिव की आज्ञा से उसका ८६ विभाग किया है।।१६-१८।।

दशधा चरका तत्र कारका विद्रधिषया। कठाप्राच्यः कठाश्चैव कपिष्ठलकठास्तथा ॥१९॥
चारायणीयाः श्वेताश्च श्वेततारा मैत्रायणीया। पुनः सप्तविभेदेन मैत्रायण्यः प्रकीर्तिताः ॥२०॥
मानव-दुन्दुभ-वाराहाश्छागेयाः हारिद्रवीयाः। सामसायनीयाश्च तेषामध्ययनमुच्यते ॥२१॥
अष्टादशसहस्राणि पठन् शाखाविदो भवेत्। द्विगुणं पदपाठी यस्त्रिगुणं क्रमपारगः ॥२२॥

उसके अंश कठ, प्राच्यकठ, मैत्रायणी, कपिष्ठ, लकठ, चारायणीय, श्वेता श्वेततारा आदि हैं।[१] मैत्रायणीय नामक वेदांश के ७० भेद हैं। उनका अध्ययन नाना संख्या में कहा गया है। यथा—मानव, दुन्दुभ, वाराह, छागेय, हारिद्रवीया, साम, सायनीया इत्यादि। १८००० यजुर्मन्त्र का पाठ करने वाला शाखावेत्ता होता है। इससे दूना ३६००० मन्त्रपाठ करने वाला पदपारगामी एवं त्रिगुण (५४०००) पाठ करने वाला क्रमपारग हो जाता है।।१९-२२।।

षडङ्गानि यदाधीत्य षडङ्गविदुच्यते। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् ॥२३॥
षडङ्गानि भवन्त्येतान्युपाङ्गानि शृणु कथ्यताम्। प्रतिपदमन्त्रपदं छन्दो भाषा मीमांसा च ॥२४॥
न्यायतर्कसमायुक्ता उपाङ्गाः परिकीर्तिताः। परिशिष्टाश्च संख्याताः अष्टादश शृणुष्व तत् ॥२५॥

पाठक षड़ङ्ग का अध्ययन करके षड़ङ्ग नाम प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करता है। शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द तथा ज्योतिष—ये वेद के छः अंग हैं। अब इनके उपाङ्गों का वर्णन करता हूँ; श्रवण करो। प्रतिपद, अनुपद, छन्दोवाक्य, मीमांसा, न्याय तथा तर्क उपाङ्ग हैं। अब इनके १८ परिशिष्टों को कहता हूँ; श्रवण करो।।२३-२५।।

यूपलक्षणप्रतिष्ठा तु वाक्यं संख्या चरणव्यूहः। श्राद्धकल्पश्च सूक्तानि पारिषदमृग्यजुश्च ॥२६॥
अष्टकापूरणञ्चैव प्रवराध्यायाङ्ग षोडश। क्रतुसंख्याभिगम्यो यज्ञ पार्श्वानुग्रहश्रौत्रिकम् ॥२७॥
व्रतञ्च पशवो होमं कूर्मलक्षणसंयुताः। कथिताः परिशिष्टास्तु ऊनविंशा महामुने ॥२८॥
कठानां च यूपान्याहुश्चत्वारिंशच्चतूत्तराः। प्राच्योदीच्यनिरुक्तश्च वाजसनेयश्च पञ्चधा ॥२९॥

---

१. सभी प्रतियों में अशुद्धि है। अतः नाम स्पष्ट नहीं लिखे जा सकते।

दशभेदविभिन्नास्तु प्रष्टव्या मुनिपुंगवा। जाबाला बौधेया काण्वा माध्यन्दिनाश्च शारवेयाः ॥३०॥
सपायिनां कपालाख्या पौण्डरवत्सवारिकपराशराः।
गौणपा बौधेया अयोध्यायेयाश्च तेषामध्ययनानि च ॥३१॥
द्वे सहस्रे शते न्यूने वेदवाजसनेयके। ऋग्गणः परिसंख्यातस्ततोऽव्यानि यजूँषि च ॥३२॥
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टाशीतिरन्यत्राधिके। यजूँषि तत्प्रमाणानि यजुषादि केवलम् ॥३३॥

यूप, लक्षण, प्रतिष्ठा, वाक्य, संख्या, चरणव्यूह, श्राद्धकल्प, प्रवराध्याय, अष्टकापूरण, सामुद्रिक शास्त्र, अंगशास्त्र, व्रतपद्धति, पशुहोमशास्त्र तथा कूर्मलक्षणादि शास्त्र परिशिष्ट हैं। इस प्रकार से ये १९ अंग हैं। हे महामुने! कठादि का यूप चतुश्चत्वारिंश है (वास्तव में यहाँ शुक्लयजुः शाखा का वर्णन है; किन्तु श्लोक २७ से २९ पाठ अशुद्ध है)। माध्यन्दिन प्रभृति कतिपय शाखा में विभक्त वाजसनेय अर्थात् शुक्लयजुर्वेद संहिता में १९०० ऋक् अथवा मन्त्र हैं। प्राच्य, उदीच्य, निरुक्त तथा वाजसनेय पाँच भाग में विभक्त है। हे मुनिपुंगव! १० विभिन्न भेद भी द्रष्टव्य हैं। जाबाल, बौधेय, काण्व, सपायिना कपालाख्या, पौण्डर, वत्सवारिक पराशर, गौणप, बौधेय, अयोध्यायेय ये माध्यादिनीय हैं। अन्य यजुः मन्त्रों की संख्या है—आठ हजार आठ सौ अस्सी। यज्ञविशेष में इसके अतिरिक्त भी मन्त्र मिलते हैं। इन मन्त्रों का प्रमाण उन-उन क्रियाओं से ही जानना चाहिये।।२६-३३।।

शश्वत्क्रियं परिसंख्यातं ब्राह्मणं च चतुर्गुणम्। एतत्त्वञ्च विजानीयात्तैत्तिरा द्विविधा पुनः ॥३४॥
औखेयाः खाण्डिकेयाश्च चण्डिका पञ्चधा पुनः। कालकेया बौद्धायनीया हिरण्यकेश्यास्तथा परे ॥३५॥
भारद्वाजापस्तम्बाश्च तेषां भेदाः प्रकीर्तिताः। अध्ययनं सौप्तिकं चैव प्रवचनीयं तथापरम् ॥३६॥

ब्राह्मण मन्त्रभाग की अपेक्षा ब्राह्मण भाग चतुर्गुण है। ब्राह्मण भी द्विविध है। यथा औखेय एवं खाण्डिकेय। खाण्डिकेय भी पाँच प्रकार के हैं। यथा—कालकेय, रौद्रायनीय (बौद्धायनीय), हिरण्यकेश्य, भारद्वाज एवं आपस्तम्ब। ब्राह्मण में परिच्छेद हैं— अध्ययन, सौप्तिक तथा प्रवचनीय।।३४-३६।।

सामवेदस्तु विस्तीर्णः सहस्रभेदैः कीर्तितः। अनध्यायेष्वधीयन्ते तदा इन्द्रेण धीमता ॥३७॥
वज्रेण निहताः शेषान् वक्ष्यामि शृणु भो द्विज। नारायणीयाः कौथुमाश्च तत्र भेदाः पुनः शृणु ॥३८॥
नारायणीया सप्तैव उग्राद्या नयनावरा वेदमाता। कालरया महाकालरयालङ्कनविद्युता ॥३९॥
कौथुमानामपि सप्त असुरा बादरायणा। वैनेया बौधेया अयौधेयाश्च तेषामध्ययनानि च ॥४०॥
प्राञ्जलाद्वेनभृत्याश्च प्राचनयोज्यानीकायना।

अध्ययनमपि तेषां तु—

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ॥४१॥
अष्टौ शतानि नवतिर्दशसहस्राणि बालखिल्याः। ससुपर्णाश्च प्रेष्याश्च एतत्सामगणं स्मृतम् ॥४२॥

सामवेद १००० भागों में विभक्त था। अनध्याय काल में अध्ययन किये जाने के कारण पूर्वकाल में कुछ अंश इन्द्र के वज्राघात से विनाश को प्राप्त हो गये। बचे हुये अंश का वर्णन किया जाता है; श्रवण करो। नारायणी प्रभृति कतिपय सामशाखा हैं। हे द्विज! उनके भेदों का श्रवण करो। नारायण शाखा के सात भेद हैं—उग्राद्या, नयनावरा, वेदमाता, कालवया, महाकालवया, नन्दन, विद्युता। कौथुमी के सात भेद हैं—असुरा, वादरायणा, वैनेया, बौधेया, अयौधेया, प्राजलाद्वेनभृत्या, प्राचनयोज्या। आठ हजार तथा ये १४—यह साम गीतों की संख्या (अव) है। १०८९० बालखिल्य, सुपर्ण एवं प्रैष्य नामक सामगीत हैं। समस्त सामसमूह यही है।।३७-४२।।

अथ अथर्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति च। पिप्पलादमोदा मोदा च भूतापनीया च तथा ॥४३॥
याहनो ब्रह्मबलो च शौनको कुनखो तथा। देवदर्शिश्चापि विद्यास्तेषामध्ययनं शृणु ॥४४॥
पञ्चकल्पा भवन्ति—

नक्षत्रकल्पो वैतानश्च संहिताविधिः आङ्गिरसः। शान्तिकल्पश्च पञ्चैते अथर्वस्य भवन्ति च ॥४५॥

अथर्ववेद की ९ शाखायें हैं। पिप्पलाद, भूतापनीया, भौदा, सौदा, याहन, ब्रह्मबला, शौनकी, कुनखी, वेददर्शि। अब इनका अध्ययन सुनो। अथर्ववेद में पञ्चकल्प हैं। यथा—नक्षत्रकल्प, वैतालकल्प, संहिताविधि, आंगिरस तथा शान्तिकल्प।।४२-४५।।

सर्वेषामेव वेदानामुपवेदान् शृणुष्व ते। ऋग्वेदस्यायुर्वेदो यजुर्वेदस्य धनुस्तथा ॥४६॥
सामवेदस्य गान्धर्वमर्थशास्त्रमथर्वणः। ऋग्वेदस्यात्रेयं गोत्रं सामवेदं विदुर्मुने ॥४७॥
काश्यपं यजुर्वेदन्तु रुद्रवेदन्तु तत्स्मृतम्। सामवेदोऽपि गोत्रेण भरद्वाजपुरन्दरः ॥४८॥
अधिदेवं विजानीयात् वैतानन्तु अथर्वणे। ब्रह्मदेवं विजानीयाद्रूपाण्यस्माच्छृणुष्व ते ॥४९॥

सभी वेदों में उपवेद हैं, उसको सुनो। ऋग्वेद का उपवेद है—आयुर्वेद, यजुर्वेद का उपवेद है—धनुर्वेद, सामवेद का उपवेद है—गान्धर्व शास्त्र, अथर्ववेद का उपवेद है—अर्थशास्त्र। हे मुने! ऋग्वेद का गोत्र है—आत्रेय। ऋग्वेद के अधिदेवता हैं—सोमदेव अर्थात् चन्द्र। यजुर्वेद का गोत्र है—कश्यप एवं अधिदेवता हैं—रुद्र। सामवेद का गोत्र है—भरद्वाज एवं अधिदेवता है— इन्द्र। अथर्ववेद का गोत्र है—वैतान तथा अधिदेवता है—ब्रह्मा (कहीं-कहीं गोत्र वैतान के स्थान पर वैताल कहा गया है)। अब इनके (चारो के) रूप को सुनो।।४६-४९।।

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः प्रलम्बजठरः सुविभक्तग्रीवः। कुञ्चितकेशश्मश्रुः प्रमाणेनापि वितस्तिपञ्च ॥५०॥

ऋग्वेद पद्मपत्र के समान नेत्र वाले, लम्बोदर, सुविभक्त ग्रीवा वाले हैं। उनके केश एवं श्मश्रु आकुञ्चित हैं तथा ये पाँच वितस्ति के बराबर हैं।।५०।।

स राजते मौक्तिकवरोऽथ पूज्यो वरप्रदो भक्तियुते द्विजाय ॥५१॥
यजुर्वेदः पिंगलाक्षः कृषमध्यः स्थूलगलः कपोलस्ताम्रायत्तवर्णः कृष्णचरणः।
प्रादेशात् षड्दीर्घत्वेन लिङ्गोऽथवा चित्रे पूज्य सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५२॥

इस वेद का पूजन चाँदी तथा मुक्ताचूर्ण से करने पर यह वेद (ऋग्वेद) पूजक द्विज को वर प्रदान करते हैं। यजुर्वेद पिंगललोचन, मध्यभाग क्षीण, स्थूल कपोलकण्ठ, ताम्रवर्ण, कृष्णपाद हैं। इनकी दीर्घता छः प्रादेश है। चित्र अथवा शिवलिंग से इनकी पूजा करने पर ये सर्व अभीष्ट प्रदान करते हैं।।५१-५२।।

सामवेदो नित्यं स्रग्वी सुव्रतः शुचिः शुचीवाससः। क्षमी दान्तश्चर्म च दण्डी काञ्चननयनः ॥५३॥
आदित्यवर्णो वर्णेन षड्वत्नमात्रस्तथा। ताम्रेऽथ मणि इन्द्राख्ये पूजयन् शुभदो भवेत् ॥५४॥

सामवेद सतत मालाधारी, सुव्रत, शुद्ध वस्त्रधारी, क्षमाशील, दान्त, कवचधारी, दण्डधारी, सुवर्णचक्षु, सूर्यसमप्रभ तथा परिणाम में छः अरत्नि अर्थात् ५ हाथ दीर्घ हैं। ताम्रपट्ट पर अथवा इन्द्रनीलमणि पर इनकी पूजा से मंगल होता है।।५३-५४।।

अथर्ववेदस्तीक्ष्णश्चण्डः क्षामरूपो विश्वात्मा विश्वकृत्। क्रूर ऊर्ध्व ज्वालावान् क्षुद्रकर्मा च शास्त्रकृतोन्नामी।
नीलोत्पलवर्णो वर्णेन स्वदारतुष्टः परस्त्रियार्थश्च ॥५५॥
सौवर्णे पद्मरागे वा रुद्राख्ये पूजयन्मुने। सर्वकामानवाप्नोति अथर्वविहितानि च ॥५६॥

अथर्ववेद तीक्ष्ण, प्रचण्ड, क्षीणदेह, रूपवान, विश्वात्मा, विश्वकृत्, क्रूर, ऊर्ध्व शिखा वाले, शूद्रकर्मा, नीलोत्पल वर्ण, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट तथा पण्डित है। सुवर्ण-पद्मराग-रुद्राक्ष में पूजा करने पर अथर्वेदोक्त सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं।।५५-५६।।

वेदानां चैव उत्पत्तिं स्वरवर्णसमुद्भवा। शिवभक्तिसमायोगात्तवाख्याता मया मुने ॥५७॥
यद्देवनामरूपन्तु गोत्रं वेदप्रमाणजम्। वर्णं वर्णयते तात तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५८॥
यावन्ति वेदगीतानि पुण्ययज्ञव्रतानि च। तावन्ति श्रवणादस्य प्राप्नुयाद् भक्तिभावतः ॥५९॥

स्वर-वर्णसम्भव वेद की उत्पत्ति शिवशक्तियोग से होती है। हे महामुने! इन सब विषय को तुमसे कह दिया। जो व्यक्ति वेदों के अधिदेवता का नाम-रूप-गोत्र-वेदप्रमाणानुसार वर्णन करता है, उसका पुण्यफल श्रवण करो। वेदोक्त जितने पुण्य-यज्ञ तथा व्रत हैं, उन सबके अनुष्ठान के फल को जो भक्तिपूर्वक इस प्रसंग के साथ श्रवण करता है, उसे भी यही फल प्राप्त होता है।।५७-५९।।

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात्। अविद्वान् विद्यां प्राप्नोति दुःखाद् दुःखी प्रमुच्यते ॥६०॥
पठित्वा सर्ववेदानां सम्मतो द्विजवल्लभः। भवते नात्र सन्देहो देवी च वरदा सदा ॥६१॥

इति श्रीदेवीपुराणे वेदोत्पत्तिस्मरणीयचरणव्यूहसमाप्तिर्नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

इससे अपुत्र व्यक्ति को पुत्रलाभ, धनार्थी को धनलाभ, विद्यार्थी को विद्यालाभ तथा दुःखी का दुःखमोचन होता है। इसका पाठ करने से पाठ करने वाला सर्वदेवगण का तथा द्विजाति का प्रीतिभाजन होता है। देवी भी उसे वर प्रदान करती हैं। यह निःसंदिग्ध है।।६०-६१।।

सप्ताधिकशततम अध्याय समाप्त

●

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

षडङ्गानीह वेदानां मया ज्ञातानि पूर्वशः। चातुर्वर्ण्यहितार्थाय उपाङ्गं मम कथ्यताम् ॥१॥

मनु कहते हैं—मैंने वेद के षडङ्ग को पहले जान लिया है। चतुर्वर्ण के हितार्थ उपाङ्गों के सम्बन्ध में कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

उपाङ्गानां च अङ्गानामायुर्वेदं वरं विदुः। धर्मार्थकाममोक्षानां स चापि फलदायकः ॥२॥
ज्योतिःशास्त्रं द्वितीयन्तु दृष्टादृष्टप्रसाधकम्। तस्मात्तदुच्यते विप्र संक्षेपादवधारय ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—उपाङ्ग तथा अङ्ग में आयुर्वेद सर्वश्रेष्ठ है। आयुर्वेद धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षरूप चतुर्वर्ग फलप्रद है। तदनन्तर उल्लेखनीय है—ज्योतिषशास्त्र। इससे दृष्ट तथा अदृष्ट, दोनों का यथेष्ट ज्ञान होता है। अब आयुर्वेद के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा रहा है। हे विप्र! अवधारण करो।।२-३।।

पुरा कैलाशशिखरे भगवन्तं पुनर्वसुम्। उपासतां महर्षीनां प्रादुरासीदियं कथा ॥४॥
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां योऽयं पुरुषसंज्ञकः। राशिवस्यामयानाञ्च प्रागुत्पत्तिविनिश्चये ॥५॥

पूर्वकाल में कैलासशिखर पर भगवान् पुनर्वसु की सेवा में लगे महर्षिगण ने यह प्रश्न उठा—आत्मा-इन्द्रिय-मन तथा देह की समष्टि पुरुष है। इस पुरुष की रोगोत्पत्ति का कारण क्या है, यह निर्णय होना चाहिये।।४-५।।

तदन्तरं काशिपतिर्वामको वाक्यमर्थवत्। व्याजहार ऋषिमिति अभिसृत्याभिवाद्य च ॥६॥
किं नु भोः पुरुषो यज्ञस्तेजस्तस्यामयाः शुभा। न चेत्युक्ते नरेन्द्रेन प्रोवाचर्षीन् पुनर्वसुः ॥७॥
सर्वे एवामितज्ञाना ज्ञानविच्छिन्नसंशयाः। भवन्तश्छेत्तुमर्हन्ति काशिराजस्य संशयम् ॥८॥

तब काशिराज ने आगे बढ़कर ऋषियों का अभिवादन करके कहा—पुरुष जिससे उत्पन्न है, क्या रोगोत्पत्ति उसी पदार्थ से होती है? अथवा उससे नहीं होती। काशिराज वामक के यह कहने पर भगवान् पुनर्वसु ने कहा—आप सभी अमित ज्ञानयुक्त हैं तथा ज्ञानप्रभाव से आपके संशयों का उच्छेद हो गया है। काशिराज के संदेह को दूर करना आपका ही कर्त्तव्य है।।६-८।।

पारीक्षस्तत् परीक्ष्याग्रे मैद्गल्यो वाक्यमब्रवीत्। आत्मजः पुरुषोगाश्चात्मजाः कारणं हि सः ॥९॥
स चिनोत्युपभुंक्ते च कर्म कर्मफलानि च। न स्मृते चेतनाधातोः प्रवृत्तिः सुखदुःखयो ॥१०॥

तब परीक्ष पुत्र मौद्गल्य ऋषि ने कहा—आत्मा से ही रोग तथा पुरुष, दोनों की उत्पत्ति होती है। अतः आत्मा ही इसका कारण है। वही कर्मसंचय तथा भोग करता है। चैतन्य पदार्थ के विना दुःख का आगमन नहीं हो सकता।।९-१०।।

शरलोमा तु नेत्याह न ह्यात्मानमात्मना। योजयेद् व्याधिभिर्दुखैः दुःखद्वेषी कदाचन ॥११॥
रजस्तमोभ्यान्तु मनः परीतं सत्त्वसंज्ञकम्। शरीरस्य समुत्पत्तौ विकाराणाञ्च कारणम् ॥१२॥

तब शरलोमा ने कहा—ऐसा कभी नहीं हो सकता। आत्मा स्वभावतः दुःखद्वेषी है। वह आत्मा स्वयं को कभी भी दुःखजनक रोगों द्वारा क्लेश नहीं दे सकता। सत्वयुक्त मन ही रज तथा तम गुण के वशीभूत होकर रोगोत्पत्ति का कारण है।।११-१२।।

वार्योविदस्तु नेत्याह न ह्येकं कारणं मनः। नार्त्तशरीरं रोगाणां नराणां मनसः स्थितिः ॥१३॥
रजसानि तु भूतानि व्याधयश्च पृथग्विधाः। आपो हि रसवत्यस्ताः स्मृता निर्वृत्तिहेतवः ॥१४॥

तब वार्योविद् ऋषि ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता। अकेला मन कभी भी व्याधिकारण नहीं हो सकता। शरीर के विना मन की तथा रोग की स्थिति हो ही नहीं सकती। मेरे मत से भूतगण तथा रोगादि रस से ही उत्पन्न होते हैं तथा रस धातु का कारण जल है। अतः जल ही रोगोत्पत्ति का मूल है।।१३-१४।।

हिरण्याक्षस्तु नेत्याह न ह्यात्मा रजसः स्मृतः। नातीन्द्रियं मनः सन्ति रोगा शब्दादिजास्तथा ॥१५॥
षड्धातुजस्तु पुरुषो रोगा षड्धातुजास्तथा। राशिः षड्धातुजो ह्येष सांख्यैराद्यैः परीक्षितः ॥१६॥

तदनन्तर हिरण्याक्ष ऋषि ने कहा कि आत्मा कभी भी रस से उत्पन्न नहीं होता। मन अतीन्द्रिय है। वह रस से कैसे उत्पन्न होगा? शब्दप्रभृति (तन्मात्रा) से ही रोग उत्पन्न होते देखा जाता है। पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश-आत्मारूप षड्धातु से पुरुष की तथा रोगोत्पत्ति होती है। प्राचीन सांख्यवेत्ता ऋषिगण ने षड्धातु से ही पुरुष को उत्पन्न कहा था।।१५-१६।।

तथा ब्रुवानं कुशिकमाह तमेति शौनक। कस्मात् मातापितृभ्यां हि विना षड्धातुजो भवेत् ॥१७॥
पुरुषः पुरुषादेर्गोर्गोरश्वादश्वः प्रजायते। पैत्र्यौ मेहादयश्चोक्ता रोगास्तु एव कारणम् ॥१८॥

कुशिक (हिरण्याक्ष) ऋषि के यह कहने पर शौनक ने कहा—पिता-माता के अभाव में केवल षड्धातु से कैसे पुरुष का जन्म होगा? पुरुष से पुरुष का, गौ से गौ का तथा अश्व से अश्व का जन्म होता है। पैत्रिक मधुमेहादि रोग पिता से ही अगली पीढ़ी को लगते हैं। अतएव पिता-माता ही शरीर तथा रोग की उत्पत्ति के कारण हैं।।१७-१८।।

भद्रकाप्यस्तु नेत्याह न शक्तोऽशक्तात् प्रजायते। मातापित्रोश्च ते पूर्वमुत्पत्तिर्नोपपद्यते ॥१९॥
कर्मजस्तु मतो जन्तुः कर्मजास्तस्य चामयाः। न ह्येते कर्मणा जन्म रोगानां पुरुषस्य च ॥२०॥

यह सुनकर भद्रकाप्य ऋषि ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। अन्धे का पुत्र अन्धा नहीं होता। इस कारण माता-पिता पुरुष तथा रोग की उत्पत्ति के कारण नहीं हो सकते। जीवों की व्याधि उनके कर्म से उत्पन्न होती है। कर्म के विना रोग तथा पुरुष का जन्म ही नहीं होता।।१९-२०।।

भरद्वाजस्तु नेत्याह कर्त्ता पूर्वं हि कर्मणः। दृष्टं न चाकृतं कर्म यस्य स्यात्पुरुषः फलम् ॥२१॥
भावहेतुः स्वभावस्तु व्याधीनां पुरुषस्य च। खरद्रुवचलोष्णत्वं तेजोऽन्तानां यथैव हि ॥२२॥

तव कुमारशिरा भरद्वाज ऋषि ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कर्म स्वयं उत्पन्न नहीं हो जाता। उसे कर्त्ता की आवश्यकता होती है। ऐसा कोई अकृत पुण्य आज तक नहीं देखा गया, जिससे पुरुष की उत्पत्ति देखी गयी हो (अर्थात् पहले पुरुष होता है तव कर्म होता है; अतः कर्म पुरुष का कारण नहीं है)। अतएव स्वभाव ही द्रव्यों की उत्पत्ति का कारण है। स्वभाव ही पुरुष तथा रोग की उत्पत्ति का भी कारण है। जैसे पंचभूतों में खरत्व, चलत्व, उष्णत्व तेज से ही उत्पन्न होता है, उसी प्रकार पुरुष में सभी रोगादि स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं।।२१-२२।।

कांकायनस्तु नेत्याह न ह्यारम्भः फलं भवेत्। भवेत् स्वभावाद्भावानामसिद्धः सिद्धिरेव वा ॥२३॥
स्रष्टो त्वमतिसंकल्पो ब्रह्मापत्यं प्रजापतिः। चेतना चेतनस्यास्य जगतः सुखदुःखयो ॥२४॥

तव कांकायन ऋषि ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। आरम्भ में कभी भी कर्म का फल नहीं हो सकता। शुभाशुभ कर्म जन्मरूप कर्म का फल नहीं हो सकता। स्वभाव से पदार्थ की उत्पत्ति हो सकती है और नहीं भी हो सकती। बहुसंकल्पयुक्त प्रजापति ब्रह्मा ही चेतन-अचेतन जगत् तथा सुख-दुःख के कारण हैं।।२३-२४।।

तन्नेति भिक्षुरात्रेयो न ह्यपत्यं प्रजापतिः। प्रजाहितैषी सततं दुःखैर्युज्यादसाधुवत् ॥२५॥
कालजस्त्वेन पुरुषः कालजास्तस्य चामया। जगत्कालवशं सर्वं कालः सर्वत्र कारणम् ॥२६॥

तव भिक्षु आत्रेय ऋषि ने कहा कि ऐसा नहीं होता। प्रजाहितैषी प्रजापति कुटिलतापूर्वक कभी भी प्रजावर्ग को दुःखयुक्त नहीं कर सकते। मेरे मत से पुरुष काल से उत्पन्न होता है तथा रोगसमूह भी काल से उत्पन्न होता है। समस्त जगत् काल के वश में है। अतः काल ही सर्वत्र कारण है।।२५-२६।।

विवदतामुवाचेदं तथर्षीणां पुनर्वसुः। मैवं वोचत तत्त्वं हि दुष्प्राप्यं पक्षसंश्रयात् ॥२७॥
वादान् सम्प्रतिवादांश्च वदन्तो निश्चितानिव। पक्षान्तं नैव गच्छति तिलपीडकवदगतौ ॥२८॥
मुक्त्वैनं वादसंचर्षमध्यात्ममनुचिन्त्यताम्। नाविधूते तमक्षेपे ज्ञानमेतत् प्रवर्त्तते ॥२९॥

भगवान् पुनर्वसु ने ऋषियों में यह विवाद देखकर कहा कि आपलोग ऐसा विवाद न करें। एक ही पक्ष पर रहने से सत्य का आविष्कार नहीं हो सकता। जैसे चलते कोल्हू के ऊपर बैठा व्यक्ति गोल घूमता ही रहता है, उसे सीमा नहीं मिलती। इसी प्रकार वाद-प्रतिवाद क्रमशः करते रहने से प्रकृत तत्त्वमीमांसा नहीं हो सकती। अन्धकार बिना हटे ज्ञेय वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।।२७-२९।।

कर्म वाचेतनोऽमूर्तेः प्रकृतमूर्त्तेऽस्थचेतनः। पुरुषोऽचेतनोऽमूर्त्तो रसाद्याः सर्वचेतनाः ॥३०॥
कालो नित्योदितोऽमूर्त्तः स च हेतुः कथं भवेत्। न हि आत्मानं दुःखाद्यैः प्रेक्षापूर्वं समाचरेत् ॥३१॥
शकटैर्बलिवर्दैश्च स्वतो गत्वा न युज्यते। तथा प्रधानपुंसाद्यामन्यो योक्ता विधीयते ॥३२॥

कर्म अचेतन-अमूर्त्त है। प्रकृति भी अचेतन-अमूर्त्त है। आत्मा चेतन होकर भी अमूर्त्त है। रसादि भी अचेतन हैं। काल नित्य होकर भी अमूर्त्त है। अतएव वह भी हेतु नहीं हो सकता। चेतन पदार्थ स्वयं अपने को दुःखयुक्त नहीं करता। शकट (बैलगाड़ी) कभी भी स्वयं जाकर बैल को नहीं जोत लेता। अतः जड़ का अचेतन का कोई कर्तृत्व नहीं होता। इसी प्रकार प्रकृति-पुरुष के अतिरिक्त इन दोनों के कोई नियोक्ता अवश्य हैं।।३०-३२।।

सा च शक्तिः शिवस्योक्ता चर्चिकाद्या महामुने। द्रष्टव्या सर्वविद्यासु शृणु वेदविदांवर ॥३३॥
येषामेव हि भावानां संपत्संजनयेन्नरः। तेषामेव विपद्व्याधीन् विविधान् समुदीरयेत् ॥३४॥

वे नियोक्ता हैं—शिव। उनकी शक्ति को चर्चिका देवी आदि सभी विद्याओं में जानना चाहिये। जिन द्रव्यों के संयोग से मनुष्य को सुख-सम्पदा मिलती है, उसी के दुरुपयोग, गलत उपयोग से रोगों की उत्पत्ति होती है। हे महामुने! यही रोग का कारण कहा गया है।।३३।।

अथात्रेयस्य भगवतो वचनमनुनिशम्य पुनरेव वामकः काशिपतिरुवाच भगवन्तमात्रेयम्। भगवन्! सम्पन्निमित्तजस्य पुरुषस्य विपन्निमित्तजानाञ्च रोगानां किमभिवृद्धिकारणमिति॥३५॥

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय का यह वचन सुनकर वामक नामक काशिराज ने पुनः कहा कि हे भगवन्! सुख से उत्पन्न पुरुष में विपत्ति से उत्पन्न व्याधिसमूह के आगमन का क्या कारण है।।३५।।

भगवान् आत्रेय उवाच

हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवेत्। अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिकरो भवेत् ॥३६॥
एवंवादिनं भगवन्तमात्रेयमग्निवेश उवाच कथमिदं भगवन् हिताहितानामाहारजातानां लक्षणमनपवादमभिजानीयामो वयम्। हितसमाख्यातानां चैवाहारजातानामहितसमाख्यातानां च मात्रा-काल-क्रिया-भूमि-देह-दोषपुरुषोऽवस्थान्तरेषु विपरीतकारित्वमुपलभामहे इति॥३७॥

इति श्रीदेवीपुराणे आयुर्वेदोपोद्घातो नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं—हिताहार ही पुरुष की सुखवृद्धि का कारण है और अहित आहार ही रोग का कारण है। यह सुनकर अग्निवेश कहते हैं—हितकर तथा अहितकर आहारसमूह के निर्दोष लक्षण जानकर अहितकर आहारसमूह की मात्रा ग्रहण-काल-क्रिया-देश-देह-दोष तथा पुरुष की अवस्था के भेद से उनका विपरीतकारित्व कैसे जाना जा सकेगा?।।३६-३७।।

अष्टाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

नवाधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

एवं पृष्टस्तु शिष्येन उवाच भगवान् कविः। सर्वेषामृषिमुख्याणां प्रवरोऽत्रिनन्दनः ॥१॥
तमुवाच भवानात्रेयः—यदाहारजातमग्निवेषसमाँश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमाञ्च समीकरोत्येतद्धितम् विद्धि विपरीतं वरितामित्येतद्धि हिताहितलक्षणमनपवादं भवति॥२॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—सर्व ऋषिश्रेष्ठ प्रखर विद्वान् भगवान् अत्रिनन्दन कवि पुनर्वसु ने शिष्य द्वारा यह पूछने पर उन शिष्य काशिराज से कहा कि जो आहार समतासम्पन्न धातुओं को प्रकृतिस्थ रखता है तथा विषम भावापन्न धातुसमूह को

समतापन्न करता है, वही आहार हितकारी होता है। इससे विपरीत आहार होने पर वह अहिताकारी हो जाता है। यही वास्तविक हितहित का लक्षण है।।१-२।।

एवंवादिनञ्च भगवन्तमात्रेयमग्निवेष उवाच । भगवन् न त्वेतदेवमुपदिष्टं भूयिष्ठकल्पा सर्वभिषजो विज्ञास्यन्ति ॥३॥

भगवान् पुनर्वसु के द्वारा इस प्रकार का वर्णन करने पर ऋषि अग्निवेश ने कहा—हे भगवन्! इस प्रकार का संक्षिप्त उपदेश सुनकर वैद्य कुछ नहीं समझ सकेंगे।।३।।

आत्रेय उवाच

येषां विदितमाहारतत्त्वं गुणतो द्रव्यतः कर्मतः सर्ववयवतो मात्रादयश्च तावान्तु एतदेवमुपदिष्टं विज्ञातुमुत्सहेरन् ॥४॥ यथा तु खल्वेतदुपदिष्टं भूयिष्ठकल्पाः सर्वभिषजो विज्ञास्यन्ति, तदेतदुपदैक्ष्यामो मात्रादीन् भारानुदाहरन्तः॥५॥

तब भगवान् आत्रेय ने कहा—गुण-द्रव्य-कर्म सर्ववयव तथा मात्राभेद से आहारतत्त्व जिनको ज्ञात है, ऐसा संक्षिप्त उपदेश उनको बोधगम्य हो जायेगा। अतएव साधारण चिकित्सकों के बोधार्थ मात्राप्रभृति का उपदेश देता हूँ। मात्राप्रभृति के अनेक विकल्प हैं। विशेष-विशेष आहारविधि के लक्षण तथा विभागों को कहा जाता है।।४-५।।

तेषां हि बहुधा विकल्पा भवन्ति। आहारविधिविशेषाँस्तु खलु लक्षणतश्चावयवतः चानुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—

आहारत्वमाहारस्यानेकविधमर्थभेदात् । स पुनर्द्वियोनिः स्थावरजंगमात्मकत्वात् ॥६॥

द्विविधः प्रभावो हिताहितोदकाविशेषात् । चतुर्विधि उपयोगः पानाशनभक्ष्यलेहजोपयोगात् ॥७॥

षडास्वादो रसभेदतः षड्विधत्वात् । विंशतिगुणो गुरु-लघु-शीतोष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-तीक्ष्ण-स्थिर-सरस-मृदु-कठिन-विषद-पिच्छिल-श्लक्ष्ण-खर-सूक्ष्म-सार्द्र-द्रव्यानुगमात् ॥८॥

अपरिसंख्येयविकल्पो द्रव्यसंयोगकरणबाहुल्यात्। तस्य ये ये विकारावयवा भूयिष्ठमुपयुज्यन्ते भूयिष्ठकल्पाणाञ्च मनुष्याणां प्रकृत्येव हिततमाँश्चाहिततमाँश्च ताँस्तान् यथावदनुव्याख्यास्यामः।

इति श्रीदेवीपुराणे शिष्यसम्बोधनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः

अर्थ के भेद के कारण आहारमात्रा की अनेक विधि है । स्थावर-जंगमभेद से उसकी उत्पत्ति का दो कारण है। उसका प्रभाव भी दो प्रकार का होता है—हितकर तथा अहितकर। उसका सेवन भी चार प्रकार से होता है। यथा—पान, भोजन, चर्वण तथा लेहन। रस छः प्रकार का है; अतः उसका आस्वादन भी छः है। आहार के गुण २० हैं। यथा—गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मन्द, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, विशद, पिच्छिल, श्लक्ष्ण, खर, सूक्ष्म, स्थूल, घन तथा द्रव।।८।।

भिन्न-भिन्न द्रव के संयोग के कारण आहार असंख्य होते हैं। उनमें से जो विकल्प सर्वत्र व्यवहृत होता है तथा विशेषतः हितकर अथवा अहितकर होता है, सम्प्रति उसकी व्याख्या करता हूँ।

●

दशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्रेय उवाच

तद्यथा—लोहितशालयः शुकधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमा भवन्ति। मुद्गाः शमीधान्यानाम्, आन्तरीक्षमुदकानाम्, सैन्धवं लक्षणानाम्, जीवन्तीशाकं शाकानाम्, ऐणेयं मृगमांसानाम्, लावः पक्षिणाम्, गोधा विलेशयानाम्, रोहितो

मत्स्यानाम्, गव्यं सर्पिः सर्पिषा, गौः क्षीरं क्षीराणाम्, तिलतैलं स्थावरस्नेहानाम्, वराहवसा आनूपमृगवसानाम्, चुलुकीवसा मत्स्यवसानाम्, राजहंसवसा जनचरविहगवसानाम्, कुक्कुटवसा विष्किरशकुनिवसानाम्, अजाभेदः शाखादमेदसाम्, शृङ्गवेरं कन्दानाम्, मृहीका फलानाम्, शर्करा इक्षुविकाराणामिति प्रकृत्यैव हिततमानामाहारविकाराणां प्रधानतमानि द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति॥१॥

भगवान् आत्रेय कहते हैं—हितकारी तथा अहितकारी आहार ये हैं—शूकधान्य में रक्तशालि सर्वापेक्षा सुपथ्य है। इसी प्रकार से शमीधान्य में मूग, जलसमूह में अन्तरिक्ष काजल, लवणादि में सैन्धव, शाक में जीवन्तिशाक उत्तम हैं। मृगों के मांस में ऐण हिरण का मांस, पक्षियों में लाव, विलेशय में (सरकार चलने वालों में) गोधा का मांस, मछलियों में रोहित, घृतसमूह में गोघृत, दुग्धों में गोदुग्ध, स्थावर स्नेह में तिलतैल, आनूप जन्तुओं की वसा में शूकर की वसा, मत्स्यवसा में से चुलूकी की वसा, जलचर पक्षियों में से राजहंस की वसा उत्तम है। विष्कर पक्षीगण की वसा में से मुर्गे की तथा शाखापत्र खाने वालों में से बकरे की वसा उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार प्रधान हितकारी आहार के विषय में कहा गया है।।१।।

अहिततमानामप्युपदेक्ष्यामः—यवकाः शुकधान्यानामपथ्यत्वे निकृष्टतमाः भवन्ति, माषा शमीधान्यानाम्, वर्षानादेय-मुदकानाम्, ऊषरं लवणानाम्, सर्षपशाकं शाकानाम्, गोमांसं मृगमांसानाम्, व्यालकपोतं पक्षिणाम्, भेको बिलेशयानाम्, चिलिचिमो मत्स्यानाम्, आविकसर्पिः सर्पिषाम्, अविक्षीरं क्षीराणाम्, कुसुम्भस्नेहः स्थावरस्नेहानाम्, महिषवसानूपमृगवसानाम्, कुम्भीरवसा मत्स्यवसानाम्, काकमण्डूकवसा जलचरविहगवसानाम्, चरकवसा विष्किरशकुनिवसानाम्, हस्तिभेदः शाखादमेदसाम्, मूलकं कन्दानाम्, लकुचं फलानाम्, फानितमिक्षुविकाराणामिति प्रकृत्यैव अहिततमानामाहारविकाराणाम्, निकृष्टतमानि द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति॥२॥

अब अहितकारी आहार के प्रति कहा जाता है। शूकधान्य में से यवक (क्षुद्रयव) अतिशय अपकारी तथ निकृष्ट है। शमीधान्य में माष, जल में वर्षाकालीन नदीजल, लवणसमूह में से क्षारमृत्तिका तथा शाकों में से सरसों का साग सबसे निकृष्ट होता है। पशुमांस में गोमांस, पक्षियों में काले कबूतर का मांस, विलेशय जन्तुओं में से मेढ़क का मांस, मछलियों में से चिलचिम का मांस, घृतों में भेड़ का घृत तथा दुग्ध में भेड़ का दुग्ध सर्वथा निकृष्ट है। वनस्पतिजनित तैलों में कुसुम्भबीज का तैल निकृष्ट होता है। आनूप जन्तुओं में से भैंसे की वसा, मत्स्यवसा में से कुम्भीर की वसा, जलचर पक्षियों में से पाणकौटीर की वसा निकृष्ट होती है। विष्किर पक्षियों में से (जो कम उड़ते हैं) चटक की वसा, पेड़-पौधे के पत्ते खाने वालों में से हाथी की वसा निकृष्ट होती है। कन्द में से पकी मूली, फलों में से लकुच तथा ईंख से बने द्रव्यों में से फाणित (एक प्रकार का गुड़) सर्वपेक्षा निकृष्ट होता है।।२।।

हिताहिताहारवरमाहारविकाराणामतो भूयः कर्मौषधानाञ्च प्राधान्यतः सानुबन्धानि द्रव्याणि अत्र व्याख्यास्यामः; तद्यथा—शिवानुस्मरणं भूतजरापहराणाम्, मातरो बालग्रहाणाम्, चामुण्डा शाकिनीनाम्, विष्णुः कुण्डग्रहाणाम्, ब्रह्मा सत्यग्रहाणाम्, दुर्गा महाग्रहाणाम्, उमा प्रीतिकराणाम्, स्कंदो सर्वग्रहाणाम्, विनायको विघ्नग्रहाणाम्, आदित्यः कुष्ठोपशमनानाम्, सोम औषधीनाम्, दक्षाश्विनौ आयुर्वेदसिद्धानाम्, मन्त्रस्नानं सर्वस्नानानाम्, प्रातर्हवनं शान्तीनाम्, रोचनादधिसर्पिर्मङ्गलानाम्,तिथिश्रवणं सर्वदुःस्वप्नापहानाम्, तिलदानं ग्रहोपशमनीयानाम्, गोस्पर्शनमा-युवर्धनानाम्, नग्नकषायदर्शनमनायुष्याणाम्, सततोध्ययनं बुद्धिमेधाकराणाम्, पुत्रत्वं वंशवृद्धिकराणाम्, अन्नं वृद्धिकराणाम्, श्रेष्ठमुदकमास्वादकराणाम्, सुरा श्रमहराणाम्, क्षीरं जीवनीयानाम्, मांसं बृंहणीयानाम्, लवणमन्नव्यरुचिकराणाम्, अम्लं हृद्यानाम्, कुवकुटो वल्यानाम्, नक्रेतो वृष्याणाम्, मधुश्लेष्मपित्तप्रशमनीयानाम्, सर्पिः वातपित्तप्रशमनानाम्, तैलं वातश्लेष्मप्रशमनानाम्, वमनं श्लेष्महराणाम्, विरेचनं पित्तहराणाम्, वस्तिर्वातहराणाम्, स्वेदो मार्दवकराणाम्, व्यायामः स्थैर्यकराणाम्, व्यवायः कार्श्यकराणाम्, क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्, तिन्दूकमनन्न-

द्रव्यरुचिकराणाम्, आमकपित्थक अकर्च्यानाम्, आविकसर्पिः अक्लिद्यानाम्, अजाक्षीरं शोषघ्नशून्यमात्मारक्त-सांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्, अविक्षीरं श्लेष्मपित्तोपचयकराणाम्, महिषीक्षीरं स्वप्नजननानाम्, मन्दकं मद्यभियान्दकराणाम्, गवेधुकान्नं कर्शनीयानाम्, दधि अतिस्पंदकराणाम्, उद्दालकान्नं विरक्षणीयानाम्, इक्षुमूत्रजननानाम्, यवाः पुरीषजननानाम्, जाम्बवं वातजननानाम्, शष्कुल्यः श्लेष्मपित्तजननानाम्, कुलत्था अम्लपित्तजननानाम्, माषा श्लेष्मपित्तजननानाम्, मदनफलं मदनस्थापनानुवासनोपयोगिनाम्, त्रिवृत् सुखविरेचकानाम्, चतुरङ्गुलं मृदुविरेचकानाम्, स्नूहीक्षीरं तीक्ष्णविरेचनानाम्, प्रत्यक्पुष्पी शिरोविरेचनानाम्, विडङ्गं कृमिघ्नानाम्, शिरीषो ताक्ष्यी विषघ्नानाम्, खदिरः कुष्ठघ्नानाम्, रास्ना वातहराणाम्, आमलकं वयःस्थापनानाम्, हरीतकी पथ्यानाम्, एरण्डमूलं वृष्यवातहराणाम्, पिप्पलीमूलं दीपनीयपाचनीयप्रशमनानाम्, चित्रकमूलं दीपनीयपाचनीयानाम्, पुष्करमूलं हिक्का-श्वास-कास-पार्श्व-शूलहराणाम्, उदीच्य निर्वापण-दीपनीय-पाचनीय-छर्द्यतीसारहराणाम्, कट्वंगं संग्राहक-पाचनीय-दीपनीयानाम्, अनन्ता संग्राहक-रक्त-पित्त-प्रशमनानाम्, अमृता संग्राहक-वातहर-दीपनीय-श्लेष्मशोणित-विवंकप्रशमनानाम्, बिल्वं संग्राहक-दीपनीय-वात-कफप्रशमनानाम्, अतिविषा दीपनीय-पाचनीय-संग्राहक-सर्वदोषहराणाम्, उत्पल-कुमुद-पद्म-किञ्जलका संग्राहकशोणित-पित्तादि-योग-रक्तपित्तप्रशमनानाम्, दुरालभा पित्त-श्लेष्मप्रशमनानाम्, गन्थप्रियङ्गु प्रशमनानाम्, कुटजत्वक् श्लेष्म-पित्त-रक्त-सांग्रहिकोपशोषणानाम्, काश्मर्यफलं संग्राहकरक्त-पित्त-प्रशमनानाम्, पृश्निपर्णि सांग्राहिकवातहरदीपनीयवृष्याणाम्, विदारिगन्धा वृष्यसर्वदोषहराणाम्, वला सांग्राहिक-वल्य-वातहराणाम्, गोक्षुरको मूत्रकृच्छ्रानिलहराणाम्, हिङ्गु निर्यास-छेदनीय-दीपनीय-अनुलोमिक-वात-कफप्रशमनानाम्, अम्लवेतसो भेदनीय-आनुलोमिक-श्लेष्मप्रशमनानाम्, यावशूकः संग्रहणीय-पाचनीय-अर्शोघ्नानाम्, तक्राभ्यासो श्वासग्रहणीयदोषात् घृतव्याप्तप्रशमनानाम्, क्रव्यादमांसाभ्यासो ग्रहणी-दोषशोषेऽर्शोघ्नानाम्, क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम्, समधृतसक्तुप्राशाभ्यासो वृष्योदावर्त्तहराणाम्, (तैलगण्डूषाभ्यासो दन्तबलरुचिकराणाम्, चन्दनोडुम्बरं मोहनिर्वापणोपलेपनानाम्, रास्नागुरूणि शीतापनयप्रलेपनानाम्, लोमज्जकोशीरं दाहत्वग्दोष-स्वेदापनयनप्रलेपनानाम्, कुष्ठं वातहराभ्यंगोपानहयोगिनाम्, मधूकं चक्षुष्य-वृष्य-केश्य-कण्ठ्य-वर्ण्य-विरजनीय-रोपनीयानाम्, वायुः प्राणसंज्ञाग्रधानहेतूनाम्, अग्निः आम-स्तम्भ-शीत-शूल-उद्वमन-प्रशमनानाम्, जलं स्तम्भनीयानाम्, मृद्भृष्टलोष्टनिर्वापितमुदकं तृषातियोगप्रशमनानाम्) अतिमात्राशनं आमप्रदोषहेतूनाम्, यथाग्न्यम्बुभ्याहारो अग्निसन्धुक्षणानाम्, यथासाम्यं चेष्टाव्यवहारश्च सेव्यानाम्, काले भोजनमारोग्यकराणाम्, वेगसन्धारणं अनारोग्य-कराणाम्, तृप्तिराहारगुणानाम्, मद्यं सौमनस्यजनानाम्, मद्यक्षेपो धी-धृति-स्मृतिहराणाम्, गुरुभोजनं दुर्विपाकानाम्, एकासन-शयनभोजनं सुखपरिणामकराणाम्, स्त्रीष्वतिप्रसंगः शोषकराणाम्, शुक्रवेगनिग्रहः षण्ढकराणाम्, पराद्यतनमन्नमश्रद्धाजननानाम्, अनशनमायुषो ह्रासकराणाम्, प्रमितामाशनं कर्णनीयाणाम्, अजीर्णाध्यशनं ग्रहणीदूषणनाम्, विषमशनमग्निवैषम्यकराणाम्, विरुद्धवीर्यासनं निन्दितव्याधिकराणाम्, रजस्वलाभिगमन-मलक्ष्मीमुख्यानाम्, ब्रह्मचर्यमायुष्यकराणाम्, सङ्कल्पो वृष्यानाम्, दौर्मनस्यमवृष्यानाम्, अयथाबलमाहरन्तः प्राणोपहारिणाम्, हर्षः प्रीणनानाम्, शोकः शोषमाणानाम्, निर्वृत्तिः पुष्टिकराणाम्, पुष्टिः स्वप्न-तन्द्राकराणाम्, सर्वरसाभ्यासो बलपुष्टिकराणाम्, एकरसाभ्यासो दौर्बल्यकराणाम्, गर्भशल्यकमहर्ध्यानाम्, अजीर्णं रोगहेतूनाम्, बालो मृदुभेषजीयानाम्, वृद्धो याप्यानाम्, गर्भिणी तीक्ष्णौषधव्यायामवर्ज्जनीयानाम्, सौमनस्यं गर्भधारणानाम्, सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानाम्, आमो विषमचिकित्स्यानाम्, ज्वरो रोगाणाम्, कुष्ठं दीर्घरोगाणाम्, राजयक्ष्मा रोगसमूहानाम्, जलौका मोहनशस्त्राणाम्, हिमवान् औषधभूमीनाम्, शिवो मन्त्रसिद्धीनाम्, दुर्गाराधनं विजयानाम्, समाधी रसायनानाम्, नास्तिको वर्ज्यानाम्, लौल्यं क्लेशकराणाम्, बहुतन्त्रावलोकनं विमलीकराणाम्, तद्विद्यासम्भाषा बुद्धिवर्धनानाम्, आयुर्वेदोऽमृतानाम्, सन्तोषः सुखानामिति॥३॥

हितकारी तथा अहितकारी आहार के विषय में वर्णन करके अब कर्म तथा औषधि में उत्कृष्ट तथा निकृष्टसमूह की व्याख्या की जाती है। यथा—भूतज्वर का नाश जिससे होता है, उसमें प्रधान कार्य है—शिव का अनुसरण। बालग्रह में प्रधान हैं मातृगण, डाकिनीगण में प्रधान हैं चामुण्डा, कुण्डग्रह में प्रधान हैं विष्णु, सत्यग्रह में प्रधान हैं ब्रह्मा, महाग्रहप्रधान हैं दुर्गा, प्रीतिकारीगण में प्रधान हैं उमा, सर्वग्रहप्रधान हैं स्कन्द। विघ्नग्रहगणप्रधान हैं विनायक, कुष्ठनाशकों में प्रधान हैं सूर्य, औषधिप्रधान हैं चन्द्र, आयुर्वेदसिद्धों में प्रधान हैं दक्ष एवं अश्विनीकुमारद्वय। शान्तिकर्म में प्रधान है—मन्त्रस्नान सर्वौषधिस्नान तथा शान्ति होम। मंगल द्रव्यों में प्रधान है गोरोचन एवं दधि तथा घृत। दुःस्वप्ननाशियों में प्रधान है तिथिश्रवण। ग्रहणादि उपाय में तिलदान प्रधान है। आयुदायक में गोस्पर्श प्रधान है। आयुरहित करने वाले में प्रधान है नग्नादि का दर्शन। मेधावृद्धि हेतु प्रधान है सतत् अध्ययन। वंशवृद्धि हेतु प्रधान है पुरुषत्व। जीवननिर्वाहक पदार्थ में अन्न सर्वोत्तम है। तृष्णानाशक में जल, शान्तिहरण द्रव्यों में सुरा प्रधान है। जीवनप्रदाता में दुग्ध, बृंहणीय में मांस, अन्न को रुचिकर बनाने में लवण तथा हृद्य पदार्थों में अम्ल प्रधान है। बलकारी द्रव्यों में प्रधान है मुर्गे का मांस, वृष्यों में प्रधान है कछुये का शुक्र, पित्तश्लेष्मानाशकारी में प्रधान है मधु, वात-पित्तनाशकों में प्रधान है घृत, वात-श्लेष्मानाशकों में प्रधान है तैल, श्लेष्माहारी में वमन प्रधान है। पित्तहारी में प्रधान है विरेचन। वातहारी में प्रधान है बस्ति। मार्दवक में प्रधान है स्वेद, दार्ढ्यकारी में प्रधान है व्यायाम।

कृश बनाने वाले में प्रधान है मैथुन, पुंस्त्वनाशकों में प्रधान है क्षार तथा अरुचिकारक अन्नों में प्रधान है तिन्दुक। स्वरभंगकारी द्रव्यों में प्रधान है (कच्चा) आम, कपित्थक (एक प्रकार का कैंथा), हृदय के लिये अहितकारी में प्रधान है भेंड़ का घृत। बकरी का दुग्ध शोषनाशक, स्तनवर्द्धक, रक्तरोधक तथा रक्तपित्तनाशकों में प्रधान है। पित्त-श्लेष्मावर्द्धक में महिषदुग्ध प्रधान है, निद्राकारी में महिषदुग्ध, अभिष्यन्द उत्पन्न करने वाले द्रव्यों में मन्दक दधि, कृशताकारी द्रव्यों में गवेधुक धान का अन्न, रूक्षकारी द्रव्यों में उद्दालक अन्न, मूत्रजनक द्रव्यों में गन्ने का रस, मलजनक द्रव्यों में जौ, वायुजनक द्रव्यों में जामुन, पित्तश्लेष्माकारी द्रव्य में तिलपिष्टक, अम्लपित्तजनकों में कुलथी, पित्तश्लेष्मजनक में माष, वमन-आस्थापन तथा अनुवासनोपयोगी में मदनफल सर्वप्रधान हैं। सुखविरेचकों में से तिन्तिडीमूल, मृदु विरेचकों में से सोदाल का क्षार (चतुरंगुल), तीक्ष्ण विरेचकों में से स्नुहीक्षीर, शिरोविरेचक में अपामार्ग के बीज, क्रिमिनाशकों में विड़ङ्ग, विषनाशकों में शिरीषबीज, कुष्ठनाशक में खदिर, वातहारी में रास्ना, आयुस्थापकों में आमलकी, सभी सुपथ्यों में हरीतकी, वृष्य अथव वायुहारी में रेंड़ की जड़, दीपनीय-पाचनीय तथा प्रशमनीय में पीपल की मूल, दीपनीय-गुदशूल-गुदशोथनाशक में चिता की जड़ प्रधान है।

संग्राहक तथा दीपनीय-पाचनीय औषध में मोथा, हिचकी-श्वास-कास तथा पार्श्वशूलनाशी में पुष्करमूल अथवा कूठ, अग्निज्वाला-निवारक अथच दीपनीय एवं पाचनीय वमनहारी तथा अतिसारनाशक द्रव्यों में बाला, सांग्राहक तथा रक्तपित्तनाशी द्रव्यों में अनन्तमूल, सांग्राहक-वातहर-दीपनीय-कफनाशक तथा श्लेष्मारक्तहारी द्रव्यों में गुरुच, संग्राहक अथच दीपनीय वातकफनाशक द्रव्यों में से कच्ची बेल, दीपनीय-पाचनीय-संग्राहक अथच सर्वदोषघ्न द्रव्यों में अतिविषा, संग्राहक अथच रक्तपित्तनाशी द्रव्यों में उत्पल-कुमुद तथा पद्म का किंजल्क एवं पित्तश्लेष्मानाशक में दुरालभा प्रशस्त है।

रक्तपित्तादि के अतियोगनाशकों में गन्धप्रियंगु, श्लेष्मपित्तरक्तसंग्राहक तथा उपशोषक द्रव्यों में से कुटज वृक्ष की छाल, पित्त-रक्तनाशक तथा दीपनीय द्रव्यों में से गम्भारीफल, संग्राहक-वातहर तथा वृष्य द्रव्यों में से पृश्निपर्णी प्रशस्त है। वृष्य तथा सर्वदोषहारी द्रव्यों में भूमिकूष्माण्ड, सांग्राहिक-बल्य तथा वातहारी द्रव्यों में बला, मूत्रकृच्छ्र तथा वायुनाशक में गोखरु, छेदनीय-दीपनीय-आनुलोमिक तथा वातकफनाशक द्रव्यों में हींग का निर्यास (हींग), भेदनीय-दीपनीय-आनुलोमिक तथा वातश्लेष्महारी द्रव्यों में अम्लवेतस, संग्रहणीय-पाचनीय तथा बवासीरनाशक द्रव्यों में यवक्षार, ग्रहणीदोषनाशक तथा

अर्शनाशक घृतपान के अधिक कर लेने पर उससे उत्पन्न विकारनाशक पदार्थों में मट्ठा सर्वश्रेष्ठ है। ग्रहणीदोष-शोष-अर्शनाशक द्रव्यों में मांस खाने वाले जन्तु के मांस को खाना सर्वोत्तम है।

रसायनों में दुग्धघृताभ्यास उत्तम है। वृष्य तथा उदावर्त्तनाशक योगों में नित्य समान मात्रा में सत्तू तथा घृत का भक्षण, दाँतों को मजवूत बनाने तथा रुचिकारक द्रव्यों में नित्य तैल का कुल्ला (मुँह में तैल भरकर कुछ समय रखना), दाहनाशक लेपनों में चन्दन तथा उडुम्बर, शीतनाशक प्रलेपों में रास्ना तथा अगुरु, दाहनाशक-त्वग्दोषहारक तथा पसीना हटाने के प्रलेपों में बेना की जड़ (लोमज्जकोशीर) उत्तम है।

कूठ औषधि वातहर तथा अभ्यंगों एवं प्रलेपों में उत्कृष्ट है। चक्षुष्य-वृष्य-केशहितकारी-कण्ठहितकारी-वर्ण अच्छा करने वाले-विरजनीय घाव भरने वाले द्रव्यों में मुलेठी प्रधान है। वल तथा चेतनता लाने वाले द्रव्यों में वायु (प्राणवायु) प्रधान है। आम-स्तम्भ-पीत-शूल-कम्पनाशक द्रव्यों में अग्नि प्रधान है। स्तम्भनीय द्रव्यों में जल; अतिशय तृष्णानाशक में प्रधान है जिस जल में तपा हुआ मिट्टी का ढेला डुबाकर उसे ग्रहण किया जाय, आमदोषकारकों में प्रधान है अतिशय भोजन। अग्निदीपक पदार्थों में प्रधान है जितनी भूख हो उतना ही भोजन (अधिक नहीं)। सेवनीय कार्य में उत्तम है जितना सामर्थ्य हो उससे अधिक कार्य न करना। आरोग्यकारी उपायों में प्रधान है यथासमय भोजन। व्याधि उत्पन्न करने वाले उपायों में प्रधान है मल-मूत्रादि वेग को रोके रहना। आहरणगुण में तृप्ति तथा प्रफुल्लताकारक में मद्य (किञ्चित् मात्रा) प्रधान है। अधिक मद्य धी-स्मृति तथा धृतिहारी है।

दुष्परिपाक (अपच) में भारी भोजन, उत्तमरूप से पचाने में एक समय आहार प्रधान है। यक्ष्माकारक में स्त्रीसंग प्रधान है, नपुंसकताकारक में शुक्रवेग रोकना, अन्न में घृणा उत्पन्न करने वाले में बासी भोजन प्रधान है। आयुर्वेद के सहायकों में प्रधान है उपवास, कृशताकारी में प्रधान है भूख से कम खाना, ग्रहणीदोष में प्रधान है आपच रहते खाते जाना, अग्निवैषम्यकारकों में प्रधान है असमय में विषम भोजन। कुष्ठादि निन्दित व्याधियों में प्रधान है दुग्ध-मांसादि का साथ भोजन। हितकारी में शान्ति प्रधान है तथा सर्वप्रकार के अपथ्यों में प्रधान है अतिरिक्त परिश्रम। व्याधि उत्पन्न करने वाले में प्रधान कारण है मिथ्यायोग, दरिद्रता का प्रधान कारण है रजस्वलागमन, आर्युवर्द्धक में प्रधान है ब्रह्मचर्य। वृष्यों में प्रधान है संकल्पसाधन। जो अवृष्य हैं उनमें प्रधान लक्षण है मन में स्फूर्त्ति का न होना। प्राणहन्ता स्थिति में प्रधान है बल का अधिक उपयोग। रोगवर्द्धन में प्रधान है विषाद, श्रमहरण में प्रधान है स्नान। प्रीतिकारी स्थितियों में प्रधान है हर्षित होना। शोषण में प्रधान है शोक, पुष्टिकारी कारणों में प्रधान है सन्तोष, निद्राकारी कारण में प्रधान है पुष्टि। तन्द्राकारकों में उत्तम है निद्रा। बलकारी में सर्वरसायनों का (अम्ल-मधुरादि सभी रसों का) सेवन। दुर्वलता लाने वाले में प्रधान है केवल एक ही रसयुक्त भोजन। अनाकर्षकों में प्रधान है गर्भशल्य (जव गर्भ प्रसव न होकर गर्भ में ही अटका रह जाय)। रमणीगण में प्रधान है अजीर्ण। मृदु ओषधि से चिकित्सनीय में प्रधान है बालक। याप्यों में प्रधान है वृद्ध का रोग। तीष्ण औषधि, व्यायाम वर्जनीय स्थिति वालो में प्रधान है गर्भिणी स्त्री (अर्थात् उसे तीक्ष्ण औषधि तथा व्यायाम पूर्णतः वर्जित रहता है)। गर्भधारिणीगण में प्रधान है प्रसन्नता, दुश्चिकित्स्य रोगों में प्रधान है सन्निपात, विरुद्ध चिकित्सा में प्रधान है आमचिकित्सा।

रोगों में प्रधान है ज्वर। दीर्घकालीन रोगों में प्रधान है कुष्ठ, सभी दुश्चिकित्स्य रोगों में प्रधान है राज्यक्ष्मा, उपशस्त्रों में प्रधान है जोंक, समस्त ओषधिप्रदाता में प्रधान है हिमालय, मन्त्रसिद्धियों प्रधान है शिवसाक्षात्कार, जयसाधन प्रक्रिया में प्रधान है भगवती दुर्गा की आराधना, रसायन विधियों में समाधि प्रधान है। निन्दनीयों में नास्तिक व्यक्ति तथा क्लेशकारी स्थितियों में लौल्य सर्वप्रधान है। मन की प्रसन्नताकारी विधि में सर्वप्रधान है अनेक तन्त्रों का अवलोकन। बुद्धि की तीक्ष्णता का प्रधान कारण है तत्त्वज्ञान। आयुर्वेद के समान जीवित लोगों हेतु स्थायी सुखकारी तथा सन्तोषदायक कुछ भी नहीं है।।३।।

सर्वेषां साधने हेतुरारोग्यं समुदाहृतम्। तस्मात्प्रयत्नतो वत्स प्रथमेनं समभ्यसेत् ॥४॥
वेदाङ्गानां यथा ज्योतिर्वरिष्ठः मुनिसत्तम। उपाङ्गानां तथा चैतदायुर्वेदो वरः स्मृतः ॥५॥
कपिलो हेमकुक्षिश्च वरुणो जलदाधिपः। मेखलो निषधो रुद्रो दुन्दुभिः पुलहो हरिः ॥६॥
यजनः सामकश्चेन्दुः काशिका जनको वपुः। हेमः सुमाली दीप्तिश्च भानुवर्णः प्रभाकपिः ॥७॥
सुषेणो महिमा पिङ्गो ब्रह्मा दक्षप्रजापतिः। अश्विनौ वृत्रहा अत्रिरेते वेदविदांवराः ॥८॥
आयुर्वेदार्थकुशलारमरत्वं गता मुने। मित्राणामुपकाराय अपकाराय शत्रवे ॥९॥

इसका कारण यह है कि आरोग्य ही समस्त कार्यसिद्धि का प्रधान कारण कहा गया है। हे वत्स! इसलिये प्रत्यक्ष फलद आयुर्वेद ही प्रधान है। हे मुनिवर! कपिल-हेमकुक्षि-जलराज वरुण-मेखल-निषध-रुद्र-दुन्दुभि-पुलह-हरि-यजन-सामक-इन्दु-काशिक-जनक-वपु-हेम-सुमाली-दीप्ति-भानुकर्ण-प्रभाकपि-सुषेण-महिमा-पिङ्ग-ब्रह्मा-प्रजापति-दक्ष-अश्विनीकुमारद्वय-वृत्रहा-अत्रि— इन सभी वेदज्ञ महात्मागण को आयुर्वेद का परम अर्थ ज्ञात था। अतः ये अमर हो गये। इस शास्त्र के अनुशीलन से शत्रु का अपकार तथा मित्र का उपकार किया जा सकता है।।४-९।।

हिताहितस्य वेत्तारो दृष्टादृष्टप्रसाधनम्। स्मारितं परप्रीतिनां शिवेन परमात्मना ॥१०॥
खट्वा जिघांसता वत्स आयुर्वेदः प्रकाशितः ॥११॥

इति श्रीदेवीपुराणे आयुर्वेदनिर्देशसमाप्तिर्नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः

साथ ही दृष्ट-अदृष्ट हित एवं अहित का ज्ञान भी हो जाता है। परमात्मा शिव ने अपने हित तथा अन्य के सन्तोष की कामना से खट्वासुर के विनाशार्थ इस आयुर्वेद शास्त्र का प्रकाशन किया था।।१०-११।।

दशाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

कथं खट्वासुरः श्रेष्ठ आयुर्वेदं प्रकाशता। निहतो देवदेवेन तन्मे ब्रूहि सनातन ॥१॥

मनु कहते हैं—हे सनातन! महादेव ने आयुर्वेद को प्रकाशित करके किस प्रकार से खट्वासुर का संहार किया था, इसे कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

गजरूपो महादेवो वसन्मालवपर्वते। खं विभागे स्थितो विष्णुः पथमार्गनिवारिते ॥२॥
तयोः संरब्धो रोषेण महायुद्धे महात्मना। उत्पन्नो विश्वरूपात्मा महारूपो महाबलः ॥३॥
अनंततेजाः पिंगाक्षो बहुमायो गुणात्मकः। भान्वायुतसहस्राक्षः कालानलसमप्रभः ॥४॥
सूर्यसोमेक्षणश्चण्डः पातालांघ्रिनखाङ्गुलीः। नागानना सुराः सर्वे जङ्घे भूधरजानुनी ॥५॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—महादेव गजरूप धारण करके मालव पर्वत पर विचरण कर रहे थे, इसी समय विष्णु ने आकाश पथ पर आकर उनका गतिरोध किया। इससे महात्माद्वय क्रुद्ध होकर परस्पर युद्ध करने लगे। उनके क्रोध से अतितेजस्वी रूपवान महाबली मायावी पिङ्गल नेत्र एक पुरुष उत्पन्न हो गया। वह देखने में प्रलयाग्निरूप से प्रतीयमान हो रहा था। अयुत

भावयुक्त उस पुरुष के नेत्र चन्द्र-सूर्यवत् थे। उसकी चरणाङ्गुलि पाताल का स्पर्श कर रही थी। देवता तथा नागगण उसके जंघा के स्थान थे। पर्वतसमूह उसके जानु लग रहे थे।।२-५।।

भूर्लोकं च भुवर्लोकं नाभिश्च महनर्क्षसम्। जनग्रीवाः तपोवक्त्रं शिरः सत्यमयं वपुः ॥६॥

भूलोक तथा भुवर्लोक उसकी नाभि थी। महर्लोक वक्षःस्थल था, जनलोक ग्रीवा थी। तपोलोक मुख तथा सत्यलोक उसका मस्तक था। इस प्रकार उसका शरीर प्रकाशित था।।६।।

विष्णोस्तपस्य विध्वंसं निर्वाणं गच्छतस्ततः। अवरांशं समास्थाय विष्णुर्योधितवांस्तदा ॥७॥
कृत्वा वपुर्महासूक्ष्मं बहुमायो महाबलः। घातिता विष्णुरुद्राद्याः भूयो भूयो विवर्धते ॥८॥
शरशक्तिगदादण्डपरश्वायुधघातजान्। पद्मं पद्मसहस्राक्षं विसृष्टमात्मविग्रहः ॥९॥

तब उस असुर ने मोक्षरूपी भगवान् विष्णु की तपस्या को भंग करना प्रारम्भ कर दिया। विष्णु भी युद्ध करने लगे। विष्णु तथा शिव ने सूक्ष्म देह धारण करके उस मायावी असुर पर जितना प्रहार करना प्रारम्भ किया, वह उतना ही दूना बलवान होकर मायाजाल से अपनी देह द्वारा शर-शक्ति-गदा-दण्ड-परशु आदि आयुध प्रकट करने लगा। महाबली पराक्रमी विष्णु तथा महादेव इस अस्त्रसमूह से घिरे हुये होकर भी युद्ध करते जा रहे थे।।७-९।।

सहमाया समुद्भूतैः खट्वा-देह-समुद्भवैः। वेष्टितो विष्णुविघ्नेशौ युध्यमानौ महाबलौ ॥१०॥
निष्पन्दं विष्णुं कृत्वा तु विघ्नेशं च महाबलम्। इन्द्रादीन् स सुरान् वत्स योधनाय समुद्यतः ॥११॥
इन्द्रं चन्द्रं वसु ब्रह्म यमरुद्रदिवाकरान्। स जित्वा चैव देवाँश्च पातालानभिद्रवत् ॥१२॥

हे वत्स! खट्वासुर ने क्षणकाल में विष्णु तथा रुद्र को चेष्टारहित कर दिया। अब वह इन्द्रादि देवताओं के साथ युद्धार्थ आगे बढ़ा। अब वह इन्द्र-चन्द्र-वसु-ब्रह्मा-यम-राक्षस-सूर्य प्रभृति देवगण को हराकर पाताल की ओर दौड़ पड़ा।।१०-१२।।

एवं देवान् सुरान् नागान् पूर्वमार्गव्यवस्थितान्। निर्जित्य स्ववशे कृत्वा पुनश्चैव निवेश्य तान् ॥१३॥
तपः समारभेदुग्रं कणभुक् सलिलाशनः ॥१४॥
गोमूत्रगोमयाहारो वाय्वाहारोऽथवा पुनः। अवाङ्मुखो धूमभुजो अर्बुदन्तु समास्थितः ॥१५॥
ततस्तस्याभवद्दैवो वरदाने समुत्सुकः। त्रिमूर्त्तिर्विश्वरूपात्मा शशाङ्काङ्कितशेखरः ॥१६॥

इति श्रीदेवीपुराणे खट्वासुरोत्पत्तिर्नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

इस प्रकार देवता, दानव तथा नागगण को पराजित करके उसने उन्हें अपने अधीन जानकर पुनः सबको उनके-उनके स्थान पर नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात् मात्र वायु का भक्षण करके कठोर तपस्यारत हो गया। वह कभी गोमय, कभी गोमूत्र, कभी कणमात्र जल पीकर तो कभी अधोमुख होकर मात्र धूम्र पीकर रह जाता। इस प्रकार एक अरब वर्ष तपस्या करने पर उस पर त्रिगुणमय विश्वरूप भगवान् शशिशेखर प्रसन्न होकर वर देने के लिये उत्सुक हो गये।।१३-१६।।

एकादशाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

कोऽसौ गजाननो देवः कथं वा समगच्छत। कथं निवारयेद् विष्णुमेतदिच्छामि वेदितुम्॥१॥

महर्षि वशिष्ठ कहते है—हे महाभाग! गजानन कौन देवता हैं? किस प्रकार वे आविर्भूत हुये? उन्होंने क्यों विष्णु का निवारण किया? यह जानने की इच्छा है, कृपया कहिये।।१।।

मनुरुवाच

यद्दुर्लभं भवेदण्डं हेमजं क्षितिभूषणम्। लोके मेरु समाख्यातः तस्य पूर्वेण भूधरः॥२॥
मालव्यो नाम विख्यात ऋषिदेवनिषेवितः। सिद्धकिन्नरगन्धर्व-अप्सरोगणसेवितः॥३॥
नानाद्रुमलताकीर्णः फलपुष्पसमावृतः। सरित्सरोवराकीर्णे दीर्घिकानदमालितः॥४॥

मनु कहते हैं—पृथिवी का अलंकार स्वरूप एक पर्वत मेरु नामक है। उसके पूर्व में मालव्य पर्वत स्थित है। उसमें देवता, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सरागण नित्य वास करते हैं। यह पर्वत पुष्प-फल से परिपूर्ण है। यहाँ विविध लता-वृक्ष हैं। असंख्य नद-नदी-दीर्घिका तथा सरोवरसमूह से यह भरा है।।२-४।।

हंसकारण्डवचक्रवाकजीवंजीवकनादितः। बहुपक्षिसमाघुष्टो अतिरम्यो मनोहरः॥५॥
तस्मिन् पर्वतराजेन्द्रे पीतवासा जगत्पतिः। सत्त्वात्मको महामायो जगतां पतिः केशवः॥६॥
स्थित्यर्थं मतिमाधाय स्थितो विग्रहरूपिणः। सदा रतिमुदायुक्तः क्रीडमानः क्रिया सह॥७॥
तावत्तत्र क्रियाशक्ति ह्यनन्तप्रभवो महान्। विग्रहीभूतदेवेच्छा समाययुस्तपं प्रति॥८॥

यह हंस, कारण्डव, चक्रवाक, जीवञ्जीवक प्रभृति अनेक पक्षीगण के अस्फुट निनाद से और भी मनोहर तथा रमणीय हो गया है। इस पर्वतराज मालव्य पर सत्त्वगुणाश्रयी मायामय जगदीश पीताम्बरधारी केशव इस संसार की स्थिति हेतु सगुण शरीर धारण करके लक्ष्मी देवी के साथ परमानन्दपूर्वक क्रीड़ारत रहते हैं। अन्य देवतागण भी यहाँ अनन्तदेव की क्रियाशक्ति से आविर्भूत होकर तपस्या में मनोनिवेश करते हैं।।५-८।।

सा विद्या वेदभावेन महत्तपः समास्थिता। विष्णुना च समास्थाय प्रवृत्त्यैवं व्यवस्थिता॥९॥
तदा तस्यामभवद्भावो राजसः परमेच्छया। पाणौ संमन्थयित्वा तु नरकाय गजाननम्॥१०।
सत्त्वोद्रिक्तं सृजेदैवं सर्वदेवमयं विभुम्। चन्द्रादित्यानलो नेत्रो ब्रह्मा चैव शिरो बाहु॥११॥
केशा वनस्पतिस्तस्य रुद्रा ग्रीवासमाश्रिता। दशनाग्रहनक्षत्रा धर्मा धर्मे तु ओष्ठयोः॥१२॥
जिह्वा सरस्वती तस्य श्रोत्रे चैवे दिशो दश। इन्द्रो नासागतस्तस्य भ्रुवोर्मध्ये हरः स्मृतः॥१३॥

अन्य देवता की तरह यहाँ विद्यादेवी वेदस्वरूप से प्रकाशित हैं। वे यहाँ विष्णु के साथ तपस्यारत हो गयीं। तब भगवान् की नित्य इच्छा के प्रभाव से एक राजस भाव का उदय हो गया। तब उन्होंने अपनी हथेली का मन्थन करके सत्त्वोत्पन्न सर्वदेवमय प्रभु गजानन की सृष्टि किया। वे नरकाय (मनुष्याकृति) थे। चन्द्र-सूर्य तथा अनल उनके नयन थे। ब्रह्मा मस्तक थे। वृक्षश्रेणि उनके केश थे। ११ रुद्र उनकी ग्रीवा थे। ग्रह-नक्षत्र उनकी दन्तपंक्ति थे, धर्म-अधर्म ओष्ठद्वय तथा स्वयं सरस्वती जिह्वा थीं। दशो दिशायें उनके दोनों कान थे। देवराज इन्द्र नासिका स्थान पर स्थित थे। स्वयं महादेव उनके भ्रूमध्य में स्थित थे।।९-१३।।

सागरा जठरं तस्य ऋषयो रीमकूपगाः । गन्धर्वा किन्नरा यक्षाः पिशाचा दनुराक्षसाः ॥१४॥
उदरस्था तु देवस्य नद्या बाही समाश्रियः । अंगुल्यो भुजगास्तस्य नखास्तारागणाः स्मृता ॥१५॥
हृदयस्था क्रिया देवी मेरुः पृष्ठगतो ह्यभूत् । यमो धर्मश्च नाभौ तु कण्ठे तु पृथिवी स्थिता ॥१६॥

समस्त सागर उनके जठर में स्थित थे। ऋषिगण उनके रोमकूपों पर अवस्थित थे। यक्ष-राक्षस-दैत्य-गन्धर्व-किन्नर तथा पिशाच इन देव के उदर में स्थित थे। नदीगण ने बाहुद्वय का आश्रय लिया था। सर्पगण अंगुलि तथा तारागण नखसमूह हो गये एवं मेरुशिखरचारिणी आदिदेवी ने उनके हृदय-मर्म पर अधिकार किया। यम-धर्म का उनकी नाभि पर तथा कण्ठ पर पृथिवी का स्थान था।।१४-१६।।

लिङ्गे सृष्टिं विजानीयादश्विनौ जानुनी स्थितौ । पर्वताश्चारुदेशस्थाः पातालात्मकैः स्मृता ॥१७॥
नारका भुवनास्तस्य पादस्था मुनिसत्तम । कालाग्निश्च स्वयं रुद्रः पादांगुष्ठसमाश्रितः ॥१८॥

उनके लिंग पर सृष्टि देवी, अश्विनीकुमारद्वय दोनों जानुद्वय पर, पर्वतसमूह ऊरुदेश पर, पातालवासी अलकों पर एवं मनुष्यलोक चरणद्वय पर स्थित था। कालाग्नि रुद्र स्वयं उनके पैरों के अंगूठे पर समाश्रित थे।।१७-१८।।

वेदाश्च मनवः कल्पा दिना काष्ठा कला लवाः । सर्वे तत्रैव प्रष्टव्या सर्वदेवमयो हि सः ॥१९॥
एवं सर्वात्मकं दृष्ट्वा गजवाक्यन्तु विष्णुना । प्रणम्य मुदितो भक्त्या तुतोष विविधैः स्तवैः ॥२०॥

इति श्रीदेवीपुराणे विनायकोत्पत्तिर्नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

इस प्रकार वे सर्वदेवमय थे। उनमें युग-मनु-कल्प-दिन-काष्ठा-कला-लव इत्यादि दृष्ट हो रहा था। विष्णु ने गजानन का यह सर्वमय रूप देखकर परमानन्द से उनको प्रणाम किया तथा भक्तिपूर्वक नाना स्तव करके भगवान् को प्रसन्न करने लगे।।१९-२०।।

द्वादशाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुरुवाच

स्तोष्येऽहं सुरारिदमनं रिपूणां वैरिहाणं गजवक्त्रमुदन्तशोभम् ।
तं भाति कुन्दहिमशंखशशाङ्कदन्तं ताम्राभकान्तिवपुषं रुचिरारुणाभम् ॥१॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे गजानन! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। आप देवताओं के शत्रुगण का नाश करिये। आपका गजवक्त्र कुन्द-हिम तथा चन्द्र के समान दाँतों से शोभित है। आपकी अंगकान्ति ताम्रवर्ण होने के कारण अत्यन्त शोभायमान हो रही है।।१।।

तं भाति अर्पितजगच्छशिसूर्यमार्गं गां गच्छतीव मेरु सुरारिहन्तुम् ।
तमहं नमामि भगवन् प्रमथेशजातं तर्ज्जन् सुरारिभयदं दनुदर्पहन्तुम् ॥२॥

हे भगवन् दैत्यदर्पनाशक! आपने अपने स्वदेह से सूर्य के पथ का भी रोध कर दिया है (अर्थात् इतनी उन्नत देह है)। आपकी उन्नत देह से प्रतीत हो रहा है कि देवताओं का सुमेरु पर्वत भी भूमध्य में ही रह गया है (उसकी उच्चता आपके समक्ष न्यूनतम प्रतीत हो रही है)। आप तर्जन से ही दानवों में भय उत्पन्न कर रहे हैं। आप देवताओं के भय का नाश करने वाले हैं। आप भगवान् प्रथमेश से उत्पन्न हैं। आपको नमस्कार करता हूँ।।२।।

ताराभमौक्तिककृतं वनमालग्रीवं वाराहवक्षदृढदंष्ट्र इवांशुशोभम्।
भृङ्गोपगीतमदगण्डसुसेव्यमानं तमहं नमामि वरदं वरदायकं तम् ॥३॥

आप नक्षत्रों की तरह शोभन हैं। मुक्ताओं से रचित वनमाला से आपकी ग्रीवा अत्यन्त शोभित हो रही है। आपका मुखमण्डल दृढ़ दाँतों की रश्मि से शोभायमान है। आपके गण्डस्थल से बह रहे मद के ऊपर भ्रमर उड़ते हुये उसे गुंजरित कर रहे हैं, मानो वहाँ उपगीत हो रहा है। हे वरद वरदायक देव! आपको नमस्कार है।।३।।

तारारिणं प्रथमभ्रातृवरं सुवेशं शम्भोर्द्वितीय इव मूर्त्ति सुचारुवेशम्।
नानाविचित्ररूपशोभितचारुहारं नमामि गजाननं तं महाप्रमाणम् ॥४॥

आप देवताओं के प्रथम भ्राता हैं। आप सुवेशधारी हैं। आप भगवान् शिव की द्वितीय मूर्त्ति ऐसे शोभित हैं। नाना विचित्र प्रकार से शोभित उत्तम हार आपने धारण किया है। उन महाप्रमाण गजानन को नमस्कार है।।४।।

नागेन्द्रभोगकृतशेखरमूर्ध्नि भालं लम्बन्तु चारुचमरं रणकार्यवीरम्।
स्तुवन्तु शक्रवनकान्तमहास्त्रमन्तं तं मातृयोगिगणमर्च्चितसुष्टमिष्टम् ॥५॥

हे रणकुशल देव! आपकी देह पर्वत के समान है तथा आपके शिर के आभूषण नागगण हैं। हे शत्रुरूपी महान् कानन के विनाशक! मातृका योगिनीगण आपकी नित्य सेवा करती हैं।।५।।

टङ्कारहाररचनादितघण्टशब्दं दंष्ट्राग्रलग्नदनुदन्तिघटाकलापम्।
पङ्काङ्करेणुरजपङ्कजचारुवर्चं चामीकराखचितमरकतसंसेव्यमानम् ॥६॥

आपका हुङ्कार नाद घण्टाशब्द के समान निनादकारी है। आपके दाँतों के अग्रभाग में शत्रुसेना के हाथी लटके हुये हैं। पंकज की रेणु तथा कमल के समान आपका सुन्दर वर्ण है। सुवर्ण में मकरतमणि जड़े सुशोभन चामर द्वारा आपका व्यजन किया जा रहा है।।६।।

लम्बन्तु कर्णपर्णशङ्खसुचारुचामरं रक्तान्तनेत्रकर्णायतचारुतुङ्गम्।
गम्भीरगर्जितमहारवभेद्यशब्दं गण्डाङ्कुशं परशुमेखलसूत्रधारम् ॥७॥
राराजते सकलपर्वतसानुकण्ठं चण्डातिनूपुरध्वनिमुखरं विभान्तम्।
तस्मै नमामि सततं जगतो हिताय विघ्नेश्वराय वरदाय वरप्रदाय ॥८॥

आपके विशाल कर्णकुहर पलाश के पत्ते के समान हैं, वे शंख के आवर्त्त के समान आवर्त्तयुक्त हैं। रक्तवर्ण वाले कानों तक फैले दो नेत्र आपके मुखमण्डल पर शोभित हैं। आप मेघगर्जन के समान गम्भीर शब्द कर रहे हैं तथा दण्ड, अंकुश, परशु, मेखला तथा सूत्रधारणपूर्वक भीषण नूपुर निनाद द्वारा पर्वत के समान स्थान को मुखरित-निनादित करके शोभित हो रहे हैं। हे विघ्नेश्वर! वरदायक देव! आप जगत् का सतत हित करते रहते हैं। आपको प्रणाम है।।७-८।।

वामैकहस्तसततं कृतलड्डूकाय सिद्धार्थकं सुरभिगन्धविलेपनाय।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवसुशंकरसंस्तुताय गंगाजलौघ इव दानमहाप्रदाय ॥९॥
इष्टार्थफलमीहितप्रदाय शिवाय सम्पूजयस्व मम देवशुभं शुभाय।
विघ्नं विनाशय प्रभो सुरसिद्धचन्द्रं शक्रस्य व्याधितदिवस्य शुभं प्रयच्छ ॥१०॥

आप वाम हस्त में सतत लड्डू धारण किये रहते हैं। अन्य हाथ में सिद्धार्थ एवं सुगन्ध चन्दनादि विलेपन धारण किये रहते हैं। आप ब्रह्मा-इन्द्र-चन्द्र-वसु-शंकर से स्तुत हैं। गंगाजल के समान आपके गण्डस्थल से महान् मदधारा निकलती

रहती है। हे प्रभो! आप भक्त को अभीष्ट प्रदान करते हैं। अतः आपका पूजन कर रहा हूँ। मेरा कल्याण कीजिये। देवता तथा सिद्धगण के शत्रु विघ्नासुर का विनाश करिये। इस प्रकार इन्द्र की व्याकुलता दूर करके शुभत्व प्रदान करिये।।९-१०।।

स्तुत्वा तु शक्तितनयं प्रयतेन विष्णो तुष्टः समीहितवरं ददते च तस्य।
विष्णोस्तवार्थमिदं शैलवरं हरेण सम्प्रेषितो रिपुहराय पुरन्दरस्य ॥११॥
मयोच्यतां वद भवान् किमहं करोमि त्रैलोक्यनिर्जितरिपुं तवाहं वदामि।
श्रुत्वैवं तदा देवं विष्णुना प्रभविष्णुना तुतुष्ट वरदोभूतो विघ्नस्य निधनाय च ॥१२॥

इति श्रीदेवीपुराणे विनायकस्तवो नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

इस प्रकार भगवान् विष्णु ने शक्ति से उत्पन्न इन पुरुष का स्तवन परमाग्रह के साथ किया। उन्होंने सन्तुष्ट होकर वर प्रदान किया—हे विष्णो! तुम्हारी सन्तुष्टि के लिये तथा सहायता के लिये इस देवशत्रु का संहार करने हेतु ही भगवान् महादेव ने मुझे यहाँ भेजा है। हे विष्णो! अब कहो, मुझे क्या करना है? मैं क्षणमात्र में त्रिलोकशत्रु विघ्न को मारकर तुमको सन्तुष्ट करूँगा। विनायक जगदीश्वर विष्णु के नानाविध स्तव से परम प्रसन्न हो गये तथा विघ्नासुर के विनाश की स्वीकृति प्रदान किया।।१-१२।।

त्रयोदशाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

मनुरुवाच

दत्ते विष्णुं वरे ब्रह्मन् प्रतिपन्ने च वेदने। आगतुर्हरब्रह्माणं वासवादित्यचन्द्रमाः ॥१॥
तुतोष विधिवद्भक्त्या पूजयित्वा यथाक्रमम्। ईश्वरो ददते पूर्वमर्धचन्द्रं महोदयम् ॥२॥

मनु कहते हैं—इस प्रकार से विनायक ने विष्णु को वर प्रदान किया। तब प्रजापति ब्रह्मा, महादेव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रप्रभृति देवता वहाँ उपस्थित हो गये। सब यथाविधि विनायक की पूजा करके उन्हें उपहार प्रदान द्वारा सन्तुष्ट करने लगे। सर्वप्रथम महादेव ने उनको नित्योदित अर्द्धचन्द्र प्रदान किया।।१-२।।

ब्रह्मणा मेखला शुभ्रा भानुना चारुविभ्रमम्। विष्णुना शंखशारङ्गो वासवो वज्रमुत्तमम् ॥३॥
यमो दण्डं विचित्रन्तु गदां धनदपाम्पती। अङ्कुशं पाशखड्गञ्च रक्षेन्द्रो गमनं पुनः ॥४॥
दिग्गजानथ नागैश्च कटकाकटिसूत्रकैः। नक्षत्रा गण्डमालादि मातर आत्मतुल्यताम् ॥५॥

ब्रह्मा ने श्वेत मेखला, सूर्य ने विद्रुम तथा विष्णु ने उनको शंख एवं धनुष प्रदान किया। इन्द्र ने विनायक को उत्तम वज्र प्रदान किया। यम ने विचित्र दण्ड, वरुण ने गदा, अंकुश, पाश अर्पित किया। राक्षसराज ने गमन परिपाटी तथा त्रिकूटाचल ने नागमय कटिसूत्र प्रदान किया। नक्षत्रगण ने गण्डमाला तथा मातृकाओं ने आत्मतुल्यता प्रदान किया।।३-५।।

उमा देवी तु विज्ञानं शंकरो भोगमुत्तमम्। पितरो ग्रहरक्षाणि वह्निना च यथाक्रमम् ॥६॥
ऊर्जस्तेजश्च सिद्धिश्च योगिभिः प्रतिपादिता। ऋषिभिर्नदशैलैश्च समुद्रैश्च तथा पुनः ॥७॥
उपप्लवो च गाम्भीर्यं विधिवत् प्रतिपादितम्। एवं कृत्वा ततस्तस्य शंकरादि महाप्रभाम् ॥८॥
दत्तानि दिव्य चास्त्राणि समन्त्राणि वृतानि च। अभिषिक्तः शिवेनास्य सर्वेषां नायको भवान् ॥९॥

भवति सर्वकार्येषु त्वं च देवेषु नायकः। विनायकेति देवानां लोके ख्यातिं व्रजिष्यसि ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे विनायकाभिषेकवरदानं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

उमादेवी ने विज्ञान, महादेव ने योगपरिपाटी, योगीगण ने तेजबल-सिद्धि प्रदान किया। ऋषिगण, पर्वतगण तथा सभी नदों ने उनको अपनी-अपनी प्रिय वस्तु अर्पित किया। समुद्र ने यथाविधान उपप्लव तथा गाम्भीर्य प्रदान किया। इस प्रकार शिवादि देवताओं ने मन्त्रपूत दिव्यास्त्रसमूह तथा व्रतादि उनको प्रदान किया। महादेव ने उनको समस्त देवताओं के अधिपति पद पर अभिषिक्त करके कहा—हे देव! आप आज से संसार में विनायकदेव नाम से प्रसिद्ध होकर सभी कार्य में सबसे पहले पूज्य होंगे।।६-१०।।

चतुर्दशाधिकशततम अध्याय समाप्त

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

तुष्टे विनायके विष्णो ह्यभिषिक्ते गजानने। किं कुर्वन्देवराजेन्द्रः किंवा शंकरकेशवौ ॥१॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे महाभाग! विष्णु ने विनायक का स्तव किया तथा महादेव ने विनायक का अभिषेक किया। तब इन्द्र तथा महादेव एवं केशव ने क्या किया, वह कहिये।।१।।

मनुरुवाच

पुरस्कृत्य तदा देवं गजवक्त्रं महाबलम्। विघ्नस्य घातनार्थाय प्रययावर्बुदाचलम् ॥२॥
यत्रासौ दनुशार्दूल सर्वदेवभयावहः। अयुतोच्छ्रयमानेन योजनायामविस्तरः ॥३॥
दशांशेन च पादन्तां पद्मानि नव सप्त च। तथा तं सहसा दृष्ट्वा गजवक्त्रेण दानवान् ॥४॥
मायामयानि शत्रूणामयुतानि प्रचक्रिरे। आत्मनः समवीर्याणि सर्वशास्त्रविदानि च ॥५॥

मनु कहते हैं—तब महाबलिष्ठ देव गजानन देव को आगे करके सभी देवता विघ्नविनाशार्थ उदयाचल गये। वहाँ देवताओं के लिये भयंकर, गगनस्पर्शी, योजन-पर्यन्त विस्तृत दानवराज नवसप्तति पद्म सेना के साथ स्थित था। वहाँ दानवों को विनायक ने देखा। उन्होंने मायामय शत्रु के विनाशार्थ अयुत संख्या में अपने समान बल-वीर्ययुक्त सर्वशास्त्रविद् सैन्य को (गजसैन्य) प्रकट किया।।२-५।।

कृत्वा तु तां तथा योधान् संग्राममभवन्महत्। दानवैर्निर्जिताः सर्वैर्विघ्नजैर्गजवाहिनीम् ॥६॥
देवाः पश्यन्ति संत्रस्ताः यदि भग्नो विनायकः। तदा न जानीमः कस्माद्रक्षा शक्रस्य सङ्गरे ॥७॥
देवेन शूलिना तस्माद्वज्रिणा चक्रिणा तथा। मुक्तानि दिव्यान्यस्त्राणि तथा तेनैव शामितः ॥८॥

देवताओं ने विघ्नासुर की सेना द्वारा इस गजसैन्य को पराजित होते देखा। इससे देवगण में यह भय व्याप्त हो गया कि अब विनायक की सेना रण में पराजित होने वाली है। वे इस आशंका से भीत हो गये। उस समय तत्काल ब्रह्मा, महादेव, विष्णु तथा इन्द्र ने अपने-अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया। महादेव ने शूल, इन्द्र ने वज्र तथा विष्णु ने चक्र का प्रयोग किया।।६-८।।

विवृद्धमन्युः संरब्धो गजेन्द्रः पुनरुद्यतः। तथा विनायकः क्रुद्धो गृहीत्वा शंकरायुधम् ॥९॥
विघ्नस्य चिच्छिदे कर्त्तं विघ्नान् पापान् निवारयेत्। विघ्नान् पाशेन रोधित्वा सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥१०॥
स्वयं हत्वा महावीर्यं तपच्छिद्रसमुद्भवम्। इन्द्रस्य च विपुलं राज्यं प्रददावभयं सुरान् ॥११॥

इति श्रीदेवीपुराणे विघ्नवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

यह देखकर विनायक द्विगुण बलयुक्त होकर अधिक कुपित हो गये तथा उन्होंने रुद्रास्त्र के प्रयोग से विघ्नासुर का कण्ठ छिन्न कर दिया। उन्होंने पापमय विघ्नासुर को पापरहित कर दिया। इस प्रकार विघ्नदेह को पाश से बद्ध करके अन्य सभी विघ्नसैन्य का भी विनाश कर दिया। महाबली विनायक ने तपःछिद्र से उत्पन्न इन्द्रशत्रु विघ्न का इस प्रकार विनाश करके देवगण को अभय देकर इन्द्र को स्वर्ग का राज्य प्रदान किया।।९-११।।

पञ्चदशाधिकशततम अध्याय समाप्त

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

कस्य छिद्रं भवेद् ब्रह्मन् तपस्य चरतो विभो। यस्मिन् विघ्नः समुत्पन्नः सर्वदेवभयावहः ॥१॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे देव! ब्रह्मा के तपः अनुष्ठान के समय कौन छिद्र (व्यतिक्रम) उपस्थित हो गया, जिससे यह तमः उत्पादक विघ्नासुर उत्पन्न हो गया।।१।।

मनुरुवाच

ब्रह्मणः सृष्टिकामस्य युगादौ चरतस्तपः। तपसामनुविद्धस्य महामोहः प्रजायत ॥२॥
तस्य मोहप्रमुग्धस्य नष्टसत्त्वस्य गो द्विज। अवज्ञां शिवविष्णूनां कृत्वाहमिति देवता ॥३॥

मनु कहते हैं—युगारम्भ काल में ब्रह्मा ने सृष्टिकामना से तपस्या की। उस समय उनको ऐसा महामोह उपस्थित हो गया कि उससे वे अपनी चेतना खो बैठे। ऐसी स्थिति में वे स्वयं को ही एकायत्तकर्त्ता, सृष्टिकर्त्ता तथा भोक्ता मानने लगे और इस सिद्धान्त के कारण वे शिव एवं विष्णु के प्रति अवज्ञा करने लगे।।२-३।।

कर्त्ता अहञ्च भोक्ता च नान्योऽस्तीति सोऽब्रवीत्। ततोऽहसत् सुरेशानो यमवक्त्रेण दारुणम् ॥४॥
ततो ज्वाला समुत्पन्ना तस्मिन् घोरो महाबलः। कृष्णाञ्जननिभाकारो रक्ताभ्रो रक्तलोचनः ॥५॥
चक्रपाणिस्त्रिशूली च तर्जमानः पितामहम्। भयं जग्मुः सुरा सर्वे दानवानां सुखावहः ॥६॥
तयोर्युद्धं सहस्रन्तु वर्षाणां ब्रह्मदैत्ययोः। न निर्जितो यदा सोऽरिर्ब्रह्मणा सत्त्वरूपिणा ॥७॥

इससे उनके शरीर के बाँयें भाग से अत्यन्त भीषण वह्निशिखा निकली, उससे एक महाभयंकर असुर सृष्ट हो गया। वह असुर उत्पन्न होते ही क्रोध में अपने नयनद्वय रक्तवर्ण करके हाथों में त्रिशूल-चक्र धारण करके ब्रह्मा के ऊपर गर्जने लगा। उसे देखकर देवगण भीत हो गये; लेकिन दैत्यगण आनन्दित होने लगे। उस दैत्य के साथ ब्रह्मा ने १००० वर्ष-पर्यन्त युद्ध किया तथापि किसी भी प्रकार सत्त्वरूप ब्रह्मा उसे पराजित नहीं कर सके।।४-७।।

तदा नारायणो जग्मुर्यत्र देव उमापतिः। खट्वा विनाशहेत्वर्थं सृजमानो महाबलाम् ॥८॥
देवीं त्रिशूलिनीं भद्रां महारौद्रीं कपालिनीम्। पिङ्गाक्षीं भाविनीं जम्भां सुजम्भां विकृताननाम् ॥९॥
स्वागतं ते तदा दृष्ट्वा भक्तं देवं जनार्दनम्। शिवस्य मतिमाविश्य गान्धर्वं गीतमुद्यतः ॥१०॥

यह देखकर नारायण देवदेव उमापति के पास गये, जिन्होंने खट्वासुर के विनाशार्थ महाबली देवी त्रिशूलिनी, भद्रा, महारौद्री, कपालिनी, पिंगाक्षी, भाविनी, जम्भा, विकृतमुखी, सुजम्भा की सृष्टि की। भगवान् महादेव ने अपने भक्त जनार्दन को वहाँ आया देखकर उनसे स्वागत-प्रश्न आदि करके भगवान् विष्णु ने उनके अन्तर का भाव जानकर गान्धर्व विधानानुसार उनका स्तव करना प्रारम्भ किया।।८-१०।।

विष्णुरुवाच

ओंकारमूर्त्तिसंस्थं तु मात्रात्रयविभूषितम् । कालातीतं वरदं वरेण्यं गोपेन्द्रकसंस्तुतं वन्दे ॥११॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे वरदायक देव! आप ओंकार मूर्त्ति में मात्रात्रयभूषित होकर सदा स्थित रहते हैं। हे सर्वश्रेष्ठ! हे कालातीत! हे गोपेन्द्रकसंस्तुत! आपकी वन्दना करता हूँ।।११।।

वां दुं स्वारं स्वारं जगति परन्तं वारं वारं वलितं स्वारम् ।
ओंकारमयं ऋक्साममयं मन्त्रार्थतत्त्वसुविदितपरमम् ॥१२॥
सुश्रमे वचनं सुसोमपुञ्जं यज्ञपरिपठितं हविहव्यं होमम् ।
कुश-चरु-मंजुलयजमानमयं यज्ञाधिपतिं नमामि परमं शिवम् ॥१३॥

हे ओंकारमय, हे ऋक् सामरूपी! आप ही वेदमन्त्रों के सम्यक् अर्थ को जानते हैं। आप ही यज्ञपठित मन्त्ररूप हैं। आप ही यज्ञ में हवि-हव्य-होम-कुश-चरुप्रभृति मांगलिक द्रव्यरूपेण स्थित रहते हैं। हे शिव! आप ही यजमान तथा यज्ञपति हैं। आप परमशिव को प्रणाम है।।१२-१३।।

सौम्यं च कान्तं शशिकुन्दधवलं पश्चिमवदनं सितवृषगमनम् ।
सिततनुरुद्रां त्रिशूलजटिलां त्रिनयनसौम्यां वरुणेन नुताम् ॥१४॥
त्रिभुवनव्यापीं त्रैलोक्यनमितं क्षितिजलपवनहुताशननिलयम् ।
अनेकरूपमनेकवाचं पिनाकपाणिं शिवं नमामि ॥१५॥

हे सौम्यमूर्त्ति! आपके पश्चिम की ओर शशि स्थित है, जो कुन्द के समान धवल है। आप शुभ्रवर्णा त्रिशूलधारिणी त्रिनयना सौम्यमूर्त्ति रुद्राणी के साथ श्वेत वृष पर बैठकर गमन करते हैं। हे देव! आप क्षिति-जल-वायु तथा तेजोरूप से त्रिभुवन में व्याप्त हैं; अत: सभी त्रिलोकवासी आपको प्रणाम करते हैं। हे पिनाकपाणि शिव! आपने अनेक बार अनेक रूप धारण किया है। आपको नमस्कार है।।१४-१५।।

सौम्यमुखमुत्तराश्रयं संस्थितवदनं शुभ्रकटाक्षं गौरमुखं दर्पणवलयविभूषितबाहुम् ।
पीतार्चिवपुषं मुकुटमणिकुण्डलाञ्चितकायं विविधकुसुमोपचर्चितमुकुटसुचरितवरदे रुद्रा पातु सदा ॥१६॥

हे प्रभो! आपकी पीताभ देह में उत्तर की ओर स्थित शुभ्र कटाक्षयुत भौं है। सौम्य मुखमण्डल समधिक शुभ्र है। हस्तद्वय दर्पण तथा स्वर्णवलय से विभूषित हैं। आपकी गोद में स्थित विचित्र पुष्पों से भूषित मुकुट तथा मणिमय कुण्डल से शोभित वरदायिनी रुद्रा देवी भी सदैव हमारी रक्षा करें।।१६।।

ऋग्यजुःसामवेदं सौम्यमुखं पूर्ववदनम् । हुतकनकसदृशं शशिरविबिम्बनिभम् ॥१७॥
रक्तकाया रक्तोष्ठी या विकटमुकुटा रक्ताक्तनयना या रक्ताम्बरधारिणी रुद्रा ।
त्रिशूलपरशुगदां मुद्गर-भुसुण्डि-असिचक्रधरं प्रणतोऽस्मि सर्वदा ॥१८॥
रथगमना प्राग्दिशव्यापी अनेकरूपा कुण्डलकनकविभूषितकाया प्रमथवृन्दपरिसंस्तुता ।
रूपधारिणः सर्वे जगताय हिताय भूतसंघपरिवारिता सिद्धयक्षपरिवन्दिता ॥१९॥

रुद्रं नित्यं त्रिदिवं पातु कृष्णमुखं पिंगलकेशं दंष्ट्राविषमम्।
अघोरचक्रं भृकुटीतटं भीषणनादं जिह्वाकरालं ज्वलितमुखम् ॥२०॥
रुद्रा भीमा उग्ररूपा घनतिमिरनिभा ज्वलितनयना उद्यतत्रिशूला।
विकृतारावा विकृतगमना प्रणतोऽस्मि सर्वदा ॥२१॥

इति श्रीदेवीपुराणे द्वितीयः पादः

(ऋक् मन्त्र के उपरान्त कहते हैं) जो पूर्वाभिमुख हैं, प्रशान्त मुख हैं, त्रिशूल-परशु-मुद्रा-मुद्गर-भुसुण्डि-तलवार-चक्र धारण करके स्थित हैं तथा अग्निशुद्ध (अग्नि में तप्त) स्वर्ण के समान तथा सूर्य प्रतिबिम्बवत् जिनका वर्ण है, उन देव को प्रणाम है। जो रक्तवर्णा, रक्तनेत्रा, रक्त ओठों वाली, रक्तवसना हैं तथा उज्ज्वल मुकुटधारिणी हैं, उन देवी को प्रणाम है। जो कटक-कुण्डल आदि आभूषण से भूषिता होकर रथ पर स्थिता हैं, सिद्धगणवन्दिता तथा भूतगण से घिरी हैं, जो त्रिजगत् के हितार्थ पूर्वदिक् में नानारूपेण स्थित हैं, उन भगवती को प्रणाम है। त्रिदिव, कृष्णमुख, पिङ्गलकेश, विषम दंष्ट्रायुक्त, अघोरमुख, भृकुटीतट, भीमनाद, कराल जिह्वायुक्त तथा ज्वलित हो रहे मुख वाले इन रुद्रगणों को मैं प्रणाम करता हूँ। रुद्रा, भीमा, उग्ररूपा, घनतिमिरमुखी, ज्वलितनयना, उद्यत त्रिशूला, विकृत स्वर वाली, विकृत गमन करने वाली इन रुद्ररूपाओं को भी सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।१७-२१।।

श्री देवीपुराण का द्वितीय पाद समाप्त

●

ॐ जगति ये ॐ वलितक आद्यम्। आद्यं देवमनुपमं पातु शिवम्।
परमादिभवं पातु आप्रणतोऽस्मि शिवम् ॥२२॥
शिरां ॐ जगति यवनितकदिशि निशिशिङ्गं महाकपालम्।
प्रणत मनोगतं निरुपमं सिद्धिदं भास्वररूपम् ॥२३॥
ऋजुं तु महागजेन्द्रत्रिगतिस्त्रिभुवनसिद्धिप्रवरम्।
त्रिशूलभास्वरकरं संघातैस्त्रैलोक्यविदितनिजमहिमानम् ॥२४॥
यं दुं रां ॐ रक्ष पिशाच दानवसंघैः प्रणमितशासनमतिक्रान्तम्।
जलनिधिनादं महाबलभीषणं परमेष्ठिभावम् ॥२५॥
ज्ञं एं दुं ॐ हारीतकृताहिभोगं मणिकिरणत्रिशूलविच्छुरितम्।
हृदयवरकण्ठं सितभस्मदेह ब्रह्मादिदेव परिपठितगुणम् ॥२६॥
रां ज्ञं दुं ॐ दिव्यविलेपनभूषितशरीरं दिव्यकुसुमवासितसितमुकुटम्।
दिव्यनिषेवितनिजचित्रवेषं निजदिव्याभरणम् ॥२७॥
दिग्वेषं शशिकान्तिधरं हरं विविधरूपपरिगतम्।
वाञ्छितवर रथ जगति सर्वत्र सुरवरं निरतिशयं विविधगुणशतनिलयम् ॥२८॥

ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं, ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओं ओम्। देवाधिदेव वेदाङ्गपठितसूर्यशशिमार्गवन्दिततेजम् ॥२९॥

जगत् के आदिभूत अनुपम परमदेव शिव को प्रणाम करता हूँ। जो महाकपालधारी सब ओर भास्वररूप से अवस्थान करके भक्त भी कामना पूरी करते हैं तथा जो महागजेन्द्रगामी त्रिलोक में एकमात्र सिद्धिदाता हैं, जगद्वासी (जगत् में वास

करने वाले) जिनकी महिमा से अवगत हैं, दानवगण एवं पिशाचगण भी प्रणाम के साथ जिनके आदेश का पालन करते हैं, जिन्होंने हाथ में त्रिशूल धारण करके भास्वरता धारण किया है, उनको प्रणाम है।

समुद्र के समान गम्भीर स्वर में तथा भीषण भाव में जिनका ईश्वरभाव लक्षित होता है, जिनका वक्ष एवं कण्ठ हरित वर्ण सर्पशिरोमणि की कान्ति से सुन्दर हो रहा है, जिनका सर्वांग भस्म तथा दिव्य चन्दनादि से लिप्त है, ब्रह्मादि देवता वेदवाक्य से जिनके गुणों का वर्णन करते रहते हैं, जो विचित्र कुसुमों से सुगन्धित-भूषित हैं, जो दिव्य मुकुट, अन्य दिव्य वेष धारण करने वाले हैं, जो दिव्य आभूषणों को पहने हैं, जो अशेष गुणों के एकमात्र आश्रय हैं, उन बहुरूपधारी शशिशेखर हर को हम प्रणाम करते हैं। आप इच्छित वर देने वाले हैं।

हे देवाधिदेव! पुराणों का कथन है कि सूर्य तथा चन्द्र का आकाशमार्ग आपके तेज से ही प्रकाशित होता है। तदनन्तर मूल में २१ बार ॐ का उच्चारण है। आपका तेज सूर्य-शशिमार्ग का वन्दित तेज है।।२२-२९।।

रां मं एं ॐ नाट्येऽभिरतं जगतं सुखदमहाबलशक्तिसुरसैन्यबलम्।
भीषणनायकसर्वमहाबल उद्दामम् ॥३०॥
रां ज्ञं दुं ॐ एकाक्षराक्षपरमजितं मन्त्रसर्वकृतास्तु।
ज्ञानप्रभावं नानाकारं त्रिपथासुजटं क्रीडाभिरचितम् ॥३१॥

आप नाट्य कर्म में निपुण हैं। आप जगत् के एकमात्र सुखदाता तथा देवसैन्य के अलौकिक बल-शक्तियुक्त महान् बली भयंकर नायक हैं। अन्य सभी शक्तिमान आपके ही बल से बली होते हैं। आपका एकाक्षर परम मन्त्र ही सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। आप ज्ञानप्रभाव से नाना आकार धारण करके क्रीड़ा करते रहते हैं।।३०-३१।।

रां ज्ञं एं ॐ दंष्ट्राकरालं भीमातिवदनम्।
घोरां गुहासकम्पितभुवनं चन्द्रार्धधरम् ॥३२॥
इच्छाविराजितरूपमचिन्त्यं तिथिगुहनक्षत्रं दुष्टविनायकविघ्नितसिद्धिदम्।
सर्वजनिनिवहवाञ्छितसिद्धिदं सौभाग्यकान्तिबलपुष्टिकरं बाहुबलकरम् ॥३३॥

आपका मुखमण्डल कराल दाँतों के कारण अत्यन्त भीषण दृष्टिगोचर हो रहा है। हे अर्द्धचन्द्रधारी! आपके अट्टहास से तीनों भुवन कम्पित हो रहा है। आप भक्तों को सौभाग्य-कान्तिबल तथा पुष्टि प्रदान करते हैं, बाहुबल देते हैं। आपका इच्छा से विराजित रूप अचिन्त्य है। आप तिथि-गुह-नक्षत्र-दुष्ट विघ्नों से रहित सिद्धि प्रदान करते हैं।।३२-३३।।

अजगजवरभुजं पितृवननिलयं किम्पुरुषगीतं शोभितभुवनम्।
सूक्ष्मासूक्ष्मवरमुखनयनं सुरयुवति चारुचामरधृतम् ॥३४॥
रां ज्ञं एं जगति यवनितक दिशिनिशि मन्त्रम्।
आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ
आ आ आ आ आ आ दिव्यशरीरं सर्वसुवेशम् ॥३५॥
आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ आ।
अनुपममशिरसं वरदं नमामि सिद्धिकरम् ॥३६॥

इति गोपेन्द्रकविष्णुगीतं समाप्तम्

हे अज! आपके बाहु हाथी के सूड़ के समान शोभित हैं। आपका निवास श्मशान है। आप जगत् को शोभित करते हैं, इसी कारण किम्पुरुषगण आपकी स्तुति गाते रहते हैं। आपके सुन्दर मुख पर मनोज्ञ नयनद्वय उसकी शोभावृद्धि कर रहे हैं।

आप समस्त देवगण के प्रभु हैं। देवगण मनोज्ञ चामर से आपको हवा कर रहे हैं। आपका मस्तक अत्यन्त सुन्दर है। भक्तगण आप से अभीप्सित वर तथा सिद्धि की प्राप्ति करते हैं। हे महादेव! आपको प्रणाम है।।३४-३६।।

गोपेन्द्रक विष्णुगीत समाप्त

●

मनुरुवाच

एवं गान्धर्वविधिना गायते मधुसूदन। तुतोश शंकरस्तस्य कामं कामानुबद्धमान् ॥३७॥
वरं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ विष्णो तुष्टस्तवानघ। कान्तोऽसि मम भक्तोऽसि किं करोमि वदस्व नः ॥३८॥

मनु कहते हैं—मधुसूदन द्वारा गान्धर्व शास्त्र के अनुसार स्तवन करने से वरदाता शंकर उन पर अत्यधिक प्रसन्न होकर कहने लगे—हे सुरश्रेष्ठ विष्णु! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। क्या करना है, वह कहो!।।३७-३८।।

विष्णुरुवाच

योऽसावुत्पादितो देव ब्रह्मणः सृजतः प्रजा। तं घातय महादेव सर्वदेवारिकण्टकम् ॥३९॥

विष्णु कहते हैं—हे महादेव! प्रजापति ने सृष्टि काल में जिन असुरों की सृष्टि की थी, सभी देवताओं के लिये कण्टकरूप उन असुरों का विनाश करो।।३९।।

देवदेव उवाच

मम क्रोधात्समुत्पन्नः परार्धं या च केशव। न विनाशो भवेत्तस्य किन्तु शैलोत्तमे स्थितः ॥४०॥
भावनीया सुता गावो याः शशांकपरिश्रवाः। तास्तेषां प्रीणनं वत्स निधास्यन्ति युगे युगे ॥४१॥
तेन तृप्ता न बाध्यन्ते ब्रह्मजा ब्रह्मणस्तथा। या च देवी महाभागा तव भूधरपृष्ठतः ॥४२॥
लक्ष्मी सहायेनागत्य मम तेजःसमुद्भवः। उत्पत्तिविघ्ननाशाय विघ्नेशं सा विधास्यति ॥४३॥

देवदेव कहते हैं—हे केशव! ये मेरे क्रोध से उत्पन्न हैं। इनका विनाश नहीं है। अन्य वर माँगो। वे पर्वत पर रहेंगे तथा गौ का दुग्ध एवं चन्द्रकिरण उनके लिये युग-युग-पर्यन्त शान्तिदायक होगा। यह पान करके वे तृप्त हो जायेंगे। तब अन्य प्रजा को कष्ट नहीं देंगे। तुम महाभागा लक्ष्मी देवी के साथ पर्वत पर जाओ। वहाँ वे देवी सृष्टि के लिये विघ्नरूप विघ्नासुर के विनाशार्थ विघ्नेश्वर (गणेश) की सृष्टि करेंगी।।४०-४३।।

तदा लब्धवरो विष्णुर्भूयः पृच्छति शंकरम्। कियन्तं पर्वते देव मया कालं सुरोत्तम।
स्थातव्यं किञ्च सा देव्या तत्त्वरूपा भविष्यति ॥४४॥

भगवान् विष्णु ने यह वर प्राप्त करके पुनः महादेव से पूछा—हे देव! मैं कब तक पर्वत पर वास करूँगा तथा उन देवी से किस प्रकार से समागम होगा?।।४४।।

देव उवाच

मालवे पर्वते विष्णो त्वया लक्ष्मीयुतेन च। देव्यां शैवीं मने कृत्वा नाम्ना वै सर्वमङ्गलाम् ॥४५॥
स्थातव्यमेकरात्रन्तु मदीयं सुरसत्तम। तदा आगत्य देवी सा सर्वकारणकारणा ॥४६॥
हसमानस्य ते वत्स विधास्यति मया समम्। गजवक्त्रं नरकायं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥४७॥
सर्वदेवमयं देवं भविष्यति सुरोत्तमम्। नायकं सर्वदेवानामनायकं स्वयम्भुवम् ॥४८॥

मातृमण्डलमध्यस्थं मम तुम्बरुरूपिणे। इन्द्रानुवर्त्तिनं पुत्रं तव धन्यं भविष्यति ॥४९॥
त्वयापि तदा द्रष्टव्या स्तोतव्यं विविधैः स्तवैः। नियामकञ्च विघ्नस्य गृह्णेदं गदमायुधम् ॥५०॥
तं दृष्ट्वा विघ्नदैत्यं तु समं यास्यति भूधरम्। गजाननोऽपि मालव्ये विघ्नं हत्वा व्रजिस्यसि ॥५१॥
जम्भासुरविनाशाय हत्त्वा दैत्यं सुलोमकम्। पुनः पादातिकं वत्स आगमिष्यति विघ्नजे ॥५२॥
तत्राग्रजेन स्थातव्यं विघ्नेशस्य जनार्दनः। सुलोमं जम्भमायोत्था ये विघ्नेशशरीरजाः ॥५३॥
ते भूयोऽपि विवर्धन्ते यावन्नागमनं प्रति ॥५४॥

भगवान् महादेव कहते हैं—हे विष्णो! तुम सर्वमंगला शिवादेवी का मन ही मन चिन्तन करते हुये मालव्य पर्वत पर जाओ। वहाँ मात्र एक रात्रि अवस्थित रहते ही जगत् की मूल कारणरूपा देवी तुम्हारे पास आयेंगी। हे वत्स! वे तुमसे तथा लक्ष्मी से वहाँ पर मिलेंगी। उनसे सर्वदेवमय, सर्वविघ्नविनाशक, नरशरीरधारी, सर्वदेवगणनायक, स्वयम्भु देव गजानन की उत्पत्ति होगी। यद्यपि वे मातृमण्डल के मध्यस्थित-मध्यवर्त्ती होकर पुत्ररूप से आयेंगे, तथापि वे तुम्हारे द्वारा पूजा के पात्र होंगे। उनकी कृपा का अवलोकन करके तुम उनका स्तवन नाना प्रकार से करना। साथ ही यह विघ्नविनाशन गदा तथा आयुध ग्रहण करो, जिसे देखते ही विघ्न के बल का ह्रास होगा। गजानन मालव्य पर्वत पर विघ्नासुर का विनाश करके वहाँ से जंभासुर के विनाशर्थ चले जायेंगे। वहाँ मायाकल्पित सुलोमासुर आयेगा। हे केशव! विघ्नेश्वर के सामने सुलोमा भी अधिक समय तक खड़ा नहीं रह पायेगा। हे वत्स! उसका नाश करके वे पुनः यहीं आ जायेंगे तथा जम्भासुर का विनाश करेंगे।।४५-५४।।

मनुरुवाच

एवं दत्त्वा वरं देवः केशवस्य यथेप्सितम्। तां विद्यामंकगां कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥५५॥
एतत् विनायकोत्पत्तिर्विघ्नसम्भवहानिजा। स्तवं देव्यावतारञ्च विष्णुगीतञ्च रूपकम् ॥५६॥
कथितं मुनिशार्दूल सर्वपापप्रणाशनम्। यस्तु भक्त्या समुत्थाय प्रातः कीर्त्तयते नरः ॥५७॥
न तस्य भवते विघ्नं धर्मकामार्थशान्तिषु। यः स्तवं विघ्ननाशस्य पठिष्यति अनुत्तमम् ॥५८॥
विघ्नरोगविनिर्मुक्ता दिव्यान् कामांल्लभिष्यति। गोपेन्द्रकं च यो देवमृषिसिद्धनरोऽवलाः ॥५९॥
पठते लक्षणोपेतं कण्ठतालैस्तु गायति। न तस्य पुनर्बन्धस्तु भवते धर्मजा तनुः ॥६०॥
मोदते शिवलोके तु यत्र देवः सहोमया। संवत्सरकृतं पापं सकृच्छ्रुत्वा व्यपोहति ॥६१॥

भगवान् मनु कहते हैं—हे मुनिवर! महादेव ने केशव को यह अभीष्ट वर प्रदान किया तथा भगवती विद्या (उमा) को गोद में लिये वहाँ से अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार से विनायक की उत्पत्ति, विघ्नासुर के विनाश का उपाय, विष्णुकृत स्तव, देवी की अवतार कथा आदि सबका वर्णन किया। जो मानव प्रातः उठकर भक्ति के साथ इसे पढ़ता है, उसे धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्ग साधन में शान्ति मिलती है। उसे कोई विघ्न नहीं होता। जो व्यक्ति केवल विघ्नासुर के निधनार्थ जो उपाय कहा गया, उसका पाठ करता है, वह सभी विघ्नों को पार करके देवीलोक प्राप्त करता है। हे मुनिशार्दूल! वह रोगों का भी नाश करके दिव्य कामनाओं के फल की प्राप्ति करता है। जो केवल इस विष्णुगीत ईश्वरस्तव का पाठ करता है तथा लययोग से (लाय-तालयुक्त) गायन करता है, वह ऋषि, सिद्ध, मानव संसारजाल से मुक्त होकर धर्ममय देह धारण करके उस शिवलोक में परम आनन्द के साथ निवास करता है, जहाँ देवी के साथ भगवान् शिव स्थित हैं। इसे मात्र एक बार सुनने से एक वर्ष के सञ्चित सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।।५५-६१।।

त्रिश्रुत्वा द्विजहत्यादि अकामस्य व्रतस्य च। शमते नात्र सन्देहः सततं श्रवणाच्छिवः ॥६२॥
एवं पूर्वं महाबाहो पृच्छतोर्ब्रह्मदक्षयोः। कथितं विष्णुना आसीत्तथा च ऋषिपुंगवः ॥६३॥

मन्वादिभिः श्रुतं तेभ्यो मया वशिष्ठकाश्यपात्। प्राप्तं हे नृपशार्दूल तथा ते कथितं मया ॥६४॥

आद्ये खट्वावधे विष्णोर्वरलब्धिः

तीन बार श्रवण करने से ब्रह्महत्यादि घोर पाप शान्त हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे महाबाहो! पूर्वकाल में विष्णु ने इसे ब्रह्मा एवं दक्ष से कहा था। उन्होंने इसे ऋषिगण से व्यक्त किया। मनु आदि महात्मागण ने उनसे ही सुना था। हे मुनिवर वशिष्ठ! मैंने महर्षि कश्यप से जैसे सुना था, वह ऋषिगण से कहा।।६२-६४।।

वशिष्ठ उवाच

कथं खट्वासुरो ब्रह्मस्तपस्तप्यात् सुदारुणम्। येन ब्रह्मादयो देवा वशं कृत्वा स्वशासने ॥६५॥
एतद्वैदितुमिच्छामि महाकौतूहलं मम। कथ्यतामृषिमुख्यानां पृच्छतां संशयापहम् ॥६६॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे महाभाग! खट्वासुर ने किस प्रकार की तपस्या की थी, जिससे वह ब्रह्मादि देवताओं को भी अपने अधीन कर सका। यह जानने की इच्छा है। इस सम्बन्ध में मुझे अत्यन्त कुतूहल है। आप इसकी यथार्थता कहकर प्रश्नकर्त्ता ऋषिगण का संशय दूर करिये।।६५-६६।।

मनुरुवाच

या देवी सा पुरा विष्णोर्वरं दत्त्वा दिवं प्रति। इन्द्राय कृतवान् सख्यं सा शिवेन महात्मना ॥६७॥
ब्रह्मणः सृष्टिकामस्य प्रेषिता स्थितिकारिणी। तां दृष्ट्वा मोहसम्पन्नाः सर्वे दनुनरोत्तमाः।
तपश्च तपते खट्वा देव्याराधनकाम्यया ॥६८॥

मनु कहते हैं—पूर्वकाल में देवी ने विष्णु को वर प्रदान करके स्वर्ग में जाकर इन्द्र से मित्रता की थी। महादेव ने सृष्टि-काम प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रची संसारसृष्टि के रक्षार्थ उनको वहाँ भेजा था। उनको देखकर समस्त दानवगण मुग्ध हो गये। केवल खट्वासुर ही देवताओं को कष्ट देने हेतु वहाँ देवी की आराधना में तपस्यारत रह गया।।६७-६८।।

वशिष्ठ उवाच

यदि खट्वासुरो ब्रह्मा विष्ण्वादि विघ्नते सदा। कथं देव्यास्तु तोषाय तपस्तप्याद् द्विजोत्तमः ॥६९॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे देव! यदि खट्वासुर विष्णु आदि देवताओं को विघ्न कर रहा था, तब उसने देवी की सहायता लेने हेतु क्यों तप किया?।।६९।।

मनुरुवाच

सर्वेषामेव देवानां दानवानामनुत्तमा। देवी वन्द्या च पूज्या च सर्वकामार्थमोक्षदा ॥७०॥
विधिना पूजिता विप्र अचिराद् ददते शिवा।

मनु कहते हैं—द्विजवर! शिवादेवी सभी देवता तथा दानवों में श्रेष्ठ हैं। वे सभी की पूजनीय तथा वन्दनीय हैं। वे सर्वकामदायिनी तथा मोक्षदा भी हैं। विधिवत् पूजन करने से वे शीघ्र फल देती हैं।।७०।।

वशिष्ठ उवाच

तेन खट्वासुरो ब्रह्मन् जपते सततं शिवाम् ॥७१॥
तपस्तप्तस्य देवर्षे दनुनाथस्य शम्भुना। किं वा कृतं विघ्नं तस्य माण्डव्यो रक्षते कथम् ॥७२॥
कथं वा देवदेवस्य तुतुष्टा सहसा शिवा। तदहं श्रोतुमिच्छामि यथावन्मम कथ्यताम् ॥७३॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे ब्रह्मन्! यह जानकर खट्वासुर उन शिवादेवी का सदैव जप करने लगा। हे देवर्षे! दानवराज की तपस्या देखकर महादेव ने कैसा विघ्न किया तथा माण्डव्य की रक्षा किस प्रकार से की। किस प्रकार से शिवादेवी महादेव से सहसा प्रसन्न हो गयीं? यह सुनने की इच्छा हो रही है। आप कृपया यथार्थ वर्णन करिये।।७१-७३।।

मनुरुवाच

अतीव तपसा तस्य असुरस्य महात्मनः। सर्वे देवा भयं जग्मुः दृष्ट्वा दीप्ततरां श्रियम् ॥७४॥
ततो ब्रह्मादयो देवाः सर्वे विष्णुपुरोगमाः। शिवाय भावमास्थाय देव्याराधनकाम्यया ॥७५॥
बृहस्पतिर्महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः। उवाच मधुरां वाणीं प्रश्रयानुगतां शिवम् ॥७६॥

मनु कहते हैं—उस महात्मा असुर की अत्यन्त उग्र तपस्या देखकर तथा उसकी तेजस्वी स्थिति देखकर सभी देवगण भयग्रस्त हो गये। ब्रह्मादि देवताओं ने विष्णु को आगे करके पहले देवी की आराधना-हेतु महादेव का स्मरण किया। उनकी (देवगण) ओर से महाप्राज्ञ सर्वशास्त्र विशारद बृहस्पति ने अत्यन्त मधुर वाणी से तथा विनीत होकर महादेव से इस प्रकार कहा।।७४-७६।।

बृहस्पतिरुवाच

भगवन् देवदेवेश सर्वदेवनमस्कृत। त्रायतां सुरराजेन्द्रं निमग्नं रिपुसंकटे ॥७७॥
यथा खट्वासुरं देव हत्वा सुरवरारिणम्। दिवमिन्द्रस्य सुखदं भवते तद्विधीयताम् ॥७८॥

हे भगवन्! सभी देवताओं द्वारा प्रणम्य! सभी देवता आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। आप शत्रुसंकट में डूब रहे की रक्षा करिये, जिससे देवताओं का शत्रु निहत हो जाय तथा इन्द्र का स्वर्गराज्य कण्टकरहित हो जाय। ऐसी कृपा करिये।।७७-७८।।

एवं तस्य वचः श्रुत्वा ग्रहराजस्य हे नृप। भैषीर्वदते देवो देव्यास्तोत्रं नृसंज्ञितम् ॥७९॥

ग्रहराज बृहस्पति का यह वचन सुनकर देवदेव शिव ने कहा—तुमलोग भयभीत न हो। तुमलोग शंकारहित होकर देवी-स्तोत्र का पाठ करो।।७९।।

वशिष्ठ उवाच

कथं खट्वादयो युद्धे दनुजा बलदर्पिताः। बहुमाया महावीर्याः शंकरेण निपातिताः ॥८०॥
कथं वा हरिश्चन्द्रस्य अपमृत्यावुपस्थिते। माण्डव्यः समयाघोरं राष्ट्रभंग उपस्थितः ॥८१॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे महाभाग! खट्वा प्रभृति महाबली मायावी बलदर्पित असुरगण का संहार शंकर ने कैसे किया तथा हरिश्चन्द्र की अपमृत्यु उपस्थित होने पर राज्य की भीषण भग्नस्थिति देखकर माण्डव्य ऋषि ने क्या किया? कृपया कहिये।।८०-८१।।

बृहस्पतिरुवाच

महाभये तदा घोरे अमरेन्द्रक्षयङ्करे। माण्डव्यो ऋषिशार्दूल शंकरायतनं गतः ॥८२॥
सोमेशं नामतीर्थन्तु सरस्वत्यास्तटे शुभम्। अम्बिका तत्र रुद्राणी चामुण्डा ब्राह्मी वैष्णवी ॥८३॥
मातरं पञ्चकं तत्र सान्निध्यं ब्रह्मपूजितम्। पूजयामास देवर्षिर्दिनान्ते तां स्वभावितः ॥८४॥

महर्षि बृहस्पति कहते हैं—उस महाभयंकर समय में मुनिश्रेष्ठ माण्डव्य भावी अमंगल को जानकर पृथिवी पर आये और सरस्वती नदी के तट पर सोमेश नामक तीर्थ पहुँच गये, जहाँ शंकर का मन्दिर था। वहाँ अम्बिका-रुद्राणी-चामुण्डा-ब्राह्मी-

वैष्णवीरूप मातृपंचक ब्रह्मा द्वारा पूजित होकर अपने-अपने रूप में अवस्थित थी। माण्डव्य ऋषि उनकी नित्य यथाविधान अर्चना करने लगे।।८२-८४।।

ततस्तुष्टा महाभागा स्वां शक्तिं सन्निवेशिरे। वरं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ यत्ते हृदि व्यवस्थितम् ॥८५॥

इससे मातृगण ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया और कहा—हे मुनिवर! तुम्हारा क्या अभीष्ट है, उस वर को माँगो।।८५।।

ततः स अवनीं गत्वा शिरसाभिप्रणम्य च। रक्षतां हरिश्चन्द्रस्तु यदि तुष्टा ममाम्बिके ॥८६॥

तब उन मुनिश्रेष्ठ ने भूतल पर लेट कर उनको प्रणाम करके कहा—हे अम्बिके! यदि आप प्रसन्न हैं, तब आप हरिश्चन्द्र की रक्षा करिये।।८६।।

कौमारी उवाच

सम्पूर्णं मण्डलं ब्रह्मन् नृत्यमानं शिवात्मकम्। विन्ध्याद्रौ तिष्ठते नित्यं तस्मिन् रक्षा नृपे तव ॥८७॥
अपमृत्यु पुरा दक्षे यज्ञकर्मणि भूमिप। अत्यद्भुतं बलञ्चासीत्तदा रुद्रस्य विष्णुना ॥८८॥
राष्ट्रभङ्गे समुत्पन्ने अवृष्टौ द्वादशाब्दिकम्। मातृचक्रं महाभागे विष्णुना सन्निवेशितम् ॥८९॥
तां पूजय मुनिश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रसुखप्रदम्। दिनादौ मध्यसन्ध्यासु रुद्रादिषु क्षणेषु च ॥९०॥
पूर्वात्तु या च विप्रेन्द्र पूजिता सुखदा शिवा। सुभक्त्या गन्धपुष्पैश्च बिल्वादिशाद्वलैर्दलैः ॥९१॥
दीपधूपोपहारैश्च सुगन्धैः कुसुमादिभिः। पूजिता सा मुनिव्याघ्र भविष्यति ततः शुभा ॥९२॥
मृत्यूपसर्गशमना ग्रहदुःखनिवारका। मांसाद्यैर्बलिदानैश्च पृथिवीं पाति सा शिवा ॥९३॥

भगवती कौमारी कहती हैं—हे मुने! विध्याचल में नित्य स्थित शिवस्वरूप मण्डल-ब्रह्म अवस्थान करते हैं। वहाँ विष्णु द्वारा छिपाया गया मातृमण्डल विद्यमान है। वहाँ से ही तुम्हारे राजा की रक्षा का उपाय होगा। पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति की अपमृत्यु यज्ञकार्य में रुद्र तथा विष्णु का अपमान करने के कारण हो गयी थी। अतः अपमृत्यु-राष्ट्रभंग तथा द्वादश वर्षव्यापी अनावृष्टि की शान्ति उनकी ही अर्चना से होती है। वहाँ जो मातृचक्र विष्णु द्वारा स्थापित है, हे मुनिवर! उसकी पूजा करना हरिश्चन्द्र के लिये श्रेयस्कर होगा। हे विप्र! प्रातः-मध्याह्न तथा रुद्रादि सभी क्षणों में इन शिवापूजन से सुख मिलता है। भक्ति के साथ गन्ध, पुष्प, बिल्व, नवतृण, धूप, दीपादि नाना उपचारों से कृत पूजा से अत्यन्त कल्याणप्राप्ति होती है तथा यदि इनकी पूजा मांसादि एवं बलि से की जाय, तब भगवती मृत्यु के नाना उपसर्गों से तथा ग्रहप्रदत्त दुःखों से जगत् की रक्षा कर देती हैं।।८७-९३।।

एवं सः पञ्चकादेशात् कौमारीमतभावितः। गत्वा विन्ध्याद्रिशिखरे नर्मदातोयगूहिते ॥९४॥
पूजयामास तां देव्यां हरिश्चन्द्राय प्राणदाम्। एकभक्तेन नक्तेन उपवास अयाचितैः ॥९५॥
सप्ताहाद् वरदा देव्या मुनेर्भूता तदा द्विज। वरं च सर्वदर्शित्वं विमलज्योतिदर्शनम्।
द्वासप्ततिसहस्रैस्तु प्राप्तवांस्तपसा तदा ॥९६॥

इति श्रीदेवीपुराणे हरिश्चन्द्ररक्षणं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

माण्डव्य ऋषि कौमारी आदि का मातृगण से आदेश पाकर वहाँ से नर्मदा जल से पवित्र विन्ध्य शिखर पर गये तथा राजा हरिश्चन्द्र के प्राणरक्षार्थ अर्चना करने लगे। वे एक समय—रात्रिकालीन भोजन, एकान्तवास तथा अयाचित भोजन ग्रहण

करके सप्ताह-पर्यन्त पूजारत थे। देवी ने सप्ताहान्त में उनको इच्छित वर प्रदान किया। क्रमशः माण्डव्य वहाँ बहत्तर हजार वर्ष तपस्या करके देवी की कृपा से सर्वदर्शित्व प्राप्त करके ब्रह्मस्वरूप विमल ज्योति-दर्शन में समर्थ हो गये।।९४-९६।।

षोड़शाधिक शततम अध्याय समाप्त

●

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

अन्येऽपि ये द्विजश्रेष्ठ द्विजराज्यो विशोबलाः। श्रद्धावान् भक्तिमाश्रित्य पूजयिष्यन्ति मातरः ॥१॥
न तेषां विप्र राष्ट्रेषु भयं किञ्चिद् भविष्यति। गावश्च भूरिपर्यन्तो द्विजाः यज्ञसमाकुलाः ॥२॥
निवृत्तवैरा भूपालाः भविष्यन्ति न संशयः। सुभिक्षं क्षेममारोग्यं पर्जन्यः कामवृष्टिदः ॥३॥
भवते सस्यनिष्पत्तिः मातरा पूजनात्सदा। चिरन्तनाश्च या देव्यो गिरिदुर्गेषु संस्थिता ॥४॥
ताः पूजय द्विजश्रेष्ठ नृपराष्ट्रविवृद्धिदाः। अनाथा मलिना दीना बलिमाल्यविवर्जिताः ॥५॥
सकृत्संपूजिता विप्र सर्वकामफलप्रदाः। एकाहमपि भक्त्या च कन्यासंस्थे दिवाकरे ॥६॥
पूजयित्वा शिवाचक्रं दीपान्संबोधयन्ति च। ते लभन्ते शुभान् भोगान् आयुरारोग्यसम्पदः ॥७॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे द्विजवर! अन्य ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्रों में जो भी भक्तियोग से मातृगण की पूजा करता है, उसके राज्य में कोई भय नहीं रह जाता। उसके राज्य में गौ समूह प्रचुर दुग्धवती होती हैं। ब्राह्मणगण यज्ञकार्य में व्यस्त रहते हैं। राजागण वैरी नहीं रहते, इसमें सन्देह नहीं है। उसका राज्य दुर्भिक्षरहित, आरोग्य तथा सर्वमंगलयुक्त हो जाता है। पर्जन्य प्रजा को इच्छित वर्षा प्रदान करता है तथा चिरन्तन गिरिदुर्ग में स्थित मातृगण की पूजा से ही पृथिवी में प्रचुर खेती होती है। अतः द्विजगण को राज्यवृद्धिकारी मातृगण की पूजा करनी चाहिये। ये राजा तथा राज्य की वृद्धि करती हैं।

हे विप्र! अनाथ, मलिन, दीन भी बलि-मालारहित पूजा करके मात्र एक बार पूजन द्वारा ही सभी अभीष्ट प्राप्त कर लेते हैं। जो सूर्य के कन्या राशीस्थ रहते भक्ति के साथ एक दिन भी उनकी पूजा करते हैं, शिवाचक्र (मातृका चक्र) पर दीप प्रदान करते हैं, वे इस लोक में आयु, आरोग्य तथा सम्पत्ति प्राप्त करके विविध भोगों का उपभोग करते हैं।।१-७।।

संध्याकाले तु सम्प्राप्ते पूजयित्वा तु मातरः। ये ददन्ति पुनर्दीपान् सिन्दूरं पललान्वितम् ॥८॥
न तेषां दुरितं किञ्चिद्विद्यते मुनिसत्तम। रुद्रो ब्रह्मा तथा ईशः स्कन्दो विष्णुर्यमो हरिः ॥९॥
परा च विघ्नसहिता स्त्रीरूपाः सप्त संस्थिताः। मातरा पूजनाद्विप्र सर्वदेवाश्च पूजिताः ॥१०॥
त्रिकालं सप्तकालं वा एकपञ्चमथापि वा। पूजयेन्न तु कन्यास्थे क्षणं पूषादि लंघयेत् ॥११॥
नातः परतरं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। यथा जीर्णस्य संस्कारात्तव राजन् शुभं भुवि ॥१२॥

इति श्रीदेवीपुराणे मातृपूजानाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

हे मुनिवर! जो सन्ध्याकाल में मातृगण की अर्चना में घृतदीप प्रदान करते हैं, उनका कोई पाप बाकी नहीं रह जाता। वहाँ विष्णु, रुद्र, परमेश्वर, कार्त्तिकेय, यम, इन्द्र, गणेश सदा स्त्रीरूप में निवास करते हैं। मातृगण की पूजा से सर्वदेवपूजन सम्पन्न हो जाता है। कन्याराशि में सूर्य के रहते तीन बार, छः बार, पाँच बार या एक बार भी पूजा करनी चाहिये। कभी

भी कन्या राशीस्थ सूर्य का त्याग नहीं करना चाहिये। त्रिभुवन में इसके समान फलद कुछ भी नहीं है। जैसे जीर्ण (देवस्थान) के संस्कार से भी वृद्धि होती है, हे महाराज! उसी प्रकार मातृपूजा से तुम्हारा मंगल होगा।।८-१२।।

सप्तदशाधिकशततम अध्याय समाप्त

●

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठ उवाच

मातरो भैरवं दुर्गां शीर्णगेहसमाश्रिताम्। चालयित्वा तु प्रासादं कुर्याद्यस्तु द्विजोत्तमः ॥१॥
पक्वेष्टदारुशैलं वा तत्र पूजाफलं शृणु। ब्रह्मेन्द्ररुद्रविष्णूनां सूर्यस्य च द्विजोत्तम ॥२॥
नोत्तरं शस्यते मार्गं मातृणां न च भैरव। दुर्गायाः सर्वकालं तु चालनं मातरासु च ॥३॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—जीर्ण मन्दिर-स्थित मातृगण, भैरवी तथा दुर्गा को स्थानान्तरित करके जो व्यक्ति पके ईंट, काष्ठ अथवा पत्थर से प्रासाद-निर्माण (जीर्णोद्धार) कराता है, उसका पुण्यफल सुनो। हे द्विजोत्तम! ब्रह्मा-इन्द्र-शिव-विष्णु-सूर्य-मातृगण तथा भैरव आदि की प्रतिमा को (जीर्ण स्थान से) हटाने हेतु उत्तरायण उचित नहीं है; लेकिन मातृका, दुर्गा जी को सभी समय में हटाकर स्थापित किया जा सकता है।।१-३।।

नवभेदाः समाख्याताः एकमेकेन मातरः। तासान्तु मातृकादेवी चामुण्डा रुरुघातिनी ॥४॥
कस्यास्ते चालनं कार्यमघोरास्त्रेण भो द्विज। कालिकावज्रघोराणां दमनी वा न राक्षसाः ॥५॥
चालने विहिता वत्स समयं मातृजं पिबा। शतजप्तेन तोयेन स्नापयित्वा बलिं क्षिपेत् ॥६॥
वस्त्ररक्तविमिश्रान्तमद्यमांसाकृतान्विताम्। दत्त्वा दिक्षु समस्तासु चालयेच्चर्चिकां तथा ॥७॥

इनमें मातृगण के नव (९) भेद प्रसिद्ध हैं। इनमें मातृका रुरुदैत्यनाशिनी चामुण्डा का चालन अघोर मन्त्र तथा तन्त्रमन्त्र से ही करना चाहिये। वज्रघोर आदि की दमनी कालिका का चालन मन्त्र है—'नमः' अथवा मातृका। १०० बार उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा कालिका देवी को स्नान कराकर मद्य-मांस-रक्त तथा अक्षतादि मिलित बलि प्रदान करनी चाहिये। समस्त दिशाओं में इसी प्रकार की बलि देकर चर्चिका देवी का चालन करना चाहिये।।४-७।।

आविष्टो ह्यथवा मन्त्री यदा चालयते शिवाम्। तदा क्षेमं विजानीत राजा पाति वसुन्धराम् ॥८॥
चालिता दक्षिणा नेया चोत्तरस्यां तु स्थापयेत्। पूज्यमाना सदा वत्स यावत् प्रासादनिर्णयम् ॥९॥

(भग्न मन्दिर से) मन्त्रज्ञ व्यक्ति जब शिवाचालन करता है तब मंगल होता है तथा राजा की राज्यरक्षा होती है। देवता का चालन (हटाने) पर दक्षिण से उत्तर की ओर ले जाकर स्थापना करनी चाहिये। हे वत्स! जब तक प्रासाद नियत न हो तब तक इसी प्रकार से पूजा करनी चाहिये।।८-९।।

निष्पन्नेषु मुहूर्त्तेषु प्रतिष्ठाविधिना विशेत्। प्रतिमा वा यदा जीर्णा पीठिका वाथ चालयेत् ॥१०॥
हृदयं होमयित्वा तु तदा संचालनं भवेत्। हेमलांगूलकं कृत्वा शिवं चान्यं विपश्चिता ॥११॥
बालरज्ज्वा निवर्त्तन्तु वृषस्य ककुदैर्द्विज। क्षीरवृक्षसमिधस्तु कृत्वा दारवीं दहेद्विभो ॥१२॥

तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त्त में प्रतिष्ठादि के अनुसार प्रासाद-प्रवेशविधि सम्पन्न करनी चाहिये। यदि प्रतिमा अथवा पीठिका जीर्ण हो गयी हो, तब 'नमः' मन्त्र से होम करने के बाद उसको हटाना चाहिये। सुवर्णमय अथवा अन्य प्रकार का रथ बनाकर

उसके द्वारा ले जाया जाना चाहिये। सन की डोरी से उस जीर्ण मूर्त्ति को वृषभ के कंधे पर बांध कर ले जाना चाहिये। यदि ऐसी मूर्त्ति लकड़ी की बनी हो, तब उसे क्षीरीकाष्ठ की अग्नि से दग्ध करना चाहिये।।१०-१२।।

शैलं महाम्भसि क्षिप्त्वा तदा चान्यं निवेशयेत्। प्रतिष्ठाविधिमाश्रित्य सर्वं कुर्याद् द्विजोत्तम ॥१३॥

हे द्विजोत्तम! यदि भग्न मूर्त्ति अथवा पीठिका पत्थर की हो, तब उसे गहरे जल में छोड़ देना चाहिये। तदनन्तर अन्य मूर्त्ति को उस मन्दिर में स्थापित करना चाहिये।।१३।।

स्वेन स्वेन विधानेन मन्त्रैः साङ्गसमुद्भवैः। स्थापयेद्देवता वत्स मातृणां मातृकी विधिः ॥१४॥

हे द्विजोत्तम! तदनन्तर सभी कार्य जिस देवता की मूर्त्ति है, उसके विधानानुसार करना चाहिये। मन्त्र-सम्बन्धित भी यही नियम है अर्थात् जिसकी मूर्त्ति स्थापना की जा रही हो, उसी देवता का मन्त्रपाठ करना चाहिये। किंबहुना, मातृगण की प्रतिष्ठा हेतु मातृप्रतिष्ठा विधि ही पालनीय है।।१४।।

शीर्णा देव्याया प्रासादा ये पुनः संस्कृता द्विज। अशोच्यास्ते विजानीयाद् धूतपापाः महाधिपः ॥१५॥

हे द्विजगण! जो जीर्ण मन्दिर का पुनः संस्कार (जीर्णोद्धार) करते हैं, जीर्ण हो गयी मूर्त्ति के स्थान पर नवनिर्मित उसी देवता की प्रतिमा की स्थापना करते हैं, वे महामति व्यक्ति निष्पाप तथा अशोचनीय हो जाते हैं।।१५।।

मूलाच्चतुर्गुणं पुण्यमाप्नुयात् जीर्णकारकाः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जीर्णं पाल्यं विपश्चिता ॥१६॥

नयी मूल मूर्त्ति की स्थापना की तुलना में जीर्णोद्धार करने वाले अधिक पुण्य के भागी होते हैं। अतएव विचक्षण व्यक्ति द्वारा जीर्णोद्धार करना सर्वतोभावेन कर्त्तव्य है।।१६।।

शून्यं देवालयं वत्स यस्मिन् देशेऽपि तिष्ठति। भयं तत्र विजानीयाद् दुर्भिक्षं तस्करं पिवा ॥१७॥
जीर्णं देहं यथा देही त्यक्त्वा चान्यं समाश्रयेत्। देवता जीर्णप्रासादं त्यक्त्वान्यत्र तु यान्त्यपि ॥१८॥

जहाँ देवालय मूर्त्तिरहित है, वहाँ दुर्भिक्ष, व्याधि तथा अनेक भय उपस्थित हो जाते हैं। जैसी शरीरधारी वृद्ध जराजर्जित रोगजर्जित शरीर को छोड़कर अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार से जीर्ण मन्दिर से देवगण भी अन्यत्र चले जाते हैं।।१७-१८।।

तस्मिन् शून्ये पिशाचाद्या आश्रिता भयदा नृणाम्। उद्वासयन्ति तत्स्थानं कालं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१९॥
निःशौचास्तेऽभवन् वत्स तत्स्थाः लोका न संशयः। ग्रहापसृष्टविद्विष्टा यान्ति नाशं महानपि ॥२०॥

तदनन्तर उस शून्य देवमन्दिर में पिशाचादि आश्रय लेकर मनुष्य के लिये भयप्रद हो जाते हैं। वे विविध उत्पात के द्वारा उस स्थान को जनजीवन से रहित कर देते हैं। हे वत्स! वहाँ पर स्थित लोगों की अवस्था अतिशय शोचनीय हो जाती है, जो निःसंदिग्ध है। महान् व्यक्ति भी ग्रह से गृहीत हो जाने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है।।१९-२०।।

तस्मात्तं संस्करेद्वत्स पूजार्थं चान्यथा न्यसेत्। देवं देवालयं वापि जीर्णाजीर्णं नियोजयेत् ॥२१॥
यथा सदा भवेत्पूजा तथा कार्यं विपश्चिता। मूलमेवाप्नुयात्पुण्यं द्रव्यांशेन महामुनिः ॥२२॥
कर्त्ता शताधिकं मूलादाप्नुयादविचारणात्। राजा षष्ठांशमाप्नोति प्रजाराष्ट्रं च शुध्यति ॥२३॥

इति श्रीदेवीपुराणे जीर्णदेवताप्रतीकारो नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

हे वत्स! अतएव जीर्ण देवमन्दिर का जीर्णोद्धार अवश्य करना चाहिये। यदि वहाँ पूर्ण संस्कार कार्य न हो सके तब पूजार्थ उन देवता की वहाँ स्थापना की जानी चाहिये। देवता की प्रतिमा अथवा देवालय जीर्ण हो अथवा जीर्ण न हो, वहाँ

पर सतत् देवपूजन होना चाहिये। हे महामुने! जीर्ण देवालय अथवा देवमूर्त्ति में यत् किञ्चित् द्रव्य संस्कारार्थ व्यय करने पर भी मूल स्थापना करने वाला पुण्यलाभ होता है। राजा को इस जीर्णोद्धार करने वाले का १/६ पुण्य मिल जाता है एवं इस प्रकार प्रजा तथा राजा, उभय सुखी हो जाते हैं।।२१-२३।।

अष्टादशधिकशततम अध्याय समाप्त

●

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्र उवाच

महादेवेन भो ब्रह्मन् महाबलपराक्रमः। हत्वा खट्वासुरेन्द्रं तु खट्वाङ्गचरितन्तु किम् ॥१॥

इन्द्र कहते हैं—हे ब्रह्मन्! जिस खट्वासुर का वध महादेव ने किया था, उस खट्वासुर का चरित्र क्या था?।।१।।

ब्रह्मोवाच

ततो ब्रह्मादयो जित्वा दनुनाथेन वासव। कैलाशं पर्वतेन्द्रं तु गतो देवाय शूलिने ॥२॥
योद्धुं सर्वबलोपेतस्तथा रुद्रेन मन्युना। आदाय तरसा शूलं क्रीडमानेन घातितः ॥३॥
विगतासुस्तथा कृत्वा महापशुसमुद्भवम्। धावितं वामसंस्थं तु खट्वांगं देवपूजितम् ॥४॥
कपालं याम्यहस्तेन कपाला शिरसा तथा। चन्द्रार्धं जाह्नवीमालां महाभूषणपन्नगः ॥५॥
हारादिकटिसूत्रञ्च उपवीतं महोरगम्। अनन्तं वासुकिं तक्षां सर्वनागविभूषितम् ॥६॥
कृत्वा रूपं महाघोरं देवदेवं नमस्कृतम्। भैरवं सर्वदेवानां शमनं शत्रुनाशनम् ॥७॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे इन्द्र! दानवराज खट्वासुर देवगण को पराजित करके सर्वशक्ति के साथ शंकर से युद्ध करने हेतु पर्वतराज कैलास पर गया। तब रुद्रदेव ने क्रीड़ाकौतुक के साथ त्रिशूल द्वारा उस पशुसम्भूत असुर का विनाश कर दिया। उस समय भगवान् ने बाँयें हाथ में देवपूजित खट्वाङ्ग तथा दाहिने हाथ में कपाल धारण किया था। मस्तक पर मनुष्य के शिरों की माला धारण की थी। अर्द्धचन्द्र, गंगा, अनेक प्रकार की माला तथा अनन्त-वासुकी-तक्षक प्रभृति नागों को आभूषणरूप से उन्होंने धारण किया था। सापों को उपवीतरूप से, हार, कटिसूत्ररूपेण धारण किया था। इस प्रकार महाघोर, सर्वदेव भैरव ने इस प्रकार से शत्रुनाशक मूर्त्ति को धारण कर लिया था।।२-७।।

ततो ब्रह्मादयो वत्स भीता मोहवशं गता। पृच्छति को भवान् चात्र क्रीडते भूतले शुभम् ॥८॥
न विद्यतेऽपरं किञ्चित् समयो देवमुत्तमम्। ततो विहस्य देवेशं शिरस्ते ब्रह्मा यत्पुरा ॥९॥
क्षान्तं युगकोटि तु नारायणतनूरुहैः। माल्यं नरशिराधेयं धारयामि भवोद्भव ॥१०॥

हे वत्स! इसे देखकर ब्रह्मादि देवता भयभीत होकर मोहग्रस्त हो गये। उन्होंने भगवान् भैरवाकार शिव से पूछा—आप कौन हैं? क्यों आप इस भूतल पर क्रीड़ा कर रहे हैं? हमारे समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। हे देवोत्तम! पहले तो ऐसा कुछ नहीं था तब देवदेव शिव ने हंसकर ब्रह्मा से कहा—हे ब्रह्मन्! पूर्व-पूर्वकाल में तुम्हारे ही शरीर से उत्पन्न तुम्हारे कोटि मुण्ड नारायण के रोमों में उलझ कर मुझ पर विद्यमान हैं। यह मनुष्यमस्तकों की शिरोमाला तुमसे ही उद्भूत है।।८-१०।।

नृपवाहन उवाच

कस्मिन् काले व्रतं देवो धृतवान् भैरवं महत्। कथं विष्णुशिरोमाला कपालं विधृतं प्रभोः।
एतदिच्छामि विज्ञातुं तत्त्वतः कथ्यतां विभो ॥११॥

नृपवाहन कहते हैं—हे प्रभो! शिव ने विष्णुलोम-जटित वह शिरोमाला तथा कपाल कैसे धारण किया? यह जानने की तीव्र इच्छा है। हे विभो! कृपापूर्वक इसे तत्त्वत: कहिये।।११।।

अगस्त्य उवाच

सर्वदेवेश्वरो देवो ब्रह्माविष्णुतनूरुहैः। यथावत् क्रियते वत्स तथा ते कथयाम्यहम्॥१२॥
वृत्तोत्तमं महापुण्यं यत्र ज्ञातं सुरैरपि। सम्भवन्तु कपालस्य खट्वाङ्गस्य च सुव्रत॥१३॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे वत्स! ब्रह्मा तथा विष्णु सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। जैसे उनके अंगों के साथ शिव क्रीड़ा करते हैं, वह उत्तम वार्त्ता महापुण्यकारी है। यह वार्त्ता देवगण को भी ज्ञात नहीं है। हे सुव्रत! कपाल की सम्भावना तथा खट्वाङ्ग की उत्पत्ति कहता हूँ।।१२-१३।।

ईश्वर उवाच

यथानादि परो देवस्तथाहं वरवर्णिनि। संसारोऽपि तदवस्थः परमार्थेन वेदितुम्॥१४॥
तस्य देवाधिदेवस्य कारणस्यामितद्युतेः। इच्छाधिकारणञ्चाहं इच्छा त्वं तस्य भाविनि॥१५॥
माया च जगतः स्रष्टा त्वं च सृष्टिर्वरानने। क्रियाख्या पच्यते येन तेन सृजसि वाङ्मयम्॥१६॥

ईश्वर कहते हैं—हे वरवर्णिनी शिवे! परमब्रह्म जिस प्रकार से अनादि हैं, वैसे मैं भी अनादि हूँ। (इसके आगे का आधा श्लोक प्रामादिक पाठयुक्त है)। हे वरानने! मैं जगत्स्रष्टा हूँ। तुम सृष्टि हो। वाक्सृष्टिकारिणी होने के कारण तुमको क्रिया कहते हैं। मैं इच्छा का कारण हूँ। हे भाविनि! तुम इच्छा हो।।१४-१६।।

मूलप्रकृतिरूपेण सृष्टिस्त्वं पद्मजन्मनः। सोऽपि शतांशभागेन निमेषस्य मम प्रिये॥१७॥
स्थित्वा विनाशमायाति पुनस्तत्रैव गीयते। कपालं तस्य चादाय क्रीडामि विपुलेऽध्वनि॥१८॥
एवं कपालकोटिभिर्माला येयं विभाति मे। तस्य गात्रैव संख्यायैर्वृत्तान्तं वरवर्णिनि॥१९॥

हे प्रिये! तुम ब्रह्मा की सृष्टि करने वाली मूल प्रकृति हो। ब्रह्मा मेरे एक निमेष के भी कई भागों के भागपर्यन्त ही जीवित रहकर विनाश को प्राप्त होकर उसी मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं। मैं उनका कपाल लेकर असीम पथ पर क्रीड़ा करता रहता हूँ। इस प्रकार से (कई कोटि ब्रह्मा का विनाश होते रहने से) यह करोड़ों ब्रह्मकपाल की मेरी माला बन गयी है। हे वरवर्णिनि! विष्णु के भी असंख्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग इस माला में ग्रथित हैं।।१७-१९।।

यदा मायोदरं सर्वं कालेन प्रलयं गतम्। तदाहमीश्वरे तत्त्वे भवामि रमितः सुखी॥२०॥

जब काल के प्रभाव से सब कुछ माया के उदर में विलीन हो जाता है, तब हे भवानि! मैं ईश्वरतत्त्व में सुखपूर्वक रमण करता हूँ।।२०।।

ब्रह्मणोऽन्तकपालैस्तु धृत्वा मालां सुभैरवाम्। अनन्तं भैरवं रूपं कालं द्वादशलोचनम्॥२१॥
अतिघोरं समाश्रित्य वियत्यस्मिन् रमाम्यहम्। एकाकी मातृभिर्युक्तः स्ववीर्यबलशालिभिः॥२२॥
परार्धद्वयकालान्ते व्यतिक्रान्ते महेश्वरि। क्रीडयित्वा समस्ताभिः शक्तिभिर्घोररूपिभिः॥२३॥
भावभूतमयं विश्वं सत्तत्त्वं गहनात्मकम्। कृत्वोदरगतं सर्वमन्नं ग्राममनन्तकम्॥२४॥
विनिकृत्य समारुद्धां योगनिद्राश्रितः सुखी। शयामि शक्तिपर्यंके वीरमाते ततो ह्यहम्॥२५॥

(करोड़ों) ब्रह्मा के करोड़ों मुण्ड की सुभैरवमाला धारण करके मैं बारह नेत्रों वाले अनन्त भैरव महाकाल की मूर्त्ति धारण करके स्ववीर्यवान् मातृगणों से युक्त होकर एकाकी इस आकाश में (यह चिदाकाश है—भूताकाश नहीं है) क्रीड़ा करता हूँ।

हे महेश्वरि! दो परार्द्ध सृष्टिकाल अतिक्रान्त हो जाने पर इन घोररूपा शक्तिगण के साथ वाली क्रीड़ा का समापन करके भावभूतमय विश्व को अनन्त भक्ष्यरूप में उदरस्थ करके योगनिद्रा का अवलम्बन लेकर शक्तिरूपी पर्यङ्क पर शयन करता हूँ।।२१-२५।।

पुनर्नेत्रोदये दिव्ये विनष्टे परमां चये। स्वशक्तिसंप्रबुद्धस्य वृताश्चित्रा प्रजायते ॥२६॥
भावैस्तत्त्वैस्तथाभूतैर्मालेयं भुवनात्मकी। मायाद्यावनिपर्यन्तं युगपद्योगजं महत् ॥२७॥

पुनः दिव्यनेत्रोदय होने पर तथा तमःराशि के विनष्ट हो जाने पर मैं स्वशक्ति से प्रबुद्ध हो जाता हूँ, तदनन्तर प्रजापति के उत्पन्न होने का चिन्तन करता हूँ। समस्त भाव, तत्त्व तथा भूतसमूह आदि, माया से लेकर पृथिवी-पर्यन्त समस्त भुवन मेरे ही योग से सम्भूत हैं।।२६-२७।।

यद्यत्र विलयं याति मच्छरीरेऽखिलेश्वरि। तस्य तस्य तु तत्रैव सम्भवः परिकीर्त्तितः ॥२८॥
स्वकायात् स्वेदमुत्पाद्य कृत्वा तु करमध्यतः। सुशुद्धाश्चामृतमयः शीतलाम्भः स्वतेजसः ॥२९॥
मयाङ्गुष्ठेन मथितो यावदन्यस्तु आगतः। बुद्बुदाकारसदृशं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥३०॥
विभाति करमध्यस्थं मम तस्मिन् महात्मनि। तेजेन कठिनीभूतं हेमभानुशतप्रभम् ॥३१॥
तदण्डमिति विख्यातं ब्रह्माण्डमिति निश्चितम्। परेच्छाक्षोभ्यमव्यक्तां व्यक्तिहेतुकृतं मया ॥३२॥

हे ईश्वरि! मेरे शरीर में जहाँ जो विलय हो गया था, पुनः अब वहीं से उस वस्तु की उत्पत्ति होती है। मैंने अपनी माया से स्निग्ध, अमृतमय, महातेजयुक्त शीतल जल का उत्पादन करके हाथ में धारण करके अंगुष्ठ से उसका मंथन किया। उससे बुद्बुद का जन्म हुआ, जो मेरे तेज से कठोर हो गया। वह शतकोटि स्थान तक (योजन तक) विस्तृत था, वह सैकड़ों हेमसूर्य के समान प्रभायुक्त था। वही अण्ड है, जो ब्रह्माण्डरूप कहा गया है। मैंने अव्यक्त से उसे इच्छा द्वारा क्षुभित किया। इस प्रकार उसे इस ज़गत् के विकास का कारण बना दिया।।२८-३२।।

तत्रास्ते सप्तलोकानि पातालनरकाणि च। कालानलावनिर्यानि अनेकाकारलक्षणम् ॥३३॥
विश्वरूपाण्यहं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत। ममेच्छयापि विसृष्टः स ब्रह्मा मम गुरुर्महत् ॥३४॥

उसमें सप्तलोक, पाताल, नरक, काल, अनल, पृथिवी प्रभृति सब विद्यमान था। इस प्रकार से मैंने विश्वसृष्टि किया तथा उसी अण्ड में स्वयं भी अन्तर्हित हो गया। परमगुरु सत्त्वस्थित ब्रह्मा मेरी ही इच्छा से उत्पन्न हैं।।३३-३४।।

सत्वस्थस्तिष्ठतं स्वस्थो न परं किञ्च विन्दति। यच्छेषांशकरस्थं मे रजसा निश्चितं तु तत् ॥३५॥
विष्णुस्तत्रास्ति सुव्यक्तो अतिवीर्यो ममात्मकः। रजेन उदयामास तत्सत्त्वं ब्रह्मजं प्रिये ॥३६॥
विक्षुब्धस्तु ततो ब्रह्मा ज्वलितः स्वेन तेजसा। मया सञ्चिन्त्य तमसा रजो वृद्धस्वरं भृशम् ॥३७॥

लेकिन सत्त्व में स्थित स्वस्थ (आत्मस्थ) होकर भी वे कुछ भी तत्त्वज्ञानलाभ नहीं कर सके। मेरे हाथ में (उस अण्ड बनाने से बचा) जो शेष जल था, जिसे लेकर मैं उस अण्ड में अन्तर्हित होकर निवास कर रहा था, उस जल से रजोगुणात्मक विष्णु आविर्भूत हो गये। इस रजोगुण के कारण ब्रह्माधिष्ठित सत्त्वगुण विक्षुब्ध हो गया। जब ब्रह्मा स्वतेज से प्रज्वलित हो उठे, तब मैंने विवेचना द्वारा तमस का चिन्तन करके रजोवृद्धि कर दिया।।३५-३७।।

सोऽपि स्ववीर्यमुत्कृष्टं तीव्रां ज्वालां मुमोचति। सहस्रबाहुवदना सहस्रचरणं शिरः ॥३८॥
सर्वायुधकरौ द्वौ तु मर्षमानौ परस्परम्। तौ दृष्ट्वा भयसंत्रस्ताः पुराणपुरुषोत्तमाः ॥३९॥

उससे तीव्र ज्वालारूप सहस्रबाहु, सहस्रमुख, सहस्रचरण, सहस्रशिर विष्णु ने भी स्ववीर्य का प्रकाशन किया। ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों ही एक-दूसरे पर विविध अस्त्र लेकर अमर्ष से भर गये। यह देखकर पुराणपुरुषोत्तमगण भी भयभीत हो उठे।।३८-३९।।

क्षयाम्बुदाः समारब्धा वर्धिता गगनाम्बरे। घोररावाः करालानि रुरोदन्ति दिशो दश ॥४०॥
क्षयार्चिर्विवशा दीर्घा चकासन्ति तडिल्लता। प्रचण्डमारुताधारा पतन्ति च समुद्यताः ॥४१॥
समं धरित्रीसकलां दर्शयन्ति महातलम्। विस्तारितजलोद्वेगं यान्ति सप्तार्णवे भृशम् ॥४२॥
धूमार्चि सकलाश्चोच्चैः स्वरेणार्चितुमुद्यताः। स्वमर्यादाविनिर्मुक्ता तिग्मातंका प्रकल्पिताः ॥४३॥

इससे प्रलयकालीन मेघमाला गगनपथ पर प्रवृद्ध होने लगी। दशो दिशाओं ने घोर स्वर से क्रन्दन प्रारम्भ कर दिया। चतुर्दिक प्रलयशिखा से भीषण विद्युल्लता चमकने लगी। प्रचण्ड वायुप्रवाह से पर्वतसमूह भी गिरने लगे। भूकम्प होने लगा, जलोच्छ्वास उमड़ पड़ा, सभी सागर उद्वेलित हो उठे। धूमकेतु उदित हो गये, दिग्गजगण घोर शब्द से, (देह) कम्पन से तथा गण्डस्थल के मदस्राव से अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने लगे।।४०-४३।।

कठारावं विमुञ्चन्ति करिणोऽपि मदच्युताः। गर्ज्जते च महातीव्रं न तु पतितुमिच्छति ॥४४॥
दुर्लक्षं भ्रमतेऽतीव चक्रवद्दण्ड चोदितम्। पतन्ति दिक्पालानि दनुपालानि कोटिशः ॥४५॥
प्रदीप्ताङ्गारवृष्टिश्च सञ्जाता तीव्रभास्वरा। स्थूलधारा विमुञ्चन्ति घनाग्निकणजानि तु ॥४६॥
सिंहाकारा विलम्बन्ति वह्नेर्ज्वाला सुदारुणा। लेलिहाना भ्रमन्त्यन्ये व्यालरूपार्चिषो घनः ॥४७॥
क्षये चाग्निमुखैः घोरैः शिवाभिर्विप्लुतं जगत्। कल्पान्तगृध्रनिचितं देवि भूमिदिगाननम् ॥४८॥
विलुप्यमानं सकलं भवानि भयविद्रुतम्। ब्रह्मास्त्रैर्व्याकुलं सर्वं वायव्यं पार्थिवैश्चितम् ॥४९॥
वाससैः प्लाव्यमानं वै करालानलतापितम्। सर्वमेतन्महादेवि विपरीतं स्थितं जगत् ॥५०॥
सदेवगणगान्धर्वं सकिन्नरमहोरगम्। यक्षरक्षपिशाचाद्यं स्थावराद्यं च पार्वति ॥५१॥
ब्रह्माण्डान्तर्गतश्चैतद् यथान्यत् स्थानमुत्तमम्। विनाशमुपगच्छन्ति दृष्ट्वा चैतच्चराचरम् ॥५२॥
ततस्त्वेकार्णवे घोरे हन्यमाने महोर्मिभिः। विष्कार्यमानो सन्नद्धो तर्ज्जयन्तौ परस्परम् ॥५३॥

आकाश में तीव्र गर्जन, दण्डचक्रवत् घूमना, पतन की ओर उन्मुखता, कपालवर्षण, बुझे अंगार (कोयले) का वर्षण, स्थूल दारुण अग्निशिखा-वर्षण, सर्परूपी ज्योतियुक्त लेलिहान मेघमाला का भ्रमण तथा उल्कामुखी शिवाकुल से जगत् विलुप्त-सा होने लगा। हे पार्वति! इसके दर्शन से देव-दानव-यक्ष-राक्षस-पिशाचादि की वासभूमि जगत् विनाश की ओर उन्मुख होने लगी। जगत् को घोर एकार्णव की समुद्रतरङ्गें सर्वतोभावेन आकर ताड़ित करने लगीं। तब भी ब्रह्मा-विष्णु, दोनों ही सन्नद्ध होकर एक-दूसरे पर तर्जन कर रहे थे।।४४-५३।।

अहंकारवशान्नित्यो तमसातीवभूरिणा। प्रेरितौ नष्टसंज्ञौ च विहितौ वर्त्तितेक्षणौ ॥५४॥
क्षपास्त्राणि समुद्रस्य कोपात् संरक्तलोचनौ। विवादं संस्थितौ द्वौ तु गदायुद्धं च पार्वति ॥५५॥

अत्यन्त घोर तमोभाव के कारण वे तव संज्ञाहीन होकर, भ्रुकुटि पूर्ण क्रोध से आरक्तनेत्र होकर अस्त्र-क्षेपण किये जा रहे थे। हे पार्वति! वे विवाद में ही रहकर गदायुद्ध करने लगे।।५४-५५।।

मत्स्वरूपमजानन्तौ मम मायाविमोहितौ। मातृत्वकारणार्थी च प्रज्ञार्थी च कृतः स्मृतः ॥५६॥
तयोः कार्यमिदं ध्यात्वा प्रजेशानां महामुने। दर्पोपशमनोपाय इति सञ्चिन्तितो मया ॥५७॥

हे महामुने! मेरा स्वरूप न जानने के कारण मेरी मायावश वे दोनों विवाद में प्रवृत्त थे। तब मैंने इन महाप्रजापतिगण में क्रोध का उत्पादन करके इनके दर्प का उपशमन करने के उपाय का चिन्तन किया।।५६-५७।।

कृतिकारणकार्यार्थमुत्पत्तिनिधनं गतः। ततो विविधहेतुत्वं लिङ्गरूपातितेजसा ॥५८॥
लेलिहानोऽर्च्चिसङ्घेन अतिभूयात्तु संस्थितिः। विद्रुता महतेजेन भीताश्च वरवर्णिनि ॥५९॥
मांगल्यञ्चोर्ध्वरूपं मे न च विन्दति मोहिताः। ततः स्तुवन्ति मां भीता भक्तिमास्थाय निश्चिताः ॥६०॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु ऋक्सामयजुषैः स्तवैः। ततस्तुष्टैस्तु वीरेश स्वरूपं दर्शितं मया ॥६१॥

मैंने उनको अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये लेलिहान शिखा से उज्ज्वल लिंग तेज से अभिभूत किया। हे वरवर्णिनि! वे तब मेरे तेज से भीत होकर पलायित हो गये। तथापि वे मोहवशात् मुझे जान नहीं सके। वे मोहित होकर उस मंगल ऊर्ध्व रूप को पहचान नहीं सके। तब ब्रह्मा-विष्णु ने भयभीत होकर दिव्य १००० वर्षों तक तपस्या एवं ऋक्-साम्-यजुः से स्तव किया। तदनन्तर मैंने प्रसन्न होकर उनको अपने वीरभाव स्वरूप का दर्शन कराया।।५८-६१।।

कपालमालिनं भीमं खट्वाङ्गकरभास्वरम्। सर्पैरनन्तकल्पैश्च कोटिचक्रं करालिनम् ॥६२॥
पश्यन्ति तत्रमनसः दंष्ट्राश्च क्षुरितं मुखम्। मा भीषेदं मया चोक्तं पृच्छन्ति व्रतमुत्तमम् ॥६३॥

मेरा वह दिव्यरूप कपालमालाधारी, भयानक, खट्वाङ्गधारी, भास्वर, सर्पभूषित तथा करोड़ों मुख से युक्त होने के कारण भीषण था। मेरे दाँत कराल थे। उन्होंने भय से त्रस्त होकर मेरा दर्शन किया। मैंने उनसे कहा 'भय न करो'। तब वे मुझसे उत्तम व्रत पूछने लगे (अर्थात् उत्तम प्रश्न पूछने लगे)।।६२-६३।।

किमेतदद्भुतं रूपं किमेतद्भूषणं विभो। किमेतद्राजते व्योम्नि त्रिशिखं शूलमुज्ज्वलम् ॥६४॥
उत्तमांगं शुभं कस्य यत्ते करतले स्थितम्। ततोऽहं प्रत्युवाचेदं तयोर्दर्पहरं वचः ॥६५॥
अनेकमुण्डकोटिभिर्येयं माला विभाति च। तदीयैस्तनूभिर्ब्रह्म विनष्टस्य पुनः पुनः ॥६६॥
यानि चान्यान्यनेकानि ग्रीवाहस्तकटिस्थिताः। नारायणस्य तनवो विनष्टस्य पुनः पुनः ॥६७॥
याश्चैत्तद्दक्षिणे हस्ते खट्वाङ्गं नाम विश्रुतम्। अस्योत्पत्तिं विधास्यामि शृणुष्वेकमना विभो ॥६८॥

हे प्रभो! आपका यह अद्भुत रूप क्यों हैं? ऐसे भूषण क्यों हैं? तथा जो व्योमपथ में यह त्रिशिख शूल दीप्त हो रहा है, वह क्या है? आपके करतल में किसका मस्तक है? उनके यह पूछने पर मैंने उनके दर्प का हरण करने वाला वाक्य कहा— हे ब्रह्मन्! यह जो मेरी अनेक कोटि मुण्डों वाली माला है, यह पुनः-पुनः नष्ट होने वाले तुम्हारे (बाह्याओं के) ही मस्तक हैं। और जो यह मुण्ड समूह (अलग) देखते हो ये पुनः-पुनः नष्ट होने वाले विष्णु के ही मुण्ड हैं। हे विभो! अब मेरे दाहिने हाथ में जो खट्वाङ्ग है, उसका उत्पत्ति-विवरण एकाग्र मन से सुनो।।६४-६८।।

अतीते युगकोट्यैस्तु अहं योगमुपागतः। चिन्तयामि शिवं देवं यत्तत् कारणमुत्तमम् ॥६९॥
यावत्तस्मिन् समुत्पन्नो योगविघ्नोऽतिदारुणः। ततो माया सुरुष्टेन हुंकारेण निपातितः ॥७०॥

अतीत कल्प में मैं योगवान होकर परमकारण शिवध्यान में करोड़ों युग निरत था। तब अत्यन्त दारुणरूप योगविघ्न उपस्थित हो गया। मैंने महारोषयुक्त हुङ्कार से उस विघ्न का विनाश किया था।।६९-७०।।

उक्तश्च त्वं महाबाहो खं विभागे जनार्दन। विघ्नेशस्य महाविघ्नं कृत्वा मोक्षं गमिष्यसि ॥७१॥
खट्वेन खट्वानामा स हतश्च बलदर्पितः। कपालस्य समुत्पत्तिः खट्वांगस्य च सुन्दरि ॥७२॥
कथितन्तु समासेन सर्वपापप्रणाशनी।

तब उससे कहा—अब आकाश में जाओ। तत्पश्चात् उस विघ्नेश्वर ने महाविघ्न करके मोक्ष प्राप्त किया। मैंने उससे कहा था कि रव अर्थात् आकाश, उसमें अटन (भ्रमण करने वाला) करने के कारण यह योगविघ्नस्वरूप असुर खट्वा कहलाया। हे सुन्दरि! कपाल तथा खट्वांग (खट्वा का अंग) की उत्पत्ति का यह वृत्तान्त सर्वपापनाशक है, जिसे तुमसे कहा।।७१-७२।।

अगस्त्य उवाच

सृष्टे पादे पुरा वत्स मया खट्वाङ्गलक्षणम् ॥७३॥
अधिदैवतविन्यासं कथितन्तु नृपोत्तम। शिवस्थित्वा तु ब्रह्मस्य गन्धवत्यास्तटे नृप ॥७४॥
नारायणस्य धारायां रक्तधारा च या कृता। देवी तत्र समुत्पन्ना स्तवराजप्रतोषिता ॥७५॥

इति श्रीदेवीपुराणे खट्वावधो नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

तब अगस्त्य मुनि कहते हैं—हे वत्स! सृष्टिपाद में पहले खट्वाङ्ग-लक्षण तथा अधिदैवत विन्यास भी कहा। हे नृप! गन्धवती के तट पर ब्रह्मा का शिर काटने से जो रक्तधारा बही एवं नारायण की जो रक्त धारा बनी, वहीं पर स्तवराज से प्रसन्न होकर देवी प्रकट हो गयीं।।७४-७५।।

एकोनविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नरवाहन उवाच

देव्योत्पत्तिविधानं च व्रतचर्या पृथग्विधा। विहितं श्रोतुमिच्छामि तनुशुद्धिं हुताशने ॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—देव्युत्पत्ति-विधान तथा व्रतचर्या को सुना। अब तनुशुद्धि (देहशुद्धि) जानने की इच्छा है।।१।।

अगस्त्य उवाच

जप्त्वा तु चतुरष्टन्तु अष्टाविंशमथापि वा। श्रूयते लक्षमात्रेण यदि ब्रह्महनोऽपितु ॥२॥
शाकयावकक्षीराशी करमूलफलाशनः। पदमालां जपन्वत्स तनुशुद्धिमवाप्नुयात् ॥३॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—पदमाला मन्त्र के एक लाख जप से ब्रह्महत्या से भी शुद्धि हो जाती है (यहाँ मूल में 'चतुरष्टन्तु' के स्थान पर 'वर्णचतुर्थन्तु' होना चाहिये तथा 'श्रूयते' का कोई तात्पर्य नहीं है, उसे 'शुध्यते' होना चाहिये)। शाक-यावक-दुग्ध-कन्द-मूल-फल भक्षण करके पदमाला के जप द्वारा तनुशुद्धि होती है।।२-३।।

त्रितयं वा जपेन्मन्त्रः गायत्रीं लक्षमन्विताम्। मुच्यते सर्वपापैश्च यमनियमोपसेवनात् ॥४॥
ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिः ध्यानं सत्यमकल्कता। अहिंसा सत्यमाधुर्यं दमश्चेति यमाः स्मृताः ॥५॥
स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहः। नियमाद् गुरुशुश्रूषा शौचोऽक्रोधोऽप्रमादता ॥६॥

एक लाख गायत्री जप को यम, नियम, सेवायुक्त होकर जपने से भी व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य-दया-क्षान्ति-ध्यान-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, मधुर वाणी, दम को यम कहते हैं। स्नान-स्वाध्याय-उपस्थनिग्रह (ब्रह्मचर्य), गुरुसेवा, शौच, अक्रोध, अप्रमाद को नियम कहते हैं।।४-६।।

पञ्चगव्यं तु गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद् घृतम्। जप्त्वा परेऽह्युपवसेत् कृच्छ्रं सांतपनं चरन्॥७॥
पृथक्कर्ता पर्णद्रव्यैः षडहः सोपवासकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनः स्मृतः॥८॥

कुश का जल, गोदुग्ध, गोमय, दधि, गोमूत्र, गोघृत—इन पञ्चगव्य का भोजन करके अगले दिन उपवास करना सान्तपन व्रत है। कुश का जल प्रभृति उपरोक्त छः द्रव्य में से प्रतिदिन मात्र एक-एक का (क्रमशः) भोजन करके रहने से तथा सातवें दिन पूर्ण उपवास करने से महासान्तपन व्रत सम्पन्न होता है।।७-८।।

पर्णोदुम्बरराजीवः बिल्वपत्रकुशोदकैः। प्रत्येकं प्रत्यहाभ्यस्तैः पर्णकृच्छ्रः उदाहृतः॥९॥

पर्ण, उडुम्बर के पत्ते, कमलपत्र, बिल्वपत्र तथा कुशजल—इन पाँच वस्तुओं में से प्रतिदिन क्रमशः एक-एक का भोजन करके रहना ही पञ्चाह-साध्य पर्णकृच्छ्र व्रत कहा गया है।।९।।

तप्तक्षीरघृताम्बूनां एकैकः प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रन्तु पावनम्॥१०॥

तप्त दुग्ध, तप्त घृत, तप्त जल में से क्रमशः प्रतिदिन एक-एक का पान करते हुये बारह दिन व्यतीत करने से तप्तकृच्छ्र व्रत सम्पन्न हो जाता है।।१०।।

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायासितेन च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्र उदाहृतः॥११॥

एक दिन एक समय भोजन, एक दिन मात्र रात्रि में भोजन, एक दिन अयाचित भोजन एवं एक दिन उपवास करके रहना पादकृच्छ्र व्रत कहलाता है।।११।।

यथाकथञ्चित् त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते। अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात् पाणिपुरान्नभोजनैः॥१२॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम्। द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः॥१३॥

इनमें से किसी भी एक व्रत को तीन बार करना प्राजापत्य व्रत होता है। जितना अन्न हथेली पर आ सके, मात्र उतने से ही निर्वाह करने को अतिकृच्छ्र व्रत कहा गया है। इक्कीस दिन मात्र जल पर निर्वाह करना कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहा गया है। बारह दिन उपवास पराक व्रत होता है।।१२-१३।।

पिण्याकाचामतक्राम्बुपशूनां प्रतिवासरम्। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रः सौम्योऽयमुच्यते॥१४॥
एवं त्रिरात्रमभ्यासादेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पञ्चदशाहिकः॥१५॥

पिण्याक, आचाम, मट्ठा, जल तथा सत्तू—इनमें से क्रमशः एक-एक द्रव्य का भक्षण करके पाँच दिन रहना तथा छठे दिन उपवासी रहना—यह सौम्यकृच्छ्र व्रत कहलाता है। इसी प्रकार इनमें से क्रमशः एक-एक द्रव्य का भोजन तीन-तीन दिन करके रहना ही तुल्यपुरुष व्रत कहलाता है।।१४-१५।।

तिथिवृद्धौ चरेत् पिण्डान् शुक्ले शिखण्डसंस्थितान्। एकैकं दापयेत् कृष्णः पिण्डं चान्द्रायणं चरेत्॥१६॥

मयूर के अण्डे के बराबर अन्न के ग्रास को शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को ग्रहण करे। तदनन्तर द्वितीया को दो ग्रास, तृतीया को तीन ग्रास, इस प्रकार पूर्णिमा-पर्यन्त एक-एक ग्रास की वृद्धि करके भोजन करे। तदनन्तर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रतितिथि को एक-एक ग्रास घटाते हुये अमावस्या के दिन मात्र एक ग्रास का भोजन करे। यह चान्द्रायण व्रत कहलाता है।।१६।।

यथाकथञ्चित् पिण्डानां चत्वारिंशत् शतद्वयम्। मासेन चोपयुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम्॥१७॥
कुर्यात् त्रिषवणस्नानं कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरन्। पवित्राणि जपेत् पिण्डान् ह्यमन्त्रेनाभिमन्त्रितान्॥१८॥

एक मास-पर्यन्त किसी भी प्रकार से मात्र २४० ग्रास (मयूर के अण्डे के बराबर ग्रास) खाकर जीवित रहना ही अन्य प्रकार का चान्द्रायण व्रत है। नित्य तीन बार स्नान, वेदमन्त्र का जप करके कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। तब प्रत्येक अन्न ग्रास के साथ 'नमः' मन्त्र का जप करना चाहिये।।१७-१८।।

अनादिष्टेषु पात्रेषु शुद्धिः चान्द्रायणेन तु। धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रं याति सलोकताम्॥१९॥
कृच्छ्रं तद्धर्मकामन्तु महतीं श्रियमश्नुते। यथाशास्त्रविधानेन फलं होमादवाप्नुयात्॥२०॥

इति श्री देवीपुराणे यमनियमशुद्धिर्नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनादिष्ट पापशुद्धि चान्द्रायण व्रत से होती है। जो धर्मार्थ चान्द्रायण व्रत करता है, उसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है। धर्मार्थ अन्य प्रकार का व्रत करने से भी महती श्रीवृद्धि होती है। यथाशास्त्रविधान होम से भी फललाभ होता है।।१९-२०।।

विंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वह्नेर्विधानं परमं सर्वकामप्रसाधकम्। कथयामि सुरश्रेष्ठ नामभेदक्रियादिभिः॥१॥
अग्नेः परिग्रहः कार्यः सर्वशास्त्रार्थवेदकैः। वामदक्षिणसिद्धान्तवेदान्तगृह्यपारगैः॥२॥
कार्यः परिग्रहो वह्नेः सर्वसम्पत्तिवेदिभिः। अन्यथा अन्तरायस्तु भवन्ति धन-आयुषौ॥३॥
नित्यं व्याधिरधन्यो वा सर्वलोकनमस्कृतः। अविदित्वा यदा वत्स ज्ञात्वा सर्वं भवेद् बुधः॥४॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—हे राजश्रेष्ठ! सर्वाभीष्टप्रद वह्निविधान (होम), नामभेद तथा क्रियाविधि को कहा जा रहा है। इसके लिये सर्वशास्त्रज्ञ व्यक्ति के यहाँ से अग्नि लानी चाहिये। अर्थात् वाम दक्षिण-सिद्धान्त-वेदान्त-गृह्य-पारगामी तथा सर्वसम्पत्तिज्ञाता विद्वान् के यहाँ से अग्नि लानी चाहिये; अन्यथा धन एवं आयु की हानि होती है। हे वत्स! अज्ञ व्यक्ति यदि यह कार्य करता है, तब वह सतत् व्याधि से पीड़ित तथा लोक में निन्दित हो जाता है। यदि यही होमकार्य अभिज्ञ व्यक्ति करता है, तब उसे सर्वसुख प्राप्त होता है।।१-४।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बहुविद्ये क्रिया मता। कुण्डाष्टकं समाख्यातं त्रिभेदन्तु मया तव॥५॥
बहुवह्निविधानन्तु एकस्यैवोपचारतः। स्त्रीबालवृद्धशूद्रैस्तु होतव्यं प्रत्यहं तथा॥६॥
मठे महानसे वापि न कुण्डे तु कदाचन। संस्कृते नामभेदैश्च रक्षयित्वा हुताशनम्॥७॥
महाविद्यार्थवेत्तारैर्होतव्यं फलकांक्षिभिः। श्रूयते च पुरा वत्स अविदित्वा वसोः सुतः॥८॥
संस्कृतेऽहवमानस्य राज्यभ्रंशमवाप्नुयात्। तथा वा अनहोतारमचिरान्मृत्युमवाप्नुयात्॥९॥

अतएव बहुविद्याज्ञाता व्यक्ति के लिये सर्वतोभावेन अग्निकार्य करना ही उचित है। मैं तुमसे आठ प्रकार के कुण्डों का वर्णन करता हूँ। अनेक वह्निविधान भी कहता हूँ। स्त्री-बालक-वृद्ध-शूद्र—सभी के लिये अग्निहोम कर्त्तव्य है। लेकिन उनको महानस का ही अधिकार है, कुण्डादि में होम का अधिकार नहीं है। नामभेद से संस्कृत अग्नि को महानस में रखकर फलाकांक्षी व्यक्ति जो महाविद्या का ज्ञाता है, उसे उसमें होम करना चाहिये। हे वत्स! सुना गया है कि पूर्वकाल में वसुपुत्र बिना जाने संस्कृत अग्नि में होम करने के कारण राज्यभ्रष्ट हो गये थे।।५-९।।

तस्मादस्थिरवह्नौ तु न होतव्यमवेदिना। वेदनन्तु प्रवक्ष्यामि येन सिद्धिः प्रजायते ॥१०॥

अज्ञानकृत होम द्वारा मृत्यु भी हो जाती है। अतएव विना जाने अस्थिर अग्नि में होम नहीं करना चाहिये। जिसे जानना चाहिये, वह कहता हूँ। इससे कार्यसिद्धि होती है।।१०।।

वृहस्पतिरुवाच

अग्निचक्रविधिं पुण्यं देवतानां च स्थापनम्। श्रोतुमिच्छाम्यहं तात कथयस्व प्रसादतः ॥११॥

वृहस्पति कहते हैं—कृपा करके पवित्र अग्निचक्र विधि तथा देवता-स्थापन कहिये। यह श्रवण करना चाहता हूँ। हे तात! मुझ पर प्रसन्न होकर कहिये।।११।।

ब्रह्मोवाच

चतुष्कोणे ह्यहं वत्स मण्डले मधुसूदन। धनुषाकृतिको रुद्रः सर्वदेवनमस्कृतः ॥१२॥
चतुरस्रे भवेदग्निर्मण्डले तु हुताशनः। अर्धचन्द्रेऽनलो ह्यग्निरेवं यज्ञः प्रतिष्ठितः ॥१३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—चतुष्कोण अग्निचक्र में मैं, वर्त्तुलाकृति अग्निचक्र में विष्णु तथा धनुषाकृति अग्निचक्र में सर्वदेव-प्रणम्य रुद्र अधिष्ठित रहते हैं। चतुरस्र अग्निचक्र-स्थित अग्नि को अग्नि कहते हैं, वर्त्तुलचक्रस्थ अग्नि को हुताशन तथा धनुराकृति चक्रस्थ अग्नि को अनल कहते हैं। यज्ञप्रतिष्ठा इस प्रकार से करनी चाहिये।।११-१३।।

द्विजानां देवता सद्य आचार्यो योगवेदनम्। उदके वरुणो देवो दर्भेषु च महोरगाः ॥१४॥
स्रुचायान्तु महादेवी श्रुवो देवस्त्रिलोचनः। तत्संयोगपरो देवः सर्वदेवनमस्कृतः ॥१५॥

द्विजगण देवताधिष्ठान हैं, आचार्य योगज्ञान हैं, जल में वरुण हैं, कुश में महासर्पगण हैं, स्रुचा में उमादेवी, स्रुव में शिव तथा स्रुक्-स्रुव संयोग में सर्वदेवनमस्कृत परमदेव स्थित हैं।।१४-१५।।

प्रणीता पृथिवी ज्ञेया स्वाहाकारे महामखाः। पुष्पेषु ऋतवो विद्धि पात्रेषु च महोदधिः ॥१६॥
वेदीमध्ये तु गायत्री सोमो अभ्युक्षणे स्थितः। ईन्धने मणिभद्रस्तु शिखं वज्रधरायुधः ॥१७॥
होतारन्तु विजानीयात् चमसादिषु पर्वताः। उच्छ्रवे देवता रुद्रस्तालवृन्ते तु वासवः ॥१८॥
मन्त्रणेषु गणाः सर्वाः भस्मे भूयोऽपि शंकरः। लोकपालास्तु कोणेषु ओंकारे सर्वदेवताः ॥१९॥
मातरो होमभागे तु पूतना विष्फुलिंगदा। आदित्यादिस्थिता तेजे यो देवोऽपरः परः ॥२०॥

प्रणीतापात्र में पृथिवी, स्वाहाकार में यज्ञ, पुष्पों में छः ऋतु, पात्र में महासमुद्र, वेदी में गायत्री, अभ्युक्षण में सोम, यज्ञकाष्ठ में मणिभद्र, शिखा में वज्र, चर्मादि में पर्वत, भस्त्रा में रुद्र, तालवृन्त में वायु, मन्त्रों में गणसमूह, भस्म में शंकर, कोणों में लोकपाल, प्रणव में समस्त देवता, होमभाग में मातृगण, विस्फुलिंग (चिनगारी) में पूतना, तेज में आदित्य आदि तथा शिव स्थित रहते हैं।।१६-२०।।

देवानां प्रातर्होमन्तु प्रहरार्धेन भूतिदम्। मध्याह्ने तु मनुष्याणां होमहेतुप्रियादिकम् ॥२१॥
अपराह्णे पितृणाञ्च सन्ध्यायां ग्रहभौतिकम्। रात्रौ पापविनाशार्थं दिव्यसिद्धिप्रसाधकम् ॥२२॥
प्रहरार्धेन होतव्यमर्धरात्रे च आयुदम्। शेषे पुत्रप्रदं वत्स उदये सर्वकामदम् ॥२३॥

देवगण हेतु प्रातःहोम आधे प्रहर के भीतर करने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मनुष्य गण का मध्याह्न में, मोक्षार्थ होम तीसरे प्रहर में, पितृहोम अपराह्न में, ग्रहभूतादि-हेतु होम सन्ध्या में करना उचित है। पापविनाशार्थ होम रात्रि में करना चाहिये। सिद्धि-हेतु होम प्रहरार्ध में करना चाहिये। अर्द्धरात्रि का होम आयुःप्रद होता है। रात्रिशेष का होम पुत्रप्रद कहा गया है। हे वत्स! उदयकालीन होम सर्वकामदायक होता है।।२१-२३।।

दक्षिणा सर्वकामेषु सर्वप्राप्तिप्रदायकम्। क्षणाधिदेवता देया प्रथमाचरणाहुतिः ॥२४॥
अन्यथा विफलं विप्र भवते हवनं सदा। वार्क्षमृण्मयताम्राद्यैः रौप्यहेममयोद्भवैः ॥२५॥
दशधा पुण्यवृद्धिस्तु हवनस्नानभोजनैः। देवांकैः शूलपद्माङ्कैः शङ्खचक्रहुताशनैः ॥२६॥
घृतक्षीरवसादीनि ग्रहीतव्यानि बुद्धिमान्। देव्या स्नपनयज्ञियैर्वसोर्धाराप्रभावितैः ॥२७॥
द्रव्यैर्होमं प्रकर्त्तव्यमन्यथा वा विधानतः। आप्तवेदेषु संतृप्तिं पुष्टा दास्यन्ति देवताः ॥२८॥

हे विप्र! सभी होम में दक्षिणा देनी चाहिये। इससे इष्टसाधना होती है। होमारम्भ के क्षण में अधिष्ठात्री देवता-हेतु प्रथमाहुति देनी चाहिये; अन्यथा होमकार्य सफल नहीं हो पाता। दारुमय (काष्ठ का), मृण्मय (मिट्टी का), ताम्रमय, रजतमय, सुवर्णमय देवाङ्कित अथवा चक्र, शूल, पद्म आदि से अंकित होमपात्र में घृतादि लेना चाहिये। उक्त पात्रों में काष्ठमय से मृण्मय की, मृण्मय से ताम्रमय की—इस प्रकार से उत्तरोत्तर दशगुणित फलवृद्धि होती जाती है अर्थात् उत्तरोत्तर १० गुना फल बढ़ता जाता है। देवी के स्नानीय, यज्ञीय अथवा वसुधारा में घृत, क्षीर, वसादि (तैलाक्त पदार्थ) बुद्धिमान को ग्रहण करना चाहिये। इन द्रव्यों द्वारा होम विहित है (ये ही हवन द्रव्य विहित हैं); अन्यथा विधान के अनुरूप अन्य द्रव्य भी होमार्थ लिया जा सकता है। इससे देवता तृप्त होकर पुष्टि प्रदान करते हैं।।२४-२८।।

वेलाहीनेषु सुराणामधिदेवभुजं फलम्। एवं ते कथित वत्स सर्वलोकसुखावहम् ॥२९॥
होतारो मन्त्रहीनास्तु अशुचिर्भवते सदा। तस्मादसंस्कृते वह्नौ न होतव्यमवेदकैः ॥३०॥

हे वत्स! इस प्रकार सभी सुखप्रद विधान का वर्णन किया। मन्त्रहीन होता सभी समय अशुद्ध होते हैं। अतएव असंस्कृत अग्नि में कभी भी होम नहीं करना चाहिये।।२९-३०।।

मन्त्रविदश्च होतारो आप्यायन्ति देवताः। अवेदकस्तु होतारो नैव प्रीणाति वै सुरान् ॥३१॥
होमात्सर्वफलावाप्तिः सर्वेषामपि जायते। तस्मान्मन्त्रविधानज्ञः प्रातरेव शुभप्रदः ॥३२॥

वेदज्ञ गण को होम से पुष्ट हो गये देवता पुष्टि प्रदान करते हैं। अज्ञ होता कभी भी देवताओं को प्रसन्न नहीं कर सकता। सभी को होम से फललाभ होता है। अतएव मन्त्रज्ञ व्यक्ति को पहले होम करना चाहिये।।३१-३२।।

पूर्वाग्निदेवता विष्णुर्दक्षिणेन हरः स्थितः। पश्चिमेन स्थितो ब्रह्मा एते अग्निस्थदेवताः ॥३३॥

पूर्वाग्नि के विष्णु देवता हैं, दक्षिण में हर स्थित हैं। पश्चिम में ब्रह्मा की स्थिति है। ये तीन देवता अग्निस्थित होते हैं।।३३।।

तेजे रुद्रं विजानीयाज्ज्वालायां चापि चर्चिका। त्रयायुषं च विप्राणां लक्ष्मीस्तत्रापि देवताः ॥३४॥
एवं प्रतिष्ठितं होममग्नयश्च त्रयस्तथा। त्रयो देवास्त्रयः काला त्रयोऽग्निः गृहमन्त्रिताः ॥३५॥
गार्हपत्यं दक्षिणाग्निः आहवनीयश्च ते त्रयः। एकस्यैव समुत्पन्ना बहुभेदा द्विजोत्तम ॥३६॥

इति श्रीदेवीपुराणे त्रिरग्निविधिर्नाम एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

तेज में रुद्र, ज्वाला में देवी चर्चिका, क्रिया में लक्ष्मी प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार से होम प्रतिष्ठित है। तीन अग्नि, तीन देव, तीन काल है तथा अग्निगुण मन्त्रादि भी त्रिविध हैं। हे द्विजोत्तम! गार्हपत्य, दक्षिणा एवं आवाहनीयरूप तीन अग्नि भी वास्तव में एक अग्नि के ही तीन भेद हैं।।३४-३६।।

एकविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

बृहस्पतिरुवाच

एकस्त्रिगुण आख्यातः सर्वदेवसुखावहः। बहुधा तत्कथं कर्म योजयन्ति द्विजोत्तमा ॥१॥
दक्षिणाग्निविभागं तु प्रसूतिर्बहुधा तथा। नामभिः कर्मभिर्देव कथयस्व समासतः ॥२॥
एवमुक्तस्तु गुरुणा ब्रह्मा लोकपितामहः। उवाच मधुरां वाणीं शृणुष्वावहितो द्विज ॥३॥

वृहस्पति कहते हैं—यदि एक ही अग्नि गुणत्रययुक्त होकर सभी देवताओं का सुखसम्पादन कर रही है, तब ब्राह्मणगण उसमें अनेक प्रकार का कर्म कैसे कर लेते हैं? नामतः एवं कर्मतः दक्षिणाग्नि के विभागों का तथा उसकी सन्तति के विषय में संक्षेप में कहिये। वृहस्पति की यह जिज्ञासा सुनकर भगवान् ब्रह्मा उनसे मधुर वाणी में कहने लगे—हे द्विज! एकाग्रता से श्रवण करो।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

पुरा कृतयुगे विप्र एक एव हुताशनः। रुद्रमूर्त्तिस्थितो नित्यं तेजो नाम महात्मनः ॥४॥
त्रेतायां दक्षिणेशो वै यज्ञार्थं विसृजन्महान्। गार्हपत्यं तमो जातं हवनीयं ततोऽभवत् ॥५॥
हवनीयप्रसूतिस्तु भरताद्या महौजसः। एकपञ्चाशतं नाम चराचरविधायकाः ॥६॥

सत्ययुग में रुद्रमूर्त्ति एक ही अग्नि थी। उसका नाम था—तेज। त्रेतायुग में यज्ञार्थ जिस अग्नि का प्रकटन हुआ था, उसे गार्हपत्य कहते हैं। उसके अनन्तर आवाहनीय अग्नि का प्रकटीकरण हुआ। भरतादि महौजस महातेजा ही आहवनीय की सन्तान हैं, इनकी संख्या है—इक्यावन (यहाँ मूल में पूर्व पाठ से आगे के पाठ में अनैक्य है)। ये चराचर-विधायक हैं।।३-६।।

तेषां वै नामकर्माणि बहुधा ब्रूहि भो द्विज। सप्तसप्तविभागेन तेषां सन्ततिजातयः ॥७॥
भरतो वरमाङ्गल्ये विभुश्च बल अङ्गिराः। समुद्भवो जयो रुद्रः संयुगः कालिको भवः ॥८॥
सूर्यो जनः शशांकश्च विश्वेदेवाः परावसुः। कल्माषः संचयो घोरो वडवाग्नि वरान्तकः ॥९॥
दक्षो निधीश्वरः कामः कालान्तकपरान्तकौ। वीभत्सो विजयो धूम्रः कृष्णवर्णोऽथ हाटकः ॥१०॥
अजितः शंकरः शंखः शुद्धिदो जयदो गुरुः। अपरोऽपराजितः कश्च प्रतापो बहुदः शुभः ॥११॥
आरण्यः सर्वगः शम्भुः कामिको रिपुहा शिवः। गर्भाधानादिसंस्कारैः स भवेत्सर्वकामदः ॥१२॥
परिग्रहानुरूपेण तथा होमवशेन च। लघ्वाहारो विशुद्धश्च नित्यहोता प्रकीर्त्तितः ॥१३॥

इनके नाम हैं—भरत, वर, मंगल, विभु, बल, अंगिरा, समुद्भव, जय, रुद्र, संयुग, कालिक, भव, सूर्य, जल, शशांक, विश्वेदेव, परावसु (बाद में मूल में अनल का उल्लेख है परन्तु परावसु का उल्लेख नहीं है), कल्माष, संक्षय, घोर, बड़वाग्नि, परान्तु (मूल पाठ में वरान्तक लिखा है), दक्ष, निधीश्वर, काम, कामान्तक, परान्तक, वीभत्स, विजय, धूम्र, हाटक, अजित, शंकर, शंख, शुद्धिद, जयद, गुरु, अपर, अपराजित, कण्ठ, प्रताप, बहुद, आरण्य, सर्वग, शम्भु, कामुक, रिपुहा, शिव तथा कामाग्नि। गर्भाधानादि संस्कार में इन अग्नि से समस्त अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है। परिग्रहादि के अनुसार नित्य होता शुद्ध हो जाता है।।७-१३।।

कृत्वा हुताशने पञ्च कर्माणि भवते सदा। सर्वसिद्धिप्रदायित्वादन्यथा हवने चरुः ॥१४॥

(होम द्वारा) हुताशन में सदा पञ्चकर्म होते हैं। चरु से हवन करने से सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है।।१४।।

आधाने भवते ह्यग्निर्वरं पुंसवने स्थितः। सीमन्ते मङ्गलो नाम जातकर्म विभुः स्मृतः ॥१५॥

नामे बलः समाख्यातः प्राशने अङ्गिरा मतः। चूडे समुद्भवो वह्निर्जयो व्रतनिबन्धने ॥१६॥
रुद्रो गोदानिको नाम विवाहे संयुगः स्मृतः। अग्निश्च कालिको नाम अग्निहोत्रे विधीयते ॥१७॥
आवसथ्ये भवो ज्ञेयः पितृणां विश्वदेवकः। अनलो जठरो वह्निः कल्माषोऽमृतभक्षणे ॥१८॥
सूर्यो वह्निर्महाहोमे जलो जलनिवेशने। शशांकः पूर्णिमाहोमे क्षये संवर्त्तको मतः ॥१९॥

गर्भाधान में अग्नि भरत है, पुंसवन में भरत है, सीमन्त में मंगल, जातकर्म में विभु, नामकरण में बल, अन्नप्राशन में अंगिरा, चूड़ाकरण में समुद्भव, उपनयन में जय, गोदान में रुद्र, विवाह में संयुक्त, अग्निहोत्र में व्यालिक, आवसथ्या कर्म में भव, पितृकर्म में विश्वेदेव, जठर में अनल, अमृतभक्षण में कल्माष, महाहोम में सूर्य, जलनिवेशन में जल, पूर्णिमा होम में शशांक तथा प्रलय में संवर्त्त नाम कहा जाता है।।१५-१९।।

घोरः काष्ठसमुद्भश्च परान्तो वेणुसम्भवः। समुद्रे वडवाग्निस्तु दक्षः पाकविधो मतः ॥२०॥
निधीशो वसुधारायां कामदेवोऽथ धूमजः। तूषजः कामहा त्वग्नौ रथ्यायान्तु परान्तकः ॥२१॥
वीभत्सो क्षुत्करो वह्निर्विजयो नृपगेहजः। धूमजो वृक्षसमुत्थस्तु दीपे कृष्णपथो मतः ॥२२॥
हेमं तापे भवेद्वाद्ये अजितो मातृवेश्मजः। संगरो म्लेच्छलोकेषु शंखो वै चेष्टपाकजः ॥२३॥
आदित्ये शुद्धिं विजानीयाज्जयः शुक्रनिवेशने। गुरुदीक्षाविधौ वह्निरपरो तिण्डिलेषु च ॥२४॥
कण्ठानुकूलजो विद्धि लक्षहोमपराजितः। प्रतापो नृपदीक्षायां बहुदानजशोणजः ॥२५॥

काष्ठोत्पन्न अग्नि का नाम है घोर, वेणुसम्भूत अग्नि है परान्त, समुद्राग्नि है बड़वानल, पाककार्यार्थ अग्नि का नाम है दक्ष तथा वसुधारा-प्रदानार्थ अग्नि है निधीश्वर। धूमज अग्नि का नाम है काम, तुष से उत्पन्न अग्नि है कामहा, रथ्यास्थित अग्नि है परान्तक, क्षुधाकारी अग्नि है वीभत्स, राजगृहसम्भूत अग्नि को विजय कहते हैं। वृक्षाग्नि है धूम, दीपाग्नि है कृष्णवर्त्मा, सुवर्ण को तपाने वाली अग्नि है हाटका, मातृगृहाग्नि है अजित, म्लेच्छ लोगों के यहाँ की अग्नि शंकर है। ईंट पकाने की अग्नि है शंख, चैत्य वह्नि को शुद्धि तथा शुक्रस्थ वह्नि को जयद कहते हैं। दीक्षाविधि में प्रयुक्त अग्नि है गुरु। तिन्तिडी वृक्षोत्पन्न वह्नि है अपर, अनुकूल वह्नि है कण्ठ। लक्षहोमाग्नि को अपराजित, राजदीक्षाग्नि को प्रताप तथा टंकपर्वत से उत्पन्न अग्नि को बहुद कहते हैं।।२०-२५।।

शुभो ग्रहविधौ ह्यग्निरारण्ये अरणीभवः। सर्वगो वैद्युतो वह्निः शम्भुर्मणिसमुद्भवः ॥२६॥
कामिकः साधकाग्निश्च रिपुहा अभिचारजः। कोटिहोमे शिवो वह्निः सर्वकामप्रसाधकः ॥२७॥
शिवतेजोद्भवो विप्र कालाग्निः स च कीर्त्तितः। एको बहुप्रकारैस्तु नामकर्मैर्यथास्थितः ॥२८॥
कथितः पावको वत्स किं भूयः परिपृच्छति ॥२९॥

इति श्रीदेवीपुराणे वह्निभेदोनाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहविधान की अग्नि है शुभ, अरण्य कार्यार्थ अग्नि है आरण्य, वैद्युत अग्नि है सर्वग, मणि से उत्पन्न अग्नि है शम्भु। साधकाग्नि है कामिक, आभिचारिक कार्य में प्रयुक्त अग्नि है रिपुहा। कोटिहोम की अग्नि है शिव तथा शिव के नेत्र से उत्पन्न अग्नि है कालाग्नि हे वत्स! कर्मभेद से एक ही वह्नि नामभेद से अनेक प्रकार से स्थित है। यह तुमसे वर्णित किया। अब और क्या पूछना चाहते हो।।२६-२९।।

द्वाविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपवाहन उवाच

वह्निकर्मफलं विप्र कथितञ्चावधारितम्। पुष्पगन्धविशेषन्तु श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—हे ब्रह्मन्! वह्निकर्मफल आपने कहा। मैंने भी उसकी अवधारणा किया। अब पुष्प तथा गन्धविशेष के विषय में तत्त्वतः सुनने की इच्छा है।।१।।

अगस्त्य उवाच

पात्राणां हेमरौप्योत्थैः यथा प्रोक्तो नृपोत्तम। घृतहोमे वरं यद्वत् तिलाश्च मदलेपने ॥२॥
चन्दनागुरुकर्पूरनखं धूपे वरं मतम्। मदकर्पूरकाश्मीरं रोचना च चतुष्टयम् ॥३॥
एतेन लेपयेद्देव्याः सर्वकामानवाप्नुयात्। जातीकंकोल-पत्रैला-कुष्टकुङ्कुमपत्रिका ॥४॥
जातीफलो लताख्या च स्नानगन्धा सदाथरा। नागकेशरकर्पूरमुरामांसी सबालकाः ॥५॥
उद्वर्त्तनाः समाख्याताः सदैव मातरप्रियाः। धूपं कल्याणनागन्तु नित्यं देव्या प्रियं नृप ॥६॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे राजसत्तम! पात्र में रजतमय तथा सुवर्णमय पात्र जिस प्रकार से घृतहोमार्थ प्रशस्त है, जैसे तिल को भी प्रशस्त कहते हैं, लेपन वस्तुओं में उसी प्रकार से कस्तूरी प्रशस्त है। चन्दन-अगुरु-कर्पूर तथा नखी धूपार्थ प्रधान द्रव्य है। मृगनाभि (कस्तूरी), कर्पूर, कुङ्कुम तथा गोरोचन—इन चार द्रव्यों से देवी का लेपन करने से सर्व अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। जायफल, तेजपत्ता, इलायची, कूठ तथा कुङ्कुमादि स्नानगन्ध हैं। स्नानार्थ मृगनाभि का उपयोग अधम कहा गया है। नागकेशर, कुङ्कुम, कर्पूर, मुरामांसी तथा बला—ये सभी उत्तम द्रव्य मातृगण को प्रिय हैं। हे नृप! धूप तथा कल्याणनाग देवी को सदैव प्रिय है।।२-६।।

चन्द्राख्यं लेपनं देयं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। मणिमौक्तिकमालाश्च वितानञ्च दुकूलजम् ॥७॥
घण्टादि सर्वदा दत्त्वा हेमपुष्पफलं लभेत्। पुष्पैर्वारण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः ॥८॥
अपर्युषितान्यच्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः। आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सम्पूजयेच्छिवाम् ॥९॥

कर्पूर लेपन करने से सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। मणि मुक्तामाला, यन्त्रवितान तथा घण्टादि का सर्वदा दान करने से सुवर्ण पुष्प दानफल प्राप्त होता है। जो बासी न हो, छिद्रहीन, कीटादि रहित तथा प्रोक्षित अरण्यपुष्प, अपने बाग में उत्पन्न पुष्प तथा पर्वत पर उत्पन्न पत्तों द्वारा देवीपूजन करना चाहिये।।७-८।।

पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः। तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे ॥१०॥
दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं कुसुमेषु तत्। मातराणां सकृद्दत्त्वा लभते नृपसत्तम ॥११॥

हे नृपश्रेष्ठ! पुष्पविशेष द्वारा पूजन से विशेष पुण्यफल प्राप्त होता है। तप, शील गुणयुक्त वेदपारग पात्र को दस सुवर्ण मुद्रा दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, मातृगण को एक ही बार पुष्प प्रदान करने से भी वही फल प्राप्त हो जाता है।।१०-११।।

तस्मात् पुष्पान् प्रवक्ष्यामि पत्राश्च सुरभीश्च ये। केतकीञ्चातिमुक्तश्च बकबन्युबकुला ऋषिः ॥१२॥
कदम्बः कर्णिकारश्च सिन्युवारः समृद्धये। पुन्नागचम्पकं कुन्दं यूथिका नवमल्लिका ॥१३॥
दमना पद्मपत्रश्च शतधा पुण्यवृद्धये। तारार्जुनमल्ली च बृहती शतपत्रिका ॥१४॥
करवीरकुसुमकह्लारबिल्वपाटलमालती। जवाबीजो किलाशोको रक्तनीलोत्पलाः सिताः ॥१५॥

पंकजः शतपत्रश्च दशधा पुण्यवृद्धये। एतैस्तु अर्च्चयेद्देवीमाशुसिद्धिः प्रयच्छति ॥१६॥
द्रोणपुष्पी शमी क्षीरी नीलापामार्गपत्रिकाः। सुरसा बर्वरा भद्रा सुरभी कर्णमल्लिका ॥१७॥

इसलिये सुगन्धि पुष्प तथा पत्रों का वर्णन करता हूँ। केतकी, बन्धूक, बकुल, बक, कदम्ब, कर्णिकार, सिन्धुराव, पुन्नाग, चम्पक, कुन्द, यूथिका, नवमल्लिका, दमन, मरुपत्र, अर्जुन, मालती, बृहती, शतपत्री, करवीर, कल्हार, पाटल, जवा, रक्त-नीलादि, विविध अशोक, पद्म तथा द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, पंकज, आमलकीपत्र, शमीपत्र, नीले अपमार्ग का पत्र इत्यादि से भवानी की पूजा करनी चाहिये। इन सबसे पूजन करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।।१२-१७।।

कदम्बैरर्चयेद्रात्रौ मल्लिका उभयोः समा। दिव्यशेषाणि पुष्पाणि यथालाभेन पूजयेत् ॥१८॥

रात्रिपूजा कदम्ब से करनी चाहिये। दिवा-रात्रि दोनों में ही मल्लिका से पूजा की जा सकती है तथा प्राप्ति के अनुसार अन्य उपरोक्त पुष्पों से दिवापूजा करनी चाहिये।।१८।।

कीटकेशोपविद्धानि शीर्णपर्युषितानि च। संपतितानि च पुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च ॥१९॥
मुकुलैर्नार्चयेद्देव्याः अपक्वं न निवेदयेत्। फलं क्वथितं विद्धञ्च यत्नात्पक्वमपि त्यजेत् ॥२०॥

कीटयुक्त, केशयुक्त, शीर्ण अथवा बासी पुष्पादि से पूजा नहीं करनी चाहिये। कलियों से देवी का पूजन नहीं करना चाहिये। बिना पके फल भी वर्जित हैं। यदि पके फल पसीज रहे हों अथवा विद्ध हों, तब वे भी त्याज्य ही हैं।।१९-२०।।

अलाभेन च पुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत्। पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् ॥२१॥
फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधान्यपि। औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजिता ॥२२॥
प्रत्येकमुक्तपुष्पेषु दशसौवर्णिकं फलम्। सन्निबद्धेषु तेष्वेव द्विगुणं फलमुच्यते ॥२३॥

यदि पुष्प न मिलें तब पत्र अर्पित करना चाहिये। पत्र न मिले तब फल, फल न मिले तब तृण-गुल्म-औषधि ही चढ़ानी चाहिये। यदि वह भी न मिले तब केवल भक्ति से ही देवीपूजन सम्पन्न करना चाहिये। ऊपर लिखे पुष्पों में से एक-एक पुष्पदान का फल दस सुवर्णदान के बराबर होता है। बहुत से पुष्पदान का इससे भी दूना फल मिलना निश्चित है।।२१-२३।।

यः सुगन्धै रक्तपुष्पैः सम्यग्देवीं प्रपूजयेत्। मालाभिर्वापि सुमनैः सोऽनन्तं फलमाप्नुयात् ॥२४॥
बिल्वपत्रैरखण्डैर्यः सकृल्लिङ्गं प्रपूजयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥२५॥

जो व्यक्ति उक्त सुगन्धित पुष्पों से अथवा उत्तम रूपेण ग्रथित माला द्वारा सम्यक् पूजन करता है, उसे अनन्त फल मिलता है। जो व्यक्ति मात्र बिल्वपत्र (अखण्ड बिल्वपत्र) से एक बार भी शिवपूजन करता है, वह सर्वपापरहित होकर शिवलोक में संस्कृत हो जाता है अर्थात् शिवलोक प्राप्त करता है।।२४-२५।।

यः कुर्याच्च शिवारामम्राम्रबिल्वादिशोभितम्। जातीविजयराजार्ककरवीराब्जकुब्जकैः ॥२६॥
पुन्नागनागबकुलैरशोकोत्पलचम्पकैः। कदलीहेमपुष्पाद्यैस्तस्य दानफलं शृणु ॥२७॥
यावत्तत्पत्रकुसुमबीजयुति फलानि च। तावद्वर्षसहस्राणि देव्या लोके स मोदते ॥२८॥

इति श्रीदेवीपुराणे पुष्पविधिर्नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

जो व्यक्ति आम्र-बिल्व-जाती-पुन्नाग-कदली-बकुल-नाग-अशोक-उत्पल-चम्पक-हेमपुष्पादि से शोभित उद्यान शिव के उद्देश्य से दान करता है, उसके दान का फल सुनो। उस उद्यान के पत्तों, पुष्प, बीज, फल इन सभी की जो संख्या है, वह उतने सहस्र वर्ष-पर्यन्त देवीलोक में आनन्द-लाभ करता है।।२६-२८।।

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपवाहन उवाच

समस्तधर्मकथनं तव वक्त्राद्विनिःसृतम्। श्रुतं भूयोऽपि पृच्छामि देव्या गुरुपूजनम् ॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—आपके मुख से समस्त धर्मकथा सुनी। अब देवीपूजा तथा गुरुपूजा की पद्धति हेतु पुनः जिज्ञासा करता हूँ।।१।।

अगस्त्य उवाच

भूगृहे गृहमध्ये वा रक्ताख्ये गिरिकन्दरे। नदी-नद-समुद्रे वा प्रकोष्ठे कूपवर्जिते ॥२॥
सुभक्तजनसङ्कीर्णे शुभवास्तूपसंस्थिते। स्नात्वा शास्त्रविधानेन मन्त्रपूर्वं नृपोत्तम ॥३॥
देव्या मूलांगषट्कं तु न्यस्य शस्त्रेण संस्थितः। मृदुचर्मकृते शस्त्रे तूलकार्पासपूरिते ॥४॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—भूगर्भगृह, गृहमध्य, गिरिकन्दर, नद-नदी, समुद्रतीर, कूपरहित निर्जन स्थान, उत्तम भक्तजनपूर्ण शुभ वापी से शोभित स्थान में मन्त्रपाठ के साथ यथाशास्त्र स्नान करके शुक्ल वस्त्र पहनकर कोमल चर्मादिनिर्मित प्रशस्त आसन पर बैठना चाहिये। वह आसन कपास आदि से पूरित होना चाहिये।।२४।।

एवंविधे स्थितो मन्त्री सुधूपासितवाससः। वितानध्वजसंछन्ने कटवस्त्रविभूषिते ॥५॥
मनोरमे कृते स्थाने देव्या स्नानादिकाः क्रियाः। कृत्वा पूर्वविधानेन हैमराजतताम्रजैः ॥६॥
कलशैस्तोयगन्धाद्यैः पृथक्थूपसुधूपिताः। मदादिलेपिता देव्यो दुकूलपरिवारिताः ॥७॥

पूजास्थान को ध्वज-चन्द्रातपादि से परिवृत, धूप-गन्धादि से आमोदित तथा मनोरम बनाना चाहिये। स्थान को साधक को सुधूप से सुवासित भी करना चाहिये। देवी के मूल मन्त्र से षडङ्ग न्यास करके शुभरूपा देवी का ध्यानादि करने के उपरान्त स्वयं की देवीरूपता का चिन्तनादि करने के उपरान्त पूर्व में कहे गये विधान से गन्ध-जलपूर्ण, सुवर्णमय, रजतमय अथवा ताम्रमय कलश से देवी को स्नान कराना चाहिये। कस्तूरी प्रभृति का अनुलेपन प्रदान करके वस्त्र अर्पित करना चाहिये।।५-७।।

मुक्ताफलकृताहाराः पद्मरागविभूषिताः। खड्गखेटकपाशादि छुरिकादि निवेशयेत् ॥८॥

देवी को मुक्ता, पद्मराग आदि के मणिमय आभरण प्रदान करके खड्ग, खेटक, पाश आदि तथा छुरिका प्रदान करनी चाहिये।।८।।

घृतपूर्णानि मांसानि नैवेद्यमुपपादयेत्। पूर्वोक्तविधिना वत्स पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥९॥

उनको धूप प्रदान करके घृत-मांसादि का नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। हे वत्स! पूर्वोक्त विधान से अर्थात् पुष्पादि उपहार से परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये।।९।।

ध्यात्वा देवीं शुभां वत्स विग्रहामपरां पराम्। प्रणिपत्य तथा देवीमात्मानमपि तादृशम् ॥१०॥
कृत्वा जपादिकं कार्यं विविधं कार्यसिद्धये। ततो निवेदयित्वा तु वह्निकर्म सुरक्षितम् ॥११॥
कार्यं पूर्वविधानेन स्रुवस्रुच्यादिरक्षिते। कुण्डे सुलक्षणोपेते वसोर्धारां प्रतिष्ठयेत् ॥१२॥
प्रतिष्ठा रसपात्राणि होमे सा च विधिः शुभाः। बलिदानं प्रदातव्यं गृहेषु विविधेषु च ॥१३॥

शुभानां लोकपालानां नानायक्षविनायकान्। कृमिकीटपतङ्गेभ्यो भूमौ तोयान्नकल्पनम् ॥१४॥
कृत्वा क्षमापयेद्देवीं गुरुपूजां तथा कुरु ॥१५॥

इति श्रीदेवीपुराणे पूजाविधिर्नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हे वत्स! तदनन्तर देवी के शुभ अपर तथा पर विग्रह का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर जप-प्रणामादि के अनन्तर कार्यसिद्धि के लिये होमकार्य करना चाहिये। होमकार्य भी पूर्ववत् करना चाहिये। उसी प्रकार स्रुव तथा स्रुक से, सुलक्षण कुण्ड में, उसी प्रकार से वसुधारा दान आदि होम की समस्त विधि को सम्पन्न करना चाहिये। बलिदान, शुभ लोकपालादि का पूजन तथा कृमि- कीट-पतंगादि के लिये भूमि पर अन्नदान करना चाहिये। तत्पश्चात् देवी से क्षमाप्रार्थना एवं गुरुपूजा भी करनी चाहिये।।१०-१५।।

चतुर्विंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

देवाग्निगुरुविद्यायाः पूजायाः सदृशं फलम्। गुरुस्तेषां भवेत्पूज्यः सर्वकामप्रसाधकः ॥१॥
विद्याग्निदेवतानाञ्च विशेष उपदेशकः। यर्थाथो न्यायवादी च संदेहविनिवर्त्तकः ॥२॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—देवता, अग्नि, गुरु तथा विद्या के पूजन का एक जैसा ही फल मिलता है; लेकिन इन सबमें गुरु विशेषत: पूज्य है। गुरु ही अभीष्ट सम्पन्न कराते हैं। गुरु ही विद्या-अग्नि तथा देवताविशेष का वर्णन करते हैं, उपदेश करते हैं। वे यथार्थ न्यायवादी तथा संदेह-निवारक होते हैं।।१-२।।

तस्योक्तानि च वाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चितैः। यथार्थं पुण्यपापेषु तदश्रुत्वा व्रजत्यधः ॥३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शिवं सम्पूजयेद् गुरुम्। नृभिः परोपकाराय आत्मनश्च विमुक्तये ॥४॥
देव्या यागविधानेन तस्य पूजा विधीयते। हेम-गौ-मणि-भूम्यादि दानानि विनिवेदयेत् ॥५॥

उनके द्वारा कहे गये वाक्य विचक्षण व्यक्ति के लिये श्रद्धापूर्ण होते हैं। गुरु के वाक्य में अश्रद्धा करने पर अधोगति होती है। इसलिये सब प्रकार से शिवस्वरूप गुरुपूजा अवश्य करनी चाहिये। परोपकार तथा अपनी मुक्ति हेतु देवीपूजन क्रम में गुरुपूजा मानव के लिये विहित है। स्वर्ण-गौ-मणि-भूमि आदि दान का उनको निवेदन करना चाहिये।।३-५।।

गृहमण्डपविद्यादि शय्यादण्डाशनादिभिः। देयं गुरोर्विशेषेण यद्यदिष्टतमं भुवि ॥६॥
तेन सर्वमवाप्नोति तुष्टेन नृपसत्तम। अशक्तेषु च सर्वेषु पापैर्विश्लेषितोऽपि वा ॥७॥
गुरोर्भावगतं वित्तं महद्भक्त्योपभोजयेत्। दक्षस्य यज्ञविघ्नं तु न तस्य कृतवेदिने ॥८॥
तथापि न चलेद्भक्तिः पार्थस्य च तपोधने। जनमेजयस्य यज्ञे तु अन्येषां च महात्मनाम् ॥९॥
भवन्ति विघ्नकर्त्तारो धैर्यात्तेषु वरप्रदाः ॥१०॥

इति श्रीदेवीपुराणे गुरुदेवपूजाविधिर्नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हे राजन्! गुरु का सन्तोष-सम्पादन करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इन सब दान में अशक्त होने पर गुरु के अभिप्रायानुसार धन को भक्ति के साथ उनको प्रदान करना चाहिये। दक्ष का यज्ञविघ्न भी गुरुपूजा न करने के कारण ही हुआ

था। नल, पार्थ, जनमेजय तथा अन्य महात्मागणों की भक्ति (गुरुभक्ति) किसी भी प्रकार से अपगत नहीं होती। इसी अविचलित भक्ति के कारण विघ्न करने वाले भी वरदाता हो जाते हैं।।६-१०।।

पञ्चविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपवाहन उवाच

जपाध्ययनयुक्तानामन्तराया भवन्ति ये। तेषां संशमनं तात श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

नृपवाहन कहते हैं—हे तात! जप तथा अध्ययनयुक्त व्यक्ति के समक्ष जो अन्तराय उपस्थित हो जाते हैं, उन सभी शान्ति का (तत्त्वतः) उपाय जानने की इच्छा है।।१।।

अगस्त्य उवाच

देव्याः संस्मरणं वत्स सर्वविघ्नविनाशनम्। अनेकधा समाख्यातं तथापि कथयामि ते ॥२॥
जपेन चात्मनः शुद्धिः अग्निकार्येण सम्पदः। सम्पदा चेह कर्माणि सिध्यन्ति मुक्तिदानि च ॥३॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे वत्स! देवी के स्मरण से सभी विघ्न दूर हो जाते हैं, इसे अनेक बार कहा है, तथापि अन्य उपाय भी कहता हूँ। जप से आत्मशुद्धि, अग्निकार्य द्वारा सम्पत्तिलाभ तथा सम्पत्ति के फल से मुक्तिजनक कर्म भी सिद्ध हो जाते हैं।।२-३।।

तस्माज्जपातिसंशुद्धो अग्निकार्यं समारभेत्। आश्रयं सर्वसिद्धीनामिहामुत्रफलप्रदम् ॥४॥
पूर्वोक्तलक्षणे कुण्डे पूर्वनाम्नि हुताशने। श्रुवद्रव्यादिसंभारसम्पन्नस्तु ततोऽग्नये ॥५॥

अतएव जपादि शुद्ध होने पर अग्निकार्य आरम्भ करना चाहिये। अग्निकार्य सभी सिद्धि (विघ्नशमन) का मूल है तथा इहलोक एवं परलोक में भी शुभ फल-जनक है। पूर्वोक्त लक्षण वाले कुण्ड में, पूर्वोक्त कहे गये अनल में स्रुक्-स्रुव द्रव्यसम्भूत होकर होमारम्भ करना चाहिये।।४-५।।

प्रोक्षयित्वा पुरा प्राज्ञः कुण्डं मन्त्रोदकेन तु। ततस्तु वेष्टयेत् पश्चात् कवचेन यथाक्रमम् ॥६॥
पुनरुल्लेखनं कुर्यादस्त्रबीजेन भो नृप। दक्षिणोत्तरवारुण्यां मध्ये तिस्रस्तथोत्तरे ॥७॥
पुनरभ्युक्षणं पश्चात् कवचेन विधानवित्। विस्तरं कुण्डमध्ये तु प्रणवेन पुनर्न्यसेत् ॥८॥
ततः शक्तिं न्यसेत्तस्मिन् तडित्सहस्रसन्निभाम्। क्रतुमयीं विशालाक्षीं सततं योनिमुद्रया ॥९॥
युगकेशवसं भिन्तं द्वितीयाश्रमसमं स्थितम्। केशवान्तर्हितो देवो देवी एषा हुताशने ॥१०॥
गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा अर्पयित्वा विधानवित्। देव्याः संतर्पणार्थाय ततो वह्निं प्रकल्पयेत् ॥११॥
तेनैव स विनिर्मुक्तं वेष्टगं सनियोजितः। स एव परसंज्ञस्तु वह्निः सर्वार्थसाधकः ॥१२॥
ताम्रपात्रे शरावे वा आनयित्वा हुताशनम्। अस्त्रेण प्रोक्षयेत्तत्तु पुनर्बीजं नियोजयेत् ॥१३॥
ततस्त्वावेष्टयेत् पश्चात् कवचेन यथाविधिः। स्थापयित्वा शिवा कुण्डे योनिमार्गेण निक्षिपेत् ॥१४॥
जयाख्येन तु मन्त्रेण हृदयन्तु पुनर्यजेत्। गर्भाधानं भवत्येवं जातवेदस्य पार्थिव ॥१५॥

पहले मन्त्रपूत जल से कुण्ड का प्रोक्षण, कवचमन्त्र से वेष्टन, दक्षिण-उत्तर-पश्चिम तथा मध्यभाग में अस्त्रबीज से पुनरुल्लेखन, कवचमन्त्र से उत्तर दिक् की ओर पुनः अभ्युक्षण, कुण्ड में प्रणव द्वारा विष्टरन्यास, योनिमुद्रा द्वारा सहस्रविद्युत् सन्निभा ऋतुमती विशालाक्षी-शक्तिन्यास, पुरुषन्यास, गन्ध-पुष्प द्वारा दोनों का पूजन, वह्निकल्पना, ताम्रपात्र अथवा शरावपात्र में वह्नि-आनयन, अस्त्रबीज द्वारा प्रोक्षण, पूर्वबीज प्रयोग, कवचमन्त्र से आवेष्टन, कुण्ड के ऊपर त्रिधा वह्नि-भ्रामण, जयमन्त्र द्वारा योनिपथ में अग्निस्थापन तथा नमो मन्त्र से पूजा—इस प्रकार से वह्नि का गर्भाधान कर्म सम्पन्न होता है।।६-१५।।

शिरसाभ्यर्चयित्वा तु जयां देवीं ततो यजेत्। कृतं पुंसवनं ह्येवं सीमन्तोन्नयनं शृणु ॥१६॥
अजितामर्चयेत् पूर्वं शिवाबीजं ततो यजेत्। सीमन्तकरणं वह्नेः कृतं भवति वेदिकाम् ॥१७॥
अस्त्रेण तु समभ्यर्च्य जपेद्देव्यापराजिताम्। जातकर्म्म कृतं ह्येवं ततो नाम विनिर्दिशेत् ॥१८॥
विघ्नेशमर्चयित्वा तु कवचस्य विनिर्दिशेत्। ततोऽस्य श्रावयेन्नाम देव्यग्निस्थः हुताशनः ॥१९॥

शिरोमन्त्र से पूजा करनी चाहिये तथा जयादेवी का यजन करना चाहिये। पुंसवन (वह्नि का पुंसवन) करके अजितापूजा एवं शिखावीज द्वारा वह्नि का सीमन्तोन्नयन सम्पादित करना चाहिये। अस्त्रमन्त्र द्वारा पूजा एवं अपराजिता देवी की पूजा से वह्नि का जातकर्म सम्पादन हो जाता है। कवच मन्त्र द्वारा पूजा तथा विघ्नेशपूजन से वह्नि का नामकरण सम्पादित हो जाता है। इसके बाद अग्नि को देवी नाम से अभिहित करना चाहिये।।१६-१९।।

नादेव्यो देव्याश्च कर्माणि साधयन्ति कदाचन। तेन कार्येण राजन्ते कार्यो देवाग्निपावकैः ॥२०॥

जो अग्नि अदेवी है (देवी नामयुता नहीं है), उससे कभी भी देवीकार्य साधित नहीं हो सकता। वह कार्य देवी के नाम से युक्त अग्नि द्वारा ही साधित होता है।।२०।।

जननेव च शूद्राश्च अभयाख्या नियोजने। बोधने अंकुशाद्या तु वीणाख्या सर्वकर्मसु ॥२१॥

जनन में अभया मुद्रा एवं नियोजन में भी अभया मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये। बोधन में अंकुश मुद्रा का तथा सर्वकर्म में वीणामुद्रा का प्रयोग करना चाहिये।।२१।।

एवं वह्निस्तु संस्कृत्य मुद्रामन्त्रैर्यथाक्रमम्। ततो होमं प्रकुर्वीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥२२॥
हृद्बीजे नास्तरेद्दर्भान् परिधींश्च निधापयेत्। प्रागग्र-उत्तराग्रांश्च पुनर्देवान् प्रपूजयेत् ॥२३॥
ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं मन्त्रेशं समन्वितम्। पूर्वादारभ्य गायत्र्या विष्टरस्थान् यथाक्रमम् ॥२४॥
आग्नेयीं दिशमाश्रित्य आज्यभागन्तु दापयेत्। अधिश्रयणं पुरा कृत्वा पश्चादुत्प्लवनादिकम् ॥२५॥

इस प्रकार से मुद्रा एवं मन्त्र से यथाक्रमेण अग्नि का संस्कार करने के पश्चात् शास्त्रविधि के अनुसार होम करना चाहिये। हृदय बीज (नमः) द्वारा दर्भ बिछाना, परिधिस्थापन, प्रागग्र उत्तराग्र विष्टरस्थ ब्रह्मादि देवगण की पूर्वादि क्रम से तथा गायत्रीद्वय की यथाक्रम से पूजा करनी चाहिये तथा अग्निकोण में घृतभाण्ड का तापन करना चाहिये। पहले अधिश्रयण करके तदनन्तर उत्प्लवनादि करना चाहिये।।२२-२५।।

प्रोद्देशमात्रकं दर्भं प्रोच्छिन्ने तु नखेन तु। अंगुष्ठानामिके गृह्य घृतस्योत्प्लवनं कुरु ॥२६॥

नखछिन्न प्रादेशमात्र कुश को अंगुष्ठ तथा अनामिका से उठाकर घृत का उत्प्लवन करना चाहिये।।२६।।

ततः संप्लवने मन्त्री सम्मुखं घृतमुत्पुनः। दर्भचूडिकया सम्यगरण्योक्तं ज्वलं तया।
नैराजनन्तु बाह्येन उदकेन स्पृशेत्ततः ॥२७॥
श्रुवस्रुचां प्रतापाग्नौ परिगृह्य समन्ततः। संस्पृश्य च कुशं सर्वान् अग्रमध्यानलौकिकान् ॥२८॥
स्थापयेद्दक्षिणे पार्श्वे आज्यादीनि तथोत्तरे। हृदयेन विधानज्ञः सर्वकर्म समारभेत् ॥२९॥

तदनन्तर घृतसम्प्लवन, ज्वलन्त दर्भजूटिका द्वारा नीराजन, तदनन्तर उदकस्पर्श, अग्नि में स्रुक्-स्रुव का तापन, मार्जन, कुश से अग्र-मध्यादि का स्पर्श करके दक्षिणपार्श्व, उत्तरपार्श्व में यथासम्भव आज्यादि द्रव्य रखना चाहिये। हृदयमन्त्र से समस्त कर्म का आरम्भ करना चाहिये।।२७-२९।।

ततोऽपि धारयेद्वस्त्रान् देव्याभिस्त्वनुपूर्वशः। पुनरुद्घाटनं कुर्यादस्त्रबीजेन पार्थिवः ॥३०॥
निष्कृतिं तु महास्त्रेण दत्त्वा सर्पिर्निरूपयेत्। शिवे सोमे तथा वह्नौ ततस्त्रिधा परिकल्पयेत् ॥३१॥
तर्पयित्वा ततो वह्निं दत्त्वा पूर्णाहुतिं क्रमात्। ततस्त्वासनविन्यासं प्रागुक्तं परिकल्पयेत् ॥३२॥
पूर्वोक्तेन विधानेन गन्धपुष्पैरनुक्रमात्। पूजयित्वा महादेव्या ततो होमं समाचरेत् ॥३३॥
बहुहव्ये धने शुद्धे सुसमिद्धे हुताशने। विधूमे लेलिहाने च वह्निना यः समिध्यति ॥३४॥
मृत्युंजयविधानेन क्षीरहव्यो प्रपूजयेत्। विरेजो विगते वत्स देवीनां संमता भवेत् ॥३५॥

इति श्रीदेवीपुराणे होमविधिर्नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अभिधारण, उद्घाटन, आज्य-निरूपण, शिव-सोम, वह्निकल्पना, वह्निप्रीणन, पूर्णाहुतिदान, आसनविन्यास, गन्ध-पुष्पादि द्वारा महादेवी का पूजन करके देवीहोम करना चाहिये। अनेक हव्य, अनेक ईन्धनयुक्त सुसमिद्ध विधूम लेलिहान हुताशन में होम करने से सिद्धि प्राप्त होती है। मृत्युञ्जय विधानानुसार दुग्ध की हवि से पूजा करने पर साधक देवीगण का प्रीतिभाजन हो जाता है।।३०-३५।।

षड्विंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय नृपतिं देव्या धर्मे नियोजयेत्। तन्नियोगादयं लोकं शुचिः स्याद्धर्मतत्परः ॥१॥
यं यं धर्मं नरश्रेष्ठः समाचरति नित्यशः। तं तमाचरते लोकस्तत्प्रामाण्याद् भयेन च ॥२॥
धर्मनिष्ठः कृते राजा धर्मपादैकशासितः। युगत्रयं स विज्ञेयस्तस्माद्राजा चतुर्युगम् ॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—जगत् के मंगलार्थ नृपति को देवी की आराधनादि धर्मकार्य में नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि इसी से सभी लोग पवित्रात्मा तथा धर्मपरायण हो जाते हैं। राजा सदैव जिन-जिन धर्म का आचरण करते हैं, सभी उसे प्रमाण मानकर अथवा राजभय से भीत होकर उन-उन धर्म का ही अनुष्ठान करते हैं। सत्ययुग में नृपति पूर्णतः धर्मनिष्ठ थे। त्रेतादि युगत्रय में क्रमशः एक-एक धर्मपाद से धर्महीन होते गये। इसी कारण से राजा धर्मचतुष्टय का मूल कहा जाता है।।१-३।।

धर्मज्ञः सततं राजा प्रजां न्यायेन पालयेत्। न्यायतः पाल्यमानास्तु ह्यायान्ति स्वामिनं शिवम् ॥४॥
धर्ममर्थञ्च कामञ्च मोक्षं च प्राप्तुमिच्छते। तत्तदाप्नोत्ययत्नेन प्रजाः धर्मेण पालयेत् ॥५॥

राजा को सतत् धर्मतत्पर रहकर सर्वदा यथाविधि प्रजागण का पालन करना चाहिये। प्रजागण न्यायानुसार पालित होने से ही राजा की मंगल-कामना करते हैं। राजा द्वारा धर्मानुसार प्रजापालन करने पर वह धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तथा अन्य जो कुछ भी अभीष्ट होता है, उसे वह सभी अनायास ही मिल जाता है। इसलिये उसे यत्नपूर्वक प्रजा का धर्मतः पालन करना चाहिये।।४-५।।

प्रजासु धर्मयुक्तासु चतुर्थांशं भजेन्नृपः । अधर्मिष्ठाष्वधर्मस्य चतुर्थांशेन लिप्यते ॥६॥
तस्मादधर्मे मज्जंतं लोकं राजा निवारयेत् । धर्मे नियोजयेन्नित्यमुदयार्थं विचक्षणः ॥७॥

प्रजावर्ग के धार्मिक होने पर राजा उनके धर्म का एक चतुर्थ भाग तथा अधर्माचारी होने पर अधर्म का चतुर्थांश भाग प्राप्त करता है। इसलिये दोनों के कल्याणार्थ अधर्माचरण करने वालों को अधर्म से निवृत्त करना तथा धर्मपथ में प्रवृत्त करना विचक्षण राजा का कर्त्तव्य है।।६-७।।

धर्मशीले नृपे यस्मात् प्रजा स्वधर्मतत्पराः । नृपतिं बोधयेत्तस्मात् सर्वलोकानुकम्पया ॥८॥
उपायेन भयाल्लोभान्मूर्खं छन्देन बोधयेत् । मन्त्रौषधिक्रियाद्यैर्वा लब्धं धर्मं नियोजयेत् ॥९॥
स चेदन्यायतः पृच्छेन्न तस्योपदिशेद् गुरुः । यः शृणोति शिवं ज्ञानं न्यायतस्तत्प्रवक्ति च ॥१०॥

इसी कारण राजा के धर्मशील होने पर प्रजावर्ग भी धर्मपरायण हो जाती है। इसीलिये सर्वलोक पर अनुकम्पा हेतु राजा को भय अथवा लोभप्रदर्शन द्वारा किंवा अनुवृत्ति अथवा मन्त्रौषधि प्रयोगादि चाहे जिस भी से उपाय हो, जिससे जनता का मंगल हो सके, वह उपाय करना चाहिये; जिससे प्रजा आनन्दमय हो सके। शिक्षादान तथा धर्म में लगाना गुरु का कर्त्तव्य है; लेकिन यदि अन्यायपूर्वक कोई कुछ जानना चाहे, तब ऐसे व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिये। जो न्यायानुसार मंगलमय ज्ञान के सम्बन्ध में पूछता हो, उसे ही बताना चाहिये।।८-१०।।

तौ गच्छतः शिवं ज्ञानं नरकं तद्विपर्यये । तस्माद्भक्तिं समास्थाय गुरुदेव्या प्रपूजने ॥११॥
विद्यायाः परमो यत्नः कार्यः शास्त्रस्य वेदने । श्रद्धापूर्वाः स्मृता धर्मा श्रद्धामध्यान्तसंस्थिता ॥१२॥

वे दोनों (गुरु तथा शिष्य) शिवलोक प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत होने पर दोनों ही नरकगामी होते हैं। इसलिये गुरु तथा देवी की पूजा में श्रद्धायुक्त होकर विद्यासम्बन्धित शास्त्र जानने के लिये शिष्य को परम यत्नशील होना चाहिये (जो गुरु तथा शास्त्र के प्रति श्रद्धा रखता है, वही ज्ञान प्राप्त कर सकता है)। एकमात्र श्रद्धा ही समस्त धर्मों के आदि-मध्य-अन्त में स्थित है।।११-१२।।

श्रद्धानिष्ठा प्रतिष्ठाश्च धर्माः श्रद्धैव कीर्त्तितः । श्रुतिभावगताः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः ॥१३॥
श्रद्धाभावेन गृह्यन्ते न तर्केन न चक्षुषा । कायक्लेशेन बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः ॥१४॥
धर्मः संप्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि । श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानं हुतं तपः ॥१५॥

श्रद्धा ही धर्म का आधार है। श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है। वास्तव में बुधगण श्रद्धा को ही धर्म कहते हैं। वेदोक्त परम सूक्ष्म प्रकृति-पुरुष ईश्वर को मात्र श्रद्धा से ही साक्षात्कृत किया जा सकता है। उसे तर्क अथवा चक्षु से नहीं पाया जा सकता। शरीर को कष्ट देकर अथवा अर्थ प्रदान करके भी सूक्ष्म धर्म को नहीं पाया जा सकता। श्रद्धाविहीन होकर सूक्ष्म धर्म की प्राप्ति देवता भी नहीं कर सकते। यह श्रद्धाधर्म परम सूक्ष्म है। श्रद्धा ही ज्ञान तथा श्रद्धा ही होमकार्य एवं तप भी है।।१३-१५।।

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् । सर्वस्वं जीवितञ्चापि यदि दद्यादश्रद्धया ॥१६॥
नाप्नुयात्स फलं किञ्चित् श्रद्धधानस्ततो भवेत् । एवं श्रद्धा समास्थाय देव्यागुरुहुताशने ॥१७॥
पठंस्तवोत्तमं वत्स सर्वकामानवाप्नुयात् ।

श्रद्धा ही स्वर्ग है, मोक्ष है। श्रद्धा ही परिदृश्यमान अखिल जगत् है यदि कोई श्रद्धारहित होकर अखिल सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपना जीवनपर्यन्त अन्य को प्रदान कर देता है, तथापि वह उसका कोई फल नहीं पा सकता। इसी कारण से सभी को श्रद्धावान होना उचित है। हे वत्स! जो कोई गुरु तथा अग्नि के प्रति इस प्रकार से श्रद्धान्वित होकर देवी भगवती के स्तव का पाठ करता है, उसे सभी इच्छित फल प्राप्त हो जाते हैं।।१६-१७।।

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धचारणसेविते ॥१८॥
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा तपस्तप्यैस्तपोधनः। अतिदीर्घस्य कालस्य पावकस्य सुतो बली ॥१९॥
तमुवाच महात्मानमृषिं परमधार्मिकम्। ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्त्तते ॥२०॥
एवमुक्तः कुमारेण वसिष्ठश्च महामुनिः। प्रत्युवाच तदा हृष्टो भावितेनान्तरात्मना ॥२१॥

पूर्व काल में सिद्ध-चारण द्वारा सेवित रम्य हिमालयशिखर पर धर्मात्मा तपोधन वशिष्ठ ने कार्त्तिकेय को प्रसन्न करने हेतु तप प्रारम्भ किया। बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भगवान् पावकात्मज महाबली कार्त्तिकेय प्रसन्न होकर वहाँ आये तथा परम धार्मिक महात्मा वशिष्ठ से कहा—हे धार्मिकश्रेष्ठ! तुम्हारी क्या इच्छा है, कहो। महामुनि वशिष्ठ ने कृपापूर्वक यह कहे जाने पर आनन्द से आर्द्र होकर भक्तिपूर्वक इस प्रकार कहा।।१९-२१।।

वसिष्ठ उवाच

यदाहं समनुग्राह्यस्तव दैत्यनिषूदन। सर्वकामप्रदं नित्यं स्तवराजं ब्रवीहि मे ॥२२॥
एवमुक्तो वसिष्ठेन कुमारस्तु महातपाः। उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा प्राञ्जलिर्नियतासनः ॥२३॥
नमः सुराधिपतये देवाय परमात्मने। नमस्कृत्य तथा रुद्रं देवीञ्च परमेश्वरीम् ॥२४॥

महर्षि वशिष्ठ कहते हैं—हे दैत्यनिसूदन! यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ, तब आप मुझसे सर्वकामप्रद दिव्य स्तवराज कहिये। महातपा भगवान् स्कन्द कुमार से वशिष्ठ द्वारा यह कहने पर भगवान् ने आचमन करके पवित्र अन्तःकरण से अंजलि-बद्ध होकर 'नमः सुराधिपतये भवाय परमात्मने' कहकर भगवान् रुद्र तथा देवी परमेश्वरी को प्रणाम किया।।२२-२४।।

अमृतत्वं भवेद्येन तं ब्रवीमि महामुने। सुखासीनं महात्मानं महासेनं महाद्युतिम् ॥२५॥
विनयेनोपसंगम्य शिवमभिप्रणम्य च। उपसंगृह्य चरणौ वसिष्ठः परिपृच्छति ॥२६॥

तदनन्तर वे कहने लगे—हे महामुने! जिससे सभी अमरत्व प्राप्त कर सकें, मैं ऐसे स्तवराज को कहता हूँ। तब महात्मा वशिष्ठ उन सुखासनासीन महात्मा महाद्युति महासेन भगवान् स्कन्द के समीप विनीत भाव से उपस्थित होकर अवनत होकर प्रणामोपरान्त उनके चरणद्वय को पकड़ कर कहने लगे।।२५-२६।।

देवाश्चैव तु संवादं शिवस्य च महात्मनः। उत्पत्तिः कारणं पृष्टं पार्वत्याः किल शंकर ॥२७॥
तन्ममाचक्ष्व निखिलं मयूरवरवाहनः। एवंपृष्टस्तु ऋषिणां स्कन्दो वचनमब्रवीत् ॥२८॥

वशिष्ठ कहते हैं—हे मयूरवाहन! पूर्वकाल में भगवती पार्वती ने शंकर से अपनी उत्पत्ति का कारण पूछा था, आप अब उस हर-पार्वती संवाद का विशेष रूप से वर्णन कीजिये। भगवान् कार्तिकेय ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर उस हर-पार्वती संवाद को कहने लगे।।२७-२८।।

स्कन्द उवाच

शृणुष्वावहितो विप्र यन्मां त्वं परिपृच्छसि। ममापि कथितं पूर्वं ज्वलनेन महात्मना ॥२९॥
पार्वत्या सह संवादं शर्वस्य च महात्मनः। तदहं कीर्त्तयिष्यामि त्वयि सर्वं महामुने ॥३०॥
कैलाशशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। तरुणादित्यसंकाशे तप्तकाञ्चनसंप्रभे ॥३१॥
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले। जाम्बुनदमये दिव्ये नानारत्नविभूषिते ॥३२॥
नानाद्रुमलताकीर्णे अप्सरो गीतवादिते। क्रीडते भगवाँस्तत्र सपत्नीको वृषध्वजः ॥३३॥

भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे विप्र! तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं उस विषय का वर्णन कर रहा हूँ। एकाग्रचित्त से श्रवण करो। हे महामुने! पूर्वकाल में भगवान् अग्निदेव ने मुझसे इस हर-पार्वती संवाद का वर्णन किया था। मैं अब वह सब तुमसे

कहता हूँ। हे महामुने! नाना धातु से विचित्रित रमणीय कैलासशिखर पर भगवान् वृषध्वज भगवती के साथ नित्य क्रीड़ारत रहते हैं। वह नवसूर्य के समान तप्तकाञ्चन प्रभायुक्त हैं। उस पर आरोहण करने के सभी सोपान हीरे तथा स्फटिक मणि से युक्त हैं। वह स्वर्णमय शृङ्ग नानारत्नों से भूषित है तथा विविध वृक्षलताओं से युक्त है। उसका सभी क्षेत्र जो समतल है, विचित्र शिलापट्टमय है तथा यहाँ जम्बूनद भी है। सभी दिव्य स्थान नानारत्नभूषित हैं। यह स्थान सर्वदा अप्सराओं की संगीतध्वनि से गूंजता रहता है।।२९-३३।।

स्तूयमानो महातेजो देवदानवकिन्नरैः। रराज सा महादेवी रुद्रैरात्मसमैर्वृतः ॥३४॥
वरदः शूलधृग्देवः सर्वभूतग्रहाश्रयः। तमासीनं महात्मानं देवीवचनमब्रवीत् ॥३५॥

सर्वभूत तथा ग्रहों के आश्रय, वरप्रद, शूलपाणि, महातेजा, भगवान् महेश्वर आत्मतुल्य रुद्रगण से परिवृत घिरे हुये स्थित हैं। वे देवता, दानव तथा किन्नरगण द्वारा स्तूयमान होकर सतत् वहीं विराजित रहते हैं। तभी उन महात्मा से देवी ने यह वचन कहा।।३४-३५।।

देव्युवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रश्नमेकं सुरेश्वर। तत्समाचक्ष्व देवेश अत्र मे संशयो महान् ॥३६॥
उपपन्नास्मि देवेशं ब्रूहि तत्त्वेन शंकर। देव्याश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य सुचिरं प्रभु ॥३७॥
उवाच मधुरां वाणीं ब्रूहि किं करवाणि ते। अहं ते कथयिष्यामि यन्मां पृच्छसि शोभने ॥३८॥
वर्त्तमानमतीतञ्च भविष्यं वरवर्णिनि ॥३९॥

देवी कहती हैं—हे भगवन् सुरेश्वर! मेरा एक प्रश्न है, मैं उस विषय में महासन्देहयुक्त होकर उसके प्रकृत तत्त्व को सुनने की इच्छा रखती हूँ। अतएव हे शंकर! हे देवेश! आप यथार्थ रूप से उस सम्बन्ध में कहने की कृपा करिये। भगवान् शंकर ने देवी का यह वाक्य सुनकर कुछ क्षण हँसने के बाद मधुर वचन में कहा—हे शोभने! मुझे क्या करना है, कहो। हे वरवर्णिनि! तुम वर्त्तमान-अतीत तथा भविष्यत् के विषय में जो भी पूछोगी, मैं उसका वर्णन करूँगा।।३६-३९।।

देव्युवाच

कुतोऽहं कस्य वा देव उत्पन्नास्मि कथं प्रभो। ऐश्वर्यमतुलं चैव कुत एतद् ब्रवीहि मे ॥४०॥
मातरं पितरं चैव स्वजनान् बान्धवानपि। एतदिच्छामि विज्ञातुं कथयस्व महेश्वर ॥४१॥

तब देवी कहती हैं—हे देव! मैं कहाँ से आई हूँ? मैं किसकी हूँ? कैसे उत्पन्न हुई हूँ? मेरा यह अतुल ऐश्वर्य कैसे संघटित हो गया? कृपया कहिये। हे प्रभो! मैं अपने माता-पिता, बन्धु-बान्धव के सम्बन्ध में जानना चाहती हूँ। अतएव यह सब प्रकाशित करिये।।४०-४१।।

श्रीभगवानुवाच

न तेऽस्त्यविदितं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु सुन्दरि। त्रैलोक्यज्ञानसंपन्ने त्वया विज्ञापितो ह्यहम् ॥४२॥
अथवा शृणु धर्मं तं पृष्टोऽहं यत्त्वया शुभे। उत्पत्तिञ्च प्रभावञ्च तव वक्ष्यामि सुव्रते ॥४३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे सुन्दरि! त्रिलोकी में तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है; क्योंकि तुम त्रिलोकी में ज्ञानमयी हो, तथापि हे शुभे! तुम जब मुझसे जानना चाहती हो, तब मैं तुमसे तुम्हारी उत्पत्ति तथा प्रभाव के विषय में कहता हूँ।।४२-४३।।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥४४॥

हे सुव्रते! श्रवण करो। पूर्व में यह समस्त जगत् अन्धकारमय था। इसमें किसी रूप की स्थिति नहीं थी। कोई भी इसे जानता नहीं था। यह तर्कातीत था तथा सर्वप्रकार से प्रसुप्तवत् स्थित था।।४४।।

न देवा दानवा वापि न भूमिर्वानिलोऽनलः। न सूर्यश्चन्द्रमा वापि नाकाशं सलिलं तथा ॥४५॥
विष्णुः प्रजापतिर्वापि ब्रह्मा नैव तु जायते। तत्राहं मनसा चिन्त्यं प्रजाकामो मनस्विनी ॥४६॥

तब यहाँ देव-दानव-भूमि-अनल-अनिलादि कुछ भी नहीं था। चन्द्र-सूर्य-सलिल-आकाश-विष्णु-प्रजापति-ब्रह्मा किसी ने भी तब जन्म नहीं लिया था। हे मनस्विनि! तब मैंने सृष्टि की कामना से युक्त होकर चिन्तन किया।।४५-४६।।

दक्षिणांगेऽसृजद् वायुं ब्रह्माणं सहुताशनम्। वामपार्श्वे तथा विष्णुं चन्द्रञ्चैव अपाम्पतिम् ॥४७॥

तब मैंने अपने दक्षिणांग से वायु, ब्रह्मा, अग्नि का सृजन किया तथा अपने वाम पार्श्व से विष्णु-चन्द्र तथा वरुण को सृजित किया।।४७।।

सृष्ट्वैता देवता देवि नाहं प्रीतिमुपागतः। ततोऽहं चिन्तयन् भूयः स्वां तनुं स्वेन तेजसा ॥४८॥
ततश्चिन्तयमानस्य प्रोद्भूतमर्च्चिमण्डलम्। प्रोद्भूतन्तु मम ध्यानाद् घोररूपं भयावहम् ॥४९॥
दुष्प्रेक्ष्यं ब्रह्मविष्णुभ्यामनिलानलयोस्तथा। ततस्त्वां देवदेवेशि ज्वालामालान्तरे स्थिताम् ॥५०॥
पश्यामि परया दृष्ट्या ज्वलन्तीं स्वेन तेजसा। कालरात्रिं महामायां शक्तिशूलासिधारिणीम् ॥५१॥
सर्वायुधधरां रौद्रीं खट्वापट्टिशधारिणीम्। करालदंष्ट्रां विम्बोष्ठीं सर्वलक्षणसंयुताम् ॥५२॥

हे देवि! इन सभी देवगण की सृष्टि करके भी मुझे तृप्ति न हो सकी। अतः मैंने पुनः अपने-अपने तेजोमय शरीर का चिन्तन करना प्रारम्भ किया, तभी मेरे उस ध्यान के कारण भयङ्कर भीषणमूर्त्ति तथा अर्चिमण्डल प्रादुर्भूत हो गया। उस समय ब्रह्मा-विष्णु-वायु तथा अग्नि भी उसकी ओर दृष्टिपात कर सकने में समर्थ नहीं थे। हे देवदेवेशि! तब मैंने ज्ञानमय नेत्रों से इस ज्वालामाला-समाकुल तेजोमण्डल में स्थित अपने तेज से देदीप्यमान, शक्ति-शूल-असिरूप सर्वायुधधारिणी, खट्वा-पट्टिशधारिणी, कराल दाँतों वाली, विम्बौष्ठी सर्वलक्षणान्विता कालरात्रि महामाया को देखा।।४८-५२।।

सूर्यकोटिसहस्रेण अयुतायुतवर्च्चसा। विचित्राभरणोपेतां दिव्यकाञ्चनभूषिताम् ॥५३॥
दिव्याम्बरधरां दीप्तां दीप्तकाञ्चनसंप्रभाम्। मुकुटेन विचित्रेण हेमरत्नविभूषिताम् ॥५४॥

वे विचित्र अलंकारों से अलंकृत एवं दिव्य काञ्चनभूषित थीं। उनके मुकुट विचित्र हेमरत्नों से विभूषित थे। उनकी देहप्रभा करोड़ों सूर्य के समान समुज्ज्वल थी।।५३-५४।।

कुण्डलाभ्यां विराजन्तीं हारकेयूरभूषिताम्। दिव्याम्बरधरां तीव्रामुद्यतास्त्रविराजताम् ॥५५॥
सर्वैश्वर्यमयीं देवीं कालरात्रिमिवोद्यताम्। लीलाधरां महाकायां प्रेञ्खत्काँचीगुणप्रभाम् ॥५६॥
खड्गमेकेन हस्तेन करेणान्येन खेटकम्। धनुरेकेन हस्तेन शरमन्येन बिभ्रतीम् ॥५७॥
तर्ज्जयन्तीं त्रिशूलेन ज्वालामालाकृतिप्रभाम्। एतद्रूपं तदा दृष्ट्वा भवत्या भवनाशिनि ॥५८॥
सर्वे सुरगणा भीता मां तदा शरणं गताः। न शक्नुवन्ति तां द्रष्टुं निमिषन्तोऽपि ते सुराः ॥५९॥

वे कुण्डल, हार-केयूर से भूषित थीं। वे दिव्याम्बरधारिणी थीं। वे तीव्र तथा प्रहार करने के लिये उद्यत अस्त्रों से युक्त थीं। उन सर्वैश्वर्यमयी देवी को देखने मात्र से विदित होता था, मानों वे प्रकाशमान कालरात्रि ही हों। वे देवी लीला का आधार, महाकाय तथा कटितट पर काञ्चीदाम से युक्त थीं। उनके एक हाथ में खड्ग एवं अन्य एक हाथ में खेटक था। अन्य हाथ में धनु, तदतिरिक्त हाथ में शर धारण किये थीं तथा त्रिशूल द्वारा तर्जन करती जा रही थीं। उनकी देहप्रभा ज्वालामाला से विभूषित थी। हे भवनाशिनि! उस समय तुम्हारे उस रूप को देखकर समस्त देवगण भयभीत होकर मेरी शरण में आ गये। वे तुम्हारे उस रूप को एक निमेष के लिये भी सह सकने में असमर्थ हो गये थे।।५५-५९।।

तेजसा मोहितास्तुभ्यं ज्ञानयोगबलेन च। अथ त्वैश्वर्यमेतत्ते तदातीवभयावहम् ॥६०॥
दृष्ट्वा भीतं विसंज्ञन्तु त्रैलोक्यं सचराचरम्। ततो मूढा महात्मानो ब्रह्मविष्णुरनिलानलाः ॥६१॥
तेजसा मोहितास्तुभ्यं न प्रवदन्ति तेऽसुराः। ततो मया महादेवि स्तवमेतदुदाहृतम् ॥६२॥
देवानां हितकामाय तवाप्याराधनाय च। अमृतं ज्ञानमुत्पाद्य बुद्धितेजोबलेन च ॥६३॥
तेभ्यश्चैव प्रदत्तं मे स्तवमेतत्तु शोभने। उत्तिष्ठ त्वं सुरेन्द्रेशो गृह्यतां स्तोत्रराड् त्विदम् ॥६४॥

वे ज्ञानबल तथा सत्त्वबल से युक्त थे, तथापि तुम्हारे तेज से मोहित होकर तुम्हारे उस ऐश्वर्यमय रूप की ओर न तो देख सकते थे, न ही पलकें हटा सकते थे; अत: सचराचर त्रिलोक में वे सभी भयग्रस्त हो गये। तदनन्तर ब्रह्मा-विष्णु-अनल तथा अनिलदेव तुम्हारे तेज से मोहित होकर मृतप्राय: हो गये। वे कुछ बोल ही नहीं सकते थे। हे महादेवि! तब मैंने सुरगण के हितार्थ तथा तुम्हारी आराधनार्थ स्तवराज का स्मरण किया। हे शोभने! अपने ज्ञान तथा तेजबल से उनको यह स्तवराज प्रदान किया और कहा—हे सुरोत्तमगण! उठो, यह स्तवराज ग्रहण करो।।६०-६४।।

येन द्रक्ष्यसि देवेशीं वरान् श्रेष्ठान् प्रयच्छति। तेषां पुरा मया दत्तं स्तवराजं महायशे ॥६५॥
ब्रह्मविष्णुपुरस्कृत्य सर्वेषां देवतास्तथा। ततस्तु प्रणता सर्वे मया सार्धं वरानने ॥६६॥
विनयेनोपसंगम्य शिरसाभिप्रणम्य च। प्रयता नियतात्मानः सर्वे चामिततेजसः ॥६७॥
जपन् स्तोत्रं वरं पुण्यं येन सर्वसुखास्तदा ॥६८॥

इसके प्रभाव से तुमलोग महादेवी का दर्शन कर सकोगे। वे महादेवी निखिल देववृन्द को यथाभिलषित वर प्रदान करती हैं। इस प्रकार से मैंने ब्रह्मा-विष्णुप्रभृति देवगण से कहकर उनको स्तवराज प्रदान किया। वे सभी अतीव तेजस्वी देवगण मेरे साथ प्रणत होकर विनययुक्त हो तुम्हारे सामने आये तथा अवनत मस्तक हो नमस्कार करते-करते इस पवित्र स्तवराज का पाठ करने लगे, जो श्रेष्ठ पुण्य तथा सर्वसुख-प्रदाता है।।६५-६८।।

स्कन्द उवाच

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठ सर्वदेवगणैर्वृतः। नमस्कृत्य महादेवीं स्तवमेतदुदाहरन् ॥६९॥
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च। नामभिः कीर्त्तितैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥७०॥

भगवान् स्कन्द कहते हैं—सुरवर महेश्वर ऐसा कहकर समस्त देवताओं से परिवृत होकर महादेवी को प्रणाम करके इस स्तव का गायन करने लगे, जिसमें देवी के भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमानकालीन समस्त नाम तथा उनकी समस्त कीर्त्ति का उल्लेख था।।६९-७०।।

भगवानुवाच

नमोऽस्तु ते महाविद्ये अजिते तेजगामिनि। सांख्ययोगोद्भवे वीरे वरदे देवपूजिते ॥७१॥
त्वं गतिः सर्वभूतानामव्यक्ताव्यक्तरूपिणी। कालरात्रिर्महारात्रिः कालक्षयकरी ध्रुवा ॥७२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे महाविद्ये! हे अजिते! आप अपने तेज द्वारा सर्वत्र गमन करती हैं। आप सांख्ययोगोद्भवा हैं, वीर, वरद तथा देवपूजिता हैं। आप सर्वभूतसमूह की गति, व्यक्त-अव्यक्तरूपा हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप ही कालरात्रि, महारात्रि एवं नित्या हैं। आप ही कालक्षयकारिणी हैं।।७१-७२।।

ज्वालाभरणदीप्ताङ्गी ज्वालाज्वालितलोचना। भूतधात्री च भूतानामगतिर्गतिरेव च ॥७३॥
शरण्ये सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां न संशयः। नमोऽस्तु ते महाभोगे मम ध्यानाद्विनिःसृते ॥७४॥

आपका मुखमण्डल प्रदीप्त उल्कापिण्डवत् जाज्वल्यमान है। प्रदीप्त देहप्रभा ज्वालामाला के समान परिव्याप्त प्रज्वलित अग्नि के समान समुज्ज्वल है। आपके लोचनत्रय प्रज्वलित अग्निशिखा के समान प्रदीप्त हैं। आप भूतधात्री तथा भूतसमूह की गति हैं। आप ही उनकी आश्रय हैं। आप सभी देवताओं को शरण देने वाली हैं। आप मेरे ध्यान से प्रकट हैं। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ।।७३-७४।।

सूर्यकोटिसहस्राभे अग्निज्वालासमप्रभे। हेमदण्डधरे रौद्रि त्राहि भक्तान् सुरेश्वरि ॥७५॥
हेमरत्नविचित्राङ्गी असितासितलोचने। त्वं हि धात्री विधात्री च जननी ब्रह्मणः शुभे ॥७६॥
विष्णुमाता महातेजा त्वमेव परिपठ्यसे। नमोऽस्तु ते शतवक्त्रे सहस्रचरणेक्षणे ॥७७॥

हे सुरेश्वरि! आप की प्रभा प्रज्वलित अग्निशिखा के समान है। आपकी दीप्ति कोटि-कोटि सूर्य के तुल्य है। आपके करतल में हेमदण्ड विराजित है। हे रौद्री! आप भक्तगण की रक्षा करिये। हे शुभे! आपके अंग हेमरत्नमय भूषण से शोभित हैं। सभी आपको धात्री-विधात्री, ब्रह्मा-विष्णु की जननी कहते हैं। आपके सैकड़ों मुख तथा सहस्रों चरण हैं एवं आप सहस्रनेत्रा हैं। आपको प्रणाम है।।७५-७७।।

चतुर्दंष्ट्रे महाजिह्वे हिमवच्छिखरालये। कैलाशनिलये देवि मेरुमन्दरवासिनि ॥७८॥
विन्ध्ये च वससे नित्यं मलये गन्धमादने। पूज्यसे देवदेवेशि ऋषिभिर्देवमानवैः ॥७९॥

हे देवि! हे चतुर्दंष्ट्रे! हे महाजिह्वे! आप सर्वदा हिमालय के शिखरस्थ आलय में, कैलासधाम में, मेरु-मन्दर-विन्ध्य पर्वतों पर, मलय पर्वत पर गन्धमादन पर्वत पर वास करती हैं। हे देवदेवेशि! वहाँ ऋषि-देवता-मानव आपका पूजन करते रहते हैं।।७८-७९।।

तेभ्यश्चैव वरं दिव्यं देवि त्वन्तु प्रयच्छसि। सृष्टिरक्षणसंहारं त्वमेव परिकुर्वसि ॥८०॥
भूतं भव्यं भविष्यञ्च त्वं पदं परमं स्मृतम्। अर्च्यसे स्तूयसे चैव दैवतैर्मत्पुरोगमैः ॥८१॥

हे देवि! आप भी उनको वांछित वर प्रदान करती हैं। आप ही सृष्टि, सृष्टिरक्षण तथा सृष्टिसंहारक हैं। भूत-भविष्य-वर्त्तमान, सब आप ही हैं। सभी आपको ही परमपद कहते हैं। मैं समस्त देवगण के साथ सतत् आपकी ही स्तुति तथा अर्चना करता रहता हूँ।।८०-८१।।

त्वन्तु ह्रीः श्रीर्द्युतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्तिः सरस्वती। धृतिर्मतिर्गतिश्चैव मोक्षमार्गावलम्बिनी ॥८२॥
वरदा च प्रसन्नानामिष्टमार्गानुसारिणी। ऋद्धिर्वृद्धिः परा मूर्त्तिर्दक्षकन्यापराजिता ॥८३॥

हे देवि! आप ही ह्री, श्री, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, सरस्वती, स्वधा, स्तुति, धृति, मति तथा गति हैं। जगत् के हितार्थ आप ही सतत् मोक्षमार्गस्थिता हैं। सभी शरणागतगण आपसे यथेच्छ वर प्राप्त करते हैं। आप अपने अभिलषित मार्ग पर विचरणशील रहती हैं। आप ही ऋद्धि-वृद्धि-परामूर्त्ति-दक्षकन्या तथा अपराजिता हैं।।८२-८३।।

अनुसूया क्षमा लज्जा कीर्त्तिर्दीप्तिर्वपुःश्रिया। शाश्वती भूतमाता च लोकधात्री ह्यनिन्दिता ॥८४॥
विशिष्टा वरदा मान्या पवित्रा लोकसम्मता। स्मृतिः प्रज्ञा श्रुतिर्धीरा विमला ह्यनिलानला ॥८५॥

आप ही अनुसूया, क्षमा, लज्जा, कीर्त्ति, दीप्ति, वपुःश्रिया, शाश्वती, भूतमाता, लोकधात्री, अनिन्दिता, विशिष्टा, वरदा, मान्या, पवित्रा, लोकसम्मता, श्रुति, श्रुतिप्रज्ञा, धीरा, विमला, अनिला, अनला हैं।।८४-८५।।

अधृष्या शाश्वती धन्या कृष्णा श्यामारुणा सिता। प्रकृतिर्महती ज्योतिर्धर्मकामार्थसाधिका ॥८६॥
गणमाताम्बिका पुण्या वरा वागीश्वरी तथा। तुष्टिः पुष्टिश्च शान्तिश्च शिवा चाक्षरमालिनी ॥८७॥
ददामि विविधान् भोगान् प्रणतेषु विशेषतः। मूढ़ान् बोधयसे नित्यं येषां प्रीतास्मि सुव्रते ॥८८॥

आप ही अधृष्या, शाश्वती, धन्या, श्यामा, कृष्णा, अरुणा, असिता, प्रकृति, महती, ज्योति, धर्मकामार्थसाधिका, गणमाता, अम्बिका, पुण्या, वरा, वागीश्वरी, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, शिवा तथा अक्षरमालिका कही जाती हैं। हे सुव्रते! आप प्रणत व्यक्तियों को विशेष रूप से विविध भोग्य वस्तु प्रदान करती हैं। आप जिसपर प्रसन्न हो जाती हैं, वह अत्यन्त मूढ़ होकर भी परम ज्ञानी हो जाता है।।८६-८८।।

नमोऽस्तु ते सुराध्यक्षे ब्रह्माध्यक्षे बलाधिके। त्वं देवमाता ब्रह्माणी षष्ठी सावित्रिरेव च ॥८९॥
रुद्राणी कृष्णपिङ्गा च नक्षत्रैश्चाप्यलंकृता। यमस्य भगिनी ज्येष्ठा नीलकौषेयवाससा ॥९०॥
प्रदोषप्रत्यूषभुजा अर्धरात्रस्तनोदरी। कृत्तिका कृतवेणी च रोहिणीमुखपद्मिका ॥९१॥

हे सुराध्यक्षे! ब्रह्माध्यक्षे! बलाधिके! तुमको प्रणाम करता हूँ। हे देवि! आप देवमाता, ब्राह्मणी, षष्ठी, सावित्री तथा रुद्राणी हैं। आप कृष्णपिंगा, नक्षत्रचापल्यकृता, यम की बड़ी भगिनी तथा नीलकौषेय वस्त्रधारिणी हैं। प्रदोष तथा प्रत्यूषकाल आपके भुजद्वय हैं तथा अर्द्धरात्रि स्तन एवं उदररूप है। कृत्तिका नक्षत्र आपकी वेणी है तथा रोहिणी नक्षत्र मुखपद्म है।।८९-९१।।

मृगशीर्षसुखस्नाना आर्द्रागन्धानुलेपना। पुनर्वसुः कृता पुण्यैः पुष्याश्लेषा च विश्रुता ॥९२॥
मघा विमलकेयूरे उभे फाल्गुनि कुण्डले। हस्ता हस्ततले तुभ्यं चित्राभरणभूषिता ॥९३॥
स्वाती श्रीकीर्त्तिसम्पन्ना विशाखाकृतमेखला। अनुराधा मुक्तदामा ज्येष्ठामूले स्तनान्तरे ॥९४॥

मृगशीर्ष नक्षत्र सुख से स्नान करना है। आर्द्रा गन्धानुलेपनरूप है। पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र आपके पाणिद्वय में विराजित हैं। आश्लेषा तथा मघा आपके विमल केयूरयुगल हैं। पूर्वफाल्गुनी तथा उत्तरफाल्गुनी कुण्डलयुगल हैं। हस्त नक्षत्र आपका हस्ततल (हथेली) है। चित्रा नक्षत्ररूप आभूषण से आप भूषित हैं। स्वाती नक्षत्र आपकी श्री तथा कीर्त्तिरूप है। विशाखा मेखला है। अनुराधा नक्षत्र मुक्तामाला है तथा स्तनमध्य में ज्येष्ठा एवं मूल हैं।।९२-९४।।

आषाढश्रवणोपेतौ धनिष्ठाङ्गुलिमुद्रिका। शतभिषा मेखलादाम भाद्रपदौ च हारकम् ॥९५॥
रेवती तिलकं देवि अश्विनी कर्णपूरिकौ। भरणीनुपूरौ द्वौ च तथैव रजनी तथा ॥९६॥

कर्णद्वय में पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा एवं अंगुलियों में धनिष्ठा नक्षत्र विराजमान है। अर्थात् धनिष्ठा उंगलियों की मुद्रिका है। हे देवि! शतभिषा नक्षत्र आपकी मेखला है। पूर्वभाद्रपद तथा उत्तरभाद्रपद हार है। रेवती तिलक है तथा अश्विनी कर्णपूरक है। भरणी नक्षत्र दोनों नूपुर है। हे देवि! आप ही रजनी कहलाती हैं।।९५-९६।।

शुक्रौ दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते बृहस्पतिः। ललाटे चन्द्रमा भाति नाभ्यां तु बुध उच्यते ॥९७॥
अंगारकः प्रभाषायां शनिर्विलास उच्यते। दिवाकरप्रभातुल्यं राहुर्वै बलमुच्यते ॥९८॥
केतुः पराक्रमो देवि ग्रहनक्षत्रभूषिते। स्कन्दस्य जननी माता रुद्राणी धात्रीरेव च ॥९९॥

शुक्र ग्रह आपका दाहिना तथा बृहस्पति वाम हाथ है। चन्द्र ललाट है, बुधग्रह नाभिस्थ है। मंगल भाषा में है। शनैश्चर विलास में, दिवाकर प्रत्यय में, राहु बल में तथा पराक्रम में केतु विद्यमान है। हे देवि! आप इस प्रकार से ग्रह-नक्षत्रों से विभूषिता हैं। आप स्कन्दजननी, माता, रुद्राणी, धात्रीरूपा हैं।।९७-९९।।

माता मरुद्गणानाञ्च वृद्धिः सृष्टिस्तथैव च। तपनी भद्रकाली च विष्णुमाता बहुश्रुता ॥१००॥

आप मरुद् गण की माता, वृष्टि तथा सृष्टि हैं। आप ही तपनी, भद्रकाली तथा बहुश्रुता विष्णुमाता भी हैं।।१००।।

गायत्री च वरेण्या च तथैव च सरस्वती। कान्तास्ते कृत्स्नतो देशाः कथ्यमानं निबोध तान् ॥१०१॥

नैमिषे दृश्यसे देवि कुरुक्षेत्रे च दृश्यसे। त्वयाक्रान्तास्त्रयो लोकाः स्त्रीरूपेण न संशयः ॥१०२॥
अग्निहोत्रे कुले पुण्ये सिद्धचारणसेविते। अग्नेः कोणे सुरावर्त्ते सोमस्यैव च लक्षणे ॥१०३॥
त्रैलोक्यधारिणी देवी त्वं हि विन्ध्यनिवासिनी। त्वन्तु मन्दाकिनी पुण्या मया च शिरसा धृता ॥१०४॥

आप ही वरेण्या, गायत्री तथा सरस्वती हैं। हे देवि! आप जिन निखिल विश्व में विद्यमान हैं, उनमें से कतिपय देशों का नामोल्लेख करता हूँ, सुनिये। नैमिष तथा कुरुक्षेत्र में आप दृष्ट होती हैं। हे देवि! आप स्त्री-त्रिमूर्त्ति द्वारा त्रिभुवन को अधिकृत करके विराजित हैं। अग्निहोत्र में, पवित्र कूल (किनारा—तट) में, सिद्धचारण-सेवित स्थान पर आप विराजित रहती हैं। आप अग्नि कोण में, सुरावर्त्त में तथा चन्द्र में विराजित हैं। हे देवि! आप त्रैलोक्यधारिणी हैं। विन्ध्यगिरि में आपका निवास है। आप ही पवित्र मन्दाकिनी हैं। मैं भी आपकी गंगामूर्त्ति को शिरोदेश पर धारण करता हूँ।।१०१-१०४।।

अष्टाशीतिसहस्रैस्तु ऋषिभिरूर्ध्वतेजसैः। स्तूयसे सततं देवि तपःसिद्धैस्तपोधनैः ॥१०५॥
पादौ तु पृथिवी देवि रोमाण्योषधिगुल्मकाः। गंगायमुनयोर्मध्ये त्वं हि त्रैलोक्यसंगमे ॥१०६॥
द्वौ भुजौ भद्रवान् शैलो द्वीपाः प्रत्यन्तवर्त्तिनः। समुद्राः सरितश्चैव सिन्धुनद्यस्तथाम्बिके ॥१०७॥
सुरूपे सुभुजे शुभ्रे सुजङ्घे शूलपाणिनी। बालार्कसमवर्णेन पूर्वायान्तु प्रदृश्यसे ॥१०८॥

हे देवि! अष्टाशीति सहस्र (अट्ठासी हजार) ऊर्ध्वरिता: तप:सिद्ध तपोधन ऋषिगण सर्वदा आपका स्तवन करते रहते हैं। पृथिवी आपके दोनों चरण हैं तथा सभी ओषधि एवं गुल्म आपकी रोमावलिरूप हैं। गंगा तथा यमुना के मध्य में आप ही त्रैलोक्य संगम हैं। हे अम्बिके! भद्रवान् पर्वत आपके भुजयुगलस्वरूप हैं तथा आप ही समस्त द्वीप तथा प्रत्यन्त पर्वत हैं। आप ही समुद्र, सरिता, सिन्धु नदरूप से विराजित हैं। हे अम्बिके! हे शूलधारिणि! आपके भुजद्वय, भ्रूयुग्म, जंघाद्वय तथा रूप अतीव मनोहारी हैं। आप पूर्वदिशा में बालार्कवत् लोहितवर्णा हैं।।१०५-१०८।।

जीमूताञ्जनवर्णेन दक्षिणायान्तु दृश्यसे। पद्मकुन्देन्दुवर्णेन पश्चिमायां तु दृश्यसे ॥१०९॥
वैडूर्यस्य तु वर्णेन उत्तरायान्तु दृश्यसे। पर्वते मलयपृष्ठे चित्रकूटे तथा भवे ॥११०॥
अग्निजिह्वे दर्भरोमे ब्रह्मशीर्षे महोदरि। उत्कृष्टव्रते निरते शरण्ये ब्रह्मणः प्रिये ॥१११॥

आप दक्षिण में जलधर तथा अंजन के समान कृष्णवर्णा हैं। आप पश्चिम में शंख तथा इन्दुतुल्य शुभ्रवर्णा हैं तथा उत्तरदिशा में वैदूर्यमणि के समान वर्णवाली परिदृश्यमान हो रही हैं। हे महादेवि! मलय तथा चित्रकूट पर्वत पर एवं अग्निजिह्वा, दर्भरोम तथा ब्रह्मशीर्ष में आप ही विराजित हैं। हे प्रिये! हे देवि! हे ब्रह्मप्रिये! आप उत्कृष्ट व्रत में निरत तथा शरण्य हैं।।१०९-१११।।

त्वं हि नारायणी देवी चीरवल्कलधारिणी। दुर्गे दुर्गे तथा देवि तपस्तप्यति सुव्रते ॥११२॥

आप ही चीर वल्कलधारिणी नारायणी देवी हैं। हे दुर्गे! हे सुव्रते! आप ही सतत तप: अनुष्ठान से तप्त हो रही हैं।।११२।।

दिशो जङ्घे दिशो बाहू सुरूपे अमृतप्रिये। निशुम्भ-अन्धकादीनामसुराणां भयङ्करी ॥११३॥
ओंकारनित्ये सावित्रि चतुर्वेदस्मृते युगे। कंसादीनां वधार्थाय उत्पन्ना लोकपावनी ॥११४॥

हे सुरूपे! हे अमृतप्रिये! दिशायें ही आपके जंघा तथा बाहुस्वरूप हैं। आप निशुम्भ तथा अन्धकादि असुरों के लिये भयंकरी हैं। हे सावित्रि! आप ही प्रणव की अधिष्ठात्री हैं। वेदचतुष्टय आपका ही अनुसन्धान करते रहते हैं। हे लोकपावनी! आप ही कंसादि दैत्यों के वधार्थ उत्पन्न हुई हैं।।११३-११४।।

शरवर्षं वरैश्चापि पुलिन्दैश्चापि पूज्यसे। विन्ध्यवासिनी वामौघे अमोघे अम्बिके शुभे ॥११५॥

आप ही जनगण को पवित्र करती हैं। आप ही शर, वर्षवर, पुलिन्दगण द्वारा पूजित होती रहती हैं। हे अमोघे! हे अम्बिके! हे शुभे! आप विन्ध्यवासिनी हैं।।११५।।

अष्टादशभुजैश्चैव नित्यं गगनचारिणी। ऋग्यजुःसामवेदैश्च तथा चाथर्ववेदगैः ॥११६॥
स्तूयसे सततं देवि तपःसिद्धैस्तपोधनैः। भीमवक्त्रा महावक्त्रा अनला कृष्णपिंगला ॥११७॥

हे देवि! आप अष्टादश भुजाओं से युक्त होकर सतत् गगनचारिणी हो। ऋक्, यजुः, साम तथा अर्थर्ववेदज्ञ, तप से सिद्ध एवं साधकगण निरन्तर आपकी ही स्तुति करते रहते हैं। आप भीम वक्त्र वाली, महावक्त्र वाली, अनला तथा कृष्णपिंगला हैं।।११६-११७।।

कृष्णमूर्धा महामूर्धा घोरमूर्धा भयानना। घोरवक्त्रा महाजिह्वा घोरवेगा महाव्रता ॥११८॥
दीप्तास्या दीप्तनेत्रा च प्रचण्डप्रहरणोद्यता। सुरभी सौरभेयी च उमा दुर्गा तथैव च ॥११९॥
सर्ववादित्रनिर्घोषैः सर्वप्रहरणोद्यता। कृष्णाम्बरधरा कृष्णा शार्ङ्गायुधधनुर्धरा ॥१२०॥

आप कृष्णमूर्धा, महामूर्धा, घोरमूर्द्धा, भयानना हैं। आप घोर शरीर वाली, महाजिह्वा, वीरवेगा, महाव्रता, दीप्ता, दीप्तनेत्रा, प्रचण्ड प्रहरणोद्यता हैं। आप ही सुरभि, उमा तथा दुर्गा भी हैं। आप सर्ववादित्रहस्ता, सर्वप्रहरणोद्यता, सुरभि, कृष्णाम्बरधारिणी, कृष्णा, शार्ङ्गधनुषधारिणी हैं।।११८-१२०।।

त्रासनी मोहिनी चैव मृत्युरूपा भयावहा। भीषणी दानवेन्द्राणां तथा चैव भयङ्करी ॥१२१॥
अभया सर्वदेवानां पितृणां मानुषामपि। पृथिवी केशिनी साध्वी मृत्युदेहजरादिका ॥१२२॥
रक्षा पवित्रा अक्षोभ्या ह्लादिनी मेखला तथा। कन्यादेवी सुरादेवी भीमादेवीति कीर्त्यसे ॥१२३॥
शाकम्भरी महाश्वेता धूम्रा धूम्रेश्वरी तथा। वीरभद्रा सुभद्रा च मम देहाद्विनिःसृता ॥१२४॥

हे देवि! आप ही त्रासनी, मोहिनी, मृत्युरूपा तथा भयावहा कही जाती हैं। आप दानवेन्द्रों के लिये भीषणी तथा भयंकरी हैं। साथ ही आप देवता, पितर तथा मनुष्यगण को अभय प्रदान करती हैं। आप पृथिवी, केशिनी, साध्वी रूपेण विख्यात हैं। आप ही मृत्यु एवं देह-जरादि भी हैं। आप ही रक्षा, पवित्रा, अक्षोभ्या, ह्लादिनी, मेखला, कन्यादेवी तथा सुरादेवी हैं। आप ही भीमादेवी भी कहलाती हैं। शाकम्भरी, महाश्वेता, धूम्रा, धूम्रेश्वरी, वीरभद्रा तथा सुभद्रा भी आपके ही नाम हैं। आप मेरी देह से ही प्रकट हुई हैं।।१२१-१२४।।

श्मशाने वससे नित्यं प्रदीप्ते चितिसंकुले। कपालहस्ता खट्वाङ्गी सर्वलोकभयावहा ॥१२५॥

आप प्रदीप्त चिताओं से संकुल श्मशान भूमि में निरन्तर वास करती हैं। आपके हाथ में मनुष्य का कपाल तथा खट्वाङ्ग विद्यमान रहता है। आप सभी लोकों के भय का हरण करती हैं।।१२५।।

कान्तारवासिनी देवी विमाने चारुशोभने। श्रीः पद्मा योगमाता च योगमार्गानुसारिणी ॥१२६॥
धूमकेतुर्महाहास्यां कृतमेव युगक्षये। धूमवर्त्तिस्तथा ज्वाला अङ्गारिण्यस्तथोच्यसे ॥१२७॥
वेताली ब्रह्मवेताली महावेतालिरेव च। विद्याराज्ञी वराङ्गी च तथा माहेश्वरी मता ॥१२८॥

हे देवि! आप वनवासिनी हैं, आप विचित्र विमानों पर भी नित्य शोभित हैं। आप ही श्री, पद्मा तथा आप ही योग-मार्गानुसारिणी योगमाता हैं। आप ही धूमकेतु तथा युगक्षय के समय महान् हास्य करने वाली हैं। बुधगण आपको महाहास्या, धूमवर्त्ति, ज्वाला, अंगारिणी, वेताली, ब्रह्मवेताली, विद्याराज्ञी, महावेताली, वराङ्गी तथा माहेश्वरी कहते हैं।।१२६-१२८।।

ब्रह्मण्या च शरण्या च भक्तानां भक्तवत्सला। त्वमेव मातरः सर्वा भूतमाता तथैव च ॥१२९॥
पर्वतेषु समुद्रेषु दुर्गेषु विषमेषु च। चोरेषु चैव रक्षःसु तरक्षूणां भयेषु च ॥१३०॥
व्यालेभ्यो दुष्टचित्तेभ्यः सर्वतः परिरक्षसि। सिंहव्याघ्रभये चैव समे निम्नोन्नते तथा ॥१३१॥
त्वं हि नः सर्वकार्येषु ददास्यभयदक्षिणाम्। वज्राशनिनिपातेषु तथा समरकंटके ॥१३२॥
गजेन्द्रदशनप्रोतो दष्टो ह्याशीविषेण वा। शृङ्खलावेष्टितग्रीवः पादयोरुभयोरपि ॥१३३॥
बद्धो वा कालपाशेन मृत्योर्वा वशमागतः। कीर्त्तनात्तव देवेशि मुच्यते नात्र संशयः ॥१३४॥

आप ब्रह्मण्या तथा शरण्या हैं। भक्तों के लिये भक्तवत्सला हैं। हे देवि! आप ही मातृकागण तथा भूतमाता हैं। पर्वत तथा समुद्र में, दुर्गम तथा विषम स्थानों, दस्यु, राक्षस से, दुष्टबुद्धि लोगों से, समस्त लोगों से, सर्पों से, तरक्षुओं के भय से आप ही सर्वत्र रक्षा करती हैं। सम में, निम्न में, उन्नत में—इन सभी स्थानों में सिंह-व्याघ्रादि भय की स्थिति में सर्वदा आप ही सबकी रक्षा करती हैं। वज्र-अशनि आदि के गिरने पर तथा समरसंकट उत्पन्न होने पर, गजेन्द्रों के दाँतों का भय होने पर, किंवा नागों द्वारा डसे जाने पर आप ही रक्षा करती हैं। जब व्यक्ति के गर्दन तथा दोनों पैर शृङ्खला से जकड़ दिये गये हों अथवा कालपाश से बांध दिये गये हों और जीव मृत्यु की ओर उन्मुख हो रहा हो, हे देवेशि! उस समय आपको पुकारने से वह सभी संकटों से मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।।१२९-१३४।।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सांख्ययोगस्तथैव च। अध्यात्मञ्चाधिभूतञ्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१३५॥
त्वं दिशो विदिशश्चैव अदितिर्दितिरेव च। चण्डिका चण्डकारी च चण्डरूपा च कीर्त्यसे ॥१३६॥
घण्टारवा विरूपाक्षी शिखिपिच्छध्वजप्रिया। शङ्खशूलगदाहस्ता महिषासुरमर्द्दिनी ॥१३७॥

भूत-भविष्य-वर्त्तमान, सांख्य-योग, अध्यात्म ही नहीं; वरन् समस्त निखिल पदार्थ तुममें ही स्थित हैं। हे देवि! समस्त दिक्-विदिक् आप ही हैं। आप ही अदिति तथा दिति हैं। सभी आपका कीर्त्तन चण्डिका-चण्डकारी-चण्डरूपा-घण्टारवा-विरूपाक्षी नामों से करते हैं। मयूरपुच्छ का ध्वज आपको अतीव प्रिय है। आप महिषासुरमर्दिनी हैं। आपके हाथों में शंख-शूल-गदा शोभित हैं।।१३५-१३७।।

मातङ्गी मत्तमातङ्गी कौशिकी ब्रह्मवादिनी। जननी सिद्धसेनस्य उग्रतेजा महाबला ॥१३८॥
जया च विजया चैव विनता कद्रुरेव च। धात्री विधात्री विक्रान्ता इच्छा मूर्च्छा च मूर्च्छनी ॥१३९॥
दमनी दामनी चैव छेदनी भेदनी तथा। वन्दनी वन्दिनी चैव अमृता सत्यवादिनी ॥१४०॥
घोररूपा च कापाली मानवी मानवप्रिया। मानसी मन्यमाना च मातृणां जननी तथा ॥१४१॥
अघोरा घोररूपा च घोरा घोरतरा तथा। मृतसञ्जीवनी चैव विशल्यकरणी तथा ॥१४२॥
सञ्जीवनी औषधी च त्वमेव परिपठ्यसे। सन्ध्या चैव महासन्ध्या त्वं देवि परिकीर्त्तिता ॥१४३॥
हरणी हारिणी चैव धरणी धारणी तथा। दिव्यमूर्त्तिर्महामूर्त्तिरैश्वर्यमूर्त्तिरुच्यसे ॥१४४॥

आप मातङ्गी, मत्तमातङ्गी, कौशिकी, ब्रह्मवादिनी, सिद्धसेनजननी हैं। आपका तेज तथा बल अत्यन्त महान् है। आप ही जया, विजया, वनिता, कद्रु, धात्री, विधात्री, विक्रान्ता, इच्छा, मूर्च्छा, भेदनी, वन्दनी, वन्दिनी, अमृता, सत्यवादिनी, घोररूपा, कापाली, मानवी, मानवप्रिया, मानसी, मन्यमाना, मातृजननी, अघोरा, घोररूपा, घोरा, घोरतरा, मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, संजीवनी औषधि हैं। आपको सन्ध्या, महासन्ध्या कहा जाता है। आप हरणी, हारणी, धरणी, धारिणी, दिव्यमूर्त्ति, महामूर्त्ति, ऐश्वर्यमूर्त्ति कहलाती हैं।।१३८-१४४।।

पाशहस्ता महाहस्ता कुमारी कलहप्रिया। संधिनी च विसंधि च मेनका उर्वशी तथा ॥१४५॥
मायादेवी सुराणाञ्च त्वं देवी परिकीर्त्तिता। पुरा सुरगणाः सर्वे असुरेन्द्रभयार्दिताः ॥१४६॥

आप ही पाशहस्ता, महाहस्ता, कुमारी, कलहप्रिया, संधिनी, विसन्धि, मेनका, उर्वशी, मायादेवी कही जाती हैं। हे देवि! आप ही देवताओं की मायादेवी हैं। हे वरानने! पूर्वकाल में सभी देवता महिषासुर के भय से भीत हो गये थे।।१४५-१४६।।

त्वां जग्मुः शरणं देवा मत्पुरोगा वरानने। ततस्त्वां क्रोधसंतप्तां युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥१४७॥
देवानां तेजसावृत्यासृजद्विश्वेश्वरीं तनुम्। महिषस्य वधार्थाय ज्वालामालेति विश्रुता ॥१४८॥

सभी देवता मेरे साथ आपकी शरण में आये। आपने महिषासुर के वधार्थ देवताओं के तेज से परिवृत होकर विश्वेश्वरी मूर्त्ति को प्रकाशित किया, जो ज्वालामाला नाम से प्रसिद्ध है।।१४७-१४८।।

हत्वा सुररिपून् सर्वान् शक्रो राजा नियोजितः। विष्णुना च पुरा देवीं त्वामाराध्येति सुव्रते ॥१४९॥
दानवा निहता सर्वे त्वया मायाविमोहिता। अवध्यः सर्वभूतानां पुत्रो वै कालनेमिनः ॥१५०॥
कंसश्च निहतो दैत्यः उग्रसेनसुतो बली। त्वं देवि सर्वभूतानां शरण्या भक्तिवत्सला ॥१५१॥

तदनन्तर आपने निखिल असुरों का संहार करके पुनः देवगण को राजपद पर प्रतिष्ठित किया। हे सुव्रते! पूर्वकाल में विष्णु ने भी आपकी ही आराधना करके आपकी माया से विमोहित समस्त दानवगण का संहार किया था तथा सर्वभूतसमूह के लिये अवध्य कालनेमि के पुत्र एवं उग्रसेन के आत्मज महाबली कंसासुर का भी वध किया था। हे देवि! आप सर्वभूतसमूह को शरण प्रदान करने वाली भक्तवत्सला हैं।।१४९-१५१।।

अभया सर्वलोकस्य बुद्धिः शुद्धिश्च पठ्यसे। छन्दसाञ्चैव गायत्री अनुष्टुप्त्रिष्टुबेव च ॥१५२॥

आप सबकी रक्षा करने वाली तथा अभयदान देने वाली हैं। सभी आपको ही बुद्धि तथा शुद्धि मानकर आपकी अर्चना करते हैं। आप ही गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् नामक छन्द हैं।।१५२।।

पंक्तिश्चैव यतिश्चैव शंकुर्यष्टिस्तथैव च। त्वं देवि सर्वभूतानां हृदि नित्यं प्रतिष्ठिता ॥१५३॥

आप ही पङ्क्ति छन्द हैं। आप ही यति, शंकु तथा यष्टि नाम से प्रसिद्ध हैं। हे देवि! आप सर्वभूतसमूह के हृदय में नित्य प्रतिष्ठित हैं।।१५३।।

त्राहि त्रहि सुरान् सर्वान् दैत्यभूतान् समानुषान्। ज्योतिषां त्वं परं ज्योतिः सुव्रतानां गतिः शुभा ॥१५४॥
योगिनां योगसिद्धिश्च त्वमेव परिकीर्त्यसे। त्वं कृतज्ञा विधिज्ञा च सर्वज्ञा सर्ववित्तमा ॥१५५॥
भूतविद् ब्रह्मविज्ज्येष्ठा कन्या कल्पासिरेव च। निद्रा मोहस्तथा ज्ञानं क्षुत्पिपासा तथैव च ॥१५६॥

अतएव समस्त देवता-दैत्य-मानवगण तथा अन्य सभी भूतगण का आप परित्राण करिये। आप ही समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों में से परम ज्योति हैं। सदाचार-सम्पन्न लोगों को होने वाली शुभ गति भी आप ही हैं। आप ही योगिगण की योगसिद्धि हैं। आप सबकी कृतज्ञा, विधिज्ञा, ज्येष्ठा, कन्या, कल्याणी, रेवती तथा कालकर्णी कही जाती हैं। आप ही सर्वज्ञा, सर्ववित्तमा हैं। आप ही भूतविद्, ब्रह्मविद्, निद्रा, मोह, ज्ञान, क्षुधा, पिपासा भी हैं।।१५४-१५६।।

धर्मोऽधर्मं सुखं दुःखमलक्ष्मीर्लक्ष्मीरेव च। रेवती कालकर्णी च तथा दुष्टग्रहाश्च ये ॥१५७॥
तृषा च तुष्टिकामस्य त्वया ह्युत्पादिता पुरा। हिरण्यवर्णे देवेशि नमस्ते स्कन्दपूजिते ॥१५८॥

आप ही धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, लक्ष्मी-अलक्ष्मी तथा दुष्ट ग्रहों की उत्पादिका हैं। आप ही तृषा-तुष्टि काम का उत्पादन करती हैं। हे स्कन्दपूजिते! हे हिरण्यवर्णे! आप देवताओं की ईश्वरी हैं। आपको बारम्बार प्रणाम है।।१५७-१५८।।

तरणी तारणी गुप्ते चलनी चालनी शुभे। किंकिणी चण्डनिर्घोषे क्रन्दनी क्रन्दनप्रिये ॥१५९॥

हे शुभे, हे गुप्ते! आप तरणी, तारिणी तथा चलनी-चालनी हैं। क्रन्दनप्रिया भी हैं। हे प्रिये! आपके हाथों की किङ्किणी प्रचण्ड रव से बजती रहती है।।१५९।।

ताडनी क्रन्तनी रौद्री गोप्त्री धात्री धनेश्वरी। खड्गिनी खड्गनिर्घोषे पूर्णमात्रा विशोधनी ॥१६०॥
नारायणी च भूतानां प्राणिनां प्राणदा मता। संक्रोधनी क्रोधहरा निष्क्रोधा क्रोधहारिणी ॥१६१॥
कल्याणी दुर्मदा चैव सुमुखा दीनवत्सला। विरजा जननी भद्रा क्षमा क्षान्ता वरप्रदा ॥१६२॥
शिवा शान्तिर्दया दान्ता सत्या चैव तु विश्रुता। क्रोधेश्वरी महावीर्या कालनिद्रा गणेश्वरी ॥१६३॥
पद्माक्षी पद्मगर्भा च पद्मखण्डनिवासिनी। त्रिगुणी त्वं महाभागे भृगुवेश सदा प्रिये ॥१६४॥

आप ही ताड़नी, क्रन्तनी, रौद्री, गोप्त्री, धात्री, धनेश्वरी, खड्गिनी, खण्डनिर्घोषी, पूर्णमात्रा, विशोधनी, नारायणी, प्राणियों को प्राण देने वाली, संक्रोधनी, क्रोधहरा, निष्क्रोधा, क्रोधहारिणी, कल्याणी, दुर्मदा, सुमुखा, दीनवत्सला, विरजा, जननी, भद्रा, क्षमा, क्षान्ता, वरप्रदा, शिवा, शान्ति, दया, दान्ता, सत्या कही जाती हैं। आप ही क्रोधेश्वरी, महावीर्या, कालनिद्रा, गणेश्वरी, पद्माक्षी, पद्मगर्भा, पद्मखण्डनिवासिनी, त्रिगुणी कही जाती हैं। हे महाभागे! आप सर्वदा भृगुवेशप्रिया हैं।।१६०-१६४।।

तपस्वी ब्रह्मचारिण्ये ऋषिकन्ये जितेन्द्रिये। जितद्वन्द्वे जितक्रोधे महती भक्तवत्सले ॥१६५॥

हे भक्तवत्सले! आप ही तपस्वी, ब्रह्मचारिणी, ऋषिकन्या, जितेन्द्रिया, जितद्वन्द्वा, जितक्रोधा तथा महती कहलाती हैं।।१६५।।

स्मृतिश्च सर्वभूतानां त्वमेव हि शुभानने। आहुतिश्च हुतिश्चैव त्वं देवि परिकीर्त्यसे ॥१६६॥
कृष्णा च कृष्णरूपा च कृष्णपक्षस्य चोत्सवा। चतुर्थी पञ्चमी चैव नवम्येकादशी तथा ॥१६७॥
ब्रह्मरूपा स्वरूपा च कामदा कामरूपिणी। कामदेवप्रणाशी च विश्वरूपा सुचित्रता ॥१६८॥
एकाक्षी च शताक्षी च नरनारायणी तथा। गोमुखी सुमुखी चैव दक्षयज्ञक्षयङ्करी ॥१६९॥
खेचरी गोचरी क्षान्तिर्भगनेत्रापहारिणी। योगयोगी महायोगी योगिनां योगमुत्तमम् ॥१७०॥
महामारी च विघ्नघ्ना सर्वपापप्रणाशिनी। विशालाक्षी समृद्धिश्च धर्मिष्ठा ब्रह्मचारिणी ॥१७१॥
अजिता पूजिता पुष्पा पूष्णोर्दन्तविनाशिनी। अप्रसन्ना प्रसन्ना च तृप्ता प्रीता प्रियंवदा ॥१७२॥
जटिला लक्षणा लक्ष्मीरनन्ता कनकेश्वरी। त्वं स्मृतिः सर्वभूतानामचला लोकनाशिनी ॥१७३॥

हे शुभानने! आप ही सर्वभूतों की स्मृति हैं। हे देवि! आप ही आहुति, हूति, कृष्णा, कृष्णरूपा, कृष्णपक्षोत्सवा, चतुर्थी, पञ्चमी, नवमी, एकादशी, ब्रह्मरूपा, स्वरूपा, कामदा, कामरूपिणी, कामदेवप्रणाशी, विश्वरूपा, सुचित्रता, एकाक्षी, शताक्षी, दक्षयज्ञक्षयंकरी, खेचरी, गोचरी, क्षान्ति, भगनेत्रापहारिणी, योगयोगी, महायोगी, योगीगण का उत्कृष्ट योग, महाभारी, विघ्नघ्ना, सर्वपापप्रणाशिनी, विशालाक्षी, समृद्धि, धर्मिष्ठा, अजिता, पूजिता, पुण्या, पूष्णा, दैत्यनाशिनी, अप्रसन्ना, प्रसन्ना, तृप्ता, प्रीता, प्रियंवदा, जटिला, लक्षणा, लक्ष्मी, अनन्ता, कनकेश्वरी, स्मृति, अचला, लोकनाशिनी हैं।।१६६-१७३।।

तुष्टिः कान्तिस्तथा शोभा शोभना कमलोद्भवा। भ्रमणी भ्रामणी चैव तरणी स्तम्भनी तथा ॥१७४॥
जम्भनी शुम्भनी चैव काली गान्धारी एव च। महारूपा महातेजा विष्णुवक्त्रोद्भवा शुभा ॥१७५॥
वैरोचनी तथा त्वाष्ट्री विरजा कैटभेश्वरी। हेमवर्णा सुवर्णा च श्यामा दीप्तायतेक्षणा ॥१७६॥

रतिः प्रीतिः कमलाक्षी दक्षिणामूर्तिरिष्यते। सुकन्या महती चैव शालंकायनिरेव च ॥१७७॥
कराली विकराली च सकला निष्कला तथा। सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमती तथा ॥१७८॥
तापनी वर्षणी चैव विद्युज्जिह्वानलोद्भवा। देवदेवी महादेवी हिमवच्छैलराट् सुते ॥१७९॥

आप ही तुष्टि, कान्ति, शोभा, शोभना, कमलोद्भवा, भ्रमणी, भ्रामणी, तरणी, स्तम्भनी, जम्भनी, काली, गान्धारी, महारूपा, महातेजा, विष्णु वक्त्रोद्भवा, वैरोचनी, त्वाष्ट्री, विरजा, कैटभेश्वरी, हेमवर्णा, सुवर्णा, श्यामा, दीप्तायतेक्षणा, रति, प्रीति, कमलाक्षी, दक्षिणामूर्त्ति, सुकन्या, शालंकायनी, कराली, विकराली, सकला, निष्कला, सिनीवाली, कुहू, राका, अनुमति, तापनी, वर्षणी, विद्युजिह्वा, अनलोद्भवा, देवदेवी तथा हिमालयसुता हैं।।१७४-१७९।।

अविद्या सर्वविद्यानां सिद्धीनां सिद्धरुत्तमा। अप्रमेयासि भूतानामिति मे निश्चिता मतिः ॥१८०॥
देवदानवमर्त्येषु तिर्यग्योनिगतेषु च। न तत्पश्यामि देवेशि यत्त्वया रहितं भवेत् ॥१८१॥

हे देवि! आप ही निखिल विद्याओं में अविद्या नाम से प्रसिद्ध हैं। आप ही सिद्धियों में अनुत्तमा सिद्धि हैं। हे अमिते! आप ही भूतसमूह में अप्रमेया हैं। हे देवेशि! देवता, दानव, मानव तथा तिर्यक् जाति में ऐसा कोई भी नहीं है, जिसमें आपका अधिष्ठान न हो।।१८०-१८१।।

अहं ते हृदयं देवि त्वं नु मे हृदि संस्थिता। अहं तव पिता देवि त्वन्तु माता मम स्मृता ॥१८२॥
अहं भ्राता च भर्त्ता च बन्धुर्गोप्ता तथैव च। त्वं मे भगिनी देवि पत्नी च परिकीर्त्यसे ॥१८३॥
अहमिष्टो महायज्ञः पूर्त्तयज्ञस्त्वमुच्यसे। अहमग्निश्च होता च यजमानस्तथैव च ॥१८४॥

हे देवि! मैं आपका हृदयस्वरूप हूँ। साथ ही आप भी मेरे हृदय में अवस्थित हैं। मैं आपका पिता हूँ। आप मेरी माता हैं। सभी मुझे आपका भाई, भर्त्ता, बन्धु तथा रक्षक कहते हैं। साथ ही आपको मेरी भगिनी, देवी तथा पत्नी भी कहते हैं। बुधगण मेरा महायज्ञ तथा आपका पूर्त्तयज्ञरूप से उल्लेख करते हैं। मैं अग्नि, होता तथा यजमान हूँ।।१८२-१८४।।

स्वाहा स्वधा च शुभ्राणि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। अहं विष्णुर्महायज्ञो यज्ञमूर्त्तिस्त्वमुच्यसे ॥१८५॥
अहं ग्रहपतिश्चन्द्रस्त्वं तु नक्षत्रमण्डलम्। पुरुषोऽहं वरारोहे प्रकृतिश्च त्वमुच्यसे ॥१८६॥

आप स्वाहा तथा यज्ञरूप हैं। हे सुश्रोणि! सभी वस्तु आपमें ही प्रतिष्ठित है। हे वरारोहे! मैं ही विष्णुस्वरूप महायज्ञ हूँ। आप यज्ञमूर्त्ति कहलाती हैं। मैं पुरुष तथा आप प्रकृति हैं। मैं ग्रहपति चन्द्र हूँ तथा आप नक्षत्रमण्डल हैं।।१८५-१८५।।

सूर्यश्चाहं महादेवि त्वं प्रभा परमेश्वरी। अहं सागरस्त्वक्षोभ्यस्त्वन्तु वेलोर्मिरेव च ॥१८७॥
अहं ब्रह्मा सुरश्रेष्ठ सावित्री त्वं निगद्यसे। अहं विष्णुर्महावीर्यस्त्वं श्रीर्लोकभाविनी ॥१८८॥
अहमिन्द्रो महातेजस्त्वं शची परमेश्वरी। अहं भृगुर्वसिष्ठश्च जमदग्निस्तथैव च ॥१८९॥
त्वं विद्या रेणुका चैव अरुन्धती पतिव्रता। दिवसोऽहं वरारोहे रजनी त्वं निगद्यते ॥१९०॥

हे महादेवि! मैं सूर्य हूँ एवं आप प्रभा हैं। मैं अक्षुब्ध सागर हूँ एवं आप उसकी वेला तथा उर्मि हैं। सभी लोग मुझे ही सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा तथा आपको सावित्री कहते हैं। मैं ही महावीर्यवान् विष्णु हूँ एवं आप ही हैं लोकभावनी लक्ष्मी। मैं हूँ महान् तेजस्वी इन्द्र तथा आप हैं परमेश्वरी शची। मैं हूँ भृगु-वशिष्ठ-जमदग्नि एवं आप हैं विद्या—पतिव्रता, अरुन्धती तथा रेणुका। हे वरारोहे! मैं दिन हूँ एवं आप रात्रि कही जाती हैं।।१८७-१९०।।

दिवसोऽहं मुहूर्त्तन्तु त्वं सन्ध्याकाल एव च। अहं तेजोधिकः सूर्यः त्वं सुषमा निगद्यसे ॥१९१॥
वरुणोऽहं महातेजास्त्वन्तु गौरी प्रकीर्त्तिता। अहं वैश्रवणो राजा यक्षेशो लोकपूजितः ॥१९२॥
त्वन्तु ऋद्धिर्महाभागा उपमा चाप्यनुत्तमा। अहं सेनापतिः स्कन्दो देवसेना त्वमुच्यसे ॥१९३॥

हे वरारोहे! मैं दिवस-मुहूर्त हूँ एवं आप सन्ध्याकाल हैं। मैं ही तेजोधिक सूर्य हूँ एवं आप हैं सुषुम्ना। मैं हूँ महातेजा वरुण एवं आप हैं गौरी नाम से विख्यात। मैं यक्षेश लोकपूजित वैश्रवण नामक यक्षों का राजा हूँ एवं आप हैं महाभागा ऋद्धि तथा अनुत्तमा उपमा। मैं हूँ सेनापति स्कन्द एवं आप हैं देवसेना।।१९१-१९३।।

अहं बीजवरं श्रेष्ठं त्वन्तु क्षेत्रवरा स्मृता। अहं वृक्षपतिः सूक्ष्मस्त्वं वनस्पतिरुच्यसे ॥१९४॥
शेषमूर्त्तिरहं भद्रे फणीशपतिचेष्टिते। रेवती त्वं विशालाक्षि मदविभ्रान्तलोचने ॥१९५॥

सभी लोग मुझे उत्तम बीज तथा आपको उत्तम क्षेत्र कहते हैं। मुझे सूक्ष्म बृहस्पति तथा आपको वनस्पति कहा जाता है। हे भद्रे! हे भुजंगवेष्टिते! मैं ही सर्पराज अनन्त हूँ। हे विशालाक्षि! हे मदविभ्रान्तलोचने! आप ही अनन्त नाग की पत्नी रेवती हैं।।१९४-१९५।।

मोक्षोऽहं त्रिदशश्रेष्ठे त्वं देवि परमा गतिः। अपांपतिरहं भद्रे त्वं देवि सरितांवरा ॥१९६॥
वडवाग्निरहं शुभ्रे त्वन्तु दीप्तिरनेकशः। प्रजापतिरहं स्रष्टा त्वं प्रजा सृष्टिरेव च ॥१९७॥

हे त्रिदशश्रेष्ठे! मैं मोक्ष हूँ एवं आप परमा गति हैं। हे देवि! मैं हूँ जलपति समुद्र एवं आप हैं उत्तम सरिता। हे सुभ्रे! मैं वड़वाग्नि हूँ एवं आप हैं दीप्ति। मैं हूँ स्रष्टा प्रजापति एवं आप हैं प्रजासृष्टि।।१९६-१९७।।

नागानामधिपश्चाहं पातालतलवासिनाम्। नागिनी नागकन्या त्वं फणाच्छत्रविभूषिता ॥१९८॥
निशाचरपतिश्चाहं त्वं श्रेष्ठा रजनी स्मृता। कामोऽहं कामदेवी त्वं रतिः प्रीतिरेव च ॥१९९॥

मैं पातालवासी नागगण का अधीश्वर हूँ एवं आप हैं फणारूप छत्र से विभूषित नागकन्या। मैं हूँ निशाचरपति एवं आप हैं श्रेष्ठ रजनी। मैं हूँ कामदेव एवं आप हैं कामदेवी रति तथा प्रीति।।१९८-१९९।।

दुर्वारश्चाप्यहं क्रोधस्त्वं क्षमा मम धारिणी। लोभो मोहतमश्चाहं त्वं तृष्णा तमसि स्मृता ॥२००॥
तापसश्चाप्यहं देवि त्वं तपस्वि तपस्विनी। ककुद्वान् वृषभश्चाहं त्वन्तु गौः क्षीरधारिणी ॥२०१॥

मैं हूँ दुर्वार क्रोध एवं आप है शान्तिप्रदा क्षमा। मैं हूँ लोभ-मोहजनित तम तथा आप हैं तमःस्थित कृष्णा। हे देवि! मैं हूँ एवं तपस्वी, आप हैं तपस्विनी। मैं हूँ ककुद्युक्त वृषभ एवं आप हैं दुग्धवती गौ।।२००-२०१।।

वायुरप्यहमग्निश्च त्वं गतिर्मन्त्रसूचनी। अहं क्षपयिता लोके निर्मर्मा त्वं यशस्विनी ॥२०२॥
नमो ह्यहं सर्वकार्येषु नीतिस्त्वं कमलेक्षणे। अहमग्निश्च धूमश्च त्वमुष्णज्वाल एव च ॥२०३॥

मैं हूँ वायु तथा अग्नि एवं आप हैं गति तथा मन्त्रसूचनी। जगत् में मैं हूँ संचयिता एवं आप हैं यशस्विनी निर्मर्मा। हे कमलेक्षणे! सभी कार्य में मैं नहीं, आप नीतिस्वरूपा हैं। मैं अग्नि तथा धूम्र हूँ एवं आप उष्णता तथा ज्वाला हैं।।२०२-२०३।।

अहं संहारकर्त्ता च त्वं सृष्टिः सर्वदा शुभे ॥२०४॥
अहं शुष्कः स्थिरश्चैव त्वमार्द्राजलमेव च। स्रष्टाहं तव देवेशि त्वं भूतान् सृजसे सदा ॥२०५॥

हे शुभे! मैं हूँ संहारकर्त्ता एवं आप हैं सृष्टि। मैं हूँ शुष्क तथा स्थिर एवं आप हैं आर्द्र तथा चलायमान। हे देवेशि! मैं आपका स्रष्टा हूँ एवं आप हैं भूतगण की सृष्टि करने वाली।।२०४-२०५।।

शरीरी ह्यहं शरीरस्त्वं तु बुद्धीन्द्रियाणि च। अहं भोक्ता महादेवि त्वन्तु भोग्यं न संशयः ॥२०६॥
पर्जन्योऽहं महातेजास्त्वन्तु विद्युन्महाचला। अहं कृतयुगे धर्मस्त्रेता त्वं परिकीर्त्यसे ॥२०७॥
युगोऽहं द्वापरः श्रीमान् त्वं कलिः परमेश्वरि। आकाशश्चाप्यहं भद्रे पृथिवी त्वं निगद्यसे ॥२०८॥

हे देवि! मैं शरीरस्थ शरीरी हूँ एवं आप शरीरस्थ बुद्धि तथा इन्द्रियस्वरूपा हैं। हे महादेवि! मैं भोक्ता हूँ एवं आप नि:संदिग्ध रूप से भोग्य हैं। मैं हूँ महतेजवान् जलधर एवं आप हैं महाबला विद्युत्। हे परमेश्वरि! सभी मुझे सत्ययुग तथा आपको त्रेता एवं मुझे द्वापर तथा आपको कलियुग कहते हैं। हे परमेश्वरि! हे भद्रे! मैं आकाश कहलाता हूँ और आप पृथिवी कही जाती हैं।।२०६-२०८।।

अहमदृश्यमूर्त्तिश्च दृश्यादृश्यञ्च उच्यसे। विरजोऽहं महाभागे सम्राट् भद्रे अनिन्दिते ॥२०९॥
वाक्पतिश्चाप्यहं कृष्णे त्वं वाग्मी ऋषिभिः स्मृता। अहं स्रष्टा च भर्त्ता च त्वन्तु मृत्युः सदानघे ॥२१०॥
अहं रसयिता घ्राता त्वं रसो घ्राण एव च। अहं स्पर्शयिता कर्त्ता स्पर्शस्त्वं कर्म एव च ॥२११॥

मैं अदृश्य हूँ एवं आप अदृश्यादृश्य कहलाती हैं। हे महाभागे! हे अनिन्दिते! हे भद्रे! ऋषिगण मुझे विराज तथा आपको सम्राट् कहते हैं। हे कृष्णे! सभी मुझे वाग्मी कहकर तथा आपको स्तुति कहकर सम्बोधित करते हैं। हे अनघे! ऋषिगण मुझे स्रष्टा तथा आपको मृत्यु कहते हैं। मैं रसयिता तथा घ्राता हूँ एवं आप हैं रस तथा घ्राण। मैं हूँ स्पर्शयिता तथा कर्त्ता एवं आप हैं स्पर्शत्व तथा कर्म।।२०९-२११।।

अहं वक्ता च भोक्ता त्वं बुद्धिर्गतिरेव च। अहं सर्वमिदं भूतं त्वञ्च देवि न संशयः ॥२१२॥
त्वया मया च देवेशि ओतप्रोतमिदं जगत्। एकधा बहुधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥२१३॥

हे देवि! मैं हूँ वक्ता तथा भोक्ता एवं आप हैं गति तथा बुद्धि। अधिक क्या कहूँ, यह अखिल जगत् आपके तथा मेरे द्वारा एकधा, बहुधा तथा शतसहस्रधा ओतप्रोत भाव से आबद्ध है।।२१२-२१३।।

देवदानवमर्त्येषु सकलेषु विशेषतः। निष्कलेषु च सर्वेषु अबुधेषु बुधेषु च ॥२१४॥
अहं त्वञ्च विशालाक्षि सततं सुप्रतिष्ठितौ। ऐश्वर्यगुणसम्पन्नौसर्वप्राणिव्यवस्थितौ ॥२१५॥

हे विशालाक्षे! देवता, दानव तथा मानवगण में, शौर्यादि गुणयुक्त, शौर्यविहीन, ज्ञानी, अज्ञानी सभी में आप तथा मैं सर्वदा विषयरूपेण स्थित रहते हैं। हम अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से प्राणिमात्र में ही अधिष्ठित रहते हैं।।२१४-२१५।।

क्रीडामि सततं देवि त्वया सार्धं वरानने। मेरुमन्दरपृष्ठे च हिमवत्कन्दरेषु च ॥२१६॥

हे देवि! वरानने! मैं मन्दरपर्वत के पृष्ठ पर तथा हिमालय की कन्दराओं में निरन्तर आपके साथ क्रीड़ा करता रहता हूँ।।२१६।।

स्कन्द उवाच

एवं स्तुता महादेवी शिवेन परमात्मना। गुह्यैस्तु नामभिर्दिव्यैः सर्वलोकेश्वरेश्वरी ॥२१७॥
एतद्धि सर्वमाख्यातं निरुक्तं पापनाशनम्। य इदं धारयेत्स्तोत्रं पवित्रं लोकसम्मतम् ॥२१८॥
स जित्वा सर्वलोकानि शिवलोके महीयते। देव्याश्चैव भवेत्पुत्रो दीप्तकुण्डलभूषितः ॥२१९॥
वरदः सर्वदेवानां देवदानवदर्पहा। अजितः सर्वलोकेषु दुर्निरीक्ष्यो भयावहः ॥२२०॥
अक्षयः कामरूपश्च रुद्रसूनुर्महाबलः। पूज्यते सर्वलोकेषु शूलपाणिर्यथा शिवः ॥२२१॥

भगवान् स्कन्द कहते हैं—परमात्मा शंकर ने उस समय सर्वलोकेश्वरेश्वरी देवी भगवती के पूर्वोक्त नामों के साथ इस प्रकार का स्तव किया था। इस पापनाशक देवी के नामों से युक्त स्तोत्र का वर्णन तुमसे किया। जो इन सर्वलोकेश्वरेश्वरी के इस पवित्र स्तोत्र को (भोजपत्र पर कुङ्कुम अथवा गोरोचन से लिखकर) धारण करता है, वह सभी पापराशि से मुक्त होकर शिवलोक में परमसुख के साथ कालयापन करता है। परिणामत: समुज्ज्वल कुण्डल से अलंकृत, देवगण को वर देने वाला,

सुरासुर के दर्प का हरण करने वाला, त्रिलोक में अजेय, दुर्निरीक्ष्य, भयावह, अपनी इच्छानुसार नाना रूपधारण में समर्थ, रुद्रपुत्र के नाम से प्रसिद्ध, महाबली शूलपाणि शंकर के समान महाबली तथा शूलपाणि शंकर के समान सर्वलोकों में पूजनीय होकर देवीपुत्र के रूप में जन्म लेता है।।२१७-२२१।।

यः पठेत् श्लोकमेकन्तु पञ्च षट् सप्त एव वा। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो न भूयो जन्म आप्नुयात्॥२२२॥
इष्टांश्च लभते कामान् यः पठेच्च शृणोति वा। शुचिस्तु प्रयतो भूत्वा देवीदेवपरायणः॥२२३॥

जो इस स्तवराज के एक श्लोक को, पाँच-छः अथवा सात श्लोकों को ही पढ़ता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा उसे पुनः गर्भयन्त्रणा का भोग नहीं करना पड़ता। वह अपने अभीष्ट भी प्राप्त करता है। देवी-देवपरायण होकर इसका पठन तथा श्रवण करना चाहिये।।२२२-२२३।।

मोक्षार्थी लभते मोक्षं परे परमशोभनम्। सिद्धिकामोऽप्यवाप्नोति सिद्धिमिष्टां न संशयः॥२२४॥
अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामो बहून् सुतान्। विद्यार्थी लभते विद्यां जयकामो लभेज्जयम्॥२२५॥

इससे मोक्षार्थी मोक्ष, सिद्धिकामी परमसिद्धि, अर्थप्रार्थी प्रभूत धन, पुत्राभिलाषी अनेक पुत्र, विद्यार्थी उत्तम विद्या तथा जय की इच्छा रखने वाला जय प्राप्त करता है।।२२४-२२५।।

यान् यान् कामान् प्रार्थयते मानवः संशितव्रतः। जपन् स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वमाप्नोति निश्चयात्॥२२६॥
विदितः सर्वदेवानां मासस्यान्तरेण वै। सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छते परमां गतिम्॥२२७॥

मानव नियम का पालन करते हुये जिस-जिस फल को पाने की कामना को लेकर इस स्तोत्रराज का पाठ करता है, वह निःसंदेह उन सबको प्राप्त करके एक मास में ही निष्पाप तथा देवगण का प्रिय होकर परमगति प्राप्त कर लेता है।।२२६-२२७।।

पुण्यं यशस्यमायुष्यं सांख्ययोगसमन्वितम्। पठेद्वै श्रद्धया युक्तो अनन्तं फलमश्नुते॥२२८॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। फलं लभते धर्मात्मा यः पठेत् श्रद्धया द्विज॥२२९॥
दशानां राजसूयानामग्निष्टोमशतस्य च। कीर्त्तनात्फलमाप्नोति इत्याह भगवान् शिवः॥२३०॥

यह स्तवराज आध्यात्मिक ज्ञान तथा योगयुक्त है। यह आयु तथा यशप्रद है। इस पवित्र स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करने से अनन्त फल प्राप्त होता है। हे द्विज! जो धर्मात्मा इस स्तव का पाठ श्रद्धापूर्वक करता है, उसे सहस्र अश्वमेध तथा १०० वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो इसे किसी को सुनाता है, उसे १० राजसूय तथा १०० अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है। यह स्वयं भगवान् शंकर का वचन है।।२२८-२३०।।

यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु गंगादीनां द्विजोत्तम। जपतः सर्वमाप्नोति प्राप्तो धर्मफलानि तु॥२३१॥
अधृष्यः सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां न संशयः। जीवेद्वर्षशतं साग्र्यं यः पठेत् सततं शुचिः॥२३२॥

हे द्विजोत्तम! गंगादि समस्त तीर्थ में नियमित जपादि करने से जो पुण्य मिलता है, वैसे समस्त पुण्य पवित्र होकर सतत् इस स्तव के पाठ करने से ही प्राप्त हो जाता है। वह पाठक निखिल देवगण एवं ब्रह्मादि से अधृष्य होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।२३१-२३२।।

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः। शरणागतघाती च मित्रविश्वस्तघातकः॥२३३॥
दुष्टकर्मसमाचारो पितृहा मातृहा तथा। सकृदावर्त्तयेत् स्तोत्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषात्॥२३४॥

अधिक क्या कहा जाय, यह स्तोत्र मात्र एक बार ही पाठ करने से पाठ करने वाला गोहत्या, कृतघ्नता, ब्रह्महत्या, गुरुपत्नीगामिता, शरणागतघात, मित्रघात, विश्वासघात, सतत् कुकार्य किंवा मातृ-पितृहत्याजनित पाप से तथा निखिल पापों से छुटकारा पा लेता है।।२३३-२३४।।

द्विरधीत्य दहेद्दोषान् सप्तजन्मकृतानपि। त्रिरावर्त्तयते यस्तु गाणपत्यमवाप्नुयात्॥२३५॥
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति मानवः संशितव्रतः। संवत्सरेण मुक्तात्मा योगसिद्धिपरां लभेत्॥२३६॥

इस स्तवराज का दो बार पाठ करने से सात जन्मों की पापराशि दूरीभूत हो जाती है। जो मनुष्य इसका पाठ तीन बार करता है, वह गाणपत्य पद प्राप्त कर लेता है। वह छः मास (पढ़ने से) में सिद्धि प्राप्त करके संवत्सर का अन्त होते-होते योगसिद्धि पाकर जीवन्मुक्त हो जाता है।।२३५-२३६।।

शिवेन ब्रह्मणे प्रोक्तं ब्रह्मा प्रोवाच विष्णवे। विष्णुः प्रोवाच सोमाय सोमः प्रोवाच वायवे॥२३७॥
वायुश्चैव हुताशाय हुताशाच्च मयागतम्। मयापि कथितं तुभ्यं निरुक्तं पापनाशनम्।
पुराणं पावनं दिव्यं देवदेवेन भाषितम्॥२३८॥

इति श्रीदेवीपुराणे देवदेवीसंवादे देवीस्तवराजो नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्व में भगवान् शिव ने ब्रह्मा से इसे कहा था, ब्रह्मा ने विष्णु से, विष्णु ने चन्द्र से, चन्द्र ने अनिलदेव से और अनिलदेव ने अग्निदेव से इसे कहा था। अब मैंने तुमसे इस पवित्रतम पुरातन पापनाशक शंकरोक्त दिव्यनामात्मक स्तोत्रराज का कथन किया है।।२३७-२३८।।

सप्तविंशत्यधिक शततम अध्याय समाप्त

●

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सर्वार्थसाधकं शास्त्रं ब्रह्मवक्त्रात् विनिःसृतम्। तेनापि नृपशार्दूल कीर्त्तितं नरवाहने॥१॥
इन्द्रेण विधिना प्राप्तमगस्त्येन तथागतम्। दशलक्षप्रमाणन्तु शिवो ब्रह्मणे प्रोक्तवान्॥२॥
लब्धं शक्रस्य लोकस्य विद्या देवेन भाषितम्। घोरोत्पत्तिवधादीनि देव्याराधनमुत्तमम्।
कर्मयोगश्च योगश्च चतुर्वर्गप्रसाधकम्॥३॥

भगवान् ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा के मुख से विनिर्गत इस सर्वार्थसाधक देवीविषयक शास्त्र को प्राप्त किया था। तदनन्तर इन्द्र द्वारा विधि (ब्रह्मा) से प्राप्त इस शास्त्र को महर्षि अगस्त्य ने प्राप्त कर इसका उपदेश राजश्रेष्ठ नृपवाहन को दिया था। प्रथमतः भगवान् शंकर ने दस लाख श्लोकों में इस शास्त्र को ब्रह्मा को सुनाया था। तदनन्तर ब्रह्मा ने इसको (संक्षिप्त करके) एक लाख श्लोकों में इन्द्र से कहा था। इसमें घोरदैत्योत्पत्ति, उसके वध आदि का एवं देवी की उत्तम आराधना का वर्णन है। इसमें चतुर्वर्ग-साधक कर्मयोग तथा योग का भी वर्णन किया गया है।।१-३।।

आद्यं देव्यवतारं च वाचयेद्यः शृणोति वा। स संसाराद्विनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम्॥४॥
विद्यासिंहासने मध्ये वस्त्रपुष्पादिशोभिते। पूजयित्वा शिवं ज्ञातं शृणुयाद्वाचयेत्तथा॥५॥

इसमें देवी के उद्भव-विषयक आद्य अंश के पाठ तथा श्रवण से मानव संसार-बन्धन से छूटकर परमपद प्राप्त कर लेता है। विद्याओं के सिंहासन में भगवान् शंकर की अर्चना करके इस ज्ञानोद्दीपक पुस्तक की स्थापना तथा पाठ अथवा श्रवण करना चाहिये।।४-५।।

श्रीमद्दंडासनं वापि कृत्वा हेमं सुशोभनम्। हेमपट्टपरिच्छन्नं नानारत्नविभूषितम् ॥६॥
राजतं ताम्रकास्यं वा ब्रह्मरीत्या विनिर्मितम्। तरुसारसमुद्भूतं शृङ्गवंशादिसम्भवम् ॥७॥
रत्नहेमसमायुक्तं शंखस्फटिकमौक्तिकैः। यथासम्भवसम्भूतैरधश्चोर्ध्वं विभूषितम् ॥८॥
समुत्कीर्णं विचित्रं च सूत्रचिह्ननिबन्धनम्। द्विगुणे द्विप्रमाणेषु पूर्णचन्द्रनिभेषु च ॥९॥
चित्रोत्कीर्णं सुवर्णेषु प्रतिपादेषु संस्थितम्। दुकूलं पट्टदेवाङ्गं चित्रपट्टादिसम्भवम् ॥१०॥

श्रीमद् दण्डासन को स्वर्णमय, रजतमय, ताम्रमय, कांस्यमय, वृक्षसारमय (काष्ठ) अथवा शृङ्ग किंवा बांस से बनाकर उसे होमपट्ट से आच्छादित करना चाहिये। उसे नाना रत्न-सुवर्ण-शङ्ख-स्फटिक-मौक्तिकादि से भूषित कराना चाहिये। सुन्दर रूप से सूत्रों से आवेष्टित करके विभिन्न प्रकार की कारीगरी से उसमें चित्रादि की खुदाई करके उसे अलंकृत करना चाहिये। उसके पादचतुष्टय ऊर्ध्व द्विगुण द्विप्रमाण होने चाहिये, पूर्णचन्द्र के समान सुवर्ण चित्रित होने चाहिये। ऐसी प्रत्येक पाद (पाये) पर सजावट होनी चाहिये। ऐसा कुण्डासन बनवाकर उसपर विचित्र पट्ट आदि तथा चित्र बने वस्त्रों से सजाना चाहिये।।६-१०।।

विद्धं कुसुमरक्तं वा प्राकारशिखरान्वितम्। चतुर्भिश्चन्द्रकैर्युक्तं पञ्चवर्णैः सुशोभनैः ॥११॥
किङ्किणीरवकोपेतैः चतुष्कोणसमाश्रितैः। गिरिप्राकारशिखरैः सुलक्षैः पञ्चवर्णकैः।
सर्ववस्त्रसमुद्भूतैः कन्दुकैश्च प्रलम्बिभिः ॥१२॥
इत्थमाश्रवणं कृत्वा विन्यसेद् दण्डकासने। तस्योपरि महाशास्त्रं देव्याख्यं स्थाप्य पूजयेत् ॥१३॥

वह कुसुम्भपुष्पों से सजा होना चाहिये। उसका दुकूलपट्ट देवदेवी की प्रतिमूर्त्ति से तथा पाँच रंगों से चित्रित अत्यन्त स्पष्ट शुभ्र गिरि, शिखर, प्राकारादि से अंकित होना चाहिये। चतुष्कोण सुशोभन चन्द्रकचतुष्टय पाँच रंगों से अंकित होने चाहिये। उसमें चार उत्तम किङ्किणि लगी होनी चाहिये। चारो ओर नाना रंग के वस्त्र द्वारा रचित लम्बमान कुन्दुक लटक रहे होने चाहिये। ऐसें आस्तरण को आस्तृत (बिछाकर) करके उस पर देवी-सम्बन्धित इस महापुराण की स्थापना करके यथाविधि पूजन करना चाहिये।।११-१३।।

विद्यादानोपहारेण शोभां कृत्वा प्रयत्नतः। गन्धादिवासितकरः श्रीमदासनसंस्थितः ॥१४॥
भावयित्वा शिवं देव्याः शास्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरम्। स्वयं तिष्ठति देवेशीं पतिं देवनमस्कृताम् ॥१५॥

इस विधि से पूजा-पाठादि द्वारा साधक देवी का पुत्रवत् हो जाता है। पाठक विद्यादानार्थ उपयुक्त विहित वस्त्रों को धारण करके शोभित होकर गन्धादि द्वारा अपनी हथेली को सुगन्धित करके उत्तम आसन पर बैठकर यह चिन्तन करना चाहिये कि इस देवीशास्त्र में परमदेव शंकर तथा सर्वदेवाराध्या भगवती स्वयं विराजित हैं।।१४-१५।।

स्वकायेन तीर्थेषु नरेन्द्रभवनेषु च। भावयेत्परमं धर्मं गृहग्रामे पुरेषु च ॥१६॥
श्रोतारं च गुरुध्यानं शिवं ध्यात्वा यथाविधिः। गन्धपुष्पैश्च सम्भारैः प्रत्यहं तु युगे युगे ॥१७॥
पूजयित्वा नमित्वा च कृताञ्जलिपुटाः स्थिता। सर्वे नीलासनाः शान्ता यथावृद्धक्रमानुगाः ॥१८॥
धर्मतः श्रोतुमिच्छन्ति कथान्तरविवर्जिताः। ज्ञानारम्भे समाप्तौ च श्रोतृभिर्वा च केन च ॥१९॥
देव्या मन्त्रं शिवाख्यं च उच्चार्यं सर्वसिद्धये। आनयेद्धूपपुष्पाद्यै एकैकः श्रावकः क्रमात् ॥२०॥

सर्वसाधुजनार्थाय ज्ञानमन्त्रप्रदोऽपि वा। आचारेभ्यः करं दद्याद्वाचकः कुसुमत्रयम् ॥२१॥
तेऽपि तैरादिमध्यान्तैः कुर्युः पूजां तु मस्तके। इति शक्त्या च भक्त्या च पूजां कृत्वा सदक्षिणाम् ॥२२॥
प्रवर्त्तयति यः कश्चिद् देव्याः पुस्तकवाचनम्। सर्वसत्त्वोपकाराय आत्मनश्च विमुक्तये ॥२३॥
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये श्रोतृणां वाचकस्य च। धनमायुः प्रजा कीर्तिः प्रज्ञां बुद्धिं प्रियं सुखम्॥२४॥
इह सम्प्राप्य विपुलं देहान्ते शान्तिमाप्नुयात्।

अपने गृह, राजप्रासाद तथा भागीरथी के किनारे, काशी एवं कामाख्या आदि तीर्थों में इसका पाठ करना चाहिये। श्रोतागण को भी नित्य परम ज्ञानमय महेश्वर की अर्चना एवं ध्यानान्त में सुगन्धित गन्धों तथा सुगन्धित पुष्पादि अर्पित करना चाहिये तथा प्रणाम करके वृद्धादि श्रेणी (आयु तथा योग्यता क्रमानुसार) नीचासन पर (नीचे आसन पर) बैठकर कथा में मन लगाकर तथा अंजलिबद्ध होकर इसका श्रवण करना चाहिये। पाठ के आरम्भ से लेकर समाप्त होने तक श्रोतृवर्ग को शिवाख्य देवी मन्त्रोच्चारण करते रहना चाहिये। श्रोतृवर्ग तथा पाठकों का साधुजनों हेतु एक-एक पुष्प-धूपादि लाना कर्त्तव्य है। पाठक को चाहिये कि श्रोतावर्ग को आचमन कराकर प्रत्येक के हाथ में एक-एक पुष्प प्रदान करे। वे इस पुष्प से पुस्तक के आदि-मध्य तथा अन्त में (कथा प्रारम्भ होने पर, आधी कथा हो जाने पर तथा कथा समाप्त हो जाने पर) क्रमशः पूजा करें। जो व्यक्ति भक्ति के साथ इस प्रकार यथाशक्ति दक्षिणा के साथ पूजा का समापन करके सर्वप्राणियों के उपकारार्थ तथा अपनी मुक्ति हेतु देवीपुराण का पाठ कराते हैं, उनको उनके भ्रातृवर्ग को तथा पाठक को जैसा पुण्य मिलता है, उसे कहता हूँ, श्रवण करो। धन-आयु-प्रजा-कीर्त्ति-प्रज्ञा-बुद्धि-प्रियता-सुख यह प्राप्त करके वह देहान्त के पश्चात् शान्ति प्राप्त करता है।।१६-२४।।

असम्पूज्य महाज्ञानं प्रदेशे चाप्यसंस्थिते ॥२५॥
वाचयन्नरकं याति तस्मात् संस्कृत्य वाचयेत्। असम्पूज्य तथा वाक्यं देवाग्निगुरुसन्निधौ ॥२६॥
मुने धर्मप्रवाहस्य उपकाराय बुद्धिमान्। यथा प्रवर्त्तितो धर्मो अधर्मं च परित्यजेत् ॥२७॥
लोभाद्भयान्न वाच्येदं देव्याः शास्त्रं शिवात्मकम्। वाचनात्तु जगच्छान्तिरवधार्यं दिने दिने ॥२८॥
गच्छेयुः कुशपुष्पार्थं शिवोमापूजनाय च। ततः शास्त्रं समाप्यं तु पूजां कृत्वा विशेषतः ॥२९॥

जो यथाविधि पूजन के विना अपवित्र स्थान में इसका पाठ करता है, वह नरकगामी होता है। इसलिये पवित्र स्थान में ही अर्चना के साथ पाठ करना चाहिये। हे मुनिवर! बुद्धिमान् व्यक्ति धर्मप्रवाह के उपकारार्थ देवता-अग्नि तथा गुरुसन्निधान के बिना भी पाठ करा सकते हैं। जिससे सभी धर्माचरण में प्रवृत्त हों तथा अधर्म से दूर रहें, इस निमित्त पाठ कराना चाहिये। किसी लालच अथवा भय के कारण इस शिवरूप देवीशास्त्र का पाठ नहीं कराना चाहिये। अच्छे उद्देश्य से पाठ कराने से दिनोदिन जगत् का मंगल होता है। शंकर तथा शंकरी की पूजार्थ सभी लोग कुश-पुष्पादि एकत्र करने जा सकते हैं। शास्त्रकथा समाप्त हो जाने पर विशेष रूप से पूजा अवश्य सम्पन्न करनी चाहिये।।२६-२९।।

देव्या विद्यागुरूणां च भक्त्या च शिवयोगिनाम्। कन्यका द्विजबन्धूनामन्येषामपि बुद्धिमान् ॥३०॥
भोजनं कल्पयेच्चैषां दीनार्थानां च सर्वशः। मित्रस्वकुलसाधूनामन्ते भृत्यजनस्य च ॥३१॥

इस प्रकार से पाठान्त में देवी, विद्या, गुरु तथा शिवयोगी गण की विशेष पूजा भक्ति के साथ करके अनेक कुमारी, ब्राह्मण, बन्धु, मित्र, साधु, दरिद्र, अन्त्यजादि, भृत्य प्रभृति सभी को भोजन कराना चाहिये।।३०-३१।।

गुरवे दक्षिणां दद्याच्छिवो गोमिथुनं शुभम्। वस्त्रयुग्माङ्गुलीयकं घृतपूर्णं तु भोजनम् ॥३२॥
वाचकाय प्रदातव्यं दक्षिणा पूर्वभाषिता। अभाषितस्य दातव्या गुरोर्धेन दक्षिणा ॥३३॥
शेषाणां च यथाशक्त्या दक्षिणां शिवयोगिनाम्। दद्यात्प्रबोधयेत्पश्चात्प्रदीपादेः शतं बुधः ॥३४॥
वितान्छ ध्वजं देयं देवी देवस्य भोजनम्। यथा मन्त्रवतः कार्यं पूजा नार्चा विवर्जिता ॥३५॥

तत्पश्चात् गुरु तथा कथावाचक (पाठक) को उत्कृष्ट गोमिथुन (वृषभ + गौ), एक जोड़ी वस्त्र, अंगूठी, घृतपूर्ण भोज्य प्रदान करना चाहिये। दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये। धारक को आधी तथा सदस्यों को यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। देवी के सन्तोषार्थ १०८ दीप प्रज्वलित करना चाहिये। देवी तथा भगवान् की प्रीति प्राप्त करने हेतु चन्द्रातप तथा ध्वजा, अन्नदानादि कार्य करना चाहिये। मन्त्र के साथ विधानतः कार्य करना चाहिये। मन्त्ररहित पूजा-अर्चना विवर्जित होती है।।३२-३५।।

निवेदयेच्छिवे देव्यै अशेषं पुष्यवादिनाम्। ज्ञानं पुण्यं महाशान्तिं श्रवणान्नात्र संशयः ॥३६॥
एवमुद्योतनं कृत्वा देव्याः शास्त्रस्य भक्तितः। शिवदीपप्रदाता च प्रनष्टतमसंचयः ॥३७॥
विधूतपापकलिलो विशुद्धस्ते न संशयः। भवन्ति सर्वलोकास्तु भाविता देवयोनयः ॥३८॥

वित्तशाठ्य (कंजूसी) का त्याग करके यथासम्भव देवी-देवता का पूजन करना चाहिये। पूजार्थ देवी तथा देवता के लिये प्रचुर परिमाण में पुष्प तथा जल (अर्घ्यादि) प्रदान करना चाहिये। देवी की प्रसन्नता हेतु दीपदान करने से व्यक्ति पापरूपी अन्धकार से मुक्त तथा अज्ञानान्धकार से भी मुक्त होकर परम पवित्र हो जाता है। उसे ज्ञान-पुण्य-महाशान्ति इस पुराण के पठन से प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। उसके सभी आत्मीय वर्ग भी देव-देवी के प्रिय हो जाते हैं एवं वह देवता हो जाता है।।३६-३८।।

अशेषपापनिर्मुक्तः शृणु यत् फलमाप्नुयात्। कुले निशंकमुद्धृत्य भार्यापुत्रादिभिर्युतः ॥३९॥
बहुभिः स्वजनैः स्निग्धैर्भृत्यदासैः समाश्रितैः। इत्येभिः सहितैः सर्वैः श्रीमच्छिवपुरे व्रजेत् ॥४०॥
महाविमानैरारूढः सर्वकामसमन्वितः। तत्र भुक्त्वा महाभोगं यावदाचन्द्रपावकम् ॥४१॥
दाता हर्त्ता च कर्त्ता च यावत्साक्षाल्लये महत्। प्रलयान्ते ततः ज्ञानं प्राप्य योगमनुत्तमम् ॥४२॥

पापरहित हो उक्त दीपप्रदाता परिणाम में जो फललाभ करता है उसे कहता हूँ, श्रवण करो। वह कुलत्रय का उद्धार करके भार्या, पुत्र, स्वजन, भृत्य, दास-दासी के साथ समुदय भोग्य वस्तु से भरे महाविमान पर आरूढ़ होकर परम सुन्दर शिवलोक जाकर वहाँ जब तक संसार में चन्द्र-तारक स्थित हैं तब तक महाभाग्य हो, समस्त वस्तुओं का उपभोग करके अन्त में निःसंदेह मुक्त हो जाता है। वह प्रलयान्त में वहाँ ज्ञान तथा उत्तम योग (निर्वाण) प्राप्त कर लेता है।।३९-४२।।

ततो देव्या प्रसादेन मुच्यते नात्र संशयः। यस्मादवगतं कुर्याद् देव्याः पुस्तकवाचनम् ॥४३॥
भोगापवर्गफलदं शिवभक्त्या दिने दिने। न मारी न च दुर्भिक्षं न रक्षांसि न व्याधयः ॥४४॥
नाकाले म्रियते राजा हन्यते न च शक्तिभिः। शृणोति यश्च सततं शिवधर्मं नराधिपः ॥४५॥
तत्र देशे महापुण्ये देव्याः सन्निहिता नृप। श्रुत्वा सकृन्निगदतो मनोयोगान्नराधिप ॥४६॥
शिवः सहोमया तत्र क्रीडते भक्तिमतां पुरे। ददाति सर्वकामानि मनसेप्सितफलानि च ॥४७॥
सकृच्छ्रुत्वा महापुण्यं प्रतिष्ठा याज्ञिकं नृप। हेमन्ते ब्रह्मलोकं तु शिशिरे विष्णुना सह ॥४८॥
तस्मिन् दिने महापुण्ये तस्य चन्द्रमसो भवेत्। इह भुक्त्वाखिलान् भोगान् परिवारेण स नृपः ॥४९॥
अन्ते देव्याः पुरवरे शिवेन विद्युता सह। क्रीडते विपुलैर्भोगैर्यावदाचन्द्रतारकम् ॥५०॥

उसकी मुक्ति देवीकृपा से हो जाती है। इसमें किञ्चित् संदेह नहीं है। जहाँ नित्य शंकर की भक्ति के साथ भोग-मोक्षप्रद देवीपुराण का पाठ तथा श्रवण होता है, वहाँ महामारी-दुर्भिक्ष-व्याधि-राक्षसादि का भय नहीं रहता। जो राजा सतत् शिवधर्म-पालक है, वह अकाल में नहीं मरता तथा शत्रुगण उसका नाश नहीं कर पाते। मात्र एक बार भी आनन्दोत्सव के साथ इसका श्रवण करने से उसके शत्रु उसी दिन नष्ट हो जाते हैं। वह परिवार वर्ग के साथ इस लोक में अखिल भोग्य वस्तु का भोग

करके मृत्यु के पश्चात् देवीलोक में भी विपुल भोग भोगता है। जब तक सूर्य-चन्द्र-तारक हैं, वहाँ विद्यमान रहकर भगवान् शिव के साथ क्रीड़ा करता है। हेमन्त में इसके श्रवण से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। शिशिर में सुनने से वह विष्णु का लोक प्राप्त करता है। उसे सर्वकाम फल तथा इच्छित वस्तु प्राप्त होती है।।४३-५०।।

वसन्ते भूष्यते देवी उमा सर्वसुखप्रदा। निदाघे बहिर्लोकन्तु सर्वकामसमन्वितम् ॥५१॥
तस्मिन् भोगान् महान् भुक्त्वा देवीलोके महीयते। प्रावृट्काले रुद्रलोकं शृणुयाद्याति पार्थिवः ॥५२॥
शरत् सर्वानवाप्नोति कामान् राज्यं नृपोत्तम। त्रिःश्रुत्वा भक्तिमास्थाय मुच्यते सर्वपातकैः ॥५३॥

यह पुराण वसन्त काल में श्रवण करने से सर्वसुख-प्रदात्री देवी उमा परम प्रसन्न होती हैं। ग्रीष्म में श्रवण करने पर ब्रह्मलोक जाकर वहाँ विपुल भोग का आस्वादन करके अन्त में उसे परमसुखी स्थिति में देवीलोक में निवास प्राप्त होता है। हे नृपश्रेष्ठ! प्रावृट्काल में भी भक्ति के साथ इसका श्रवण कर सकने पर वही फल मिलता है। शरत् काल में श्रवण करने पर वाक्यसिद्धि के कारण अभिलषित विषयों की प्राप्ति हो जाती है। जो व्यक्ति भक्ति के साथ इसे तीन बार सुनता है, वह सभी पातकों से मुक्ति प्राप्त करता है।।५१-५३।।

विशुद्धश्च भवेद्वंशः सर्वकामफलावहः। पञ्च श्रुत्वा महाध्यायी स्वर्गलोके महीयते ॥५४॥
मातृसङ्घं यमो नित्यं तुष्यते अविचारणात्। तस्य भोगं वर्णयितुं मम वाणी न शक्नुयात् ॥५५॥
इहलोके शुभं भुक्त्वा तदन्ते शिवलोकतः। खट्वावधं तथा श्रुत्वा विनायकस्य जन्म च ॥५६॥
मातृलोकमवाप्नोति क्रीडते च चिरं सुखी। देवीं सम्पूजयित्वा तु विधिना नृपसत्तम ॥५७॥
प्रसादञ्च प्रकुर्वीत प्रत्यक्षा च भवेत् शिवा। सदाचारः शुभाहारः सर्वसङ्गविवर्जितः ॥५८॥
वाचयन् पुराणमेत्तत्तु सर्वकाममवाप्नुयात्। वाचयन् शतमर्धं वा प्रत्यक्षं प्राप्नुयाच्छिवम् ॥५९॥
एतच्चाभ्युदयपादं शतैस्त्रीभिर्नरोत्तमैः। सहस्रैर्द्वादशैर्वत्स कथितं सर्वसिद्धिदम् ॥६०॥

ॐ नमो दुर्गायै

इति श्रीदेवीपुराणे वाचनविधिर्नाम अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

उसके वंश में पवित्रता आ जाती है। सभी अभीष्ट प्राप्त करके वह श्रोता सफल मनोरथ हो जाता है। देवी सरस्वती भी वाणी से इस ग्रन्थ के पाठजनित फल की शुभता का वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं हैं। पाठ करने तथा श्रवण करने वाला इस लोक में अपरिमित सुखभोग करने के उपरान्त शिवपुरी में स्थिति प्राप्त कर लेता है। खट्वावध तथा विनायक की जन्मकथा सुनने वाला चिरकाल-पर्यन्त मातृलोक में परमसुखी होकर क्रीड़ारत रहता है। हे नृपश्रेष्ठ! यथाविधि देवी की अर्चना के साथ इसे सुनना चाहिये। इससे देवी शिवानी प्रत्यक्ष होकर कृपा करती हैं। सदाचारयुक्त तथा शुभ आहारयुक्त एवं सर्वसंग-विवर्जित होकर इस पुराण का पाठ करने से सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।५४-६०।।

अष्टाविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त

●

आद्ये देव्यवतारे देवीपुराणं सम्पूर्णम्

●●●●●

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
अकस्मादद्य	९.२७	अग्निचक्रविधिम्	१२१.११	अट्टहासे	६३.४
अकामेन तु देवेश	८७.१९	अग्निजालैश्च	८१.२०	अण्डजं वाण्डजम्	३५.५
अकारे ब्रह्मरूपेण	१०७.७	अग्निजिह्वे दर्भरोमे	१२७.१११	अण्डे हिरण्यगर्भस्थम्	४६.२
अकारोकारमूर्धश्च	८३.६९	अग्नित्वम्	३०.१२	अत ऊर्ध्वं प्रजज्ज्वालाः	८१.२१
अकालकौमुदी	२.५३	अग्निर्मूर्धः	५६.३३	अतः परं	७८.१
अकालकौमुदीम्	३१.३२	अग्निष्टोम	२८.१३	अतः परं	९५.३६
अकृत्वा नायकानान्तु	४३.५३	अग्निहोत्रे कुले	१२७.१०३	अतः परं	९४.१७
अकृत्वा सङ्करम्	३.१८	अग्निहोत्रेण	९६.२०	अतः परं	९३.२७६
अक्रीडत सा	१३.६४	अग्नेः परिग्रहः	१२१.२	अतः परं	९३.१७५
अक्षमालाकरो	३०.३	अग्नेर्ब्रह्मस्य	९८.९	अतः परं प्रवक्ष्यामि	४६.३०
अक्षयः कामरूपश्च	१२७.२२१	अघं नाशयते	२३.११	अतः परं प्रवक्ष्यामि	९९.१
अक्षय्यफलकामेन	१०३.११	अघोरा घोररूपा	१२७.१४२	अतः परं प्रवक्ष्यामि	१०१.१
अक्षरं युग्मायुग्मञ्च	९३.२७३	अचलस्त्वम्	२.५०	अतिखण्डेन	३७.३९
अक्षसूत्रधरा देवी	५०.१३२	अचिरम्	१.६८	अतिघोरं	११९.२२
अक्षेमं भवते	३९.१५५	अच्छेद्यास्तरवस्तस्मिन्	३१.३१	अतिरात्रस्य	७८.९
अगम्यगमनम्	१२.१७	अच्युतस्य	२.८१	अतिस्थूले भवेद्	६५.६९
अगस्त्यशिल्या	३.९९	अजगजवरभुजम्	११३.३४	अतीतानागतान्	२४.७
अगुरूं धूपेन	३३.६१	अजपादे	१३.६७	अतीतान् वर्त्तमानांश्च	४६.१९
अग्रं दुष्टम्	१०.३.११	अजयः सर्व	४.८७	अतीते युग	११९.६९
अग्रतः स्वल्पप्रासादम्	७२.३२	अजयो भवते	१००.२९	अतीतैश्चैव	१२७.७०
अग्राह्यमिन्द्रियैर्वापि	८३.७७	अजरो अमरः	८२.५१	अतीतैस्तु	७३.५१
अग्रे वर्णाश्च	२६.२९	अजारूढाम्	४.३६	अतीव तपसा	११६.७४
अङ्गिराद्याः शुभा	४६.५३	अजाविकखरोष्ट्रंश्च	९३.१३०	अतो देवीं च	३९.१७३
अङ्गिरा श्रीमुखो	४६.४०	अजाविवदनान्	१९.३	अतोऽहं तस्य	३९.४५
अङ्गारक उपभाषायाम्	१२७.९८	अजितः शंकरः	१२२.११	अत्यद्भुतम्	५५.१४
अङ्गुलाग्रस्थिताः	६३.२६४	अजिता पूजिता	१२७.१७२	अत्रैव यत	८२.४१
अङ्गुलीनाम्	७.३५	अजितामर्चयेत्	१२६.१७	अथ किष्कुशतान्यष्टौ	७२.३७
अङ्गुष्ठपर्व	९५.९७	अजिता विकृते	५०.१४६	अथ तम्	१८.४
अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या	७२.१७	अजिता सर्वकामानाम्	३३.९३	अथ तदनु	३९.७५
अङ्गुष्ठोदरमात्रेण	६९.४७	अजेयो	२.४२	अथ तस्मिन्	१३.६१
अग्नये पितरस्तारा	६७.५३	अजेयो ब्रह्मसूर्याणाम्	४.५९	अथ दैत्ये	३९.६९
अग्निं दूतम्	५६.६	अञ्जनं नेत्रपादानां	९१.८१	अथ भग्नास्तदा	३९.८२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
अथ राजन्	८.१७	अनन्तमासनं कृत्वा	९३.२७७	अनेन क्रमयोगेन	१०.७.६
अथ अथर्ववेदस्य	१०७.४३	अनन्तशक्तिर्भगवान्	१०.३.९	अनेन तुष्यते	९३.१७६
अथर्वविहितां	७.७४	अनन्तादीनि देशे	९३.२७८	अनेन न्यास	७७.२८
अथर्ववेदस्तीक्ष्णश्चण्डः	१०७.५५	अनया जप्यमानस्य	९३.२७४	अनेन मदनार्त्तास्तु	९४.१६
अथवा अनया	१००.२७	अनया विधिना	९३.२९५	अनेन वत्स	१०६.७
अथवा जीर्ण	६०.२३	अनया स्नापिता	७६.३६	अनेन वारुणान्	९९.३९
अथवा राहुणा	४९.३	अनर्चितन्तु	९३.१२०	अनेन विधिना	३३.७३
अथवा विष्णुरूपेण	७९.३	अनले अम्बिका	५०.२०१	अनेन विधिना	३५.२९
अथवा श्रीफलैर्वा	९३.१६४	अनलानिलवाच्या	८१.१४	अनेन विधिना	१०५.२१
अथवा सर्वसामान्याम्	२६.२२	अनादिष्टेषु	१२०.१९	अनेन विधिना यस्तु	९१.७०
अथवा सुविधानेन	५९.१०	अनाराध्य नृपम्	७७.२	अनेनैव तु	२३.१०
अथवा सौम्यहीनस्तु	९३.१०४	अनिमेषे क्षणा	९३.२७५	अनेनैव विधानेन	५०.७५
अथवा हैमरौप्यस्था	३५.१३	अनिरुद्धस्तु	५८.१६	अनेनैव विधिना	७९.१
अथ सर्वैर्य	९३.१६१	अनिर्विण्णस्तु	१०.७.३	अनेनैवानुमानेन	२०.८
अथ सामान्यतो	२५.१७	अनिर्विण्णोऽप्रतिष्ठश्च	१०.४.५	अनेनोपशयम्	८.२८
अथातः	७६.१	अनिलानल	३९.२९	अनौपम्यं तथा	९३.३४
अथातः संप्रवक्ष्यामि	५०.४८	अनिवृत्ते च	१०.४.१२	अन्तः	१०.६.८
अथातः संप्रवक्ष्यामि	१०३.१	अनिवर्त्तदेयम्	९४.३१	अन्तस्त्रिषु	३९.१४३
अथात्रेयस्य	१०८.३५	अनिवर्त्तकानि	९३.१२	अन्ते देव्या	१२८.५०
अथोत्तरम्	७६.५२	अनिशितासि	५६.४१	अन्त्यजानाम्	७.९५
अदतीव च	८५.२२	अनुक्तानान्तु	५०.१८७	अन्त्यजा अपि	९१.२७
अदुर्गस्तु पुनः	७२.७९	अनुगच्छति	४३.४७	अन्धकस्य	१.४४
अद्यापि तत्र	३७.११	अनुग्रहार्थं	१.६४	अन्नं विचित्रम्	२६.४३
अधः कस्मिन्	९१.४५	अनुत्पाद्यम्	१०.१०.८	अन्नं जन्मर्क्ष	५४.८
अधर्मनिरता	८.७	अनुपचयस्थैः	४६.८२	अन्नदानं ददेद्	९९.१९
अधिके	१२.३०	अनुमत्या सराकाया	४८.९	अन्यथा	४.१०
अधिदेवं	१०७.४९	अनुरक्तस्तथा	५८.८	अन्यथा तु	९५.४४
अधिदैवतविन्यासम्	११९.७४	अनुसूया क्षमः	१२७.८४	अन्यथा क्रियते	१०.१.२१
अधुना मन्त्रपदानि	९५.४	अनेकगुण	१०.३.६	अन्यथा रुक्मि	३९.१०६
अधृष्यः सर्वदेवानाम्	१२७.२३२	अनेकचित्र	५०.४२	अन्यथा रथनागैस्त्वम्	३९.१५३
अधृष्या शाश्वती	१२७.८६	अनेकपरिखोपेताम्	४.२८	अन्यथा ये	५६.२७
अनन्तं पद्मरुद्रश्च	८.१८	अनेकमुण्डकोटिभिः	११९.६६	अन्यथा विफलम्	३९.१११
अनन्तं शाश्वतम्	८३.६०	अनेकशाखशाखान्ता	१३.५१	अन्यथा विफलम्	१२१.२५
अनन्तं शाश्वतम्	८३.७५	अनेकसिद्धिसंकीर्णम्	९५.२४	अन्यापि	२९.१३
अनन्तः कूलिको	८२.२५	अनेकाकाररूपैस्तु	८५.६८	अन्याभिमन्त्रितम्	१००.२२
अनन्तरूपशोभाढ्या	८२.१४	अनेकाकारिणो	२०.२१	अन्याश्च	१२.४४
अनन्ततेजाः	१११.४	अनेकानि च	५०.६०	अन्याश्च बहवः	७४.६

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
अन्ये सर्वगतान्	८२.१७	अमायां विशति	४८.१६	अर्धेन्दु	७.२७
अन्येऽपि	७२.६६	अमावस्यान्तु	७४.१०	अर्धोर्द्ध काञ्चन	४६.३
अन्येऽपि ऋषयः	६०.३२	अमृतत्वं भवेत्	१२७.२५	अलं पर्य्याप्ति	५०.२८२
अन्येऽपि ये	११७.१	अमृते मथ्यमाने	६६.२	अलङ्कारालयः	८२.७२
अन्येऽपि ये	७६.१८	अमोघे दिव्यवपुषे	४३.५२	अलङ्कृत्य	६७.६७
अन्येषाञ्चैव	११.५५	अम्बाख्या	३८.८	अलङ्कृत्य यथा	६०.५
अन्यैर्वा	६७.१७	अम्बिका चेति	९९.४३	अलाभे	१२.९
अन्यैश्च मुनि	५०.८०	अयनेषु विकल्पो	२४.१२	अलाभेन च	१२३.२१
अन्यो वा	२३.४	अयाचके सदाचारे	१०४.१०	अलिवृन्दं वरारावे	४३.३९
अन्वीक्ष्य कुरुते	३७.५७	अयुताम्	४.३४	अल्पानि	९४.१४
अपचारेण	५५.२	अरण्यं गोपुरम्	४६.७७	अवति रक्षणे	३७.६४
अपमृत्यु पुरा	११६.८८	अरण्यरुदितम्	९३.७०	अवतारा	१.५
अपरञ्च	९६.१७	अरण्यानि प्रवक्ष्यामि	७४.२८	अवध्यान्	३९.१६४
अपराजितां भवानीम्	३३.९७	अरण्ये धर्म्महानिः	७३.२३	अवनीष्ठाम्	१२.७
अपराह्णे	१२१.२२	अरण्येषु	७३.२२	अवमन्य	९.३०
अपरिसंख्येय	१०९.९	अरिष्ट	१३.५७	अविच्छेदेन	१.३५
अपरे वायसैः	१३.७९	अरिष्टश्चाचलः	४३.२९	अविद्या	१२७.१८०
अपर्युषितानि	१२३.९	अरुन्धती क्रिया	५०.१४	अविनाशविनाशित्वे	८०.२०
अपुत्रो लभते	१०७.६०	अरूपा परभावत्वाद्	३७.३३	अविमुक्तञ्च	७६.७
अप्रच्छन्ने	१०.५.२	अर्कादि वा	२७.१६	अविवासानि	५०.६२
अप्सरोभिस्तथा	३३.१०९	अर्घ्यं दत्वा	५१.१६	अविशेषा विशेषेभ्यः	१०.२.१
अभयं स्वस्तिकाङ्केन	३२.३५	अर्घ्यं नैवेद्य	५०.३२९	अवीचि	८२.४
अभयवरप्रदा देवी	९३.२४०	अर्घ्यं पाद्यं	९४.४४	अवेति रक्षणे	३७.७१
अभया सर्वदेवानां	१२७.१२२	अर्घ्यहस्तास्तथा	९३.२१९	अव्यक्त	२.४८
अभयो सर्वलोकस्य	१२७.१५२	अर्चते	३०.१३	अव्यूहिका	१०.३.३
अभावे सूर्य्यकान्ते	५०.३२६	अर्चयन्ति	९५.३४	अशेषपाप	१२८.३९
अभिनन्दते तम्	९३.१९४	अर्चयित्वा	३६.२६	अशेषस्नेह	७२.८१
अभिषेक	७६.८	अर्च्यमानं तु	९३.१२९	अशोकस्रज	५०.१७५
अभिषेके सदा	६६.३१	अर्च्या	१.१६	अश्वत्थसमिधा	५०.२४५
अभेद्य कर्कशेणैव	८५.१०	अर्थकामो	१२७.२२५	अश्वत्था	४७.१५
अभ्यङ्गा	१३.७४	अर्थस्य	१२.२५	अश्वत्थोदुम्बरी	६०.३
अभ्यधावत्तदा	३९.१५७	अर्थे शूलिनि	३६.२६	अश्वमेधं महायज्ञम्	९३.४०
अमयं घातयित्वा	४३.६३	अर्दितां शरवर्षेण	१८.५	अश्वमहिष	४.९३
अमयं नाशनार्थाय	४३.६	अर्द्धनिशायां	४६.८०	अश्वमेध	७९.५
अमात्यप्रवरम्	९.१८	अर्द्धालंकृत	३९.३७	अश्वमेधमवाप्नोति	२२.२३
अमात्यवशगम्	९.१२	अर्द्धरात्रे	२४.१७	अश्वमेधसमं	५०.१३७
अमा नाम	११८.२	अर्धमाना परा	८३.६७	अश्वमेधसमं	२७.३७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
अश्वमेधसमं	६०.१	अस्मद्रिपु	४.१२	आगता मर्त्या	९३.२३४
अश्वमेधसहस्रस्य	१२७.२२९	अस्माकं मर्त्य	८.१	आगता मर्त्या	९४.४१
अश्वमेधादि	२०.५	अस्माकं शिव	२.३३	आगतो मर्त्यों	९३.२१४
अश्वस्थानाद्	६९.१०	अस्मिंस्तु मण्डपे	९३.२३२	आगत्य इह	५०.८३
अश्वारूढ	६.६	अस्य मध्ये	९५.२०	आगमध्यानयोगेन	८.१०
अश्वारूढा महादेवी	५०.११०	अस्वतन्त्रमिदम्	१०.३.८	आगमोद्दिष्ट	२.७१
अश्वाश्च	२.५	अहं ग्रहपतिः	१२७.१८६	आग्नेयादि	७३.५६
अष्टकापूरणञ्चैव	१०७.२७	अहं तव पिता	१२७.१८२	आग्नेयादिविभागेन	४६.६४
अष्टचक्रश्च	९३.१८०	अहं ते हृदयम्	१२७.१८३	आग्नेयान्तु	९३.२४२
अष्टधा ग्रहराजस्य	३९.१४८	अहं त्वञ्च	१२७.११५	आग्नेयीं दिशम्	१२६.२५
अष्टमं	६६.१५	अहं बीजवरम्	१२७.१९४	आग्नेय्याम्	९३.१४१
अष्टमं तद्विजानीयाद्	८२.२१	अहं ब्रह्मा सुरश्रेष्ठ	१२७.१८८	आचम्यार्घ्यपाद्यं	७९.१२
अष्टमी चाश्विने	८९.३	अहं रसयिता	१२७.२११	आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च	६९.७
अष्टमे द्वौ शुभौ	४६.५४	अहं वक्ता च	१२७.२१२	आचार्य्यान्	२६.४५
अष्टम्य	४५.७	अहं शुष्कः	१२७.२०५	आचार्याय	५८.२०
अष्टम्याञ्चैव	३३.९९	अहं सम्प्रेषितो	३९.५६	आचार्याय प्रदातव्यम्	५०.६७
अष्टम्याम्	२२.९	अवायः प्रत्यावायश्च	४३.३२	आजैकपादं हि	४६.९
अष्टवर्ग	७१.३	अहङ्कारवशा	११९.५४	आज्ञा प्रार्थयमानस्तु	९३.२८७
अष्टषष्टिस्तु	६३.१७	अहङ्कारात् परा	१०.२.१	आज्यं तेजः	६७.३६
अष्टाङ्गुलम्	१२.२२	अहमग्निश्च	१२७.१०४	आज्यावेक्षणे	५६.५०
अष्टादशभुजैश्चैव	१२७.११६	अहमद्यापि	२.८२	आतपत्रसिताम्भोज	८५.६६
अष्टादशसहस्राणि	१०७.२२	अहमहश्च मूर्तिश्च	१२७.२०९	आत्मनः	८.५५
अष्टापदी	५६.११	अहमिन्द्रो महातेजः	१२७.१८९	आत्मनः पावनम्	३३.५६
अष्टाविंशाष्ट	५४.१६	अहमिष्टो महायज्ञः	१२७.१०४	आत्मवित्तानुरूपेण	९१.७५
अष्टाशीति	१२७.१०५	अहल्याबन्धकी	९३.१०२	आत्मवित्तानुसारेण	७४.२३
अष्टोत्कृष्टम्	५०.३७	अहिंसकः	१०.४.६	आत्माध्याता	१०.६.६
अष्टौ तु प्रकृतयो	१०.२.५	अहोपूर्वाणि कथ्यन्ते	९२.१६	आत्मानं प्राकृतम्	९३.२९१
अष्टौ दला	६५.८१	आ आ	११६.३६	आत्मानं पूजयित्वा	५०.३०५
अष्टौ धनुः	७२.२१	आकाशे	७.८२	आत्मानं दार	३९.१७२
अष्टौ शतानि	१०७.४२	आकृतिं नैव	८३.९३	आत्मानम्	८.१९
अष्टौ सहस्राणि	१०७.३३	आक्रामन्ति	९३.११९	आत्मेन्द्रियमनादीनां	३७.४९
असिपाशाङ्	३.२१	आख्यातं दिव्यसम्पन्नम्	७२.४७	आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानाम्	१०८.५
असुरा शुम्भ	३.२५	आगच्छन्तु	९४.४२	आत्रेयस्य	३९.१४
असौ लुब्धो	३४.१२	आगतः कूर्परः	३४.१५	आदाय तरसा	१८.११
अस्त्रं प्रत्यङ्गिरा	३९.१६८	आगतस्तस्य	४.५७	आदाय विधिवद्देवीं	१०३.३
अस्त्रेण तु	१२६.१८	आगता क्षण	४०.१३	आदित्यं देवम्	५६.४
अस्फाटिते	९३.१५०	आगता घातितम्	२१.२	आदित्यं पठ्यते	४७.११

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
आदित्यम्	५३.१२	आयतैः	३२.२३	आसीदिदं तमोभूतम्	१२७.४४
आदित्यम्	५६.१	आयान्तं तम्	४१.७	आसीद् दुन्दुभिः	४.५८
आदित्यवर्ण	१०७.५४	आयान्तं तं शरैर्देवी	४१.५	आह्वानेन	५०.३०६
आदित्यश्चैव सोमश्च	४७.९	आयामित	८४.१२	इङ्गुदोदुम्बर	१३.५८
आदित्यश्चैव सोमश्च	४७.७९	आयुधीयैरशून्यानि	७२.९६	इच्छाप्रीति	७२.१४८
आदित्यस्य	७१.९	आयुर्वेदार्थकुशलः	११०.९	इच्छाविराजित	११६.३३
आदित्याज्जायते	५५.१२	आरक्ता	३२.२५	इति दुःखशोकिनम्	३६.२३
आदित्यादिति	३७.६७	आरण्यः सर्वगः	१२२.१२	इत्थमाश्रवणम्	१२८.१३
आदित्यानान्तु नामानि	४६.११	आराधनञ्च	१.४६	इत्युक्ता	४.७५
आदित्या रथगा	३९.९१	आराध्य नन्दिना	९.५१	इत्येते षडतिक्रान्ता	४६.२३
आदित्या वसवः	२१.३	आराध्य भगवद्विष्णुम्	४०.५	इत्येवं कपिलः	८.४७
आदित्या वसवः	४७.९	आरुह्य पर्वतम्	१४.१०	इत्येवं शुभदैरैतैः	६७.५४
आदित्या वसवो	६७.५१	आरूढश्चित्रगुप्तश्च	३९८६	इत्येवमादीनि	५५.१५
आदित्ये शुद्धि	१२२.२४	आरूरोह	४.४५	इत्येवमाद्या	७२.८५
आदिवर्ण	५२.३	आर्त्तस्य	२.४९	इदं घोरबलम्	१५.१२
आद्यं देव्यवतारम्	१२८.४	आर्त्तानां भवभीतानाम्	८३.११६	इदं यश्चर्चिका	६.३९
आद्यन्त	५०.२५०	आलभ्य	३३.६६	इदं विष्णु	५६.८
आद्यमन्तौ च न शुभौ	४६.५९	आलोकस्थम्	८५.३७	इन्द्रं चन्द्रं वसु	१११.१२
आद्याक्षरस्य नामेन	४६.९०	आलोकालोकपर्यन्तम्	८५.३३	इन्द्रं वह्नि	११.२८
आद्याध्यानेन	१.२४	आवसथ्ये भवो	१२२.१८	इन्द्रनीलपरिच्छन्नम्	९३.५
आद्ये तु मध्यमे	४६.५४	आविष्टो ह्यथवा	११८.८	इन्द्र विश्वा	५६.१
आधयो	२७.३८	आवृतम्	४२.२४	इन्द्रश्च विश्वभुक्	४६.२६
आधारस्तु सप्तमे	४६.५७	आवृत्य संस्थिता	३९.१५२	इन्द्रस्तु	४.४९
आधारे भयते	१२२.१५	आश्रयस्तत्र	९३.१३८	इन्द्रस्य च	१.४
आधूय वारुणान्तस्था	८५.६३	आश्लेषाः संख्या	१०७.१४	इन्द्राणाम्	४.८४
आनन्दाख्ये त्रिनेत्रा	५०.१९८	आश्लेषाम्	४६.५१	इन्द्राणी	३७.८६
आनन्दा च	७७.२३	आश्विने	३३.६५	इन्द्रादिलोकपालानाम्	५०.५४
आन्दोले दोलयेद्	६१.६	आश्विने	१२.४५	इन्द्राय प्रेषयत्	४०.१५
आपत्स्वपि	१०१.२९	आश्विने घातिते	२२.३	इन्द्राय शचीयुक्ताय	६१.२३
आपदः सुलभा	७२.७४	आश्विने वाथ माघे	८९.२	इन्द्रायाभिमुखोऽधावत्	३९.११२
आपदो या	१६.१२	आषाढे चन्दनम्	१०४.३	इन्द्रियाणाम्	९३.११६
आपः प्रविष्ट	४८.१७	आषाढद्वयेऽपि	१०१.५	इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः	१०.५.६
आपो द्विधा	७२.५५	आषाढश्रवणोपेतो	१२७.९५	इन्द्रेण विधिना	१२८.२
आपो हिष्ठा	५६.३६	आषाढे तोयधेनूम्	१०२.१	इन्द्रेण सर्वदेवैस्तु	८७.२३
आबद्धकवचम्	७२.१०४	आषाढे बिल्व	६२.२	इमां मे	३३.७७
आभाषन्ते	३.९	आषाढे मासि	५९.८	इमां विद्याम्	९५.५
आम्रदूर्वाक्षतबिल्वपत्रैः	१०२.१३	आसनम्	१०.५.५	इमां स्तवम्	३३.४४

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
इषु चक्रासिमकरे	८३.३६	उत्क्षेपं दण्डपादाब्जैः	८७.७	उपायेन भयात्	१२७.९
इषुजोपप्लवाक्षोः	७.७६	उत्तमाङ्गं शुभम्	११९.६५	उमाकालो	१.४७
इष्टं द्रव्यम्	१०.८.९	उत्तमान्	१०.५.७	उमादेवी तु	११४.६
इष्टांश्च लभते	१२७.२२३	उत्तरं विन्ध्यभागन्तु	२८.४	उमामन्त्रेण	७९.२१
इष्टाख्य	५३.४	उत्तरे भयदम्	६५.५२	उमामहेश्वरम्	९३.११८
इष्टार्थफलम्	११३.१०	उत्थापयेद् गतासु	३९.५६	उमाशिवम्	६१.३
इह प्रक्षीयते	९१.१८	उत्थितस्तावत्	६.१६	उरसि यत्र	८५.३९
इह लोके शुभम्	१२८.७	उत्पत्तिकीर्त्तनम्	१.३६	उल्का दण्डोज्ज्वलम्	४३.५७
इह सम्प्राप्य	१२८.२५	उत्पत्तिस्थापने	३९.१२७	उवाच कुपिता	४.८०
इहैव जायते	८८.१३	उत्पत्तिस्थितिनाशेषु	३७.२२	उवाच मधुरा	१२७.३८
इहैव तम्	५६.१७	उत्पन्नममृतम्	६६.३	उशनाच्च	६७.७५
इहैव परमम्	१०.४.२	उत्पातक्षोभ	५०.९	उशीरागुरुहोमेन	५०.१७९
इहैव पूजनीयास्तु	९०.२७	उत्पातान्	५५.३	उषःकाले तु	२४.२२
इहैव स भवेत्	३२.८	उदकुम्भ	५९.४	ऊरू	७.३४
ईक्षते	२९.१४	उदरस्थात्तु	११२.११५	ऊरूभ्यां	३७.१४
ईदृक्संस्थानसम्पन्नाम्	१०४.१९	उदाहृतं मया	९३.१०५	ऊर्जस्तेजश्च	११८.७
ईदृशं	६५.७९	उदुम्बराश्च	१२.५	ऊर्ध्वं यस्यां	५६.५
ईदृशं मन्दिरम्	९३.२३१	उद्देशम्	२६.१३	ऊर्ध्वकेशोत्कटा क्षेमा	५०.२२२
ईप्सितार्थ	२.४५	उद्धृता पापकलिना	९१.७२	ऊर्ध्वमण्डप	७२.११८
ईशानः पञ्चमो	६६.१९	उद्धृत्य	४९.९	ऊर्ध्वयानम्	९४.५०
ईशानः पश्चिमः	६६.२१	उद्यानदीर्घिकैर्वापि	९३.७५	ऊर्ध्वाध्वम्	८७.५
ईशानपूर्वे	५०.३८	उद्वर्त्तनाः	१.२३	ऊषरारण्य	७४.२१
ईशानमीश्वरम्	८३.८३	उद्वाहकरणम्	१३.७५	ऊष्ट्रारूढैस्तथा	१३.७७
ईशान्यादीनि	७७.२४	उद्वाहम्	१.४७	ऊष्मोदके नरकाः	८२.३
ईश्वरः पुरुषो	१०.३.१	उन्मत्तचेष्टितम्	९३.६७	ऋक्षे पिण्ड	५९.१७
ईष्टास्तुष्टमनाः	९३.२१८	उपकल्पितेषु	६०.१९	ऋक्सोपानः	१७.४५
ईष्टास्तुष्टमनाः	९४.५१	उपधानं विचित्रन्तु	७७.२५	ऋग्यजुःसामवेदम्	११६.१७
उक्तश्च त्वम्	११९.७१	उपनेतात्मजम्	६.८	ऋग्यजुःसामाथर्वाणो	८३.१६
उग्रभैरव	७.६८	उपपत्तिलक्षणम्	६६.१	ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः	१०७.५०
उग्ररूपो	३.२६	उपपन्नास्मि	१२७.३७	ऋग्वेदे ते	१०७.१८
उग्रसेनबलम्	४०.२१०	उपपातालमष्टन्तु	८२.६०	ऋग्वेदोऽथ	६६.१२
उग्रसेनस्तदा	४०.१८	उपप्लवो च	११४.८	ऋचां दशसहस्राणि	१०७.१७
उग्रसेने हते	४१.१	उपरागे चन्द्रमसे	६०.२१	ऋजुं तु महा	११६.२४
उच्चरेत प्रयत्नेन	९३.२६७	उपलब्धिः	१०.६.११	ऋजुपथे सदाचारो	९७.१६
उच्छ्राया	७२.११७	उपलावृतम्	७४.२९	ऋजुर्व्रणम्	९.२१
उज्जयिन्याम्	७५.३	उपवासात्परम्	७८.३	ऋतुपुत्रार्त्तवा	४६.३५
उडुम्बरं समम्	७२.१३४	उपसर्गेऽपि	१०.९.९	ऋतुषट्क	५०.२३५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
ऋषयः	१.४९	एतत्ते	१३.१	एवं विद्या	११.३
ऋषिकन्या	८.२०	एतत्ते सर्वमाख्यातम्	८२.५३	एवंविधं	१३.१३
ऋषिभ्यश्च	४७.१७	एतत्त्रिभावां	८३.१३	एवंविधं	५०.४३
ऋषीणां यथा	९३.३१	एतत्स्थूल	२४.२३	एवंविधं तदा	८३.४५
एकः पतिः समः	१०.३.७	एतदेवञ्च	७२.७	एवंविधपुरे	२.६४
एक एव भवेद्वेदश्च	१०७.१२	एतदेव फलम्	८.१८	एवंविधा	३७.१०
एकचित्तः	१.६९	एतद्धि सर्वमाख्यातम्	१२७.२१८	एवंविधास्तथोत्पाता	१३.३६
एकचित्त	१.६०	एतद्विनायक	११६.५६	एवंविधिं	५७.१५
एकत्वेन पृक्त्वेन	३७.९७	एतद्वेदितुमिच्छामि	११६.६६	एवंविधिः	७८.७
एकधा	६.२३	एतद् व्रतम्	३३.१०७	एवंविधे	२.५७
एकपत्नी	७३.४१	एतस्मिन्	२७.१	एवंविधेन	५०.१८५
एकभक्तेन	५०.७३	एतस्मिन्नन्तरे	८४.२१	एवंविधेस्तथा	१४.१
एकभक्तेन	८९.१६	एताः पौराणिका	३९.२२	एवंविधेस्तदा	८५.७९
एकभक्तेन नक्तेन	१२०.११	एतावांस्तु	७२.६१	एवंविधे स्थितो	१२४.५
एकमात्रम्	१०.७.७	एता वै देवताः	५६.५२	एवंविधेषु	७४.८
एकलिङ्गे	७.८५	एतास्तानैकभेदेन	५०.२७	एवंविधो	९१.३६
एकलिङ्गे	३२.६	एतेऽर्च्चनजप	५०.२३१	एवं विनायकम्	७९.२३
एकस्त्रिगुणः	१२२.१	एते च	३७.४७	एवं विवेकमासक्तम्	८.३८
एकस्मिन् मे दिने	८०.२४	एते च पुर	१३.२९	एवं शक्रस्य	११.५७
एकां वा यदि	९१.३	एते चोत्पादिता	६६.२४	एवं शुद्धिगता	५०.७७
एका एव परा	२९.४	एतेन लेपयेन्	१२३.४	एवं श्रुत्वा	९३.१५
एकाक्षी च शताक्षी	१२७.१६९	एते रुद्रा	८१.११	एवं संक्षिप्य	१.५३
एकाग्रप्रणिधानञ्च	१०.७.१	एतेषां शास्त्र	५१.४	एवं संसाधयेद्विप्र	२६.६
एकादशकरम्	५०.३८	एतैः सर्वे	७०.२	एवं स	८.५७
एकानेक	७.४२	एभिः स्थानै	९३.१०८	एवं सङ्गतितः	३९.६७
एकान्तरोपवासाश्च	२.१०	एलाकुङ्कुम	५०.१५३	एवं स तर्ज्जयित्वा	४१.३
एकान्ते	७५.१०	एलातपत्रो	३.१०	एवं सबान्धवम्	९.२३
एकान्ते सुमनक्षेण	९१.५६	एवं मण्डलम्	७०.३	एवं समस्तम्	६७.२७
एका वा नगरान्तस्था	३९.१६६	एवं महाबलम्	२२.२	एवं समुच्छ्रयेच्छाखाः	७२.१३२
एकैकां कोटिरूपेण	८४.२३	एवं यः कारयेद्वत्स	९८.२६	एवं सम्बोधयन्	२.८५
एकैकस्य	९.६३	एवं युगादिभिर्देव्यो	५०.३३८	एवं सर्वगता	३९.२४
एकैकान्तु	६६.३६	एवं यो वाहयेत्	२७.३६	एवं सर्वगुणोपेतं	५८.१०
एकोच्चारेण	९१.१९	एवं लक्षण	५६.२६	एवं सर्वप्रदा	२९.१
एको भूत्वा	३७.९३	एवं वर्षशते	८०.२५	एवं सर्वात्मकम्	११२.२०
एतच्चाभ्युदयपादम्	१२८.६०	एवं वह्निस्तु	१२६.१२२	एवं सा	८७.२३
एतच्छ्रुत्वा	८६.१८	एवंवादिनञ्च	१०९.३	एवं सा पञ्चका	११६.९४
एतत् कार्य्यम्	३९.६३	एवंवादिनम्	१०८.३७	एवं सा पद्मालाख्या	९.५८

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
एवं स्तुतः	७.१८	कंसकंसाल	२.६३	कन्याकोटि	९३.२३६
एवं स्तुतः	३३.४५	कंसश्च निहतो	१२७.१५१	कन्या दिव्या	३५.१७
एवं स्तुतस्तदा	८०.२२	कङ्ककापोत	६५.२१	कन्या द्विजांश्च	३३.५५
एवं स्तुता	१६.३७	कचाद्यैर्यत्	९३.११०	कन्यानां वचनम्	९३.२४६
एवं स्तुता महादेवी	१२७.२१७	कटङ्कटकराः	८४.१५	कन्या मध्याः	१२.६
एवं स्तुत्वा	३६.२७	कठानाञ्च	१०७.१९	कन्यारूपा	७.३९
एवं स्वप्नान्	१२.२०	कण्ठानुकूलजो	१२२.२५	कन्यासंस्थे	३९.१६९
एवं हते	१४.२४	कण्ठारावम्	११९.४४	कन्यासम्पूजको	३४.८
एष संक्षेपतो	१०.१०.१०	कण्वीं नाम	३९.४४	कन्यासाम्	५८.३२
एषाः कष्टफलाः	४६.५६	कतरेण तपेनैव	९३.५९	कन्या स्त्रियस्तु	९१.५०
एहि वीर	९३.२४५	कथं खट्वादयो	११६.८०	कन्यास्थे च	५९.१६
ऐन्द्रेशस्तु	७३.३०	कथं खट्वासुरो	११६.६५	कथ्यतां	१.३
ऐन्द्रोत्तर	७२.२२	कथं खट्वासुर	१११.१	कथ्यतां कारणम्	६.१२
ऐरावती	६६.९	कथं देव	९३.११	कदम्बः कर्णिकारः	१२३.१३
ऐशान्यां कामदा	६८.१६	कथं देव्या	८०.१	कदम्बैरर्चयेत्	१२३.१८
ऐशान्यां	७३.६	कथं माता	१०७.२	कद्रुः सावित्री	१७.२७
ऐशान्यामेकलिङ्गे	६८.६	कथं वा देव	११६.७३	कपाटैः	९३.८७
ऐश्वर्यं	३७.७७	कथं वा हरिश्चन्द्रस्य	११६.८१	कपालं ब्रह्मकम्	३७.१५
ऐश्वर्यात्	३३.१५	कथं विद्या	४३.१	कपालं याम्य	११९.५
ओं ओं ओं	११६.२९	कथं स	५८.१	कपालमातरै	४६.१०
ओं कालि कालि	७७.२६-	कथं स दैत्यराजेन्द्रो	८४.२	कपालमालिनम्	११९.६२
ओं नमो हिरण्यवर्णाय	७७.२०	कथं सा	९.५०	कपालरुद्रसहिता	८६.८
ओं नुं नन्दे	९९.९	कथञ्चित्	८४.१०	कपालहस्तमीशानम्	८३.४३
ओङ्कारं प्रणवो	१०.५.११	कथयस्व महादेव	९३.९	कपिलः पिङ्गलश्चैव	९२.५४
ओङ्कारनित्ये	१२७.११४	कथयामि	७६.३१	कपिलो हेमकुक्षिश्च	११०.६
ओङ्कारप्रणवा	१०७.९	कथयामि महादेवि	९३.२०७	कपिसंस्था	२३.१३
ओङ्कारमूर्त्तिसंस्थम्	११६.११	कथां पुण्य	१.३१	कपोलपुलितम्	८५.३८
ओङ्काराद्	१०.७.२	कथितं मुनि	११६.५७	कम्बलं शुक्लसूत्राम्	१०४.६
ओङ्कारेण	१०.७.१०	कथितं विद्या	१३.२	कम्बलस्कः	८२.३५
ओमित्येकाक्षरम्	८३.६५	कथितं शङ्करोमाख्यम्	८९.१	कम्बुरेख	७.३
ओम् पितृभ्यः	९३.१८८	कथितः पावकौ	१२२.२९	कयानश्चित्र	५६.३७
ओम् रेताय	१००.२१	कथितन्तु समासेन	११९.७३	करं प्रसारयेद्	१३.७०
ओम् विनायकाय	७०.१	कनकमुत्तरदेशाः	४६.१२	करताले स्थिता	८२.३४
ओष्ठमेवाङ्गुलम्	५०.३१३	कनिष्ठया	७२.१८	करवीरकुसुम	१२३.११५
औखेयाः खाण्डिकेयाश्च	१०७.३५	कन्दमूलफलाशी	९३.१६२	करवीरवनं तत्र	९५.१५
औजस्वीं साम्प्रतस्त्विन्द्रो	४६.२७	कन्यका ब्राह्मणान्	३५.११	कराणां धनुषाणाम्	५०.४०
औपसर्गिकरोगाश्च	६.४३	कन्यकायाः पथ	९५.२	करालं तालजङ्घम्	८५.७२

श्लोकाः	अ०/श्लो०
करालीं विकरालीं	१२७.१७८
करोति शम्भुना	८३.१०
करोमि भवतामिष्टम्	३९.४२
कर्तृका मुण्ड	५०.२३९
कर्त्तव्यं द्विज	८९.७
कर्त्तव्यं भूतवेताल	८९.८
कर्त्तव्यमेकमेकं वा	९०.२६
कर्त्तव्या	८९.११
कर्त्ता शताधिकम्	११८.१२३
कर्दमेन यथा	४९.२४
कर्णस्थान	८७.८
कर्णिका तद्विजानीयात्	५०.३२०
कर्णिका तु	६५.८०
कर्णिकारे	६३.१६
कर्णिको शिवः	७४.३१
कर्णो विन्यस्तपत्रेण	८२.७४
कर्पूरोदक	२.५५
कर्मजस्तु मतो	१०८.२०
कर्मणा कुरुते	९.६२
कर्मणा फलमाप्नोति	६९.२४
कर्मयज्ञ	७६.६०
कर्मयज्ञस्तपो	५७.३०
कर्मयज्ञेन	३०.६२
कर्म वाचेतनो	१०८.३०
कलङ्कमसि	१३.३१
कलशानाम्	७६.३८
कलशाश्च ग्रहाः	६६.४०
कलशा हेमधातूत्था	७६.२८
कलशैश्च	६६.५
कलशैर्वलि	६७.३४
कलशैस्तोय	१२४.७
कलहंसेश्वर	९४.२१
कलां कलाम्	६६.४
कलां कला यदा चन्द्रो	४२.१५
कलां याम्	६.१७
कलाः षोडश	४८.१०
कल्पान्ताश्च	६५.८५
कल्पे कल्पे	८२.६९
कल्पे सुरोत्तमे	५८.३
कल्याणम्	६७.९
कल्याणी	१२७.१६२
कल्याणैर्न	६७.३५
कवचेन तथा	२६.२६
कषायलवणै	५१.१२
कस्मिन् काले	११९.११
कस्मिन् क्षेत्रे	९३.७
कस्य छिद्रम्	११६.१
कस्यास्ते चालनम्	११८.५
काकपक्षो उरगश्च	४३.२४
काण्डात्	५६.१२
कानि दानानि	१०२.२
कानि पुष्पाणि	९०.२
कान्तहीना	९३.७९
कान्तारवासिनी	११७.१२६
कात्यायनस्तु	१०८.२३
का पुनः स्रष्टा	८४.२६
कामरूपी	५७.२९
कामाख्या	३९.४
कामार्त्ता	७.३७
कामार्त्तो	९.४४
कामिकाम्	२.१
कामिकाः साधका	१२२.२७
कारणं मोक्षकालञ्च	७२.९
कारणाच्च	३७.९१
कारणात्	१०:३:१०
कारयेत् पुरद्वारादि	७२.१२६
कारयेद्	३२.२०
कारयेद् द्वारसंस्थानि	७२.१२३
कारयेद्विविधान्	७२.१२०
कार्तिकं शोभनम्	४६.४८
कार्तिके ग्रहणम्	७४.११
कार्तिकेयसमो	९३.१९६
कार्यं पूर्वविधानेन	१२४.१२
कार्यः परिग्रहे	१२१.३
कालजस्त्वेन	१०८.२६
कालनेमि	३.२७
कालपट्ट	१३.४४
कालपाशमहा	६.२४
कालपाशैः निबद्धम्	१७.३९
कालपीडा	७.७२
कालमर्थप्रमाणञ्च	७२.८९
कालरात्रिम्	१६.२९
कालसूत्रम्	८२.८
काला कालाग्निरुद्रश्च	८३.८७
कालाग्निधामनम्	८१.६
कालाग्निभवनस्यार्धे	८२.१
कालाग्निभुवनीशोऽयम्	८१.१२
कालाग्निशिवपर्यन्ता	९०.११
कालिका	९३.४५
कालिकाख्य	३८.६
काली दक्षापमानेन	३७.१४
काली प्लवङ्गनामे तु	५०.१८८
काली ब्राह्मी	८९.१३
काली रौद्री	५०.१५
काले चैव	४.३३
कालेन मृत्युमापन्नो	८२.५०
कालेन सह	८.४
कालेव चोच्छ्रितो	४६.८१
कालो नित्योदितोऽमूर्तः	१०८.३१
कावेरी गोमती	७४.५
काश्चिज्जयजयाः	९३.२३८
काश्मीरमम्बरश्चैव	४३.७१
काश्यपं यजुर्वेदन्तु	१०७.४८
काश्यपस्य सुतः	४७.१२
काश्यपोऽत्रिर्वशिष्ठश्च	४६.३९
काश्यपो यजते	३९.६
काषायवाससश्चैव	६९.४
काष्ठेष्टमथवा	७३.३२
किं कार्यम्	९३.६५
किं पुनः	५.१५
किं पुरस्य तु	९३.५६

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
किं प्रमाणन्तु	९३.५७	कुन्तदारितदेहास्तु	८५.५९	कृत्वा क्रतुशतम्	२.२
किं प्रमाणम्	१४.२	कुन्द	७.२९	कृत्वा क्षमापयेत्	१२३.१५
किं योगः	१०:१:९	कुबेरो यक्ष	३९.९०	कृत्वा जयादि	१२४.११
किं वा वदन्ति	९३.५८	कुब्जां च	१२.८	कृत्वा तु	९३.१०७
किं वा सा	१४.२	कुमाररूपधारी	३७.८३	कृत्वा तु तथा	११५.६
किंवा लम्बूकवीणायाम्	९३.६९	कुमारिकाश्च	९३.६७	कृत्वा तृतीय	५०.२३०
किं वेदी रूपमानेन	१०७.११	कुरुते कोटिधा	९.७१	कृत्वा दिव्यायुतम्	५८.१७
किङ्किणी	३५.९	कुरूक्षेत्रं	६६.१०	कृत्वा देवीम्	९९.१४
किङ्किणीरव	१२८.१२	कुरूक्षेत्रं विदुः	६३.३	कृत्वा देव्या	३२.३
किङ्किणीशब्द	५०.३०३	कुरूक्षेत्रोत्तरं भागम्	३८.५	कृत्वा प्रतिष्ठयेद्यस्तु	५०.१३३
किञ्च लोक	१७.२	कुरूपेण कुरूपम्	९३.१५८	कृत्वा रूपम्	११९.७
किन्नराद्याः	६७.२०	कुर्यात्	४३.३१	कृत्वा वपुर्महासूक्ष्मम्	११.१८
किन्नरीगणसङ्कीर्णे	९३.२२	कुर्यात् त्रिषवण	१२०.११८	कृत्वा वसे	३:८
किन्तु भीः	१०८.७	कुर्व कुर्व	७.७८	कृत्वा विभव	२५.१३
किन्तु सत्यव्रतो	२.९१	कुर्वन्ति भक्ति	९३.१११	कृत्वा शेषम्	६७.६३
किमायातो भवांश्चात्र	३९.५५	कुलक्षयमतो	६८.९१	कृत्वा सत्राभि	९८.१९
किमेतदद्भुतं रूपम्	११९.६४	कुवलयदल	१७.३४	कृत्वा हुताशने	१२२.१४
किष्किन्ध्ये भैरवी	४४.११	कुशद्वीपम्	३.५;८.९	कृत्वा होमादिलाभेन	५०.८६
कीटकेश	१२३.१९	कुशद्वीपे	३९.१९	कृत्स्नं यमेन	१२.३३
कीर्तनं यत्र	१.१५	कुसुमोत्पलसञ्छन्नम्	८२.६७	कृशायाश्चार्थहानिः	३५.४०
कीर्तनम्	१.१२	कुह्वति कोकिलेनोक्ते	४८.८	कृषिकर्मा तु	७३.२४
कीर्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः	६७.४२	कूर्मकालविभागेन	४६.६२	कृष्णपिङ्गप्रगल्भ	१७.३८
कुङ्कुमागुरु	५.४६	कूर्मपृष्ठ	७.३३	कृष्णमूर्धो	१२७.११८
कुङ्कुमागुरु	६१.५	कूष्माण्डी	८२.१३	कृष्णशान्तिकरो	११.३१
कुङ्कुमागुरुगन्धैश्च	९३.२२०	कृच्छ्रं तद्धर्म	१२०.२	कृष्णसर्प	१३.२८
कुङ्कुमागुरुकर्पूर	५०.१०५	कृतभुजगवर	१७.३०	कृष्णसारं समादाय	३९.८९
कुङ्कुमागुरुकर्पूर	२०.९	कृताञ्जलिपुटा	९३.२०	कृष्णसारैः	१३.४८
कुङ्कुमागुरुकर्पूर	६७.४	कृताञ्जलिपुटो	९४.३२	कृष्णा च कृष्णरूपा	१२७.१६७
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमदेन	७६.४४	कृतान्ततनु	८७.३०	कृष्णाम्बरधराम्	९३.१३१
कुङ्कुमागुरुकर्पूरसित	२७.४	कृतिकारण	११९.५८	कृष्णायसाः	१३.७६
कुङ्कुमादि	५२.३	कृते दिवस	९२.३	कृष्णाष्टम्याम्	७८.१०
कुङ्कुमेन सदर्पेण	९९.२६	कृते स्थाने	३१.४१	कृसरां पितृदेवानाम्	५०.३११
कुण्ड	५०.२७१	कृतोऽप्यापत्	७२.७६	कृसरागुड	३३.८०
कुण्डलाभ्याम्	१२७.५५	कृत्तिवासञ्च	६३.९	केकरं तर्ज्जमानन्तु	४३.५८
कुतोऽहम्	१२७.४०	कृत्रिमेषु च	७२.२७	केचित् कालम्	४६.६५
कुत्र वा गच्छसे	४६.१७	कृत्वा कामानवाप्नोति	५९.१३	केचित् स्यन्दनमारूढा	८४.१७
कुन्तकर्पूर	८५.५१	कृत्वा कृतान्	६९.१२	केतुं समस्त	१२.५८

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
केतुर्पराक्रमो	१२७.९९	क्रीडन्ति	९३.२६९	क्षीरान्नं देवी	१०१.८
केतोर्निरतायजने	१२.५५	क्रीडस्व मत्प्रसादेन	९४.५५	क्षीरान्नभोजनम्	१०१.१९
केदारे चैव	६३.६	क्रीडामि सततम्	१२७.२१६	क्षीराशी	२३.१
केन केन	९६.१	क्रीडार्थं येन	३९.२१	क्षीराष्टमी	६०.१४
केन वा	९४.३	क्रूरं क्रूरम्	७३.५०	क्षुरार्धचन्द्रचन्द्रासि	८५.६०
केन वाक्यस्य	४३.६०	क्रूरालापा	८६.१६	क्षेमङ्करी शिवेनोक्ता	३९.१६५
केन सा विधिना	११.४०	क्रौञ्चद्वीपे	९.३९	खखोल्क संवृत्य	५०.२३
केनोपायेन	४.४	क्रौञ्चारेः स्थानमिन्द्रस्य	४०.२	खगगगन	३६.७
केयूरनाग	३२.३०	क्वचित् पतन्ति	८५.४३	खगेन्द्राणाम्	९३.२९
केशा वनस्पतिस्तस्य	११२.१२	क्वचित्प्रयान्ति	८५.४५	खट्वाङ्गशूलहस्तास्तु	२५.७६
केशैः सुशोकदम्	९३.१५२	क्वचिद् दुर्गन्तु	८५.४९	खट्वा जिघांसता	११०.११
कैलास	९.६५	क्वचिद्घाटकसम्भूतै	९३.७६	खट्वेन खट्वा	११९.७२
कैलासशिखरासीनम्	८६.३	क्वचिद्वृषप्रहारैस्तु	८५.४८	खड्गं वा	९५.२९
कैलाशशिखरे	९३.१	क्वचिन्नमितमातङ्गम्	८५.४६	खड्ग	५७.९
कैलाशशिखरे	१२७.३	क्षणं देवी च	२६.१५	खड्गकुन्त	७.७५
कोटिकोटिगुणम्	९३.३९	क्षत्रविट्शूद्रबालानाम्	२८.११	खड्गखट्वाङ्गधारी	५०.२२३
कोटिकोटिभिः	९३.९५	क्षपास्त्राणि	११९.५५	खड्गमेकेन	१२७.५७
कोटिग्रन्थात्	९.६६	क्षमा तु श्री	५०.९८	खड्गस्य लक्षणम्	९३.१५४
कोटिमुण्डेति	३९.१५	क्षमाप्य युग्मम्	७९.११	खड्गि द्वीपि	१३.४७
कोटिमेकन्तु	९३.२५४	क्षमाप्य विधिना	७९.६	खड्गेन भवते	९३.१५७
कोटिलक्षाणि	१७.६०	क्षयं याति	४.१८	खण्डशर्कर	६१.१९
कोटिशतानि	१७.६	क्षयानलेव दृश्यन्ते	८५.५६	खण्डस्फोटितम्	७२.६७
कोट्यर्बुदायुत	३९.९४	क्षयाम्बुदा	११९.४०	खदिरासन	५०.३१७
कोऽयं स्तोता	६.३४	क्षयार्चि विवशा	११९.४१	खरेऽपराजिता	५०.१४८
को वा आगत्य	९३.७२	क्षये चाग्निमुखे	११९.४८	खातिक्यरचितम्	७२.२८
कोऽसौ गजाननो	११२.१	क्षरन्नपि न हीयते	४९.१३	खादकादीनि	७.५४
कौतूहलं महादेव	९३.८	क्षात्रं युगकोटिम्	११९.१०	खाद खाद	७.६६
कौथुमानामपि	१०७.४०	क्षात्रं व्रतं समाधाय	४३.१२	खाद्यं पेयान्वितम्	९१.४९
कौशिकाया पुरः	९४.२	क्षारोदश्चैव	३.६	खेचरी गोचरी	१२७.७०
कौशिकी कौशिकारूढा	५०.१६७	क्षितीन्द्रः पूर्ववर्ती	६६.२५	खेटकञ्च शूलचक्षुम्	७७.२५
कौशेयधारणात्	३७.१९	क्षितीन्द्रो	६६.२२	गङ्गातीरे महादेवी	९४.१८
कौसुम्भरजनी	५०.२९१	क्षिप्रं कुर्युः	८४.२२	गङ्गातोया	२८.११
क्रतुर्दक्षः सुरः	४६.१५	क्षीरं शर्कर	३३.९६	गङ्गाद्वारम्	७४.३
क्रमसि त्वम्	८३.१०१	क्षीरचन्द्रघृतान्तस्था	७१.७	गङ्गाभाग्योदयम्	७६.४
क्रमाच्छेषाणि	७२.२६	क्षीरपाः	२.११	गङ्गायां सागरे	६३.१५
क्रमार्घ्यासन	३९.४०	क्षीरादिस्नपनै	६१.२०	गङ्गायाः	११.४१
क्रमेण	६७.६१	क्षीरान्नं दधिभक्तञ्च	९९.४	गच्छते भवती	३४.५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
गच्छन्ति स्नापकाः	७७.४	गन्धमाल्योपहारेण	५०.११६	गृहकाष्ठतृणैर्वापि	७२.१००
गच्छ पाप	४.६८	गन्धमाल्योपहारेण	५०.१९९	गृहमण्डपविद्यां	१२५.६
गच्छेयुः कुश	१२८.२९	गन्धर्वभाव	६.२६	गृहीत्वा	३७.१७
गजकुम्भ	६७.३	गन्धम्	९०.१८	गृहे तु शोभना	५०.६५
गजरूपो महादेवो	१११.२	गन्धाष्टमी	६०.१३	गृहेषु	९६.१४
गजवक्त्रो महाकायो	५०.२२६	गरुडश्च कृतो	३९.३०	गृहेषु कृत	१३.५६
गजसिंह	६७.१४	गर्भधारित्र	९६.२१	गृहे षोडशभागेन	७६.२९
गजाननोऽपि	४३.५४	गर्भरक्षा	७.५७	गृह्णाति तावत्	३९.१५८
गजाननोऽपि स्वस्थानम्	४४.१	गवां कोटिप्रदानस्य	७८.१५	गेयैश्च मधुरैर्दिव्यैः	९३.२२८
गजान् विमर्दयेत्	१८.१०	गव्ये सर्पिषि	१०५.३	गोकर्णो	३९.१३
गजेन्द्रदशनप्रोतो	१२७.१३३	गां सुरक्तां	५४.१४	गोघ्नश्चैव	१२७.२३३
गजो दनुज	३९.८४	गाङ्गमागमनाद्	३७.६१	गोतीर्थे	६८.१
गणमाताम्बिका	१२७.८७	गायत्र्या	१०:.५९	गोत्रक्रमेण	५०.६३
गणाः सम्पूजिता	४३.६७	गायत्र्या	५४.१७	गोदानम्	२.८
गणानां नायिका	८३.६२	गायनाच्छमनाद्वापि	३७.५२	गोदावरी	७४.१५
गणेशस्कन्द	५७.८	गायन्ति गणगन्धर्वा	९३.४	गोपुरस्य प्रमाणन्तु	७२.११२
गणेशे कारयेत्	६१.८	गारुडं बालतन्त्रम्	९१.१४	गोब्राह्मण	५०.१३९
गणैः रुद्रैः	८७.१४	गार्हपत्य	१२१.३६	गोभूहिरण्य	५०.३३४
गतङ्गताक्षयम्	८५.१५	गिरीणामन्तरालम्	७२.५७	गोमूत्रगोमयाहारो	१११.१५
गतवान्	५.१३	गुञ्जाभरण	१३.५३	गोमेधोऽश्वमेधश्च	९७.१
गतस्ते ते	८२.४०	गुडं क्षीरं तु	१०१.१२	गोरोचना	३१.२५
गताः सर्वे ततः	३९.३९	गुडशर्करखण्डाद्यान्	१०४.४	गोरोचना	६५.१००
गताः शीघ्रन्तु	९३.२१३	गुणिता ह्यङ्गुलम्	७२.१५	गोविवाहोऽथवा	६०.२
गता विमानमारूह्य	९५.३१	गुरवे दक्षिणाम्	१२८.३२	गोशशिशु	४६.८८
गतिं दिव्याङ्गतोयेन	३९.१७	गुरुणा	११.६	गोष्ठे वा	२८.५
गतिमिष्टाम्	४५.१५	गुरुणा सर्वतोभद्रम्	११.२९	गोसहस्र	३३.६९
गत्वा	८.५०	गुरुद्विजदेव	९५.४३	गौः सवत्सा	१२.१९
गत्वा ताम्	६५.३७	गुरुपितृसुहृद्	६.४४	गौरी काली	७९.१
गदां समादाय	१४.२६	गुरुवचननियुक्ता	१०.८.१०	गौरीर्मिमाय	५६.१०
गदानाम्	१३.३२	गुरुविस्तीर्ण	७.३२	गौरी वृद्धा	५०.२६६
गन्धं पुष्पं तथा	७९.३	गुरुशुश्रूषया	९१.३४	गौरी शङ्केन्दु	५०.१६९
गन्धं पुष्पम्	५२.७	गुरोर्द्वादशमासान्ते	४६.४६	ग्रहकृत्योपसर्गादि	५४.२१
गन्धगन्धर्वनिरता	७३.९	गुरोर्भावगतम्	१२७.८	ग्रहज्वर	११.३५
गन्धधूपैः	९५.३३	गुहासु च	२५.१६	ग्रहदुष्टेषु	७.५६
गन्धपुष्पान्न	६२.६	गूढगुल्फौ	३२.२९	ग्रहदोषा	६५.१२
गन्धपुष्पार्च्चितम्	२३.१८	गूढमन्त्र	३९.४३	ग्रहभेदगता	१.२४
गन्धपुष्पोपहारेण	५०.१९३	गूढातीतञ्च	८३.७९	ग्रहमाला विराजन्ती	५०.११५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
ग्रहयज्ञविधानेन	६५.९८	घोरो महाघोर	२०.२४	चतुष्कमथ	२६.२
ग्रहाणां यजनम्	५३.७	घ्राणो तगरकर्पूरो	१०५.६	चतुष्कोणे ह्यहम्	१२१.१२
ग्रहाणाञ्च	१.१९	चकर्त्ति शक्ति	१७.४९	चतुष्पदो	६७.१६
ग्रहाणाञ्च यथा	९३.२८	चकार	९.५९	चत्वारिंशत्	८२.१०
ग्रहान् धारयते	६६.३५	चकोरं कुरु	६५.२४	चत्वारि कटकोपेतम्	२६.७
ग्रहान् पापान्	६८.१७	चक्रपाणिस्त्रिशूली	११६.६	चत्वारि तानि	६७.२९
ग्रहा माघादि	१२.२	चक्रवृत्ति	९६.१२	चत्वारि विंशति	७२.१९
ग्रहावमर्दनम्	६७.७२	चक्राविद्धम्	१८.७	चत्वारो	७२.५३
ग्रहाश्च	६५.८९	चक्रेण	१४.२५	चन्दनागुरु	७७.१२
ग्रहैर्विचित्राणि	१२.३७	चक्षुभूता	८३.७	चन्दनागुरु	१२३.३
ग्रीष्मशरत्	६५.५३९	चण्डं वीभत्सम्	३७.८७	चन्दनागुरुकर्पूर	५०.१२८
ग्रीष्महैमन्तिकान्	१०.४.११	चण्डघातशरैर्भेद्यम्	८६.२१	चन्दनागुरुकर्पूर	५०.२६५
घटिकाङ्गार	५०.३२५	चण्डाग्निधार	८५.५७	चन्दनागुरुकर्पूर	५०.२९८
घटेश्वरं महादेवम्	७६.६	चण्डिके शिवपूर	१७.४३	चन्दनागुरुदिग्धाङ्गी	५०.२०३
घण्टाकिङ्किणी	४.४४	चतस्रो वत्सिका	६०.४	चन्दनोदकमिश्रेण	३३.७
घण्टाकिङ्किणी	३१.४	चतुःषष्टिषु	३९.१८५	चन्द्रं चक्रेण	१९.११
घण्टाकिङ्किणी	९१.४४	चतुरङ्गं रचित्वा	८६.२०	चन्द्रं सम्पूर्ण	५०.८
घण्टाचामर	९२.२०४	चतुरङ्गुलमानेन	५०.३१४	चन्द्र इन्द्र	८.२२
घण्टाचामरविन्यस्तैः	९३.८९	चतुरस्रं चतुर्द्वारम्	७९.८	चन्द्रदृष्टिबलम्	७३.४५
घण्टाचामरशोभाढ्यैः	२८.८	चतुरस्रञ्च	५०.३१५	चन्द्रनागप्रतीहार	९३.२६४
घण्टाडमरु	३९.१६०	चतुरस्रे भवेत्	१२१.१३	चन्द्रप्रभा गता	२२.१
घण्टादर्पणदीपाद्यम्	९०.२५	चतुरेकेऽथ वा	५०.२८८	चन्द्रमूर्ध्नि कृतम्	८३.५०
घण्टादि सर्वदा	१२३.८	चतुर्थं सम्प्रवक्ष्यामि	८२.३६	चन्द्रसूर्य	१२.४०
घण्टानिनादशब्देन	८३.१००	चतुर्दंष्ट्रे महा	१२७.७८	चन्द्रसूर्योपरागेषु	२७.३४
घण्टारवा	१२७.१३७	चतुर्दशायाञ्च	७४.९	चन्द्रस्य अमृतम्	४९.१२
घर्घरिणाति	८५.११	चतुर्दश्यां तृतीयासु	४५.१३	चन्द्रस्य यदद्रष्टव्यम्	४९.२७
घातनीयो	१३.७२	चतुर्दश्यां भवेत्	६९.१८	चन्द्राख्यां लेपनम्	१२३.७
घातमाना रिपूम्	३२.३७	चतुर्दश्याममावस्या	७६.४०	चन्द्रार्कग्रहणम्	६५.४४
घातितम्	१७.९	चतुर्दिक्षु	७२.५०	चन्द्रेशे चोग्रकृष्णे	४२.१
घृतं निष्क्रमणम्	५०.३२२	चतुर्मुखं महापुण्यम्	७६.२	चन्द्रो न क्षयमायाति	४९.२३
घृतक्षीरवसादीनि	१२१.२७	चतुर्वर्णधरा देवी	५०.२२०	चम्पकाकावपुः	९४.४५
घृतक्षौद्र	२७.१४	चतुर्वितस्तिकम्	६५.७७	चम्पकोत्पल	५०.२९९
घृतपूर्णानि	१२४.९	चतुर्व्यूहसमायुक्तः	७१.१०	चम्पकोशीरपुन्नागैः	५०.१८१
घृतमाषान्न	१०१.९	चतुर्हस्तं समारभ्य	६५.५७	चरणौ पूजयित्वा	२.२४
घोरः काष्ठसमृद्धः	१२२.२०	चतुर्हस्तप्रमाणान्ता	५०.५५	चरैर्महोदरी	२४.५
घोरप्रलोभनार्थाय	१.४१	चतुर्हस्तप्रमाणेन	९१.४१	चरैर्विज्ञाय वृत्तान्तम्	७२.१०६
घोररूपा च कापाली	१२७.१४१	चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो	७२.२०	चर्च्चिका	५०.७०

श्लोकाः	अ०/श्लो०
चर्च्चिकाद्याः	५४.२
चर्म्मासि	१६.३८
चर्म्मासिशर	५०.१८२
चलच्छ्रवणचामर	८७.३३
चलविद्युन्नवाकारा	८५.७
चाण्डालं चण्डकर्मे	९६.८
चाण्डालपुक्कशानान्तु	२४.१९
चामरैः	८४.४९
चामुण्डा कीर्तिता	३७.८८
चामुण्डा चित्ररूपा	९८.७
चारायणीयाः	१०७.२०
चारुपत्रमयो	१०४.१७
चालने विहिता	११८.६
चालिता	११८.९
चिच्छेद	१४.२४
चिति चैतन्य	३७.३६
चित्तवेत्ता तथा	८३.७१
चित्तोत्पत्तौ	१०.९.१
चित्रभानुः सुभानुश्च	४६.४१
चित्रभानौ	५०.११७
चित्रमाल्यधराः	९३.९६
चित्रसूत्र चिता	५०.३४
चित्राचित्ररसजैर्देव्या	१.१८
चित्रं च त्रिशिखे	९३.१०७
चित्रोत्कीर्ण	१२८.१०
चिन्तयामि शिवम्	११९.७०
चिन्तयेद्	२८.१२
चिन्त्या अन्यपदार्थाः	२०.१०
चु चे चो ला	४६.८९
चूर्णिकामगमे	९३.१८५
चेतसामृत	४.४०
चैत्रां चित्रक्षणां	५९.३
चैत्रादौ कारयेत्	६१.१
चैत्रादौ या	५९.२
चोदयामास	१८.७
छत्रं वाथ	९१.११
छत्रचामर	६५.४२

श्लोकाः	अ०/श्लो०
छन्दोलक्षणसंयुक्ता	१०७.१०
छन्दोलक्षणतद्वङ्गम्	९१.५२
छिन्नकर्णं	७२.३१
छिन्नज्वालोऽथ	२७.६
छेदे भयम्	२६.२४
जगतः पालनार्थाय	८७.१७
जगति च	११६.२२
जगदुत्पत्ति	६.१८
जगद्धिताय नृपतिम्	१२७.१
जटाभारेन्दु	४३,५६
जटाभारेन्दु	५०.२३७
जटामुकुट	५०.१२५
जटामुकुट चार्धेन्दु	५०.९२
जटामुकुटरत्नाढ्या	९५.२५
जटामुकुटविन्यस्ता	९३.२४०
जटिं रामेश्वरे	६३.११
जटिला लक्षण	१२७.१७३
जननेव च शूद्राश्च	१२६.२१
जनान् जयस्थितानान्तु	८५.३४
जन्मव्याधिजरा	३३.३०
जन्मर्क्षकृत	४६.६१
जपन्स्तोत्रं वरम्	१२७.६८
जपहोमं	५०.२५६
जपहोमं	७६.४३
जपहोम	७६.५१
जपहोमरतो	७६.२५
जपहोमार्च्चनं दानम्	५०.१६२
जपहोमार्च्चनाद् देवी	५०.२१८
जपाध्ययनयुक्तानाम्	१२६.१
जपेन चात्मनः	१२६.३
जप्त्वा तु चतुः	१२०.२
जप्त्वा हुत्वाथ	९८.२२
जप्यन्तु	१०.५.१०
जम्बुमार्गे सदा	७५.६
जम्बूद्वीपम्	४.५
जम्बूद्वीपस्य	७६.९
जम्बूद्वीपे	७२.३

श्लोकाः	अ०/श्लो०
जम्बूद्वीपे तु	४६.६६
जम्भकाद्याथ	७.३९
जम्भनी शुम्भनी	१२७.१७५
जम्भासुरविनाशाय	११६.५२
जय काल	७.१२,३६.८
जय कृष्ण	११.३०
जय खट्वाङ्ग	७.१३
जय गौरी	७.१५
जय घोर	७.११
जय जय मङ्गल	१७.२८
जय जय सुराणाम्	१५.२
जय जय हरिहर	१७.१६
जयञ्च समरे	१६.३५
जय डिण्डि	७.१६
जय तन्मात्र	७.९
जय त्रुटि	३६.१६
जय त्वं जयताम्	३९.१२६
जय त्वं सर्वमङ्गल्ये	८३.४७
जय त्वम्	३१.१६
जय दश	३६.९
जय देवातिदेवाय	८३.१२
जय देवि	८३.५५
जय नाद	३६.६
जयन्ती जये	१७.१८
जयन्ती नन्दने	५०.१५२
जयन्ती मङ्गला	२३.९
जयन्ती मानसी	५०.१३
जय पवन	३६.४
जय पुरुष	७.१७
जय भुवन	८३.४९
जय माला	७.१०
जय ये भक्ताः	३६.२२
जय विजित	७.८
जय विद्यात्मिके	८३.५७
जय विप्र	३६.१८
जय रिपु	३६.२१
जय शम्भुनुते	१६.६

श्लोकाः	अ०/श्लो०
जय संहार	१६.१७
जय सकल	३६.१०
जय सकलशत्रु	३६.१७
जय सकलाध्व	३६.५
जय सर्वगते	१६.१८
जय सव्यापसव्ये	३६.१९
जय सान्द्रगज	७.१४
जय सूक्ष्म	७.७
जयाख्येन तु मन्त्रेण	२६.१५
जया च	१४.११
जया च विजया	१२७.३९
जयानान्तु	८०.१५
जरामृत्युभयम्	४२.१६
जरासिन्धु	३.३१
जलं शत्रुम्	३६.२०
जलजे	७३.३१
जलदान्ते आश्विने	२१.८
जलमध्ये	३९.२१
जलयाना	२७.८
जलशालासु	७२.१०२
जलशीतातपादीनाम्	७२.९
जवापुष्पकृता	१३.८१
जातिसंस्कारहीनस्य	९६.६
जातीकाशोक	५०.१४७
जातीपत्रक	६७.५
जातीफलो	१२३.५
जामदग्न्येन	३९.१८
जिघांस वज्रम्	१५.२२
जितद्वन्द्वेन कर्तव्यम्	५०.१२९
जितेन्द्रियो	१०.४.४
जित्वा	३.१५
जिह्वायां पातयेत्	७५.११
जिह्वा सरस्वती	११२.१३
जीमूताञ्जनवर्णेन	१२७.१०९
जीर्णदेहं यथा	११८.१८
जीर्णे कूपे	६८.२
जुह्वते	५३.४९
ज्ञं एं दुं ओम्	११६.२६
ज्ञानशक्तिः क्रिया	१०७.३
ज्ञात्वा सर्वमशेष	४७.४
ज्ञानाद्भवति	१०.१.१५
ज्याघातघनघोषेण	८६.१९
ज्यातलानाम्	८५.६४
ज्येष्ठा षष्ठी	१६.२२
ज्येष्ठे तु शङ्करी	९९.३७
ज्येष्ठे तोयमयी	१०४.६
ज्योतिःशास्त्रम्	१०८.३
ज्योतिर्वेधादि	६.३१
ज्योतिषम्	९१.१५
ज्वरभूत	७.७१
ज्वलनस्य	३९.९८
ज्वाभोऽशोक	२७.२
ज्वालाकलापमध्यस्थाम्	८५.२१
ज्वालाभरणदीप्ताङ्गी	१२७.७३
ज्वालावर्ण	२७.१८
ज्वालौघकालानल	१५.५
झषयोनिं वसम्	१२.३६
तं क्षरन्तम्	४९.२०
तं घोरघाताहत	२०.३०
तं दृष्ट्वा	२.९५
तं दृष्ट्वा	११६.५१
तं द्रष्टुं भगवान्	८३.४
तं नमामि सदा	८३.१९
तं प्रासघाताहत	१४.१९
तं बुद्ध्वा	३३.५
तं ब्रवीमि	१७.४
तं भाति	११३.२
तं वज्र	३९.११४
तं वायुशास्त्रम्	१५.२१
तं रथम्	३१.५
तच्च	८.५२
तच्च सम्पालनम्	८.२३
तच्चित्त	३३.४१
तच्चित्तस्तन्मयो	१०.१०.७
तच्छ्रुत्वा	४.८३
तच्छ्रुत्वा	८.१३
तञ्च श्रुत्वा	८३.७
तडागं सवनम्	७३.५८
तडागात्	६८.९
ततः कम्बलमुपनीय	६७.३९
ततः कलकला	९३.२७५
ततः कालेन	५८.११
ततः कीर्णक	१४.१७
ततः क्षमापयेदेतौ	५०.२६७
ततः क्षमापयेदेतौ	५०.२७८
ततः क्षमापयेद्देवीम्	१००.१४
ततः पञ्चदशीञ्चैव	४८.१५
ततः परस्परालापम्	८५.३१
ततः पूजा	५७.१३
ततः पूर्वोक्तविधिना	९१.५७
ततः प्रणम्य	२.४३
ततः शक्तिं न्यसेत्	१२६.९
ततः शिवेन	८५.२९
ततः शुक्लाम्बरधरः	६९.२२
ततः स	१४.६
ततः स अवनीम्	११६.८६
ततः स प्रणतम्	१६.४२
ततः सभाम्	२.७२
ततः सम्पूजयेद्	६७.५६
ततः सम्प्लवने	१२६.२७
ततः सर्वाम्	२.७७
ततः स सहसा	४.६२
ततः सा	४.२९
ततः सा दानवी	८६.२
ततश्चिन्तयामास	१२७.४९
ततस्तं बाण	४३.२३
ततस्तस्या	१११.१६
ततस्तस्याहवम्	८५.९
ततस्तान्	२८.७
ततस्तु कारयेद्धौम	९५.६
ततस्तु मापयामास	७२.१२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
ततस्तुष्टा	११६.८५	तत्र कुर्याद्	६५.३३	तथा च सर्वगा	३२.७
ततस्तुष्टो	६.१०	तत्र कृत्वा हरे	५८.१३	तथा चोक्ते पुनः	८३.२३
ततस्त्वावेष्टयेत्	१२६.१४	तत्र गत्वा	७.२	तथा तं पुस्तके	९१.६८
ततस्त्वेकार्णवे	११९.५३	तत्र गत्वा	१३.४५	तथा तथा सुरेशान	५७.२४
ततो गच्छेत्	८५.४	तत्र गत्वा महाबाहो	४३.१८	तथा तेनापि	१०.१.६
ततो गुग्गुलु	३.५३	तत्र तामागताम्	१३.६५	तथा ते बलसम्पन्ना	८३.३८
ततोऽग्नि	४७.३७	तत्र देवी	७९.९	तथा तेऽहम्	९.६४
ततो ज्वाला	११६.५	तत्र देशे महापुण्ये	१२८.४६	तथा तौ	४.१
ततो देवीम्	२३.१७	तत्र ब्रह्मापि	२४.२७	तथा त्वम्	७.४६
ततो देवीम्	३३.१०३	तत्र भावानुरूपेण	७६.२४	तथा त्वम्	१३.१६
ततो देवेन सा	८५.२५	तत्र भोगान्	६४.४	तथा त्वमपि	४.७३
ततो देव्या	१२८.४३	तत्र भोगान्	७९.१५	तथा त्वमपि	३१.३६
ततो धूपस्य	६७.२८	तत्र मण्डप	३१.१२	तथा त्वमपि	१०२.१७
ततो निर्जित्य	८६.१	तत्र मातृ	९५.१४	तथा दक्षिण	३८.३
ततोऽपि	१२६.३०	तत्र मानवकन्यास्तु	९५.२२	तथा दुर्गास्य	७२.७३
ततो ब्रह्मा	७२.८	तत्र वा भारते	७७.१७	तथा दृष्ट्वा तु	८५.७०
ततो ब्रह्मादयो	८५.२०	तत्रस्थम्	१२.२८	तथा देव्या	३१.२८
ततो ब्रह्मादयो	८६.२७	तत्रस्थममृतज्यापि	४९.६	तथा देशम्	८३.११
ततो ब्रह्मादयो	११९.२	तत्रस्थस्य	८३.२५	तथा निपातितो	१४.७
ततो ब्रह्मादयो	११९.८	तत्रस्था	७.२१	तथाऽन्ये	८३.४९
ततो ब्रह्मादयो	११६.७५	तत्रस्थां पूजयेद्	३१.१९	तथापि किञ्चित्	१७.५
ततो मयसुराः	११.४८	तत्रस्थामानयेद् देवी	४४.३	तथापि कृपया	२.४१
ततो मेघाकृतिं	७२.४५	तत्र हर्म्योच्छ्रिता	८२.२८	तथापि न चलेत्	१२५.९
ततोऽर्थम्	६५.१७	तत्र हाटकरुद्रस्तु	८६.४	तथापि नोऽभवत्	३३.४
ततोऽसौ दानवेन्द्रस्तु	८६.३	तत्राग्रजेन	११६.५३	तथापि प्रत्यनिघ्नामि	१४.८
तत्कालेषु	२४.२६	तत्रापि पूजाम्	९४.२३	तथापि मां कृता	८०.३१
तत्क्षणादेव जायन्ते	९४.५४	तत्राश्रमपदे	२.१४	तथापि शक्ति	२०.१३
तत्क्षीरसमावृतम्	४८.१९	तत्रासौ	८.१५	तथापि हि	२.२८
तत्तथेति च सा	६.३८	तत्रास्ते सप्त	११६.३३	तथाप्येवं महाबाहो	६.३
तत्त्वसर्ग	१०.२.९	तत्रैव विजया	१४.६९	तथा प्रतोल्यः	७२.१४०
तत्पक्षको	१०.२.१	तत्सर्वं शक्तिभिर्ज्ञातम्	८८.६	तथा ब्रह्मस्य	१२.६९
तत्पराच्छतभागम्	२४.२५	तथा कालादिहायातो	१०४.२३	तथा ब्रह्मा	८३.४१
तत्पूर्वमभिषेकेण	६७.७४	तथा कालेन	८३.२७	तथा ब्रुवाणम्	१०८.१७
तत्प्रभावेण	९३.४४	तथा क्रोधानला	४.७९	तथा मया	११.२४
तत्फलं	९४.३५	तथागता महादेवी	२०.२०	तथा मयापि	८०.११
तत्र कन्याभिधाना	८२.४४	तथा च	९.७	तथा युद्धम्	८५.१
तत्र कुण्डगते	७६.५७	तथा च अम्बरीषेण	५७.१८	तथा शक्रादिभि	८७.२७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
तथा संक्षेपतः	८५.८१	तदायत्ता	८.५१	तपस्विव्यङ्गकम्	९.३३
तथा स बलसम्पन्नो	८३.२८	तदा या यस्य	८७.२२	तपस्वी	२.१८
तथा सम्पूजनीयस्ते	७६.४८	तदा लब्धवरो	११३.४४	तपस्वी ब्रह्मचारिण्यो	१२७.६५
तथा स युध्यमानस्तु	८३.३७	तदा विष्णुः	३९.१२५	तपोयज्ञेषु	९३.४२
तथा सा कीर्त्तिता	४३.४	तदा शाल्यादि	५०.५९	तप्तक्षीर	१२०.१०
तथा सुसंस्थितम्	२२.५०	तदा शिला	३९.१०२	तप्तस्तपस्य	११६.७२
तथास्तं प्रापितो	२०.१८	तदा स तर्द्यमानस्तु	४३.६१	तप्तहाटक	२७.१
तथाहं ते	९०.५०	तदा सदाभवत्	७२.६०	तप्तेन वामत	६०.९
तथेति विष्णुना	११.३८	तदा स नारदेनोक्तः	१३.३९	तमापतन्तम्	१४.२३
तथेति स	११.२०	तदा सन्तुष्यते	१०२.११	तमायान्तम्	२.५२
तदंशा पूर्वमाख्याता	४४.४	तदा ह्यङ्घ्रि	७.४	तमालपत्रकर्पूरैः	९३.८२
तदण्डमिति	११९.३२	तदा ह्यामलकैः	३३.५९	तमुवाच	१०९.२
तदन्तरम्	१०८.७	तदेव न तम्	१२.३८	तमुवाच	१२७.२०
तदन्ते च	२६.३०	तद्गात्रम्	३३.४०	तमोनिश्च	३७.२५
तदन्ते व्रजते	९३.१९७	तद् दृष्ट्वा	११.५४	तमोऽन्धकारे	१३.७८
तदन्ते शान्ति	२८.१०	तद्धोरशृङ्गप्रहारभिन्नो	२०.२८	तमोषधिः स्थितम्	४८.१८
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि	७८.२	तद्भक्ताय च विप्राय	१०२.१४	तयोः कार्यमिदम्	११९.५७
तदा क्रुद्धा परशु	४३.१९	तद्भक्ताय प्रदातव्या	१०५.९	तयोः संरब्धो	१११.३
तदागत इमाम्	३३.५९	तद्भक्ति	२८.६	तयोर्युद्धम्	११६.७
तदा गता शिवा	१३९.१३३	तद्भवेत पुरा	६.५	तरणी तारणी गुप्ते	१२७.१५९
तदा जया	१४.१८	तद्यः पृथिव्याम्	१००.१८	तरुणा तरु	६५.२२
तदाज्ञावर्तिनो	३.३०	तद्वदेकादशे	४६.६०	तरुविनिपात	१७.४७
तदा तस्याम्	१२२.१०	तद्विदैर्घटिता	९०.१६	तर्ज्जयन्तीं	८४.२५
तदा ताः	७.९७	तद्वीर्यहृष्ट	८५.२५	तर्ज्जयन्तीं त्रिशूलेन	१२७.५८
तदा तेऽपि	१९३.१२३	तनुक्षये महाप्राज्ञो	१०२.१५	तर्ज्जयन्तीं दिशः	८५.२४
तदा त्वं मोह	६.१०	तनुत्राणम्	८५.४२	तर्जयन्ती महाक्रूरा	४६.१२
तदा त्वञ्च	६.३६	तनोति नृपराष्ट्रम्	२७.१२	तर्पयित्वा ततो	१२६.३२
तदा त्वया	६.१७	तन्नतिभिक्षुरात्रेयो	१०८.२५	तव घोरसुतो	५.१४
तदा दत्ता	३९.६४	तन्ममाचक्ष्व	१२७.१२८	तव तेजः	२.९८
तदा दुर्मुख	१३.६८	तन्माया	१८.२	तव भिन्नाः	९.१५
तदा देवेन	३९.१३४	तन्मे ब्रूहि	९३.१०	तव वाचो	५.९
तदादेशाद्	८४.५	तन्वङ्ग	१७.२६	तव विष्णो	११.३७
तदा नारायणो	११६.८	तपः समारभेदुग्रम्	१११.१४	तव सर्वाणि	९.११
तदा नीत्वा	१२.२६	तपनीयोद्भवैः	९३.७७	तवाज्ञाकारिणो	५.१०
तदा प्रत्यक्षतः	२.९४	तपनीयोद्भवैर्हम्यैः	९३.८५	तसौ प्रचय	८७.२९
तदा प्रभृति	१२.६०	तपस्तपति योऽरण्ये	९६.१६	तस्कराः खण्डयन्त्येव	७२.७७
तदामयः सुसंक्रुद्धो	४३.३६	तपस्तप्त्वा	१.३८	तस्माच्छुद्ध	९३.१९

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
तस्माज्जपादि	१२६.४	तस्य धारा	२७.२३	तां पूजय मुनिश्रेष्ठ	११६.९०
तस्मात्किं	९३.३३	तस्य निर्गच्छतो	१३.२०	तां भग्नाम्	४.३०
तस्मात्तस्य	५५.३१	तस्य निष्पादनार्थाय	३९.५७	तां मायाम्	१९.१२
तस्मात्तं संस्करेत्	११८.२१	तस्य पुत्रः	८२.४२	ताः पूजय	११७.१०५
तस्मादङ्गारकः	४७.१६	तस्य पुत्रो	११.२२	ताञ्च कृत्स्नाम्	१६.१५
तस्मादधर्मे मज्जन्तम्	१२७.७	तस्य पुष्यफलम्	१२८.२४	ताञ्च शीलमतीम्	१३.१०
तस्मादनाथ	६०.२५	तस्य पूजा	५०.६९	ताडनी कृन्तनी	१२७.६०
तस्मादस्थिर	१२१.१०	तस्य पूजा	५४.५	तानि तोयेन	५५.१८
तस्मादुद्धृत्य	७३.१५	तस्य पूर्वे	५७.१२	तानि देव्यानि	१०२.४
तस्माद्दुर्गम्	७३.१७	तस्याः पूर्वोत्तरे	९५.१७	तान्यहं श्रोतुमिच्छामि	१०२.३
तस्माद्देव	३५.२७	तस्य पृथ्वी	१२.६१	तान् दृष्ट्वा	१६.२
तस्माद्रूपञ्च	९३.१०३	तस्य बाण	४३.२२	तापनी वर्षणी	१२७.१७९
तस्माद्विद्या	३९.६८	तस्य ब्रह्ममयम्	१०.८.७	तापसश्चाप्यहम्	१२७.२०१
तस्मान्नृपेण	२.८८	तस्य मय	६७.७७	तामसी तमसा	३९.१७७
तस्मान्नृपेण	२५.६	तस्य मोह	११६.३	तामादाय शुभे	१००.६
तस्मिन् घण्टा	३४.२	तस्य युगसहस्रान्ते	८१.५	तामानय	८.५५
तस्मिन् दिने	१२८.४९	तस्य राजस्य	८१.१३	ताम्रपात्रे शरावे	१२६.१३
तस्मिन् देवी	२२.१०	तस्य शिरश्छेद	२०.३३	ताराक्षः	३.१९
तस्मिन् देव्याः	५०.४७	तस्य सञ्चरमानस्य	२०.२३	तारारिणम्	११३.४
तस्मिन् पर्वत	११२.६	तस्य हस्त	४.६५	ताराभमौक्तिक	११३.३
तस्मिन् पुष्पानि	९३.२३	तस्याग्रतो	२२.१६	तारा श्वेता	९८.५
तस्मिन् पूज्यम्	९१.६५	तस्याग्रे तिष्ठते	९३.२१०	तावच्चण्डिका	२१.१३
तस्मिन् भोगान्	१२८.५२	तस्याज्ञा	२.३८	तावत्काल	६५.६
तस्मिन् मान	५०.२८६	तस्यापि परमम्	९३.२६९	तावत्कालेन	९.४१
तस्मिन् शून्ये	११८.१९	तस्यारुहेण	११.९	तावत्तत्र	११२.८
तस्मिन् सम्पूजिता	५८.१८	तस्येच्छा	८७.२१.	तावत्तस्य	४.६०
तस्मिन् सा पूजिता	८०.२९	तस्येदम्	४.८२	तावत्तेन तथा	८२.४७
तस्मै प्रोवाच	१०.१.१३	तस्योक्तानि च	१२५.३	तावन्नष्टाः	१४.४
तस्य कः	४.८६	तस्योत्थम्	२२.१५	तावन्नारद	१६.१३
तस्य कारुण्यतो	२.९९	तस्योर्ध्वम्	९१.४६	तावत्स	९.४३
तस्य कुर्यादनिर्वाहम्	७२.९४	तस्योध्वेंन भवेत्	८१.२४	तावत्स विष्णुलोकेषु	९१.७३
तस्य चर्म	८६.२५	तस्योपायै	३९.११८	ता विद्याः शतधा	३९.१४२
तस्य चार्द्धेन	७२.११५	तां दृष्ट्वा	४.६१	तासां चतुर्णाम्	७.४३
तस्य जपनशीलस्य	१३.६	तां दृष्ट्वा	९३.१९९	तासां दृष्टिनिपातेन	८२.३१
तस्य तद्वचनम्	२.८०	तां दृष्ट्वा	९३.२०९	तासां नामानि	७२.१४४
तस्य दर्शन	३५.३०	तां देव्याज्ञाकरा	७.९२	तासां तद्वचनं श्रुत्वा	९३.२३५
तस्य देवाति	११९.१५	तां तपन्तीम्	६.६६	तासाञ्च	९०.१४

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
तासामपि	७.४०	तेन कन्यास्तु	३३.६८	ते विद्यायुर्यशोऽर्थादि	४४.७
तासामिच्छास्तु	८६.२६	तेन किङ्किणिशोभाढ्यम्	११.२६	तेषां वै नाम	१२२.७
तिथिवृद्धौ चरेत्	१२०.१६	तेन जप्या	६५.३	तेषां सप्तमयोगेषु	७६.४२
तिलधेनूं प्रवक्ष्यामि	१०४.११	तेन ज्ञातानि	८०.३०	तेषां हि बहुधा	१०९.७
तिलमाषाः प्रमाथी	१००.१०	तेन तद्	११.५२	तेषाञ्च	३७.२३
तिलाभावे प्रदातव्या	१०५.१	तेन तावश्विनौ	३०.१०	तेषाञ्च	६३.५१
तिलोदकम्	९३.१८७	तेन तृप्ता	११६.४२	तेषाञ्च वादिनी	३७.२३
तिष्ठते मण्डपद्वारे	९३.२६०	तेन ते दैत्यमरुता	८३.४१	तेषान्तु तुष्यते	२१.१०
तिष्ठन्ति द्वारपालाश्च	७२.१२४	तेन तेन फलम्	८८.४	तेषामध्ययनम्	१०७.१६
तीर्थयात्राफलम्	९२.१५	तेन तोयेन	९१.६८	तेषामाद्योऽर्कसावर्णि	४६.२४
तुतोष	११.५१	तेन पक्षी	७६.५६	तेषामायाम	७२.१३
तुतोष तस्य	५८.१५	तेन परापि	७२.१३३	तेषामुपरि	६७.६२
तुतोष परमा	६.३५	तेन ब्रह्म	३०.४	तेषु तेषु यथा	६.३७
तुतोष विधिवद्भक्त्या	११४.२	तेन भोगबलोपेताः	३०.१५	ते सर्वे	१९.४
तुरुष्कं गुग्गुलुम्	९१.६०	तेन राज्ञी चेयम्	७९.१४	तैलतक्र	१३.३७
तुलास्थे	५९.२२	तेन वरप्रसादेन	५८.४	तैलधारामिवाच्छिन्नाम्	१०.७.८
तुल्यं पुण्यम्	५८.२३	तेन श्रुत्वा	१४.५	तोयधेनूम्	१०६:१
तुषकार्पाशलवणम्	१३.२४	तेन शुद्धिः	३७.५४	तोरणानामभावे	५१.२९
तुष्टिः कान्तिस्तथा	१२७.१७४	तेन सर्वमवाप्नोति	१२५.७	तोषयित्वा	५.११
तुष्टे विनायके	११५.१	तेन सा गीयते	३७.२०	तोषितो वासुदेवस्तु	४०.६
तूर्य्यशङ्खो	४३.३३	तेन सा	९.४६	तौ गच्छतः शिवम्	१२७.११
तृतीयान्तु	६५.१	तेन सोमेन	३०.१४	त्यक्त्वा	४.४२
तृतीयामथ	९९.१०	ते नागा	३.१४	त्रयश्च त्रिशतम्	४९.७
तृतीया शिव	३१.११	तेनापि	२.६३	त्रयाणां	३७.३०
तृतीये मण्डलाख्ये	६५.८७	तेनासौ	३०.६	त्रयाणां शुभदायित्वात्	३७.३०
तृप्तास्ता	८५.१६	तेनाहतस्तदा उग्रो	४०.१८	त्रयाणाञ्चैव	३७.२८
तृप्तेश्वरे	६३.१३	तेनैव प्रथमम्	१०१.४	त्रयाणामेकमादाय	५९.६
तृषा च तुष्टि	१२७.१५८	तेनैव वर्त्तते	९१.६७	त्रयीति कथ्यते	३७.५८
ते गता	११.४९	तेनैव स विनिर्मुक्त	१२६.१२	त्रयोविंशतिलक्षाणि	४७.३४
ते च वेदाः	७.२३	तेनोपघृष्टो	६९.६	त्राता नस्त्वम्	८३.३५
ते जयम्	४.१४	तेनोपलक्षितम्	६९.३	त्रातारमिति	५६.२४
तेजसा मोहिता	१२७.६०	तेऽपि तैरादि	१२७.२२	त्रातारमिन्द्रम्	५६.४०
तेजसा मोहिता	१२७.६२	तेऽपि वन्द्या	९३.१०९	त्रातास्ताः	७.३८
तेजो रुद्रम्	१२१.३४	ते भूयोऽपि	११६.५४	त्राय माम्	७.७९
तेजोवह्निगता	७१.४	तेभ्यश्चैव	१२७.८०	त्रासनी मोहनी	१२७.१२१
ते दृष्ट्वा	१९.५	तेभ्यश्चैव प्रदत्तम्	१२७.६४	त्राहि सर्वान्	१७.४२
तेन आराध्य	१०.१.३	ते यजन्तु	३२.१३	त्राहि त्राहि सुरान्	१२७.१५४

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
त्रिंशद्धनुर्ग्राममाहुः	७२.३९	त्वं जया विजया	८३.७२	त्वमेव	३.३,९.२५
त्रिकरास्त्वुपरथ्यास्तु	७२.४१	त्वं ज्वर	३६.२४	त्वमेव देवि	८३.१०७
त्रिकालम्	११७.११	त्वं त्रिकाल	५.६	त्वमेव परमो	९२.१
त्रिगुणं प्रसवम्	१०.३.४	त्वं दिशो विदिशः	१२७.३६	त्वमेव शास्त्रवेत्ता	३९.३५
त्रिगुणा	३७.४५	त्वं देवी परिरक्षा	४२.२	त्वमेव सर्ववेत्तासि	६.४
त्रिचतुःपञ्च	२४.६	त्वं देवी उग्रसञ्चारी	८३.६६	त्वमेवोषधी	१७.३६
त्रिजटा बालरूपा	८३.८८	त्वं देवर्षे	५.१२	त्वमोङ्कार	८३.१०२
त्रीणि खातम्	५०.३२१	त्वं निर्मासे	८३.९६	त्वया इन्द्रस्य	५.३
त्रीणि चान्यानि	४६.५५	त्वं परश्चापरो	३५	त्वया तात	९.१३
त्रीणि पञ्चाथ	२५.१८	त्वं पुनः	९.१६	त्वया देवि	८३.१११
त्रीण्येकाचाम	१२०.१४	त्वं पुनः कथ्यसे	८३.२	त्वयापि तदा	११६.५०
त्रितयं वा	१२०.४	त्वं बुद्धिशुद्धि	१५.७	त्वया मया च	१२७.२१३
त्रिदण्डी बालरूपा	५०.२०४	त्वं भूमि	१५.७	त्वया हि याचिता	९.५६
त्रिदशा सुर	५०.१८	त्वं मातृका च	८३.८०	त्वां जग्मुः शरणं सर्वे	१२७.१४७
त्रिदशैस्त्वम्	८३.५९	त्वं रात्रिस्त्वं दिनम्	८३.१०४	त्वां वृत्तेष्विन्द्र	५६.३०
त्रिनेत्रम्	७.५	त्वं रुद्र	२६.३४	दंष्ट्राविषम्	७.७७
त्रिनेत्रा जटा	५०.१४९	त्वं वामाद्या	८३.१०३	दंष्ट्रैः करकरायन्तु	९३.१२८
त्रिनेत्रा शूलहस्ता	८३.८६	त्वं विद्या रेणुका	१२७.१९०	दक्षयज्ञविघात	८३.१०६
त्रिभुवनव्यापी	११६.१५	त्वं हि क्रोधात्मिके	८३.६८	दक्षिणतो	६८.१५
त्रिमन्त्राः पठते	९५.४५	त्वं हि नः सर्व	१२७.१३२	दक्षिणां गन्ध	५४.१५
त्रिमूर्तिस्त्रिगुणा	७७.१०	त्वं हि नारायणी	८३.७०	दक्षिणाग्नि	१२२.२
त्रिरात्रे चैव	९४.१९	त्वं हि नारायणी देवी	१२७.११२	दक्षिणाङ्गेऽसृजद्	१२७.४७
त्रिरात्रेण तु	९३.१६३	त्वं हि योगात्मिके	८३.५१	दक्षिणा सर्व	१२१.२४
त्रिरेखकन्धराम्	३२.२६	त्वं हि रौद्री	८३.५६	दक्षिणा सार्वदैवत्यै	१३.१७
त्रिलोकधात्री	१६.२३	त्वं हि वृष्टिः	८३.७६	दक्षिणेन तथा	७६.१७
त्रिवृषेण	११.८	त्वं हि सर्वात्मिका	८३.१०८	दक्षिणे वाम	३९.७
त्रिशूलपाणिनम्	८३.५२	त्वञ्च	३.२	दक्षिणोन्नतो	९३.१४५
त्रिश्रुत्वा	११६.६२	त्वञ्च वेत्सि	९.३८	दक्षो निधीश्वरः	१२२.१०
त्रिश्रुत्वा द्विज	११६.६२	त्वञ्च शक्ति	८३.११०	दण्डनाद्दमनाद्	३७.६०
त्रुट्यादि	३७.७८	त्वञ्च सर्वार्थको	२६.३५	दण्डवज्रगदा	८५.४४
त्रेतायाम्	१२२.५	त्वञ्च साहसशक्तिभिः	८५.१२७	दण्डवत् पतितो	९३.२४७
त्रैलोक्यधारिणि	१२७.१०४	त्वदंशगाः स्त्रियो	४२.५	दण्डश्चेति समासेन	१०७.१५
त्वं काली कालरात्रि	८३.१०५	त्वद्दर्शनेन	२.२७	दण्डासनस्थिता	५०.१०६
त्वं गतिः	९३.२४८	त्वन्तु ऋद्धिः	१२७.१८३	दण्डैर्वाचा	८.३६
त्वं गतिः सर्वभूतानाम्	१२७.७२	त्वन्मुक्तश्च	९३.२५३	दण्डोद्यतकरा	३९.७९
त्वं गायत्री सदा	८३.८२	त्वन्तु ह्रीः	१२७.८२	दत्तं स्थानन्तु	३९.३२
त्वं चण्डा त्वं प्रचण्डा	८३.६४	त्वमेका सप्तधा	८३.९८	दत्ता देव्यास्ततः	७६.४५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
दत्तानि दिव्य	११४.९	दलाग्राणि मूलभोग	५०.२८७	दिनं विभज्य	२.६९
दत्तापराजिता चन्द्रे	४३.३	दश तानि	४७.३३	दिनच्छिद्रे	७४.७
दत्ते विष्णो	११४.१	दश दत्त्वा	१२३.११	दिलीपेन	५७.१७
दत्त्वा क्षीर	५०.२६६	दश द्वे	७२.२४	दिलीपेन तथा	६०.६१
दत्त्वा दिशाम्	९८.१८	दशधा	१४.१६	दिवं याति	७९.१८
दत्त्वा प्रव्रजतो	७९.७	दशधा चरका	१०७.१९	दिवसोऽहम्	१२७.९१
दत्त्वा मन्त्रपूजान्तु	१०३.४	दशधा पुण्य	१२१.२६	दिवाकरशतप्रभाम्	८७.३२
दत्त्वार्घ्यं पूजनम्	५०.३०८	दशधा शतधा	१९.६	दिव्यं वर्षसहस्रन्तु	११९.६१
दत्त्वा शक्तिम्	८४.४	दश पूर्वो	३४.४	दिव्यगन्धर्वगानाढ्यम्	९३.२२५
ददते कामिकान्	९९.२५	दशभेदविभिन्नास्तु	१०७.३०	दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गी	९३.२०८
ददामि विविधान्	१२७.८८	दशयज्ञक्रिया	५८.७	दिव्यप्राकृतभावेन	९३.२९२
ददाह	४.३७	दशांशेन च	११५.४	दिव्या न संहिताश्चास्य	४३.४९
दद्याच्च	३२.११५	दशात्मा व्योम	७७.२१	दिव्याम्बरधराम्	१२७.५४
दद्याद्रक्तोपहारन्तु	५०.१४४	दशानां	९५.४७	दिशञ्चोत्तरऋक्षे	४.२५
दधिपायसमन्त्रञ्च	६९.२०	दशानां राजसूयानाम्	१२७.२३०	दिशां पूर्वापरांस्तात	१०५.११४
दधिभक्तन्तु	३३.७६	दशावतारपूर्वास्तु	९०.२१	दिशो जङ्घे	१२७.११३
दधिभक्तम्	५०.१५१	दशैताश्चिन्तयेदेकम्	७२.८८	दिशो द्विजा	६५.३९
दध्ना विष्णुपदम्	६०.१५	दहन्तं दानवी	४३.४६	दीनं दुःखितकम्	३३.४३
दध्यक्षतस्रजः	७२.१३०	दातव्यं प्रतिपण्यञ्च	७२.९३	दीनादिविकलान्	३२.४४
दध्योदनम्	५४.१३	दातव्या आत्मनः	८९.१५	दीनान्धकृपणांश्चैव	२६.४६
दन्तिदन्त	६७.१९	दाता सत्त्व	३९.३६	दीनान्धकृपणानाञ्च	५०.३३६
दन्तिदन्तमयैर्दण्डै	३१.२	दाता हर्त्ता च	१२८.४२	दीनान्धकृपणानान्तु	३५.१९
दन्तिनाम्	४.९०	दात्रिका दूतयः	७२.८४	दीपधूपोप	११६.९२
दन्तेषु	७.१९	दानं च काञ्चनम्	९९.१५	दीपमाला	३३.१०६
दन्तुरं लोहजङ्घञ्च	८५.७४	दानं भूतदया	३३.२८	दीपमालान्वितम्	७९.९
दमना पद्मपत्रञ्च	१२३.१४	दानं होमाज्य	५०.२४३	दीपयात्रा	५९.२३
दमनी दामनी	१२७.१४०	दानवा निहताः सर्वे	१२७.१५०	दीप्तचक्रेश्वरे	६३.१४
दमनी महिषघ्नी	५१.३	दानवान्तं तदा चक्रुः	४३.६२	दीप्तास्या दीप्तनेत्रा	१२७.१९
दमनैः सितपुष्पैश्च	१०१.७	दानवापि	१३.६६	दीप्तिः	२९.१६
दमनैर्मरुपत्रैश्च	६१.१४	दानवैर्बाधिता	४.५४	दीप्तिः कान्तिर्यशाः	५०.११
दमयन्ती यथा	९३.१०१	दानवो बल	३९.१२४	दीर्घिकाः	२.६१
दयां कुरु	९३.७४	दापयेत यथाशक्त्या	१००.१६	दुःसहं सुरसङ्घस्य	३९.१२०
दया दान	३७.६६	दापयेत् कन्यकाम्	३३.१०५	दुःस्थितम्	७२.३३
दर्पणैरर्धचन्द्रैश्च	८३.२३०	दारुणोऽग्निरुद्रश्च	८१.९	दुन्दुभिः दानवेन्द्राणाम्	३९.१०९
दर्पणैरर्धचन्द्रैश्च	९१.५९	दिग्गजानथ	११४.५	दुन्दुभी रुधिरोद्गारी	४६.४५
दर्भरोमाग्नि	१७.३५	दिग्वेषं शशिकान्ति	११६.२८	दुन्दुभेर्देहजो	४.८१
दर्शनं जायते	९३.१९८	दितिं दैत्यनुताम्	५०.१५९	दुराधर्षेः	६६.४१

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
दुरितानि	१७.२३	दृष्ट्वा तु देवीम्	२०.३१	देवानां तर्पणम्	९३.१८६
दुर्गं चतुर्विधम्	७२.५२	दृष्ट्वा तु सुवलो	३९.९५	देवानां तेजसावृत्य	१२७.१४८
दुर्गं दुर्गगुणोपेतम्	७२.७८	दृष्ट्वा देवेश्वरम्	९.५२	देवानां प्रातर्	१२१.२१
दुर्गं दुर्गसमीपस्थम्	७३.५४	दृष्ट्वा बलम्	४०.१२	देवानां वदनम्	६७.५८
दुर्गं पुरञ्च	७३.११	दृष्ट्वा भीतम्	१२७.६१	देवानां विग्रहम्	८३.२९
दुर्गनामन्तु	३३.७०	दृष्ट्वा वञ्चित	३३.७	देवानां हितकामाय	१२७.६३
दुर्गाग्रतो	२२.१३	दृष्ट्वा रूरुम्	३७.१६	देवानान्तु यथा	९५.५६
दुर्गाणाञ्च पुराणाञ्च	७२.१	दृष्ट्वा शक्तिम्	३९.१००	देवानामुदकम्	९३.१९१
दुर्गाधः	७३.३०	दृष्ट्वाशुभान्	६५.५३	देवानामुदकम्	९४.२७
दुर्गाय उमारूपाय	२६.३३	दृष्ट्वा समाश्रयाकाराः	८७.६	देवार्थे	९७.४
दुर्गा शाकम्भरी	१६.२०	देयं वस्त्रयुगम्	१०१.२१	देवा विद्याधरा	८.३७
दुर्गाश्रयम्	७३.३१	देवं परमार्थतः	३३.९	देवाश्च रुद्र	४.१६
दुर्गे कृते	७२.५१	देवं भूयोऽपि	१३.५	देवीं कृपाणेन	२०.३२
दुर्गोत्पत्तेश्चतुर्थांशम्	७२.६८	देवं रुद्रम्	१.४२	देवीं गन्धोदकैः	३३.७१
दुर्दिनं मेघधारैव	८५.३६	देवगन्धर्व	३९.२८	देवीं गुणत्रयाविष्टम्	४६.१
दुर्लक्षं भ्रमते	११९.१४५	देवगन्धर्वसिद्धानां	८१.१३	देवीं तीर्थ	३३.९१
दुर्वारश्चाप्यहम्	१२७.२००	देवताराधने	२.६७	देवीं तोयेन	३३.८३
दुर्विज्ञेयम्	९३.११५	देवदानव	२०.१४	देवीं त्रिशूलिनीम्	११६.९
दुष्करं पुष्करो	५०.३१८	देवदानवगन्धर्वेषु	१२७.१८१	देवीं त्वदीय	१०३.१०
दुष्टकर्मसमाचारो	१२७.२३४	देवदानवमर्त्येषु	१२७.२१४	देवीं दृष्ट्वा तदा	४०.१७
दुष्टभावोऽपि	८१.५२	देवदानवयक्षाणाम्	८३.३४	देवीं देवान्	१.६२
दुष्पापम्	२५.११	देवदारुण	७३.८	देवीं शास्त्रार्थ	३४.३
दुष्प्रेक्ष्यं ब्रह्म	१२७.५०	देवदेव	५.७	देवीं शास्त्रार्थतत्त्वज्ञै	३२.४२
दूता न्यवेदयन्	२.८	देवदेवीमनुज्ञाप्य	१०४.११	देवीं सम्पूजयेद्वत्स	९९.३
दूरं भवधवम्	८६.२९	देवद्विजगुरुद्रोहा	८२.११	देवीं सुशोभनाम्	१००.७
दूर्वा मोहनि	६७.६	देवपत्न्यश्च	६७.४३	देवीञ्च संवृतो	४६.५
दूर्वा सर्षप	७९.२१	देवमानुष	१०.७.४	देवी पट्टांशु	५०.२२९
दृढं च	१२.४७	देवमूर्तिः	४.५२	देवीपूजाविधि	३९.१७९
दृश्यते मण्डपम्	९४.३७	देवयक्षग्रहा	३२.१८	देवीप्रतिष्ठाविधिना	१२.४
दृष्टादृष्टफलार्थिभिः	९०.६	देवश्च शङ्करः	७३.११३	देवीभक्तः सदाचारः	८९.८३
दृष्टीविषा	४.१९	देवस्य त्वा	५६.३२	देवीभक्तवरो	८२.४९
दृष्ट्वा क्षुभितो	१३.८०	देवाः पश्यन्ति	११५.७	देवीभक्ताश्च	२२.१९
दृष्ट्वा धनान्	१५.२०	देवाः सवासवाः	३९.११९	देवीभि	११.४३
दृष्ट्वा घोरेण	८६.७	देवाग्निगुरुविद्या	१२५.१	देवीभ्यः स्थापनम्	३९.१७६
दृष्ट्वा चञ्चल	३३.८	देवा दिव्यविमानस्था	३१.३५	देवी यत्र	१.४०
दृष्ट्वा ताल	८६.६	देवाधिदेव	८६.३४	देवीव्रतम्	३३.५१
दृष्ट्वा तु	१४.२०	देवाधिदेव	११६.३०	देवीरूपो हरो	७७.७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
देवीलोकम्	९९.३४	देव्योत्पत्ति	१२०.१	द्वितीयं भवते	७६.३३
देवीशूलहता:	५०.१८४	देशकालवशाद्वापि	७२.७०	द्वितीयं मध्यमम्	७२.११४
देवी सा	३७.८१	देहान्ते नन्दिनीलोकम्	९९.२९	द्वितीयायां यदा	४५.९
देवी सान्निध्यमायाता	२७.२५	देहि मे त्वम्	९५.११	द्विधरापि समुत्थन्ति	८५.६२
देवी सुप्रीतये	९९.३६	देहान्ते शिवसायुज्यम्	५०.८४	द्विपञ्चाशत्	१७.४८
देवेन कथितम्	९५.५०	देहान्ते शिवलोके	७६.४६	द्विपादग्निनिषेधार्थ	७२.९८८
देवेन विजयेनो	६७.५७	दैवमष्टविधम्	१०.२.७	द्विपार्द्र	१६.४०
देवेन शूलिना	११५.८	द्यूतमद्यरता	७२.१०८	द्विभुजां	५७.१०
देवैः शिवागमैः	८८.१	द्युतिर्दीप्ति	८३.७४	द्विभुजां बालरूपान्तु	९३.२८४
देवैस्तु भुक्तम्	७८.४	द्रव्यं भूहेमगो	१०२.८	द्विभुजा या च	३२.३२
देव्याः पादाम्बुजम्	९३.२५५	द्रव्यांश्चैव	९३.१४६	द्विरधीत्य दहेत्	१२७.२३५
देव्याः शिरे	२०.२९	द्रव्याणां निचयार्थञ्च	७२.७१	द्विरष्टवर्षकन्या	८.५४
देव्याः संस्मरणम्	१२६.२	द्रव्याभावे	२७.२९	द्विराद्यप्रथमान्तेन	५०.२६३
देव्या गृहन्तु	३४.१	द्रव्यैर्होमं प्रकर्तव्यम्	१२१.२८	द्विर्बद्धा	५७.१११
देव्या गृहन्तु	९,१०	द्रेक्काणाश	७३.४९	द्विसप्तभूमिकोपेतैः	९३.९१
देव्या गृहाग्रतो	३४.१४	द्रोणपुष्पी	१२३.१७	द्वे ब्रह्मानी	१०.६.७
देव्या दिवं तथा	८२.१२	द्रोणाद्रिं वासवम्	३९.१५०	द्वेष्टारस्तु	३३.२९
देव्या धनुषि	१५.१७	द्वाःस्थेन	८.११	द्वे सहस्रे	१०७.३२
देव्या ध्वजप्रमाणन्तु	३५.४	द्वादशीन्तु कलाम्	४८.१४	द्वैपायनो	६७.५०
देव्याननम्	२०.३४	द्वादशैव	२४.२	द्वौ भुजौ मद्रवान्	१२७.१०७
देव्या भक्ताः	३५.१६	द्वारं गत्वा	३९.५१	धनवान्	६१.१६
देव्या भक्ते	१०६.५	द्वारं सर्वेषु	७२.१२१	धनाढ्ये	३३.६४
देव्या भक्तैः	८०.३	द्वारस्थां गजवक्त्रम्	७२.१२५	धनुः शत्रुविनाशाय	१००.१३
देव्या मन्त्रम्	१२८.२०	द्विगुणं मण्डलञ्चास्य	४७.२०	धरणी धारणी	८३.७८
देव्या मूलाङ्ग	१२४.४	द्विजं वृत्रासुरम्	५०.७६	धर्मः प्रयत्नतः	१०.१.१७
देव्यायां मम	९२.१२	द्विज अन्त्यज	८०.४	धर्मः सम्प्राप्यते	१२७.१५
देव्याया एष	३७.९८	द्विजरूपधरो भूत्वा	३९.३७	धर्मज्ञः सततम्	१२७.४
देव्या यागविधानेन	१२५.३	द्विजांश्च	९९.२७	धर्मतः श्रोतुम्	१२८.१९
देव्यायास्त्रम्	९९.५	द्विजाचार्यैश्च	९८.२४	धर्मनिष्ठकृते	१२७.३
देव्या रुद्रपरा	८२.२०	द्विजानां दक्षिणा	५०.३३५	धर्ममर्थञ्च कामञ्च	१२७.५
देव्यावतारशास्त्राणि	९१.८	द्विजानां दक्षिणाम्	५०.२६८	धर्मशीले नृपे	१२७.८
देव्या विद्यां	१२८.३०	द्विजानां देवता	१२१.१४	धर्मस्य	८.४०
देव्या विप्राय	१००.२४	द्विजान् वेदविदश्चैव	७२.११०	धर्मात्मा	२.३२
देव्या व्यापार	९८.२५	द्विजाय शिवभक्ताय	१०३.४	धर्मादीन् चिन्तितान्	३७.४
देव्या व्याप्तमिदम्	३७.९९	द्विजेन्द्रसंस्थिता	८५.८	धर्माधर्ममहाभाग	८०.१८
देव्याश्चैव	१२७.२७	द्विजो ब्रह्मा	३५.१८	धर्माधर्मस्य	९.२०
देव्याश्रमन्तु	९४.२८	द्वितीयं	४.६७	धर्मार्थं चैव	१००.१५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
धर्मोऽधर्मसुखम्	१२७.१५७	ध्वजमाला	५०.३०२	न तं पश्यन्ति	१०.८.३
धर्मोऽपि ब्रह्मण:	४६.२१	ध्वजमालाकुलम्	९३.२२६	न तस्य भवति	२३.५
धर्मो विवर्द्धते	२४.३०	ध्वजमालाकुला	९३.९२	न तस्य भवते	११६.५८
धाताख्ये उन्नतिम्	५०.१०४	ध्वजापालनकर्त्तव्या	३५.८	न तेषां दुरितम्	११७.९
धातुमण्डित	१३.५४	ध्वजार्थे	१२.१३	न तेषां विप्र	११७.२
धातुर्भजेति	३७.४३	ध्वजैश्छिह्नातपत्रैश्च	३९.१५१	न तेऽस्त्यविदितम्	१२७.४२
धातुर्महेति	३७.४२	ध्वांक्षी वैश्येषु	२४.१८	न दिशो	१५.१६
धातुर्महेति पूजायाम्	४०.४	न कीटारण्यलग्नेषु	७३.५२	नदीतीर	१.५९
धातूत्तमानि पात्राणि	५१.१८	न कुर्यादाश्रयम्	९३.१३९	न दीर्घो	१०.९.३
धात्रीधरण	६.३	नक्तेन नवमी	८९.५	नदीसङ्गमगोष्ठेषु	९६.१३
धारणाम्	१०.१०.१	नक्रं मत्स्य	१३.४३	न देवा दानवा	१२७.४५
धारयन्	७३.१६	न क्रुष्ट:	८०.५	न द्रुतम्	१२.४८
धारयन्तो	३९.८१	नक्षत्रकल्पो	१०७.४५	न धर्मो नापि	२०.४
धारादानं प्रकर्त्तव्यम्	७५.१६	नक्षत्रबहुरूपाश्च	३९.९२	न ध्यातम्	३३.३५
धारादानेन गङ्गायाम्	७५.७	नक्षत्रमातरा होता:	१०१.२०	न नन्दा परमम्	९५.४०
धार्यताराहमृता	१७.३८	नक्षत्राणि	६६.७	ननाद धनुरावेण	३९.९६
धूपं च गुग्गुलुम्	९१.४८	नक्षत्राणि	६७.४४	न नैष्ठिको	५१.६
धूपं चन्दन	३३.१०४	नक्षत्राधिपति:	४७.१०	नन्दनो	३.११
धूपं देवदलम्	३३.८४	नखप्रहारैर्महिषस्य	२०.२७	नन्दनो विजयश्चैव	४६.४२
धूपाज्याहुतिदानैश्च	६५.९५	नखान् भुजङ्गदैवत्ये	१०१.१३	नन्दाकुण्ड	९४.३०
धूमकेतुर्महाहास्याम्	१२७.१२७	नगरद्वारपूर्वाद्या	९०.८	नन्दा गङ्गां पुन:	९३.१९०
धूम्र शुक्ल	५०.५३	नगराद्योजनम्	१२.३८	नन्दादेव्या	९३.६२
धूम्रायमाणा	१३.८३	नगरे वा	१२.५७	नन्दादेव्या	९४.१
धूम्रार्चि सकला	११९.४३	नगानद	२०.१७	नन्दाध्यानरता	९३.२६१
धूरसि	५६.४४	न गृहम्	७३.१२	नन्दानन्दकरी	९३.२८९
धृतक्षीर	६२.९	नगेन्द्राणां यथा	९३.२७	नन्दापुरवरे	९३.९९
धृतिमान्	१०.४.३	न च बन्धकिने	७३.१९	नन्दाभक्त: शिवे	९९.१८
धृतिरङ्गिरसे कार्या	५०.९६	न चादिरस्य	१५.१०	नन्दाभक्तजने	९३.२६२
धेनुम्	५७.१	न चाविज्ञातशीलासु	९.३२	नन्दाभक्तजनै:	९३.२६५
ध्यात्वा	८५.३	न चेष्टा यदि	६५.५४	नन्दाभक्ता	२२.२०
ध्यात्वा देवीम्	९३.२००	न चैव कलशा:	६६.१३	नन्दा सुनन्दा	९९.४२
ध्यात्वा देवीम्	१२४.१०	न जेतुम्	४.९	नन्दिना पदमालाय	१०.१.१
ध्यानं धारणम्	५०.११४	न ज्वरातिभयोद्वेगा	७.८६	नन्दिने मृत्युनाशाय	७६.११
ध्यायमानस्तमोङ्कारम्	१०.७.१	नटचारण	९१.५५	नन्दोपनन्दसंज्ञाश्च	१२.३९
ध्रुवो धवश्च	४६.१६	नटनर्त्तकप्रेक्षाश्च	८९.९	न पर:	२९.२
ध्वजं समुच्छ्रयिष्यामि	२३.२१	नटनर्त्तकवेश्यानाम्	९८.२०	न प्रधानजनवादम्	९७.१९
ध्वजदान	१.२२	न तं गृह्णाति	२.४०	न प्रमत्तजनाकीर्णे	९७.१२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
नमः कपाल	७.६०	न युद्धेन	४.१७	नहि चान्यद्	३५.२८
नमः पङ्कजनेत्राय	८३.३२	न योद्धव्यं मया	४३.१४	नहि पापकृते	३७.१०३
नमः शङ्ख	७.६२	नयो हि	४.१३	नहि पार्थिवद्वीपेषु	८१.२
नमः शैल महाघोर	७.६३	नयो ह्यहम्	१२७.२०३	नहि पृच्छामि	२.८४
नमः सुराधिपतये	१२७.२४	नरके पच्यमानानाम्	९३.१३	नहि मे	४.२०
न मन्त्रिद्वाःस्थ	९.२	नराणां बाणयोधानाम्	७०.४	नहि मेऽस्त्यपरा	७९.७
नमस्कारान्तसंयुक्ताः	५०.२४	नरासनसमारूढाम्	५०.१७२	नहि विद्या	१९.३०
नमस्कृत्य	१.१	नर्मदायां मया	७६.१	नहि वेदम्	९६.११
नमस्कृत्वा तु	९५.१३	नर्मदाया मही	४६.७६	नहि शय्यागताम्	२०.१२
नमस्त्वाश्रम	८३.३३	नवकृषरपूपानि	९७.५	नाके सुपर्ण	५६.२
नमस्ते काल	६.१९	नवदुर्गा	७२.२९	नाख्येयम्	८९.२२
नमस्ते घोररूपाय	७.५९	नवदुर्गास्थले	४२.९;१०	नागकेशरपुष्पाणि	१००.२८
नमस्ते देवगर्भाय	२.२०	नवद्वादश	५०.३१	नागकेशरहोमेन	५०.१२२
नमस्ते देवदेवेश!	४.५०	नवभेदाः समाख्याताः	११८.४	नागराजरूपिणी	७७.८
नमस्ते देवदेवेश!	६.८	नवमीं कृष्णपक्षस्य	४८.१३	नागानामधिप	१२८.१९८
नमस्ते पीतवासाय	२.४४	नवमो यः	६६.१६	नागा यक्षा	५०.७०
नमस्ते पीतवासाय	२.९६	नवम्यां	६१.१३	नागास्तारान्तभेदेन	५०.२५
नमस्ते भगवान् देव	८३.४६	नवम्यां कुजवारेण	१३..६६	नागेन्द्रभोग	११३.५
नमस्ते विश्वरूपेश	६.१	नवस्वेतेषु	७४.३०	नातः परतरम्	२७.२६
नमस्ते स्कन्द	२६.३८	न वह्नौ	९७.१०	नातः परतरम्	९८.२९
न मातरो	१३.१२	नवाक्षरा महाविद्या	९३.२७२	नातः परतरम्	११७.१२
न मुखेन	९७.११	नवानां परिवर्तेन	७२.८७	नाथहीना महादेवी	९३.९३
न मे धनैर्न	३९.६१	न विद्यतेऽपरम्	११९.९	नादेव्यो देव्याश्च	१२६.२०
नमो मुद्गर	७.६१	न वियोगो	६४.३	नाधयो व्याधयस्तस्य	८९.२४
नमो विचित्राङ्ग	६७.६८	न विशेच्छौकरम्	७२.४४	नाधयो व्याधयस्तेषाम्	२१.११
नमो वृक्षपते	१२.११	न विषम्	९७.१३	नाधिकं चतुरूर्ध्वन्तु	६५.७३
नमोऽस्तु ते महाविद्ये	१२७.७१	न वृक्षारोहणम्	९७.९	नाधिका शस्यते	२७.९
नमोऽस्तु ते सुराध्यक्षे	१२७.८९	न वृथा	९७.६	नानाद्रुमलताकीर्ण	११२.४
न भयं नैव	९३.४१	न शस्त्रिणाम्	७२.९५	नानाद्रुमलताकीर्णे	१२७.३३
न भयं शत्रुजम्	५८.२८	न शेषे	९६.२५	नानाध्वजोच्छ्रिता	९५.८
न भवत्यङ्ग	४९.१४	न श्मशाने	९७.८	नानापुष्पफलोपेतम्	९३.८४
नभसः पतितम्	३७.९४	नष्टां कूर्मतनुम्	५०.७९	नानापुष्पफलोपेता	९४.११
नभस्ये रोहिणी	२७.३३	न सङ्कीर्णे जले	९६.२२	नानाभक्षाक्षत	३५.२०
न भानौ	७३.४२	न सङ्ख्या विद्यते	४३.४२	नानाभक्ष्यम्	७.६५
नभोमासे	९९.२	न सदलीपनम्	१२.४९	नानामद्यविशेषाणि	८२.३३
न मारी न च	१२८.४४	न सुखानि च	१०.१.१९	नानायन्त्र	३३.२२
न युक्तम्	४.७४	नहि अनिच्छती	९.३७	नानायोनिगतः	७६.५५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
नानारत्नोपशोभाढ्या	९४.५	नास्तिकाय न	९५.४२	निशाचरपति	१२७.११९
नानारूपधरा	२०.१६	निघ्नन्ति न च	८५.१४	निशि पीत्वा	७८.११
नानालङ्करणम्	९३.१७४	नित्यं चेष्टा	८.४२	निशुम्भ	१.४३
नानालङ्कारसम्पन्नाः	९३.२२१	नित्यं दैवतपूजायाम्	९७.१७	निशुम्भशुम्भ	३७.३८
नानालीलावती	९५.२१	नित्यं ये	९८.२	निशुम्भशुम्भदमनी	१६.३१
नानावर्णरजैः	९४.९	नित्यं रक्षन्ति	९३.५५	निशुम्भशुम्भमथनी	३१.८
नानावस्त्रवितानैश्च	९४.७	नित्यं व्याधिः	१२१.४	निशौचास्तेऽभवन्	११८.२६
नानावाद्यरता	९३.९७	नित्ये नैमित्तिके	२६.१६	निश्चेष्टं दानवम्	१८.६
नानाविचित्र	५१.२४	नित्येषु	२६.२४	निष्कला	१६.१४
नानाविहारललितै	८७.४	नित्यैव	६.३३	निष्कृतिं तु	१२६.२६
नानाशास्त्रार्थ	९३.९८	नित्योद्वेग	७२.१४३	निष्क्रान्तम्	८३.८
नानासरित्समाकीर्णा	९४.१०	नित्योद्वेगपरा	७३.५	निष्पन्दं विष्णुम्	१११.११
नानाहेमाम्बर	९९.४१	नित्यो विभुः	७४.१	निष्पन्नेषु	११८.१०
ना नि नु ने अनुराधा	४६.८६	निपात्य	४.७२	निष्पादिता यदा	५०.४५
नाप्तिसन्ततविच्छिन्नै	९१.५३	निरंशे भास्करे	२४.१३	निस्तेजास्तपते	१३.२६
नाप्नुयात्सफलम्	१२७.१७	निरन्तराणि	७२.१०२	निस्त्रिंश	१३.५५
नाभिप्रदक्षिणावर्ता	१०१.२४	निरुक्तानि	१.७	निस्त्रिंशे पूजयेत्	३९.१६७
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च	६९.१७	निरुच्छ्वासः	८२.५	निहत्य दारणमाजौ	३९.१६२
नामभेदाद्	९८.४	निरुदकैस्तथा	९१.४७	नीललोहित	४३.४०
नामान्युदीरयिष्यामि	१६.१९	निर्गुणम्	१०.१०.५	नीलवर्णं च	१२.३४
नामे बलः	११२.१६	निर्गुणाय	२.२६	नीलां वा यदि वा	१०३.२
नारका भुवनास्तस्य	११२.१८	निर्गुणौ	१०.३.५	नीलोत्पल	७.२८
नारदं प्रेषय	८.५	निर्जिताः	४.३	नीलोत्पलदलश्यामा	९३.२२२
नारदकथनाच्छक्र	९.१	निर्जिताः	११.२३	नीलोत्पलवर्णो	१०७.५६
नारदस्य	१७.१	निर्जित्य	८.३९	नूपुरैः कुण्डलैः	१७.२५
नारदेन तथा	११.१४	निर्जित्य शत्रु	६५.४८	नृत्यते परमो	८६.३१
नारदेन वचः	९.४९	निर्जित्य सहसा	८४.८	नृत्यन्ति	१४.२९
नारायणविघातार्थम्	४३.५०	निर्मथ्यः	४६.३३	नृत्यन्ति कन्यकाः	९३.२३७
नारायणस्य धारायाम्	११९.७५	निर्मलत्वाद्	१०.१०.३	नृत्यमाना शुभा	५०.१७४
नारायणास्त्र	४.९१	निर्मांसा	१३.८२	नृत्यवादित्रकम्	९३.६८
नारायणी च	१२७.१६१	निवसन् पूजयेद्देवीम्	७७.१४	नृत्यारम्भे स्थिताः	८७.१३
नारायणीयाः	१०७.३९	निवारितः	१४.९	नृपान् पीडति	२४.२०
नारायणी सदा	३३.८१	निवृत्तम्	१०.७.५	नृपेणायुषकामेण	२७.२७
नारियोगश्च	१०१.२८	निवृत्तवैरा	११७.३	नृपैर्दण्ड	२.७९
नासत्यश्चैव	४६.१४	निवेदयेच्छिवे	१२८.३६	नृवाजिरथनागानाम्	७२.४०
नासहायो	९७.७	निवेद्य घृत	५०.३००	नृवेशं सर्वलोकानाम्	६७.२४
नासावाध्यात्मिकादीनि	५०.३३९	निशम्य	४.७८	नेत्रत्रयकृत	५८.३०

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
नैमिषं पुष्करम्	७६.५	पञ्चस्वर्थेषु	१०.९.४	पद्मरागपरिच्छन्नम्	९३.२२९
नैमिषे दृश्यसे	१२७.१०२	पञ्चाङ्गुलस्य	७२.१४२	पद्मरागोपरिच्छन्नम्	९४.३२
नैराजनम्	५९.२५	पञ्चाब्देन तु	५०.२७२.	पद्मस्था	२३.१६
नैर्ऋते	७३.४	पञ्चाशदङ्गुलम्	९३.१५९	पद्माकारं प्रकर्त्तव्यम्	५०.३१६
नैर्ऋते पीयमानास्तु	९३.१४३	पञ्चाशल्लक्ष	८१.१७	पद्माक्षी पद्मगर्भा	१२७.१६४
नैर्ऋत्याम्	६८.८	पञ्चास्था पूजिता	४४.१२	पद्मासना	८३.८४
नैवेद्यं पायसम्	३३.७२	पञ्चोच्छ्रयकरा	५०.४४	पद्मेन्द्रनील	५०.३०१
नैवेद्यं रोहितम्	३३.६७	पटस्य लक्षणम्	९३.१४९	पद्मे सुलक्षणोपेते	५८.२५
नैवेद्यं शर्कराभक्तम्	९९.४०	पटु पटह	१२.२७	पन्थानम्	१३:२२
नैवेद्यं शालिजम्	३३.९२	पठते लक्षणो	११६.६०	पयसा कर्दमा	१०५.१३
नैवेद्यं शोक	३३.८८	पठंस्तवोत्तमम्	१२७.१८	पयोष्णी	९३.१७७
नैवेद्यं सक्तव:	३३.१०१	पठनात् श्रवणात्	३६.३३	पवनविरहितो	१०.६.१२
नैवेद्यं सक्तव:	९९.९५	पठित्वा सर्ववेदानाम्	१०७.६१	पवर्गाच्चतुर्थे	९३.१३६
नैवेद्यानि विचित्राणि	९८.१५	पतङ्ग	८.३३	पवित्रेऽस्थो	५६.३९
नोत्तरं शस्यते	११८.३	पतङ्गकर	१३.५९	परत्र भैरवम्	३९.१८३
नोत्पन्ने	३६.१२	पतयस्ते भविष्यन्ति	९३.२६६	परदार	८०.६
नोत्पाते च	९६.२६	पताकाध्वजछत्रादि	२१.६	परदुर्गेषु	७२.१३९
न्यस्तं राज्यस्तदा	४४.२	पतिता: संविलक्ष्यन्ति	८५.६५	परपत्न्य:	९.६
न्यायतर्कसमायुक्ता	१०७.२५	पतिता बाहुदण्डा	८५.१८	परमापर	३६.१३
न्यायेन	२.१००	पतिते शक्रदण्डे	१२.५३	परसैन्य	७१.२
पङ्कज: शतपत्रश्च	१२३.१६	पतिव्रता सदा	५०.३४२	परस्थं मातृमध्यस्थम्	७०.६
पङ्कजे	२६.३	पतिहीना	९३.९४	परस्परं सुसन्तुष्टा	९५.३८
पङ्कलम्	७३.२६	पत्नी च कुङ्कुमा	७९.४	परस्पर	२१.१५
पङ्क्तिश्चैव यतिश्चैव	१२७.१५३	पत्रपुष्पोदककराम्	५०.१७८	परस्परन्तु	८५.२
पङ्क्त्याकारै: पुरै:	८१.१५	पथि पर्वत	३९.१३९	परा च विघ्नसहिता	११७.११०
पक्वेष्टदारू	११८.२	पदं देव्या:	५०.५६	परा जम्बुकनाथस्य	४२.१२
पक्वेष्टम्	२५.१९	पदमालाम्	९.५३	परार्धद्वय	११९.१२३
पक्षिशाव	६५.२३	पदमाला महाविद्या	११.१५	परा वा	२.३४
पञ्चगव्यं तु गोक्षीरम्	१२०.७	पदमालाविधि:	१.२१	पराशराज्जातुकर्णो	११.१३
पञ्चमी वरुणाश्चापि	४८.१२	पदमालेति	५०.६६	परिग्रहानुरूपेण	१२२.१३
पञ्चमो दक्षसावर्णि:	४६.२५	पदवर्णविभागेन	३९.१२२	परिजातक	९३.२०६
पञ्चमो यजमानस्तु	६६.२३	पद्मं तथावशेषानि	६५.६५	परिभ्रमद्यथाकामम्	४३.१६
पञ्चमो वत्सरस्तेषाम्	४६.३६	पद्मकम्	१०.५.४	परिवर्तं गिरे	६५.४५
पञ्चम्याम्	६१.९	पद्मचक्रगदाहस्ता	८३.९०	परिवादी प्रमाथी	४६.४४
पञ्चवक्त्रम्	४३.५५	पद्मपत्राष्टकम्	६५.६४	परिवाद्यां यजेद्	५०.१९४
पञ्चवक्त्रै:	५०.५७	पद्मपूरक	५०.१२३	परिष्वजन्ति ता:	९३.२५८
पञ्च श्रुत्वा महाध्यायी	१२८.५४	पद्मबिल्व	५०.९३	परिसमूहने	५६.४७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
परिसमूहादिभिर्देवता	५६.२१	पातालयोषितो	९५.२८	पितृणां भवते	७६.४९
परिसमूह्योप	५६.४८	पात्राणां हेम	१२३.२	पितॄन् भूयः	४६.८
परैः सम्मुखस्य	१७.४०	पात्राणि च वस्त्राणि	३९.१७१	पितेव सूर्यो	४९.१८
परैका भवते	३९.४४	पात्रेषु पृथ्वी	५१.२०	पिशाचान्	६५.९३
पर्जन्यः कालवर्षी	५०.३४१	पादपद्मं सदा	९३.६३	पिशाचान् राक्षसांश्चैव	६८.१८
पर्जन्योऽहम्	१२७.२०७	पादरक्षासमोपेतम्	३९.७१	पिशाचा पूतना	६.४१
पर्णोदुम्बर	१२०.९	पादरक्षो महाबलः	३९.७३	पिशाचाश्च	२४.३१
पर्परौदनपूजायाम्	५०.१७७	पादान्तरन्ध्रेषु	२०.२६	पीडां निवारयेत्	७५.९
पर्यङ्कोदरसंस्था	५०.१२१	पादुके वाथ	६८.१७	पीतैर्वस्त्रैस्तथा	९९.२४
पर्यन्तसहितम्	६५.६८	पादौ तु पृथिवी	१२७.१०६	पीत्वा पुरुषमेधस्य	७८.१४
पर्याप्तश्च	९३.१२१	पानं कन्यासनम्	९.३६	पीत्वामृतं तथा	४९.१९
पर्वकाले स्थित	४९.२५	पानसङ्गम	९.३	पुच्छं क्षौममयम्	१०५.६०
पर्वच्छायास्थितः	४९.२४	पापं पापरतम्	३३.४२	पुच्छश्च	१०४.१८
पर्वतेषु	७.८०	पापकर्मा नरा	९३.५३	पुण्यं यशस्यम्	१२७.२२८
पर्वतेषु समुद्रेषु	१२७.१३०	पायसं दधि	५०.१३५	पुण्यक्षयादिहायातः	६१.२५
पर्शुना	४.३१	पायसम्	५३.१७	पुण्यपापविभागेन	२४.९
पलैर्दशभिरर्द्धोन्यै	२६.९	पावनश्चात्मनस्तच्च	३३.६३	पुण्येष्वेतेषु	७८.२४
पशुघातः	६९.२०	पारीक्षस्तत्	१०८.९	पुत्र आरोग्यम्	८९.१९
पशुभिरिति	५६.१५	पार्थिवात्	७१.१	पुत्रदं पत्निदम्	२८.१७
पशुमृगपक्षि	६.२५	पार्वत्या सह संवादम्	१२७.३०	पुत्रायुराज्य	५८.२४
पश्चिमाम्	८५.७३	पार्श्वतः सितवस्त्रैश्च	९१.४३	पुत्रार्थं राज्यविद्यार्थम्	१००.४
पश्चिमायान्तु	६५.१०१	पार्श्वे या च मही	४६.७३	पुत्रार्थी	६.१२
पश्चिमे	३९.८	पालने	७.५१	पुत्रार्थी लभते	९५.४८
पश्चिमे तु मुखे	६६.१८	पाशदण्डकराला	५०.२१६	पुत्राश्च	१६.३६
पश्चिमे पीतरूपा	९३.२८६	पाशमुद्गरदण्डाब्ज	१५.१५	पुनः कालादिहायातः	३४.६
पश्यते क्षणमात्रेण	९३.२०१	पाशहस्ता महाहस्ता	१२७.१४५	पुनः पत्नी	५६.१८
पश्यन्ति तत्र	११९.६३	पाशाङ्कुश	१६.३९	पुनः प्रथमम्	९३.२६८
पश्यन्ति मरुतो	३९.१६१	पाशोद्यतकरं घोरम्	४३.४१	पुनः प्रपातमष्टाङ्गम्	३६.२८
पश्य वज्रं न	३९.११७	पाषण्डसर्व	१३.११	पुनः स्वर्गम्	८२.५६
पश्यामि परया	१२७.५१	पाषण्डान्	३३.६२	पुनरभ्युक्षणम्	१२६.८
पाटला	३७.२७	पिङ्गला	१३.२१	पुनरुल्लेखनम्	१२६.७
पाटलिपुत्रं भिरहुती	४६.६८	पिङ्गाक्षं छागमारूढम्	५३.४५	पुनर्देव्या व्रते	१०४.२२४
पाटवं जनमुख्येन	८६.२२	पिच्छध्वजे तुहिन	१७.१७	पुनर्द्वितीयभूतस्थम्	९३.२७०
पाठस्थानानि	१.५८	पिटके	१२.५२	पुननेंत्रोदये	११९.२६
पाणौ कण्ठकटिवस्त्रम्	७०.७	पिण्डं दत्त्वा	९३.१८९	पुनर्वसौ गुरुवारे	४५.८
पातयेत्सर्पिषो	२५.१४	पितरः सर्वदेवानाम्	४७.५	पुनश्चतुर्थभूयस्थ	९३.२७१
पातालपुरसुन्दर्य	९४.१३	पितृगेहवशे	३१.१७०	पुनाति	२७.२२

श्लोकाः	अ०/श्लो०
पुन्नागनाग	१२३.२७
पुन्नागनागबकुलैः	५३.८०
पुरं दुर्गम्	७३.३८
पुरं यथाक्रमात्	७२.२३
पुरतो विघ्ननाथस्य	४३.५९
पुरशोभां पथि	३१.३०
पुरस्कृत्य तदा	११५.२
पुरा कृतयुगे	१२२.४
पुरा कैलाशशिखरे	१०८.४
पुराणि रत्नानि	३९.५२
पुरी कान्तिमती	८६.१३
पुरी भस्मवती	८६.१५
पुरी सूर्यवती	८६.९
पुरुषः पुरुषादे	१०८.१८
पुरुषादीश्वरो	४७.३८
पुरेषु शङ्खभेर्यश्च	२१.५
पुरोहितो	६५.८८
पुरोहितः	१२.५१
पुलिन्दाः	१३.५२
पुषणढ हस्ता	४६.८५
पुष्करे नैमिषे	७५.४
पुष्पगन्धोपहारैश्च	३२.४०
पुष्पजाति	१२३.१०
पुष्पदन्तो	७६.१३
पुष्पपत्र	१३.४९
पुष्पभूतेषु	१०.१.१४
पुष्पयानम्	६५.५९
पुष्परागकृता	५०.८८
पुष्परागमयम्	५०.२५३
पुष्परागमयै	९३.८६
पुष्पहोमा	७१.८
पुष्पांश्चित्रान्	६९.१९
पुष्पाणि करयोर्दत्त्वा	५०.३३१
पुष्पादि	२२.१२
पुष्यके	२.९३
पुष्ये घृतमयीम्	५७.२
पुष्ये तु नर्मदा	७४.१२
पुष्ये पुष्याभिषेकन्तु	५९.२९
पुष्ये भूयन्तु	१०१.१५
पुष्ये स्नानम्	६५.१९
पुस्तकवाचनेनापि	९३.६६
पुस्तकास्तरणम्	९१.७९
पुस्तके नैर्ऋते	६८.७
पूजनम्	५३.१०
पूजनीयम्	५७.२८
पूजने वा क्वचिच्छस्ता	३९.१७८
पूजयन्ति	३०.१७
पूजयन्ति कृशोदयं	६५.३२
पूजयामास ताम्	११६.९६
पूजयित्वा	३१.१०
पूजयित्वा नमित्वा	१२८.१८
पूजयित्वा शिवाचक्रम्	११७.७
पूजयित्वा शिवाम्	६५.११
पूजयेत्तिलहोमैस्तु	२३.२
पूजयेत्परया	९३.२८१
पूजयेन्नवभेदेन	८९.४
पूजयेत्स्रजमालाभि	१०५.२
पूजयेद्धोजयेत्	८९.१४
पूजयेद्याजयेद्	५०.५
पूजयेद्रथविन्यस्ताम्	३१.७
पूजयेद्विधिवद्देवीम्	१००.९
पूजयेन्मङ्गला	८९.१७
पूजां कृत्वा	५९.५
पूजां कृत्वा	९३.१९३
पूजाकाले तु	९३.२९३
पूजा पङ्कज	६२.३
पूजितः शिववतः	५१.८
पूजिताः संस्तुता	५०.२३८
पूजिताः सर्वविद्यानाम्	९०.७
पूजिता	३९.११
पूजिता कुसुमैर्हृद्यैः	५०.१२६
पूजिता देवराजेन्द्र	२३.१७
पूजिता नवमासे	५०.२४०
पूजिता भाव	५०.१२०
पूजितामुपहारेण	५०.१२४
पूजिता विधिना	५९.३२
पूजिता विधिवद्देवी	५०.२०५
पूजिताश्चिन्तिता	३८.१०
पूजिता सितगन्धादि	५०.९५
पूतना शकुनी	७२.१२८
पूतिपूर्णस्तथा	८२.६
पूर्णः संवर्त्तते	६.१४
पूर्णकुम्भाश्च	९३.२०२
पूर्णकोशा	६७.७
पूर्णचन्द्रानना	९३.२४१
पूर्णचन्द्राननाः	९३.२२३
पूर्णदत्तक्रमान्नैव	७९.११
पूर्णाः पूतेन	६६.२९
पूर्वं ज्ञानागमम्	१०.१.१६
पूर्वं देवेन	८०.१०
पूर्वं धर्मं चरित्वा	१०.१.२४
पूर्वं निम्नम्	७३.३
पूर्वं मया महाप्राज्ञ	११.४
पूर्वं शुक्रेण	३९.२५
पूर्वपत्रे जया	९३.२८३
पूर्वभागे	७३.२०७
पूर्वभावाद्	७९.८
पूर्वमासं ह्यहम्	७९.८
पूर्वमासीन्महाबाहो	११.१७
पूर्वमेव एषो	९५.७
पूर्वमेव त्रयो	९३.१६६
पूर्वाग्निदेवता	१२१.३३
पूर्वात्तु या च	११६.९१
पूर्वादि	७३.३९
पूर्वादीन्	७२.११३
पूर्वेणैव	२.१०२
पूर्वेऽहनि	७९.४
पूर्वोक्तलक्षणे	१२६.५
पूर्वोक्तानान्तु	५६.५१
पूर्वोक्ता ये	७७.१३
पूर्वोक्तेन विधानेन	१२६.३३

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
पूर्वोत्तरप्लवे	९१.४०	प्रणम्य शिरसा	१०.१.११	प्रपीडिताग्रसंवर्त्त	८४.१३
पूर्वोत्तरेण	१२.२१	प्रणिपातम्	३.२२	प्रबुद्धोऽसौ	६.९
पूर्वोदक्	६५.३५	प्रणिर्गता	१३.६३	प्रभवं वत्सरम्	२५.६८
पूर्वोदिते कलाभिन्ने	४८.३	प्रणीता पृथिवी	१२१.१६	प्रभवादि	५७.३
पूषा धनुषि	५०.२६१	प्रताडयेन्न	९३.१६९	प्रभातसमये वत्स	९८.२१
पृच्छते च ततो	९३.१९	प्रतिचारी विशोर्वापि	५१.५	प्रभाते छिन्दयेद्	१२.१४
पृच्छन्ति विनयात्	३९.३३	प्रतिभावं यदा	९३.२९०	प्रभा प्रसाद	३७.६२
पृच्छामि अम्बिकाम्	९४.४०	प्रतिमा	१०.९.१०	प्रभावयन्ति	९३.१२५
पृच्छामि भगवतीम्	९३.२१२	प्रतिमा पूजिता	१२.१६	प्रभूतपयसो	२३.६
पृथक्कर्त्ता	१२०.८	प्रतिमारुदत्	१३.३३	प्रभूतमन्त्र	२६.२३
पृथिव्यापस्तथा	८३.८९	प्रतिमारूपधरा सा	९५.१६	प्रभूतेनैव	२.३९
पृथिव्याम्	६६.११	प्रतिव्यूहेर्यथा योगम्	४३.३४	प्रमदाजन	८१.१८
पृथ्वीं पद्मम्	४६.४	प्रतिष्ठा तासु	५०.६४	प्रमदा सुभगा	१०१.२५
पृष्ठतो	७.८१	प्रतिष्ठान्तु	३२.४३	प्रमाथिनी समे	५९.१०९
पृष्ठदेशं धनिष्ठासु	१.१०	प्रतिष्ठारसपात्राणि	१२४.१३	प्रमाथिने सुरूपाम्	५०.१९६
पौण्डरीकञ्च	८०.५४	प्रतिस्थाने	३९.१४७	प्रयच्छति	३२.३८
पौण्डरीकस्य	७८.१६	प्रतिहार्यो	७.२२	प्रयच्छति शिवोमे	६४.६
पौरुषस्यानुसन्धाय	२०.९	प्रत्यक्षं वर्त्तते	१६.७	प्रयाता दानवी	१९.९
पौषाष्टमीषु	३३.७८	प्रत्यक्षा येन	१०४.१२	प्रयाति शतधा	५८.२२
पौषे देवीम्	९९.२३	प्रत्यनुगम्	७६.३७	प्रलये तु	९५.१३५
प्रकृतिस्थं च	८०.१७	प्रत्युष्ट्रं रक्ष	५६.४३	प्रवर्त्तयति यः	१२८.१२३
प्रकृतीनाम्	२.७६	प्रत्येकं तु	३१.२४	प्रवाहो विवहश्चैव	४७.३१
प्रक्षालितम्	४९.२९	प्रत्येकमुक्त	१२३.२३	प्रविशेत्	९४.३४
प्रक्षिप्यमाणैः	३१.२९	प्रत्येकशः समस्ता	५०.१९	प्रविश्याभ्यन्तरे	९४.३३
प्रक्षेप्य पटलेभ्यश्च	७२.९९	प्रथमं भासमानन्तु	८२.२२	प्रविष्टो मण्डपे	९३.२३९
प्रचण्डमणिकुण्डलम्	८७.२५	प्रथमां पिबते	४८.११	प्रविस्तारप्रमाणेन	८१.२२
प्रजाः सर्वाः	७२.५	प्रथमा संस्थिता	५०.१२	प्रवृद्धिशक्ति	१८.३
प्रजानां पतिभिः	४७.३०	प्रदधो दृढकोशाद्यः	४३.२५	प्रवेशतो	८.१४
प्रजानां वासवो	८३:३१	प्रदीप्ताङ्गारवृष्टि	११९.४६	प्रवेशे भयदाः	७३.४०
प्रजापतये	५६.४५	प्रदीप्ता नवमी	६५.९	प्रवेश्य साधकान्	९३.२४४
प्रजापति	६७.५२	प्रदीप्य यावत्	६५.७	प्रव्रज्या न कृता	३३.३४
प्रजापतिसुतावेतावुभौ	४७.१३	प्रदुष्टम्	२.१६	प्रसन्ना च सदा	९३.१३७
प्रजा लोभम्	७२.६	प्रदोषप्रत्यूषभुजा	१२७.९१	प्रसन्नाम्	९३.३५
प्रजासु धर्मयुक्तासु	१२७.६	प्रधानैर्बलसम्पन्नैः	१२.२३	प्रसादश्च प्रकुर्वीत	१२८.५८
प्रणतजनसित	८६.३३	प्रधानैर्वापि	९१.६४	प्रसीदतु	३१.९
प्रणम्य	८.१६	प्रपारामतडागानि	६०.१८	प्रस्थिता	४.२४
प्रणम्य तम्	८०.१४	प्रपितामहा ऋतवः	४७.६	प्रहरार्धेन	१२१.२३

श्लोकाः	अ०/श्लो०
प्रह्लादो	८२.२९
प्राकारबाहुमेकैकम्	७२.१०१
प्राकारोपचयम्	७२.७२
प्राकृतं देहमुत्सृज्य	३९.६५
प्राकृतं देहमुत्सृज्य	४३.६४
प्रागुत्तरेऽथ मध्ये	५०.२८४
प्राजापत्ये	६७.५९
प्राञ्जलद्वेनभृत्याश्च	१०७.४१
प्राणायामै	१०.५.८
प्रातःस्नायी	२२.८
प्रातर्मध्याह्न	२६.४७
प्रातर्मध्याह्न	५०.२२
प्रातर्मध्याह्नसन्ध्यासु	२७.२२
प्रादुर्भावस्तथा	१.१८
प्राप्तयोगो	११.१
प्राप्ते संवत्सरे	५८.१२
प्राप्नुयान्नाम	९८.२७
प्राप्नुयान्नात्र	३६.२९
प्राप्नुवंस्तन्महात्मानो	३०.९
प्राप्यते भगवतीभावम्	९९.४७
प्राप्य देव्याः	१०४.२२
प्रारम्भे	९१.५४
प्रावृट्काले	७२.४३
प्राशनम्बिल्वपत्राणाम्	७८.१८
प्रासादस्योत्तरे	९३.१४४
प्रियङ्गुनाग	९५.१८
प्रीयतां नन्दिनी	१०५.१०
प्रीयतां मे	७९.१३
प्रोक्तं निरुदकम्	२७.५८
प्रोक्षयित्वा पुरा	१२६.६
प्रोत्तुङ्गटङ्कविच्छिन्नम्	७२.५४
प्रोद्देशमात्रकम्	१२६.२६
प्रोद्भिन्नकुड्मल	६५.२९
प्रोवाच विहसन्	४.५६
प्रौष्ठाश्विनेऽथवा	८९.३
प्लवाख्ये विमला	५०.१७१
प्लुतदीर्घ	९६.१५

श्लोकाः	अ०/श्लो०
फणीन्द्राणां यथा	९३.३०
फलं कक्कोल	५०.२२१
फलते सर्वलोकानाम्	२०.११
फलनीलोत्पलकरा	५०.१६०
फलपुष्प	२.६०
फलपुष्पलता	६५.४३
फलपुष्पवती	२३.८
फलपुष्पसिता	१२.१८
फलपुष्पोपहारेण	७४.२५
फलमाप्नोति	६१.४
फलमूलकणाहारः	४३.१०
फलानामप्यलाभे	१२३.२२
फलानि गन्धपुष्पाणि	५०.६१
फलार्थन्तु	१००.१२
फलैर्नीरस	७०.९
फाल्गुने	६२.५
फाल्गुने सर्षपैः	३३.८६
फाल्गुन्याम्	९९.३०
बडवाग्निरहम्	१२७.१९७
बद्धो वा व्यालपाशेन	१२७.१३४
बन्धनान्मुच्यते	३६.३४
बलं नागसहस्रस्य	९४.३६
बलिपूजा	५०.३१२
बलिमांसौदनाहाराम्	५०.१६८
बलिहीने तु	५१.२६
बलिहोम	५१.२१
बहिर्निःसलिलम्	७२.५८
बहुद्रव्य	५२.४५
बहुधान्ये सदा	५०.१०७
बहूनि यस्य	३७.६९
बहुभिः स्वजनैः	१२८.४०
बहुवक्त्रगते	७५.३
बहुवह्निविधान	१२१.६
बहुसैन्यान् समादाय	३९.८८
बहुहव्ये धने शुद्धे	१२६.३४
बालरज्ज्वा निवर्त्तन्तु	११८.१२
बालानाम्	१२.३९

श्लोकाः	अ०/श्लो०
बालार्कशतभागस्य	८३.७३
बिल्वपत्रैः	१२३.२५
बीभत्स	१२२.२२
बुद्धया द्व्यङ्गुल	६७.१०
बुद्ध्वा	२.७५
बृहदस्य शरीरम्	३७.४१
बृहस्पति	४.७
बृहस्पतिना	८.३
बृहस्पतिर्महाप्राज्ञः	११६.७६
ब्रह्मचर्यं दया	१२०.५
ब्रह्मणः सृष्टिकामस्य	१२६.२
ब्रह्मणः सृष्टिकामस्य	१२६.६८
ब्रह्मणा कथितम्	१२.२
ब्रह्मणा कथितम्	३९.४७
ब्रह्मणा पुष्करे	३९.२
ब्रह्मणा या	२५.२
ब्रह्मणा या	६५.१८
ब्रह्मणा शिव	३६.३१
ब्रह्मणेऽनन्त	११९.२१
ब्रह्मणोऽपि	९३.१८१
ब्रह्मणो ह्यासनम्	८३.५
ब्रह्मण्या च	१२७.१२९
ब्रह्मपुत्र	१३.१४
ब्रह्मरूपधराम्	८४.२४
ब्रह्मरूपा स्वरूपा च	११७.१६८
ब्रह्मलोके समाख्यातो	८६.३२
ब्रह्मविष्णु	२.१३
ब्रह्मविष्णु	२८.२
ब्रह्मविष्णु	५९.२६
ब्रह्मविष्णुपुरस्कृत्य	१२७.६६
ब्रह्मविष्णूदयम्	६.२२
ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राणाम्	१०.१९
ब्रह्मविष्णिवन्द्ररुद्राणाम्	३५.२९
ब्रह्मशास्त्र	१००.२
ब्रह्महत्यादिपापानाम्	२८.१६
ब्रह्महत्याम्	५०.२७३
ब्रह्महा गुरुघाती	८३.११८

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
ब्रह्माणं शङ्करम्	१२६.२४	भग्नवृन्दम्	८५.४०	भावकार्यानुरूपेण	५०.३५
ब्रह्माणां कारणम्	३७.९०	भद्रकोट्यस्तु	१०८.१९	भावकाले क्रिया	७५.१५
ब्रह्माणी ब्रह्मजननी	३७.८१	भद्रा शुक्ले	५०.८७	भावनीया सुता	११६.४१
ब्रह्माण्डान्तर्गत	११९.५२	भद्रासनसमारूढा	५०.२१९	भावभूतमयम्	११९.२४
ब्रह्माद्यान् असृजन्	८७.१८	भयं मृत्युम्	६८.१०	भावयित्वा शिवम्	१२५.१५
ब्रह्मा पितामहो	५०.२१	भयानि कुर्वन्	२०.२५	भावहेतुस्वभावस्तु	१०८.२२
ब्रह्मापि पूज्यते	९१.७	भरतो वर	१२२.८	भावादभावतो	२६.४०
ब्रह्मा वा	४.२२	भरद्वाजस्तु	१०८.२१	भावितात्मनश्च ते	९३.१७
ब्रह्मा विष्णुश्च	७६.२२	भवः कामस्तथा	३७.२४	भावे शुद्धस्वरूपा	३७.२९
ब्राह्मं नीवार	६०.१६	भवति सर्वकार्येषु	११४.१०	भावैर्बन्धयसे	८३.९५
ब्राह्मणः	८६.३२	भवते चर्चिकाभक्तः	३४.७	भावैस्तत्त्वै	११९.२७
ब्राह्मणः क्षत्रियो	९१.१	भवते धनवान्	४५.१७	भावोत्पत्तौ	१०.९.२
ब्राह्मीं च वैष्णवीम्	९१.४	भवते नन्दाभक्तस्य	९९.८	भाव्यस्य सूर्यो	४७.२७
ब्राह्मी कौमारी	१७.१९	भवते नात्र सन्देहो	१०२.१६	भासृ दीप्तौ	३७.६८
ब्राह्मी देवी	६७.८	भवते फलदा	३२.१०	भास्करस्य तु	६१.११
ब्राह्मी हंसासना	५०.१४१	भवते शत्रु	६५.१०	भिक्षुकं कारि	६३.१२
ब्राह्मे मुहूर्ते	२.७०	भवते सर्वकामानाम्	१००.२३	भिषक्संवत्	२०.६
भक्तभोज्यान्नपानेन	३१.२७	भवते सस्यनिष्पत्ति	११७.४	भीमामुग्राम्	१६.३४
भक्तानाम्	१६.४१	भवते सिद्धिकामस्य	२३.२०	भीषणी शत्रु	३७.७२
भक्तिमुक्ति	२९.२०	भवते सृजते	८०.२७	भुक्त्वा तु	६५.३०
भक्षयित्वा ततः	९४.२६	भवतो युग	५०.२५४	भुजगेन सयन्त्राद्यान्	७२.१२२
भक्ष्यैरनेकै	६५.९१	भवन्ति नृपशार्दूला	९९.४४	भुञ्जन्ति दर्शनात्कन्या	९३.४६
भगं ते वरुणो	६९.१३	भवन्ति विघ्न	१२५.१०	भूगृहे गृहमध्ये	१२५.२
भगवंस्त्वम्	१.२	भविष्यद्वयते	२४.१६	भूतं भव्यं भविष्यम्	१२७.८१
भगवंस्तव वाक्यानाम्	८१.१	भविष्यसि न सन्देहो	४३.१३	भूतं भव्यं भविष्यं च	१२७.१३५
भगवन् कर्मणा	२.१९	भागं चतुष्टयम्	९५.९	भूततन्मात्र	२९.५
भगवन् देवता	३२.२	भाग्यं वै	२७.२१	भूतभव्य	६.२
भगवन् देवदेवेश	११६.७७	भाग्याख्या	५८.१९	भूतभव्यभविष्यार्थैः	७.६
भगवन् भवतो	८४.१	भाद्रपदो मध्यफलः	४६.५०	भूतविद्	१२७.१५६
भगवन्नस्मत्तातेन	४.२	भानुं नारायणम्	७६.१९	भूतस्याधिपति	४७.२६
भगवन् श्रोतुम्	१२७.३६	भानुना ग्रह	३३.१०८	भूता विद्याधराश्चैव	४७.३६
भगवन् श्रोतुमिच्छामि	१०.१.१२	भानोः	२५.१५	भूतैर्ग्रहीता	९१.३१
भगवन् श्रोतुमिच्छामि	२१.१	भारद्वाजापस्तम्बाश्च	१०७.३६	भूभागम्	६५.६३
भगवन् सर्वदेवेश	३.१	भारद्वाजेन	११.१०	भूभृत्सुतात्मजस्तात	४३.३०
भगवान् किं परा	८०.२३	भाराख्ये	५०.१००	भूमिकम्पो	५५.११
भगिन्या मातृसहिता	८६.१४	भार्गवात्पादहीनस्तु	४७.२१	भूयस्तात	१३.३
भगो द्वादशमस्तेषाम्	४६.३९	भार्या इष्टा	५८.९	भूयस्तु	३१.१

श्लोकाः	अ०/श्लो०
भूर्लोकं च भुवर्लोकम्	१११.६
भूर्लोकं भुवः	४७.२४
भूर्लोकः पार्थिवो	४७.२५
भूर्लोकवासिनः	४७.२८
भूर्लोकस्तु	६५.८२
भूषिता पट्टमाणिक्यै	९३.२४२
भूषितोऽपि	८०.७
भृकुटीतटम्	११७.२१
भृकुटीमुखम्	८५.७१
भृगु पूर्णाष्टमी	४५.३
भृग्वङ्गिरस	२.८
भेदभेदान्तर	७.४४
भेदो न शक्यते	५७.२७
भेभोजजि	४६.८७
भैक्ष्यवृत्ति	१०.४.१२
भैरवं चैव	९३.२४
भैरवे भैरवा	६३.४
भोक्तव्यम्	१००.१७
भोगो गोमूत्र	४३.२७
भोजनं कल्पयेत्	१२८.३१
भोजनीयास्तथा	९९.३८
भोजयेत्	९९.६
भोजयेत्कन्यका	९९.३१
भोजयेदात्मन	३३.८५
भोजयेद्दक्षयेद्	९९.२२
भो भो वीर	९३.२१७
भौमान्तरीक्ष	६७.२४
भ्रूभङ्गचाप	३२.३४
मकरादि	५३.२
मकरीकरपत्रैश्च	९३.७१
मक्षिकादंश	१३.३५
मधा विमलकेयूरे	१२७.९३
मङ्गलं वह्निपत्रस्थम्	५२.४
मङ्गलञ्चापरम्	६७.७३
मङ्गला नन्दिनी	७७.२२
मङ्गला भैरवी	८९.१२
मङ्गला रूपिणी	७६.२१
मङ्गला विजया	५०.१०
मङ्गला विहितम्	६०.१२
मङ्गला शाकम्भरी	५१.२
मङ्गलैः स्तूयमानस्तु	९४.५८
मज्जन्ति योषितो	९३.१७१
मठञ्च कारयेत्तत्र	९०.२३
मठे महानसे	१२१.७
मण्डपं मण्डपा	५०.२८१
मण्डपञ्चार्द्रशाखाभिः	५०.३६
मण्डलं दर्शयेद्	५०.३१०
मण्डलस्य प्रमाणेन	६५.७२
मण्डलीकृतसारङ्ग	८६.५
मणिमौक्तिक	५०.१३६
मणिरत्नमया	९३.१२७
मणिहेममयैः	९३.२०३
मति शान्ति लक्ष्मी	१७.२१
मत्तवारण	७२.११९
मत्तोन्मत्तान्	७३.१८
मत्स्वरूपम्	११९.२५६
मदकुङ्कुम	७०.५
मदचन्दन	७९.१०
मदानुभवो	५.८
मदार्त्ता मुदिताः	९४.५०
मदिरौदन	५०.१०८
मद्यमैथुनमांसस्य	८०.४१
मधुपुष्प	६५.२५
मधुमाला स्रजा	५०.१९७
मधूकपाथ बिल्वाम्र	९०.१५
मध्यं चतुष्पथोपेतम्	७२.३५
मध्यकायः	३९.४६
मध्यदेश	७.३१
मध्यमं प्रभवम्	४६.५२
मध्यमानाम्बिका	६५.६६
मध्यामध्यगतै	७२.१५३
मध्ये तस्याभवद्	२९.८
मध्ये मातृगणाः	६६.२७
मनः क्षेत्रज्ञसंयुक्तम्	१०.९.५
मनुनायं विधिम्	१०३.७
मनोरमे कृते	१२४.६
मनोहरः	६६.१४
मन्त्रजप्यार्चनासक्तो	७७.१५
मन्त्रणेषु गणाः	१२१.१९
मन्त्रतन्त्रज्वर	६.३०
मन्त्रद्रव्यक्रिया	९२.९
मन्त्रपूतेन तोयेन	७४.२६
मन्त्रमालेति	९.६७
मन्त्रयोगात्	७५.१२
मन्त्रविदश्च	१२१.३१
मन्त्रविद्या	५१.३१
मन्त्राणां परमम्	३९.२६
मन्त्राभिमन्त्रितम्	१०४.२०
मन्त्रिवाक्यान्	२.९२
मन्दरस्थ	६३.१
मन्दरे	३९.२०
मन्दाक्षे दापयेद्देवी	४४.८
मन्दा ध्रुवेषु	२४.४
मन्दा मन्दाकिनी	२४.३
मन्दारम्	९३.१७६
मन्वादिभिः श्रुतम्	११६.६४
मम कार्येषु	६.९
मम क्रोधात्	११६.४०
मयाङ्गुष्ठेन	११९.३०
मया च	२७.२४
मयापि क्रममादाय	७९.१०
मयापि तत्र	७६.१६
मया पूर्वं च	६.१
मयि गृह्णामीति	५६.२३
मयूरवरगामिनीम्	८७.२८
मयोच्यतां वद	११३.१२
मरीचिरत्रि	६७.४७
मरुतामपि सर्वेषाम्	४६.३४
मरुधन्वसु	७२.१०
मरुपत्रैः सुगन्धैश्च	१०१.११
मरुद्वायुर्यमो	४.८

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
मर्त्यलोकेऽपि	२८.५	महाविद्युत्	७.६४	मातरा पुरतो	९१.१०
मलये कोलनामे	३९.१४६	महाविमाने	१२८.४१	मातरो भैरवं दुर्गाम्	११८.१
मलये सह्यविन्ध्ये	४२.७	महाविभव	५४.४	मातरो होमभागे	१२१.२०
महत्क्रोधम्	८५.२०	महाविभवसारेण	५०.१०३	मातर्माते	३१.१७
महद्यस्मिन्	३२.९	महाविभवसारेण	५०.१४३	माता देवासुराणाञ्च	९३.१८
महा आश्विन	२७.३१	महाव्रतं महापुण्यम्	२२.६	माता मरुद्गणानाञ्च	१२७.१००
महाकपालमालाय	११.३२	महाशब्दो	२१.१४	माता मातृक	२९.१२
महाकालीति	३८.९	महाश्वेता	१.५०	मातृचक्रो	५०.२२५
महाक्षोभम्	४.४३	महाश्वेता	७७.९	मातृतः पितृतः	९६.४
महागणपतिम्	९३.१९२	महासमुन्नतौ	३२.२७	मातृत्वं प्राप्य	३०.१६
महाचोद्यम्	९३.१२६	महिषं च	१४.१३	मातृमण्डलमध्यस्थम्	११६.४६
महाजनपदोपेताम्	३०.१४	महिषघ्नी	३२.३६	मातृलोकमवाप्नोति	१२८.५७
महातालं सुतालम्	८२.१९	महिषस्था	२३.१५	मातृणां वरदे	६७.६०
महादेवात्समुत्पन्ना	३२.८२	महिषाश्वम्	४.११	मातृणां वामभागे	६८.४
महादेवी	१६.२१	महिषो	३.२३	मात्सर्येन	९५.३७
महादेवी	३९.२३	महीदानं च	९१.१७	माधवस्य वधार्थाय	३९.१६१
महादेवी त्विदम्	४३.२	महेन्द्रप्रविभक्ताङ्ग	४६.३२	मा नः स्तोके	६.२९
महादेवेन भो	११९.१	महोत्सवविधानेन	५९.१४	मानवदुन्दुभ	१०७.२१
महाधर्मासुरो ब्रह्मन्	४०.१	महोदये वरेन्द्रे	३९.१४५	मानवान् देव	६.२८
महानखकरोत्थानम्	३५.१४	महोदरा	३.२४	मानवी यादवी	१६.२६
महानसे वा	२६.३९	मागधा अङ्गवङ्गाश्च	४६.६९	मानादवृत्तमथ	७३.३५
महापातकसंयुक्तो	२३.३	माघाद्यैर्मङ्गला	४५.१८	मानार्थानि	७२.१४
महापुण्यमवाप्नोति	६१.२२	माघ्यां पूजा	५९.३०	मान्धाता	३९.१२
महाबलम्	१५.३	माङ्गल्यं चोर्ध्वरूपम्	११९.६०	मायागज	१८.८
महाभय	५४.३	माञ्चापश्यत्	११.१८	माया च जगतः	११९.१६
महाभयविनाशाय	५०.४	माठरोक्तविधौ	५१.९	माया जये	५०.१५६
महाभये तदा	११६.८२	माण्डलीकनरेन्द्राणाम्	६७.७८	मायादेवी सुराणाञ्च	१२७.१४६
महाभारसमुत्पन्नः	३७.२१	माण्डव्यो	१.१७	मायामयानि	११५.५
महाभैरवरूपाणाम्	८९.१०	मातङ्गी मत्तमातङ्गी	१२७.१३८	मायारूपम्	१४.१२
महात्मानं महादेवम्	८३.८१	मातरं पञ्चकम्	११६.८४	मायाविनो	१४.२७
महामङ्गलशब्देन	३५.१०	मातरं पितरं चैव	१२७.४१	मारीचः कुम्भकर्णश्च	८२.५७
महामारी च	१२७.१७१	मातरं लोकपालानाम्	२६.२१	मार्कण्डेयो	६७.४९
महामेघनिनादेन	४३.३८	मातरा	६५.८३	मार्कण्डेयो	७६.३९
महारूपो	४.६९	मातराणाम्	२२.२१	मार्गतृतीयामारभ्य	७९.२
महार्णव इव	३९.९३	मातराणाम्	५१.१२	मार्गशिरादौ	७९.४
महार्थसाधना	३७.२२	मातराणाम्	५९.३१	मार्गशीर्षे	३३.७४
महाविद्यार्थ	१२१.८	मातरा तस्य वर्गस्थाम्	१०७.६	मार्गस्य	९९.२१

श्लोकाः	अ०/श्लो०
मार्गादारभ्य	१०१.२
मार्गे नीलोत्पल	६२.४
मार्गें पूजा	५९.२८
मार्गें रसोत्तमम्	१०४.१
मार्गें व्रतनिबन्धे	२७.३५
मालवे पर्वते	११६.४५
मालव्यो नाम	११२.३
मालाचामरशोभाढ्या	५०.१०१
मालाच्छत्रमुपानहम्	१०६.३
माल्यमारीच	३.३२
मा विधारय	९३.२१६
मासं वापि	९९.४६
मासस्य मार्ग	७८.८
मासादि लक्षणे	६५.५०
मासे भाद्रपदे	९३.५०
मासे प्रोष्ठपदे	३३.५८
माहेश्वरी कुमारी	५०.१६
माहेश्वरी वृषारूढ़ा	५०.२०२
मित्रदेवद्विजातीनाम्	८२.४३
मित्रर्क्षमित्र	७३.५२
मिथिला मेखला	४६.६७
मीने भगोऽतिते	५०.२७४
मुकुटैश्चुटकैर्वापि	९३.७३
मुकुलैर्नार्चयेत्	१२३.२०
मुक्ताफलकृताहारा	१२४.८
मुक्ताखास	४.९२
मुक्त्वा तु	९३.२५०
मुक्त्वैनम्	१०८.२९
मुच्यते सर्वपापेभ्यः	९३.३५
मुच्यते सर्वपापेभ्यः	१०५.१२
मुच्यते सर्वपापैस्तु	९९.२०
मुञ्चन्त्यस्रमहौघानि	८४.१६
मुण्डं सम्पीडयेद्देवी	४०.१४
मुण्डमालाधरा	५०.२१४
मुदान्वितस्तदा	७९.५
मुद्रादिदर्शनम्	५०.३०९
मुनयः	६५.९४
मुनीनाम्	२.१७
मुने धर्मप्रवाहश्च	१२८.२७
मुमोच	१५.२३
मुमोच स तु इन्द्राय	३९.११३
मूढ़गर्भा	६६.३३
मूर्त्तयोऽष्टौ	६६.३९
मूत्रं पुरीषम्	९३.१७०
मूलं राजा	६५.१५
मूलप्रकृतिरूपेण	११९.१७
मूलमन्त्रेण	२६.२५
मूलर्क्षे पशुपातेन	५९.७
मूलाच्चतुर्गुणम्	११८.१६
मूलादष्टगुणम्	६०.२४
मूलाद्वा	७२.१५०
मृगशीर्षसुख	१२७.७२
मृगारूढ़ं तदा देवम्	४०.२०
मृणाल	७.३६
मृण्मयीं प्रतिमाम्	९१.२
मृतोऽपि गच्छते	९१.७१
मृत्तिकया	९.५७
मृत्युञ्जयम्	४४.५
मृत्युञ्जयविधानेन	१२६.३५
मृत्यूपसर्गशमना	११६.९३
मृदङ्गशङ्ख	६७.३३
मृदुवाग्हास्ययुक्तश्च	१०१.७२
मृद्भस्मदण्डकाष्ठानि	९२.१७२
मेघदुन्दुभिशङ्खानाम्	२७.३
मेघनादी	३.२८
मेधा गौरी	४४.१०
मेधादिगुणसंयुक्त	५८.५
मेषादारभ्य	५७.१६
मेषादि विष्णु	५०.२८०
मोक्षार्थी लभते	१२७.२२४
मोक्षोऽहम्	१२७.१९६
मोचते	६.८७
मोदते शिवलोके	११६.६१
मौक्तिकदाममालाभिः	९३.९०
म्लेच्छवर्ग	६.७
यं दुन्दुभिः	१५.६
यं दुं रां ओम्	११६.२५
यं दृष्ट्वा	१०.१०.९
यं यं धर्मम्	१२७.२
यं यं पश्यति	२९.७६
यं यं पश्याम्यहम्	८३.१०९
यं श्रुत्वा	३६.३
यं सम्प्राप्य	२.६
यः कुर्यात्	१२३.२६
यः कुर्यात्सततम्	९९.७
यः कृत्स्नाम्	९१.३५
यः पठेत्	६३.१८
यः पठेत् श्लोकम्	१२७.२२२
यः पठेद्दण्डकैः	१७.४६
यः पुनः	८.३४
यः पुनर्विधिना	१०२.१०
यः श्रेष्ठ	१०.२.४
यः सदा	८.४८
यः समः	१६.३
यः सुगन्धैः	१२३.२४
य इदं पठते	७.८४
यजनः सामकश्चेन्दुः	११०.७
यजनश्चैव देवीनाम्	९३.२६६
यजन्ति	३०.७
यजमाने तथा	२९.१७
यजुर्वेदं पिङ्गलाक्षः	१०७.५२
यजेद्वा अश्वमेधम्	६०.७
यज्ञकर्माभिवृद्धिश्च	६५.७६
यज्ञकाले किल	९६.१८
यज्ञमाज्यम्	५७.२०
यज्ञाः सदेवताः	७.५३
यज्ञार्थं पशवः	९७.३
यज्ञार्थं याचनाम्	३९.४७
यतः शशाङ्क	१३.१५
यतिधर्मस्य	१०.१.२३
यती वा व्रतसम्पन्नौ	७९.५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
यत्काञ्ची	३३.२०	यथा द्रव्य	३७.९५	यदा हि	९.१४
यत्कान्ता	३३.१९	यथा न शक्ता:	११.४६	यदा हि बलवान्	२०.३
यत्किञ्चासन	३३.३७	यथानादिपरो	११९.१४	यदि खट्वासुरो	११६.६९
यत्ते केशेषु	६९.१४	यथा पथि	१०.८.६	यदिच्छति	१.६५
यत्न: कार्य:	६५.१६	यथा पूर्णा व्रजेद्	२६.१०	यदि तुष्टोऽसि	३३.४७
यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु	१२७.२३१	यथा पृच्छति	८२.२	यदि मां वरदो	९.५४
यत्प्राप्य	१०.१०.११	यथा प्रसीदते	१.२६	यदि वाप्येष	४९.५
यत्र दारित	१३.४६	यथा मातृगणम्	९०.२२	यदि सत्यमयम्	४९.२
यत्र नादम्	१.३९	यथा मातृसमुत्पत्ती	१.६	यदि स्यात्	१०.६.२
यत्र भौमा	६५.१४	यथामात्येन	९.२८	यदीच्छति	७९.१
यत्र मायो	१.८	यथा यथा	७३.२८	यदेतत्कथनारम्भे	२०.७
यत्र रोगभयम्	२.४	यथारण्यवासिनाञ्च	७३.२९	यदेवं कथितम्	७४.२७
यत्र वल्लीकृता पीडा	६७.२२	यथावत्कथयिष्यामि	९३.१२७	यद्दत्तम्	११.५६
यत्र विद्युन्मती	८६.११	यथा वत्स!	२.२१	यद्दुर्लभम्	११२.२
यत्र वेदध्वने:	२.२	यथा वा	३७.९६	यद्देवानामरूपन्तु	१०७.५८
यत्र सा	१३.४०	यथाविद्या	१.५५	यद्देवो	५६.२२
यत्र सा साधिता	४२.१३	यथावृत्तकथाम्	७.१९	यद्यत्र विलयम्	११९.२८
यत्राण्डज: पुरा	७९.१४	यथा शक्ता	९८.२३	यद्यहं समनुग्राह्यम्	२७.२२
यत्रायं विधि	५०.२६९	यथा शिवो अजा	६०.११	यद्येवं वर्णजातीनाम्	८०.९
यत्रासौ	८२.६२	यथा स	१३.४	यद्येवं सर्वदेवानाम्	९०.४
यत्रासौ दनुशार्दूल	११५.३	यथा सदा भवेत्	११८.२२	यद्येवं सा	३५.४
यत्रेयं क्रियते	५०.१३८	यथा सा	२५.१	यन्त्रकमासनम्	९१.८०
यथा आसीत्पुरा	८०.१२	यथा स्वच्छन्दरूपेण	८५.८०	यन्त्रपुस्तकमन्त्रेषु	७.८८
यथा उमेश्वरम्	७९.२	यथाहम्	११.४७	यन्नीलाम्बुजकोष	३३.१६
यथा कथञ्चित्	१२०.१२,७	यथा हि	९६.५	यन्नीलोत्पल	३३.१३
यथा कालम्	७२.११	यथेप्सितानि	६०.१७	यन्मातङ्गतुरङ्ग	३३.१४
यथा खट्वासुरम्	११६.७८	यथेष्टफलकामानाम्	८३.१५	यन्मे	३६.२५
यथा गङ्गा	९३.२६	यथैव	५६.२४	यमनियम	१०.५.१२
यथा चक्षु:	१०.१०.२	यथैव भवता	९२.७	यमानाम्	१०.६.१
यथा ज्ञानप्रकाशेन	१०.१०.४	यथोक्तश्चैव	९५.४६	यमान्तक:	४.२६
यथा तात	९.१९	यदयं वदते	४९.१	यमान्तकस्तथा	४.३२
यथा तु	३७.९२	यदा कृतम्	६९.११	यमान्तकस्तथा	१७.१०
यथा तु खल्वेतदुपदिष्टम्	१०८.५	यदा चास्तमिते	८४.५	यमान्तकस्तथा	१४.१४
यथा तै	९३.२९५	यदापि भवतो	९.३१	यमो दण्डम्	११४.४
यथा त्वं पृच्छसे	३५.२	यदा मायोदरम्	११९.२०	ययातिना च	६०.३१
यथा देवास्तथा	११.१६	यदा सद्भावता	२९.३	यवकुररकाण्ड	१३.४१
यथादेशं यथाकालम्	१०.१.१८	यदा सम्पत्ति	२६.१९	यवपुष्पैस्तथा	१०१.१७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
यवव्रीहि	५४.१९	यां साङ्ख्ययोगैः	१५.९	युगकेशव	१२६.१०
यवषष्टिक	५०.१४	याच वत्स वरम्	८३.२०	युगसूर्ये भवेत्	५०.२६०
यवसर्पिःप्रघासी	३३.५०	याच्यतां येन	३९.६०	युगसूर्यौ	५०.२४९
यवांश्च	७८.१३	यात्रायां शक्रकेतौ	२७.८	युगसूर्यौ तु	५०.२६२
यवाङ्गुलप्रदेशास्तु	७२.१६	या देवी सा	१११.६९	युगानुरूपधर्मेण	४२.६
यवान्नं हविषा	१०१.३	यानं शय्याकृतिः	६७.२६	युगोऽहं द्वापरः	१२७.२०८
यवेन कुञ्जरम्	९१.२८	या नन्दा	९५.३९	युग्मं फाल्गुनम्	१०१.६
यश्च कारण	४.७१	यानि चान्यानि	११९.६७	युद्धं देवासुरम्	१.४५
यष्टव्यस्त्वष्टा	५०.२६४	यान् यान्	९५.४९	यूपलक्षणे प्रतिष्ठा	१०७.२६
यष्टव्यो मणि	५०.२४४	यान् यान् कामान्	१२७.२२६	ये केचिद्	३३.२७
यस्तु आयव्ययौ	२.७३	यान्त्यभिषेकयागेषु	४५.११	ये घातयन्ति	२१.९
यस्तु कायकृतान्	१०.६.४	याम्यमायुःप्रदम्	७२.३४	ये च भक्त्या	१.३३
यस्तु देव्या	९१.९	याम्ययानाङ्ग	६५.५१	ये चान्ये	९३.६
यस्तु द्वादशसाहस्रीम्	९१.३९	याम्या गतास्तथा	४६.१८	ये त्वन्ये	३३.२६
यस्तु पूजयते	५०.१४१	याम्ये अन्त्यजना	७३.८	ये त्वां विभो	३३.३३
यस्तु सर्वप्रजापालः	८०.८	याम्ये ब्रह्मा	३२.१७	ये त्वां विभो	३३.३३
यस्मात्तामनु	४८.४	यावच्छरीरम्	१०.४.१	येन केनचित्	३२.१२
यस्माद्वारयते	३७.७३	यावच्छुक्लाष्टमी	८९.६	येन द्रक्ष्यसि	१२७.६५
यस्मिंस्तिष्ठति	४.६	यावज्जीवम्	४.१५	येन निष्पादयेत्	३९.६२
यस्मिन् ये	८२.१८	यावती तस्य	९६.१०	येन मे	९.५
यस्मिन् विश्वम्	७३.२	यावत्कृद्ध्वा	१३.७२	येन येन	१०.८.८
यस्मिन् सर्वम्	८३.५६	यावत्तत्पत्र	१२३.२८	येन योगेन सा	१०.१.८
यस्य दुर्गाष्टकारम्भे	१६.६	यावत्समाज	३९.७८	येन योगेनासौ	१०.१.७
यस्य भूताः	१६.९	यावद्भूश्चन्द्रमादित्यौ	५०.८२	येन विष्णुः	३९.७४
यस्य भूम्याम्	९१.८२	यावद्यद्रोमसङ्ख्यानम्	१७३.६	येन सम्प्रीयते	१०२.१२
यस्य मातृसमाः	१६.४	यावन्ति वेदगीतानि	१०७.९५	येन संसिध्यते	३९.५८
यस्य वाले	१६.११	यावन्न दीयते	३५.२५	येन संसिध्यते यज्ञो	३९.५९
यस्य शक्ति	१६.१०	याश्चान्याश्चापरास्तत्र	९४.४८	येनोपायेन	८९.१
यस्य शब्दादयो	१६.५	याश्चैतद्दक्षिणे	११९.६८	ये पठन्ति सदा	१७.४४
यस्य शासन	४.८५	यासां नेत्रा	८२.७५	ये पुनर्भक्तिमास्थाय	५०.८१
यस्य समुत्सवा	९.१७	यासां वाहनं	५०.२३२	ये पुनश्चर्च्चिकाम्	७६.२०
यस्य सम्भवनामस्य	८३.१८	या सा आद्या	७.२०	ये मानवा	३३.३९
यस्य हारकदण्डानि	१६.८	या सा आद्या	३९.१२१	ये मूढा	३३.२४
यस्यैव शङ्के	९१.६२	या सा घोरवधार्थाय	९२.८	ये मृतास्तु पथे	९३.३७
यां ध्यानयोगैरपि	१५.८	या सूते प्रथमम्	९०.१३	येयं देवी	५१.१
यां पूज्य	९१.६	याहनो ब्रह्मवलो	१०७.४४	ये लोकाधिपति	३३.२५
यां यां चकार	२०.१	युगं भाग्यप्रभावेण	५८.२१	ये लोकेषु	३३.१२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
ये वा वै मृत्तिकाम्	७४.२४	यो विभाज्य	५७.१९	रत्नानि बीज	६७.१
ये व्रजन्ति च	९३.३६	योषितानां यथा	९३.३२	रत्नैश्च खचिताः	८२.२३
येषां न	३३.३२	योऽसावनादि	९३.४३	रत्या देव्या	७९.२०
येषां विदितमाहारतत्त्वम्	१०९.४	योऽसावुत्पादितो	११६.३९	रथं तैः	३१.३
येषामेव हि	१०८.३४	यो ह्येतद्विजया	१५.१३	रथगमना	११६.१९
येषु न कालरुद्रस्य	८१.३	रक्तकाया	११६.१८	रथयात्रा	२२.२२
येषु येषु	३९.१	रक्तचन्दन	५०.११८	रथयात्रा	५९.२१
ये सर्वे	३३.२३	रक्तचन्दन	५४.९	रथयात्रा तदा	३१.३३
ये सुप्ता	३३.२१	रक्तनेत्रे सुदंष्ट्रे	८३.९२	रथयात्रादयः	१.११
ये सूर्ये	७४.१७	रक्तपीतारुणम्	५०.२५८	रथयात्राप्रभावेण	३१.३४
यैर्दत्तं न धनम्	३३.३१	रक्तपीतासित	४.६४	रथयात्राश्रितम्	३१.३७
यैर्नाद्यप्यन्य	३३.३८	रक्तपीतोपचारेण	५०.२४६	रथयात्रासु	३२.१
योगं ज्ञानं यशः	४५.१४	रक्तमौले गणै	१७.२९	रन्ध्रे सूत्रं निबद्धञ्च	२६.११
योग	१०.८.२	रक्तवस्त्र	५०.२७६	रमते कन्या	९९.१७
योगकर्मणि	१०.९.८	रक्तसिन्दूर	६.२०	रमन्ति सुरता	८२.७६
योगद्वारमतीतानाम्	१०.८.५	रक्तस्रगक्त	२०.१८३	रविचन्द्रोपरागे	७४.१९
योगद्वारेण	१०.८.४	रक्ताक्षो	२०.२२	रविमातर	५९.११
योगाग्निना	३७.७	रक्ता पीता सिता	७०.११	रविमार्गं	२.१५
योगाधिपो	८३.६३	रक्ताम्बरधरा	९४.४६	रवेरूर्ध्वस्थितः	४७.१५
योगाप्तिरर्थलाभश्च	६५.७४	रक्तेन अथ	९१.३८	रसातले जरासन्धो	८२;५५
योगिनाम	१२७.५५	रक्षणाय तव	६.१२	रसोनासवमत्स्यादौ	५०.२१७
योगी शुक्रादयो	३७.४८	रक्षणाय नृपाणाञ्च	४२.४	रां ह्रीं एं जगति	११६.३५
योजनाद्धि	७२.२५	रक्षन्तमेकमेकम्	८५.४१	रां ह्रीं दुं ओं	११६.२७
योजनार्द्धप्रमणानि	४७.२३	रक्षा पवित्रा	१२७.१२३	रां ह्रीं दुं ओं एकाक्षर	११६.३१
योजनीया	६६.३२	रजकी	९.३४	रां ह्रीं दुं ओं दंष्ट्रा	११६.३२
यो जानाति	५६.१६	रजस्तमोभ्यान्तु	१०८.१२	राका चानुमती	४८.१
यो ज्ञात्वा	१०.७.११	रजसानि तु भूतानि	१०८.१४	राका तामनुमन्येते	४८.६
यो देवम्	८८.११	रजोहीनं तु	५१.३०	राजतं ताम्र	१२८.७
योद्धुं सर्वं	११९.३	रणेन क्षयमायाति	३१.३८	राजते	११३.८
योऽधीत्य न	१००.१९	रतिकाले हि	१००.२०	राजते च	३२.३१
यो ध्यात्वा	१०.६.५	रतिप्रमत्ता	८२.७०	राजन्तीमुत्तमाङ्गेन	३२.२१
यो भवः	८३.९७	रतिप्रीति	६१.१८	राजयोगम्	७३.४६
योन्यस्त्वेता	८८.७	रतिप्रीति	१२७.११७	राजराज	८.१२
यो यस्य	३३.१६	रत्नसम्पूर्ण	६५.३१	राजसूयस्य	७८.१२
यो यस्य	५१.२२	रत्नहीने	५१.२७	राजहंस	१३.४२
यो वा आहृत्य	७४.२२	रत्नहेमकृता	५०.२०	राजातस्कर	९१.२१
यो विधिर्विहितस्तात	५०.१३४	रत्नहेमसमायुक्तम्	१२८.८	राजा प्रजाश्च	७२.३८

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
राज्ञा चानेन	३५.३१	रोचना सह	३५.७	लिङ्गे सृष्टि	११२.१७
राज्ञाञ्च	९.२२	रोचने लेपयेत्	३३.८७	लेखनी घटनम्	९३.७८
राज्ञी त्रिंशत्सहस्रा	७९.१३	रोदसीं चतुरोद्राघ्य	८७.२	लेख्यका वत्सतज्जाति	७२.३
रात्रीति तेन	३७.६३	रोमराजीनितम्बोद्ध्वं	३२.२८	लेख्येऽपि तिष्ठते	९५.४१
रात्रौ जप्ता	४२.१४	रोहितो	६६.८	लेपनं मधु	३३.९५
रात्रौ जागरणम्	९०.२०	रौद्राणि	३७.१०	लेपयेद्बालकम्	३३.७५
रात्रौ देयो	१२.१२	रौद्री तु कीलके	५०.१८९	लेपानि	७२.१५१
रात्रौ प्रविष्टवान्	८२.४६	रौहिण्यव्रत	४३.१	लेलिहानः	२७.७
रात्रौ शुभकृत्पातनम्	१२.५६	लकुचं फलानाम्	११०.२	लेलिहानोऽर्चि	११९.५९
रामवाक्यशरैः	४३.२१	लक्षकोटिविभागैश्च	८४.१८	लोकदृष्टेन	९४.२४
रामेण जामदग्न्येन	४४.६	लक्षहोमम्	५५.१६	लोकपालः	४.७९
राष्ट्रभङ्गे समुत्पन्ने	११६.७९	लक्षा द्वासप्तति	१७.८	लोकपाल	२६.४२
राहुणाच्छादितौ	४९.३०	लक्षैकं हवमानस्य	५०.१४५	लोकयात्रा	५७.१४
राहुरध्रकसंस्थाः	४९.२६	लक्ष्मीनिवास	२.४६	लोकानां तु	९३.४९
राहुश्च धूमकेतुश्च	४७.८	लक्ष्मीसहायेन	११६.४३	लोकानामुपकाराय	९०.३
राहोरप्यमृतं भागम्	४९.८	लक्ष्मी सा	२९.१८	लोकान्तरमथैकैकम्	४७.३५
रिपुहा राक्षसे	५०.२००	लग्नवृन्द	२.६२	लोकेषु तेषु	६०.२७
रिपुहा सिद्धिदा	५०.२९७	लग्नादि	२६.१४	लोचनेषु च तेजांसि	२९.६६
रुचकं स्वस्तिकं	६५.९५	लङ्घायाश्चोड्रदेशे च	४२.८	लोभाद्भयान्न	१२८.२८
रुद्रं नित्यम्	११६.२०	लड्डुकादि	७७.५	लोहितन्तु	८२.७
रुद्रं सम्पूजयित्वा	८७.१५	लब्धं शक्रस्य	१२८.३	वक्तुकामो	१०.६.१०
रुद्रकोट्याम्	९३.५	लब्धवरा मद	६.२	वक्रैः सौम्यशतैः	७३.४८
रुद्रभक्तास्तथा	८२.१६	लभते	६२.८	वज्रगोधा समुद्वालः	९३.२८
रुद्रस्तोत्रम्	२८/.३	लभते वासना	३३.९०	वज्रघोणा	३५.२१
रुद्रा एकादश	४६.६	लभते शुक्र	३३.१०२	वज्रदण्डसहायस्य	४.२१
रुद्राणी	१६.३०	लम्बन्तु कर्ण	११३.१०७	वज्रदर्पण	२०.१७६
रुद्राणी कृष्णपिङ्गा	१२७.९०	लयं सन्मार्ग	३७.३१	वज्रपट्टशिलासङ्घैः	८५.३२
रुद्राणी च	३८.७	ललाटम्	१३.२५	वज्रपाणि	८३.८४
रुद्रादित्या	२५.७	ललाटे भूषणे	३७.६५	वज्रभूता महातप्ता	८१.२३
रुद्राराधनयुक्तात्मा	४०.१०	लवाः काष्ठाः	६५.८५	वज्रमौक्तिक	६७.२
रुद्रेण त्रिपुरम्	५०.७८	लाङ्गूलशिरस	६०.८	वज्रशक्ति	७.७०
रुद्रो गोदानिको	१२२.१७	लाजाक्षत	६५.९९	वज्रस्फटिकसोपाने	१२७.३२
रूपातिशयसम्पन्ना	९३.१००	लावण्यरूपसम्पन्ना	७९.६६	वज्रा कपाल	५०.२९५
रेवती तिलकम्	१२७.९६	लिखित्वा धारयेद्भक्त्या	३९.१८२	वज्राङ्कुशकरा	८५.२३
रोचनाचन्दन	१००.८०	लिखेत्पूर्वेणैव	८५.५	वज्राङ्कुशकराम्	८५.१३
रोचनादिकम्	६७.७०	लिङ्गस्थाम्	९३.१०६	वज्राङ्कुशधरा देवी	५०.२०८
रोचना मङ्गला	७२.१४७	लिङ्गे मन्त्रविहीने	९३.१३४	वज्राहतं तदा कृत्वा	४१.४

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
वज्रेण निहता:	१०७.३८	वरुणस्त्वम्	३०.११	वसुनन्दसुमत्कायम्	८५.६७
वज्रेन्द्रनील	८१.१६	वरुणोऽहम्	१२७.१९२	वसेयुरूद्ध्वगा	७३.१४
वज्रे हते	३९.११५	वर्गा: कचटत	४७.१	वसोर्धारा	२५.३;१२
वटकाष्ठोत्थफलके	७१.६	वर्गे च परिसमाप्ते	४७.३	वसोर्धारासु	२४.२८
वणिग्वीथिनिवासिन्यो	७३.२५	वर्जनीयम्	९३.१३२	वस्तुमात्रा	७.४१
वत्सकं पूजयेद्वत्स	१०६.४	वर्णकैर्विविधै:	६५.९०	वस्त्ररक्त	११८.७
वदते अन्यथा	३९.१५४	वर्णगन्ध:	६५.३६	वस्त्ररत्न	५०.५८
वदते कारणम्	६.१५	वर्णोत्तमहिते	७२.६४	वस्त्रहेम	७०.८
वदरान् बीजपूरांश्च	१००.११	वर्त्तनाद्	३७.५९	वस्त्रहेमाम्बु	३२.४१
वद् धातु	२.६५	वर्त्तमान इमे देवा:	४६.१६	वस्त्राणां पुरुषाणाम्	५०.२८५
वनदुर्ग द्वितीयन्तु	७२.६३	वर्त्तमानमतीतञ्च	१२७.३९	वस्त्रान्न	६१.२१
वनमाला कृतापीडा	५०.२०६	वर्षं कोटिशतम्	७८.१७	वह्निकर्मफलम्	१२३.१
वनस्पति:	१३.७	वर्षमेकम्	७८.२२	वह्निना पूजयेद्देवम्	५०२४२
वनोपवन उद्यानै	८२.६९	वर्षान्ते	७८.२०	वह्नेर्विधानम्	१२१.१
वयं कालाग्निरुद्रस्य	८२.१४	वलं चन्द्रार्कलग्नानाम्	७३.४४	वां दुं स्वारम्	११६.१२
वयं च तत्र	२८.६१	वलं मलयवासी	४६.७५	वाक्पतिश्चाप्यहम्	१२७.२१०
वयं नष्टा भयात्	७९.१२	वलस्ते यज्ञ	३९.४८	वाचकं पूजयित्वा	२८.९
वयमस्य	३२.१५	वलिनं वल	३९.५४	वाचकाय	१२८.३३
वरं दत्त्वा	९३.२५६	वलिपुष्पो	६५.३८	वाचयन्नरकम्	१२८.२६
वरं नोपार्जितो	१०.१.२०	वलिर्भूत	५०.३१०	वाच्यन् पुराणमेतत्तु	१२८.५९
वरं ब्रूहि	३३.४६	वलिलड्डूकादानेन	५०.२०७	वाजपेय	६२.७
वरं ब्रूहि मया	११.१९	वलिहोमाज्य	५०.२११	वाजीकरणयोगांश्च	८.४४
वरं ब्रूहि शिवस्तुष्टो	११.२५	वलेन बलिना	३९.४१	वाणैरप्रतिवीर्यैश्च	८६.२३
वरं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ	११६.३८	ववर्ष पङ्क	४.४१	वात आवात	५६.९
वरं यथेष्टचित्तेन	८३.११४	ववर्ष प्लवते	१५.४९	वातायनोर्ध्वमार्गैश्च	६९.८८
वरं वरय	३९.१३१	वल्कलादानम्	२.७९	वादान् सम्प्रतिवादांश्च	१०८.२८
वरञ्च सर्वलोकानाम्	२१.४	वल्मीकतुष	६५.२०	वाद्यचिह्न	१३.६२
वरदं दण्ड	९०.२२७	वल्मीके अनपत्यार्थम्	६८.१३	वाधयन्ति	२१.१२
वरद: शूलधृक्	१२७.३५	वशिष्ठभृगु	३६.३२	वाधसे विघ्नकोपेन	४३.७
वरद: सर्वदेवानाम्	१२७.२२०	वशिष्ठेनापि	११.७	वापीकूपं तडागं वा	९०.२४
वरदा च प्रसन्नानाम्	१२७.८३	वशिष्ठो नाम	१२७.१९	वापीकूपतडागम्	६९.१४०
वरदान	२.३०	वसंस्तृणादिगेहेषु	७३.१५	वापीकूपौ	६६.३०
वरदोद्यतरूपाद्याम्	५०.१७०	वसते दिवि	६०.२८	वामं विरुद्धरूपन्तु	३७.३५
वराण्याशंसु	३७.७४	वसत्यदृष्टा	३७.८०	वामनाय	२.९७
वराहरूपधारी	३७.८५	वसन्ति स्वेन	७२.६५	वामनाय	६.४
वरे मन्त्रमूर्ति	१७.३२	वसन्ते भूष्यते	१२८.५१	वामनैर्दुष्ट	१४.१५
वरुणम्	६३.३	वसन् वदन्ति	४६.७	वामनैर्दुष्ट	१४.१५

श्लोकाः	अ०/श्लो०
वाममित्रः सुहृष्टात्मा	४३.१७
वाममित्रः सुहृष्टात्मा	४३.१७
वामाद्या सा त्रिधा	१०७.४
वामे सपद्ममत्स्ये	६७.११
वामैकहस्तसततम्	११३.३९
वायव्यं प्रक्षिपेद्देवी	४०.१९
वायव्याम्	९३.१४२
वायव्ये सैंहिकेयन्तु	५२.५
वायुत्वं तेन	३०.८
वायुबीज	७१.५
वायुरप्यहम्	१२७.२०२
वायुवर्ण	७६.३४
वायुश्चैव	१२७.२३८
वारणाख्यं महापुण्यम्	७६.३
वारणैर्विविधाकारैः	८५.५३
वाराणस्यां कुरुक्षेत्रम्	१०२.६
वाराणस्याम्	६३.२
वाराहे तु पुरा	७९.३
वारुणं नाशयामास	४३.४४
वारेण वा यदा	४५.५
वार्क्षं वा	३२.१९
वार्क्षपात्राणि	५१.१७
वासव ब्रह्म	८३.११२
वाससैः प्लाव्यमानम्	११९.५०
वासोभिः	३१.२६
वाहनास्त्राणि	४.३५
वाह्यतोयम्	७३.३३
विकसितकर्णिकार	८६.३२
विक्रमे तु श्रिया	५०.१११
विक्रयं सर्वपण्यानाम्	७२.९७
विक्षुब्धस्तु	११९.३७
विगतारि	६४.५
विगतारिर्निरातङ्क	६१.१५
विगतारिर्भवेत्	४५.१६
विगतासुस्तथा	११९.४
विघातः	११.३६
विघ्नते	२.३१
विघ्नरोग	११६.५९
विघ्नस्य चिच्छिदे	११५.१०
विघ्नेशमर्चयित्वा	१२६.१९
विघ्नेश्वरा	७७.१९
विचरन्ति	८२.७१
विचित्रं दनुराजस्य	३९.५०
विचित्रचित्र	२.६८
विचित्रचित्रपुष्पैश्च	१०३.९
विचित्रमणिनाकीर्ण	९५.२७
विचित्रवस्त्र	९१.५८
विचित्रा	८२.६३
विचित्राणि च	१०४.२
विचिन्त्यार्थम्	७२.१३७
विच्छेदो	२७.२८
विजयं नाम	६३.१०
विजयं भूमिलाभन्तु	२५.५
विजयाख्यं जयम्	५०.४१
विजया या समाख्याता	१००.३
विजया सुखदा	३८.८९
विजयेति	५०.५२
विजये मानसी	५०.१५४
विजित्य क्रीडते	४३.१५
विजित्य पद्म	३७.१२
विज्ञाय	९.९
विज्ञापयामि	२.७८
विज्ञापयेत्ततो	९४.५२
विज्ञापयेत्ततो	९५.१०
वितस्ताधिकमिच्छन्ति	६७.१८
वितानञ्च ध्वजम्	१२८.३५
वितानध्वजशोभाढ्यम्	१२.४६
वित्तं बन्धुर्वयश्चैव	९१.३३
विदितः सर्वदेवानाम्	१२७.२२७
विद्धं कुसुमरक्तम्	१२८.११
विद्यन्ते रजरेणूंषि	१०४.२१
विद्याग्निदेवता	१२५.२
विद्यादानम्	११.१२
विद्यादानम्	९१.२०
विद्यादानात्परम्	९१.२५
विद्यादानेन	९१.२२
विद्यादानोपहारेण	१२८.१४
विद्याधरपतिश्चित्रः	३४.१६
विद्याधर्यः सुरूपास्तु	९५.२३
विद्याभ्यो वर्तते	९१.१६
विद्यायाः परमो	१२७.१२
विद्यार्थिने सदा	९१.७७
विद्यावांस्तपवांश्चैव	२.३७
विद्याविचारतत्त्वज्ञो	९१.२६
विद्यावेदक	२.३
विद्याष्टकम्	३९.१४०
विद्यासिंहासने	१२८.५
विद्याहं श्रोतुमिच्छामि	७६.३०
विद्युज्जिह्वो	३.१७
विद्युतश्च न	८१.१०
विद्युदुल्कामुखि	१७.२४
विद्युन्माली	८२.३०
विद्रुतानि युतस्तानि	८७.१०
विद्रुमाढ्यैस्तथा	९३.२२७
विद्वेषोच्चाटन	७.७३
विधर्मपथगा	१३.८
विधिना धृतवत्सम्	१०५.८
विधिना पूजिता	११६.७१
विधूत	७६.५८
विधूतपाप	१२८.३८
विधूतपापकलिल	९९.२८
विनयेनोपसङ्गम्य	१२७.२६
विनयेनोपसङ्गम्य	१२७.६७
विना पात्राणि	५१.२५
विनायकः कर्मविघ्न	६९.२
विनायकानाम्	७६.१०
विनापि वर्धे	६७.७१
विनिकृत्य	११९.२५
विनीतः	८.२५
विन्दौ चन्द्रार्कसूर्यौ	१०७.८
विन्ध्ये	७.९३

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
विन्ध्ये च वससे	१२७.७९	विशेषबलि	३९.१७५	वीजपूरक	६७.३
विपद्गते	६५.१३	विशेषाच्छ्रवणारभ्य	९८.८	वीणावाद्यम्	८६.३०
विपरीते महान्	७३.१०	विशेषात्प्रावृषि	१०२.५	वीणावेणु	३३.१८
विपर्ययौ	१०.२.६	विशेषाद्विहिता	६५.९२	वीणाहस्ता	९३.१५१
विप्राणाम्	२५.९	विशेषेण कलौ	७७.३	वीथीपूरक	७३.३४
विभवे विजयाम्	५०.८५	विशेषेण तु	६०.२९	वृक्षान्नप्रान्	१२.१५
विभाति करमध्य	११९.३१	विश्वं बहुविधम्	३७.४६	वृत्तं करद्वयोपेतम्	५०.३२४
विभिन्नाः	५.५	विश्वरूप	२.४९	वृत्ता वा	१२.२४
विमलं विजयम्	६५.५८	विश्वरूपाण्यहम्	११९.३४	वृत्ताकारानि	८२.५८
विमाने कोटिसञ्छन्ने	९३.३	विश्वावती	१६.३२	वृद्धं च	९३.१५३
विमाने चामरोच्छिप्ते	९९.१६	विश्वेऽथ वसवः	४७.२०	वृद्धिं मघाह्वये	५०.१०२
विमुक्तश्च	४९.४	विश्वे सूर्याश्च	४६.९२	वृश्चिके सविता	५०.२५७
विमुक्तोऽयममोघात्मा	४३.४८	विषधरहल	१७.२२	वृषं गावौ	४६.१
विमृश्य	१७.३	विषवातहता	९३.५२	वृषणे	७.५२
विमोक्षे	१५.१८	विषाग्निभय	३७.५	वृषशृङ्गैः क्वचित्	८५.४७
विमोच शर	१९.७	विषादभयशङ्कार्ता	८५.१७	वृषाकपिश्च शम्भुश्च	४६.१०
विमोहिनी	५०.१६३	विषुवेषु च	२४.११	वृषाङ्कगरुडावस्थम्	११.२७
विवदतामुवाचेदम्	१०८.२७	विष्णुं समस्तेश	१७.१३	वृषारूढाम्	९१.५
विवर्धि शोभया	२.५६	विष्णुः प्रजापतिः	१२७.४६	वृषासना प्रकर्त्तव्या	५०.२३२
विवस्वान् सविता	४६.१२	विष्णुः सत्त्वम्	५८.२५	वृषे उमा	५०.११३
विवाहं मङ्गलादीनाम्	४६.९३	विष्णुः सुरेज्यः	४६.३८	वृषेण अश्वमेधस्य	६६.६
विवाहयज्ञ	५१.१९	विष्णुः सूर्योऽभवन्मेषे	५०.२४१	वेणीवन्ध	७.२६
विविधगुणमहान्तम्	१०.८.१०	विष्णुत्वम्	३०.५	वेण्या तटम्	४६.७८
विविध्य निशितैर्वाणैः	३९.१०१	विष्णुना	११.४२	वेत्रवत्यास्तटे	७६.५३
विवृतास्या	३९.१३८	विष्णुभावः	४.७६	वेत्रवत्यास्तटे	९३.१७९
विवृद्धमन्युः	११५.९	विष्णुमाता	१२७.७७	वेद एव	९६.३
विरूपेण च हन्तव्यो	३९.१३५	विष्णुलोकमवाप्नोति	५९.१५	वेद एव हि	९३.४८
विरोधकृन्मयूराख्या	५०.१९२	विष्णुस्तत्रास्ति	११९.३६	वेदध्वनि	९०.१९
विरोधानीह दुःखानि	९७.२०	विष्णोः कामस्य	९८.१०	वेदध्वनिमहामन्त्र	३५.२२
विलम्बे कारयेद्देवीम्	५०.१६५	विष्णोः कृष्णत्वमापन्ने	९२.५	वेदपर्वत	९०.९
विलुप्यमानम्	११९.४९	विष्णो	५६.४२	वेदब्राह्मण	८.६
विल्वागुरुघृत	५०.२१५	विष्णोस्तपस्य	१११.७	वेदमङ्गलशब्देन	३१.२१
विशिष्टवरदा	१२७.८५	विस्तारमण्डलाभ्यान्तु	४७.२२	वेदमन्त्रान् यदा	९६.९
विशीर्यन्तोऽपि	४८.१९	विस्तारो त्रिगुणश्चास्य	४७.१९	वेदमाते वरे	१०६.६
विशुद्धकनकप्रभाम्	८७.३१	विहस्य	७.५८	वेदवेदाङ्ग	१३.५०
विशुद्धमनसा	१०.७.९	विहस्य ब्रह्मा	८३.६	वेदवेदान्तगर्भाय	८३.१५
विशुद्धश्च भवेद्	१२८.५५	वीक्ष्य शुक्रस्य	१.१३	वेदाङ्गानाम्	११०.५

श्लोकाः	अ०/श्लो०
वेदाढ्यो	७६.३५
वेदानां चैव	१०७.५७
वेदाश्च मनवः	११२.१९
वेदीमध्ये तु	१२१.१७
वेदीहीने तु	५१.२८
वेदेषु चरते	३९.२६
वेदैर्मन्त्रैश्च	८६.३५
वेलाहीनेषु	१२१.२९
वे वो क कि मृग	४६.८३
वेश्यासु गोपवालासु	३९.१४४
वेष्टितं हेमप्रकारै	८१.१९
वैखानसा	६७.४६
वैजयन्तीधराः	८४.१४
वैडूर्य	१२.३५
वैडूर्यस्य तु वर्णेन	१२७.११०
वैताली ब्रह्मवैताली	१२७.१२८
वैदिशे	७६.५४
वैदिशे मध्यगा	४२.११
वैमानिकाः	६७.४५
वैरनिर्य्यातना	३९.११०
वैरोचनी तथा	१२७.१७६
वैरोचनेन दनुना	४४.९
वैशाखः प्रवरस्तेषाम्	४६.४९
वैशाखशुक्लस्य	६०.२०
वैशाखे च	७४.१३
वैशाखे तु	६२.१
वैशाख्यान्तु	२७.३२
वैश्यः शूद्रोऽबला	६.४०
वैष्णवा	४.४६
वैष्णवीम्	५७.२३
व्यक्तिं पचसि	३६.११
व्यक्ताव्यक्ताकृतिम्	७७.११
व्यतीपाते	२५.१०
व्यतीपाते	७६.४१
व्यतीपादस्त्वर्द्धपादम्	७२.४२
व्यपगत	१०.९.११
व्ययं विवाह	७२.९०
व्यवहारो	२४.८
व्याघ्रसिंह	८३.११७
व्याधयो विदस्तु	१०८.१३
व्याप्तं येन	३३.११
व्यामिश्रसित	३२.२२
व्यालेभ्यो दुष्ट	१२७.१३१
व्योमे वा	५४.१०
व्रजमानं तथात्मानम्	७९.५
व्रतं व्रजोच्छ्रयम्	२८.४
व्रतञ्च पशव	१०७.२८
व्रतानि	१.२३
व्रतोत्तमं महापुण्यम्	११९.१३
शकटैर्बलिवर्दैश्च	१०८.३२
शकृन्मूत्राश्रुपातानि	१३.३
शक्ता या	३७.७९
शक्तिं दीप्ताम्	३९.९७
शक्तिं हताम्	१४.२१
शक्तिकुण्डधृतौ	३२.३४
शक्तिघण्टाधरा	८५.६
शक्तित्रयसमोपेतः	२०.२
शक्तिबर्हिण	५०.२९४
शक्तिभिस्तु ततः	८८.९
शक्त्या	७८.२१
शक्रं वेद	३३.६
शक्रचापेन	८५.५८
शक्ररूपा	५९.१२
शक्रस्य तु	११.३९
शक्रस्य भावयुक्तस्य	३५.३
शक्राख्यानम्	१.३७
शक्रादिमयवज्रादि	५०.२८९
शक्रेण च	२.२३
शक्रोप्येवम्	८५.१२
शङ्करं तोषयित्वा	३९.१२३
शङ्करार्धहरि	५८.१४
शङ्करेण	७.९०
शङ्करेणापि	८३.९
शङ्कुकर्णस्तृतीयश्च	८२.३७
शङ्खं च	३७.७५
शङ्खचक्रगदाधारी	३७.८४
शङ्खचक्रगदाहस्तम्	४३.४७
शङ्खदुन्दुभि	१०.९.७
शङ्खदुन्दुभिमेघानाम्	१२.४३
शङ्खभेरीनिनादेन	७२.१३१
शङ्खस्फटिकजौ	५०.२५५
शतकोटि	२९.७
शतकोटिप्रविस्तारै	८२.२७
शतघ्नो शतचक्रो	३९.८०
शत्रवो	८.३१
शनिसूर्यकृताम्	७५.८
शब्दब्रह्म	१०.६.९
शब्दस्पर्श	८.३२
शमं यास्यन्ति	६.४२
शमयेद्यजमानस्य	५०.७
शमी गभीरिणी	५.३२३
शमितुं शरवर्षेण	१९.८
शम्भुगीता	५.२
शरक्षेपत्रयं गत्वा	९५.१२
शरचापपरेताभ्याम्	३२.३३
शरच्छशिशतोज्ज्वला	८७.२७
शरण्ये सर्वदेवानाम्	१२७.७४
शरत्सर्वानाप्नोति	१२८.५३
शरलोमा तु	१०८.११
शरवर्षवरैश्चापि	१२७.११५
शरशक्ति	१११.९
शरशार्ङ्गवरा देवी	५०.१४०
शरा खड्गे	२९.१९
शरा धनूंषि	७२.८३
शरावे मृण्मये	५०.३२७
शराशरविनिर्मुक्तम्	८३.९१
शरीरो ह्यहम्	१२७.२०६
शरैरुल्कसमाकारै	४३.३७
शर्करे ते	८१.३८
शलाकैः शिलीमुखैः	८५.५२
शशाप कालिका	४३.७

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
शशिरिक्तान्यसंयोगे	४५.६	शिवायाः सम्भवेद्	७६.२७	शूकरास्यकपालेन	५०.२१०
शश्वत्क्रियम्	१०७.३४	शिवा वृषासना	५०.९१	शूद्रस्य अन्नमशित्वा	९६.७
शस्यते च	२७.१३	शिवा शान्तिर्दया	१२७.१६३	शून्यं देवालयम्	११८.१७
शस्यसंहातसञ्जातम्	८५.५५	शिवेन ब्रह्मणे	१२७.२३७	शून्यं ध्वजम्	३५.२६
शाकम्भरी सुरा	१२७.२४	शिवेन या	२.२०	शून्यागारे	१०.५.१
शाकयावक	२.१२	शिवेन शक्र	८५.८२	शूलं हुताशने	३९.९९
शाकयावकक्षीराशी	१२०.३	शिवे विवर्ज्जयेत्	५१.१४	शूलमेखल	५०.९९
शाखापत्रविशेषेण	८३.७३	शिवोपलसमम्	६७.२१	शूलव्योमासि	५०.२९६
शाखाविशामहीनान्तु	७२.१३५	शीत उष्ण	१३.२७	शूलाक्षसूत्रधारा च	५०.२८
शाखाशैलवनोपेता	८.५६	शीर्णदेव्याया	११८.१५	शूलिनो ब्रह्मणा	२८.१
शान्तिः प्रजापतौ	५०.९४	शील:	२.५९	शूलेन मूर्ध्नि	२०.३५
शान्तिवृद्धिर्भवा	७२.१४६	शुकी गर्भे	७६.५९	शृणु तस्या	३०.१
शालिषष्टिक	६५.६०	शुक्रस्कन्द	१२.४१	शृणु ते कथयिष्यामि	८४.३
शिखिझङ्कारशब्देन	८२.३२	शुक्रेण च	९.५५	शृणुयाद्यः	८८.१२
शिरसाभ्यर्चयित्वा	१२६.१६	शुक्रेण च	३३.३	शृणुयान्न	१.६१
शिरां ओं	११६.२३	शुक्रौ दक्षिणहस्ते	१२७.९७	शृणु वत्स	३३.४८
शिराजालेन	३९.३६	शुक्लतन्तुमय	९८.१३	शृणु वत्स	४५.२
शिरोमध्ये	७.४७	शुक्लपक्षे तु	९३.१८३	शृणु वत्स	७६.१२
शिलां मुद्गरघातेन	३९.०३	शुक्लमाल्यधरो	९७.१५	शृणु वासव	१४.३
शिलान्यासे	७२.१२७	शुक्लाम्बरधरा	९३.२७९	शृणु शक्र	२२.४
शिलालोष्टैः	८५.५४	शुक्ला रक्ता	५०.१९५	शृणु शुक्र	३६.२
शिला वा प्लवते	५५.१३	शुक्ले च	४९.१०	शृणु शौनक	५२.१
शिवः सहोमया	१२८.९७	शुचिः सन्नद्धो	५०.३०४	शृणुष्वावहितो	१२७.२९
शिवतेजोद्भवो	१२२.२८	शुचिना भावपूतेन	१०२.९	शृणोति यश्च	१२८.४५
शिवतीर्थानि	९३.२५	शुद्धसद्भाव	६.५	शृण्वन्तु देवताः	९३.१४
शिवब्रह्महरेः	१.५६	शुभं गोधन	३३.८२	शृण्वन्नुत्पद्यते	९१.२३
शिवव्रतधरा	९१.६३	शुभं द्रव्यभवा	५७.७	शेषमूर्त्तिरहम्	१२७.१९५
शिवसिद्धान्तमार्गेण	१०.१.४	शुभदोऽयम्	५३.३	शेषाणां च	१२८.३४
शिवस्य च	१.१०	शुभभूमिभवम्	१२.१०	शेषास्तु	६५.९६
शिवां मणिमयीम्	३०.१८	शुभां हेममयीम्	१०३.८	शेषास्तु देवता	६६.६
शिवादित्यफलम्	७४.२०	शुभानां लोक	१२३.१४	शेषो गुरुर्भाराक्रान्तो	८७.११
शिवाद्	१.३२	शुभाभिधानकैः	९३.१८२	शैलं महाम्भसि	११८.१३
शिवाद्यां तर्पयेद्	३९.१६३	शुभे	१२.३	शैलराजः	१३.३७
शिवाद्यान्	२६.२७	शुभे भीमनादे	१७.३३	शैलराजसुता	१६.२७
शिवा मुक्तिः	३७.३	शुभो ग्रहविधौ	१२२.२६	शोभकृच्छुभकृत्	४६.४३
शिवाय ओं नमो नमः।	७७.१८	शुम्भनिशुम्भनी	१७.३१	शोभनानि च	३७.२
शिवाय सम्भवेद्	६२.१०	शुष्मादनात्	११.१२	शोभनानि च श्रेष्ठानि	३७.२

श्लोकाः	अ०/श्लो०
शोभने उच्छ्रये	२३.१९
शौर्यधैर्य	२.९
श्मशामनभस्मभूयिष्ठ	११.३३
श्मशाने वससे	१२७.१२५
श्यामचन्दनकोशीर	५०.१६६
श्यामवर्णसुरूपाद्या	५०.१५७
श्रद्धा निष्ठा	१२७.१३
श्रद्धामात्रेण	१२७.१४
श्रद्धा स्वर्गश्च	१२७.१६
श्रद्धा स्वाहा	१६.२४
श्रवणात्सर्वकामानि	८९.२५
श्रवणादपि	३३.११०
श्रवणे स्यन्दनार्थे	३७.७०
श्राद्धं कृतम्	६०.२२
श्राद्धं भुञ्जेन च	९६.२४
श्रावणी नवमी	१००.२५
श्रावणे पूजयेद्	५९.९
श्रावणो	७४.१४
श्रिया कान्ति	७२.१४५
श्रिया चैव	६६.२८
श्रीकण्ठं श्रीधरम्	८३.६१
श्रीखण्डेन	३३.५४
श्रीताडपत्रजे	९१.३७
श्रीपर्णे श्रीद्रुमे	९३.१४८
श्रीफला	५४.११
श्रीमंती मृगेक्षणा	६५.३४
श्रीमद्दण्डासनम्	१२८.६
श्रीवत्साङ्क	४.५१
श्रीवत्साङ्क	११.५०
श्रीवेष्टकम्	५४.१२
श्रुतिः स्मृतिः	१६.२८
श्रुत्वा क्रोधसमाविष्टः	९.४७
श्रुत्वा देवेन्द्र	४.४७
श्रुत्वा हतम्	१५.१४
श्रुत्वैवं देवराजेन	३३.१
श्रूयसे स्तवसे	८०.१९
श्रेष्ठं मध्यम्	७२.४८

श्लोकाः	अ०/श्लो०
श्रोतारं च गुरु	१२८.१७
श्वः पूजां प्राप्य	६५.४०
श्वेतमङ्ग	६.२१
श्वेता दुर्मुख	५.१६१
षट्त्रिंशदङ्गुलम्	५७.२३
षट्त्रिंशे च तथा	४३.३५
षट्पदोदरनिभैः	१०१.२३
षडङ्गानि	१०७.२४
षडङ्गानि यदाधीत्य	१०७.२३
षडङ्गानीह	१०८.१
षडङ्गुलपरीणाहम्	५०.३१९
षड्धातुजस्तु	१०८.१६
षडास्वादो रसभेदतः	१०९.८
षण्मासात्	१२७.२३६
षण्मुखेनापि	८५.५
षण्मुखो	७.४८
षष्टिवर्षकृता	५७.५
षष्टयब्दकाल	५०.२
षष्ट्या	५.१६
षष्ठं दशकरम्	७२.११६
षष्ठे तु संस्थिता	४७.३१
षष्ठ्यां चैव	९९.११
षष्ठ्यां स्कन्दस्य	६१.१०
षोडशांश	१२.३१
संक्षेपादेक	५७.४
संयतास्ते	८.२४
संवत्सरप्रमाणेन	५०.३
संवत्सरमहादोष	५०.६
संवर्त्ताम्बुजपत्राढ्याम्	८५.५०
संविभक्तो मया	१०७.१३
संशोध्य परितो	७२.१०५
संसर्गात्	३३.३६
संस्कृतेऽहवमानस्य	१२१:९
स ईशः	५७.२६
स एव निर्जितः	४.७०
स एव शक्तिरूपत्वात्	८३.४४
सकामानामियम्	१०५.१५

श्लोकाः	अ०/श्लो०
सकृच्छुत्वा	१२८.४८
स कृत्वा दश	७६.५०
सकृत्सम्पूजिताय	११७.६
सकृदुच्चरणाद्	७.८९
सकृन्नैक्ष्यम्	१०.४.८
स गुरुर्मन्त्र	३९.१७४
सग्रहं भास्करम्	६५.८६
सग्रहान्	२६.१७
सङ्कर	२९.१५
सङ्क्रान्त्याख्या	७४.२
सङ्क्रुद्धो	३९.७०
स च करण	६.११
स चक्राङ्गमादाय	४०.९
स च क्रोधसमाविष्टः	८४.६
स च जानाति	१.६६
स च तत्र	११.२१
स च दानव	२०.१५
स च देव्या	८३.२२
स च देव्या	८३.४३
स च प्राणभयात्रष्टः	८२.४८
स च योगम्	१०.१.५
स च विन्ध्याटवी	३४.१३
स चाप्यसुर	२.५१
स चिनोत्युपभुङ्क्ते	१०८.१०
स चेदन्यायतः	१२७.१०
स जित्वा सर्व	१२७.२१९
स ज्वर	५०.४९
सञ्जीवनी औषधी	१२७.१४३
स तु पञ्चमुखः	६६.१७
सतस्थस्तिष्ठतम्	११९.३५
सत्यमेतत्	२.३६
सत्यमेव	५.१
सत्या अद्भुतरजसः	४६.१७
सत्येदम्	३.४
सत्रपाल महाभाग	८३.२१४
सत्वोद्रिक्तम्	११२.११
स दक्षिणाम्	५५.५

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
सदाकाममुदासक्ताः	९.८	स प्राचीन्दिशाम्	५५.४	स व्रजेद्	९९.१३
सदाध्ययनयुक्ताय	९१.६६	समं धरित्रीम्	११९.४२	सव्रणेऽपि	९३.१५७
सदा पुष्पफलोपेतम्	९५.१९	समं सूक्ष्ममृजम्	३५.६	सरयुः कौशिकी	७४.४
सदा विभव	७७.६	समतटं वर्द्धमानश्च	४६.७०	सरस्वतीतटे	९३.१७८
सदा सुभाव	२३.६	समपादम्	६७.१५	स राजते	१०७.५१
स दिवमन्वावर्त्तते	५५.१०	सममित्रायु	४.५३	सरोजाद्यैं	८७.३
स देविघाताहत	१४.२२	समयाश्च कति	९३.६१	सर्वं देवमयम्	११६.४८
सदेवगणगान्धर्वे	११९.५१	समयां सम्प्रवक्ष्यामि	९३.१६७	सर्वं पाप	५०.१३०
सदैव सग्रहम्	२६.१	समयेन ऋतुमास	२४.१	सर्वं भय	५४.७
सद्योजातम्	६६.२०	समसूत्रम्	५०.२८३	सर्वं यज्ञफलम्	५९.२७
सद्यो वा अघोरश्च	८३.८५	समस्तं यदि	१३.४	सर्वकाम	३९.५
सनकः	२.७	समस्तकार्यकरणी	१६.३३	सर्वकाम	५०.४६
सनत्कुमारं	१०.१.२	समस्तधर्मकथनम्	१२४.१	सर्वकाम	५९.१
सनत्कुमारं वरदम्	१०.१.१०	समस्तफलसम्पूर्णैः	३१.२०	सर्वकामप्रदम्	६९.१
सनातनश्च	६७.४८	समस्तबीजसंयुक्तम्	१०६.२	सर्वकामप्रदा	१.६२
सन्दिग्धः	१०.४.७	समस्तभोगसम्पन्ने	९१.७४	सर्वकामप्रदा	५०.१२८
सन्ध्यां प्राप्य	२.७४	समस्तव्यस्त	१.२५	सर्वकामप्रदा	९२.१०
सन्ध्याकाले तु	११७.८	समादिशति धर्माख्यम्	४०.८	सर्वकामप्रदे	८९.१८
सन्ध्यागर्जितः	९६.२३	समानं भोगभावञ्च	८७.९	सर्वकामानवाप्नोति	४४.१३
सन्ध्याद्वयम्	७.५०	समिधाग्निम्	५६.३४	सर्वकामानवाप्नोति	५०.९०
सन्ध्यायाम्	१३.७१	समुत्कीर्णम्	१२८.९	सर्वकामानवाप्नोति	३.३३
सन्नद्धानां तदा	४०.११	समृद्धः सर्वभूतानाम्	७९.१९	सर्वकामानवाप्नोति	७३.५७
सन्नह्य	३.१२	स मे ददाति	२.८३	सर्वकामानवाप्नोति	१०४.५
सन्निधानम्	१०.४.९	समोत्थानं शुभम्	६५.६२	सर्वकामार्थ	६५.७५
सन्मार्गम्	१३.९	सम्प्राप्ते चैत्रमासे	९९.३२	सर्वकारणिभिः	१०.२.३
स पप्रच्छ	७९.७	सम्पूर्णं	२४.१५	सर्वकार्यादिना दत्ता	९८.११
स पातीह	७२.१५२	सम्पूर्णं मण्डलम्	११६.८७	सर्वकालं वृत्तम्	२७.१७
सपादहस्तमानन्तु	६७.३१	सम्पूर्णचन्द्रवदना	१०१.२२	सर्वकालप्रदायी	२७.२०
सपायिनाम्	१०७.३१	सम्पूर्णे चार्द्धरात्रे	२४.१४	सर्वगः सर्वरूपेषु	३९.२८
स पृथिवीमन्त्रा	५५.८	सम्मार्जनफलम्	७९.२	सर्वगन्धोपहारेण	५०.२१३
सप्तद्वीपाः	४.७७	स याति नरके	५१.७	सर्वगा सर्वकार्येषु	६.३२
सप्तपूर्वान्परान्	१०३.१२	सयुगां सस्रजाम्	१०४.८	सर्वगा सर्वदा	८९.२०
सप्तम्यां वा	९८.१२	स लभेत हितान्	७६.२६	सर्वगुण	५.४
सप्ताहाद्वरदा	११६.९६	स लभेदिष्टकामानि	९९.१२	सर्वगे ग्रहरूपाय	२६.३७
सप्तोदक	५३.८	स लभेदीप्सितान्	३४.११	सर्वजन्तुहितार्थाय	११.३४
स प्रतीचीम्	५५.६	सवले ऋक्षराजे	३९.१३१	सर्वज्ञा	१६.२५
स प्रत्युदीचीम्	५५.७	सवितुर्वः	५६.२५	सर्वज्ञो पि	३९.४९

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
सर्वत: शिवनामा	७.८३	सर्वशास्त्रार्थ	५४.२०	सर्वेषामेव	१०७.४६
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु	९:७२	सर्वशेषे	५९.२४	सर्वेषामेव	११६.७०
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु	३३.९८	सर्वशैलेष्टकाष्ठोत्थम्	९०.१७	सर्वेषामेव मन्त्राणाम्	१०.६.३
सर्वतीर्थेषु	९३.३८	सर्वशोभा	५०.२९२	सर्वेषु सर्ववर्षेषु	२२.२४
सर्वतोभद्रविन्यस्ते	२५.२०	सर्वसम्पत्तिसम्पन्न:	९.४०	सर्वे सुरगणा	१२७.५९
सर्वत्र च श्रुता	८३.१	सर्वसाधुजना	१२८.२१	सर्वैश्वर्यमयीम्	१२७.५६
सर्वत्र शङ्करी	३७.१००	सर्वसूक्ष्माद्यनुत्पन्ना	१०.३.२	सर्वोपसर्गशमनी	९.७३
सर्वदा सर्वभूतानाम्	५०.३३७	सर्वहेममयै:	१०४.७	सर्वोपहारसम्पन्नो	२२.११
सर्वदु:खप्रतीकारम्	१०.४.१०	सर्वाङ्गलक्षणोपतम्	२२.१४	सर्वौषधै:	६९.९
सर्वदेवनुता	९०.१२	सर्वा च	५८.२१	सशल्यामुषराम्	६८.१२
सर्वदेवा:	७.४५	सर्वाणि हृदयस्थानि	३७.१	सशिष्यास्ते	६७.५१
सर्वदेवेश्वरं	५८.२	सर्वाणि हृदयस्थाने	३७.१	स सिसृक्षु	२९.९
सर्वदेवेश्वरो	११९.१२	सर्वान्	३२.४६	स सुखम्	३१.३९
सर्वदोषानवाप्नोति	६५.७१	सर्वान् समस्तान्	१७.१५	ससुरं गणमादित्यम्	३९.१२९
सर्वद्वन्द्व	५७.३२	सर्वाभरणभूषाङ्गी	५०.११९	सहकारफलम्	३९.९४
सर्वधर्मान्	१०.१.२२	सर्वाभरणभूषाङ्गी	५५.१५५	सहजं गिरिदुर्गञ्च	७२.७६
सर्वनीतिगत:	९.२६	सर्वाभरणशोभादि	५०.२२८	सह माया	१११.११०
सर्वपापविनिर्मुक्त:	७८.२३	सर्वायुधकरौ	११९.३९	सहसा	२.२९
सर्वपापविनिर्मुक्त:	९३.१९५	सर्वायुधधराम्	१२७.५२	सहस्र	५४.१
सर्वपापहरम्	७९.२	सर्वा यौवनसम्पन्ना:	९४.४७	सहस्रकिरणोपेते	९३.२
सर्वपीठोपहारेण	५०.८९	सर्वार्थसाधकम्	१२८.१	सहस्रकोटिकन्यानाम्	९४.६०
सर्वभद्रम्	९७.१४	सर्वा सर्वगता	९८.३	सहस्राक्ष	६५.२८
सर्वमङ्गल	६७.५५	सर्वास्त्र	४.८८	सहस्राक्षम्	६९.१२
सर्वमर्द्धं त्रिभागम्	४९.२१	सर्वे एवामितज्ञाना	१०८.८	सहस्रार्च्चि	२६.३१
सर्वयज्ञ	६१.२४	सर्वे कार्त्तस्वरा:	८२.६८	सहस्रेण	८.४५
सर्ववादित्रनिर्घोषै:	१२७.१२	सर्वेऽपि भीता	१५.४	सहेमं रत्न	६५.४
सर्ववेलामतिक्रम्य	७८.५	सर्वे वसन्ति	९३.७	सहोमं पूजयेद्देवम्	६१.२
सर्वव्यापि	८०.१६	सर्वे शिवाश्रमा:	७७.१	सांवत्सरी यथा	३३.४९
सर्वरक्तोपचारन्तु	५२.८	सर्वेश्वरम्	८३.५४	सांवत्सरोऽथ	५८.६
सर्वरत्नमलङ्कारम्	६७.१२	सर्वेषां प्रेतयोनीनाम्	८९.२१	सा एव कालरुद्रस्य	१.४८
सर्वरत्नौषधौ	६६.३४	सर्वेषां शिवपट्टस्थम्	५०.५१	सा कन्या	९.४५
सर्वरोग	५३.५	सर्वेषां साधने	११०.४	सागरा जठरं तस्य	१२२.१४
सर्वर्तुकशुभै:	९१.४२	सर्वेषाम्	६५.९७	साग्निदेवगणास्तत्र	१३.३८
सर्वलक्षणसम्पन्नम्	८३.२४	सर्वेषाम्	७२.४	सा च शक्ति:	१०८.३३
सर्वलक्षणसम्पूर्ण	३१.१३	सर्वेषाञ्चैव	१००.१	सा च संस्मरणात्	९२.११
सर्वलोकोपकाराय	३५.१	सर्वेषामेव	२५.४	सा च सर्वगता	९२.२
सर्वलोकोपकारार्थम्	२२.५	सर्वेषामेव	९१.३२	साचारो भक्तिमास्थाय	३५.३२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
सा ते हृदये	३९.१०७	सितभावोपचारेण	७०.१०	सुतेजाः	१२.४२
साधकश्चागतम्	९४.३९	सितमालाभिर्देव्याया:	१०१.१४	सुतोऽयं तव	९.६०
साधकत्वम्	९३.२५२	सितवस्त्रधरो	२६.४४	सुदुर्ग नायकम्	७३.३६
साधकस्येदम्	९४.४३	सितरक्तपीत	७.२४	सुधौतं वक्षयेत्	९८.१४
साधकी	२४.२९	सितरक्तोपहारेण	५०.२४८	सुनन्दाया: पुरम्	९५.१
साधारणे सघण्टा	५०.१५१	सितश्च सम्मितश्चैव	६९.१६	सुनन्दाया: पुरी	९४.४
साधिकारं तु	९३.१११	सितश्लक्ष्णो तथा	७९.६	सुनन्दाया: शिला	९४.२९
साधिकारं तु	९३.११२	सितसर्षप	६५.६१	सुपर्ण: कूलिको	८२.३९
साधु देवी	९.६८	सिद्धान्तमोक्षशास्त्राणि	९१.१३	सुपुत्रा जीववत्सा	७९.१७
साधु राजन्	९६.२	सिद्धिं दत्त्वा	६७.६४	सुप्तभूनारिवध्यानाम्	७२.७५
साधु साधु महादेवी	९३.११४	सिद्धिदं सर्वलोकानाम्	१००.३०	सुबलस्य वधार्थाय	३९.१४९
साधु साधु महाबाहो	९२.६	सिद्धियोगाश्च	४६.९१	सुबलेन	३१.४०
साध्यन्ते सर्वमन्त्राणि	८८.२	सिनीवाली	४८.७	सुबलेन जिता	११.४५
साध्विदम्	८०.२	सिन्दूरबद्ध	३३.१७	सुबलो नाम	११.४४
साध्वी पतिव्रतत्वाच्च	३७.३४	सिन्दूरारुण	३९.८३	सुभक्तजनसङ्कीर्णे	१२४.३
सानुदिनं सदा	७९.५	सिंहकोल	६५.३२	सुभिक्षं क्षेम	५०.३४०
सापि चान्यम्	२७.१०	सिंहचर्मधरा	५०.२१२	सुवर्णा	२७.११
सा प्रसूताष्टवर्गाणि	१०७.५	सिंहबर्हिणश्येनानाम्	२७.५	सुवाङ्गानाम्	१०८.२
सामन्तप्रवरै	१३.१९	सिंहमारुह्य	३७.१३	सुरक्तराग	८४.११
सा मया	११.५	सिंहम्	७.९१	सुरक्ताम्	१२.३२
सामवेदस्तु	१०७.३७	सिंहरूपा महाघोरा	८१.७	सुरपादपसङ्कीर्णम्	९३.८३
सामवेदस्य	१०७.४७	सिंहाकारा	११९.४७	सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु	६७.४०
सामवेदो नित्यम्	१०७.५३	सिंहारूढा	२३.१२	सुरूप: सुभग:	९३.२५१
सामान्यं सर्व	५०.३०७	सिंहासनम्	६७.९९	सुरूपाङ्कुशहस्ता च	५०.१४२
सामान्यम्	२६.४	सुखं कीर्ति	१.५७	सुरूपा यौवनावस्था	५०.१६४
सायुध:	४.६३	सुखं तिष्ठन्तु	३२.४५	सुरूपा लक्षणोपेता	५०.२९
सारङ्गरथमारूढम्	४३.४३	सुखदु:खज्ञ	१०.९.६	सुरूपे सुभुजे	१२७.१०८
सारथिं बहुशास्त्रज्ञम्	३९.७२	सुखभाग्	८२.२६	सुशान्तिश्च सुकीर्तिश्च	४६.२८
सार्वभौम	३९.१६	सुगन्धफलपुष्पाणाम्	८२.६४	सुशास्त्रविधिमाश्रित्य	५१.१०
सा वन्द्या	९८.६	सुगन्धिधूपितम्	३१.६	सुश्रमे वचनम्	११६.१३
सा विद्या	११२.९	सुग्रीवं कुम्भकर्णञ्च	८५.६९	सुषमां शाद्वलाम्	६८.१४
साहाय्यं सङ्गरे	४०.७	सुतं सौभाग्यकामाय	४५.१२	सुषेणं कुरु	१३.१८
सिकता पङ्क	६५.२७	सुत: कालाग्नि:	६.७	सुषेणस्य	१८.१२
सितकुङ्कुमरागैर्वा	५०.२९०	सुतभ्रातृ	६५.५	सुषेणे निहते	१९.२
सितदन्तो गजगामी	१०१.२६	सुतसम्पूर्ण	६५.३०	सुषेणे महिमा	११०.८
सितपङ्कज	५०.१७३	सुतसौभाग्य	५३.६	सुसमे	१२.५४
सितप्रवरपङ्कजे	८७.२६	सुतस्य	२.८६	सुस्थवृतेऽन्यदा	७२.९२

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
सुस्थिता सुषमा	७२.१४९	सोमेन पूजितः	८५.८७	स्त्रीप्रधाना	३९.१८०
सुस्थे नरे	२४.२४	सोमेशं नाम	११६.८३	स्त्रीसुते	१३.३४
सुस्नातो	९८.१६	सोमेश्वरं महापुण्यम्	१०२.७	स्त्रीस्वरूपा	९.२३
सुस्वप्नो पश्यते	९३.११७	सोमो दैवत	४९.१६	स्थलदेवान्	६७.६६
सुहृज्जन	६५.४९	सोमोपवासः शुचिः	३२.३९	स्थातव्यमेकरात्रम्	११६.४६
सूक्ष्मरूपा	९३.१२२	सोऽशृणोत्	९.८२	स्थानकाल	७३.४७
सूचीमुखेषु	८२.९	सौत्रामणि	७८.१६	स्थानच्युतानि	८७.१२
सूतिका	९.३५	सौधपृष्ठ	८.४३	स्थानमायुः	६७.७६
सूत्रधारगणोपेतम्	७२.१०९	सौबलन्तु	२.१०३	स्थापनं कारयेत्	५०.१५०
सूर्यकोटिसहस्राभो	१२८.३७	सौभाग्यजननम्	९८.३०	स्थापयन्तु	३९.१८१
सूर्यकोटिसहस्रेण	१२७.५३	सौभाग्यमिह जन्मेऽपि	७९.१४	स्थापयेद्दक्षिणे	१२६.२९
सूर्यमण्डल	४७.१८	सौम्यं च कान्तम्	११६.१४	स्थापयेद्देव	३२.११
सूर्यश्चाहम्	१२७.१८७	सौम्यमुखम्	११६.१६	स्थापितं नात्र	३१.३८
सूर्यसोमेक्षणश्चण्डः	१११.५	सौम्यमुत्तरतो	६६.२६	स्थापिता परमेशेन	८०.२८
सूर्यस्य अकाराद्याः	४७.३	सौम्ये कपालिनी	५०.१९०	स्थापिता भवते	३२.५
सूर्यस्योदयमरुतादि	४६.७९	सौम्ये धर्मार्थकामानि	७३.५५	स्थापिता पूर्वविधिना	५०.९७
सूर्याय	२६.३६	सौम्यैश्चोच्चस्थितेः	७३.४३	स्थालीपाकादिकर्म	५६.१९
सूर्यायुतसम	११.५३	सौराष्ट्रपुराधिगता	४६.७४	स्थावरस्य	२९.१०
सूर्ये च	७४.१६	सौर्यवर्णाङ्घ्रिपालैस्तु	८५.३५	स्थितं	१०.१०.६
सूर्यो जनः	१२२.९	स्तम्भा वृताश्च	७२.३६	स्थित्यर्थं मतिमाधाय	११२.७
सूर्यो वह्निर्होमे	१२२.१९	स्तवं देव	३३.२	स्थित्वा विनाशम्	११९.१८
सृजत्येषा	३७.४४	स्तवः पुरा	३६.१	स्थीयतां सुरश्रेष्ठ	४३.२०
सृष्ट्यादौ कथिता	७२.२	स्तवोऽयम्	८३.९९	स्थूणाकर्णो विशालश्च	४३.२६
सृष्टैता देवता	१२७.४८	स्तुता ह्येवम्	१८.१	स्थूलमुन्नतः	७२.५६
सेवते	२.२१	स्तुत्वा	११३.११	स्थूलरूपा तु	२६.१८
सेव्यमानेन्द्रिया	८.२७	स्तुवन्ति	९३.५	स्थूलसूक्ष्मविभागेन	८३.५८
सैंहिकेयः	४७.१४	स्तुवन्ति देवदेवेशम्	८५.१९	स्थूलाम्	८.४९
सोऽन्तरीक्ष	५५.९	स्तूयमानो महातेजो	१२७.३४	स्नपनं तस्य	६९.८
सोपवासः	३५.१५	स्तूयसे सततम्	१२७.११७	स्नातस्य सार्षपम्	६९.१५
सोपवासो	५९.१९	स्तोकवृत्त	७२.६२	स्नात्वा	१०.५.३
सोऽपि	२.१०१	स्तोत्येऽहम्	११३.१	स्नात्वा	७४.१८
सोऽपि स्ववीर्य	११९.३८	स्तोत्राणि	१.९	स्नात्वा	७६.४७
सोमं रवि	१७.१४	स्त्रियं वा	६७.७९	स्नात्वा उमेश्वरम्	७९.७
सोमं राजानम्	५६.७	स्त्रियः	८.३५	स्नात्वा गङ्गानदी	९३.१८४
सोम इद्वत्सरस्तेषाम्	४६.३७	स्त्रियश्च रक्तवस्त्रैश्च	९९.३३	स्नात्वा सार्द्रपटी	३३.५२
सोमसूर्याग्नि	१७.४१	स्त्रिया वानेन	९१.७६	स्नानं देवार्चनम्	६५.५६
सोमसूर्यानिला	३७.६	स्त्रीजनम्	२.५८	स्नानं शिष्याय	५२.१०

श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०	श्लोकाः	अ०/श्लो०
स्नानं होमम्	५३.९	स्वप्ने तु कूप	६५.४६	हते चोग्रे	४३.६५
स्नानमौनोपवास	१२०.६	स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके	३७.५६	हते तस्मिन्	१९.१
स्नानाख्यम्	६७.१३	स्वभावचित्तसम्पन्नो	१०४.९	हत्वा रुरुम्	३७.१६
स्नापयित्वा	३१.२२	स्वकायात्	११९.२९	हते वज्रे	१६.१
स्नापयेल्लेपयेत्	३३.१००	स्वयं हत्या	११५.११	हत्वा सुररिपून्	१२७.१४९
स्नापयेल्लेपयेच्छक्र	३३.७९	स्वयन्तु पठ्यते	९३.१३३	हरणी हारणी चैव	१२७.१४४
स्नाप्यमाना महादेवी	५०.११२	स्वयम्भुरेष	१०७.१	हर्यर्च्चने	११.११
स्नायुलोहाश्म	७२.८२	स्वरव्यञ्जन	३७.४०	हवनीयप्रसूतिः	१२२.६
स्फटिकैः शैलसोपानै	८२.६६	स्वराः स्मरणशीलत्वात्	३७.५१	हविष्यं भोजनम्	७८.६
स्फुटप्रकटविक्रमम्	८७.३४	स्वर्गः सर्वव्यापी	६.६	हविष्यान्नम्	६१.१७
स्फुटितम्	९३.१५६	स्वर्गापवर्गनिरयम्	८८.८	हंसकारण्डवचक्र	११२.५
स्मरंस्तरति घोराणि	९९.४५	स्वल्पेनैव तु द्रव्येन	४५.१	हंससारससङ्गीतैः	९३.७८
स्मरणात्पठनाद्विप्र	३९.१८४	स्वशक्त्या चैव	९१.५१	हंसे विद्यार्थ	२३.१४
स्मरणादि	३७.९	स्वस्तिकम्	७२.३०	हसमानस्य ते	११६.४७
स्मरणादिभये	३७.९	स्वस्तिकैः	२१.२३	हस्तं शरीरम्	३७.७६
स्मरणाद्वारते	३७.५५	स्वागतं ते	९३.२११	हस्तभूमिगतम्	५०.५०
स्मृतः स भागो	४९.२२	स्वागतं ते	९४.५३	हाटकेश्वरदेवस्य	८३.२६
स्मृतिः संस्मरणाद्देवी	३७.३७	स्वागतं ते	९५.२६	हारनूपुर	७.२५
स्मृतिः सिद्धिरिति	३७.५०	स्वागतं ते तदा	११६.१०	हारादिकटिसूत्रम्	११९.६
स्मृतिश्च सर्वभूतानाम्	१२७.१६६	स्वागतं भद्र	९३.२४९	हास्यन्तु शतभिषैज्या	१०१.१६
स्रष्टात्वम्	३०८.२४	स्वाती शनि	४५.१०	हाहा हूङ्कार	७.६७
स्रुचायान्तु	१२१.१५	स्वाती श्री कीर्तिः	१२७.९४	हिताय पूजिता	१.५१
स्रुवं प्रताप्य	५६.२०	स्वाभिधानाभिधेयाश्च	९३.२८५	हिताय सर्व	१.५२
स्रुवमेखलभाराय	२६.३२	स्वामित्वाद्	३७.५३	हिताहारोपयोग	१०८.२६
स्रुवमेखलाधारी	५०.१८०	स्वामिनो	४.२३	हिताहितस्य	११०.१०
स्रुवहस्तास्तथा	४.३८	स्वायम्भुवो मनुः	४६.२२	हिताहिताहार	११०.३
स्वकान्ताम्	९.४	स्वार्थसिद्धौ	५१.१३	हिमचन्दनकर्पूरै	८.२९
स्वकान्तिकिरणौघेन	९३.२४३	स्वाहा स्वधा च	१२७.१८५	हिमवते हेमकूटे	७५.१
स्वकायेन तीर्थेषु	१२८.१६	स्वेन वधानेन	११८.१४	हिमवत्यचले	९३.२१
स्वचक्रेणैव	२.८७	हतवीर्यं हतशौर्यम्	८६.२४	हिमवद्गिरौ	३९.३
स्वतेजसा न	४१.१५	हतशेषबलः	१७.१२	हिमवद्विन्ध्यनिलये	३८.२
स्वतो वा	६०.२६	हतशेषबलो	१७.११	हिमवान्निषधे	३२.४
स्वदोहकाले	४९.१७	हतसेनस्तदा	१९.१०	हिमाचले महापुण्ये	३७.१८
स्वधर्मनिरतैर्वत्स	८८.३	हते काले	१५.१	हिमाद्रौ	६५.२६
स्वनामैर्पूजयेद्देवीम्	९३.२८८	हते कृष्णरथाधारे	४१.६	हिरण्यगर्भः	५६.३५
स्वप्नांश्च	९२.१२४	हते घोरे	२१.१	हिरण्यगर्भसहितम्	१०५.४
स्वप्नाः शुभाश्च	६५.४१	हते चोग्रे	४१.२	हिरण्याक्षस्तु	१०८.१५

श्लोकाः	अ०/श्लो०
हिलिहिलो	३.१६
हुतं हुतं पयो	७७.१६
हुतमग्निषु देवाय	४८.२०
हुताशन महाबाहो	३९.१०५
हुत्वा चादित्य	५०.२७७
हुत्वा हुताशने	१०४.१४
हूङ्काररव	४३.५१
हृदयं होमयित्वा	११८.११
हृदस्था क्रिया	११२.१६
हृद्बीजे नास्तरेद्	१२६.२३
हृषीकेश मदाधारिन्	८०.२१
हेमं तापे भवेत्	१२२.२३
हेमं वा	६७.३०
हेमं वा राजतम्	१००.५
हेमचक्षुस्तथा	१०५.५
हेमजन्तु महद्दण्डम्	२९.६
हेमपट्टकृतौ	५०.२७०
हेमपुष्पै	६५.८
हेमप्रासाद	८२.६५
हेमभावा च	३२.१५
हेमरत्न	६५.२
हेमरत्नमणि	७०.१५८
हेमरत्नविचित्राङ्गी	१२७.७६
हेमराजत	५०.१८६
हेमराजतपात्रस्थौ	५०.२७५
हेमरुक्म	८८.१०
हेमवस्त्रानु	६१.७
हेमशृङ्गीशफैः	१०४.१५
हेमादिपुष्परत्नानि	२२.१८
हेमेन्द्रनीलजौ	५०.२५१
हेमोत्था सा	५०.३३
हेलाहुङ्कारशब्देन	८५.९
हैमराजत	२६.२०
हैमराजत	५०.३२८
हैमराजत	६६.३७
हैमा वा रत्नवार्क्षा	५०.२२४
होतारन्तु विजानीयात्	१२१.१८
होतारो मन्त्र	१२१.३०
होमं कार्यम्	५७.१५
होमं कृत्वा	२७.३०
होमं क्षीरं घृतम्	५०.२३४
होमं तिलाज्यक्षौद्रन्तु	५२.९
होमं देवदलम्	५०.२५९
होमं विन्दति	५०.२४७
होमं शत	५४.१८
होमकाले प्रयोक्तव्यम्	७५.१४
होमयेल्लक्षमेकन्तु	९५.३
होमात्सर्वम्	१२०.३२
होमावसानिकं घोरमसुरम्	४०.३
होमेन व्रतचर्येण	१००.२६
होमोत्थाया	२६.८
ह्रस्वदीर्घैः	१७.२०
ह्रस्वेन लाघवम्	९३.१५८

पद्मपुराणम्

हिन्दीटीका-श्लोकानुक्रमणी सहित

टीकाकार—शिवप्रसाद द्विवेदी

पुराणसमूह में पद्मपुराण की महिमा अत्यधिक है। इस महापुराण की श्लोक संख्या पचपन हजार है। विषयों के विभाग की दृष्टि से पद्मपुराण को मुख्य रूप से पाँच खण्डों में विभक्त किया गया हैं उन खण्डों के नाम हैं—(1) सृष्टिखण्ड (2) भूमिखण्ड (3) स्वर्गखण्ड (4) पातालखण्ड और (5) पाद्योत्तर खण्ड। किन्तु स्वर्गखण्ड के अन्तर्गत ही चतुर्थ खण्ड के रूप में 'ब्रह्मखण्ड' का भी सन्निवेश किया गया है। विषय की दृष्टि से भी इस खण्ड को एक पृथक् खण्ड मानने में कोई क्षति इसलिए नहीं है कि इसका प्रतिपाद्य विषय 'ब्रह्म' स्वर्गखण्ड के विषय से बिल्कुल भिन्न है। इसी तरह पाद्योत्तर खण्ड के अन्त में 'क्रियासारखण्ड' को सन्निविष्ट किया गया है। इसका भी प्रतिपाद्य विषय पाद्योत्तर खण्ड के प्रतिपाद्य विषय 'मोक्षतत्त्व' से भिन्न 'कर्मानुष्ठान' है। अतएव पद्ममहापुराण के खण्डों की संख्या सात भी मानी जा सकती है।

शास्त्रों में पुराणों की महिमा का विशद वर्णन है। जिस तरह से भगवान सूर्यरूप से सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करते हैं; उसी तरह वे पुराणशरीरक होकर संसारी जीवों के अन्तःकरण में अवस्थित अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने का काम करते हैं—'यथा सूर्यवपुर्धृत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे। तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणवयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्।।' (पद्मपुराण स्वर्गखण्ड 62/60-61)। इसीलिए पुराणों की नित्यश्रवणीयता बतलायी गयी है—'पुराणं शृणुयान्नित्यम्।

विशालकाय पद्मपुराण एक ओर पौ[illegible] की चर्चा करता है तो दूसरी ओर यह अन्तकरण रूपी जीवों के लिए जीवनोपयोगी साधनों की भी विस्तृत चर्चा करता है। इस पुराण में अनेक प्रकार के व्रतों, [illegible]ों की महिमा, एकादशीव्रत की महिमा, [illegible] भगवद्गीता के अठारहो अध्यायों की महिमा, भार्यातीर्थ, मातृपितृतीर्थ तथा गुरुतीर्थ का वर्णन, श्राद्ध की [illegible] श्राद्धापयोगी तीर्थों का वर्णन, देवपूजन, अग्नि[illegible]न, नामहिमा आदि अनेक विषयों का वर्णन है—इसके साथ ही इस महापुराण में अद्भुत कथाओं का निरूपण है। इस पुराण का पञ्चाख्यान अत्यन्त आकर्ष[illegible] का ग्रन्थ कब तक सुरक्षित रहता है इसकी भी चर्चा इस पुराण में की गयी है।

प्रस्तुत संस्करण प्रथमतः हिन्दी अनुवाद [illegible] प्रकाशित हो रहा है। इसमें पूर्व-प्रकाशित [illegible] अनुपलब्ध या अत्यल्प उपलब्ध पदच्छेद पर ध्यान देकर उन्हें पूर्ण किया गया है ।इसके फलस्वरूप [illegible] से अध्येताओं की पाठन-सम्बन्धी कठिनाई दूर [illegible] सामान्य अध्येता भी इसका लाभ उठा सकेंगे।

(सम्पूर्ण खण्ड—शीघ्र)

श्रीविष्णुमहापुराणम्

हिन्दीटीका-श्लोकानुक्रमणी सहित

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

भारतीय संस्कृति के मूल वेद हैं। वेदों को अनन्त बतलाते हुए कहा गया है—'अनन्ता वै वेदाः।' सभी शास्त्रों की प्रवृत्ति वेदार्थोपबृंहण में बतलायी गयी है। वेदार्थ की व्याख्या के साधनों में पुराण अन्यतम हैं। महर्षि व्यास कहते हैं—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' (महाभारत आदिपर्व 1/67)। अर्थात् वेदों की व्याख्या इतिहासों तथा पुराणों के आलोक में करनी चाहिये।

पुराणों की संख्या अठारह है। श्रीमद्-भागवतकार लिखते हैं—'ब्राह्मं पद्मं वैष्णवं च शैवं लिङ्गं सगारुडम्। नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम्।।' 'भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्। वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।' (श्रीमद्भागवत 12/7/23-24)। अर्थात् ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिङ्ग, गरुड, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म तथा ब्रह्माण्ड—ये अठारह पुराण हैं। पद्मपुराण के पाद्योत्तर खण्ड में पुराणों को तीन भागों में विभक्त किया गया है—सात्त्विक, राजस एवं तामस। सात्त्विक पुराणों में विष्णुपुराण का नाम सर्वप्रथम परिगत है।

पुराणों के प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण करते हुए बतलाया गया है कि पुराणों में पाँच विषयों का समान रूप से निरूपण किया जाता है—सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश (बड़े-बड़े राजाओं के वंश), मन्वन्तर तथा बड़े राजाओं के चरित। विष्णुपुराण में इन समस्त विषयों का क्रमशः निरूपण किया गया है। महर्षि पराशर ने स्पष्ट रूप से अपने शिष्य मैत्रेय महर्षि से कहा भी है—'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव भवतो गवितं मया।।' (वि.पु. 6/8/2) अर्थात् मैंने तुम्हें संसार की सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशों के चरित्र का वर्णन सुनाया। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण का तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। इस पुराण में तत्त्वनिरूपण को दृष्टिपथ में रखकर श्रीमद् यामुनाचार्य कहते हैं—'तत्त्वेन यश्चिद-चिदीश्वर तत्स्वभाव, भोगापवर्गत-दुपायगतिरुदारः। संदर्शयन् निरमिमीत पुराणरत्नं तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय।।' (स्तोत्ररत्न श्लोक 4)। अर्थात् जिन्होंने यथार्थ रूप से चेतन (जीव), अचेतन तथा ईश्वर के स्वभाव, भोग, अपवर्ग (मुक्ति), मुक्ति के साधन तथा आश्रयतत्त्व का निरूपण करते हुए पुराणरत्न (विष्णुपुराण) का प्रणयन किया; उन उदार चरितवाले महर्षि पराशर को नमस्कार है।

श्रीविष्णुपुराण पर प्राचीन दो टीकाएँ उपलब्ध होती हैं—(1) श्रीधरस्वामीप्रणीत 'आत्मप्रकाश'—यह व्याख्या अद्वैतसिद्धान्त के अनुसार है। (2) 'विष्णुचित्तीय'—यह व्याख्या विष्णुचित्तनामक किसी श्रीवैष्णव-विद्वान् की है।

प्रस्तुत संस्करण में अनुवाद करते समय अर्थ को प्रसङ्गानुकूल रखने का प्रयास किया गया है। इस बात का पूर्णरूप से ध्यान रखा गया है कि सिद्धान्तभिनिवेश के कारण अर्थ विपर्यास न हो जाय। शब्दो का अर्थ करने में विष्णुचित्तीय तथा आत्मप्रकाश दोनों की आवश्यकतानुसार भरपूर सहायता ली गयी है। सम्पूर्ण प्रयास के बाद भी स्खलन की सम्भावना से इनकार इसलिए नहीं किया जा सकता है कि मनुष्य स्वभावतः स्खलनशील होता है।